श्रीमद्भागवत

हिन्दी टीका सहित

भाग : १

श्रीमद्-भागवत

हिन्दी टीका सहित

टीकाकार–गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी वैश्य

संशोधनकर्ता–विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र
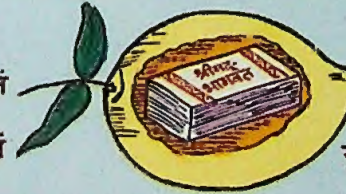
निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

शुक. परीक्षित

निगमकल्पतरुः

श्रीमद्भागवतग्रंथः

प्रेतरूपी घुंघुकारी

गोकर्ण

नारद

वैराग्य

ज्ञान

॥ अथ भाषाटीकायुतं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं प्रारभ्यते ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

श्रीगणेशाय नमः॥दोहा–गणपति गौरिगिरीशश्री,–कृष्णचरण चित लाय। करत तिलक माहात्म्यको कीजै आय सहाय॥१॥ व्यासदेव शुकदेव श्री,–शौनक सूत प्रणाम ॥ बार बार कर प्रेमसे, कीजै पूरणकाम ॥२॥ जिन जाते हुएके पीछे चलते २ श्रीव्यासजी महाराज विरहसे व्याकुल होकर पुत्र २ पुकारने लगे, वही वार्ता तन्मय हो जानेके कारण वृक्षोंने भी उनसे कही, उस सर्व प्राणियोंके हृदय मुनिको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥ नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठे हुए महाबुद्धिमान् सूतजीको प्रणाम करके कथारूपी अमृत स्वादके रसिक शौनकजी कहते भये॥२॥ शौनकजी बोले कि सर्व अज्ञान–अन्धकार–नाशक, कोटिसूर्यसम प्रकाशक हे सूत! हमारे श्रवणोंके आनन्ददायक रसायनरूप कथाओंका

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥१॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥३॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥४॥ इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः॥क्लेशक्लान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥५॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेय पावनानां च पावनम् ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ६ ॥ चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरेन्द्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ७ ॥

सार (हमारे ऊपर अनुग्रह करके) आप वर्णन कीजिये ॥३॥ किस रीतिसे भक्ति ज्ञान वैराग्यकी प्राप्ति होती है? ज्ञान किस प्रकारसे अधिक होता है? और वैष्णव (महात्मा पुरुष) किस भांतिसे माया मोहका परित्याग करते हैं? ॥ ४ ॥ इस महाघोर कलिकालके आनेसे संसारी जीवोंका चित्त असुरभावको प्राप्त हो गया है, उस क्लेशसे ग्रसित जीवोंका उद्धार करनेके लिए क्या कर्म करना चाहिए? ॥५॥ जो कुशलोंका कुशल, पावनोंका पावन और सब प्रकार भगवत्की भक्तिका उत्पन्न करनेवाला साधन हो उसे आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ चिन्तामणि, संसारके सुखको, सुरेन्द्र, स्वर्गपर्यन्तकी पदवीको देता है, और गुरु प्रसन्न होकर योगिपरमदुर्लभ वैकुण्ठगतिको देता है ॥७॥

सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि ! तुम लोगोंके मनमें अधिक स्नेह है, इसलिए मैं पूर्ण विचार करके सर्व सिद्धान्तोंका सिद्धान्त, संसारका भय नाशक, आनन्दका प्रकाशक ॥८॥ भक्तिकी वृद्धि करनेवाला, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके सन्तोषका कारण मैं तुम्हारे सम्मुख वर्णन करता हूँ, आप लोग सावधान होकर सुनिये ॥ ९ ॥ जो लोग कालरूपी सर्पके मुखके ग्रास होनेके त्रासका नाशकर्त्ता खोजते हैं उनके लिए यह श्रीमद्भागवत् पुराण श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षितसे कहा था ॥१०॥इससे अधिक मनका शुद्ध करनेवाला और आनन्ददायक और कोई दूसरा उपाय नहीं है। अनेक जन्मके पुण्यका फल इकट्ठा होनेसे भागवतोंको श्रीमद्भागवत्की कथा प्राप्त होती है ॥११॥ जिस समय राजा परीक्षितसे (शृङ्गीऋषिके शाप देनेके पश्चात् बड़े बड़े ऋषि मुनियोंकी) सभामें श्रीशुकदेवजी व्यासनन्दन गङ्गातीरपर आकर

सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥८॥ भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥ एतस्मादपरं किंचिन्मनश्शुद्धयै न विद्यते ॥ जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥११॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥१२॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥१३॥ एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥ क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥ १५ ॥

श्रीभागवतकी कथा कहनेका प्रारम्भ किया चाहते थे उसी समय सब देवताओंने अमृतका कलश वहां लाकर रक्खा॥१२॥और श्रीशुकदेवजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम करके अपने कार्यमें निपुण सब देवता बोले—कि हे महाराज ! कथारूप अमृत हमको दीजिये और इसके बदलेमें यह अमृतका घट लीजिये (देवता तो अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमें प्रसिद्ध ही हैं) ॥१३॥ महाराज ! राजा परीक्षितको तो आप अमृत पिलाइये और हम देवतालोगोंका यह मनोरथ है कि उसके बदलेमें हम श्रीमद्भागवत् रूपी सुधाका पान करें ॥१४॥ कहां तो तुच्छ अमृत और कहां संसारतारक सकल कलिमलविदारक श्रीमद्भागवतकी कथा, कहां नीच कांच और कहां अमूल्य चिन्तामणि, यह बात देवताओंके मुखसे सुन शुकदेवजी अपने मनमें बहुत हँसे (और कहा धन्य है आपकी चतुराईको) ॥ १५ ॥

उनको अभक्त जानकर सदा संकटमें सहायक भक्ति-मुक्तिदायक देवताओंको भी दुर्लभ श्रीमद्भागवतका कथारूपी अमृत नहीं दिया ॥१६॥ पहले इस प्रकार राजाकी मुक्ति देखकर ब्रह्मा अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुए, फिर सत्यलोकमें तुलाको बांध और सब साधनोंके सङ्ग इसको तोला ॥ १७ ॥ तब श्रीमद्भागवत्‌के गौरवके आगे सब साधन हलके दीख पड़े, तब तो सब ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने मनमें बड़े चकित हुए ॥ १८ ॥ और भूमण्डलमें श्रीमद्भागवतको भगवत्‌का स्वरूप समझकर कहा कि यह मोक्षदायक शास्त्र पढ़ने सुननेसे तत्काल सुरपुरका वास देता है ॥१९॥ यह महापुराण सप्ताहमें श्रवण करनेवालेको सर्वथा मोक्षदायक है, यह सनकादिकोंने कृपा करके नारद-

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥१६॥ राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ सत्यलोके तुलां बद्ध्वाऽतोलयत्साधनान्यदः॥१७॥ लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥१८॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठ-फलदायकम् ॥१९॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २० ॥ यद्यपि ब्रह्मसंबन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥२१॥ शौनक उवाच ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकम् ॥ शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २३ ॥

जीसे प्रथम ही कहा है ॥ २० ॥ यद्यपि यह कथा देवर्षिने ब्रह्माजीसे सुनी थी परंतु सप्ताह पारायण सुननेका विधान सनत्कुमारने उनसे वर्णन किया ॥२१॥ यह बात सुनकर शौनकजी बोले कि लोकमें विग्रह करानेवाले नारद दो घड़ीसे अधिक एक स्थानमें कभी नहीं रह सकते थे, फिर किस प्रकार स्थिर होकर प्रीतिपूर्वक सप्ताह पारायणकी विधि सुनी और सनत्कुमारका और इनका समागम कहां हुआ ? ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि तुम सावधान होकर सुनो, यह भक्तियुक्त मुक्तिदायक कथा मैं आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ, जो कुछ मुझसे श्रीशुकदेवजी महाराजने अपना अन्तरंग शिष्य समझकर कहा है ॥ २३ ॥

एक समय बदरिकाश्रम सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके लिये आये; वहां उन्होंने नारदजीको देखा ॥ ॥२४॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारदमुनि ! तुम दीन कैसे हो रहे हो, ऐसी कौनसी चिन्ता है ? और कहांसे आये थे ? और कहां इतनी शीघ्रतासे जा रहे हो ? ॥ २५ ॥ इस समय तुम ऐसे शून्यचित्त जान पड़ते हो जैसे किसीका धन हर गया हो अथवा अद्भुत चरित्र देखा हो, मुक्तसङ्ग आपको यह बात अनुचित है, इसलिए इस शोकका कारण वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारदजीने चारों भाइयोंसे नमस्कार करके कहा-हे महाभाग्य ! मैं सब लोकोंमें उत्तम भूलोकको जानकर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी; (गया) को गया ॥२७॥

एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ॥ सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २४ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २५ ॥ इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २८ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनस्संतोषकारकम् ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥२९॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥३०॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥३१॥ तरुणी प्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३२ ॥

और हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें घूमता फिरा ॥२८॥ परन्तु कहीं मनको सन्तोष करनेवाली कोई कल्याणदायक बात देखनेमें न आयी, अधर्मके मित्र कलियुगने सब संसारमें ऐसा भ्रष्टाचार फैला रक्खा है ॥२९॥ कि सत्य,तप, शौच, दयाका कहीं नाम नहीं रहा, केवल झूठ बोलने और उदर पोषण करनेवाले रह गये हैं, इस कारण चित्तमें अत्यन्त चिन्ता है ॥ ३० ॥ तथा उपद्रवी, आलसी, कुबुद्धि, मन्दभागी हैं । सज्जन पाखण्डी हैं, विरक्त परिग्रहसहित हैं (स्त्रियाँ पतियों की आज्ञा नहीं मानतीं, उनसे अलग हो अपना व्यवहार करती हैं ।) ॥३१॥ सर्वत्र गृहमें स्त्रियोंकी ही प्रभुताई है, साले सम्मतिदाता हैं, धनके लोभसे कन्या को बेंच देते हैं, स्त्री पुरुषोंमें क्लेश रहता है ॥ ३२ ॥

आश्रम अर्थात् मठ, मन्दिर, ठाकुरद्वारे, तीर्थ और नदियोंमें यवन लोगोंका अधिकार हो रहा है, देवताओंके बहुतसे स्थान दुष्टोंने नष्टकर डाले हैं॥३३॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी कोई सत्क्रियावाला पुरुष नहीं रहा, कलिरूपी घोर दावाग्निमें सब साधन जलकर भस्म हो गये॥ ३४॥अन्नके बेचनेवाले तो जनपदके मनुष्य, वेद बेचनेवाले ब्राह्मण, भग बेचनेवाली कुलटा स्त्रियें कलियुगमें अनेक होंगी। इस प्रकार कलियुगके अनेक दोष दुःख देखता पृथ्वीमें घूमता हुआ वृन्दावनमें यमुनाके निकट गया, जहां श्रीवृन्दावनविहारी कृष्ण मुरारीने अनेक अनेक प्रकारकी अद्भुत लीलायें की थीं॥३५॥३६॥ हे मुनियो! वहां एक (अलौकिक) आश्चर्य देखनेमें आया, वह मैं आपकेसम्मुख वर्णन करता हूँ, वहां एक युवती स्त्री

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥३३॥ न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३४ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवन्ति कलाविह ॥ ३५ ॥ एवं पश्यन्कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ॥ शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥३८॥ दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ बालोवाच ॥ भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त दुःखी, मन मारे बैठी शोच कर रही थी॥३७॥और उसके समीप दो वृद्ध मनुष्य अचेत पड़े लम्बे लम्बे श्वास ले रहे थे, वह स्त्री उनकी शुश्रूषा करती थी और वारंवार समझाती थी और उनके आगे रो रोकर कहती थी॥३८॥और अपने देहकी सहायता करनेवालेको दशों दिशामें आखें पसार पसार देखती थी और सहस्रों स्त्री उसको पंखेसे हवा करती थीं और वारंवार धैर्य दे देकर समझा रही थीं॥३९॥उसकी दशा देखते ही आश्चर्यसे मैं उस शोकाकुल बालाके निकट गया, वह मुझको देखते ही अचानक उठ बैठी और व्याकुल होकर बोली ॥४०॥ हे कृपासिन्धु! कुछ काल मेरे समीप ठहरकर मेरा कष्ट निवारण कीजिये, आपका दर्शन संसारकेजीवोंका निस्सन्देह सब पाप दूर करनेवाला है॥४१॥

प्रायः आपके अमृतरूपी वाक्योंसे मेरे दुःखकी शान्ति हो जायगी, क्योंकि जब कोई पूर्व जन्मका पूर्ण पुण्य उदय होता है, तब आप-साधुओं का दर्शन होता है ॥४२॥ उसके मधुर वचन सुन मैंने उस स्त्रीसे पूछा कि हे देवि ! तू कौन है ! ये दोनों कौन हैं ? तथा ये कमलमुखी स्त्रियां तुम्हारी कौन हैं। अपने दुःखका विस्तारसहित वर्णन कर ॥४३॥ बाला बोली कि हे भक्तवत्सल ! मैं भक्ति हूँ, और मेरा नाम सब संसारमें विख्यात है और यह दोनों ज्ञान और वैराग्य नामके मेरे पुत्र हैं, कुसमयके प्रभावसे ये दोनों वृद्ध हो गये हैं, अब कोई इनका आदर-सत्कार करनेवाला नहीं रहा ॥४४॥ और ये जो स्त्रियां मेरे निकट बैठकर मेरा धैर्य बँधाती हैं, सो ये गंगा, यमुना, सरस्वती आदिक नदियां हैं, स्त्रियोंका रूप धारण कर मेरी सेवा करनेको आ गयी हैं, परन्तु देवताओंकी सेवा करने से भी मेरा कल्याण नहीं होता

बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति॥ यदा भाग्यं भवेद् भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥४२॥ नारद उवाच ॥ काऽसि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥४३॥ बालोवाच ॥ अहं भक्तिरितिख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥४४॥ गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः॥तथाऽपि न च मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥४५॥ इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ॥ वार्ता मे वितताऽप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥४६॥ उत्पन्ना द्रविडे साऽहं वृद्धिं कर्णाटके गता ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥४७॥ तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गिका ॥ दुर्बलाऽहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्॥४८॥वृन्दावनं पुनःप्राप्य नवीनेव सुरूपिणी॥जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥४९॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात्॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया॥ ५० ॥

है ॥ ४५ ॥ हे तपोधन ! इस समय मेरी दीनता की ओर ध्यान करके एक बात सुनो, मेरी कथा बहुत बड़ी है, उसको सुनकर आपको परमानन्द प्राप्त होगा॥४६॥ प्रथम द्रविड़ देशमें मेरा जन्म हुआ था और कर्णाटक देशमें मेरी युवा अवस्था हुई, कुछ काल पर्यन्त दक्षिणमें रहकर, गुजरात और महाराष्ट्र देशमें पहुँची और उसी देशमें वृद्ध हो गयी ॥४७॥ और महाघोर कलियुगी लोगोंके पाखण्डोंसे मेरा और मेरे पुत्रोंका शरीर महादुर्बल हो गया ॥४८॥ फिरते फिरते अब इस समय फिर वृन्दावनमें आनेसे मैं उसी भांति तरुण और सुन्दर रूपवती हो गयी हूँ ॥ ४९ ॥ परंतु ये मेरे दोनों पुत्र परिश्रमके मारे दुःखित और अचेत पड़े हैं, इस स्थानको छोड़ मैं देशान्तरमें जाती हूँ ॥५०॥

अब ये दोनों वृद्ध हो गये, इस महादुःखसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ, क्योंकि मैं तरुण और मेरे पुत्र कैसे वृद्ध हो गये इस बातकी मुझे बड़ी लज्जा है ॥५१॥ हम तीनों सदा एक संग रहते हैं, यह विपरीतता कैसे हुई ? माता वृद्धा, पुत्र तरुण यह बात तो योग्य है, यह महाविपरीत है कि माता तरुण और पुत्र वृद्ध, ऐसा कहीं नहीं होता देखा ॥५२॥ इस कारण बड़े आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माको शोचती हूँ, अतः हे योगी महात्मन्! आप कहिये इसमें क्या कारण है ॥५३॥ नारदजी बोले—हे निष्पापे! मैं अपने योगबलसे तेरे सब वृत्तान्तका विचार करता हूँ, तू अपने मनमें दुःख मत मान, परमेश्वर तेरा कल्याण करेंगे॥५४॥ सूतजी बोले कि, क्षणमात्रमें सब विचार कर नारद मुनि कहने लगे

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥ साऽहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥५२॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगनिधे धीमन्कारणं चात्र किं भवेत् ॥५३॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५४ ॥ सूत उवाच क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥५५॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः॥५६॥इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान्स धीरः पण्डितोऽथवा ॥५७॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ॥ वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥ ५८ ॥

कि हे देवि! सावधान होकर सुन—इस समय महाघोर कलियुग वर्तमान है ॥५५॥ इसलिये सदाचार, योगमार्ग, सत्य, तप लुप्त हो गया है और मनुष्यों का पाप करनेसे असुरोंकासा स्वभाव हो गया है ॥५६॥ इस कलिकालमें सज्जन अत्यन्त दुःख पा रहे हैं, कपटी-कुचाली प्रसन्न रहते हैं जो ज्ञानी पुरुष धैर्य धारण करते हैं वे ही धीर और पंडित हैं ॥५७॥ यह शेषजीको भार करनेवाली पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य हो गयी है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसी ही होती जाती है, अब कहीं शुभकर्म देखनेमें नहीं आता ॥ ५८ ॥

अब तुझको भी इस समय पुत्र सहित कोई नहीं देख सकता। पुत्र, दारा, धनादिके अनुरागमें अन्धे हो रहे हैं, इसीलिये तेरा आदर-सम्मान कोई नहीं करता और इसी कारण तेरा शरीर दुर्बल हो गया है ॥५९॥ वृन्दावनमें आनेसे अब फिर तू नवीन तरुणी हो गयी है, इससे यह वृन्दावन धन्य है ! जहां (मुक्तिदायक) भक्ति विराजमान है॥६०॥ वृन्दावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहकोंके न होनेसे अपनी वृद्ध अवस्थासे नहीं छोड़ेंगे। सम्प्रति किंचित् सुखपूर्वक ये दोनों सो रहे हैं। (इस स्थानमें ज्ञान-वैराग्यकी और तेरी भी काम क्रोधादि दुःख भावको छोड़ सुखपूर्वक स्थिति होगी), क्योंकि और स्थानोंसे यह वृन्दावन परमोत्तम माना जाता है॥६१॥ नारदजीकी मनोहर वाणी सुन भक्ति बोली कि हे आनँदरूप ! जब कलियुग ऐसा महापापी और दुष्टात्मा है, तो राजा परीक्षित्‌ने उसको क्यों स्थापित किया, इसके प्रवृत्त होते

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ॥ उपेक्षितानुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥५९॥ वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥६०॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ॥ किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६१ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाऽप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखिताऽस्म्यहम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥६४॥ यदा मुकुन्दो भगवान्क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः॥तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ॥ ६५ ॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥

ही सबका सार बल कहां चला गया ! ॥६२॥ और दयासिंधु भगवान् विष्णु इस पापको कैसे देख सकते हैं; कृपा करके यह सन्देह मेरा निवारण करो, तुम्हारी मनोहर वाणीसे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न है ॥६३॥ नारदजी बोले कि हे बाले ! जो तूने पूछा है, तो सावधान होकर सुन, मैं तेरे सम्मुख समस्त कथा वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे तेरा सब दुख दूर हो जायगा ॥ ६४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी पृथ्वीको छोड़कर अपने परमधामको गये उसी दिनसे सब साधनोंके बाधक कलियुगने आकर संसारमें प्रवेश किया ॥६५॥ जब दिग्विजय करते कलियुगको राजा परीक्षित्‌ने देखा, उसी समय उसके मारनेको उपस्थित हुए,

तब यह दीन बन राजाकी शरणमें आ गया, तब राजाने अपने मनमें विचारा कि यह मेरी शरण आया है, इस कारण सारभोजी भ्रमरके नाईं इसका मारना उचित नहीं है ॥६६॥ (दूसरा इसमें एक गुण और उत्तम देखा इसलिये इसको नहीं मारा और युगोंमें जो फल तपस्या, योग, समाधि, यज्ञ और दान करनेसे भी नहीं होता वह फल कलियुगमें केवल (भले प्रकार चित्त शांतकर) नारायणका नाम लेनेसे मिलता है ॥ ६७ ॥ जिसमें केवल एक ही सार भक्ति ही साधक है, और ज्ञान वैराग्य जिसमें निरस हैं) ऐसे कलियुगको देख कलियुगवासी मनुष्यके सुखके लिये भक्ति करनेसे ही तर जायँगे, ऐसा शुभ गुण विचार राजाने उसका स्थापन किया॥६८॥ परंतु कलियुगवासियोंसे साधारण काम भी नहीं हो सकता, इसलिये कलियुगने सबका धर्म कर्म भ्रष्ट कर दिया, कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश निगल गया है और बीजहीन तुषकी

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्त्तनात् ॥६७॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥६८॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९ ॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७० ॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥७१॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥ तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥ मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाषण्डसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७३ ॥ पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७४ ॥

नाईं पृथ्वीमें सब पदार्थ निःसार हो गये हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोड़े धनके लोभसे भगवत्-सम्बन्धी कथा घर घरमें जैसे तैसे मनुष्योंके सम्मुख कहनी आरंभ कर दी इसलिये कथाका फल जाता रहा ॥ ७० ॥ बड़े बड़े भयंकर अत्याचारी, कुकर्मी, पापी, पाखण्डी मनुष्य कपट वेष धारण कर तीर्थोंमें वास करने लगे, इसलिये तीर्थोंका सार जाता रहा ॥७१॥ जिनके चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोहसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, वे लोग झूठा तप करने लगे, इसलिये तपस्याका सार जाता रहा ॥७२॥ मनको नहीं जीतनेसे, लोभ, दम्भ, पाखण्डका आश्रय करनेसे और शास्त्र पुराणोंके अनभ्याससे ध्यान-योगका फल जाता रहा ॥ ७३ ॥ पंडित महिषकी नाईं स्त्रियोंके सँग रमण कर

पुत्र उत्पन्न करनेमें तो चतुर और विलक्षण हैं, परंतु मुक्ति साधनेमें मूर्ख हैं ॥७४॥ सम्प्रदाय शुद्ध वैष्णव कहीं नहीं हैं, बात बातमें ठग-विद्या है, इसलिये स्थान स्थानमें सब पदार्थोंका तत्त्व जाता रहा ॥७५॥ फिर यह तो कलियुगका धर्म ही ठहरा, इसमें किसीका क्या दोष है, इस कारण पुण्डरीकाक्ष निकट स्थिर हुए भी सहन करते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकऋषि ! इस प्रकार नारदजीके वचन सुन अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो ॥७७॥ भक्ति फिर बोली—हे देवर्षि ! तुम धन्य हो ! मेरे भाग्यसे ही इस स्थानपर आ गये हो, साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेवाला है ॥७८॥ जगत्में जिन (तुम्हारी) केवल अनुपम वचन रचना को सुन लोकमें कयाधूके

न हि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरस्सरा ॥ एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥७५॥ अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥

पुत्र प्रह्लादने मायाका त्याग और जिसकी कृपासे ध्रुवने अचल पदवी पायी, सब क्षेमोंके पात्र ब्रह्माजीके पुत्र ऐसे नारदजीको मैं वारंवार नमस्कार करती हूँ ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां शालिग्रामवैश्यकृतायां भक्ति-नारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ नारदजी बोले कि हे देवि ! तू किसलिये वृथा खेद करती है ? और क्यों इस प्रकार शोकाकुल हो रही है ? श्रीमन्नारायण (जगतहितकारी वृंदावनविहारी) के चरणारविन्दका स्मरणकर, जिससे तेरा सब संकट कट जाय ॥१॥ जिन श्रीकृष्ण द्वारकाधीशने कौरवोंके महा संकटमें द्रौपदीकी सहायता की और उसकी लज्जा रक्खी, गोपकुमारोंको शंखचूड़ आदिसे बचाया

और गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया, वह वृंदावनविहारी वृंदावनसे कहीं चले गये हैं ॥ २ ॥ और तू तो उनको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है, क्योंकि सब संसारी उनको भक्तिहितकारी कहकर पुकारते हैं तेरे बुलाये भगवान् तो नीचोंके घरों में भी आते हैं ॥३॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेतामें ज्ञान वैराग्य मुक्तिके साधक थे कलियुगमें केवल भक्तिही प्रधान है, वही ब्रह्मसायुज्यको देनेवाली है इसी बातका निश्चय कर ॥४॥ उस परमात्मा पूर्णब्रह्म चिद्घनानन्द जनार्दनने सुन्दरी कृष्णवल्लभा अपना निज स्वरूप तुझको उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥ जब तूने भगवान् वासुदेवके सम्मुख हाथ जोड़कर विनय की कि, हे वैकुण्ठनाथ ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ? तब कृष्णचन्द्रवनवारी

त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥३॥ सत्यादि त्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलाभक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥५॥ बद्धाऽञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥ ६ ॥ अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥ कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १० ॥

भक्तहितकारीने कहा–तू मेरे भोले भाले भक्तोंको पुष्ट कर ॥ ६ ॥ जब तूने उनका वचन अंगीकार किया, तब भगवान् वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और तेरी सेवा करनेके लिए मुक्ति नाम दासी और ज्ञान, वैराग्य नाम दो दास तुझको दिये ॥ ७ ॥ अपने निज रूपसे तो तू वैकुण्ठधाममें भक्तोंका पालन, पोषण करती है और पृथ्वीपर भक्तोंके विशेष आनन्दके लिये तूने छायारूप धारण कर रखा है ॥८॥ फिर मुक्त और ज्ञान, वैराग्यको अपने साथ लेकर तू मृत्युलोकमें आयी और सत्ययुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक ऋषीश्वर मुनीश्वर तेरा बड़ा आदर सत्कार करते रहे और बहुत आनन्दसे भूमण्डलमें तू रही ॥९॥ अब कलियुगमें पाखंडियोंके पाखण्ड फैलानेसे अत्यन्त पीड़ित

हो मुक्ति क्षीण हो गयी, फिर तेरी आज्ञा शिरपर धारण कर शीघ्र ही वैकुण्ठ लोकको चली गयी ॥१०॥ और फिर तेरे स्मरण मात्रसे ही इस स्थानमें आकर उपस्थित हो जाती तथा चली जाती है, और यह मुक्ति क्षणमात्रको भी तेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करती और तूने ज्ञान वैराग्यको अपना पुत्र समझकर अपने पास रखा है ॥ ११ ॥ और कलियुगमें दुराचारियोंके त्याग करनेसे यह तेरे दोनों पुत्र अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं, परन्तु तो भी कुछ चिन्ता और शोच मत कर, इनके लिये मैं कुछ उत्तम उपाय सोचता हूँ ॥१२॥ हे भक्ति ! कलियुगके समान कोई उत्तम युग नहीं है, उसमें तुझे मैं घर घर हर मनुष्यके हृदयमें स्थापित करूंगा ॥१३॥ और सब धर्मोंका निरादर कर और

स्मृता त्वयाऽपि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥ कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥१३॥ अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ॥ पापिनोऽपिग-मिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्कानांस्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

महोत्सवोंको आगे धर, जो मैं संसारमें तेरा प्रचार न करूं तो परमेश्वरका दास मुझको मत कहना ॥१४॥ और जो कलियुगमें तेरे प्रेमी जीव होंगे, यदि वे पापी दुराचारी होंगे, तो भी निर्भयता से देवमन्दिर, ठाकुरद्वारेमें (नित्यप्रति) जाया करेंगे ॥ १५ ॥ और जिनके हृदयमें तेरा वास होगा वे शुद्ध देहधारी स्वप्नमें भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करेंगे तेरी कृपासे वैकुण्ठलोकका ही वास उनको मिलेगा ॥१६॥ और तेरे माननेवाले महात्मा पुरुषोंका भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर कोई भी हाथ नहीं पकड़ सकता ॥१७॥ जप, तप, व्रत, नियम, दान, पुण्य, वेद, ज्ञान कोई परमेश्वरको ऐसा वशमें नहीं कर सकता; जैसा कि त्रिलोकीनाथको तू वशमें कर सकती है, इसमें गोपियों (और

द्विजपत्नियों) का प्रमाण है-(भक्ति करनेसे सहजमें ही मुक्त हो गयीं) ॥१८॥ और युगोंमें सहस्रों जन्मके अनुष्ठान करनेसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति उत्पन्न होती है, कलियुगमें केवल भक्तिसे ही भगवान् भक्तवत्सलका दर्शन होता है ॥१९॥ जो भक्तिका अथवा भक्तजनोंका द्रोह करते हैं वे लोग त्रिलोकीमें सदा दुःखी रहते हैं, जैसे भक्ति की निंदा करनेसे दुर्वासा ऋषि बड़े दुःखी हुए थे ॥ २० ॥ तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, जप, तप, ज्ञान, वैराग्य कथालापसे क्या है ? एक भक्तिही मुक्ति देनेको बहुत है ॥ २१ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार नारदजीके मुखसे अपनी प्रशंसा और माहात्म्यको सुनकर भक्ति सर्वाङ्गपुष्ट सन्तुष्ट हो नारदजीके सम्मुख खड़ी होकर ॥ २२ ॥ बोली कि हे देवर्षि !

नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिन्दकः ॥२०॥ अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ॥ अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥२३॥ कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥ ज्ञानं प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

तुम धन्य हो ! तुम्हारी सदा मेरेमें दृढ़ प्रीति है, सो मैं कभी त्याग न करूंगी; तुम्हारे चित्तमें सदा रहूँगी ॥ २३ ॥ हे महात्मन् ! आपने मुझपर कृपा करके मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर कर दी (और मुझको धैर्य बँधाया) परन्तु अभी मेरे पुत्रोंको चैतन्यता नहीं प्राप्त हुई; अबतक अचेत पड़े हैं, कृपा करके अब इनको भी जगाओ (जो मेरा हृदय ठण्ढा हो) ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! दयालु नारदजी भक्तिके मधुर वचन सुनकर सहज सहजमें हाथसे सहराकर ज्ञान और वैराग्यको जगाने लगे ॥२५॥ जब सहरानेसे ज्ञान वैराग्य न जागे तब कानके समीप मुख करके नारदजीने उच्चस्वरसे पुकारा, अरे ज्ञान ! शीघ्र जाग, अरे वैराग्य ! शीघ्र उठ जब

जगानेसे उन दोनोंने अपने नेत्र खोले तब नारदजीने ॥२६॥ वेद—वेदान्तके शब्द और बारम्बार भगवद्गीताके पाठ उनको सुनाये, तब वे बलपूर्वक बड़ी कठिनाईसे उठे ॥ २७ ॥ आंखे मीचे ही मीचे बड़े आलस्यसे जँभाई लेने लगे, उनके बगलेके समान श्वेत बाल हो रहे थे तथा सूखे काष्ठके सदृश शरीर सूख गया था ॥२८॥ भूखके मारे क्षीण होनेके कारण वे फिर सो गये, जब उनकी यह दशा देखी तब नारदजी बहुत चिन्ता करने लगे, अब मैं कौनसा उपाय करूं ? ॥ २९ ॥ ये दोनों क्यों नहीं उठते ? इनकी यह घोर निद्रा किस प्रकार जायगी ? इसी भांति विचार करते करते नारदजी श्रीगोविंद भगवान्के चरणारविंदका ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥ नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ॥ बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ ॥ २८ ॥ क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥२९॥ अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥ व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२ ॥ सत्कर्माणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टंतत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५ ॥

आकाशवाणी हुई कि हे तपोधन ! खेद मत करो, तुम्हारा उद्यम सफल होगा, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३१ ॥ हे देवर्षि ! इनके लिये सत्कर्मका आरम्भ करो और संतोंके भूषण महात्मा पुरुष सत्कर्म आपसे कहेंगे, (विना सत्कर्म ये नहीं जायेंगे) ३२ ॥ सत्कर्मके करने मात्रसे ही इन दोनोंकी निद्रा और वृद्धता जाती रहेगी और सब संसारमें भक्ति फैल जायगी ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबने सुनी, नारदजीने कहा यह क्या बात है, मैं अबतक नहीं समझा, मुझको बड़ा आश्चर्य है ! ॥३४॥ फिर नारदजी बोले कि इस आकाशवाणीका

प्रयोजन मैंने नहीं जाना, इसने भी गुप्तरूपसे ही कहा । वह कौनसा साधन है, जिससे इन दोनोंका कार्य सिद्ध हो ? ॥३५॥ वे संत लोग कहां होंगे और साधन किस प्रकार होगा, जो आकाशवाणीने कहा है उसको मैं किस प्रकार करूं ? ॥३६॥ सूतजी बोले कि नारदजीने इसी शोच विचारमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको उसी स्थानपर छोड़कर आप वहांसे साधुओंकी खोजमें प्रत्येक तीर्थमें जा जाकर ऋषि मुनियोंसे पूछा ॥३७॥ सबने उनका वृत्तान्त सुना, परन्तु किसीने निश्चय करके उत्तर नहीं दिया, कोई बोला असाध्य है, किसीने कहा तुम्हारा प्रश्न हमारी समझमें नहीं आता ॥३८॥ कोई सुनकर चुप हो रहा, कोई सुनते ही चल दिया, इस प्रकार त्रिलोकीमें महाविस्मय-

क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ॥ मयाऽत्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तुपलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ४० ॥ उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥ ४१ ॥ तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टं निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥ तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥

दायक बड़ा हाहाकार मचा, (परन्तु किसीने कोई यत्न न बताया) ॥३९॥ वेद वेदान्त और बारंबार गीताके पाठ सुननेसे भी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य ये तीनों न जागे ॥ ४० ॥ इससे अधिक और कौनसा उपाय है ? यह बात हर एक मनुष्यके कानोंमें कहने लगे और जहां जाओ वहां यही चर्चा थी । कोई कहता था कि हे भाई ! नारदसे योगिराजकी बुद्धिमें भी तो यह बात नहीं आई ॥४१॥ तो और इतर मनुष्य इस बातको किस प्रकार कह सकता है, यह दुर्गम बात ऋषियोंने निश्चय करके नारदजीसे कही ॥४२॥ तब नारद मुनि चिन्तातुर होकर बदरिकाश्रममें आये और यह अपने मनमें निश्चय किया कि यहां तप करूंगा ॥४३॥ उसी समय सनकादिक मुनि कहींसे घूमते हुए नारदजीके सम्मुख

आ गये, जिनकी कोटि सूर्यके समान कान्ति थी उन्हें देखकर मुनि श्रेष्ठ महाभाग्य भक्तभूषण ॥४४॥ नारदजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! इस समय बड़े भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है, हे कुमारो ! मेरे ऊपर कृपा करके तुम शीघ्र कहो ॥ ४५ ॥ क्योंकि तुम सब बुद्धिमान्, शास्त्रवेत्ता, योगिराज हो, सदा पांच वर्षके बने रहते हो और सबसे पहले आप उत्पन्न हुए हो ॥४६॥ सदा वैकुण्ठमें रहकर भगवान् वासुदेवके गुणानुवाद गाते हो और भगवत्लीलारूपी अमृतरससे मत्त केवल एक कथामात्रसे ही जीते हो ॥४७॥ "हरिःशरणम्" अर्थात् भगवान् ही रक्षक हैं (परमात्माकी शरण हूँ,) यही वचन आपके मुखसे सदा निकलता है, इस कारण वृद्धपन आपको बाधा नहीं करता ॥४८॥पहले

नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः ॥ कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥ येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ॥५०॥ अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥५१॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम्॥स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥५२॥ कुमारा ऊचुः॥ मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥

नारायणके जय विजय नामक दो द्वारपाल आपके भ्रूभङ्गमात्रसे ही पृथ्वीपर गिरे और फिर आपकी कृपासे शीघ्र ही वैकुण्ठको गये ॥४९॥ कोई मेरे बड़े भाग्यका उदय है जो आपका दर्शन हुआ, आपसे दयालुओंको मुझ दीनपर दया करनी चाहिये ॥ ५० ॥ और जो कुछ आकाशवाणीने कहा है वह क्या साधन है, उसे आप कृपा करके मुझको बताओ और कैसे उसका अनुष्ठान करना चाहिये, उसे भी आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ और भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको, किस प्रकारसे सुख प्राप्त होगा और सब वर्णोंमें किस प्रकारसे प्रेमपूर्वक उनका प्रचार और स्थापन होगा ? ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार बोले कि हे देवर्षि ! तुम इस शोक संतापको छोड़ो, कुछ

चिन्ता मत करो, प्रसन्न हो, इसका उपाय सुखसाध्य पहलेसे ही है ॥ ९३ ॥ हे नारद ! तुम धन्य हो, विरक्तोंके शिरोमणि हो, श्रीवृंदावन विहारीके दासोंमें तुम अग्रणी हो, भक्तोंके भूषण हो, योगके मार्तण्ड हो ॥ ९४ ॥ भक्तिके लिये परिश्रम करना यह आपके लिये कुछ विचित्र बात नहीं है, श्रीकृष्णके दासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी उचित ही है ॥ ९५ ॥ पूर्वकालमें ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने संसारमें (धर्म–कर्मके) अनेक मार्ग प्रकट किये हैं, परन्तु वह सब श्रमसाध्य हैं और स्वर्गका फल देनेवाले हैं ॥ ९६ ॥ और जो वैकुंठसाधक पन्थ है वह अत्यन्त गुप्त है, उसके उपदेशक और मार्ग बतानेवाले गुरु भाग्यसे ही मिलते हैं ॥ ९७ ॥

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५ ॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥ वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥ सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥६०॥ भक्तिज्ञान-विरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥ प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भा-गवतध्वनेः ॥ कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥ ६२ ॥

और जो पहले आकाशवाणीने तुझको सत्कर्मका उपदेश किया है उसे स्थिरचित्त करके सुनो, हम आपके सम्मुख कहते हैं ॥९८॥ द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय (वेदका पढ़ना)–ज्ञानयज्ञ ये सब कर्मफलसे स्वर्गादिक देनेवाले हैं ॥९९॥ परन्तु पंडितोंने सत्कर्मके बताने वाला ज्ञानयज्ञ कहा है, वह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत है; जिसे शुकदेवादिक महात्माओंने गाया है ॥ ६० ॥ उसके सुननेसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका बल बढ़ेगा और दोनोंका कष्ट क्षणमात्रमें दूर हो जायगा और भक्तिको भी अधिक सुख मिलेगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतके उच्चारणमात्रसे कलिकालके सब दोष इस प्रकार नाश हो जायँगे, जैसे सिंहके शब्दसे भेड़िये, शृगाल वन छोड़कर भाग जाते हैं ॥ ६२ ॥

तब ज्ञान, वैराग्यकी हितकारिणी प्रेमरस वर्षानेवाली, भक्ति घर घर मनुष्योंके हृदयमें क्रीड़ा करेगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले–जब कि वेद वेदान्तके शब्दसे और भगवद्गीताके पाठसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक नहीं जागा ॥ ६४ ॥ तब श्रीमद्भागवतके आलापसे कैसे चैतन्यताको प्राप्त होंगे ? उस कथामें भी तो श्लोक श्लोकमें पद पदमें वेदार्थ ही है ॥ ६५ ॥ हे अमोघदर्शन ! आप लोग यह मेरा संदेह दूर कीजिये, हे शरणागतवत्सलो ! इसमें विलम्ब मत करो ॥ ६६ ॥ सनत्कुमार बोले कि वेदोपनिषदके सारसे श्रीमद्भागवतकी कथा हुई है, इसलिये पृथग्भूत हुई और उत्तम उत्तम फलोंकी बढ़ानेवाली है ॥६७॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभाग तक रस वाली वस्तुमें यह रस उतना

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥६३॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥६४॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥ छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ॥ विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलः ॥ ६६ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥ ६७ ॥ आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामादिमध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥ इदं भगवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥७१॥ वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥

स्वादिष्ट नहीं होता जितना कि वही रस पृथक् फलमें होकर विश्वमनोहर रूप हो जाता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूधमें स्थित घृत ऐसा स्वादिष्ट नहीं होता जैसा कि पृथक् होकर वह स्वादिष्ट और देवताओंका रसवर्द्धक होता है ॥ ६९ ॥ जैसे खांड गन्ने में सर्वत्र व्यापक रहती है परन्तु वह पृथक होकर और ही स्वादु हो जाती है और अधिक मीठी लगती है इसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी कथा है ॥ ७० ॥ यह सर्ववेदसम्मत श्रीमद्भागवतपुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेके लिये ही संसारमें प्रकाशित किया गया है ॥ ७१ ॥ वेद वेदान्तके पारगामी,

भगवद्गीताके कर्त्ता श्रीव्यासजी महाराज अज्ञानसागरमें मोहित हो दुःखको प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ तब आपने व्यासजीको (धैर्य दिया और जो चतुःश्लोकी भागवत जिसे श्रीनारायणने ब्रह्माको उपदेश किया और ब्रह्माजीने तुमको पढ़ाया, वही) चतुःश्लोकी भागवत आपने व्यास जीको सुनाया, जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजीका दुःख दूर हो गया ॥७३॥ फिर तुमको इसमें क्या सन्देह है और क्यों यह संशय तुमको प्राप्त हुआ, जो वारंवार प्रश्न करते हो ? उसी भागवतके चार श्लोकोंको व्यासजीने विस्तार पूर्वक रचकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया, अब उसी (संकटहारी आन्दकारी शोकनाशक सुखप्रकाशक) श्रीमद्भागवतका पाठ साधनसहित ज्ञान वैराग्यको

तदा त्वया पुराप्रोक्तं चतुः श्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥७३॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भागवतंश्राव्यं शोकदुःखविनाशनम् ॥७४॥ नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निश्शेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

सुनाओ ॥७४॥ नारदजी बोले कि जिसका दर्शन अशुभ कर्मोंका दूर करनेवाला और संसारके दुःखियोंके दुःख दूर करनेवाला (कल्याणकारी और संतापहारी है) सम्पूर्ण शेषजीके मुखोंसे गायी हुई कथाके रसिकजनोंके प्रेमसे प्रकाश करनेके लिये भगवान्की मैं शरण हूँ ॥७५॥ जब बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्यको महात्माओंके सत्संगकी प्राप्ति होती है तब अज्ञानकृत मोह मदके अन्धकारका नाश होकर ज्ञान वैराग्यका उदय होता है॥७६॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां शालग्रामवैश्यकृतेसनत्कुमारनारदमुनिसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥नारदजी बोले कि हे दयासागर ! अब मैं यत्नपूर्वक भक्ति ज्ञान वैराग्यके स्थापनके लिये शुक शास्त्रकी कथाका

उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा ॥ १ ॥ जहां यह महायज्ञ किया जाय, आप उस उत्तम स्थानको बताओ, आप लोग वेदके जाननेवाले हैं, शुकशास्त्रकी महिमा अवश्य बतायें ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंतक सुननी चाहिये उसमें क्या क्या विधान है ? वह मुझसे आप कृपा करके कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारदजी ! सावधान होकर सुनो, नम्रीभूत और ज्ञानवाले आपसे हम कहते हैं, गंगाद्वारके निकट ही आनन्द नाम तट है ॥४॥ अनेक ऋषिगणोंसे युक्त, देवता सिद्धोंसे सेवित, अनेक वृक्ष लताओंसे संघटित, नवीन कोमल वालुकासे शोभित ॥५॥ बड़ा मनोहर रमणीक एकान्त स्थान सुवर्णके (आकारवाले) कमलोंकी सुगन्धसे परिपूर्ण है,

यत्र कार्यो महायज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ॥ ५ ॥ रम्यमेकान्तदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥ पुरःस्थं निर्बलं चैव जरा जीर्णकलेवरम् ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥८॥ यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥

जिसके समीपके रहनेवाले जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥ ६ ॥ उस स्थलमें तुमको अप्रयत्न होकर अनायास ही ज्ञानयज्ञ करना चाहिये और उसी स्थानपर अपूर्व रसयुक्त कथा होनी योग्य है ॥ ७ ॥ और पुरो-वर्तमान, निर्बल, जरासे जर्जरित देहवाले ज्ञान वैराग्य सहित भक्ति (और हम भी) वहांपर आयेंगे ॥८॥ जहां श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहां भक्ति आदिक सब जाते हैं और कथाशब्द श्रवणसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक करुणायुक्त होता है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बातचीत करके, चारों कुमार नारदजीके साथ ही

कथामृत पान करनेको उसी समय गंगाके तीरको चल दिये ॥ १० ॥ जब गंगाजीके निकट वे पहुँचे तब उनके तट जानेके समय बड़ा कोलाहल हुआ, भूलोकमें, देवलोकमें और इस प्रकार ब्रह्मलोक तक कोलाहल मच गया ॥ ११ ॥ और श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको जो वैष्णव लोग थे वे चारों ओरसे दौड़े ॥१२॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय, अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय, पिप्लाद ॥ १३ ॥ योगेश्वर याज्ञवल्क्य, जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छायाशुक, जाजलि, जह्नु ये मुख्य मुख्य ऋषिगण अपने अपने पुत्र, पौत्र, शिष्य तथा स्त्रियोंसमेत प्रणयपूर्वक वहां आये ॥१४॥ और वेद वेदान्त,

यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥ श्रीभागवतपीयूष पानाय रसलम्पटाः ॥ धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डुपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥१३॥ योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सह पुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ॥ दश सप्त पुराणानि षट्शास्त्राणि यथाऽऽययुः ॥ १५ ॥ गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च ॥ १६ ॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ॥ कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥

वेदमंत्र, तंत्र भी अपनी अपनी मूर्ति धारण कर कर चले आते थे। इसी प्रकार सत्रह पुराण और छः शास्त्र भी आये ॥१५॥ फिर गंगा, यमुना, सरस्वती आदिक, नदियां पुष्करादि सरोवर और सब क्षेत्र, दिशा, दण्डकादि वन ॥१६॥ पर्वतादिक सब आये और गन्धर्व, देवता-दानव, किन्नर, यक्ष, नाग शरीरके गौरवसे नहीं आये; इनको आदर सम्मान सहित ब्रह्माजीके पुत्र भृगुजी बुला लाये ॥ १७ ॥ (और आसन दे देकर सबको बैठाया) तब नारदजीसे दीक्षित हो उस दिये हुए उत्तम आसनपर कृष्ण कथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो सनत्कुमार आदि

महर्षि बैठे ॥१८॥ वैष्णव, विरक्त, संन्यासी, ब्रह्मचारी ये मुख्य भागमें स्थित हुए और सबके आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एक भागमें ऋषिगण, एक भागमें देवता और एक स्थानमें वेद, उपनिषद् एक स्थानमें तीर्थादिक और एक स्थानमें स्त्रियें बैठीं ॥ २० ॥ तब चारों ओरसे जय जय शब्द, नमः शब्द और शङ्खध्वनि होने लगी, गुलालका चूर्ण, खीलें और पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥२१॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें बैठे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे (और सब अपने अपने मनोंमें यह विचार कर रहे थे कि देखिये सनत्कुमारजी कब कथाका आरम्भ करें) ॥२२॥ सूतजी बोले, कि इस प्रकार सबके एकचित्त होकर बैठनेपर नारदजीसे सनत्कुमारने भागवत माहात्म्य

वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥ एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥ जयशब्दो नमश्शब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥२१॥ विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वे तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महत्त्वं शुकशास्त्रजम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतोऽज्ञानतः पुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥

कहना प्रारम्भ किया ॥२३॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारद ! हम तुमको वह कथा सुनाते हैं जो व्यास नन्दन शुकदेवजीसे उत्पन्न हुआ (श्रीमद्भागवत) है, जिसके श्रवणमात्रसे मुक्ति मुट्ठीमें आ जाती है श्रीमद्भागवतकी कथा सदा श्रवण करनी चाहिये, जिसके सुननेसे सदा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥२४॥२५॥ इस ग्रंथमें अठारह सहस्र श्लोक और बारह स्कन्ध हैं और यह वह भागवत है जो श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षित्से कहा था, वह श्रीमद्भागवत हम आप लोगोंको सुनाते हैं, आप सावधान होकर सुनिये ॥२६॥ पुरुष अज्ञानसे

तब तक इस संसारचक्रमें फिरा करता है जबतक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्र भी कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रम पैदा करनेवाले पुराणोंके सुननेसे क्या प्रयोजन है ? एक श्रीमद्भागवत ही मुक्तिदान करनेमें बहुत है ॥ २८ ॥ जिसके घरमें नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा होती है वह घर तीर्थरूप हैं, वहां रहनेवालोंके सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं ॥ २९ ॥ सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ शुकसागरकी कथाकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं है ॥ ३० ॥ हे महात्मा पुरुषो ! तबतक ही इस शरीरमें पाप निवास करता है, जबतक मनुष्य मन लगाकर भागवत की कथा नहीं सुनते ॥ ३१ ॥ शुकसागरके

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥ एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक्छ्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥३२॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥ वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥ तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६ ॥

फलकी समता गंगा, गया, काशी, प्रयाग, पुष्कर भी नहीं कर सकते ॥ ३२ ॥ जो जन मुक्तिकी इच्छा रखते हों वे नित्य ही अपने मुखसे एक, आधा, चौथाई श्लोक श्रीभागवतका उच्चारण किया करें ॥ ३३ ॥ वेदादि ओंकार वेदमाता गायत्री पुरुषसूक्त, ऋक्, यजु, साम, तीनों वेद भागवत पुराण "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षर मन्त्र ॥३४॥ द्वादशात्मा सूर्य, प्रयाग, संवत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी ॥ ३५ ॥ तुलसी, वसन्त, ऋतु, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनका बुद्धिमान् तत्त्वसे पृथक् भाव नहीं देखते

हैं ॥३६॥ जो पुरुष भागवत पुराणको अर्थसहित पढ़ते हैं उनके कोटि जन्मके पाप क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं,इसमें कुछ संशय नहीं है॥३७॥ जो कोई श्रीमद्भागवतका आधा, चौथाई श्लोक प्रीतिसहित प्रतिदिन पढ़ते हैं, उनको राजसूय, अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥३८॥ नित्यप्रति भागवतका कथन नारायणका कीर्तन, तुलसीका पोषण, गौओंका सेवन समान फलदायक है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकसागरकी कथा श्रवण की है, उसको श्रीवैकुण्ठनाथ प्रसन्न होकर वैकुण्ठका वास देते हैं ॥ ४० ॥ जो जन श्रीमद्भागवतका पुस्तक, सुवर्णके सिंहासनपर धरकर, वैष्णवोंको प्रदान करते हैं, वे पुरुष निःसन्देह श्रीनारायणकी सायुज्य पदवी को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोतिराजसूयाश्वमेधयोः ॥३८॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥ अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥४०॥ हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥४१॥ आजन्ममात्रमपि येन शठेनकिंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चाण्डालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥ जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित्॥धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः॥४३॥दुर्लभैव यथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥ कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥

जिस मूर्खने जन्मसे अन्तकालतक मन लगाकर सुधारूपी शुकसागरकी कथाका पान नहीं किया उसने चाण्डाल और खरकी नाईं अपना जन्म वृथा खोया और उसने उत्पन्न होकर अपनी माताको वृथा कष्ट दिया ॥ ४२ ॥ जिसने कभी शुकसागरकी कथाका कोई वचन नहीं सुना वह पापकर्मा जीता ही मृतक समान है, उस पशुवत् पृथ्वी पर भाररूप मनुष्यको धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिक देवता कहते है ॥४३॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें मनुष्योंको महादुर्लभ है, कोटि जन्मके प्राप्त हुए पुण्योंसे यह भगवद् रूपी कथा प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥

इसलिये हे योगनिधान बुद्धिमान् महात्माजनो ! यह कथा यत्नपूर्वक सुननी चाहिये, इसमें किसी दिनका नियम नहीं है, सदा सुने ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्य सहित यह कथा नित्यप्रति सुने, अशक्य होनेसे कलियुगमें शुकआज्ञासे विशेषता कही ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तियोंका जीतना, नियमाचरणदीक्षा करना, करनेमें अशक्य हो तो भी सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ नित्य श्रद्धापूर्वक माघ मासमें कथा सुननेसे जितना फल होता है, वही फल सप्ताह पारायणके सुननेमें होता है ॥ ४८ ॥ मनके अजय होनेसे, रोग होनेसे, आयुका क्षय होनेसे और कलियुगके अनेक दोष होनेसे सप्ताहका सुनना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जो फल तप, योग, समाधिसे नहीं होता है वह फल अनायास सप्ताहके

तेन योगनिधे धीमञ्छ्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥४५॥ सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ॥ दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥ श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥४९॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणाल्लभेत् ॥५०॥ यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात्॥तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति॥५१॥ योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य साम्प्रतम् ॥ निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥

सुननेसे होता है ॥५०॥ यज्ञसे, व्रतसे, दानसे, पुण्यसे, संयमसे, नियमसे, तपसे, तीर्थोंसे सप्ताहयज्ञ नित्य बलवान् है ॥५१॥ योगसे, समाधिसे, ज्ञानसे, ध्यानसे सप्ताह बलवान् है, उसकी बलवत्ताको हम क्या कहें ? यह सबके ऊपर (अररर) करके गर्जता है, (जबतक भागवत नहीं सुना तबही तक व्रतादिक हैं, इसके सुननेके उपरान्त और कुछ नहीं, क्योंकि इसीके अन्तरमें सब आजाते हैं) ॥ ५२ ॥ शौनकजी बोले, कि हे महाभाग ! यह बड़े आश्चर्यका कथानक सुनाया कि ज्ञानधर्मादिकोंको तिरस्कार करके अब परब्रह्मका सूचक श्रीभागवतपुराण मोक्ष

देनेवाला है, उसे अवश्य सुनाओ ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले, कि जब श्रीकृष्णचन्द्र (आनन्दकन्द) पृथ्वीको त्यागकर अपने धामको जाने लगे, उस समय एकादशस्कन्धके कहे हुए ज्ञानको सुनकर ॥ ५४ ॥ उद्धवजी बोले, कि हे भगवन् ! आप तो भक्तोंका कार्य करके वैकुण्ठलोकको जाते हो, मेरे मनमें बड़ी चिन्ता है उसको सुनकर, मुझे समझाकर सुखी करो ॥ ५५ ॥ यह महा घोर कलियुग आता है, इसमें बड़े-बड़े दुष्ट और दुराचारी उत्पन्न होंगे, उनके संगसे साधु संत भी जब उग्रताको प्राप्त होंगे॥५६॥ तब यह गोरूप भूमि भाराक्रान्त होकर किसका आश्रय करेगी, हे दीननाथ ! तुम्हारे विना इसका कोई रक्षक नहीं है ॥ ५७ ॥ इसलिये हे भक्तवत्सल ! (हे अन्तर्यामी ! हे पुरुषोत्तम !) सत्पुरुषोंके

सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ॥ एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु यास्यसि गोविंद भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह॥५५॥आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः॥तत्सङ्गेनैव संतोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा॥५६॥तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन॥५७॥अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज॥भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः॥५८॥त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय॥५९॥इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः॥ भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥६०॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१ ॥

ऊपर दया करके मत जाओ, हे आदिपुरुष अविनाशी ! आप निराकार चिन्मय हो तथापि अपने भक्तोंके कारण सगुणरूप धारण किये हैं ॥५८॥ तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त संसारमें कैसे रहेंगे हे नाथ ! उस समय निर्गुण उपासनामें बड़ा कष्ट होगा, क्योंकि सगुण उपासनावालोंसे निर्गुण उपासना नहीं होती, इसलिये कुछ उपाय विचारिये ॥ ५९ ॥ ऐसे अपने मित्र उद्धवके दीन वचन सुनकर भगवान् (भक्तहितकारी श्रीवैकुण्ठविहारी) प्रभास क्षेत्रमें विचार करने लगे कि भक्तोंके अवलम्बनके लिये मुझे क्या करना चाहिये ॥ ६० ॥ यह शोच समझ उद्धवसे कहा (हे प्राणप्यारे !) जो कुछ मुझमें तेज था वह अपना तेज तो मैंने श्रीमद्भागवतमें रख दिया है उसीको मेरा

शरीर समझकर पूजना, इतना कह अन्तर्द्धान हो गये श्रीमद्भागवतरूपी शुकसागरमें प्रवेश कर गये ॥६१॥ इसलिये यह श्रीकृष्णकी वाणी रूप प्रत्यक्ष मूर्ति है, सेवन, श्रवण, पाठ, दर्शन करनेसे सब पापको दूर करती है ॥६२॥ इसलिये सबसे अधिक फल सप्ताह सुननेका कहा है और सब साधनोंका तिरस्कार करके कलियुगमें यह उत्तम धर्म कहा है ॥ ६३ ॥ दुःख, दरिद्र, दुर्भाव और पापके धोनेके लिये, काम, क्रोधको जीतनेके लिये कलियुगमें यह धर्म परमोत्तम है ॥ ६४ ॥ अथवा जो वैष्णवी माया देवताओंको भी दुस्तर है, उसे मनुष्य कैसे त्याग कर सकते हैं ! इसलिये सप्ताहविधि कही है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार जब ऋषियोंने सप्ताह सुननेके विधिरूप धर्मका

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपिसुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं नगाह श्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ॥ आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥६६॥ भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ॥ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥ तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥ ६८ ॥

प्रकाश किया, उसी समय एक बड़ा आश्चर्य हुआ, हे शौनकजी ! आप उसे सुनो ॥६६॥ जब सभामें लाखों ऋषीश्वर, मुनीश्वर, आ-आ कर बैठे उस समय भक्ति (भी) अपने दोनों तरुण हुए ज्ञान वैराग्य पुत्रोंको संग लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रकट हुई 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे' यह नाम वारंवार उच्चारण करती थी ॥६७॥ उस भागवतार्थभूषण, सुन्दर वेष किये, सभामें आयी हुईको सदस्यगण देखने लगे, और सब यह कहने लगे कि यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमेंसे आयी, (इस प्रकार सब परस्पर चर्चा करने लगे) ॥ ६८ ॥

तब सनत्कुमार बोले कि यह इस समय कथा ही सुननेके लिये आयी है इस प्रकार वह भक्ति ज्ञान, वैराग्य सहित सनत्कुमारके वचन सुनकर बड़ी नम्रतासे ॥६९॥ (भक्ति) बोली, कि कलियुगमें प्रनष्ट हुई मुझको कथारस सुनाकर आपने पुष्ट किया, अब मैं कहां रहूं सो बताओ ? तब ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार उससे इस प्रकार बोले ॥ ७० ॥ हे भक्तोंके विषे भगवत्स्वरूप धारण करनेवाली, प्रेम उत्पन्न करनेवाली, जन्म-मरणरूप रोगके नाश करनेवाली और भगवान्‌के प्रसन्न होनेवाले धर्मोंके आश्रय करनेवाली ! तू वैष्णव (विष्णुभक्तों) के चित्तमें निरंतर निवास कर ॥७१॥ इससे इस कलियुगके दोष तुम्हें देखनेको समर्थ नहीं हैं, इस प्रकार सनत्कुमारकी आज्ञा मान जो-जो नारायणके भक्त

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथाऽर्थतो निष्पतिताऽधुनेयम् ॥ एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥६९॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृताऽस्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्म्या इदं तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥ भक्तेषु गोविन्दसुरूपधर्त्रीं प्रेमैककर्त्री भवरोगहन्त्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥७१॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२ ॥ सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥ हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदितं लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वहां बैठे थे उनके हृदयमें प्रवेश कर गयी ॥ ७२ ॥ इस संसारमें वे निर्धन भी धन्य हैं जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है, क्योंकि भक्ति सूत्रके वशीभूत हो, भगवान् अपने लोकको छोड़कर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ७३ ॥ इस ब्रह्मरूप श्रीमद्भागवतका पृथ्वीपर हम क्या माहात्म्य कहें जिसके कहने सुननेसे श्रोता, वक्ता कृष्णके समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि ! वैष्णव लोगोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली, घनश्याम, श्रीवृंदावनविहारी, पीतवस्त्रवाले, मनोहर वेष धारण किये, चन्दन केशरका तिलक दिये, मुरलीधरने, मोर मुकुटधरे, त्रिभंगी छबि करे ॥२॥ मकराकृति कुण्डल पहिरे, सुन्दर कौस्तुभमणि हृदयमें विराजमान, कोटि कामदेवके समान शोभायमान, कटि किंकिणी पहिने हुए ॥३॥ परमानन्द चिन्तमूर्ति, मधुर मुरली कर लिये भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठ धामके रहनेवाले थे और जो वैष्णव उद्धवादिक थे वे सब गूढ़ रूपसे कथा सुननेको स्थित हुए ॥५॥ उस समय चारों ओर जय जय शब्द रस रूप श्रीमद्भागवतकी पुष्टि चूर्ण

सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥१॥ वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ कांचीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥२॥ त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ॥ कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥३॥ परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥४॥ वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णव उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥५॥ तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

और पुष्पोंकी वृष्टि, धूमधामसे होने लगी और वारंवार शङ्खध्वनि महात्मा लोग करने लगे ॥६॥ उस सभामें जो जो ऋषिश्वर, मुनीश्वर, महात्मा पुरुष उपस्थित थे उनको अपने देह गेह और आत्माकी कुछ सुधि बुधि न रही, सबकी तन्मय अवस्था देख देखकर नारदजी मधुरवाणीसे कहने लगे ॥ ७ ॥ हे मुनीश्वरो ! आज इस जनसमुदायमें मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी कि जिसको सुनकर मूढ़, शठ, पशु, पक्षी तक भी सब निष्पाप हो गये (फिर और महात्मा पुरुषोंकी क्या गणना है) ॥ ८ ॥

इसलिये इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेको और पातकके समूह हरनेको इसके समान पृथ्वीमें और कोई दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु यह आप मुझसे कहिये कि कथामय सप्ताहयज्ञसे कौन कौन विशुद्ध होते हैं, महात्माओंने लोकका हित विचार कर क्या कोई नवीन मार्ग स्थापित किया है ? ॥ १० ॥ सनत्कुमार बोले कि जो मनुष्य पापात्मा, सदा दुराचारी, कुत्सित मार्गी, अपनी क्रोधाग्निसे आप जलनेवाले, कुटिल कामी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ ११ ॥ सत्यहीन, माता पिताके दोषी, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम धर्मसे वर्जित, जो पाखण्डी, घमण्डी, हिंसक हैं वे भी सप्ताहयज्ञसे कलियुगमें पवित्र हो

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥९॥ के के विशुध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥ कुमारा ऊचुः ॥ ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥११॥सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः॥ ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥ पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मनसाऽपिपातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥ अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

जायँगे ॥ १२ ॥ पांच बड़े उग्र पापको करनेवाले, छल छद्मकारी, जो क्रूर पिशाचोंकी नाई निर्दयी हैं, जो ब्राह्मणोंका धन चुरा चुराकर पुष्ट होते हैं और जो व्यभिचारी हैं, वे भी मलिन मन दुष्टात्मा कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ १३ ॥ और जो शठ हठपूर्वक मन वचन कर्मसे नित्य नये पाप करते हैं, पराया द्रव्य लेकर अपनी आत्माका पोषण करते हैं, वे अत्याचारी कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ १४ ॥ यहां हम तुमसे एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं; जिसके सुननेसे पापोंका नाश

हो जाता है ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक सर्वोत्तम नगर था, जिसमें चारों वर्ण अपने अपने धर्मोंके सत्कर्मोंमें तत्पर थे ॥१६॥ उसी नगरमें चार वेद, षट् दर्शन, अठारह पुराणोंका जाननेवाला आत्मदेवनामक एक ब्राह्मण श्रौतस्मार्त्त कर्मोंमें पारंगत दूसरे सूर्यके समान निवास करता था ॥ १७ ॥ वह भिक्षावृत्ति करनेवाला होकर भी धनवान् था और उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली महासुन्दरी, सत्कुलोत्पन्ना, सदा अपने वचनकी टेक रखनेवाली थी ॥ १८ ॥ लोककी बातोंमें प्रीति करनेवाली, क्रूरा, बहुत बोलनेवाली, बलवती, घरके कार्योंमें कृपण, क्लेशकारिणी थी ॥ १९ ॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक उन दोनोंको रहते आहार विहार करते बहुत दिन व्यतीत हो गये, परंतु

तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेदविशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥१७॥ भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ॥ स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥१८॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥१९॥ एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्योरममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥ पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥ धनार्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥२२॥ एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥ पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥

अर्थ काम होते हुए भी गृह वगैरह उनको सुखकारी न हुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंने सन्तान उत्पन्न होनेके लिये अनेक उपाय किये, दोनोंने गौ, ब्राह्मणोंको भूमि और सुवर्ण दे देकर धर्म करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ जब कि उन दोनों स्त्री पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगा दिया और इतनेपर भी कोई बेटी बेटा न हुआ तब ब्राह्मणको अत्यंत चिन्ता हुई ॥२२॥ तब वह ब्राह्मण घरसे निकल वनको चल दिया, जब दुपहर हुई तो प्यासके मारे व्याकुल हो एक सरोवरके निकट पहुँचा ॥२३॥ और जल पीकर सन्तानके दुःखसे

दुःखी हो वह वहीं बैठ गया और अपने मनमें अनेक प्रकारका विचार करने लगा, दो घड़ी उपरान्त एक संन्यासी वहां आ निकला ॥२४॥ जब वह महापुरुष जल पी चुका तब वह ब्राह्मण उसके समीप जा दण्डवत कर उसके चरणारविन्दकी वन्दना की और लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा ॥ २५ ॥ यति बोले कि हे ब्राह्मण देवता ! तू क्यों रोता है ? और तेरे मनमें कौनसी चिंता है ! और किसलिये अकेला वनमें विचरता फिरता है ? तू शीघ्र अपने दुःखका कारण कह ॥२६॥ तब ब्राह्मण बोला कि (हे दीनदयालु ! हे कृपासागर !) अपने पूर्व पापोंसे संचित दुःखको आपसे क्या कहूँ ? मेरे पूर्व पितर मेरे दिये हुए जलको गर्म गर्म श्वास भरकर पीते हैं, कि आगेको कोई सन्तान इसके न होनेसे

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ॥ नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥ यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुखं पूर्वपापेन संचितम् ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ २७ ॥ मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥२८॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संतति विना ॥ २९ ॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत ॥ यो मयाऽऽरोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥

हमको जल नहीं मिलेगा ॥ २७ ॥ मेरे दिये हुए दानको प्रीति और सम्मानसे देवता और ब्राह्मण भी ग्रहण नहीं करते, मैं सन्तान के दुःखसे जड़ताको प्राप्त हो प्राण त्याग करनेके लिए यहां आया हूं ॥२८॥ सन्तानके विना संसारमें जीनेवालेको धिक्कार है, विना संतानके घरको धिक्कार है, पुत्रहीनके धनको धिक्कार है, अपुत्रके कुलको धिक्कार है ॥२९॥ और मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ, कि जो मैं गाय भी पालता हूं तो वह भी वन्ध्या हो जाती है और जो मैं वृक्ष लगाता हूँ तो वह भी नहीं फलता ॥ ३० ॥ जो कोई फल कहींसे मेरे घर आता है वह भी

(मेरे भाग्यसे) सूख जाता है, तो मुझ मन्द भागी पुत्रहीनका जीना जगत्में निरर्थक ही है ॥ ३१ ॥ ऐसे शोक संताप भरे वचन कह कर वह ब्राह्मण उस संन्यासीके समीप बैठकर उच्चस्वरसे बड़े विलाप करके रोने लगा; तब उस महात्मा साधुके मनमें बड़ी दया आयी ॥३२॥ वह संन्यासी उस ब्राह्मणके मस्तककी रेखा देख अनेक प्रकारसे विचार करके बोला ॥ ३३ ॥ यती बोला कि हे ब्राह्मण ! संतानरूपी अज्ञानको त्यागकर, तेरी प्रारब्धमें संतान नहीं लिखी, कर्मकी गति बड़ी बलवान है, कोई जान नहीं सकता, अब तू ज्ञानके आश्रित हो संसारकी वासनाका परित्याग कर ॥ ३४ ॥ क्योंकि इस समय मैंने तेरे भाग्यको सब प्रकारसे विचार कर देखा, परंतु सात जन्म तक

इत्युक्त्वा स रुदोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥३२॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥३३॥ यतिरुवाच ॥ मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥३४॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ सन्ततेः सगरो दुःखमवापाङ्ग पुरा तथा ॥ रे मुञ्चाद्य कुटुम्वाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥

तेरे पुत्र होनेकी आशा नहीं ॥३५॥ देखो ! सन्तानके होनेसे, सगर (और अंग) राजाने कैसे कैसे दुःख पाए, (क्या इसका इतिहास तूने नहीं सुना ! अरे मूर्ख ! पुत्र पौत्रमें क्या रखा है, यह सब संसार स्वप्नकीसी माया है, न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है, सब अपने अपने प्रयोजन के हैं, अन्त समय विना परमेश्वरके भजन और कुछ काम नहीं आता और पुत्रादिकमें मन लगानेसे नारायणका भजन नहीं बनता और उनकी ममतामें फँसकर नरक भोगना पड़ता है, इसलिये) हे ब्राह्मण ! तू पुत्रादिकोंकी आशा छोड़कर संन्यास धारण कर जिसमें सर्वथा सुख मिले ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे कृपासिंधु ! मुझे ज्ञान ध्यानसे कुछ प्रयोजन नहीं,

जैसे हो वैसे एक पुत्र मुझको दीजिये, नहीं तो मैं तुम्हारे आगे ही अपने प्राणोंका घात करके मर जाऊँगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिकके सुख विना यह संसार भी वृथा ही है, गृहस्थ जो पुत्र पौत्र संयुक्त हैं वे ही लोकमें श्रेष्ठ हैं ॥३८॥ ब्राह्मणकी यह दशा देख तपस्वी फिर उसको समझाने लगा; कि हे ब्राह्मण ! विधिके अंक मिटानेसे चित्रकेतुकी कैसी दुर्दशा हुई थी, इसलिये प्रारब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥३९॥ जैसे दैवहत होनेसे उद्यम वृथा होता है इसी प्रकार पुत्रसे तुझे कुछ सुख प्राप्त नहीं होगा; इस कारण तुझ हठीले अपस्वार्थीसे मैं क्या कहूँ ? ॥ ४० ॥ उस ब्राह्मणका अत्यन्त आग्रह देखकर तपस्वीने उस ब्राह्मणको एक फल दिया और यह कहा कि तू यह फल अपनी स्त्रीको

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुगतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥४२॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित ॥४३॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ॥ अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥

खिला देना परमेश्वर चाहेगा तो तेरे एक पुत्र होगा ॥४१॥ सत्य, शौच, दया, दानपूर्वक रहना चाहिये, दुपहरके उपरांत एक अतिथिको भोजन कराके पीछे आप भोजन किया करें। इस प्रकार एक वर्ष तक वह स्त्री अपने धर्मकर्मसे शुद्ध और चैतन्य रहेगी तो एक श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह वचन कह वे महात्माजी कहीं को चले गये और वह ब्राह्मणदेवता अपने घर आया और वह फल अपनी भार्याको देकर (उसका विधान बताया और कहा इसके खानेसे तेरे एक महातेजस्वी स्वरूपवान् पुत्र होगा, यह कह वह ब्राह्मण तो) अपने किसी कामको चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल तो थी ही, उसके निकट उस समय एक सखी कहींसे आ गयी, तब वह ब्राह्मणी

अपनी सहेलीके सम्मुख रुदन करने लगी और कहने लगी, कि हे प्यारी ! आज मुझे बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई है इस फलको मैं कभी नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा, फिर पेट बढ़ेगा, थोड़ा भोजन करनेसे शरीर निर्बल हो जायगा तो घरके काम काजमें बाधा होगी ॥ ४५ ॥ कहीं भाग्यसे गाँवमें आग लग जाय तो गर्भिणीका भागना महाकठिन है, तोतेकी नाईं रहते हुए गर्भका कोखसे कैसे त्याग करूँगी ? ॥४६॥ और जो कहीं दैव इच्छासे गर्भ टेढ़ा पड़ गया तो वृथा प्राण जायँगे, मैंने सुना है कि बालक होनेके समय बड़ा कष्ट होता है, मैं सुकुमारी स्त्री नहीं सह सकती ॥ ४७ ॥ जो इस दुःखसे मुझ मन्दभागिनीका मरण हो गया तो मेरे सर्वस्व धनको ननद

फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पं भक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥४५॥ दैवाद्धाटीं व्रजेद् ग्रामे पलायेद्गर्भिणीकथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ॥ प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥ मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥४८॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ॥ वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥ एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥५०॥ एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहे स्वेच्छयाऽऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥

हरण कर लेगी और फिर सत्य शौचादि नियमसे मुझे यह दुःसाध्य ही दीखता है ॥ ४८ ॥ फिर बालकके लालन पालनमें बड़ा दुःख होता है, इन बाधाओंसे तो वन्ध्या और विधवा नारी अच्छी हैं जो यह दुःख कभी देखनेमें ही न आवे ॥ ४९ ॥ ऐसी ऐसी अनेक प्रकारकी कुतर्कना करके उस ब्राह्मणीने वह फल नहीं खाया, जब उसके पतिने पूछा कि (हे चन्द्रानने) वह फल तूने खा लिया या नहीं, तो वह बोली कि (हे स्वामिन् ! अबतक क्या था ?) मैंने उसी समय वह फल खा लिया॥५०॥एक समय ब्राह्मणीकी भगिनी निज इच्छासे उसके घर आयी, अपनी बहिनको कृश और उदास देखकर पूछा कि हे भगिनी ! तुझको क्या कष्ट है ? जो तेरा शरीर अत्यन्त दुर्बल हो रहा

है, यह बात सुन उस ब्राह्मणीने अपनी बहिनको अपना सब वृत्तान्त सुनाया; कि यह मुझको बड़ी भारी चिन्ता है ॥५१॥ इसी दुःखकी मारी मैं निर्बल हो रही हूँ, हे भगिनी ! बता तो अब मैं क्या उपाय करूँ ? तब उसकी बहिन बोली मुझको एक मासका गर्भ है, जब मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब उस बालकको मैं तुझे ही दे दूँगी, तेरे ही घर भेज कर तेरा ही नाम प्रसिद्ध करूँगी, कि मेरी बड़ी बहिनके लड़का हुआ है और यह बात तेरे स्वामीको किसी भांति प्रकट न होगी ॥५२॥ तब तू गर्भवतीसी होकर घरमें सुखी रहे और मेरे पतिको कुछ धन देकर प्रसन्न कर लेना, वह उस बालकको प्रसन्नतापूर्वक तुझको दे देगा और यह बात तूने ही जानी और मैंने; दूसरेको विदित न होगी ॥५३॥ और मैं सबमें यह बात प्रकट कर दूँगी, कि मेरे बालक छः महीनेका होकर मर गया और प्रतिदिन तेरे बालकको अपना

दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥५२॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ॥ तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्र घोषोऽभूत्तद्द्वारे मङ्गलं बहु ॥ ५८ ॥

दूध पिला जाया करूँगी ॥५४॥ और जो फल तेरा पति कहींसे लाया है वह फल परीक्षाके लिये अपनी गायको खिला दे, यह बात सुनकर उस ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभावसे प्रसन्न होकर उसका कहना स्वीकार किया और वह योगेश्वरका दिया हुआ फल गायको दे दिया ॥५५॥ कुछ समय उपरान्त उस ब्राह्मणीकी बहिनके बालक उत्पन्न हुआ, तब उसकी बहिनके पतिने एकान्तमें (छिपाकर) वह बालक लाकर धुन्धुलीको दे दिया ॥५६॥ तब धुन्धुलीने अपने पतिसे कहला भेजा कि महाराज ! आज आपके इस समय सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न हुआ, यह सुधासम वचन सुनकर आत्मदेवको अत्यन्त हर्ष हुआ और उस ब्राह्मणके पुत्र होनेसे बहुत लोगोंको आनंद हुआ ॥५७॥ तब उस

ब्राह्मणने ब्राह्मणोंको बुलाकर जातकर्म किया और अपने वित्त समान दान दिया, गीत बाजोंके शब्द और सब प्रकारके मङ्गलाचार उसके द्वारपर होने लगे ॥ ५८ ॥ धुंधुली अपने पति से बोली कि हे प्राणनाथ ! मेरे कुचोंमें दूध नहीं उतरा, सो मैं निर्दुग्धा दूसरी गायके दूध विना इस फूलसे बालकको कैसे पालूँगी ! ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनका थोड़े ही दिन हुआ बालक मर गया है; आपकी आज्ञा हो तो मैं उसको अपने घर बुला लूँ, वह सब घरका काम काज भी कर लेगी और बालकको वह पाल लेगी ॥ ६० ॥ ब्राह्मणने भी पुत्रकी रक्षाके लिये सब बातें अङ्गीकार कर लीं और अपने पुत्रका नाम धुन्धुकारी रखा ॥ ६१ ॥ तीन महीनेके उपरांत उस गायके भी एक बालक

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसुश्च प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षण-हेतवे ॥ पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥६१॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वाङ्ग-सुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान्स्वयमादधे ॥ मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृ-क्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥६५॥ कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥

उत्पन्न हुआ, मनुष्यका सा स्वरूप, सर्वाङ्गसुन्दर, उज्ज्वल दिव्य सुवर्णके सदृश शरीर ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण उसको देख बहुत प्रसन्न हुआ, और स्वयं उसका संस्कार किया और इस अद्भुत आश्चर्यको बहुत लोग देखनेको आये ॥६३॥ देखो ! आत्मदेवका भाग्य कैसा उदय हुआ, जो गौके भी देवरूपी बालक परमेश्वरने उत्पन्न किया है, बड़े आश्चर्यकी बात है ! ॥ ६४ ॥ किसीने भी इस अद्भुत भेदको नहीं जाना, सब शरीर तो मनुष्यकासा था, परंतु केवल दो कान ही गौकेसे थे, इस कारण उसके पिताने उसका नाम गोकर्ण रखा (और दोनों बालकोंको अपना समान पुत्र समझकर आनन्दपूर्वक उनका पालन पोषण किया) ॥६५॥ जब कुछ कालोपरान्त वे दोनों बालक तरुण

हुए तब गोकर्ण थोड़ी अवस्थामें लिखपढ़कर बड़ा ध्वजाधारी पंडित और बुद्धिमान् हुआ, जिसके समान ज्ञानवान् और गुणनिधान दूसरा नहीं था, सदा धर्ममें निष्ठा, पुण्यमें मन, आठ पहर भगवान् के ध्यानमें मतवाला रहे और धुन्धुकारी महाजुआरी और दुराचारी हुआ ॥ ६६ ॥ स्नान, शौच, क्रियाहीन, कुत्सित कर्म करनेवाला, क्रोधी, कुकर्मी, दुष्परिग्रहकर्त्ता, चाण्डालोंके और चोरोंके हाथका भोजन करे ॥ ६७ ॥ चोरीमें चित्त, सबसे शत्रुता, पराये घरोंमें आग लगा दे, छोटे छोटे बालकोंको खिलौनेके बहानेसे लाकर कुएँमें डाल दे ॥ ६८ ॥ वह हत्यारा शस्त्र धारे, दीन और अन्धोंको दुःख दे, चाण्डालोंसे प्रीति रखे, पक्षियोंके फँसानेको जाल लिये फिरे ॥ ६९ ॥ वेश्याओंकी संगतिमें उसने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया, एक दिन अपने माता पिताको मार पीटकर घरके

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥ चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्हत्वा सद्यः कूपेन्यपातयत् ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ॥ चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च संगतः ॥ ६९ ॥ तेन वेश्याकुसङ्गेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चर्धनहीनो रुरोद ह ॥ वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुखदायकः ॥ ७१ ॥ क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥

बर्तन भांडे उठाकर ले गया ॥ ७० ॥ जब वह ब्राह्मण अत्यन्त कृपण और धनहीन हो गया, तब उच्चस्वरसे रो रोकर कहने लगा, कि हे विधाता ! ऐसे कुकर्मी पुत्र होनेसे तो मैं अपुत्र ही अच्छा था, क्योंकि कुपुत्र सदा दुःखदायक है ॥ ७१ ॥ अब मैं क्या करूँ ? कहां जाऊँ ? इस समय कौन मेरे दुःखको दूर करनेवाला है, यह महाकष्ट मुझसे नहीं सहा जाता, अब मैं इस दुःखसे अपना प्राण त्याग दूँगा, हा दैव ! बड़ा कष्ट है, हे विधाता ! क्या इस कठिन दुःखके सहनेको संसारमें मैं ही एक रह गया था ? फिर शोच समझकर बोला कि हे विधाता ! तेरा कुछ दोष नहीं, यह सब मेरे ही कर्मोंका फल है, क्योंकि संन्यासीने मुझको बहुतेरा समझाया था परन्तु मैंने

उनका कहना एक न माना, उसीका यह फल भोगना पड़ा, ऐसे पश्चात्ताप और विलाप करकरके वह ब्राह्मण फिर रोने लगा ॥ ७२ ॥ उसी समय वह ज्ञानी गोकर्ण आकर पिताको ज्ञान वैराग्य दिखाकर समझाने लगा ॥ ७३ ॥ हे पिता ! यह संसार असार है, दुःखरूप है, मोहका बढ़ानेवाला है, किसका सुत ? किसका धन ? यह सब मिथ्या है, प्रेम करनेवाला रात दिन दुःखी रहता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रको भी कुछ सुख नहीं, न चक्रवर्त्तीको कुछ सुख है (संसारमें जिसने जन्म लिया उसको एक न एक दुःख लगा ही रहता है) परन्तु एकांतसेवी परमेश्वरके भजन करनेवाले विरक्त ऋषि मुनियोंको ही आनन्द प्राप्त होता है॥७५॥ इस सन्तान रूपी अज्ञानको छोड़ो, मोहसे नरक होता है,

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५ ॥ मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥ तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अन्धकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पंगुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ॥ पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥

यह देह एक न एक दिन गिर जायगा इसका कुछ भरोसा नहीं, इसलिये सब मोह ममताको तज वनमें जाओ, नारायणका भजन करो॥७६॥ आत्मदेवने पुत्रके मनोहर वचन सुन, वनके जानेकी इच्छा कर, पुत्र गोकर्णसे कहा–हे पुत्र ! वनमें जाकर क्या क्या करना उचित है सो विस्तारसहित कहो ? ॥७७॥ स्नेह के पासमें बँधा हुआ मैं लँगड़ा, लूला, मूर्ख हो रहा हूँ, कर्मोंसे इस संसाररूपी कूपमें पड़ा हूँ। हे दयालु पुत्र ! तू मुझे इस जगतके जंगलसे निकाल ॥७८॥ गोकर्ण बोला–हे पिता ! इस अस्थि, मांस रुधिरसे बने हुए देहका अभिमान मत करो, स्त्री, पुत्रोंसे स्नेह–ममताका त्याग करो, इस संसारको प्रतिदिन क्षणभंगुर जानो, भक्तिमें प्रीति करके वैराग्यका अनुभव करो॥७९॥

नित्य भागवत धर्मोंका सेवन करो, काम्य कर्मोंका त्याग करो, काम और तृष्णाको छोड़ साधु सन्तोकी सेवा करो औरोंके दोष गुणोंका चिन्तन छोड़ भगवत्‌की सेवा करो, सुधारूपी कथाको सदा पिओ ॥ ८० ॥ यह पुत्रका उपदेश सुन प्रसन्न हो, स्त्री, पुत्र, गृहका महामोह त्यागकर साठ वर्षकी अवस्थामें स्थिर चित्त करके वनको चला गया और नित्यप्रति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दकी वन्दना और दशमस्कन्धका पाठ करनेसे श्रीकृष्णको प्राप्त हो गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शालग्रामवैश्य कृतायां भाषाटीकायां आत्मदेव–इतिहासवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ सूतजी बोले कि पिताके मर जानेसे धुन्धुकारी माताको मारने

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवा कथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥८०॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवत माहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥ इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ॥ न दुखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ॥ ३ ॥ धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ॥ अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥

लगा और कहा बता, धन कहां रखा है ? जो नहीं बतायेगी तो मैं तुझे मार डालूंगा ॥१॥ इस प्रकार धुंधुली उसके वचनोंसे भयभीत और दुःखी हो रातको कुएंमें जा पड़ी और मर गयी ॥२॥ जब गोकर्णने माता की यह दशा देखी तो इसके निकट अपना रहना अच्छा न समझ, योगमें स्थित हो तीर्थ यात्राको चल दिया, वह गोकर्ण ऐसा सुबोध और ज्ञानी था, कि दुःख, सुख, शत्रु मित्रको समान समझता था ॥३॥ धुन्धुकारी उस घरमें पांच वेश्याओंके साथ रहने लगा, बड़ा कुत्सितकर्मी, उन वेश्याओंका पालन पोषण मूर्खतासे करने लगा ॥ ४ ॥

एक समय उन वारांगनाओंको गहनेकी इच्छा हुई तो वह धुन्धुकारी कामान्ध मृत्युका भय तजकर घरसे कहीं को चल दिया ॥ ५ ॥ और इधर उधरसे बहुतसा धन संग्रह करके घरको आया और उनको अनेक प्रकारके भूषण वसन दिये ॥ ६ ॥ बहुत धन देखकर वे वेश्यायें रात्रिमें विचार करने लगीं, कि यह दुष्ट प्रतिदिन चोरी करके द्रव्य हमारे लिये लाता है, कदाचित् राजाने इसको पकड़ लिया तो हम लोगोंको भी अवश्य दण्ड होगा ॥७॥ और यह सब धन लेकर इसको भी मार डालेगा; इसलिए धनकी रक्षा निमित्त गुप्त रीतिसे हम ही इसको मार डालें तो अच्छा है ॥८॥ क्योंकि इसको मारकर यह सब धन ले अपनी इच्छापूर्वक जहाँ जी चाहेगा वहाँ जायँगी, यह बात

एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभि ॥ ९ ॥ पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥ तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥ तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन्वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥

निश्चय करके उन्होंने सोते हुएको रस्सियोंसे बाँधा ॥ ९ ॥ और उसके गलेमें फाँसी डालकर लटका दिया, जब वह पापात्मा फाँसी देनेसे नहीं मरा, तो चिन्ता करने लगीं ॥ १० ॥ फिर बहुतसे अङ्गारोंसे उसका मुख जलाया, तब अग्निके लगनेसे वह अकुलाकर मर गया ॥११॥ दोहा—जो गणिकाके सँग रमैं, उनकी यह गति होय। तासे कबहुँ न भूलकर, इनसे रमियो कोय ॥ उन साहसी गणिकाओंने एक गहरा गड़हा खोदकर उसको गड़हेमें गाड़ दिया, यह भेद किसीने नहीं जाना ॥१२॥ जब उन वारांगनाओंके निकटवर्तियोंने पूछा कि धुन्धुकारी तुम्हारा मित्र कहाँ गया, तब उन वेश्याओंने कहा हमारा प्यारा द्रव्य उपार्जनके लिए परदेशको गया है, इस वर्षके अन्तमें

आवेगा ॥१३॥ पण्डितोंको योग्य है कि दुष्टोंका और वेश्याओंका विश्वास कदापि न करें, जो इनका विश्वास करता है वह अनेक दुःख भोगता है, (ये दुष्टायें पहिले धन हरकर अन्तको प्राणोंकी ग्राहक हो जाती हैं) ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियोंके रस बढ़ानेवाले अमृतके समान हैं, हृदय इनके खांड़ेकी धारके सदृश तीव्र हैं, यह किसी की मित्र नहीं ॥१५॥ वे कुलटायें बहुत पति करनेवाली उसका सब धन हर कर और कहीं चली गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्मसे बड़ा भारी प्रेत हुआ ॥१६॥ वायुरूप धारण किये हुए नित्य दशों दिशाओंमें फिरते शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूखा प्यासा ॥ १७ ॥ कहीं शांतिको प्राप्त न हुआ, हा दैव ! हा दैव ! ऐसा वारंबार कहने लगा,

स्त्रीणां नैव तु विश्वासो दुष्टानां कारयेद् बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुखैः परिभूयते ॥ १४ ॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुन्धुकारी बभूवाऽथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा देवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयन् ॥ १९ ॥ एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥ सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत ॥ सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥

कुछ कालोपरान्त गोकर्णने लोगोंसे सुना कि धुन्धुकारी मर गया ॥१८॥ उसको अनाथ जानकर गयाजीमें श्राद्ध किया और जिस जिस तीर्थमें जाय उसका वहां वहां श्राद्ध करता था ॥ १९ ॥ इस प्रकार भ्रमण करता हुआ अपने नगरमें प्राप्त हुआ, रात्रिके समय घरके आँगनमें सोनेको आया, इसको किसीने न पहचाना ॥ २० ॥ वह धुन्धुकारी अपने भाई गोकर्णको सोता जान भयानक रूप दिखाने लगा ॥२१॥ कभी मेढ़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा हो जाय, कभी इन्द्र, कभी अग्नि हो जाय, फिर पुरुष हो जाय ॥ २२ ॥

इस विपरीतको देखकर धैर्य धारण कर गोकर्णने जाना, कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ है, ऐसा निश्चय करके॥२३॥गोकर्ण बोला—हे भाई ! तू कौन है जो रातमें यहां आया है, और क्यों तू इस दुर्दशाको पहुँचा, क्या तू भूत प्रेत, पिशाच या राक्षस है, अपना वृत्तान्त हमसे कह ! ॥२४॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकादि ऋषियो ! जब इस प्रकारसे गोकर्णने पूछा तो उच्चस्वरसे रोने लगा, परन्तु बोलनेका सामर्थ्य नहीं था, केवल संकेतसे ही कहा॥२५॥तब गोकर्णने अञ्जलीसे जल लेकर मंत्र पढ़कर उसके ऊपर छींटा मारा,उस जलके छिड़कनेसे वह प्रेत पाप

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत ॥२३॥ गोकर्ण उवाच॥कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह॥ २५ ॥ ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥२७॥ कर्मणो नास्ति संख्या मे महाऽज्ञाने विवर्तिनः ॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात ॥ २९ ॥ अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाऽब्रवीत ॥ ३० ॥

रहित हो कहने लगा ॥२६॥ हे गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी तेरा भाई हूँ, अपने ही दोषसे मैंने अपने ब्राह्मणत्वका नाश कर दिया ॥ २७ ॥ मैंने अपने अज्ञानपनसे कुकर्म किये हैं, उन कुकर्मो की संख्या नहीं है, मैं लोगोंका मारनेवाला था,मुझे वेश्याओंने फाँसी देकर महादुःखसे मार डाला ॥ २८ ॥ इस कारण मैं प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ, अपनी दुर्दशा भी कहता हूँ—दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण करके जीता हूँ ॥२९॥ हे कृपासिन्धु बन्धु ! मुझे इस महासंकटसे शीघ्र छुड़ाओ, जो मेरा उद्धार हो, धुन्धुकारीकी यह बात सुनकर ॥३०॥

गोकर्ण बोला–हे भाई ! मैंने तेरे उद्धारके लिए गयाजीमें पिंड दिये और फल्गूपर श्राद्ध किया था तो भी तेरी मुक्ति नहीं हुई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! ॥ ३१ ॥ जो गयामें पिण्ड देनेसे मुक्ति नहीं हुई तो फिर और कुछ उपाय नहीं है, हे बंधु ! अब मैं क्या करूँ सो तू विस्तार सहित कह ? ॥३२॥ प्रेत बोला, कि हे भ्राता ! एक गयाको कौन कहे सौ गया श्रद्धसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि मैंने महापाप किया है, अब और कोई उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ, कि जो सौ श्राद्धसे भी मुक्ति न होगी तो तेरी मुक्ति असाध्य है ॥ ३४ ॥ परन्तु अब तू अपने मनमें धैर्य धर और निर्भय अपने स्थानमें बैठा रह, अब तेरी

गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥ गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥३२॥ प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं कंचित्तद्विचारय साम्प्रतम् ॥३३॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥३४॥ इदानीं तु निजंस्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥३६॥ प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यन्ति पश्यन्तः शास्त्रसंचयान् ॥ ३८ ॥

मुक्तिका समाधान मैं विचार कर करूँगा ॥ ३५ ॥ गोकर्णकी यह बात सुनकर धुन्धुकारी अपने स्थानको चला गया और गोकर्ण रातभर विचार करता रहा, परंतु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥ जब प्रातःकाल हुआ तो गोकर्णका आना सुन सब नगर निवासी उसके देखनेको आये, तब गोकर्णने उन सब लोगोंको (यथायोग्य आदर सत्कार कर कुशल क्षेम पूछ, अपने निकट बैठाय) रातका वृत्तान्त कहा ॥ ३७ ॥ यह बात पण्डित, विद्वान्, योगी, ब्रह्मचारी पुरुष बहुत शास्त्र देखने लगे, परन्तु कोई उत्तम उपाय उसकी मुक्ति का

सिद्ध नहीं हुआ ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया, कि सूर्यभगवान्से इसका उपाय पूछो, जो वे कहैं सो करना, तब गोकर्णने (सावधान हो) सूर्यभगवान्का ध्यान कर (मंत्र पढ़ा और उनके वेगको रोककर) विन्ती करने लगा ॥३९॥ हे जगत्पते ! हे जगत्के साक्षी ! तुमको वारंवार नमस्कार है, हे तमोनाशक ! इस मेरे भ्राता धुन्धुकारीकी मुक्तिका कोई उपाय बताओ, जिससे इसका उद्धार हो ॥ ४० ॥ गोकर्णके दीन वचन सुन भगवान् भास्कर दूरसे स्पष्ट बोले, कि हे गोकर्ण ! श्रीमद्भागवतका सप्ताह यज्ञ कर, इस प्रेतकी मुक्ति सुनते ही हो जायगी ॥४१॥ धर्मरूप श्रीभगवान् सूर्यनारायणका यह वचन सबने सुना, (और अत्यन्त प्रसन्न होकर) सब नगरनिवासी

ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम्॥गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा॥३९॥तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥ ४० ॥ तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमेतदभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥४१॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥ ४२ ॥ गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥ ४३ ॥ पङ्गवन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥ ४५ ॥ सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ॥४६॥ वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत्॥वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः॥४७॥

कहने लगे, कि अवश्य यह शुभकर्म करना चाहिये ॥४२॥ गोकर्ण भी मनमें निश्चय कर श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी कथा बाँचनेमें प्रवृत्त हुए, उस सप्ताह पारायणके सुननेको देश देश और ग्राम ग्रामके मनुष्य दूर दूरसे आये ॥ ४३ ॥ अनेक लँगड़े, लूले, अंधे, वृद्ध, मंदभागी भी पाप दूर करनेको आये, देवताओंको यह सभा विस्मयदायक हुई ॥४४॥ जब आसनपर बैठकर गोकर्ण कथा कहने लगे तब धुन्धुकारी भी वहां आया और इधर उधर देखने लगा ॥४५॥ वहां एक सात गांठोंका बाँस रखा था उसकी मूलमें छिद्रके मार्गप्रवेश कर सुननेको बैठ गया ॥४६॥ वह पवन रूपी था, इसलिये स्थित न रह सका, तब बांसमें प्रवेश किया, गोकर्णने मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना

करके ॥४७॥ श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धकी कथा प्रेमपूर्वक गोकर्णने सबको सुनायी, जब सन्ध्या समय कथा विसर्जित हुई तब एक बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ जिस बाँसमें धुंधुकारी घुसा बैठा था उस बाँसकी एक गांठ टूट गयी, और बड़ा घोर शब्द हुआ, उसे सुनकर सब लोग विस्मित होगये, कि यह क्या कारण है, उसी प्रकार दूसरे दिन कथा होनेसे फिर सन्ध्या समय दूसरी गांठ टूट गयी ॥४९॥ तीसरे दिन फिर कथा प्रारम्भ हुई और सन्ध्या समय तीसरी गांठ टूट गयी, इसी प्रकार सात दिनमें सातों गांठें फट गयीं ॥ ५० ॥ द्वादश स्कन्ध सुननेसे धुंधुकारीने प्रेतयोनिको त्याग दिव्य रूप धारण किया, तुलसीमाला उसके कण्ठमें विराजती थी ॥ ५१ ॥

प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह॥४८॥वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्स शब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ॥४९॥ तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रन्थिविभेदनम् ॥५०॥ कृत्वाऽपि द्वादशस्कन्धश्रवणं प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसी-दाममण्डितः ॥५१॥ पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत्॥५२॥ त्वयाऽहं मोचितो बन्धात्कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥ सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करि-ष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ॥५५॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्वेदसंसदि ॥ ५६ ॥

पीत वस्त्र पहरे घनश्यामवर्ण, मुकुटधारण किये, मकराकृत कुण्डल पहरे, अपने भाई गोकर्णके निकट जाकर नमस्कार करके बोला ॥५२॥ भाई ! तुमने बड़ी कृपा करके प्रेतयोनिसे मुझको छुड़ाया, यह भागवतकी कथा धन्य है, प्रेतबाधाकी विनाश करनेवाली है ॥५३॥ यह सप्ताह धन्य है, जो कृष्णलोकका फल देनेवाला है, सप्ताह सुननेको बैठते ही मनुष्यके पाप कांपने लगते हैं ॥ ५४ ॥ हम प्रेतोंकी यह भागवत प्रलयकर देगा, गीला, सूखा, लघु, स्थूल वाणीसे, मनसे, कर्मसे किये हुए ॥५५॥ पापोंको सप्ताह यज्ञ नाश कर देता है, जैसे अग्नि

समिधाको। भारत वर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने कहा है ॥५६॥ कि विना कथा सुनने वालोंका जन्म निष्फल है, मोहसे रक्षा करके पुष्ट बलवान् देहसे क्या फल है? ॥ ५७ ॥ जिस शरीरने शुकसागर नहीं सुना, वह अस्थियोंका स्तम्भ नसोंमें बँधा मांस रुधिरसे लेपित ॥ ५८ ॥ चर्मसे आच्छादित, दुर्गन्धयुक्त मूत्र और पुरीषका पात्र है, बुढ़ापा शोकके फल समेत रोगका भवन दुःखरूप ॥ ५९ ॥ कभी भरता नहीं, दुर्धर खोटा दोष सहित क्षणभंगुर है, कीड़े, विष्ठा और भस्मका कारण यह शरीर है ॥ ६० ॥ इस अस्थिदेहसे सदैव रहनेवाला कर्म क्यों न साधन किया जाय? जो प्रातःकाल खाया हुआ अन्न सायंकालको नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ सो अन्नादिकके रसोंसे पुष्ट

अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ ५७ ॥ अश्रवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ ५८ ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥ ५९ ॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ॥ ६० ॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ ६२ ॥ अतो दोष निवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ॥ जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य तत्र ग्रन्थिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥

इस कायाकी क्या नित्यता है? क्षणभंगुर है, सप्ताह सुननेसे लोकमें भगवान् वासुदेवके निकट ही प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इन दोषोंकी निवृत्तिके लिये एक सप्ताहका ही साधन बहुत है, जैसे जलमें बुदबुदे जन्तुओंमें मच्छर, डांसादिक, ऐसे ही कथाके न सुननेवाले मनुष्य संसारमें वृथा ही उत्पन्न होते हैं ॥६३॥ जहाँ जड़ और सूखे बाँसकी गांठ टूट गयी तो फिर चैतन्य चित्तकी ग्रन्थि टूट जाय तो क्या आश्चर्य है? ॥६४॥ उनके हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सब सन्देह शमन हो जाते हैं, कर्मोंका क्षय हो जाता है, जो सप्ताह प्रेमपूर्वक सुनते हैं ॥६५॥

संसाररूपी कीचड़में सने हुओंको धोनेके लिये इस शुकसागरकी कथा परमोत्तम है, जिसका मन कथारूपी तीर्थमें है उसकी पण्डित लोगोंने मुक्ति कही है ॥ ६६ ॥ यह वचन उसके कहते ही एक विमान वैकुण्ठसे आया, जिसके चारों ओर प्रभाकरकी सी प्रभा फैली हुई थी वैकुण्ठवासियोंके संग ॥६७॥ सबके देखते हुए धुन्धुकारी उस विमानमें बैठा और उस विमानमें और वैष्णवोंको बैठा देखकर ॥६८॥ गोकर्णने पूछा कि यहाँ बहुतसे सुननेवाले उज्ज्वल चित्तके हैं उनके लिये विमान क्यों नहीं आये ? ॥ ६९ ॥ जब कि सबका सुनना समान होता है

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसी ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥६६॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा ॥ वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७ ॥ सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत ॥ ६८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ ७१ ॥ फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ॥ ७२ ॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥ ७३ ॥ संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ ७४ ॥

तो फलमें भेद क्यों हुआ ? हे हरिके प्यारे भगवज्जन ! इसका कारण कहो ? ॥ ७० ॥ हरिदास बोले, कि सुननेके भेदसे फलका भी भेद होता है, सबने सुना परन्तु उस प्रकार मनन किसीने नहीं किया ॥ ७१ ॥ इसलिये भजनेसे भी फलमें भेद हुआ, सात रात तक जागरण कर एकाग्रचित्त हो प्रेतने सप्ताह श्रवण किया ॥७२॥ और उसने स्थिर चित्त होकर मननादि भी किया, जिसको दृढ़ नहीं होता उसका ज्ञान हत हो जाता है और जो प्रमादसे कथा सुनता है उसका सुनना हत हो जाता है ॥७३॥ संदिग्धका मंत्र हत हो जाता है व्यग्रचित्तका जप निरर्थक है,

वैष्णव रहित देश हत है, अपात्र सद्गुण रहितको श्राद्धमें देना भी वृथा है ॥७४॥ वेदको न जाननेवाले विद्याहीनको दान देना वृथा है, सदाचार रहित कुल हत है, गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपने आपमें दीनताकी भावना करनी योग्य है ॥ ७५ ॥ मनके दोषोंको जीतना, कथामें निश्चल बुद्धि रखनी, जब इस प्रकारसे विश्वस्त शुद्ध चित्त हो तब कथाके सुननेका फल होता है ॥७६॥ फिर कथान्तमें सबका वैकुण्ठ लोकमें वास होता है, हे गोकर्ण ! तुझे तो श्रीगोविंद वासुदेव भगवान् स्वयं गोलोक देंगे ॥७७॥ इस प्रकार सब वृत्तांत कहकर वे भगवान्के पार्षद सब वैकुण्ठलोकको चले गये, फिर श्रावणके महीनेमें गोकर्णने कथा आरम्भ किया ॥ ७८ ॥ फिर सात रात्रिवाली सप्ताहकी

हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ॥ ७५ ॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥ ७६ ॥ पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ॥ ७८ ॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९ ॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ जयशब्दा नमः शब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा ॥ ८० ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥

कथाको बहुत मन लगाकर सुना, हे नारदजी ! जब सप्ताह कथा समाप्त हुई तब सब देवताओं ॥७९॥ विमानों और भक्तों समेत श्रीनारायण वासुदेव आकर प्रकट हुए, उस समय चारों ओरसे जय जय ध्वनि और नमः शब्द होने लगा ॥ ८० ॥ उस समय भगवान् द्वारकानाथने अत्यंत प्रसन्न होकर वहाँ पाञ्चजन्य शंखध्वनि कर गोकर्णको अपने हृदयसे लगा लिया और अपने रूपके समान बना लिया ॥ ८१ ॥ और जितने श्रोता थे, उनको क्षणमात्रमें श्रीवैकुण्ठनाथने घनश्याम पीताम्बरयुक्त किरीट कुण्डलधारी कर दिया ॥ ८२ ॥

और जो उस ग्राममें श्वानसे लेकर चाण्डालादि जातिके थे, वे भी गोकर्णकी कृपासे विमानमें स्थित हुए ॥ ८३ ॥ उनको भगवान्ने उस स्थानमें भेज दिया जहाँ योगीजन गमन करते हैं और गोपाल श्रीकृष्णचन्द्र गोकर्णसहित गोलोकको चले गये ॥ ८४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे भक्तवत्सल भगवान् ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्र अयोध्यावासियोंको स्वर्गलोकको ले गये थे ॥८५॥ उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी योगियोंको,जो गोलोक दुर्लभ है उस गोलोकको उन्हें अपने साथ ले गये, जहाँ सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी गति नहीं होती॥८६॥ जो सप्ताह यज्ञमें इस कथाके सुननेसे फल प्राप्त होता है, हे महात्माओ ! हम उस माहात्म्यका कहाँ तक वर्णन करें

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डाल जातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ ८५ ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवत श्रवणात् ॥ ८६ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥ वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥८८॥ इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥८९॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिन्होंने गोकर्णकी कथाके अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं, वे फिर गर्भमें नहीं आयेंगे ॥ ८७ ॥ जिस गतिको सप्ताह सुननेसे प्राप्त होते हैं उस गतिको पवन, जल, पत्र भक्षण कर तपस्यासे देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्र तपके संचय करनेवाले तथा योगी भी नहीं पहुँचते॥८८॥ इस पवित्र इतिहासको शांडिल्य ऋषीश्वर चित्रकूटमें ब्रह्मानंदसे व्याप्त हुए पाठ करते हैं॥८९॥ यह पवित्र आख्यान है, जो इसका एक बार भी पाठ कर लेता है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं, जो श्राद्धमें पढ़ने हैं उनके पितरोंकी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां *गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥*

सनत्कुमार बोले, कि अब हम तुम्हें सप्ताह श्रवणकी विधि सुनाते हैं, जो विधि सहायक व धनसे साध्य है ॥१॥ प्रथम तो ज्योतिषीको बुला-कर मुहूर्त्त पूछे फिर जैसी विवाहादिकमें मण्डपरचना होती है, उसी प्रकार रचना करे ॥ २ ॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़, श्रावण ये छः महीने कथा सुननेवालोंको मोक्षसूचक हैं ॥३॥ जो महीनोंको विग्रह है अर्थात् भद्रा, दग्ध, व्यतीपात वैधृति, गंडांत, रक्ष, मृत्यु उत्पातादि निन्दित दिनोंको त्याग दे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि है सर्वथा करणीय है ॥४॥ सब नगरमें यत्नपूर्वक अपने इष्टमित्रको यह बात प्रकट कर देनी चाहिये, कि हमारे यहां अमुक वारको सप्ताहयज्ञका प्रारंभ होगा, सब कुटुम्ब सहित तुम लोगोंको

कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम्॥सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां मोक्षसूचकाः॥३॥मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ॥ सहायश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥५॥ दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥६॥ देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम्॥७॥ सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ॥ भवन्तश्च तथा शीघ्रमायान्तु प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथाऽपि तु ॥ सर्वथाऽऽगमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥

आना उचित है ॥५॥ कोई हरिकथासे दूर है, कोई अच्युतके गुण कीर्तनसे दूर है, स्त्री शूद्रादिकोंको जिस प्रकारसे बोध हो वही काम करना ॥६॥ देश देशमें जो विरक्त वैष्णव लोग कथाके प्रेमी और हरिगुणके कीर्तन करनेवाले हैं, उनके पास पत्र भेजने और यह लिखना ॥ ७ ॥ महादुर्लभ सात दिन तक सत्पुरुषोंकी सभा होगी और अपूर्व रसरूपी भगवान्की कथा होगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतपानमें रस-लंपट आप प्रेमीजन शीघ्र आइये ॥ ९ ॥ यदि आप लोगोंको अवकाश न हो तो एक दिनको तो अवश्य ही आइये, क्योंकि इस सभाका

सत्संग क्षणमात्रका भी दुर्लभ है ॥१०॥ इस प्रकारसे उनको पत्र भेजकर बुलावे और आये हुओंके लिये उत्तमवास-स्थान नियत करे ॥११॥ चाहे तीर्थमें, चाहे उपवनमें, चाहे वाटिकामें, चाहे घरमें कथा सुने, परन्तु वह कथाका स्थान कहीं बड़ी लम्बी चौड़ी पृथ्वीमें कल्पना करे, जहां बहुतसे भवन अतिथि परदेशी लोगोंके ठहरनेका हो ॥१२॥ जलादिकोंसे मार्जनकर बुहारीसे बुहार गोबरसे लीप दे, फिर गेरू आदिक रंगोंसे चित्रित कर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगा दे ॥१३॥ पांच दिन पहिले आसन संग्रह कर रक्खे, केलेके वृक्षोंसे मण्डित मण्डप ऊँचा

एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ॥ आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥११॥ तीर्थे वाऽपि वने वाऽपि-गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥१२॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥ १३ ॥ अर्वाक्पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रलेपयेत् ॥ कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥१६॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥ अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥

बनावे ॥१४॥ फलपुष्प पत्रादि चारों ओर बंदनवार बांधे और ध्वजा गाड़े, वितान अर्थात् चांदनी ताने ॥ १५ ॥ वेदिकाके ऊपर भागसे सात लोक अर्थात् सात स्थान बनावे, उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बैठावे ॥ १६ ॥ प्रथम उनको यथायोग्य आसन दे, फिर वक्ताको भी एक परमदिव्य सुन्दर ऊँचा आसन दे जिसपर बैठकर कथा कहे ॥१७॥ वक्ता उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे सुनने वाला पूर्वकी ओर मुख करके बैठे, अथवा वक्ता पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे तो श्रोता उत्तरकी ओरको ॥१८॥ अथवा पूजा करनेवाले और पूज्यके मध्यसे पूर्वदिशामें सब

सुननेवाले बैठें ॥ १९ ॥ जो अपने धर्ममें विरक्त वैष्णव, ब्राह्मण, वेदशास्त्रानुसार शुद्ध, अथवा वेदशास्त्र जाननेवाला, दृष्टांत देनेमें कुशल, धीर, निर्लोभ, ऐसा वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ जो अनेक धर्मोमें घूमते हैं अर्थात् जहां जैसा देखा वहां धनके लिये वैसा ही मत स्वीकार कर लिया, स्त्रीलम्पट, पाखण्डवादी, परायी स्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले; पण्डित भी हों तो भी इस श्रेष्ठ महापुराणकी कथा उनसे न कहलावे, क्योंकि नीच अपने नीचपनको नहीं छोड़ता ॥ २१ ॥ कथा कहनेवालेके समीप एक और भी पण्डित स्थापन करना उचित है जो सन्देहोंके निवारण करनेमें समर्थ हो और लोगोंको इच्छापूर्वक समझा सके ॥ २२ ॥ फिर वक्ताको एक दिन पहले

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्राभिशुद्धिकृत् ॥ दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिस्पृहः ॥ २० ॥ अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ॥ शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वृत्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पितॄन्संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत ॥ मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणानमस्कारान्पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं त्वं करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥

व्रतके लिये क्षौर कराना चाहिये और अरुणोदय होते ही शौचादिकर्मसे निवृत्त हो स्नान करे ॥ २३ ॥ प्रथम तो नित्य सन्ध्या संक्षेपसे कर कथाके विघ्ननाशके लिये गणेशजीका पूजन करे ॥२४ ॥ फिर पितरोंका तर्पण करके शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करे ॥ २५ ॥ फिर 'नमःकृष्णाय' इस मन्त्रसे आरम्भ कर पूजा सम्पूर्ण करे और प्रदक्षिणा नमस्कारादि करके पूजाके अन्तमें स्तुति करे ॥ २६ ॥ हे करुणासागर ! संसारसागरमें मग्न हुए मुझ दीनका जो कि मैं कर्म-मोहसे ग्रसित हो रहा हूँ,

आप इस संसार सागरसे उद्धार कीजिये ॥२७॥ फिर श्रीमद्भागवतकी भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, फिर प्रीतिसे धूप, दीप, नैवेद्य अर्पण करे ॥ २८ ॥ फिर श्रीफल चढ़ा कर नमस्कार करे और प्रसन्नचित हो स्तुति करे ॥ २९ ॥ कि श्रीमद्भागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण रूप ही है, हे नाथ ! मैंने भवसागरसे मुक्ति होनेके लिये स्वीकार किया है ॥ ३० ॥ यह मेरा मनोरथ तुमहीसे सफल होगा, हे महाराज ! मैं आपका दास हूँ, ऐसी कृपा करो, कि यह सप्ताह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाय ॥ ३१ ॥ ऐसे नम्र वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे, वस्त्राभूषणसे भूषित कर फिर पूजा करके स्तुति करे ॥ ३२ ॥ हे कृपासिंधु ! आप शुकदेव रूप ज्ञानदायक सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो, इस भास्कररूपी कथाके

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥२८॥ ततस्तु श्रीफलं दत्त्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥ मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ३१ ॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥ शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ३४ ॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ॥ कर्तयं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत ॥ ३६ ॥

प्रकाशसे मेरा अज्ञान तिमिर नाश करो ॥ ३३ ॥ फिर वक्ताके आगे कल्याणके निमित्त नियम करे, प्रसन्न होकर यथाशक्ति सात रात्रि तक वही नियम धारण करे ॥ ३४ ॥ कथामें विघ्नकी निवृत्तिके लिये पांच ब्राह्मणोंका वरण करे, वे (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते रहें ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणोंको तथा हरिचरित्र कीर्त्तन करनेवालोंको नमस्कार कर विनयपूर्वक उनसे

आज्ञा ले आप आसनपर बैठे ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान, पुत्रादिक सबकी चिन्ता त्याग करके कथामें शुद्धबुद्धिसे मन लगावे, उसको उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहरतक कथा बांचनी योग्य है और शीघ्रता न करे, धीरे कण्ठसे समझा कर कहे ॥३८॥ दुपहरको दो घड़ीके लिये कथाका विराम करे । कथाके अन्तमें वैष्णव लोग भगवान्का कीर्त्तन करें ॥३९॥ मल मूत्रकी बाधा-शांतिके लिये लघु भोजन करना चाहिये । उन कथा सुननेवालोंको चावल दुग्धादिकका भोजन एक बार करना चाहिये ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रितक व्रत करके कथा सुने, अथवा घृतपान, दुग्धपान करके सुने ॥ ४१ ॥ वा फलाहार करके सुने, वा

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिका-द्वयम् ॥ तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणु-यात्सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥ सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाच्छृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥

एक ही वार सूक्ष्म भोजन करे, अथवा जिस प्रकारसे कथा सुननेमें आलस्य न आवे सुख प्राप्त हो वह काम करे ॥ ४२ ॥ कथा सुननेके समय आलस्य न आवे इतना थोड़ा भोजन करना चाहिये, यदि उपवास करनेसे कथा सुननेमें विघ्न पड़े तो वह भी अच्छा नहीं ॥४३॥ हे नारदजी ! सप्ताहव्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनोः-विष्णुदीक्षाविहीन अर्थात् गायत्रीका वा भगवान्के मन्त्रका उपदेश जिन्होंने गुरुसे नहीं लिया है, उनको कथा सुननेका अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यसे रहना, पृथ्वी पर शयन करना, पत्तलमें भोजन करना, कथा

समाप्तिके समय नित्यप्रति भोजन पावे ॥ ४५ ॥ कथा सुननेवाले व्रती रहें, द्विदल अन्न (उसको कहते हैं जिसमें दो दल हो) मधु, तैल, गरिष्ठ अन्न, मनसा दूषित अन्न और बासी अन्नका सदा त्याग करे ॥ ४६ ॥ बैंगन, कलंज, दग्ध अन्न मसूर, निष्पावादि तथा मांस कथा सुननेवाले त्याग दें ॥४७॥ कथाका व्रती पलाण्डु (प्याज), लहसुन, हिंगु, मूलक (मूली) गृञ्जन (गाजर), नालिका, मूल कूष्मांड (कोहड़ा) को न खाय ॥४८॥ दो दफे पकाया हुआ तथा सूतकान्न, भूमिसे उत्पन्न नमक, मछली; मांस, बकरीका दूध, छोटी तलैयाका जल, इसे भी न खाय ॥ ४९ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, मान, मत्सर, दम्भ, मोह, द्वेषको भी छोड़ दे ॥५०॥ वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गौ,

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ वृन्ताकं च कलञ्जं च दग्धमन्नं मसूरिकाम् ॥ निष्पावाद्यामिषं चैव वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४७ ॥ पलाण्डुं लशुनं हिङ्गुं मूलकं गृञ्जनं तथा ॥ नालिकामूलकूष्माण्डं नैवाद्याद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥ द्विष्पाचितं सूतकान्नं भूमिजं लवणं तथा ॥ मत्स्यं मांस मजादुग्धं पल्वलोदं च वर्जयेत् ॥ ४९ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ५० ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ५१ ॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ५२ ॥ सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारं मानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५३ ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५४ ॥ अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥

गुरु, व्रती, राजा तथा महान् पुरुषोंकी निंदा भी न करे ॥ ५१ ॥ रजस्वला, नीच, पतित, म्लेच्छ, चांडाल, द्वेषी ब्राह्मण और जो वेद बाह्य हैं, उन लोगोंसे व्रती बात न, करे ॥ ५२ ॥ सत्यव्रत, दया, मौन, नम्रता, विनय, उदारता, यह व्रतीको करना उचित है ॥५३॥ दरिद्र, क्षयरोगी निर्भाग्य, पापकर्मा, जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला, इस कथाको सदा सुने ॥ ५४ ॥ जिस स्त्री को रजोधर्म न होता हो, काकवन्ध्या अर्थात् एक बार जिसके बालक हुआ हो अथवा जिसके बालक मर जाते हों, जिसका गर्भ गिर

जाता हो, वह स्त्री भी इस कथाको प्रयत्नसे सुने॥५५॥इन सात दिनतक जो विधिपूर्वक सुने तो अक्षयफल होता है, यह दिव्य कथा अत्युत्तम है, जो सुनेगा उसको यह यज्ञका फल देनेवाली है ॥५६॥ इस प्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करे, फलकी इच्छा करनेवालेको जन्माष्टमीके व्रतकी नाईं यह व्रत करना चाहिये॥५७॥ और दरिद्र(निष्काम) भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है वह (निष्काम) वैष्णव श्रवणमात्रसे ही कृतार्थ हो जाते हैं॥५८॥इस सप्ताह यज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥५९॥

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५६ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ ५७ ॥ अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैवपूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५८ ॥ एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥ ५९ ॥ प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ६० ॥ जयशब्दं नमश्शब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ६१ ॥ विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ६२ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६३ ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६४ ॥

प्रसाद, नैवेद्य, तुलसी, पुष्पमाला, सुननेवालोंको देनी चाहिये, फिर मृदंग; ताल आदि बाजोंसे परमेश्वरका कीर्त्तन करना योग्य है॥६०॥ फिर जय जय शब्द नमस्कार शंखध्वनि करे,ब्राह्मणोंको और याचकोंको धन और अन्न दे ॥६१॥जो मुख्य श्रोता विरक्त हो तो दूसरे दिन गीताका पाठ करे जो और गृहस्थ हो तो शांतिके निमित्त हवन करे ॥६२॥ सविधि दशम स्कन्धके प्रत्येक श्लोकोंसे पायस(दूधपाक)मधु, घी, तिल अन्नादिक हवन करना चाहिये ॥ ६३ ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करे क्योंकि यह महापुराण तत्त्वसे गायत्रीमय

ही है ॥ ६४ ॥ जो होम करनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् उसके फलकी सिद्धिके लिये होम करने योग्य वस्तु दे दे, अनेक प्रकारकी छिद्रशांतिके अर्थ और न्यूनता, अधिकता ॥ ६५ ॥ दोषोंके शान्त करनेको विष्णुसहस्रनामका पाठ करे; इससे सब फल पूर्ण हो जाता है, क्योंकि इससे परे और कुछ नहीं है ॥६६॥ फिर बारह ब्राह्मणोंको बूरामिश्रित खीरसे भोजन करावे और व्रतपूर्तिके निमित्त सुवर्णकी गाय देनी योग्य है ॥ ६७ ॥ और समर्थ हो तो तीन पल सोनेका सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापन करे ॥ ६८ ॥ फिर पूजन कर आवाहनादिक उपचार, दक्षिणा सहित वस्त्रालंकार, गन्धादिसे पूजित, जितेन्द्रिय ॥ ६९ ॥

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ नानाछिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६५ ॥ दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६६ ॥ द्वादश ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६७ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥६८॥ संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६९ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ७० ॥ फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ७१ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७३ ॥

आचार्यके लिये बुद्धिमान् पुरुष पुस्तक प्रदान करे तो भवबन्धनोंसे मुक्त हो जाय, इस प्रकारके सब पाप हरनेवाले विधानके करनेसे ॥७०॥ यह श्रीमद्भागवतपुराण फलदायक होता है, यह धर्मार्थ काम मोक्षका साधन है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥७१॥ सनत्कुमार बोले, कि हे नारद ! यह तो सब कुछ तुमको सुनाया, अब क्या सुननेकी इच्छा है, श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसे भुक्ति मुक्ति हाथों हाथ होती है ॥७२॥ सूतजी बोले, कि ऐसे कहकर महात्मा लोग फिर कथा कहने लगे, जो कथा सब पापोंकी हरनेवाली पुण्य भुक्ति मुक्तिकी दाता है ॥ ७३ ॥

इस सप्ताह यज्ञको सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियोंने यथाविधि श्रवण करनेसे पुरुषोत्तम भगवान्‌को प्रसन्न किया ॥७४॥ उसके अन्तमें ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी बड़ी पुष्टि हुई, सब प्राणियोंके मन हरनेवाले ज्ञान वैराग्य तत्काल तरुण हो गये ॥७५॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे कृतार्थ हो गये, शरीर पुलकित हो गया, सर्वांगमें आनन्द भर गया ॥ ७६ ॥ इस प्रकार भगवान्‌के प्यारे नारदजी कथा सुनके प्रेमसे गद्गदवाणी हो, हाथ जोड़ सनकादिकोंसे बोले, ॥७७॥ नारदजी बोले, कि मैं धन्य हूँ, हे करुणासागर! आपने मेरे ऊपर

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७४ ॥ तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७५ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसंभृतः ॥ ७६ ॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७७ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवांल्लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७८ ॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७९ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन्समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ८० ॥ तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन्भागवतं शनैश्शनैः ॥ ८१ ॥

बड़ी कृपा की। आज मुझे सब पाप हरनेवाले हरि भगवान् मिल गये ॥७८॥ हे तपोधन! हे कथा सुननेवाले महात्माओ! सब धर्मोंसे श्रवण धर्म अधिक है, क्योंकि जिसके श्रवणसे वैकुण्ठमें स्थित और श्रीकृष्णचन्द्र प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले, कि हे वैष्णवोत्तम! नारदजी जिस समय यह कह रहे थे उसी समय कहींसे घूमते हुए योगीश्वर शुकदेवजी आ गये ॥ ८० ॥ षोडशवर्षकी अवस्थामें वेदव्यासजी महाराजके पुत्र, महाज्ञानसागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक, कथावसानमें अपने ही लाभसे परिपूर्ण प्रेमपूर्वक शनैः शनैः

श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे और परमात्माके ध्यानमें मग्न थे॥८१॥ बड़े-बड़े उग्र तेजस्वी महात्मा इनको देखते ही सब सभासद उठ खड़े हुए और महादिव्य आसन दिया और नारदजीने उनका प्रीतिपूर्वक पूजन किया, तब सुखसे स्थित हो श्रीशुकदेवजी बोले॥८२॥ वेदकल्पवृक्ष है, उसका यह भागवत फल है, सो मुझ शुकदेवके मुखसे पृथ्वीपर गिरा है; अमृतरूपी रससे संयुक्त है, "जिस फलमें तोतेकी चोंच लग जाती है वह अधिक मीठा हो जाता है, यहां शुकरूपी शुकदेवजीने इसका स्वाद लिया है इस कारण यह अधिक मीठा हो गया है यह भाव है" यह भक्तिरूप रससे परिपूर्ण है, हे रसिको! हे भगवच्चरितामृत पान करनेवाले महात्माओ! (इससे मोक्ष भी न्यून है, इस कारण) इसे बारंबार पान करो॥८३॥ जिस श्रीमद्भागवतमेंसे (फलाकांक्षारूप) कपटधर्म सम्यक् त्याग दिया है, केवल ईश्वर सेवारूप धर्म

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ८२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८३ ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ ८४ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ यत्रज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८५ ॥

निरूपण किया है; मत्सरतारहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकार है, महामुनि श्रीनारायणरूप वेदव्यासके बनाये हुए इस श्रीमद्भागवतमें वास्तव परमार्थरूप एक परमेश्वर ही जानने योग्य है, जो कल्याणदायक तीनों तापोंका नाश करनेवाले हैं, निश्चय श्रीमद्भागवतके सुननेवाले महात्माओंके हृदयमें शीघ्र ईश्वर प्राप्त हो जाते हैं, क्या और शास्त्रोंसे भी परमेश्वर इतने शीघ्र हृदयमें प्राप्त हो जाते हैं? अर्थात् कभी नहीं होते॥ ८४ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणोंमें श्रेष्ठ, वैष्णवोंका परमधन है, जिसमें भक्तोंके परमप्रिय ज्ञान, परब्रह्म श्रीकृष्ण ही गाये जाते हैं, जिस श्रीमद्भागवतमें ज्ञान, वैराग्य भक्ति सहित निष्कर्मतारूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं। इसके श्रवण करनेसे,

पाठ करनेसे, विचार करनेसे, भक्ति करनेसे मुक्त हो जाता है ॥८५॥ स्वर्गमें, सत्यलोकमें, कैलासमें, वैकुण्ठमें, यह रस नहीं है, इसलिये हे सद्भाग्य वाले महात्मा पुरुषो ! इस आनन्दरूपी रसको पिओ, कभी त्याग मत करो, यह रस बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है ॥८६॥ सूतजी बोले कि जिस समय श्रीशुकदेवजीने मधुरवाणीसे प्रेमपूर्वक ये मनोहर वचन कहे, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द भक्तहितकारी वृन्दावनविहारी पीताम्बर पहिने मुकुट शिर धरे त्रिभंगी छबि करे चन्दन केशरका तिलक दिये वनमाला हिये मुरली कर धारण किये; ध्रुव, प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुनादिक भक्तोंको संग लिये उसी सभाके मध्यमें प्रकट हो गये इस अद्भुत आश्चर्यको देखकर सबको परमानन्द

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥८६॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८७ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ॥ ८८ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत ॥ इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८९ ॥

प्राप्त हुआ और सबने खड़े होकर बड़े आदर सम्मानसे उन्हें ऊँचे ऊँचे आसनोंपर बैठाया और नारदजीने प्रेमसहित प्रथम श्रीवैकुण्ठनाथ वासुदेवका पूजन किया फिर उद्धवादिकका पूजन किया ॥८७॥ फिर आसनोंपर बैठे हुए भगवान्के सम्मुख सब महात्मा-पुरुष कीर्त्तन करने लगे, तब पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्त्तन–दर्शन करनेके लिये वहां आये ॥८८॥ और सब खड़े हो गये, प्रह्लादने कड़तालें धारण कीं तरलगतिसे उद्धवने झांझ हाथमें लिये, नारदजीने वीणा बजायी, स्वरभेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना आरम्भ किया इन्द्रने मृदंग लिया, सनत्कुमारादि जय जय अथवा धन्य धन्य कहने लगे और सबके आगे रसकी विचित्रताके भाव बतानेवाले श्रीशुक-

देवजी हुए ॥८९॥ उस स्थानमें भक्ति ज्ञान वैराग्यका तिगड्डा नाचने लगा, नटोंकी नाईं यह अलौकिक नाटक और कीर्त्तन देखकर श्रीवैकुण्ठ विहारी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले ॥९०॥ हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्त्तनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, जो इच्छा हो सो वर मांगो, श्रीभगवान्‌के ये वचन सुनकर सब हरिभक्त प्रेममें मग्न हो गद्गदकंठसे बोले ॥ ९१ ॥ महाराज ! सप्ताहकी कथाओंमें आपको इसी प्रकार प्रकट होना चाहिये, अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होना उचित है, यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर श्रीनारायण अन्तर्धान हो गये ॥ ९२ ॥ इसके उपरांत नारदजीने सनकादिकके चरणोंको नमस्कार करते हुए शुकदेवजी तथा अन्य तपस्वियोंको भी नमस्कार

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत ॥ ९० ॥ मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥९१॥ नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात् ॥ मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वाऽन्तरधीयताच्युतः ॥ ९२ ॥ ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९३ ॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९४ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानां ॥ संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९५ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धिमे संशयं त्विमम् ॥ ९६ ॥

किया, वे सब मोहरहित प्रसन्न हो कथामृत पान करके अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥९३॥ और भक्ति, ज्ञान वैराग्य इन तीनोंको शुकदेव जीने इस श्रीमद्भागवतमें स्थापित किया है, इसलिये श्रीमद्भागवतके सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें नित्य प्राप्त होते हैं ॥९४॥ दरिद्र, दुःख, ज्वरसे दुःखित, माया पिशाचिनीसे मर्दित, संसार सागरमें गिरे हुओंके कल्याणके लिये यह श्रीमद्भागवतकी कथा बलवती है ॥९५॥ शौनकजी बोले, कि हे आनन्ददायक ! श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके यह कथा कब सुनायी ? और महात्मा गोकर्णने कब सुनायी ? और

सनत्कुमारने नारदजीको कब सुनायी ? यह हमारा संशय आप कृपा करके दूर कीजिये ॥९६॥ सूतजी बोले; श्रीकृष्णचन्द्र त्रिलोकीनाथ के परलोक जानेके उपरांत तीस वर्षसे अधिक कलिके बीतनेपर भादोंके शुक्लपक्षकी नवमीको शुकदेवजीने यह कथा राजा परीक्षित्‌को सुनायी ॥९७॥ राजा परीक्षित्‌के कथा सुननेके दोसौ वर्ष पीछे आषाढ़के शुक्लपक्षमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया था ॥९८॥ उसके पश्चात् फिर कलियुगके तीस वर्ष व्यतीत होनेसे कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें सनकादिकोंने नारदजीको कथा सुनायी ॥९९॥ हे पापरहित ! जो कुछ तुमने पूछा सो मैंने तुमको सुनाया, कलियुगमें यह श्रीमद्भागवतकी कथा संसारके रोगोंका नाश करनेवाली है ॥१००॥ कृष्णकी प्यारी

सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥ ९७ ॥ परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९८ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९९ ॥ इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ १०० ॥ कृष्णप्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्येक हेतुमिह भक्तिविलासकारि ॥ सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ १०१ ॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ १०२ ॥ असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम् ॥ किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०३ ॥

सब पापोंका शमन करनेवाली, मुक्तिका कारण भक्तिकी लीला करनेवाली यह कथा है, जो जो महात्मा प्रेम प्रीतिसे इस कथाका पान करते हैं उनको और तीर्थोंके सेवन करने की क्या आवश्यकता है ?॥१०१॥ यमराजने पाश हाथमें लिया तब अपने दूतोंसे कानमें कहा, कि जो पुरुष भगवत्कथारसमें मत्त हैं उनके निकट कभी मत जाना, मैं औरोंका निग्रह करता हूँ, परन्तु वैष्णवोंका दास हूँ, क्योंकि वे प्रतिदिन भगवत्‌की सेवा करते रहते हैं ॥ १०२ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी विषके संसर्गसे व्याकुल बुद्धिवालोंको उचित है, कि आधेक्षणको तो अतुल अमृतरूपी श्रीशुकदेवजी महाराजकी गाथाको कल्याणके निमित्त पान करें, अरे ! कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो, इस कथाके

श्रवण करनेसे निश्चय मुक्ति होती है, इस बातमें महाराज परीक्षित् साक्षी हैं, ॥ १०३ ॥ रसप्रवाहसे युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है, जो कोई कण्ठमें धारण करता है, वह बैकुण्ठका प्रभु होता है ॥ १०४ ॥ हे शौनक ! इस प्रकारस यह परमगुह्य सब सिद्धान्तोंका सिद्धान्त अनेक शास्त्रोंकी आलोचना कर मैंने कहा, इस जगत्में शुककथासे निर्मल और कुछ नहीं है, परमसुखके कारण द्वादशस्कन्धात्मक श्रीमद्भागवतरसका पान करो ॥ १०५ ॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण करते हैं और भक्ति प्रीतिसे शुद्ध वैष्णवोंके आगे

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०४ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित्पिब परसुखहेतो द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०५ ॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०६ ॥ इति श्रीपाद्मे महापुराणे उत्तराखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

सुनते हैं वे वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं, सत्यसे अधिक संसारमें कोई वस्तु भी असाध्य नहीं है ॥ १०६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां मुरादाबादनिवासि–शालग्रामवैश्यकृतायां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ शुभमस्तु ॥

कवित्त–नित्य प्रति प्रेम नेम यम व्रत धारकर राखिकै विश्वास सुनै कथा ॥ ताके नव सब पापके पहारहू विलाय जात होय सो पवित्र ब्रह्म तीर्थमें नहायकै ॥ कैसोही हो कार्य अभिलाख हियेमाहिं धरो तुर्त होय सिद्ध सुखपाइये अघायकै ॥ कहै शालग्राम पाठ करै जो सदैवहू धर्म अर्थ काम मोक्ष लेवै सो बुलायकै ॥ १ ॥

दोहा–श्रीब्रजचन्द्र मुकुन्दको, ध्यान हृदयमें लाय । कियो महातमको तिलक, यदुपति रहैं सहाय ॥

एतच्छ्रीमद्भागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्–यन्त्रालयेऽङ्कितम् ।
शकाब्दाः १८९१, संवदब्दाः २०२८.

श्रीभागवतस्थवृत्तलक्षणानि उवाचपरिगणनं ग्रन्थसंख्याणनाग च ।

॥ श्रीहरिः ॥ निगमकल्पतरोः० ॥ द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ जय जय जह्यजामजित० यह वेदस्तुतिमें नर्कुटक छन्द है ताकोलक्षण ॥ यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम् ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो० ॥ इहाँ युगलगीतमें स्वागता छंद है ॥ तस्य लक्षणम् ॥ स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ॥ जन्माद्यस्य यतो० ॥ यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है तस्य ल० ॥ सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं० ॥ यह रुचिरा छन्द है ॥ तस्य लक्षणम् ॥ जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः ॥ चतुर्थमें दक्षयज्ञकी स्तुतिमें ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्त्रकोग्र० ॥ यह मन्दाक्रांता छन्द है ॥ तस्य लक्षणम् ॥ मन्दाक्रांताम्बुधिरसनगैर्मोभनौ तौ गयुग्मम् ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरद वराङ्घ्रा० ॥ मालिनी छन्द है तल्लक्षणम् ॥ ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय० ॥ यह प्रहर्षिणी छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयम् ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयंत्वत्कथामृष्टपीयूषनद्याम् ॥ यह भुजङ्गप्रयात छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः० ॥ यह स्रग्विणी छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ कीर्त्तितेषां चतूरेफिका स्रग्विणी ॥ लोकपाला ऊचुः दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वम् । यह वातोर्म्मी छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ वातोर्म्मीयंगदितास्भौतगौगः॥ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वंक्रतुस्त्वं हविः० । यह भी स्रग्विणी छन्द है । योगेश्वरा ऊचुः ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु० यह मंजुभाषिणी छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ सजसा जगौ च यदिमंजुभाषिणी ॥ गंधर्वाप्सरस ऊचुः ॥ अं शांशास्ते देवमरीच्यादय एते० ॥ यह मत्तमयूर छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ वेदैरंध्रैर्म्तौयसगा मत्तमयूरम् ॥ सप्तममें प्रह्लादचरित्र देवताओंकी स्तुतिमें ॥ चारणा ऊचुः ॥ हरेतवांघ्रिपङ्कजम्० ॥ यह प्रमाणिका छन्द है ॥ तल्लक्षणम् ॥ प्रमाणिका जरौलगौ ॥ तीर्थचक्रे नृपाणां यदजनियदुषु० ॥ यह स्रग्धरा छंद है ॥ ताकोलक्षण ॥ म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा० ॥ यह भीष्मजीकी स्तुति ॥ पुष्पिताग्रा छन्द है ॥ ताकोलक्षण ॥ अयुजि नयुगरेफतोयकारो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोकं० ॥ यह शालिनीछन्द है ॥ तलक्षणम् मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥ इति छंदांसि ॥ अथ उवाच ॥ प्रथमस्कन्धमें ॥ वेदव्यास० ॥३॥ सूत० ॥२३॥ ऋषय० ॥२॥ शौनक० ॥६॥ नारद० ३॥

अर्जुन० ॥१॥ भगवान्०२ कुन्त्युवाच ॥१॥ भीष्म उवाच ॥१॥ राजोवाच ॥२॥ ब्राह्मणा ऊचुः युधिष्ठिर उ० ॥४॥ संजय० ॥१॥ धरण्युवा० ॥१॥धर्म उ०॥ १॥प्रथम स्कन्धमें सब उवाच ६२ हैं॥अथ द्वितीयस्कन्धे॥शुक उ० ॥८॥ राजोवा०॥३॥शौनक उ० ॥२॥ सूत०॥४॥नारद० ॥१॥ ब्रह्मा उ० ॥४॥ भगवानु० ॥२॥ द्वितीयस्कन्धमें सब २४ हैं॥अथ तृतीयस्कंधे॥ शुक उ० ॥१४॥ राजो वा०॥२॥ सूत उ० ॥५॥ विदुर०॥११॥ उद्धव ३ भगवान् २० मैत्रेय ४२ शौनक २ कुमाराः १ देवाः २ ऋषिरु० ४ ब्रह्मो० ८ मनु २ ऋषयः २ दिति ३ कश्यप २ मनुयः १ देवहूती ७ जीव॥१॥ तृतीयस्कन्धमें सब उवाच १३४ हैं॥ अथ चतुर्थस्कंधे॥ मैत्रेय ६६ विदुर ९ शुक ३ अत्रि १ देवाः २ सती १ ऋषीरु० १ भगवान् ६ देवी १ ब्रह्मा ३ दक्ष २ महादेव १ राजो०५ सूत २ ऋत्विजः १ सदस्याः १ रुद्र ३ भृगु १ इंद्र १ पत्न्यः १ ऋषयः २ सिद्धाः १ यजमानी १ लोकपालाः १ योगेश्वर १ अग्नि १ ब्राह्मण १ पृथ्वी १ देव्यः १ राम २ प्रचेतस २ सुरुचि १ नारद १ ध्रुव ३ मुनयः २ मनु १ धनद १ सुनंदनंदौ १ अंग २ सदसस्पतयः १ वेन १ पृथु ४ प्रजा १ धरा १ सनत्कुमार॥१॥चतुर्थस्कन्धमें सब उवाच १५९ हैं॥अथ पञ्चमस्कंधे॥राजो०६शुक २२ ब्रह्मो०१भगवान् २ ऋषभदेव ३ ऋषिरु०४ सहो० १ब्राह्मण३रहूगण १ भद्रश्रवस १॥पंचमस्कंधमें४२हैं॥ अथ षष्ठस्कंधे॥राजो०१० शुक३९बादरायणि६विष्णु दूताः२ ऋषिरु० ३ ब्रह्मो०१ विश्वरूप १ देवा ३ यम सूत प्रजापति १ भगवान् ३ दक्ष १ वृत्र २ इंद्र १ परीक्षित् १ चित्रकेतु ४ अंगिरा २ पार्वती१ दिति २ कश्यप २ नारद २ जीव १॥ षष्ठस्कंधमें सब ९२ हैं ॥ अथ सप्तमस्कंधे॥ राजो० २ शुक ३ नारद २८युधिष्ठिर ६ ऋषि १ हिरण्यकशिपु५ यम २ प्रह्लाद ८ब्रह्मो० ४ गुरु १ दैत्यपुत्राः १ इंद्र २ रुद्र १ विद्याधर १ सिद्धाः १ पितरः ऋषयः १ नाग १ मनवः १ प्रजापतयः १ गधर्वाः १ चारणाः १ किंपुरुषाः १ वैतालिकाः १ किन्नराः १ विष्णुपार्षदाः १ भगवान् ४ ब्राह्मणः १ ॥ सप्तमस्कंधमें सब ८२ हैं ॥ अथ अष्टमस्कंधे ॥ राजो० ७ ऋषि २ मनु १ शुक ४९ सूत २ गजेंद्र १ गुरु १ भगवान् ११ ब्रह्मो० ४ प्रजापति १ शिव २ बलि ६ विंध्यावली १ नारद बादरायणि १ अदिति ३ कश्यप १ प्रह्लाद १ शुक १॥ अष्टमस्कन्धमें ९९ हैं ॥ नवमस्कन्धे ॥ राजो० ८ शुक ३१ सूत १ ब्रह्मा १ शंकर १ भगवान् २ बादरायणि ४ अंबरीष १ दुर्वासा १ अंशुमान् १ ब्राह्मण १ देवाः १ पुरूरवाः १ उर्वशी २ ययाति १ यदु १ पुरु १ शकुंतला १ दुष्यंत॥१॥ नवमस्कंधमें सब ६१ हैं ॥ अथ दशमस्कन्धपूर्वार्द्धे ॥ राजो० १० शुक ९२ सूत २ वसुदेव ५ देवकी १ भगवान् १५ नंदादय ऊचुः १ गर्ग २ नारद १ ब्रह्मा १ नागपत्न्यः १

काली १ ऋषि २ गोपा ऊ० १ यज्ञपत्न्यः १ इंद्र १ सुरभि १ बादरायणि५ वरुण १ गोप्य ऊ० ६ सर्प १ अक्रूर ५ सैरन्ध्री १ चाणूर १ गुरु १ समुद्र १ उद्धव २ धृतराष्ट्र १॥ पूर्वार्द्धमें सब १६८ हैं॥ अथ उत्तरार्द्धे॥ शुक ७३ भगवान् २९ राजो० १४ मुचुकुन्द २ बादरायणि १२ रुक्मिणी ३ ब्राह्मण ३ रति १ युधिष्ठिर ३ कुन्ती १ वसुदेव ४ द्रौपदी १ सत्यभामा १ जांबवती १ भद्रा १ मित्रविंदा १ लक्ष्मणा २ कालिंदी २ महिष्यः २ मुनियः १ सूत ३ देवकी १ बलि १ श्रुतदेव १ भूमि १ उषा १ चित्रलेखा १ ज्वर १ रुद्र १ नृग १ नारद ५ ऋषि ४ ऋषयः ३ दूत १ उद्धव १ राज १ सारथि १ अर्जुन १ परीक्षित् १ सनंदन १ श्रुतयः ऊ० १॥ उत्तरार्द्धमें सब १९० हैं इतिं दशमः॥ अथ एकादशस्कन्धे॥ बादरायणि २ राजो० ७ शुक १३ वसुदेव १ नारद ३ निमि ४ कवि १ हरि १ अन्तरिक्ष १ प्रबुद्ध १ पिप्पलायन १ आविर्होत्र द्रुमिल १ चमस १ करभाजन १ देवा ऊ० १ ब्रह्मा १ भगवान् ४४ उद्धव २३ यदु १ ब्राह्मण ४ पिंगला १ सनकादयः १ ऋषि १ द्विज १ ऐल १ एकादशमें सब ११६ हैं॥ अथ द्वादशस्कंध॥ शुक ९ राजो० २ सूतः १८ शौनक ४ याज्ञवल्क्य १ मार्कंडेय ३ भगवान् ३ ऋषि ३॥ द्वादशमें सब ३७ हैं॥ सब १२ स्कन्धोंका जोड़ १२६७॥ अथ स्तुतिर्लिख्यते॥ प्रथमस्कन्धमें अर्जुनस्तुति १ कुंतीस्तुति २ भीष्मस्तुति ३॥ द्वितीय और तृतीयमें महदादिक स्तु० ४ ब्रह्मस्तुति ५ ऋषिस्तुति वराहकी ६ देवस्तुति ब्रह्माकी ७ कुमारस्तुति ८ कर्दमस्तुति ९ जीवस्तुति १० देवहुतिस्तु० ११॥ चतुर्थमें नरनारायणस्तुति १२ शिवप्रार्थना १३ दक्षसे क्षमाकराई १४ दक्षेस्तुति विष्णुकी १५ ऋत्विज १६ सदस्य १७ रुद्र १८ भृगु १९ ब्रह्मा २० इंद्र २१ पत्नी २२ ऋषि २३ सिद्धाः २४ यजमानी २५ लोकपाल २६ योगेश्वर २७ ब्रह्मा २८ अग्नि २९ देवता ३० गंधर्वाप्सरा ३१ विद्याधर ३२ ब्राह्मण ३३ ध्रुवस्तु० ३४ पृथुस्तु० ३५ पृथ्वीकृत पृथुस्तुति ३६ पृथुकृतविष्णुस्तव ३७ प्रजाकृतस्तुति पृथुकी ३८ प्रचेताकृत विष्णुस्तुति ३९॥ पंचममें ऋत्विग्जनकृत विष्णुस्तुति ०४० भवकर्तृक संकर्षणस्तु० ४१ भद्रश्रवःकर्तृकहयग्रीवस्तु० ४२ प्रह्लादकृत नृसिंहस्तुति ४३ लक्ष्मीकर्तृक भगवत्स्तु० ४४ सत्यव्रतकर्तृक मत्स्यस्तु० ४५ पृथ्वीकर्तृक वराहस्तु० ४६ हनुमत्कर्तृक रामस्तु० ४७ नारदकर्तृक नरनारायणस्तु० ४८ षष्ठस्कन्धमें हंसगुह्यस्तव ४९ वृत्रदेवकर्तृक विष्णुस्तु० ५० पुनः देवकृत विष्णुस्तव ५१ चित्रकेतुकृत संकर्षणस्तव ५२॥ सप्तमस्कन्धमें॥ हिरण्यकशिपुकर्तृक विष्णु० ५३ ब्रह्मकर्तृक नृसिंहस्तव ५४ रुद्रकर्तृक नृ० ५५ इन्द्रकर्तृक नृ० ५६ ऋषिक० नृ० ५७ पितृक० नृ० ५८ सिद्धक० नृ० ५९ विद्याधरक० नृ० ६० नागकन्याक० नृ० ६१ मनुक० नृ०

६२ प्रजापतिक० नृ० ६३ गंधर्वक० नृ० ६४ चारणक० नृ० ६५ यमक० नृ०६६ किंपुरुषक० नृ० ६७ वैतालिकक० नृ० ६८ किन्नरक० नृ० ६९ विष्णुपार्षदक० नृ० ७० प्रह्लाद० नृ० ७१ पुनर्ब्रह्मक० नृ० ७२॥अष्टममें मनुकृत विष्णुस्तव ७३ गजेंद्रकृतविष्णुस्तव ७४ देवकृ० वि० स्त० ७५ ब्रह्म-कृत वि० स्त० ७६ देवादिकृत० शिवस्त० ७७ शिवकृत० वि० स्त० ७८ अदितिकृत वि० स्त ७९ ब्रह्मकृत वि० स्त० ८० सत्यव्रत० वि० स्त० ८१ ॥ नवमस्कंधमें अंबरीषकृतसुदर्शनस्तव ८२ अंसुमत्कृत कपिलस्तुति ८३ ॥ दशमपूर्वार्द्धमें गर्भस्तुति ८४ वसुदेवकृतस्तव ८५ देवकीक० स्तुति ८६ यमलार्जुन० स्तव ८७ ब्रह्मस्तुति ८८ नागपत्नी० स्तु० ८९ इंद्रकृ० स्तुति ९० नारदस्तु० ९१ अक्रूरस्तुति ९२ पुनः अक्रूरस्तव ९३ उत्तरार्द्धमें मुचुकुंदस्तुति ९४ भूमि० स्तव० ९५ ज्वर ९६ रुद्रस्तुति ९७ कौरवकृतबलदेवस्तव० ९८ राजकृतस्तव ९९ बलिराज कृ० स्त० १०० श्रुतदेवस्त० १०१ बहुलाश्व० स्तव० १०२ देवस्तव १०३ ॥ एकादशमें देव० स्तव १०४ ॥ द्वादशमें मार्कंडेयस्तव १०५॥

जिला मथुरा, ग्राम गोवर्धननिवासी महाभारती–पंडित–गोवर्धनात्मजस्य आनन्दवल्लभस्य कृतिरियं परोपकाराय ।

प्रथम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	२६	२४	११	४६	८
२	३६	८	१२	२९	१६
३	४७	०	१३	५१	२०
४	३४	८	१४	४६	०
५	४१	४	१५	६४	२०
६	४०	०	१६	४१	२०
७	६०	२०	१७	४४	२०
८	५४	२४	१८	५६	१६
९	५५	०	१९	५२	४
१०	४१	२८	समाप्तम्		

जोड़ प्रथमस्कन्धको श्लोक ८८० ॥ अक्षर १४ ॥

द्वितीय स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.
१	४४	२४
२	५१	१०
३	२८	०
४	३०	१६
५	४३	०
६	५९	२४
७	८९	१६
८	२८	१६
९	५२	१२
१०	५२	०

जोड़ द्वितीयस्कन्धको श्लोक ४७० ॥ अक्षर २२ ॥

तृतीय स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	८०	०	११	४२	८	२१	६०	०	३१	५६	२४
२	३८	२८	१२	५७	०	२२	४१	२८	३२	४४	१६
३	३०	०	१३	६२	८	२३	६३	१६	३३	४०	१६
४	३७	१६	१४	५७	२८	२४	४८	४			
५	५१	१२	१५	७५	१६	२५	४७	२४			
६	४०	२८	१६	४७	८	२६	७३	०			
७	४७	८	१७	३५	१६	२७	३०	१२			
८	४५	१६	१८	३५	१६	२८	५७	१६			
९	६२	२४	१९	४४	०	२२	४६	०			
१०	३०	०	२०	५४	२४	३०	३४	१६			

॥ जोड़ तृतीयस्कन्धको श्लोक १५२२ ॥ अक्षर १२ ॥

चतुर्थ स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	६९	०	११	४१	४	२१	५४	०	३१	३१	३०
२	३६	१२	१२	५६	८	२२	७२	८			
३	३४	०	१३	५१	०	२३	४२	१६			
४	४९	१६	१४	४७	०	२४	८५	२४			
५	३२	१२	१५	२६	२०	२५	६४	२८			
६	५९	०	१६	२९	०	२६	२४	१६			
७	७९	१६	१७	४०	१	२७	३१	१६			
८	८७	१२	१८	३०	०	२८	६५	०			
९	७९	१२	१९	४३	८	२९	९३	१२			
१०	३२	८	२०	४३	२८	३०	५४	२०			

जोड़ चतुर्थस्कन्धको श्लोक १५९५ ॥ अक्षर ८ ॥

पञ्चम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	७९	२४	११	२३	१२	२१	३१	८
२	४१	२०	१२	२२	०	२२	५	१४
३	३४	०	१३	३९	६	२३	२७	१३
४	३४	०	१४	८०	२६	२४	७२	२१
५	६३	३	१५	२७	३	२५	३२	७
६	६३	२८	१६	५१	३०	२६	९४	२१
७	३०	१५	१७	५०	०			
८	५३	१८	१८	६८	८			
९	५२	२	१९	५६	०			
१०	४६	२१	२०	८३	२६			

जोड़ पञ्चमस्कन्धको श्लोक १२६१ अक्षर ६ ॥

षष्ठ स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	९	१२	११	३५	१०
२	५१	०	१२	३८	८
३	४०	२८	१३	२५	२८
४	६०	०	१४	६७	०
५	४४	०	१५	२८	२४
६	४५	१६	१६	७५	४
७	४०	८	१७	८३	०
८	४८	२६	१८	७८	१६
९	८०	०	१९	३४	४
१०	३५	२०			

जोड़ षष्ठस्कन्धको श्लोक ९१३ ॥ अक्षर १७ ॥

सप्तम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ
१	५१	८	११	३६	१६
२	६१	२०	१२	३७	१६
३	०	१२	१३	४६	१६
४	५०	०	१४	४२	१६
५	५८	१६	५	८५	०
६	३५	८			
७	५६	२४			
८	७६	२०			
९	८३	०			
१०	७४	२८			

जोड़ सप्तमस्कन्धको श्लोक ८३० ॥ अक्षर ८ ॥

अष्टम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	३४	१२	११	५१	८	२१	३६	२८
२	३९	२४	१२	५६	४	२२	४३	१२
३	४३	१६	१३	३६	०	२३	३४	२०
४	२८	१२	१४	११	०	२४	६७	४
५	५१	२८	१५	४०	१२			
६	९२	२८	१६	६३	०			
७	५७	२०	१७	३३	१			
८	५१	१५	१८	३९	०			
९	३२	१६	१९	४६	८			
१०	६१	२८	२०	४१	२४			

जोड़ अष्टमस्कन्धको श्लोक १०४४ ॥ अक्षर २२ ॥

नवम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	४२	०	११	३८	१६	२१	३७	८
२	३६	१६	१२	१६	१६	२२	४९	१६
३	३८	१६	१३	२७	०	२३	३९	१६
४	७७	२०	१४	५०	०	२४	६९	८
५	३०	४	१५	४४	१६			
६	५८	२४	१६	२७	१६			
७	२७	०	१७	१८	१६			
८	३३	२०	१८	५१	१६			
९	५०	१२	१९	२९	२८			
१०	७१	४	२०	३९	१६			

जोड़ नवमस्कन्धको

श्लोक १०१४ ॥ अक्षर ॥ १६ ॥

दशम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	७१	१२	११	६२	०	२१	३१	१३	३१	२६	२६	४१	६५	२४	५१	६२	१२	६१	४४	१३	७१	५४	२०
२	४३	१६	१२	५२	२०	२२	४१	०	३२	२४	२६	४२	४०	२४	५२	४९	८	६२	३४	१६	७२	५४	२४
३	५५	२४	१३	७३	२०	२३	५४	०	३३	४८	२०	४३	४२	१६	५३	६२	०	६३	५८	४	७३	३५	१६
४	४७	१६	१४	८१	१२	२४	३८	०	३४	३३	०	४४	५५	२०	५४	६२	१६	६४	४७	०	७४	५५	८
५	३२	२४	१५	५८	१६	२५	३४	०	३५	३५	०	४५	५१	१६	५५	४२	८	६५	३३	०	७५	४५	२४
६	४९	१६	१६	८४	८	२६	२६	२८	३६	४१	१६	४६	४९	१२	५६	४६	२४	६६	४८	२२	७६	३३	०
७	४४	६	१७	२६	०	२७	३१	१४	३७	३९	१६	४७	८३	०	५७	४३	४	६७	२८	०	७७	४१	१२
८	५९	२०	१८	३५	१६	२८	१७	१६	३८	५२	१२	४८	४३	२८	५८	५९	२४	६८	५३	८	७८	३५	०
	२७	२०	१९	१६	२४	२९	६०	१६	३९	६४	१६	४९	३१	२४	५९	५०	८	६९	५२	८	८९	३४	१६
१०	४९	१६	२०	४८	०	३०	५०	०	४०	३२	१२	५०	६४	०	६०	७४	९	७०	५४	१६	८०	४६	२८

दशमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.
८१	५४	२८
८२	६३	२४
८३	६१	२८
८४	७६	२४
८५	६४	४
८६	६२	०
८७	८३	१२
८८	४२	०
८९	७२	२०
९०	६०	१०

जोड़ दशमस्कन्धको श्लोक ४३६९ ॥ अक्षर ॥ २७ ॥

एकादशस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	२७	२४	११	५०	१६	२१	४३	१२	३१	३१	८
२	६१	१०	१२	२८	४	२२	६३	६			
३	६०	१६	१३	४६	१२	२३	६७	१२			
४	३४	१२	१४	४७	२०	२४	२९	०			
५	५८	४	१५	३६	०	२५	३६	१६			
६	६०	१२	१६	४४	२८	२६	३५	२८			
७	७६	२०	१७	५७	१२	२७	५५	०			
८	४४	२४	१८	४८	१६	२८	५१	२०			
९	३६	१६	१९	४७	१२	२९	५७	८			
१०	३७	१२	२०	३८	०	३०	५४	२८			

जोड़ एकादशस्कन्धको श्लोक ॥१४६७ ॥ अक्षर ॥ २४ ॥

द्वादशस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	४२	१६	११	५४	४
२	४४	१६	१२	७६	४
३	५२	२८	१३	२५	१६
४	४६	२८			
५	१३	१६			
६	८८	२४			
७	२५	१६			
८	५७	१६			
९	३९	२०			
१०	४२	१६			

जोड़ द्वादशस्कन्धको श्लोक ६०९ ॥ अक्षर ॥ २८ ॥

संपूर्ण श्रीमद्भागवत द्वादशस्कन्धतक श्लोक १६००८ सोलह हजार आठ श्लोक हैं और उवाच श्लोक १२६७ मिलकर १७२७५ हैं, यह संख्या किसी एक पुस्तककी है । परंतु अन्यान्य अनेक पुस्तकें संग्रह करके हमने महापरिश्रमसे पाठ पाठांतर जितने मिले वे सब मिलाये हैं, ऐसे मिलाकर बराबर १८००० संख्याका यह संपूर्ण ग्रंथ संपादन करके भाषाटीका सुधारकर छपाया है यह ग्रंथ सर्वांग परम सुन्दर और शुद्ध होनेसे वाचक लोगोंको पूर्णफल देनेवाला है ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“ श्रीवेङ्कटेश्वर ” (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष–मुंबई.

निगमकल्पतरोर्गेलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ १ ॥

सूचना

सर्वविद्वद्वर कृष्णचरणाम्बुजपरायणसे विनय है कि, संवत् १९४६ में इस महापुराण कल्पवृक्षका भारतान्तर्गत प्रथमजन्म अत्यन्त सरल सुखमय जगत्प्रसिद्ध व्रजभाषामें पदार्थमुक्तावली नामक अतिशुद्ध भाषाटीका कराई और अत्युत्तम प्राचीन-प्राचीन कविवरोंके ज्ञान भक्तिमार्गी वचनचातुरी प्रेम-प्रवाहके ५०० सुललित दृष्टांत भी सम्मिलित कराये, टीका अक्षरार्थ होनेपर भी अनेक श्रुति स्मृति पुराणके दृष्टांत देकर शंका समाधान किया गया। परीक्षासे और मान्यवर पंडितोंकी विद्वत्तासे इसकी टीका ऐसी अत्युत्तम मनोरंजन दुखभंजन हुई कि जिसके श्रवणामृतपानसे कदापि इच्छा तृप्त नहीं होती। ऐसे अनुपम अमूल्य अलभ्य रत्नका विकास होते ही ग्राहकगण आनंदपूर्वक अंगीकार कर इस निगमकल्पतरुकी छायामें विश्रांत हो भवसेतुरूपी कथामृत पानकर पुनर्वार छापनेका अवकाश दिया। इसकी दूसरी आवृत्ति संवत् १९४८ में छपाई। इस अन्तरमें इतर क्षुद्र व्यापारियोंको व्यापारकी सूझी फिर क्या था रुपयाही कमाना अभीष्ट ! झटपट अवकाश पाकर काट छाँट कागज स्याही पाठ नकल गढ़ यामिनी वामिनीकी गढ़ी बना लिया। ग्राहक जानते ही हैं कि, असलसे तुच्छ नकल भी मन विकल कर देती है सो महिमा भी लम्बे-लम्बे शब्दोंसे गाई गई, पर "क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः" इससे सावधान ! पुनः सावधान ! ! यह देखिये जिसकी बहुत दिनोंसे लोग चन्द्रचकोरके समान अपेक्षा करते थे सो तृतियावृत्ति छपकर प्रसिद्ध हो गई थी। तिस उपरांत भी भागवत-रसास्वादी सत्पुरुषोंके कथा रसपानार्थ पुनः भी छपनेका अवकाश आया इसलिये विशेषतः सज्जनलोगोंके प्रेमार्थ चतुर्थावृत्ति श्रीयुत-विद्वद्वरकृष्णकृपापात्राधिकारी नानाविधग्रंथनिर्माणनिपुणआयुर्वेदोद्धारक परमपवित्र चरित्र पंडितमण्डलीमंडित मुरादाबादनिवासी श्रीशालिग्रामजीके रसमय मधुरसुन्दर भाषाटीकासे परिष्कृत करि पुष्ट कागजमें पहलेकी अपेक्षा बड़े टाइपमें छपी थी, वह भी सब हाथोंहाथ बिक गई, फिर भी यह उसी प्रकार पंचम, षष्ठ और सप्तमावृत्ति विकनेपर अष्टमावृत्ति आदि पहलेकी अनेक आवृत्तियोंकी अपेक्षा यह दशमी नूतनावृत्ति कथा दृष्टांत और बड़ा अक्षर होनेसे बहुतही बढ़ गई है। यह अलभ्य स्वर्णसुगन्ध कल्पतरु भवसागरसेतु आनन्दमय सब प्राणिमात्रको एक-एक प्रति रखनी परमावश्यक है ॥

दोहा—एक पंक्तिकी आधि हू, ताहूकी पुनि आध। कृष्ण कथा जे नित पढ़ैं, कटैं कोटि अपराध ॥ १ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास—"श्रीवेङ्कटेश्वर (स्टीम्) मुद्रणालयाध्यक्ष—बम्बई.

प्रस्तावना

★

प्रिय पाठक वृन्द !

भारतवर्षके विद्वानोंसे यह बात छिपी नहीं है कि,संसारसागरसे पार होनेके लिये भागवत ही परमोत्तम ग्रन्थ है,जिसकी महिमासारे भारतवर्षमें छा रही है। संपूर्ण इतिहास-पुराण भागवतकी प्रशंसा करते हैं, कारण यह है कि, चारवेद, छःशास्त्र, अष्टादश पुराणका सार भागवतमें विद्यमान है। वेदके गूढ़ आशय, वेदांतका रहस्य, सांख्ययोगका सार, मीमांसाका विचार, न्यायका सिद्धांत श्रीमद्भागवतमें स्पष्टरूपसे दिखाकर सर्वोपरि भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णन की है। यह वह महापुराण है कि, जिसको निर्माण कर श्रीवेदव्यासजीका व्यग्र चित्त भी शांत हो गया, यह वही अमृत है जिसको श्रवणद्वारा पानकर राजा परीक्षित्ने अमरत्व प्राप्त किया, गोकर्णका भ्राता धुन्धुकारी इसीके श्रवण करनेसे प्रेतत्वसे मुक्त हुआ; सूतके द्वारा शौनकादिक श्रीमद्भागवतही श्रवणकर मुक्त हुए, यह क्या, लाखों जीव इसके श्रवणमात्रसे मुक्त हो गये, होते जाते हैं और होंगे। प्रतिवर्ष नगर-नगर और गाँव-गाँवमें इसका पारायण सप्ताह यज्ञ होता है और स्त्री-पुरुष रुचिके अनुसार इसे श्रवणकर अपनी मनःकामनाको प्राप्त होते हैं। शुकदेवजीके मुखसे निकली हुई भागवतरूपी अमृतकी सरिता अनन्तधारा हो जगत्को पावन कर रही है, संपूर्ण धर्म-कर्मके विचार और भगवद्भक्तिसे भरपूर यह "श्रीभागवत" श्रोतावक्ताओंका सर्वस्व है, इसीसे जगत्में भागवत महिमा अप्रतिहतरूपसे विराज रही है, चौबीसों अवतारोंकी कथा इसमें विस्तारसहित वर्णन की गई है, जिसके पाठसे मनुष्य भगवद्भक्तिका स्वरूप हो जाता है और चारों पदार्थोंकी भी इच्छा नहीं रखता विशेषकर इसमें श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद नंदनंदन मुकुन्द गोविंदके जन्मसे लेकर पश्चिमावस्था तक ऐसे मनोहर चरित्र वर्णन किये हैं, जिनके श्रवण करनेसे मनुष्योंका चित्त स्नेहमय हो जाता है, जिन श्रीकृष्णकी

लीलाका आश्रयले आजदिन ब्रजमंडल सहित भारतमंडल उनके स्वरूपाकार हो रहा है। संस्कृत प्राकृत भाषामें बड़े-बड़े कवि काव्य बनाकर जिनकी लीलाओंका वर्णन और अपनी जिह्वाको पवित्रकर गोलोकवासी हुए हैं । प्रत्येक मनुष्यके मुखसे जिन श्रीकृष्णके चरित्र मंगलकार्यमें श्रवणगोचर होते हैं उन श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान करानेवाला और उनकी निकटता प्राप्त करनेवाला यह महापुराण ही है। श्रीकृष्णके गोलोक पधारने पर उनकी मूर्तिरूप "श्रीमद्भागवत" विद्यमान है जिस प्रकार मणियोंके भीतर सूत रहकर उनकी माला बना देता है, इसी प्रकार इसके प्रत्येक पदमें भगवन्महिमा गर्भित हो इसकी महिमा विस्तार कर रही है । यह ग्रंथ जैसा सम्पूर्ण वेद शास्त्र पुराणोंका सार है उसी प्रकार बृहत् और महाकठिन भी है । इसी कारण इसके अर्थोंमें अच्छे विद्वानोंकी बुद्धि भी चकित हो जाती है, कहा भी है कि-"विद्यावतां भागवते परीक्षा"। यह विस्तृत ग्रंथ १२ स्कन्ध ३३५ अध्याय एवं १८००० (अष्टादश सहस्र) श्लोकोंमें पूर्ण हुआ है, इसकी कठिनतासे सर्व साधारणको इसका स्वाद मिलना बड़ा ही कठिन था और सप्ताहयज्ञमें ही इसका श्रवण होता था और जिनको अधिक विद्या नहीं थी, वे पंडित इसके बांचनेका साहस नहीं करते थे अतः इसके स्वादसे बहुधा वंचित रहते थे। इसी कारण चार पदार्थके साधक इस श्रीमद्भागवतको सर्वसाधारणके समझनेके निमित्त जगद्विख्यात उपकारपरायण सज्जनमनरंजन गुणग्राहक सद्ग्रन्थप्रचारक वैश्यवंश दिवाकर सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयने विक्रम संवत् १९४६ में इस ग्रन्थको वृन्दावननिवासी सुप्रसिद्ध विद्वद्वर श्रीमन्नारायणशास्त्रीजीसे परमप्रिय सुमधुर ब्रजभाषामें "पदार्थमुक्तावली" नामक हिन्दीटीका (जिस सरल सुखमय ब्रजभाषा, ब्रजवल्लभी, ब्रजमनरंजनी, ब्रजवचनामृतकी देवता भी अपेक्षा करते) वही सुप्रसिद्ध पंडित गणेशीलालकी सहायतासे शुद्ध कराकर दो प्रकारसे यंत्रालयमें मुद्रित कराई, जिसमें एकमें तो मूल और भाषाटीका, दूसरी केवल भाषा-इसमें श्रीभागवतके प्रत्येक अध्यायके आदि अन्तका श्लोक लिखकर शेष श्लोकांकसहित केवल भाषा ही छापकर उसका यथार्थ नाम "शुकसागर" रक्खा । वास्तवमें यह कार्य भारतवर्षमें प्रथम ही हुआ इससे पूर्व देशमें भाषामें ऐसी कोई टीका निर्मित नहीं हुई थी । छपते ही यह पुस्तक हाथोंहाथ महात्माओंने मँगाई और

ऐसी मनभाई कि, थोड़े महीनोंके पश्चात् ही यंत्रालयमें एक भी पुस्तक नहीं रही, इस कारण इसके छापनेकी आवश्यकता समझकर यंत्रालयाधिपतिने इसके शोधनेका भार विद्यावारिधि श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्र मुरादाबाद निवासी को समर्पण किया। उस समय उन्होंने इसमहापुराणमें कथा कहनेवालोंके उपयोगी बहुतसे दृष्टांत मिलाकर और शोधकर इसे श्री विद्यावारिधिजीने यंत्रालयमें संवत् १९४८ में भेज दिया परन्तु छापनेकीही देर थी कि, प्रेमी महाशयोंके पत्र पर पत्र आने लगे और ग्रंथ यंत्रालयमें न रहनेके कारण तृतीयावृत्ति छापनेकी आवश्यकता हुई। अबकी बार इस ग्रंथमें बहुतसे कथानक जो कि परिश्रमसे प्राप्त हुए हैं जो कि ब्रजवासी अपनी कथाओंमें कहा करते हैं, पंचाध्यायीकी विशेष वार्त्ता दूसरे ग्रंथों से संग्रह की हुई यह सब दशमस्कंधमें यथास्थानमें टिप्पणी करके मिश्रजीने लगा दिये हैं, दृष्टांत भी बहुत कथाके उपयोगी लिख दिये हैं, प्रत्येक श्लोकके अर्थ और आशयको श्रीधरीटीकाके अनुसार विचारकर बहुत स्पष्टतासे खोल दिया है जिससे पाठ करनेवालोंको किसी प्रकारकी भ्रांति न हो और शंका समाधान भी जिनका भागवतसे संबन्ध है उचित रीतिसे यथयोग्य अपने स्थानोंपर लगा दिये गये, तब तो यह तृतीयावृत्ति भी भक्तिरसिकजनोंकी अत्यन्त उत्कण्ठासे थोड़ेही समयमें बिक गई ऐसी इस पुस्तककी तीन आवृत्तियां उठ गयीं तो भी भक्तिमान् सद्गृहस्थोंकी इस ग्रंथके संग्रहमें उत्कण्ठा अधिकतर रही। इस वास्ते—और भी इस ग्रंथमें वाचकजनोंकी विशेष सुलभताके अर्थ भाषा सौंदर्य आनेकी आवश्यकता थी सो पूर्ण करनेके लिये मुझे कहा तब मैंने—पूर्व आवृत्तियोंमें पंडितजनोंके द्वारा की हुई सब व्यवस्थाओंको विशेष रीतिसे अलंकृत कर भाषासौंदर्य पूर्णरीतिसे लानेका प्रयत्न किया बहुत कहनेसे क्या है, शब्दशास्त्रकी गंभीरताको विद्वान् जानते हैं, उसका जितना खोज किया जाय उतना ही सूक्ष्म अर्थ दीखता है, सुवर्ण को जितना आगमें धरा जाय उतनाही निखरता है, इसी प्रकार चतुर्थावृत्तिमें भी बहुत सावधानीसे इसके अर्थ और शुद्धतापर ध्यान देकर यंत्रित किया गया है, पुनः पंचम षष्ठ सप्तम अष्टम और नवमावृत्तिके पुस्तक न रहनेसे अब दशमावृत्ति छपी है, देखनेसे विदित हो जायगा कि अबकी बार किस

प्रकार इस महापुराणको अलंकृत किया है आपके प्रसन्न होनेपर ही परिश्रमके सफल होने की आशा है, यद्यपि यथाशक्ति इसके शोधनादिमें सावधानी की गई है तथापि कहीं न्यूनाधिक हो गया हो तो उसमें सज्जन महाशय हंसके समान गुणग्राही होंगे, कारण कि, सर्वज्ञ और निर्भ्रांत तो केवल एक परमेश्वर ही है ।

सज्जनोंका प्रेमाभिलाषी–

शालिग्राम, मुरादाबाद–(पश्चिमोत्तर प्र०)

—❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋—

श्रीवैकुण्ठविहारिणे नमः

अथ श्रीमद्भागवतभाषाटीकाविषयानुक्रमणिकाप्रारम्भः

अथ चतुर्थस्कन्ध

अथ अष्टमस्कन्ध

अथ नवमस्कन्ध

अथ दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध

अध्यायाः विषयाः

अध्यायाः विषयाः

अध्यायाः विषयाः

अथ दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध

अथ एकादशस्कन्ध

अथ द्वादशस्कन्ध

इति श्रीमद्भागवत भाषाटीकाविषयानुक्रमणिका समाप्ता

श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण

वरियानेष ते प्रश्नः कृतो लोक हितं नृप । आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते प्रथमस्कन्धप्रारंभः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ सोरठा-ऋद्धिसिद्धिदातार, सिद्धिसदन वारणवदन । सुमरौं वारंवार, मदनकदनके लालको ॥ १ ॥ गणपति कृपा निधान, ज्ञानखानि आँनदभवन । देहु मोहिं वरदान, वरणौं टीकाभागवत ॥ २ ॥ जय शिव आँनदकन्द, भूतनाथ भवभयहरण । भक्ति विषय निर्द्वन्द्व गौरवरण मंगलकरण ॥ ३ ॥ हे ब्रजचन्द्र मुकुन्द, ब्रजभूषण दूषणहरण । काटहु भवभयफंद, चरणशरण ली आनकर ॥ ४ ॥ जय जय जय जगदीश, सेवत शेष महेश अज । महिमा अमित अभेव, वेद भेद जानत नहीं ॥ ५ ॥ देहु मोहिं वरदान, राधावर यह वर सदा । प्रेम भरी मुसकान, नित चितमें खटकत रहै ॥६॥ मुहिं चहिये कछु नाहिं, और वस्तु प्रभु जक्तकी । बसी रहै मन माहिं, यह बाँकी झाँकी सदा ॥७॥ लिए लकुटिया हाथ, गायनके पीछे फिरत । ग्वालबाल लिए साथ, मोरमुकुट शिरपर धरे॥८॥ कर मुरली उरमाल, शीशमुकुट कटिपीतपट । या छबिसों नँदलाल, बसहु हृदय मम निशिदिवस ॥ ९ ॥ गुरुपदरज धर शीश, कहूँ भागवतकी कथा । जो शुकदेव मुनीश, कही परीक्षितनृपतिसों॥१०॥ श्री भगवत्कलावतार श्रीवेदव्यासजी, एक समय अनेक पुराण, और अनेक शास्त्र तथा महाभारतादिक प्रबन्ध रच चुकने पर जब उनके चित्तको शांति न हुई और उन-उन शास्त्रोंके कहे हुए सिद्धान्तोंसे पूर्णतया सन्तुष्ट न हुये, तब भगवत्के अवतार श्रीनारदमुनिके उपदेशसे उन्होंने श्रीमद्भागवत शास्त्र रचा, जिसमें श्रीभगवत्के गुण वर्णन किये । उसके प्रारम्भमें विघ्नकी निवृत्ति और आनन्दकी सिद्धिके लिए श्रीभागवतके इष्टदेवका स्मरण रूप मंगलाचरण करते हैं ॥ श्रीभगवान् व्यासजी ग्रंथके मंगलाचरणमें परमेश्वरका स्वरूप लक्षणा और तटस्थ लक्षणासे वर्णन करते हैं । प्रथम स्वरूप लक्षणाको कहते हैं—जो परमेश्वर त्रिलोकीमें एकरस सत्यस्वरूप हैं, जिनमें मायाके सत, रज, तम तीन गुण अपने (पञ्चभूत इंद्रिय देवता रूप प्रपञ्च) कार्य सहित सर्वत्र मिथ्या भासते हैं, जिस अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे

---

१. प्रश्न—कवियोंने छोटे-छोटे ग्रंथ बनाये और बड़े ग्रंथ भी बनाये परन्तु मंगलाचरणके दश-दश, पांच-पांच श्लोक सबने कहे और व्यासजीने भी छोटे छोटे ग्रंथोंमें मंगलाचरणके श्लोक बनाये और बड़े ग्रंथोंमें तो देवी-देवता सब ही मनाये, परन्तु श्रीमद्भागवत पुराणके आदिमें गणेशकी वा गुरुकी बंदनामें एक श्लोक भी नहीं लिखा । केवल, विना प्रीति ब्रह्मका ध्यान व्यासने दो श्लोकोंमें किया जो ब्रह्मका ध्यान भी दश–बीश श्लोकमें प्रीतिसहित करते तो हमारे मनमें ऐसी शंका नहीं होती । अब इस हमारी भारी शंकाको निवारण करो कि मंगलाचरण न होनेका कारण क्या है ?

उत्तर—जब बड़े बुद्धिमान् व्यासजीने अठारह पुराण, अनेक शास्त्र और इतिहास बनाये, परन्तु उनके मनको सन्तोष न हुआ । तब भगवानके चरित्र गानेके लिये नारद मुनिने व्यासजीको उपदेश किया । उस समय हर्षरूप समुद्रमें व्यासजी मग्न हो गये । जैसे कामी पुरुष सुन्दर स्त्रीको पाकर सुखी होता है, वैसे ही नारदमुनिकी आज्ञा पाकर व्यासजी सुखी हुए और श्रीमद्भागवतके बनानेकी इतनी शीघ्रता की कि, मङ्गलाचरणका बनाना ही भूल गये । आतुरतामें केवल एक श्लोक ब्रह्मके ध्यानमें लिख दिया ॥

असत्य प्रपञ्च सत्यके समान दृष्टि आता है, इस कारण वह सब सत्य है। जैसे किसीको रात्रिके समय ऊसर भूमिमें जलका भ्रम होता है, और दिनमें मरु मरीचिकामें जल दृष्टि आता है, जैसे कांचमें जलका भ्रम होता है, ये सब भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे दिखलाई देते हैं। ऐसे ही अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे मिथ्या भी प्रपञ्च सत्यसम दीखता है अथवा ब्रह्मकी ही पारमार्थिकी सत्यता कथन करनेके हेतु प्रपञ्चको मिथ्याभाव वर्णन किया है "जिस ब्रह्ममें यह प्रपञ्च सर्वकालमें असत्य है कभी सत् नहीं है" इसके कहनेसे ब्रह्ममें प्रपञ्च रूपी उपाधिका सम्बन्ध कहा है, उसकी निवृत्ति करते हैं, जिसने अपने तेजसे सर्व कालमें मायाके लक्षण कपट दूर किये हैं। अन्धकारमें जो रस्सी पड़ी हो और उसमें किसीको सर्प प्रतीत हुआ पर वास्तवमें उस सर्प और रस्सीका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसे ही अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञान अवस्थामें जो प्रपञ्च प्रतीत होता है उसका ज्ञान–अवस्थामें कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उस परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं। अब तटस्थ लक्षणासे कहते हैं–जो इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय करता है, जो घटपटादिक पदार्थोंसे सत्यरूपमें व्यापक और अकार्य अथवा प्रपञ्चका सत्तारूप

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ अथ श्रीमद्भागवतं प्रारभ्यते ॥

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः ॥
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

कारण है, जैसे घटका कारण मृत्तिका और कुण्डलादिक आभूषणका कारण सुवर्ण है, अथवा ब्रह्मका विश्व, मृत्तिकाका घट, सुवर्णका कुण्डल कार्य है, जो जिसका कार्य है वह उससे भिन्न नहीं। श्रुतिमें, लिखा है–"यतो वेति" जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न हुए हैं, जिलाये जाते हैं और प्रलयकालमें जिसमें समाते हैं और मुक्तिकालमें जिसमें प्रविष्ट होते हैं और स्मृतिमें भी लिखा है–"यतः सर्वाणीति" युगके आदिमें जिस ब्रह्मसे सब जीव उत्पन्न होते हैं और युगके अन्तमें सब उसीमें लय हो जाते हैं, इत्यादि। यदि कोई कहे कि जगत्का कारण तो जड़ माया है उसका ध्यान करते हो, तो कहते हैं, हम सर्वज्ञ स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, जिसने सबसे पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न किया, उनके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया जो सत्यरूप है, जिसकी सत्यतासे असत्य प्रपञ्च सत्य-सा दीखता है, जो मायारूपी कपटजालसे दूर है, उस परमेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

इस श्रीमद्भागवतमें ईश्वराराधनका वह धर्म वर्णन करते हैं,जिसमें मोक्षपर्यन्त फल चाहनारूप कपटका लेश नहीं, इस कारण यह कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड विषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है, अब अधिकारियोंकी श्रेष्ठता कहते हैं, जो मत्सररहित कृपालु सन्त हैं। यहां कर्मकाण्डकी श्रेष्ठता कही, उनको परमार्थरूप वस्तु (यहां द्रव्य गुणादिक; वास्तव परमार्थ वस्तु नहीं कही है) जानने योग्य है अथवा वस्तु जो ब्रह्म उसका अंश जीव है और वस्तुकी शक्ति माया है, ये तीनों ब्रह्मरूप हैं, भिन्न नहीं हैं। ये विना यत्न ही जाननेके योग्य हैं, क्योंकि परम सुखदायक और अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापोंको जड़से उखाड़नेवाला है,ज्ञानकाण्डकी श्रेष्ठता दिखाकर अब कर्त्ताकी श्रेष्ठता दिखाते हैं। महामुनि नारायणने यह प्रथम संक्षेपसे रची है (देवता काण्डसे श्रेष्ठता दिखाते हैं) और शास्त्रोंके साधनसे ईश्वरकी स्थिति शीघ्र हृदयमें नहीं होती और इसके श्रवणमात्रसे ही ईश्वरकी स्थिति हृदयमें होती है। इसलिये परमादर करके सेवनीय है ॥ २ ॥ जब परमादर सत्कारसे सेवन योग्य है तो यह कहते हैं कि "निगमेति" अखिलकामनादायक वेदरूपी कल्पवृक्षका फल श्रीभागवत है (जो मुझे स्वर्गसे नारदजीके द्वारा

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

प्राप्त हुआ) मैंने अपने पुत्र शुकदेवजीके मुखमें धरा, शुकदेवजीके मुखसे निर्गत होनेसे अमृतके समान मीठे रससे युक्त होगया। "लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जिस फलमें तोतेकी चोंच लगती है वह फल मीठा होता है" यहाँ शुकरूप श्रीव्यासनन्दन शुकदेवकी चोंच लगनेसे उनके शिष्यरूप पत्तोंपर लुढ़कता हुआ धीरे-धीरे पृथ्वीमें प्राप्त हुआ। आशय यह है, कि इतने ऊंचेसे गिरा और फूटा नहीं। रस वही है कि जिस रसके प्राप्त होनेसे जीवको परमानन्द प्राप्त हो। हे रसिकजनो ! (रसजाननेवाले !) तुम लोगोंका धन्य भाग्य है ! जो ऐसा अमृतरूपी फल पृथ्वीपर प्राप्त हुआ। यह अलभ्य लाभकी उक्ति है, इस कारण इस भागवत फलको वारंवार पियो, यह फल रसरूपी है,इसमें छिलका और गुठली किंचिन्मात्र भी नहीं है, केवल रस ही रस भरा है इसलिये पीनेको कहा इस कारण श्रीमद्भागवत अमृतरूपी रसका पान जीवन्मुक्त अवस्थामें भी करना उचित है। स्वर्गादिक सुखके समान त्यागना नहीं है, सेवन करनेही योग्य है ॥ ३ ॥

इन तीन श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतकी उत्तमता, श्रेष्ठता और गौरव दिखाकर अब सब शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतके इष्ट देवका स्मरण कर इस ग्रन्थको प्रारंभ करता हूँ। ब्रह्माजीका मनोरथ चक्र कुंठित धार होकर गिरा,उसी तीर्थका नाम नैमिष है, यह कथा वायुपुराणमें है—"एक समय बहुतसे ऋषि लोग ब्रह्माजीके पास गये और कहा कि, हे ब्रह्मन्! हमको तपके योग्य कोई उत्तम तीर्थ बताओ, कौनसा तीर्थ अत्यन्त पावन और पवित्र है? ऋषिलोगोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, हे ऋषिगण! मैं मनोमय चक्र बनाकर छोड़ता हूँ तुम सब इसके पीछे-पीछे चले जाओ, जिस स्थानपर इस चक्रकी धार कुंठित होकर गिर पड़े,वह भूमि तपके योग्य जान लेना। यह कहकर ब्रह्माजीने मनोमय चक्र छोड़ा, उसका प्रकाश मार्तण्डके सदृश सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें फैल गया। वह चक्र जिस स्थान पर गिरा, उस स्थानका नाम उस दिनसे नैमिषारण्य विख्यात हुआ"। वाराहपुराणमें ऐसा लिखा है कि—"किसी समय गौरवमुख ऋषिसे भगवानने कहा था कि हे गौरवमुख!

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुत हुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

इस वनमें मैंने निमिषमात्र कालमें अनेक दानवोंकी सेनाका संहार किया है, इसलिये इस वनका नाम नैमिषारण्य हुआ।"ब्राह्मणोंको तपस्याके लिये यह भूमि परमोत्तम है। एक समय शौनकादि ८८००० अट्ठासी सहस्र ऋषियोंने स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु नैमिषारण्य क्षेत्रमें १०००० दशसहस्र वर्षतक यज्ञ करनेका संकल्प किया ॥४॥ एक दिन मुनि प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया कर जब नैमित्तिक अग्निहोत्र कर चुके, उसी समय व्यासजीके परम कृपापात्र सूतजी आ पहुँचे।तब ऋषियोंने सूतजीको देख ब्रह्मासन बिछा दिया। सूतजी सब ऋषिगणको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे और परस्पर कुशल-क्षेम बूझ चुके तब ऋषिलोग सूतजीसे बोले ॥ ५ ॥ कि हे सूतजी! हेनिष्पाप! सर्व शास्त्र, पुराण, इतिहास तुमने व्यासजी महाराजसे पढ़े हैं और देखे हैं ॥६॥ और ज्ञानियोंमें जो शिरोमणि श्रीव्यासजी महाराज जिन-जिन शास्त्रोंको जानते हैं और सगुण-निर्गुण ब्रह्मके उपासक और भी जिन-जिन शास्त्रोंको जानते हैं ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! हे सूतजी ! उन सब शास्त्रोंको गुरुकी कृपासे तुम यथार्थ जानते हो । क्योंकि निष्कपट प्रेमी शिष्यसे गुरु गुप्त पदार्थको भी प्रकट कर देते हैं ॥ ८ ॥ हे आयुष्मन् ! उन सब शास्त्रोंके सिद्धांतको निश्चय कर सरल रीतिसे हमको उपदेश करो, जिस सिद्धांतको जानकर मुमुक्षु जीव सुगमतासे साधन कर मोक्षके भागी हों ॥९॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयु ही अल्प है, दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचवें रोगग्रस्त हैं ॥१०॥ हे सूतजी ! बहुतसे शास्त्रोंकेसुननेसेही फलकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि विभागपूर्वक सुननेके योग्य सैकड़ों शास्त्र हैं; इस कारण हे साधो ! सब साधनोंमें सारभूत जो सिद्धांत हो उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करके हम लोगोंको

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्रतत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतां पतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गाऽनुवर्णितुम् ॥ यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥१४॥यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया॥१५॥

उपदेश करो । जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत हो (यह शौनकका प्रश्न हुआ) ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम जानते हो कि भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किस कार्यको करनेके लिये हुये थे ? ॥१२॥ हे सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होता है, उनके चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ पराधीन जीव भी जिनके नाम स्मरण करके संसारके बंधन से छूट कर तुरंत मुक्ति पाते हैं और जिनसे भय भी भयभीत है ॥१४॥ उन भगवानके चरणारविंदोंके आश्रयी शांतमार्गमें निपुण मुनि

संगतमात्रसे ही जीवको पवित्र कर देते हैं और गंगाजीका जल तो बहुत दिनों सेवा करो तब पवित्र करता है ॥१५॥ साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहलाये। उन भगवानके कलिमलनाशक यशको अन्तःकरणकी शुद्धि चाहने वाला कौन नहीं सुनेगा ? (यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ)॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवानके उदार कर्म गाये, उन गुणोंको सुननेकी श्रद्धा हम रखते हैं, कृपा करके हमें सुनाओ; जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्ति धारण करते हैं? (यहतीसरा प्रश्न समाप्त हुआ) ॥१७॥ हे बुद्धिमन् ! जो परमेश्वर अपनी माया द्वारा यथेष्ट लीला–अवतारोंको धारण करते हैं, उनकी मनोहर कथा कृपा करके हमें सुनाओ ॥ १८ ॥ हे सूतजी ! उन परमेश्वरकी महिमा और उनके पराक्रमोंको सुनते-सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवानका यश पद-पद पर स्वादसे अधिक स्वादिष्ट लगता

को वा भगवतस्तस्य पुण्य श्लोकेड्यकर्मणः॥शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥ तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादुस्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥२१॥ त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥

है, भगवत्-यश अनेक प्रकारके स्वादसे पूरित है (यह चौथा प्रश्न हुआ) ॥१९॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनने गोवर्धनोद्धारणादिक जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्यरूपमें किये वह कहो ॥ २० ॥ महाघोर कलियुगको आता जानकर उसके डरसे बैकुण्ठके जानेकी इच्छा करके हम इस नैमिषारण्य वैष्णव क्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्प कर श्रीभगवानके गुणानुवाद सुननेको बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपका दर्शन भगवत्‌की कृपासे ही हमको हुआ है, क्योंकि अति धैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोड़नेवाले महाकराल–कलिकालरूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई, उसी समय आपका दर्शन हुआ। जैसे समुद्र पार करनेको जहाजसहित मल्लाह आजाय (यह पांचवां प्रश्न समाप्त हुआ) ॥ २२ ॥

धर्मके कवचवत् रक्षकब्रह्मण्य योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने–निज परमधामको सिधारे तब धर्म किसकीशरणमें रहा? (यह छठा प्रश्न समाप्त हुआ ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नैमिषारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, शुक वन कीन्ह प्रवेश । जैसे आये निज भवन, नारदके उपदेश ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, शौनकादिक ऋषियोंके प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा उसके वचनकी प्रसंशा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि जो जन्म लेते ही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुल हो पुत्र ! पुत्र ! पुकारते उनके पीछे

ब्रूहि योगेश्वरेकृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिल श्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽधम् ॥ संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

हुए, तब पिताका मोह दूर करनेको वृक्षरूप बनकर उत्तर दिया और उनका स्नेह दूर किया । अतः जो सब जीवोंके हृदयमें योगबलसे प्रवेश किये हैं, ऐसे शुकदेवजीको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्म विद्याका साक्षात् दीपक ऐसा गोप्य पुराण संसारको तरनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंपर कृपा करके जिन शुकदेवजीने कहा है, उन व्यासपुत्रकी हम शरण हैं ॥ ३ ॥

---

१. शंका–प्रथमस्कन्धके पहले अध्यायके आरम्भमें 'व्यास उवाच' क्यों नहीं लिखा, और दूसरे अध्यायके प्रारंम्भमें 'व्यास उवाच' क्यों लिखा ?
उत्तर–व्यासजीने बड़े हर्षसे श्रीमद्भागवत्के बनानेका प्रारंभ किया, परन्तु शीघ्रतामें अपने नामके लिखनेका ध्यान नहीं रहा, पीछे जब व्यासको ध्यान आया तो दूसरे अध्यायके आदिमें अपना नाम 'व्यास उवाच' लिखा ।

नारायण, नरोत्तम, नर, देवी, सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करके जयरूप ग्रन्थका वर्णन करता हूँ ॥४॥ हे मुनियो ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, सब लोकका मंगलदायक श्रीकृष्णचन्द्र व्रजनायकका जो वृत्तान्त पूछा, यह सब शास्त्रोंका सार है और इस असार संसारसे उद्धार करनेवाला है और आत्माको प्रसन्न करता है ॥ ५ ॥ धर्म दो प्रकारका है, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग । स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्म है, प्रवृत्तिमार्ग है और श्रवण, आदर आदिक जो लक्षणा भक्ति है, वह निवृत्तिमार्ग है, वह मुक्तिदायक है, वही पुरुषोंका परमधर्म है जिससे नारायणमें फलरहित, विघ्नरहित भक्ति हो, उससे जीवात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥ वासुदेव

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा संप्रसीदति ॥ ५ ॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥

भगवानमें भक्तियोग करे तो शीघ्र उपनिषदका ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ अच्छे अनुष्ठानपूर्वक किया हुआ धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवानकी कथा में जो प्रीति न कराये तो वह केवल श्रम ही है ॥८॥ मोक्ष पर्यन्त धर्मका फल प्राप्त होनेसे प्रयोजन नहीं है और धर्मके योग्य धन व्यय करना उसका फल काम लाभके लिये नहीं है, धन धर्मका फल मोक्ष है ॥ ९ ॥ कामका विषय भोगकर इंद्रियोंको प्रीति लाभ नहीं होता; इससे जब तक जीवित रहे, तबतक इस तत्त्वके जाननेकी इच्छा करता रहे; कर्मका फल स्वर्गादि नहीं है; मोक्षप्राप्ति फल है ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्ता जिसे अद्वितीय ज्ञान कहते हैं; उसीको उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, परमात्मा कहते हैं, भगवान् कहते हैं ॥ ११ ॥

मुनिजन उस ब्रह्ममें ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति, श्रद्धासे वेदान्त सुनकर आत्मामें आत्माका दर्शन करते हैं ॥ १२ ॥ हे ऋषियो ! इस वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धि है कि परमेश्वरको प्रसन्न करना यही मनुष्योंके योग्य है ॥१३॥ इस कारण एकाग्र मनसे भगवान सात्वतपतिका श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन करना योग्य है ॥ १४ ॥ जिस भगवानका ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान पंडित खण्डन करते हैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करेगा ? ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! वासुदेव भगवानकी कथामें सुननेवाले श्रद्धालुकी रुचि, महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थकी सेवासे होती है ॥१६॥ सत्य पुरुषोंके मित्र, पुण्यरूप, श्रवण,

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्विज श्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिहरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्याऽसिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ॥ छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्से-वया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ ॥ १८ ॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं प्रसन्न मनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥ २० ॥

कीर्तन करने योग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वासकर सब अमंगल नाश करते हैं ॥ १७ ॥ जब प्रतिदिन भगवानकी सेवा करनेसे अमंगल नष्ट हो गये; तब भगवान वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्काम भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ तब रज-तम-भाव, कामादि; लोभादिकसे जिनका मन बिंधा नहीं; उनका मन सत्त्वगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होता है ॥ १९ ॥ भगवानके भक्तियोगसे जिसका मन प्रसन्न है उसको भगवानके तत्त्वका ज्ञान मुक्तसंग होनेसे होता है ॥ २० ॥

जीव जब अपने ही रूपमें परमात्माका दर्शन करता है तब उसके हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है और सब संशय मिट जाते हैं, सब कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥२१॥ इस कारण सज्जन पुरुष मनको शुद्ध करनेवाली भक्ति, नित्य वासुदेव भगवानमें करते हैं ॥ २२ ॥ सत्त्व, रज, तम, ये तीनों मायाके गुण हैं; इन तीनों गुणोंसे मिला हुआ परमपुरुष इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, नाशके लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यह संज्ञा धारण करता है; परन्तु इन तीनोंमें कल्याणके और शुभफलके दाता वासुदेव ही हैं ॥२३॥ पृथ्वीके विकारसे काठमें धुआं होता है; जिससे वेदत्रयी प्रतिपाद्यकर्म साधक अग्नि होता है; इसी प्रकार तमसे रज, रजसे सत्त्वगुण बढ़कर ब्रह्मका दर्शन होता है ॥ २४॥ इस

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम् ॥ २२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३ ॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥ २६ रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादी-ञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥

कारण पहले विशुद्धसत्त्वमूर्ति इन्द्रियोंसे परे भगवानको कल्याणके हेतु मुनीश्वर लोग भजते थे, अब भी जो उनको इस प्रकार भजते हैं, वे जीव इस संसारमें परमानन्दको पाते हैं ॥ २५ ॥ इस कारण मुक्तिके चाहनेवाले घोररूप भूतपतियों को त्याग कर, निन्दाको छोड़ शांतरूप नारायणकी कलाको भजते हैं ॥ २६ ॥ राजसी, तामसी स्वभाववाले, और सामान्य शीलवाले पितर, भूत, प्रेत, प्रजाके अधी-श्वरोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य, पुत्रके लिए पूजते हैं ॥ २७ ॥ सब शास्त्रोंका सार यही है कि मोक्षके लिये मोक्षदाता वासुदेवका भजन करो। वेद

भी वासुदेवका ही वर्णन करते हैं और यज्ञ भी वासुदेवको कहते हैं, योग भी वासुदेवको कहते हैं, सब क्रियायें वासुदेवका प्रतिपादन करती हैं ॥२८॥ ज्ञान भी वासुदेवको कहते हैं, तप भी वासुदेवको कहते हैं, सब धर्म वासुदेवका ही वर्णन करते हैं, गति सब वासुदेवको ही कहते हैं ॥२९॥ उस भगवानने अपनी मायासे पहले इस विश्वको रचा, सत्-असत् रूप गुणमयी मायासे आप समर्थ हैं ॥३०॥ उस मायाके गुणोंमें गुणवानकी भाँति विज्ञानसे अधिक बढ़कर भीतर प्रवेश कर प्रकाश करते हैं ॥३१॥ जैसे अपनी उत्पत्ति स्थान काष्ठमें अग्निदेव अनेक भाँतिसे प्रकाश करते हैं, ऐसे ही विश्वात्मा पुरुष सब भूतोंमें नाना रूपसे प्रकाश करता है ॥ ३२ ॥ वह परमेश्वर गुणमय भूत सूक्ष्म इन्द्रिय आत्माके

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥३१॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥३३॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥ सूत उवाच ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः॥संभूतषोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥

भावसे अपने रचे हुए पंच भूतोंमें उन गुणोंको भोगते हैं॥३३॥ वह वासुदेव भगवान जगत्कर्ता और संसारका सत्त्वगुणसे पालन करते हैं। देव, पक्षी, मनुष्य आदिमें लीला अवतार धारण करते हैं ॥ ३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां प्रथमस्कंधे भगवद्गुणानुवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ दोहा—परब्रह्म अवतार जो, धरे चार अरु बीस। सो बरणों अब चरित सब, सुनिये कथा ऋषीश॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक

शंका—सनकादिकोंने सूतजीसे श्रीकृष्णके अवतारकी कथा पूछी थी। सूतजीने श्रीकृष्णके अवतारकी कथाको छोड़कर आदिसे भगवान्के सब अवतारोंकी कथा क्यों वर्णन की ? बड़े संदेह की बात है ?

उत्तर—श्रीकृष्णके चरित्र दो प्रकारके संसारमें दीख पड़ता है। सत्संग करनेवाले मनुष्य तो श्रीकृष्णके चरित्रको मोक्षरूप मानेंगे और मूर्ख लोग श्रीकृष्णके चरित्रको विषयका समुद्र रूप मानेंगे और युग-युगमें श्रीकृष्णका चरित्र बहुत विस्तारसे लिखा है। यह विचार किया कि सनकादिक तो परमहंस हैं श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनके मोक्ष रूप मानेंगे, परंतु पहले श्रीकृष्ण चरित्रको मूर्खलोग सुनेंगे तो वे मूर्ख लोग उनको मोक्षरूप नहीं समझेंगे, उसको जार सुख मानकर श्रीकृष्ण की नाईं पर स्त्रियोंसे क्रीडा करेंगे और रौरवनरकमें पड़ेंगे, पहले श्रीकृष्णका अमृतरूप चरित्र जो वर्णन करेंगे, तो मूर्खलोग कृष्णके चरित्ररूप अमृतको—अमृत नहीं जानेंगे विषयरूपी समुद्र समझकर उसमें डूब मरेंगे। और जो पहले और अवतारोंके चरित्र वर्णन करेंगे तो उन चरित्रोंको धीरे-धीरे सुनकर मूर्ख भी ज्ञानी हो जायेंगे और पीछेसे श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनेंगे तो भ्रम नहीं करेंगे, मोक्षरूप मानेंगे, इसलिए प्रथम श्रीकृष्णका चरित्र सूतजीने वर्णन नहीं किया।

ऋषि ! इस अध्यायमें चौबीस अवतारोंकी कथा है । प्रथम पुरुष अवतार हुआ, भगवानने महत्तत्त्व आदि पुरुषरूप धारण किया । संसार रचनेकी इच्छा कर सोलह कलाके रूपसे अवतार लिया ॥ १ ॥ जब जलशायी नारायणने योगनिद्रा विस्तारी, उस समय श्रीनारायणकी नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे विश्व रचनेवालोंके पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ जिनके अंगसे जगत्का विस्तार हुआ है, वह भगवानका विशुद्ध तत्त्व महाबलिष्ठरूप है ॥ ३ ॥ जिनके असंख्य चरण, जंघा, भुजा, मुख अद्भुत हैं । और जिसमें असंख्य मस्तक, श्रवण, नेत्र, नासिका हैं; असंख्य शिर, भूषण, वस्त्र, कुण्डल विराज रहे हैं, ऐसे स्वरूपका ज्ञाननेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं ॥ ४ ॥ यह आदिनारायण सब

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥ यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतोरूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यन्त्यहो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ स एव प्रथमो देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायाऽस्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मिणां यतः ॥ ८ ॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

अवतारोंका बीज अव्यय है । सब कार्य अन्त समय इसीमें प्रवेश करते हैं, जिसके अंश ब्रह्माजी हैं, जिसके अंशसे मरीचि आदिक देव, पशु, पक्षी, मनुष्यादि रचे जाते हैं ॥ ५ ॥ प्रथम सनत्कुमार अवतार श्रीनारायणने लिया, उनका चरित्र वर्णन करते हैं, वे प्रथम देव कुमार हुए। ब्राह्मण होकर भी अति अखण्ड कठिन तप कर ब्रह्मचर्य व्रत करते रहे॥६॥दूसरी बार वाराह अवतार धारण कर रसातल गयी हुई पृथ्वी को उठा लाये, इस विश्वकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेश वाराह जी हुए॥७॥तीसरी बार भगवान् नारदजी हुए,ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मोंके बन्धसे छूट गये, जिन्होंने वैष्णवोंके लिये पंचरात्र तंत्र कहा ॥८॥ चौथी बार धर्मकी कलानाम स्त्रीके उदरसे नरनारायण नामसे विख्यात ऋषि हुये

और संसारके जीवोंको दिखानेके लिए बदरीकेदारमें जाकर तप किया ॥९॥ पांचवीं बार कपिलदेव अवतार धारण कर सिद्धेश कपिल नाम होकर बहुत दिनोंसे जो तत्त्वसमूहोंका ज्ञान नष्ट हो गया था, उसके निश्चय करनेको सांख्य शास्त्र बनाकर आसुरि ब्राह्मणको उपदेश किया और अपनी माता को ज्ञान दिया ॥ १० ॥ छठा, दत्तात्रेय अवतार अत्रिमुनिके पुत्र हुये और अनसूयाको प्रसन्न किया और राजा अलर्क और प्रहलाद भक्तको आत्मविद्या पढ़ाई॥११॥सातवां,यज्ञ अवतार हुआ, रुचि प्रजापतिकी आकूति नामक स्त्रीके उदरसे यज्ञ भगवानने जन्म लिया, यामानाम देवगणसमेत स्वयंभुवमन्वन्तरकी रक्षा की ॥१२॥ आठवीं बार, ऋषभदेवजीका अवतार हुआ। नाभि नामराजाकी मरुदेवी नाम इन्द्रकी कन्यासे प्रकट हुए ।सब आश्रम जिसको नमस्कार करते थे,उन्होंने धीर पुरुषोंको वह परमहंस आश्रम दिखाया ॥ १३ ॥ नववां, पृथु

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचासुरये साङ्ख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥ षष्ठेअत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥ धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ॥ अपाययत् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥

अवतार राजा वेनके शरीर मथनेसे हुआ। ऋषियोंकी चाहनासे पृथु अवतार धारण करके सब औषधी जिसने छिपा लीं, उस गौरूपी पृथिवीको दुहकर सब वस्तुका सारांश निकाला । यह अवतार अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ ॥१४॥ दशवीं बार मत्स्यावतार लेकर चाक्षुष मन्वन्तरमें सब समुद्र एक हुए। पृथ्वीकी मयनामकदैत्यसे वैवस्वत मन्वन्तरमें रक्षा की और सत्यव्रतको सप्तऋषियों समेत नौकापर बैठाकर ज्ञान उपदेश किया और उसको अपनी मायाका कौतुक दिखाया ॥१५॥ ग्यारहवीं बार कच्छप रूप धरा । जब सुर-असुरोंने समुद्रको मथा,उस समय कच्छप अवतार धारण कर मंदराचल पर्वतको भगवानने पीठपर धरा ॥१६॥ बारहवीं बार धन्वन्तरि अवतार धारण कर एक अमृतका कलश हाथमें लिये

समुद्रसे उत्पन्न हुये। तेरहवीं बार मोहनी अवतार धारण कर दैत्योंको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाकर मोहित किया और अमृतका कलश उनसे ले लिया और देवताओंको पिलाकर उनकी रक्षाकी ॥१७॥ चौदहवीं बार नृसिंहरूप धर, हिरण्यकशिपु दैत्यका नखोंसे उदर बिदीर्ण कर अपने प्यारे भक्त प्रह्लादकी रक्षाकी॥१८॥ पन्द्रहवीं बार वामनतनु धारण कर राजा बलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वी माँगकर इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया और बलिको पाताल का राजा किया "परन्तु मांगना अत्यन्त बुरा काम है, मांगनेवालेको सब ठौर छोटा बनना पड़ता है, इसी कारण नारायणने छोटा रूप धारण किया" ॥१९॥ सोलहवां परशुराम अवतार में क्षत्रियोंका क्षय किया और उनसे इक्कीस बार पृथ्वीको जीत ब्राह्मणों को दान कर दी ॥२०॥ सत्रहवीं बार पराशरजीकी पत्नी सत्यवतीके उदरसे व्यासजी अवतारले पुरुषोंको निर्बुद्धि

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पञ्चदशं वामनकं कृत्वाऽगा-दध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥ अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥ त्रिस्सप्त कृत्वः कुपितो निःक्षत्त्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

और अज्ञानी जानकर, वेदका विभाग और वेदकी शाखाओंका विस्तार और अठारह पुराण महाभारतादिक ग्रन्थ रचकर संसारका उद्धार किया ॥२१॥ अठारहवीं बार श्रीरामचन्द्र अवतार धारण कर भक्तोंके कार्य करनेके लिये समुद्रमें पुल बांधकर रावण, मेघनाथ, कुम्भकर्णादि राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतारा और अनेक आश्चर्ययुक्त कर्म करके देवताओंकी रक्षाकी ॥२२॥ उन्नीसवीं और बीसवीं बार वृष्णिकुलमें बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार धारणकर कालयवन; जरासन्ध कंसादिक दुष्ट राक्षसोंको मार, पृथ्वीका भार उतार, भक्तोंको संसारसे उद्धार करनेके लिये अद्भुत-अद्भुत चरित्र दिखाये ॥२३॥ इक्कीसवीं बार कलियुगकी प्रवृत्ति देख जिन सुत बुद्धने गयाके समीप कीकटदेशमें

अवतार लिया। "जब कलियुग आया तब देवताओं ने यज्ञ कर-करके दैत्योंका बल नहीं चलने दिया,तो दैत्योंने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे पूछा कि, हे भगवन् ! देवता लोग सर्वथा इन्द्रपुरीका राज्य करना चाहते हैं, कोई ऐसा उत्तम उपाय बताओ जिससे दैत्यकुलका राज्य बना रहे ? शुक्राचार्यने कहा—हे दैत्यो ! देवताओंका राज्य यज्ञादिक कर्म करनेसे निष्कण्टक बना रहा,तुमभी यज्ञ करो। शुक्राचार्यका उपदेश मानकर दैत्योंने भी यज्ञ करना आरम्भ कर दिया, तब तो सब देवता भयभीत होकर विष्णुके पास गये और बहुत स्तुति कर हाथ जोड़कर बोले—हे वैकुण्ठनाथ! अब दैत्य लोग भी यज्ञ करनेको उपस्थित हैं, जो उनका यज्ञ पूर्ण हो गया तो वे लोग हमसे बलवान् हो जायँगे, और हमारा बल उनके सम्मुख कुछ न चलेगा और फिर हम उनको कभी नहीं जीत सकेंगे। अब हमको कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे हमारा कल्याण हो। देवताओंका यह वचन सुनकर श्रीनारायणजीने उसी समय बौद्ध अवतार धारण किया सेवड़ेका रूप धारणकर मैले-कुचैले वस्त्र पहन चौंरी हाँथमें लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ दैत्यलोग यज्ञ कर रहे थे। दैत्योंने उनका तेजस्वी स्वरूप देख और ज्ञानवान्‌जान बड़ा आदर-सम्मान किया और उनसे पूछा, कि हे कृपानाथ ! आपके हाथमें यह क्या वस्तु है। बौद्धजीने कहा यह चौंरी है। दैत्य बोले कि, नाथ!

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥ अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

इसके हाथमें रखनेसे क्या लाभ है? बौद्धजीने उत्तर दिया;कि जिस स्थान पर मनुष्य बैठता है,उसके नीचे छोटे छोटे जीव जो पृथ्वीपर रहते हैं वे दबकर मर जाते हैं, अतः इस चौंरीसे भूमिको झाड़कर बैठना चाहिये, जिससे जीवोंकी रक्षा हो। फिर दैत्योंने पूछा कि हे स्वामी ! आपके वस्त्र मैले-कुचैले किस कारण हैं ? बौद्धजीने कहा—कपड़े धोनेसे भी जीव हिंसा होती है, क्योंकि वस्त्रोंमें भी अनेक जीव रहते हैं। दैत्योंने जब इस प्रकारके वचन सुने। तबतो दैत्योंके मनमें दया उपजी और यज्ञ करनेसे उनका चित्त हट गया और परस्पर विचार करने लगे, कि यज्ञ करने में तो अनेक जीवोंकी हिंसा होगी तो हमारा सब यज्ञ करना निष्फल है, वरन् और दूना पापका भागी होना पड़ेगा। ऐसे मन ही मनमें शोच-समझ कर दैत्योंने यज्ञ करना बन्द कर दिया। तब उनका सब पुरुषार्थ ढीला हो गया और सब धर्म-कर्म नष्ट हो गया और देवताओंका बल बढ़ गया॥२४॥बाईसवीं बार युगकी सन्धिमें जब राजा भी चोर हो जायँगे, तब शम्भलग्राममें विष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहां जगत्पति—कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥ २५ ॥ उस सत्त्वगुणी परब्रह्म परमेश्वरके अनंत अवतार हैं, जैसे कभी जिस सरोवरसे जल नहीं

घटता, उस सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवाली अनेक नदियाँ बहती हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मुनि, देवता, मनुसुत महाबली, प्रजापति, ये सब परब्रह्म परमेश्वरकी कला हैं ॥२७॥ उस अविनाशी पुरुषके यह सब अंश और कला हैं । श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं भगवान हैं । शत्रुओंसे जब जगत् व्याकुल हो जाता है तब युग-युगमें अवतार लेकर सबको सुखी करते हैं ॥२८॥ उस अविनाशी अव्यय पुरुषके छिपे हुए जन्मोंकी कथा जो नर पवित्र होकर संध्या समय और प्रातःकाल पढ़ते और सुनते हैं वे लोग अनेक-अनेक कष्टोंके समूह से छूट जाते हैं ॥२९॥ जिसका रूप नहीं और चित्, एकरस, व्यापक ऐसा उसका वह रूप है, यह तत्त्वादि मायाके गुणोंसे जीवात्मा अन्तर्यामीमें प्रकट होते हैं ॥३०॥ जैसे पवनके आश्रयसे मेघ

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८ ॥ जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायंप्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः॥३१॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरतादेवी मायावै शारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

आकाशमें रहते हैं, यह अज्ञानियोंने मान रखा है । जैसे पृथ्वीके रेणुको धुन्धकारादिक पवनमें अज्ञानी समझते हैं, वैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्वादि शरीरधर्म अज्ञानियोंने माना है॥३१॥इस कारण परमेश्वर अति सूक्ष्म है, अनंत, आकार विशेषरहित है, अदृष्ट, अश्रुत वस्तु है; इसलिये जीवांतर्यामी है, बारंबार अपना ज्ञान होनेके हेतु जीवरूपसे होता है ॥३२॥ जिसमें अपने ज्ञानसे यह सत् असतरूप अविद्यासे जीवात्माके अन्तर्यामीमें विचारे तो ब्रह्मका दर्शन होता है ॥३३॥ जो यह क्रीड़ा करनेवाली परमेश्वरकी माया दूर हो जाय तो श्रेष्ट मतवाले ब्रह्मरूपमें लय होते हैं और अपनी महिमामें आप ही पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥

ऐसे अकर्ताके कर्म और अजन्माके जन्म वेदमें छिपे हुए हैं। ये सब लक्षण अन्तर्यामीके हैं ऐसे कवीश्वर लोग वर्णन करते हैं ॥३५॥ अमोघ लीलाधारी ईश्वर इस विश्वको रचते हैं, पालन करते हैं, प्रलय करते हैं, परन्तु इसमें आसक्त नहीं होते। सब जीवोंमें अन्तर्निहित हैं, स्वतंत्र हैं, छःगुणोंके ईश्वर हैं, परन्तु छहों इन्द्रियोंके विषय दूसरे ग्रहण करते हैं, छहों इन्द्रियोंके स्वामी हैं ॥३६॥ मन वचनसे नाम रूपका विस्तार करते हैं, ऐसे ईश्वरकी लीलाको कोई मनुष्य सम्पूर्णतासे नहीं जान सकता, जैसे नटकी लीलाको मूर्ख लोग नहीं जानते ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य कुटिल भाव त्याग कर सदा अनुकूलतासे परमेश्वरके चरणारविन्दोंको मुग्ध होकर भजते हैं, वे मनुष्य चक्रधारी महाप्रतापी, दीर्घपराक्रमी, धाता,

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७ ॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ॥ योऽमायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥

परमेश्वरकी पदवीको जानते हैं ॥३८॥ इससे तुम लोग सब धन्य हो ! जो सब लोकके नाथ परमेश्वरमें सर्वात्मासे आत्मभावना करते हो, अब तुम्हारा जन्म-मरण संसारमें नहीं होगा ॥३९॥ सब वेदोंके समान भगवानके चरित्रोंसे परिपूर्ण, ऐसा उत्तम यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यासजीने बनाया है ॥४०॥ संसारके सुखके लिये धनदायक, मंगलदायक, महान् ज्ञानवान्, आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको सब वेदों और इतिहासोंका सार निकालकर पढ़ाया ॥ ४१ ॥ वही श्रीमद्भागवत समस्त वेद इतिहासोंका तत्त्व निकालकर शुकदेवजीने राजा

परीक्षितको सुनाया ॥४२॥ परम ऋषि समेत राजा परीक्षित् गंगाके किनारे अन्त समयतक बैठे रहे । धर्म ज्ञानादि सहित जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकासे परमधामको गये ॥ ४३ ॥ तब कलियुगका समय जान लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट देखकर श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवत महापुराण धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश किया । हे ऋषियो ! श्रीशुकदेवजी तेजस्वीने राजा परीक्षितसे यह बात कही ॥ ४४ ॥ वहां भी उनकी कथा संक्षेपसे हमने सुनी, वह कथा जैसी हमने सुनी है और गुरुसे पढ़ी है; अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंको विस्तारसहित सुनायेंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां प्रथमस्कन्धेचतुर्विंशत्यवतार–कथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ॥ कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ ४३ ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥ ४४ ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीत यथामति ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथमस्कं० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ॥ एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥

दोहा–सुनत प्रश्न सब ऋषिनके, हर्षि सूत मुसकाय । जेहि विधि बने पुराण सब, कहों कथा समुझाय ॥ श्रीव्यासजी बोले, कि पूर्ण यज्ञ कर्ता मुनिमण्डलीके मध्य सूतजी जो विराजमान थे, उनसे वृद्ध, कुलभूषण, ऋग्वेद पारगामी शौनक मुनि बोले ॥१॥ कि हे सूत ! हे महा-भाग ! ! हे सत्यवक्ता ! ! ! श्रीमद्भागवतकी पुण्यदायक कथा हमको सुनाओ; जो भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कही थी ॥२॥ कौनसे युगमें, किस स्थानमें और किस कारणसे भागवतकी कथा प्रवृत्त हुई ? व्यासजीके चित्तमें किसने प्रेरणा की ? जो मुनिवरने यह अमृत रूपी संहिता रची ॥ ३ ॥ उनके पुत्र महायोगी, दिगम्बर वेषधारी, समदर्शी, भेदभाव रहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, भगवद्भजनमें लवलीन

ऐसे शुकदेवजीने ॥४॥ " जिस समय जन्म लिया उसी समय संन्यास ले, संसारकी माया तज, निर्विकार वनमें चल दिये और मनमें यह विचार किया कि यहां रहनेसे सैकड़ों आपत्तियां हैं । इसलिये अभी वनमें जाकर परमेश्वरका भजन करना चाहिये । पुत्रकी यह दशा देखकर व्यासजी मनमें अत्यन्त सोच संकोच कर मोहवश पुत्रके विरहमें व्याकुल हो, पुत्र-पुत्र पुकारते पुत्रके पीछे दौड़े । हे पुत्र ! हमको कहां छोड़ जाते हो ? ठहरो, ठहरो ! किंचिन्मात्र खड़े होकर हमारी एक बात तो सुनते जाओ। परंतु शुकदेवजीने खड़ा होना उचित न समझा, क्योंकि यह तो संसारसे पहले ही विरक्त होकर परमेश्वरके चरणारविंदोंमें अपने मनको लवलीन कर चुके थे। शुकदेवजीने अपने मनमें कहा, देखो हमारे पिताको इस अवस्थामें भी कुछ ज्ञान नहीं, संसारकी मायामें लिप्त हो रहे हैं । उनको धैर्यदेनेके लिये वनके वृक्षोंमें प्रवेश कर कहा, हे व्यासजी ! तुम किस मायामें भूल रहे हो 'न कोई किसीका पुत्र है, न कोई किसीका पिता है, यह सब स्वप्न कासा व्यवहार है । संसारकी गति सदासे इसी भांति चली आती है और यह जीव वारंवार संसारमें जन्म लेता है और मरता है । यह

दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः॥५॥कथमालक्षितःपौरैः संप्राप्तःकुरुजाङ्गलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥६॥

संसार आवागमनकी जड़ है,' यह बात सुनकर व्यासजीको धैर्य हुआ, यह कहकर शुकदेवजी आगे चले तो मार्गमें एक सरोवर दृष्टि आया। उसमें देवस्त्री नंगी स्नान कर रहीं थीं । उन्होंने शुकदेवजीको देख कुछ लज्जा नहीं की, उसी भांति नंगी खड़ी रहीं—पीछे व्यासजी वृद्ध बाबा भी वहां पहुँचे, तब तो सब देवांगनायें लज्जित होकर अपना अङ्ग वस्त्रोंसे ढकने लगीं, यह विचित्र भाव देख व्यासजी अपने मनमें विचार करने लगे, कि शुकदेव हमारे पुत्रको देख इन्होंने लज्जा नहीं की और मुझ वृद्ध मनुष्यको देख वस्त्र पहन लिये इसका क्या कारण है, उन देवांगनाओंने देवदृष्टिसे व्यासजीके मनका भ्रम जान कहा—हे व्यासजी ! आप स्त्री और पुरुषके भेदभावको भली भांति जानते हो इसलिये आपसे लज्जा की और शुकदेवजीकी परमहंसगति है, वह स्त्री और पुरुषमें कुछ भेद नहीं समझते, वे समदर्शी हैं, इसलिये हमने उनसे कुछ लज्जा नहीं की । यह बात सुनकर व्यासजीके मनका सब सन्देह जाता रहा ॥ ५ ॥ कुरु जांगल देशमें गये तो कैसे विदित हुआ कि यह शुकदेवजी हैं ? उन्मत्त गूंगे जड़की नाई हस्तिनापुरमें फिरते थे ॥ ६ ॥

सो परम भागवत शुकाचार्यसे राजऋषि परीक्षितका संवाद कैसे हुआ ? ॥७॥ हे सूतजी ! इस बातका हमको बड़ा सन्देह है, जो महाभाग शुकाचार्य गोदोहनमात्रसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकते थे, ऐसे विरक्त होकर सात दिन राजा परीक्षितके निकट कैसे ठहरकर कथा सुनाते रहे और उनके आश्रमको पवित्र कियां ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, उनका जन्म

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वतीश्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याऽधिराट्श्रियम् ॥ १० ॥ नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हाऽऽनीय धनानि शत्रवः ॥ कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥

कर्म महाआश्चर्यका है वह कहो ॥ ९ ॥ हे सूत ! पाण्डुकुलभूषण चक्रवर्ती महाराज परीक्षित राज्यलक्ष्मीका अनादर कर किस हेतुसे गंगाके किनारे अन्न जल त्याग कर अन्त समयतक बैठे सो कहो ॥ १० ॥ हे मित्र सूत ! शत्रुलोग धन लाकर जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं अपने देहकी रक्षाके लिये, ऐसी लक्ष्मीको वीर तरुण राजा परीक्षितने प्राणसहित त्यागनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥

---

१. शंका–श्रीशुकदेवजी जिसके ऊपर अत्यंत कृपा करते थे, उसके स्थानपर इतनी देर ठहरते थे कि जितनी देर गायके दुहनेमें लगती है। तो शुकदेवजी गंगाके किनारेपर सात दिन क्यों ठहरे और राजा परीक्षितको श्रीमद्भागवत क्यों सुनायी ?

उत्तर–एक दिन अपनी इच्छासे श्रीशुकदेवजी गोलोकको गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजन किया। पूजन ग्रहण करके जब शुकदेवजी चलने लगे तब राजा परीक्षितका मोक्ष होनेके लिये श्रीकृष्णने शुकदेवसे प्रार्थना की, कि हे मुने पांडव मेरे बड़े मित्र थे। अर्जुनका यह परीक्षित पोता है शृंगीऋषिके शापसे तक्षक सांपने उसको काटा है और सर्पका काटा निःसंदेह नरकमें जाता है, जब वह परीक्षित नरकमें गया तो त्रिलोकीमें मेरी बड़ी दुर्नामता होगी और लोग हँसी करेंगे कि कृष्ण के मित्रका पोता नरकमें जाता है। देखो भाई ! अब जैसी आपकी इच्छा हो उसी प्रकारसे परीक्षितका नरकसे उद्धार करो और उसको मेरे लोकको भेजो । इस प्रकार श्रीकृष्ण जगदाधारकी प्रार्थनासे गङ्गाके निकट राजा परीक्षितके पास सात दिन रहकर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी, जिसके सुननेसे महादुस्तर संसारसे निस्तार हो जाता है। क्योंकि चार वेद छः शास्त्र अठारह पुराण भारतादि इतिहासों का सार निकालकर मुक्तिदायक वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतको ही हित चित्तसे रचा है।

संसारके कल्याणके लिये सब जीवोंके ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी श्रीनारायणके परायण जन जीते हैं, कुछ अपनी देह आत्माके कारण नहीं। जब ऐसा है तो अनेक जीवोंको जीवदान देनेवाली देहको वैराग्य लेकर कैसे त्याग किया ॥१२॥ हे कृपासिन्धु! जो कुछ मैंने पूछा और जो कुछ मेरे पूछनेसे रह गया हो, वह सब कृपा करके हमसे कहो, क्योंकि वेद विषय छोड़कर वाणीसे जानने योग्य अर्थमें तुम चतुर और पारगामी हो ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकमुनि ! बहत्तर चतुर्युगियोंमें जब तीसरी बार द्वापरयुग आया, तब पराशर मुनिसे उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर श्री व्यासजी महाराजने विष्णुकी कलासे अवतार लिया ॥१४॥ वही व्यासजी एक समय

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ॥ विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निस्सत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

सरस्वतीमें स्नान कर पवित्र हो सूर्योदयके समय एकान्त स्थान बदरिकाश्रममें बैठे थे ॥१५॥ भूत-भविष्यके ज्ञाता श्रीव्यासदेव कलियुगके कारणसे युग-युगमें पृथ्वीपर सब वर्णाश्रम धर्म उलटे हुए जानकर ॥ १६ ॥ शरीरधारियोंको शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, सत्त्वगुणहीन, बुद्धिहीन-आयुहीन ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवोंको देख श्रीमुनिराज दिव्य ज्ञानचक्षुसे सब वर्णोंका और सब आश्रमोंका हित विचार कर ॥१८॥ ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र, इन चारोंसे अनुष्ठेय प्रजाओंके शुद्धिकारक वैदिककर्मको जानकर यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदके चार भाग किये ॥ १९ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार अलग-अलग किये। इतिहास पुराणोंको पंचमवेद कहा है ॥२०॥ पैलमुनिने ऋग्वेद पढ़ा, जैमिनि पंडितने सामवेद सीखा, वैशम्पायनजी यजुर्वेदके पारंगत हुए ॥२१॥ अंगिरा गोत्री सुमन्तमुनि अथर्ववेदके ज्ञाता हुए, उस वेदके मारण, उच्चाटनादिकर्म करनेसे उनका नाम दारुक हुआ और इतिहास पुराणोंके पारगामी हमारे पिता रोमहर्षणजी हुए ॥ २२॥ वे सब ऋषि अपने अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग करने लगे। उनके शिष्य और उनके चेलोंसे वेदोंकी शाखा हुई ॥ २३ ॥ पहले बड़े-बड़े चतुर और अतिविशाल बुद्धिवाले वेदका अर्थ जानते थे। जब उन्हीं वेदोंको मूर्ख निर्बुद्धि लोग पढ़कर उनके उलटे-पुलटे अर्थ करने लगे

ऋग्यजुः सामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासः पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥२१॥ अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ॥ इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एव ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ ॥ २४ ॥ स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७ ॥ धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २८ ॥

तब व्यासजी महाराजने ऐसे बनाया ॥२४॥ स्त्री, शूद्र और मूर्ख इन तीनोंको वेदत्रयी पढ़नेका अधिकार नहीं है। उनके कल्याणके लिये क्या उपाय करना चाहिये यह विचार व्यासजी महाराजने उनकी मुक्तिके लिये कृपापूर्वक महाभारत बनाया और उसमें सब वेदका सार लेकर भरा ॥२५॥ हे शौनकादिक मुनियो ! सब जीवोंके हितके लिये अधिक परिश्रम करके महाभारतादिक ग्रन्थ रचे, परन्तु मन तो भी प्रसन्न नहीं हुआ ॥२६॥ और वारंवार यही विचार करते थे कि, अब हम कौनसा ग्रन्थ रचें; जिससे हमारे मनको धैर्य हो इसी चिन्तामें परम पवित्र सरस्वतीके किनारे एकान्तमें बैठे अनेक-अनेक तर्क वितर्क करते करते उदासीन चित्त होकर धर्मात्मा व्यासजी कहने लगे॥२७॥ मैंने व्रत करके,

अनेक शुद्ध कर्म करके गुरु अग्नि सबको निष्कपट भावसे माना और उनकी आज्ञाको अपने शिर धारण किया ॥ २८ ॥ भारतके बहानेसे सब वेदका अर्थ कहा, जिस भारतमें स्त्री शूद्रादिकको भी धर्म, अर्थ, काम, जान पड़े ॥ २९ ॥ मैं ब्रह्मतेजवालोंमें श्रेष्ठ भी हूँ परंतु बड़े खेदकी बात है कि मेरा जीव समर्थ मनसे प्रसन्न नहीं ॥३०॥ अथवा वे भागवत धर्म विस्तारपूर्वक मैंने अनेक प्रकारसे नहीं कहे हैं, जो भगवत्को प्यारे हैं, परमहंसोंको प्यारे हैं ॥३१॥ अपने आपको छोटा समझ कर खिन्न मन इसी सोचमें व्यासजी सरस्वतीके निकट

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ २९ ॥ तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः॥कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ॥३३॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥

बैठे विचार कर रहे थे कि उसी अवसर पर श्री नारदजी उस आश्रमपर आये ॥३२॥ उनको देख व्यासजी अत्यंत प्रफुल्लित हो शीघ्रतासे उठे और विधिवत् पूजन कर बड़े आदर-सत्कारसे आसनपर बैठाया ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नारदव्याससंगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा—इस पंचम अध्यायमें, नारदव्यास मिलाप। कही कथा सब देवऋषि,जैसे मुनि भये आप ॥ इतनी कथा कह सूतजी बोले कि,सुखपूर्वक बैठे हुए व्यासजीसे सर्व विद्या-सागर जगत् उजागर,वीणा हाथमें लिये देव ऋषि नारदजी मुसकाकर बोले ❀॥१॥

१. शंका—त्रिलोकीमें किसी जीवको नारदजी दुखी देखकर अत्यन्त दुःखी होते थे और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे और विह्वल हो जाते थे। भगवानके भक्त नारदजी उस जीवके दुःख दूर करनेके लिये अनेक उपाय करते थे कि कोई प्राणी दुःखी न हो, यह विचार, सदा सबका उपकार करते हैं; फिर ऐसे दयावान भगवानके प्यारे वेदव्यासजीको दुःखी देखकर नारदमुनि क्यों हँसे और यह अयोग्य काम क्यों किया? यह बड़ा भारी संदेह है कि अपना स्वभाव क्यों छोड़ा?

उत्तर—नारदमुनिने बड़े स्नेह और बड़े आदरसे व्यासजीको निवारण किया, कि हे व्यास! आप ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ, जिनसे ज्ञानियोंको भ्रम हो। ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ कि जिनमें मोक्षदायक यदुनायकका नाम न हो। सुखक

हे पराशरपुत्र! हे महाभाग! आपके शरीरसे शरीरका अभिमानी प्रसन्न है और मनका अभिमानी मनसे प्रसन्न है कि नहीं! ॥२॥ जो जानने योग्य था वह भी आपने जाना। अद्भुत सब अर्थोंकी खानि महाभारत भी आपने रचा ॥ ३ ॥ जो सनातन नित्य परब्रह्मको विचारसे आपने प्राप्त किया, एक वेदके चार भाग किये और उनका सार निकाल और बहुत से ग्रन्थ, पुराण रचे तो भी आप ऐसे शोच वश हो रहे हो, जैसे किसीने अनेक यत्न कर अपना कार्य सिद्ध किया हो और उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ हो, हे प्रभो! तुम सर्वज्ञ होकर ऐसे शोच-

नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथाऽपि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥५॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥ ६ ॥

वश किस कारण हो रहे हो! ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले-जो तुमने कहा वह सब सत्य है, परन्तु तो भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है, इसका कारण मैं नहीं जानता, इसलिये आपको ब्रह्माजीका पुत्र ब्रह्मज्ञानी जान आपसे पूछता हूँ ॥ ५ ॥ जो सबसे गुप्त बात है वह आप भली भाँति जानते हो क्योंकि जो पुराण-पुरुष है उसकी तुमने उपासना की है, जो गुणरहित; कार्य-कारणका नियंता, अपने मनसे ही सब विश्वकी रचना, पालन, संहार करता है ॥ ६ ॥

समुद्र भगवानके अनेक प्रकारके जिसमें चरित्र हों कोई ऐसा मोक्षदायक ग्रन्थ वर्णन करो। इस प्रकारकी शिक्षा वारंवार नारदमुनिने व्यासजीको दी। व्यासजीको अपनी कविताका बड़ा भारी अभिमान था, उन्होंने नारदकी कही हुई एक बात भी नहीं मानी और अनेक प्रकारके ग्रन्थ बनाये परंतु उन ग्रन्थोंके बनानेसे व्यासजीको किंचित्-मात्र भी सुख नहीं हुआ। ग्रन्थ बनानेके पीछे व्यासजीको और अधिक दुःख हुआ। जब व्यासजी को नारदजीने दुःखी देखा तब उनके ऊपर कृपाकरके और व्यासको त्रास देनेके लिये नारदमुनि हँसे थे। कुछ अभिमानसे निर्दयी होकर नहीं हँसे थे। व्यासजीको तत्वज्ञानका उपदेश किया और उनके मनका सब संशय हर लिया।

सूर्यकी भांति त्रिलोकीमें तुम विचरते हो, पवनके समान सबके अन्तःकरणकी जानते हो, बुद्धिकी वृत्तिको भलीभांति जानते हो, परन्तु मैं भी परब्रह्म और वेदमें धर्मसे और व्रतसे परायण हूँ, तो भी मेरे मनकी न्यूनता नहीं गयी, आपको भली भाँति प्रकट है ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे व्याससुनि ! आपने भगवानका निर्मल यश वर्णन नहीं किया, इस लिए आपका मन प्रसन्न नहीं है यही न्यूनता समझो ॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रधानतासे आपने धर्म, अर्थादिक कहे हैं उस प्रधानतासे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दकी महिमाका वर्णन नहीं किया ॥ ९ ॥ जिसमें जगतके पवित्र करने वाले परमात्माका यश नहीं कहा, चाहे उसमें कैसेही चित्र-विचित्र पद हों और वह काकतुल्य कामियोंको अच्छी

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ तथा न वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥

लगे परन्तु ऐसी कविताको सत्त्वगुण प्रधान परब्रह्ममें निवास करनेवाले मनस्वी सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहते हैं और कभी उस कविताको नहीं पढ़ते। जैसे प्रसिद्ध है कि मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरमें ही विचरते हैं, कमलवनको त्याग जहां जूठन डाली जाती और काक कांव—कांव करते हैं, वहां हंस कभी नहीं जाते। इसी भांति भगवद्भक्त भगवान्के चरित्रोंके ग्रन्थ पढ़ते हैं, रसिक ग्रन्थोंमें ध्यान नहीं लगाते ॥ १० ॥ एक-एक श्लोक चाहे जिस ग्रन्थका अशुद्ध हो परन्तु परमेश्वरका विषय हो, जो संसारके जीवोंका पापनाश करता है और सुयशका प्रकाश है, ऐसी कविता और कथाको साधु ब्राह्मण गाते हैं, सुनते हैं और सुनाते हैं ॥ ११ ॥

१. कवित्त—कहा भयो जो न काव्य भेद भाव द्वन्द विना, हरियश जामें सोई कहन सुहाई है। सन्त जन गावें सुनें कहें जापे ताहि कोरी, कविता बनाई देख गिरा पछिताई है ॥ रामरस बिना जैसे फीकी लगे स्वाद तिमि, रामरस विना स्वाद, गन्धहू न आई है । भक्त मन भाई सुखदाई है सुहाई जामें, कृष्णकथा गाई सोई सांची कविताई है ॥

और जिसने ब्रह्मार्पण कर्म किया और भगवानकी भक्तिसे रहित है,वह उपाधिरहित अत्यन्त ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होता,फिर फलके समय भी दुःख होता है, जिसने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण नहीं किये उसकी ऐसी ही गति होती है ॥१२॥ इस कारण हे महाभाग! आप यथार्थ द्रष्टा हो, शुद्ध,यशस्वी,तेजस्वी,सत्यवादी;सब व्रत करनेवाले हो। अब आप चित्तको सावधान करके परमेश्वरकी लीला वर्णन करो। जिसको पढ़कर संसारके बन्धनसे लोग छूट जायँ, क्योंकि ॥ १३ ॥ भगवानके यश विना जो कुछ पृथक् दृष्टिसे वर्णन किया है, उसे नाम रूपमें पढ़कर बुद्धि चञ्चल हो जाती है, जैसे वायुसे कंपित नौका जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥ १४ ॥ धर्मके लिये शिक्षा करने वाले तुम्हारी

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ॥ न कुत्रचित् क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥१४॥ जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥१६॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वा भद्रमभूदमुष्य किं को वाऽर्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥

नैष्कर्म्यकी आज्ञाको देखकर दुष्टजन महा अन्याय करेंगे और तुम्हारे वाक्योंसे संसारके तुच्छ जीव यही मानेंगे कि यह भी एक प्रकारका धर्म है। यह नहीं जानेंगे कि इसका व्यासजीने निवारण किया है ॥ १५ ॥ जो अतिनिपुण हैं, वे स्वभावसे अनन्त अपार परमेश्वरके स्वरूपको जानते हैं। गुणोंसे प्रवर्तमान जीवों से भिन्न समर्थ ईश्वरकी लीला तुम वर्णन करो ॥१६॥ अपने धर्मको त्याग वासुदेवके चरणारविन्दका भजन करते-करते जो बीचमें ही मर जाय तो उसको अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है,परन्तु स्वधर्मसे भजनेवाले इस जीवका जहां कहीं कुयोनिमें भी जन्म हो तो भी भक्त ही होता है। भक्ति सदा कल्याणकी दाता है, भक्ति सब कार्यको सिद्ध करती है ॥ १७ ॥

विवेकी उस सुखके लिये यत्न करे, जो सुख ब्रह्मलोकतक हो जाय और नीचे स्थावरतक हो जाय,परन्तु वह सुख नहीं मिलता, दुःखसे मिला हुआ विषय सुख प्राचीनकर्मसे सब ठौर नरकादिकमें भी विना यत्न किये किसी भांति प्राप्त होता है,ऐसे ही सुख भी प्राचीन कर्मसे गम्भीर वेगवाले कालसे विना ही चाहे आकर प्रकट हो जाता है ॥१८॥ हे मित्र ! मुकुन्दसेवी जन केवल कर्मनिष्ठावालोंकी भांति कभी भी संसारमें नहीं आता है,क्योंकि भगवच्चरणारविन्दके स्पर्शका फिर स्मरण करता है और त्यागनेकी इच्छा नहीं करता।वह उसको रस मानकर ग्रहण करता है ॥ १९ ॥ यह विश्व ईश्वररूप ही है और ईश्वर नहीं है कि, जिससे जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है, वह तुम

तस्यैव हेतोः प्रयतत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतःसुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥ १८ ॥ न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ॥ स्मरन् कुमुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥ इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक्परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥ २१ ॥ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥ २२ ॥

सब भली-भांति जानते हो तो भी आपको एक आदेशमात्र दिखाया है ॥ २० ॥ हे अमोघदृष्टिवाले ! परमपुरुष परमात्माकी तुम साक्षात् कला हो, मनसे परमात्माको जानो, जिसे अजन्मा कहते हैं, उसी परमात्माने जगत्‌के कल्याणके लिये जन्म लिया, ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥ २१ ॥ पुरुषके तप, श्रवण, दान, पुण्य करने और सुन्दर कूप; बावड़ी बनानेका श्रेष्ठ युक्तिका, बुद्धिका यही प्रयोजन कवियों ने कहा है कि परमात्माका गुण गाना ॥ २२ ॥

हे व्यासदेव ! मैं पहले जन्ममें एक वेदवादी ब्राह्मणकी दासीसे उत्पन्न हुआ था; मुझसे बाल अवस्थामें ही वर्षाकालमें ठहरे हुए साधुओंकी सेवा करनेको कह दिया गया था । मैं ब्राह्मण, साधु-सन्तोंकी सेवामें लवलीन था । वर्षाके दिनोंमें उस ब्राह्मणके स्थानपर साधु संत आकर विश्राम किया करते थे और उस ब्राह्मणने साधु लोगोंके चौका बर्तनकी टहलके लिये मेरी माताको नियुक्त कर दिया था । मैं भी अपनी माताके संग उन साधुओंके निकट रहकर आठों पहर उनका दर्शन करता रहता था, जिस समय साधुलोग परस्पर बैठकर श्रीनारायणकी कथा वार्ता कहते थे । उस समय मैं भी उनके समीप बैठा सुनता रहता और उनकी सेवा करता रहता था और वे ऋषि भी मेरे ऊपर दया करते थे ॥ २३ ॥ मेरे चित्तकी सब चंचलता दूर हो गयी । अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता, थोड़ा बोलता और वे समदर्शी

अहं पुराऽतीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥ निरूपितोबालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्गममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्य स्खलिता मतिर्मम ॥ यथाऽहमेतत् सदसत् स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७ ॥

साधु भी मुझपर अनुग्रह करते थे ॥ २४ ॥ उन ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उन साधुओंके पात्रोंमें उच्छिष्ट जो शेष रह जाता था, मैं नित्य प्रति वही भोजन करता था। इससे मेरे सब पाप दूर हो गये । जब मैं ऐसे विशुद्ध चित्तसे रहने लगा तब तो उस धर्ममें मेरी अधिक रुचि हो गई ॥ २५ ॥ हे मित्र ! दिन-रात कृष्ण कथा उनके मुखसे सुननेसे प्रिय यशवाले भगवान् वासुदेवमें मेरी रुचि दिन-दिन अधिक होती गयी ॥ २६ ॥ हे व्यास ! श्रीनारायणके चरणारविन्दोंमें जब मेरी अधिक रुचि बढ़ी तो मेरी अखण्डित बुद्धि हो गयी । यह सब मुझको दीखने लगा । सत्-असत् अपनी मायासे ब्रह्ममें कल्पित मानने लगा ॥ २७ ॥

इस प्रकार शरद वर्षाऋतुमें दिन-रात परमेश्वरका निर्मल यश सुनता रहूँ, जो मुनियोंने गाया। उससे आत्माके रज, तम नाश करनेवाली प्रवृत्ति हो गयी ॥ २८ ॥ वह अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, मुझ सेवक बालकपर अत्यन्त कृपा करने लगे ॥ २९ ॥ वह दीनवत्सल साधु चलते समय मुझे साक्षात् श्रीभगवानके मुखसे निर्गत गुह्यतमज्ञानका उपदेश कर गये ॥३०॥ उस ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना, जिससे उस परम पदवीको सब पाते हैं ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! अध्यात्मादि तापत्रयीकी यह औषधि है, बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट, चैतन्य, पूर्णरूप, भगवान, ब्रह्म ईश्वरमें सब कर्म समर्पण करना ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! जो रोग जिस वस्तुसे

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे र्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥ २८ ॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ॥ अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥ येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ॥ त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥

जीवोंको हो वह रोग उस वस्तुसे उसका नहीं जाता चाहे कैसीही चिकित्सा करो ॥३३॥ ऐसे मनुष्योंके सब कर्मकाण्ड अपने निमित्तसे करे तो सदा संसारमें जन्मता–मरता रहता है और अपना विनाश होता है वही सब परमेश्वरमें समर्पण करे तो अपना मोक्ष होता है, प्रथम तो महात्मा पुरुषोंकी सेवा, उससे उनकी कृपा हो उस कृपासे उस धर्ममें श्रद्धा हो, तब भगवत्कथा सुननेसे ईश्वरमें प्रीति हो, उस प्रीतिसे दोनों देहका विवेक हो ऐसा आत्मज्ञान होता है तब दृढ़-भक्ति होती है, उस भक्तिसे भगवानका तत्त्वज्ञान, उस तत्त्वज्ञानसे सर्वज्ञत्व, सर्वात्मत्व, अपहतपाप्मत्व इत्यादि भगवतगुण प्रगट होनेका यह क्रम है ॥ ३४ ॥

जिस कर्ममें भगवंतकी प्रसन्नता है, यह जानकर जो कर्म करता है, उस कर्मके अधीन भक्तिसमेत ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ भगवानकी आज्ञा है कि सब शुभ कर्म करो । यह जान, जो कर्म करते हैं उनको मोक्ष होता है । जो मनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करते हैं वे निःसन्देह मोक्षके भागी हैं ॥ ३६ ॥ भगवानको नमस्कार और वासुदेवका ध्यान करे । प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धको नमस्कार करे ॥३७॥ इन मूर्तियोंके नामसे मन्त्रोक्त मूर्ति बनवाये, वह मूर्तियोंके नामसे है और बाह्यकी यह मूर्ति नहीं ऐसा जानकर जो पूजन करे तो वह पुरुष सुन्दर दर्शनके योग्य हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अपना ज्ञान जो मैंने अनुष्ठान किया इससे परमात्माने

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥ ३६ ॥ ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ ३७ ॥ इतिमूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ आदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥३९॥ त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥ ४० ॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० व्यासनारदसं० पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

मुझको ज्ञान ऐश्वर्य दिया ॥ ३९ ॥ हे बहुश्रुत ! विभुकी लीला तुम भी कहो; जिससे ज्ञानियोंके सब जाननेकी इच्छा पूरी हो जाय और दुःखसे पीड़ित जीवोंका सब क्लेश जिससे शान्त होगा और प्रकारसे नहीं ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भा० टी० श्रीव्यासनारद-संवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–मिले छठे अध्यायमें, ज्यों नारदको सिद्ध । जगतमाहिं जाते भये, नारद परम प्रसिद्ध ॥ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि ! सत्यवतीसुत व्यासजी ! देवऋषि नारदके जन्म-कर्मकी कथा सुनाकर फिर नारदजीसे पूछने लगे ॥ १ ॥

कि, हे कृपासिन्धु ! वह ज्ञानदाता भिक्षु जब सब चले गये, तो आपने प्रथम अवस्थामें क्या किया ? ॥ २ ॥ हे स्वायंभुव ! आपने पिछली अवस्था कैसे व्यतीत की, जब काल आया तो वह शरीर कैसे त्याग किया ? ॥ ३ ॥ हे सुरसत्तम ! प्रथम कल्पका स्मरण तुमको कैसे बना रहा ? सबको परलोकदाता ग्रहकाल खंडित न हुआ, तुम्हारी स्मृति भी खंडित नहीं हुई, वह कहो ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ज्ञानदाता भिक्षु जब चले गये, तब आयुकी आदिमें यह किया ॥ ५ ॥ मेरी माता स्त्रीस्वभाव मूढ दासी कोई बाततक करनी

व्यास उवाच भिक्षुभिर्विप्रविसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥ स्वायंभुव कया वृत्त्यावर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम् ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्रह्मकुलेऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाऽ०युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥ एकदा निर्गतां गेहाद् दुहतीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥ ९ ॥

जिसे न आये, एक मैं था उसके अकेला बेटा, मुझसे अधिक स्नेह रक्खे ॥ ६ ॥ और मेरे निर्वाहकी चिन्ता रात-दिन करती रहे, परन्तु मनमें वह भी पराधीन और असमर्थ थी, जैसे काठकी पुतली नटुवेके वशमें रहती है ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे मैं उस ब्राह्मणके पास रहता रहा,परन्तु मनमें दिन-रात यह विचार करता रहूँ,कि इस मोहकी फांसीसे किस दिन छूटूंगा। साधु लोगोंकी कृपासे मैं अपने आपको पांच वर्षका नहीं समझता था ॥८॥ एक दिन मेरी माता उस ब्राह्मणके लिए दूध दुहानेको जाती थी, सो मार्गमें उस विचारीको काले सर्पने

शंका—नारदकी माताके ऊपर मुनि लोगोंकी बड़ी कृपा थी, क्योंकि जो कृपा नहीं करते तो मुनियोंके सहवास से नारदका जन्म उस दासीमें क्यों होता ? ऐसी मुनियोंकी कृपासे नारदजीकी माता सर्पके काटनेसे क्यों मर गयी, ऐसी खोटी मृत्यु नारदजीकी माताकी सुनकर हमको बड़ी शंका होती है ।

उत्तर—नारदकी माता मुनियोंको तीर्थयात्रा करनेके लिये जाते देखकर, अपने पुत्र नारदको ज्ञानमें रमण करता जानकर और इंद्रियोंको बलवान् समझकर भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगीं और अपने

डस लिया ॥९॥ तब मैंने अत्यन्त आनंदित हो उस समय यही विचार किया, कि ईश्वर भक्तोंका सदा कल्याण करते हैं और मुझे अपना दास जानकर मुझपरभी अनुग्रह किया। यह बात निश्चित समझमैं उसी समय उत्तर दिशाकी ओर चल दिया ॥१०॥ समृद्ध देश, राजधानी, ग्राम, व्रज रत्नादि उत्पत्ति स्थान, किसानोके गांव, सुपारी, पुष्पोंकी वाटिका, स्वतः सिद्ध वृक्ष समूहोंसे वन, और वृक्षसमूहोंके सुन्दर-सुन्दर उपवन देखे ॥ ११ ॥ चित्र धातु, विचित्र पर्वत, हाथी, वृक्षोंकी शाखा तोड़ रहे, निर्मल जलभरे ताल लहरा रहे, मार्गमें जहां-तहां मनोहर

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥ १० ॥ स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ १२ ॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तम्बकुश कीचकगह्वरम् ॥१३॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥१४॥

कूप-बावड़ी, ताल, नदी, वन दृष्टि आते थे ॥ १२ ॥ सुन्दर-सुन्दर भ्रमर जहां-तहां गुंजार रहे, पक्षी चित्र-विचित्र अपनी-अपनी बोली बोल रहे थे। नर्सल बांस, वीरणमूलके समूह, कुश, बांसोंमें आपसे आप छिद्र हो रहे हैं, उनमें पवन भरकर बांसुरीके समान स्वरीले शब्द निकाल रहे हैं, वे कीचक कहलाते हैं । इनसेही महागंभीर शब्द होरहा है ॥ १३ ॥ मैं अकेला ऐसे महाघोर भयंकर वनमें सर्प, बिच्छू, शृगाल जहां भयानक बोली बोल रहे थे, उनको देखता चला जाता था ॥ १४ ॥

मनमें यह विचार करने लगीं कि मुनिलोग तो मुझको छोड़कर अपनेअपने आश्रमोंको चल दिये और पुत्र मेरा ज्ञानमें मतवाला है अब मेरा प्रतिपालन कौन करेगा। क्योंकि इंद्रियाँ तो अपनी-अपनी ओरको मेरे प्राण खींच-खींच मुझको कठिन-कठिन दुःख देंगी, नारदकी माताने विचार किया, कि शूद्रकुलमें मेरा जन्म हुआ । शूद्रोंकी मैंने संगति की। किसी शुभकर्मके प्रभावसे मुझको मुनियोंकी संगति प्राप्त हुई है और ज्ञान-ध्यानसे हीन हूं, मेरे हृदयमें कुछ भी ज्ञान नहीं, अब मैं निराधार हूँ। मेरा मरण शीघ्र होना चाहिये । इस प्रकार भगवानसे विनय करने लगीं । तब भगवानने उसकी विनय स्वीकार करके शीघ्र मृत्यु होनेके लिये सांपसे कटवाया। जब वह मर गयीं तो उसको सुरपुरका वास दिया और सर्पबाधासे नारदजीकी माताका मरण हुआ । इसलिये उसको अपने सन्मुख रखा कि जिस प्राणीको सांप डस लेता है उसकी कुगति होती है, इसकी कुगति न हो। नारदकी माताको मुनियोंकी कृपासे भगवानने अपने सम्मुख वास स्थान दिया ।

चलते-चलते सब शरीर शिथिल हो गया तो एक सुन्दर सरोवर मुझको दृष्टि आया। तब मैं भूखा-प्यासा उस तालके जलमें स्नान करके जल पिया तो मेरे शरीरका सब श्रम दूर हुआ ॥ १५ ॥ उस महागंभीर सरोवरके किनारे एक पीपलका वृक्ष था। मैं उस पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर परमेश्वरके स्वरूपका हृदयमें ध्यान करने लगा ॥१६॥ भावसे मन जीतकर परमात्माके चरणकमल अमलका ध्यान करने लगा। प्रीतिवश हो, नेत्रोंसे आंसू बहने लगे, तब धीरे-धीरे हृदयमें भगवान वासुदेवका दिव्यरूप ऐसा दिखाई दिया, कि एक पुरुष सुन्दर स्वरूप जिसके मुखारविन्दका प्रकाश कोटिभास्करसे भी अधिक, चतुर्भुजी मूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म चारों हाथोंमें लिये, पीताम्बर पहने, वैजयन्ती माला कण्ठमें धारण किये, किरीट मुकुटशिर पर धरे,त्रिभंगी छबि करे,मकराकृति कुण्डल कानोंमें पहने,श्यामस्वरूप,कमलनयन,

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ॥ आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथा श्रुतमचिन्तयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ॥ आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८ ॥ रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ॥ अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ ॥ २० ॥ एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ॥ गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१ ॥

लम्बी भुजा, तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुसकाते, बांकी-झांकी दिखलाते मेरे सम्मुख आये। उस मनमोहन स्वरूपको देखते ही मैंने परमानन्दितहोकर चाहा कि इसी सुन्दर स्वरूपको निहारता रहूँ ॥१७॥ प्रेम प्रीतिके भावसे हृदय पुलकायमान हो गया। मन महासुखी हो आनन्दके महा प्रवाहमें लीन हो गया। देहकी सब सुध बिसर गयी। परमात्माकी भी सुध नहीं रही ॥१८॥ मनका सुखदायक शोकनाशक जो भगवानका रूप है वह एक सङ्ग हृदयमें दीखा और मैं आनंदसे देखता रहा। विवशतासे मेरा मन कुछ खेदित हुआ,जब वह स्वरूप मेरे ध्यानसे अंतर्धान हुआ ॥१९॥ उस रूपको देखनेके लिये फिर हृदयमें मन लगाया। प्रथम जो रूप देखा था, वह रूप फिर दिखायी नहीं दिया ॥ २० ॥ उस एकान्त वनमें परमेश्वरने गम्भीर आकाश वाणीसे मुझ यत्नशीलके मनका सब शोक दूर कर दिया ॥ २१ ॥

बड़े खेदकी बात है कि इस जन्ममें तू मेरा दर्शन करनेके योग्य नहीं था, क्योंकि जिनके हृदय और मनके काम-मल दग्ध नहीं हुए हैं, उन कुयोगियोंको मेरा दर्शन नहीं होता ॥ २२ ॥ हे पापरहित ! एक बार मैंने अपना स्वरूप तुझको इसलिये दिखाया है, कि तेरे मनमें अनुराग बढ़े और जो मेरे चाहनेवाले साधक लोग हैं वे सब कामादिक विषयका त्याग कर देते हैं ॥ २३ ॥ और थोड़ीसी ही सज्जनोंकी सेवासे तेरी मति मुझमें अत्यन्त दृढ़ हो गयी। अब इस निंदित देहको त्यागकर तू मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥ और मुझसे तेरी प्रीति सृष्टिके आदि अन्तमें कभी नहीं छूटेगी और मेरी कृपासे तुझे इस जन्मका सब वृत्तान्त स्मरण रहेगा ॥ २५ ॥ इस श्लोकमें विलक्षण बात

हन्ताऽस्मिञ्जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शाऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥ २३ ॥ सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥ २६ ॥ नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ॥ गांपर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः । कालः प्रादुरभूत्काले विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥

है, कि जिसकी देह नहीं, सबसे बड़ी जिसकी श्वास, आकाशके भीतर जिसकी मूर्ति, ऐसे ईश्वर परमात्मा मुझसे कहकर चुप हो गये। मैंने भी सब बड़ोंकी कृपासे उस परब्रह्म परमेश्वरको बारंबार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और सब लज्जा त्यागकर भगवत्का भजन करने लगा। मांगलिक छिपे हुए जो परमेश्वरके चरित्र थे उनका स्मरण करने लगा और सब पृथ्वीपर फिरूं, और अपने मनको प्रसन्न रक्खूं किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता। मद, मत्सर, ईर्षा सब त्याग दी, कालकी बाट दिन-रात्रि देखता रहता ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अकस्मात सुदामा पर्वतसे बिजली निकले और उसीमें समा जाय, उसके समान कृष्णमें मेरी मति हुई और किसीमें आसक्त नहीं। आत्मा मेरी

निर्मल हो गयी, जब मृत्युका समय आया तो मृत्यु होयी॥२८॥ प्रारब्धकर्म समाप्त हुए तब पंचभूतका यह शरीर गिर पड़ा। शुद्ध भगवत्-पार्षदका देह जो शुद्ध सत्त्वमय है, वह परमात्माने मुझको दिया ॥२९॥ कल्पके अंतमें इस त्रिलोकीका संहार कर श्रीनारायणने क्षीरसमुद्रमें सोनेकी इच्छा की, और वह शेषशय्या पर सोये तब उनके श्वासके संगमें प्रविष्ट हो गया ॥ ३० ॥ जब सहस्रयुग सोते-सोते हो गये, तब उठे। ब्रह्म अन्तर्यामी ईश्वरने इसके रचनेकी इच्छा की तब मरीच्यादिऋषि हुए और प्राणसे हम हुए ॥ ३१ ॥ सब ठौरमें मेरे जानेकी गति हो गयी, बाहर-भीतर त्रिलोकीमें कहीं चला जाऊं, अखण्डित ब्रह्मचर्य लेकर महाविष्णुकी अनुग्रहसे सब संसारमें पर्यटन करता हूँ॥३२॥

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम्॥आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः॥२९॥कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणंविविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥ सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः॥मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥३१॥ अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः॥अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥३३॥ प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादःप्रियश्रवाः ॥ आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥३४॥एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ॥ भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥३५॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति॥३६॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ॥जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम्॥३७॥

श्रीईश्वरके जो दिये—सा, रे, ग, म, प, ध, नी, यह सात स्वर हैं, ब्रह्म रूप इनके ग्राम, इस वीणामें बजाता, परमेश्वरके गुण गाता, सब संसारमें घूमता-फिरता हूँ ॥ ३३ ॥ और भगवान्के चरित जब मैं गाता हूँ तो ऐसा मग्न हो जाता हूँ, मानो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द शीघ्र चित्तमें आकर दर्शन देते हैं। और मुझको बुलाते हैं ॥ ३४ ॥ आतुर चित्तवालोंको विषय स्पर्शकी इच्छासे वारंवार संसार समुद्रके तरनेकी नाव हरिके चरित्रोंका वर्णन करना है ॥३५॥ काम, लोभ, और मोहसे ग्रसित जीवका मन योगके मार्गमें यम, नियमादिसे शान्त नहीं होता, जैसे मुकुन्दकी सेवामात्रसे शान्त होता है ॥ ३६ ॥ हे पापरहित व्यासजी ! जो तुमने पूछा, वह हमने सब जन्म-कर्मका रहस्य

आपसे कहा और आपका मन प्रसन्न किया ॥३७॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुनि ! सत्यवतीके पुत्र श्रीव्यासजीसे भगवान नारदमुनि इस प्रकार कहकर उनसे आज्ञा ले बीणा बजाते, हरिगुण गाते, स्व प्रयोजन संकल्पशून्य होकर चले गये ॥३८॥ देवर्षि धन्य हैं, जो भगवानकी कीर्ति गाते हैं, आनन्दित होते हैं और नित्य प्रति बीणा बजाकर सब आतुर संसारका उद्धार करते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां व्यासं प्रति नारदपूर्वजन्मकथावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, रची भागवत व्यास । पुनि पढ़ाय निज पुत्रको, पूरी मनकी आस ॥ शौनकमुनि बोले कि हे सूतजी ! जब नारदमुनि चले गये, तब

सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योऽहं यत् कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथम० व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतमितः किमकरोद्विभुः ॥१॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ॥ परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्त्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥

उनका सब अभिप्राय सुनकर सर्व-समर्थ विभु व्यासजीने क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्माजी सरस्वती नदीके किनारे ऋषियोंका यज्ञ बढ़ानेवाला पश्चिमकी ओर शम्याप्रास नामक एक आश्रम था ॥ २ ॥ उस आश्रमके चारों ओर बेरके वृक्ष शोभा दे रहे थे । उनकी शीतल छायामें व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे परमेश्वरका ध्यान करने लगे॥३॥ भक्तियोगसे अपने निर्मल मनको निश्चल किया तो पूर्ण पुरुषका दर्शन हुआ और उनके अधीन जो माया है उसको भी देखा ॥४॥ जिस मायासे मोहित होनेसे जीव त्रिगुणसे परे भी आत्माको देह रूप मानता है और उस देहमें जो सुख-दुःख होते हैं आत्मामें मानता है ॥ ५ ॥ अनर्थनाशक साक्षात् भक्तियोग भगवान्में जब

लोग न करने लगे, तो श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवत संहिता बनायी ॥ ६ ॥ जिस श्रीमद्भागवत संहिताके हितचित्तसे सुननेसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परमपुरुषके चरणारविन्दोंमें मोह, शोक, जरा-नाशक, सुखप्रकाशक भक्ति पुरुषको उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ सो व्यासदेव श्रीभागवत संहिता रचकर और शोधकर अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाने लगे शुकदेवजी सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहते थे ॥ ८ ॥ शौनक ऋषि बोले कि हे सूतजी ! जो सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहें; सब संसारसे जिनका त्याग; आत्मामें रमण करते रहें, ऐसे शुकदेवजीने किस

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहजरापहा ॥ ७ ॥ स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् ॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८ ॥ शौनक उवाच ॥ स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ॥ कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ १० ॥ हरेर्गुणाऽऽक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः ॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥ ११ ॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म कर्म विलायनम् ॥ संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥ १२ ॥

कारण ऐसी भारी संहिताके पढ़ानेका अभ्यास किया ? ॥९॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! आत्मा राम क्रोध, अहंकाररूपी गांठें जिनकी दूर हो गयीं, ऐसे मुनि लोग फलकी इच्छा नहीं करते। विना ही फल परमेश्वरकी भक्ति करते हैं, हरिके गुण ऐसे ही हैं॥१०॥ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंमें जिनकी परम प्रीति ऐसे भगवान शुकाचार्यने यह महाव्याख्यान पढ़ा,उन शुकदेवजीको विष्णुके भक्त बड़े प्यारे हैं॥११॥अब हम तुमको परीक्षित राजऋषिके जन्म, कर्म, मुक्ति, मृत्युकी और पाण्डुपुत्रोंके स्वर्ग जाने और श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाओंकी उत्पत्ति सुनाते हैं ॥१२॥

१. शंका—सूतजीने ऐसे वचन क्यों कहे ? कि भागवत सुनने से तो श्रीकृष्णमें भक्ति होगी । इस बातसे तो यह विदित होता है, कि भागवतके सुननेसें केवल अकेले कृष्णजीकी भक्ति होती है और जो भगवानके अनन्त अवतार हैं उनमें भक्ति नहीं होगी। यह बड़े सन्देहकी बात है ?

उत्तर—मुनिलोग आदर-सत्कार करके व्यासजीको भी कृष्ण कहते हैं, क्योंकि भगवानके अनन्त नाम हैं। कृष्ण, विष्णु, जगन्नाथ, जगदीश आदि अनेक नाम हैं । तो भी व्यासजी सूतजीके गुरु हैं, कृष्ण नाम सूतजीके हृदयमें सदा प्यारा है, इस लिये सूतजीने कहा, कि भागवतके सुननेसे कृष्ण जो व्यास हैं उनमें भक्ति होगी कुछ विरुद्ध नहीं कहा, क्योंकि संसार कृष्ण भगवानका रूप है । भगवानके एक रूपमें भक्ति हुई तो अनंत रूपमें होगी। ईश्वरके रूपमें कुछ भी भेद नहीं है ।

जैसे जब परीक्षित गर्भमें थे, तब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रने जैसे रक्षा की,उस कथाको प्रारम्भ करते हैं। जिस समय युद्धमें कौरव, पांडव, धृष्टद्युम्न प्रभृतियों समेत वीर गतिको प्राप्त हो गये। भीमसेनकी फेंकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटी ॥ १३ ॥ उस समय अश्वत्थामा दुर्योधनका प्रिय मित्र, उसकी जङ्घा टूटी देखकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंका शिर काट लाया, यह बहुत बुरी बात है, इस निंदित कर्मकी शास्त्रमें बड़ी निन्दा लिखी है ॥१४॥ द्रौपदी पुत्रोंका मरना सुनकर महादुःखी हो रोती-पीटती आंखोंमें आंसू बहाती अर्जुनके पास आयी, अर्जुनने उसको रोनेसे बंद किया और कहा—॥ १५ ॥ हे भद्रे ! आगका लगानेवाला, विषका देनेवाला,

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥ उपाहरद्विप्रियमेव तस्य जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥ ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ॥ तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥ १५ ॥ तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ॥ गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे-त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥ तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ॥ पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथाऽर्कः ॥ १८ ॥

शस्त्रका बांधनेवाला, धनका चुरानेवाला, परायी भूमिका हरनेवाला, स्त्री और बालकोंका मारनेवाला, ये छः आततायी कहलाते हैं। ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाका शिर गाण्डीव धनुषके निकले बाणोंसे काटकर तेरे सम्मुख लाऊँ, उसके ऊपर खड़ी होकर तुम स्नान करोगी तो तुम्हारा पुत्रोंके मरनेका शोक दूर होगा ॥ १६ ॥ ऐसे द्रौपदीका मन मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण जिसके मित्र और सारथी, कवच पहने, गाण्डीव धनुष हाथमें लिये, कपिध्वज अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे रथपर चढ़कर दौड़ा ॥ १७ ॥ बालघाती, कंपितहृदय, प्राणोंका भय किये, अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने पीछे आता देख रथपर बैठकर जहांतक भागा

गया वहांतक भागा। जैसे शिवके भयसे सूर्य भागे थे। वामन पुराणमें इस प्रकार लिखा है "विद्युन्माली नाम एक शिव भक्त राक्षस था, उसको शिवजीने सोनेका विमान दिया, वह राक्षस उस विमान पर चढ़कर सूर्यके पीछे-पीछे फिरा करे। विमानके प्रकाशसे रात होनी दूर हो गयी, तब सूर्यने देखा कि मेरा तेज तो नष्ट हो गया। यह जानकर उसका विमान पृथ्वीपर गिरा दिया। यह सुन महादेवजी कोप करके सूर्यको मारने दौड़े। तब तो सूर्य घबड़ाकर भागे और रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जलकर काशीमें गिरे जो आजतक काशीमें लोलार्क नामक तीर्थ विख्यात है" ॥ १८ ॥ जब अश्वत्थामाके रथके घोड़े थक गये और अपने शरीरका कोई रक्षक नहीं दिखायी दिया, तब विप्रपुत्रने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्मास्त्र चलानेकी चेष्टा की ॥ १९ ॥ तब आचमनकर प्राण बचानेके लिये ब्रह्मास्त्र चलाया; परन्तु ब्रह्मास्त्रका फेरना वह नहीं

यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२ ॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः॥विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २४ ॥ तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥ २५ ॥

जानता था ॥ २० ॥ सब ओरसे प्रचण्ड तेज जब ब्रह्मास्त्रका प्रकट हुआ और प्राणोंपर आपत्ति आयी जान अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ २१ ॥ हे कृष्ण हे कृष्ण महाभाग! तुम भक्तोंके अभयकारक और संसारके जीव-जन्तुओंके सुखदायक हो ॥ २२ ॥ तुम आदिपुरुष साक्षात् ईश्वर, मायासे परे हो, अपनी चिच्छक्तिसे मायाका तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थित हो ॥ २३ ॥ मायामोहित चित्त, ऐसे जीवलोकका अपने प्रभावसे धर्मादिक लक्षण कल्याणसे तुम ही विधान करते हो ॥ २४ ॥ यह आपका अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे है और अपने जातिके और एकान्तभक्तोंके ध्यानके लिये है ॥ २५ ॥

हे देव, देव ! यह क्या है? कहांसे आया है ? सब ओरसे परमदारुण तेज आता है, हम नहीं जानते ॥२६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पार्थ ! प्राणोंपर आपत्ति आती देखकर द्रोणाचार्यके पुत्रने ब्रह्मास्त्र चलाया है। यह चलाना तो जानता है परन्तु अपने पास बुलाना नहीं जानता॥२७॥ इस अस्त्रको दूर करनेवाला और कोई उपाय नहीं है, तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने तेजसे इसका नाश करो, क्योंकि तुम दोनों बातें जानते हो॥२८॥सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! शत्रुनाशी अर्जुनने भगवान्‌की बात सुनकर, जलसे आचमन कर श्रीकृष्ण महाराजकी परिक्रमा करके, उस ब्राह्मण पर ब्रह्मास्त्र चलाया ॥२९॥ तब दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर लड़ने लगे, उनका तेज महाप्रचण्ड पृथ्वी आकाशको

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥ २७ ॥ नह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेजउन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ॥ स्पृष्ट्वाऽऽपस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥ संहत्याऽन्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥ दृष्ट्वाऽस्त्रतेजस्तु तयोस्त्रीँल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजा सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१ ॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहाराऽर्जुनो द्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥

ढककर महाप्रलय जैसा समय कर दिया, जैसे महाप्रलयमें संकर्षणके मुखकी अग्नि ऊपरसे सूर्यका तेज ये दोनों मिलकर बढ़ते हैं, उसी भांति दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज बढ़ा ॥३०॥उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज महाघोर त्रिलोकीको फूँके डालता था और जली हुई प्रजा कहती थी कि आज महाप्रलयका समय आ गया॥३१॥प्रजा और लोकका नाश होता देख, वासुदेवका मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शान्त कर अपने पास बुला लिया ॥ ३२ ॥ बड़े वेगसे उनको पकड़ कर गौतम वंशकी गौतमी कृपीसे कठोर पुत्र अश्वत्थामाको, क्रोधसे लाल-लाल तांबेके

रज्जुसे नेत्र किये यज्ञके पशुकी भांति बांध लिया॥३३॥ शोक रोष युक्त धनंजयकी कर्मनिष्ठा देख, श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थानमें ले जाकर बलपूर्वक रस्सीसे वैरीको बांधकर क्रोधित हो अर्जुनसे बोले॥३४॥ हे पार्थ! यह अधम ब्राह्मण रक्षा करने योग्य नहीं, इसको अभी मार डालो, इस पापीने सोते निरपराधी बालकोंको मारा है ॥ ३५ ॥ धर्मशास्त्रमें ऐसे लिखा है, कि जो कोई मद्यादिकसे मत्त हो, या और किसी प्रकारसे प्रमत्त हो, ग्रहवातादिसे उन्मत्त हो, सोता हुआ जीव, बालक, स्त्री, जो कोई उद्यम नहीं जानता, जो कोई अपनी शरण आया हो, इन आठों जीवोंकी धर्मवेत्ताओंको सदैव रक्षा करनी चाहिये। अपने शत्रु भी हों तो भी इनका मारना योग्य नहीं ॥ ३६ ॥

शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥ ३४ ॥ मन पार्थाऽर्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वध-स्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥ नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥४०॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥

पराये प्राण लेकर जो निर्दयी दुष्ट अपना प्राण पुष्ट करता है, उसका मारना ही श्रेष्ठ है, उस दुष्टके मारनेसे पुरुष नरकमें नहीं जाते ॥३७॥ मेरे सम्मुख आपने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी, कि हे प्राणप्रिये! जो तेरे पुत्रोंका मारनेवाला है, उसका शिर काटकर तेरे आगे लाऊँगा ॥३८॥ अतः तुम अपने पुत्रके वध करनेवाले आततायीको अवश्य मारो। हे वीर! दुर्योधन भी इन बालकोंको देख दुःखी हुआ; यह अपने कुलमें धूलिके समान है ॥३९॥ ऐसा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अर्जुनको समझाने लगे और अर्जुन यह जानता था कि यही मेरे पुत्रोंका मारनेवाला है, तो भी गुरुपुत्र समझकर मारनेकी इच्छा नहीं की॥४०॥ ऐसे धर्मध्वजा-धारी अर्जुन, जिनके श्रीकृष्ण सरीखे मित्र और सारथी,

जो अश्वत्थामाको पकड़कर अपने दलमें लाया, जहां द्रौपदी बैठी अपने मरे पुत्रोंका शोक कर रही थी, कहा—हे द्रुपदनंदिनी ! तुम्हारे पुत्रोंको मारनेवाला यह उपस्थित है ॥ ४१ ॥ पशुके समान गलेमें फांसी पड़ी, निंदित कर्मसे नीचेको शिर किये, अपराधी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देख, कृपा करके शीलस्वभाववाली द्रौपदीने नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ और अपने पति अर्जुनसे कहा, हे स्वामी ! उसका बांधना मुझको सहन नहीं हो सकता, छोड़ दो, छोड़ दो, यह ब्राह्मण हमारा परम पूज्य है, इसके मारनेसे हमारे पुत्र जी नहीं सकते, यह हत्यारा अपने कर्मोंका फल आप भोगेगा, जिस भांति मैं अपने मरे हुए पुत्रोंका शोक करती हूँ, इसी प्रकार इसकी कृपी माता भी पुत्रके मरनेका दुःख देखेगी ॥४३॥ और आपको इसके पिताने गोप्य मन्त्र सहित धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र चलाना और बुलाना दोनों बातें

तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥ उवाच चाऽसहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्याऽऽत्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाऽहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७ ॥

सिखायीं और इसको इसके पिताने ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाया परन्तु बुलाना नहीं सिखाया, इस लिये जिस द्रोणाचार्यकी कृपासे सब अस्त्र, शस्त्र, यंत्र, मंत्र, तन्त्र तुम सीखे हो, उस गुरुपुत्र को छोड़ दो ॥ ४४ ॥ क्योंकि उन भगवान् द्रोणाचार्यने तुमको पुत्र तुल्य समझा, और उन द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगिनी कृपी इस पुत्रके रहनेसे सती नहीं हुई, इस इकलौते अपने पुत्रका मुख देख-देख कर जीती है, हाय ! जैसे मैं अपने मरे हुए पुत्रोंका शोक करती हूँ ऐसे ही वह भी सोच करेगी ॥ ४५ ॥ इस लिये हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! आप कुरुकुलको कष्ट न दीजिये । वारंवार पूजन और वन्दन करने योग्य ब्राह्मण हैं ॥ ४६ ॥ पतिव्रता गौतमी इसकी माताको सोच न हो,

क्योंकि जैसे मेरे मुखपर आंसू बारंबार सलिल धारासे चले जाते हैं और मैं शिर पटक-पटक रो रही हूँ, ऐसे कहीं वह पुत्रके शोकमें न रोवे ॥४७॥ ब्राह्मणकुल जिस पर कोप करे, चाहे वह कैसा ही राजा हो उसका वंश और परिवार क्षणमात्रमें ब्रह्मतेजसे भस्म हो जाता है ॥४८॥ सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! निष्कपट धर्मशीला शान्तस्वभाववाली द्रौपदीके वचन सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बड़ी प्रसंशा की ॥४९॥ नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, देवकीनन्दन भगवान् और जो स्त्रियाँ वहाँ प्रस्तुत थीं, द्रौपदीकी बात सुनकर सबका मन प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥ उस समय भीमसेन द्रौपदीकी बातें सुन कर बड़े क्रोधसे बोले, कि ऐसे दुष्टका मारना ही अच्छा है, क्योंकि अपने मित्र दुर्योधनका और अपना दोनोंका कुछ प्रयोजन सोते हुए बालकोंके मारनेसे नहीं निकला "तुमने अश्वत्थामाके शिर काटनेकी प्रतिज्ञा की

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचाऽर्पितम् ॥४८॥ सूत उवाच ॥ धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥ नकुलः सददेवश्च युयुधानो धनञ्जयः ॥ भगवान् देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्ताञ्छिशून् वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ ५३ ॥ कुरुप्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥

थी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये" और तुम कहते हो कि हमको ब्रह्महत्याका कलंक लगेगा सो इसमें ब्रह्म अंश और ब्राह्मणका एक कर्म भी नहीं रहा। राजाओंका धर्म है कि ऐसे मनुष्योंको अवश्य मारना चाहिये॥५१॥ भीमसेनकी यह बात सुन द्रौपदी और अर्जुनकी ओर देखकर श्रीकृष्ण भगवानने चतुर्भुज रूप धारण किया और मुसकाकर बोले॥५२॥श्रीकृष्ण भगवान् वासुदेव बोले,कि आततायी वधके योग्य है और ब्राह्मण हो तो मारना नहीं चाहिये, दोनों बातें हमने कही हैं। परन्तु ब्राह्मणके लिये देहदण्ड देना उचित नहीं। हमारी आज्ञा है कि सदा ब्राह्मणोंकी रक्षा करो,उनको धन दो,पूजा करो,ब्राह्मण कैसा ही अपराध करे,परन्तु वह वधके योग्य नहीं॥५३॥ दौपदीके सन्मुख

जो आपने प्रतिज्ञा की है उसका प्रतिपालन करो और भीमसेनकी बात मानना भी अवश्य चाहिये और राजा युधिष्ठिरका वचन भी स्वीकार करना चाहिये और मेरी भी प्रसन्नता करो और द्रौपदीकी भी प्रसन्नता करो॥५४॥ सूतजी बोले कि हरिके हृदयकी बात जानकर अर्जुनने अश्वत्थामाके मस्तककी मणि अपनी तलवारकी नोकसे चीर कर निकाल ली और मूँड़ उसका मुँड़वा दिया ॥ ५५ ॥ रस्सीसे जो उसके हाथ-पांव बाँधे थे और गलेमें फाँसी पड़ी थी वह खोल दी। बालोंके मुंडनसे उसकी कांति मलिन हो गयी और तेजहीन दृष्टि आने लगा, और मणि छीन अपने दलसे बाहर निकाल दिया। मुंडन करना,धन हरना और देशसे निकाल देना,यही ब्राह्मणका मारना है और देहदंड तो

सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥ ५५ ॥ विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ॥ तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥ ५६ ॥ वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ॥ एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ स्वानां मृतानां यत् कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥५८॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ सूत उवाच ॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ॥ दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥

हत्या है ॥५६॥ सब पाण्डव शोकसे व्याकुल हो द्रौपदीको आगे कर मरे हुए पुत्रोंकी दाहक्रिया करने लगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ दोहा—अब अष्टम अध्यायकी, कथा सुनो दे कान। नृप दुर्योधनकी क्रिया, कीन्ही वेद विधान ॥ इतनी कथा कह,सूतजी बोले कि हे ऋषीश्वरो ! अश्वत्थामाके छोड़नेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाकर, दुर्योधन आदिक वीरोंकी लोथें जो रणस्थलमें पड़ी थीं उनके पुत्र-पौत्र बन्धु उठा ले गये और विधिपूर्वक उनकी दाह क्रिया की और पुत्रोंको तिलांजलि देनेके लिये द्रौपदीको साथ ले और स्त्रियोंको आगे कर गंगा किनारे गये ॥ १ ॥

उन सबोंने जल देकर बारंबार विलाप कर श्रीगंगामहारानीके अमृत रूपी जलमें स्नान किया॥२॥वहां श्रीकृष्णने युधिष्ठिर,धृतराष्ट्र,भीमादि सहित पुत्र शोकातुर कुन्ती,गान्धारी, द्रौपदी आदिको ॥ ३ ॥ जिनके पुत्र, बन्धु मर गये थे उन शोकाकुलोंको शान्त किया और जिसका कोई कुछ न कर सके ऐसे बलशाली कठिन कराल कालकी चाल सब जीवोंमें दिखाने लगे ॥ ४ ॥ कपटी दुर्योधनादिकोंसे छीना हुआ राज्य युधिष्ठिरको दिलवा दिया और द्रौपदीकी चोटी पकड़नेसे जिनकी अवस्था नष्ट हो गयी ऐसे खोटे राजाओंको मरवाकर ॥ ५ ॥ और उत्तम-उत्तम यज्ञकी सामग्री मँगाकर, तीन अश्वमेध यज्ञ करवाकर उनका पवित्र यश इन्द्रकी भांति दशों दिशाओंमें विस्तार किया ॥६॥ पाण्डु

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः॥आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले॥२॥तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम्॥गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः॥३॥सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचाऽर्पितान्॥भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाऽश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥ गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥

पुत्रोंसे आज्ञा लेकर सात्यकि और उद्धव सहित महापूजनीय द्वैपायन आदि विप्रोंने उनकी पूजा की ॥७॥ हे ऋषियो ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दकी द्वारका जानेकी इच्छा हुई और रथमें बैठ सबसे बिदा मांगी, उस समय अश्वत्थामाने अपना अपमान समझ फिर ब्रह्मास्त्र चलाया, तब वह पांच मुख बनाकर पांचों भाई पाण्डवोंकी ओरको आया और एक छोटीसी चिनगारी उसमेंसे निकली, उससे उत्तराके उदरमें अचानक आगसी भड़क उठी और हृदय जलने लगा, तब वह उस कृशानुके जलनेसे अत्यन्त व्याकुल और भयभीत हो रोती-

डकारती श्रीकृष्णके पास दौड़ी ॥८॥ आकर प्रार्थना की, हे महायोगिन् ! हे दीनवत्सल ! हे जगत्पते । मेरी रक्षा करो,मेरी रक्षा करो । इस अग्निकी मृत्युसे इस विश्वमें आपके अतिरिक्त अभयदाता मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥ ९ ॥ हे ईश ! तप्तलोहके समान बाण सामनेसे चला आता है, हे समर्थ ! हे दीनदयालु ! चाहे मेरा दाह हो जाय परन्तु मेरा गर्भ स्थित रहे ॥१०॥ सूतजी बोले, कि भक्तवत्सल भगवान् उत्तराके दीन वचन सुन, कहने लगे कि हे उत्तरे ! अश्वत्थामाने यह समझकर ब्रह्मास्त्र चलाया है कि पांडवोंके वंशमें कोई न रहे ॥ ११ ॥

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश-शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्सलः ॥ अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाऽथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान्॥आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥ व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥ अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः॥स्वमाययाऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे॥१४॥

देखा तो पांच बाण पांचों पाण्डवोंके भस्म करनेके लिये सामनेसे अग्निसम प्रकाश करते चले आ रहे हैं । यह देखकर पाण्डव अपने अस्त्र ग्रहण करने लगे ॥ १२ ॥ पाण्डवोंको अपना हितकारी जान श्रीबांकेविहारी भक्तभयहारी, मुनिमनोरंजन कोटि कष्टभञ्जन, देवकीनंदनने पांडवोंकी रक्षाके लिये चक्र सुदर्शन सँभाला ॥ १३ ॥ सब जीवमात्रके अन्तर्यामी व्यापक सकल दुःखहर्ता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपनी

---

१. शंका--ब्रह्मास्त्रका ऐसा प्रताप शास्त्रमें लिखा है कि जिस समय योद्धा लोग ब्रह्मास्त्रको धनुषपर रखकर छोड़ते हैं, तो तीन लोकके भस्म करनेको छोड़ते हैं। वह धनुषसे छूटते ही त्रिलोकीको भस्म कर डालता है। परंतु उत्तराकी देहमें ब्रह्मास्त्र लगकर उसने उसी समय उत्तराको भस्म क्यों नहीं किया ?

उत्तर--पतिहीन उत्तरा रात-दिन अत्यन्त भक्तिसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंका स्मरण करती थी, नेत्रोंसे प्रेमके आंसुओंकी धारा बही चली जाती और इस मंत्रको निरन्तर बैठी जपती रहती थी, मन्त्र--"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृपालो भक्तरक्षक जप। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥१॥" अर्थ--हे हरि, हे कृष्ण ! हे हरि, हे कृष्ण ! कृपालो ! आपको नमस्कार है, आप कृपालु हैं और भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। उसी समय अश्वत्थामाका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र उत्तराकी देहमें लगकर श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे ठण्ढा हो गया तो भी उत्तरा व्याकुल होकर कृष्ण-कृष्ण पुकारने लगी, जो ईश्वरका भजन उत्तरा न करती तो उसी समय ब्रह्मास्त्र उसको भस्म कर देता, परन्तु भजनके प्रभावसे उसका शरीर नहीं जला।

मायासे कौरवोंकी संतानकी वृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराका दुःख देखकर चक्र सुदर्शनको आज्ञा दी, कि तुम उत्तराके उदरमें जाकर ब्रह्मास्त्रकी गर्मीको शान्त करो और पीछेसे आपभी श्रीकृष्ण मुकुन्द मधुसूदन भक्तहितकारी अंगुष्ठमात्र तनु धारण कर उत्तराके उदरमें घुस गये और ऐसी शीतलाई फैलाई कि उसके हृदयका सब कष्ट शमन हो गया। उस समय परीक्षितने मधुसूदनकी मधुर मूर्तिको अपने हृदयमें धारण कर लिया और कहा, हे वैकुण्ठनाथ! इस दास पर आपने बड़ा अनुग्रह किया जो गर्भमें ही मुझे दर्शन दिया। धन्य है मेरा भाग्य, आपकी कृपाका कहाँतक उपकार वर्णन करूं ॥१४॥ हे शौनक ऋषि! जो कभी निष्फल नहीं होता, जिसका संसारमें कोई सामना न कर सके और जिसकी प्रबल प्रचण्ड ज्वालासे त्रिलोकीमें कोई जीवमात्र न बच सके, वह ब्रह्मास्त्र भी विष्णुके चक्र सुदर्शनके सम्मुख

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह ॥१५॥ मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ते पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ माया जवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशां नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥

क्षणमात्रमें शांत हो गया॥१५॥ सबको आश्चर्य दिखानेवाली भगवानकी लीलामें कुछ आश्चर्य मत मानो। वह अपनी प्रकाशिनी मायासे इस विश्वको रचते हैं, रक्षा करते हैं, संहार करते हैं और आप अजन्मा हैं॥१६॥ब्रह्मास्त्रसे छुटे पुत्रोंको देख कुन्ती, द्रौपती समेत श्रीकृष्णचंद्रके द्वारका जानेका समाचार सुन हरिके समीप आकर ॥१७॥ कुन्ती बोली, कि हे आदिपुरुष अविनाशी! प्रकृतिसे परे जो किसीके देखनेमें न आये,सब जीवोंके बाहर-भीतरकी जाननेवाले! तुम संसारमें व्यापक हो, तुमको बारंबार नमस्कार करती हूँ ॥१८॥ जो माया रूपी जवनि-कासे दृष्ट और अदृष्ट हैं, जो इंद्रियोंसे उत्पन्न हुये ज्ञानसे नहीं जाने जाते, ऐसे अविनाशी आपको मैं मूढ़ अज्ञानिनी स्त्री क्या जानूं। मूढ़ दृष्टियुक्त पुरुष तुमको नहीं देख सकते, जैसे नटकी मायाको नाटकी विद्याविहीन पुरुष नहीं जान सकते, वैसेही आप हो॥१९॥

जीवात्माके द्वारा जो परमात्माको देखनेवाले परमहंस, मनन करनेवाले मुनि, राग द्वेष शून्य निर्मल अन्तःकरणयुक्त महात्माओंके भी जाननेमें नहीं आते, भक्तियोग विधानके निमित्त आपने अवतार धारण किया है, मैं स्त्री आपकी महिमा को कैसे जानूं ? ॥२०॥ वासुदेव देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार, गोविन्द, श्रीकृष्णचन्द्र, आनन्दकन्दको बारंबार नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ऐसे कमलमालाधारी,कमलदललोचन, कमलसमान कोमल अमलवाले चरणको बारंबार नमस्कार है ॥२२॥ हे हृषीकेश ! दुष्ट कंसके भयसे देवकी बहुत दिनतक घरमें बन्द रही, तब अकेली देवकीकी आपने रक्षाकी और मेरी भी आप समर्थने पुत्रोंसहित विपत्तिसे बारंबार रक्षाकी

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ॥ नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २२ ॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचाऽर्पिता ॥ विमोचिताऽहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभायां वनवासकृच्छ्रात् ॥ मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥ विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुंवै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ २६ ॥

और अपनी माताके समान आप सदा मुझपर दया करते रहे ॥२३॥ और जिन-जिन विपत्तियोंसे रक्षाकी वह विपत्ति यह थी—भीमसेनको विषके लड्डुओंसे, लाक्षा मंदिरमें अग्निसे, पुरुष खानेवाले हिडंबादिकके दीखनेसे, खोटी सभासे, वनवासके कष्टसे, संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रसे, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे और सब ओर की विपत्तियोंसे अनेक बार रक्षाकी ॥२४॥ हे जगद्गुरो ! जहां-तहां हमपर विपत्तियां रहे, क्योंकि उन विपत्तियोंमें मोक्षदाता तुम्हारा दर्शन होता है फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥२५॥ सत्कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मी इनके होनेसे पुरुषको अभिमान हो जाता है । भक्त जन आठ पहर जिनके नामको भजें,उन श्रीकृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव,का वे उच्चारण

करनेके योग्य नहीं होते ॥२६॥ जिनको किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं जो ऐसे भक्त हैं, जिनके मनसे धन गुणोंकी वृत्ति दूर हो गयी उन आत्मा राम शांत मोक्षदाता को नमस्कार है ॥२७॥ काल ईश्वर जिसका आदि अन्त नहीं, ऐसे प्रभु समदर्शी सबको एक भाव वर्तें, सब जीवोंमें किसी निमित्तसे परस्पर क्लेश होता है ऐसे तुमको मानती हूँ ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! मनुष्योंको एक लीलामात्र चेष्टा करो, ऐसी तुम्हारी करनेकी इच्छा है वह कोई भी नहीं जानता । जिसका कोई शत्रु मित्र नहीं, उस ईश्वरमें मनुष्योंको विषममति होती है, कि इसपर कृपा करते हैं, इसपर कृपा नहीं करते ॥२९॥ हे विश्वात्मन् ! सबमें तुम व्याप्त हो, ऐसे तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म आश्चर्यमय हैं, कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप धारण करते हो, यह सब कहने मात्रके हैं ॥३०॥ जिस समय यशोदाने

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥ मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ॥ समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद् द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम्॥२९॥जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३० ॥ गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाऽश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ ३१ ॥ केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ॥ यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

तुम्हारे अपराध को देखकर बांधनेके लिये रस्सी ली, तब तुम आंसुओंसे आंखोंका अञ्जन बहाकर व्याकुल हो, नीचेको मुखकर भयके भावसे अलग जा बैठे और जिस समय दधिके भाजन फोड़ डाले उस समयकी जो आपकी दशा है, मुझको मोह कराती है, क्योंकि जो भय आपके सम्मुख थर-थर कांपता है, वह तुम यशोदासे आप डरो, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? ॥३१॥ पुण्यश्लोकोंके कीर्तनके लिये प्रिय यदुके वंशमें आपने अजन्मा होकर भी जन्म लिया, जैसे मलयागिरिपर चन्दन उपजता है, उसी प्रकार अजन्माने जन्म लिया, कोई-कोई ऐसा कहते हैं ॥ ३२ ॥ कोई मुनीश्वर ऐसा कहते हैं, कि वसुदेव देवकीकी चाहनासे अवतार लिया । आप जन्म कभी नहीं लेते, तो भी इस विश्वके

कल्याणके लिये और देवद्रोहियोंके वधके कारण अवतार धारण करते हैं ॥३३॥ और कोई ऐसे कहते हैं, कि समुद्रमें जैसे नाव डूबती हो उसकी रक्षा करे इस प्रकार महासागरसे व्याकुल पृथ्वीको निहार भूभार हरनेको ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतार लेते हैं ॥३४॥ कोई आचार्य ऐसे कहते हैं, अविद्या, काम, कर्मसे दुःखी होकर विश्वके जीव पुनः श्रवण, स्मरण करते हैं, इस कारण अवतार धारण करते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य तुम्हारी लीलाको देखते हैं और चरित्रोंको सुनते हैं, सुनाते हैं, बारंबार स्मरण करते हैं, और यश गाते हैं और मन ही मनमें मग्न होते हैं, वे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें संसारके प्रवाह नाशक तुम्हारे चरणारविंदका दर्शन करते हैं ॥३६॥ हे भक्तअभीष्टदायक ! हे प्रभो! निश्चय है, कि

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥ ॥ ३८ ॥ नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

आपके दर्शनसे ही जीते हैं, आपके सुहृद हैं उनको आप अब त्यागते हो, हम तो आपकी ही कृपासे शत्रुओंके दुःखदायक हैं; हमको आपके चरणकमलके अतिरिक्त कोई वस्तु सुखदायक नहीं है ॥३७॥ यादवों सहित हमारा विना आपके दर्शनके नामरूपसे क्या है ? जैसे विना जीवके इंद्रियोंके नाम रूपसे कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! जैसी अब पृथ्वी शोभायमान है, फिर ऐसी शोभा नहीं देगी, क्योंकि अब तो आपके वज्र, यव, अंकुश आदि चिन्हयुक्त चरणोंसे शोभित है, फिर इन चरणोंका अभाव हो जायगा ॥ ३९ ॥ आपके होनेसे यह देश, सुन्दर समृद्धिमान् है, सुन्दर-सुन्दर रूपकी औषधी, लतायें जहां-तहां उपस्थित हैं, वन, पर्वत, नदी ये सब आपके

देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ ४० ॥ इसलिये हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्तें ! अपने जनोंमें, पाण्डवोंमें, यादवोंमें यह स्नेहकी जो फांसी है इसको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह बुद्धि सदा लगी रहे और कहीं नहीं लगे, जैसे गंगाका प्रवाह निरन्तर समुद्रमें मिला रहता है ॥४२॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसखे ! हे यादवकुलभूषण ! हे पृथ्वीद्रोहीक्षत्रियवंशनाशक ! हे अक्षीणप्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गरुड़ध्वज ! हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥४३॥ सूतजी बोले; कि हे ऋषिगण ! सब महिमा जिसमें उदित है; ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनकी मधुर-मधुर पदोंसे जब कुन्तीने स्तुति की, तब भगवान परमानन्द मन्द-मन्द मुसकाये। मानो मायासे मोहका जाल डाल रहे हैं; हरिकी हँसी सब जनोंको उन्माद

अथ विश्वेश विश्वात्मन्विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभाऽवनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुत कर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचाऽर्पितः ॥ ४६ ॥

करती है॥४४॥ हे कुन्ती ! जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मांगो, मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करूँगा, ऐसा कह हस्तिनापुर आकर सुभद्रादि स्त्रियोंसे बूझकर अपने नगरको चलनेके लिए उपस्थित हुये। उस समय युधिष्ठिरने बहुत कहा कि, आपको यहांसे हमें छोड़कर जाना नहीं चाहिये। तुम्हारे जानेसे हम लोगोंको बड़ा दुःख होगा। तुम्हारे विना हमारी सहायता कौन करेगा। जो सुख हमको तुम्हारे चरणकमल कोमल अमलके देखनेसे मिलता था, वह सुख हमको इस राज्यके पानेसे नहीं मिलेगा। तुम्हारे चरणारविंदोंके विना देखे हमको धैर्य किस भांति होगा? और शत्रुओंके हाथसे कौन बचायेगा ? हे नाथ ! अब हमको शत्रुओंसे जीतनेका उपाय कौन बतायेगा ? अब हम क्या करें ? ॥४५॥ ईश्वरकी

चेष्टा करने वाले व्यासादिकोंने और अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीने अनेक इतिहासोंसे ज्ञान भी दिया तो भी शोकके कारण युधिष्ठिरका मन शान्त न हुआ ॥४६॥ उस समय राजा युधिष्ठिर अपने मरे सुहृद-बांधवोंका चिंतन कर बोले कि, हे ब्राह्मणो ! मैं उस समय अज्ञान और मोहवश हो गया था ॥ ४७ ॥ हाय ! मुझ दुरात्माके हृदयमें ऐसा अज्ञानसमूह हो गया, कि जिस देहको श्वान-शृगाल भी नहीं खाते, मैंने उसी देहके पोषणके लिये कई अक्षौहिणी सेना मारी। अक्षौहिणीकी संख्या इस प्रकार है-(२१८७० जिसमें हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े, १०९३५० पैदल) इसको अक्षौहिणी कहते हैं ॥४८॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद, मित्र, पिता, भ्राता, गुरु इनका मैं द्रोही हूँ, मेरा नरकसे करोड़ों वर्षतक भी उद्धार न होगा ॥४९॥ आप जो कहते हैं कि, धर्मयुद्धमें द्वेषियोंके वध करनेसे प्रजापालक राजाओंको पाप

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥ ४७ ॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ ४८ ॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मे युद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे नतु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥ ५१ ॥ यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा० म० प्र० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥

नहीं होता, इस शिक्षाके वचन मेरे मनको बोध नहीं करते ॥ ५० ॥ मेरे हाथसे भ्रातृगण मारे गये हैं, उनकी स्त्रियोंके मनमें उठा हुआ तीव्र द्रोह दूर करनेको मैं कितने ही गृहस्थाश्रमके कर्म करूँ तो भी मेरा उस पापसे उद्धार नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥ जैसे कीचका सना कीचसे नहीं धोया जाता, मदिरासे मदिराका पात्र नहीं शुद्ध होता; वैसे ही हठसे एक जीवकी भी हिंसा यज्ञोंके करनेसे नहीं छूटती ॥५२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा—कहौं नवम अध्यायमें, भीष्म कृष्ण संवाद। राज्य युधिष्ठिरको दियो, मेटो सकल विषाद॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिराज! युधिष्ठिर प्रजाके द्रोहसे भयभीत हो, सब धर्मके जानने

की इच्छा करके जहां भीष्मपितामह कुरुक्षेत्रमें बाणोंकी शय्यापर पड़े थे; उनके पास आये ॥१॥ और सब भाई सुवर्णभूषणभूषित घोड़ोंके रथोंपर आरूढ़ हो भीष्मपितामहके निकट पहुँचे और उसी समय व्यास, धौम्य, कृपाचार्यादिक भी वहां आ गये ॥ २ ॥ हे शौनक ! अर्जुन और द्रौपदीको अपने साथ लिये रथपर बैठे भगवान् इस प्रकार शोभित हुए जैसे यक्षों सहित कुबेर शोभा पावें ॥ ३ ॥ स्वर्गसे मानो कोई देवता गिर पड़ा है इस प्रकार पृथ्वीपर पड़े भीष्मपितामहको सब सभृत्य पाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्रने प्रणाम किया ॥ ४ ॥ वहां हे सत्तम ! देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि भीष्मपितामहके देखनेको आये ॥ ५ ॥ पर्वत-मुनि, नारद मुनि, धौम्य, भगवान् बादरायणजी,

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनंजयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुंगवम् ॥ ॥ ५ ॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः ॥ बृहदश्वो भरद्वाजःसशिष्यो रेणुकासुतः ॥६॥ वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान्गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन्ब्रह्मरातादयोऽमलाः ॥ शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥८॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देश कालविभागवित् ॥ ९ ॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १० ॥ पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टानुरागास्त्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यसहित परशुराम, ॥६॥ वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, असित, त्रित, गृत्समद, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, सुदर्शन ॥७॥ और निर्मल शुकाचार्यादिक मुनि, शिष्योंको सङ्ग लेकर, कश्यप, अङ्गिरा आदि अनेक ऋषि, मुनि आये ॥८॥ सूतजी बोले—हे ब्रह्मन् ! उस समय धर्मज्ञ पितामह उन सब महात्मा पुरुषोंको देख, देशकाल विभाग जाननेवाले भीष्मपितामहने मानसिक पूजन किया ॥९॥ जगदीश्वर, हृदयनिवासी, अपनी मायासे जिन्होंने विग्रह धारण किया, सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णका भगवतके प्रभाव जाननेवाले भीष्मपितामहने पूजन किया ॥ १० ॥ विनय स्नेहसे मग्न समीप बैठे नेत्रोंमें जल भरकर पाण्डुपुत्रोंसे प्रीतिसनी वाणीसे भीष्मपितामह बोले ॥ ११ ॥

महाकष्ट है, बड़ा अन्याय है, हे धर्मपुत्रो ! ब्राह्मणधर्म भगवानके आश्रित होकर भी क्लेशसे जीते हो ॥ १२ ॥ महारथी राजा पांडुके मरे पीछे बालक जिनकी सन्तान ऐसे, वधू कुन्तीने तुम्हारे लिये बड़ा क्लेश भोगा ॥१३॥ जो आपको अप्रिय है वह सब यह समयकी की हुई बात है, काल वह है कि जिसके वशमें सब लोग हैं, जैसे मेघपंक्ति पवनके वशमें रहती है ॥१४॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन गदाधारी, जहां अर्जुनसे गाण्डीव धनुषधारी, श्रीकृष्णसे मित्र, महाशीला द्रौपदीसी पतिव्रता स्त्री वहां भी विपत्ति पड़ी ? ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर !

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥ १२ ॥ संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ॥ युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥ सकलो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ १५ ॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ते कवयोऽपि हि ॥१६॥ तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥१७॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेदगुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥

मुझको पूर्ण विश्वास है, कि विना परमात्माकी इच्छाके कोई कार्य नहीं होता, उसकी अपार महिमा कोई नहीं जान सकता, जिनके जाननेकी इच्छा करके बड़े-बड़े कवि लोग भी मोहको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ हे युधिष्ठिर ! यह संसारके दुःख-सुख दैवाधीन हैं, हे नाथ ! हे प्रभो ! उनके अनुवर्ती जो आप हो, तो इस अनाथ प्रजाका तुम पालन करो ॥ १७ ॥ यह साक्षात् भगवान् आद्य नारायण पुरुष हैं, मायासे लोकको मोहित कर वृष्णियोंमें छिप कर विचरते हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव जो छिपा हुआ है उसको महादेवजी जानते हैं, वा देवऋषि नारदजी

१. शंका—भीष्मजीको ज्ञानियोंकी सभामें मुनि लोग महात्मा कहा करते थे, वह भीष्मजी मूर्खोंके समान खोटे वचन पांडवों को क्यों कहते थे ?
उत्तर—भीष्मजीने पांडवोंको बड़ा उन्मत्त, बड़ा अभिमानी जानकर उनके ऊपर कृपा करके उनका अभिमान दूर करनेके लिये ऐसे कूर वाक्य कहे थे।

और साक्षात् कपिलदेवजी जानते हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानसे जिनको तुम मामाका पुत्र, परम मित्र, सुहृदुत्तम मानते हो, जिन्होंने तुम्हारा मंत्रीपना किया, दूत बने, तुम्हारे प्यारे हितकारी बने, सारथी बने ॥२०॥ सर्वात्मा, समदृष्टिवाला, जिनके समान कोई नहीं, जिनको अहंकार नहीं, रागादिका जिनमें लेश नहीं ऐसे ईश्वरको नीच उच्च कर्म करना यह हमारे योग्य है ? यह बात हमारे योग्य नहीं है, यह बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहीं है ॥२१॥ हे राजा युधिष्ठिर ! यद्यपि परमेश्वरमें यह बात है, तो भी जो उनके एकान्तमें ध्यान करनेवाले भक्त हैं, उनपर दया ही करते हैं "उनकी बड़ाई और अपने भाग्यकी बड़ाई कहांतक करूँ" देखो ! जो मेरे प्राण त्यागनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ॥ अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥२१॥ तथाऽप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥ २२ ॥ भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥ स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ॥ अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥२५॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णं यथाऽऽश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥

दर्शन दिया ॥ २२ ॥ भक्तिसे जिनमें मन लगाकर वाणीसे जिनका नाम आठ प्रहर कीर्तन करे और इसी ध्यानमें देह त्याग करे तो वह पुरुष काम कर्मसे छूट जाता है॥२३॥ जब तक मैं देहत्याग न करूं, तबतक प्रसन्नवदन, कमलनयन, रुचिर मुखकमल, चतुर्भुज, देव देव तुम्हारा मार्ग ध्यान योग्य है, मेरे सन्मुख दर्शन देते रहो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि बाणोंकी शय्यापर पड़े भीष्मजीकी यह वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषियोंके मध्यमें अनेक धर्म बूझने लगे॥२५॥ जो धर्म पुरुषके स्वभावके योग्य हैं। वर्णोंके धर्म, आश्रमोंके धर्म, वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग ॥२६॥ दानधर्म, राजधर्म, मोक्ष धर्म, स्त्रियोंके धर्म, भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसे अलग-अलग कहे॥२७॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके उपाय, हे मुने ! अनेक-अनेक प्रकारके इतिहास कथाके तत्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन किये। उस समय द्रौपदी भी वहाँ भीष्मपितामहके निकट बैठी थी। जब भीष्मपितामहने कहा, कि जो कोई धर्मात्मा इस धर्मका जाननेवाला मनुष्य बैठा हो और उस सभामें कोई अधर्मी अधर्म करना चाहे, तो धर्मात्मा पुरुषोंको उचित है कि, उस पापीको पापकर्मसे बर्जे, कदाचित् वह वर्जित करनेके योग्य न हो और सामर्थ्य भी न रखता हो, तो उस सभासे उठकर चला जाय। भीष्मपितामहका यह वचन सुनकर द्रौपदी राजा युधिष्ठिर और अर्जुन की ओर देखकर हँसी और फिर अत्यन्त लज्जित होकर कहा, देखो! राजा दुर्योधनकी सभामें भीष्मपितामहके सम्मुख अधर्मसे मेरी दुर्दशा हुई और दुःशासनने मुझको नग्न करनेके लिये मेरा वस्त्र खींचा, राजा दुर्योधनने मुझे अपनी जंघापर बैठानेका उद्योग किया और सब सभा मेरा उपहास करनेके लिये उस समय उपस्थित थी। उस समय मेरी महादुर्दशा होनेपर मुझ पापिनीके पापी प्राण न निकले और मैं इतनेपर भी अपना मुख तुम लोगोंको दिखाती हूँ, ऐसे जीवनसे मरना ही भला तो था। परन्तु क्या करें, परमेश्वरकी इच्छासे किसीका वश नहीं चलता। मेरे भाग्यमें ऐसा ही लिखा था, यदि उस विपत्तिमें द्वारकापति मेरी पत न रखते तो सब धर्म डूब जाते। तब भीष्मपितामहने

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥

द्रौपदीको उदास और मनमलिन देखते ही उनके अन्तःकरणकी बात अपने ज्ञानसे जानकर कहा, हे पुत्री ! तुम अपने मनमें कुछ शोचसंकोच मत करो; यह धिक्कार मेरे ऊपर है, क्योंकि जिस समय यह महा अन्याय तेरे ऊपर हुआ था, उस समय मैं वहां था, परन्तु मेरे मनमें तब यह ज्ञान नहीं था। इस कारण, हे बेटी ! मेरा अपराध क्षमा कर। परमात्माकी इच्छा इसी भांति थी, जो परमेश्वरको करना होता है, उसका उसी प्रकार बानक बन जाता है, किसीकी चतुराई नहीं चलती, इसका एक कारण और है; वह मैं तुझसे कहता हूँ। कोई मनुष्य कैसा ही चतुर और ज्ञानी हो, परंतु अधर्मीकी संगतसे उसका धर्म-कर्म-ज्ञान-ध्यान सब नष्ट हो जाता है और समयपर काम नहीं आता। जो कोई अधर्मीका अन्न भोजन करता है उसकी बुद्धि उसीके समान हो जाती है। मैंने उन दिनों दुर्योधन अधर्मीका अन्न भोजन किया था, इस कारण मुझको उस समय धर्म-अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा और मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। अब मुझको एक महीना छब्बीस दिन अन्न जल छोड़े और बाणोंकी शय्यापर पड़े हो गया, इसलिये अब मेरे शरीरसे दुर्योधन दुराचारीके अन्नका विकार और उसके संगका प्रभाव

निवृत्त हो गया; तो अब मुझे इस बातका विचार हुआ, कि मैंने भी अत्याचारियोंके संग रहकर अत्याचार किया। हे पुत्री! इस बातपर मुझको एक दृष्टांत महाभारतका स्मरण हुआ,सुनो–त्रेतायुगमें राजा शिबिके राज्यमें एक बड़े महात्मा परमहंस पुरुष रहते थे, वे बड़े धर्मात्मा और ज्ञानवान् थे। राजा उनकी सेवा तन मनसे करता था। उस राजाके नगरमें एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका आभूषण किसी सुनारको बनानेके लिये दिया। उस सुनारने सुवर्ण तो बदल लिया और पीतलका गहना बनाकर ऊपरसे सोना चढ़ाकर ब्राह्मण को दे दिया। उस ब्राह्मणने विना दिखाये-भलाये वह गहना अपनी पुत्रीको पहना दिया। वह लड़की उस आभूषणको पहनकर अपनी ससुरालको चली गयी। उसका पति चतुर था, पीतलका गहना देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उस लड़कीको पिताके घर पहुँचा दिया। तब वह ब्राह्मण बहुत दुःख मानकर राजा शिबिके समीप गया और निवेदनपत्र दे अपना सब वृत्तांत कहा। तब राजा शिबिने उस ब्राह्मणकी बात सुनकर सुनारको पकड़ मँगाया और उसको अपराधी समझकर सब उसका अन्न-धन लुटवा कर भंडारमें मँगा लिया और उसको कारागारमें भिजवा दिया। उसी अन्नका भोजन परमहंसने भी किया। उस सुनारका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और रानीका रत्न जड़ित हार चुरा लिया और अलग किसी गुप्त स्थानमें जा छिपे। अन्न-जल भी तीन दिनतक उनको नहीं प्राप्त हुआ तब तो उपवास करनेसे सुनारके अन्नका विकार उनके उदरसे जाता रहा। फिर ज्ञान हुआ तो समझा, कि मैंने बड़ा अन्याय किया,जो रानीका हार चुरा लिया, यह समझ कर राजाके सम्मुख जाकर कहा, मैंने बड़ा पाप किया। इस पापके बदले मुझको नरक भोगना पड़ेगा, इस लिये अपने कर्मका दण्ड इसी देहसे भोग लेना उचित है, जिससे परलोककी चिंता न रहे। इस कारण हे पृथ्वीनाथ ! इस पापके बदलेमें मेरे दोनों हाथ कटवा दीजिये। मैं अपने अधर्मका दण्ड इसी जन्ममें भोग लूं। न जाने परलोकमें क्या दशा होगी। यह बात सुनते ही राजाने उदास होकर पण्डित और ज्ञानियोंको बुलाकर पूछा, कि क्या कारण है ? जो परमहंसका चित्त उस दिन ऐसा बदल गया; कि इन्होंने हार चुराया और अब आप ही उस हारको लेकर मेरे पास आये और कहते हैं कि मेरे हाथ कटवा दो। ब्राह्मणोंने अपनी विद्याके विचारसे कहा, कि हे भूपालमणि ! जिस दिन परमहंसने चोरी की थी उस दिन किसी पापीका अन्न खानेसे परमहंसकी यह गति हो गयी। राजाने पूछा तो विदित हुआ कि उसी सुनार अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि बदल गयी थी। सुनारको बुलाकर पूछा कि, तूने पीतलपर सोना कैसे चढ़ाया ? उसने

कहा कि एक घातकने किसीके बालकको मारकर उसका गहना मेरे हाथ बेचा, उस धान्यके खानेसे मैं मतिहीन हो गया ! हे द्रौपदी ! एक दिन अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसका ज्ञान नष्ट हो गया; जो उसने चोरी की और मैं तो राजा दुर्योधन अधर्मीका सदा अन्न भोजन करता था और उसके संग रहता था। मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं हुआ, जो दुर्योधनको तेरे ऊपर अन्याय करनेसे उसे वर्जित करता और वह न मानता; यह सब मेरा ही अपराध है, क्षमा कर यह कहकर भगवान् वासुदेवकी मनोहर मूर्तिको हृदयमें धारण कर नेत्र बंद कर लिये ॥२८॥ उसी समय काल आकर प्राप्त हुआ, जिसको अपनी इच्छासे मोक्ष पाना हो उसके लिये यह उत्तरायण काल है ॥२९॥ युद्धमें सदा सबके समीप रहनेवाले, सहस्रों मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले भीष्मपितामह सहस्र अर्थ कहनेवाली वाणीसे आदि पुरुष भगवान

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपुरुषे॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरः स्थिते मीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥ विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधश्रमः ॥ निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्त्वतपुङ्गवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ॥ वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥

पीताम्बरधारी चतुर्भुजके सन्मुख स्थित हो कृष्णजीमें सब संग छोड़ मन लगाया ॥ ३० ॥ बुद्धि शुद्ध और मन स्थिर करनेसे उनके पाप नष्ट हो गये और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आयुधोंके लगनेकी व्यथा दूर हो गयी और सब इंद्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रम भी उनका दूर हो गया। भीष्मजी देह त्यागनेके समय जनार्दन भगवानकी स्तुति करके बोले ॥ ३१ ॥ हे यादवकुलश्रेष्ठ! महामहिमायुक्त स्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त किसी समय विहार करनेके निमित्त योगमायाके आश्रित हो देहधारण करते हो, जिससे संसार कृतार्थ हो ऐसे भगवान् षड्गुण ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें मैंने निष्काम बुद्धि समर्पण की ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें सुन्दर, तमालवत् नीलवर्ण, सूर्यकी किरणसम प्रकाशमान तनुपर उज्ज्वल वस्त्र धारण किये, मुखारविन्द सघन समूहवत् अलकें चारों ओरको छिटक रहीं;

ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र यदुनायकमें निष्काम मेरी प्रीति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूलसे भरी हुई, इधर-उधरको बिखरी हुई अलकें और श्रमसे जिस मुखपर पसीना ऐसे आ रहा था जैसे श्याम कमलके फूलपर ओसके कण चमकते हैं। अपने महाकठिन पैने बाणोंसे जिनकी देह मैंने भेदन कर डाली। ऐसे शोभायमान कवचधारी श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी बुद्धि लगे ॥ ३४ ॥ अर्जुनका वचन सुन शीघ्र अपने रथको कौरवोंकी सेनामें खड़ा करके शत्रुओंके सेनापतियों की आयु छीनकर यह भीष्म, यह द्रोण, यह कर्ण, ऐसे उँगली दिखानेके बहानेसे सबकी आयु खींचकर अर्जुनकी जय करायी। ऐसे पार्थसखा श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी प्रीति हो ॥३५॥ दूर खड़ी सेनाका मुख देख, मोहित खिन्न अर्जुनकी कुमतिको अध्यात्मविद्या (गीताशास्त्र) के उपदेशसे दूर किया, ऐसे श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसी रहे ॥३६॥ हे नाथ ! आप अपने

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥ स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिमं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥

भक्तोंका ऐसा वचन प्रतिपालन करते हैं, कि जब महाभारत भी नहीं हुआ था तो आपने प्रतिज्ञा की थी, कि हम विना शस्त्र धारण किये केवल पांडवोंकी सहायता करेंगे और इधर मैंने भी प्रण किया था कि जो मैं भीष्मपितामह हूँ तो आपको संग्राममें व्याकुल करके तुम्हारी प्रतिज्ञा छुड़ाकर एक वार आपको शस्त्र ग्रहण करा दूँगा। आपने भक्तभावकी रीतिसे सोचा कि मेरी प्रतिज्ञा छूट जाय तो छूट जाय परन्तु मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा नहीं छूटे, क्योंकि जब भक्तकी प्रतिज्ञा छूट गयी तो फिर कोई भक्त पूर्ण प्रतिज्ञा नहीं करेगा और भक्ति संसारसे उठ जायगी। यह समझकर अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी और मैंने अपना प्रण पूरा करनेके लिये अर्जुनके रथका चक्र तोड़कर घोड़ोंका घात किया और उसके रथकी ध्वजा तोड़ धनुषको काटकर गिरा दिया। तब आप अत्यन्त क्रोधित होकर उसी रथका चक्र उठाकर मेरे मारनेके लिये मेरे पीछे

दौड़े। उस समय दुपट्टेसे कैसे शोभायमान दिखाई देते थे, जैसे श्यामघटामें चपला चमक जाती है। जब आप दौड़ते दौड़ते व्याकुल हो गये उस समय आपका पीताम्बर पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसके गिरनेका यह अभिप्राय था, कि जब आपने अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर शस्त्र धारण किया, तब पृथ्वीका हृदय कांपने लगा, कि श्रीकृष्ण भगवान्ने तो भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें अवतार लिया है, कहीं वे भी अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ दें। मेदिनीके मनका भाव जानकर उसका संशय मिटानेके लिये अपना उपर्णा धरणीपर गिरा दिया और यह कहा कि, हे वसुधे! धैर्य धारण कर, धैर्य धारण कर, शोकाकुल मत हो! मैंने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये अपना प्रण छोड़ा परन्तु तेरा भार अवश्य उतारूँगा। तू किसी प्रकारका संदेह मत कर। हे वसुमती! जब तेरे मनमें विस्मय हुआ तब मैंने उसी समय तुझको धैर्य देनेके लिये अपना पीताम्बर तुझको सौंपा, कि जबतक तेरा भार न उतारूँ तबतक मेरा उपर्णा अपने पास रखा रहने दे। ऐसे पृथ्वीको धैर्यदेनेवाले मदन

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥ विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः॥ कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाःप्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥

मोहनमें मेरी रुचि हो ॥३७॥ मुझ आततायीके तीक्ष्ण वाणोंसे आपका कवच भग्न हो शरीरसे रुधिर निकलने लगा, उस समय हठपूर्वक मेरे सम्मुख मुझे मारनेको आये "और मैं चाहता था कि पाण्डवोंकी सब सेनाको मारकर भगा दूँ, तब तुम मेरे रथके चारों ओर आकर अनेक-अनेक प्रकारके रूप आपने मुझको दिखाये थे, जिन रूपोंको देख-देख कर मेरे मनमें भ्रांति होती थी। इनमें कौनसा रूप सत्य है, कौनसा मायाका है? तुम बाणोंकी चोट सहकर मेरी सराहना करते थे, जब मैं उन बातोंको स्मरण करता हूँ तो आपके सम्मुख मेरा मुख नहीं होता। आपने मेरे अपराधपर कुछ ध्यान नहीं किया और मरते समय मुझको आकर दर्शन दिया" हे घनश्याम! यही श्यामस्वरूप मेरे नेत्रोंमें बसा रहे ॥३८॥ अर्जुनके रथरूप कुटुम्बमें कोड़ा लिये, घोड़ोंकी पचरंगी बागडोर पकड़े सारथीपनकी शोभा धारण किये, दर्शनीय भगवानमें मुझ मरणशीलकी प्रीति हो, जो आपके दर्शन करते-करते युद्धमें मरे, वे आपके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥३९॥ *ललित मतिविलास, मनोहर हास्ययुक्त नम्र विलोकन,*

श्रीकृष्णके चरित्रोंका अनुष्ठान करनेवाली मदमत्त गोपवधू भी जिनके स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥४०॥ राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनिगण नृपतिसमूहके समक्ष, जिनकी सबसे पहले पूजा हुई आज मेरा धन्य भाग्य है, कि वे दर्शनयोग्य श्रीकृष्णचन्द्र मेरी दृष्टिके सन्मुख आकर प्रकट हुए ॥४१॥ अपने रचे हुए शरीरधारियोंके हृदयमें विराजमान, जन्मरहित, मोहरहितकी मैं शरणागत हूँ। जैसे सब प्राणियोंकी दृष्टियोंमें एक सूर्य अनेक घटोंमें दिखाई देता है, ऐसे एक ईश्वर जीवोंके शरीरके भेदसे अनेक दृष्टि आते हैं ॥४२॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिगण! भगवान् कृष्णमें मन-वाणी-दृष्टिकी वृत्तियोंसहित जीवात्माको लगाकर भीष्मजी अंतःश्वासी उपरामको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ भीष्मजीको उपाधि रहित ब्रह्ममें लीन जानकर, जैसे सन्ध्या समय सब पक्षी चुप हो जाते हैं, ऐसे सब चुप हो गये ॥४४॥ देवता मनुष्योंके

मुनिगणनृपवर्यसकुलेऽन्तः सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशि गोचर एष आविरात्मा ॥ ४१ ॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ॥ प्रतिदृशमिव नैकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥ सूत उवाच॥कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ॥ ४४ ॥ तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥४५॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥

बजाये हुए बाजे बजे, राजाओंमें साधु प्रशंसा करने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४५ ॥ हे शौनकमुनि ! भीष्मजीकी दाह क्रिया कर युधिष्ठिर एक घड़ी शोकसे अपने मनमें बहुत दुःखी हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पाण्डवोंको बहुत समझाया, कि जैसी मृत्यु संसारमें भीष्मजीकी हुई है, ऐसी मृत्यु दूसरेकी होनी बहुत दुर्लभ है, संसारमें जिसने शरीर धारण किया वह अवश्य एक दिन कालकवल होगा। इसलिये इनके मरनेका सोच करना व्यर्थ है, जो कोई संसारमें नरतनु पाकर माया मोहमें लिप्त रहे और परमात्मासे विमुख रहकर कलह क्लेशमें अपने दिन व्यतीत करे और अपना तनु त्याग करे उसके लिये शोक करना अवश्य चाहिये क्योंकि वह नरकमें वास

कर कष्ट भोगेगा और भीष्मपितामहने तो संसारमें भक्तिपूर्वक धर्मसंयुक्त रहकर तनुत्याग किया। इस लिये इनके मरनेका क्या शोकसंताप है? आप तो चतुर और ज्ञानी हैं, अधिक समझाना तो मूर्खोंको चाहिये यहबात सुनकर युधिष्ठिरने अपने मनको धैर्य दिया ॥४६॥ उस समय सब मुनियोंने प्रसन्न होकर गुप्त नामोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति की और श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति हृदयमें धारण कर सब अपने-अपने आश्रमोंको गये ॥४७॥ तब श्रीयदुनाथसमेत युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र सहित तपस्विनी गान्धारीको शान्त किया ॥४८॥ धृतराष्ट्र और वासुदेवने राजा युधिष्ठिरकी सराहना की और समर्थ राजा युधिष्ठिर प्रसन्न होकर धर्म कर्मसे अपने परदादाकी राजगद्दीपर बैठकर धर्मराज्य करने लगे ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भीष्मस्तुति–युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्ण तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥४७॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८ ॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥

दोहा–कियो दशम अध्यायमें, धर्मराजसुत राज। गमन द्वारकाको कियो, कृष्णचन्द्र महराज ॥ इतनी कथा सुनकरशौनक मुनि बोले कि, हे सूतजी महाराज! जो अपनेसे अधिक राज्यकी इच्छा करते थे, उन अन्यायी दुराचारियोंको मारकर, धर्म-धारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयों समेत वैरागी होकर कैसे अपना समय व्यतीत किया, उसे वर्णन कीजिये ॥१॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि! कुरुवंशरूप दावानलसे जले वंशको श्रीकृष्णचन्द्रने फिर अपनी कृपादृष्टिसे उत्पन्न कर हस्तिनापुरके राज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुए॥२॥और राजा युधिष्ठिर, भीष्मपितामह और श्रीयदुनाथ भगवानका परमज्ञान सुनकर, सब भ्रम और भटकना छोड़ श्रीकृष्णाश्रयसे सब

भाइयों समेत समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और प्रजाका इन्द्रके समान पालन करने लगे ॥३॥ जब इच्छा होती थी तब मेघ बरसता था सब पृथ्वी कामधेनु हो रही थी, गौओंसे ब्रज पूरित हो रहा था ॥४॥ नदी, समुद्र, पर्वत, वन, वनस्पति, लता समेत सब औषधियाँ सब ऋतुमें इच्छापूर्वक फूलती-फलती थीं ॥ ५ ॥ और राजा युधिष्ठिरके राज्यमें किसी जीवको किसी समय मानसी व्यथा, रोग, शीत, उष्णादिक, अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत दुःख नहीं होते थे ॥ ६ ॥ श्रीद्वारकानाथ देवकीनन्दन अपने मित्र पाण्डवोंका दुःख दूर करनेके लिये और भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ दिनों तक हस्तिनापुरमें वास करके पश्चात् युधिष्ठिरसे सम्मति कर और आज्ञा ले भेंट प्रणाम कर, वहांके पुरुषोंसे यथायोग्य मिल प्रणामको प्राप्त हो श्री भगवान वासुदेव रथपर बैठे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी,

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥४॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥५॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजातशत्रावभवञ्जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥६॥ उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥ आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥ सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ॥ गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ॥९॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥ सत्सङ्गान्मुक्तदुस्सङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र, युयुत्सु (जो धृतराष्ट्रके वीर्यसे वेश्यासे जन्मा था) कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, ॥ ९ ॥ भीम, धौम्यऋषि और मत्स्यसुता—उत्तरा आदि मोहके वश हो, मदनमोहन ब्रजनाथ, बाँकेबिहारीके वियोग को न सह सके । मत्स्यसुता सत्यवतीका भी नाम है ॥ १० ॥ महात्मा पुरुषोंके मुखसे किसी बुद्धिमानने एक बार भी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशको सुना, उसने उसी समय सब लोभ, मोह, स्त्री, पुत्रादिकोंकी प्रीति तजी, परन्तु उस कृष्णगुण गानेवालेके सत्संगको नहीं त्याग सकता, तो साक्षात् परमेश्वर परस्पर दर्शन, स्पर्शन, संभाषण और

स्थानमें सोना बैठना भोजन नित्यकर्म करनेवाले युधिष्ठिरादिक उस बिरहको कैसे सह सकें ? ॥ ११ ॥ जिन युधिष्ठिरादिकोंकी श्रीकृष्णमें अलौकिक प्रीति, नित्यप्रति आना-जाना, हँसना, बोलना, देखना-भालना, चलना, फिरना, शयन, आसन रहता था, उनसे उनका विरह किस प्रकार सहा जाय ? ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णभगवानमें जिनके मन लग रहे हैं और नेत्रोंके पलक पलभरको नहीं गिरते, इकटक दर्शन करते ही रहते थे, वे सब अतिस्नेहके कारण प्रेमके जालमें बँधे हुये श्रीकृष्णकी पूजा करनेके लिये सामग्री लेनेको जहां तहां चले ॥१३॥ देवकीसुतकी यात्रामें किसी प्रकारका अमंगल न हो, इसलिये बांधवोंकी स्त्रियाँ उत्कण्ठा वश आँखोंके आँसू आँखोंमें ही रोके ॥१४॥ और जहाँ-तहाँ मृदंग,

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥१२॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ॥ वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥ न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कंठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यागारान्नोभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ॥ धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्ण प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदण्ड गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

शंख, वीणा, भेरी, गोमुख, धुंधरी, घण्टा, दुन्दुभी, बाजे बड़े गम्भीर शब्दोंसे बज रहे थे ॥१५॥ और कौरवोंकी स्त्रियाँ छज्जोंपर बैठी हुई श्रीमदनमोहन बाँकेबिहारीकी प्रीतिके जालमें फँसी, लज्जाकी मारी मनही मन मुसकायीं, तिरछी चितवनसे देखती थी और जय जय शब्द कर श्रीकृष्णपर सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा करती थीं ॥१६॥ महाहर्षसे श्रीकृष्णजीके ऊपर श्वेतछत्र अर्जुन लगाये खड़े थे, जिसमें सुन्दर रत्नोंकी

१. शंका—जो कुरुवंशियोंकी विधवा स्त्रियां थीं, उन्होंने प्रेम और लज्जासे मुसकाकर श्रीकृष्णको क्यों देखा ? पतिव्रता स्त्री अपने पतिको प्रीतिसे, लज्जासे अथवा मुसकानसे देखती हैं और जारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुषको विषयवासनासे देखती हैं । कौरवोंकी स्त्रियां सब बड़े-बड़े कुलकी, बड़ी पतिव्रता और शुद्ध धर्म कर्म करनेवाली, ये किसीपूर्व जन्मके पापसे विधवा हो गयीं तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु श्रीकृष्ण परपुरुष हैं उनको प्रेमसे, लज्जासे, मृदु मुसकानसे क्यों देखा ? जो कभी कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको भगवान जानकर प्रेमसे, लज्जासे, मृदु मुसकानसे देखा तो भी अयोग्य है । भगवान ही जान लिया था कृष्णको तो भी हाथ जोड़कर नमस्कार करना चाहिये था । अपनी दीनता दिखाकर कृष्णके सम्मुख खड़ी हो नेत्रोंसे उनके चरणकमलको धोकर उनका चरणामृत लेतीं । इस प्रकारसे नमस्कार करना योग्य था, फिर यह क्यों नहीं किया ?

उत्तर—कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने अपने-अपने मनमें विचार किया, कि हमारे सबके पतियोंको पांडवोंने युद्धमें मारा है अब हम सब अनाथ हो रही हैं, इस लिये हमारी रक्षा करनेवाले एक भगवान् हैं,

डंडी और मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ १७ ॥ परम अद्भुत पंखा उद्धव और सात्यकी हाथमें लिये पवन कर रहे थे और पुरुषोत्तम पर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होती चली जाती थी । उस समयकी शोभाका कौन वर्णन कर सके ? ॥१८॥ निर्गुण-सगुण परमेश्वरके जो अनेक-अनेक रूपके योग्य सत्य आशीर्वाद जहां-तहां ब्राह्मणोंके मुखसे सुनाई पड़ते थे ॥ १९ ॥ मन लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रियोंके परस्पर कहे

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

मनोहर वचन मनको मोह लेते थे ॥२०॥ उत्तम आत्मामें निश्चय करके पुरातन एक पुरुष ये हुये, समस्त जगत् जिसकी देहमें, गुणोंमें आगे जिनका जन्म, निशामें जो शक्ति उस समय आँखे न मीचें वही ये पूर्ण परमात्मा हैं ॥२१॥ अपने वीर्यसे प्रेरित सबकी जिलाने रचने

इसलिये कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने प्रेमसे श्रीकृष्णको देखा और कौरव पांडवोंका युद्ध जब नहीं हुआ था तब श्रीकृष्ण अनेक बार हस्तिनापुरको आये और हस्तिनापुरमें जो-जो कौरवोंकी सभायें थीं, उनमें बैठे और कौरवोंने बारम्बार श्रीकृष्णका अनादर किया। इस बातको कौरवोंकी स्त्रियां भली भांति जानती थीं कि हमारे पतियोंने श्रीकृष्णका निरादर किया है ऐसा स्त्रियोंने जान भी लिया तो भी कामदेवसे उन्मत्त हो रही थीं। स्त्रियां भगवानका आदर-सम्मान कभी न करतीं परन्तु विषय सुखके अभिमानसे मतवाली हो रही थीं। उन भगवानके अनादरको कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने स्मरण करके श्रीकृष्णके संग पहले तो उन्मत्त होकर बुराई कीं, फिर उसी कर्मको करके बहुत लज्जाको प्राप्त होकर मुख नीचे करके अत्यन्त लज्जासे देखा। क्षत्रियोंके कुलमें जो स्त्रियां तथा पुरुष उत्पन्न होते हैं उनका स्वभाव महाकठिन होता है; सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी अपने शत्रुको नहीं भूलते, जिसने आपको दुःख दिया है उससे बदला लेनेके लिये मरते समय अपनी संतानसे कह जाते हैं कि, शत्रुसे बदला अवश्य लेना। तब अपने प्राण छोड़ते हैं। कौरवोंकी स्त्रियां अपने-अपने स्वभावमें चतुर थीं, इस कठिन स्वभावसे कौरवोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको मुसकाकर देखा। कौरवोंकी स्त्रियोंने विचार किया कि जिस प्रकारसे हम सबको इन कृष्णने पतिहीन करके हमपर विपत्ति डाली है ऐसे ही इनकी भी सब स्त्रियां थोड़े ही दिनों में इनसे हीन हो जायेंगी, इसलिये कौरवोंकी स्त्रियोंने मन्द हास्यसे कृष्णको देखा था ॥

वाली प्रकृतिको नामरूप जिस आत्मा व्यापकमें नहीं हो सके उसमें रूप, नाम विधान करनेको, सब शिक्षाशास्त्र करनेवाले ही फिर मायामें स्थिर हुये ॥ २२ ॥ निश्चय ये परमेश्वर हैं, जिनके पदको बड़े-बड़े जितेन्द्रिय विवेकी देखते हैं, वही ये श्रीव्रजानन्द सब जीवात्माओंके शुद्ध करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ ये ईश्वर वे हैं, कि जिनकी सत्कथा सखाओंने और वेदमें गुह्य नामोंसे इनकी एकान्तकी बातें जाननेवालोंने कही गायी हैं, कि ये एक परमात्मा अपनी लीलासे संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते हैं, परन्तु इस विश्वमें आसक्त नहीं होते ॥२४॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा पृथ्वीपर अधर्मसे राज्य करते हैं,तब परब्रह्म परमात्मा सात्त्विकरूप धरकर निःसन्देह संसारस्थितिके लिये युग-

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥ सदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्य मृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबन्ति याःसख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियःसंमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥

युगमें अपना रूप धारणकर ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ वार्ता, भक्तोंपर कृपा आदि अद्भुत कर्म करते हैं ॥२५॥ यह यादवकुल अत्यन्त श्लाघा करने योग्य है, यह मधुवन अत्यन्त पुनीत स्थान है, जिसमें सब जगत्के स्वामी श्रीपतिने जन्म ले और चल फिरकर पूजनके योग्य किया ॥२६॥ यह द्वारिकापुरी पुण्य यशकर्त्री और स्वर्गके यशका तिरस्कार करनेवाली है, जिसमें नित्य अनुगृहीत दृष्टि और मधुर मुसकान युक्त श्रीकृष्णचन्द्रजीको उनकी प्रजा देखती है॥२७॥ हे सखी ! जिन स्त्रियोंका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, निश्चय उन स्त्रियोंने जन्मान्तरमें व्रत, स्नान, हवनसे ईश्वरका पूजन किया है और जिनके अधरामृतमें अपने अंतःकरण लगाकर ब्रज बाला बारंबार मोहित होती थीं ॥२८॥

शिशुपाल बड़े-बड़े नामी राजाओंको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयंवरसे सुन्दरियोंको हर लाये और प्रद्युम्न, साम्ब अनिरुद्धादि पुत्र जिनसे उत्पन्न हुए और भौमासुरको मारकर जो कई सहस्र स्त्री लाये, उन सबके धन्य भाग्य हैं ! ॥२९॥ यह परम स्त्रीभावको ही प्राप्त थीं, क्योंकि जिनमें चतुराई नहीं, शोक संताप नहीं परन्तु देवी शोभित हुई यह सब व्रत पूजनका प्रभाव है, जिन्होंने हृदयग्राहिणी मधुर वाणियोंसें ब्रजराजको मोहित कर लिया। कभी उनके घरसे बाहर नहीं निकलते थे ॥ ३० ॥ वे पुरकी स्त्रियाँ इस प्रकारसे बात करती थीं और ब्रजचंद उनकी ओर देख-देख आनन्दित होकर मुसकाते चले जाते थे ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरने भगवानको अकेला जान

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥ एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्य शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥ ३२ ॥ अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥ कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्छूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥

शत्रुओंकी शंकासे अपने स्नेहसे रक्षाके लिये थोड़ीसी सेना उनके साथ भेज दी, जिसमें हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, पैदल थे ॥ ३२ ॥ और आप चारों भाई बहुतसे कुरुवंशियों समेत पहुँचानेको संग चले जब प्रीतिकी बातें करते-करते बहुत दूर निकल गये तब विरहातुर कौरवोंको श्रीकृष्णजीने हस्तिनापुरको लौटा दिया और आप द्वारकाजीको चल दिये ॥ ३३ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुना किनारेके देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, सरस्वतीतीरके देश ॥ ३४ ॥ मारवाड़से बड़े सौवीर, आभीर देश और अन्य देशोंमें होते हुए आनर्त देशमें जो द्वारकाके समीप है पहुँचे और घोड़े थक जानेके कारण वहीं विश्राम किया ॥ ३५ ॥

जहां-जहां सूर्यास्त होनेपर श्रीकृष्णजीने विश्राम किया वहां-वहांके बासी श्रीकृष्णजीके निकट आ आकर भेंट देकर पूजन करते थे और परस्पर कहते थे कि, यही आदि पुरुष अविनाशी भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें जन्म ले अपने भक्तोंको सुख देते हैं, जिनका दर्शन शिव, विरंचि नारदादि देवताओंके ध्यानमें नहीं आता, उनका दर्शन हम लोगोंको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ। धन्य भाग्य उन वृन्दावनके ग्वाल ग्वालिनियोंके हैं, जिन्होंने व्रजमें रहकर दिनरात इनके साथ आहार, व्यवहार, रास-विलास किया और इन्होंने ही कौरवपाडवोंमें महाभारत करा कर कुरुवंश विध्वंस करा दिया। कोई यह कहते थे कि यदुवंशियोंने पूर्वजन्ममें बड़ा उग्र तप किया होगा, जिसके प्रतापसे इनका अपना हित और सम्बन्धी समझ दिन-रात संग रहकर आनन्द भोगा और उनको नाना प्रकारका सुख दिया और उन नगर निवासियोंकी नारी बांकेविहारीकी बाँकी-झांकी पर मतवाली हो परस्पर कहती थीं, आली ! इस सांवली सूरत मोहिनी मूरतने तो हमारे ऊपर ऐसी मोहिनी डाली कि न खानेकी, न पीनेकी, न सोनेकी, न जागनेकी, क्या करें, क्या न करें किसी प्रकार मनको धैर्य नहीं होता। दूसरी सखी बोली, अरी ! तेरी तो एकही दिनमें यह गति हो गयी, वे व्रजनारियां विचारी कैसे जीती होंगी, जिन्होंने जन्मभर इनके ही संग रास-विलास किया और सारी अवस्था इन्हींके नेग लगा दी

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥ इति श्रीभा० म०प्र० दशमोऽध्यायः ॥१०॥ सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव॥१॥

उनकी क्या गति होगी ? हम तो इनकी तिरछी चितवन देख तिरछी हो गयीं। एक सखी बोली, आली ! जो ये वनमाली सदा यहां रहें तो हमारा मनोरथ पूर्ण हो। एक बोली, अरी ! हमारे ऐसे भाग्य कहां हैं ? एक बोली, प्यारी ! अभीसे तो हारी-हारी बातें मत कर, अभी तो कुंजबिहारी तुम्हारी आँखोंके आगे ही फिर रहे हैं। एक बोली-अरी ! कहीं इनके फंदेमें अपना मन मत फँसा देना, ये बड़े कपटी हैं, जो अपनी प्यारी राधा ही को वनमें अकेली छोड़कर चले गये तो और किसीके होंगे। सखी ! तू नहीं जानती, ये सच्ची प्रीतिके प्रेमी हैं द्रौपदीकी कैसी लाज रखी, गजको ग्राहसे कैसे बचाया, रुक्मिणीके बुलानेसे कैसे पहुँचे, प्रह्लादके हेतु खंभ फाड़कर कैसे प्रकटे, भारतमें भारतीके अण्डे कैसे बचाये इस प्रकार सब स्त्री-पुरुष हरिके गुण गा-गाकर आनन्दित होते थे। हे शौनक ऋषि ! ऐसे ही चलते-चलते श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त देशमें पहुँचे जो द्वारकाके समीप ही है। वहां घोड़े थक गये और उसी स्थानपर द्वारकाधीशने वास किया॥२६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णस्यानर्तदेशागमनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥ दोहा—एकादश अध्यायमें, कृष्ण द्वारकाचन्द। जाय द्वारकापुरीमें, दियो सबहि आनन्द॥ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने

समृद्ध आनर्त देशसे चल द्वारकाके निकट जाकर यदुवंशियोंका विषाद शान्त करनेको पांचजन्य शंख बजाया॥१॥ जिसका श्वेत उदर श्रीभगवानके अधरकी ललाईसे लाल हो गया। कमल सदृश हस्त सम्पुटमें धरा हुआ ऐसा शोभायमान दिखायी देता था, जैसे लाल कमलके समूहमें राजहंस शोभित होता है॥ २॥ जगत्के भय नाश करनेवाले शंखकी ध्वनि सुन, कृष्णदर्शनाभिलाषी प्रजा कृष्णचन्द्रका आगमन जान सम्मुख चली॥३॥ और श्रीकृष्णचन्द्रको बड़े आदर-सत्कारसे भेंट दी। जैसे कोई सूर्यनारायणको दीपदान देता है, भगवान् तो आप आत्माराम पूर्णकाम हैं, निजलाभसे नित्य प्रसन्न हैं॥ ४॥ प्रसन्न वदनसे अत्यन्त हर्षित हो गद्गदकण्ठसे मधुर वचन बोले जैसे सुहृद

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा॥ दाध्मायमानः करकञ्जसंपुटे यथाऽब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः॥२॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम्॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः॥ ३॥ तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवाऽऽदृताः॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा॥४॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा॥ पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः॥५॥ नताः स्म ते नाथ सदाऽङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चिवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम्॥ परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परः प्रभुः॥ ६॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताऽथ सुहृत्पतिः पिता॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम॥७॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम्॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम्॥ ८॥

रक्षक पितासे बालक मीठे बोल बोलते हैं॥५॥ हे नाथ! ब्रह्मा, शिव, सनकादिक देवता इन्द्रसे नमस्कृत कुशलकी इच्छावालोंको परम आश्रयदायक, जहां कालका सामर्थ्य नहीं, ऐसे आपके चरणकमलको सदा नमस्कार करते हैं॥ ६॥ हे विश्वभावन! हम सबकी उत्पत्ति आपसे ही है, तुम ही माता हो, भ्राता हो, तुम ही पति हो, तुम ही पिता हो, तुम ही सद्गुरु हो, तुम ही हमारे परमदेवता हो, जो हम सब तुम्हारी सेवा करके कृतार्थ होते हैं॥७॥ स्वर्गवासी देवताओंका तो दूरसे ही दर्शन होता है और जिसमें सब प्रकारकी सुन्दरता और प्रेमभरी

१. शंका—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका गुरु एकही होता है, चाहे दुष्ट हो, चाहे महात्मा हो। गुरु नारायणके समान है। तीन लोकमें ब्रह्माकी बनाई हुई सब वस्तु अनेक प्रकारकी दीख पड़ती हैं, परन्तु गुरुका बहुत होना कभी भी कोई प्राणी नहीं देखता। जो कोई सज्जन ऐसा कहें कि दत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये तो यह बात सत्य है परन्तु दत्तात्रेयने चौबीस का लक्षण ग्रहण किया। २४ जनोंने दत्तात्रेयको मन्त्र उपदेश नहीं किया। उपदेश देनेवालेको शास्त्रमें गुरु कहते हैं। उपदेश देनेवाला दत्तात्रेयका एक गुरु दत्तात्रेयका मन था। ऋषियोंने भी कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको एक ही गुरु करना चाहिये।

मुसकान, मनोहर वचन, बांकी चितवन सहित आपके मुखको सदा देखते हैं, इस कारण हम ऐश्वर्यवान् हैं ॥८॥ हे अम्बुजाक्ष ! हे अच्युत ! जब आप हस्तिनापुरको अथवा मथुराको अपने इष्ट मित्रोंको देखनेको पधारते हो वह समय करोड़ वर्षके समान हमको व्यतीत होता है, जैसे सूर्यके विना नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता, ऐसे हमारी गति हो जाती है ॥९॥ प्रजाकी मधुर-मधुर वाणी सुनकर श्रीकृष्ण भक्तवत्सलने आनन्द

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाऽथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाऽक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥

सहित सबको अनुग्रहकी दृष्टिसे देख-देख कुशल-क्षेम बूझते-बूझते द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ अपने समान जिनमें बल ऐसे मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक, वृष्णिवंशोत्पन्न यादव जैसे भोगवतीकी नागरक्षा करते हैं, उसी भांति वे द्वारकापुरीकी रक्षा कर रहे हैं॥११॥

लोक शास्त्र तो गुरु एक ही होना कहता तो फिर द्वारकावासी प्रजाने है श्रीकृष्णको क्यों कहा कि आप हमारे सबके सद्गुरु हैं। इस बातसे ऐसा भी जाना जाता है कि असत् गुरु भी होते होंगे जैसे पाप पुण्य, जन्म मरण, हानि लाभ, यश अपयश, झूठ सत्य, रात दिन आदिकी जोड़ी है, उसी प्रकार सत्-असत्की जोड़ी है ?

उत्तर—त्रिलोकीके चर-अचरके लिये कृष्णभगवान्ने अवतार नहीं लिया था। जब देवताओंको राक्षसोंने बहुत ही दुःख दिया तब विष्णुभगवान्ने कुछ दिनोपरान्त श्रीकृष्णअवतार धारणकर चर-अचरकी रक्षाकी और यदुवंशियोंको रक्षा तो सब प्रकारसे निशि-दिन करते ही रहे और द्वारकावासी मनुष्योंको गर्गमुनि सदा यही शिक्षा करते रहे कि तुम सब श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म जानो। इनसे अधिक और कोई दूसरा देवता त्रिलोकीमें नहीं है। इस प्रकार गर्गमुनिके कहे हुए वाक्योंको सब प्रजाने अपने-अपने हृदयमें बसा लिया और त्रिलोकीके सब पदार्थोंको हृदयसे त्याग दिया और वेदशास्त्रके अनुसार चलने लगे । यह कर्म करना योग्य है यह करना अयोग्य है ऐसा विचार शुद्धचित हो सब प्रजागण अपने मनमें यह जानने लगे कि जो-जो वस्तु संसारमें ब्रह्माने रची है सब श्रीकृष्णमय है। उन सबको कृष्णरूप जानते थे। त्रिलोकीके चरअचरको कृष्णरूप जानकर आप हम सबके सद्गुरु हो, ऐसे वाक्य द्वारकावासी प्रजागण कहते थे ।

जिस द्वारकापुरीमें सब दिन वसंत ही ऋतु बनी रहती है, सब प्रकारके जिसमें वन, उपवन, आराम शोभित हैं, जिसमें सब ऋतुओंके पुष्प खिले पुण्यदायक वृक्ष लता मंडप शोभित हैं। फल प्रधान हो वह उद्यान कहलाता है और पुष्पप्रधान हो वह उपवन कहलाता है। खेलनेके अर्थ जो बन हैं उनको आराम कहते हैं; ये जहां शोभित हैं, और तालोंमें कमलोंकी शोभा न्यारी ही हो रही थी ॥१२॥ गोपुर द्वार मार्गोंमें उत्सव हो रहा है, तोरण बन्दनवार बँधे हैं, चित्र-विचित्र गरुड़चिह्नसे अंकित ध्वजा लग रही है, जयदायक यन्त्र जिसमें कढे ऐसे बड़े-बड़े झण्डे जहां-तहां फहरा रहे हैं जिनकी ओटसे धूप समीपमें नहीं आती ॥ १३ ॥ महामार्ग, छोटे मार्ग, दूकानदारोंके मार्ग, चौराहे सब झाड़े-बुहारे स्वच्छ हैं, उनपर सुगन्धियोंका जल छिड़का हुआ है, फल, पुष्प, अक्षत, दूर्वा, अकुंर, जहां-तहां बिखर रहे हैं ॥१४॥ मंदिरोंके

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥१२॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तःप्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फल-पुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥ १४ ॥ द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः ॥ शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥

द्वार-द्वारपर दधि, अक्षत, चन्दन, पान, सुपारी, फल, फूल कञ्चनके कलश, बलिदान, धूप, दीप शोभा दे रहे हैं। ऐसी द्वारकाकी शोभा हो रही है ॥ १५ ॥ उस समय देवकीनन्दनका आना सुनकर महाबुद्धिमान वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन अद्भुत पराक्रमी बलराम ये सब आये ॥१६॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण जाम्बवतीसुत साम्ब, अत्यन्त हर्षके कारण शयन, आसन, भोजन त्याग चल दिये ॥ १७ ॥ एक गजेन्द्र आगे कर ब्राह्मण मंगल गाते शंख बजाते हैं, ब्राह्मणोंके वेद-पाठका गम्भीर शब्द हो रहा है रथपर बैठे श्रीकृष्णको देख नमस्कार दण्डवत कर स्तुति करने लगे। जो बड़े-बड़े यादव थे वे श्रीकृष्णसे भेंट कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ सहस्रों वेश्यायें श्रीकृष्णके

दर्शनके लिये रथों पर बैठ-बैठ कर आयीं, जिनके सुन्दर-सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल अद्भुत शोभा दे रहे हैं ॥ १९ ॥ नवरस जाननेवाले नट तालके संग नाचे वह नर्तक, गानेवाले गन्धर्व, पुराणवक्ता सूत वंशोंके जाननेवाले मागध, जैसा देखें वैसा कहें, वे बन्दीजन यह सब यदुनाथके अद्भुत चरित्र गाते हैं ॥२०॥ श्रीकृष्णजीने गुणियों और पुरवासियोंको आता देख यथाविधि आदर-सम्मान किया ॥२१॥ कोई शिरसे नवें, कोई वाणीसे नवें, कोई मिलें, कोई हाथसे हाथ मिलायें, किसीको मुसकाकर देखा, चाण्डालतकका हृदय शान्त कर सबको यथायोग्य वर दिया और सब गुरु आदिकोंके साथ पुरीमें प्रवेश किया ॥२२॥२३॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिराज ! जब श्रीकृष्णजी राज

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः ॥ गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥ भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ॥ यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाऽऽश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ अशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ ॥ २४ ॥ नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम् ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

मार्गमें आये तब द्वारकाकी सब स्त्रियाँ उनका महाउत्सव देखनेको कोठोंपर जा बैठीं ॥२४॥ श्रीजीका धाम जिनका अंग ऐसे अच्युतको नित्य देखनेवाले द्वारकावासियोंकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई ॥ २५ ॥ लक्ष्मी जिनके हृदयमें वास करें, जिनका मुख सब प्राणियोंकी दृष्टियोंकी सौन्दर्यामृतपानार्थ पात्र है; जिनके बाहु लोकपालोंका निवास स्थान है ॥ २६ ॥ शुक्ल छत्र चमरकी शोभा निराले ही ढंगकी है। मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि और ही रंग दिखा रही है। श्याम अंगपर पीताम्बर वनमालाकी छवि और ही प्रकारकी थी, यह सब छवि मिलकर कैसी ज्ञात होती थी मानो, सूर्य, तारागण, इन्द्रधनुष बिजली ये एक संग विराजमान हैं। शुक्लछत्रसे सूर्यकी उपमा दी, पुष्प

वृष्टिसे नक्षत्रोंकी, चन्द्रमा सम भ्रम मण्डलाकार चमरकी, धनुषसे वनमालाकी, बिजलीसे पीताम्बरकी, इसको अद्भुतोपमा कहते हैं ॥ २७ ॥ राजभवनमें आकर अपनी मातासे मिले, फिर पिताके मंदिरमें जाकर पिताको दण्डवत् कर शिरसे सातों देवकी आदि माताओंकी आनन्दित होकर वन्दना की ॥ २८ ॥ उन्होंने पुत्रको गोदीमें बैठाया, स्नेहसे स्तनोंसे दूध टपकने लगा, हर्षसे विह्वल होकर दाहिने नेत्रोंके जलसे सींचा "पीछे हस्तिनापुरका कुशल, महाभारतका वृत्तान्त और पाण्डवोंका विजय सब ब्योरेवार सुनाया । पाण्डवोंकी विजय सुनकर वसुदेव-देवकी प्रसन्न हुए, परन्तु गान्धारीके पुत्रोंका और महारथियोंका मरण सुननेसे शोक हुआ" ॥२९॥ सब कामसे निश्चिंत हो रनवासमें प्रवेश किया, जहां सोलह सहस्र एकसौ आठ रानी छज्जोंपर बैठी देख रही थीं ॥३०॥ श्रीकृष्ण चन्द्रका दर्शन कर बहुत आनन्दित हो जैसे नियमसे व्रती

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा॥२८॥ ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उतस्थुरारात्सहसाऽऽसनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ॥ निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥ ३२ ॥ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथाऽपि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ॥ पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलाऽपि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥

बैठी थीं वैसे ही बांके बिहारीकी बाँकी छबि देखकर लज्जित नेत्र किये सोलहों शृंगार कर उठ धायीं । "याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है; क्रीड़ा करना, मलकर शिर धोना, समाजमें जाना, उत्सव देखना, हँसी करनी, पराये घर जाना, जिसका पति परदेशमें हो उस स्त्रीको ये छः काम नहीं करना चाहिये" ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक मुनि ! जिनका श्रीकृष्णमें अत्यन्त प्रेम है वे पुत्रोंसे, दृष्टिसे, अन्तःकरणसे, अपने पतिसे मिलीं, प्रेमकी विह्वलतासे लज्जित नेत्रोंका जल न रुक सका, आंसू बह निकले ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उनके पास हैं, एकान्तमें रहते हैं तो भी उनके दोनों चरणोंका नवीन-नवीन संगम क्षणभरमें कौन भूलेगा, जिनके समीपसे चञ्चल लक्ष्मी भी नहीं जाती ॥ ३३ ॥

पृथ्वीपर भाररूप जिन राजाओंके जन्म उनकी अक्षौहिणी सेनाका चारों ओर तेज फैल रहा था, ऐसे राजाओंका परस्पर वैर कराकर वध करा दिया और आप उपरामको प्राप्त हुए। जैसे बाँसके वनमें आपसमें बाँससे बाँस घिसनेसे अग्नि उत्पन्न हो वनको जलाकर आप ही शांत हो जाती है ॥३४॥ यह अपनी मायासे मनुष्यलीला करनेको अवतार धारण करते हैं। स्त्री रत्नसमूहमें स्थित भगवान् प्राकृत संसारी जीवोंकी नाईं रमण करने लगे॥३५॥ जिन स्त्रियोंके गम्भीर अभिप्राय, मनोहर वचन, सुन्दर लाज सहित हास्यसे ताड़ित महादेवजीने मोहित होकर अपना पिनाक धनुष त्याग किया, ऐसी वे स्त्रियां श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इंद्रियोंको वश करनेको कपट भावसे समर्थ न हुईं ॥ ३६ ॥ उन श्रीकृष्णजीको ये प्राकृत लोग अपने सदृश अपना साथी, अपना मित्र, मनुष्य ही मानते हैं। वे आदि पुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥ स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥ ३५ ॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ ३७ ॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ॥ न युज्यतेऽसदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ॥ ३८ ॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणे प्रथमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥ उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥ १ ॥

किसीका संग नहीं करते हैं और जो उनको अज्ञानी व्यापारी विषयी मानते हैं, वे मूर्ख हैं ॥३७॥ ईश्वरकी यही ईश्वरता है कि मायामें स्थित होकर असत् सुख-दुःखादिक मायाके गुणोंसे लिप्त न होना जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त नहीं होती है ॥ ३८ ॥ वे मूर्ख स्त्रियां श्रीकृष्णके प्रभावको न जानकर स्त्रियोंके प्रेमी एकान्तविहार शील अपने पतिको मानती थीं, जैसे अहंकारवृत्तियुक्त बुद्धि ईश्वरको स्वाधीन मानती है ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीद्वारकानाथ द्वारका प्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा—इस द्वादश अध्यायमें, प्रकटे कुरुकुलचन्द ॥ धर्मध्वज कलिमलदलन, पूरण आनँद कन्द ॥ इतनी कथा सुन, शौनक मुनि बोले—

हे सूतजी महाराज! अश्वत्थामा द्वारा छोड़े ब्रह्मास्त्रसे जो उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था उसे फिर ईश्वरने बचा दिया॥१॥उसका आश्चर्ययुक्त जन्म-कर्म, राज्यस्थिति और किस प्रकार शरीर त्याग किया वह कहो! ॥२॥ आप इसके कहने योग्य हैं, आपसे सुननेकी इच्छा करने वाले हम श्रद्धालुओंको सुनाओ। जो कुछ शुकदेवजीने वर्णन किया है ॥३॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकादिमुनि! राजा युधिष्ठिर पिताके समान प्रजाको सुख देते और राज्यका पालन करते थे; सब कामकी चाहना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करते थे ॥ ४ ॥ संपत्ति, यज्ञ, लोक, स्त्री, भाई, पृथ्वी, जम्बूद्वीपका राज्य, यश स्वर्गतक पहुँचा॥५॥हे शौनक मुनि! जिनका मन परमेश्वरमें लग रहा है, उन्हें देवताओंके

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥२॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे॥ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः॥३॥सूत उवाच ॥अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः ॥ निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥४॥ सम्पदः क्रतवो विप्रा महिषी भ्रातरो मही ॥ जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥५॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स सदा भृगुनन्दन ॥ ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा॥७॥अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥ ९ ॥ परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥

प्रिय कामादिक भी आनन्द नहीं देते, जैसे भूखोंको पुष्पमाला, चन्दन इत्यादि सुख नहीं देते, ऐसे ही राजा युधिष्ठिरको जानो॥ ६ ॥ हे भृगु नन्दन! जब माताके गर्भमें अस्त्रके तेजसे तप्त हुए वीर परीक्षितको एक पुरुष दृष्टि आया॥७॥ अंगुष्ठमात्र, निर्मल कांति, सुवर्ण समान मस्तक, अति सुन्दर, श्यामवर्ण बिजली सदृश पीतांबर पहने अच्युत भगवानको देखा॥८॥ शोभायमान लंबी-लंबी चार भुजा, मकराकृति कुण्डल, लाल-लाल नेत्र, गदा हाथमें लिये चारों ओर घूमते-फिरते हैं ॥९॥ एक ओर उल्कासी घूमती अत्यन्त श्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामें परायण, ऐसी

कौमोदकी गदाको बारंबार घुमा रहे हैं ॥१०॥ अपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजका नाश कर दिया। जैसे सूर्यके तेजको कुहर नाश करता है। चारों ओर नेत्र खोलकर देखा कि मेरे निकट कौन फिर रहा है ॥ ११ ॥ धर्मरक्षक देह विभु भगवान् उस ब्रह्मास्त्रके तेजको दूर कर, दश-मासके बालकके देखते-देखते वहां अन्तर्धान हो गये ॥ १२ ॥ तब सर्वगुण सम्पन्न अनकूल ग्रहोंके उदयके समय, वंशधारी पाण्डुके वंशमें राजा परीक्षितने जन्म लिया। मानो फिर पाण्डु राजा संसारमें जन्मे ॥ १३ ॥ प्रसन्नमन राजा युधिष्ठिरने धौम्य, कृपादिक ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके जन्म समयके सर्व कर्म स्वस्तिवाचन, मंगलाचरण आदि कराये ॥ १४ ॥ जबतक नालछेदन नहीं होता, सूतक नहीं लगता, नाल कटनेके पीछे सूतक लगता है, सुवर्ण, गौ, धरती, ग्राम, हाथी, घोड़े श्रेष्ठ समय जानकर याचकोंको देने लगे। सुन्दर-सुन्दर भोजन

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्यतत्रैवान्तर्दधेहरिः ॥ ११ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयानतम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभ ॥१५॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता सुयशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥

ब्राह्मणोंको जिमाये, पुत्रके उत्पन्न होनेके समय तीर्थमें दान करनेके समान दान किया ॥ १५ ॥ उस समय प्रसन्न ब्राह्मण नम्रीभूत राजा युधिष्ठिरसे बोले—हे गुरुकुलके मुकुटमणि ! यह पुत्र भी प्रजापालनमें आपके समान होगा ॥१६॥ कोई राजा इसके सम्मुख स्थित न होगा, यह बालक ऐसे समयमें और शुद्ध दिनमें उत्पन्न हुआ है। तुम्हारे सबके ऊपर अनुग्रहके लिये सर्वव्यापक, सबके उत्पत्तिकर्ता प्रभु विष्णु भगवानने इसकी रक्षा की है ॥ १७ ॥ इसलिये इसका नाम लोकमें विष्णुरात होगा, बड़ा यशस्वी और महाभागवत होगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥१८॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले, कि हे सत्तमो ! पुण्यश्लोक महात्मा राजर्षियोंके वंशके अनुसार साधुवादसे उनका अनुवर्ती होगा कि

नहीं होगा वह कहो?॥ १९॥ ब्राह्मण बोले, कि हे पार्थ ! यह पुरुष प्रजारक्षक साक्षात् इक्ष्वाकुके सदृश ब्रह्मण्य, सत्यवादी, दाशरथि श्रीरामचन्द्रजीके समान होगा ॥ २० ॥ यह बड़ा दानी, शरणागतका प्रतिपालक, राजा शिबि, उशीनर-देशवासी की नाईं होगा। उशीनर-देशवासी शिबिने अपना मांस बाजको देकर शरणागत कपोतकी रक्षा की। तथैव अपना यश संसारमें विस्तार करेगा। भरत समान याज्ञिकोंमें

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थ प्रजाऽविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥१९॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ॥ यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥ २० ॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥ मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवाऽसौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २२ ॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥ २३ ॥

यशविस्तारी होगा॥२१॥ धनुषधारियोंमें अग्रणी सहस्रार्जुन अर्जुनकी नाईं, अग्निके समान दुर्द्धर्ष, सागरके समान गम्भीर होगा॥२२॥ सिंहके समान विकराल, धैर्यमें हिमाचलके सदृश, वसुधाकी नाईं सहनशील और माता-पिताकी नाईं सहनेवाला होगा ॥२३॥ साम्यभावमें ब्रह्माके

---

१. शंका–परीक्षितका जन्म हुआ, तब परीक्षित के भविष्य कालकी बात युधिष्ठिरने ज्योतिषी ब्राह्मणोंसे पूछी । ज्योतिषी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! यह बालक बड़ा बुद्धिमान् होगा और सब संसारको ब्रह्माके समान एक दृष्टिसे देखेगा, दान देनेमें महादेवके समान उदारचित्त होगा, रमापति विष्णु भगवानके समान सब प्राणियोंका स्वामी होगा। संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले जो तीन देवता है उनकी समताकी उपमा कभी भी किसीने नहीं दी थी ब्राह्मणोंने तीनों देवताओंकी उपमा परीक्षितसे दी । परंतु ऐसी उपमा संसारमें, आजतक किसीको भी नहीं दी गयी और ऐसी उपमा हमने कभी सुनी भी नहीं, फिर ऐसी उपमा क्यों दी ?

उत्तर—"पितामहसमस्साम्ये" इस श्लोकमें ब्राह्मणोंने ब्रह्माको पितामह नहीं कहा था, शिवजीको गिरीश नहीं कहा था, विष्णुको रमाश्रय नहीं कहा था।पांचों पांडव-धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इनका बालक जो परीक्षित अपने दादाके समान संसारको एक-दृष्टिसे देखेगा ऐसा मुनियोंने कहा है। ब्रह्माके समान नहीं कहा है; जैसा भूमिमें सुंदर कर्म करने वाला गिरीश है, हिमवान् पर्वतकी नाईं चलायमान नहीं होता, जैसे दूसरेको वर देनेमें बड़ा उदार वैसे परीक्षित को भी गिरीश कहा। हिमवानके समान दान देनेमें उदार होगा । रमानाम प्रकाशका है, उस प्रकाशका स्वामी सूर्य है इसलिये सब प्राणियोंका स्वामी सूर्य है, सूर्य बिना प्राणोका निर्वाह नहीं होता। मुनियोंने कहाकि, जैसे सूर्य उदय होकर संसारको आनंद देता है वैसे ही परीक्षित भी राजा होकर अपनी प्रजाको आनंद देगा, ऐसा मुनियोंने कहा, कुछ ईश्वरके तुल्य परीक्षितको नहीं कहा ॥

समान होगा, शीघ्र प्रसन्न होनेमें महादेवके सदृश और समस्त जीवोंके आश्रय भगवानकी नाईं रहेगा॥२४॥ सब सद्गुणका माहात्म्य यह कृष्णभक्त होगा। उदारतामें रंतिदेव और धर्मात्माओंमें ययातिके समान होगा॥२५॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णचन्द्रके समान, प्रह्लादके समान सब सत्यपदार्थग्राही और अश्वमेध करके वृद्धजनोंकी उपासना करेगा ॥२६॥ बुद्धिमें बृहस्पति और शूरतामें परशुरामके समान होगा । सुख-विलासियोंमें इन्द्रके समान और सत्य बोलनेमें आपके सदृश होगा । राजर्षियोंका उत्पन्न कर्ता, पाखण्डियोंका शिक्षक, भूमिके व धर्मके कारणसे यह कलियुगको पकड़ेगा॥२७॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षक सर्पके काटनेसे मृत्यु होगी । सबका संग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन श्रीवैकुण्ठनाथके वैकुण्ठको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ आत्माकी यथार्थता जानकर व्यासपुत्र शुकदेवसे ज्ञान सुन श्रीगङ्गाजीमें देह त्याग अभय

सर्वसद्गुणमाहात्म्य एषकृष्णमनुव्रतः॥रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः॥२४॥धृत्या बलिसमःकृष्णेप्रह्लाद इव सद्ग्रहः ॥ आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः॥२५॥ राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं निजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ॥२७॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २८ ॥ इति राज्ञ उपदिश्य विप्रा जातककोविदाः॥लब्धोपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान्गृहान् ॥२९॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥ स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ॥ आपूर्यमाणः पितृभिःकाष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ॥ राजाऽलब्धधनो दध्याव-न्यत्र करदण्डयोः॥३२॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ॥ धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः॥३३॥

पदवीको प्राप्त होगा ॥२९॥ ज्योतिषी, ब्राह्मण, पण्डित लोग यह वचन राजासे कहकर पूजा दक्षिणा लेकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३० ॥ और संसारमें इनका नाम परीक्षित विख्यात हुआ क्योंकि गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया और उनके ही ध्यानमें रहकर सब जनोंकी परीक्षा करते थे ॥३१॥ राजकुमार दिन-दिन ऐसे बढ़ने लगे जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसीके समान पूर्ण हुए ॥३२॥ सजातियोंके द्रोह त्यागनेकी इच्छासे अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये राजा युधिष्ठिर कर दण्डके विना धन प्राप्त होता न देख विचार करने लगे ॥ यह प्रयोजन जानकर भगवानके भेजे सब भाई उत्तरकी दिशासे प्रहीण अर्थात् मरुतका त्यागा हुआ सुवर्णपात्रादि बहुत धन

लाये॥३३॥उस धनसे सब सामग्री उपस्थित कर धर्मनंदन राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध यज्ञ किये । जातिके द्रोहसे डरकर यज्ञोंसे भगवान् वसुदेवका पूजन किया॥३४। राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर ब्राह्मणोंसे यज्ञ कराया। अपने सुहृद जनोंकी प्रसन्नताकी इच्छासे कुछ मास वहाँ निवास किया ॥ ३५ ॥ इतनी कथा सुनकर सूतजी बोले, कि हे ब्रह्मन् ! कुछ दीन पीछे राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा ले द्रौपदीसे पूछ, भाई, बंधु, मित्रोंसे विदा हो, नौकर–चाकर यादवों समेत श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकापुरीको चले गये॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–त्रयोदश अध्यायमें, विदुर कथा उपरान्त ।

तेन संभृतसंभारो लब्धकामो युधिष्ठिरः ॥ वाजिमेधस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥ ३४ ॥ आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृप ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृदः प्रियकाम्यया ॥ ३५ ॥ ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ॥ ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनैर्यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथम० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयाऽवाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥ जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्म पुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः ॥ पृथा ॥३॥ गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रकी मोक्षको, वरणौं सकल वृतान्त ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! विदुरजी तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णचन्द्रकी गति सुनकर हस्तिनापुरमें आये और जिस बातके जाननेकी इच्छा थी वह सब पूरी हुई ॥१॥ और विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न किये उनमें तीन-चार प्रश्नसे ही विदुरजीकी श्रीगोविन्दमें पूर्ण भक्ति हुई । उन प्रश्नोंसे उपराम हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भाई विदुरजीको आता देख सब भाइयों समेत धर्मपुत्र धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य कुन्ती,॥३॥गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी द्रोणाचार्यकी स्त्री, जातिकी स्त्रियाँ पुत्र सहित और स्त्रियाँ ॥ ४ ॥ अत्यन्त हर्षसे जैसे देहमें प्राण आये ऐसे आये और सब बड़े आदर-सत्कारसे मिले ॥५॥

विरहकी उत्कण्ठासे प्रेमके विवश होकर नेत्रोंसे जलधारा प्रवाहित होने लगी। युधिष्ठिरने हाथ जोड़ पूजन कर आसनपर बैठाया ॥६॥ जब भोजनसे निश्चित हो आसनपर विश्राम किया, उस समय नम्रतासे प्रणाम कर उनके चरण दबाने लगे और बोले कि-आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया जो इस समय आकर दर्शन दिया॥७॥ हम पाँचों भाई आपकी छत्र छायामें बढ़े। आप हमको कभी स्मरण करते थे या नहीं? जैसे पक्षी अपने पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायामें बढ़ाता है, उसी रीतिसे आपने हमको बढ़ाया और मातासहित हमें सब विपत्तियोंसे बचाया। विषसे; अग्निसे और अनेक ठौर विघ्नोंसे रक्षा की। "जिस समय दुर्योधनादिक कौरवोंने हमको लोहेके कोटमें बन्द करके यह विचार किया कि इनको भस्म कर डालें, उस समय आपने कृपा करके पहले ही सुरंग खुदवाकर हमको बचाया। हम कहांतक आपकी बड़ाई करें, आपतो सदा हमारी सहायता करते रहे"॥८॥ इस क्षितिमण्डलमें आपने कौन वृत्तिसे शरीरका निर्वाह किया ? इस भारतवर्षमें पृथ्वीपर

मुमुचुः प्रेमवाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ॥ राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥ तं भुक्तवन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥७॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ॥ तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९ ॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता॥१०॥अपि नः सुहृदस्तात बांधवाः कृष्णदेवताः॥दृष्टाः श्रुता वा यदवःस्वपुर्यां सुखमासते ॥११॥

जितने मुख्य तीर्थक्षेत्र हैं, वह सब आपने किये॥९॥ आप सरीखे महात्माओंकी तीर्थयात्रा तीर्थोंपर कृपा करनेके लिये है, कुछ अपने अर्थ नहीं। आप सरीखे भागवत तो आप ही तीर्थरूप हैं। आपके दर्शनसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। अपने अन्तःकरणके निवासी गदाधारी भगवान्से मलिन जनोंके कुसंगसे तीर्थ भी मलिन हो जाते हैं! उनको फिर सत्कर्मअनुष्ठानी, वेदांती, ज्ञानी, भगवद्भक्त, पवित्र, सत्त्वादि गुणयुक्त ब्राह्मण पवित्र करते हैं। भगवद्भक्तोंके सत्संगसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं ॥ १० ॥ हे पिता! आपने बहुत तीर्थ किये, परन्तु द्वारकापुरीमें भी गये थे या नहीं? क्योंकि हमारे सुहृद-बान्धव श्रीकृष्णादिक यादवोंको आप भलीभांति जानते हैं। हमको जबसे राज्य देकर गये हैं तबसे उनका कुछ समाचार नहीं मिला, न जानें वे अपनी पुरीमें कैसे हैं, कैसे नहीं, वह कृपा करके कहो ? ॥ ११ ॥

धर्मराजने जब यह पूछा, तब विदुरजीने सब तीर्थोंका वृत्तान्त कहा, जैसा कुछ देखा था वैसा। परंतु यदुकुलके क्षय होनेका वर्णन नहीं किया ॥१२॥ यह भलीभांति निश्चित है कि जो बात अप्रिय है, सहने योग्य नहीं है वह मनुष्योंको आपही प्रकट हो जाती है। दयालु विदुरजीने अपने सामने उनको दुःखी देखना उचित न जानकर नहीं कहा ॥१३॥ "जब रनवासमें स्त्रियोंने विदुरजीके आनेका वृत्तान्त सुना, तब द्रौपदी आदिने अपने पास बुलाया और परमेश्वरका परम भक्त जान विदुरजीको दण्डवत की और उनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुईं। फिर विदुरजीने धृतराष्ट्रके भवनमें जाकर उन्हें और गांधारीको दण्डवत की। तब धृतराष्ट्रने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया, नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे भ्रातः! तुम्हारे जानेके पीछे मेरे ऊपर बड़ा कष्ट पड़ा और हमारे सब पुत्र मारे गये, राज्य नष्ट हो गया बात सुनकर विदुरजीने कहा—हे

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत ॥ यथाऽनुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२ ॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ॥ नावेदयत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालं यथाऽवात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४ ॥ अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥

भ्रातः! हरिइच्छा बलवती है उसकी गतिसे किसीकी पार नहीं बसाती। परमेश्वरकी इच्छा इसी प्रकार थी, उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए संसारमें अवतार लिया था। दैवगति किसीसे जानी नहीं जाती, अब धैर्य धारण करनेका समय है? यह तो कहो कि राजा युधिष्ठिर तुम्हारा आदर-सत्कार किस प्रकार करते हैं? धृतराष्ट्रने उत्तर दिया कि युधिष्ठिर तो हमसे बड़ा स्नेह रखता है, मुझको अपने पिता और गांधारीको माताके समान मानता है और सब भाई भी हमसे अधिक रीति-प्रीति रखते हैं। परंतु भीमसेन, युधिष्ठिरके पीछे हमको दुर्वाक्य कहता है, यह दुःख नहीं देखा जाता" धृतराष्ट्रकी बातें सुन कुछ काल विदुरजीने वहां वास किया और देवताओंके समान सुखी हो बड़े भ्राताके कल्याणके लिए सबसे रीति-प्रीति करते रहे ॥ १४ ॥ यमराज * मांडव्यके शापसे शूद्रयोनिमें विदुर हुये थे तबतक यमराजके

* इसकी कथा इस प्रकार है—किसी देश में किसीका धन चुराकर भागे और राजाके दूत इनके पीछे दौड़े, यह चोर भागते-भागते वहां पहुँचे जहां मांडव्य ऋषि तप कर रहे थे, उनके निकट जाकर छिप रहे; राजाके दूतने उनके समीप जाकर ऋषि समेत चोरोंको पकड़कर राजाके पास ले गये, राजाने आज्ञा दी कि सबको शूली दे दो, राजाकी आज्ञासे चोरोंको शूलीपर चढ़ाना आरंभ किया, मांडव्य ऋषिकी ओरको जो देखा तो उनको ऋषि जान शूलीसे उतार लिया और दंडवत प्रणाम कर अपना अपराध क्षमा करा उनको प्रसन्न किया। पीछे मांडव्यऋषि धर्मराजके निकट जाकर बड़े क्रोधसे बोला कि, अरे यम!—तूने मुझे किस अपराधसे शूलीपर चढ़ाया? तब यमराज बोले

स्थानमें अर्यमा काम करते रहे ॥१५॥ राजा युधिष्ठिर राज्य पाकर पोतेको कुलोद्धारक देख लोकपाल समान भ्राताओं सहित लक्ष्मीसे परम आनंदित हुए॥१६॥ गृहके व्यापारमें ऐसे आसक्त हो गये; कि उन्हें विदित न हुआ कि परम दुस्तर कालका समय आ पहुँचा॥१७॥ यह अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले-हे राजन् ! शीघ्र निकलो, भयंकर भय आता है, वह देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! जिस कालके लौटानेका कोई उपाय नहीं है, जो कहींसे कभी भी नहीं जा सकता है, यह भगवान् काल हम सबको ऐसे ही आता है ॥ १९ ॥ जिस कालसे ग्रसा हुआ जीव अधिक प्रियप्राणोंसे तत्काल वियोग पाता है और धन पुत्रादिककी तो बात ही क्या है ? ॥ २० ॥ जब पिता,

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालःसर्वेषां नः समागतः ॥१९॥ येन चैवाऽभिपन्नोयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥ अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥ हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥ २३ ॥

भ्राता,सुहृद, पुत्र ही सब तुम्हारे मारे गये । सब आयु तुम्हारी हो चुकी, देहको बुढ़ापेने घेर लिया तो भी पराये घरमें रहते हो ॥ २१ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि, इस जीवको जीवन की बड़ी आशा लग रही है वह तुमको भी है, भीमसेनके दिये हुए टुकड़े श्वानकी नाईं तुम खाते हो ॥ २२ ॥ तुमने भी तो अपनी चलतीमें उनके साथ कुछ कसर नहीं की । लोहेके कोटमें बंद करके आग लगाई, लड्डुओंमें विष दिया, उनकी स्त्री द्रौपदीकी सभामें अवज्ञा की, पृथ्वी उनकी छीन ली, धन–धाम उनका लिया अब उनका दिया अन्न खाकर शरीर

कि महाराज ! आप बालकपनमें टीड़ीको कुशाके अग्रभागसे छेदकर खेले थे उसके बदलेमें शूलीपर आप चढ़ाये गये, यमराजका वचन सुन मांडव्य ऋषिने यमराजको शाप दिया कि मैंने बाल अवस्थामें अज्ञानसे यह काम किया, उसका तूने मुझे ऐसा भारी दंड दिया अब तू शूद्र हो जा, यह वही विदुरजी हैं ।

पुष्ट करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलेगा ॥ २३ ॥ कृपणपनसे जीनेकी इच्छा अच्छी नहीं और जो इच्छा भी है तो यह तुम्हारा जराजीर्ण शरीर सब प्रकार क्षीण होगया है, जैसे पुराने वस्त्र त्यागने योग्य होते हैं ऐसी तुम्हारी देहकी गति है, अब धैर्य धरो ॥ २४ ॥ जो पुरुष विरक्त बन सब बन्धनोंसे मुक्त हो इस देहको त्यागे वह अविज्ञातगति स्वार्थरहित धीर कहलाता है ॥२५॥ जो कोई अपने आप

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥२४॥ गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥२५॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥

अथवा पराये उपदेशसे आत्माको पहिचान कर हृदयमें परमेश्वरके चरणारविंदोंको धारण कर घर त्याग संन्यास धारण करते हैं वे ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ अपने सम्बन्धियोंसे छिपकर तुम उत्तर खण्डको चलो, इसके पीछे पुरुषोंका गुणनाशक बहुत बुरा समय आयेगा ॥ २७ ॥ अजमीढ़वंशी जन्मान्धको इस भांति छोटे भाई विदुरजीने जब समझाया, तब धृतराष्ट्र अपना चित्त दृढ़कर कुटुम्बके

---

१. शंका—धृतराष्ट्र और पांडुका छोटा भाई विदुर कैसे था ? सब शास्त्रोंमें और भारत इत्यादि इतिहासमें ऐसा लिखा है, कि अपने जन्म होनेके पीछे अपनी माताके उदरसे जो बालक उत्पन्न होता है, उसको शास्त्रमें और लोकमें छोटा भाई कहते हैं, दूसरी मातासे उत्पन्न बालक लोकमें और शास्त्रमें छोटा भाई नहीं कहलाता । धृतराष्ट्र और पांडु क्षत्राणीके पुत्र और विदुर शूद्राका पुत्र, फिर धृतराष्ट्रका छोटा भाई विदुर कैसे हुआ ?

उत्तर—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके विवाह होनेकी विधि शास्त्रमें अथवा लोकमें जो कही है, वही विधि श्रेष्ठ है, और प्रथम है । शास्त्रसे और लोकसे जो विवाह की विधि है उसको अनु कहते हैं, शास्त्रमें उस अनुकी विधि माने और न्यायसे जो जन्म ले उसको मुनीश्वरलोग अनुज कहते हैं। इसीलिये विदुरका नाम अनुज है । विदुर वर्णसंकरको भी कहते हैं, अथवा अपने जन्मके पीछे अपनी मातासे जो जन्म लेता है उसको भी शास्त्रमें और लोकमें अनुज कहते हैं । शब्दके अर्थ अनेक प्रकारके हैं, परन्तु जो अर्थ जिस स्थानमें जैसा घट जाय अथवा योग्य जान पड़े वही अर्थ उस पदका लगाना चाहिये । जैसे पय पानीको कहते हैं और पय दूधको भी कहते हैं । गो धेनुका भी नाम है, गो पृथ्वीका भी नाम है, गो जलका भी नाम है, गो इंद्रियोंका भी नाम है, गो वाक् स्थानका भी नाम है । देखिये, गो शब्दके कितने अर्थ हुये, इसलिये "विदुरेणानुजेन" ऐसा वचन व्यासजीने कहा, धृतराष्ट्रका छोटा भाई नहीं कहा ।

लोगोंसे स्नेह त्याग विदुरजीने जो मुक्ति मार्ग बताया उस पर आरूढ़ होकर चले ॥ २८ ॥ पतिके जानेका समाचार सुन सुबलदुहिता, प्रतिव्रता साध्वी गान्धारी भी उनके संग चलनेको उपस्थित हुई। संन्यस्त दण्डवालोंको अतिहर्ष देनेवाले हिमालयको गये, मनस्वी शूरोंको जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्यारे लगते हैं वैसे जानो ॥ २९ ॥ युधिष्ठिर सन्ध्यावन्दनसे निश्चित हो, अग्निहोत्र कर, तिल, गौ, भूमि, सुवर्णदान दे ब्राह्मणोंको नमस्कार कर माता पिताकी वंदना करने के लिये उनके मन्दिरमें गये। वहां विदुर, धृतराष्ट्र गांधारीको न देखा ॥ ३० ॥ उद्विग्नमनसे वहां बैठ गये और संजयसे पूछा, कि हे संजय! हमारे चाचा वृद्ध नेत्र हीन कहां चले गये! ॥ ३१ ॥ पुत्रोंके

पति प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥ ॥ २९ ॥ अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ॥ गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥ ३० तत्र संजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥ अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृद् ॥ जानासि चेत्कथय नः कृपया वेत्थ वै ऋषेः ॥३२॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः सभार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥ ३३ ॥ पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३४॥ सूत उवाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥ ३५ ॥

शोकसे महा व्याकुल हमारी चाची भी नहीं दिखाई देती, यदि आपको विदित हो तो कहो, क्योंकि व्यासजी महाराजकी कृपासे तुम सब जानते हो ॥ ३२ ॥ मुझ बुद्धिहीनमें अपराध विचार बन्धुओंके मारनेसे दुःखी होकर स्त्री सहित गंगामें तो नहीं डूब मरे? ॥ ३३ ॥ जब हमारे पिता परमधामको चले तो हम सबको बालक जानकर अनेक कष्टोंसे हमारी रक्षाकी और पाला, वह हमारी चाची और चाचा यहांसे कहां चले गये? ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक मुनि! संजय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको महा दुःखी देख कर अति पीड़ित हुए

और मुखसे कुछ नहीं कह सके॥२५॥ दोनों हाथोंसे आंसू पोंछ बुद्धिको सावधान कर मनको धैर्य दे प्रभुके चरणोंका स्मरण करते अजातशत्रु युधिष्ठिरजीसे बोले ॥ २६ ॥ संजय बोले, कि हे कुरुनन्दन ! तुम्हारे पिताके समाचार मैं कुछ नहीं जानता और गांधारी तुम्हारी चाचीके जानेकी भी मुझको कुछ सुधि नहीं। इन महात्माओंसे वंचित हुआ हूँ ॥ २७ ॥ उसी समय कहींसे घूमते-घामते नारदजी भी तुम्बुरु गंधर्वको संग लिये आये। उनको देख भाइयों समेत उठ पूजा-सत्कार प्रणाम कर बोले ॥३८॥ कि हे भगवन् ! हमारे चाचा—चाची न जाने कहाँ चले गये। पुत्रोंके निधन होनेसे महा दुःखी हो तपस्विनी गांधारी कहां गयी ? ॥३९॥ अपार शोक सागरमें डूबे हुएको धैर्य रूपी

विमृज्याऽश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥३६॥ संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ॥ गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥ ३७ ॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सह तुम्बुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥३८॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नाहं वेद गतिं पित्रो-र्भगवन्क्व गताावितः ॥ अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ ३९ ॥ कर्णधार इवापारे भगवन्पारदर्शकः ॥ सर्वज्ञः सर्वगो धीमान् नारदोऽज्ञाननाशकः ॥ ४० ॥ अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥४१॥ लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥४२॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥ ४३ ॥

केवट बनकर नारदजी आप आ पहुँचे। हे अज्ञाननाशक ! महाबुद्धिमान्, सर्वज्ञानी, विघ्नहर्ता, सबकी विपत्तिमें आकर सहायक होते हो, जो उनको कहीं सिंह-व्याघ्रने खा लिया अथवा कहीं कुएँमें डूबकर मर गये तो मेरी बड़ी दुर्नामता होगी। किसीके सम्मुख मुख दिखानेका भी न रहूँगा। आप दिव्यदृष्टि हैं, दया करके बता दीजिये, हम उनकी विनती कर उनको यहां लौटा लायेंगे। क्योंकि भोजन-छाजनमें अत्यन्त दुःखी होंगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके वचन सुनकर मुनिसत्तम भगवान नारदजी बोले, कि हे राजन् ! शोक-संताप मत करो। यह सब संसार ईश्वरके वशमें है ॥ ४१ ॥ जो सबका ईश्वर है, उसको अपने पालक सहित सब लोग भेंट देते हैं, वही परमात्मा सब जीवोंका संयोग-वियोग कराता है ॥४२॥ जैसे बलवान् बैल नाथके वशमें होकर अपने स्वामीका सब कार्य कर बलि देता है, ऐसे यह करना यह न करना ऐसी वेदकी

वाणी रूप डोरमें वर्णाश्रमधर्मरूप नाथसे बँधे सब जीव परमेश्वरको बलि देते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे खेलनेवालेकी इच्छासे खेलकी सब सामग्रियोंका संयोग-वियोग हो जाता है उसी प्रकार ईश्वरकी इच्छासे सब जीवोंका संयोग समझना चाहिये ॥४४॥ लोकको ध्रुव मानो, अथवा अध्रुव मानो, वा दोनों मत मानो, मोहसे, स्नेहसे, सब प्रकारसे शोक करना नहीं चाहिये ॥ ४५ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह जो अज्ञानपनकी तुम्हारी व्याकुलता है इसको त्यागो! क्योंकि तुम कहते हो कि अज्ञान, अनाथ, कृपण, अन्धे मुझ विना वनमें कैसे रहेंगे और उनके खानेकी सुध कौन लेगा ? यह सोच करना तुम्हारा सब वृथा है ॥४६॥ काल, कर्म,गुण, इनके अधीन यह पञ्चतत्त्वका बना हुआ देह है, यह किसकी

यथा क्रीडोपस्कराणां सयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४४ ॥ यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥ सर्वथा हि न शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४५ ॥ तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरन्वनमाश्रिताः ॥ ४६ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४७ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४८ ॥ तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ॥ अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४९ ॥ सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥ ५० ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ५१ ॥

रक्षा कर सकता है।जैसे अजगर सर्पग्रस्त जीव और को कैसे बचा सकेगा ? ॥४७॥ चार पगवाले पशु आदि तृणादिकको खाते हैं, हाथ जिनके हैं वे जीव और भी सूक्ष्म वस्तुका भक्षण करते हैं, ऐसे ही सब जीवमात्र जीवोंका जीव बचाते हैं परन्तु सब कालग्रस्त हैं ॥४८॥ हे राजन् ! सर्वद्रष्टा एक है, सब आत्मायें एक हैं। भीतर-बाहर जिसमें नहीं, भोक्ता और भोग्य रूपहोकर मायासे बहुत दीखते हैं इसलिये सजातीय, विजातीय स्वगत–भेदशून्य यह भगवान् प्रकाश करता है ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! वह भगवान भूतभावन कालरूपने सुरद्रोहियोंके मारनेके लिए पृथ्वी पर मनुज अवतार धारण किया है ॥ ५० ॥ देवताओंका तो सब कार्य कर चुके हैं केवल यदुकुलकी ओर बाट देख रहे हैं, तबतक तुम

भी यहां रहो, जबतक ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यहां रहें, पीछे तुम भी चले जाना ॥५१॥ हे राजन्! धृतराष्ट्र सहित गांधारीको विदुर लिये दक्षिणहिमाचलकी ओर ऋषियोंके आश्रममें गये हैं ॥५२॥ जहां गंगाजी सब ओर बहकर आप सात रूप हुई हैं, सातों ऋषियोंकी प्रीतिके अर्थ सप्तस्रोत विख्यात हैं ॥ ५३ ॥ वहां सदा स्नान कर, यथाविधि अग्निहोत्र कर, वायु भक्षणके आश्रय रहकर, अतिशान्त मनसे परमात्माके चरणोंमें चित्त लगा सब कुटुम्बसे स्नेह तज वहां वास करेंगे ॥ ५४ ॥ आसन जीत, श्वास जीत, इंद्रियोंका प्रत्याहार करके, हरिभावनासे दग्ध होकर, राजस, तामस, सात्त्विक सब मल जिनके भस्म हो गये ॥५५॥ विशेष ज्ञानमय व्यापक जिनकी देह, जीवान्तर्यामी,

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५२ ॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५३ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५४ ॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजः सत्त्वतमोमलः ॥ ५५ ॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञ प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥ ५६ ॥ ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ॥ निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥ ५७ ॥ तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन् परतः पञ्चमेऽहनि ॥ ॥ ५८ ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥ धृतराष्ट्रस्य मोक्षः स्याज्ज्ञानेन विदुरस्य च ॥ ५९ ॥

सर्वाधार, बृहत्त्वादि गुण विशिष्ट, चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माका संयोग कर, तद्रूप होकर परमात्मामें लीन होंगे । जैसे घट फूटनेसे घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है ॥५६॥ मायागुणोंकी वासना जिनसे सर्वत्र दूर हो गयी, इंद्रियाँ अन्तःकरण जिनका शुद्ध हो गया, सब प्रकारके और जिन्होंने त्याग किये, खम्भके सदृश अचल हो गये ॥ ५७ ॥ सब कर्मसे संन्यस्त हैं, उसमें कोई विघ्न मत करना, हे राजन्! वे आजसे पांच दिन उपरान्त ॥ ५८ ॥ अपना शरीर त्याग करेंगे और देह आप ही भस्म हो जायगी, विदुरजीके ज्ञानसे धृतराष्ट्रको मोक्ष

प्राप्त होगा ॥ ५९ ॥ पर्णशालामें अग्निसे जब देह भस्म हो जायगी, तो गांधारी उनकी स्त्री भी उसी अग्निमें प्रवेश करके सती हो जायगी॥६०॥ हे कुरुनन्दन! विदुरजी यह आश्चर्य देखकर अतिहर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चले जायेंगे ॥६१॥ ऐसे कह तुम्बुरु गन्धर्व सहित नारदजी स्वर्ग लोकको चले गये और युधिष्ठिर उनका वचन मान हृदयसे सब शोक-संताप त्यागकर वासुदेव भगवानके ध्यानमें लवलीन हुए ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—पार्थ द्वारकाकी कथा, जैसे वरणी जाय । भयो दुखी सुन धर्मसुत, कहौं सकल समुझाय ॥ जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द देवकीनन्दनका

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ६० ॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशम्य कुरुनन्दन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वाऽथारुहत् स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ६२ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया॥ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्॥१॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥

समाचार बहुत दिनोंसे न मिला तो युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, कि भाई ! तुम द्वारकाको जाओ और द्वारकानाथकी सुधि लाओ। धर्मराजकी यह बात सुनकर, बंधुके देखनेकी इच्छासे पार्थने पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधिके लिये द्वारकाको गमन किया ॥ १ ॥ हे शौनकमुनि ! जब कई मास व्यतीत हो गये और अर्जुन द्वारकासे न लौटे, उस समय युधिष्ठिर घोर उत्पात देखने लगे ॥ २ ॥ कालकी घोर गति, धर्मका उलटापन दिखायी देने लगा, मनुष्योंके मनमें क्रोध, लोभ, मोह, मिथ्यावाद बस गया, सब जीवोंकी पापयुक्त बातें दीखने लगीं ॥ ३ ॥ सब लोग व्यवहारमें कपट करने लगे, सुहृदतामें ठगपना, पिता, पुत्र, स्त्री, पुरुष, भाई—बंधुओंमें क्लेश होने लगा ॥ ४ ॥

अत्यंत अरिष्टकारी शकुन होने लगे। ऐसा समय आ गया कि लोभ आदि से लेकर अधर्मकी प्रवृत्ति देखकर युधिष्ठिर शोकवश हो भीमसे नसे बोले ॥ ५ ॥ हे भ्रातः! अर्जुनको श्रीकृष्णजीकी सुधि लेनेको द्वारकाको भेजा है। न जाने पुण्य यशवाले श्रीयदुनाथकी क्या करनेकी इच्छा है? ॥ ६ ॥ हे भइया भीम! सात महीने अर्जुनको गये बीते अबतक आये नहीं, न जाने क्या कारण है? यह भेद हम कुछ नहीं जान सकते ॥ ७ ॥ ऐसा निश्चय होता है कि नारदजी जो कह गये थे वह समय आ गया, क्योंकि जिस समय सब क्रीड़ाके साधन श्रीभगवान् शरीरको त्यागेंगे उस समय सब अमांगलिक कार्य होगा॥८॥ जिन श्रीकृष्णकी कृपासे हमारी सब सम्पदा, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, प्रजा,

निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृप ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥ गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥ ७ ॥ अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥ यस्मान्नः संपदोराज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणाञ्शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥ शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥

वैरियोंसे विजय, सब लोकका धन हुआ ॥९॥ हे नरव्याघ्र! स्वर्गके, भूमिके, शरीरके दारुण बुद्धिको मोह करानेवाले भयानक * उत्पातको देखो ॥१०॥ छातीका वामभाग, वाम नेत्र, वाम भुजा बारंबार फड़कती हैं और हृदय बारंबार कांपता है। इन लक्षणोंसे यह विदित होता है, कि शीघ्र कुछ अप्रिय बात सुनायी देगी ॥११॥ सूर्यके सम्मुख खड़ी होकर शृगालिनी रोती है और मुखसे आग उगलती है। हे भइया भीम! मेरे सम्मुख निःशंक खड़े होकर श्वान रोते हैं ॥१२॥ अच्छे पशु, गौ आदिक तो मेरे बांयींओर होकर निकलते हैं और गर्दभ आदि दुष्ट पशु

* दोहा—जाने हरि इच्छा कहा, कछु नहिं जानी जात। हे भइया मोहिं होत हैं, नये नये उत्पात ॥ १ ॥

दाहिनी ओरसे मेरी परिक्रमा करते हैं। हे पुरुषसिंह भीम ! मेरे रथके घोड़े जब सवार होता हूँ तब रोतेसे दीखते हैं ॥१३॥ मृत्युके दूत यह कपोत, काक, उलूक, श्वान रातको बोलते हैं। इनका बोलना विश्वको शून्य करना चाहता है। ऐसे कुलक्षणोंको देख-देख मेरा हृदय कांपता है॥ १४ ॥ सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहा है (सूर्य चन्द्रमाके मण्डल बँधे हैं), पर्वतों सहित भूचाल हो रहा है, विना बादल आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनायी पड़ता है॥१५॥ पवन धूलि लेकर आकाशको चढ़ता है, सारे नभमण्डलमें रेतसे अन्धकार छा रहा है,सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसाते हैं ॥१६॥ स्वर्गमें सब ग्रह परस्पर लड़ते हैं, सूर्य कांतिहीन दृष्टि आता है, यह देखो भूतगणोंसे व्याकुल होकर सब

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥१४॥ धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महानासीत् साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥ वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजं स्तमः ॥ असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किंविधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ॥ रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥ दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥

पृथ्वी मानो अग्निसम उत्तप्त हो रही है॥ १७ ॥ नदी और नद, ताल और सरोवर, क्षोभको प्राप्त हैं अग्नि घृत डालनेसे प्रज्वलित नहीं होती न जाने यह कुसमय क्या करेगा ? ॥ १८॥ बछड़े गायोंका दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते। माता स्तनोंसे दूध नहीं छोड़ती। धेनु सूर्य नारायणके सम्मुख खड़ी होकर नेत्रोंसे जलधारा बहाती हैं। खरकोंमें वृषभ प्रसन्न चित्तसे शब्द नहीं करते ॥१९॥ मंदिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रही हैं। पसीना आता है, कम्पायमान हो रही हैं। देश, ग्राम, पुर, नगर, कूप, वाटिका, आश्रम, इन सबकी शोभा मलिन हो गयी, आनन्दका नाम नहीं, न जाने यह हमको क्या दुःख देंगे? ॥ २० ॥ निश्चय है कि इन उत्पातोंसे *अनन्य पुरुष श्रीकृष्णकी शोभासे और भगवत्के*

चरणारविंदसे जिसका सौभाग्य हीन हो गया। इसलिये भूमिकी शोभा नष्ट हो गयी ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! जिस समय राजा युधिष्ठिर बैठे यह विचार कर रहे थे कि ये अरिष्ट क्या करेंगे, उसी समय राजा युधिष्ठिरके समीप यदुपुरीसे अर्जुन आये ॥ २२ ॥ आते ही नीचेको मुख कर धर्मराजके चरणोंमें गिर पड़े, अत्यंत व्याकुल, आंसुओंसे पूर्णनेत्र ॥२३॥ कान्तिहीन, सुहृद अर्जुनके सम्मुख नारदजीके वचन स्मरण कर

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्निपतितम-यथापूर्वमातुरम् ॥ अधोवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हसात्त्वतान्धकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरोमातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाऽथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥ २६ ॥ सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥ आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥ २८ ॥

कंपितहृदय हो राजा युधिष्ठिर पूछने लगे ॥ २४ ॥ हे भ्रातः ! मधु, भोज दशार्ह, अर्ह, सारस्वत, अन्धक, वृष्णि ये सब राजा आनन्दसे हैं ? ॥ २५ ॥ मान्यवर शूर नाना वसुदेव तो प्रसन्न हैं, भाई सहित मामा कुशल हैं ? ॥ २६ ॥ सातों बहिनें, उनकी स्त्रियाँ, हमारी मामी पुत्रवधू सहित देवकी आदिका क्षेम है? ॥२७॥ राजा आहुक, देवक, भाई सहित जिसका पुत्र महाखोटा है वे जीते हैं? हृदीक पुत्र सहित अक्रूर,

---

१. शंका—सात द्वीप पृथ्वीके राजा युधिष्ठिर थे, उनको चिट्ठीसे अथवा दूतसे यह बात क्यों नहीं जान पड़ी कि सब यदुवंशी परस्पर लड़कर मर गये, यह बड़े आश्चर्यकी बात है और बड़ी शंका होती है। कोई छोटा राजा भी होता है तो वह भी अपने राज्यका सब समाचार पाता रहता है। धर्मराज सात द्वीपके राजा थे तो भी उनको यह समाचार नहीं मिला कि यदुवंशका विध्वंस हो गया। यदुवंशी भी कुछ ऐसे-वैसे नहीं थे बड़े नामी और पुरुषार्थी पुरुष थे, फिर क्या कारण जो उनके मरनेका समाचार नहीं मिला?

उत्तर—जिस दिन द्वारकासे अर्जुन युधिष्ठिरके पास आये, उसके दश दिन पहले दूतोंसे धर्मराजने सुना था कि सर्व यदुवंशी कुशल क्षेमसे हैं। कालकी गति महाकठिन है, ब्राह्मणके शापसे एक क्षणमात्रमें सब यदुवंशका नाश हो गया, तब सबका मृतक कार्य करके सातवें दिन अर्जुन राजा युधिष्ठिरके पास आये, बीचमें भाइयोंका चित्त दुःखी न हो इसलिये समाचार किसी दूतके द्वारा नहीं भेजा ॥

जयन्त, गद, सारण ॥२८॥ शत्रुजित आदिक कुशल हैं ? भगवान् सात्वतोंके प्रभु बलदेवजी अच्छे हैं ? ॥२९॥ सब वृष्णियोंमें महारथी प्रद्युम्न तो सुखी हैं । भगवान्‌के समान महागंभीर वेगवाले अनिरुद्धजी कुछ बड़े हुए हैं कि अभी छोटे हैं ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती पुत्र साम्ब और सब श्रीकृष्णसुत, पुत्रसहित ऋषभादिक ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णजीके अनुचर जो श्रुतदेव, उद्धवादिक, सुनन्दनन्द यादवोंमें मुख्य श्रेष्ठ हैं ॥३२॥ रामकृष्णजीकी भुजासे पालित वे सब प्रसन्न हैं, जिन्होंने हमसे सौहृद किया है, वे सब कुशल हैं ? ॥३३॥ ब्राह्मणोंके पालनेवाले भक्तवत्सल, गोरक्षक भगवान् भाई-बन्धु समेत द्वारकामें सुधर्मा सभामें सुखी हैं ? ॥ ३४ ॥ सब लोगोंके मंगलके लिये सबकी कुशलके अर्थ

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥२९॥ प्रद्युम्नःसर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥ गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥ ३० ॥ सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ॥ सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्त्वतर्षभाः ॥३२॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥३३॥ भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥ ३४ ॥ मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥ ३५ ॥ यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ॥ निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥ ३७ ॥ यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८ ॥

सबकी वुद्धिके कारण शेषजीके सखा आदिपुरुष श्रीकृष्ण यदुकुलमें प्रसन्न हैं ? ॥३५॥ जिनकी भुजा रूपी दण्डसे रहित द्वारकामें पूजित होकर यादव परमानन्दसे वैकुण्ठनाथके पार्षदकी नाईं क्रीड़ा करते हैं ॥३६॥ जिनके चरणारविंदकी सेवा रूप मुख्य कर्मसे सत्यभामादिक सोलह सहस्र स्त्रियाँ संग्राममें जीत कर उनके निमित्त देवताओंके भोग्य कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर द्वारकामें रखा ॥ ३७ ॥ यादवलोग जिनकी भुजाओंके प्रतापसे निर्भय उत्साहित सुरसत्तम योग्य सुधर्मा सभा अपने बलसे लाये और बारंबार उसमें चरण धरते हैं ॥ ३८ ॥

हे तात ! हे भैया ! तुम तो प्रसन्न हो, मुझको ऐसा विदित होता है, तुम्हारा तेज नष्ट हो गया, अथवा बहुत दिनोंके रहनेसे भाइयोंने तुम्हारा आदर-सत्कार नहीं किया, क्या तुम्हारी अवज्ञाकी, किसीने अमंगल शब्द प्रेमरहित वाणीसे तो तुमको नहीं पुकारा? पहले किसीको आशाका भरोसा दे पीछे क्या वस्तु उसे नहीं दी, ऐसा तो नहीं हुआ ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कोई भयभीत, ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री तुम्हारी शरण आये हों उनको तो तुमने कहीं नहीं त्याग दिया ? ॥ ४१ ॥ अगम्य स्त्रीसे तुमने रमण तो नहीं किया अथवा विना शृंगारवाली नीच स्त्रीसे तो तुम नहीं बोले; अथवा उत्तम वा सामान्य पुरुषने मार्गमें तुमको पराजित तो नहीं किया ॥ ४२ ॥ अथवा भोजनके समय किसी ब्राह्मण वा वृद्ध अथवा बालक और किसी पुरुषको त्यागकर पहले तुमने तो भोजन नहीं किया अथवा कोई असह्य महानिषिद्ध

कच्चित् तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ कच्चित् त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥ कच्चित् त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाऽथ भवान् नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥४२॥ अपिस्वित् पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान् वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किंचित् कृतवान् न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥ कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० प्र० युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
सूत उवाच ॥ एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ॥ नानाशङ्काऽऽस्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥

कर्म तो तुमने नहीं किया ॥ ४३ ॥ या हमारे प्यारे नेत्रोंके तारे हृदय रूप बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सर्व सुख देनेवाले तो कहीं परमधामको नहीं सिधारे; जिनके मारे तुम अत्यन्त व्याकुल हो रहे हो ? और कोई रोग तो मुझे विदित नहीं होता यह कारण क्या है, वर्णन तो करो, क्यों ऐसे तनुछीन, मनमलीन और कांतिहीन हो रहे हो। जो बात हो सत्य-सत्य कहो, जिससे मेरे मनको धैर्य हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ दोहा—पंचदशम अध्यायमें, सुन यदुवंश विनाश॥ धर्मराज सब राज तजि, कियो हिमालयवास॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक ऋषि! श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने अनेक-

अनेक प्रकारसे पूछा परंतु यदुनाथके वियोगमें ऐसे क्लेशित हो गये ॥१॥ कि उत्तर न दिया गया, शोकके कारण मुख कमल सूख गया, शरीरकी कांति जाती रही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थका ध्यान करने लगे, परंतु मुखसे बोलनेका सामर्थ्य नहीं रहा ॥ २ ॥ बड़े कष्टसे शोकको रोक नेत्रोंके आंसू पोंछ श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेके कारण प्रेमवश व्याकुल हो ॥३॥ उनका सारथीपनका समय, सखाभाव, मित्रता-सुहृदताको स्मरण कर, भाई युधिष्ठिर के आगे शोकको रोक गद्गद कण्ठसे बोले॥४॥ हे महाराज! बन्धुरूप श्रीहरिने मुझको ठग लिया, देवताओं को विस्मयदायक मेरा तेज भी जाता रहा“मैं क्या कहूं और क्या आप बारंबार मुझसे पूछते हो, हमारे प्राणप्यारे द्वारकानाथ हमारी पीठ पर हाथ धरनेवाले हमको धोखा देकर परमधामको चले गये और हम अपने मूर्खपनसे उनको अपना मामेरा भाई ही समझते रहे। उनको

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत् प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

आदि पुरुष अविनाशी नहीं जाना,जो परमात्मा समझकर हम उनके चरणारविंदों की सेवा करते तो भवसागर से पार उतरकर मोक्षको प्राप्त करते। उनकी माया ऐसी प्रबल है कि उसके फंदेमें फँसकर हमने जगदीश्वरको नहीं पहचाना। जैसे एक समय चन्द्रमा दक्ष प्रजापतिके शापसे बहुत कालतक क्षीरसमुद्रमें रहे, यह बात सबको विदित है कि चन्द्रमामें अमृत रहता है और कच्छ-मच्छ आदिक अनेक जलचर उसमें रहते थे, और उसी समुद्रमें चन्द्रमा बसते थे और संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जो अमर होना न चाहे। सब यही इच्छा रखते हैं कि अमृत मिले तो हम पीकर अमर हों, संसारमें रहकर आनन्द भोगें, परन्तु मच्छ-कच्छ सहस्रों वर्षतक चन्द्रमाके संग रहे और अमृतका कुछ ध्यान नहीं किया। जिस प्रकार उन समुद्री जीवोंने चन्द्रमाका भेद नहीं जाना और उनको भी समुद्रका एक जीव माना, उसी प्रकार हम

लोगोंने भी परब्रह्म परमात्माको नहीं पहचाना । यदुवंशी ही जाना, अब वह बात समझकर हमको बड़ा पश्चाताप आता है कि हाय! हम भाईके ही धोखेमें रहे, और परमेश्वर हमारे हाथसे निकल गये । हाय हमने आदि पुरुष अविनाशीको अपना सारथी समझा । हे भ्रातः ! जो समस्त भूमंडल मेरे तेजके सम्मुख थर-थर कांपता था, आज वह मेरा सब तेज नष्ट हो गया" ॥ ५ ॥ जिस प्राणके क्षणमात्रके वियोग होनेसे ये लोग नहीं रहते अर्थात् मृतक कहलाते हैं उस प्राणरूप श्रीभगवान्‌के अन्तर्धान होनेसे हमभी मृतके समान हो गये ॥६॥ जिन श्रीकृष्ण चन्द्रके आश्रयसे द्रुपदके यहां आये, कामके उन्मत्त राजाओंका तेज स्वयंवरमें मैंने हरा, धनुष सीधा कर मत्स्य वेधन किया और द्रौपदीको हम ले आये ॥ ७ ॥ जिन श्रीविपिनविहारीके समीप रहकर खाण्डववन अग्नि को भोजन करनेके लिये दिया और देवगण सहित सुरेश

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः॥उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयं वरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥ यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा यमकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन् नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥८॥ यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेक श्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः॥१०॥

को जीतकर मयनाम दैत्यकी बनायी हुई अद्भुत सभा (जिसमें अनेक-अनेक प्रकारकी शिल्पकारी विद्याकी कारीगरी थी वह सभा) हमको मिली और आपके यज्ञमें सब देशोंके राजाओंने आकर भेंट दी, यह सब उन्हीं यदुनन्दनकी दया थी ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजाओंके शिरपर चरण धरनेवाला जरासन्ध, जिसमें दशसहस्र हाथीका बल था; ऐसे बड़े भारी बलवानको भीमसेनने यज्ञके लिये मारा और भैरवजीके यज्ञके कारण उसने जिन राजाओंको रोक रखा था उनको छुड़ाया । वे सब नरेश आपके यज्ञमें भेंट लाये ॥ ९ ॥ आंखोंसे आंसू बहाती श्रीकृष्णजीके चरणोंमें पड़ी, तुम्हारी द्रौपदीका राजसूययज्ञके महाभिषेकमें सुरचित गुँधा हुआ अभिषेक होनेसे श्लाघनीय श्रेष्ठ

रमणीका जूड़ा जिन कपटी दुर्योधनादिकोंने सभामें छूकर बिखेरा यह देख भीमसेनने प्रतिज्ञा की। उस जूड़ेके खोलनेवालोंको मारकर उनकी स्त्रियोंका जूड़ा खुलवाया, क्योंकि वैधव्य कालमें माथेका जूड़ा खोला जाता है फिर नहीं बँधता है, इसी प्रकार भगवानने विचारा कि मेरे भक्तोंकी स्त्रियोंका जूड़ा तो थोड़े ही दिनों खुला रहेगा। परन्तु तुम्हारी विधवाओंका जूड़ा जबतक जियेंगी तबतक खुला रहेगा।

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग् यः॥ शाकान्नशिष्टमुपभुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः॥ ११॥ यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे॥ अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम्॥ १२॥

यह सब उन्हीं पूर्ण प्रतापीका प्रताप था॥ १०॥ हे नरेन्द्र! जिन श्रीकृष्णजीने वनमें आये दशसहस्र शिष्योंको सङ्ग लिये दुर्योधनके भेजे अत्यन्त दुरन्त कष्टसे दुर्वासा ऋषिसे हमारी रक्षा की और शाकपत्रको पाय त्रिलोकीकी तृप्ति की, जिससे जलमें स्नान करते हुये सब चेले भाग गये॥ ११॥ जिन श्रीकृष्णके तेजने पार्वती सहित महादेव शूलपाणिको भुला दिया, उन्होंने मुझको अपना पाशुपत अस्त्र

भारतमें यह इतिहास इस भांति लिखा है—किसी समय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिको भोजन करवाया था, दुर्योधनसे प्रसन्न हो दुर्वासा ऋषि बोले, कि कुछ मांगो, तब दुर्योधनने मनमें विचार किया कि दुर्वासाके शापसे पांडुकुल नष्ट हो जाय तो अच्छा है, तब दुर्योधनने कहा कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्य है, जब द्रौपदी प्रसाद ले उस समय तुम दशसहस्त्र शिष्योंको साथ ले उसके घरको भोजनको जाना, यह वचन सुनकर दुर्वासाने वैसा ही किया। युधिष्ठिर दुर्वासाको देख अत्यन्त आदर सम्मानसे मध्याह्नीकृत कर दंडवत् प्रणाम किया, दुर्वासाने कहा मुनि समूह जलमें स्नान करनेको गये हैं भोजन करेंगे, युधिष्ठिरने कहा बहुत अच्छा! यह बात सुन द्रौपदीने चिन्तासे आतुर होकर श्रीकृष्ण विश्वम्भरका स्मरण किया कि हे दीनानाथ! आज धर्मराजकी और मेरी लाज आपके हाथ है, हे यदुपति! जो मेरी अपति हुई तो आपहीकी अपति है, कृष्णचंद्र वनवासी भक्तहितकारी तत्क्षण आकर उपस्थित हुए और द्रौपदीसे पूछा क्यों? द्रौपदी बोली कि हे दीनबन्धु! हे भक्तवत्सल! हे भगवन्! आज दुर्वासाऋषि शिष्योंसहित हमारे घर आये हैं और यहां भोजनकी कुछ सामग्री उपस्थित नहीं, क्या किया जाय? इस कारण आपका स्मरण किया है। यह बात सुन श्रीविश्वनाथ बोले, कि हम भी भूखे हैं, पहिले हमको भोजन करा दो पीछे दुर्वासाको देखा जायगा, तब द्रौपदी अत्यन्त लज्जित हुई और हाथ जोड़कर बोली कि हे स्वामी! मेरे भोजन पर्यन्त अक्षय अन्न बटलोईसे निकलता है, जब मैं इसमेंका भोजन कर लेती हूँ तो फिर इसमें भोजन नहीं रहता सो हे नाथ! अब मैं भोजन कर चुकी, इससे अब भोजन नहीं रहा, फिर भगवान् बोले कि उस बटलोईको यहां तो लाओ, यह सुन वह बटलोई लायी। उसके किनारेमें कोई शाकान्न लगा रह गया था, उसे पाकर भगवान् बोले कि इस शाकान्नसे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हों? यह कह युधिष्ठिरसे कहा कि अब मुनिसमूहको भोजनके लिये बुलाओ। सो वे स्नान करके सब भग गये, क्योंकि भगवानने तो उनके पेट पहले ही भर दिये थे। दुर्वासा ऋषिने कहा कि हमने वृथा पाक बनवाया, यह भय मान सब चेलोंसमेत दुर्वासा ऋषि वहांसे भग गये और यह वरदान दिया कि वासुदेव भगवान सदा तुम्हारी जय करें॥

दिया। फिर औरोंने भी अनेक अस्त्र दिये। इसी शरीरसे इंद्रलोकमें आधा आसन इंद्रका हमको मिला ॥ १२ ॥ वहाँ स्वर्गमें हम विहार करते थे तब इंद्रसहित देवताओंने निवात कवच वैरियोंके मारनेके लिये मेरे गाण्डीव धनुष और मेरे भुजदण्डका आश्रय किया था, हे युधिष्ठिर! जिन्होंने ऐसा प्रभाव बढ़ाया ऐसे श्रीद्वारकानाथने अपनी माया दिखाकर मुझको ठग लिया ॥ १३ ॥ जिन श्रीकृष्णरूप बन्धुके आश्रित हो अपार भीष्मादि महारथी रूप ग्रहोंसे दुस्तर कुरुसेनारूप सागरको अकेला रथ ले पार हो गया और मोहास्त्रसे मोहित

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः॥ सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्यमुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३॥ यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्य सत्त्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥१४॥ यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥ यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवाऽसुराणि ॥१६॥

कर, उत्तर गोगृहमें शत्रुओंके शिरोंसे तेजवन्त मणिमय मुकुट-कुण्डल पाग बहुत धन लाया। हाय! वे श्रीकृष्ण हमारे प्यारे अन्तर्धान हो[1] गये ॥१४॥ हे युधिष्ठिर! बड़े राजेन्द्रोंके रथोंसे शोभित भीष्मपितामह, गुरु, कर्ण, शल्य, इनकी सेनामें सारथी होकर मेरे आगे चले और उन रथी यूथपालोंकी आयु, मन, बल व सब शस्त्रादि कुशल दृष्टिसे क्षीण करते चले जाते थे ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे अपनी भुजाओंमें रख लिया। फिर गुरु, भीष्म, कर्ण, द्रोण, त्रिगर्त, शल्य, सैन्धव, बाहूलीक, इनके अमोघ महिमावाले तीव्र अस्त्र मेरे शरीरको

१. शंका—कुरुक्षेत्रमें जो क्षत्रिय आये थे वे सब मर गये। कौरवोंमें तीन बचे और पाण्डवोंमें सात बचे, फिर अर्जुनने युधिष्ठिरसे क्यों कहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मारकर मैं अकेला पार गया।

उत्तर—युधिष्ठिरसे अर्जुनने निस्सन्देह यह कहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मार कर पार हो गया परंतु यह बात कुरुक्षेत्रकी नहीं है; जब कौरवोंने विराटकी गायोंको हरना चाहा, यह वहांकी बात है। भीष्मकी आज्ञा पाकर जब कौरवोंने विराटकी गायोंको बलात्कार लेनेकी इच्छा की तब अर्जुन सब कौरवोंको मूर्छित करके और जो सेनाके बड़े-बड़े नामी योद्धा और बलवान् थे उनके मुकुट उतार-उतार कर बहुत शीघ्रताके साथ विराट नगरको चला गया और सभामें जाकर उन मुकुटोंको राजा विराटकी भेंटमें रख दिया, उस समयकी बात राजा युधिष्ठिरसे अर्जुनने कही थी।

स्पर्श न कर सके, जैसे भगवतके दासको नीच लोग नहीं छू सकते ॥ १६ ॥ जिनके चरणकमलका श्रेष्ठ जन मोक्षके लिये दिनरात भजन करते हैं, जब घोड़ों के थक जानेसे मैं रथसे नीचे उतर कर खड़ा हो गया तब मुझको श्रीकृष्णके प्रभावसे परास्त रथी वैरी न मार सके, ऐसे त्रिलोकीके नाथको मैंने अपना सारथी बनाया, हाय ! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई ॥ १७ ॥ हे नरदेव ! श्रीकृष्ण जब उदार-रुचिर शोभित मधुर मुसकान युक्त मृदुल मनमोहनी वाणीसे हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे धनञ्जय ! हे सखे ! कुरुनन्दन ! कहते थे, वे बातें जब मुझको स्मरण होती हैं, तो हृदयमें शूलसा खटक जाता है ॥ १८ ॥ शय्या, आसन, अटनमें, भोजन इत्यादिमें चाहे जैसे मैं बोलता,

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ॥ मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ ॥ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ॥ संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मतुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन् गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥

हे बन्धो ! हे सखे ! सत्य है, जो तुम कहते हो सब सत्य है, ऐसे बोलते जैसे सखाका अपराध सखा सहे, पिता पुत्रके अवगुण सहे, श्रीकृष्णजी अपने बड़प्पनसे मेरे कुमतिके अपराध सहते थे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अंग, सखा, प्रीतम, हृदयवल्लभ, पुरुषोत्तमके विना मैं ऐसा शून्य हो गया हूँ कि, श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा करते हुए मुझे मार्गमें भीलोंने लूट लिया ॥ २० ॥ देखो भाई ! जो पृथ्वीके राजा मेरे नामसे थर-थर कांपते थे मैं वही धनञ्जय हूँ और वही रथ है; वे ही घोड़े हैं, वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वे ही मेरी भुजायें हैं, जिन भुजाओंके बलसे मैंने

महेश, सुरेश, गन्धर्व, और मयनाम राक्षसको परास्त कर दिया। और भीष्मपितामह, कर्ण, जयद्रथ, आदि बड़े-बड़े बलशाली योद्धाओंका विध्वंस किया और यज्ञके घोड़ेके संग गया और बड़े-बड़े नामी नरेशोंका मानभङ्ग करके उनको अपने संग लिया और सब पृथ्वीपर यज्ञके घोड़ेको फिराकर हस्तिनापुरमें लाया। अश्वत्थामाका मस्तक चीरकर मणि निकाली। परंतु बिना द्वारकानाथके ये सब निष्फल हो गये। जैसे भस्ममें किया हुआ हवन, कपटीसे मिला हुआ धन, ऊषरमें बोया हुआ अन्न निष्फल होता है ॥२१॥ हे नरेन्द्र! सुहृदपुरके सुहृद जो आपने बूझे वे सब दुर्वासा ऋषिके शापसे परस्पर कट-कट कर मर गये ॥ २२ ॥ "आदिपुरुष अविनाशी त्रिलोकीनाथने चित्तमें विचारा कि यह यदुवंशी हमारे वंशमें बड़े नामी और बलवान् हैं। न जाने मेरे पीछे संसारमें क्या-क्या उपद्रव मचायेंगे और लोगोंको कैसे-कैसे

राजंस्त्वयाऽनुपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योऽन्यं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥ मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ॥ दुर्बलान्ब-लिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योऽन्यं भूभा-रान्संजहार ह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृतापोपशमानि च ॥ हरन्ति स्मरतश्चित्तगोविन्दाभिहितानि मे ॥ २७ ॥

दुःख दें। इसलिये अपने आगे ही इन लोगोंका कुछ उपाय करना चाहिये। परंतु अपने हाथसे उनका मारना भी उचित नहीं समझा। इस-लिये दुर्वासा ऋषिसे उनको शाप दिलवा दिया" तब वे वारुणी (मदिरा) पी-पीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि तन-मनकी सुधि-बुधि कुछ न रही। अजानकी भांति सब परस्पर कट मरे। चार-पांच शेष रह गये हैं ॥ २३ ॥ हे भ्रातः! प्रायः यह ईश्वरकी चेष्टा है, कभी परस्पर विध्वंस कराते हैं, कभी पालन करते हैं ॥२४॥ जैसे समुद्रके वासी बड़े जीव छोटे जीवोंको खा जाते हैं ऐसे बली राजा निर्बलको परस्पर जीत लेते हैं ॥ २५ ॥ ऐसे बली महान् यादवोंसे छोटे-छोटे यादवोंका विध्वंस करवाकर भूमिका भार उतारा ॥ २६ ॥ देश, काल, योग्य, अर्थ,

हृदयतापके नाशक श्रीकृष्णके वचन जब मैं स्मरण करता हूँ तो मेरा चित व्याकुल हो जाता है। उसी समय मेरे प्राण देहसे निकल जाते, परंतु इस कारण ये पापी प्राण देहमें पाप भोगनेको रह गये। जब यदुनाथ परमधामको सिधारे थे, तो दारुक सारथीसे मुझे यह बात कहला भेजी थी, कि स्त्री और बालकोंको द्वारकासे हस्तिनापुरको अपने साथ ले जाना और मेरे वियोगका कुछ शोक मत करना। जो ज्ञान हमने गीतामें तुमसे कहा है, उसीके अनुसार इस शरीरको झूठा समझना और चैतन्य आत्माको सत्य जानकर अपने मनको धैर्य देना। हे भ्रातः! वही ज्ञान समझ कर मैंने संतोष किया है ॥२७॥ ऐसे सोचते-सोचते अर्जुनने श्री कृष्णके चरण-कमलको हृदयमें धारण कर अपने चित्तको धैर्य दिया ॥२८॥ और भगवान् वासुदेवके चरणोंमें प्रीति बढ़ायी। जिस भक्तिके प्रभावसे सब कामादिक मल नष्ट हो गये ॥२९॥

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥ वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या सञ्छिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वः पथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाऽप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥

गीताका ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवान्ने मुझको सुनाया था, वह ज्ञान काल-कर्म अन्धकारसे मैं भूल गया था। अब फिर श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुआ ॥३०॥ ब्रह्मज्ञानसे जब अविद्या लीन हो गयी तो फिर निर्गुण हो, स्थूल शरीरहीन सुन्दर भोग योग्य होकर द्वैत भ्रम सब नष्ट हो गया, तब विशोक होता है ॥३१॥ भगवन्मार्गकी बात तथा यदुकुलका विध्वंस सुनकर युधिष्ठिरने निश्चल चित्त करके स्वर्गके जानेका विचार किया "भीमसेन, सहदेवादिक अपने भाइयोंसे कहा—अब हम जीकर क्या करेंगे और यह राज्य हमारे किस कामका है, जब हमारी बातका बूझनेवाला और पतका रखनेवाला न रहा। जब-जब हमपर भीड़ पड़ती थी उसी समय आकर सहायता किया करते थे। हाय! अब कौन हमारी रक्षा करेगा?" ॥३२॥ अर्जुनके मुखसे द्वारकानाथके परमधामके जानेका समाचार सुनकर कुन्ती एकान्तभक्ति कर, भग-

वान् वासुदेवमें मन लगाकर हाय करके अपना शरीर त्यागकर मुक्त हुई "और द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदिने रो-रोकर इतना विलाप किया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता" ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर बोले—क्यों वृथा विलाप करती हो जन्मरहित भगवान्ने जिस शरीरसे भूमिका भार दूर किया उस शरीरको भी त्याग दिया, जैसे कांटेको काँटेसे निकालते हैं ऐसे ही समझो। क्योंकि परमेश्वरको तो दोनों शरीर समान हैं ॥ ३४ ॥ जैसे मत्स्यादिक रूपको अजन्मा ईश्वर धारण करता है, त्याग करता है, जैसे नट अनेक रूप धरता है, फिर त्याग करता है ऐसे ही जिस देहसे जैसे भू भारका नाश किया, वह तनु भी त्याग दिया ॥ ३५ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र इस संसारको

ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कण्टकं कण्टकेनैव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४ ॥ यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥ ३५ ॥ यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाऽहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनापतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥ ४० ॥

त्यागकर परमधामको गये, उसी दिनसे अज्ञानियोंके चित्तमें अधर्मका हेतु कलियुग आकर वर्तने लगा ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने घर, राज्य, नगरमें कलियुगका आगमन जान लोभ, झूठ, कपट, हिंसा, अधर्मका चक्र आता देख वनगमनकी इच्छाकी ॥ ३७ ॥ राजा युधिष्ठिरने अपने पोतेको गुणमें अपने समान विनयी, गुणग्राही जान समुद्रपर्यन्तकी भूमिका राजतिलक हस्तिनापुरमें कर दिया॥३८॥ और शूरसेन देशके पति वज्रनाभको मथुराका राज्याभिषेक कर प्रजापतिपनेकी अग्निको परमेश्वरने पी लिया ॥ ३९ ॥ वहां सब वस्त्र

कंकण आदिकोंको त्याग ममता छोड़ अहंकार तज सब उपाधिको अलग किया ॥ ४० ॥ वाणीको मनमें लगा, मनको प्राणमें लीनकर, प्राणको अपानमें और अपानको मृत्युमें लीन कर उत्सर्ग वायु सहित मृत्युको पंचत्वमें होम दिया ॥ ४१ ॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें, त्रिगुणको अविद्यामें, अविद्याको जीवमें, जीवको अव्यय ब्रह्ममें लीन कर दिया ॥ ४२ ॥ चीर वस्त्र पहन, भोजन त्याग, मौनी बन, शिरके बाल खोल अपना रूप पांचों भाइयोंने जड़ उन्मत्त पिशाचके सदृश बना लिया ॥ ४३ ॥ सबकी ओरसे दृष्टि फेर ली, कान बन्द कर लिये, बहिरे बनकर उत्तर दिशाको चल दिये। उस दिशाको बड़े-बड़े महात्मा पुरुष पहले भी गये हैं ॥ ४४ ॥ हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करते हैं जहां

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाऽथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥ चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥ ४४ ॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन् नावर्तेत यतो गतः ॥ सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृत निश्चयाः ॥ ४५ ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ॥४६॥ मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥ ४७ ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषाः स्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

गये फिर नहीं आते हैं॥ ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्म ही होता है, पीछे ब्रह्मके लोकको जाता है सब भैया निश्चय कर युधिष्ठिर के पीछे चल दिये ॥४५॥ अधर्मके मित्र कलियुगने सब प्रजाभूमिमें स्पर्श कर लिया, यह देखा सब कृत्योंको साधकर, आत्माको अत्यन्त क्षेम जान ॥ ४६ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान्के चरणारविंदोंका मनसे ध्यान करने लगे उनके ध्यान और बढ़ी हुई भक्तिसे सब इन्द्रियाँ विशुद्ध कर ॥ ४७ ॥ परात्पर नारायणमें एकांत मति कर परमगतिको प्राप्त हुए। विषयी असत् पुरुषोंको वह नहीं प्राप्त होती, सब कल्मष धोकर निर्मल

शरीर हो वैकुण्ठ स्थानको गये ॥४८॥ आत्मज्ञानी विदुरजी भी प्रभास क्षेत्रमें देहत्याग कर, श्रीकृष्णमें चित्त लगा युधिष्ठिरादि सहित अपने अधिकार स्थानको गये ॥ ४९ ॥ अपनी ओर न देखें, ऐसे पतियोंको जान द्रौपदी भगवान् वासुदेवमें एकांत मन लगाकर परमपदको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवत्के प्यारे पाण्डुके पुत्रोंका यह स्वर्गारोहण श्रद्धासे जो सुनते हैं वे पवित्र होते हैं, सदा मङ्गल पाते हैं, श्रीनारायणमें भक्ति करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—पाय परीक्षित राज जिमि, देखे सब निजदेश । सो सब वरणौं हितसहित, जो कुछ लखेउ नरेश ॥ सूतजी बोले

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९ ॥ द्रौपदीच तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥ ५० ॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीभा० महा० प्रथ० पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥ यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयन्सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥ ३ ॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित ॥ नृपलिंगधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥४॥

कि, हे शौनक ऋषि ! महाभागवत परीक्षित जब ब्राह्मणोंकी शिक्षासे पृथ्वी की रक्षा करने लगे, जन्मके समय सब विद्वान् आकर जैसे-जैसे गुण कह गये थे; वैसे ही सब महागुण उनमें सम्पन्न थे ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने राजा उत्तरकी पुत्री इरावतीके साथ विवाह किया, उससे जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंको अनेक-अनेक प्रकारकी दान-दक्षिणा देकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये । गंगातीर पर कृपाचार्यको गुरु कर जिस यज्ञमें देवता सम्मुख आ-आकर अपना-अपना भाग ले गये ॥ ३ ॥ किसी समय राजाओंका-सा वेष धारण

किये शूद्र गौको और बैलको पाँवसे मारता कलियुगको दिग्विजयमें अपने पराक्रमसे राजाने पकड़ा ॥ ४ ॥ शौनक ऋषि बोले, कि राजा परीक्षित ने दिग्विजयमें किस लिये कलियुगको पकड़ा ? राजाओंके चिह्न धारनेवाला वह शूद्र कौन था जो पाँवसे गौको मारता था ? ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! जो कृष्णकथा–आधीन बात हो वह अथवा श्रीकृष्णके पदकमलके मकरन्दके स्वाद लेनेवाले सन्तोंकी कथा हो वह कहो॥६॥ खोटी कथाओंसे क्या प्रयोजन है ? जो वृथा आयुको क्षय करे । जो लोग वृथा अपनी आयुको खोते हैं, वे ही नरकमें वास करते हैं ॥ ७ ॥ हे मुने ! थोड़ी आयु मरणवाले मोक्षकी इच्छावाले मनुष्योंकी मृत्यु है, उस मृत्युको शामित्रकर्म (पशुवध) के लिये इस यज्ञमें बुलाया ॥८॥

सौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिह्नधृक्शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत् ॥ ५ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ अथवाऽस्य पदाम्भोजमकरन्द लिहां सताम् ॥६॥ किमन्यैरसदालापै-रायुषो यदसव्द्ययः ॥ व्यर्थमायुः क्षयिष्यन्ते ते व निरयगामिनाः ॥ ७ ॥ क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ८ ॥ न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः ॥ एतदर्थं हि भगवाना-हूतः परमर्षिभिः ॥९॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ हरिलीलाः कलौ श्रृण्वन्वैकुण्ठं लभते नरः ॥१०॥ यस्मिन्पीते कृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकं भवेत्" ॥ मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजांगले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ॥ निशम्य वार्ता-मनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥ १२ ॥

जब तक यह मृत्यु यहां रहेगी, तब तक कोई नहीं मरेगा, इसलिये भगवान् मृत्युको परम ऋषियोंने बुलाया और कहा-तुम भी यहां बैठकर कथा सुना करो ॥९॥ अहो मनुष्यो ! नरलोकमें हरिलीला कथा अमृत पियो, कलियुगमें हरिचरित्र श्रवण करनेसे वैकुण्ठवास मिलता है ॥ १० ॥ मंद बुद्धिवाले, थोड़ी आयुवाले जीव रात तो सोनेमें गवाँते हैं और दिन व्यर्थ कर्मोंमें खोते हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, कि जब परीक्षित कुरु जांगल देशमें बसते थे, तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुग आता जानकर बहुत अमांगलिक बातें सुन परीक्षितने धनुष

बाण हाथमें लिया ॥१२॥ सेनापतिको बुलाकर कहा—शीघ्र सेना सजाओ, सुन्दर शृंगार किये श्यामकर्ण घोड़े जिसमें जुते हुए सिंहध्वज रथमें बैठ रथ, घोड़े, हाथी और सिपाहियोंकी चतुरंगिणी सेना संग लिये दिग्विजयको निकले ॥ १३ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष उत्तरतक, किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यक, हिरण्यमय, इत्यादि खंडोंको जीतकर बलि लिया ॥१४॥ और उन खण्डोंमें अपने पूर्वके महात्मा पुरुषोंका और कृष्णका माहात्म्य जतानेवाला गया हुआ यश सुना ॥ १५ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अपनी रक्षा, यादवोंका और पांडवोंका स्नेह तथा

स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमास्थितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ १३ ॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि सर्वाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १४ ॥ तत्र तत्रोपश‍ृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १५ ॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १६ ॥ तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥ १७ ॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥१८॥ तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥ १९ ॥

उनकी केशवमें भक्ति सुनी ॥ १६ ॥ उनपर अति सन्तुष्ट हो, प्रीतिसे प्रफुल्लित नयन कर महामना परीक्षितने महाधन वस्त्र हार दिये ॥ १७ ॥ अपने प्यारे पाण्डवोंका सारथीपन, पार्षद बनाना, सेवा करनी, सेव्यभाव, दूत बनना, वीरासन बैठकर रक्षा करनी, उनके पीछे चलना, प्रणाम करना विष्णुकी जगत् कर्तृता सुन राजा परीक्षितने विष्णुके चरणारविन्दोंमें मन लगा लिया ॥ १८ ॥ ऐसे राजा थे

१. शंका—जब राजा परीक्षित दिग्विजयको गये तब पाण्डवोंका यश सब देशान्तरोंमें सुना । पाण्डवोंका यश और बड़ाई करनेवाले लोग कौन थे? क्योंकि जिनको पाण्डवोंने दण्ड दिया उन्होंने पाण्डवोंका यश क्यों गाया?

उत्तर—जुआरी, चोर, व्यभिचारी, ठग, बटमार, लम्पट और लबार आदि जो अनेक दुष्ट हैं, जिनसे भयभीत और डरे हुए जो मुनिजन थे, वे सब बारम्बार अनेक प्रकारसे पाण्डवोंका यश गान कर करके राजा परीक्षितको सुनाते थे कि, हे राजन् । तुम्हारे दादा परदादा ऐसे धर्मात्मा और बलवान थे, कि, जिनके राज्यमें हम सब आनन्दसे तप करते थे और अब तुम्हारे राज्यमें दुष्ट और अत्याचारी हमारी तपस्याको भङ्ग करते हैं और दुःख देते हैं। ऐसे दुःख भरे मुनियोंके वचन सुनकर राजा परीक्षितने उसी समय दुष्टोंको मारकर मुनियों को निर्भय रूप धन प्रदान किया।

और दिन-रात उनकी ऐसी वृत्ति थी। पूर्व पुरुषोंकी भांति राज्य करते थे। थोड़ी देर पीछे एक ऐसा आश्चर्य हुआ वह सुनो ॥ १९ ॥ वृषरूपधारी धर्म एक पदसे चलता है और उसके तीन पद टूट गये हैं, आंखोंसे आंसू बह रहे हैं, कान्तिहीन बछड़े जिसके नष्ट हो गये, सबकी माता पृथ्वी गोरूप धारण किये उसके समीप खड़ी है और दोनों परस्पर कुछ वार्तालाप कर रहे हैं। धर्मने पूछा॥२०॥हे भद्रे, हे अम्बे ! तुम अच्छी तो हो? मुख मलिन-सा हो रहा है, तनु छीन दिखायी देता है, आपके हृदयमें कुछ पीड़ा तो नहीं है? अथवा तुम्हारे बन्धु कहीं दूर तो नहीं चले गये, जिस कारण तुम्हारी यह दशा है? ॥२१॥ क्या तुमको मेरे पैर टूटे देखकर सोच होगया जो तुम रोती हो? कदाचित्

धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् ॥ पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ २० ॥ धर्म उवाच ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब ॥ २१ ॥ पादन्यून शोचसि नैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ॥ आहो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २२ ॥ अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालाञ्छोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २३ ॥ किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान्राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २४ ॥

तुमको मेरे तीन पांव टूट जानेका दुःख है? वा तुमपर शूद्र राज्य करते हैं? यह कष्ट है? अथवा यज्ञमें जिनको भाग नहीं मिलता उन देवताओंका शोक है? वा प्रजाका दुःख है, क्या मेघ जो नहीं बरसता यह संशय है ॥२२॥ हे पृथ्वी ! पुत्र माता-पिताकी रक्षा नहीं करते, क्या यह संताप है? वा तुम्हें पुरुष खाने वाले राक्षस निर्दयी सबको महा क्लेशित करते हैं यह विषाद है? क्या कुकर्मियोंमें सरस्वतीजी बसीं अथवा जो ब्राह्मणोंको न मानें उनके घर लक्ष्मी देवी गयी अथवा राजा लोग ब्राह्मणोंका अपमान करने लगे। कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करने लगे क्या यह सन्देह है? ॥ २३ ॥ अथवा कलियुगग्रस्त क्षत्रिय हो गये, उनके राज्य सब कलियुगी हो गये सब जीव इधर-उधर भोजनके

लिये जल पीनेके अर्थ, स्नानके कारण, मैथुन करनेको ऊपरको मुख उठाये फिरते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्ब ! हे धरणि ! तुम्हारे ऊपर बड़ा भारी भार है। इसके उतारनेवाले ईश्वर अवतारधारी अन्तर्धान हो गये यह शोक तो नहीं है ? वा मोक्षदायक उनके किये हुए कर्मोंको स्मरण करती हो ? ॥ २५ ॥ हे वसुन्धरे ! जिसलिये तुम अति कृशित हो, उस अपने दुःखका कारण कहो ! अथवा बलियोंके बली काल सहित देवताओंका पूजनीय सौभाग्य अब हरा गया है क्या यह अप्रसन्नता है ? ॥२६॥ पृथ्वी बोली—हे धर्म ! आप तो सब जानते हो तो भी तुम मुझसे पूछते हो, अच्छा मैं ही कहती हूँ—लोकके सुखदाता चार पदसे आप रहते हैं ॥२७॥ यथार्थ बोलना १, शुद्ध रहना २, पराया दुःख सहना ३, क्रोध आनेपर मनको रोकना ४, धन मांगनेपर उनको सदा धन देना ५, प्रसन्न रहना ६, किसीसे टेढ़ा न होना ७, मनको

यद्वाऽम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥ २५ ॥ इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शिताऽसि ॥ कालेन वा ते बलिना बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमद्यसौभगम् ॥ २६ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२७॥ सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥ ॥ २८ ॥ ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥ स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥ २९ ॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यंकीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥

निश्चल रखना ८, बाह्य इंद्रियोंको निश्चल करना ९, अपने धर्मका त्याग न करना १०, शत्रु-मित्रका दुर्भाव न रखना ११, और के अपराध सहना १२, लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहना १३, सत्‌शास्त्रका विचार करते रहना १४ ॥ २८ ॥ परमेश्वर है यह ज्ञान मानना १५, तृष्णाका त्याग करना १६, हमारा नियन्ता है यह मानना १७, संग्राममें उत्साह करना १८, प्रभाव रखना १९, चतुराई रखना २०, जो काम करना हो उसको स्मरण रखना २१, पराधीन न रहना २२, सब क्रिया कर्ममें निपुण रहना २३, सदा शोभायमान रहना २४, कभी व्याकुल न होना २५, कठोर चित्त न रहना २६ ॥ २९ ॥ बुद्धिको प्रकाशित रखना २७, विजयी रहना २८, सरल स्वभाव रहना २९, सहन शक्ति रखना ३०,

पराक्रम रखना ३१, देहमें बल रखना ३२, सब भोग भोगना ३३, गम्भीर चित्त रहना ३४, चञ्चल न रहना ३५, सबमें श्रद्धा रखना ३६, जिसमें यश हो वही काम करना ३७, जिसमें प्रतिष्ठा हो वह कर्म करना ३८, अभिमान न करना ३९, ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! यह उन्तालीस गुण भगवानमें हैं और भी महागुण हैं, महत्त्वकी इच्छावालोंको यह करना योग्य है; हरिमेंसे यह गुण कभी भी नहीं जाते ॥३१॥ सब गुण पात्र श्रीनिवास सदा हितकारी अब इस पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये शोच करती हूँ, कि पापी कलियुगने सब लोगोंको ग्रस्त कर लिया है यही सोच है ॥३२॥ मेरे तो वत्स न रहे, केवल आप एक पदसे रहे हैं, देव श्रेष्ठको, देवताओंको, पितरोंको, ऋषियोंको, साधुओंको, सब ब्राह्मण आदि

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३२ ॥ आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ॥ देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ॥ सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३४॥ तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलङ्कृताङ्गी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥ ३५ ॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ॥ त्वां दुःस्थमून पदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्सदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥ ३६ ॥

वर्णोंको, सब आश्रमोंको मैं सोचती हूँ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीका कटाक्ष हमपर हो यह कामना कर बहुत दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिकोंने तप किया, वह लक्ष्मी अपने वासस्थान कमलको त्यागकर जिनके चरणारविन्दकी सुन्दरताको अपने हृदयमें ध्यान करती है ॥३४॥ भगवान्के कमल, वज्र, अंकुश, ध्वजा, इत्यादि चिह्न अंकित श्रीमच्चरणकमलमें अलंकृत थी और भगवत् विभूतिको प्राप्त होकर त्रिलोकीमें शोभायमान हुई। यह गर्व जब मुझको हुआ तो सब लोक समेत मुझे त्याग दिया, यह सोच है ॥ ३५ ॥ मेरे ऊपर अतिभारकारी असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणी आपने अपने अधीन होकर मार डालीं। स्थित होनेमें असमर्थ आपने धर्मको अपने पुरुषार्थसे स्थापन

कर यादवोंमें शरीर धारण कर कार्य किया ॥३६॥ प्रेमका अवलोकन, मनोहर मुसकान, कोमल वचनोंसे सत्यभामादिकका मान-धीरताका मथन करते हुए, उनके शोभायमान चरणस्पर्शसे मुझे रोमांच हो आता था ! ऐसे मनमोहनका विरह कौन सहन कर सकता है ॥३७॥ धरणी और धर्ममें परस्पर यह वार्ता हो रही थी, उसी समय पूर्ववाहिनी सरस्वती युक्त कुरुक्षेत्रमें परीक्षित नामक राजऋषि पहुँचे ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां धरणी-धर्मसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा-सप्तदश अध्यायमें, धर्म नृपति संवाद । जेहि प्रकार मेटी सकल, धरणी धर्म विषाद ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकऋषि ! वहाँ राजा परीक्षितने देखा कि दण्ड हाथमें लिये शूद्रराजाओं

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्किताया: ॥ ३७ ॥ तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा० महा० प्रथम० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥ वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥ गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सामश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली ॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥ ५ ॥

कासा वेष किये एक पुरुष गाय और बैलको मार रहा है ॥ १ ॥ कमलनालके समान श्वेतवर्ण भयभीत होकर पेशाब करता हुआ और एक पदसे स्थित चलनेमें असमर्थ होनेके कारण-कम्पायमान दुःखित शूद्रसे ताड़ित बैलको देखा ॥ २ ॥ हविकी पूर्ति करनेवाली, दीन शूद्रके चरण प्रहारसे तिरस्कृत, वत्सहीन, तृषित, भोजनमें इच्छाहीन, नेत्रोंसे आंसू बहाती, गोरूपधारिणी पृथ्वी देखी ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित सुवर्ण खचित रथमें बैठे, धनुष बाण चढ़ाये, मेघसमान गम्भीर वाणीसे पूछने लगे ॥ ४ ॥ अरे नीच ! तू कौन है ? सब पृथ्वीका राजा तो मैं हूँ और मेरे सम्मुख अपने बलसे निर्बलोंको मारता है । साक्षात् तूने राजा का वेष धारण कर रखा है, परंतु नटकी नाईं है, तेरा कर्म शूद्रोंके

समान है ॥ ५ ॥ तू कौन है ? क्या गांडीव धनुषधारी अर्जुनको तूने दूर गया जाना है और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज त्रिलोकीनाथको तू भूल गया ? और उनको वैकुण्ठ गया समझा, क्या तूने पृथ्वीको अभीसे वीर विहीन समझ लिया, जो गायको और बैलको एकान्तमें सताता है ? इस कारण तू महा अपराधी है और वध करने योग्य है ॥ ६ ॥ तब राजाने बैलसे पूछा, हे कमलनालसदृश–धवलकाय ! तुम कौन हो ? और तीन पांव रहित हो, एक चरणसे चलना चाहते हो। बैलरूप धारण किये कोई देवता तो तुम नहीं हो, जो मुझे भ्रममें डालते हो॥७॥ कौरवोंके भुजदण्डोंसे रक्षित पृथ्वीपर तुम्हारे विना किसी प्राणीमात्रके दुःखसे आंसू नहीं निकलते हैं ॥ ८ ॥ हे सुरभिनंदन ! इस शूद्रसे

कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यशोच्यान्रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥ न जातु कौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ॥ भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥ मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् ॥ मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्वसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥ एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥ १२ ॥

अब तुमको कुछ भय नहीं होगा, हे गोमाता ! तुम्हारा भी कल्याण होगा, मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ ॥ ९ ॥ जिस राजाके देशमें साधु, प्रजा दुष्टोंसे दुःखित होती है, उस मदान्ध राजाके चार गुण–कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ राजाओंका यही परम धर्म है, कि आर्तोंकी पीड़ा दूर करें, इसलिये मैं इस दुष्टको जीता नहीं छोड़ूंगा ॥ ११ ॥ हे सुरभिनन्दन ! तुम्हारे तीन चरणोंको किसने तोड़ा ? तुम तो चार चरणवाले हो "तुम शीघ्र बताओ; मैं अभी उसके हाथ काटूंगा । मैं श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक अर्जुनका पोता हूँ, जो तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूंगा तो पाण्डवोंके कुलको दोष लगेगा । मनुष्यका तो क्या सामर्थ्य है, यदि देवता भी मेरे राज्यमें आ किसी

दीनको सतायेगा, निःसन्देह मैं उसी समय उसका शिर काट डालूँगा" श्रीकृष्णके सेवक राजाओंके राज्यमें तुम सरीखा कोई न हो ॥ १२ ॥ हे वृष ! तुम्हारा कल्याण हो, निरपराधी साधु-सन्तोंको विरूप करना यह राजाओंकी कीर्तिको दूषण लगानेवाला है निरपराधी पुरुषको अपराध लगानेवालेको सब ओरसे मेरा भय रहता है ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, बालक, गौ, इनको जो दोष निरंकुश होकर लगाये वह देवता भी हो तो

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ १३ ॥ अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ॥ आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥ १४ ॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १५ ॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १६ ॥ न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १७ ॥

उसकी बाजू (बाहुभूषण) समेत भुजा काट डालूं ॥ १४ ॥ परम धर्म राजाओंका यही है कि, स्वधर्ममें जो स्थित हो उसका पालन करना और विना विपत्तिके समय पाखण्डियोंको शास्त्रके अनुसार शिक्षा देना ॥ १५ ॥ धर्म बोला–पाण्डुवंशियोंको यही अभयदान वचन कहना युक्त है, जिनके गुणोंसे वशीभूत भगवानने दूतादिक कर्म स्वीकार किये थे❋ ॥ १६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! जहां क्लेशका बीज होता है, वह मैं नहीं जानता

---

१. शंका—बैल रूप धर्मसे राजा परीक्षितने पूछा कि, हे धर्म-रूप वृष ! तुमको कौनसा दुष्ट प्राणी दुःख देता है उसको मुझे बताओ में अभी तुम्हारे दुःख देनेवाले दुष्टको मार डालूंगा। तब धर्मने अपने दुःख देनेवाले शत्रुको नहीं बताया कि कलियुग मुझको बड़ा दुःख देता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, क्यों नहीं बताया और क्यों झूठ बोला कि में अपने दुःख देनेवालोंको नहीं जानता। झूठ बोलना धर्मका काम नहीं।

उत्तर—धर्मने ऐसा विचार कर राजा परीक्षितके सम्मुख अपने वैरीको नहीं बताया, कि यह राजा परीक्षित पाण्डवोंका पोता है और बड़ा बुद्धिमान् है, अपने मनसे ही सब संसारके चरित्रोंको जान लेगा और ऐसा भी लिखा है, कि, अपना प्राण नष्ट होता हो और दूसरेका प्राण अपने झूठ बोलनेसे बच जाय तो वह झूठ बोलना भी सत्यके समान है। धर्मने अपने मनमें विचारा, कि जो में अपने शत्रुको बताऊंगा तो उसी समय राजा उसको मार डालेगा, मुझको पाप होगा। अपने मनसे मेरे शत्रुको जैसा चाहेगा, वैसा करेगा इसलिये धर्मने झूठ बोला।

जिनके वचनोंके मदसे जीव विमोहित होता है ॥ १७ ॥ कोई विकल्पवादी आत्मामें आत्माको मानते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं, कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानते हैं ॥१८॥ किसीने तर्क अनिर्देश निश्चय किया है, जिस परमेश्वरकी इच्छासे सब जीव उत्पन्न होते हैं, वही परमात्मा है, इसमें जो आपको जान पड़े वह अपनी बुद्धिसे विचार लो "मैं किसीका नाम नहीं बता सकता कि, किसने मुझे सताया" ॥ १९ ॥ हे द्विजसत्तम ! धर्मने जब ऐसे वचन कहे, तब तो राजा परीक्षित चित्त सावधान करके बड़ा दुःखी हुआ और मनमें विचारा कि यह "वृषरूप धारण किये धर्म है और गोरूपी धरणीं है और यह शूद्ररूपधारी कलियुग है । इसी दुष्टने धर्मके पांव तोड़कर धरणीको दुःख दिया है और इस वसुन्धराके स्वामी परमेश्वर परमधामको चले गये इसीलिये यह आंखोंमें आंसू भरे चिन्ता कर रही है ।

केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ॥ दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १८ ॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश्य स्वमनीषया ॥ १९ ॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २१ ॥ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २२ ॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥ २३ ॥ इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २४ ॥

धर्मात्माका नाम लेनेसे धर्म और पापीका नाम लेनेसे पाप होता है, इसी कारण वृषरूपी धर्मने कलियुगको पापी जानकर उसका नाम नहीं लिया" यह विचार परीक्षित बोला ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ ! क्या तुम धर्म हो ! वृषरूप धारण किये बोलते हो, जो कोई अधर्मकी बात करता है और जो उसकी सूचना करता है, उन दोनोंको समान पाप होता है ॥ २१ ॥ अथवा देवताओंकी मायाको कोई नहीं जान सकता, मन वचनसे जो जीवोंको निश्चय हो वही श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ धर्मके चार चरण–तप, सत्य, शौच, दया है और अधर्मके अंशसे विस्मय, परस्त्री प्रसंग, मद, यह तीन है । इनके प्रवृत्त होनेसे तीन चरण टूटकर एक चरण शेष रह गया है ॥ २४ ॥ *अब हे धर्म ! दान एक चरण तुम्हारा*

रह गया है, उसको भी यह कलियुग तोड़ना चाहता है, क्योंकि झूठ बोलनेसे यह कलियुग बढ़ता है ॥२४॥ भगवानने सब भार जिसका दूर किया ऐसी सती वसुन्धरा श्रीमान्के पदोंके स्पर्शसे सब ओरसे मंगलरूप हो रही थी ॥ २५ ॥ आज कृष्ण महाराजके विरहसे व्याकुल हो आंखोंसे आंसू बहा रही है, साध्वी जैसे दुर्भागिनी हो शोक करती है, ब्राह्मणनिन्दक राजारूपधारी शूद्र मेरे ऊपर राज्य करे, यह कठिन दुःख है ॥ २६ ॥ महारथी राजाने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको शान्त कर तीक्ष्ण खड्ग अधर्मी कलियुगके वधके निमित्त उठाया ॥ २७ ॥ जब कलियुगने देखा कि यह बलवान् राजा इस समय क्रोधमें भर रहा है। और मुझको मारनेके लिये उपस्थित है।

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २५ ॥ शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥ २६ ॥ इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २७ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २८ ॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३० ॥ त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥ ३१ ॥

मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं जो इससे युद्ध करूँ, यह विचार कर नृपके सब चिह्न त्याग भयभीत हो राजाके चरणोंमें गिर पड़ा और अपने प्राण बचानेके लिये राजाकी विनती करने लगा ॥ २८ ॥ राजा उस शूद्रको अपने पैरोंमें पड़ा देख दीनवत्सल कृपालु हँसकर बोले, कि शरणागतको नामी नरेश नहीं मारते ॥ २९ ॥ राजा बोले कि, अर्जुन सरीखे यशस्वियोंके हाथ जोड़, जो शरण आया है उसको किसी प्रकारका भय नहीं है, परन्तु तू अधर्मका रूप है जहांतक हमारा राज्य है तुझे रहना उचित नहीं, शीघ्र यहांसे चला जा ॥ ३० ॥ नरदेह धारण कर जो तू रहेगा तो अधर्मका समूह बढ़ेगा। लोभ, अनृत, चौर्य, मूर्खता, अहंकार, पाप, माया, क्लेश, दम्भ यह अधिक बढ़ेंगे ॥३१॥

हे अधर्मके मित्र ! तू यहां मत रह और जो सत्य, धर्म, व्रत करे तो रह । यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग इस ब्रह्मावर्त (बिठूर) में यज्ञेश्वरका यज्ञसे यजन करते हैं ॥ ३२ ॥ इस यज्ञमें भगवान वासुदेवका पूजन होता है, यज्ञमूर्ति ईश्वर यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं, अमोघ सब कामना पूर्ण होती है, जैसे स्थावर जङ्गमोंके बाहर भीतर वायु रहता है वैसे ईश्वर रहता है ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! जब राजा परीक्षितने यह वचन कहे, तब तो कलियुग थरथर कांपने लगा । खड्ग हाथमें लिये यमराजकी नाईं राजा परीक्षितको देखकर बोला ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! तुम्हारी आज्ञासे जहां कहीं रहूँगा वहां भी आप धनुष-बाण लिये मेरे पीछे फिरोगे, इस कारण मैं यहां नहीं रहूँगा ॥ ३५ ॥ हे धर्मध्वज ! ब्रह्माने चार युग रचे-सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, उनकी अवस्थाका प्रमाण इस प्रकार

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३४ ॥ यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३५ ॥ तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्ये आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३६ ॥

किया है कि सतयुग १७२८००० सत्तरह लाख अट्ठाईस सहस्र वर्ष राज्य भोगकर चल दिया, फिर त्रेता आया, उसने भी १२९६००० बारह लाख; छियानबे सहस्र वर्ष राज्य किया । फिर द्वापरका प्रवेश हुआ, उसने भी आनन्द सहित ८६४००० आठ लक्ष चौंसठ सहस्र वर्ष राज्य कर लिया । अब सब अपना-अपना राज्य भोग चुके, अब मेरे राज्य करनेका समय आया और ४३२००० चार लाख बत्तीस सहस्र वर्षकी मेरी अवस्था है, मुझको भोगनी पड़ेगी और मुझे आप आज्ञा देते हैं कि तू हमारे राज्यसे निकल जा । सातद्वीप नौखण्डमें तो आपका राज्य है फिर मैं कहां जाकर बसूँ और जो विधाताका लेख है, वह किसी प्रकार मिट नहीं सकता । फिर मैं क्या करूँ, कहां जाऊँ, हे दीनदयालु ! आप मेरे अवगुणोंका विचार तो करते हैं परन्तु मेरे गुणोंकी ओर ध्यान नहीं करते, मुझमें एक

गुण अत्यंत उत्तम है, वह आपसे निवेदन करता हूँ, सतयुगमें राजाके राज्यमें एक मनुष्य अपराध करता था तो समस्त राज्यभरके मनुष्य दण्ड पाते थे। त्रेतामें एक मनुष्यके पाप करनेसे सब ग्रामका ग्राम दण्डका भागी होता था और द्वापरमें जो कोई कुकर्म करता था उसके सब कुटुम्बको शासना दी जाती थी और कलियुगमें जो पुरुष अन्याय करता है वही अपने शरीरसे भोगता है दूसरेसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, और युगोंमें मनुष्योंको मनका भी पाप लगता था और उसका दण्ड भोगना पड़ता था, सो मेरे राज्यमें मनका पाप नहीं लगता, बरन मानसिक पुण्यका फल मिलता है, जब इस बातपर राजा परीक्षित सन्तुष्ट न हुए और उनके मनमें दया नहीं आयी तो फिर कलियुगने कहा—हे दीनानाथ! मुझमें एक गुण और बड़ा लाभदायक है, सतयुगमें जो कोई वैकुण्ठके जानेके लिये दशसहस्र वर्ष जप, तप, संयम करता था तब उसकी मनःकामना सफल होती थी। त्रेतामें जब मनुष्य बहुतसा धन लगाकर सहस्र वर्षतक अश्वमेध यज्ञ करते थे, तब उनका मनोरथ सिद्ध होता था। द्वापरमें सौ वर्ष तक दान, व्रत, पूजा, ध्यान, भगवान् वासुदेवका करनेसे इच्छा पूर्ण होती

सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३७ ॥
पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥ ३८ ॥

थी और मेरे राज्यमें जो मनुष्य पलमात्रको भी एकाग्र चित्त करके सच्चे मनसे परमेश्वरका भजन करे वा सच्चे मनसे हृदयमें ध्यान करे और उनकी कथा वार्ता सुने, वह अपने सर्व कार्यको साध अनेक जन्मके पापोंसे छूट मोक्षका भागी होता है। जब कलियुगमें यह पूरा गुण सुना, तब तो राजा परीक्षित कलियुगपर बहुत प्रसन्न हुए। कलियुग हाथ जोड़कर बोला, कि हे पृथ्वीनाथ! हे दयानिधि! हे दीनदयालु! जो आप मुझपर प्रसन्न हों तो कृपा करके मुझको प्राणदान दीजिये और जिस स्थानपर आपकी आज्ञा मेरे रहनेकी हो मैं वहां निश्चित होकर रहूं और सदा आपका आज्ञाकारी रहूँगा ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकार कलियुगने प्रार्थना की तब राजा कलियुगके लिये स्थान बताने लगे-जहां जुआ होता हो, जहां मदिरा बिकती हो, जहां वेश्या रहती हों और जहां जीवहिंसा हो, ये चार स्थान तुमको दिये। तुम इन चारों स्थानोंमें वास करो ॥ ३७ ॥ फिर विनती करके कलियुग बोला कृपासिन्धु! मेरा कुटुम्ब बहुत है, इन

स्थानोंमें कैसे समायेगा, तब राजाने कहा-सोनेमें भी तुम रहो, इसी प्रकार, झूठ, मद, काम, रजोगुण, वैर यह पांच स्थान तुमको और दिये ॥३८॥ राजा परीक्षितके दिये हुए उन्हीं पांच स्थानोंपर अधर्मी कलिने अपना वास किया ॥३९॥ जो पुरुष संसारमें अपनी वृद्धि चाहे, तो इन पांच बातोंके निकट न जाय। धर्मात्मा राजा, लोकपति, गुरु, विशेष करके इनका सेवन नहीं करे ॥ ४० ॥ धर्मरूपी वृषके तीन पद-तप, शौच, दया यह नष्ट हो गये थे, इनको अपने धर्मसे अच्छा किया और पृथ्वीको भी धैर्य देकर शान्त किया ॥ ४१ ॥ यह राजा परीक्षित राजाओंके योग्य आसनपर बैठे, जो राजसिंहासन राजा युधिष्ठिर और अर्जुन वनको जाते समय इनको दे गये थे ॥ ४२ ॥

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ३९ ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४०॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपःशौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४१॥ स एष एतर्ह्यध्यास्ते आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञाऽरण्यं विविक्षता ॥ ४२ ॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रः श्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४३ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० महा० प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥

अब वह राजऋषि कौरवोंकी शोभा बढ़ानेवाले, महाभागवत, चक्रवर्ती, महायशस्वी हस्तिनापुरमें हैं ॥ ४३ ॥ राजा अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षितका ऐसा प्रताप है कि, वह समस्त पृथ्वीका पालन करते हैं, तब ही तुम यज्ञ करते हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा—अष्टादश अध्यायमें, कियो नृपति अतिपाप। ताके बदलेमें दियो, शृङ्गी ऋषिने शाप ॥ जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर माताके पेटमें नहीं मरे, यह अद्भुतकर्मवाले श्रीकृष्ण

जीकी ही कृपा थी ॥१॥ ब्राह्मणने क्रोध करके यह शाप दिया कि तुमको तक्षक सांप काटेगा तो भी इस प्राणनाशक महाभयसे मोहित न हुए और भगवान् वासुदेव के चरणोंमें ही लवलीन रहे ॥ २ ॥ सबका संग त्याग, वैराग्य ले, भगवत् तत्त्व जानकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेव मुनिके समीप श्रीगंगाजीके तटपर तनु त्याग किया ॥३॥ ऐसे श्रीमद्भागवतकी वार्त्ता सेवन करनेवालेको उनकी कथा–अमृत पान करनेवालोंको, श्रीकृष्ण चन्द्रके चरणकमल स्मरण करनेवालोंको अन्तकालमें भी संभ्रम नहीं होता है ॥ ४ ॥ कलियुग प्रविष्ट तो हुआ परंतु सब स्थानोंमें अभीतक प्रवेश नहीं किया, जब तक पृथ्वीमें नरेश परीक्षित राज्य करते रहे ॥५॥ जिस दिनसे जिस समयसे श्रीकृष्णचन्द्र

ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥ तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥ नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥ किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥

आनंदकंदने पृथ्वीको त्यागा, उसी दिनसे यहां अधर्मवर्द्धक कलियुगने सब पृथ्वीपर प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजा परीक्षितने कलियुगसे शत्रुता नहीं की, किंतु भ्रमरवत् सारग्राही हुए, क्योंकि जिस कलियुगमें मानसी पुण्य तो संकल्पमात्र करनेसे सिद्ध होता है और संकल्प करनेसे पाप नहीं होता । यदि कदाचित् करो भी तो उसका फल तत्काल नहीं होता ॥ ७ ॥ जो प्राणी धैर्यसे कार्य करनेवाले हैं, उनका अधर्मी कलियुग क्या कर सकता है, मदान्ध मनुष्योंमें कलियुग शीघ्र प्रवेश करता है, जैसे बालकोंमें भेड़िया आता है और शूर माओंके निकट नहीं आता ॥ ८ ॥ पुण्यरूप परीक्षित का आख्यान आपके सामने वर्णन किया । भगवान् वासुदेवकी कथा-वार्ता

जिसमें हो ऐसा कोई आख्यान और पूछो ॥ ९ ॥ कहने योग्य श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म हैं, उन भगवान् वासुदेवकी जो-जो कथा गुण-कर्म आश्रय हैं वह मनुष्य संसारमें सुखकी इच्छा करनेवालोंको सदा सेवने योग्य हैं ॥१०॥ सब ऋषि बोले कि, हे सूत! हे सौम्य! सहस्र वर्षकी तुम्हारी आयु हो, बहुत दिनों तक तुम्हारा यश रहे, जो तुम श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र मनुष्योंको अमृतके समान पान कराते हो ॥ ११ ॥ अविश्वासवाले इस कर्मरूपी धुयेंसे धुंधरी आत्मा हमारी हो गयी। आप मनुष्योंको अमृतरूपी श्रीकृष्णके चरणारविंदोंको मधुपान कराओ ॥१२॥ भगवत्-भक्तोंके सङ्ग करनेवालोंको एक लवमात्रके सत्संगकी समता स्वर्ग नहीं कर सकता, न मुक्तिका आशीर्वाद उन्हें

या या कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥ कर्मण्यस्मिन्नाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ अपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ हरेरुदाराचरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥ १६ ॥

दे सकते हैं फिर मनुष्योंका तुच्छ मनोरथ जो राज्यादिक हैं, उनकी तो गणना ही क्या है ? ॥ १३ ॥ महात्माओंके एकान्त ध्यान और उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त हो सकता है। कोई नहीं। निर्गुणी ईश्वरके गुणोंका अन्त योगेश्वर शिव ब्रह्मादिक नहीं जान सकते, फिर ऐसा कौन पुरुष है, जो उस कथाके रसको पहिचान कर तृप्त हो ? ॥१४॥ हे विद्वज्जन ! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत्प्रधान आप विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १५ ॥ महाभागवत, मोक्षके जाननेमें चतुर बुद्धिमान राजा परीक्षित, व्यासपुत्र शुकाचार्यके कहे हुए

ज्ञानसे गरुड़ध्वज श्रीहरिके चरणोंकी समीपताको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ अतिश्रेष्ठ पुण्यदायक जिसमें सुगम अर्थ अति अद्भुत, योगागम्य अनन्त चरित्र युक्त, परीक्षितका जिसमें कथानक, भागवतोंका आनंददायक, बहुत बड़ा आख्यान हमसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! बड़े आनंदकी बात है, कि विलोममें हमारा जन्म है तो भी वृद्धोंकी सेवासे हमारा जन्म सफल हुआ और महात्माओंका सत्संग कुलके जन्मकी जो मानसी पीड़ा है उसको शीघ्र नाश करता है ॥ १८ ॥ महात्माओंका एकान्तमें चिंतन योग्य, श्री नारायणका नाम लेना सब पापोंसे छुड़ाता है । अनंतशक्ति भगवान् अनंत महागुणवान् होनेसे अनंत कहलाते हैं ॥ १९ ॥ बस इतना कहना ही पूर्ण है कि गुणोंमें

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥ ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हाऽऽस्म वृद्धानुवृत्त्याऽपि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥ १८ ॥ कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥ १९ ॥ एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुंजुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ॥ सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥ यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ॥ व्रजन्ति यत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥

जिनके समान कोई नहीं, लक्ष्मीकी जिनको इच्छा नहीं, ऐसे परमात्माके चरणोंकी रेणुओंका लक्ष्मी दिन-रात सेवन करती है और ब्रह्मादिककी प्रार्थनाको भी त्याग देती है ॥ २० ॥ जिनके चरणनखका प्रक्षालन गंगाजी, ब्रह्माजीसे धोया हुआ जल सबको पवित्र करता है, ऐसे सर्व सामर्थ्यवान् भगवान् वासुदेवसे अधिक और भगवत् पदार्थ लोकमें कौन है अर्थात् कोई नहीं ॥ २१ ॥ जहां अनुरागी धीर देहादिकोंमें सबका संग त्यागकर परमहंसोंका आश्रम जो सबके पीछेका है उसको जाते हैं, जिसमें कोई हिंसा नहीं है, उपशांति

आदि अपना धर्म उसमें है ॥ २२ ॥ हे सूर्यसमान, हे त्रयीमूर्ति ! आपने जो हमसे पूछा है वह जितना मुझको ज्ञान है उतना हम आपसे कहेंगे। जैसे पक्षी लोग अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, उसी भांति विष्णुनारायणकी लीलाको अपनी बुद्धिके अनुसार विद्वान लोग कहते हैं ॥ २३ ॥ एक दिन राजा परीक्षित धनुष बाण लेकर वनमें आखेट खेलनेको गये। मृगोंके पीछे दौड़नेसे भूख-प्यासके कारण अत्यन्त व्याकुल हो ॥ २४ ॥ जलाशय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक आश्रममें प्रवेश किया वहां एक ऋषीश्वर शान्तस्वरूप नेत्र मूँदे बैठे देखा ॥ २५ ॥ प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सब जीते सबसे उपराम हुए तीनों अवस्थासे भिन्न तुरीया अवस्थाको प्राप्त हुए, क्रिया रहित ब्रह्मभूत ब्रह्मरूप हो

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ॥ नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४ ॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राण मनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६ ॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७ ॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९ ॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥ ३० ॥

रहे थे ॥२६॥ जटा सब शरीरपर बिखर रही हैं,रुरु नामक मृगके चर्मके ऊपर बैठे, जिनको देहका कुछ अनुसंधान नहीं, उन शमीक मुनिसे भूख-प्यासका मारा शुष्क कण्ठ राजा बोला ॥२७॥ "मैं प्यासा हूँ" जब ऋषिने तृण, भूमि, अर्घ्य, मीठे वचनोंसे राजा का सत्कार नहीं किया, तब राजाने अपने मनमें समझा कि इसको अपने तपका घमण्ड है,इसलिये इसने मेरी अवज्ञा की, यह समझ राजाके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसा कभी नहीं हुआ जो राजाने भूख-प्याससे व्याकुल हो ब्राह्मणोंपर क्रोध और मत्सरता की हो । ॥ २९ ॥ यह विचार कर राजा परीक्षितने उस ब्रह्मऋषिके कण्ठमें मरा हुआ सर्प क्रोध करके धनुषके अग्रभागसे डाल दिया और अपने नगरको

चला आया। और मार्गमें मन ही मन यह कहता जाता था ॥ ३० ॥ सब इंद्रियोंको रोके नेत्र मूंद झूठी समाधि लगाये इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि क्षत्रिय लोग हमारा क्या करेंगे ? ॥३१॥ उनका अतितेजस्वी बालक पुत्र बालकोंके सङ्ग खेलता था, वहां किसी लड़के ने आकर कहा-हे बंधो ! आज तुम्हारे पिताके गलेमें राजा परीक्षित मरा हुआ साँप डाल गये हैं, यह बात सुन शृंगीऋषि कहने लगा ॥३२॥ बड़ा अधर्म है कि पालक, दास, द्वारपालक तथा राजाओंको अपने स्वामीमें अपराध करना नहीं चाहिये, जैसे काक, श्वान करते हैं ॥ ३३ ॥

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषासमाधिराहोस्वित् किं नः स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रोऽति तेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाऽघं प्रापितं तात श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥ अहो अधर्मःपालानां पीव्नां बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः॥स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याऽप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥

क्षत्रियों को ब्राह्मणोंने द्वारपालक किया है। द्वारवासी घरमें जाकर उसी पात्रमें कैसे भोजन करने योग्य है ? ॥ ३४ ॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीसे चले गये। मैं धर्मके सेतु तोड़नेवालोंको आज भली भाँति शिक्षा करता हूँ, तुम सब मेरा पुरुषार्थ देखो ॥ ३५ ॥ यह कह शृङ्गीऋषि क्रोधसे लाल नेत्र कर, अपने समान बालकोंके सम्मुख कौशिकी नदीका जल हाथमें लेकर राजा के ऊपर वाग्वज्र

---

१. शंका—राजा परीक्षित तो बड़ा बुद्धिमान् था फिर उसकी बुद्धि भ्रष्ट क्यों हो गयी ? जो नीचपनसे राजा परीक्षितने मरा हुआ साँप उठाकर मुनिके गलेमें डाल दिया। यह क्या कौतुक ? ऐसा काम तो कोई उन्मत्त भी नहीं करता, जो कदापि ऐसा मान लिया जाय कि परीक्षितकी बुद्धि कलियुगने भ्रष्ट कर दी तो भी शोभा नहीं होती, क्योंकि कलियुगको राजा परीक्षितने रहनेके लिये स्थान दे दिया था तब कलियुगसे राजा परीक्षितने कहा कि हमारे राज्यमें तू अपना पराक्रम मत करना। इस प्रकार राजाका और कलियुगका वचन हुआ था, तो कलियुगने तुरन्त ही अपने वचन क्यों छोड़ दिये ?

उत्तर—राजा परीक्षित सात वर्षका बालक था, तब बालकोंका खेल खेलते पांडवोंकी सभामें गया। वहां पावक मुनि बैठे थे उनको सूतके सर्पसे डरा दिया। तब पावक मुनि जो सभामें विराजमान थे उन्होंने परीक्षितको शाप दे दिया और कहा कि, हे दुष्ट बालक। पाण्डवोंके देखते-देखते हमको सर्पसे डराता है, इसलिये तेरी मृत्यु भी सर्पसे होगी, उस मुनिके शापसे राजाकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। इसलिए ऐसा पाप राजा परीक्षितने किया ॥

छोड़ा ॥ ३६ ॥ आजसे सातवें दिन मर्यादानाशक कुलमें अङ्गाररूप मेरा भेजा हुआ तक्षकसर्प मेरे द्रोहीको काटे॥३७॥ पीछे आश्रमपर आकर अपने पिताके गलेमें सर्प पड़ा देख बहुत दुःखी हुआ और धाड़ें मार-मार कर रोने लगा ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! वह अंगिरागोत्री शमीक ऋषि, पुत्रका विलाप सुन साधारणसे नेत्र खोलकर अपने कण्ठमें मरा सांप देखा ॥३९॥ उसको निकाल पुत्रसे बोले-हे पुत्र !क्यों रोता है, किसने तेरा अनादर किया ? यह बात पिताके मुखसे सुन उसने सब वृत्तांत कह सुनाया ॥४०॥ यह बात सुन शमीक ऋषि घबड़ाकर बोले-"अरे बेटा ! तूने यह क्या किया ? जो राजा परीक्षित शापके योग्य नहीं थे उनको तूने विना समझे शाप दिया; अरे पुत्र ! यह अच्छा नहीं हुआ । बड़े

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥ ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥ स वा आङ्गिरसो ब्रह्मञ्छ्रुत्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥४०॥ निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत ॥ अहो बतांहो महदद्य ते कृतं स्वल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥४१॥ न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ॥ तदाहि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ॥ परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते पशून्स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥

खेदकी बात है कि, थोड़े अपराध करने पर द्रोहसे ऐसा कठिन दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ हे मूर्ख ! राजा परीक्षित मनुष्योंके समान नहीं है; उनका पराजय करना योग्य नहीं है, जिसके महातेजसे प्रजा रक्षित हो भयरहित सदा सुख भोगती है ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्‌का स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करे तो मेंढ़ोंके समूहकी भांति यह लोक चोरोंके बढ़नेसे नष्ट हो जाय ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट हो जायगा तो उसका धन भी लुट जायगा, इस पापसे हमारा सब वंश पाप भोगेगा, परस्पर मरेंगे, मारेंगे, शाप देंगे बहुत चोर लुटेरे बढ़कर पशु, स्त्री इत्यादि अनेक पदार्थ

हरेंगे ॥ ४४ ॥ तब मनुष्योंके सदाचारधर्म, वेदोक्त वर्णाश्रम आचार सब लीन हो जायँगे । अर्थ कामकी अभिलाषा करनेवाले, वानर, श्वान पशुओंकी नाईं सब वर्णसंकर हो जायँगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! धर्मकी रक्षा करनेवाला नरपति साक्षात् महायशस्वी, राजर्षि, अश्वमेधकारी राजा परीक्षित है ॥ ४६ ॥ क्षुधा, तृषा, परिश्रमसहित अपने स्थानपर आया और हमारे यहां आकर उलटा शापित हुआ, क्या वह शापके योग्य था ? यह बात शमीक ऋषिने पुत्र शृङ्गीऋषिसे कही फिर परमात्माका ध्यान करके यह प्रार्थना की कि, हे नाथ ! मेरे पाप रहित अज्ञानी बालक सेवकसे बड़ा अपराध हुआ, इस अज्ञानी बालकका दोष क्षमा करो ॥ ४७ ॥ तिरस्कृत, वंचित, शापित, अपमानित,

तदायधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥४५॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः॥साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट्॥क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ॥ पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥ तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥४८॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ॥ न व्यथन्ति न हृष्यन्तियतआत्माऽगुणाश्रयः *॥५०॥ इतिश्रीभा॰महापु॰ प्रथमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

ताड़ित भगवान्के भक्त अपने अपराध करनेवालेको शाप नहीं देते ॥ ४८ ॥ पुत्रके अपराधसे महामुनि अत्यंत दुःखी हुए परन्तु राजाने जो अपराध किया उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ४९ ॥ प्रायः परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापता, न उनको कोई व्यथा हो, न वे अप्रसन्न हों, क्योंकि वे अपने गुणोंसे सर्वव्यापक ईश्वरके समान आप हो जाते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां विप्रशापवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

* 'फिर शमीकऋषिने सोचा कि जो कुछ होना था वह हुआ, परंतु राजाको यह वृत्तान्त अवश्य कहला भेजना चाहिये जिससे वे अपने मोक्षका उपाय कर लें, यह बात सुनकर जगत्के लोग तो शृंगी ऋषिको दूषण देंगे ही, परंतु ऐसे धर्मात्मा राजाको यह बात अवश्य बता देनी चाहिये । यह विचार शमीक मुनिने अपने एक शिष्यसे कहा–तू राजा परीक्षितके पास जाकर हमारी ओरसे आशीर्वाद देकर यह कहना,

दोहा–बरणौं कथाविशेष सब, यथाशाप इतिहास । राजकाज तजि नृपति ज्यों, कीन्ह गङ्गतटवास ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि! राजा परीक्षितने अपने आप जो निंदित कर्म किया उसका चिन्तन कर अपने मनमें बहुत दुःखी होकर कहने लगे, कि मैंने विना अपराध ब्राह्मणको सताया जिनका तेज छिपा हुआ था उन निरपराधी ब्राह्मणपर महानीच कर्म अपनी मूर्खता से मैंने किया ॥ १ ॥ निश्चय है कि, मैंने ईश्वरके भक्त महात्माकी अवज्ञा की है, इसलिये थोड़े दिनोंमें अत्यंत दुःख शीघ्र इस पापके प्रायश्चित्तके लिये मुझको हो, मेरी यह इच्छा

सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥ ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥ २ ॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥ स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥

है, क्योंकि अपने आप फिर ऐसा पाप मैं न करूँ ॥२॥ राज्य, सेना, ऋद्धि, कोष, अत्यंत कुपित ब्राह्मणके कुलसे उठी आग क्षणमात्रमें सबको भस्म कर दे । जो मुझ अमांगलिककी ऐसी पापी बुद्धि ब्राह्मण, गौ, देवतामें फिर कभी न हो ॥३॥ ऐसे चिंतन कर ही रहे थे कि उसी समय शमीक मुनिके भेजे हुए एक शिष्यने आकर कहा कि, हे राजन्! शमीकमुनिके पुत्र शृंगीऋषिने आपको यह शाप दिया है कि आजसे सातवें

कि शृंगीने तुमको शाप दिया है, कि सांपके काटनेसे तुम्हारी अकालमृत्यु होगी, तुम सावधान होकर अपने मोक्षका यत्न करो इतनी कथा कह सूतजी बोले–हे ब्रह्मन्! देखो जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके अस्त्रसे बचा, जिसने धर्मकी रक्षा कर कलिकालको अपने वशमें किया, वही राजा परीक्षित एक ब्राह्मणके बालकके, शापसे सर्पके मुखमें गया और किसीसे उसकी रक्षा न हुई, ऐसा तेज ब्राह्मणोंका है ॥

१. कवित्त––सर्व अंग भंग होत गुरुकी जो निन्दा करे, नरकमाँहि वास होत नारीके चुरायेसे । अन्धे और लूले होत जीवनके हिंसक जे, ज्ञान बुद्धि नष्ट होत नीच धान्य खायेसे ॥ कुष्ठी और मूक होत मुनिनको सतावें जो, नरकमाँहि वास होत परनिंदा गायेसे । विप्रनके पूजनसे यश होत शालग्राम, वंशको विनाश होत विप्रके सतायेसे ॥ १ ॥

दिन तक्षक सांप राजाको डसेगा, जिससे मृत्यु हो जायगी। यह सुन राजाने तक्षकाग्निको बहुत उत्तमं माना, क्योंकि विषयासक्तोंको यह विरक्तताका कारण है ॥४॥ राज्य और देह दोनों पहले ही त्यागनेके योग्य हैं और यह अधिकता है कि श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंकी सेवा करूंगा, यह विचार श्रीगङ्गाके तट जानेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णचरणोंकी रेणुसे अत्यन्त शोमित अधिक पवित्र, निर्मल जल बहानेवाली गंगाजी दोनों लोकोंको ईशसहित सबको पवित्र करती हैं, ऐसी गंगाका, जिसकी मृत्यु निकट आयी हो अवश्य सेवन करे। "राजाके मनमें इस बातका बड़ा खेद था कि इस अन्यायके बदले ऋषिने मुझको तुरन्त दण्ड नहीं दिया, जो तुरन्त प्राण छूट जाते तो सात दिनतक इस पापी शरीरके रखनेका क्या अभिप्राय था। अब मुझको उचित है कि सात दिन जो मेरे मरनेके हैं इस अन्यायी शरीरको यही दण्ड है कि अन्न पानी न दूं क्योंकि जिस देहसे परमेश्वरका भजन और भक्ति न हो वह देह किसी

अथो विहायेममसुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥ इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७ ॥

कामका नहीं, अब सब माया, मोह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम, त्याग परमात्माके ध्यानमें लीन होना चाहिये। इतनी अवस्था हमारी संसारके माया मोहमें वृथा नष्ट हुई और तो भी यह पापी मन विरक्त न हुआ और जब मैं सातवें दिन मर जाऊंगा तब यह राज्य और धन धरा ही रहेगा, इसलिये मुझको उचित है कि मैं पहले ही इन सबकी माया मोह त्याग दूं और श्रीगंगाजी के निकट जाऊं जो तीनों लोकोंका निस्तार करती हैं। सात दिन वहीं बैठकर वैकुण्ठनाथका भजन करूं तो मोक्ष हो। क्योंकि संसारमें जो जन्म लेगा वह अवश्य मरेगा। ब्रह्मादिक देवता भी अमर नहीं रहते, इस संसारमें जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है और चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमता-फिरता है, अतः इस सात दिनमें अब कोई ऐसा उपाय करूं जिससे आवागमनके फन्देसे मुक्ति पाऊँ। यह बात विचार सर्व नगरनिवासियोंको

बुलाकर जन्मेजय अपने बड़े पुत्रको जिसकी चौदह वर्षकी अवस्था थी राज्यसिंहासनका अधिकारी किया और सब राजकाजका भार मंत्री और प्रधानोंको सौंपकर जन्मेजयसे कहा—हे पुत्र ! गौ, ब्राह्मण, साधु, सन्तकी रक्षा करना और प्रजाको पुत्रके समान पालना, किसीपर अन्याय न करना, यह कह राजाने अपना मन विरक्त कर भूषण वस्त्र शरीरसे उतार रानियोंको समझाया, कि स्त्रियोंका धर्म यही है कि, जिस बातमें उसके पतिकी मर्यादा रहे वही काम करना चाहिये। पतिके धर्ममें विघ्न नहीं डाले, परमेश्वर जन्मेजयादि पुत्रोंको जीवित रक्खे, तुमको सर्व प्रकारका सुख है, इस भांति सबको धैर्य दिया ॥६॥" हे शौनकमुनि ! सो पाण्डुनन्दन यह निश्चय कर अनशन व्रत ले गङ्गा

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ ८ ॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥ मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥ अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥ नानार्षिवर्यप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥

तीर जाय सब भाव हरिमें कर मौनव्रत धर सब संग त्याग भगवानके चरणोंका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥ सर्वत्र भुवनके पवित्रकर्ता महा अनुभवी ज्ञानी शिष्योंसहित बहुतसे तीर्थयात्राके मिषसे आप सर्व तीर्थोंको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण मननशील मुनि आने लगे ॥ ८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मबाहु ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, द्वैपायन, भगवत अवतार श्रीनारद ॥ १० ॥ और देवर्षि ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ राजर्षिवर्य आरुणादिक नाना ऋषिवर्य आये ॥ ११ ॥ जब आनन्दपूर्वक सब बैठ गये तब राजाने सबको प्रणाम किया,

एकान्त चित्त कुशासनपर बैठे हाथ जोड़कर जो अपने करनेकी इच्छा थी वह कही ॥ १२ ॥ फिर बोले, कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि शीलवान महात्माओंने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, इस कारण मैं राजाओंमें धन्य हूँ, क्योंकि ब्राह्मणोंके चरणामृतने राजाओंको कुछ दूरसे त्यागा है और एक मुझसे यह निंदित कर्म हो गया॥ १३ ॥ घरमें बारंबार आसक्तचित्त मुझ पापीको ज्ञानदायक पर अवरोंमें ईश्वर ही ब्राह्मण शाप रूप हो गये जिससे मुझे शीघ्र भय होता है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! मैं आपके शरणागत हूं, यह जानो कि परमेश्वरको और गंगाजीको चित्तमें धारण कर लिया। विप्रके शापसे कपटी तक्षकके काटनेका मुझे कुछ भय नहीं, आप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी कथा

परीक्षिदुवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४ ॥ तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥ इति स्म राजाऽध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७ ॥ एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥

कहिये ॥१५॥ जिससे अनन्त भगवानमें मेरी प्रीति अधिक हो और उनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंमें मेरी मैत्री हो और जहां-जहां मेरा जन्म हो वहां-वहां सबको नमस्कार हो और ब्राह्मणोंकी शरणमें रहूं ॥ १६ ॥ राजा परीक्षित ऐसे निश्चय कर पूर्वका मूल कुशाके आसनपर महाधीर उत्तरकी ओर मुख कर समुद्रकी स्त्री गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठे और जन्मेजयको सब राज्यका भार पहले ही सौंप गये थे ॥ १७ ॥ जब वह नरदेव अन्न जल त्याग एकाग्रचित्त बैठे, तब देवताओंके समूहके समूह स्वर्गमें प्रशंसा कर कर दुंदुभी बजा-बजा कर

बारंबार भूमिमें पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥ जो महाऋषि आये थे वे सब प्रशंसा और बड़ाई करने लगे, जिनका प्रजाके अनुग्रहके अर्थ शील सार है, वह मुनि उत्तमश्लोकके सुन्दर गुणवर्णन करने लगे ॥ १९ ॥ हे राजर्षिवर्य ! श्रीकृष्णके अनुवर्ती आपमें यह कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि भगवतके समीपकी चाहनावाले राजाने किरीटोंसे सेवित राज्य त्याग दिया ॥ २० ॥ जबतक ये शरीरको नहीं त्यागेंगे, तब तक हम इन्हींके निकट बैठे रहेंगे, क्योंकि ये भागवतोंमें प्रधान पवित्र विशोक वैकुण्ठको जायँगे ॥२१॥ सब ऋषिगणोंका पक्ष-पात शून्य अमृतरूपी गम्भीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित सुनकर विष्णुके चरित्र सुननेकी इच्छासे सब ऋषीश्वरोंको प्रणाम करके

महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ ॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्व कामाः ॥ २० ॥ सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ आभाषतैतानभिवन्द्य युक्त शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२ ॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ॥ नेहाथवाऽमुत्र च कश्चनार्थमृते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥ ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रम्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गाम-टमानोऽनपेक्षः ॥ आलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥

यह बोले ॥२२॥ त्रिलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जैसे वेदमूर्ति रखकर बैठे हैं, ऐसे ही सब आकर मेरे निकट विराजमान हुए हो ।पराये अनुग्रहके लिये परिश्रम करनेका आपका स्वभाव है, इस लोकमें जो कर्तव्य हो अथवा परलोकके लिये जो कुछ हो वह सब कृपा करके वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ हे मुनिगणो ! आप पर विश्वास कर जो कुछ पूछने योग्य है, वह पूछता हूं, कि इस समय क्या करना चाहिये ? सब प्रकारसे जिसकी मृत्यु आयी हो उसको शुद्ध होनेके लिये कृपा पूर्वक संमति कर कोई उपाय बताइये ॥२४॥ यह सुन कोई बोले-कि, यज्ञ करो । किसीने

कहा-योग करो। कोई बोले-तप करो। किसीने कहा-दान करो। यह विवाद हो रहा था, उसी समय व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी अपनी इच्छासे विचरते-विचरते इच्छारहित, आश्रम चिह्नरहित, यथालाभ संतुष्ट स्त्रीबालक पीछे कौतूहलसे लगे अवधूत वेष किये शुकदेवजी आये ॥ २५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, चरण, हाथ, हृदय, बाहु, कन्धा, कपोल, शरीर सुन्दर, विशालनेत्र, उठे हुए दोनों तुल्य कर्ण, सुन्दर भौं; मुख, शङ्ख समान कण्ठ, शोभायमान ॥२६॥ मांससे छिपी हुई कण्ठसे नीचेकी दोनों हड्डी; चौड़ा ऊँचा वक्षस्थल, कुण्डके समान गोल गम्भीर नाभिस्थल, तिरछी झुकी हुई रेखाओंसे मनोहर उदर, दिगम्बर अर्थात् नग्न फैले हुए केश, लम्बे भुजदण्ड यह शोभा सुरोत्तम भगवानकी-

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥ २६ ॥ निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिवलिवल्गूदरं च ॥ दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ॥ ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९ ॥ ससंवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ॥ व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षताराnikरैः परीतः ॥ ३० ॥ प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥

सी हो रही ॥ २७ ॥ सुन्दर श्याम शरीर, श्रीयुक्त अंग, मनोहर मुसकान, गुप्ततेज, ऐसे लक्षणोंसे पहिचान कर मुनि आसनोंसे उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥ राजा परीक्षितने अतिथि शुकदेवजीको देख दण्डवत् प्रमाण कर पूजन किया, अज्ञानी स्त्री बालक सब चले गये, यह पूजित हो महासिंहासनपर बैठे ॥२९॥ वहां महापूज्योंमें ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षियोंके समूहमें भगवान शुकदेवजी अत्यन्त शोभित हुए, जैसे ग्रह नक्षत्र तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभा देता है ॥ ३० ॥ सब अर्थमें जिनकी बुद्धि अति शान्त बैठे ऐसे शुकदेव मुनिको भागवत राजा प्राप्त

करके मस्तकसे प्रणाम कर सावधानीसे हाथ जोड़ नमस्कार कर कोमल वाणीसे पूछने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करके क्षत्रिय लोग सफलजन्म हुए, अतिथिरूप आपने कृपा करके मुझे दर्शन दिया ॥३२॥ जिन ब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषोंके गृहादिक शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं, और दर्शन-स्पर्शन पाद धोनेसे मिष्ठान्न भोजन करानेसे तो अत्यन्त ही शुद्ध और पवित्र होते हैं, सब पाप-ताप कांप जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे महायोगिन् ! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट हो जाते हैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे गयादिक असुर नष्ट

अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥ येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥ सान्निध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ॥ सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वसेय प्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥३५॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

हो गये ॥३४॥ यद्यपि ऐसे हैं तथापि श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र पर प्रसन्न हुए जो आप रूप धारण कर फूफीके कुलवालोंकी प्रीतिके लिए उस गोत्रके कारण भाईबन्धु होकर रहे ॥३५॥ अत्यन्त मृतक संसिद्ध याचक, मनुष्योंको अप्रकट गतिवालोंका दर्शन होना कठिन है ॥३६॥ इससे योगियोंके परम गुरु आपसे सिद्धिका उपाय पूछता हूँ, इस संसारमें मरणधर्मी पुरुषको सर्वथा जो कर्तव्य हो वह कहो ? ॥ ३७ ॥

१. शंका—मुनिने राजा परीक्षितको शाप दिया कि आजके सातवें दिन सर्पके काटनेसे राजाकी मृत्यु होगी तब सात दिनमें राजापरीक्षितने सबकाम कार्यका प्रबन्ध कैसे किया ? मुनिका शाप सुनकर पुत्रको राज्यतिलक दे गंगाके तटपर गया, फिर सात दिनमें मुनियोंका आना और बड़े-बड़े मुक्तिमार्गके जाननेवाले महात्मा पुरुषोंको बुलाना, और श्रीशुकदेव मुनिका कथा प्रसंग सुनना और अनेक प्रकारके काम जैसे गंगाके किनारे आये जो देव, मुनि राजर्षि और भी बहुतसे साधु-संत उनका पूजन करना, आदर-सत्कार सहित सबको आसन देकर बैठाना और वारंवार कथामें प्रश्न करना, यह सब काम सात दिनमें कैसे किये ?

उत्तर—शृंगीऋषिके मुखसे अपने शापको मुनिसे सुनकर व्याकुल हो, फिर धैर्य धारणकर हितचित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करने लगे और आंखोंसे आंसू बहने लगे, कि अब क्या किया जाय। जिस दिन मुनिने मुझको शाप दिया, वह दिन आज है, क्योंकि कल मैंने मुनिका अपराध किया था, आज मुझको शाप दिया । आजके सातवें दिन मेरी मृत्यु होगी और अभी काम मुझको बहुत करने हैं ऐसा विचार फिर व्रजचन्द्रके चरणारविन्दका ध्यान करने लगा। उसी समय वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी कृष्ण भगवान्ने सात दिन सात युगके समान कर दिये जिससे राजा परीक्षितके सात दिनमें सब काम बन गये ॥

हे प्रभो ! मनुष्यसे जो श्रवण, जप, स्मरण, भजनके योग्य हो अथवा कुछ और प्रकारसे जो हो, वह कहो ? ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थोंके घरमें आपका गोदोहन कालसे अधिक स्थित रहना बहुत कठिन है॥३९॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुनि ! राजाने कोमल वाक्योंसे जब यह

यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पारमहंस्यामष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

पूछा तो धर्मज्ञ शुकाचार्य कहने लगे ॥४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषाटीकायां शुकागमनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते प्रथमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धः प्रारंभः ॥

सोरठा–जय वृन्दावनचन्द, श्रीमुकुन्द गोविंद हरि । नँदनंदन सुखकन्द, कृपा करहु जन जान निज ॥ १ ॥ अति सुन्दर कमनीय, जो छबि श्यामा श्यामकी । बसहि सदा मम हीय, यह वर देहु गणेश मोहिं ॥ २ ॥ गुरु पद रज धरि शीश, कहौं द्वितीयस्कन्ध अब । सब मिलि देहु अशीश, शीघ्र भागवत पूर्ण हो ॥ ३ ॥ दोहा–कहत प्रथम अध्यायमें, नृपसों श्रीशुकदेव । आदि विराट स्वरूपको, वर्णत हैं सब भेव ॥

श्रीवासुदेवाय नमः॥ "जैसे द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवत्‌के विराट् स्वरूपका वर्णन किया है, वह सब कथा वर्णन करेंगे" श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! जगत् हितकारी, भक्तजनोंका सम्मत, श्रवण योग्य, अत्यन्त श्रेष्ठ और अच्छा प्रश्न किया ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! जो आत्मतत्त्वको नहीं विचारते हैं और घरमें जहां पांच हत्या * नित्य होती

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥ आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थेहया राजन्कुटुम्बभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥

हैं, ऐसे मनुष्योंकी श्रवण योग्य बातें सहस्रों हैं । हे राजन् ! रात्रिमें निद्रा और मैथुनमें आयुको नष्ट करते हैं, दिनमें धनके प्राप्त करने व कुटुम्बके पालन-पोषणकी चिंतामें सब अवस्थाको क्षय करते हैं ॥२॥३॥ अपनी आत्माकी अत्यन्त खोटी सेना, देह, पुत्र, स्त्री इनके मोहमें आसक्त होकर इनका नाश देखते हैं, तथापि परमात्माकी ओर नहीं देखते ॥४॥ हे भारत ! इसलिये सबके अन्तर्यामी सुन्दर भगवान्, वासुदेव, कष्टहर्ता ईश्वरकी कथा श्रवण करने, कीर्तन करने योग्य है मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको उन्हींका नाम स्मरण करना चाहिये॥५॥ तत्त्वोंका विचार, सांख्य, अष्टांगयोग, स्वधर्ममें अत्यन्त निष्ठा करनी, यही संसारमें जन्म लेनेका परम लाभ है, कि अन्त समयमें नारायणमें स्मृति हो ॥६॥

* पाँच हत्या ये हैं—१ ऊखल, २ चक्की, ३ चूल्हा, ४ पल्हेंडी ५ बुहारी, इन स्थानों में सदा जीव मरते हैं ।

प्रायः विधि निषेध रहित मुनि लोग श्रीकृष्णके गुणकथनमें निर्गुण बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करते हैं ॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त यह भागवत नामक पुराण, वेदके समान ब्रह्मका सुन्दर ज्ञान करानेवाला है। इसे द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढ़ा था ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! उत्तम यशस्वीकी लीलासे निर्गुणमें हमारी अत्यन्त निष्ठा थी, श्रीकृष्णके चरित्रोंने मन ग्रहण कर लिया, इस कारण यह आख्यान पढ़ा ॥ ९ ॥ महापुरुष श्रीकृष्णके गुण ग्राहक आप हो, हम आपसे कहेंगे, इसमें श्रद्धा करनेवालेको मुक्तिदायक माधव

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ॥ गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ॥ ११ ॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥ खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥

मुकुन्दमें प्रीतियुक्त मति होती है ॥ १० ॥ हे नृप ! अत्यन्त वैराग्यवान् मुमुक्षुजनोंको और योगियोंको निर्भय श्रीकृष्णका नाम सदा कीर्तन करना, सबने यही निर्णय किया है ॥११॥ जो मदान्ध हैं उनको कुछ नहीं दीख पड़ता और बरसोंमें भी उनसे कुछ नहीं होता और शुभ कार्यमें यत्न करे, उसको वह दो घड़ी भी श्रेष्ठ हैं ॥१२॥ खट्वाङ्ग नाम राजर्षि दो घड़ी अपनी आयु जान एक मुहूर्तमें उसको त्यागकर

१. शंका—शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि श्रीमद्भागवत जो यह महापुराण है, ब्रह्मके गुणसे भरा हुआ है, परन्तु भागवतमें ब्रह्मके लक्षणका वर्णन कहीं भी नहीं दीख पड़ता।

उत्तर—व्यासदेवजीने पहले श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रकारके इतिहास तथा राजाओंके चरित्र वर्णन किये हैं। ब्रह्मज्ञानी मनुष्य सब भले-बुरे जो संसारी जीवोंको ब्रह्मरूप जानते हैं तथा जो पुरुष ब्रह्मज्ञानसे हीन हैं वे लोग अभिमानयुक्त नेत्रोंसे बहुत प्रकार से संसारको देखते हैं, भलेको भला, बुरेको बुरा। और श्रीशुकदेवजी महाराज ब्रह्मज्ञानी थे, चर-अचर सबको ब्रह्मरूप जानते थे इतिहास, पुराण राजाओंके चरित्रोंको भी ब्रह्मरूप जानकर श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसम्मत कहते हैं।

अभयदायक परमेश्वरको प्राप्त हुए। जब राजाने इन्द्रकी सहायता कर दैत्योंको जीता तब देवता प्रसन्न हो बोले—वर मांगो! यह सुन राजाने कहा कि, प्रथम मेरी अवस्थाका वृत्तांत कहिये कि मैं कितने दिन और जीऊंगा ? तब देवताओंने कहा तुम दो घड़ी और जिओगे; यह सुन राजा खट्वाङ्ग शीघ्र विमानपर बैठ भूमिमें आ श्रीकृष्णकी शरणागति कर मुक्त हो गया॥१३॥अतः हे राजन्! तुम तो सात दिन जिओगे, जो परलोक साधनकी क्रिया है उनको सावधानीसे करो ॥ १४ ॥ जब अन्तमें कालका समय आये तब यह पुरुष मृत्युके भयसे रहित होकर असंग रूप शस्त्रसे इस देह और इसके पीछे जो पुत्र कलत्रादिकसे सुखकी इच्छा है उसको काटे ॥ १५ ॥ घरसे निकलकर धीर पुरुष

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्साम्परायिकम् ॥ १४ ॥ अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥१५॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरःपुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ॥ मनो यच्छेज्जित-श्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥१७॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्त शुभार्थे धारये-द्धिया ॥१८॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ १९ ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥ मानसे पूजने सक्तास्ते यान्ति परमं पदम् ॥ २० ॥

पुण्यतीर्थोंके जलमें तो स्नान करे और एकान्तमें विधिवत् पवित्र आसन पर बैठे ॥१६॥ शुद्ध अ, उ, म्; यह तीन अक्षर युक्त परब्रह्म स्वरूप ओंकारका मनमें अभ्यास करे; मनको व श्वासको जीते; ब्रह्मका बीज मन्त्र (प्रणव) उसको कभी भूले नहीं ॥ १७ ॥ बुद्धि सारथीसे मन इंद्रियोंको विषयोंसे जीते, अनेक कर्मोंसे मनको खैंचकर भगवत्के रूपमें बुद्धिसे धारण करे ॥ १८ ॥ और एक मुहूर्तको भी परमात्माके चरणकमलोंका ध्यान न भूले, सब रूपका ऐसे चित्तमें ध्यान करे, मनको सब विषयोंसे हटाकर परमानन्दके साक्षात्कार विना कुछ भी स्मरण न करे ॥ १९ ॥ वही विष्णुका परमपद है, जिससे मन प्रसन्न हो,जो मानसी पूजामें लवलीन है, उसको वैकुण्ठवास मिलता है ॥२०॥

अपना मन रजोगुणसे प्रेरित हुआ तमोगुणसे विमूढ़ धारण करके रज तमके किये हुए मलका नाश करे ॥२१॥ जिसके धारण करते-करते अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको देखते हुए प्राणीको उसी कल्याणसे भगवत्के रूपमें भक्ति रूप योग प्रीति शीघ्र होती है ॥ २२ ॥ राजा परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन्! जैसी सम्मत धारणा सुन्दर होती है जिस धारणासे शीघ्र पुरुषका मन निर्मल हो वह कहो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले अति स्थूल विराट्‌रूप हम कहते हैं वह तुम चित्त सावधान करके सुनो-आसन और श्वासको जीतो, संग सुसंग करो, सब इन्द्रियोंको जीतो, स्थूल भगवत्के रूपमें मनको और बुद्धिको लगाओ ॥ २४ ॥ जितने रूप हैं उनके मध्यमें विराट् देह यह है, कि

रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥ २१ ॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ॥ स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥ २४ ॥ विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥ २५ ॥ आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २६ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥२७॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥ २८ ॥

जहां भूत, भविष्यत, वर्तमान, सत् विश्व ईश्वरमें ही दीखता है ॥ २५ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व यह सप्त आवरण सहित इस ब्रह्मांड, अथवा शरीरमें जो विराट् पुरुष है वह भगवान् इस धारणाके आश्रय है ॥ २६ ॥ अबविराट्‌रूपका वर्णन करते हैं:—सर्वव्यापक ईश्वरके पादमूलमें पाताल है; एड़ीमें रसातल है; विश्व रचनेवालेकी एड़ीके ऊपरकी गाँठोंके भागमें महातल है और तलातल विराट् पुरुषकी जंघाओंमें है ॥ २७ ॥ विश्वमूर्तिके दोनों जानुओंमें सुतल लोक है; दोनों उरुमें वितल अतल लोक हैं, महीतल

जंघाओंमें है, नभ नाभिमें है ॥ २८ ॥ ज्योतियोंका समूह जहां सूर्य चन्द्रमा रहते हैं, वह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है । ग्रीवामें महर्लोक; वदनमें जनलोक और आदिपुरुषके ललाटमें तपलोक है । और सहस्र शिरधारीके शिरमें सत्यलोक है ॥२९॥ तेजोमय इन्द्रादिक बाहुमें, सब दिशा कर्णोंमें, शब्द श्रोत्रमें, अश्विनीकुमार नासिकामें, गन्ध घ्राण-इन्द्रियमें, देदीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥३०॥ अन्तरिक्ष नेत्रगोलक हैं; चक्षु इन्द्रिय सूर्य हैं, विष्णुके दोनों पलक दिन-रात हैं; भ्रुकुटियोंका चलना ब्रह्मपद है; जल इनका तालु है, रस इनकी जीभ है ॥ ३१ ॥ अनंतके वेद शिर हैं; यमराज डाढ़, स्नेह दांत, सब जनोंको उन्माद करानेवाली हँसी, अपार विस्तार स्वर्ग अर्थात् विश्वरचना उनका

उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ॥ ततो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तुशीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २९ ॥ इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्यगन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥३०॥ द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च॥ तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३१॥ छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमःस्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥३२॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३३ ॥ नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ॥ अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥ ३४ ॥ ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३५ ॥

कटाक्ष है ॥ ३२ ॥ लज्जा ऊपरका होठ, लोभ नीचेका होठ, धर्म उनके स्तन, अधर्मका मार्ग पीठ है, प्रजापति शिश्न इन्द्रिय है, मित्रावरुण अंडकोश हैं; कोखमें सातों समुद्र हैं और सब पहाड़ उनके हाड़ हैं ॥ ३३ ॥ सब नदी उनकी नाड़ी, सब वृक्ष शरीरके रोम हैं । हे नृपेंद्र ! श्रीभगवान् विश्वरूप हैं; अनंतवीर्य हरिका श्वास पवन है; गति अवस्था है, गुणप्रवाह संसार भगवान्‌का कर्म है ॥ ३४ ॥ मेघघटा उनके शिरके बाल हैं, हे कुरुनन्दन ! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या है, प्रभात छाती है, सब विकारोंका कोष चन्द्रमा भगवान्‌का मन है ॥३५॥

विज्ञान शक्ति महत्तत्त्व है, सर्व आत्मा श्रीहरिके अंतःकरण शिवजी हैं, हाथी, घोड़े, ऊंट और खच्चर परमेश्वरके नख हैं, सब मृग पशु नितम्ब हैं ॥ ३६ ॥ भगवान्के विचित्र व्याकरण शब्द शास्त्र सब पक्षी हैं, सब मनुष्योंके निवास मनु भगवान्की बुद्धि है, गंधर्व, विद्याधर, चरणादिक यह षड्ज ऋषभादि सात स्वर हैं। उर्वश्यादि अप्सरा भगवान्की स्मृति हैं और असुरोंकी सब सेना उनका पराक्रम है ॥३७॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य उरु और चरणके आश्रित श्यामवर्ण शूद्र उनके पद हैं। नाना प्रकारके जिनके नाम, सब प्रकारसे पूजनीय, देवगण सहित, जिसमें अनेकद्रव्योंसे प्रयोग विस्तार यज्ञ जो होता है, वह यज्ञ भगवान्का वीर्य है ॥३८॥ ईश्वरके विग्रहकी यह अवयवोंकी

विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्र गजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणि देशः ॥ ३६ ॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ॥ गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरःस्वरस्मृतीर-सुरानीकवीर्यः ॥ ३७ ॥ ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रुरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्मवितानयोगः ॥ ३८ ॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ संधार्यतेऽस्मि-न्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥ ३९ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूत सर्व आत्मा यथा स्वप्नज-नेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे महापुरुषसंस्थावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

स्थिति है, वह मैंने तुमसे कही, इस स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे मुमुक्षु जनोंसे भले प्रकार धारण किया जाता है। इससे परे और कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसे अनुभव करके स्वप्नके समय एक आत्माको ही जो मन सब ओरसे देखते हैं और मन लगाकर सत्य स्वरूप आनंदसागर ईश्वरको और वस्तुओंमें आसक्तरहित होकर भजन करे, क्योंकि आसक्त होनेसे संसारबन्धनमें स्थिति होती है, ईश्वर विद्याशक्तिके आश्रय है, इस कारण बन्धनमें नहीं आता। और जीव अविद्या शक्तिके आश्रय है, इस कारण संसारके बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे विराट्रूपवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—कहूँ द्वितिय अध्यायमें, हरि को सूक्षम रूप। पुनि कछु वरणों पुरुषकी, आकृति परम अनूप ॥ ❀श्रीशुकदेवजी बोले कि, ऐसे पहले प्रलयके समयमें इस धारणासे ईश्वर प्रसन्न हुए। ब्रह्माजीने उनसे सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयसे पहले जैसा यह विश्व था उसी प्रकारका फिर रचा। उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि थी। इस धारणासे विश्व रचनेका सामर्थ्य होता है ॥ १ ॥ उपासना फलसे विरक्तको शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार है, इसलिये वैराग्यके लिए सब कर्म फलकी निन्दा करते हैं। शब्द ब्रह्म वेदका मार्ग है, जिसमें कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे स्वर्गादिक नामसे साधककी बुद्धि ध्यान करती है। वह उन-उन लोकोंमें घूमता भी है, परन्तु अपने

श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥ शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥ अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥३॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यञ्जलौ किं पुरुधान्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४ ॥

अभिप्रायको नहीं पहुँचता, क्योंकि मायामय वासनामें यह सो रहा है। इस कारण अखण्डित सुख इसको नहीं मिलता ॥ २ ॥ इसलिये पण्डित लोग नाममात्र भोगके योग्य पदार्थोंमें, जितनेमें देहका निर्वाह हो; उतनेहीमें आसक्त होकर यह निश्चय करने वाली बुद्धि करे। विना परिश्रम जब प्रयोजन सिद्ध हो जाय तो उनमें परिश्रम समझकर यत्न न करे ॥ ३ ॥ विना परिश्रम यह पदार्थ है, फिर इनके लिये ज्ञानी पुरुष परिश्रम नहीं करे। शयनके लिये जब पृथ्वी है तो शय्याके कारण परिश्रम करना वृथा है। स्वतःसिद्ध तकियेके लिये

---

१. शंका—व्यास देवजीने यह शंका उत्पन्न करनेवाला वचन क्यों वर्णन किया? दूसरे अध्यायके आदिमे पहले तो ब्रह्मका वर्णन किया है फिर पीछे भगवान् की भक्तिका वर्णन किया है, उसके पीछे भगवान्‌की कथाकी प्रीति वर्णन की है। इसमें शंका यह है कि पहले कथाकी प्रीति, फिर भक्ति और तब ब्रह्मका चिन्तन होना चाहिये ॥

उत्तर—कथाके सुननेसे भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है। भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है; ज्ञानसे ब्रह्मका चिन्तन होता है, इस लिये ज्ञानमें जो चतुर व्यासदेवजी हैं उन्होंने मुक्त होनेके लिये तीन धर्म वर्णन किये तथा ब्रह्मके ध्यानमें जो मतवाले योगी हैं उनको ऐसा विचार नहीं रहता कि यह वात पहिले वर्णन करनी चाहिये, यह वात पीछे वर्णन करनी चाहिये। वे सबको समान समझते हैं, इसलिये उन महात्मा पुरुषोंके कुछ आगेका विचार नहीं रहता ॥

भुजा हैं, फिर तकिया बनानेकी क्या आवश्यकता है, जल पीनेको अंजली और भोजनको अन्न बहुत है फिर पात्रका रखना वृथा है। दिगंबर रहे, वल्कल पहिने, वस्त्रसे कुछ प्रयोजन न रखे ॥ ४ ॥ मार्गमें से चीर लाकर उनका कंथा बनाये, वृक्षोंसे फलादिक भिक्षा मांग पेट भरे, सबका भरण-पोषण करनेवाली नदियोंसे जल पिये, कभी वे शुष्क नहीं होतीं। पर्वतकी कन्दराओंमें वास करे, उन्हींमें शरणागतोंकी रक्षा परमेश्वर करता है। फिर क्यों विद्वान् होकर महात्मा, धनमें अंधे हुए अज्ञानियोंका सेवन करते हैं ॥५॥ ऐसे अपना चित्त जब अपने आप ही सिद्ध हो जाय, तब ईश्वरको प्रिय जान, भवनाथ अनंतके महाआनंदसे निश्चय स्वरूपको भजे, तब संसारके हेतुओंका नाश होता है

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥ कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥ ७ ॥ केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ॥ चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ ८ ॥ प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिञ्जल्क-पिशङ्गवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ ऐसा कौन है जो परमेश्वरके ध्यानकी चिन्ताको त्याग विषयोंका ध्यान करे। पशुबुद्धिवाले तो विषयका ही सेवन करते हैं, अपने किये हुए कर्मोंके क्लेशोंको सहन करनेवाले जीव वैतरणी नदीमें पड़ते हैं, यह देख सदा परमात्माका स्मरण करे। उसे एक पलको न भूले ॥७॥ अब मानसी पूजाका वर्णन करते हैं—कोई अपने देहके भीतर हृदयके भीतर अवकाशमें जो आदेशमात्र शरीर धारण किये पुरुष स्थित है, उस चार भुजा, कमल, चक्र, शंख, गदा, धारे प्रसन्न मुख ईश्वरको धारण करके स्मरण करते हैं ॥८॥ प्रसन्न मुख, पद्मदलवत् लोचन, कदंब

१. शंका–द्वितीय स्कन्धके आदिमें शुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि राजा यह तुम्हारा प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है, परंतु भगवान्‌को नमस्कार क्यों नहीं किया, भगवान्‌को नमस्कार करना अवश्य चाहिये था, तीन अध्याय बिताके तथा तीनों अध्यायोंमें अनेक प्रकारकी कथा कहके पीछेसे बहुत श्लोकोंसे चौथे अध्यायमें भगवान्‌को नमस्कार शुकदेवजीने क्यों किया ?

उत्तर–शुकदेवजीने राजाकी नवीन संगतिदेखके प्रशंसाभाव किया है, कि राजा तुम्हारा प्रश्न बहुत अच्छा है, नयी रीति प्रीतिमें तुरन्त प्रसन्न नहीं होती, पीछेसे भगवान् वासुदेवमें परीक्षितकी प्रीति देखके शुकदेवजी बहुत आनंदित हुए; शापका भयनाश करनेको वहाका लेख उलट देनेमें, परीक्षितको वैकुंठकी प्राप्ति करानेमें शुकदेवजी समर्थ हैं, इसलिये बहुत श्लोकोंसे भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार किया ॥

प्रसूनके समान पीतांबर धारण किये, सुवर्णके भुज बन्धनोंमें शोभायमान महारत्न दमक रहे हैं और महामणियोंके जड़े हुए क्रीट कुण्डल धारण किये हैं ॥९॥ प्रसन्न हृदयकमलके पात्ररूप स्थानपर जिनके चरणकमल योगीश्वरोंसे स्थापन किये जाते हैं। महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दिखायी पड़ती हैं, कौस्तुभ रत्न कंठमें धारण किये हैं,जिसकी कांति कभी मलिन नहीं होती,ऐसी प्रसूनमाला ग्रीवामें शोभायमान है॥१०॥ कौंधनी अंगूठियें, कड़े-कङ्कण, नूपुर इत्यादिकोंसे भूषित हैं। चिकनी, निर्मल, घूंघरवाली श्याम अलकोंसे शोभित मनहरण मुसकान युक्त ॥११॥ उदार लीलासे हास्ययुक्त नेत्रोंपर अत्यन्त शोभित भ्रुकुटीका चलना उससे बड़ा अनुग्रह सूचित होता है, चिंतन करके प्रगट होता है उनका दर्शन करे,

उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयाऽङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ॥ स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥ अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ॥ ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥ १२ ॥ एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥ १५ ॥

जब तक मन धारणा करके उनमें स्थित रहे ॥१२॥ गदाधरके चरणोंसे लेकर हँसी पर्यन्त एक-एक अङ्गको बुद्धिसे अनुभव करे, जो-जो स्थान विना यत्न प्रगट हो जाय, उसको त्यागकर और जङ्घा आदिका ध्यान करे; वैसे ही बुद्धि शुद्धि होती जायगी ॥१३॥ पर-अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्ति योग जब तक न हो तब तक स्थूल विराट् पुरुषका रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरांत नियमोंमें तत्पर हो स्मरण करे। यह तो समीप मृत्युवालेका कर्तव्य है ॥१४॥ और अपने आप देह त्यागे उसका कर्तव्य है। हे नरनाथ! जो इस लोकको त्यागनेकी इच्छा करे वह स्थिर सुखद एक आसनसे बैठे। शुभकालमें पुण्य देशमें मनको आसक्त न करे; प्राणको जीते, मनसे योगाभ्यास ही योगीको मोक्षदायक है॥१५॥

अपनी निर्मल बुद्धिसे बुद्ध्यादिकोंका द्रष्टा जीवमें मन लगाये। जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करके आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसे विराम करे। इससे परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं॥ १६ ॥ जिस आत्मास्वरूपमें देवोंका परम प्रभु, काल भी समर्थ नहीं हो सकता है; वहां जगत्के ईश्वर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है? वहां न सत्त्वगुणकी चले, न तमोगुणकी, न रजोगुणकी, न अहंकारकी, न महत्तत्त्वकी, न मायाकी, इन सबकी कुछ सामर्थ्य नहीं, फिर जगत्की तो क्या सामर्थ्य है? ॥१७॥ यह भी "नहीं-नहीं" कहनेवाले उसको विष्णुका परमपद कहते हैं, आत्माको त्यागकर औरमें मित्रता नहीं करते; पूजनीय ईश्वरको क्षण-क्षणमें हृदयसे मिलाते हैं॥१८॥ईश्वरका चिंतन करके इस प्रकार मुनि

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥ १८ ॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ॥ ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥ २१ ॥

स्थित होकर सबसे उपराम प्राप्त करे; ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके बलसे विषयवासना त्यागकर अपनी एड़ीसे गुदाको बंद कर, सब परिश्रम जीत, नाभि आदि छः स्थानोंमें पवनको प्राप्त करे ॥१९॥ वह पवन जो नाभिके मणिपूरक चक्रमें स्थित है उसको हृदयमें अनाहत चक्रमें रोककर उदानगतिसे कंठके विशुद्ध चक्रमें उस पवनको प्राप्त करे वह मुनि है। पीछे बुद्धिसे अनुसंधानकर चित्तको जीतनेवाला अपने तालुके मूलमें धीरेसे उस वायुको प्राप्त करे ॥२०॥ दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नाक, एक मुख इन सातोंको रोककर किसी वस्तुकी चाहना न करे और वहांसे उस भ्रुकुटीके भीतर आज्ञाचक्र है, उसमें प्राप्त करे। एक घड़ी स्थित होकर, शुद्ध दृष्टि कर, परब्रह्मको प्राप्त हो। ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इंद्रियाँ सबका

त्याग करे ॥२१॥ यह पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रम मुक्ति कहते हैं—हे नृपेन्द्र ! जो ब्रह्मके स्थानमें होकर जाता है जहां गगनचारी सिद्धोंका विहार स्थान है और अणिमादिक अष्ट सिद्धि मिलती हैं। उस ब्रह्माण्डमें मन इन्द्रियोंके साथही चला जाता है; क्योंकि मृत्युके समय जो वासना प्राणीके हृदयमें रहती है कि,सब लोकोंके भोग भोगता हुआ जाऊँ तो मन इन्द्रिय सहित जीव जाता है ॥२२॥ पवनरूप जिनकी देह उपासना, भगवद्धर्म, अष्टांगयोग समाधि, इनके करनेवाले योगीश्वरोंको त्रिलोकीके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें जानेकी गति होती है; ऐसा कहते हैं कि वे उस गतिको कर्मोंसे नहीं प्राप्त होते हैं ॥२३॥ हे भूपाल ! आकाशमें होकर ब्रह्मलोकके मार्गमें ज्योतिर्मय सुषुम्नानाडीसे अग्नि अभिमानी देवताको

यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥ ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥ वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ॥ २५ ॥ अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥ २६ ॥ न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोदः कृपयाऽनिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥

प्राप्त होता है, पीछे सब मलरहित हो ऊपर वर्तमान हरिसंबन्धी तारारूप शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है। शिशुमारचक्रका वर्णन पंचमस्कंधमें करेंगे ॥ २४ ॥ श्रीविष्णुभगवान् और सूर्यादिकोंका आश्रयभूत विश्वकी नाभि रूप चक्रका उल्लंघन करते हैं। क्योंकि उसके परे फिर स्वर्गियोंकी गति नहीं है; इस कारण एकही निर्मल लिंग शरीर अणुरूप होकर औरोंसे नमस्कृत, ब्रह्मवेत्ताओंके स्थान महर्लोकको प्राप्त होता है। महाकल्पकी आयुवाले पंडित भृगु आदिक जहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरांत कल्पान्तमें श्रीशेषजीके मुखकी अग्निसे संसारको भस्म देखकर, सिद्धेश्वरोंसे सेवित स्थान जो द्विपरार्द्धमें स्थित रहता है, उस ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥ २६ ॥ उस ब्रह्मलोकमें शोक, वृद्धपन,

मृत्यु, दुःख, भय कहींसे कभी नहीं होता है, जो भगवत्के ध्यानको नहीं जानते हैं, उनको भगवत्की कृपा विना दुःखकारी, चित्तको व्यथा उपजानेवाला जन्म-मरण होता रहता है, परन्तु वहां शोकादिक कभी नहीं होते हैं ॥२७॥ जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं उनकी, गति तीन प्रकारकी है, जो बहुत पुण्य, बहुत दानकर गये हैं, वे कल्पान्तरमें पुण्यकी न्यूनाधिकतासे अधिकारी होते हैं, जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलसे गये हैं, वे ब्रह्माके संग मुक्ति पायेंगे, जो भगवत्के उपासक हैं वे अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुण्ठमें वैष्णवपदको पाते हैं ॥ २८ ॥ पीछे लिंगदेहसे पृथ्वीरूपको प्राप्त होकर, भय त्याग पृथ्वीरूप हो जलको प्राप्त हो, शीघ्रता न करके ज्योतिर्मय हो, वायुको प्राप्त हो, पवन रूप होकर, बड़े भारी ब्रह्मके स्वरूप आकाशको प्राप्त होते हैं, भगवद्भक्तको ब्रह्माण्ड भेदने का जो प्रकार है वह कहते हैं। ईश्वर रचित प्रकृतिके किसी अंशसे महत्तत्त्व होता है, उसके अंशसे अहंकार और उसके अंशसे शब्द बनता है। उसकी मात्राके द्वारा आकाश, आकाशके

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥ २८ ॥ घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ ॥ स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ॥ ३० ॥

अंशसे स्पर्श, उसकी मात्राके द्वारा वायु, वायुके अंशसे रूप तन्मात्रके द्वारा तेज, तेजके अंशसे रस उसकी मात्रासे जल, जलसे गंध और जलकी मात्रासे पृथ्वी होती है। यह सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराट् शरीर ब्रह्माण्ड होता है। उस ब्रह्माण्डका पंचशतकोटि योजन विस्तार है। पृथ्वीशब्दवाच्य विशेष अंडकटाह शतकोटि योजन विस्तार वाला है। कोई-कोई पंचशत कोटि योजन कहते हैं। फिर वायु आदिकोंके अनगिनत अंश हैं वे उत्तरोत्तर दश गुणे अधिक हैं। आठ पृथ्वीके आवरण व्यापक हैं। घ्राणसे गंध, रसनासे रस, दृष्टिसे रूप, त्वचासे श्वास, श्रोत्रसे आकाशके गुणको प्राप्त होकर योगी प्राणसे उन-उन क्रियाओंको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है— तामस, राजस,सात्त्विक। तामससे जड़भूत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं, राजससे बहिर्मुख दश इन्द्रियाँ और सात्त्विकसे मन इंद्रिय देवता, उनका लय उस अहंकारसे नष्ट होता है। वह योगी भूत, सूक्ष्म इंद्रियोंका लय मनोमय देवमय अहंकारकी गतिसे प्राप्त होकर, गुणोंका जिसमें लय ऐसे

महत्तत्त्वको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ हे नरेश ! आनंदमय जीव उपाधियोंके अन्तमें प्रधानरूपसे उस आत्माको प्राप्त होता है, भगवतकी गतिको जो गया है वह फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! यह दोनों मार्ग वेदने गाये हैं ? सनातन मार्ग आपने जाना है । पहले भगवानकी ब्रह्माने आराधना की थी, तब भगवान् वासुदेवने यह गति ब्रह्माजीसे कही थी ॥ ३२ ॥ जो जीव संसारमें फँस रहे हैं उनको इससे अधिक और कल्याणदायक मार्ग नहीं है, जिससे कि भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग हो ॥ ३३ ॥ भगवान् चतुरानन निर्विकारी एकाग्र चित्त करके वेदको तीन बार बुद्धिसे विचार कर जिससे आत्मामें प्रीति हो वही निश्चय करते हुए ॥ ३४ ॥ सब जीवोंमें

तेनात्मनाऽऽत्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥ ॥ ३१ ॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान् वासुदेवः ॥३२॥ न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह॥वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥३३॥ भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥३५॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥ पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥ पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥३७॥ इति श्रीभा० म० द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अपने आत्मा द्वारा श्रीहरि भगवान् दीखते हैं, बुद्धि आदि जो ईश्वरके देखनेके उपाय हैं और अनुमान करनेके जो लक्षण हैं उनसे दीखते हैं ॥ ३५ ॥ हे नृपेन्द्र ! इस कारण सर्वात्मा हरि सर्वत्र सब कालमें श्रवण करनेके योग्य हैं । और वे ही मधुसूदन सब जीवोंके स्मरण करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥ जो कोई भगवान् सर्व व्यापककी अथवा ब्राह्मणोंकी अमृत कथाको श्रवणोंसे भली प्रकार भर-भरकर पीते हैं, वे विषयोंसे अति दूषित अंतःकरणको पवित्र कर श्रीहरिके चरणकमलोंके समीप जाते हैं ॥३७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–कहौं तृतीय अध्यायमें, देवार्चनको हेत। जौन जौनसे देवता, जेहि जेहि फलको देत ॥ जो बात आपने हमसे पूछी वह हमने कही, आसन्नमृत्यु बुद्धिमान् मनुष्योंको यह श्रीहरिकी कथा, श्रवणादिक ही श्रेष्ठ है ॥१॥ परन्तु अनेक कामोंकी फल प्राप्तिके लिये अन्य देवताओंका भी भंजन करना योग्य है, ब्रह्मतेज बढ़ानेकी इच्छावाले वेदपति ब्रह्माका पूजन करें, इन्द्रियोंकी पुष्टता चाहनेवाले इन्द्रकी पूजा करें, सन्तान–वृद्धि चाहनेवाला दक्षप्रजापतिकी पूजा करे ॥ २ ॥ लक्ष्मीकी इच्छावाला दुर्गा देवीकी पूजा करे, तेजकी अभिलाषावाला

श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥ इंद्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥ वसुकामो वसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥३॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४ ॥ आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठा कामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥

अग्निकी पूजा करे, धनकी कामनावाला श्रेष्ठ वसुका पूजन करे। जो वीर्यवान् होना चाहे वह धनदाता महादेवका पूजन करे ॥ ३ ॥ अन्नादिक भोगकी इच्छावाला अदितिकी सेवामें अनुरक्त हो, स्वर्गकी कामनावाला द्वादश आदित्योंकी पूजा करे, राज्यकी कामनावाला विश्व देवोंका भजन करे, जो देश देशान्तरकी प्रजाको अपने अधीन करना चाहे वह साध्य नामक देवताका पूजन करे ॥ ४ ॥ आयुका प्रार्थी

---

१. शंका––शुकदेवजीसे राजा परीक्षितने पूछा कि, हे मुनिराज! मरनेवाले मनुष्यको क्या काम करना चाहिये? शुकदेवजीने इसका उत्तर तो पीछे दिया और जो राजाने सब देवताओंका पूजन नहीं पूछा था वह शुकदेवजीने देवताओंका पूजन क्यों वर्णन किया?

उत्तर––शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि, सब कामना सिद्धि होनेके लिये पृथक्-पृथक् देवताओंके पूजनकी विधि हम वर्णन करेंगे तो सब जीवोंको सुख उत्पन्न होगा ऐसा विचारकर राजाने नहीं भी पूछा था तो भी सब कामोंकी प्राप्ति होनेके लिये सब देवताओंका पृथक्-पृथक् पूजन वर्णन किया। शुकदेवजीने विचार किया कि सब मनुष्य अपने-अपने हृदयमें अपने-अपने कामोंको देखकर हमारी कही हुई विधिसे देवताओंका पूजन करके सुखको प्राप्त होंगे।

अश्विनीकुमारका और पुष्टिकी कामनावाला पृथ्वीको स्वच्छ कर पूजन करे। जिसको अपनी प्रतिष्ठा की वाञ्छा हो वह लोक प्राप्त द्यावापृथ्वीकी पूजा करे ॥ ५ ॥ रूपका चाहनेवाला गन्धर्वोंका, सुन्दर स्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराका और सब देशके राज्यकी कामनावाला परमेष्ठी नामक ईश्वरका पूजन करे ॥ ६ ॥ यशकी इच्छावाला यज्ञपुरुषकी और कोषकी इच्छावाला प्रचेता (वरुण) की, विद्या चाहनेवाला महादेवजीकी, दंपतिमें प्रीत्यर्थ पार्वतीजी की ॥ ७ ॥ धर्मका चाहनेवाला विष्णुकी, सन्तानकी वृद्धि चाहनेवाला अर्यमादि पितरोंकी; जो सदा बाधा विपत्तिसे अपनी रक्षा चाहे वह यक्षोंकी और बलकी कामनावाला मरुद्गणोंकी ॥ ८ ॥ जिसको राजगद्दीकी इच्छा

रूपाभिकामो गन्धर्वान्स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् ॥ आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थे उमां सतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥ राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवत सङ्गतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदाप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

हो वह मनु महाराजकी, और शत्रुका नाश चाहनेवाला निर्ऋतिमृत्युकी, भोगकी इच्छा हो तो चंद्रमाकी, किसी कामकी इच्छा न हो केवल वैराग्यकी चाहना हो तो परम पुरुष भगवान्‌की ॥ ९ ॥ जिसको किसी वस्तुकी चाहना न हो, अथवा सब वस्तुकी इच्छाके संग मोक्षकी भी कामना हो वह उदार भक्ति और तीव्र बुद्धिसे परम पुरुष विष्णु भगवान्‌की पूजा करे ॥ १० ॥ ईश्वरमें अचल भाव हो, ब्राह्मण भगवद्भक्तोंकी संगति करना, यही सब कर्म करनेवालेको परम पुरुषार्थका लाभ है ॥ ११ ॥ सब ओरसे रागादिकका समूह जिससे दूर हो जाये, ऐसा ज्ञान जिस कथामें होता है तब आत्मा, मन प्रसन्न होता है। जब सब विषयोंसे मन हटता है तब कैवल्यसम्मत मार्गमें

भक्तियोग उत्पन्न होता है; उस समय सब सुख होते हैं तब वे अनेक प्रकारसे हरिकथामें प्रीति करते हैं ॥ १२ ॥ शौनकजी बोले कि भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षितने यह कथा सुनकर, फिर व्यासपुत्र शब्दब्रह्मके ज्ञाता, परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे क्या पूछा ? ॥ १३ ॥ हे विद्वज्जन ! सुननेकी इच्छावाले मुझसे आप कहनेके योग्य हो । संतोंकी सभामें श्रीभगवान्‌की कथा ही फल है, वह निश्चय करनेसे होती है ॥ १४ ॥ वह भागवत पाण्डुनन्दन महारथी परीक्षित बालक्रीडामें खेलनेके समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी क्रीडा किया करते थे ॥१५॥ और व्यासपुत्र भगवान् वासुदेवमें परायण, कथन योग्य श्रीवृन्दावनविहारीके उदार चरित्र संतोंकी सभामें सदा कहा करते हैं

शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥१४॥ स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥ वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥१७॥ तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ॥ न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥

॥ १६ ॥ सूर्य नारायण उदय-अस्त होकर नित्य पुरुषकी आयु हरण करते हैं। उत्तम यशस्वी परमेश्वरकी चिंतनाके विना जो क्षण व्यतीत होते हैं, वह आयु वृथा जाती है ॥ १७ ॥ वृक्ष क्या नहीं जीते हैं ? धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती है ? और ग्रामके पशु क्या नहीं खाते या विष्ठादिक नहीं करते हैं ? इनकी आयु व्यर्थ ही है ॥ १८ ॥ विष्ठा खानेवाला, श्वान, ऊँट, गधा ये जिसकी स्तुति करें वह व्यक्ति भी पशु है। जिसके श्रवणमें कभी भगवत् चरित्र नहीं सुनाया गया है वह पुरुष पशुतुल्य है ॥ १९ ॥ परमेश्वरके चरित्र जो मनुष्य कानसे न सुने, वह कान सांपके बिल समान हैं। और हे सूत ! जिनकी जीभसे परमात्माका नाम नहीं निकलता और भग-

वत् कथा नहीं कहती वह खोटी जीभ मेंढककी जिह्वाके तुल्य है और वृथा बकवाद करती है ॥ २० ॥ रेशमी वस्त्र वेष्टित, शोभायमान किरीटयुक्त शिर जो भक्तवत्सल भगवान्‌को प्रणाम नहीं करता, वह मस्तक केवल शरीर पर भार है। यदि हाथोंमें सुन्दर-सुन्दर कंकणादि शोभित हों, वह भुजा हरिकी सेवा नहीं करे, तो वह भी काष्ठकी करछीके तुल्य है ॥ २१ ॥ जिन नेत्रोंने बांके विहारीकी मनोहर झांकी न निहारी और महात्मा पुरुषोंका दर्शन न किया, वे आंखे मोरपंखके सदृश हैं और जिन पैरोंसे मधुसूदनके क्षेत्रोंमें न फिरा और तीर्थ यात्रा न की वे पद वृक्षोंके समान हैं ॥ २२ ॥ जिसके शरीरमें ब्राह्मणों और नारायणके चरणकी रज न स्पर्श हुई, वह प्राणी जीता हुआ मृतक

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥ २१ ॥ बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥ अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं प्रभाषते भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे श्रोतृश्रद्धानिरूणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तुल्य है। जिसने विष्णुभगवान् और शालग्रामके ऊपर चढ़ी हुई तुलसीपत्रकी सुगन्ध न ली, वह श्वास लेता हुआ मृतक है ॥ २३ ॥ बड़े खेदका विषय है कि ग्रहण करने योग्य जो भगवत्के नाम हृदयसे नहीं लेते उनका हृदय पत्थरके समान है। जिन्हें हरियश श्रवण करनेसे हृदयमें विकार न हो और आंखोंमें जल न आये; शरीरके रोम खड़े न हों वह हृदय पाषाणनिर्मित समझो ॥ २४ ॥ हे अंग ! हमारे मनके अनुकूल तुम कहो ? भक्तोंमें प्रधान व्यासनन्दन आत्मविद्याके ज्ञातासे जो राजाने पूछा और उन्होंने कहा, वही आप भी कहिये ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिदेवपूजनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा—अब कछु वर्णन सृष्टिको, वर्णत मति अनुसार। रचना-पालन-लय करन, भगवत कौन प्रकार॥ सूतजी बोले कि, शुकाचार्यके आत्माके तत्त्व निश्चय करनेवाले वचन सुनकर भली-भांति राजेन्द्र परीक्षितने कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाया ॥ १ ॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, भ्राता, बन्धु, राज्य, पशु, और धन इन सबकी संपूर्ण ममता त्याग दी ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठजनो ! जो तुमने मुझसे पूछा, उसीको श्रीकृष्णके अनुभव सुननेमें श्रद्धावाले पुरुष पूछते हैं ॥३॥ अपनी मृत्यु निकट जान धर्म, अर्थ, काम इनको सम्यक् प्रकार ईश्वरमें समर्पण कर पतित-पावन गोवर्द्धनधारी नारायणमें अपनी आत्माको लगाया ॥ ४ ॥ परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हे पापरहित ! श्रीवासुदेव भगवानकी

सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं निरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥३॥ संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत्॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विश्वं यथा संयच्छते पुनः ॥ यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च ॥ ७ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥

कथा कहनेवाले वचन बहुत सुन्दर हैं, जिनसे मेरा सब अंधकार दूर हो गया ॥ ५ ॥ जिसकी चिन्ता ब्रह्मादिक करते हैं ऐसे विश्वको भवनाथ अपनी मायासे जिस प्रकार आप रचना करते हैं, वह मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ जैसे इस विश्वको रचकर पालन व फिर संहार करते हैं जिस शक्तिका आश्रय लेकर पर पुरुष बहुत शक्ति धारण करते हैं वह कहो ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्म करनेवाले लोकनाथ हरिकी चेष्टा यथार्थ बड़े-बड़े कवियोंसे भी निश्चय नहीं की गयी है, ऐसा विदित होता है ॥ ८ ॥ जन्म धारणकर कर्मकर्ता

एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रम-क्रम-से प्रकृतिके गुणोंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥ यह श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है, वह आप कृपा कर कहिये ? क्योंकि आप परमेश्वर, शब्दब्रह्म, और परब्रह्म के भली प्रकार पारंगत हैं ॥१०॥ सूतजी बोले कि, श्रीहरिके गुणानुवाद कहनेको नरनाथ परीक्षितने ऐसी प्रार्थना की, तब व्यासनंदन शुकदेवजीने श्रीवृन्दावनचन्द्रका स्मरण कर श्रीमद्भागवतको कहनेका प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हरिकी महिमाका प्रमाण नहीं, इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार, इन चरित्रोंसे ब्रह्मादिक तीन शक्ति धारण करनेवाले घट-घटवासी, किसीको जिसका मार्ग नहीं दीखे ऐसे परम पुरुष ईश्वको मेरा नमस्कार है ॥ १२ ॥ धर्मवर्ती संतोंके

विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिल सत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्त्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ॥ विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥

कष्टनाशक धर्मी असन्तोंके विनाशक; सब जीवमात्रमें जिसकी मूर्ति परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको बार-बार ढूँढ़नेकी योग्यता देनेवाले परमेश्वरको फिर नमस्कार है ॥१३॥ भक्तपालक कुत्सित योगियोंसे दूर, अपने समान वा अधिकतासे रहित, ऐश्वर्यसे अपने स्वरूपमें रमण करने वाले परब्रह्मको बारंबार नमस्कार है ॥१४॥ जिसका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, कथा श्रवण,पूजन सब लोकोंका पाप शीघ्र नाश करता है,ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वी परमात्माको नमस्कार है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कारमात्र ही श्रेष्ठ है ॥१५॥ विवेकी लोग जिनके चरणकी सेवासे आत्माका दोनों ओरसे संग त्याग परिश्रम रहित परब्रह्मकी गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसे मंगलरूप

यशस्वीके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ तपस्वी महादानी, यशस्वी, मनस्वी, मन्त्रवेत्ता मंगलकारी अपने-अपने किये हुए जिन कर्मोंको परमेश्वरमें समर्पण किये विना क्षेमको प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वीको नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खशादिक और पापी भी जिनके आश्रयसे शुद्ध हो जाते हैं, उस सर्वव्यापक शीलयुक्त ईश्वरको नमस्कार है ॥ १८ ॥ आत्मज्ञानियोंका आत्मा, सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, निष्कपटी, ब्रह्मा, शंकर आदिकोंसे अति आश्चर्य्य द्वारा जिनकी मूर्ति देखने योग्य, वे भगवान मुझपर प्रसन्न हों ॥ १९ ॥ श्रीभूलीलानायक, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, लोकपति धरापति, अन्धक,

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ॥ क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥ किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥ स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ॥ पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥ २० ॥ यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ॥ वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ॥ भुङ्क्ते गुणान्षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥

वृष्णि, सात्वतोंके पति, गति, सन्तोंके पति मुझपर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ जिनके दोनों चरणोंके निरन्तर ध्यानरूप समाधिसे धुली हुई बुद्धिसे सगुण निर्गुणकी उपासना करके ईश्वरके तत्त्वका दर्शन करते और पंडित लोग अपने बुद्धिके अनुसार इस तत्त्वका वर्णन करते हैं वे मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ कल्पके आदिमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिके रचनेवाली स्मृति विस्तार करनेवालेसे प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रकट हुई। असाधारण लक्षण ऋषियोंके भी बड़े श्रेष्ठ ईश्वर मुझपर प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ जो ईश्वर पंच भूतोंसे इन सबको

निर्माण कर इनके भीतर बसते हैं, षोडश कलाधारी, समर्थ सोलह गुणोंके भोक्ता भगवान् मेरे वचनोंको अलंकृत करें ॥ २३ ॥ ब्रह्माके अन्तर्यामी भक्तजन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीते हैं, उन ब्रह्माके अन्तर्यामी भगवान् वासुदेवके लिए नमस्कार है ॥२४॥ हे नृपाल। वेदगर्भ साक्षात् हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा, ब्रह्माने नारदजीसे कहा, वह यही बात है, जो तुमने प्रश्न किया ॥२५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां द्वितीयस्कन्धे सृष्ट्यादिश्रीहरिचेष्टावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–इस पंचम अध्यायमें, विराटलीलारूप। सब विराटकी सृष्टिको, बरणौं परम अनूप ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे देवाधिदेव ! हे सर्वजीववत्सल ! हे पूर्वज ! आपके

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे वक्तृश्रद्धानिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥

लिए नमस्कार है, आत्माके तत्त्वका निरन्तर दर्शन देनेवाला ज्ञान आप कहिये ? ॥१॥ हे प्रभो ! जो रूप है, जिसके आश्रय यह सब है और जिससे यह सब रचा गया है, जिसमें लीन और जिसके आधीन है, जो कुछ है वह तत्त्व सिद्धान्तसे आप कहो ॥ २ ॥ हे प्रभो ! तुम भूत, भविष्यत्, वर्तमान यह सब जानते हो। हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूंद अथवा आमला हो ऐसे अत्यन्त ज्ञानसे निश्चित इस विश्वको तुम जानते हो ॥ ३ ॥ जो विशेष ज्ञान है, जो आधार है, जिसके तुम परायण हो, जो स्वरूप हो, अपनी मायासे सब जीवोंको एक तुम रचते हो, मुझको तो तुम ही ईश्वर जान पड़ते हो ॥ ४ ॥ उन सबका आप ही पालन करते हो, तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं कर सकता,

जैसे श्रमरहित मकरी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर घर रचती है उसी तरह तुम हो ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस विश्वमें उत्तम, अधम, समान मनुष्यादि नाम, रूप द्विपदत्वादि गुण, शुक्लत्वादिसे साध्य सूक्ष्म, स्थूल और तुमसे परे कोई नहीं है, यह सब तुमहीसे होता है ॥ ६ ॥ अच्छे प्रकार सावधान होकर आप भी घोर तप करते हो, इसलिये हमको बड़ी चिन्ता व खेद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! मैं जो जिज्ञासा करता हूं वह आपसे शिक्षित जैसे मैं जान सकूं वैसे विशेष कर मुझसे तुम कहो ? ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले, कि हे पुत्र ! दयावंत तुम्हारा सन्देह ठीक है। हे सौम्य ! भगवतके वीर्यके प्रकाशमें जो तुमने मुझसे प्रेरणा की ॥ ९ ॥ हे नारद !

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥६॥ स भवानचरत् घोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं पराऽऽशङ्कां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञः सकलेश्वर ॥ विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितो धर्मे भगवद्वीर्यदर्शने ॥९॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥

जैसे आप मुझसे कहते हैं यह ऐसे ही है, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है। मुझसे परे और कौन है, यह ऐसे ही है ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशित प्रकाशसे विश्वको मैं प्रकाश करता हूं, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे यह ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करते हैं, श्रुतिः—"तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निस्तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि ईश्वरके प्रकाशसे प्रकाशित हैं उनके तेजसे यह सब प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥ ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है। उन वासुदेवका ध्यान करते हैं, जिनकी दुर्जय मायासे मुझको सब जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ उस ईश्वरके सम्मुख खड़े होनेसे जिसको

लाज आये, ऐसी मायासे मोहित दुर्बुद्धिवाले हम सरीखे ब्रह्मादिक 'यह मेरा है' यह हम हैं, ऐसी श्लाघा करते हैं ॥१३॥ सबका उत्तर ब्रह्मदेव कहते हैं-कि द्रव्य, कर्म, काल स्वभाव, जीव यह सिद्धान्तसे विचारते हैं तो हे ब्रह्मन् ! वासुदेवसे परे नहीं हैं। व्याकरणसे, वासुदेव शब्दकी व्युत्पत्ति है कि "वसन्ति भूतान्यस्मिन्निति वासुः, दीव्यतीति देवः, वासुश्चासौ देवः वासुदेव इति" ॥ १४ ॥ वेद नारायणको कहते हैं; सब देवता नारायणके अंशसे जन्मे हैं। श्रुति है कि "स आत्मा अङ्गान्यन्या देवतेति" सब लोग नारायणका वर्णन करते हैं, सब यज्ञ नारायणका वर्णन करते हैं ॥१५॥ योगशास्त्र नारायणका वर्णन करते हैं; तप नारायणको कहता है, ज्ञान नारायणको कहता है, सबकी गति नारायण

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥ नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६ ॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥१७॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥ स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद् गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥

ही हैं ॥ १६ ॥ जीवके द्रष्टा ईश्वर; सर्वान्तर्यामी; सर्वव्यापी; उनके रचे हुए पदार्थ, मैं रचता हूँ, उन्होंने मुझको रचा है, उनके कटाक्षसे मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ आपके निर्गुण ईश्वरमें सत्त्व; रज; तम, ये तीन गुण उत्पत्ति; पालन, संहारमें मायासे ग्रहण करते हैं ॥१८॥ कारण कर्ता अपनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुषको बाधित होते हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! ये भगवान् तीन गुणोंसे सबके और मेरे ईश्वर हैं, उनके ब्राह्मणोंको ही उनकी गति देखनेमें आती है ॥२०॥ काल, कर्म, स्वभाव अपनी मायासे मायाके स्वामी आत्मामें अपनी इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होनेकी इच्छासे ग्रहण करते हैं ॥२१॥ कालसे गुणोंका उलट-पलट होता है, स्वभावसे औरका और रूप हो जाता है, पुरुष

जिनसे स्वामी ऐसे कर्मसे महत्तत्त्व होता है ॥२२॥ रज, सत्त्वसे बढ़े हुए महत्तत्त्वसे द्रव्यज्ञानक्रियात्मक तम प्रधान होता है ॥ २३ ॥ उसीको अहंकार कहते हैं, उसमें तीन प्रकारके विकार होते हैं-वैकारिक, तैजस, तामस, यह तीन भेद होते हैं। हे प्रभो ! द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञान शक्ति हुई ॥ २४ ॥ सब भूतोंका आदि तामस जब विकारको प्राप्त हुआ तब आकाश हुआ उसकी मात्रा शब्द गुण है। जो द्रष्टा और दृश्य उनका जतानेवाला है ॥२५॥ जब आकाश विकारको प्राप्त हुआ तब स्पर्श गुणवाला पवन हुआ परमें वसनेवाला शब्दवान्, ओज, सह; बल, प्राण यही होते हैं ॥२६॥ काल कर्मके स्वभावसे जब विकार वायु हुआ तब रूपके सदृश स्पर्श शब्दके सदृश तेज उत्पन्न हुआ ॥२७॥ तेज जब

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजः सत्त्वोपबृंहितात् ॥ तमःप्रधानस्त्वभवद् द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥ सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणःशब्दो लिङ्गं यद् द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥ उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥२७॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥ विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत् ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥ ॥२९॥ वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥ तैजसात्तुविकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्राङ्घ्रिपायवः ॥ ३१ ॥ यदैतेऽसंगता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ॥ यदाऽऽयतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥

विकारी हुआ, तब रस-आत्मा जल हुआ रूपके सदृश, स्पर्शके सदृश, जल शब्दवत् हुआ, जल जब विकारको प्राप्त हुआ तब जलसे पृथ्वी हुई सबमें व्याप्त रस स्पर्श रूप गुण हुए ॥२८॥२९॥ विकारी आत्मासे विकारी दश देव हुए दिशा, पवन, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इंद्र, उपेन्द्र, मित्र,ब्रह्मा ये दश हुए ॥ ३० ॥ तैजस-अहंकार जब विकारी हुआ तब दश इन्द्रियां हुईं। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बुद्धि, प्राण, तैजस अहंकारसे हुए। कान, त्वचा, नाक, नेत्र, जीभ, वाणी, भुजा, लिंग, चरण ये हुए ॥३१॥ हे ब्रह्मवित्तम ! जब ये भूत इन्द्रिय

भुजा, मन, गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न हुए॥३२॥ तब भगवत्की शक्तिसे प्रेरित सब परस्पर मिलकर सत्-असत्को ले समष्टि सब ब्रह्माण्ड व्यष्टि एक-एक शरीरयुक्त विश्व रचा ॥३३॥ जब असंख्य वर्ष हो गये तब यह अंड जलमें पड़ा रहा, फिर काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर "जीवयतीति जीवः" सदा जीनेवाले परमात्मा अचेतनको जिलाते हुए ॥३४॥ यह पुरुष सहस्र ऊरू, चरण, भुजा, नेत्र और सहस्र शिरवाले हुए ॥३५॥ जिसकी लेशमात्र चेष्टासे बुद्धिमान् लोकोंकी कल्पना करते हैं। कमरसे नीचे सात लोक हैं और सात ऊपर हैं ॥ ३६ ॥

तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम्॥कालकर्मस्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥३४॥ स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः॥ सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥ महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥

जंघादिक, परब्रह्म पुरुषका मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा, ऊरु वैश्य और पांवसे शूद्र उत्पन्न हुये हैं ॥३७॥ भूलोक पगमें, भुवर्लोक नाभिमें, स्वर्गलोक हृदयमें और उरमें महर्लोक है ॥ ३८ ॥ ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपलोक, मस्तकमें सत्यलोक है । ब्रह्मलोक वैकुण्ठ सनातन है, इस ब्रह्माण्डमें नहीं है ॥३९॥ उनकी कमरमें अतल लोक, विभुके ऊरुमें वितललोक; जानुमें शुद्ध सुतल लोक, जंघामें तलातल लोक है ॥४०॥ गुल्फोंमें महातल लोक, एड़ियोंमें रसातल और पादके तले पाताल लोक है । ऐसे लोकमय पुरुष ईश्वर हैं ॥ ४१ ॥

पांवमें भूलोंक, नाभिमें भुवर्लोक और स्वर्लोक मस्तकमें है। ऐसे भी लोकोंकी कल्पना है ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीविराट्सृष्टिहरिलीलाविराद्रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–इसी षष्ठ अध्यायमें, कहौं विराट विभूति। नरसूक्तार्थ बखानिहौं, सकल विश्व करतूति ॥ ब्रह्माजी बोले, कि अब विराट् पुरुषकी विभूति वर्णन करते हैं। अस्मदादिकोंकी वाणीके स्वामी वह्नि उन ईश्वरका मुख उत्पत्ति स्थान है। इनमें चार बातें हैं। वाणी तो इन्द्रिय है, वरुण देवता, मुख उत्पत्तिस्थान है, इसका स्वाद लेना यह उसका विषय है। यही बात सब स्थानोंमें जान लेना। ग्रन्थ विस्तारके कारण अधिक नहीं लिखा है गायत्रीआदि सात छन्द जो हैं, अपने लोगोंकी सप्त त्वचा हैं। "देवानामन्नं हव्यं" जो देवताओंके निमित्त दिया जाय वह

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीभा० म० द्विती० जननिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्तधातवः॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥२॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः॥३॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ त्वगस्य स्पर्शवाय्वोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥ ४ ॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥ केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥

हव्य है। "पितॄणामन्नं कव्यम्" जो पितरोंके लिये दिया जाय वह अन्न कव्य है। अन्नकी सब रस और अमृतकी जिह्वा कारण है ॥ १ ॥ हमारे सबके प्राण वायु उत्तम क्षेत्र उनकी नाक है, जिसमें मोद-प्रमोद जाननेवाली घ्राणेन्द्रिय है। अश्विनी कुमार देवता हैं,सब ओषधी विषय हैं ॥२॥ रूप और रूपप्रकाशक तेज इन परमेश्वरके चक्षु इन्द्रिय स्थान हैं। स्वर्ग और सूर्य इनका स्थान परमेश्वरके नेत्र गोलक हैं। दिशा और तीर्थ इनका स्थान परमात्माके कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठान हैं। आकाश और उसका सूक्ष्मरूप शब्द इन दोनोंका स्थान ईश्वरका श्रोत्र इन्द्रिय ॥ ३ ॥ वस्तुके सारांश स्थान, ईश्वरका स्पर्श गुणवाला वायु ईश्वरकी त्वचा है ॥४॥ सब यज्ञ सर्व वृक्षोंसे होते

हैं, केश मूँछ नख हैं, शिला-लोह मेघ बिजली हैं ॥ ५ ॥ प्रायः करके क्षेमकारी लोकपाल हरिकी बाहु है। क्षेमी ईश्वरका पाद रखना भूर्भुवः स्वर्गलोक है ॥ ६ ॥ सबका मन हरिके चरण स्थानमें है, ब्रह्मा जिसका देवता ऐसे विश्वके मेघ शुक्र हैं ॥ ७ ॥ ईश्वरका शिश्न उपस्थ वह है, जो संतानार्थ भोग करते हैं, जिससे आनंदसुख और नहीं है, हे नारद ! मल त्यागकी पायु इन्द्रिय गुदा है। तिरस्कार, अधर्म, अज्ञान यह भगवानकी पीठ है; उसका यम देवता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सरोवर व नदी ईश्वरकी नाड़ियाँ हैं, समस्त पर्वत ईश्वरके हाथ हैं, प्रधान रस समुद्र है, जिसमें जीवोंका नाश है ॥ १० ॥ वह उस महापुरुषका पेट है, हृदय मनका स्थान है, धर्मका हमारे, तुम्हारे सनकादिकका, महादेवजीका

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥६॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥७॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥८॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥९॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च ॥१०॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥११॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ १२ ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ॥ १३ ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥१४॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ १५ ॥

॥११॥ शेष ज्ञानका और सत्त्वगुणका जो परमेश्वरका चित्त है, वह स्थान है। हम, तुम, शिव और सब मुनि लोग जो तुमसे पहले जन्मे हैं ॥ १२ ॥ देवता, असुर, नर, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग ॥ १३ ॥ पशु, पितर, सिद्ध,, विद्याधर, चारण, वृक्ष और अनेक प्रकारके जितने जीव हैं जल, थल और आकाशके ॥ १४ ॥ नवग्रह, अश्विन्यादि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूछल तारे होते हैं, वह और बिजली, गर्जन शब्द, भूत, भविष्य, वर्तमान और जो कुछ है, वह सब पुरुष परमेश्वरस्वरूप ही है। "पूर्षु शेते इति

पुरुषः" जो सब जीवमात्रके शरीर रूप पुरियोंमें बसे वह पुरुष ईश्वर है। "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमिति" ॥ १५ ॥ उन ईश्वरसे व्याप्त यह विश्व है कि वितस्तिभरमें विराजते हैं, हृदयके मंगलको प्रकाश करते हैं, यह प्राण और बाहिरी प्रकाशसे सूर्यके तुल्य तपता है "असौ प्राण आदित्य असावादित्यः प्राणः" इति श्रुतेः ॥१६॥ ऐसे इस विराद् रूपमें बाहर-भीतर पुरुष तपते हैं "उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति", भयरहित मोक्षके ईश्वरने मरणधर्मी अन्नकर्म फलको प्रकट किया ॥ १७ ॥ "एतावानस्य महिमातोज्यायांश्च पूरुषः" हे ब्रह्मन् ! ईश्वर पुरुषकी महिमा बड़ी कठिन है "पादोस्य विश्वभूतानि" ईश्वर पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है ऐसा जानो ॥ १८ ॥ "त्रिपाद स्यामृतं दिवि" क्षेमदायक, अभयदायक, अमृत त्रिलोकीके शिरपर रक्खा अथवा क्षेमी, अभयी, मरण जहां नहीं ऐसी त्रिपाद विभूति त्रिलोकी

तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥१६॥ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ १७ ॥ महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु-सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥१८॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ॥ अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥२०॥ यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिःसूर्य इवातपन् ॥ २१ ॥ यदाऽस्य नाभ्यां नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥ २२ ॥

शिरपर रक्खी त्रिपाद-विभूति बाहर है, जो नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके स्थान हैं, आश्रम हैं ॥ १९ ॥ इस त्रिलोकीके भीतर गृहस्थी ब्रह्मचर्य नहीं करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके घरमें ही सदा मोक्ष होता है ॥ २० ॥ "ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि" "विविधं सुष्ठु अञ्चतीति विष्वक्" अनेक प्रकारसे सब ओरसे जिनकी पूजा हो वह ईश्वर, शिक्षाशास्त्र और एक विना शिक्षाका शास्त्र जिसने दो मार्ग प्रकट किये, विद्या-अविद्या रची। परन्तु दोनों ईश्वरके आश्रित हैं; अविद्या बन्धनको करनेवाली है और विद्या मुक्तिकी दाता है ॥ २१ ॥ "ततो विराडजायत" भूत इंद्रियसे गुणात्मक विराट् ब्रह्माण्ड हुआ, जिससे अनेक द्रव्य हुए। इस विश्वको सूर्यकी तरह ईश्वरने तपाया ॥ २२ ॥ "यत्पुरुषेण हविषा"। "नाभौ भवं नाभ्यम्" जिस समय व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे मैं उत्पन्न हुआ तब पुरुषके अवयवके

विना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखी ॥ २३ ॥ उनके यज्ञके पशु, वनस्पति कुशा और देवताओंके यजन योग्य स्थान रचे और जिसमें बहुत गुण ऐसा समय रचा ॥ २४ ॥ सब पात्रादि रचे, ओषधी, घृतादिक, मधुरादिक, सुवर्णादिक धातु, मृत्तिका, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद चार ब्राह्मण और जिसमें हवन करें, वह कर्म रचा। हे सत्तम ! ॥ २५ ॥ ज्योतिष्टोमादिनाम, "मन्तारमनुसंधातारं त्रायन्ते इति स्वाहाकारादिकमन्त्राः"। सुवर्णादि दक्षिणा,एकादश्यादि सब व्रत, देवताओंके नाम, सबके निमित्त बौधायनादि कर्म पद्धति संकल्प अनुष्ठानकी क्रिया तन्त्र ॥२६॥ विष्णुक्रमादि गति, देवताओंका ध्यानादि मति, प्रायश्चित्त जो करना उनको भगवान्‌में समर्पण करना पुरुषके

तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः॥२३॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो-जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम॥२४॥ नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च॥२५॥ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम्॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया॥२६॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम्॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥२७॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव॥ अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २९ ॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३० ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३१ ॥

अवयवोंसे मैंने सब सामग्री रची ॥ २७ ॥ "यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः" पुरुषके अवयवोंकी ऐसे सब सामग्रीसे पूजनीय परमात्माने पुरुषका यज्ञ किया ॥ २८ ॥ उनके पीछे प्रजापति नौ, यह तुम्हारे भ्राता सावधान होकर इन्द्रादि रूपसे अपने आप ही व्यक्त और स्व स्वरूपसे अव्यक्त पुरुषका पूजन करने लगे॥२९॥उसके पीछे अपने समयमें सब मनुष्य, सब ऋषि और सब पितर विबुध, दैत्य, मनुष्य, यज्ञोंसे समर्थ जनार्दनका यज्ञ किया ॥३०॥ यह सब विश्व भगवान् नारायणमें स्थित है।इस सृष्टिके रचनेके आदिमें बहुत मायाके गुण ग्रहण किये। आप सब गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ३१ ॥ उसी परमात्माकी आज्ञासे मैं संसार रचता हूँ,ईश्वरके वश होकर शिव संहार करते हैं और पुरुष विष्णुरूप

होकर विश्वकी रक्षा करते हैं "त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति त्रिशक्तिधृक्" तीन शक्तिधारी मायाधारी ईश्वर हैं॥३२॥ हे नारद! जैसे हमसे तुमने पूछा उसी प्रकार मैंने कहा, भगवान्के विना सत्, असत् आत्मक इस विश्वमें कुछ नहीं है॥३३॥ हे अंग! हे नारद! मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती और मनकी गति कभी मिथ्या नहीं होती। मेरी इंद्रियाँ कभी खोटे मार्गमें नहीं जातीं, क्योंकि निश्चय करके अत्यन्त भक्तिसे हृदयमें हरिको धारण किया है॥३४॥ वह हम वेदमय, तपोमय, प्रजापतियोंके पति, सबसे वन्दित, सुन्दर योगमें स्थित होकर तप करते हैं, परन्तु मैं अपनी उत्पत्ति करनेवालेको अबतक नहीं जानता॥ ३५॥ शरणागतके रक्षक, संसारके नाशक, स्वस्तिदाता, मंङ्गल दायक नारायणके

इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम्॥ ३२॥ न भारती मेऽङ्ग-मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः॥ न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः॥ ॥३३॥ सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तन्नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः॥ ३४॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम्॥ यो ह्यात्ममाया विभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः॥ ३५॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे॥ ३६॥ यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः॥ न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः॥ ३७॥

चरणके हम आश्रित हैं। जो भगवान् अपनी मायाका विस्तार आप भी नहीं जानते, जिस प्रकार आकाशका अन्त आकाश नहीं जान सकता, इसी प्रकार औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है? जैसे आकाशके पुष्पको न देखना कुछ सर्वज्ञताका नाश नहीं करता। श्रुतिश्च "यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अंग वेद यदि वा न वेद" इति॥ ३६॥ जिसकी गतिको न हम न तुम सब, न शिव जाने फिर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है? उनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले सब इस मायाके रचे हुए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन करते हैं॥३७॥ जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम सब गाते हैं, परन्तु सिद्धान्तसे उनको नहीं जानते, उन त्रिलोकी नाथके अर्थ बारंबार

नमस्कार है ॥ ३८ ॥ वह अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथम है। वही कल्प-कल्पमें विश्वरचयिता, कर्ता, अधिकरण, साधन, कर्म सब रूप आप ही है। वही संसार करता है, वही रक्षा करता है ॥ ३९ ॥ "विशुद्धं" विषय आकार रहित है, "केवलं" एक है, "ज्ञानं" ज्ञान स्वरूप है, "प्रत्यक्" सबका अन्तर्यामी है, "सम्यक्" संदेहादिरहित है, "अवस्थितं" स्थिर है, "सत्यं" सत्यरूप है, "पूर्ण" सबमें पूर्ण है, "अनाद्यं" आदि-रहित है, "निर्गुणं" मायाकृत गुण जिसमें नहीं हैं, "नित्यम्" सदा रहते हैं, "अव्ययम्" ईश्वरके विना और कोई नहीं है ॥४०॥ आत्मा, मन, इन्द्रियाँ अंतःकरण प्रसन्न होते हैं। तब मुनिगण ईश्वरको जानते हैं। हे नारद ! जब खोटे लोग

स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ॥ आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३८ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९॥ ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥ ४० ॥ आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥४१॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥ अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४३ ॥

खोटे तर्क करते हैं तब ईश्वरका सब ज्ञान नष्ट होकर आदिपुरुष अन्तर्धान होजाते हैं ॥ ४१ ॥ परब्रह्मका प्रथम अवतार पुरुष है। काल, स्वभाव, सत्, असत, मन, महाभूत, अहंकार, मन आदि इन्द्रियाँ, विराट् स्वरूप, स्थावर, जंगम यह सब परमेश्वरके अवतार हैं ॥ ४२ ॥ हम, महादेव, यज्ञ, प्रजेश्वर दक्षादिक, तुम सब स्वर्लोकपालक, खगलोकपालक, मनुष्यलोकपालक, तललोकपालक सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४३ ॥ गन्धर्व, विद्याधर, चारण, ईश, यक्ष, राक्षस, उरग, सर्पोंके स्वामी, जो ऋषियोंसे बड़े हैं पित्रीश्वर, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवेन्द्र और प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग, पक्षियोंके ईश, इस ब्रह्माण्ड कटाहमें जो कुछ है वह स्वरूप सब

परमेश्वरका है जो कुछ इस लोकमें है वह भगवान्के महापराक्रम बलकी तरह है। क्षमा, श्री, लज्जा और संपदा ईश्वरके समान हैं, जो रूपवान है जो विना रूपवान है, यह सब परमतत्त्व है ॥ ४४ ॥ प्रधानतासे जिन्हें ऋषिलोग नमस्कार करते हैं, वह लीलावतार पुरुष ब्रह्मके हैं, वह कानोंका मल दूर करने वाले हैं। वह परम सुन्दर कथा चौबीसों अवतारोंकी अब हम तुमसे कहेंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, जो हरि किये विहार। भिन्न भिन्न वर्णन करौं, चौबीसों अवतार ॥ ब्रह्माजी बोले कि, अब वाराह अवतार कहते हैं। पृथ्वीतल उद्धारके कारण श्रीवाराहजी अनंत भगवान्ने वाराहरूप धारण किया। जब हिरण्याक्ष दैत्य महासमुद्रमें आया, तब उसको मार धरतीको डाढ़पर रख लाये,

यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजस्सहस्वद्बलवत्क्षमावत् ॥ श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥ प्राधान्यतो यान्नृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० म० द्वि० विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ॥ अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाऽद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदाऽऽर्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार इन्द्रने पर्वतोंको विदीर्ण कर डाला था, उसी रीतिसे भगवान् वाराहजीने हिरण्याक्षका उदर दांतोंसे फाड़ डाला ॥ १ ॥ अब यज्ञावतार कहते हैं। रुचि प्रजापतिकी आकूतिनाम स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका सुयज्ञ नाम प्रसिद्ध हुआ। वह सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणा नाम स्त्रीसे सुयम नामक देवताओंको उत्पन्न किया। उसीने इन्द्र होकर तीनों लोककी महापीड़ाका नाश किया, उसका पहले सुयज्ञनाम था; परन्तु मातामहने हरि नाम रखा। देवोंकी उत्पत्ति, लोकत्रयकी पीड़ा हरना उनका काम है। यह सब अवतारमें और अवतारका कर्म सब स्थानोंमें जान लेना ॥ २ ॥ अब कपिल अवतार कहते हैं। हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतीसे नौ *भगिनी सहित*

कपिलदेवजीने अवतार लिया और अपनी माताको सांख्यशास्त्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जिस ब्रह्मविद्यासे जीवकी मलिन करनेवाली संसारकीचको इसी जन्ममें धोकर महात्मा कपिलदेवजी गतिको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ अब दत्तात्रेय-अवतारका वर्णन करते हैं। जब अत्रि ऋषिने पुत्रकी चाहना की, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर कहा "मैं स्वयं ही तुम्हारे घर जन्म लूंगा" इस कारण दत्तात्रेय नामसे हृषीकेशने अवतार लिया; जिनके चरणपंकजकी रजसे निर्मल आत्मा यदु, हैहयादिक ऐहिक, आमुष्मिक भक्ति मुक्तिरूपा योगसिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ अब सनकादिक अवतारका वर्णन करते हैं। पहले अनेक लोक रचनेकी इच्छासे बहुत तप किया, तपके प्रभावसे परमेश्वरने सनकादिकका अवतार लिया। पहले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वका सुन्दरतासे वर्णन किया। जिनके कहनेमात्रसे

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाऽहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुस्सनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥ कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमपि ते न दहन्त्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥

मुनिलोगोंने अपने आपमें साक्षात् परमात्माको देखा ॥ ५ ॥ अब नर-नारायण अवतारकी कथा कहते हैं। धर्मकी स्त्री दक्षसुता मूर्ति नामसे प्रसिद्ध थी। उसमें अपने तपके प्रभावसे नर-नारायण हुए। उनका तप भङ्ग करने के लिए कामसेना नामक अप्सरा उनके पास गयी। परन्तु नर-नारायणके निकट अपने समान उर्वशी आदि स्त्रियोंको देख अपने रूपका अभिमान भूल गयी और ईश्वर नर-नारायणका व्रतभङ्ग न कर सकी ॥ ६ ॥ महाशुभकर्मकारी त्रिपुरारिने क्रोधदृष्टिसे कामदेवको भस्म किया, परन्तु देहके जलानेवाले क्रोधको भस्म न कर सके थे। यह रोष नर-नारायणके हृदयमें प्रवेश करनेसे बहुत डरा, फिर कुसुमायुध उनके हृदयमें कैसे प्रवेश कर सके ? ॥ ७ ॥

अब ध्रुव अवतार कहते हैं। उत्तानपादनरनाथके गृहमें ध्रुवजीने जन्म लिया, एक समय ध्रुवने पिताके अङ्कमें बैठनेका विचार किया, तब निकट बैठी हुई सुरुचि विमाताके कहे कटु वाक्य–बाणोंसे विद्ध होकर बालक ध्रुवजी तपके अर्थ काननमें चले गये और स्तुति करनेसे प्रसन्न हो हरिने ध्रुवको ध्रुवपद दिया "दिवि भवा दिव्याः" स्वर्गवासी उत्तानपाद राजर्षिके समीप भृगु आदिक ऊपरसे और नीचेसे सप्तर्षि जिनकी स्तुति करते हैं ॥८॥ अब पृथु अवतार कहते हैं। एक समय राजा वेनके पाखण्ड–अवलम्बनसे धर्म नष्ट हो गया। तब ब्राह्मणके वाक्यरूप वज्रसे उसका पुरुषार्थ और सब ऐश्वर्य नष्ट हो गया और नरकमें गिरा; तब मुनियोंकी प्रार्थनासे भगवान्ने पृथु होकर रक्षा की, जगत्में पुत्र नाम विख्यात किया, पुत्र शब्दकी व्युत्पत्ति यह है "पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्तत्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव

विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥ यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ॥ त्रात्वार्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥१०॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥

स्वयंभुवा ॥" महात्मा पृथुने पृथ्वीको दुहा और सब वस्तु निकालीं ॥ ९ ॥ अब ऋषभ अवतारका वृत्तान्त सुनो; यह परमेश्वर आग्नीध्रपुत्र नाभिकी स्त्री सुदेवीसे ऋषभदेवजी हुए। समानद्रष्टा जड़की नांई बन योगाभ्यास किया, जिनके परमहंस पदको ऋषियोंने नमस्कार किया। स्वस्थ इन्दियाँ जिनकी, शांत, सबका सङ्ग त्याग ऐसे ऋषभदेवजी हुए (जिनसे जैनमत प्रकट हुआ) ॥१०॥ अब हयग्रीव अवतारका वर्णन सुनो। मेरे यज्ञमें हयग्रीव अवतार भगवान् हुए। साक्षात् यज्ञपुरुष सुवर्णसदृश वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सर्व देवतामय, वेदरूप सुन्दर वाणीसे अर्थात् वेदरूप नामके श्वाससे हुए "लेत जासु नासाके श्वासा। चार वेद वर भये प्रकाशा ॥ धर्म धरन जीवन आधारा। ऐसे

श्रीवसुदेवकुमारा" ॥ ११ ॥ अब मत्स्यावतार कहते हैं; प्रलयकालके समयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सब जीवोंको आश्रयरूप मत्स्य भगवानको देखा । महाभयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेदमार्गोंको लाकर हर्षसे प्रलयके जलमें विहार किया ॥ १२ ॥ अब कच्छप अवतार कहते हैं; सत्ययुगमें अमृतके लिये देवता और दानवयूथ मथन करने लगे । तब आदिदेव भगवानने कच्छपरूप धारण कर मन्दराचल पर्वतको पीठपर रखकर ज्यो-ज्यों घुमाते थे त्यों-त्यों कूर्म महाराजकी खुजाहट जाती थी और सुख प्राप्त होता था । निद्राके वश हो बहुतसे श्वास छोड़े । उस दिनसे आजतक समुद्रमें विलास करते हैं ॥ १३ ॥ अब नृसिंह अवतारका वर्णन सुनो । सुरगणोंको महाभयभीत

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥ क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥१३॥ त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटि दंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमाराद्रूरौ निपात्य विददार नखैःस्फुरन्तम् ॥ १४ ॥ अन्तः सरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः ॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥१५॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाटय तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥

देख "धर नरसिंह रूप अति घोरा । कुपित दृष्टि देखेउ चहुँ ओरा ।" महाभयंकर रूप टेढ़ी-टेढ़ी भ्रुकुटी, महाकालके समान भयानक डाढ़ें, नेत्र लाल-लाल अग्निवत् प्रदीप्यमान, शीघ्र गदा लेकर निकट आये । हिरण्यकशिपुके हृदयको महाकराल नखोंसे फाड डाला । अब हरि अवतारका वर्णन करते हैं; त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें महाबलवान् ग्राहने गजेन्द्रका पांव पकड़ कर जलमें खींचा, तब यूथपति गजनाथ व्याकुल हो कमलफूल शुण्डमें ले यह कहने लगा-हे आदिपुरुष ! हे दीनबन्धु ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे पुण्ययशश्रवण ! हे मङ्गलनामधेय ! रक्षा करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीहरि शरणागतवत्सल गजेन्द्रकी पुकार सुनकर महाबली चक्रायुध लिये, गरुड़पर बैठे तत्काल आकर चक्रसे

मगरका मुख काट, शुण्ड पकड़, कृपा करके गजका उद्धार किया ॥ १६ ॥ आपसे अब वामन अवतार कहते हैं। गुणोंमें सबसे बड़े अदितिके द्वादश पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे वामनजी हुए, जिन्होंने तीनों लोकोंको दोनों पगसे नाप लिया। यज्ञ भगवानने वामनरूप धारण कर बलिसे तीन पदके मिषसे पृथ्वी ले ली, क्योंकि धर्ममार्गमें वर्तमान बलिको ईश्वर मांगनेकी वृत्तिको छोड़ (अन्योपायसे) चलायमान न कर सके ॥१७॥ हे नारदजी ! श्रीभगवान्के चरणोंका धोवन गंगाजल बलिने शिरपर धारण किया। राज्यप्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि राजा बलिने जो प्रतिज्ञा की थी उससे अधिक वह इच्छा नहीं रखता था। तीसरे चरणकी पूर्तिके लिये उसने शिरसे अपना सम्पूर्ण शरीर

ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याञ्चामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः॥ १७ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखां धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥ तुभ्यं च नारद भृशं भगवन्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥

देना स्वीकार कर लिया ॥ १८ ॥ अब हंस अवतार कहते हैं। हे नारद ! हंस भगवान्ने अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न हो ज्ञानयोग भागवत आत्मज्ञानका प्रकाशक तुमसे कहा जिसको वासुदेवके शरणागत भक्त विना परिश्रम प्राप्त होते हैं ॥१९॥ अब मन्वन्तर अवतार कहते हैं। दशों दिशाओंमें जिसकी अप्रतिबन्ध आज्ञा बर्तै ऐसे मन्वन्तरोंमें मनुवंशधारी भगवानने सुदर्शनचक्र धारण किया और दुष्ट राजाओंको दंड दिया और त्रिलोकीमें अपने चरित्रोंको प्रकट कर अपनी सुन्दर कीर्तिका विस्तार किया ॥२०॥ अब धन्वन्तरिका वर्णन सुनो—धन्वन्तरि भगवानने अपनी कीर्तिसे अपने नामसे महारोगियोंका रोग दूर किया और यज्ञमें अमृत असुरोंसे लाये। लोकमें वैद्यकशास्त्र आयु

वेदका अवतार लेकर विस्तार सहित मनुष्योंको सिखाया ॥ २१ ॥ अब परशुराम अवतार कहते हैं; दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही, वेदमार्ग त्यागी, नरकभागी धरतीपर कंटक क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ उग्रवीर्य धारण कर। दोहा—क्षितिक्षयकारक निरखिकर, लेकर कठिन कुठार। क्षत्रि रहित कीन्ही क्षमा, अतिबल इक्किसवार ॥ तीक्ष्ण धारके फर्शसे इक्कीस बार क्षत्रियोंको मार-मार कर पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी ॥२२॥ अब श्रीरामचन्द्र अवतार वर्णन करते हैं; हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्न हो पन्द्रह कलाका अवतार धारण कर कलाके ईश्वर इक्ष्वाकु राजाके

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिस्सप्त कृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥ २३ ॥ यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेषो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ॥ दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४ ॥ वक्षस्स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हो, राजा दशरथकी आज्ञा मान, सीता, लक्ष्मण सहित वनको गमन किया। जिनसे विरोध कर लंकानाथ रावण विनाशको प्राप्त हुआ ॥२३॥ सीताके विरहमें क्रोधसे लाल-लाल नेत्र देख करके समुद्र तीक्ष्ण तेजके ताप और भयके कारण थर-थर कांपने लगा ॥२४॥ युद्धमें रावणके वक्षस्थलके स्पर्शसे इन्द्रका ऐरावत हाथी घबड़ा गया और उसके दांतोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इसी गर्वसे राक्षसाधिपति

शंका—किसी शास्त्र-पुराणमें यह नहीं सुना कि त्रिपुरासुरके पुरको जलानेकी इच्छा शिवजीने की तब शिवको पुरके सम्मुख जानेके लिये समुद्रने मार्ग दिया, इसी प्रकार नारदसे ब्रह्माने कहा कि, रामचन्द्रको लंकामें जानेके लिये सागरने मार्ग दिया जो तीनों पुरके जलानेकी इच्छा की और महादेवको समुद्रने मार्ग दिया यह बड़ो भारी शंका है ॥

उत्तर—शंकरके चरणोंमें शंकरके भक्तोंका अधिक जो प्रेम है वही समुद्र है। उसी प्रेमसमुद्रमें शिव सर्वदा मतवाले रहते हैं। जब कभी भक्तोंके ऊपर शिवजी क्रोध करते हैं तब प्रेमरूपी समुद्र शिवके भक्तोंके पास जानेके लिये क्रोधको पथ नहीं देता। जब तीन पुर जलानेके लिये विष्णुआदि सब देवताओंने शिवजीकी प्रार्थना की तब भोलानाथ अपने हृदयमें त्रिपुरको थोड़ा भक्त समझ उसके ऊपर क्रुद्ध होनेके कारण प्रेमके समुद्रने मार्ग दिया। मार्ग देना यह है कि त्रिपुरको जलानेके लिये शिवजीने सम्पूर्ण निश्चय कर लिया इसीलिये ब्रह्माने कहा ॥

दशशीश दशों दिशाओंमें निर्भय विचरता फिरता था । उस सीताहारी राक्षसेन्द्रके वर्द्धित महागर्वको शीघ्र प्राणसहित मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने नाश किया ॥२५॥ अब श्रीकृष्ण अवतारका वर्णन करते हैं, असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित, भूमिका क्लेश नाश कर, बलदाऊ सहित श्वेत कृष्ण जिनके केश, किसी मनुष्यसे जिनका मार्ग नहीं जाना जाय, वह परब्रह्म श्रीकृष्ण अवतार धारण कर अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले कर्म करेंगे । कोई यह तर्क न करे कि केशमात्र अवतार हैं क्योंकि भारका उतारना क्या बड़ा कार्य्य है ? हमारे केश कैसे हैं यह प्रकट करनेके लिये और श्वेत कृष्ण वर्ण सूचनाके लिये ऐसा लिखा है * ॥ २६ ॥ जिन्होंने

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽप्रवृत्तः ॥ यद्रिङ्गताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७ ॥ यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान्पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम् ॥ २८ ॥

बालकपनमें पूतनाको मारा और जब तीन मासके हुए तब शकटासुर, कागासुरका संहार किया, जब घुटनोंके सहारे चलने लगे, तब अति उन्नत यमलार्जुन वृक्षोंको मूलसे उखाड़ा । भला यह कार्य विना ईश्वरके कौन सम्पन्न कर सकता है ? ॥ २७ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने व्रजमें, व्रजके गाय वत्स जब कालीदहका जल पीकर अचेत हो गये थे, उनपर अनुग्रह कर अमृतदृष्टिकी वृष्टि कर उनको जिलाया और यमुनाकी शुद्धिके लिये उसमें विहार कर और अति चञ्चल जिह्वावाले कालीनागको नाथ उसे जलसे निकाल

*स चापि केशौ हरिरुज्जहर्ष शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् । तौ चापि केशावाविशितां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च ॥ १ ॥ तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः । कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः ॥ २ ॥ '' म हामहाभारतमें लिखा है कि ईश्वरने दो बाल काले सफेद उखाड़े, वे दोनों बाल यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश कर गये । जो उन देवका श्वेत केश था उससे संकर्षण उत्पन्न हुए दूसरे श्यामकेशसे केशीवधकारी, भक्तभयहारी, वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र हुए ।

लाये ॥ २८ ॥ ये उन भक्तवत्सल यशोदानन्दनके अलौकिक कर्म हैं। क्योंकि जब दावाग्निसे पवित्र वन जला, तो आप उसमें सोते थे। उस भीषणाग्निसे निश्चय सबका काल आया था यह जान भक्तवत्सलने सबसे कहा कि, नेत्र बंद करो, नेत्रोंके बन्द करते ही व्रजको उबारा और अग्निको पान कर गये ॥ २९ ॥ जब यशोदा मैया श्रीकृष्णके बांधनेको रस्सी लायी और वह रस्सी पूरी न हुई, तब वह दूसरी और लायी, जब वह भी छोटी हुई, तब और लायी, इस भांति सब घरभरकी रस्सियां जोड़ीं, परंतु पूरी न हुई। जब श्रीकृष्णने कहा कि मैया "मैंने माटी नहीं खायी, मेरा मुख देख ले" श्रीकृष्णने यशोदाको मुख दिखलाया तो उसमें सब विश्व दृष्टि आया। यशोदा विश्वको

तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निश्शयान दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९ ॥ गृह्णीत यद्यदुपबन्धममुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ ३० ॥ नन्दं च मोक्ष्यति भया-द्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोके विकुण्ठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥ क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रसोन्मुखः कलपदायतमूर्छि-तेन ॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥

देख शंकित हुई। परंतु पश्चात् ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ वरुणकी फाँसीसे भयभीत नन्दको बचायेंगे। व्योमासुरके पर्वतकी गुफामें गायोंको बंद करने पर उन्हें छुड़ायेंगे। और दिनमें तो सब काम करके रात्रिको अति श्रमसे सोये हुए सब गोकुलवासियोंको वैकुण्ठ दिखलायेंगे॥३१॥ हे नारद! जब गोपोंने इन्द्रयज्ञ न किया तब व्रजका नाश करनेको क्रोधित हुआ इन्द्र जब मूसलाधाराओंसे वर्षा करेगा तब सात वर्षके श्रीकृष्णचन्द्र गौ आदिकोंकी रक्षाके लिये छत्राककी तरह सात दिन तक गिरि गोवर्द्धनको बायें हाथकी कन उँगलीपर धारण करेंगे ॥३२॥ चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्त श्वेत रजनीमें रसकी इच्छा करके क्रीड़ा कर मधुर पदसे मूर्च्छना ले नाच-नाच राग गाकर व्रजयुवतियोंका कामदेव

जगा कर गोपस्त्रियोंके हरनेवाले कुबेरके सेवक शंखचूड़के शिरके रत्न हरेंगे ॥३३॥ और प्रलंबासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, मल्ल, कुवलयापीड, कंस, कालयवन, नरकासुर, पौंड्रकादिक, शाल्व, द्विविद, बन्दर, वल्कल, दन्तवक्त्र, सप्तवृषभ, शंबर, विदूरथ, रुक्मी आदिक और संग्राममें श्लाघनीय धनुषधारी, कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, संजय आदिक इन सबको बलदेव, भीमसेन, अर्जुन, इनके मिषसे दुर्लभदर्शन श्रीहरि ऐसे-ऐसे दुष्टोंको वैकुण्ठ धाम पहुँचायेंगे ॥३४॥३५॥ अब व्यास अवतार कहते हैं; काल करके मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित हुई, मनुष्योंकी आयु थोड़ी होने लगी और वे वेदको भूलने लगे। तब युग-युग में सत्यवतीसे श्री व्यासजी प्रकट हो वेदरूप वृक्षकी

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४ ॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ॥ यास्यन्त्य दर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥ कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यतिस्म ॥ ३६ ॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥ लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विज जना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहास्वधावषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥ ३८ ॥

शाखा भेद करके उनका विस्तार करेंगे ॥ ३६ ॥ अब बौद्ध अवतार कहते हैं; देवताओंके द्रोही वेदमें निष्ठा करनेवालोंको मय दैत्यकी रची हुई पुरियोंसे अदृश्य लोकोंको त्रासकारक बुद्धिमें मोह करनेवाले, लोभ बढ़ानेवाले, पाखण्ड धर्मको बुद्धजी कहेंगे ॥ ३७ ॥ अब कल्कि अवतारका वर्णन करते हैं। जिस समय कहीं हरिकी कथा न होगी, ब्राह्मण पाखण्डी हो जायँगे, शूद्र राजा बन राज्य करेंगे। स्वाहा, स्वधा, वषट् यह वेद वाणी जब न होगी, मनुष्य पशुके समान हो जायँगे, उस समय कलियुगके अंतमें भगवान् कल्की अवतार धारण कर शिक्षा

करेंगे ॥ ३८ ॥ मायागुणावतार भगवान्‌की विभूति हैं, वह इस संसारके रचनेमें तप, हम सप्त ऋषि; नौ प्रजाके ईश, स्थान, धर्म, यज्ञ, मनु, देवता, राजा लोग अन्तमें अधर्म करनेवाले क्रोधी असुर आदिक बहुत शक्तिधारी ईश्वरकी मायाकी ये सब विभूतियाँ हैं ॥ ३९ ॥ यह अवतारोंकी कथा मैंने संक्षेपमें कही है विस्तार से कहनेकी किसकी सामर्थ्य है। विष्णुका चरित्र कोई नहीं कह सकता है चाहे पृथ्वीके रजके कण गिन ले। जो ईश्वर अत्यन्त वेगसे त्रिलोकीको धारण किया, परन्तु त्रिलोकीके समान स्थान से भी अधिक कंपायमान करनेवाला जिनका वेग है ॥ ४० ॥ मायासे बलवान् पुरुष ईश्वरका प्रपंच हम नहीं जान सकते। हे मुनि! यह तुम्हारे भाइयोंमेंसे भी कोई नहीं जान

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या माया विभूतयः इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कम्भ यः स्वरभसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥ ४० ॥ नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनाऽपि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां तेषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥ वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगामायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥

सकता। सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजी भी सदा ईश्वरके गुण गाते हैं, परन्तु अबतक पार नहीं पाया और न पायेंगे। फिर औरोंकी तो क्या गिनती? ॥ ४१ ॥ कोई यह शंका करे कि कोई हरिके गुणोंको न कह सकता हो तो मोक्ष कैसे होता है? उत्तर-मोक्ष हरिकी कृपासे होता है और किसीसे नहीं हो सकता। वह भी जब अनंत भगवान् कृपा करें और सब प्रकारसे निष्कपट होकर उनके चरणारविंदोंका आश्रय लेकर अतिदुस्तर देवताओंकी मायासे तर जाते हैं और श्वान शृगालोंके भोज्य देहमें आसक्त पुरुष नहीं तर सकेंगे ॥ ४२ ॥ हे नारद! उन्हींकी कृपासे परमात्माकी योगमायाको जानते हैं। हम सब जानते हैं। तुम, शिव भगवान्, प्रह्लाद, मनुकी स्त्री शतरूपा,

स्वयंभूमनु, उनके पुत्र प्राचीनबर्हि, ऋभु, ध्रुवजी ॥४३॥ इक्ष्वाकु, नृपति ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, नृपेन्द्र रघु, अम्बरीष, सागर, नहुषादिक, मान्धाता, अलर्क, शतधनु, रंतिदेव, भीष्मपितामह, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥४४॥ सौभरि, उतंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पाराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान्, उपेंद्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव ॥ ४५ ॥ ये सब जानते हैं, इससे तर गये। ईश्वरकी मायाको स्त्री, शूद्र, हूण, यवन, शबर और पापी जीव, जो जो अद्भुत चरित्रकारी, ईश्वर परायण, जिन्होंने भली भांति शिक्षा ली है वह और जिन्होंने ईश्वर धारणा की है वे यह सब जानते हैं और पशु-पक्षियोंकी तो क्या चर्चा है? यह सब तर गये ॥४६॥

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥ ते वै विदन्त्यति तरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ ४६ ॥ शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ्नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८ ॥ स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥

अब भगवत्का स्वरूप वर्णन करते हैं। सदा प्रशांतमन, भयरहित, ज्ञानघनशुद्ध, समान, कार्य कारणसे परे, आत्माका तत्त्व है, जहां बहुत कारकवान्, क्रियाकारक शब्द नहीं कह सकते हैं। जिनके सम्मुख माया लज्जाके कारण मुख नहीं करती दूरसे दूर ही भागती है ॥४७॥ सोई परम पुरुष ईश्वर वह स्थान है, जिसको ब्रह्म निरत यतिलोग मनको जीत परमात्माके स्वरूपमें प्राप्त होकर अकर्तापन और साधनोंको त्याग देते हैं। जैसे कुयें खोदनेपर फावड़े आदिको छोड़ देते हैं या जैसे इन्द्र स्वयं बादलरूप होनेसे खनित्रादि वस्तुको नहीं ग्रहण करते ॥४८॥ वह भगवान् सर्व कल्याणकारी कर्मके फलदायक हैं। इसलिये इस विश्वका भाव स्वभावविहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है।

जैसे सब धातुओंके वियोगसे देह नष्ट होता है, परन्तु देहके संग आकाशका नाश नहीं होता, ऐसे ही अजन्मा पुरुष देहके साथ जन्म लेते हैं, परन्तु सबके फलदाता आप हैं ॥ ४९ ॥ हे नारद ! वह भगवान् सब विश्वमें जिनकी भावना है, उन राधारमणके चरित्र मैंने संक्षेपसे कहे हैं । इन ईश्वरसे पृथक् सत्–असत् कुछ नहीं है ॥ ५० ॥ जो मुझसे भगवान्‌ने कहा है, वह यह भागवतपुराण महाआनंददायक है । हरिकी विभूतियोंका संग्रह है, अब इसे तुम विख्यात करो ॥ ५१ ॥ जिस रीतिसे वृन्दावनविहारीमें मनुष्योंकी भक्ति हो । सबके आधार ईश्वरका चिन्तन करके तुम वर्णन करो ॥५२॥ जो परमेश्वरकी मायाका वर्णन करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं और जो श्रद्धासे नित्य

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे चतुर्विंशत्यवतार चरित्रवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥ यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥ २ ॥ कथयस्व महाभाग यथाऽहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निस्सङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥

परमात्माके चरित्र सुनते हैं, वे माया द्वारा कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥५३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशावतारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–ब्रह्मा नारदको सुनत, अति अनुपम संवाद । देवराज शुकदेवसों, पूछो अति आह्लाद ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार ब्रह्माजीसे प्रेरित हो देवदर्शक नारदजीने निर्गुण ईश्वरके गुण जिन-जिन के अर्थ कहे वह आप वर्णन कीजिये ॥१॥ हे विदांवर! मुझे उनके सुननेकी अभिलाषा है, अद्भुत पराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुन्दर मंगल करनेवाली है ॥२॥ हे महाभाग ! वह कथा वर्णन करो । सबसे मन हटाकर वैराग्य ले सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजीमें मन लगाऊं और इस दुःखदायी देहका त्याग करूं, वह कहो ॥३॥

श्रद्धायुक्त हो हरिके गुण नित्य श्रवण करनेसे, श्रीकृष्णलीलाओंको मुखसे कहनेसे थोड़े ही दिनोंमें भगवान् हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ४॥ कानके छिद्रमें हो सदा मधुसूदन अपने जनोंके हृदयका जो कमल है और उसमें जो मल है, उसका नाश कर देते हैं, जैसे जलका मल शरद् ऋतुके आनेसे दूर हो जाता है ॥५॥ जो पवित्र आत्मा पुरुष श्रीवासुदेवके चरणमूलका त्याग नहीं करते, वे सब क्लेशसे छूट जाते हैं। जैसे मार्ग चलनेवाले अपने घर आकर सब दुःखसे छूट जाते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा, हाड़, इन सात धातुओंसे रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वरका पंचभूत देह धरना निज इच्छासे है ? या किसी कारणसे शरीर धारण करते हैं ? यदि आप यथार्थ

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेन स्वानां भावसरोरुहम् ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन्देहारम्भोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ॥ ७ ॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥ यावानयं वै पुरुष इयत्ताऽवयवैः पृथक् ॥ ८ ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ शुकार्य ब्रूहि तत्सर्वं यच्च न ज्ञायते मया ॥ ९ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ १० ॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्व स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥ ११ ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्व कल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ १२ ॥

जानते हो तो कहिये ॥ ७॥ सब लोककी रचनारूप कमल जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुआ, वे जैसे अवयवोंसे अलग-अलग हैं और इतने हैं, यह सब कहो ॥ ८ ॥ इतने ही ईश्वर हैं, संस्था अवयवके समान हैं ? हे शुकाचार्य ! जिसको हम न जानते हों वह सब आप कहें ॥९॥ अजन्मा ईश्वरकी कृपासे सब जीवोंको ब्रह्मा रचते हैं, नाभिकमलसे जन्मे ब्रह्माजीने उनका रूप देखा ॥ १० ॥ वह ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार करता है। मायाके ईश, अपनी मायाको त्याग सबके अन्तर्यामी भी कहाँ सोते रहते हैं ॥११॥ पुरुषके अवयवोंसे

पूर्व कल्पित लोकपालसहित लोकपालक इनके अवयवोंसे रचे गये यह सब श्रवण कराइये ॥ १२ ॥ जैसा कल्प है, जैसा विकल्प है, जैसा कालका अनुमान किया जाता है। भूत, भविष्यत्, वर्तमान आयुका जो-जो प्रमाण है, वह कहो ॥ १३ ॥ कालकी गति जो छोटी-मोटी है, जितनी कर्मकी गतियाँ हैं और जैसी गति होती हैं वह हे द्विजसत्तम ! शुकाचार्य ! आप कहिये ॥ १४ ॥ सत्त्वादि गुणोंका देवादिरूप परिणामकी इच्छा करनेवाले जीवोंके मध्यमें जिस परिणाममें पुण्य-पापके कर्मोंका स्वरूपसमूह किस कर्मके समुदायसे कैसे करनेसे कौन अधिकारी देवआदि भावको प्राप्त होता है वह कहो ॥ १५ ॥ भूमि, पाताल, सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप

यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १३ ॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥१४॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १५ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १६ ॥ प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १७ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १८ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १९ ॥ तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ २० ॥

इनकी उत्पत्ति और जो इनके वासी हैं, कहो ॥ १६ ॥ इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, बाहर-भीतरका भेद, महात्माओंका चरित्र, वर्णाश्रमका निर्णय, जिन-जिन स्वभावोंसे सब वर्ण आश्रमका निर्द्धार हो, वह कहो ॥ १७ ॥ अत्यन्त आश्चर्यदायक श्रीहरि अवतारोंके चरित्र और युगों-युगोंके प्रमाण और युग-युगमें जो धर्म हों, कहो ॥ १८ ॥ मनुष्योंके जो साधारण धर्म हों वह कहो और जो-जो व्यवहारियोंके धर्म हों, कहो, और प्रजापालोंके अधिकारी राजर्षियोंके धर्म कहो, सब जीवमात्रका आपद्धर्म कहिये ॥ १९ ॥ तत्त्वोंकी संख्या और उनके लक्षण, अथवा किसी हेतुसे उनके लक्षण जैसे हों कहो, परमेश्वरके पूजनकी विधि, अष्टाङ्गयोगकी विधि, ब्रह्मविद्या, यह

सब कहो ॥ २० ॥ योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिरादि मार्गके योगियोंके लिंग देहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादि, धर्म शास्त्रोंकी गति, इतिहास पुराणोंका सार यह सब कहो ॥ २१ ॥ सब जीवोंका प्रलय, स्थिति, महाप्रलय, वैदिक कर्म, पूर्तकर्म कामना करके कर्म करना, अर्थ, धर्म, कामकी विधि यह सब कहिये ॥ २२ ॥ उपाधिरहित जीवोंके धर्म, उनकी रचना, पाखंडकी उत्पत्ति, जीवोंकी बंध मोक्षस्वरूपमें स्थिति यह कहो ! ॥ २३ ॥ जैसे स्वाधीन भगवान् अपनी मायासे क्रीड़ा करते हैं, कभी मायाको त्याग साक्षी समान

योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २१ ॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २२ ॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः ॥ आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २३ ॥ यथाऽऽत्मतन्त्रो भगवान्विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २४ ॥ सर्वमेतच्च भगवन्पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २५ ॥ अत्र प्रमाणं हि भवान्परमेष्ठी यथाऽऽत्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २६ ॥ न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २८ ॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २९ ॥

विभु विराजते हैं वह कहो ॥ २४ ॥ इन प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे अपने सिद्धान्तसे आप कहने योग्य हो, हे महामुनि ! मैं तुम्हारे आश्रित हूं ॥२५॥ इसमें स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रमाण हैं, पहलेसे पहले हुए वह और सब इसी मार्गमें स्थित रहेंगे ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे प्राण भूख-प्याससे नहीं निकलेंगे, भागवत कथामृत पान करनेवाले मुझको कुपित द्विजके सर्पका भय किंचित् भी नहीं है ॥ २७ ॥ सूतजी बोले—संतोंके पति हरिकी कथामें इस प्रकार राजाने प्रार्थना की; तब सभामें राजा परीक्षितसे शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥२८॥ वेदके समान भागवत

१ "वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते" बावडी, कुआं, तालाब आदि, देवमंदिर बनाना, ईश्वरके निमित्त सदा अन्नदान करना, बाग लगाना इनको पूर्त कहते हैं ॥

नामक पुराण ब्रह्मकल्पमें ब्रह्मासे भगवानने कहा था ॥ २९ ॥ पांडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षितने जो-जो पूछा वह सब संक्षेपसे और विस्तारसे व्याख्या करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां राजकृतप्रश्नविधिर्नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–कथा नवम अध्यायकी, नाशक सब संदेह । चतुश्लोकी भागवत, बरणों सहित सनेह ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! अनुभवरूप परमेश्वरको देहका संबन्ध अपनी मायाके विना नहीं होता, जैसे अनायास ही स्वप्नके द्रष्टाको स्वप्नके समयका देहसंबंध नहीं होता है ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायासे बाल, युवादि रूप देव नरादि रूपकी नाईं प्रकाश करते हैं । इस मायाके गुणमें रमण करके "मेरा है" "हम हैं" ऐसे आप

यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥ स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥ ५ ॥ स चिन्तयन्द्व्यक्षरमेकदाऽम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ॥ स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किंचनानां नृप यद्धनं विदुः ॥ ६ ॥

माने हैं ॥ २ ॥ जिस समय अपनी महिमामें उस काल मायासे परे ईश्वरमें सब मोह त्याग रमण करता है, तब अहंकार ममकार दोनोंको त्याग साक्षीके सदृश रहता है ॥ ३ ॥ जीवके तत्त्वशुद्धिका कारण जो भगवान्ने सत्य कहा है, वह निष्कपट तपके विना नहीं होता । ब्रह्माको अपना रूप दिखाया है ॥४॥ सो आदिदेव ब्रह्माजी जगत्के परमगुरु अपने कमलमें बैठकर जगत्के रचनेका विचार करने लगे, इस संसारके रचनेके योग्य दृष्टिको नहीं पहुँचे, जिससे यह विश्व रचनेकी विधि ठीक हो ॥ ५ ॥ एक समय ब्रह्माजी यही चिंतन कर रहे थे,

तब उस जलमेंसे दो बार यह शब्द सुनायी दिया, कि तप करो तप करो, (क) से लेकर (म) पर्यंत २५ पच्चीस अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है। इनमें १६ सोलहवाँ अक्षर (त) है और इक्कीसवाँ (प) है। दोनों मिलकर (तप) हुआ, हे राजेन्द्र! जिनको किसी वस्तुकी चाहना नहीं, ऐसे मुनियोंका वह धन है। तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ तप करो, यह सुन ब्रह्माजीने सब ओर देखा और वक्ताके देखनेकी इच्छा की, तब कमलपर बैठ अपना हित विचार तप करनेकी मनमें धारणा की ॥७॥ सफल दर्शन, पवन, मन, जीत, कर्म इन्द्रियाँ और ज्ञान इन्द्रियाँ जीत तप करने वालोंमें अति तपस्वी ब्रह्माजीने सब लोकको प्रकाश करनेवाला दिव्य तप सहस्र वर्षतक किया ॥ ८ ॥ जिससे

निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥ ७ ॥ दिव्य सहस्राब्धममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः ॥ अतप्यत स्माखिललोक-तापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥ तस्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं न यत्परम् ॥ व्यपेत संक्लेशविमोहसाध्वसं स्व दृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च काल विक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ और कोई नहीं, क्लेश, मोह, संभ्रम जहां नहीं। सत्पुरुषवान् आत्मवेत्ता अपने दर्शन करनेवालोंसे श्रीवैकुण्ठ लोकको प्रसन्न हो भगवान्ने ब्रह्माके लिये दिखाया ॥ ९ ॥ जिस वैकुण्ठमें राजस, तामस नहीं, शुद्ध सत्त्व जहां रहता है, रज-तम मिला तत्त्व गुण जहां नहीं, जहां कालका पराक्रम नहीं चलता, मायाका नाम नहीं, वहां रागादिककी क्या सामर्थ्य है? देव-असुर जिनका दोनों भजन करते हैं; ऐसे भगवत्के पार्षद जहां हैं ॥१०॥ पार्षदोंका वर्णन करते हैं—श्यामसुन्दर, उज्ज्वल स्वरूप, कमलनयन, पीताम्बर पहिने, परम मनोहर, अति

---

१. शंका—भगवान्की आज्ञा पाकर ब्रह्मा कमलके फूलपर बैठकर तपस्या करने लगे, परंतु उस तपका क्या नाम है? तप तो अनन्त हैं ब्रह्माने कौनसा तप किया?
उत्तर—ब्रह्मा नारायणकी आज्ञा पाकर अपने मनको हृदयमें स्थिर करके बड़े प्रेमसे नारायणके नामका जप करने लगे, यही परम तप है।

सुकुमार, उत्तम-उत्तम रत्नमणि जटित सब आभूषण धारण किये, अति तेजस्वी सब पार्षद हैं ॥ दोहा–कोउ प्रवालद्युति सोहहीं, कोउ वैदूर्य्य मृडाल। भ्राजमान माथे महा, मुकुट मणिनकी माल ॥ सामवेदको गाकर सर्वेश्वरको चारों ओरसे नमस्कार कर रहे हैं। कहीं स्मरण, कहीं प्रशंसा और कहीं भगवान्‌के चरित्रोंकी व्याख्या कर रहे हैं, ऐसे भगवान्‌के पार्षद हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ महात्माओंके प्रकाश मान शोभित विमानोंकी पंक्तियोंसे श्रीवैकुण्ठलोक सब ओरसे विशेष करके प्रकाशमान हो रहा है। उत्तम स्त्रियोंकी कांतिसे ऐसा प्रकाशित हो रहा है, जैसे बिजुली सहित मेघमालासे आकाश शोभित होता है। दामिनी सदृश तो स्त्रियाँ हैं, मेघपंक्तिके समान विमान हैं, आकाशके

प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः ॥ गायन्ति सामानि नमन्ति वै विभुं स्मरन्ति नन्दन्ति गृणन्ति पार्षदाः ॥ १२ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजिते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम् ॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १३ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ॥ प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १४ ॥ ददर्श तत्राखिलसात्त्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥ १५ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवप्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १६ ॥

तुल्य वैकुण्ठलोक है ॥१३॥ वहाँ वैकुण्ठमें रूपवती महालक्ष्मीजी श्रीनारायणके चरणोंमें अनेक विभूतियोंसे मान करती हैं और हिंडोलेमें झूलती हैं। वसन्तके अनुचर भ्रमर अनेक-अनेक प्रकारसे गुँजार करते हैं। अपने प्यारे प्रीतमके चरित्रोंको गाती जाती हैं और आनंदसे झूलती हैं ॥१४॥ उस वैकुण्ठमें सब भक्तोंके पति श्रीभूलीलानायक यज्ञपति, जगत् पालक, सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षद सब ओरसे जिनकी सेवा करें, उन समर्थ त्रिलोकीनाथका ब्रह्माजीने दर्शन किया ॥ १५ ॥ भृत्यजनोंके प्रसादमें जिनका मुख दर्शन करनेवालोंको हर्षदायक प्रसन्न नयन जिनकी मुसकानसे नेत्र मुख लाल हो रहे, शीशपर मुकुट, कानोंमें कनककुण्डल, चारभुज, पीतां-

बर धारण किये, हृदयमें श्रीजी विराजमान हो रही हैं ॥१६॥ अत्यन्त पूजन योग्य, सिंहासन पर विराजमान, परब्रह्म प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व अहंकार चार तो यह, और ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, सोलह। पांच उनकी मात्रा; इन शक्तियों और अपने सब स्वाभाविक जो ऐश्वर्य उनसे युक्त योगियोंके ध्रुव आगामि ऐश्वर्य समेत अपने मंदिरमें सदा रमण करते हैं ॥ १७ ॥ जिनके दर्शनके आनंदसे अन्तःकरण प्रसन्नतम, रोमाञ्चित देह प्रेमके भावसे नेत्रोंमें आंसू भर आनंदमें मग्न हो ब्रह्माने श्रीवासुदेवके चरण सरोरुहको नमस्कार किया, जिनका दर्शन परमहंसोंको ज्ञानमार्गसे होता है, उनका दर्शन ब्रह्माजीने किया ॥१८॥ संसारके रचनेमें जो हरिकी आज्ञा उसकी सुन्दरतामें स्थितचित्त उन ब्रह्माजीसे मन्द-मुसकानकी वाणीसे चितानंद घनश्याम; आप ब्रह्माका हाथसे हाथ पकड़ कर ॥ १९ ॥ बोले कि, हे वेदगर्भ ! विश्वके

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ॥ युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन्रममाणमीश्वरम् ॥ १७ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ २० ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २१ ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २२ ॥ प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ ॥ २३ ॥

रचनेकी इच्छासे तुमने हमें बहुत प्रसन्न किया और सहस्र वर्षतक अत्यन्त तप किया। जो मूर्ख योगीजन हैं, उनसे मैं बहुत प्रसन्न नहीं होता हूँ ॥२०॥ हे ब्रह्मा! आपका कल्याण हो, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वह वर मांगो। कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको जब तक भ्रम है, तबतक मेरा दर्शन नहीं होता ? अब तुम्हें मेरा दर्शन हो गया अब तुमको कोई परिश्रम न होगा। जो इच्छा हो, मांगो ॥२१॥ मेरे मनकी इच्छाका यह प्रभाव है कि मेरे लोकका तुमको दर्शन हुआ, यह मनमें मत विचार करना, कि मैंने तपके बलसे यह किया है ? स्वतंत्र कभी न होना। मेरी ही कृपासे तुमको यह दर्शन हुआ, जो श्रवण करके एकान्तमें सहस्र वर्ष तप किया ॥ २२ ॥ जब कर्मसे तुम विशेष

मोहित हुए, तब मैंने तुमसे कहा, हे पापरहित ! तप कर, तप मेरा हृदय है, तप साक्षात् मेरा देह है तप मेरी भीतरकी शक्ति है "यस्य ज्ञानमयं तपः इति श्रुतेः" ॥२३॥ तपसे ही इस विश्वको रचता हूँ और फिर तपसे ही संसारका पालन व संहार करता हूँ। यह तपरूप बड़ा पराक्रम है, बड़ा दुस्तर है। तपका बड़ा प्रभाव है, तप करना बड़ा कठिन है ॥२४॥ ब्रह्माजी बोले, कि हे लोकेश ! सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो, दृढ़ ज्ञानमें जो करनेकी इच्छा है उसको तुम जानते ही हो ॥२५॥ यद्यपि आप ऐसे हैं, तो भी, हे नाथ! आपसे जो मांगें ऐसे मनुष्यको जो याचित पदार्थ है वह तुम दो। तुम्हारे सूक्ष्म, स्थूल और निर्गुणको जैसे जानूं वह कहो ॥ २६ ॥ जैसे मायाके

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ तथाऽपि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥ २६ ॥ यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ॥ विलुम्पन्विसृजन्गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २७ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ॥ तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥२८॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं त्वदनुग्रहात् ॥२९॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम्॥ अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥ ३० ॥

संयोगसे अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे वर्द्धित विश्वका संहार, रचना, पालन आप ही चतुराननरूप धाणरकर किया करते हो ॥ २७ ॥ हे अमोघ संकल्प ! जैसे मकरी अपने तन्तुओंके जालसे आप फँस जाती है, ऐसे ही आप क्रीड़ा करते हैं। हे माधव ! अब आप दया करके सृष्टिके रचनेकी बुद्धि मेरे हृदयमें धारण करो ॥ २८ ॥ आपसे शिक्षित होकर मैं निरालस्य हो तुम्हारे अनुग्रहसे प्रजाके उत्पन्न करनेकी चेष्टा करूँगा, परन्तु अहंकारका बंधन न हो ॥ २९ ॥ हे ईश ! तुमने लौकिक सखाके समान जान स्वर्गादिकमें मेरा सम्मान किया। वह प्रजाके रचनेके कर्ममें अव्याकुल होकर उत्तम मध्यमादिक भेदसे जीवका विभाग करूँ तब "अजमानी" मुझको यह महामद

न हो वह कीजिये ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि, मेरा शास्त्रोक्तज्ञान अत्यन्त छिपा हुआ है, वह अनुभव, भक्ति, सब साधन सहित कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ ३१ ॥ स्वरूपसे जैसे हम हैं और जैसे सत्तावान् हैं, जो रूप; कर्म, गुण हमारे हैं, इसी प्रकार तत्त्वोंका ज्ञान विशेष करके मेरी कृपासे तुमको हो ॥ ३२ ॥ इस सृष्टिसे पहले मैं ही था, मेरे अतिरिक्त और दूसरा नहीं था और स्थूल-सूक्ष्म इनका परम कारण कुछ भी नहीं था। पीछे सृष्टिका कारण मैं ही हूँ, पीछे सृष्टिके उपरांत भी मैं ही हूँ, जो यह विश्व है वह भी मैं हूँ, जो कुछ शेष रहेगा वह भी मैं हूँ। जो कुछ सब सृष्टिका मूल है, वह भी मैं ही हूँ। जिस प्रकार सुवर्णके अलंकार नाक, कान, हाथ, पाँवके भिन्न होते हैं। जैसे कङ्कण, कुण्डल, कर्णफूल, मालादिक पृथक्-पृथक् होते हैं, जब सबको गला दिया तो फिर केवल कञ्चनका

श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ ३१ ॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३२ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्य-त्सदसत्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३३ ॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ ३४ ॥ यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३५॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३६ ॥

कञ्चन, इसी भांति मुझको समझना कि अनादि अनन्त अद्वितीय परिपूर्ण मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ अर्थके बीच जो प्रतीत है और आत्मामें प्रतीत नहीं होता है, उसीको मेरी माया जानो। जैसे दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं, जैसे राहु ग्रहमण्डलमें स्थित है, परन्तु दीखता नहीं। ग्रहणके द्वारा दीखता है। इसी प्रकार यह माया कार्योंके द्वारा दीखती है। साक्षात् प्रकट नहीं होती ॥३४॥ जैसे पञ्च महाभूतसे संसारके छोटे-बड़े जीव मात्रमें प्रविष्ट, अप्रविष्टके समान विदित होते हैं, इसी प्रकार मैं उनमें ज्ञात नहीं होता हूँ ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वके जाननेवालेको इतना ही जानना योग्य है। अन्वय, व्यतिरेकसे जो सब ठौर सदा ही ईश्वर है। "कार्येषु कारणत्वेनानुवृत्तिरन्वयः" अर्थ—कार्योंमें कारण भावसे जो

सदा रहे उसका नाम अन्वय है, "कारणावस्थायां च तेभ्यो व्यतिरेकः" अर्थ—कारण अवस्थामें उनसे अलग रहे उसका नाम व्यतिरेक है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मा ! एकाग्रचित्त द्वारा परम समाधिसे तुम इस मतमें स्थिर रहोगे तो तुम कल्पों-विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है उसका तुमको कभी यह अभिमान न होगा कि इस संसारका कर्त्ता मैं हूँ ॥ ३७ ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले, कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्माजी हैं उनसे अजन्मा ईश्वर यह कहकर अन्तर्धान हो गये ॥३८॥ आदिरूप अविनाशी जगदीश्वरके अन्तर्धान होनेके उपरान्त सब जीवमय ब्रह्माजी श्रीविश्वनाथको हाथजोड़ कर विश्वको पहलेकी रीतिसे रचने लगे ॥ ३९ ॥ प्रजापति धर्मपति एक समय

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३८ ॥ अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ४० ॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४१ ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥४२॥ तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥४३॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४४ ॥

यम-नियमको प्रजाके कल्याणके लिये और अपने स्वार्थकी कामनाके लिये रचा और यम-नियमादिकमें आप स्थित हुए ॥४०॥ अति प्रिय भाग लेनेवालोंमें पुत्रोंमें पिता ब्रह्मामें अनुरक्त शील नम्रतादि शुश्रूषा करनेवाले नारदजी ब्रह्माजीकी सेवा करने लगे ॥ ४१ ॥ हे राजन् मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी मायाको जाननेकी इच्छा कर महामुनि महाभागवत नारदजीने पिताको प्रसन्न किया ॥ ४२ ॥ "वेवेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापे उसका नाम विष्णु है, व्याकरणमें "विष्लृ व्याप्तौ" धातु है,उससे विष्णु शब्द व्युत्पादित होता है। सब लोकके पितामह ब्रह्माको प्रसन्न जानकर नारदने पूछा था, जो आप हमसे पूछते हैं ॥४३॥ दश लक्षण युक्त, अत्यन्त शोभायमान श्रीभागवत पुराण जो

भगवानने ब्रह्माजीसे कहा और उन्होंने अपने प्रिय पुत्र नारदसे कहा ॥ ४४ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! सरस्वतीके तटपर नारदजीने परब्रह्मके ध्यानी, परमज्ञानी, महातेजस्वी व्यास मुनिको सुनाया ॥४५॥ जो तुमने हमसे जिज्ञासा की, कि विराट् पुरुषसे यह विश्व कैसे होता है वह और तुम्हारे कहे हुए सब प्रश्न और अन्य बातें भी जैसी हैं वैसे ही कहेंगे ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां चतुःश्लोकीभागवत वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—तहँ शुकदेव प्रमोदभर, लक्षण दशहु पुरान । भूप परीक्षितसे कहत, संयुत अर्थ महान ॥ श्रीशुक देवजी बोले, कि अब सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वतन्र, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय ॥ १ ॥ दशवें आश्रय लक्षणकी विशेष शुद्धिके लिये नौ लक्षण महात्मा लोगोंसे सुने, अर्थ करके अनायाससे वर्णन करते हैं अथवा श्रुतियोंसे कहते हैं ॥ २ ॥ अब दशों

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४५ ॥ यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते म० द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥

लक्षणोंका वर्णन करते हैं। नभ, मही, जल, तेज, वायु, गन्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस । पायु, उपस्थ, पद, कर, वाक्, ये पांचों कर्मेंद्रिय हैं नाक, कान, रसना, त्वचा, नेत्र, ये पांचों ज्ञानेंद्रिय हैं । अहंकार, मन, बुद्धि, अन्तःकरण, इन पञ्चभूतमात्र इंद्रियोंकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं । ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट् पुरुषसे जो उत्पन्न हुआ उसका नाम विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुंठका विजय यह है कि, परमात्माकी रची हुई मर्य्यादाओंका पालन करना, इसका नाम स्थान है। अपने भक्तोंपर कृपा करना, इसका नाम पोषण है । मन्वन्तरोंके अधिपतियोंका जो धर्म वा सद्धर्म इसका नाम मन्वन्तर है । कर्मकी वासनाका नाम ऊति है ॥ ४ ॥ श्रीआदिपुरुष नारायणके अवतारोंका

चरित्र और इनके पीछे जो महात्मा पुरुषोंके नाना प्रकारके आख्यानोंकी अधिक वार्ताका नाम ईश कथा है ॥५॥ इस ईश्वरकी योगनिद्राके पश्चात् शक्ति और उपाधियों सहित लय हो जानेका नाम निरोध। रूपको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थित होनेका नाम मुक्ति है ॥६॥ जो सृष्टिको उत्पन्न, पालन और लय करता है; जिसको परब्रह्म कहते हैं उसीका नाम आश्रय है ॥७॥ जो यह आध्यात्मिक पुरुष है, वही यह आधिदैविक है; जो इसमें विभक्त है, वही आधिभौतिक है ॥ ८ ॥ एकको एकके अभावमें जब नहीं प्राप्त होता है, उसमें जो दृक् रूप सूर्य वपु, इस त्रितापको जो जानता है, वही आत्मा अपने आश्रय है; उसको भी आश्रय कहते हैं ॥९॥ जब विराट्

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सहशक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥६॥ आभासस्य निरोधस्य यतश्चाध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योऽध्यात्मिकोयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदाऽसौ स विनिर्गतः ॥ आत्मानोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥१०॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥११॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥१२॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥

पुरुष अंडको भेदकर बाहर निकले, तब अपने रहनेके लिये स्थानकी इच्छा की, आप ईश्वर पवित्र हैं, इस कारण पवित्र जलकी रचना की ॥ १० ॥ अपने रचे हुए जलमें सहस्र वर्षतक वास किया, तदनन्तर परब्रह्म सच्चिदानन्दने नर रूप धारण किया, इस कारण नारायण नाम हुआ। "आपो नारा इति प्रोक्ताः, नारा अयनं यस्य स नारायणः" नार नाम जलका है, उसमें जिसका स्थान हो वह नारायण हुआ। "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः प्रोक्तं तेन नारायणः स्मृतः" ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव; जिनकी कृपासे होता है और जिनकी इच्छा नहीं हो तो नहीं होता ॥ १२ ॥ एक परमात्माने जब नाना प्रकार होनेकी इच्छा की

तब योगशय्यासे उठ सुवर्णमय अपने वीर्यके तीन भाग किये ॥ १३ ॥ अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत; इनको ईश्वरने रचा । एक पुरुषका वीर्य तीन प्रकारके भेदोंको प्राप्त हुआ वह तुम ध्यान से सुनो ॥ १४ ॥ जब विशेष चेष्टा की, तब पुरुषोंमेंसे इन्द्रियशक्ति, मनःशक्ति, देहशक्ति यह हुई और सबमें मुख्य प्राण हुए ॥१५॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करता है, तब सब इंद्रियां चेष्टा करती हैं जो चेष्टाका त्याग करता है तो प्राण भी चेष्टा त्याग करते हैं। जैसे राजाके पीछे राजाका भृत्य, राजा चले तो भृत्य भी चले, राजा खड़ा हो जाय तो भृत्य भी खड़े हो जाते हैं ॥ १६ ॥ एक देह जो परमात्माने रची, तब उसमें प्राणने प्रेरणा की, तब भूँख प्यास हुई, तब जल

अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ॥ यथैक पौरुषं वीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अन्तश्शरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥ १५ ॥ अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्व जन्तुषु ॥ अपानं तमपानन्ति नरदेवमिवानुगाः ॥१६॥ प्राणेन क्षिपता क्षुतृडन्तरा जायते प्रभोः ॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥ १७ ॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गन्धवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥

पीने और भोजन करनेको प्रथम मुख निकला यहां यह बात जाननी उचित है, कि तालु अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है, नाना प्रकारके रस विषय हैं, बरुण देवता हैं, यह सर्वत्र जान लेना ॥ १७ ॥ मुखसे तालु हुआ, वहां जिह्वा हुई, जीभसे अनेक प्रकारके स्वादोंका ज्ञान हुआ ॥१८॥ फिर कुछ बोलनेकी इच्छा हुई, उस समर्थ जीवकी अग्नि देवता वाणी इन्द्रियसे सुन्दर शब्द निकला, परंतु जलमें वचनकी रुकावट होती है। नासिकाकी पवन जब अत्यन्त चलायमान हुई; तब नासिका हुई वायु जिसका देवता है, वह सुगन्धदाता घ्राण इंद्रिय सूंघनेको हुई ॥ १९ ॥ २० ॥ जब देखनेकी इच्छा हुई कुछ न देखा तब देवतात्मकरूप गुण करनेवाली चक्षु इंद्रिय हुई ॥ २१ ॥

जब वेदवचन सुननेकी इच्छा हुई, तब दिशा देवता, वारि देवता, श्रोत्र श्रवण इंद्रिय, गुणके ग्रहण करनेवाले कान निकले ॥२२॥ वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघु, गुरु, उष्ण, शीतके ज्ञानकी इच्छा हुई तब केश रोम जिसमें वृक्ष समान ऐसी त्वचा उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥ बाहर भीतर पवनमें प्रवेश गुण वारि त्वचासे स्पर्शका ज्ञान हुआ । उसमें सर्व लोकोंके पालन करनेवाले पवन देवने प्रवेश किया ॥ २४ ॥ जब अनेक प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई, तब बल इंद्रिय इन्द्र देवतात्मक सब पदार्थोंके धरने-उठानेके कर्म योग्य दो हाथ बने ॥ २५ ॥ जब इसकी इच्छा हुई कि जहां मेरा मन हो वहां जाऊं तब विष्णु भगवान् जिनके देवता, यज्ञादिकके समिधादिक लाना और अनेक

बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥ २२ ॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताः ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्गिर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः ॥ २३ ॥ तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचा लब्ध गुणो वृतः ॥ स्पर्शं गृह्णत्तदेव त्वग्लोकपालोऽनिलोऽविशत् ॥ २४॥ हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २५ ॥ गतिं जिगीषतः पदौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥ २६ ॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानन्दामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥ २७ ॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥२८॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्यां नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥ २९ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ ३० ॥

कर्म करने तथा तीर्थ गमन योग्य चरण प्रकट हुए ॥ २६ ॥ जब यह इच्छा हुई कि पुत्र हों; विषय आनंद अमृत सुख हो तब शिश्न इंद्रिय, प्रजापति जिसके देवता; काम प्रिय लिंग बनाया जो दोनों कार्य करे ॥ २७ ॥ भोजन करनेके उपरांत जब उसके मल त्यागनेकी इच्छा हुई, तब पायु इंद्रिय मल त्याग कर्म युक्त मित्र देवतात्मक उभयकार्य साधक गुदा हुई ॥ २८ ॥ जब इस देहरूप पुरीसे देहरूप पुरोंमें जानेकी अभिलाषा हुई तब नाभिद्वारकी अपान वायुसे अपान द्वार मृत्यु होना, पृथक् होना दोनों कार्यसाधक नाभि उत्पन्न हुई ॥२९॥ जब अन्न पानी ग्रहण करनेवाली इच्छा हुई तब कोष, कुक्षि, आँतें, नाडियाँ हुईं । नदियाँ-समुद्र-कोष पानीके देवता हुए। तुष्टि-

पुष्टि उनके आश्रयरूप हुई ॥ ३० ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यन्त चिन्तनकी इच्छा हुई तब हृदय हुआ। उस हृदयमें मन चन्द्रमा देवता समेत संकल्प काम इत्यादिक हुए ॥३१॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हाड़; यह सप्तधातु हुईं, सप्त प्राण और यह सप्त धातुयें, भूमि, जल, तेज, वायु, आकाशसे होते हैं ॥३२॥ सब इंद्रियाँ गुणोंसे होती हैं और गुण अहंकारसे होते हैं; मन सब विकासका स्वरूप है, बुद्धि विशेष ज्ञानरूपिणी है ॥ ३३ ॥ यह नारायणका स्थूलरूप मैंने तुमसे कहा, जो पृथ्वी आदि से आठ आवरणसे बाहर व्यापते हैं ॥३४॥ मायासे सूक्ष्मतम अव्यक्त, विशेषण रहित अनादि मध्य अनंत सदा एकरूप वाणी मनसे परे वह परमात्मा है ॥ ३५ ॥ ये दोष गुण निर्गुण

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चन्द्रः संकल्पः काम एवच ॥३१॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमाम्बुवायुभिः ॥३२॥ गुणात्मकानीन्द्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनःसर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३३॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥ ३४ ॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ३५ ॥ अमुनी भगवद्रूप माया ते ह्यनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥३६॥ स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माऽकर्मकः परः ॥३७॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३८ ॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३९ ॥

रूप आदिपुरुष नारायणके मैंने तुमसे वर्णन किये, परंतु इस मायाके रचे विद्वान् लोग दोनोंको ग्रहण नहीं करते ॥ ३६ ॥ भक्तवत्सल ब्रह्मरूपधारी कुछ कर्म नहीं करते, वे परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसे नाम धारण करते और वाच्यरूपसे रूप क्रिया धारण करते हैं ॥ ३७ ॥ जो-जो रूप यशोदानंदन जगतकार्यके अर्थ धरते हैं, वह हम आपसे कहते हैं, कि प्रजापति मनुदेवता ऋषि, पित्रोंके गण, पृथक्-पृथक् सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥३८॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, वानर, उरग, सप्तमातृका, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, विनायक

॥ ३९ ॥ कूष्माण्ड, उन्मादकारी ग्रह, वैताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, रेंगनेवाले जीव, सरीसृप ॥ ४० ॥ स्थावर, जंगम रूप दो प्रकारके जीव और जल, स्थल, आकाशवासी जीव, उत्तम, नीच, कुछ-कुछ दोनों मिले हुए, ये कर्मकी गतियां हैं । ये सब रूप भगवान्‌ने धारण किये ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! सत्त्व, रज, तम इन तीनोंसे देवता मनुष्य नारकी जीव होते हैं ! उनमें भी एक-एक गति तीन-तीन प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ जब एक ओर गुणसे और प्रकारका हो जाता है, तब स्वभाव नष्ट होता है । जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसकी गति भी उसी प्रकार हो जाती है ॥४३॥ वही भगवान् वासुदेव धर्मरूपधारी जगत्‌के धारण करनेवाले इस विश्वमें

कूष्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृपसरीसृपान् ॥ ४० ॥ द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः ॥ कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥४१॥ सत्त्वंरजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यन्ते गतयस्त्रिधा ॥ ४२ ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ यस्य यादृक्स्वभावोऽस्ति तादृक्तस्य गतिर्भवेत् ॥ ४३ ॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान्धर्मरूपधृक् ॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥ ४४ ॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ॥ संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥ ४५ ॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान्भगवत्तमः ॥ नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः ॥ ४६ ॥ नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययाऽऽरोपितं हि तत् ॥ ४७ ॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥ ४८ ॥

तिर्यक् पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर इसको स्थापन कर पुष्ट करते हैं ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त काल अग्निरूप, रुद्रान्तर्यामी ईश्वर जिसमें यह सब रचा हुआ है । इस संसारका कालसे संहार किया करते हैं। जैसे मेघके समूहको पवन उड़ा देता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे भगवान् भक्त—वश्यका वर्णन किया, इस भावके विना और प्रकारसे बड़े-बड़े विवेकी लोग भी उन्हें नहीं देख सकते ॥ ४६ ॥ इन परमेश्वरको जन्मादिके और कर्मकर्तापनके भाव मायासे होते हैं ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्माका कल्प-विकल्पसहित कहा । जहां साधारण विधि है, जिसमें प्राकृत

वैकृत सर्ग होते हैं ॥४८॥ परिमाण, कल्प, लक्षण, विग्रह, स्थूल, सूक्ष्म कालको तृतीयस्कन्धमें कहेंगे। अब पाद्मकल्प सम्पूर्णतासे कहते हैं, वह सुनो ॥ ४९ ॥ शौनकजी बोले कि, हे सूतजी ! जो तुमने कहा कि हमने भागवतोत्तम विदुरजीको समझा है जो त्यागने अयोग्य बाँधवोंको त्यागकर पृथ्वीके सब तीर्थोंमें विचरते फिरे ॥ ५० ॥ मैत्रेय और विदुरजीका कहा संवाद जिसमें ब्रह्म विद्याका वर्णन था, अथवा मैत्रेयजीने उनसे पूछा तो विदुरजीने उनसे क्या तत्त्वज्ञान कहा ? ॥५१॥ हे सौम्य ! उन विदुरजीकी कथाका वर्णन करो; बाँधवोंके त्यागने

परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४९ ॥ शौनक उवाच ॥ यदाऽऽह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः ॥ चचार तीर्थानिभुवस्त्यक्त्वा बन्धून्सुदुस्त्यजान् ॥५०॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥५१॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बन्धुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५२ ॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५३ ॥ इति श्रीभा० म० द्वि० स्कन्धे पारमहंस्यां वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ इति द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

का कारण और फिर किस प्रकार लौटना हुआ, वह विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥५२॥ सूतजी बोले, कि जो राजा परीक्षितने व्यासनन्दन शुकदेवजीसे पूछा था और भूपालसे जो कुछ भगवान् महामुनि शुकदेवजीने कहा, वह राजाके ही प्रश्नानुसार हम तुमसे कहते हैं, ध्यान लगाकर सुनो ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

परीक्षिती
शुक
विदुर
मैत्रेय
शेष
सनत्कुमार
ब्रह्मा
शेषशायी
लक्ष्मी
स्वायंभु
शतरूपा
कश्यप
दिति
जयविजय
विष्णु
सनत्कुमार
वराह
हिरण्याक्ष
कुर्दमऋ
कपिल

सोरठा–जय गजवदन गणेश, विघ्नकदनप्रद सुख सदन । एकरदन सम वेश, मदनकदनके वर नँदन ॥ १ ॥ जय श्रीनन्दकुमार, ब्रजभूषण दूषण हरण । अपनो दास निहार, दयासिंधु कीजै दया॥२॥दोहा–कह द्वितीय स्कन्ध शुक, पुनि प्रभुपद धर ध्यान । कथा तृतीय स्कन्धकी, लागे करन बखान ॥ ३ ॥ इस तृतीय स्कन्धके, तैंतीसों अध्याय । कहे परीक्षित नृपतिसों, शुकाचार्य समझाय ॥ ४ ॥ तीसरे स्कन्धमें तैंतीस अध्याय हैं, जिनमें सर्गका वर्णन है, ईश्वरकी इच्छासे गुणोंके चलायमान होनेसे ब्रह्माण्डका होना इसका नाम सर्ग है । प्रथम अध्यायमें क्षीण आयु बान्धवोंको त्याग विदुरजी जैसे घरसे चले गये उनका संवाद आदिसे वर्णन करते हैं। पहले भगवान्‌का और ब्रह्माका संवाद संक्षेपमें कहा है; अब फिर शेषजीकी कही भागवत सुन्दर विस्तारसे कहते हैं। दो प्रकारसे श्रीमद्भागवतके सम्प्रदायकी प्रवृत्ति है, एक संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा और विस्तारसे शेषजी, सनत्कुमार; सांख्यायनादि द्वारा हुई। वहां द्वितीय स्कन्धमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादमें संक्षेपसे "अहमेवा-समेवाग्रे" इत्यादि करके चतुः श्लोकी भागवत कही, वही ब्रह्मा नारदके संवादसे दशलक्षणसे कुछ विस्तार सहित कही, वही शेषजीकी कही

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणास संगमः ॥ कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥

हुईको अब अतिविस्तारसे करनेके कारण तृतीयस्कन्धका प्रारम्भ है । पहले चार अध्यायोंमें विदुर-मैत्रेयका सङ्गम, फिर आठ अध्यायोंमें विसर्गसहित सब प्रपञ्च कहा, विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायोंमें वाराह अवतारका वर्णन किया है। एक अध्यायमें विसर्गकी सम्पूर्णता कही है; फिर चार अध्यायोंमें कपिलदेवजीके अवतारकी कथा कही है; इसके पीछे नव अध्यायोंमें कपिलदेवजीका आख्यान किया। इस प्रकार तृतीय स्कन्धकी तैंतीस अध्यायमें प्रवृत्ति है ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! सर्व सम्पदासे पूर्ण गृहको त्याग, वनमें जा विदुरजीने निश्चय कर, भगवान् मैत्रेयजीसे पहले यह चरित्र इस प्रकार पूँछा ॥ १ ॥ सबके ईश्वर षड्गुणऐश्वर्यवान् यह जगन्नाथ श्रीकृष्ण तुम्हारे पांडवोंके मन्त्री हुए और दुर्योधनके गृहको त्याग विदुरको अपना जान उनके घरपर गये ॥२॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने कहा, कि हे समर्थ शुकाचार्य ! भगवान् मैत्रेय और विदुरजीका सत्सङ्ग कहां हुआ ? और किस समय हुआ ? यह विस्तारसे कहिये ॥३॥

हे मुने ! उन शुद्धात्मा विदुरजीका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कुछ थोड़े प्रयोजनका देनेवाला तो न हुआ होगा; वरन् अधिक ही प्रयोजनका साधक होगा; क्योंकि जिसके प्रश्नकी प्रशंसा महात्मा पुरुष करते हैं ॥४॥ सूतजी बोले कि, राजा परीक्षितका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर आत्मज्ञानी प्रसन्न मन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरपाल ! सुनो, जिस समय दुष्ट राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंको पुष्ट किया था; इसलिये अधर्मसे विनष्ट दृष्टि हुई, वह छोटे भाई पांडुके अनाथ पुत्रोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश करवाकर उनको जलानेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिस समय सभामें अपनी पुत्रवधू राजा युधिष्ठिरकी पत्नी द्रौपदी अपने अश्रुजलसे पयोधरोंके कुंकुमको धो रही थी, उसके केशोंको पकड़कर दुःशा-

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं स बहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबधून्प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ॥ ६ ॥ यदा सभायां कुरुदेव देव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥ ७ ॥ द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ॥ न याचतोऽदात् समयेन दायं तमोजुषाणी यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥ ९ ॥ यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥ १० ॥

सन खैंच रहा था। यह पुत्रका कुकर्म देखकर भी धृतराष्ट्रने उसको निवारण नहीं किया ॥७॥ अधर्मसे जुएमें हारे हुए, सीधे, सत्यवादी पाण्डव बारह वर्ष वनमें बस जब घर आये तब पुरोहितको भेजा और अपना राज्य मांगा और महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर, जिनका कोई शत्रु नहीं उनको अधर्मी दुर्योधनसेवी धृतराष्ट्रने भाग देना नहीं स्वीकार किया ॥८॥ जिस समय युधिष्ठिरके भेजे हुए जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब पुरुषोंको अमृततुल्य वचन सभामें सुनाये तब नष्ट पुण्य धृतराष्ट्रने उन वचनोंका कुछ मान न किया ॥९॥ जिस कालमें धृतराष्ट्रका बुलाया हुआ विदुर भवनमें प्रविष्ट होनेपर बड़े भ्राता धृतराष्ट्रने मंत्र (सलाह) के वास्ते पूछा और इसके अनंतर मंत्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ

विदुरने जो जो मंत्र कहे उनको मंत्री सभामें अबतक भी यह विदुरनीति है ऐसे दृष्टान्त देते हैं ॥ १० ॥ जो जो विपत्ति युधिष्ठिरके सहने योग्य न थी, वह-वह भी उसने सही, उस असह्य अपराधके सहनेवाले युधिष्ठिरका अंश तुम दे दो। सब भ्राताओं सहित सर्परूपी भीमसेन क्रोधसे श्वास ले रहा है, जिससे तुम सदा भयभीत रहते हो ॥ ११ ॥ विदुरजी फिर कहने लगे, हे धृतराष्ट्र! तुम भीमसेन और अर्जुनके समान बलवान् नहीं हो और अपने मनमें यह अभिमान मत करो कि मेरे बहुतसे पुत्र हैं; क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि पाडण्वोंके पृष्ठरक्षामें श्रीयदुनायकका हाथ अग्रसर है और उनको श्रीमुकुन्दने निजभावसे ग्रहण किया है और वह मुकुन्द स्वयं भगवान् हैं, जिनके साथ सब देवता और मुनीश्वर हैं, अपनी द्वारिकापुरीमें विद्यमान हैं, कहीं चले नहीं गये हैं, फिर वे द्वारकानाथ यदुवंशीय राजाओंके

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत् त्वमलं बिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुंदो गृहीतवान्स क्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥ १३ ॥ इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥

पूज्य हैं और उनके सङ्ग यदुवंशी भी बलवान् और एक-एकसे गुणनिधान हैं और जिन वसुदेवकुमार वासुदेव भगवान्ने बड़े-बड़े राजाओंको जीतकर स्वाधीन किया, इसलिये सब राजा लोग भी उनके पक्षमें सहायक हैं, इससे केवल अपने पुत्रोंकी धीरता और वीरताका जो अभिमान है, उसको छोड़कर पाण्डवोंको उनका भाग दे दो ॥ १२ ॥ सो यह श्रीकृष्णसे विमुख दुर्योधन विनष्टश्री होकर दोषरूपधारी तुम्हारे घरमें घुसा है, जिसको तुम पुत्रबुद्धिसे पुष्ट करते हो, कृष्णविमुख श्रीनष्ट एक दुर्योधनको कुलकी कुशलताके अर्थशीघ्र त्याग करो, जिससे कुलका विनाश न हो वही अपत्य है ॥१३॥ अत्यन्त शीलवान् विदुरजी उस सभामें ऐसा कह रहे थे कि, इसको सुन दुर्योधनको अत्यन्त कोप बढ़ा, होठ फड़कने लगे और वह लाल-लाल नेत्र कर बोला—इस दुष्टको यहांसे निकालो इसी प्रकार कर्ण, दुःशासन,

शकुनिने भी उनका तिरस्कार किया। उन्होंने कहा था–इस कपटीको यहां किसने बुलाया है; यह दासीपुत्र हमारा पाला हुआ हमारे ही प्रतिकूल शत्रुओंकी कुशल चाहता है, इसलिये इस जीते हुए अमंगलीकको शीघ्र नगरसे निकालो ॥ १४ ॥ चौपाई–खाय हमारी जूंठ जुठाई। अब हमहींसोंकरत खुटाई ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सम्मुख दुर्योधनके वचनबाणसे विद्ध हो कहा कि ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसा ही है, ऐसे मनमें विचार विदुरजी अपने धनुषको द्वारपर रखकर तीर्थयात्राको चल दिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्त

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥ गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाऽऽप्लुतोऽधश्शयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥

विदुरजी हस्तिनापुरसे निकल अपने चरणोंसे हरिके क्षेत्रोंको पवित्र करने चले गये, पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ ब्रह्म, रुद्र आदि अनेक रूप हो आप निवास करते हैं, वहाँ-वहाँ सब क्षेत्रोंमें गये ॥ १७ ॥ पुरोंमें पुण्यदाता जो उपवन उनमें, पर्वतोंमें, कुंजोंमें, सरोवरोंमें, अपङ्क नदियोंमें, ईश्वरके चिह्नोंसे सुन्दर अलंकृत जो-जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्र हैं, उन सबमें अकेले विदुरजी विचरते फिरे ॥ १८ ॥ एकांत वृत्ति, शान्तस्वभाव,

---

१. शंका–यमराजके हृदयमें सदा अपने राज्यकी प्रीति और अनरीति वनी रहती है, वही यमराज विदुरजी हुए तो विदुरजीने यमराज बनकर तीर्थसेवन आदि उत्तम क्रिया क्यों की ? यमराजका वश चले तो दूसरा जीवभी उत्तम कर्म नहीं करने पावे, फिर विदुरने यमराज बनकर यह शुभकर्म क्यों किया ? और मनुष्य जिस योनिमें जन्म लेता है उस योनिकी प्रकृति महाकठिनतासे छूटती है, फिर विदुरजीसे यमकी प्रकृति क्यों छूट गयी ? जो तीर्थयात्रा करने लगे ॥

उत्तर–यह तुम्हारा वचन बहुत सत्य है कि, सब प्राणियोंकी प्रकृति महाकठिनतासे छूटती है, परंतु उसे महादुःखसे छूटनेवाली प्रकृतिको महात्मापुरुषोंकी संगति नीच प्रकृतिको भी उच्च प्रकृति कर देती है। दुष्ट जीवोंको त्रास देनेवाले यमराज हैं, महात्मा पुरुषोंसे वह भी डरते हैं और विदुरजीने तो व्यासजीके अंशसे जन्म लिया था इसलिये यमराज विदुर रूप होकर कर्मोंको त्याग उत्तम क्रिया करने लगे और व्यासजी महाराजकी ही कृपासे विदुरजी भगवानके भक्त हुए

पवित्र आत्मा, सदा सब तीर्थोंमें स्नान करते हैं, पृथ्वी पर शयन करते हैं, शरीरके संस्कार नहीं करते, अवधूत वेषसे रहते हैं, वल्कल वसन पहिन, रूपको छिपाकर, अवधूत वेष बनाकर व्रत करने लगे, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो ॥ १९ ॥ इस भांति भारतवर्षमें विचरते-विचरते बहुत दिन हो गये। उस समय राजा युधिष्ठिर श्रीपुण्डरीकाक्ष कृष्णचन्द्रकी सहायतासे पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करते थे ॥ २० ॥ जैसे बांसोंके बनमें बांसोंके रगड़नेसे अग्नि निकल बांसोंको जलाकर निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रभास क्षेत्रमें अपने सुहृद कौरव पाण्डवोंका विनाश सुना कि, परस्पर ईर्षा करके भस्म हो गये; उनका अत्यन्त शोक किया, फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीके निकट गये ॥ २१ ॥ उस सरस्वतीके निकट एकादश तीर्थ हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिवतीर्थ १, शुक्राचार्यका मन्दिर २, मनुका स्थान ३,

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान् प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥ तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ २१ ॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥ २३ ॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥ स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ॥ आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥

पृथुका भवन ४, अग्निकुण्ड ५, शनिश्चरका चित्र ६, वायुका वासस्थान ७, सुदासराजाकी प्रतिमा ८, गोशाला ९, स्वामिकार्तिकका मंदिर १०, श्राद्धदेवमनुकी सभा है ११, इन सबका विदुरजीने सेवन किया ॥ २२ ॥ और भी ऋषियोंके, देवताओंके बनाये हुए, विष्णुके स्थान वहां पर हैं, जिनमें विष्णुके संपूर्ण अंगकी शोभा करनेवाले आयुधोंमें मुख्य जो सुदर्शनायुधसे चिह्नित शोभायमान अनेकानेक प्रकारके मंदिर हैं, उनके दर्शनसे श्रीकृष्णका स्मरण होता था, वहाँ-वहाँ मज्जन करते फिरते थे ॥ २३ ॥ सुराष्ट्र, ऋद्ध, सौवीर, मत्स्य, कुरु, जांगल इन सब देशोंको यथाक्रम उल्लंघन करके यमुना पुलिनपर आये, वहाँ परम भागवत उद्धवको देखा ॥ २४ ॥ श्रीकुंजविहारीके

अनुचर प्रशांत बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहले विख्यात शिष्य उद्धवको हृदयसे लगा विदुरजी मिले और भगवत्की प्रजा और अपने इष्ट-मित्रोंके कुशलकी विदुरजीने जिज्ञासा की ॥ २५ ॥ और फिर पूछा कि रामकृष्ण कुशल हैं, जिस पुराणपुरुषने अपनी नाभिमेंसे पैदा हुए ब्रह्माजीकी सेवासे प्रसन्न हो यहां अवतार लिया और पृथ्वीका कुशल विधानकर अब इस समय अवकाशसे शूरसेनके गृहमें विराजते हैं ॥ २६ ॥ कुरुके परम सुहृद हमारे भगिनीपति परमपूज्य वसुदेवजी कुशल हैं? जो अति उदार वसुदेवजी अपने जामात्रोंको बहुत धन दे तृप्त कर शूरसेनके समान सदा धन-दान देते रहे हैं ॥ २७ ॥ सब सेनाके सेनापति, यादवाधीश, महावीर प्रद्युम्न कुशल हैं! जिन मदनके

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥ कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ॥ असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥३०॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद् बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥

अवतारको रुक्मिणीने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकार आराधना कर पाया है ॥ २८ ॥ सात्यकी, वृष्णि, भोज, दास, अर्हक, इनके स्वामी उग्रसेन महाराज सुखी हैं? नृपासन आशात्यागी उग्रसेनका कमलनयन भगवानने स्वयं नृपासन त्याग अभिषेक किया ॥ २९ ॥ हे सौम्य! उद्धव, महारथियोंमें अग्रगण्य बृन्दावनविहारीके समान् शीलवान् जैसे पूर्वजन्ममें शैलसुता भवानीने स्वामिकार्तिकको उत्पन्न किया, उसी प्रकार व्रत करके जाम्बवतीने जिन्हें उत्पन्न किया, वे श्रीकृष्णतनय साम्ब अच्छे हैं ॥ ३० ॥ जो गति यतियोंको महादुर्लभ है वह श्रीयदुनायककी सेवासे सहजमें प्राप्त हुई ॥ और जिनको अर्जुनसे धनूरहस्य प्राप्त हुआ वह शान्त रूप सात्यकी सुखी है? ॥३१॥ अत्यन्त बुद्धिमान्

निष्पाप भगवतके शरणागत आठों याम श्रीकृष्णके प्रेमरसमें जो मग्न, सब लज्जाको तज व्रजकी रजमें लोटनेवाले श्वफल्कसुत अक्रूर तो आनंदसे हैं ? ॥ ३२ ॥ देवकनाम भोजकी कन्या, अदितिके समान, सब जगत्के स्वामी आदि ब्रह्म अविनाशी त्रिलोकीनाथ जिनके पुत्र, श्रीकृष्णचन्द्र आन्दकन्दको जिन्होंने गर्भमें इस प्रकार धारण किया जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्तृतको धारण करती है, वह देवकी प्रसन्न हैं ? ॥ ३३ ॥ आपके भगवान् उपासकोंकी कामनाके दाता अनिरुद्धजी तो कुशल हैं? जिनको शब्द शास्त्रके कारण मनोमय अन्तःकरणके चतुर्थ तत्त्ववेद मानते हैं ॥३४॥ हे विद्वज्जन ! अपने आत्मदेव अनन्य वृत्तिसे जो और भगवत्परायण हैं, वे सुखी हैं ? हृदिकादिक सत्यभामाके

कच्चिच्छिवं देवकभोज्यपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥ ३३ ॥ अपिस्विदास्ते भगवन्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥ दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥ ३६ ॥ किंवा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ॥ यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥ ३७ ॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९ ॥

पुत्र और चारुदेष्ण गद आदि, भगवान्के पुत्र प्रसन्न हैं ॥ ३५ ॥ अनुज श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंसे धर्मावतार युधिष्ठिर धर्मके सेतुकी रक्षा करते हैं, जिनकी सभामें विशेष जयकी अनुवृत्ति और सम्राट्पनकी लक्ष्मीसे दुर्योधन तपता हुआ ॥ ३६ ॥ अपराधकारी कुरुओंमें क्रोधी भीमसेन सर्पके सदृश महाघोर श्वास लेनेवाला गदा ग्रहण कर विचित्र मार्गोंमें विचरे–जिस भीमसेनके चरणकी धमक धरती नहीं सहन कर सकती, वह पवनपुत्र भीमसेन प्रसन्न हैं ? ॥ ३७ ॥ महारथी यूथपोंमें यशस्वी शत्रुनाशक अलक्षित जिनके बाणोंसे मायासे ठगे हुए भीलरूप धारण किये हुए भूतनाथ प्रसन्न हुये वह गांडीवधनुषधारी इन्द्रसुत अर्जुन अच्छी तरह हैं? और माद्रीके पुत्रोंको भी तुमने देखा,

जिनको कुंती पुत्रसमान पालन करती है और जिस प्रकार पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार रक्षा की, शत्रु इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड़ अमृत लाये उनके सदृश युद्ध करके जो बरजोरी अपना भाग लेकर विहार करते हैं, वे प्रसन्न हैं ? ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि पाण्डुराजर्षिके विना केवल पुत्रोंकी रक्षाके अर्थ कुन्ती जीवन धारण करती है। एक ही वीर जिन पाण्डुने एक धनुष लेकर अकेले चारों दिशाओंको जीतकर शत्रुओंका विनाश किया ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव ! हमारा ज्येष्ठ बन्धु जो अभिमानके मदमें अन्धा हो रहा था, उसका मैं शोच करता हूं कि वह नरकमें पड़ेगा क्योंकि उनके आश्रित होकर जिससे परलोकमें गये पांडु भ्राताके साथ द्रोह करा अर्थात् पांडुके

अहो पृथाऽपि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन्गतविस्मयोऽत्र ॥ ४२ ॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां च भूमिः ॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो व्युपेक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥ ४३ ॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥ ४४ ॥

पुत्रोंको दुःख दिया और मैं जीवता हुआ सुहृत् भ्राता पुरसे निकाला इसलिये वह नरकमें कैसे नहीं पड़ेगा, मनुष्योंमें अवतार धर नरलीला कर,॥४१॥मनुष्योंके बुद्धिके चलायमान कर्ता, सब संसारके धारक श्रीवृन्दावन–विहारीके प्रसादसे मैं परमपदवीको प्राप्त कर, विषाद–रहित हो सब पृथ्वीपर विचरता फिरा और अपने रूपको ऐसा छिपाया कि किसीने मुझको नहीं पहचाना ॥४२॥ इन तीनों मदोंसे युक्त होकर जो सेनासे सब धरतीको चलायमान करते हैं, उनको वध करनेवाले शरणागतोंके कष्ट हरनेवाले देवकीनन्दनने कौरवोंका अपराध क्षमा किया" ॥ ४३ ॥ अजन्मा ईश्वरका जन्म पाखण्डी और दुष्टोंके नाश करने और उन अकर्ता भगवान्के कर्म पुरुषोंके ग्रहण करनेके अर्थ हैं, नहीं तो गुणोंसे

१ विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः ।

परे जो ईश्वर हैं, उनके विना कर्मके वश होना और ब्रह्मनिष्ठका धारण और देहके योग नहीं है ॥ ४४ ॥ हे सखे ! शरणागत सब लोकपालोंके और अपनी आज्ञामें जो स्थित हैं उनके कारण यादवोंमें जन्म लिया, ऐसे तीर्थरूप वसुदेवकुमार बाँकेविहारी कृष्ण मुरारीकी मनोहर कथा सुनाओ ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–कहौं द्वितीयाध्यायमें, उद्धव-विरह-विलाप । जैसे वर्णो विदुरसे, सकल शोक सन्ताप ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णका स्मरण करानेवाली बातें

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवदे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेहे औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥

भागवत विदुरजीने उद्धवसे पूछीं ! तब श्रीवृन्दावनविहारीके विरहमें उद्धव सब सुधि-बुधि बिसराकर खड़े हो गये और मुखसे कुछ न कह सके* ॥१॥ जिस समय उद्धव पांच वर्षके थे तब बाललीलामें भी श्रीगोविंदके चरणारविंदकी पूजा करते रहते थे और जब प्रातःकाल मैया भोजनको बुलाती तब भी न जाते थे ॥ २ ॥ उद्धवजी उनकी सेवा करते-करते अब वृद्ध हो गये थे; श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलका स्मरण

---

* शंका–सब विष्णुके भक्तोंमें तथा सब ज्ञानियों तथा सब शास्त्रोंमें उद्धवजी बड़ भक्त, कृपा सागर श्रीकृष्णने जिनको अपना परम प्रियतम जानकर ज्ञान दिया, सो ऐसे बड़े ज्ञानी होकर उद्धवजीके मुखसे श्रीकृष्णबलराम आदिक सब यदुवंशियों के कुशल समाचार पूछनेपर मूर्खोंके समान शोक क्यों करने लगे ?

उत्तर–उद्धवजीने विचार किया कि, जो में श्रीकृष्णजीके विरहको सुनकर शोक संताप न करूंगा तो मेरा चरित्र सुनकर कलियुगमें सब प्राणी भगवानका विरह सुनकर कोई भी शोक न करेगा तो सब प्राणियोंको कलियुगमें श्री वैकुण्ठनाथका वैकुण्ठधाम नहीं मिलेगा, इसलिये उद्धवजी परमज्ञानी भी थे और विष्णु भक्त भी थे तो भी भक्तजनोंकी प्रीति बढ़ानेके लिये शोक किया कि, कलिकालके लोगोंको प्रेमसे ही परमधाम प्राप्त होगा ।।

कर जो कुछ जिज्ञासा किया, उसे वर्णन करने लगे ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णके चरणामृत और पूर्ण भक्तिमें अत्यन्त मग्न हो अति सुख पाकर मुहूर्त मात्रको मौन हो गये ॥ ४ ॥ और पुलकायमान हो नेत्र मूंद, शोक तज, प्रेमप्रवाहमें निमग्न सब अर्थ परिपूर्णसी दशा हो गयी ॥५॥ धीरे-धीरे भगवान्के ध्यानसे फिर सन्देहानुसन्धानमें आकर अश्रु निवारण कर उद्धवजी फिर विदुरजीसे बोले ॥६॥ हे विदुरजी ! हमारे नेत्रोंके तारे श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त हो गये और कालरूप अजगरने सब शोभित गृहोंको डस लिया । अब मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूं ॥७॥ यह सब लोक भाग्यहीन हैं और यादव तो सब महाअभागे हैं, प्रारब्धके मन्द हैं, जो आदि पुरुष अविनाशीके निकट वास करते रहे तो भी लोकनाथ विश्वात्माको नहीं पहिचाना, जैसे एक समय सुधाकर किसी शापसे जलनिधिमें मीन होकर रहा, परन्तु किसी जलचरने

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥ ७ ॥ दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ ८ ॥ इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्त्वताः ॥ सात्त्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥ आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥

नहीं जाना कि यह अमृतकी खानि है अथवा जैसे मीन अवतारको जलचरोंने संसार तारक नहीं समझा और कहीं ऐसा भी लिखा है कि, समुद्रमथनसे पहले चन्द्ररूप हरिको संसारतापहारक नहीं माना, इसी प्रकार हमारी गति जानो ॥ ८ ॥ भगवत्–चित्तके ज्ञाता, अति निपुण, एक स्थानमें सदा रहनेवाले यादवोंने यदुनाथ यादवश्रेष्ठ जगन्निवास ईश्वरको अपना मित्र करके माना ॥ ९ ॥ असत्पदार्थके अधीन असुरादिक ईश्वरकी मायामें फँसे हुए थे । उनके वाक्योंसे आत्मस्वरूप हरिमें जिनका चित्त लग गया, ऐसे हमारे सदृश भक्तोंकी बुद्धि नहीं भ्रमती ॥१०॥ तप नहीं किया, अतएव दृष्टि तृप्त नहीं हुई जिसकी ऐसे मनुष्योंको संसारके नेत्रस्वरूप कृष्णचन्द्र अपने मनमोहन

रूपका दर्शन दिखाकर आप अन्तर्धान हो गये ॥११॥ जिन्होंने नरलीलाके योग्य अपनी योगमायाका बल दिखानेको शरीर ग्रहण किया, सो अपनेको विस्मय करनेवाले, अत्यन्त सौभाग्य, ऋद्धिके भण्डार, भूषणके भूषण श्रीभगवान् वासुदेव हैं ॥ १२ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें दृष्टिके आनन्ददायक मदनमोहनकी मनोहर छबि देख तीनों लोकोंने यह माना कि ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णचन्द्रजीके श्रीअंगमें सब चतुराई बिसर गयी, क्योंकि सब अवतारोंके अंग चतुराननके रचे हुए नहीं हैं, आप स्वयंभू हैं ॥ १३ ॥ जिनकी परमसुखदायक प्रेमयुक्त अनुराग रसभरी मुसकान, तिरछी चितवन देख, सुधासम मधुर वाणी सुन, सुन्दर रासविलास देख, दृष्टिसे व बुद्धिसे न जानें जाँय; अपूर्णमनोरथ, श्रीमानवती, ब्रजबाला ऐसी हो गयीं कि, ब्रजविहारीको जाता देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेज दिया, कि

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य चसौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥ १२ ॥ यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाऽग्निः ॥ १५ ॥ मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥ १६ ॥

हमारे प्यारे अकेले जाते हैं और आप अपनी सुधि-बुधि विसार ठगीसी रह गयीं ॥ १४ ॥ भगवान् अपने शान्त-अशान्त रूपोंके मध्य जो अशान्त रूप (दैत्य) हैं उनसे दुखारी दासोंपर दयालु हो देह धार, परअवरके ईश महाअंशसे युक्त अजन्मा ईश्वरने जन्म लिया, जैसे महाभूतरूपमें नित्य वसनेवाली अग्नि काष्ठमेंसे प्रकट होती है, इसी प्रकार अवतार धर सब दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारा ॥ १५ ॥ उद्धवजी बोले—अतर्क्य अगम्यके यह चरित्र समझकर मुझको भी खेद होता है, अजन्मा भी वसुदेवजीके घरमें जन्म ले और ब्रजमें सब घर-घर घूमें, शत्रुओंके भयसे भयभीत रहें, जिन्होंने अनन्त बलधारी होकर भी जरासन्धके भयसे द्वारका बसायी और

मथुरा तजकर वहां रहे ॥ १६ ॥ हे विदुर ! इन बातोंको स्मरणकर करके मेरे चित्तमें व्यथा और हँसी दोनों आती हैं, क्योंकि जब माता-पिताके चरणारविन्दकी वन्दना कर यह बोले कि, हे तात ! हे जननी ! मेरा अपराध क्षमा करो, मुझपर प्रसन्न हो, कंसकी शंकासे आपकी सेवा मुझसे कुछ बन नहीं पड़ी ॥ १७ ॥ जिन्होंने; चलायमान भ्रूविकटरूप यम-धर्मराजसे पृथ्वीका भार उतारा । उनकी चरणारविंदकी रजको कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल सकता है ? ॥ १८ ॥ धर्मराजके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णकी निंदा कर शिशुपालको जो सिद्धि प्राप्त हुई वह आपने देखी । जिस सिद्धिके सुन्दर योगसे योगीजन मोक्षको प्राप्त होते हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदका वियोग कौन सह

दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ॥ ताताम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥ को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ॥ नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वराज्यलक्ष्म्याऽऽप्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥ २१ ॥ तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥ २२ ॥ अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥

सकता है ? ॥ १९ ॥ इसी प्रकार भारतके युद्धमें वीर मनुष्य नेत्रोंके आनंददायक श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस नेत्रोंसे पान करने लगे; अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर भीष्मादिक वीरलोग बेखटके वैकुण्ठको चले गये ॥२०॥ आज श्रीकृष्णके समान कोई बलवान् और उनसे अधिक नहीं है, अपनी राजलक्ष्मीसे सब भोग जिनको प्राप्त हैं और लोकपाल, ब्रह्मादिक, शक्रादिक बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविंदकी चौकीको अपने किरीटके अग्रभागसे स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥ वह प्रभु सुधर्मासभामें राज्यसिंहासनपर बैठे और उग्रसेनसे कहते रहते थे; "हे देव ! आप हमको निरन्तर धारण करो" उनकी यह बात सुनकर हम दासोंको बड़ा विस्मय होता है ॥ २२ ॥ आश्चर्यकी बात है कि महादुष्ट पूतना

राक्षसीने स्तनोंमें कालकूट लगा, मारनेकी इच्छा कर दूध पिलानेके बहाने यशोदानंदनको गोदमें लिया और उसको यशोदा माताके समान मान परम गति दी,ऐसे दीन दयालु परमकृपालु श्रीकृष्ण प्यारेके विना किसकी शरण जायँ ॥ २३ ॥ देखो महाक्रोधसे असुरोंने श्रीकृष्णमें मन लगाया हम उनको परमभागवत मानते हैं, जो संग्राममें गरूड़जीके ऊपर चढ़ अपने सम्मुख आये हुए श्रीकृष्णके दर्शन कर वैकुण्ठको गये ॥२४॥ कंसके बंधनमें वसुदेव देवकीके घर पृथ्वीका भार उतारनेको ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर अवतार धारण किया ॥ २५ ॥ दुष्ट कंसके भयसे वसुदेवजीने नंदके घर ब्रजमें पहुँचाया, वहां एकादश वर्ष अपने तेजको गुप्त करके ब्रजमें वास किया और अनेक प्रकारके चरित्र दिखलाये ॥२६॥ ग्वालबालसमेत गोपाललालने गाय वत्स चराते हुए कालिंदीके कूलपर, कुंजोंमें, वृक्षोंमें, जहां कोकिलादिक पक्षियोंके समूह

मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतन्तम् ॥ ॥ २४ ॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥ २५ ॥ ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्वि बिभ्यता ॥ एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥ २६ ॥ परीतो वत्सपैर्वत्सां श्चारयन् व्याहरद्विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥ २७ ॥ कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥ प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥

मनोहर शब्द करते और नवललितलतिका लहलहा रही थीं उन उपवनोंमें नित्यप्रति विहार करते थे ॥ २७ ॥ मुग्ध तथा बालसिंहकी तरह है देखना जिनका ऐसे श्रीकृष्णचन्द रोते हुए की तरह और हँसते हुए की तरह योग्य बालअवस्थाके सुख व्रजवासियोंको दिखाये । ॥ २८ ॥ जब बांकेविहारी अधिक बड़े हो गये, तब लक्ष्मीका स्थान गोवर्धनके निकट गौ बैलोंको चराते हुए बांसुरी बजा-बजाकर ग्वालबालोंके संग अनेक-अनेक ढंगके रास-रंग इत्यादिक खेल किया करते थे ॥ २९ ॥ उस समय महाबली कंसके भेजे बड़े-बड़े बलशाली दैत्य नाना प्रकारके रूप धरकर व्रजमें आये, उनको भक्तहितकारी बांकेबिहारीने बाल्यक्रीडासे विध्वंस कर वैकुण्ठको भेज दिया,जिस प्रकार बालक

घरुआ बनाकर बिगाड़ देते हैं। फिर भगवानने विष जलपान करनेसे मरे हुए गोप और गायोंको जिलाके, कालीदहमें कूद, कालीय नागको नाथ कर, अपना चरणचिह्न उसके मस्तकपर लगाकर रमणीद्वीपको पहुँचाया और कालिन्दीका जल निर्मल करके वही जल गोप तथा गायोंको पान कराया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवानने नन्दजीसे गौओंकी पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥ ३२ ॥ अपनी प्रतिष्ठाका भंग समझकर इन्द्रने क्रोधयुक्त हो व्रजपर मूसलधार जल बरसाया, तब गोप, ग्वाल, बछड़ोंको दुःखी देख मंगलकी इच्छा कर श्रीव्रजनाथने कंदुकके समान गोवर्धनको उठाकर बायें हाथकी कनिष्ठ अंगुलीपर धारण कर व्रजमण्डलकी रक्षा की ॥ ३३ ॥ शरदशशिकी विमल किरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखको देख मनमोहनने मनमोहिनी मुरलीमें मनोहर गीत गाकर व्रजबालाओंको बुलाकर उनके साथ

विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥ १ ॥ सान्दीपनेः सकृत् प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥

विहार किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुर-श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-कहौं तृतीय अध्यायमें, व्रजको सकल वृत्तान्त । फेर द्वारकाके चरित, वर्णौं आद्योपान्त ॥ उद्धवजी बोले कि, फिर श्रीकृष्णचन्द्र सुखधाम बलराम समेत अक्रूरके संग मधुपुरीमें आये और अपने पिताके कल्याणकी इच्छा कर संकर्षणसहित रंगभूमिमें जाकर ऊँचे मंचपरसे असुरनाथ कंसके केश पकड़ पृथ्वीपर धर पटका और प्राण निकलनेके उपरान्त उसके शवको घसीटते फिरे ॥ १ ॥ फिर सांदीपन गुरुके घर जाकर उनके मुखसे कहे हुए चारों वेद एकबारमें विस्तार सहित पढ़ चौंसठ कला स्मरण की, फिर गुरुके मरे हुए पुत्रोंको पंचजनके

उदरसे लाकर गुरुदक्षिणामें गुरुजीको दे दिये ॥ २ ॥ फिर श्रीमहालक्ष्मीजीके सदृश रूपवती रुक्मिणीजीके विवाहकी इच्छा कर अनेक भूपालोंको साथ ले राजा शिशुपाल व्याहने आया, उसको भगवान् वासुदेव सबके देखते बड़े-बड़े नरेशोंके मध्यसे उन लोगोंके शिरपर पग धरकर रुक्मिणीको इस प्रकार हर लाये, जिस प्रकार पक्षिराजने अमृत हरण किया था ॥ ३ ॥ फिर यदुवीर अवधनगरमें जो सात बैल थे बैलोंको नाथकर स्वयंवरमें सत्या, नग्नजितकी पुत्रीके संग विवाह किया और बैलोंने जिनका मान भंग किया उन अत्याचारी नाग्नजितीके अभिलाषी अज्ञानी, शस्त्रधारी दुष्टोंका आपने शस्त्रसे विध्वंस किया ॥ ४ ॥ जिस सत्यभामा प्रियाके प्रेमनिमित्त संसारी मनुष्योंके

समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥ प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुराच्र्छद् द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषाऽन्धः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतं मृधे स्वं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तः पुरमाविवेश ॥ ६ ॥

सदृश पारिजात समूल उखाड़ लाये और जब सब दलसमेत क्रोधसे अन्धा स्त्रियोंके मध्यमें मर्कट विषयी इन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रसे लड़नेको आया तो क्षणमात्रमें गर्वप्रहारी बांकेबिहारीने उसका गर्व दूर किया ॥ ५ ॥ फिर श्रीवैकुण्ठनाथने संग्राममें बड़े लम्बे भौमासुरका चक्रसे वध किया । उसे गिरा देख उसकी माता पृथ्वीने अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभुसे प्रार्थना की, भूमिकी विनय सुन उसके पौत्र भगदत्तको

---

१. शंका–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, सांदीपन नाम गुरुके पास रहकर श्रीकृष्णजीने मोक्षप्राप्ति होनेकी विद्या सीखी । मोक्ष विद्या प्राप्त होनेपर फिर राग-द्वेष जीवोंसे क्यों किया ?

उत्तर–सांदीपन गुरुसे श्रीकृष्णजीने चौंसठ कलाओंको प्राप्त किया परंतु तीन लोक, चौदह भुवन ब्रह्माके अंशसे प्रकाशमान हो रहे हैं और चौंसठ कला भी उनके अंशसे प्रकाशित हो रही है, ऐसी कोई वस्तु संसारमें नहीं है जो कि ब्रह्माके अंशसे शून्य हो ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान चौंसठ कलाके मिषसे श्रीकृष्णजीने सीखा, तब जिस जीवको जैसी अभिलाषा रही उसके सङ्ग वैसी ही लीला की । फिर राग-द्वेष कहां रहा, इसलिये उद्धवजीने ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेको कहा था ॥

राजतिलक दे उसके भवनमें गये ॥ ६ ॥ वहां भौमासुर द्वारा हरी हुई सोलह हजार भूपालोंकी कन्या श्रीवृन्दावन विहारीकी बांकी छबिदेख शीघ्र उठ अतिहर्षित हो लाज-अनुरागकी चितवनसे मनही-मन विवाहकी अभिलाषा की ॥ ७ ॥ और उन स्त्रियोंके मन्दिरोंमें एक मुहूर्त मात्रमें अपनी मायासे उनके चित्तानुसार हो विवाहयोग्य विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ फिर उन सोलह हजार युवतियोंको द्वारकामें ले जाकर षोडशसहस्र स्थानोंमें एक सङ्ग बसे, तब उन सब रानियोंके गुणोंमें अपने समान दश-दश पुत्रोंको एक-एक स्त्रियोंमें मायाको अनेक प्रकार करनेकी इच्छासे उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ फिर कालयवन, जरासन्ध, शाल्वादिकोंकी सेनाने जब द्वारकाको भेजा तब उनका

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्ष व्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥ ॥ ७ ॥ आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपःस्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरम् ॥ अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥ १० ॥ शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दन्तवक्त्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥ ११ ॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥ १२ ॥ स कर्णदुश्शासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमूर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥ १३ ॥

विध्वंस किया और अपने पूर्वजोंके दिव्य तेजको जागरित किया ॥ १० ॥ फिर शंबरासुर, द्विविदवानर, बाणासुर, मुर, निकुम्भ, बल्वल और दंतवक्रादिक जो बड़े-बड़े बलवान् असुर थे, उनमेंसे किसीको आपने मारा, और किसीको औरोंके हाथोंसे कालकवलित कराया ॥ ११ ॥ इनके पीछे तुम्हारे भ्राताके पुत्रोंकी ओर जो नरेश थे, उनकी सेना आनेसे कुरुक्षेत्रकी भूमि कंपित हुई थी ॥ १२ ॥ कर्ण, दुःशासन, शकुनिके कुत्सित परामर्शसे जिनकी राज्यलक्ष्मी आयु नष्ट हुई। पवनकुमार भीमसेनने घोर युद्ध करके जिसकी जङ्घा तोड़ी, उसको पृथ्वीपर अचेत

पड़ा देख श्रीकृष्ण कुछ प्रसन्न नहीं हुए ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, अर्जुन, भीमसेन जिसमें मूल थे, उन अठारह अक्षौहिणीके न होनेसे क्या लाभ हुआ ? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि असह्य यादव रूप अभी हैं; भूमिपर बड़ा भारी भार तो इन्हींका है ॥ १४ ॥ जब मीठी वारुणीके मदमें मतवाले हो, यादवलोग परस्पर विवाद करें, यही इनके संहार करनेका सहज उपाय है और इनके मरनेका दूसरा उपाय नहीं, क्योंकि और जब हम इस काम को प्रारम्भ करेंगे तो आप ही नष्ट हो सब अन्तर्धान हो जायेंगे ॥ १५ ॥ ऐसे विचार कर भगवानने अपने राज्यको स्थापित कर; श्रेष्ठरीति दरशाकर सुहृदों सहित आनंदित हुए ॥ १६ ॥ साधु अभिमन्युने विराटपुत्री उत्तरामें गर्भ धारण

किंयान्भुवोयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥ १४ ॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म॥१५॥एवं संचिन्त्य भगवान्स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥ उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन्रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥ १८ ॥ भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥ २० ॥ इमं लोकममुं चैव रमयन् सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥

किया, उसको द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करना चाहा था, उस गर्भस्थित बालककी प्रणतपाल दीनदयाल त्रिलोकनाथने रक्षा की, फिर सामर्थ्यवान् जगत्पतिने तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करवाये और महाराज युधिष्ठिर श्रीवासुदेवकी कृपासे भ्राताओं समेत पृथ्वीपर विहार करते रहे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान् विश्वात्माने लोक और वेदके मार्गानुसार द्वारावतीमें वासकर शांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब प्रजाकी शिक्षाके कारण धर्म कर्म किये ॥ १९ ॥ मनोहर मुस्कानकी दृष्टिसे और सुधाको भी निन्दित करनेवाली मधुरवाणीसे लक्ष्मीनिवास शरीरसे सबको आनन्द देते रहे ॥ २० ॥ इस लोक और उस लोकमें निरंतर यादवोंको रमण कराया और सोलह

हजार रमणियोंसे आप रमण करते रहे ॥ २१ ॥ बहुत वर्षतक रमण करते-करते श्रीकृष्णको गृहस्थ आश्रममें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ जो हरि किसीके आधीन नहीं, अपने कार्योंमें स्वतंत्र परमात्माको वैराग्य हुआ, तो जिनके काम पराये अधीन हैं और आप भी जो पराधीन है, उनमें कौन ऐसा योगेश्वर है जो भगवत्का भजन करता हुआ दैवाधीन कार्योंमें प्रीति करेगा ? ॥ २३ ॥ एक समय द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके बालकोंद्वारा खेलमें मुनिकी हँसी करायी, तब भगवदिच्छाके अनुकूल मुनिने उनको महाघोर शाप दिया ॥ २४ ॥ फिर कुछ मास पश्चात् वृष्णि, भोज, अन्धक आदिक प्रसन्न हो रथपर बैठ दैवसे विमोहित हो प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ वहां स्नान कर उसी जलसे

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यां कदाचित् क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥२४॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा ॥ तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूरा प्रणेमुर्भुवि मूर्द्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते म० तृतीय० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तथा विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

पितृ, देव ऋषियोंका तर्पण कर अलंकारयुक्त बहुत दूधवाली गायें ब्राह्मणोंको दीं ॥ २६ ॥ सुवर्ण, चांदी और अनेक प्रकारके रत्न आभूषण, शय्या, वस्त्र, दुशाले, पीताम्बर, मृगचर्म, सवारी, रथ, घोड़े, कन्या और पृथ्वी, जिससे सब वृत्ति चले ऐसा दान विप्रोंको दिया ॥२७॥ फिर जिसमें अनेक रसपूर्ण ऐसा अन्न महिसुरोंको दे भगवत्को समर्पण किया, फिर उन गोब्राह्मण–हितकारी यादवोंने श्रीकृष्ण जीके प्रसन्नतार्थ भूमिमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥२८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां प्रभासक्षेत्रागमवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–इस चतुर्थ अध्यायमें, बन्धुनिधन सुन कान । उद्धव शिक्षासे विदुर, गये मित्रसुत जान ॥ उद्धवजी बोले, कि

ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले भोजन किये, फिर वारुणीपान करनेसे सब यादव वीर ज्ञानशून्य हो गये और परस्पर बुरी-बुरी बातें कर, मर्मस्थानमें वचनबाण एक दूसरेके मारने लगे ॥ १ ॥ उस मदके दोषसे उनके चित्त विषम हो गये, सूर्य अस्त होनेके समय जिस प्रकार बांस घिसकर अग्निके उत्पन्न होनेसे नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही परस्पर वे लड़कर शापाग्निसे नष्ट हो गये ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाके इस प्रभावको देख सरस्वती नदीमें आचमन कर एक वृक्षकी जड़में बैठ गये ॥ ३ ॥ उस समय शरणागतकी पीड़ाके नाशक, अपने वंशके विध्वंस करनेवाले भगवान्‌ने मुझसे कहा कि तुम बदरिकाश्रमको जाओ ॥४॥ यद्यपि उनके अभिप्रायोंको मैं भली प्रकार जानता था, तो भी मैं

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं प्रोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखा॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥

शत्रुविनाशकारी दैत्यारी श्रीवासुदेवजीके पीछे-पीछे गया, क्योंकि श्रीयदुनाथके कोमलचरणोंका वियोग मैं सहन नहीं कर सका ॥ ५ ॥ तब मैं वृन्दावनविहारीके चरणचिह्न खोजता हुआ सरस्वतीके तटपर पहुंचा, देखा तो राधाचितचोर श्रीनिवास स्वतन्त्र अकेले वहां बैठे हैं ॥६॥ श्यामसुन्दर शुद्ध सत्त्वमय शान्त लालनेत्रवाले चारभुजाधारी आनन्दस्वरूप पीताम्बरधारण किये ॥ ७ ॥ दाहिना चरण बायें चरणपर स्थापित किये पीपल पेड़के निकट बैठे, पुष्ट शरीर जिन्होंने सम्पूर्ण विषयोंका त्याग कर दिया ॥ ८ ॥ वहां दैव इच्छासे महाभागवत व्यासजीके सुहृद सखा मैत्रेयजी भी विचरण करते हुए आ निकले ॥ ९ ॥ तब भक्त अनुरागी आनन्द भावसे नीची ग्रीवा किये

भा० तृ०
॥१०॥

मेरे सम्मुख प्रेम हास्यकी दृष्टिसे विश्राम दे आनंदित होकर मुनीश्वरसे श्रीव्रजनाथजी बोले—हे वसुरूप उद्धव ! तुम्हारे मनकी जो गति है, वह मैं भली प्रकार जानता हूँ और तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुमको दूंगा, जो औरोंको प्राप्त नहीं होती, प्रथम विश्वके रचयिता वसुओंके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनासे तुमने मेरा यजन किया था ॥ १० ॥ ११ ॥ हे तात ! मेरी कृपासे यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, इसी जन्ममें तुम मेरे अनुग्रहका फल भोग लो । अब मैं मृत्युलोक त्याग वैकुण्ठको जाता हूँ, इस समय मेरा एकांतमें एकांत भक्तिसे दर्शन करो यही परमानन्द है ॥ १२ ॥ पहले पाद्मकल्पकी आदि सृष्टिमें कमलासन ब्रह्माजीसे मैंने अपनी लीलाका प्रकाशक परम श्रेष्ठ

श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥ स एष भावश्चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां नृलोकान्रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥१२॥ पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पाद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्म-हिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थ-रोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥ १४ ॥ को न्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथा-रिभयात् पलायनम् ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥

ज्ञान कहा था, जिसको महाज्ञानी परम चतुर विद्वानलोग "भागवत" कहते हैं, वही ज्ञान प्रथम मैंने तुमको दिया, अब तुम उस विमल ज्ञानको धारण कर सांसारिक मायामोहसे निर्मुक्त हो मेरा भजन करो ॥१३॥ ऐसे आदरसे जब कृपानिधानने मुझे समझाया, तब मैं आपके अनुग्रहका प्रतिक्षणके लिये पात्र हो गया । ऐसे उसने प्रेमसे रोमाञ्चित; गद्गदवाणी शोकाश्रुओंको बहाते हुए, हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि ॥१४॥ हे ईश! हे प्रभु! यद्यपि इस संसारमें तुम्हारे पदपंकजोंका सेवन करनेवालोंको चारों पदार्थोंमें सब पदार्थ प्राप्त होते हैं तथापि मैं भी आपके चरणकमलका सेवक हूँ, परन्तु मुझको उन पदार्थोंमें किसीकी भी इच्छा नहीं ॥१५॥ जो अघटमान हैं वह कहते हैं

भा० टी०
अ० ४

कि जो चेष्टा न करे अकर्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, शत्रुओंके भयसे भागना, कालकी आत्मा, असंख्यात रमणियोंसे बिहार करना, अपनी आत्मामें सदा रमण करना, ऐसे तुम्हारे अद्भुत चरित्र देखकर इस संसारमें सब विद्वानोंकी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है॥१६॥हे देव ! हे प्रभो ! सब कालमें अखंड, अंतर्यामी, जगतके कारण अजानकी नाईं मुझे निकट बुलाकर मंत्र पूछते थे और मुझको बड़ाई देते थे, इस कारण मेरा मन आपके चरणकमलोंको नहीं छोड़ना चाहता ॥ १७ ॥ अपने आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला संपूर्ण ज्ञान ब्रह्मासे तुमने कहा, हे स्वामिन् ! जो मेरे जानने योग्य हो वह कहो, जिससे अनायास संसारके दुःखसे हम सब तरें ॥१८॥ ऐसे मेरे हृदयकी प्रीति जान श्रीवासु-

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देवा ॥ ॥ १७ ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद् वृजिनं तरेम ॥ १८ ॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः ॥ आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पदौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥

देव भगवान् कमलनयनने आत्म-परम स्थितिका ज्ञान कहा ॥ १९ ॥ तब मैंने उसी प्रकार भगवान् वासुदेवका आराधन किया, उनके चरणामृतके प्रतापसे अपने आप तत्त्व आत्माके ज्ञानका मार्ग मुझको प्राप्त हो गया, तब मैं उनके चरणोंको प्रणाम कर परिक्रमा दे विरहमें आतुर हो यहां आया हूँ ॥ २० ॥ उनके दर्शन प्राप्तिके हर्ष और वियोगकी पीड़ासे खेदित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मंडलको जाऊँगा ॥ २१ ॥ जहाँ नारायणदेव और नर ऋषि सब उपद्रवरहित दुश्चर रूप कल्पपर्यन्त सब लोकके अनुग्रहके कार्य करते थे ॥ २२ ॥

---

१. शंका–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि हे विदुर ! भगवान् मुझको बड़ी सुन्दर अपनी स्थिति बतलाते थे वह भगवान्की बड़ी सुन्दर स्थितिका ठिकाना कहां है ?
उत्तर–भगवान्की बड़ी सुन्दर स्थिति भक्तिमें है वा भक्तजनोंके हृदयमें है, वहीं सदा भगवान् वास करते हैं । भगवान्की बड़ी स्थिति इन्हीं दो स्थानोंमे है, उन्हीं स्थानोंको भगवान्ने उद्धवसे कहा था ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि उद्धवजीके मुखसे अपने सुहृद-बांधवोंका वध सुन बुद्धिमान विदुरजीको शोक-संताप हुआ, पर ज्ञानके प्रकाशसे तुरन्त मिट गया ॥२३॥ श्रीकृष्णके परिवार यदुवंशका विध्वंस सुन, उद्धव महाभागवतसे भगवान्‌के गमनके वृत्तान्तको सुन विश्वासकर विदुरजीने यह कहा ॥ २४ ॥ कि, हे उद्धव ! आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला परम ज्ञान जो योगेश्वर श्रीकृष्णजीने आपसे कहा, वह ज्ञान आप हमसे कहिये ? क्योंकि श्रीकृष्णके उपासक ब्राह्मण लोग अपने दासोंके प्रयोजन साधनेको विचरते हैं, जो कृतार्थ हैं उनको और कुछ सत्य करनेको नहीं है ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि हे विदुरजी ! निश्चय तत्त्वोंकी सुन्दर सिद्धिके ज्ञाता मैत्रेयजी आपको

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुस्सहं वधम् ॥ ज्ञानेनाशमयत् क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ ॥ स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ॥ विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥ २४ ॥ विदुर उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥ ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्तिमे ॥ साक्षाद्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥ स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः ॥ संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन् देहमचिन्तयत् ॥ २९ ॥

ज्ञान सुनायेंगे, जो मनुष्यलोकके त्याग करनेवाले भगवान्‌ने कहा है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, इस प्रकार विदुरजीके साथ मोहनमूर्तिके गुणोंकी कथारूप अमृतसे सब जिनका ताप नष्ट हो गया, तब उद्धवजीने कालिन्दीके पुलिनमें एक रात्रि वास किया, वह रात्रि एक पलके समान व्यतीत हुई ॥२७॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित बोले कि, कृपासिन्धु ! वृष्णि, भोज, महारथी यूथपालोंमें मुख्य-मुख्य जब नष्ट हो गये और ब्राह्मणके शापसे त्रिगुणोंके स्वामी कृष्णपर्यंतने जब मनुष्यके आकारको त्याग दिया, फिर उद्धवजी कैसे बचे रहे, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, शापकी तो कुछ सामर्थ्य नहीं थी, ब्राह्मणके शापका तो एक मिष था, कालानुसार अमोघ वाञ्छावाले

श्रीकृष्णजी अपने कुलका संहार कर शरीर त्याग उस समय चित्तमें यह विचारने लगे ॥२९॥ जो मैं इस लोकसे चला जाऊं तो मेरा यह परम ज्ञान आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवके अतिरिक्त और कोई समझने योग्य नहीं ॥३०॥ उद्धव ज्ञानमें अणुमात्र भी मुझसे न्यून नहीं हैं; सब भांति मेरे ही समान है; क्योंकि इसने गुणोंसे विषयवासनाओंमें फँसकर कभी भी परमेश्वरके अनुरागको नहीं छोड़ा, इससे यह मेरे ज्ञानका लोगोंमें प्रचार करता हुआ यहां ही रहे ॥ ३१ ॥ ऐसे त्रिलोकीनाथ शब्दब्रह्म (वेदों) के कारण श्रीपतिने जब आज्ञा दी तब उद्धवजी बदरिकाश्रममें जाकर चित्तको समाहित कर भगवत्-भजन करने लगे ॥ ३२ ॥ जिन्होंने लीलाके लिये मनुष्य शरीर धारण कर श्लाघनीय कर्म

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ॥ अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥ ३० ॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥ अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥ ३१ ॥ एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैव धीराणां धैर्यवर्धनम् ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥ आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ॥ ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥ कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥ प्रापद्यत स्वस्सरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० विदुरोद्धवसंवादे संपूर्णवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

किये, उन श्रीकृष्णपरमात्माके गुणोंका उद्धवजीके मुखसे विदुरजीने श्रवण किया ॥३३॥ और वैकुण्ठनाथके अनन्तधामको जाना, धैर्यवालोंको धैर्य देता हुआ और अधीर पुरुषोंको अतिदुष्कर जान पड़ा ॥३४॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करते हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी चले गये;तब विरहवश हो विदुरजी क्रंदन करने लगे ॥३५॥ फिर सिद्ध हुए विदुरजी कालिंदीके तटसे वहां गंगाद्वारको गये कि जहां मैत्रेयजी थे॥३६॥इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसंवादे बदरिकागमनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

दोहा–विदुर पंचमाध्यायमें, बूझो जगविस्तार । भयतत्त्व सब सृष्टिको, वरणो मित्रकुमार ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, हे अभिमन्युनन्दन! कुरुवंशभूषण, अच्युतके भावसे शुद्ध गुण, दया, शीतलतासे तृप्त विदुरजी गंभीरज्ञानी हरिद्वारमें मैत्रेयजीके निकट पहुँचे ॥१॥ उनको दंडवत् प्रणाम कर विदुरजी बोले कि, कर्म सब सुखके अर्थ करते हैं, परन्तु न सुख मिला न दुःखका विनाश हुआ, सब जन्म दुःख हीमें व्यतीत हुआ, इसीलिये जो करने योग्य उपाय हो वह बताओ ? क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥ श्रीनारायणसे विमुख प्राचीन कर्मसे अधर्ममें रुचि, अत्यन्त दुःखी जीवोंके ऊपर दया करनेको इस संसारमें परमात्माके भक्त मंगलकारी, परोपकारमें निरत ब्राह्मण विचरते हैं ॥३॥

श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ॥ क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥ विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ॥ विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥ २ ॥ जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य देवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ॥ अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान् येन पुंसाम् ॥ हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥ ४ ॥ करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ॥ मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥ ७ ॥

इस कारण हे साधुवर्य ! सुखका मार्ग कहो, जिससे पुरुषोंके हृदयमें भगवान् वासुदेव स्थित हों और भगवद्भक्तिसे पवित्र हृदयमें अनादि वेद प्रमाण सिद्ध तत्त्वज्ञान दें ॥ ४ ॥ त्रिगुणी मायाके नियन्ता स्वतन्त्र भगवान् अवतार धारण कर जिन कर्मोंको करते हैं, निष्क्रिय होकर जिस प्रकारसे प्रथम इस संसारको रचा, पीछे स्थिरतासे जगत्की वृत्तिका विधान किया ॥ ५ ॥ जैसे फिर अपने हृदय आकाशमें इसको स्थिर करके सब वृत्तियोंसे निवृत्त होकर अन्तःकरणमें सोते हैं, जब फिर सर्जनकाल आता है तब योगीश्वरोंके ईश्वर एक होकर भी बहुतसे कैसे होते हैं ? ॥६॥ ब्राह्मण गो देवताओंकी क्षेमके लिये कल्प-कल्पमें अवतार भेदसे विहारकारी कर्म करते हैं? सुन्दर यशस्वियोंमें मुकुटमणि

श्रीनारायणके चरित्र अमृतके पान करनेसे हमारा चित्त तृप्त नहीं होता ॥७॥ सब लोकोंके नाथोंके अधिपतिने जिन तत्त्वोंके भेदसे लोक और आलोक पर्वतसे बाहर सब लोकपालसहित कल्पना की, जहां सब जीवोंके समूहोंके भेद अधिकारीसे प्रगट करते हैं ॥८॥ हे विप्रवर! जिस प्रकारसे प्रजाके आत्मा कर्मरूप नाम भेद विश्व रचनेवाले स्वतःसिद्ध नारायणने प्रकट किये, वह आप वर्णन कीजिये ? ॥ ९ ॥ हे भगवन्! श्रीकृष्णजीकी कथामृतपानके समूह, जिनके विना मुखमलीन हो रहे हैं, उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रोंके धर्म व्यासजीके मुखसे वारंवार हमने सुने हैं, परन्तु उनके श्रवण करनेसे हमारी तृप्ति नहीं हुई ॥१०॥ आपके यज्ञमें नारदादिकोंने श्रीभगवान्‌के जो यश गाये हैं

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान्सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥ येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृगात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥ ९ ॥ परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यास मुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥ १० ॥ कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ॥ यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखाऽपि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन् नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥ १२ ॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥

ऐसे भगवत् नामसे तृप्ति नहीं हो सकती, जो नाम पुरुषोंकी कानकी नाड़ीमें प्राप्त होकर संसारकी देनेवाली घरमें जो प्रीति है, उनको खण्डन कर पतित और पामरोंको पावन करनेवाली है ॥ ११ ॥ श्रीव्याससुनिकी मोक्ष धर्मके अन्तमें नारायणीय उपाख्यानमें भगवत्‌के गुणोंके कहनेकी इच्छा हुई तब आपके सुहृदसखा व्यासजीने महाभारत कहा, जिस भारतमें संसार सुखके बहानेसे हरिकी कथामें भक्ति लगाई, वह सब बात इतिहास समुच्चयमें भी कही है ॥ १२ ॥ श्रद्धालु लोग नारायणके चरणारविंदोंमें अपना मन लगानेसे आनंदित होते हैं, ऐसे पुरुषोंको बढ़ी हुई भक्ति संसारके सुखोंमें विराग करती है और सब दुःखोंका नाश करती है ॥ १३ ॥

मैं शोच्य नरोंको और शोच्योंके भी शोच्योंको सोचता हूँ, शोच्य उसको जानना चाहिये कि जो राजा लोगोंकी संग्रामादिक मनोरम विषय रस भरी कथा केवल मनमें स्थिर होनेके अर्थ है, और किसी प्रयोजनके अर्थ नहीं ऐसे भारतके तात्पर्यको नहीं जानते, वे शोच्य हैं और जो जानबूझकर भी श्रीभगवान् वासुदेवकी कथासे विमुख हैं, वे शोच्योंके भी शोच्य हैं (क्योंकि काल भगवान्) (वाद जो वाणीका व्यापार, गमन जो देहका व्यापार, स्मरण जो मनका व्यापार, ये तीनों व्यापार जिनके वृथा हैं, अर्थात् वाणी आदिसे पुरुष श्रीनारायणका नाम नहीं लिया, देहसे चलकर प्रधान-प्रधान ईश्वरके धामोंको पांव नहीं दिया और मनसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, वृन्दावनबिहारी, मोरमुकुटधारीका ध्यान नहीं किया) उनकी आयुको क्षीण करता है ॥ १४ ॥ हे मैत्रेयजी ! इसलिये संसारके सुखदायक श्रीव्रजनायककी कथामें सार

तान्छोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ॥ क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥ तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ १५ ॥ सविश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एव भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्तिं वितन्वता लोक आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥ १८ ॥ नतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ॥ गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥ १९ ॥

पवित्रात्मा दीनबन्धु, भक्तवत्सल श्रीनारायणकी कथा कहो ? जैसे पुष्पोंसे निकाल २ मधुको मक्खियाँ लाती हैं, इसी भांति सब वेद शास्त्र पुराणोंका रस निचोड़ कर आप मुझको पान कराओ, जिससे मेरे मनकी तृप्ति हो ॥ १५ ॥ आदिपुरुष अविनाशीने जगत्‌की उत्पत्ति, पाल, नाशके लिये शक्तिसे अवतार लेकर जो चरित्र मनुष्योंसे न हो सकें वह किये, उन चरित्रोंको विस्तार सहित कृपा कर मुझसे कहो ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार मैत्रेयमुनिसे विदुरजीने पूछा, तब मित्रासुत पुरुषोंको मोक्षके लिये उनका अत्यन्त आदर सत्कार कर ॥१७॥ बोले कि हे साधो ! सब संसारके जीवोंपर अनुग्रह कर ईश्वरमें मन लगानेवाली और लोकोंमें कीर्ति बढ़ानेवाली तुमने अति सुन्दर विषयकी जिज्ञासा की ॥ १८ ॥ हे विदुर ! व्यासजीसे उत्पन्न होनेके कारण आपमें यह बात विचित्र नहीं है, तुमने सब प्रकार

भक्तिसे ईश्वरका आश्रय किया है ॥१९॥ मांडव्यऋषिके शापसे सब प्रजाके दंडदाता यमराजहीने विचित्रवीर्य भ्राताके क्षेत्र भुजिष्या दासीमें व्यासजीके वीर्यसे तुम जन्म ले प्रकट हुए हो ॥ २० ॥ भागवत और भगवान्को सदा तुम प्यारे हो, जो कि तुमको ज्ञान उपदेश करनेके लिये परम धामको चलते समयमें भी भगवान्ने मुझे आज्ञा दी ॥२१॥ अब हम तुमसे उत्पत्ति संहार पालनकर्त्ता भगवान्की लीला विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, जो योगमायासे बढ़ी हुई लीला है ॥ २२ ॥ और व्यापक सब जीवोंके स्वामी समर्थ अपनी इच्छानुसार आप अनेक

माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः ॥ भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥ २० ॥ भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशद्भगवान् व्रजन् ॥ २१ ॥ अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः ॥ विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ॥ आत्मेच्छानुगतो वाऽऽत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ॥ मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥ सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥ २५ ॥

मतिसे सबको समीप देखनेवाले एक आदिपुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान् सबसे पहले थे ॥२३॥ उस समयमें यह ईश्वर सर्वद्रष्टा एक सर्वशक्ति जिनकी जागती रहती है, परंतु इस वैभवको कोई देखनेवाला नहीं था, सब शक्तियां अपने आपमें लीन थीं; उस समय सर्वद्रष्टा एक मात्र जिनकी शक्ति जागती है, इस प्रकार ये ईश्वर रहते हैं, उस समय कामना हुई कि हम बहुतरूप होकर अपनेको देखें॥२४॥ हे महाभाग ! तब

---

१. शंका–मैत्रेयजीने विदुरसे कहा हे विदुर ! व्यासके भ्राताका क्षेत्र जो दासी उसमें तुम जन्मे हो, तब व्यासका भ्राता जो शान्तनुराजा तथा सत्यवतीका पुत्र उसका क्षेत्र दासी कैसे हुई ? क्योंकि हम सब शास्त्रोंमें और लोकोंमें कहीं नहीं सुना कि कोई भी क्षत्रिय होकर शूद्रीके साथ अपना पितुःक्षेत्र कहे, इस श्लोकमें प्रथम जो क्षेत्र शब्द है उसका अर्थ वह नहीं किया जायगा, इस श्लोकमें क्षेत्र कहिये धर्मकी रक्षा करनेके लिये दासीके गर्भमें बड़े ज्ञानी जन्म लिये। क्या धर्म नष्ट हुआ जाता था जिसकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया ।

उत्तर–व्यासके छोटे भाई जो चित्रांगद थे उनका वंश नष्ट हुआ जाता था, उनकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया। रक्षा करना यह है कि धृतराष्ट्र अथवा पाण्डुको ज्ञान सिखाना यही रक्षा है ।

सर्वद्रष्टा परमात्माकी कार्यकारणरूपिणी माया महाशक्ति अनुसंधानरूपा हुई, उससे सर्वसमर्थ ईश्वरने सब संसारको रचा ॥ २५ ॥ गुणमयी कालकी शक्तिसे मायामें पुरुषरूप धरके परमेश्वरने वीर्यवान् रूपको धारण किया ॥ २६ ॥ कालप्रेरित अव्यय मायासे महत्तत्त्व प्रकट हुआ; तमोगुणनाशक विज्ञान आत्मा जीवके देहमें स्थित होकर विश्वका प्रकाश किया ॥२७॥ वह जीव, अंश, गुण, काल, आत्मा भगवान्की दृष्टिके सम्मुख इस जगत्को रचनेके कारण जीवात्माने अपनी आत्माको रूपान्तर किया ॥ २८ ॥ जब महत्तत्त्व विकारको

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ विज्ञानात्माऽऽत्मादेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥ २७ ॥ सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥ वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥ ३० ॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥ ३१ ॥

प्राप्त हुआ; तब अहंकार उत्पन्न हुआ; जो कार्य, कारण, कर्ता जीव पंचभूत इंद्रिय, मनोमय होता हुआ ॥२९॥ वह अहंकारवैकारिक, तैजस, तामस भेदसे तीन प्रकारका हुआ। अहंकार विकारको प्राप्त हुआ, तब विकारी अहंकारसे मन हुआ ॥ वैकारिक देवता हुए, उनसे शब्दादि गुण प्रकाशमान हुआ जिससे रज सत्त्वमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं ॥ ३० ॥ तैजस अहंकारसे ज्ञान कर्ममय इंद्रियाँ हुईं और तामस अहंकारसे पञ्चभूत सूक्ष्म आदिका आकाश व्यापकका चिह्न हुआ, "आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ ३१ ॥

१. शंका–मैत्रेयजीने विदुरसे ऐसे वाक्य कहे, कि अपनी मायामें भगवान् वीर्यकी स्थापना करते हुए, तब अपने हृदयमें सब वस्तुओंको स्थापित कर रहे हैं वह भगवान् कभी अपने हृदयसे कभी किसी वस्तुको बाहर नहीं जाने देते तो मायामें कैसे वीर्यको धारण किया ?

उत्तर–त्रिलोकीमें निराधार कोई वस्तु नहीं है, इसलिये भगवान्ने जगत्के आधारका पात्र मायाको बनाकर सृष्टिकी रचना करनेको भगवान्की इच्छा हुई, तब वही इच्छारूप वीर्य मायामें भगवान्ने धारण किया, ऐसे वीर्यका ग्रहण मत करना जैसा कि जीवोंका वीर्य होता है, उस वीर्यकी शंका करनी योग्य नहीं।

कालमायाके अंशयोगसे भगवत्से देखा हुआ आकाशके पीछे स्पर्श हुआ; स्पर्शके विकारसे पवन प्रकट हुआ ॥३२॥ आकाशके अत्यन्त बलसे जब वायु विकारको प्राप्त हुई, तब उसकी मात्रा सहित सब लोकका लोचन प्रकट हुआ ॥३३॥ ईश्वरके देखनेसे पवनसहित ज्योति जब विकारको प्राप्त हुई, तब कालमायाके अंशोंके योगसे रसमय जल उत्पन्न हुआ॥३४॥ ब्रह्मकी इच्छासे ज्योति करके जलसहित कालमायाके अंशोंके योगसे गन्धगुणवाली पृथ्वी हुई॥३५॥हे विदुर ! आकाशादिक पञ्चभूतोंको जो पर अवर हैं, उनके परमसङ्गसे यथाक्रम गुणोंको जानो, आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, तेजका गुण रूप, जलका गुण रस है, परन्तु पृथ्वीसे सब गुण होते हैं ॥३६॥ कालमाया

कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥ अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३ ॥ अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ॥ आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषाऽम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ॥ महीं गन्धगुणामाधात् कालमायांशयोगतः ॥ ३५ ॥ भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् ॥ तेषां परानुसंसर्गान्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ॥ नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ॥ यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥ ३८ ॥ धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥ मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दस्सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ॥ यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥

अंशरूपी विष्णुकी यह सब देवता कला हैं, भांति-भांतिके रूप होनेसे ब्रह्मांड़की रचना करनेमें समर्थ न हुई,तब हाथ जोड़कर सबने परमात्माकी स्तुति की ॥३७॥ सब सुर बोले—हे नाथ ! हे शरणागततापनाशक ! छत्र रूप आपके चरणारविन्दको हम बारंबार नमस्कार करते हैं, आपके चरणकमलके आश्रित हो यतिलोग संसारसमुद्रसे पार हो जाते हैं ॥३८॥ हे धातः ! हे आत्मन् ! हे ईश! हे भगवन् ! तीन पापोंसे दुःखी जीव इस संसारमें सुखको नहीं प्राप्त होते हैं, इस कारण विद्यासहित तुम्हारे चरणोंकी छायाका आश्रय लेते हैं ॥ ३९ ॥ जिन चरणोंसे

भगवती भागीरथी प्रकट हुई जिनका जल पापतापनाशक है, जो नदियोंमें श्रेष्ठ हैं उन श्रीगंगाजीके स्थानरूप आपके चरणकमलकी शरणागत हो ऋषिलोग एकान्तमें बैठकर तुम्हारे चरणकमलके मुखमें वसते हैं और वेद पक्षी होकर तुम्हारे मार्गको खोजते हैं, जैसे अपने घोंसलेसे निकल फिर पक्षी अपने घोंसले में आजाते हैं, उसी प्रकार वेद आपसे उत्पन्न होकर सब स्थानोंमें विचर फिर आपहीमें प्रवेश करते हैं ॥४०॥ जिन पदपंकजको श्रद्धाभक्तिसे शुद्ध हृदयमें धारण कर ज्ञानसे, वैराग्यके बलसे धीर पुरुष आपके चरणकमलकी पीठके निकट प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ हे विश्वनाथ ! विश्वके उत्पत्ति, पालन, संहारके लिये आप अवतार धारण करते हो, तुम्हारे पादारविन्दकी

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधार्य ॥ ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४१ ॥ विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ४२ ॥ यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ॥ ४३ ॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ॥ अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४४ ॥ पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ ४५ ॥

हम सब शरण हैं, आप अपने दासोंको, जो स्मरण करने योग्य हैं, अभयदान दीजिये ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! असतदेह और गेहमें, जिनकी मति लवलीन है कुटिल और कुमति हैं, आपके चरणकमलके भक्तिहीन हैं ऐसे दुराग्रहसे देवपुरीमें वास करते हैं, ऐसे पुरुषोंको तुम दुष्प्राप्य हो, उन तुम्हारे चरणकमलको हम भजते हैं ॥ ४३ ॥ हे उरुगाय ! क्रूर, कुमति, कपटी, खोटे मार्गमें जानेवाली इंद्रियोंसे जिनके मन लवलीन हैं, वे मनुष्य आपके चरणारविंद सेवनके विलासकी शोभाको नहीं देखते ॥४४॥ हे देव ! आपके कथामृतका पान करनेसे और आपके चरणोंमें अत्यन्त अधिक प्रेम करनेसे विशाल अन्तःकरणवाले वैराग्यके सार,विज्ञानको प्राप्त होकर,विना ही प्रयास संसारको

तज, श्रीवैकुण्ठधामको चले जाते हैं ॥४५॥ इसी प्रकार और भी आत्मयोग बलसे बली प्रकृतिको जीतकर धीर पुरुष तुममें प्रवेश करते हैं और जो लोग आपके चरणोंकी सेवा नहीं करते उनको परिश्रम होता है। हे आद्यपुरुष ! आपने लोकके रचनेकी इच्छा कर तीन गुणोंसे रचे सो हम सब विरुद्ध स्वभावसे पृथक् हैं, सो आपके विहारसे इस ब्रह्माण्डको आपको समर्पण करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे अज ! जबतक हम आपको उस समयमें भेंट दें, जहां हम सब अन्नको जिस प्रकारसे भक्षण करें, जैसे आपको हमको ये सब लोग निःसन्देह होकर बलि दें, अन्नको पायें, वह कीजिये; यही हमारी प्रार्थना है ॥४८॥ हे प्रभो ! तुम हमारे और देवताओंके सब वंशोंके आद्यपुरुष पुराण अविक्रिय अजन्मा हो, सत्त्वादिगुणकर्मकी कारणरूप शक्ति (माया) में कवि (महत्तत्त्व) रूप वीर्यको स्थापित किया है ॥ ४९ ॥ हे

तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ॥ त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥४६॥ तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म॥सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥ यावद्बलिंतेज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ॥ यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४८॥ त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ॥ त्वं देवशक्त्या गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः॥४९॥ तातो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन्करवाम किं ते॥ त्वं नः स्वचक्षुःपरिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५०॥ इति श्रीभा० म० तृ० स्कन्धे महदादिसर्गे सर्वदेवकृतिस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ॥ प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥

आत्मन् ! हे देव ! उस सत्प्रमुख हम सब महदादि जो अर्थ हुए हैं, हम आपका क्या काम करें ? हे नाथ ! आपके अनुग्रहके पात्र जो हम सब लोग हैं हमको सब संसारके रचनेकी सामर्थ्य, अपनी शक्ति, अपना ज्ञान सब ओरसे कृपा करके दीजिये। दोहा-रचनहेतु ब्रह्माण्डके, हमको उत्पन्न कीन्ह। ज्ञानशक्ति अब देहु प्रभु, हम तुम्हरे आधीन ॥५०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा-प्रभू षष्ठ अध्यायमें, विराट तनुको धार । अधिदैवादिक भेद सब, वर्णों सहित विचार ॥ मैत्रेयजी बोले, इस प्रकारसे अत्यन्त विस्तृत लोकरचनावाली उन अपनी विभिन्न स्थित शक्तियोंकी गतिको जान ईश्वरने प्रवेश

किया ॥ १ ॥ उस समय काल संज्ञा शक्तिको ईश्वरने धारण कर उस तेईस (२३) तत्त्वोंके गणमें एकसंग प्रवेश किया ॥ २ ॥ भगवान् चेष्टारूपसे उस तत्त्वात्मक गणमें प्रवेश कर फिर सुप्तकर्मको बोधन करते अलग-अलग जो सब गण थे उनको एकत्र कर दिया ॥ ३ ॥ ईश्वरकी प्रेरणासे जागकर तेईस तत्त्वोंके गणने अपने अंशोंसे विराट् देहको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ जिसमें ईश्वरने अपने अंशोंसे प्रवेश किया, जिसमें चराचर लोक हैं, ऐसा वह विश्व रचनेवालोंका समूह परस्पर इकट्ठा हो अपनेमें ही चलायमान हुआ ॥ ५ ॥ सुवर्णमय (प्रकाशरूप) वह पुरुष सहस्रवर्षपर्यन्त सब अनुयायी सत्त्वों (जीवों) के साथ ब्रह्माण्डरूप कोषके भीतर निवास करने लगा ॥ ६ ॥

कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तकर्म प्रबोधयन् ॥३॥ प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गण ॥ प्रेरितोऽजनयत् स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥ परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः ॥ चक्षोभान्योऽन्यमासाद्य यस्मिंल्लोकाश्चराचराः ॥५॥ हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥ स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ॥ विबभाजात्मनाऽऽत्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥ ७ ॥ एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मा साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥ १० ॥

देव, कर्म, आत्मा इन तीन शक्तिवाले उस पुरुषने उन विश्व रचनेवालोंका गर्भ अपनी आत्मासे एक-ग्यारह और तीन विभक्तरूपसे किया। देवशक्ति अर्थात् ज्ञानशक्तिसे एक हृदयमें चैतन्यरूपसे विराजमान हैं और कर्मशक्ति जो क्रियाशक्ति, उससे प्राणरूप करके दशरूप होते हैं, आत्मशक्ति अर्थात् भोक्तृशक्तिसे तीन प्रकार होते हैं! इसी प्रकार जान लेना ॥७॥ परमात्माकी आत्माका अंश सब जीवमात्रके अन्तर्यामी यह हैं, यह प्रथम अवतार है, जिससे सब जीवमात्रका जन्म होता है ॥ ८ ॥ अधिभूत, अध्यात्म, अधिदैव, ये तीन प्रकार हैं। विराट्प्राण दश प्रकारका है, एकरूपसे हृदयमें है ॥ ९ ॥ इस प्रकारका स्मरणसे विराट्के विनती करनेपर विश्व रचनेवालोंके ईश्वरने अपने तेजसे इन

महदादिकोंकी वृद्धिके लिये तप किया ॥१०॥ अब उस विराट्के मुखआदिसे जितने स्थान देवताओंके निकले मैं उनका वर्णन करता हूं, तुम ध्यान लगाकर सुनो ॥ ११ ॥ प्रथम विराट्का मुख प्रकट हुआ, उनमें लोकपालक अग्निने प्रवेश किया, जिस अपनी वाणीके अंशसे यह विराट्देह जो कुछ कहनेके योग्य है उसको प्राप्त हुआ। मुख अधिष्ठान है १, वाणी इन्द्रिय है २, अग्नि देवता है ३, वचन विषय है ४ ॥ १२॥ हरिरूप विराट्के तालुसे प्रकट हुआ उसमें लोकपाल वरुणने प्रवेश किया, जिस रसनाके अंशसे इस विराट्देहने रसास्वाद लिया ॥१३॥ उस व्यापकविष्णु विराट्की जो नासिका निकली उसमें अश्विनी कुमारने प्रवेश किया, घ्राणके अंशसे सुगंधिकी सिद्धि हुई ॥ १४ ॥

अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ॥ निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ ॥ तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ॥ वाचा स्वांशो न वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१२॥ निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जीह्वयांशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१३॥ निर्भिन्न अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् ॥ घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतोभवेत्॥१४॥ निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टालोकपालोऽविशद्विभोः ॥ चक्षुषांऽशेन रूपाणां प्रतिपत्तियतो भवेत् ॥ १५ ॥ निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ॥ प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिर्येन प्रपद्यते ॥ १७ ॥ त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥१८॥ मेढ्रंतस्यविनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

विभुके विराट्देहमें दो नेत्र उत्पन्न हुए, तब उसमें लोकपालक सूर्यने प्रवेश किया, तो चक्षुके अंशसे रूपकी सिद्धि हुई ॥१५॥ उस परमात्मा विराट्के देहमें चर्म प्रकट हुआ, उसमें लोकपाल पवनने प्रवेश किया, तब प्राणके अंशसे इसका स्पर्श होने लगा ॥ १६ ॥ फिर विराट्के देहसे कान निकले, तो दिशाओंने अपना स्थान जान उसमें प्रवेश किया, तो श्रोत्रके अंशसे शब्दकी सिद्धि इसको हुई ॥ १७ ॥ फिर हरि विराट्के देहसे त्वचा उत्पन्न हुई, तब उसमें सब औषधियोंने प्रवेश किया, जिनके अंशसे रुवोंमें खुजाहट हुई ॥ १८ ॥ फिर उस भगवान्

विराट्के देहसे लिंग उत्पन्न हुआ, उसमें ब्रह्माने वास किया, तब वीर्यके अंशसे आनंद हुआ ॥ १९ ॥ जब उस आदिपुरुष विराट्के देहसे गुदा उत्पन्न हुई, तब उसमें लोकेश मित्रने प्रवेश किया, जिस वायुके अंशसे मलका त्याग होता है ॥ २० ॥ फिर इनके हाथ निकले, तब उनके (हस्तोंके) स्वामी इन्द्रने उनमें प्रवेश किया, वार्ताके अंश करके निज भुजाओंसे सब वृत्ति यह विराट् देह करने लगा ॥ २१ ॥ फिर चरण पैदा हुए, उनमें सर्व लोकोंके ईश्वर विष्णुने प्रवेश किया, चलने-फिरनेके अंशसे जो प्राप्ति योग्य हो, उसको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ फिर बुद्धि हुई, इसमें वीणापाणि सरस्वतीने प्रवेश किया, तब ज्ञानके अंशसे संकल्प-विकल्प आदि क्रियाओंको प्राप्त हुआ ॥२३॥ जब इस

गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ॥ पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥ हस्तावस्य विनिर्भिन्ना विन्द्रः स्वः पतिराविशत्॥वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते॥२१॥ पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत्॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥ २२ ॥ बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् ॥ बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तियतो भवेत् ॥ २३ ॥ हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ॥ मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ २४ ॥ आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ॥ कर्मणांऽशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥ सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धिष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥ गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥ आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजस्स्वभावेन पणयो ये चताननु ॥ २८ ॥

विराट्के देहसे हृदय हुआ, उसके अधीश निशानाथ चन्द्रमा देवता हुए, उनके अंशसे यह देह संकल्परूप विकारको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ फिर इसको अहंकार प्राप्त हुआ, उसके पति शिवने हृदयमें प्रवेश किया, जिस कर्मके अंशसे सब कार्य करने योग्यकी योग्यताको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ फिर इसके पीछे सत्त्व हुआ तो ब्रह्माजीने उसमें प्रवेश किया; जिस चित्तके अंशसे यह विराट् ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसका शिर और नाभि आकाशमें, पांव पृथ्वीमें, जिसमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं ॥२७॥ अत्यन्त सत्त्वगुण अधिक होनेसे देवताओंने स्वर्गमें वास किया,जो रजोगुणके स्वभावसे यज्ञादिक व्यवहार करने लगे, वे मनुष्य और गौ आदिक पृथ्वीपर प्राप्त हुए ॥ २८ ॥

तीसरे तमोगुणसे भगवान्की नाभिके आश्रयवाले, दोनोंके मध्यमें आकाश हुआ, जहां रुद्रके पार्षदभूत प्रेतगण वसे ॥ २९ ॥ हे राजन्! उस महापुरुषका मुख ब्रह्म (वेद) हुआ, वेदके मुखके कहनेसे सब वर्णोंमें मुख्य ब्राह्मण गुरु हुए ॥३०॥ भुजाओंसे पालनरूप कर्म हुआ उससे क्षत्रिय हुए, उन्होंने चोरादिकोंके उपद्रवसे रक्षा की, इससे ईश्वरांश हुए जिसने जन्मसे वर्णोंकी रक्षा की ॥ ३१ ॥ उनके ऊरुसे कृष्यादिक व्यवहार हुए, उनके लिये संसारके सब व्यवहार करनेवाले वैश्य हुए, जिनसे मनुष्योंकी सब व्यवहार वार्ता हुई ॥ ३२ ॥ शुश्रूषाकी सिद्धिके अर्थ विष्णुके चरणोंसे सेवकवृत्तिवाले शूद्र हुए, जिनकी जीविकासे परमेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥ इन चारों वर्णोंने धर्मसे अपने

तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥ मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥ ३० ॥ बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान्पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥ विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥ वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये ॥ यस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् ॥ श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥ ३४ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥ अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ॥ कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ॥ ३६ ॥ एकान्तलाभं वचसोऽनु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३७ ॥

गुरु हरिका पूजन किया, श्रद्धासे आत्माकी विशुद्धिके लिये सब वृत्ति समेत सब वर्ण हुए ॥३४॥ हे क्षत्तः! दैव कर्म आत्मा रूपी भगवान्की योगमायाका बल कौन वर्णन कर सकता है? ॥ ३५ ॥ हे विदुर! जैसी मेरी बुद्धि है अथवा जैसा मैंने सुना है, वैसा अपनी वाणीको शुद्ध करनेके अर्थ हरिका चरित्र वर्णन करता हूं, क्योंकि यह खोटी वाणी और और वर्णनसे अशुद्ध हो गयी है ॥ ३६ ॥ पुरुषोंके वचनको एकांतमें लाभदायक जिन्हें श्रुतियोंसे विद्वानोंने संग्रह किया है, कथामृतमें जिनका वर्णन है, उन सुन्दर यशस्वियोंके शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र

आनन्दकन्द वृन्दावनविहारीके गुणानुवाद कहते हैं ॥ ३७ ॥ हे विदुरजी ! श्रीनारायणकी महिमाको ब्रह्मादिक योगाभ्याससे निश्चलबुद्धि करके भी सहस्रवर्षके अन्ततक नहीं जान सकते ॥ ३८ ॥ इस कारण भगवान्की माया मायावियोंको भी मोह करनेवाली है, क्योंकि जब सर्व व्यापक श्रीविश्वनाथ आप अपनी मायाकी गतिको नहीं जान सकते, फिर और दूसरोंकी क्या सामर्थ्य है ? ॥ ३९ ॥ जिस ज्ञानके लिये मनसमेत वाणी वर्णन करते-करते अन्त न पाकर उलटी लौट आती है, हम व सब देवता भी जिसको नहीं जान सकते, उस षड्गुणैश्वर्य सम्पत्तिमान् श्रीभगवान्को वारंवार नमस्कार है ॥४०॥ इति श्रीमभा० म० तृ० भाषाटीकायां विराट्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ॥ संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्कया ॥ ३८ ॥ अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ॥ यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥ ३९ ॥ यतोऽप्राप्य निवर्तन्ते वाचश्च-मनसा सह ॥ अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ४० ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० विराड्देहे ईश्वरप्र-वेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामाश्चिक्रीडिषाऽन्यतः ॥ स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥३॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, सुनि सुनि वचन विवेक । बहुरि प्रशंसा कर विदुर, कीन्हे प्रश्न अनेक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए मैत्रेयजीको परमबुद्धिमान् विदुरजी वाणीसे प्रसन्न करके बोले ॥१॥ विदुरजी बोले हे ब्रह्मन् ! स्वरूप, अविकारी, निर्गुण भगवान्की क्रिया और गुण लीलासे भी कैसे होते हैं, उसे कहिये ? ॥ २ ॥ बालकका क्रीडामें उद्यम करना यह काम है और खेल करनेकी इच्छा करनी योग्य है, परन्तु अपने आप तृप्त सदा औरसे निवृत्त ईश्वरको काम और इच्छा कैसे होती है, उसे कहिये ? ॥ ३ ॥

गुणमयी अपनी मायासे इस संसारको रचते हैं, फिर पालन करते हैं, तदुपरान्त संहार करते हैं ॥४॥ देश, काल, अवस्था द्वारा अपनी ओरसे जिसका ज्ञान नष्ट नहीं होता, ऐसे ईश्वर मायासे किस प्रकार संयुक्त होते हैं, वह कहिये! ॥ ५ ॥ भगवान् एक है, सब क्षेत्रमें व्यापक है और जीव भी ब्रह्मरूप ही है तो इस जीवका दुर्भागीपन क्लेश यह कर्मोसे क्यों होता है, उसे कहिये ? ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! हे विभो ! इस अज्ञान सङ्कटमें मेरा मन अत्यन्त खेदको प्राप्त हो रहा है, अतः कृपादृष्टि करके मेरे मनका यह महासंकट तुम दूर करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि तत्त्व जाननेके अभिलाषी विदुरजीने यह वार्ता मैत्रेयजीसे पूछी, तब भगवद्भक्त मैत्रेयजी यह प्रश्न सुनकर मुसकाये ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी

अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यभिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥५॥ भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥ अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥ एतस्मिन्मे मनो विद्वन्खिद्यतेऽज्ञानसंकटे ॥ तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं चोदितः क्षत्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥९॥ यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ॥ प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥१०॥ यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ॥११॥ स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ॥ भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥

बोले, कि यही भगवान्की माया है, जो तर्कसे प्रवृत्त होती है, विमुक्त ईश्वरका कृपण होना, बन्धनमें पड़ना यह तर्कसे होते हैं ॥ ९ ॥ जो कोई पुरुष स्वप्नमें देखे कि मेरा शिर कट गया, शिर छेदनके विना स्वप्नमें साक्षी पुरुषको यह आत्मा उलटापुलटा होना प्रतीत होता है ॥ १० ॥ जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलकी उपाधिसे कम्पायमान दृष्टि आता है, कुछ आकाशमें जो चन्द्रमा स्थित है उसमें कम्पादिक दोष नहीं, इसी प्रकार आत्माका देहादि धर्म सत् नहीं है, परन्तु तदभिमानी द्रष्टा तदंतर्यामी ईश्वरको दीखे हैं, यह केवल मिथ्या है ॥ ११ ॥ देहके गुणोंका आत्मामें अज्ञानकृत आभास निश्चय करके निवृत्तमार्गमें धर्मसे भगवान् वासुदेवकी कृपासे भगवत्की

भक्तियोगसे धीरे-धीरे अर्थात् साधनके अनुसार सब नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि, जैसा साधन करेगा उतने ही कालमें अज्ञान नष्ट होगा। उत्तम साधनसे शीघ्र और निकृष्ट साधनसे विलम्ब ॥ १२ ॥ जब सब इंद्रियें शांत हो जाती हैं तब द्रष्टा आत्मामें सब क्लेश विशेष करके लीन हो जाते हैं, जैसे सोते हुएका सब क्लेश नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार जान लीजिये ॥१३॥ जब श्रीमुरारी भक्तहितकारी के गुणानुवाद सम्पूर्ण कष्टको नष्ट करनेवाले हैं, तो उनके चरणारविन्दके परागकी प्रीति आत्माके लिये लाभकारी हो तो क्या आश्चर्य है ? अर्थात् अवश्य सुखदाता होगी ॥१४॥ विदुरजी बोले हे विभो ! आपके खड्गरूपी वचनोंसे मेरे सब संशय कट गये, परन्तु हे भगवन् !

यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ ॥ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥ विदुर उवाच ॥ संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्रापि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ॥ आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ १७ ॥ अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥ १८ ॥

यह जीव परतन्त्र है और परमात्मा स्वतन्त्र है, इन दोनों बातोंमें मेरा मन फिर दौड़ता है सो कहो ? ॥१५॥ हे ब्रह्मन् ! बहुत सुन्दर बात कही कि श्रीनारायण अपनी मायामें निवास करते हैं, परन्तु यह कुछ सिद्धान्त नहीं है, निर्मूल है; परन्तु बाहरसे विश्वकी यही माया कारण है ॥ १६ ॥ लोकमें जो अत्यन्त मूर्ख हैं, वे सदा सुखी रहते हैं और जो अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, वे भी सदा आनंदित रहते हैं, परन्तु जो न मूर्ख हैं न बुद्धिमान् हैं, वे अधबीचके जीव हैं, अतः वे सदा क्लेश सहते रहते हैं, ॥ १७ ॥ सबमें दिखायी दे, ऐसे संसारमें अर्थके भावको निश्चय

शंका–भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके प्राप्त होनेपर उपाय त्यागकर जिस प्रकारसे ब्रह्माने संसारको रचा उसका विस्तार मैत्रेयजीसे विदुरने पूछा, उससे विदुरजीको क्या फल प्राप्त हुआ ?

उत्तर–योगीजन नित्य भगवान्का ध्यान अपने हृदयमें करते हैं, उस समय भगवान्के स्वरूपमें सब चर अचर संसार को देखते हैं, संसारकी रचना विना सुने अपने हृदयमें कैसे ईश्वरको रूपसहित देखेंगे, इसलिये योगीजन संसारकी रचना को बहुत आनंदसे पूछते हैं ॥

कर, तुम्हारे चरणकमलकी सेवासे उस मायाका त्याग करते हैं॥१८॥जिनकी सेवासे सर्वान्तर्यामी मधुद्वेषी भगवान्के चरणोंमें सब कष्टकी विनाश करनेवाली तीव्र प्रीति होती है॥ १९ ॥ थोड़े तप करनेवालोंकी सेवा श्रीहरिके मार्गमें नहीं पहुँचती, क्योंकि देवोंके देव वासुदेवका यश जिसमें नित्य गाया जाय, वह सेवा महादुर्लभ है ॥ २० ॥ क्रमसे विकारसहित महदादिकको रचकर उनसे विराट्‌देह उत्पन्न कर विभुने उसमें प्रवेश किया ॥२१॥ कि जिसको हजारों चरण जंघा भुजाओंवाला आद्यपुरुष कहते हैं, और जिसमें अवकाश सहित ये संपूर्ण लोक स्थित हैं ॥ २२ ॥ इंद्रिय इंद्रियोंके अर्थसहित तीन वृत्तिवाले सब दशविध प्राण जिसमें हुए, तुमसे प्रेरित जिसमें सब वर्ण होते हैं, उनकी

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ॥ तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनुप्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥ २२ ॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥ यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥ प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥ एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च ॥ उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥ २६ ॥ तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ॥ तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ २७ ॥ संप्रदायं कलेर्धर्मं श्रीवैष्णवमतं तथा ॥ वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥२८॥

विभूति हमको सुनाओ ॥२३॥ जिस संसारमें पुत्र, पौत्र, नाती, गोत्रसमेत अनेक-अनेक प्रकारकी आकृतिकी प्रजा होकर जिससे यह विश्वमें विस्तार हुआ वह कहो ॥२४॥ प्रजापतियोंके मध्यमें किस-किसको प्रजापति किया, सर्ग, अनुसर्ग, मनु, मन्वन्तरोंके स्वामी कौन हुए ? वह कहो ॥२५॥ हे मैत्रेयजी ! इनके वंशोंके वंशोंमें जो हुए उनके चरित्र और भूमिके ऊपर-नीचेके जो लोग हैं, उसे हमसे कहो ॥२६॥ उनकी स्थिति, उनके प्रमाण और भूलोकका वर्णन करो । सुर, नर, मुनि, देवता, पशु, पक्षी, सर्पादिक इन सबका वर्णन करो ॥२७॥ सब सम्प्रदाय कहो और

कलियुगके धर्म कहो, श्रीवैष्णवमत और सर्गोंका विभाग, गर्भसे जो प्रकट हुए हैं, स्वेदसे जो उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीसे जिनकी उत्पत्ति है, वह सब कहिये ॥ २८ ॥ गुण, अवतार, संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार श्रीनिवासने जो-जो रचे हैं, उनके उदार चरित्र कहिये ॥ २९ ॥ वर्णाश्रमके विभाग, रूप, शील, स्वभाव, ऋषीश्वरोंके जन्म कर्म आदि वेदके विभाग ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! यज्ञोंका विस्तार, योगका मार्ग, फलकी चाहना त्यागकर कर्म करना और जो सांख्य भागवत नारदपञ्चरात्रतन्त्र है वह कहो ॥ ३१ ॥ पाखण्डका मार्ग, उनका उलटा होना, वर्ण सङ्कर हो जाना, गुणकर्मसे जीवकी जो जो गति होती हैं, उसे कहिये ॥ ३२ ॥ जिसमें किसी प्रकारका विरोध न पड़े ऐसा धर्म, अर्थ, काम,

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ॥ सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥ २९ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ॥ ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥ ३० ॥ यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥ नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥ ३१ ॥ पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३२॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ॥ वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३३॥ श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन्पितॄणां सर्गमेव च ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥ ३४ ॥ दानस्य तपसो वाऽपि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३५॥ येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥ ३६ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ३७ ॥

मोक्ष कहो। दंडनीतिके श्रवण करनेकी वार्ता पृथक्-पृथक् शास्त्रकी विधि कहो ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्राद्धकी विधि, पितरोंकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, कालके अवयवोंकी स्थिति कहो ॥ ३४ ॥ दान, तप, इष्टापूर्तिका फल, परदेशका धर्म जो पुरुष आपत्तिमें धर्म करे, वह कहो ॥ ३५ ॥ हे पापरहित ! धर्मके कारण भगवान् जिससे प्रसन्न होकर कृपा करें वह धर्म कहिये, जिनके ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हों वह भी कहिये ॥ ३६ ॥ हे विद्योत्तम ! अनुरागी शिष्योंको और अपने पुत्रोंको दीनवत्सल, दीनानाथ गुरुजन[1] विना जिज्ञासा की हुई बातको

[1] गुकारस्त्वन्धकारः स्याद्रुकारस्तन्निरोधकः । अन्धकारविनाशित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥ १ ॥ "गु" अन्धकारको कहते हैं, और "रु" उसको कहते हैं जो अन्धकारका बिनाश करे, उसका नाम गुरु है ।

भी कह देते हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! तत्त्वोंकी संख्या कहो, प्रलयमें कौन-कौन उनकी उपासना करता है और कौन उनके पीछे सोता रहता है, वह कहिये ? ॥ ३८ ॥ पुरुषकी स्थिति परमेश्वरका स्वरूप, निगमका ज्ञान, गुरुशिष्यका प्रयोजन कहिये ? हे कृपासिन्धो ! जो महात्माओंने कहे हैं ॥३९॥ उनको निमित्त पुरुषोंको अपने आप ज्ञान, भक्ति, वैराग्य कैसे होता है, वह कहिये परमात्माके जाननेकी इच्छासे जो मैंने यह प्रश्न किया है, आप कृपा करके वर्णन कीजिये ? आप मेरे मित्र हैं और मायाके प्रभावसे मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है ॥४०॥ हे पापरहित ! जीवके अभयदान करनेको सब वेद, यज्ञ, तप, दान एक कलासे भी समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—कौरवोंमें श्रेष्ठ

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन्कउस्विदनुशेरते ॥ ३८ ॥ पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ॥ ३९ ॥ स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया ॥ ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥ ४० ॥ सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपोदानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥ ४२ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० विदुरोक्तप्रश्नविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥ १ ॥

विदुरजीने मुनि प्रधान, पुराणोंमें जिनका विस्तारसहित वर्णन है वह सब मैत्रेयजीसे पूछा, भगवत्की कथामें जिनका अधिक प्रेम, ऐसे विदुर जीको प्रेरणा कर बोले ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां तृतीयस्कन्धे विदुरोक्तब्रह्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, वरणों कथा अनूप । मैत्रेय जिमि विदुरसों, वरणों हरिको रूप ॥ मैत्रेयजी बोले—दोहा—अहै प्रशंसा योग्य यह, कुरुभूपतिका वंश। विदुरभागवत जहँ भये, संतनकुल अवतंस ॥ मैत्रेयजी बोले, कि हमें बहुत आनंद है कि यह पुरु वंश सन्तोंकी सेवा करने योग्य है, जो भगवान्के मंत्री यम तुम धर्मराज हुए, श्रीनारायणकी कीर्तिरूप मालाको क्षण-क्षणमें नवीनसी कर रहे हो ॥ १ ॥

तुच्छ सुखके लिये जो मनुष्य महा दुःखको प्राप्त होते हैं, उनका वह दुःख दूर करनेके अर्थ श्रीमद्भागवतपुराणका प्रवर्तन करता हूँ, जो साक्षात् श्रीभगवान्ने ऋषियोंके सम्मुख वर्णन किया है ॥२॥ आदि संकर्षण भगवान् जो पातालमें विराजमान हैं, जिनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, उन शेषजीसे भगवान् वासुदेवके तत्त्वके जाननेकी इच्छासे सनत्कुमार आदि मुख्य मुनियोंने पूछा ॥३॥ अपने हृदयमें विराजमान उन वासुदेव भगवान्को सर्वोत्कर्षसे पूछनेवाले सनत्कुमार आदिकोंके कृपाके लिये नीचेको शिर किये हुए नयनकमलको किञ्चित खोलकर देखा ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवत सुननेसे सत्यलोकसे पाताललोकमें गंगाद्वारा होकर सनत्कुमारादिक गये। गंगाजलसे उनके केश भीग गये थे,

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ॥ प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २॥ आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥ स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ॥ प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥ ४ ॥ स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ॥ पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः स प्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥ मुहुर्गृणन्तो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ॥ किरीटसाहस्रमणिप्रवेक प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥ प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥ ७ ॥

उन अपनी भीजी जटासमूहोंसे श्रीशेषजीके चरणकमलमें सनकादिकने अपना शिरधरकर नमस्कार किया। जिन चरणारविंदोंको नागराजकन्या अत्यन्त प्रेमसे अनेक-अनेक प्रकारकी भेंटें घर-घर पतिकी चाहनाके लिये आनन्दित होकर पूजन करती हैं ॥ ५ ॥ भगवान् शेषजीके चरित्रोंके माहात्म्यको जो जाननेवाले हैं, वे अनुराग सहित गद्गद वचनोंसे वारंवार उनकी स्तुति करते हैं जिनके सहस्रों किरीटोंके मणि रत्नोंसे अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं। निवृत्तिमार्गके धर्म संयुक्त सनत्कुमारके लिये निश्चय कर भगवान् शेषजीने कहा, हे राजन्! वही धर्म सर्वव्रतधारी सांख्यायनजीने सनत्कुमारसे पूछा, तब सनत्कुमारने उनसे कहा ॥ ६ ॥ ७ ॥

परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायनजीको भागवत्की विभूति कहनेकी इच्छा हुई, तब उनके समीप पराशर और बृहस्पतिजी आये, जो हमारे गुरु हैं, उनकी प्रीति जानकर श्री भागवतपुराण सांख्यायनने उनको कह सुनाया ॥ ८ ॥ पुलस्त्यमुनिने पराशरको यह वर दिया कि, तुम पुराणके वक्ता हो,उसे उन्हीं पराशरमुनिने दयालुभावसे आद्यपुराण भागवत पुराण मुझको सुनाया। हे वत्स! दोहा-वर्णन करिहौं सकल विधि, श्रद्धा जानि तुम्हारि। सावधान हो सुनहु अब, हरिकीरति मन धारि ॥ हे विदुरजी! हम श्रद्धालु नित्य सेवा करनेवाले आपसे भागवत पुराण कहते हैं ॥ ९ ॥ जब महाप्रलयमें विश्व नष्ट हो गया, उस समय चिच्छक्तिको त्याग, नेत्र मूंद, शेषशय्यापर शयन कर, केवल एक

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥८॥ प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ॥ सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥ उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ्न्यमीलयत् ॥ अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥ सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ॥ उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ॥ कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥ १२ ॥

श्रीविश्वनाथ सावकाश प्राप्त कर अपनी आत्माकी रतिमें चेष्टा रहित होते हुए ॥ १० ॥ शरीरके भीतर भूत सूक्ष्म उनके अर्पित कालात्मिक अपनी शक्तिको प्रेरणा करके आप अपने जलस्थानमें वास करने लगे। जैसे काष्ठमें अग्नि अपने पराक्रमको रोक कर निवास करती है और रगड़नेसे उसी काष्ठसे फिर वही अग्नि प्रकट हो जाती है, इसी प्रकार जान लीजिये ॥११॥ चारों युगोंके सहस्रों वर्षतक उस जलमें सोते रह गये और अपनी प्रेरित काल रूपी शक्तिसे सब कर्म जिनको प्राप्त होते रहे; वे त्रिलोकीनाथ सब लोकोंको अपनेमें लीन देखने लगे ॥१२॥

---

* इस प्रसंगमें इस प्रकारकी कथा है कि पिताको राक्षससे खाया हुआ सुत पराशरजी राक्षसोंके विनाशार्थ यज्ञमें प्रवृत्त हुए, जब वसिष्ठजीके कहनेसे निवृत्त हुए, तब पुलस्त्यमुनिने अपनी सन्तान की रक्षा समझकर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि तुम सब पुराणोंके वक्ता होगे।

सूक्ष्म अर्थमें सब ओरसे जिनकी प्रविष्ट दृष्टि उन ईश्वरके अन्तरका जो कारण था, वह रजोगुणसे सूक्ष्म होकर कालके अनुसार गुणसे चलायमान सूखा, तब नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ कर्मका प्रतिबोधक समय पाकर एक सङ्ग वह सबका कोष एक कमल निकला और आप अत्यन्त अनुपम अपनी कांतिसे विशाल, उस जलके प्रकाशक, तमनाशक, मार्तण्डके समान समस्त ब्रह्माण्डके कारण सूक्ष्मरूप हुए ॥ १४ ॥ संपूर्ण जीव भोग्योंको प्रकाश करनेवाला वह लोकात्मक कमल जिस विष्णु भगवानसे उत्पन्न हुआ था वही विष्णु भगवान् जब उसमें प्रविष्ट हुए तब स्वयं वेदमय विधाता उससे उत्पन्न हुए कि जिनको स्वयंभू कहते हैं ॥ १५ ॥ उस कमलके

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥ स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ॥ स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥ तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ॥ तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥ तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि निवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ॥ उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥ क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सताऽनुभाव्यम् ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्तत्खरनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥ १९ ॥

दलोंपर बैठे-बैठे इधर-उधरको देखा तो लोक दृष्टि न आये, तब आकाशकी ओर नेत्र घुमाये, तब चारों दिशा देखनेको चार मुख प्रकट हुए ॥ १६ ॥ प्रलयकी वायुसे जल कांप रहा था, गंभीर लहरोंसे भँवर पड़ रहे थे। उस जलमें सब लोकका तत्त्व; कमलमें विराजमान आदिदेव ब्रह्माने साक्षात् अपने आपको और कमलको कुछ नहीं जाना ॥ १७ ॥ जो मैं कमलकी पीठके ऊपर बैठा हूं, मैं कौन हूं ? और यह कमल जलमें कहांसे प्रकट हो गया। नीचे तक है कि यहींसे उत्पन्न हुआ है ? जो यहां स्थित है तो इसका उत्पन्न करनेवाला भी कोई होगा ? जिससे यह भावना निश्चय होती है कि नीचे इसकी जड़का आधार कहीं न कहीं अवश्य होगा ॥१८॥ ऐसा विचार कर कमलकी नाल पकड़कर ब्रह्माजी

जलके भीतर चले गये, वह कमलकी नाल विष्णुभगवान्‌की नाभिसे निकली थी कि ब्रह्माजी उसको खोजते ही खोजते जलमें नीचेको चले गये, परन्तु कमलके मूलका ठिकाना नहीं लगा ॥ १९ ॥ हे विदुरजी ! उस निबिड अन्धकारमें अपने रचनेवालेको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब ब्रह्माको बहुत दिन हो गये, तो अजन्मा ईश्वरके कालने देहधारियोंको भय दिया, श्रीविष्णुके सुदर्शनचक्र कालरूपने सबकी आयु क्षीण की । इसका अभिप्राय यह कि सौ वर्ष ब्रह्माको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते हो गये तो भी भेद न मिला कि कमलनाल कहां है ? ॥२०॥ जब मनकामना पूरी न हुई तो

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥ यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥ ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वास निवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥ २१ ॥ कालेन सोऽजः पुरुषायुषाभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥ २२ ॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥ प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः संध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥ २४ ॥

फिर ब्रह्मदेव लौटकर अपने कमलपर आकर बैठे; धीरेसे श्वास जीत सब ओरसे चित्त निवृत्त कर योग साध समाधि लगाकर बैठे ॥२१॥ सौ वर्षके उपरान्त उस योगसाधनसे ब्रह्माको ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो आप अपने हृदयमें प्रकाशित, जो कभी नहीं देखाथा, उनका दर्शन हुआ ॥२२॥ कमलनालवत् गौर विस्तृत शेषजीके फणरूप शय्यापर एक पुरुष अत्यन्त प्रकाशवान् सो रहे हैं, दश हजार फणोंके छत्ररूप मस्तकोंके रत्नोंकी कांतिसे महाप्रलयके अन्धकारको दूर कर रहे हैं ॥ २३ ॥ संध्याकालके मेघवत् पीताम्बर पहिने अनेक सुवर्ण शिखर

१. शंका—मैत्रेयजीने मनुजके समान भगवान्‌का शृंगार वर्णन किया, यह महा अन्याय है क्योंकि त्रिलोकीनाथको मणि, मोती हीरा आदिका आभूषण हुआ तो क्या आश्चर्य है ? जैसे राजाको कोई कहे कि राजा आज अनेक प्रकारका सुन्दर भोजन कर रहे हैं यह बात कहनी बड़ी अयोग्य है, जिनके करोड़ों रुपये घरमें पड़े हैं और ऋद्धि-सिद्धिसे भंडार भर रहे हैं उनको सुन्दर भोजन करना क्या आश्चर्य है ! ऐसे ही त्रिलोकीनाथके आभूषणोंका वर्णन करना इसमें बड़ी शंका है ।

जिसमें किरीट समान रत्नजलधारा, पुष्पोंकी वनमाला, बाँस भुजाके तुल्य, वृक्षचरणवत् जिसमें मरकत शिलामय पर्वतकी शोभाको अपनी सुन्दरतासे तिरस्कार करते हैं, उस पर्वतमें स्थित रत्नादिक होते हैं, बांस भुजातुल्य हैं, वृक्ष पदसमान हैं ॥ २४ ॥ अतिदीर्घ विस्तृत अपना मान करनेवाला, लोकत्रयके संग्रह देहसे विचित्र दिव्य आभरण वस्त्रोंकी शोभा देहका वेष अलंकार किया है ॥ २५ ॥ अपनी-अपनी कामनासे वेदगीतमार्गोंसे पूजते हुए मनुष्योंको नखरूप चन्द्रमाकी किरणोंसे सुन्दर अलग-अलग अंगुलीरूप जिसमें पत्र उन संपूर्ण मनोरथोंके पूर्ण करनेवाले अत्यन्त कोमल कमलसे चरणोंको कुछ ऊपरको उठाकर दिखा रहे थे, ऐसे नारायणको देखा ॥२६॥ लोककी क्लेश-

आयामतो विस्तरतःस्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृताश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम् ॥ ॥ २५ ॥ पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ॥ प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलि चारुपत्रम् ॥ २६ ॥ मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ॥ शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥ २७ ॥ कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृतंमेखलया नितम्बे ॥ हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षस्थलवल्लभेन ॥२८॥ परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ॥ अव्यक्तमूलंभुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्र भोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥

नाशक मधुर मुसकान चारों ओरसे झमकनेवाले कुण्डल कानोंमें झलक रहे हैं, लाल-लाल बिम्बाफलसमान होठोंकी कांति, शुक तुंडसी सुन्दर नाक, भ्रूमुखसे, अपने पूजन करनेवाले पुरुषोंका सम्मान करते हैं ॥ २७ ॥ कदंबके केशरवत् पीले पीताम्बरसे, क्षुद्रघंटिकासे कटिका पश्चाद्भाग सुन्दर अलंकृत है। हे वत्स ! कौस्तुभमणि और भगवान् वासुदेवको अमूल्य हारोंसे श्रीजीका चिह्न भृगुलता वक्षस्थलमें शोभित है ॥२८॥ अमूल्य भुजबन्दोंकी उत्तम-उत्तम मणियोंसे भुजदण्ड सहस्रशाखासम व्याप्त हो रहे हैं, जैसे चन्दनके वृक्ष केयूरादिक तुल्य फल

उत्तर-ज्ञानी पुरुष तो भगवान्‌को त्रिलोकीनाथ जानते हैं परंतु अज्ञानी लोग भगवान्‌को कुछ नहीं जानते सुन्दर पदार्थोंको-भगवान् करके मानते हैं, परंतु अज्ञानियोंको लोभ करनेके लिये मनुष्योंके समान भगवानका शृंगार वर्णन किया है, जिन भगवान्‌के शृंगार सुनकर अज्ञानी जन भी मोहको प्राप्त होंगे और जानेंगे कि ऐसे बड़े लक्ष्मीवान् हैं ऐसा जानकर अज्ञानी भी भगवान्‌की भक्ति करेंगे, धनवान् होनेके लिये फिर धीरे धीरे ज्ञानी हो जायंगे इसलिये मुनीश्वरलोगोंने मनुष्यके आभूषणोंके समान भगवान्‌का शृंगार वर्णन किया ।

पुष्पादिसे व्याप्त होते हैं इसी प्रकार जानो। अप्रकट जिसकी मूल है, सकलभुवनात्मक वृक्षराज, शेषजीके फणोंसे स्कंधादिक शाखा ईश्वर हैं, जैसे चंदन सर्पोंसे वेष्टित होता है, ऐसे महाशेषजीसे परमेश्वर वेष्टित हैं ॥२९॥ जिसमें चर अचरका भवन और भगवान् ही जिसमें पर्वत, शेषजीके बन्धु जिसमें जल, सहस्र किरीट सुवर्ण शृंग समान हैं, कौस्तुभरत्न गर्भमें जिनके ऐसे ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ वेदरूप भ्रमरोंसे शोभावाली अपनी कीर्तिरूप वनमाला कण्ठमें पहने; सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि ये जिसको न जान सकें, त्रिलोकीमें संग्राम करनेको फिरनेवाले, भगवत् प्रधानोंका भी असह्य श्रीहरि हैं ॥ ३१ ॥ जिस समय भगवान्को देखा उसी समय नाभिसरोवरमें कमल, अपना देह, प्रलयका जल,

चराचरौको भगवान्महीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ॥ किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥ निवीतमाम्नाय मधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ॥ सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥ ३१ ॥ तर्ह्येव तन्नाभिसरस्सरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे ब्रह्मकृतं सर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥

पवन, आकाश जगत्के विधान करनेवाले ब्रह्माजीने देखा, कि इससे परे लोकके विशेष करके रचनेकी दृष्टि न देखी ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा सब कर्मोंका बीज, रजोगुणसे युक्त प्रजाके रचनेकी इच्छाकी, दृष्टिसे विसर्गमें चित्त किये श्रीभगवान्के गुप्तमार्गमें निवेशितचित्त ब्रह्माजी स्तुति योग्य भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां ब्राह्मणसर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–इस नवमें अध्यायमें, अज तप कियो अपार । देख दुखी वनको भयो, रचे लोक दश चार ॥ ब्रह्माजी बोले–हे नाथ ! अब मुझको आपके स्वरूपका ज्ञान हो जानेसे मैं अपनी कृतार्थताको प्राप्त हुआ और बहुत काल तप करके अब

मैंने आपको जाना, देहधारियोंसे आपकी महिमा नहीं जानी जाती, यही दोष है कि वे आपके चरणकमलमें मन नहीं लगाते । हे भगवन् ! तुमसे परे और कोई शुद्ध नहीं क्योंकि चलायमान होनेसे तुम अनेकरूप प्रकाश करते हो, आप किसीसे भिन्न नहीं, आप सब चराचर भूतोंके स्वामी और अन्तर्यामी हो, ॥ १ ॥ विष्णु भगवान् बोले-हे ब्रह्मन् ! तुम भी भलीभांति मेरे स्वरूपको नहीं जानते हो, क्योंकि यह रूप जो तुमने देखा है, यह भी गुणात्मक है और सत्य तो निर्गुण ब्रह्म ही है; इस शंकाको उठाकर अब समाधान करते हैं, जैसे-ज्ञानरस सूर्यके उदय होनेसे सदा अन्धकार दूर हो जाता है, इसी प्रकार तुम उपासकोंके अनुग्रहके अर्थ शत अवतारोंका एक बीज यह रूप आदिमें

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ॥ आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनाद-हमाविरासम् ॥ २ ॥ नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकम-विश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमङ्गलमङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ॥ तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥ ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि-नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥

आप ग्रहण करते हो, उसी रूपके नाभिकमलसे मैं उत्पन्न हुआ ॥२॥ हे पुरुषोत्तम ! हे आत्मन् ! आनन्दमात्रमें कोई संकल्प-विकल्प न करे, सदा तेजोमय विश्व रचकर एक विश्वसे और दिव्यपञ्चभूत इंद्रियात्मक आपका यह आनंदरूप है, इससे परे और कुछ नहीं यह मैं देखता हूँ इस कारण आपके चरणकमलकी शरण हूँ ॥३॥ हे भुवनमंगल ! आपने ध्यानमें मुझ सरीखे उपासकोंको चौदह भुवनोंका मंगलदायक चित्ता-नंदस्वरूपका दर्शन कराया, उन भगवान् दयानिधानको मेरा वार-वार नमस्कार है, जो नरकके भागी, खोटे प्रसङ्गके करनेवाले हैं और सगुणरूपका तिरस्कार करते हैं, उनको स्वप्नमें भी इस स्वरूपका दर्शन नहीं होता ॥४॥ वेदसे प्राप्त जो तुम्हारे चरणारविन्दकी सुगन्धिको

सूंघते हैं और अत्यन्त भक्तिसे चरण ग्रहण करते हैं, हे नाथ ! आप ऐसे पुरुषोंके हृदयकमलसे निकलकर कभी नहीं जाते हो, अर्थात निरन्तर वास करते हो ॥५॥ जब तक यह लोक, आपके अभयदायक चरणकमलका आश्रय नहीं लेते, तब तक ही धन, स्त्री पुत्रमें भय होता है, सुहृदोंके निमित्त शोक मोह लोभसे अत्यन्त अनादर होता है, खोटा आग्रह सदा दुःखदायक है॥६॥ जिन भाग्यहीनोंकी बुद्धि नष्ट हो गयी और आपकी कथा सब अशुभनाशक यश प्रकाशसे जिनकी इन्द्रियां लोभमें लवलीन हैं ऐसे मनुष्य लेशमात्र कामसुखके लिये उचित-अनुचित कुछ नहीं समझते और जिसमें अपनी कुशल न हो ऐसे कर्म करते हैं ॥ ७ ॥ हे उरुक्रम ! क्षुधा, तृषा, वात, पित्त, कफसे वारंवार

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ॥ तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥ ६ ॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ॥ कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ ७ ॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ॥ कामाग्निनाऽच्युत रुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थाऽपि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥ ९ ॥ अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निश्शयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ॥ दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥ १० ॥

दुःखित, शीत, उष्ण, पवन, वर्षासे पीड़ित, कामाग्नि और आपके अत्यन्तकोपसे प्रजाको दुःखी देखकर मेरा मन कम्पायमान होता है ॥८॥ हे ईश ! जबतक शरीरकी इन्द्रियां अर्थ, माया, बल मैं हूँ, इस प्रकार ईश्वरसे अलग समझते हैं तबतक यह जीव संसारसे मुक्ति नहीं पावेगा और अनेक दुःखदायी व्यर्थ कर्म्म करता रहेगा ॥ ९ ॥ दोहा—दिनभर कर व्यापार बहु, श्रमित करहि निशि सैन । विवश विषय सुख उझकि झुकि, लहत न कबहूँ चैन ॥ दिनके व्यापारसे थकित हैं इंद्रियें जिनकी ऐसे मनुष्योंको रात्रिमें विषय सुखका लेश भी नहीं होता और स्वप्नदर्शनोंसे क्षण क्षणमें निद्रा भी भंग हो जाती है, मनमें अनेक प्रकारके मनोरथ करते हैं, परन्तु सिद्ध एक भी नहीं होता,

सब नष्ट हो जाते हैं, हे देव! तुम्हारे प्रसंगसे विमुख जो ऋषिलोग हैं, वे इस संसारमें बारंबार जन्मते मरते हैं ॥ १० ॥ हे उरगाय! हे नाथ! जिसके भावयोगशोधित हृदयकमलमें तुम वास करते हो, तुम्हारी कथा सुनकर तुम्हारा दर्शन करते हैं, उन पुरुषोंके हृदयमें तुम रहते हो, तो भी जो-जो बुद्धि करके अपनी इच्छासे तुम्हारे भक्त तुम्हारा रूप जैसा-जैसा देखना चाहते हैं, उसी प्रकारका स्वरूप आप अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके धारण करते हो ॥ ११ ॥ जिनके मनमें अनेक-अनेक प्रकारकी कामनाएँ लग रही हैं, उन देवगणोंके रचे उपचार आराधनासे ऐसे प्रसन्न नहीं होते हो, जितना कि जो सन्त जीवमात्रपर दया करते हैं उनपर प्रसन्न होते हो, यह असन्तोंको प्राप्त नहीं

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ॥ यत्सर्वभूतदययाऽसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥ पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ॥ आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियाऽर्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद् ध्रियते न यत्र ॥ १३ ॥ शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥ यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ॥ तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

होता, इसलिये तुम जीवोंके हृदयमें वास करो, सुहृद व्यापक तुम प्रसन्न होओ ॥ १२ ॥ इसलिये पुरुषोंके अनेक कर्म यज्ञादिकसे तप, दान, संयम, नियम, उग्रव्रतसे आपकी आराधना रूप सत्क्रिया, अर्थदायक धर्म जिसने तुमको समर्पण किया, वह कभी नष्ट नहीं होता है ॥१३॥ सत्स्वरूपके तेजसे भेदमोहका नाश करे, ज्ञानबुद्धि जिसमें परेसे परे जगत्की उत्पत्ति,पालन, संहारके निमित्त, नित्य, अद्भुत-अद्भुत लीला करनेवाले ईश्वरको बारम्बार नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनके अवतारोंका कथन देवकीनन्दनादि गुणकथन, सर्वज्ञभक्तवत्सलादि गुणकर्मकथन, गोवर्द्धनका उद्धरण, कंसाराति इत्यादिक गुणकथन प्राणान्तके समय विवश होकर जो पुरुष इनका नाम लेते हैं, अनेक

जन्मके पाप नाश कर तत्काल सत्यस्वरूप ईश्वरको प्राप्त होते हैं, मैं ऐसे ईश्वरके शरणागत हूं ॥ १५ ॥ मैं, शिव, विष्णु (आप) उत्पत्ति, पालन, नाशके हेतु हैं, आप जिसके मूल, ब्रह्मादिक बड़े-बड़े जिसके कन्धे, मरीचिमन्वादिरूप जिसकी अनेक शाखा ऐसा एक वृक्षरूप होकर जो बढ़े, उस भवनद्रुम श्रीभगवान्को नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो लोकविरुद्ध कर्ममें सदा लगे रहते हैं और सुखदायक आपका पूजन रूप कर्म करनेकी आपने आज्ञा दी है, उन कर्मोंमें मन नहीं लगाते हैं। आपने कहा है—"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥" जब तक जिस जनके जीवनकी आशा नष्ट करते हो ऐसे कालरूप आपको बारम्बार नमस्कार

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ॥ भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोह-स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विप-रार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिम-खाय तुभ्यम् ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्त रतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अन्तर्जले हि कशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥

है ॥ १७ ॥ हे प्रभो । मैं भी आपसे डरता हूं, महाप्रलयके स्थानमें सब लोक स्थित हो जिसको नमस्कार करते हैं, ऐसा बहुत वर्षतक तप किया। वह सब यज्ञके अधिष्ठाता आप हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १८ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, देवतादिक योनियोंमें अपनी इच्छासे अपने किये हुए धर्मसेतुओंके पालनकी इच्छासे जो रमण करते हुए विषयसुख नहीं माना, अपने वीर्यको जिसने रोक रक्खा ऐसे परम पुरुष आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १९ ॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र यह पांच प्रकारकी अविद्यारचित सब लोक जिनके उदरमें वास करें वह ईश्वर भयंकर लहरोंकी मालावाले जलमें शेषशय्यापर शयन करनेसे अनुकूल निद्राको प्राप्त हुए, मानों संसारके

जनोंको निद्राका सुख सिखाया ॥ २० ॥ हे स्तुति योग्य ! त्रिलोकीके रचनेका पात्र आपने अपनी कृपासे अपनी नाभिकमलसे मुझको उत्पन्न किया, आपके उदरमें विश्व योगनिद्राके अन्तमें प्रफुल्लित कमलके समान जो आपके नेत्र हैं, ऐसे आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे समस्तसंसारके सुहृद ! एक आत्मातत्त्व ऐश्वर्यके द्वारा सब संसारको सुख देते हो, वही दिव्यदृष्टि मुझको मिले, जिससे पूर्वके समान इस विश्वको रचूँ, आप अपने दासोंके प्यारे ईश्वर हैं ॥ २२ ॥ शरणागतके वरदायक, हे विश्वनायक ! अपनी शक्ति श्रीलक्ष्मीसे सगुण अवतार धारणकर अनेक-अनेक प्रकारकी लीला और विहार संसारके सुखदेनेको करते हो, हे नाथ ! मुझको इस विश्वके रचनेमें

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥ सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाऽहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥ एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥ तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥ २३ ॥ नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्त शक्तेः ॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ॥ उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥ २६ ॥

प्रवृत्त करो, मैं अज्ञानफन्दमें न फसूँ और अपने किए हुए पापोंका मैं त्याग करूँ ऐसी कृपा मेरे ऊपर करो ॥ २३ ॥ अनन्तशक्तिवाले महापुरुषकी नाभिसरोवरसे जलमें विज्ञान शक्तिरूप मैं प्रकट हुआ इस विश्वका विचित्र विस्तारक और मेरी वेदकी अवयवरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न हो जाय ॥ २४ ॥ हे महादयालो ! भगवन् ! अत्यन्त अधिक प्रेमकी मधुर मुसकानसे कमलनयनका प्रकाश कर शीघ्र विश्व विजयके निमित्त मेरे ताप और क्लेशको मनोहरवाणीसे दूर करो; क्योंकि दासोंपर दया करनेकी सदा तुम्हारी वाणी है ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि इस विधिसे जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द मोहनमुकुन्दसे अपना जन्म सुन, तप विद्या समाधिसे जहांतक

मन वचन पहुंचा, वहां तक स्तुति करके थक गये ॥ २६ ॥ तो उस कल्पके उलटे करनेवाले जलसे खेदित ब्रह्माका अभिप्राय भगवान् जानकर ॥ २७ ॥ लोकको स्थितिके विज्ञानमें ब्रह्माका मोह दूर कर गंभीरवाणीसे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे वेदगर्भ ब्रह्मन्! आलस्य मत करो, सृष्टि रचनेमें उद्यम करो, जिस कारण तुमने मेरी प्रार्थना की है, वह शक्ति मैं प्रथम ही तुमको दे चुका हूँ ॥ २९ ॥ हे चतुरा-

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसा तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥ २७ ॥ लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनःपरिखिद्यतः ॥ तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह ॥ तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥ २९ ॥ भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ॥ ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥ ३० ॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥ ३१ ॥ यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ ३२ ॥ यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः ॥ स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन् स्वाराज्यमृच्छति ॥ ३३ ॥

नन! फिर तुम तप करो, तो मेरी विद्यासे विस्तृत सब लोकोंको अपने हृदयमें देखोगे ॥ ३० ॥ हे कमलासन! फिर पीछे आत्मामें, लोकोंमें भक्तिसहित सावधानतासे मुझको व्याप्त देखोगे और लोकको मुझमें देखोगे, जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जैसे काठमें आग स्थित रहती है, इसी भांति जब सब जीवोंमें तुम मुझको देखोगे तो सब पातक और मल तुम्हारे उसी समय जलकर भस्म हो जायँगे ॥ ३२ ॥ भूत, इन्द्रियां,

---

१. शंका–ईश्वरने ब्रह्माके सन्मुख खड़े होकर अपना रूप ब्रह्माको दिखाकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मन्! संसारके रचनेके लिये तुम उपाय करो, तब ईश्वरने अपने स्वरूपसे तथा अपने दर्शनसे उद्यमको बड़ा क्यों माना? जिस उद्यमको करनेके लिये ब्रह्माको आज्ञा दी, क्या ईश्वरका दर्शन ब्रह्माने किया और दूसरे ईश्वरका वचन क्या इन दोनोंसे विना उद्यम ब्रह्मा संसारको नहीं बना सका यह बड़े आश्चर्यकी बात है?

उत्तर–इस संसाररूप समुद्रमें विना उद्यम कोई भी कार्य नहीं बन सकता, क्योंकि यह उद्यम जो है सो नारायणका शरीर है, नारायणके दर्शनसे अथवा वचनसे बड़ा नहीं है, परंतु संसारमें उद्यम ही सुखकी खानि है, इसलिये ब्रह्मासे नारायणने उद्यमकी बड़ाई करके उद्यम करनेके लिये ब्रह्मासे कहा ॥

अन्तःकरण गुणसे रहित आत्माको मेरे स्वरूपसे जब युक्त देखोगे तब अपने राज्यको प्राप्त होगे ॥३३॥ अनेक-अनेक कर्मोंको विस्तार कर बहुत प्रजा रचनेवाली तुम्हारी आत्मा नहीं फँसेगी, यह मेरी ही कृपा है जिससे तुम अत्यन्त वृद्ध हो गये हो ॥३४॥ हे आद्यऋषे ! तुमको यह पापी रजोगुण नहीं व्यापेगा, क्योंकि प्रजा रचनेके समय तुमने अपना मन मुझमें लगाया है ॥ ३५ ॥ देहधारियोंको मेरा जानना बहुत दुर्लभ है, नहीं जाना जाता; तुमने मुझको जान लिया । अब भूत, इन्द्रिय, गुण, आत्मासे जो तुमने मुझको माना वह ठीक है ॥ ३६ ॥ कमलकी नालके द्वारा जलमें कमलकी जड़ ढूँढ़ने और मेरे जाननेकी अभिलाषा की, तब मैंने अपना रूप तुम्हारे हृदयमें प्रकट किया ॥ ३७ ॥

नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ॥ नात्माऽवसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥ ३४ ॥ ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥ यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥ ३५ ॥ ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥ ३६ ॥ तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयांकितम् ॥ यद्वातपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥ यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ य एतेन पुमान् नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥ पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥ ४१ ॥ अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ ४२ ॥

हे ब्रह्मन् ! मेरी कथाको उदय करनेवाली जो तुमने मेरी स्तुति की और जो तपमें तुम्हारी निष्ठा है, यह सब मेरी ही कृपा है ॥ ३८ ॥ हे अज ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं, तुम्हारा कल्याण हो, लोकोंकी विजयके मनोरथसे गुणमय मेरी प्रार्थना की और मुझे निर्गुण वर्णन किया ॥३९॥ जो मनुष्य इस प्रकार स्तुति कर स्तोत्रोंसे मेरा भजन करते हैं, उनसे मैं सब प्रकार प्रसन्न हो कामवर देता हूँ ॥४०॥ कुआँ, बावड़ी बनानेसे, जप, तप, दान, धर्म, कर्म करनेसे, योग, यज्ञ समाधिके लगानेसे मनुष्योंका यह सिद्धांत है कि परमात्मामें भी हमारी प्रीति हो यह तत्त्ववेताओंका मत है ॥ ४१ ॥ मैं सबकी आत्मा सब आत्माओंका पोषण करनेवाला

प्यारोंका प्यारा हूँ, इसलिये मुझे प्रीति करे, क्योंकि मुझसे प्रीति करनेसे वह देह आदि सब प्रिय होते हैं ॥ ४२ ॥ सब वेदमय मेरी आत्मा तुम हो, मैं ही तुम्हारा आदिकारण हूं, जो प्रथम मुझमें लीन है, जैसा जगत् प्रथम था वैसा ही अब रचना चाहिये ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि प्रधान पुरुष ईश्वर जगत्के रचयिता ब्रह्मा को इस भांति अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हो गये ॥ ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदन्तर्धानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–प्रश्न दशम अध्यायमें,

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ॥ प्रजाःसृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० तृ० विदुरमैत्रेयसंवादे ब्रह्मणो भगवद्दर्शनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥ विदुर उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥ ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान् वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संचोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्ष शतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः॥४॥

कीन्हे विदुर अनेक । प्रकट किये दश सर्ग अज, सो वरणौं इक एक ॥ विदुरजी बोले–हे मैत्रेय ! जब भगवान् वासुदेव अंतर्धान हो गये, तब लोकपितामह ब्रह्माजीने दैहिकी और मानसी कितनी प्रजा रची ? ॥ १ ॥ हे बहुवित्तम ! भगवन् ! जो-जो बातें मैंने आपसे पूछीं उनको प्रथमसे लेकर अबतक वर्णन करें जिससे हमारे सब संशय मिट जायँ ॥ २ ॥ सूतजी बोले–हे शौनक ! विदुरजीने मैत्रेयजीसे यह प्रश्न किये तब अतिप्रसन्न हो जो हृदयमें स्थित प्रश्न थे उनके प्रकाश करनेकी इच्छा की ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्माजीने परमेश्वरमें

---

१. शंका–विदुरजीने मैत्रेयजीसे फिर सृष्टिकी रचना क्यों पूछी ? यह शंका बड़ी भारी है, कि मुझको उद्धार करनेवाला बुद्धिमान् संसारमें कोई नहीं है ?

उत्तर–जैसे मणिको नष्ट देखकर सर्प दुखी होता है तथा धनको नष्ट देखकर मनुष्य क्लेश मानता है, पुत्रको नष्ट देखकर सब जीव दुःखी होते हैं ऐसे ही विदुरजी भी उद्धवके मुखसे श्रीकृष्णका, यदुवंशियोंका, कौरवपांडवोंका और सब राजाओंका विनाश सुनकर श्रीकृष्णके विरहसे बहुत दुःखी हो गये, विह्वल होनेपर किसी वस्तुकी सुध नहीं रहती इसीसे विदुरको कुछ सुध न रही कि यह प्रश्न पहले हमने किया था, अतः विह्वल होकर सृष्टिकी रचना फिर पूछने लगे ॥

मन लगाकर दिव्य सौ वर्षतक तप किया, जो भगवान् अजन्माने आज्ञा दी थी उसके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥ प्रलयकालके पराक्रमी पवनसे जलकमलको कांपता हुआ ब्रह्माजीने कमलपर बैठे देखा ॥ ५ ॥ उस सयम बढ़े हुए तप आत्मविद्यासे जलसे अत्यन्त जिनका विज्ञानबल था, वह पवनके संग सबको पी गये ॥६॥ जब आकाश तक कमलको स्थित देखा तब विचार किया कि इस कमलसे पहले मैं तीन लोक रचूँगा ॥ ७ ॥ भगवत्की इच्छासे अपने कर्ममें प्रेरित उस कमलपर बैठ कर, एक विश्वको त्रिलोकीरूप कर चतुर्दश भुवनरूप बहुत प्रकारसे भावनाके योग्य विभाग किये ॥ ८ ॥ जीवलोककी रचनाका इतना विशेष है, निष्कामधर्मका फल श्रीब्रह्मा

तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५ ॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ॥ विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ॥ ६ ॥ तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान्प्राग्लीनान्कल्पितास्मीत्यचिन्तयत ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः ॥ एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥ ८ ॥ एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥ विदुर उवाच ॥ यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन्यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥ ११ ॥ विश्वं वैब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ॥ सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥

जीका अवतार है ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अनेक रूपधारी अद्भुतकर्मकारी परमात्माको जैसे तुम कहते हो और उनके कालका लक्षण जैसा है, वैसा हमसे कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, सामान्यसे कालका स्वरूप पहले कहते हैं, अगले अध्यायमें विशेष करके कहेंगे, गुणोंका और से और आकार करना जिसका कोई विशेषण नहीं, एक स्थान पर रहे नहीं, सबका उपादान कारण आप ईश्वरका आत्मा है ऐसे कालको श्रीनारायणने अपनी लीलासे रचा ॥ ११ ॥ निश्चय है कि विश्व ब्रह्मस्वरूप ही है, विष्णुकी मायासे स्थित और गुप्तमूर्ति कालरूप परमात्मासे अलग प्रकाशित है ॥ १२ ॥ जैसा यह विश्व अब है ऐसा ही आगे था

और ऐसा ही पीछे रहेगा; परन्तु संसारके रचनेकी विधि नौ प्रकारकी है, वह एक प्रकृतिसे होती है और एक विकारसे होती है यह दशवाँ सर्ग है ॥ १३ ॥ केवल कालसे सदा प्रलय होता है और संकर्षणकी अग्निरूप द्रव्यसे नैमित्तिक प्रलय होता है अपने-अपने कार्योंके ग्रसनेवाले गुणोंसे प्राकृतिक प्रलय होती है यह तीन प्रकारका प्रलय होता है । प्रथम प्रलय यह है कि महत्तत्त्वका सर्ग गुणोंकी विषमतासे सर्व व्यापक ईश्वरसे होता है ॥ १४ ॥ द्रव्य ज्ञान क्रियाका उदय दूसरा अहंकार है, उनकी मात्रा द्रव्य शक्तिमान् तीसरा भूसर्ग है ॥ १५ ॥ ज्ञान और क्रियाकी आत्मा चौथा इंद्रियोंका सर्ग है, विकारी देवताओंका पांचवां सर्ग मन है ॥ १६ ॥ हे प्रभो हे ! छठा अज्ञानियोंका किया तामस सर्ग है; यह छः प्रकृतियोंके सर्ग हैं ॥ १७ ॥ अब जो विकारीके सर्ग हैं, उसे सुनो—राजससे भी भगवान् हरि पूजनीयकी

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥ चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रिया-त्मकः ॥ वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥१७॥ रजोभाजो भगवतोलीलेयं हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्यौषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तस्स्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ ॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशतिधा मतः ॥ अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥

यह लीला है, मुख्य सर्ग सात हैं, और छः प्रकारकी स्थावरोंकी रचना है ॥ १८ ॥ वे छः प्रकारके सर्ग ये हैं, उनका वर्णन करते हैं—जो विना फूलके फलते हैं वह वनस्पति हैं; जिनका फल अंतमें पकता है वह ओषधी हैं; सहारेसे बढ़े वह वेल हैं, त्वक्सार वेणु आदि हैं, आश्रय बिना बढ़े वह वीरुध; पहले फूल आकर पीछे फल लगें वे द्रुम हैं, जिनका आहार संचार ऊपरसे हो वे तामसी हैं, चैतन्य गुप्त हैं, भीतरसे घटने-बढ़नेको जानते हैं इनके घटने बढ़नेका प्रमाण नहीं है अनेक भेद होते हैं ॥ १९ ॥ पशुओंका आठवां सर्ग अट्ठाइस प्रकारका है, कलको क्या होगा ये ज्ञान रहित हैं, आहारादिकका ज्ञानमात्र जानते हैं, नासिकाके स्वरसे जो कुछ अपना इष्ट अर्थ

है वह जान लेते हैं, दीर्घज्ञानशून्य हैं ॥ २० ॥ उनके अट्ठाइस भेद कहते हैं:-गौ आदिसे लेकर ऊंटतक द्विशफ (दोखुरवाले) के नौ हैं-गौ १, बकरा २, भैंसा ३, कृष्णसारमृग ४, लीलगाय ५, शूकर ६, रुरुमृग ७, भेड़ ८ और ऊंट ९ । हे सत्तम ! इन पशुओंके खुर नीचेसे दो चिरे हुए होते हैं ॥ २१ ॥ हे विदुरजी ! खर, अश्व, खच्चर, गौर मृग और चमरगाय, इनके खुर चिरे हुए नहीं होते । अब पंचनखके पशु सुनो ॥ २२ ॥ कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, बघेरा, बिलाव, ससा, सेही, सिंह; बंदर, हाथी, कछुआ, गोह, मगरादिक इन तेरहके पांच नख हैं ॥२३॥ अब पक्षियोंके नाम कहते हैं-कौआ, गीध, बक, शिकरा, अरुणशिखा, मोर, हंस, सारस, चकवाक, श्वेतकाक और उलूक

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान् पशून् ॥२२॥ श्वा शृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ॥ हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ॥ रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ॥ गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ २९ ॥

ये विहंग जातिके हैं ॥ २४ ॥ हे विदुर ! नीचेसे मल निकले, यह नवम सर्ग मनुष्योंका है; राजस अधिक है, कर्मपरायण हैं, दुःखमें सुख मानते हैं ॥ २५ ॥ हे सत्तम ! देवताओंका सर्ग तीन प्रकारका है, वैकारिक जो कहा है, वह कौमार सर्ग दो भांतिका है ॥ २६ ॥ देवसर्ग आठ प्रकारका-है विबुध, पितर, असुर, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण ॥२७॥ भूत, प्रेत, पिशाच और विद्याधर, किन्नरादिक हैं । हे विदुर! विश्वके रचयिता ब्रह्माने दश सर्गभेद किये हैं ॥ २८ ॥ इसके पीछे अब वंशमन्वन्तर कहते हैं, अमोघसंकल्प रजोगुणवाले

ब्रह्माने अपने आत्मासे (अनेक) आत्माकी रचना की ॥ २९ ॥ पूर्णसंकल्प आपहीको आप रचते हैं और सदा शुद्ध चैतन्यस्वरूपी नारायण ही सब आप हो जाते हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां दशविधिसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा-कहौं काल परमाणुके, चिह्न इकादश-माहिं। युग मन्वन्तर कल्प सब, गुप्त रहैं कछु नाहिं ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी! कालके विशेष लक्षण कहते हैं, वह सुनो-सच्चे विशेषणोंका जो अंत जिसका विभाग न हो सके, किसीमें मिले नहीं, सदा रहै जिससे और कोई वस्तु सूक्ष्म न हो, उसे परमाणु जानो, जिन परमाणुओंसे मनुष्यको ऐसा भ्रम होता है कि एक है ॥ १ ॥ सत्य है जो पदार्थ अपने स्वरूपमें स्थित है वह केवल अत्यन्त महाबड़ा है, जिसका कोई विशेषण नहीं निरंतर है ॥ २ ॥ हे सत्तम! सूक्ष्म स्थूलरूपसे ऐसे कालका

सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दशविधसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥ २ ॥ एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ॥ सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥ अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्क रश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥

अनुमान किया है, सुन्दर स्थितिकी व्याप्तिसे विभु भगवान् अव्यक्त हैं, वह मायासे भोगते हैं ॥ ३ ॥ सो कालपरमाणु है, जो परमाणु भावको भोगता है उसको भी अधिक भोगे वह काल अत्यन्त बड़ा है, इनका यह अर्थ है कि ग्रह, नक्षत्र, ताराचक्र इत्यादिसे सूर्यका पर्यटन कहते हैं, यहां सूर्य जितने कालमें परमाणुके देशको उल्लंघन करते हैं उस कालका नाम परमाणु है, जितने कालमें द्वादशराशियों पर विचरते हैं, वह परममहान् संवत्सर कहलाता है। इस क्रमसे युग मन्वन्तर आदि क्रमसे द्विपरार्द्धांत काल होता है, सब कालका विभाग हम पांचवें स्कन्धमें कहेंगे ॥ ४ ॥ दो अणुसे परमाणु होता है और तीन परमाणुका एक त्रसरेणु होता है, वह त्रसरेणु झरोखोंमें सूर्यकी किरणोंसे

दिखायी देता है, जो अतिसूक्ष्म है, पृथ्वीमें नहीं आता है, आकाशको उड़ता दीखता है ॥ ५ ॥ तीन त्रसरेणुकी एक त्रुटि । त्रुटि उसे कहते हैं, जितने कालमें चुटकी बजावे, सौ बेर चुटकी बजानेसे जो काल व्यतीत हो उसे वेध कहते हैं तीन वेधका एक लव होता है ॥ ६ ॥ तीन लवका एक निमेष होता है और तीन निमेषका एक क्षण कहलाता है, पांच क्षणकी एक काष्ठा बनती है, पंद्रह काष्ठासे एक लघु होता है ॥ ७ ॥ पंद्रह लघुकी एक नाड़ी होती है, (इसे दंड भी कहते हैं) और दो नाड़ियोंका नाम मुहूर्त्त है, छः दंड अथवा सात दंडका एक प्रहर वा याम होता है, वह याम दिनका चौथा भाग है और रात्रिका भी चौथा भाग होता है, दिन-रातके घटने-बढ़नेका यह नियम है कि घटनेमें छः घड़ीका और बढ़नेमें पांच घड़ीका अंतर समझना चाहिये, क्योंकि नित्य-नित्य दिन और रात्रिके घटने बढ़नेके गिननेमें

त्रसरेणुत्रिकंभुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभारस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ॥ क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघुता दश पञ्च च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड् यामाः सप्त वा नृणाम् ॥८॥ द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत् प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥ तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ॥ द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥११॥

बहुत परिश्रम है, इसलिये छः और सात घड़ीका मोटा प्रमाण समझ लिया ॥ ८ ॥ एक घड़ीका अनुमान कहते हैं—छः पलभर तांबेका पात्र हो सो उस पात्रमें चार मासे सोनेकी शलाका बनाकर उस शलाकासे उस पात्रमें छिद्र करना । उस छिद्रसे जितने समयमें प्रस्थभर जलके प्रवेश होनेसे वह पात्र जलमें डूब जाये उतने समयको घड़ी कहते हैं ॥ ९ ॥ चार-चार प्रहरके मनुष्योंके दिनरात होते हैं, हे मानद ! पंद्रह दिनका शुक्लपक्ष और पंद्रह दिनका कृष्णपक्ष होता है ॥ १० ॥ दोनों इकट्ठे होनेसे एक मास होता है, वह पितरोंका एक अहोरात्र होता है ॥ दो मासकी एक ऋतु और छः मासका एक अयन अर्थात् एक दक्षिणायन, एक उत्तरायण होता

१ "दाशार्द्धगुंजं प्रवदंति माषं माषाह्वयैः कर्षम् । कर्षश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः कर्षं सुवर्णस्य सुवर्णसंज्ञम्" इति ।

है॥११॥यही दोनों अपने क्रमसे देवताओंके दिन और रात्रि होते हैं,और बारह मासका संवत्सर होता है,उसको वर्ष भी कहते हैं। मनुष्यकी परमायु सौ वर्षकी होती है ॥१२॥ इस क्रमसे यह सूर्य उदय-अस्त होकर जगत्‌की आयु क्षीण करता है और यह कहते हैं कि ग्रह जो चंद्र आदि नक्षत्र अश्विनी आदि जो और नक्षत्र उनसे उपलक्षित अर्थात् जिनसे जो कालचक्र जाना जाता है,उसमें स्थित काल आत्मा व्यापक समर्थ सूर्यनारायण हैं और संसार जो बारह राशिप्रमाण भुवनकोश हैं, उसका पर्यटन करते हैं ॥१३॥ हे विदुरजी ! संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर यह वर्षोंकी संख्या वर्णन की है, ऐसे कालात्मा सूर्यनारायणका अप्रमत्त होकर नित्य पूजन करे ॥१४॥ अंकुर

अयनेचाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यानिमिषो विभुः ॥१३॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥ १४ ॥ यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्यापुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥ भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥

आदि कार्य जिसका विषय है ऐही बीज आदिकोंकी शक्तिको, कालस्वरूप अपनी शक्तिसे बहुत प्रकार कार्यके सम्मुख करता हुआ अन्तरिक्षमें धाता है, वह कौन है ? जो कि महाभूतविशेष तेजोमण्डलरूपी सूर्य है वह किस प्रयोजनसे दौड़ता है, कि पुरुषके मोहको दूर करनेके अर्थ,अर्थात् दिनरातके प्रमाणसे आयु आदिके क्षीण होनेसे विषयोंमें लगी हुई प्रीतको छुड़वाता है और सकाम पुरुषोंको तो गुणमय स्वर्गादि फलका यज्ञोंसे विस्तार करवाता है, उस संवत्सरपञ्चकप्रवर्त्तककी पूजा करो॥१५॥विदुरजी बोले-पितर, देव मनुष्योंकी आयु आपने कही; अब जो इस कल्पसे बाहर ज्ञानी पुरुष हैं उनकी गति कहो ? ॥१६॥ निश्चय है कि कालरूप ईश्वरकी गति आप जानते हो, जो धीर

१ संसत्सरादिका भेद, सौर, बार्हस्पत्य, सावन, चांद्र, नक्षत्रमासके भेदसे जान लेना, जब शुक्लपक्षकी संक्रांति पड़ेवाको होती है तब सौरचांद्रमाससे एकसंग वर्ष ही जाता है और सौरमानसे वर्षमें छः दिन बढ़ते हैं और चांद्रमान से वष में छः दिन घट जाते हैं, इस प्रकार बारह दिनके घटने बढ़नेसे दोनोंका आगापीछा हो जाता है, ऐसे विचारसे पांच वर्ष होते हैं, उनके मध्यमें दो मलमास होते हैं फिर छठा संसत्सर होता है ?

पुरुष हैं वे अपने योगाभ्यासकी सिद्धिसे नेत्रोंसे विश्वकी सब गति जानते हैं॥१७॥मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग,यह चार युग संध्या और संध्यांशके समेत दिव्य द्वादशवर्षोंसे निरूपण किया ॥१८॥ फिर बारह सहस्र दिव्यवर्षोंकी यह अवस्था है कि सत्ययुगका प्रमाण तो चारसहस्र ४००० दिव्यवर्ष और इनकी सन्ध्या सन्ध्यांशका प्रमाण आठसौ ८०० दिव्यवर्ष त्रेतायुगका प्रमाण तीन सहस्र ३००० दिव्यवर्ष और इनकी सन्ध्यांशका प्रमाण छः सौ ६०० दिव्यवर्ष और द्वापरयुगका प्रमाण दो सहस्र २०००

मैत्रेय उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥ १९ ॥ संध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥ तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते ॥ एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥

दिव्यवर्ष और इसकी सन्ध्या संध्यांशका प्रमाण चारसौ दिव्यवर्ष और कलियुगका प्रमाण एक सहस्र दिव्यवर्ष और इसकी संध्या संध्यांशका प्रमाण दोसौ २०० दिव्यवर्ष होते हैं ॥ १९ ॥ दिव्यवर्षोंके सैकड़ोंसे जिनका प्रमाण कहा, वे सन्ध्या और अंश हैं उनके बीचमें जो काल है, उसकी युगसंज्ञा है, कि जिसमें गवालम्भ यज्ञ आदिक विशेष धर्मका विधान है, और साधारण धर्म तो संध्या और अंशमें भी होता है, युगके आदिमें संध्या और अन्तमें अंश होते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें चारों पद समेत धर्म मनुष्योंका सेवन करता है, वही धर्म

१ इन सबका जोड़ लगानेसे संध्या और अंशसमेत चारों युगोंका प्रमाण बारह सहस्र १२००० दिव्यवर्ष होते हैं मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिनरात्रि होता है, दक्षिणायनका दिन उत्तरायणकी रात। इस प्रकार मनुष्योंके तीनसौ साठ संवत्सरका देवताओंका एक वर्ष होता है, इस स्थूलगतिके मानसे १४४००००चौदह लाख चालीस सहस्र मनुष्योंके वर्षोंसे सतयुगका प्रमाण होता है, इसके संध्यांशका प्रमाण दो लाख अट्ठाइस हजार २२८००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगका प्रमाण दस लाख पचास सहस्र १०५०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगके संध्यांशका प्रमाण दो लाख सोलह सहस्र २१६००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापरयुगका प्रमाण सात लाख बीस सहस्र ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापरयुगके सन्ध्यांशक प्रमाण एक लाख चालिस सहस्र १४०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगका प्रमाण तीन लाख साठ सहस्र ३६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगके सन्ध्यांशका प्रमाण बहत्तर सहस्र ७२००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं इस प्रकार सन्ध्या और अंशोंसमेत चारों युगका प्रमाण ४३२०००० तेंतालीस लाख बीस हजार मनुष्योंके वर्ष होते हैं।

त्रेतादिक युगोंमें एक-एक चरणसे रहित होता है,जिस-जिस प्रकारसे एक-एक पांवसे अधर्म बढ़ता है, उसी भाँति कलिकालमें तीन चरणोंसे धर्मरहित हो जाता है, यह कथन केवल वैराग्यके लिये है । कुछ धर्मके त्यागनेको नहीं ॥२१॥२२॥ त्रिलोकीसे बाहर जो महर्लोक आदि लेकर ब्रह्मलोक तक हैं, उनमें सहस्र१०००चतुर्युगीका एक दिन होता है, हे तात ! उन लोकोंमें रात भी सहस्र१०००चौयुगीकी होती है कि जिस रात्रिमें जगत्का रचनेवाला ब्रह्मा शयन करता है, रात्रिके अन्तमें लोकोंकी रचना आरंभ होती है, ब्रह्माके एक दिनमें चौदह

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंशा ऋषयः सुराः ॥ २४ ॥ भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥ २५ ॥ मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ ॥

मनु होते हैं ॥ २३ ॥ इकहत्तर ७१ चौकड़ी तक एक-एक मनु अपना-अपना समय भोगता है, उन मनुओंके वंशमें देवता ऋषि होते हैं सप्तऋषि गंधर्व ये सब क्रमसे होते हैं, और इन्द्रादिक जो उनके पीछेके हैं वे एक संग होते हैं ॥ २४ ॥ त्रिलोकीके प्रवर्त्तक चतुराननके दिनकी यह रचना है, पशु मनुष्य, पितर देवताओंका जन्म कर्मसे होता है ॥ २५ ॥ मन्वन्तरोंमें आदि पुरुष नारायण अपनी मूर्तियोंसे

---

१. शंका—मैत्रेयजीने विदुरजीसे कहा कि सब प्राणियोंकी उत्पत्ति अपने अपने कर्मसे हुई है, परंतु जब प्रलयकाल में सब चर अचर नष्ट हो गये तब केवल एक नारायणही रह गये, कुछ कालोपरान्त नारायणकी नाभिसे एक कमलका फूल प्रकट हुआ उस फूलसे ब्रह्माजी उत्पन्न होकर सृष्टिकी रचना करने लगे, तब सृष्टिके पहले कर्म कहां रहा, कर्म तो जब प्राणी जन्म लेंगे तब करेंगे तो कर्म होंगे यह बड़ी शंका है ?

उत्तर—ज्ञानवान् जो मुनि हैं वे कर्मको प्रारब्ध नहीं । कहते सब योनियोंके उपायको कर्म कहते हैं, जिस योनिका जैसा उपाय ब्रह्माजी देखते हैं उस योनिका उसी प्रकारका रूप शब्द, चलना, खाना, पीना आदि सब कारणसे पृथक्-पृथक् सब योनियोंका बनाया है ॥

सत्यको धारण करते हैं और अपने पुरुषार्थको उदयकर मन्वादिकोंकी सृष्टिकी रचना करते हैं ॥ २६ ॥ तामस अंशका ग्रहण कर अपने विक्रमसे रोकते हैं और समय पाकर सब अपनेमें लीन देख सायंकालके समय मौन साध लेते हैं ॥ २७ ॥ भुव आदि लोक उनमें लीन हो जाते हैं,जैसे जब निशा प्रवृत्त होती है तब चन्द्रमा सूर्य शुद्ध होते हैं॥२८॥शेषजीके मुखसे जब अग्निकी लपटें निकलती हैं,तब त्रिलोकी भस्म होने लगती है तब अग्निकी दाहसे पीड़ित हो भृगुआदि ऋषीश्वर महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं ॥ २९ ॥ कल्पान्तमें समुद्रका जल बढ़कर शीघ्र त्रिलोकीको उत्कट क्षोभित चण्ड-प्रचण्ड पवनोंकी चलायमान लहरोंसे सबको डुबा देता है और जल ही जल दृष्टि आता

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २७ ॥ तमेवान्वपि धीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २८ ॥ त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना ॥ यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ २९ ॥ तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ॥ प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अन्तः स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ॥ अपेक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥३२॥ यदर्द्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥३३॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३४ ॥ तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ॥ यद्धरेर्नाभिसरस आस ह्लोकसरोरुहम् ॥ ३५ ॥

है ॥ ३० ॥ शेषजीकी शय्यापर श्रीपति नारायण जलमें योगनिद्रासे नेत्र मूद स्थित होते हैं और जनलोक निवासी वारंवार स्तुति करते हैं ॥३१॥ इस प्रकार कालगतिसे दिन-रात इस प्राणीकी आयु क्षीण होती है, परमायु सौ वर्षकी है ॥३२॥ आधी आयुको परार्द्ध कहते हैं, पूर्वार्द्ध, परार्द्ध दोनों हो चुके अब अपरार्द्ध प्रवृत्त हुआ है ॥३३॥ पूर्वपरके आदिमें ब्रह्मा नामक कल्प हुआ, उसका नाम ब्रह्ममतिधाम है, जहां ब्रह्माजी नाम शब्दब्रह्म है ॥ ३४ ॥ उसके अन्तमें जो कल्प हुआ उसका नाम पद्म है, जो श्रीनारायणके नाभि सरोवरसे सर्वलोक

उत्पन्न कर्ता कमल हुआ ॥ ३५ ॥ हे भारत ! यह कल्प तो हुआ । अब दूसरा वाराह कल्प हुआ, जहां आदि पुरुष अविनाशी भगवानने वाराह अवतार धारण किया ॥ ३६ ॥ जिसकी अचिन्त्य शक्ति कार्योंकी उपाधि रहित अनन्त आदि जगत्की आत्मा ईश्वरका द्विपरार्द्ध निमेष काल कहा जाता है, इस क्रमसे आयुकी गणना गिननी नहीं चाहिये ॥३७॥ परमाणु आदि द्विपरार्द्ध पर्यन्तका यह कालरूप ईश्वर जो अभिमानी तेजस्वियोंको वश करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३८ ॥ जो मैंने इस ब्रह्माण्डका वर्णन किया; वह सब विकारोंसे भरा हुआ विशेषादिसे वेष्टित, बाहरसे यह अण्डकोश पचासकोटि योजनका विस्तार है ॥ ३९ ॥ इस ब्रह्माण्डमें परमाणुकी नाईं दश गुण अधिक

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥ ३६ ॥ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३७ ॥ कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ॥ आण्डककोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ३९ ॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥ लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशोह्यण्डराशयः ॥ ४० ॥ तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे कल्पमानादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ते वर्णितःक्षत्तःकालाख्य परमात्मनः ॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥ ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥

कोटानकोट ब्रह्माण्डोंके समूह इसमें औरोंसे लक्षित होते हैं ॥ ४० ॥ महात्मा पुरुष विष्णुका परमधाम वैकुण्ठ है तिसको संपूर्ण कारणोंका कारण अक्षर ब्रह्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां परमाण्वादिद्विपरार्द्धपर्यन्तकालस्वरूपेश्वरवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा—द्वादशमें सब सृष्टिको, कियो विचार कुमार । तनुके किये विभाग दो, मनु शतरूपा नार ॥ इतनी कथा कह श्रीमैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी ! कालरूप भगवान् वासुदेवकी यह अद्भुत महिमा आपके सम्मुख वर्णन की; अब यह सुनिये कि जैसे ब्रह्माजीने सृष्टि रची ॥१॥ प्रथम अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह, तम, ये ब्रह्माने रचे, यह सब अज्ञानकी प्रवृत्तियाँ

हैं ॥ २ ॥ अपनी सृष्टिको पापी देख ब्रह्माने अपने मनमें आनन्द नहीं माना और फिर भगवान्का ध्यान कर अपने मनको पवित्र कर दूसरी सृष्टिके रचनेका विचार किया ॥ ३ ॥ तब मनसे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार यह चार ब्रह्माजीने उत्पन्न किये, इन्होंने क्रिया छोड़ वीर्य ऊपरको चढ़ा लिया, अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा-हे पुत्रो ! जगत् रचो,तब चारोंने सृष्टिके रचनेकी इच्छा नहीं की, किन्तु मोक्ष धर्ममें परायण श्रीनारायणके ध्यानमें सदा लवलीन रहने लगे ॥ ५ ॥ मेरी आज्ञा पुत्रोंने न मानी यह विचार ब्रह्माजीको रोष उत्पन्न हुआ, फिर पुत्र जानकर क्रोध शान्त किया ॥ ६ ॥ बुद्धिसे क्रोध रोका तो भी ब्रह्माकी भ्रुकुटीमेंसे उसी

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ॥ भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ॥ ३ ॥ सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ॥ सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥ ४ ॥ तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः ॥ ते नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥ सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ॥ क्रोधं-दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ॥ सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ॥ नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् ॥ अभ्यधाद्भद्रया वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९॥ यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ॥ ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसु-र्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥

समय वह क्रोध नीलवर्ण बालकरूप बन उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह देवताओंसे प्रथम प्रादुर्भूत, रुदन करता हुआ ब्रह्मासे बोला-हे पिता ! हे जगद्गुरो ! मेरा नामकरण करो और मेरे रहनेका स्थान बताओ ॥८॥ बालकका यह वचन सुन ब्रह्मा पालन करते हुए सुन्दरवाणीसे बोले-मत रोओ । जो तुम कहोगे वही करेंगे ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! उद्वेगसे बालक सदृश तुम रोये, इस कारण सब प्रजा तुम्हें, रुद्र नामसे पुकारेगी ॥ १० ॥ हृदय, प्राण इंद्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, तप यह स्थान पहलेसे ही हमने तुम्हारे वास

करनेके लिये रचे हैं, इनमें तुम वास करो और सब संसार ग्यारह नामोंसे तुम्हारा पूजन करेगा-मन्यु १, मनु २, महिनस ३, महान् ४, शिव ५, ऋतुध्वज ६, उग्ररेता ७, भव ८, काल ९, वामदेव १० धृतव्रत ११, ॥ १२ ॥ और एकादश शक्ति तुम्हारी होगी, उसके नाम इस प्रकार हैं-धी १, वृति २, उशना ३, उमा ४, नियुत् ५, सर्पि ६, इला ७, अंबिका ८, इरावती ९, सुधा १०, दीक्षा ११, हे रुद्र ! ये ग्यारह रुद्राणी तुम्हारी स्त्रियां हैं ॥ १३ ॥ और स्थान और नारी तुम ग्रहण करो, अपनी स्त्रियोंसमेत तुम प्रजा रचो, जिससे तुम प्रजापति कहाओ ॥ १४ ॥ जब ब्रह्माने यह आज्ञा दी, तब नीलकण्ठ शिवजीने अपनी आकृति स्वभावसे अपने समान भयंकर प्रजा

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतुध्वजः ॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥ धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाऽम्बिका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥ १३ ॥ गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ॥ आभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ॥ सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥१५॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद् ग्रसतां जगत् ॥ निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥ १६ ॥ अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १७ ॥ तप आतिष्ठभद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १८ ॥ तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥ १९ ॥

रची ॥ १५ ॥ दोहा—भूत प्रेत वेतालगण, और पिशाच कराल । डाकिनि शाकिनि योगिनी, सिरजी शिव तेहि काल ॥ जब रुद्रके रचे हुए भूत-प्रेत सब जगत्को सब ओरसे खाने लगे, तब यह चरित्र देख प्रजापतिको अतिशंका हुई ॥ १६ ॥ हे सुरोत्तम ! ऐसी प्रजाके रचनेसे मैं भर पाया ! बस करो ! तीव्र नेत्रोंसे मुझसमेत यह प्रजा खानेको उपस्थित है ॥ १७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो ! तप करो तो सब जीवोंकी सुखदायक जैसी प्रजा प्रथम थी तपसे वैसे ही प्रजा रचोगे ॥ १८ ॥ परमज्योतिस्वरूप भगवान् अधोक्षज, जो सब जीवोंके

हृदयमें वास करते हैं उन ईश्वरको तप करके अनायास प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले-ब्रह्माजीकी आज्ञा मान परिक्रमा दे बहुत अच्छा कहकर तप करनेको वनमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ कुछ समय उपरान्त फिर जगत्‌के रचनेकी इच्छा हुई; तब भगवत्‌की शक्तियुक्त लोककी सन्तानके हेतु दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ २१ ॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरा ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, क्रतु ६, भृगु ७, वसिष्ठ ८, दक्षप्रजापति ९ और दशवें नारद हुए ॥ २२ ॥ विरंचिके अङ्गसे नारदजी हुए, स्वयम्भूके अंगुष्ठसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ,त्वचासे भृगु

मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवाऽऽदिष्टःपरिक्रम्य गिरां पतिम् ॥ बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥ अथाभिध्यायतःसर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥ २१ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥ उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥ अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ २५ ॥

हुए ❋ ॥ २३ ॥ नाभिसे पुलह, श्रवणसे पुलस्त्य, आननसे अंगिरा, नेत्रोंसे अत्रि, मनसे मरीचि हुए ॥ २४ ॥ दक्षिणस्तनसे धर्म हुआ, श्रीनारायण जिस धर्ममें विराजमान हैं। पीठसे अधर्म प्रकट हुआ, जिससे सब संसारकी भयानक मृत्यु हुई ॥ २५ ॥

---

१. शंका—ब्रह्माने अपनी देहसे पृथक्-पृथक् अंगोंसे दश पुत्र क्यों उत्पन्न किये ? देहके एक अङ्गसे क्यों नहीं उत्पन्न किये ? दश पुत्रोंको पृथक्-पृथक् उत्पन्न करनेका प्रयोजन क्या था ?

उत्तर—नारदादि दश पुत्रोंको ब्रह्माने ध्यानसे जान लिया कि ये दशों पुत्र हमारी मोक्ष विद्याको नहीं जानेंगे, संसारके कर्ममें बड़े चतुर होंगे, इसलिये देहके पृथक्-पृथक् अङ्गसे उत्पन्न किया । ब्रह्माने जान लिया कि निश्चय करके हमारे देहके दश पुत्र कभी मोहको, कभी क्रोधको, कभी कामको, इत्यादिक अनेक प्रकारके संसारके कर्म हैं उनमें चतुर होंगे, इसलिये जिस अङ्गको जैसा स्वभाव चाहिये उस अङ्गसे वैसे ही पुत्र ब्रह्माने उत्पन्न किये ॥

हृदयसे काम, भ्रुकुटीसे क्रोध, नीचेके ओष्ठसे लोभ, मुखसे वाणी, लिंगसे समुद्र, गुदासे मृत्यु हुई, जो पापके आश्रित है ॥ २६ ॥ छायासे कर्दमऋषि हुए जो देवहूतीके प्राणनाथ थे इस प्रकार ब्रह्माके मन और शरीरसे उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ मुखसे वीणापाणि सरस्वती उत्पन्न हुई, यद्यपि यह सुन्दरी अकामा थी, परन्तु हमने ऐसा सुना है, कि ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर हो गये ॥ २८ ॥ पिताकी

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७ ॥ वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नःश्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ॥ मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ॥ यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ ३० ॥

बुद्धि अधर्ममें देख ब्रह्माके पुत्र मरीचि मुख्यमुनिने अपने ज्ञानसे उपदेश किया ॥ २९ ॥ हे पिता ! आजतक ऐसा अनुचित कर्म किसीने

---

१. शंका–नारदसे ब्रह्माने कहा कि हमारी इंद्रिय खोटे मार्गकी ओर कभी नहीं जाती, उसी समय ब्रह्माने अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर उसके सङ्ग, भोगकी इच्छा क्यों की यह तो महानीच कर्म है ?

उत्तर–तारकासुरका किया हुआ दुःखका समुद्र उसमें डूबे हुए ब्रह्मा विष्णु एक दिन देवता और मुनियोंको सङ्ग ले कैलासको गये, तारकनामदैत्यके मारनेका उपाय पूछनेके लिये शिवजीके सन्मुख जाकर ब्रह्मा विष्णु देवमुनिसहित खड़े होकर वारंवार नमस्कार किया, हे गिरिजापते ! हे त्रिपुरारे ! तारकासुर हमको अत्यन्त दुःख दे रहा है, उसके मारनेका कोई उपाय बताइये, उसी समय बड़े जितेंद्रिय जो गरुड़जी थे, वे एक हंसिनीको देख कामवश हो मोहित हो गये। ब्रह्मा उनको देखकर शिवजीको सभामें मुसकाये, ब्रह्माका अभिमान जानकर गरुड़जीने ब्रह्माको शाप दिया, अरे अभिमानी ! हमने तो अपनी जातिके सङ्ग क्रीड़ा करनेकी इच्छा की थी, पक्षीको पक्षीके संग रमण करना यह अन्याय कर्म नहीं है तो भी तुमने हमारी हँसी की, परंतु तुमने हमारी हँसी क्या की ? हमारे शापसे तुम्हारी भी हँसी सब संसारमें होगी, तुम अपनी पुत्रीको देखकर मोहित होगे और उसके सङ्ग संभोग करनेका मनोरथ करोगे और सब जगत्में तुम्हारी दुर्नामता होगी और कोई तुम्हारा पूजन न करेगा उसी शोकमें तुम्हारा देहपात होगा, इस शापवश होकर ब्रह्माने अपनी दुहिताके साथ कुकर्म करनेकी कामना की, कुछ अपनी इच्छासे ब्रह्माने यह निंदित कर्म नहीं किया,अतः इसमें संदेह करना वृथा है ॥ उदाहरण :

जैसे—देखो शापके प्रतापसे जय-विजय भगवानके पार्षद राक्षस हो गये, शापसे नारदमुनिका मुख बंदरके सदृश हो गया,दुर्वासा ऋषिके शापसे राजा नहुष अजगर सर्प हो गया, ब्राह्मणोंके शापसे राजा नृग गिरगिट होकर कुएमें पड़ा रहा, वशिष्ठजीके पुत्रोंके शापसे राजा त्रिशंकु चाण्डाल हो गया और श्रवण के पिताके शापसे दशरथको प्राण त्यागने पड़े।

नहीं किया, न आगे कोई करेगा तुम जो सरस्वतीमें गमन करते, हो, कामको जीतो क्योंकि तुम समर्थ हो ॥ ३० ॥ हे जगद्गुरो ! तेजस्वियोंके योग्य यह कार्य नहीं है, जिनके कर्मानुसार कर्म करनेसे सब संसारको सुख मिलता है ॥३१॥ उस परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है,जिसने इस सृष्टिको अपने तेजसे आत्मामें स्थित किया है, वह परमेश्वर धर्मकी रक्षा करने योग्य है॥३२॥प्रजापति इस भाँति अपने पुत्रोंकी विनय सुन अत्यन्त ग्लानि मान मनमें अति लज्जित हुए और उसी समय अपना शरीर त्याग दिया॥३३॥उस धीरवान् शरीरको दिशाओंने ग्रहण किया, जो तम नीहारनामसे प्रसिद्ध हुआ, जो अब भी संसारमें दृष्टि आता है, जिसको आजकल 'कुहर' कहते हैं फिर ब्रह्माने

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥ ३२ ॥ स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥ प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ ३३ ॥ कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥ ३४ ॥ चतुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ॥ धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ॥ यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३७ ॥

द्वितीय शरीर धारण कर विचार किया,कि जैसे पूर्वकालमें सब संसार रचित था अब वैसा किस प्रकार रचा जायगा यह विचार कर ही रहे थे कि उसी समय चार मुखसे चार वेद हुए ॥ ३४ ॥ जिसको चार ब्राह्मण मिलकर करे वह यज्ञ, यज्ञोंका विस्तार, उपवेद और न्याय ये धर्मके चार चरण हैं, इसी प्रकार चार आश्रमोंकी चार वृत्तियाँ ब्रह्माजीने रचीं ॥ ३५ ॥ विदुरजी बोले कि हे तपोधन ! संसारके रचयिता विधाताने वेदादिकोंको मुखसे किस प्रकार रचा ? और जो-जो जिसने रचा हो वह कृपा कर मुझसे सब कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि हे विदुरजी ! ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नामक पहले चारों वेदोंको पूर्वादि चारों मुखसे रचा, क्रमपूर्वक जो गानेमें न आये

उन मन्त्रोंका स्तोत्र यज्ञका कर्म स्तुतियोंका समूह, प्रायश्चित्त, यह भी सब क्रमसे रचे ॥३७॥ फिर अपने पूर्वादि मुखसे आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेद अर्थात् धनुषविद्याका शास्त्र, गान्धर्ववेद (गानविद्याका शास्त्र, सरगम इत्यादि) (स्थापत्य) मन्दिर बनानेका शास्त्र, जिसको देवशिल्पी विश्वकर्मा भली भांति जानता है, यह चारों उपवेद भी उसी क्रमसे रचे ॥ ३८ ॥ सबसे दर्शनीय चतुराननने इतिहास पुराण पञ्चम वेद सब मुखोंसे रचा ॥३९॥ षोडशी (मृतककर्म) यह पूर्वकी ओरके मुखसे रचा, अग्नि लाना, अग्निष्टोम यज्ञ यह दक्षिण-मुखसे रचे, उचित वक्ताओंके शास्त्र,रात्रिके अनुष्ठान पश्चिममुखसे रचे, वाजपेय यज्ञ, गोमेध यज्ञ, उत्तर मुखसे रचे ॥ ४० ॥ विद्याके द्वारा शौच करना, दया, तप, सत्य, दान, ये धर्मके चार चरण हैं और सब वृत्तियोंसे यथाविधि आश्रम रचे॥४१॥ गायत्रीके उपासकोंको

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः ॥ स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥ इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः॥सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥३९॥ षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्याग्निष्टुतावथ॥आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥ ४० ॥ विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह-वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्तासंचयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥ वैखानसा वालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥

सावित्र कहते हैं, एक वर्ष तक व्रत करे उनको प्राजापत्य कहते हैं, वेदपाठ करना यह ब्राह्मण धर्म है, नैष्ठिकब्रह्मचर्यको बृहद्व्रत कहते हैं, जिसका कोई निषेध न करे उसको वार्तावृत्ति कहते हैं, खेती करनी, यज्ञ करानेको यज्ञ करनेको संचयवृत्ति कहते हैं, विना मांगे जीविका करनेको शालीनवृत्ति कहते हैं गिरा हुआ अन्न बीनकर निर्वाह करनेको शिलोंछवृत्ति कहते हैं, घरमें रहकर उदर पूर्ण करनेको गृहवृत्ति कहते हैं, इस प्रकार वृत्तियाँ रचीं॥४२॥जो सांवेके चावलोंका भोजन करके तप करते हैं, वे वैखानस कहलाते हैं, जो नया अन्न मिलने पर पहला अन्न परित्याग करते हैं, वे वालखिल्य कहलाते हैं, जो प्रातःकाल उठकर जिस दिशाको जायँ और उधर जो फल प्रथम मिले उसको भक्षण कर जो अपनी आत्माको सन्तुष्ट करते हैं वे औदुम्बर कहलाते हैं और जो फल आपसे आप पककर पृथ्वीपर गिरे उसे खाकर जो

आत्माका पोषण करते हैं वे फेनप कहलाते हैं, ये चार प्रकारके वनवासी ब्राह्मण हैं। अपने आश्रमके कर्ममें प्रधान रहें, वे कुटीचक कहलाते हैं, जो कुछ काम करके जीविकाका निर्वाह करते हैं और ज्ञान सीखते हैं वे बह्वोद हैं और जो ज्ञानका अभ्यास करते हैं, वे हंस हैं, तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करनेवाले निष्क्रिय हैं, इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ ४३ ॥ वेदविद्या, वेदत्रयीकी वार्ता, दण्डविद्या, नीतिकी वार्ता, भूरादिक यह व्याहृति प्रणवब्रह्माके हृदयसे होती हुई॥४४॥ब्रह्माजीके बालोंसे उष्णिक छन्द प्रकट हुआ,त्वचासे गायत्रीछन्द हुआ,मांससे त्रिष्टुप्छन्द हुआ, हाड़ोंसे जगतीछन्द हुआ, स्नायुसे अनुष्टुप्छन्द हुआ ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्तिच्छन्द हुआ और प्राणसे बृहतीच्छन्द हुआ; जीवसे स्पर्श हुआ और देहसे स्वर हुए ॥ ४६ ॥ 'श' 'ष' 'स' 'ह' यह ऊष्म ब्रह्माकी इन्द्रियोंसे हुए, 'य' 'र' 'ल' 'व' यह अंतस्थ

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥४४॥ तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुब् मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब् जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥ ४६ ॥ ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तःस्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तात व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्माऽवभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ४८ ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनोदधे ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ज्ञात्वा तद्वृद्धये भूयश्चिन्तयामास कौरव॥४९॥ अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥ न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम्॥५०॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५१ ॥

ब्रह्माके बलसे हुए षड्जादिक सप्त स्वर श्रीब्रह्माजीके विहारसे हुए । इसी प्रकार सब जानो ॥ ४७ ॥ प्रकट अव्यक्त जिसकी आत्मा, उस शब्दब्रह्मसे परे ब्रह्म विस्तृत अनेक शक्तियोंसे प्रकाश करते हैं ॥ ४८ ॥ इसके पीछे अपरविद्याका आश्रय लेकर फिर सृष्टि रचनेकी इच्छा की, बड़े वीर्यवान् ऋषियोंके महाविस्तृत सर्ग वर्णन किये, परन्तु बढ़े नहीं । हे राजन् अनेक-अनेक प्रकारके विचार कर ब्रह्मा हृदयमें चिन्ता करने लगे कि यह बड़ा आश्चर्य है, कि मैं नित्य ऐसे-ऐसे प्रचार करता हूँ परन्तु संसार बढ़ता नहीं मुझको निश्चय होता है कि दैव इस सृष्टिको बढ़ने नहीं देता, इस कारण प्रजाकी वृद्धि नहीं होती ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार जब ब्रह्माने दैवको दोष दिया तब ब्रह्माके

तनमेंसे दो रूप प्रकट हुए, जिसको काम कहते हैं, ॥५१॥ तब उन दोनों स्वरूपोंसे मिथुन अर्थात् जोड़ा उत्पन्न हुआ उनमेंसे जो पुरुष था उसका नाम स्वायंभुव मनु हुआ ॥ ५२ ॥ और जो स्त्री थी उसका नाम शतरूपा हुआ, वह मनु महात्माकी रानी हुई उन दोनोंने मैथुन धर्म प्रकट किया, मैथुन कर्म करनेसे प्रजा बढ़ी ॥ ५३ ॥ मनुने शतरूपाके गर्भसे पांच पुत्र-पुत्री उत्पन्न किये हे सत्तम ! प्रियव्रत उत्तानपाद, ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति, प्रसूति ये तीन कन्या, ये पांच सन्तान हुईं ॥ ५४ ॥ आकूति रुचिप्रजापतिको ब्याही गयी, देवहूति कर्दमजीको, प्रसूति दक्षको तब इनसे सब जगत् भर गया ॥५५॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेभाषाटीकायांमनुसर्ग

ताभ्यांरूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५२ ॥ स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ॥ ५३ ॥ स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥५४॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम्॥दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५५॥ इति श्रीभा० म० तृती० मनुसर्गवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप॥ भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः ॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने॥ २ ॥ चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः॥ तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—इस त्रयोदश अध्यायमें, वराहप्रादुर्भाव । कथा परम आनन्दकी, वरणों सहज स्वभाव । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजा परीक्षित ! श्रीशुकाचार्यकी अत्यन्त मनोहर वाणी सुनकर भगवान् वासुदेवकी कथामें आदर कर कुरुनन्दन फिर पूछने लगे ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे महामुने ! ब्रह्माजीके प्यारे पुत्र स्वायंभुवमनु राजेश्वरने प्रियपत्नीको पाकर क्या किया ? ॥२॥ हे सत्तम ! उस आदिराजाका चरित्र मुझसे कहो ? जो मुझको श्रद्धा है वह श्रीवृन्दावनविहारीके आश्रित हो ॥ ३॥ बहुत प्राचीन राजाओंकी कथा श्रवण करनेका यही फल है और यही महात्माओंने कहा है कि, श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द जिनके हृदयमें

वास करते हैं उनके गुणानुवादका श्रवण करना शुभफलका देनेवाला है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि विनीत सहस्र शिरवाले भगवान्‌के चरणारविन्दमें जिनके शिर—वे मैत्रेयजी भगवत्‌की कथामें अत्यन्त प्रसन्न रोमाञ्चित हो विदुरजीके सम्मुख बोले ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि जब अपनी प्रियपत्नीसमेत स्वायम्भुवमनु हुए, तब हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे बोले ॥ ६ ॥ तुम सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले, वृत्तिदायक पितामह हो, हे नाथ ! कौनसे कर्मद्वारा यह प्रजा आपकी सेवा करे ? ॥ ७ ॥ हे स्तुतियोग्य ! आप बताइये कि आपको किस प्रकार नमस्कार हो, और अपनी सामर्थ्यानुसार जो कर्म कर सके, जिसके करनेसे लोकपरलोक दोनोंमें सुयश हो और सब प्रकारसे उत्तम

श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्व भार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः ॥ प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद् वृत्तिदः पिता ॥ अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीडयात्मशक्तिषु ॥ यत् कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥ स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ॥ उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजा रक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥ १२ ॥

गति प्राप्त हो ॥ ८ ॥ स्वायम्भुवमनुकी विनय सुन मैत्रेयजी बोले कि, हे पुत्र ! हे पृथ्वीश्वर । मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, संसारमें तुम्हारा यश बढ़े, मङ्गलकी वृद्धि हो; निष्कपट हृदयसे जो मैंने कहा वह तुमने किया और सब प्रकार मेरी आज्ञा मानी ॥९॥ हे वीर । ईर्षा त्याग अपनी शक्त्यनुसार पिताकी आज्ञा उल्लंघन न करे, पिताको महाआदरसे इतनी ही पूजा करनी बहुत है ॥ १० ॥ हे आत्मज ! तुम्हारे समान जिसमें गुण और पुरुषार्थ हो, ऐसी सन्तान इस शतरूपा स्त्रीमें उत्पन्न कर धर्मसे पृथ्वीकी शिक्षा करो, और परमेश्वरमें मन लगाओ ॥११॥ हे नृप ! प्रजाकी रक्षा मन लगाकर करो, यह मेरी परम शुश्रूषा है, भगवान् और इससे सब प्रजाके भर्ता हृषीकेश प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥

यज्ञरूप जनार्दन भगवान् जिनपर संतुष्ट नहीं होते उनका यह मनुष्य देहधारण करना केवल श्रममात्र हुआ है। आप धन्य हैं! जो नारायणका आदर किया ॥१३॥ मनुजी बोले कि हे पाप नाशक! हे प्रभो! मैं आपकी आज्ञा अवश्य करूँगा, परन्तु मेरा वासस्थान और प्रजाके रहनेको जगह बताइये ॥ १४ ॥ हे देव! सब जीव मात्रका जिस पृथ्वीपर वास करनेका स्थान है वह पृथ्वी महाप्रलयके जलमें निमग्न हो

येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय तदात्मा नादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥
आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥ यदोकः सर्वसत्त्वानां
मही मग्ना महाम्भसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्यां विधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां
मध्ये तथाऽऽसन्नामवेक्ष्य गाम् ॥ कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥ सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः
प्लाव्यमाना रसां गता ॥ अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ १७ ॥

रही है, इस भूदेवीके उद्धारका कोई यत्न करो, जिसपर यह प्रजागण वास करें ॥१५॥ मैत्रेयजी बोले कि, चतुरानन जलमें धरणीको डूबी देख मनमें बहुत काल तक चिंतन करते रहे, किस प्रकारसे इसका उद्धार किया जायेगा, जो प्रजागण इसपर वास करें ॥१६॥ विश्व रचनेके ही समय मेरे सम्मुख जलमें डूबकर पृथ्वी रसातलको चली गयी अब हम सब इस वसुधाके निकालनेका क्या उपाय करें? ॥ १७ ॥

---

१. शंका–भागवतके तृतीयस्कन्धमें बीस अध्यायके तेरहवें श्लोकके अर्थसे विदित होता है कि हिरण्यकशिपु आदि राक्षसोके मरनेके पीछे सृष्टिकी रचना ब्रह्माने की है, तब सृष्टिके पहले हिरण्यकशिपु आदि राक्षस कैसे उत्पन्न हुए? जिन राक्षसोंके भारसे पृथ्वी रसातलको चली गयी? अच्छा, जब पृथ्वी रसातल को गयी तो ब्रह्माको क्यों नहीं जान पड़ा, जब मनुराजाने पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहा तो ब्रह्माको ज्ञात हुआ कि पृथ्वी रसातलको चली गयी, यह बड़ी भारी शंका होती है?

उत्तर–जिस दिन स्वायंभुवमनुने ब्रह्मासे कहा, कि पृथ्वीको तो हिरण्याक्ष हर ले गया उस दिन मरीचिके कुलमें राक्षस बहुत जन्मे थे तथा उसी दिन आधी सृष्टि हिरण्याक्ष तपस्याके प्रभावसे पृथ्वीको हर ले गया, उस दिन शीघ्रताके कारण नीचेके सात लोकोंको ब्रह्माने नहीं रचा था केवल नीचेके सात लोकोंकी ठौरपर जल भर रहा था। पृथ्वीका हरण हुए पीछे दो एक घड़ी व्यतीत हुई थी, देवता पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहनेके लिये जाते ही थे कि तबतक स्वायंभुवमनुने शीघ्र जाकर पृथ्वीके हरनेका वृत्तान्त ब्रह्मासे कह दिया, तब ब्रह्माने सुनकर अपने चित्तमें बड़ा खेद माना, तब उसी समय विष्णुभगवान्‌ने प्रकट होकर सब कार्य सिद्ध किया, इस प्रकारसे सृष्टिके पूर्वकालमें राक्षसोंने जन्म लिया।

जिसके हृदयकमलसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ, वह भगवान्, तीर्थरूप जिनकी कीर्ति, सो नारायण मेरा मनोरथ पूरा करेंगे। हे अनघ! ब्रह्माजी यही विचार कर रहे थे, कि उसी समय पितामहकी नासिकाके छिद्रसे अकस्मात् अंगुष्ठमात्र वराहका एक बच्चा निकला ॥ १८॥ हे नरनाथ! सबके देखते-देखते वह एक क्षणमें आकाश तक पहुँचा, गजके समान बढ़कर महाअद्भुतरूप दृष्टि आने लगा॥१९॥ मरीचि आदि ब्राह्मण सनत्कुमारादि मनु सहित ब्रह्माजी शूकरको निहार अनेक-अनेक प्रकारके विचार करने लगे॥२०॥ यह वाराहरूप धारण कर कोई स्वर्ग-वासी तो नहीं चला आया है, बड़े आश्चर्यकी बात है कि मेरी नासिकामेंसे यह शूकर रूप धारण कर कौन निकला ? ॥ २१ ॥ पहले तो

यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः॥१८॥ तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत्॥१९॥मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिस्सृतम्॥२१॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ॥ अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणा सह सूनुभिः॥ भगवान् यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २४ ॥ निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपस्सत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥ २५ ॥

अंगुष्ठ समान था, एक क्षणमें गजसम दृष्टि आने लगा, अब बड़े पर्वत समान स्थूल दृष्टि आने लगा, कहीं यज्ञ भगवान् मेरे मनको खेद तो नहीं करते हैं ॥ २२ ॥ पुत्रोंसमेत ब्रह्माजी यह विचार कर रहे थे, कि उसी समय अंतरिक्षसे बादलके समान, गर्जन-सा शब्द हुआ; ब्रह्माके सम्मुख यज्ञ पुरुष भगवान् बादलके समान गर्जने लगे ॥ २३ ॥ उन उत्तम ब्राह्मणोंको और ब्रह्माको श्रीवाराहजीने महामोहित किया और सामर्थ्यवान् श्रीवाराहजीके गर्जनसे सब दिशायें गर्जन कर उठीं ॥ २४ ॥ उस समय मायामय वाराहजीका घुर्घुर शब्द क्लेशनाशक सुनकर जनलोक-तपलोक-निवासी मुनिगण परमपवित्र वेदत्रयीमंत्र पढ़-पढ़कर मधुरवाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

उन सज्जनोंको वेद विस्तारक ब्रह्म अपने गुणानुवादोंको सुनकर श्रीवाराहजीने फिर गर्जकर देवताओंके उदयके अर्थ गजेन्द्र समान लीलाकर जलमें प्रवेश किया॥२६॥जिनकी पुच्छ ऊपरको उठ रही है,आकाशमें विचरते हैं और जिनके कठोर कन्धे धूसररंगके बाल फड़क रहे हैं,तीक्ष्ण रोमावली त्वचा श्वेतदंष्ट्र भयानक दृष्टि पृथ्वीके उद्धारक श्रीवाराहजीने प्रकाश किया॥२७॥स्वयं यज्ञमूर्ति भगवान् कराल डाढ़वाला वाराह रूप धारण करके नासिकासे पृथ्वीके मार्गको ढूँढ़ते हुए कोमल दृष्टिसे स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंकी ओर देखकर जलमें प्रवेश किया ॥२८॥ हीरापर्वतके समान अङ्ग,जलमें कूदनेके वेगसे कोखें फटीं, इस प्रकार समुद्रका जल इधर उधर फैल गया, दीर्घ तरंगमाला भुजायें सी दृष्टि

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्माऽवधार्यात्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक् ॥ खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥२७॥ घ्राणेनपृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥ २८ ॥ स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३० ॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥ ३१ ॥ जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ॥ तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥ ३२ ॥

आती हैं, दुःखी जन कहते थे कि हे यज्ञेश्वर ! हमारी रक्षा करो ॥२९॥ यज्ञमूर्ति वाराहजी महाराज अथाहजलकी थाह लेनेके लिये जलको कुदालकी नाईं तीव्र खुरोंसे चीरते फाड़ते जाकर पृथ्वीको देखा;जिससे सब जीवोंको धरनेवाली धरणीको प्रलयके समय आप श्रीजलनाथने उदरमें धारण किया था॥३०॥जो धरणी जलमें डूब गयी थी उस पृथ्वीको अपनी डाढ़से उठा कर रसातलसे ऊपरको लाये; तब अत्यन्त शोभा हुई,चक्रसे सहस्रगुण तीव्र तेज जिनमें ऐसे वाराहजीने हिरण्याक्ष दानवको गदा हाथमें लिये आता हुआ देखा ॥ ३१ ॥ वाराहजीके सम्मुख आ मार्ग रोककर खड़ा हुआ और घूमकर भूमिके छीननेका उद्योग करने लगा, तब वाराहजीका क्रोध अत्यन्त बढ़ा और सिंह-

समान गर्जकर दोनों दांतोंसे हिरण्याक्षका सब शरीर चीर डाला और उसके रुधिरकी कीचमें लिपटी हुई अपनी तुण्डसे लीला करने लगे ॥३२॥ हे भूपाल ! तमालसमान नीलश्वेत दांतोंके अग्रभागोंसे गजलीलाकी भांति पृथ्वीको उछालते हुए सर्व ऋषि, मुनि, ब्रह्मादिक, देवताओंने वाराहजीको देख हाथ जोड़ वेदके मंत्रोंसे ब्रह्मादिक देवता स्तुति करने लगे॥३३॥ऋषि लोग बोले कि हे अजित ! हे यज्ञभावन ! आपने सबको जीता है; वेदत्रयीमय रूप धरकर शरीरको कँपाया, आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे देव ! निश्चय है कि दुष्ट कर्म करने वालोंके इस आपके यज्ञस्वरूपका दर्शन होना कठिन है,सब छन्द आपकी त्वचामें हैं, यज्ञ रोममें हैं,सुन्दर आज्य दृष्टिमें है,चातुर्होत्र यज्ञ

तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गललीलयाऽङ्ग ॥ प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनूं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३४ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ॥ छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥ स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्मरन्ध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ॥ जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥ सोमस्तु रेतःसवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥३८॥

चरणोंमें है ॥ ३५ ॥ हे ईश ! जुहु नामक स्रुवा आपकी तुण्ड है, द्वितीय स्रुवा आपकी नासिका है, भक्षणका पात्र चमस कर्णका छिद्र है, ब्रह्म भाग पात्र मखका छिद्र है, चर्वण अग्निहोत्र है ॥३६॥ दीक्षा आपका जन्म, तीन दृष्टि, शिर, होष्ठ, ग्रीवा है, दीक्षाके पीछेकी इष्टि और समाप्तकी इष्टि आपकी डाढ़ है, जो प्रथम महावीर किया जाय वह रसना है, यज्ञ तुम्हारा शीश है; उपासनाकी अग्नि सभासद हैं, इष्टका चयन तुम्हारे पंचप्राण हैं ॥ ३७ ॥ हे देव ! चन्द्रमा आपका वीर्य है, सब यज्ञ अवस्थिति है, संस्थाभेद तुम्हारी सप्त धातु हैं, वह संस्थाविभेद ये हैं, अग्निष्टोम १, अत्यग्नि २, उक्थ्या ३, षोडशी ४,वाजपेय ५, अतिरात्र ६, आप्तोर्याम ७। आप ही सब यज्ञ शरीर की

संधि हैं, आप ही सर्व यज्ञ इष्टबंधन हो ॥ ३८ ॥ सब मन्त्रदेवता द्रव्यरूप, सर्व क्रियारूप, यज्ञरूपके अर्थ नमस्कार है,आत्मीय वैराग्य, भक्तिसे अनुभव किये ज्ञानरूप, विद्यागुरुके निमित्त प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! भूधर ! डाढ़के अग्रभागपर पर्वतसहित धरणी तुमने धारण की है, वह अत्यन्त प्रकाशमान हो रही है, जैसे जलमेंसे निकले गजेन्द्रके दांतोंपर धरी हुई कमलिनी शोभा देती है, इसी प्रकार आपके दशनोंपर पृथ्वी शोभायमान हो रही है ॥४०॥ वेदत्रयीमें यह वाराहरूप है, भूमण्डल आपने दांतोंपर धारण किया, सो डाढ़ारूढ शृंगपर मेघवत् विदित होता है। बड़े भारी कुलाचलपर्वतका जिस प्रकार विलास शोभित होता है इसी प्रकार आपकी शोभा है ॥ ४१ ॥

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्याऽऽत्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥ दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निस्सरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥४०॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥ संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥ कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥४३॥ विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ॥ सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४४ ॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः॥ यद्योगमायागुण योगमीहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥४५॥

हे नाथ ! उसको स्थित करो, यह स्थावर जंगमकी माता है, लोकके अर्थ तुम्हारी माया है, तुम हमारे पिता हो; हम तुम समेत अचला देवीको नमस्कार करते हैं, जिस पृथ्वीपर अपना तेज अग्निको काष्ठमें तुम धारण करते हो ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! रसातल गयी मेदिनीका लाना आपके विना कौन कर सकता है ? विस्मय करनेवालोंको आपके कर्तव्यमें कुछ विस्मय नहीं है जो अपनी मायासे इस विस्मयकारी विश्वको रचा ॥ ४३ ॥ हे ईश ! वेदमय निज शरीरको कँपानेसे जो आपके बाल उठे उस समय सुन्दर जलके विंदुओंसे स्नान किये, तप, जन, सत्य लोकवासी हम सब पवित्र हो गये॥४४॥ हे कर्मरहित ! जो तुम्हारे कर्मोंका पार मानते हैं, वे निश्चय मतिहीन हैं। हे भगवन् !

योग मायाके गुणोंसे मोहित तुम सब विश्वके मंगलकर्ता हो ॥ ४५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्मादिक देवताओंने जब इस भांति स्तुति की तब वाराहजीने अपनी धारणा शक्तिद्वारा पृथ्वीको अपने खुरोंसे मथित जलपर अचल किया ॥ ४६ ॥ सो वाराह भगवान् विष्वक्सेन प्रजापति हरि रसातलसे लीला करके पृथ्वीको ला, जल पर स्थापित कर वैकुण्ठको चले गये ॥४७॥ जो श्रोता इस मायावी, पवित्र श्रीवाराहजीकी महासुन्दर, आनन्दकारी, विघ्नहारी कथाको भक्तिसे प्रीति लगाकर सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, उनके हृदयमें जनार्दन भगवान् अपना वासस्थल बनाते हैं ॥ ४८ ॥ जब सब आशीर्वादोंके स्वामी भगवान् प्रसन्न हो गये तो फिर जीवोंको कोई बात दुर्लभ नहीं

मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥ ४६ ॥ स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥ ४७ ॥ य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥ ४८ ॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ४९ ॥ को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ॥ आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभा०म०तृ० श्रीवराहप्रादुर्भावे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ समुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥

है, अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है, अनन्यदृष्टिसे भजनेवालोंके अन्तःकरणवासी परमात्मा अपनी परमगतिको आप ही देते हैं ॥ ४९ ॥ इस लोकमें पुरुषार्थ सारवेत्ता पुरातनकथामें भगवत्कथामृतको कर्ण अंजलीसे जिसने पान किया है, यह कथा उसके सब संसारी पापोंका नाश करनेवाली है, एक पशु ही तो नहीं और सबको ज्ञान प्राप्त होता है ॥५०॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीवाराहावतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा–इस चौदह अध्यायमें, हिरण्याक्ष वधमूल । सांझ समयके गर्भकी, कहौं कथा प्रतिकूल ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुनन्दन ! जगत् कारण, वाराहतनधारी, श्रीवैकुण्ठनाथकी कथा मैत्रेयजीसे सुन हाथ जोड़कर

विदुरजीने पूंछा ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! यज्ञमूर्ति श्रीवाराहजीने आदिदैत्य हिरण्याक्षका जिस प्रकार वध किया वह मैंने सुना ॥२॥ परन्तु हे ब्रह्मन् ! त्रिलोकीनाथने डाढ़के अग्रभागपर धराको धरकर लीलापूर्वक जब लाये, उस समय श्रीवाराहजी और हिरण्याक्षसे किस प्रकार संग्राम हुआ वह कृपापूर्वक कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे कुरुकुलमणे ! तुमने यह मनोहर भगवान् जगदाधारकी कथा मनुष्योंके कालकर्म छुड़ानेवाली बहुत अच्छी पूछी ॥४॥ श्रीनारदमुनिकी कही यह कृष्णकथा सुनकर राजा उत्तानपादका

विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥ तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥४॥ ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ५ ॥ अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे संध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥

पुत्र ध्रुव पांच वर्षका बालक भक्तिके प्रभावसे मृत्युके मस्तकपर पांव रखकर विमानमें बैठ विष्णु भगवानके धामको प्राप्त हुआ ॥५॥ यह इतिहास मैंने सुना है; यह प्रथम देवताओंके पूछनेपर लोककर्ता चतुराननजीने देवताओंके सम्मुख वर्णन किया था ॥६॥ अब हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपकी उत्पत्ति कहते हैं; एक समय संध्याकालमें दक्षपुत्री दिति पुत्रार्थ कामशरसे पीड़ित हो मरीचिसुवन कश्यप

---

१. शंका–विष्णुभगवान्ने पृथ्वीको हिरण्याक्षसे छुड़ानेके लिये अनेक प्रकारके श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शरीरोंको छोड़कर जैसे कोई जीव बुरा कर्म करे और उस जीवको निंदित कर्म करनेसे खोटी योनि धारण करनी पड़ती है। इसलिये अत्यन्त निंदित शूकरकी योनि विष्णु–भगवान्ने क्यों धारण की ? शूकरकी योनि तो अत्यन्त दुष्ट है ।

उत्तर–विष्णुभगवान्ने जान लिया कि यह हिरण्याक्ष ब्रह्माके बरदानसे अत्यन्त प्रमादसे उन्मत्त हो रहा है, संसारमें जितने चराचर जीव ब्रह्माके बनाये हुए हैं उसमेंसे केवल एक वाराहके अतिरिक्त यह और किसीसे नहीं मरेगा, वाराहहीसे मरेगा यह विचार श्रीलक्ष्मीके नाथ नारायणने शूकरका शरीर धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला और जलमें डूबी हुई पृथ्वीको जलसे निकालकर पृथ्वीके स्थान पर पृथ्वीको रख दिया ।

नामक अपने स्वामीके पास जाकर उनसे विषयकी इच्छाकी ॥७॥ और वे अग्निजिह्वा यजुर्वेदके प्रति विष्णु भगवान्‌का दूधसे यजन करके सूर्य अस्तके समय यज्ञशालमें सावधानतासे बैठे थे ॥८॥ दिति बोली कि हे स्वामी ! पंचशर घोर धनुषबाण लेकर मुझे तुम्हारे कारण दुःख देता है, और मुझ अबलापर बल प्रकट करता है जिस प्रकार मतवाला हाथी केलेके वृक्षपर बल प्रकाश कर उसको व्यथा देता है, इसी भांति यह मनसिज मेरे तनुरूपी वनको भस्म किये डालता है ॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतनकी बढ़ती मुझसे नहीं देखी जाती, अब आप मुझपर कृपा करके सर्वगुणखान महाबलवान् एक पुत्र मुझे दीजिये ॥ १० ॥ भर्तासे बहुत सम्मानित स्त्रियोंका यश सब संसारमें फैल जाता है, आप सरीखे मेरे पति हो और फिर भी मेरे पुत्र न हो यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ११ ॥ हे नाथ ! पुत्रियोंके

इष्ट्वाऽग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥ दितिरुवाच ॥ एष मां त्वत्कृते विद्वन्काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥९॥ तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ॥ प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ॥ पति-र्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥ ११ ॥ पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्य-पृच्छत नः पृथक् ॥ १२ ॥ स विदित्वाऽऽत्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ॥ त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनु-व्रताः ॥ १३ ॥ अथ मे कुरु कल्याणं कामं कञ्जविलोचन ॥ आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥ १४ ॥ इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥ १५ ॥

परम हितकारी हमारे पिता पुत्रियोंसे अत्यन्त स्नेह करते थे, एक दिन पिता हम सबसे हँसकर बोले कि हे पुत्रियो ! तुम किसके सङ्ग अपना विवाह करोगी ? इस भांति प्रत्येकसे पृथक्-पृथक् पूछने लगे ॥१२॥ उस समय हम तेरह बहनोंने आपमें ही मन लगाया, तब हम सब पुत्रियोंको संतान होनेका भाव जान तेरह बेटियोंको पिताजीने तुम्हें दिया और हम सब तुम्हारे शील स्वभावके अनुसार चलीं ॥ १३ ॥ हे कल्याणकर्ता ! हे कमलनयन ! हे प्राणनाथ ! हमारी इच्छा पूर्ण करो । हे भूमन् ! आपसरीखे महात्माओंके निकट आर्तोंका आना व्यर्थ नहीं होता ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इस प्रकार महाकृपण दितिके मनोहर वचन सुन उसकी अत्यन्त प्रशंसा

कर मदनका बल वर्द्धित देख कश्यपजी मधुरवाणीसे बोले ॥ १९ ॥ हे भीरु ! जो तेरा मनोरथ है यह प्रियविधान मैं सब तेरा पूर्ण करूँगा, जिस स्त्रीसे धर्म, अर्थ, काम पदार्थ प्राप्त हो उसका काम कौन नहीं कर सकता ? स्त्रीके विना चारों वर्णोंका तिरस्कार है इस-लिए गृहस्थ होना मुख्य धर्म है ॥१६॥ सब आश्रमोंको ग्रहण कर जो अपने गृहस्थाश्रममें रहते हैं वे सब व्यसनोंके समुद्रको तर जाते हैं; जिस प्रकार जहाजमें बैठ समुद्र पार हो जाते हैं, ऐसे ही संसारमें गृहस्थलोक भवसागर पार हो जाते हैं ॥ १७ ॥ हे भामिनि ! श्रेयःकामके लिये अपनी अर्द्धांगिनी जिसको कहते हैं जिसमें अपना सब भार धर पुरुष विगतज्वर होकर विचरते हैं ॥ १८ ॥ और आश्रयोंके जीतनेके

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥ १६ ॥ सर्वाश्र-मानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथाऽर्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्का-मस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥ न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥ २० ॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ॥ यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपा-लय ॥ २१ ॥ एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥ २२ ॥ एतस्यां साध्वि संध्यायां भगवान्भूतभावनः ॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥ २३ ॥

अयोग्य उन दुर्जय इंद्रियरूप शत्रुओंको जिस स्त्रीके आश्रयसे लीला करके हम पराजित करते हैं, जिसे दुर्गेश दुर्गमें अवस्थान कर चोरोंका पराभव करता है ॥ १९ ॥ हे गृहेश्वरि ! तुम्हारे किये उपकार का प्रत्युपकार करनेको संपूर्ण आयुसे तुम्हारे समान होनेका सामर्थ्य नहीं है और जो प्रिय गुण तुममें हैं उनके वर्णन करनेकी भी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ २० ॥ तो भी पुत्रकी उत्पत्तिके लिए तुम्हारा मनोरथ-पूर्ण करूँगा; परन्तु एक मुहूर्त्त धैर्य धारण करो जिससे संसारी मनुष्य निंदा न करें ॥ २१ ॥ इस समय महाघोर तम है वरन् घोरोंको भी घोरतम दिखानेवाले भूतनाथके गण इस समय जहां-तहां विचरते हैं ॥ २२ ॥ हे शुभानने ! इस सायंकालमें भगवान् भूतभावन,

त्रिपुरारी, भूतनाथ, भूत पार्षदोंके गणसहित श्रीमहादेवजी वृषारूढ हो संसारमें पर्य्यटन करते हैं ॥ २३ ॥ स्मशानस्थ पवन मंडलीका अंधकार धूम्रसमान बिखरे हुए प्रकाशित जटासमूह, रजतसमान शोभायमान, तनपर चिताभस्म लगाये, महाभयंकर काले नाग लिपटाये, तुम्हारे देवर शिवशंकर चन्द्र, सूर्य, अग्नि इन तीनों नेत्रोंसे आठों प्रहर देखते रहते हैं, वे अवश्य हमारे तुम्हारे विहारको देखेंगे ॥ २४ ॥ और महादेव ऐसे बेलाग हैं कि संसारमें न कोई उनका मित्र है, न शत्रु है, न अति आदरणीय, न निन्दायोग्य है, जिनके चरणोंसे त्यक्त भोगोंके निमित्त व्रतों से उनकी आराधना कर, उनके विभूतिरूप महाप्रसादकी हम सब आशा करते हैं ॥ २५ ॥ जिन भूतभावन भोलानाथका विषयशक्तिशून्य, अनिंद्यचरित्र, अविद्यानाशक, विलक्षण बुद्धिमान, महात्मा लोग वर्णन करते हैं, उनके समान उनसे

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ॥ भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥ २५ ॥ यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिसयोऽपि यस्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २६ ॥ हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्त्रतस्याविदुषः समीहितम् ॥ यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ॥ आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ ॥ २८

बड़ा ज्ञानवान् जगत्में और कोई नहीं, सज्जनोंको गति देनेवाले आप सदाशिव पिशाचवत् लीला करते हैं ॥ २६ ॥ सदा अपनी आत्मामें रमण करें, सर्वज्ञ, त्रिकालके ज्ञाता, जिन महादेवके चरित्रोंको देख-देखकर दुर्भागी लोग हँसते हैं, परन्तु भुजगभूषणके आचरणोंका आशय नहीं जानते, वे अभागे अनेक-अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषण पहने, चन्दन सुगन्ध लगाये, जिस शरीरको श्वान, काक खायें उस देहको अत्यन्त नित्य मानते हैं और यह जानते हैं कि यह देह आत्मा है, यह समझ उनका अत्यन्त लालन-पालन करते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादिक देवता दिक्पाल जिनकी स्थापित मर्यादाको पालते हैं, इस जगत्के जो कारण हैं उनकी *आज्ञाकारिणी माया है, वह भी पिशाच-*

नियोंकी भांति रहती है, यह परमेश्वरके चरित्र तर्कमें नहीं आते; उनकी अपार महिमाका पार कौन पा सकता है ? मैत्रेयजी बोले-कि कश्यपजीने दितिको बहुत समझाया;परन्तु दितिके ध्यानमें एक न आया,क्योंकि वह तो मदनके मदसे अचेत होकर निर्लज्जतासे वेश्याकी तरह कश्यपजीका वस्त्र पकड़ लिया ॥२९॥ और कश्यपजी निषिद्ध कर्ममें अपनी पत्नीकी हठ जान भाग्यरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार कर उस हठीली भार्यासे विहार करने लगे ॥३०॥ भोग-विलाससे निश्चिन्त हो स्नान कर; मौन बन प्राणायाम किया,रजोगुणरहित सनातन ब्रह्म ज्योतिस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो ध्यान करने लगे ॥ ३१ ॥ हे परीक्षित ! उस निन्दित कर्मसे दिति लज्जित हो, अछताय-

मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ ॥ २९ ॥ स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥ ३० ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ ३१ ॥ दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ॥ उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥ ३२ ॥ दितिरुवाच ॥ मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन्भूतानामृषभोऽवधीत् ॥ रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥३४॥ स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ॥ निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥

पछताय,नीचे शिर झुकाय अपने पतिके निकट आकर बोली॥३२॥ हे ब्रह्मन् ! सर्व जीवमात्रके ईश्वर मेरे इस गर्भका विध्वंस न करे क्योंकि सब भूतोंके स्वामी रुद्र हैं, उनकी मैंने लज्जा नहीं की, यह मुझसे शिवका बड़ा भारी अपराध हुआ है ॥३३॥ दुःखके दूरकर्ता,भयहर्ता, रुद्रदेव, उग्रतपधारी, सबके फलदायक, मंगलरूप दयासिंधु, दुष्टोंके संहारार्थ प्रचण्ड क्रोध करनेवाले श्रीमहादेवजीको मेरा नमस्कार है ॥३४॥ वह हमारे भगिनी–भर्ता अत्यन्त अनुग्रहकारी, सदाशिव त्रिपुरारी, कृपासागर, स्त्रियोंके देव, सतीपति, निर्दयीपर भी दया करनेवाले भूतनाथ मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी बोले, अपनी सन्तानका शुभ आशीर्वाद दोनों लोकोंके योग्य चाहनेवाली, शरीर जिसका

थर-थर कांप रहा है उस अपनी प्यारी पत्नीसे सन्ध्यावन्दनके नियमसे निवृत्त होकर ॥३६॥ कश्यपजी बोले; कि हे प्रिया ! तुम्हारे चित्तके अशुद्ध होनेसे, सायंकालके दोषसे, मेरी आज्ञा भङ्ग करनेसे देवताओंका अनादर करनेसे ॥ ३७ ॥ हे चण्डी ! हे मङ्गलरूपिणी ! महा अमंगलरूप, अत्यन्त अधम, अति भयानक दो पुत्र तेरे होंगे, जो लोकपाल सहित त्रिलोकीको जीतेंगे और संसारके प्राणियोंको दुःख देंगे ॥३८॥ परायी स्त्रियोंको पकड़-पकड़ कर ले जायँगे, दीन निरपराधी जीवोंको मारेंगे, जब सन्तों और महात्माओंको सतायेंगे तब महात्मा लोग कोप करेंगे ॥३९॥ उस समय देवताओंकी पुकार सुन आदि पुरुष अविनाशी सच्चिदानन्द विश्वेश्वर भगवान् त्रिलोकपावन क्रोध-कर वाराह अवतार धारण कर जैसे इन्द्रने पर्वतोंको मारा इस प्रकार मारेंगे ॥ ४० ॥ दिति यह बात अपने पतिके मुखसे सुन अत्यन्त

कश्यप उवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ॥ स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाऽद्रीञ्छतपर्वधृक् ॥ ४० ॥ दितिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥ ४२ ॥

दुःखी होकर बोली, हे स्वामी ! मेरा मनोरथ यह नहीं था कि मेरे पुत्र देवताओंको जीतकर सुरपुरका राज्य पाकर आनन्द भोगें और देवता, साधु, सन्त, गौ, ब्राह्मण आदिकोंको सतावे, ऐसी पापी संतान होनेसे तो मैं असंतान ही भली थी, परन्तु एक बातको श्रवण कर मेरे मनमें आनंद भी होता है कि मेरे पुत्र ऐसे बलवान् होंगे कि जिनको चक्रायुधधारी उदारबाहु साक्षात् अचिन्त्यरूप भगवान् बध करेंगे, इससे अधिक और क्या ? परन्तु मेरे दोनों पुत्रोंको कोई क्रोधी ब्राह्मण न मारे ॥ ४१ ॥ क्योंकि ब्राह्मणोंके दण्डसे दग्ध, सब जीवोंके भयदातापर नरकवासी भी दया नहीं करते, वे जिस योनिमें जाते हैं वहां निरादर ही पाते हैं, प्रियाके ऐसे असमंजसयुक्त वचन सुनकर ॥ ४२ ॥

कश्यपजी बोले कि अपने किये हुए अपराधके शीघ्र विचारनेसे यह कर्म योग्य है, यह अयोग्य है यह विचारनेसे,भगवान्में बहुत मान करनेसे श्रीमहादेवजीमें तथा मुझमें बहुत आदर करनेसे ॥४३॥ तेरे बड़े पुत्र हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके मध्यमें एक परम ज्ञानी, भक्तजन संतहितकारी, महातपधारी उत्पन्न होगा, जिसका यश परमेश्वरके यशके सङ्ग भक्तजन गायेंगे और सब हरिभक्तोंमें उसकी परम पदवी होगी, भागवतोंमें महाप्रतापी, शीलसिन्धु, गुणग्राहक, जगत् उजागर, जिसका देवता, दैत्य गुण गायेंगे और प्रह्लाद उसका नाम होगा, जिसका शुद्ध यश भगवत्के समान पौराणिक वर्णन करेंगे ॥४४॥ जैसे दुर्वर्ण कञ्चन तपानेसे सुवर्ण हो जाता है उसी भांति निर्वैरादिक करके उसके आत्मा-

कश्यप उवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥ पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यन्तियद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ॥ स स्वदृग् भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥४६॥ स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥ ४७ ॥ अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥ ४८ ॥ अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥ ४९ ॥

वत् बननेको अपने शरीरको साधुजन भावना करेंगे ॥ ४५ ॥ जिनकी कृपासे जिनका स्वरूपभूत यह विश्व प्रसन्न होता है, ऐसे सर्वान्तर्यामी भगवान् अनन्यदृष्टिसे सन्तुष्ट होंगे॥४६॥ सो महाभागवत महात्मापुरुष महाप्रभाववाले महज्जनोंमें अत्यन्त महान अत्यन्त अधिक-भक्तिसे अनुभव किये हुए अंतःकरणमें श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्को प्रवेशकर इस शरीरको त्याग करेंगे ॥ ४७ ॥ सबसे विरक्त, शीलधारी, सकलगुणभूषण,परायी सम्पदासे आप प्रसन्न,पराये दुःखसे आप दुःखी। संसारमें जिसका कोई शत्रु न होगा, सबका दुःखहर्ता इस प्रकार होगा, जैसे कि तपनको सुधांशु दूर करता है ॥ ४८ ॥ भीतर-बाहर निर्मल कमलनयन अपने भक्तोंकी रक्षासे जो अवतार धारण करते

हैं और कुण्डलोंसे मंडित मुखारविन्द कमलापति कमलनयन लक्ष्मीजी दिन-रात निहार निहारकर जिनके चरणकमल पलोटती हैं, ऐसे परमात्माका दर्शन तुम्हारा पोता करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि नातीका भागवत होना सुनकर दिति प्रसन्न हुई और दोनों पुत्रोंकी मृत्यु विष्णुके हाथसे श्रवण कर मनको सन्तोष देने लगी ॥५०॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां दितिकश्यप-संवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ दोहा—पन्द्रहवें अध्यायमें, गये अजढिग सब देव। अजने सब वर्णन कियो,सनकादिकको भेव ॥ मैत्रेय बोले कि, देवताओंकी पीड़ाकी शंकासे शत्रुओंके तेजका नाशक कश्यपका वीर्य दितिने अति आनन्दपूर्वक सौ वर्षतक धारण किया ॥१॥ उस गर्भके तेजसे त्रिलोकीको विह्वल और दशों दिशाओंमें अन्धकार देख; सब लोकपाल व देवतागण अत्यन्त दुःखी हो ब्रह्मा-

मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥५०॥ इति श्रीभा० महापु० तृ० दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥ दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥ लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः ॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथ शिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥ ४ ॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥५॥ ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम् ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥ ६ ॥

जीके निकट गये ॥२॥ और हाथ जोड़ विनती कर बोले, हे समर्थ ! इस अन्धकारको आप जानते हैं, जिससे हम सब डरे हुए हैं, दुर्भेद्य भगवान्को काल द्वारा हम नहीं जान सकते ॥ ३ ॥ हे देव देव ! हे जगत्पितः ! हे लोकेश ! शिखामणे ! आप पर अपर लोकस्थ जीवोंके भाववेत्ता हो ॥ ४ ॥ विज्ञानवीर्य, मायासे यह देहधारी आपने सब गुण ग्रहण किये, तुम्हारा आदिकरण प्रकट नहीं होता, आप सब जगत्के ईश्वर और अन्तर्यामी हैं, आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ५ ॥ आत्माके भावन आत्मासे मिले हुए, सब भुवन और सत असतसे परे जो आप हैं, हम आपको अन्यभावसे भजते हैं ॥ ६ ॥

उन सुन्दर परिपक्क योगसाधनोंका श्वास, इंद्रिय आत्मा जीतनेवाले ऐसे जिनपुरुषोंको तुम्हारे प्रसादसे जिनको प्राप्त हुआ, उनका कहीं भी तिरस्कार नहीं होता ॥७॥ जैसे रस्सीके वश बैल होता है, उसी प्रकार आपकी वाणीरूप रस्सीमें सब संसार बँध कर आपके आधीन हो बलि देते हैं, हे सब देवताओंमें मुख्य ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥८॥ हे भूमन् ! तुम हमारा कल्याण करो और इस अंधकारसे जो सब संसारके कर्म लुप्त हो रहे हैं और हमपर महा आपत्ति है, आप देवताओंमें मुख्य ईश्वर, हमारे सब कष्ट निवारण करनेवाले, अत्यन्त दयाकी दृष्टिसे देखनेवाले हो ॥ ९ ॥ हे जगत्पते ! हे नाथ ! यह दितिका गर्भ है, इसमें कश्यपमुनिका पराक्रम झलक रहा है, इसने दशों दिशाओंमें अंधकार कर दिया, जिस प्रकार ईंधनमें क्षण-क्षण अग्नि अधिक होती जाती है, इसी भांति दितिका गर्भ बढ़ता चला जाता

तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥ यस्य वाचा प्रजाःसर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ॥ हरन्तिबलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥ स त्वंविधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम्॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥ एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा-वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥ मैत्रेय उवाच ॥ सप्रहस्य महाबाहो भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान्प्रीणन्रुचि-रया गिरा ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगत-स्पृहाः ॥ १२ ॥ त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ॥ ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥ १४ ॥

है, इसको निहार-निहार नये-नये भय उत्पन्न होते हैं, दिनरात कुछ नहीं जाना जाता, इससे चित्तको और भी अत्यन्त खेद होता है॥१०॥ मैत्रेयजी बोले—हे महाबाहो ! विदुरजी ! करतार शब्दके जाननेवाले चतुरानन हँसकर मधुर वाणीसे देवताओंको प्रसन्न करते हुए ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवगण ! तुमसे भी प्रथम मेरे मनसे चार कुमार उत्पन्न हुए—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये परमेश्वरके पूर्ण भक्त हैं, आकाशमार्ग होकर त्रिलोकीमें सदा निष्प्रयोजन घूमते रहते हैं ॥ १२ ॥ एक समय सनकादिक पवित्र आत्मा श्रीस्वर्गना-थके साक्षात् करनेको वैकुण्ठ जाते हुए, जिस वैकुण्ठको सब नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ जिस वैकुण्ठके सब पुरुष श्रीविष्णुभगवान्के

समान चतुर्भुजी हैं, जिससे कोई प्रयोजन नहीं उसके निमित्तके धर्मसे श्रीमन्नारायणका पूजन करते हैं ॥ १४ ॥ जिस वैकुण्ठलोकमें आदि पुरुष शब्दमात्रके वक्ता श्रीविष्णु नारायण विराजते हैं, शुद्ध सत्त्वमयस्वरूप धारण किये विरजा नदीके तीर अपने पार्षदोंको सदा सुख देते हैं ॥ १५ ॥ जहां निरन्तर सुखदायक नामक वन है, जिसमें सब कामना पूर्ण करनेवाले फल फूलोंसे शोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं, यह बाग षड्ऋतुकी शोभासे आठों याम प्रकाशित रहता है; मानो कैवल्य मूर्तिमान् हो विराजमान है ॥ १६ ॥ जिस वैकुण्ठमें श्रीमन्नारायणके पापनाशक चरित्र, स्त्रियों समेत भगवत्पार्षद विमानोंपर बैठ-बैठ मधुर-मधुर स्वरोंसे गान करते हैं, जहां की नदीके जलमें प्रफुल्लित मधु मालती लताओंकी सुगन्धसे जिनकी बुद्धियें तृप्त हो रहीं हैं, उस पवनको तिरस्कारित

यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥ १५ ॥ यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ॥ अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥ १७ ॥ पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ॥ कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥१८॥ मन्दारकुन्दकुरवोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागवकुलाम्बुजपारिजाताः ॥ गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥ १९ ॥

करते हैं भाव यह कि सुगंधित वायुसे मोहको प्राप्त होकर भी भगवद्गुण गाना बंद नहीं करते हैं ॥ १७ ॥ कपोत, कोकिला, सारस, हंस, चकवा, चातक, तीतर, मयूर, बक, चकोरोंका कलरव जब विरामको प्राप्त हुआ तो भृंगराज जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका यश गा रहे हैं वे सब दिव्यरूप हैं; सबके शुद्ध सत्त्वमय प्राकृतदेह हैं इससे वहांके पक्षियोंका भी हरि कथा श्रवण आदि परम आनन्द सूचना किया ॥ १८ ॥ कल्पवृक्ष, कुन्द, तिलकवृक्ष रात्रिमें प्रकाश करनेवाले कमल, चंपक, जिनको भवनमें रखनेसे मनुष्य ऋणी नहीं होते, जिसकी छाया पुरुषोंको हस्तीके समान बलदायक है वह पुन्नाग, नागकेशर, बकुल और दिनमें प्रकाश करनेवाले कमल, परिजन्में

पारिजातवृक्षोंके पुष्पोंकी सुगंध बहुत उड़ती है, तो भी तुलसीके आभरणोंकी सुगंधसे उस काननमें उनका सब फल बहुमान करते हैं, सब वैकुण्ठ पारिजातादि कल्पवृक्षोंसे शोभित है ॥ १९ ॥ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथके चरणारविन्दोंको नमस्कार करते दीखे हैं, वैदूर्य्य, मरकत, सुवर्णमय विमानोंसे वैकुण्ठ सघन हो रहा है, बृहत् मुसकानसे शोभित मुखारविन्द श्रीकृष्णमें मन लगानेके कारण उनको परिहासादिकसे रजोगुण उत्पन्न नहीं होता ॥२०॥ श्रीलक्ष्मीजी चरणारविन्दमें नूपुरकी ध्वनि करती लीलाके लिये नीलकमल हाथमें धारण किये चञ्चलताके सब दोष जिससे दूर हों, जिसके लिये ब्रह्मादिक कोटि यत्न करें वह स्फटिकके आलयमें सुवर्णसे जड़ित श्रीवैकुण्ठमें

तत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥ २० ॥ श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ॥ संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥ वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥ २२ ॥ यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्ता- न्क्षिपन्त्यशरणेषु तमस्सु हन्त ॥ २३ ॥

संमार्जन करती हुई लक्षित होती हैं ॥२१॥ सुन्दर-सुन्दर वापी, तड़ाग, जिनकी विद्रुमकी सीढ़ी निर्मल जल भरी बावड़ी पर अपने निज वनमें तुलसीसे दासियों समेत ईश्वरकी आराधना करती हुई सुन्दर अलकें, सुन्दरनासिकावाले मुखको देख भगवत्के भोग्ययोग्य श्रीजी मानती हुई, * ॥२२॥ उस वैकुण्ठमें वे लोग नहीं जाते जो पापहारी श्रीवृन्दावनविहारीके चरित्रोंको त्यागकर विषयकी बढ़ानेवाली बुद्धिकी विनाश करनेवाली कहानी सुनते हैं, बड़े खेदकी बात है, कि भाग्यहीन पुरुषोंने जो कुत्सित कथा सुनी उनके सब मनोरथ नाश होते

---

* कवित्त–जिनको कभी स्वप्नमाहिं मुख नहिं देखो हम, उनहीकी सेवामें आठों याम रहना परो ॥ जिनको अपराधी व्याधी सम जान रहे, उनहीको कोप नैन नीचे कर सहनो परो ॥ दूर दूर करत जिन्हें धोरे नांहि बैठ दियो उनहीके पायनतले रात दिन गहनो परो ॥ धन लक्ष्मीजी तुम्हें धन्य आपको प्रताप मूर्खोंको महाराज महाराज कहनो परो ॥

हैं, कोई उनकी रक्षा नहीं करता और वे नरकमें डाले जाते हैं ॥ २३ ॥ जिस मनुष्यदेहको ब्रह्मादिक चाहें उस मनुष्यगतिको पाकर ज्ञानतत्त्वका विषय धर्म सहित जिस देहसे प्राप्त कर जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका आराधन नहीं करते, वे अज्ञानी मूर्ख इनकी मायासे अत्यन्त मोहित हैं, यह महाखेदकी बात है ॥ २४ ॥ जो देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथकी सेवा कर हमसे ऊपर रहते हैं और करुणामय शीलस्नेहसे परस्पर सुन्दर-सुन्दर भगवत्के पवित्र चरित्र चित्तसे वर्णन कर अनुरागवश हो नेत्रोंसे अश्रु बहाते हैं और क्षणक्षणमें शरीर पुलकायमान होता है ॥ ऐसे ही ज्ञानी ध्यानी महात्मापुरुषोंको वैकुण्ठधामका वास मिलता है और देवता लोग उनको प्रणाम करते हैं और सदा भगवान् वासुदेव नारायणकी लीलाको देख-देख मग्न होते हैं और वारम्वार अपने भाग्यकी बड़ाई करते हैं ॥२५॥

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥ यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥ २७ ॥ मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया सितचतुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥ २८ ॥

जहां समस्त विश्वके गुरु विराजमान चौदह भुवनोंमें एक वन्दन करने योग्य, दिव्य विचित्र देवेंद्रोंके विमानोंकी अत्यन्त कांति उस वैकुण्ठधाममें योगमायाके बलसे सनकादिक मुनियोंने जो कभी प्रथम नहीं देखा था, वहां पहुँचकर परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ वहांकी शोभा देख सनक, सनन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए, जब छः द्वारको लांघ सातवें द्वारपर पहुँचे तो वहां गदा हाथमें लिये, अमूल्य रत्नजटित कुण्डल कानोंमें पहिने,शीशपर किरीट धरे, सुन्दर वेषधारी,श्यामतन,एकसा स्वरूप,समान वयस द्वारके दोनों ओर दोनों पार्षद जय,विजय नामक खड़े देखे॥२७॥ कंठमें सुन्दर वनमाला पहिरे, सुन्दर विशाल भुजाओंके मध्य वह वनमाला शोभित है और कुटिल

भ्रुकुटी, अभी कुछ मुखसे जैसे बोलना चाहती हैं, लाल-लाल नेत्रोंसे कुछ थोड़ासा क्रोध किये हुए मुनियोंके मुखकी ओर देखने लगे ॥२८॥ कंचनमें जटित हीरोंके कपाटकी अनुपम शोभा ऐसे पहले छः द्वारोंको जैसे लांघते आये,उसी भांति इनको देखते इस द्वारमें भी वह मुनि घुसने लगे,क्योंकि सर्वत्र वे अविषम दृष्टि हैं अतएव कोई नहीं रोक सकता;जिसको कुछ भी भय नहीं अर्थात् निःशंक चले गये। हरिके द्वारपालोंसे कुछ नहीं पूछा, जैसे सरलतासे और लोकोंमें विचरते थे,उसी भांति वैकुण्ठलोकको समझा ॥२९॥ वह पवन आधारी चारों कुमार बुद्धिमान् दीखते हैं, पांच वर्षकी अवस्था, आत्मतत्त्वके ज्ञाता, रोकने योग्य नहीं, उन सनकादिकोंको भगवत्के प्रतिकूल शीलवान् दोनों पार्षद वेतसे भगवत्के तेजको हँसकर रोकने लगे ॥३०॥ देवताओंमें सुन्दर पूज्यतम श्रीवैकुण्ठनाथके द्वारपालोंने उनको वैकुण्ठ जानेसे निषेध किया,तब

द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ॥ सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये संचरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥ २९ ॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥ ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥ ३१ ॥ मुनय ऊचुः ॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ॥ तस्मिन् प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वाऽऽत्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥ ३२ ॥

अत्यन्त प्यारे श्रीमन्नारायणके दर्शनकी इच्छा भङ्ग होनेसे मनमें दुःख मानकर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र कर॥३१॥सनकादिक मुनि बोले कि तुम दोनों कौन हो ? जो बड़ी भारी भगवान्‌की परिचर्या कर इस वैकुंठमें पुरुष आता है, जो पूर्ण भगवत् भक्त हैं, यहां सब वैकुण्ठवासी शीलके सागर और सुखकी राशि हैं,किसीके मनमें अहंकार विकार नहीं है, सब वस्तुको इकसार समझते हैं,तुम वैकुण्ठके मध्य ऐसे विषम स्वभाव होकर कैसे वसते हो ? इस वैकुण्ठमें प्रशान्त पुरुष श्रीभगवान् वासुदेवके विग्रह दर्शन करनेको भगवद्भक्त विना और कौन आ सकता है, जैसे तुम आप कपटी हो ऐसे और को भी कपटी समझते हो ? ॥ ३२ ॥

इस दिव्य त्रिपादविभूतिमें सब विश्व जिसकी कोखमें, सब आत्माओंकी आत्मामें धीरपुरुष किंचित् भेद नहीं रखते, जैसे आकाशमें आकाशका भेद नहीं होता, इसलिये तुम हरिकेसे वेषधारियोंमें यह भेद कैसे उत्पन्न हुआ ? हमने जाना कि तुम परमेश्वरके दास नहीं हो, केवल पेट भरनेवाले हो, जैसे पेट भरनेवाला दूसरे उदरपोषकको देख भय मानता है, ऐसे ही तुम हो[१] ॥ ३३ ॥ इस कारण श्रीवैकुण्ठनाथ परम

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ॥ पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥३३॥ तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ॥ लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥ तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥ सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतुस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥

श्रेष्ठ ईश्वरके पार्षद तुम सरीखे मन्दभागियोंका जिसमें कल्याण हो वह हमने करनेका विचार किया है, इस वैकुण्ठसे तुम लोग उन लोकोंको जावो जहां भेद भाव दृष्टिसे काम, क्रोध, लोभ ये पापी रहते हैं, यही तीनों इस प्राणीके शत्रु हैं ॥३४॥ अतिघोर ब्रह्म शाप जो अस्त्रोंके समूहोंसे निवारण न हो सके ऐसा महाघोर शाप मुनियोंके मुखसे श्रवण कर दोनों पार्षद कांपने लगे और अति कातर होकर उन मुनियोंके

---

१. शंका–प्राणियोंकी बुद्धिका नाश करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक शत्रु वैकुण्ठमें नहीं है, ऐसा हमने सब शास्त्रों और पुराणोंमें सुना है फिर जय विजय की बुद्धिमें भेद क्यों हुआ कि यह ब्राह्मण सनक सनन्दनादि वैकुण्ठनाथ भगवान्के पास जाकर कुछ उत्पात करेंगे तथा दूसरे फिर सनकादिक मुनियोंने लाल मुख हो क्रोध क्यों किया ? और वैकुण्ठलोक काम, क्रोध, भेद, आदिका समुद्र क्यों हो गया ?

उत्तर–भगवान्ने भृगुजीकी स्त्रीको जब मार डाला तब भगवान्के नेत्र क्रोधमें लाल हो गये, तब ऐसे ईश्वरके रूपको देखकर सनकादिक भगवान्से पूछने लगे, कि हे वैकुण्ठनाथ ! आप तो बड़े दयालु हो, आपमें कामदेवका छोटा भाई जो क्रोध है वह क्यों है ? श्रीभगवान् सनकादिकसे बोले कि, हे ब्राह्मणो ! सब प्राणियोंकी इंद्रियां महाप्रबल हैं योगियोंके चित्तको खैंचकर खोटे मार्गमें डाल देती हैं तो मैं दीन किस गणनामें हूं ? प्रबल इंद्रियोंके वशीभूत होकर मेरे मनमें भी क्रोध आगया, भगवान्के ऐसे सुन्दर अमृत वचनोंको सुनकर सनकादिकने नहीं माना और बड़े अभिमानसे सनकादिकने कहा कि क्या इंद्रियाँ ऐसी प्रबल हैं ! इंद्रियाँ कुछ भी नहीं कर सकतीं, भगवान्ने सनकादिकके अभिमानको जानकर कुछ कालोपरांत अपने पार्षद जय विजयको मायाके वश करके सनकादिकको रुकवा दिये और सनकादिकोंके हृदयमें क्रोधकी अग्नि भड़काकर जय विजयको सनकादिकोंसे शाप दिलवा दिया । भगवान्ने यह भी समझा कि जय विजयको दुःख होगा परंतु सनकादिकका मान अवश्य दूर होना चाहिये क्योंकि भक्तके हृदयमें अभिमानका अंकुर उत्पन्न होना अत्यन्त दुःखदायी है ॥

चरणोंमें गिड़-गिड़ाकर गिर पड़े और बोले ॥३५॥ हे नाथ ! जो दंड आपने हमें दिया वह पापयोनि हमें अंगीकार है, परन्तु वासुदेवकी अवज्ञारूप हमारा अपराध दूर हो जाय चाहे हम नीचसे नीच योनिमें जांय तो भी हमें आनन्द है, परन्तु आपकी कृपासे भगवत्‌की स्मृतिका नाशक मोह हमको न हो,हमने अज्ञानतासे आपको रोका उसका फल तत्काल नेत्रोंसे देख लिया,अब हमारा अपराध क्षमा कीजिये और कृपापूर्वक यह वर दीजिये यह प्रार्थना की ॥३६॥ इस प्रकार उसी समय बड़ोंके मन मोहनेवाले कमलनाभ भगवान् अपने पार्षदोंसे अपने प्यारे भक्तोंका अपराध हुआ जान, परमहंस महामुनि जिन चरणोंको खोजें उन चरणोंसे श्रीमहालक्ष्मीजी समेत वहां आकर

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥ ३६ ॥ एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ॥ ३७ ॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौरपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ॥ हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥ पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥

आप उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ भगवत्पार्षद श्रीनारायणके उपयोगी छत्र-चामर लिये भगवान्‌के संग आ रहे हैं, नेत्रोंके सम्मुख हुए अपनी समाधिरूप भाग्यसे हंसतुल्य दो पंखोंके समान सुखदायक पवनसे चलायमान शुक्लचन्द्रवत् छत्रके मोतियोंकी झालरोंसे जलकण झरते हैं, ऐसे श्रीवैकुण्ठनाथका सबने दर्शन किया ॥३८॥ सबपर प्रसन्न होनेमें सुमुख, चाहने योग्य सुन्दर तेज प्रेमयुक्त कटाक्षसे हृदयको स्पर्श करे, श्याम विशाल वक्षस्थल श्रीजीसे शोभित, स्वर्गका शिरमुकुट अपने वैकुण्ठको शोभित करते हैं ॥ ३९ ॥ कटिपश्चाद्भागपर पीताम्बर धारण किये, दमकती हुई क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित जिसपर भ्रमर गुंजार रहे हैं,ऐसी मनोहर वनमाला धारण किये, चारभुजाधारी जिनमें

भुजबंद कड़े विराजें, एक हाथ गरुड़पर धरे दूसरे हाथमें कमलको घुमाते ॥४०॥ विद्युच्छटाकी द्युति दूर करनेवाले मकराकृति कुण्डलोंसे सुशोभित कपोल, ऊंची नाक, मनोहर सुन्दर मुख, मणिमय किरीट धारण किये, भुजदंडके समूहोंके मध्य कंठमें अमूल्य हार, कंधेमें कौस्तुभमणि धारे शोभित हैं॥४१॥श्रीमहालक्ष्मीजीकी सब सुन्दरता भगवत्‌के आगे अस्तश्री दृष्टि आती है; अपने भक्तोंकी बुद्धिसे विशेषकरके रचे हुए आभूषण बहुत सुन्दर उनको धारे हैं। भक्त चाहे जैसी सुन्दरता धारण करते हैं, मेरे अर्थ महादेवके लिये और जो कोई भजन करे, उसीके निमित्त शरीरधारी हो, ऐसे श्रीभूलीलानायक श्रीमन्नारायणको देख दर्शन करते-करते दृष्टिसे अतृप्त हो सनकादिकोंने आनन्दसे भगवान्‌के

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दण्डखण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धियां विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ॥ सह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशो मुदा कैः ॥ ४२ ॥ तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ॥ अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥ ४३ ॥ ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥४४॥ पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन् युतमष्टभोगैः ॥ ४५ ॥

चरणारविंदोंमें अपने-अपने शिर झुकाकर नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ कमलनयनके पदारविन्दकी केशरमिश्रित तुलसीके सुगन्धकी वायु ब्रह्मानन्दका सेवन करनेवालोंके भी नासिकाके छिद्रमें प्रवेश कर उनके चित्तमें अत्यन्त हर्ष और शरीरमें रोमाञ्चरूप क्षोभको करती हुई ॥ ४३ ॥ श्रीवैकुण्ठपतिके बहुत सुन्दर अधरोंकी ललाई, कुन्दकलीके समान जिसमें हास्य, ऐसे मनोहर मुखारविन्दको निहार सब आशीर्वादोंको प्राप्त होकर, उनके दोनों चरणोंमें मणिसमान लाल-लाल नखका आश्रय देख, निरन्तर हृदयमें सनकादिक ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ इस संसारमें योगमार्गसे पुरुषोंकी गतियोंको ढूँढ़े, उनके ध्यानयोग्य बहुत सम्मानित, नयनानंददाता, पुरुषदेहसे दर्शन दे

अनन्यसिद्ध औत्पत्तिक अणिमाद्यष्टसिद्धिसहित श्रीमन्नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ सनकादिक बोले कि, हे अनंत ! जो आप हृदयमें प्राप्त हो तो भी दुरात्माओंको दर्शन नहीं देते हो, आप हमारे नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हुए, हमने जब आपसे उत्पन्न हुए अपने पिता ब्रह्माजीके द्वारा वर्णित आपका रहस्यमय चरित्र कर्णच्छिद्रोंसे सुना, उसी समय आप अंतःकरणमें आकर प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! परेसे परे आत्मतत्त्वको हम जानते हैं, वर्तमानसे इन भक्तोंकी क्षणक्षणमें प्रीतिको रचते हैं, आपकी कृपासे जानना योग्य है, दृढ भक्ति-योगसे विगत मुनीश्वर आपको जानते हैं ॥ ४७ ॥ और आपके अत्यन्त प्रसादकी इच्छा रखते हैं और आपकी भ्रुकुटीसे भय मानने-

कुमारा ऊचुः॥योऽन्तर्हितो हृदिगतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः॥यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहांगतो नः पित्राऽनुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तं त्वा विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥ नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥ ४८ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु तं पदयो रमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० श्रीवैकुण्ठविप्रशापयोर्वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

वाले इन्द्रकी पदवीका भी आदर नहीं करते हैं। हे भगवन् ! आपकी कथा, कीर्तन, तीर्थ, यश हो ऐसे कर्ममें कुशल, रसज्ञ, तुम्हारे चरणोंकी शरण होते हैं॥४८॥ हे भगवन् ! आपके भक्तोंको शाप दिया उससे हमें भले ही नरकोंमें वास मिले,परन्तु चित्त भ्रमरसमान सदा तुम्हारे पाद-पद्मोंमें रमा रहे।तुलसी सदृश आपसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम्हारे चरणकी शोभा वाणी कहे और कर्णके छिद्र आपके गुणोंसे पूरित रहें॥४९॥ हे विपुलकीर्ते ! जो यह रूप आपने प्रकट किया इससे हमारी दृष्टिको अत्यन्त आनंद हुआ,इस कारण आपको वारंवार नमस्कार है,अजितेन्द्रि-योंको अप्रकट हो तो भी आप हमारे सम्मुख हो ॥५०॥ इति श्रीम० तृ० भा० टी० श्रीवैकुंठमहिमाविप्रशापवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

दोहा–सोलहमें हरिसान्त्व सुनि, मुनि मन मानी हार। दैत्यदेहपर भी मुनिन्ह, कीन्ही कृपा अपार ॥ ब्रह्माजी बोले–इस प्रकार जब मुनीश्वरोंने जगदीश्वरकी स्तुति की, तब योगाभ्यासी मुनियोंकी अत्यन्त सराहना कर श्रीवैकुण्ठवासी वासुदेव ॥ १ ॥ भगवान् बोले–इन दोनों मेरे पार्षदोंने आपका अपराध किया और मेरे धर्मपर कुछ ध्यान नहीं दिया, इस कारण ये मेरे भी अपराधी हैं ॥ २ ॥ मेरे अनुवर्ती जो आप हैं और आपने इनको दंड दिया, यह बहुत अच्छा किया, मेरी भी यह सम्मति है, क्योंकि जो लोग विप्रोंका अनादर करते हैं, वे मुझको भी प्रिय नहीं लगते ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परमदेवता हैं और सदा मेरा चित्त ब्राह्मणोंके चरणोंमें रहता है, मेरे इष्टदेव ब्राह्मण हैं इसलिये आपको मैं प्रसन्न करूंगा, क्योंकि हमारे पार्षदोंने जो आपका अपराध किया है वह मैंने ही किया है; इस कारण मैं अपने शिर धरता हूं

ब्रह्मोवाच॥इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ॥ प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच॥एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम्॥२॥यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥ सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥ ५ ॥ यस्यामृतामलयशश्श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदांश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥ ६ ॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्ध शीलम् ॥ न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥ ७ ॥

॥४॥ कि जिसके अनुचर अपराध करते हैं, तो लोक उसके स्वामीको ही दोष देते हैं उनका नाम कोई नहीं लेता॥ असाधुवाद सब कीर्तिका नाश करता है, जैसे श्वेतकुष्ठका रोग सब शरीरको बिगाड़ देता है ॥ ५ ॥ जो मुझ श्रीमन्नारायणका सुधासागर समान निर्मल यश श्रवणसे पान करना जगत्के श्वपचपर्यन्तको क्षणमात्रमें पावन पवित्र करता है। यह सब ब्राह्मणोंकी ही सेवाका प्रताप है और यह कीर्ति और वैकुण्ठकी पदवी आप ही लोगोंके प्रसादसे प्राप्त हुई; इस कारण जो तुम्हारी वृत्तिके विपरीत जो हमारी भुजातुल्य इन्द्रादि हों तो भी उस समय मार डालो कुछ विचार मत करो ॥ ६ ॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करके मेरे चरणकी पवित्र रजसे शीघ्र सब पाप नष्ट होते हैं ब्राह्मणोंकी ही सेवा

करके यह शील और बड़ाई विरक्तता मुझको प्राप्त हुई है और इसी कारण लक्ष्मी मेरा त्याग नहीं करती जिस लक्ष्मीके लवमात्र अनुग्रहसे ब्रह्मादिक नित नये नियमोंको करते हैं ॥ ७ ॥ यज्ञमें यजमानकी चरु पुरोडाशादि हवि अग्नि मुखसे भोजन करती है ऐसे मैं भोजन नहीं करता हूँ। जैसा घृत टपके ऐसा मोहन भोगादिक ग्रासग्रासमें रसका स्वादपूर्वक भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके मुखसे हम पाते हैं और उनके कर्म फलोंसे मैं उनपर प्रसन्न होता हूं ॥ ८ ॥ जिन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दके निर्मल रज अखण्ड अकुण्ठित योग मायाके वैभव वाला और चरणोदकरूप गंगासे शिवसहित सबको पवित्र करने वाला मैं किरीटोंपर धारण करता हूं उन ब्राह्मणोंका अपमान कौन कर

नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ॥ यद्ब्राह्मणस्यमुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ ८ ॥ येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ॥ विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सह चन्द्रललामलोकान् ॥ ९ ॥ ये मे तनूर्द्विजवरान् दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ॥ द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान् गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥ १० ॥ ये ब्राह्मणान् मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥ वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाह मुपाहृतस्तैः ॥ ११ ॥

सकता है ? * ॥९॥ मेरे शरीरके सब काम पूरक मेरे ब्राह्मण जिनका मेरे विना कोई रक्षक नहीं, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो भेद बुद्धिसे देखते हैं उनकी दृष्टि पापसे नष्ट है, ऐसे ब्राह्मणद्रोहियोंको मेरे दंडदाता यमके सर्पवत् क्रोधी गीध रोषपूर्वक चोचोंसे छेदन करते हैं ॥१०॥ और जो कठोरभाषी ब्राह्मणोंको ईश्वरके समान पूजते हैं और हृदय जिनके तुष्ट स्मितसुधासिक्त पंकजसे मुखवाले प्रेमशोभित वाणीसे स्तुति करते हैं मानो वे मुझको संबोधन करते हैं, उन्हीं महात्मा पुरुषोंने मुझको वशमें कर रक्खा है; जैसे भृगुजीने मेरे हृदयमें लात मारी तब

* कवित्त–विघन विनाशै भावपाश होत नाशै पुण्यपुञ्जकी प्रकाशै रंगरंगाके ॥ सुखकी समाजै उपराजै साज छाजै क्षितिवनसे गराजै शीश ईशानंगाके ॥ कहै पदमाकर सुजान कर शानै जानै तानै मनकान भोग आनै देव अंगाके ॥ सुन्दर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे ओघ भंगा सत रंगा देव गंगाके ॥

मैंने कुछ नहीं कहा, उसी भृगुलताके चिह्नसे ऋषिमुनियोंमें मेरी प्रतिष्ठा हुई ॥११॥ ब्राह्मण मेरा शरीर है, जो धीर पुरुष हैं, वे इसमें अन्तर नहीं समझते और जो लोग ब्राह्मणोंमें और मुझमें भेद समझते हैं, वे अभागे यमपुरके भागी होते हैं और जन्मानुजन्म नरकमें वास करते हैं, वह इन पार्षदोंने मेरे अभिप्राय और मेरे प्रभावको नहीं जाना, ये दोनों पार्षद तुम्हारे अपराधकी उचित गतिको शीघ्र प्राप्त होकर मेरे निकट आयेंगे, यह मेरी कृपा है कि, मेरे भृत्योंको थोड़े ही काल वनवास रहे, क्योंकि मेरा विरह नहीं सह सकेंगे ॥१२॥ ब्रह्माजी बोले कि सुन्दर प्रकाशित ऋषिकुल योग्य विष्णुकी मनोहर वाणी सुनकर, उन सनत्कुमार महात्माओंकी आत्माओंकी आत्मा तृप्त न हुई ॥ १३ ॥ उस सुन्दर, श्रेष्ठ, थोड़े अक्षर अधिक गंभीर अत्यन्त अर्थ-गौरववाली भगवान्‌की वाणी सुननेपर भी भगवान्‌के उस कथनका क्या

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मनुदष्टानां तेषामात्माऽप्यतृप्यत ॥१३॥ सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ॥ विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ ते योगमाययाऽऽरब्धपारमेष्ठ्य महोदयम् ॥ प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभित त्वचः ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ न वयं भगवन् विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मणस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥ त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकल्पो भवान्मतः ॥ १८ ॥

भाव है, यह निश्चितरूपसे नहीं समझ सके कि श्रीवैकुण्ठनाथकी इच्छा क्या है, हमारी बड़ाई करते हैं या बुराई; अथवा हमारे शापको छुड़ाना चाहते हैं, वा अधिक किया चाहते हैं ॥ १४ ॥ योगमायासे प्राप्त महा उदयवाले देवदेवसे हाथ जोड़ प्रसन्नवदन रोमांचित ॥ १५ ॥ सनकादिक ऋषि बोले कि, हे भगवन् ! हे देव ! हे आनन्दमूर्ते ! तुम्हारे करनेकी इच्छाको हम नहीं जानते, आपने हमपर बड़ा अनुग्रह किया, जो हमें दर्शन दिया, और हमसे बोले ॥१६॥ हे नाथ ! आप ब्राह्मण हो, आपके परमदेवता ब्राह्मण हैं, आप देवताओंके देव आत्मदेव हैं ॥ १७ ॥ सनातन धर्म आपहीसे है, आप ही अवतार लेकर संसारकी रक्षा करते हैं और परमगुप्त धर्मके निर्विकाररूप आप

ही हैं ॥ १८ ॥ निवृत्तिमार्गमें लगे हुए योगीजन जिनके अनुग्रहसे अनायास तर जाते हैं, वह आप परेसे परे जो हैं, वह भी अनुग्रह करते हैं ॥ १९ ॥ जो लक्ष्मी क्षण-क्षण आपके चरणोंकी सेवा करती हैं और धनार्थी सब उन पदोंकी रजको शीशपर धारण करते हैं और धनियोंसे अर्पित तुम्हारे चरणारविन्दमें तुलसीकी नवीन मालाके धाम भ्रमर पंक्तिकी भांति वैकुण्ठकी इच्छा श्रीजी सदा करती हैं ॥२०॥ एकान्तचरित्रवालोंसे अनुवर्तमान श्रीजीको आप अत्यन्त आदर नहीं करते हो, परन्तु परमभागवतोंमें तुम्हारा प्रसङ्ग ब्राह्मणोंके मार्गकी पुण्यरजसे पुनीत हो, श्रीवत्सचिह्न भृगुलताका चिह्न धारणकर तुम सब ऐश्वर्यके पात्र हुए ॥ २१ ॥ आप अपने धर्मके तीनों युगोंमें

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् ॥ योगिनः स भवान्कि स्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥ १९ ॥ यं वा विभूतिरुप यात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ॥ धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसी नवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥ २० ॥ यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियेत्परमभागवतप्रसङ्गः ॥ स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥ २१ ॥ धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुगस्त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ॥ नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥ न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ॥ तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत् प्रमाणम् ॥ २३ ॥ तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धतारेः ॥ नैतावता अधिपते बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥ २४ ॥

तप, शौच, दया, तीनों चरणोंसे चराचर इस विश्वको ब्राह्मण देवताओंके लिये निश्चय धारण करते हो और उनके घातक रज, तमको सब वरदायक आप हमारे तनुसे दूर करते हो ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! आप अपने रक्षायोग्य उत्तम ब्राह्मणोंके कुलोंकी अत्यन्त जो पूजन करके कोमलवाणीसे रक्षा न करते और मर्यादा न बांधते तो कल्याणरूप धर्म्ममर्य्यादा आपकी बांधी हुई नष्ट हो जाती। श्रेष्ठ पुरुष जो कार्य करते हैं उनका प्रमाण सब लोग मानते हैं, * ॥२३॥ अत्यन्त शुद्ध, सत्त्वमय, क्षेम विधान करनेको जीवोंके लिये अपनी शक्तियोंसे

* "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते"

जिन्होंने धर्मप्रतिपक्षी दूर किये हैं, आपको ब्राह्मणोंका पूजन करना योग्य ही है, त्रिगुणमायाके स्वामी विश्वभर्ताका तेज कुछ ऐसी बातोंसे नष्ट नहीं होता। आपको नमस्कारादि करना भी एक आनन्द है ॥ २४ ॥ हे अधीश ! इन दोनोंको और दण्डविधान करो अथवा कोई कपटरूप वृत्ति इनसे करानी चाहिये और जो हमारे योग्य उचित दण्ड हो वह हमें दीजिये, जो निरपराधी पार्षदोंको हमने शाप दिया ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होकर फिर शीघ्रही मेरे समीप आयेंगे; क्रोधावेश समाधिबन्धनके योग्यका यही फल है, इनको आपने कुछ अनुचित शाप नहीं दिया, वरन् मैंने ही आपके द्वारा इनको यह शाप दिलवाया

यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम् ॥ अस्मासु वाय उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ॥ भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ॥ वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥ २७ ॥ भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ॥ ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥ २९ ॥ ❋ मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥ ३० ॥

है, हे ब्राह्मणो ! आप तो सब जानते हो ॥२६॥ ब्रह्माजी बोले कि, सनकादिक सब मुनिजन नेत्रानन्दपात्र श्रीवैकुण्ठनाथ और वैकुण्ठलोक स्वयंप्रकाश स्थान देखकर ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्‌की प्रदक्षिणा दे प्रणाम कर आज्ञा ले वैष्णवी श्रीशोभाकी प्रशंसा कर परमानन्दित होकर चले गये ॥ २८ ॥ तब उन दोनों पार्षदोंसे श्रीलक्ष्मीनाथजी बोले कि तुम कुछ भय मत करो, तुम्हारा सब प्रकार आनन्द होगा, तुम्हारा सन्ताप देख यद्यपि मैं ब्रह्मतेजको दूर कर सकता हूँ, परन्तु यह मुझको उचित नहीं ॥ २९ ॥ जब हम उपरामको प्राप्त हुए तब आनन्दसे क्रोधित होकर श्रीलक्ष्मीजीने प्रथम ही कहा था, कि सनत्कुमारादिक मुनि द्वारपर आयेंगे और उनको जय विजय पार्षद रोकेंगे

हे पार्षदो ! अपने क्रोधके योगसे ब्राह्मणोंके शापसे मोक्ष पाकर थोड़े, कालमें मेरे समीप आओगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार दोनों द्वारपालोंको समझाबुझाकर विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित सबसे सुन्दर श्रीलक्ष्मीजी समेत श्रीवैकुण्ठनाथने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ वे दोनों पार्षद पवित्रात्मा महादुस्तर हरिलोकसे विप्रोंके शापसे महाविस्मयको प्राप्त हुए ॥३२॥ हे पुत्रो ! जिस समय वे वैकुण्ठसे गिरे तो विमानोंके आगे महा हाहाकार हुआ ॥३३॥ वे दोनों विष्णुके पार्षद दितिके उदरमें कश्यपजीके महातेजरूपसे प्रविष्ट हैं ॥३४॥ उन दोनों असुरोंके तेजके आगे तुम लोगोंके तेजका तिरस्कार हो गया, इसी कारण संसारमें तुम्हें अन्धकार दिखाई देता है;अब तुम उन्हीं वैकुण्ठनाथका

द्वास्स्थावादिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३१ ॥ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३२ ॥ तदा वैकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥ ३४ ॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥ ३५ ॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ॥ ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥

भजन करो, वे श्रीनाथ, भक्तहितकारी, दीनवत्सल, दीनानाथ तेजरूप तुम्हारे तेजको बढ़ायेंगे ॥३५॥ विश्वकी उत्पत्ति स्थितिका हेतु उस मायाका योग आद्य योगीश्वरोंसे न जाना जाय वे ही आदि पुरुप अविनाशी सर्व शक्तिमान् भगवान् वासुदेव तुम्हारा क्षेम करेंगे; हमारे विचारसे क्या होगा ? वे त्रिगुणोंके स्वामी हैं ॥३६॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां वैकुण्ठनाथकर्तृकं वैकुंठब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–इस सत्रह अध्यायमें, सुमर रमापतिकांत । हिरनकशिपुहिरण्याक्षको, वरणौं जन्मवृतांत ॥ मैत्रेयजी बोले–हे विदुर ! दितिके गर्भका सब वृत्तांत और ईश्वरके अवतारकी कथा सुन सब देवता अपने-अपने स्थानको

चले गये॥१॥ दितिने सौ १०० वर्षतक गर्भ धारण किया; परन्तु पतिके वचनोंसे पुत्रोंकी ओरसे शंकित रहती थी; जब शत वर्ष पूरे हुए तब सती साध्वी दितिने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥२॥ उनके जन्म लेते ही धरती व आकाश व अन्तरिक्ष इन लोकोंमें बहुत भयसूचक अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे ॥ ३ ॥ पर्वतों सहित भूचाल होने लगा, दशों दिशाओंमें अग्निप्रज्वलित हो गयीं, उल्कासहित जहां-तहां वज्रपात होने लगे; आर्तके हेतु केतुका उदय हुआ ॥ ४ ॥ वारम्वार सर्पवत् फुंकार करती हुई चारों ओरसे महाभयंकर पवन चलने लगी, उस महाप्रचण्ड समीरके वेगसे वृक्ष जड़ सहित उखड़ कर पक्षियोंके तुल्य उड़ने लगे ॥ ५ ॥ मूसलधार जलसे और प्रचण्ड विद्युद्गणकी द्युतिसे

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी ॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥ ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ॥ उन्मूलयन्नगपतीन् वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥ उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे ॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥ ६ ॥ चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ॥ सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥ ७ ॥ मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययोः ॥ निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥ अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् ॥ सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥ ९ ॥

सूर्यकी सम्पूर्ण प्रभा नष्ट हो गयी, आकाशमें ऐसा अँधियारा छा गया कि, कोई स्थान दृष्टि नहीं आता था ॥६॥ समुद्रके जलमें महाघोर जलाघातके शब्द उठने लगे, लहरें अत्यन्त वेगसे उठने लगीं जिससे मकरादिकका चित्त चलायमान हो गया। वापी, कूप, तड़ाग, जिनमें पंकज खिल रहे और गंभीर नीर झकोर रहे थे वे सब सूख गये। अथाह नदियाँ चलायमान हो गईं, सूर्य और चन्द्रमामें मण्डल दिखाई देने लगे ॥ ७ ॥वारंवार विना बादल गर्जन शब्द सुनाई आने लगा। राहु, केतु, सूर्य, चन्द्रमाको विना ही योग हुए ग्रसने लगे, पहाड़ोंमें रथकासा शब्द होने लगा ॥ ८ ॥ शृगाल, उलूक दिनमें ही महाभयंकर शब्द करने लगे, और गीदड़ी ग्रामोंके भीतर आ आकर मुखसे

भयंकर अग्नि उगलने लगीं और अति डरावनी बोली बोलने लगीं, अग्निका तेज मन्द पड़ गया ॥ ९ ॥ सारंगीकासा शब्द ऊपरको मुख उठा उठाकर और नेत्र बंदकर अनेक-अनेक प्रकारकी वाणी श्वान बोलने लगे ॥ १० ॥ हे विदुर ! गर्दभ तीक्ष्ण खुरोंसे पृथ्वीको खोदते और भयंकर शब्द करते हुए मत्त होकर चारों तर्फ उनके चिल्लानेका शब्द सुन-सुनकर हृदय विदीर्ण होता था ॥११॥ गधोंके रेंकनेके भयानक कोलाहलसे पक्षी भयभीत हो नीड़ोंसे गिर-गिर कर और पशु घरोंमें वनमें विष्ठा मूत्र बारम्बार करने लगे ॥ १२ ॥ त्रासके मारे गायोंके थनोंसे रुधिर बहने लगा; बादलसे पीब और राधकी वर्षा होने लगी, देवताओंकी प्रतिमाएँ मन्दिरोंमें रुदन करने लगीं, विना

संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ॥ व्यमुञ्चन् विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् ॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन् वरूथशः ॥ ११ ॥ रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन् खगाः ॥ घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ॥ व्यरुदन् देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥ १३ ॥ ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः ॥ ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥ १५ ॥ तावादिदैत्यो सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ॥ ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥ १६ ॥ दिवि स्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ॥ गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्यां सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥

पवन वृक्ष उखड़ने लगे ॥ १३ ॥ पुण्यतम नक्षत्रगण, गुरु बुध आदि ग्रहोंकी दीप्ति और क्रूरमङ्गलादिक वक्र गतिसे विपरीत चाल द्वारा परस्पर युद्ध करने लगे ॥१४॥ उस तत्त्वके न जाननेवाली प्रजा अनेक-अनेक उत्पात देखकर डाहके कारण प्रलयकाल समझ अत्यन्त शोक करने लगी; परंतु ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कुछ भय नहीं माना ॥ १५ ॥ वे दैत्य बलपूर्वक अपने पुरुषार्थको प्रकट कर कर पाषाणसम शरीरसे पर्वतकी भांति बढ़ने लगे ॥ १६ ॥ जिसके सुवर्णके किरीटका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता था, इससे सब दिशाओंको अवरोध किये दमकते बजुल्ले भुजाओंमें पहिने, चरणोंसे पृथ्वी कँपाते, सुन्दर तागड़ी शोभित कमरसे सूर्यको उल्लङ्घन कर

स्थित हुए (अर्थात् कोंधनीकी चमक सूर्यप्रभासे अधिक थी) ॥ १७ ॥ प्रजापति कश्यपजीने उन दोनोंका नामकरण किया, जो कि पहले कश्यपसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजागणने हिरण्यकशिपु कहकर पुकारा और जो दितिसे पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष कहने लगे । * ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने अपनी भुजाओंके बलसे और ब्रह्माके वरदानसे लोकपालोंको अपने वशमें कर लिया, वे बड़े भारी बलवान् सबसे अवध्य योधा हुए ॥ १९ ॥ हिरण्याक्ष उसका प्यारा भाई दिन-रात उससे प्रीति रखता था, वह गदा

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साऽग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुस्सहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ॥ वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥ भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥ स वै तिरोहितान् दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद् भृशम् ॥ २३ ॥

हाथमें लेकर स्वर्गमें गया और युद्धकी इच्छासे किसी रणधीरको खोजने लगा ॥२०॥ वह असह्यवेगी शब्दायमान सुवर्णके नूपुर वैजयन्ती माला पहने और कन्धेपर महाभयानक गदा धरे ॥ २१ ॥ शूरता और बलसे बढ़ा हुआ अभिमान, जिसपर कोई अंकुश नहीं कि, जो किसीका भय न माने, उनके भयसे देवतालोग कंदराओंमें जा छिपे, जैसे गरुड़के भयसे उरग बिलोंमें घुस जाते हैं ॥२२॥ दोनों भ्राताओंने अपने तेजसे देवताओंको भागा जान फिर दैत्यराज इन्द्रसमेत देवगणोंको देखकर अत्यन्त गम्भीरनाद किया ॥ २३ ॥

* भाव यह है कि, ''जिस समय वीर्य योनिके पुष्पमें प्रवेश करता है तो वीर्य दो भागसे होकर पहिले पीछे होकर प्रवेश करता है तब यम (दो गर्भ) होते हैं फिर वे दोनों गर्भ माताके पेटसे दूसरे क्रमसे निकलते हैं अर्थात् जो बिन्दु गर्भाधानके समय प्रथम योनिके पुष्पमें पड़ता है, उस बिन्दुका गर्भ माताके गर्भाशयसे पीछे निकलता है और जो बिन्दु योनिपुष्पमें पीछे गिरता है उसका गर्भ पहिले निकलता है'' सोई पिण्डसिद्धिमें कहा है –''यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत् । द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात् '' ॥१॥अर्थ-जिस समय गिरता हुआ वीर्य दो भागसे होकर पुष्पमें प्रवेश करता है तो दो गर्भ होते हैं और जन्म दूसरे क्रमसे होता है ।

वहांसे लौट क्रीड़ाकी इच्छा कर गम्भीर शब्द करके महाबली प्रमत्त हाथीके सदृश समुद्रमें घुसकर स्नान करने लगे ॥२४॥ इनके जलमें घुसते ही वरुणके सेनापति जलके गण अधीरबुद्धिवाले भ्रमसहित उनके तेजसे ताड़ित हो घबड़ाये हुए बहुत दूरको भाग गये ॥२५॥ हे तात ! वे दोनों महाबली अनेक वर्षों तक पवनप्रेरित सागरकी लहरोंको वारंवार लोहेकी गदासे मारते थे और जल उछल-उछलकर आकाशको जाता था, उसके वेगसे नभपर अधीर हो होकर नीरमें पतित होते थे और जलमें गदा लगनेसे जलचर व्याकुल हो-होकर अपने प्राण छोड़ते थे। इस प्रकार जलविहार कर प्रचेताकी विभावरीनाम्नी पुरको गये ॥२६॥ वहां जाकर असुरलोकपालक जलके गणोंके ऋषभ प्रचेताको प्रणाम

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन्गम्भीरं भीम निस्स्वनम् ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं-प्रचेतसः ॥२६॥ तत्रोपलभ्या सुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ॥ स्मयं प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७ ॥ त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ॥ विजित्य लोकेऽखि-लदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽजयत्प्रभो ॥ २८ ॥ स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥ २९ ॥ पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रण-मार्गकोविदम् ॥ आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥ ३० ॥

कर मुसकाकर हँसे और नीचोंके समान बोले-हे अधिराज ! हमसे युद्ध करो ॥२७॥ हे प्रभो तुम सब लोकपालोंके स्वामी महायशस्वी दुर्मद वीरमानियोंके पराक्रमनाशक हो, आपने प्रथम सब दैत्यदानवोंको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था ॥ २८ ॥ सो इस प्रकार अत्यन्त मदसे वैरसे भगवान् जलके पति हँसाये गये तब वरुण अत्यन्त उठे हुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे शांत कर बोले कि दैत्येन्द्र ! अब तुम तो आये हो, पर मैं युद्धादिककी सब कुलशता छोड़कर भगवत्के भजनमें सदा लवलीन रहता हूँ, मैं तुम्हारे समान योद्धा नही हूँ ॥ २९ ॥ हे असुराधिप ! पुरातन पुरुषसे अधिक रणविद्यामें चतुर और दूसरा कोई मुझको दृष्टि नहीं आता, वे संग्राम करनेमें बड़े विचक्षण हैं,

वे ही आपका मन सन्तुष्ट करेंगे, आप उनके पास जाइये आप सरीखे मनस्वी सदा उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३० ॥ उन महावीरके समीप जा गर्व नष्ट कर रणभूमिमें शृगाल-कुत्तोंके मध्यमें तुम सोवोगे, जो परमात्मा तुम सरीखे असन्तोंके नाशार्थ सज्जनोंके ऊपर कृपा करके अनेक अवतारोंको धारण करते हैं ॥३१॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणेतृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अष्टादश अध्यायमें, दैत्यराज ह्वै क्रुद्ध । जाय रसातलमें कियो, श्रीवराहसों युद्ध ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर! वरुणके दीन वचन सुन महामनस्वी अभिमानी वरुणको कुछ वस्तु न मानकर नारदजीसे पूछा कि वाराहजी कहां रहते हैं? नारदजी

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यते वीरक्षये श्वभिर्वृतः ॥ यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० हिरण्याक्षदिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥ हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥ २ ॥ आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ॥ न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥

बोले कि, श्रीवाराहभगवान् रसातलमें वास करते हैं, नारदजीके वचनका विश्वास मान हिरण्याक्षने अतिद्रुतगतिसे पातालमें प्रवेश किया ॥१॥ वहां सब ओरसे जीतनेवाले धराधारी डाढ़के अग्रभागपर पृथ्वीको धर ऊपरको उठाये लाते थे और अपने नेत्रोंकी लाल-लाल शोभासे दैत्योंके तेजको दूरसे नाश करनेवाले श्रीवाराह भगवान्को देख हिरण्याक्ष हँसकर बोला, कि वनवासी शूकर तुम ही हो । दूसरा अर्थ सरस्वती कहती है, वनगोचर, मृगजलशायी; जिन्हें योगिजन खोजते हैं ॥ २ ॥ फिर हिरण्याक्ष बोला कि ब्रह्माने यह पृथ्वी हमको इस स्तुतिमें समर्पण कर दी है सो छोड़ दो, तुम अज्ञानी हो । दूसरा अर्थ यह है, हे सर्वज्ञ ! हे सुरधाम ! हे सुरोत्तम ! हे शूकरा-

कृते ! मेरे सम्मुख इस पृथ्वीसमेत तुम मंगलको प्राप्त न हो सकोगे ॥ ३ ॥ हे परीक्षित् ! तुम हमारे सपत्नोंके नाशार्थ उत्पन्न हुए हो, सो तुम मायासे असुरोंका संहार करते हो, हे चतुर ! तुम्हारा बल योगमाया ही है, वह भी थोड़ा है, अब मैं तुमको मारकर अपने सुहृदोंका शोक दूर करूँगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे शिरको तोड़नेवाली मेरी भुजा जब गदासे तुम्हारा मस्तक चूर्ण करेगी; फिर जो तुम्हें भेंट देनेवाले ऋषि व देवता हैं वे स्वयं ही निर्बल हो जायँगे ॥५॥ शत्रुके दुष्ट वचन रूप शस्त्रोंसे व्यथित शरीर डाढ़के अग्रभागसे पृथ्वीको भीत देख उसके बुरे वचनोंको मृषा मान जलसे बाहर निकले । जिस प्रकार ग्राहोंसे मार खाकर हस्तिनीसहित गज निकलता है ॥ ६ ॥ सुवर्णके रंगसमान बाल, महाकराल

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हंस्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥ त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥ स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद् ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥ तं निस्सरन्तं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ॥ करालदंष्ट्रोऽशनिनिस्स्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥ परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ॥ मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचंडमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् मृगये ग्रामसिंहान् ॥ न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र॥१०॥

डाढ़, वज्रके समान शब्दयुक्त विकट रूप वाराहजीको जलसे निकलते देख हिरण्याक्ष उनके पीछे धावमान हुआ, जैसे गजराजके पीछे मगर दौड़ता है । और बोला कि अरे निर्लज्ज ! दुष्टोंके कौन कर्म निंदित हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति कर रहे थे और देवता जिनपर फूल बरसा रहे थे,ऐसे वाराहजीने जलपर पृथ्वीको धरकर उसको अपनी आधाररूप शक्तिसे स्थित किया ॥८॥ वाराहजीके पीछे गदा हाथमें लियेसुवर्णके आभूषण पहने, सोनेका ही कवच धारण किये और खोटे वचनोंसे वारंवार हृदयमें पीड़ा देता हुआ चला आता था, उस हिरण्याक्षसे प्रचण्ड-क्रोधवाले वाराहजी हँसकर बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्जी बोले—हिरण्याक्ष ! तू सत्य कहता है, हम वनवासी शूकर हैं,

परन्तु तुम सरीखे श्वानोंको खोजते फिरते हैं, रे अभद्र ! जो मृत्युरूप पाशसे बँधे हुए हैं उनके कुवचनोंको कभी धीर लोग ग्रहण नहीं करते ॥ १० ॥ यह तूने सत्य कहा कि यह धरती मेरी है, रसातलवालोंकी धरोहरको हजम करनेवाले हम ही हैं,जब देखा कि भागनेसे निस्तार नहीं,तब तुम्हारे सम्मुख समुद्रके तट पर अब संग्राममें स्थित हो गये हैं,क्योंकि तुझ सरीखे वीरोंके वैर विसारके भागकर हम कहां जायँगे ॥ ११ ॥ तुम पदाति रथियोंके स्वामी हो, यूथपोंके स्वामी हो, अवितर्क और विवादको तज हमारे मारनेका कोई उपाय शीघ्र कीजिये; जो अपने बंधुगणोंसे अनृण हो उनके आंसू पोंछो । जो वीर अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, वे सभामें बैठनेके योग्य नहीं होते ॥ १२ ॥

एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविताऽस्ते ॥ तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान् प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीडयमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान् मन्युप्रचलितेन्द्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥ भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवञ्चयत् तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥ १५ ॥ पुनर्गदां स्वमादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥ ततश्च गदयाऽऽरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, भगवान्‌ने जब ऐसे आक्षेप कर क्रोधसे अत्यन्त उपहास किया, उस समय दानवेन्द्र महाक्रोधमें भर गया, जैसे काला भुजङ्ग क्रीड़ा करनेको क्रोध करे ॥ १३ ॥ क्रोधसे इन्द्रियाँ चलायमान हो गयीं, गम्भीर श्वास भर-भर घोर गदा ले वह वाराहभगवान्‌की ओर धाया और महाडरावना नाद करके बड़े वेगसे वाराहजीके वक्षःस्थलमें गदा प्रहार किया ॥१४॥ वैरीकी चलायी हुई छातीपर आती हुई गदाको बचाकर, तिरछे उछलकर ऐसे निकल गये, जैसे योगीजन कालसे बच जाते हैं ॥१५॥ वह असुर फिर दूसरी गदाको वारंवार घुमानेलगा, उसे आता देख श्रीपति दांतोंसे अधरोंको पीसते हुए क्रोधसहित दौड़े॥१६॥फिर भगवान्‌ने शत्रुकी दाहिनी भ्रुकुटीके बीचमें

गदाका प्रहार किया । हे विदुर ! उस कुशलराक्षसने वही गदा फिर भगवान्‌के ऊपर फेंककर मारी ॥१७॥ इस प्रकार भारी-भारी गदाओंसे हिरण्याक्ष और वाराह भगवान् परस्पर जीतनेकी इच्छा करके घोर युद्ध करने लगे । वह इनको मारता और ये उसको मारते, इस प्रकार दोनों युद्ध करते थे ॥ १८ ॥ दोनों वीर महारणधीर युद्धमें जिनके मन, तेज गदाप्रहारोंसे जिनके शरीर घायल, घावोंसे रुधिरकी धारा निकलते देख क्रोध क्षणक्षणमें अधिक होता था । और पृथ्वीके निमित्त इस प्रकार लडते थे कि जैसे गौके निमित्त वृषभ लडते हैं*॥१९॥

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥ जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ॥ विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्याभादिलायामिवशुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायया गृहीतवाराह तनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरगादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसंकृत प्रतीकारमहायविक्रमम् ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीर्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देव देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥ विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जिस दैत्यके मारनेको यज्ञ अवतार श्रीपति परमात्माने वाराहतनु ग्रहण किया है, द्वेषियोंके मायावी युद्ध देखनेको ऋषियोंसहित ब्रह्माजी आये ॥२०॥ चतुरता जिसको प्राप्त, मोहसे दूर, अनेक प्रतीकारकारी; जिसके पराक्रमको कोई रोक न सके, ऐसे दैत्यको बलवान् जान सहस्र ऋषियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजी आदिवाराहरूपधारी श्रीमन्नारायणके निकट जाकर ॥२१॥ बोले, कि हे देव ! हे भक्तवत्सल ! आपके चरणारविन्दके समीप प्राप्त होनेवाले देवता, गौ, ब्राह्मण इन निरप-

---

* दो बीर धीर अतिबलनिधान । दोउ गदायुद्धमें अतिसयान ॥दोउ चहत आपनी विजय भूर । दोउ किये चित्तसे शंक दूर ॥ दोउ करहिं युद्धमें सिंहनाद । दोउ करहिं परस्पर बीरवाद ॥ दोउ जात कबहिं उड़के आकाश । दोउ गिरत करन चहत विनाश ॥ दोउ लगत गदा अंगन प्रहार । दोउ देहनते बहै रुधिरधार ॥ दोउ ओर शोर है रह्यो घोर । भर रह्यो भुवनमें चहूं ओर ॥ जब हिरण्याक्ष है जात वाम । तब गहें नाथ दाहिनी ठाम ॥ जब हिरण्याक्ष दक्षिनहिं जात । तब वाम दिशा श्रीपति लखात ॥ जिमि लरहिं वृषभ द्वै सुरभिहेत । तिमि धरणिहेतु दोउ बलनिकेत ॥ १९ ॥

राधी जीवोंको ॥ २२ ॥ वृथा ही यह महाभयकारी, दुष्टाचारी हम लोगोंको सदा क्लेश देता है, हमसे ही वर पाकर हमारे ही मारनेको उपस्थित है, महाकण्टक देवताओंको सब लोकोंमें खोजता फिरता है ॥ २३ ॥ हे सुरोत्तम ! इस मायावी महाअभिमानीको मत रक्खो, इसको अपने बलका बड़ा घमण्ड है, हे नाथ ! बालकके समान सर्पकी पूँछ पकड़-पकड़ मत खिलाओ, सांपका खिलाना अच्छा नहीं होता ॥ २४ ॥ हे कृपासिन्धो ! यह दारुण असुर जबतक सन्ध्या समय अपने अधिकारको न पाये, पहले ही इसका विध्वंस हो जाय तो अच्छा है, इसलिये अपनी योगमायामें स्थित होकर इस दुष्टको तुम शीघ्र मारो ॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन् ! यह सन्ध्या समय

आगस्कृद्भयकृद् दुष्कृदस्मद्राद्ध वरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥ २३ ॥ मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ॥ आक्रीडबालवद्देव यथाऽऽशीविषमुत्थितम् ॥ २४ ॥ न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ॥ स्वां देवमायामास्थाय तावज्जह्यधमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा संध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो ॥ उपसर्पति सर्वात्मन् पुराणां जयमावह ॥ २६ ॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥ २७ ॥ दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥२८॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० हिरण्याक्षयुद्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

डरावना दैत्योंको हुलास और लोकको विनाश करनेवाला है। हे प्रभो ! इस समय देवताओंकी जय करो ॥ २६ ॥ इस समय इसके मारनेका मुहूर्त और अभिजित योग भी आ गया है, हम सुहृदोंके कल्याणार्थ शीघ्र इस कष्टसे हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ हे संसारके मंगलकर्ता ! भयभीतोंके भयहर्ता जिसके मारनेको आपने यह वाराहतनु धारण किया वह पापी स्वयं ही आपके सम्मुख आ गया, अब इस पराक्रमीको संग्राममें मार देवताओंकी रक्षा करो, जैसे इनकी रक्षा की थी। * इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे भाषाटीकायां तृतीयस्कन्धे श्रीवाराहहिरण्याक्षयुद्धवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

* कवित्त—नन्दके दुलारे हम दास हैं तुम्हारे सदा, भक्तनके काज आप कोटिरूप धारेजू । गिरिवर करधारे प्रह्लादजन उबारे, और हिरण्याक्ष मारे औ ध्रुवभक्त तारेजू ॥ इन्द्रमान मारे और दुष्ट सब दल डारे, काटे गजफंद देवीके निवारेजू । द्रोपदीकी लाज जैसे राखी कुरुसभा मांहि, ऐसे ही हमारी राखो कृष्ण प्यारेजू ॥

दोहा—उन्निसवें अध्यायमें, अज विनती सुनकान । कियो प्रशंसा योग्य वध, हिरण्याक्ष बलवान ॥ मैत्रेयजी बोले कि, निष्कपट सुधासम ब्रह्माके वचन सुनकर मुसकाय प्रेमके कटाक्षसे ग्रहण किये ॥ १ ॥ जब अपने सम्मुख उस शत्रुको विचरता और चारों ओरसे भयरहित देखा तब उसके निकट शीघ्र कूदकर वाराहजीने उसकी ठोड़ीमें एक गदा मारी ॥ २ ॥ वह सुवर्णसे बनी फेंकी हुई गदा भगवान्‌के करसे छूट घूमकर गिरी तो अद्भुत ही कार्य हुआ ॥३॥ तब भगवान्‌को निरायुध देख संग्रामका धर्म मान शस्त्र न चलाया, किंतु वाराहजीको भी कोप बढ़वाया ॥४॥ इस आश्चर्य्यको देख देवता मनमें शंका मान हाहाकार करने लगे; संग्रामके धर्मको मान विभु वाराहजीने चक्रका

मैत्रेय उवाच ॥ अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् ॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥ सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ॥ विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३ ॥ स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ॥ मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ॥ मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥ ५॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ॥ चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन् स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥ ६ ॥ स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ॥ विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥ करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव ॥ अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥ पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः ॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥

स्मरण किया॥५॥वह अधम दितिसुत भगवान्‌को चक्र धरे देख महा क्रोधित हो घोर शब्द कर गदा ग्रहण कर दौड़ा,हिरण्याक्षको आता निहार सब देवता हाहाकार कर बोले—हे नाथ ! अब शीघ्र इस हिरण्याक्ष दुष्टको मार हमारा शोक दूर करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ६ ॥ श्रीवाराहजी कमलनयनको सुदर्शनचक्र लिये खड़ा देख क्रोधमें भर गंभीर श्वास ले दांत चाबने लगा ॥ ७ ॥ विकराल कालसमान नेत्रोंमें ऐसी प्रचण्ड ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी मानो अभी भस्म करेगा, ऐसे हरिकी ओर देख गदा फेंककर मारी और पुकारकर बोला कि, अब मेरे हाथसे बचना बहुत कठिन है॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि साधो ! भगवान् यज्ञवाराह लीला कर शत्रुके देखते-देखते वायुवेग

समान गदाको बांयें चरणसे फेंककर बोले ॥ ९ ॥ आयुध लो, चेष्टा करो, यदि तुमको जीवनकी अभिलाषा है तो। जब भगवान्ने यह कहा तब फिर वह दैत्य शस्त्र प्रहारकर अत्यन्त दहाड़ने लगा ॥ १० ॥ उस गदाको आता देख गदाधरने इस प्रकार रोका जैसे सर्पिणीको गरुड़ पकड़े, ऐसे ही लीला पूर्वक गदाको पकड़ लिया॥११॥असुरका पुरुषार्थ जब नष्ट हो गया तब वह घबड़ाकर गिर पड़ा और उसने कमलाक्ष भगवान्की गदाको लज्जित हो ग्रहण नहीं किया और भगवान्ने उसकी सब कांति नष्ट कर दी ॥ १२ ॥ जलती हुई प्रलयकी अग्निके समान तीन शिखायुक्त त्रिशूलको लेकर फिर वाराह भगवान्पर चलाया,जैसे कोई ब्राह्मणके ऊपर मारण प्रयोग करता

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ॥ इत्युक्तः स तदा भूतस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः ॥ जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥ जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥ १३ ॥ तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तःख उदीर्णदीधिति ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा ताक्ष्र्यपतत्रमुज्झितम् ॥ १४ ॥ वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ॥ प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥ १५ ॥ तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ॥ नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥ १६ ॥ अथोरुधा सृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥ १७ ॥

है ॥१३॥ उस समय पराक्रमसे महाबलवान् दैत्यका फेंका हुआ तीव्र कांतिवाला त्रिशूल आकाशतक प्रकाश करने लगा। श्रीवाराहजीने त्रिशूलको आता देख सुदर्शन चक्रसे उसके खंड-खंड कर दिये, जैसे गरुड़जीके गिरे हुए पंखोंको इन्द्र अपने वज्रसे काटता है ॥ १४ ॥ श्रीहरिके चक्रसे अपना त्रिशूल बहुत वार कटा जान, अपने आपको निरायुध समझ, विशालवक्षस्थल श्रीमान् भगवान्के सम्मुख आकर अत्यन्त क्रोधकर वह दुष्ट मुष्टिप्रहार पूर्वक अन्तर्धान हो गया ॥१५॥ हे विदुर! भगवान् आदिवाराह हृदयमें मुष्टि लगनेपर भी हटे नहीं, जैसे फूलके मारनेसे हाथी नहीं हटता, इसी भांति भगवान् किञ्चिन्मात्र भी न कांपे ॥ १६ ॥ जो योगमायाके ईश्वर हैं उन भग-

वान्‌के संग वह अज्ञानी माया रचने लगा, उसको देख प्रजा और देवता भीत हो विश्वका नाश मानने लगे ॥ १७ ॥ धूल और अंधकारको फैलाती हुई प्रचण्ड पवन चारों ओर चलने लगी, सब दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, जैसे कोई फेंक-फेंक कर मारता है ॥ १८ ॥ आकाशसे नक्षत्रसमूह नष्ट हो गये, कभी चपलाका प्रकाश, कभी गर्जनका शब्द सुनायी पड़ता था, कभी काली-काली घटा छा जाती थी, कभी पृथ्वी और आकाशमें धुंधकार ही धुन्धकार दृष्टि आता था, कभी रुधिरकी, कभी केशोंकी, कभी पीबकी, कभी विष्ठाकी, कभी मूत्रकी, कभी हाड़ोंकी, कभी पद, कन्ध, कर्ण, मास, मज्जा तथा मेदकी वर्षा होती थी ॥ १९ ॥ कभी अनेक-अनेक प्रकारके

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् ॥ दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥ १८ ॥ द्यौर्नष्टभगणाऽभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यन्तनानायुधमुचोऽनघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २० ॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ॥ आततायिभिरुत्सृष्टा हिंसावाचोऽतिवैशसाः ॥ २१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥ तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ॥ स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥ २३ ॥ विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥ २४ ॥

आयुध दिखायी देते थे, कभी चारों ओर ऊंचे पहाड़ दिखायी देते थे; कभी पिशाचिनी भूतनी नग्न होकर हाथोंमें शूल लिये शिरके केश खोले पृथ्वीपर घूमती-फिरती हुई दिखलायी देती थीं ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, सिपाही, घोड़े, रथ और हाथी व आततायी लोग हँसते और कुत्सितवाणी बोलते थे ॥ २१ ॥ जब हिरण्याक्षने नाना प्रकारकी माया प्रकट की तब समरमें वाराह भगवान्‌ने त्रिपदी सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब दितिका हृदय काँपने लगा, स्तनोंसे रुधिरकी धारा छूटी, और उसको अपने पतिके वचनोंका ध्यान आया कि आज हरिके हाथसे हिरण्याक्षका वध होगा ॥ २३ ॥ जब उस दुष्टकी सब माया नष्ट हो गयी तब फिर वाराहजीके सम्मुख

क्रोध करके धाया और बाहर हरिको स्थित देखा ॥ २४ ॥ उसने उस वैकुण्ठनाथके हृदयमें वज्र समान घूँसे मारे, तब हिरण्याक्षकी कनपटीपर वाराहजीने एक थप्पड़ मारा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके मारा था ॥२५॥ विश्वके जीतनेवाले श्रीमुकुन्दने जब उसकी अवज्ञा कर उसको मारा तब उसका शरीर घूमने लगा,वह वमन करने लगा, दोनों नेत्र निकलकर बाहर आ पड़े तथा हांथ, पांव, कंधा और शिर उसका टूट गया,जैसे पवनके झोकेसे वृक्ष उखड़कर गिर पड़ता है। इस प्रकार भगवान्‌का थप्पड़ लगते ही हिरण्याक्ष पृथ्वीपर गिर गया ॥ २६ ॥ दांतोंसे अधरोंको दबाये हुए करालदंष्ट्राओंवाले हिरण्याक्षको पृथ्वीपर सोता, देवताओंने देखा और वाराहजीसे बोले कि

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥ स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥ २६ ॥ क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां को नु लभेत संस्थितिम् ॥ २७ ॥ यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिंगादसतो मुमुक्षवः ॥ तस्यैष दैत्यापसदः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥ एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ॥ पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते ह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ॥ दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥

इसके समान मृत्यु किसको मिलेगी ? ॥ २७ ॥ असत् शरीरसे मोक्षकी इच्छा कर योगसमाधिसे एकान्तवनमें योगी जिसका ध्यान करते हैं,वह अधम दैत्य उस भगवत्के हाथसे मारा जाय और मुख देखते-देखते तनुत्याग करे॥२८॥कोई कहता था ये दोनों असुर नहीं हैं;नारायणके पार्षद हैं; ब्राह्मणके शापसे राक्षस हो गये थे, तीन जन्म असुरतनु भोगकर फिर वैकुण्ठमें जायँगे॥२९॥देवता कहते थे कि सब यज्ञोंके विस्तारके कारण स्थितिके लिये निर्मल सत्यमूर्ति ग्रहण करनेवाले तुम्हारे अर्थ वारम्वार नमस्कार है, आपने यह बहुत अच्छा किया

जो सब जगत्के दुःख देनेवालेको मारा, हे ईश ! तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्तिसे हम अत्यन्त पवित्र हुए हैं ॥३०॥ मैत्रेयजी बोले कि महापराक्रमी हिरण्याक्षको श्रीआदिवाराहजी मार ब्रह्मादिक देवताओंकी स्तुति सुन श्रीवैकुण्ठलोकको चले गये ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र ! मैंने तुमसे ऐसे अवतारधारी हरिकी चेष्टा वर्णन की; जैसा उदारपराक्रमी हिरण्याक्षको महासंग्राममें खेलकी नाईं तिरस्कार किया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि यह मैत्रेयजीकी कही हुई वाराह भगवान्‌की कथा सुन विदुरजी महाभागवतोत्तम परमानन्दको प्राप्त हुए ॥३३॥ जबकि

मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ॥ जगाम लोकं स्वमखंडितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ॥ यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥ सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ॥ क्षत्ताऽऽनन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ॥ उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥ ३४ ॥ यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ॥ क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद् द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥

पवित्रात्माविख्यात यशस्वी ब्राह्मणोंकी कथा सुननेसे आनन्द हो जाता है, तब श्रीरुक्मिणीकान्तकी कथा सुन पवित्र हो तो इसमें आश्चर्य क्या है ?॥३४॥ जिनके चरणारविन्दका ध्यान करते ही मकर ग्रस्त गजेन्द्रको हथिनियोंके पुकारनेसे क्षणमात्रमें कष्टसे छुड़ाया * ॥३५॥ अनन्यशरण सरल स्वभाव मनुष्योंके सुखाराध्य हरिको कृतज्ञ कौन न सेवन करेगा, जो भगवान् दुष्टोंसे सदा दुराराध्य हैं ॥ ३६ ॥

---

* कवित्त–जै जै यज्ञरूप जै जै नाशी भवकूप जै जै जै जै सुरभूप जै हो सदा कष्टहारीकी । जै जै हिरण्याक्षहंत जै जै प्रभुरमाकंत, जै जै श्रीअनन्त जै हो अधमउधारीको ।। जै हो श्रीवाराहजीकी, जै हो सुरनाहजीकी, जै जै हो मुरारी जै हो भक्तहितकारीकी । जै हो गिरिधारीकी श्रीपति असुरारीकी, जै हो प्रभो दुष्टदमन द्वारकाविहारीकी ।।

* कवित्त–सुनि गजेन्द्रकी गुहार घरी गिरिधारी कान लगी नाहिं बार शीघ्र चक्र ले सिधारो हैं ।। पक्षिराज पादुका लै धायो पै न पायो पांय; खसत महिमा पीतपट ना सँभारो हैं ।। कहैं रघुराज भेरे नाथ सो कृपालु कौन, सरके समीप शुद्ध सिन्धुर निहारो है ।। जोलौं ग्राहग्रीवापैं गेविन्दजू चलावैं चक्र, तौलौं ग्राह ग्रीवको अगाउ काट डारो हैं ।।

जो महात्माजन महाद्भुत हिरण्याक्षका वध व वाराहजीकी लीलाको मन लगाकर सुनते और प्रीतिपूर्वक गाते हैं व अनुमोदन करते हैं, हे ब्राह्मणो ! वे पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह महापुण्य अत्यन्त पवित्र यश ऐश्वर्यदायक, वैकुण्ठवास देनेवाला, आयुआशीर्वाददाता, प्राणइंद्रियोंकी संग्राममें शूरता बढ़ानेवाला और अन्त समयमें श्रीनारायणके निकट पहुँचानेवाला है ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां हिरण्याक्ष वधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ दोहा-कहौं बीस अध्यायमें, वराहका अवतार । इस कारण मनुवंशको, वरणौं अबकी बार ॥

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्म वधादपि द्विजाः ॥३७॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥ प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥ इति श्रीभा०म०तृतीय० हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायम्भुवो मनुः ॥ कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥ क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजातीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ॥ आपो गाङ्गा इवाघघ्नी-र्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥ ५ ॥

शौनक मुनि बोले कि, हे सूतपुत्र ! जब पृथ्वी स्थित हुई उसके पीछे स्वायंभुवमनुने जन्मलेनेवालोंके मार्गके अर्थ कौन-कौन उपाय किये,वह कहो॥१॥ महाभागवत विदुरजी श्रीव्रजरत्नजीके परम मित्रने श्रीकृष्णजीके साथ पुत्रोंसहित शत्रुता करते ही धृतराष्ट्रको त्याग दिया ॥ २ ॥ ये व्यासजीसे महिमामें न्यून नहीं थे, क्योंकि उनके ही शरीरसे इनका शरीर उत्पन्न हुआ है, सब प्रकारसे श्रीकृष्ण-जीमें आसक्त हैं, श्रीकृष्णके प्यारे हैं, अनुवृत्तिसे तत्पर हैं ॥ ३ ॥ तीर्थोंके सेवन करनेसे रजोगुण जिनका नष्ट हो गया ऐसे विदुरजीने हरि-द्वारमेंआकर तत्त्वदर्शी मैत्रेयजीसे क्या-क्या पूछा ? ॥ ४ ॥ हे सूत ! उनके संवादसे निर्मल कथा प्रकट हुई; जैसे हरिके चरणारविन्दा-

श्रयसे गंगाजल सब पापोंका नाशक है, इसी प्रकार भगवत्कथा सब पापनाशिनी और आनंद प्रकाशिनी है ॥ ५ ॥ वह कथा मुझसे कहो । तुम्हारा मङ्गल हो, कहने योग्य उदारकर्मवाले जनार्दनकी लीलाका अमृत पीते-पीते कौन रसज्ञ तृप्त हो सकता है ? ॥ ६ ॥ नैमिपारण्यनिवासी ऋषिगणोंने उग्रश्रवासे पूछा; तब परमात्माके परमभक्त उग्रश्रवा उन कथाओंको मुदित हो वर्णन करने लगे, उसे सुनिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, श्रीवाराहरूपधारी हरिने अपनी मायाके द्वारा रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया और हिरण्याक्षको अवज्ञासे मारकर लीला की ॥८॥ विदुरजी बोले कि प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माने प्रजा रचनेके लिये प्रजापतियोंको उत्पन्न करके किस कर्मको आरंभ किया ? हे भग-

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्व मायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मन्प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥ ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवोः मनुः ॥ ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥ सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद् गुणत्रयात् ॥ १२ ॥

वन् ! भगवत् मार्गके जाननेवाले आप अनुग्रह करके इस वृत्तान्तको कहिये ॥ ९ ॥ जो मरीचि आदि ऋषि हैं ? और जो स्वायंभुवमनु हैं, इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर कैसे इस विश्वको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ अपनी स्त्रियोंसमेत अथवा अकेले मरीचिआदि ऋषियोंने स्वतंत्र होकर इस संसारको रचा, अथवा सबने इकट्ठे होकर इस संसारका विस्तार किया । हे मुनिवर ! कृपा करके उसे वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले-ब्रह्माने किस कर्मको आरंभ किया ? इस प्रश्नका उत्तर, यक्ष आदिकोंको रचा । इसके उत्तरको कहनेके लिये प्रथम कही हुई सृष्टिका स्मरण कराया और मनुष्यादिकोंके प्रश्नका उत्तर अगले अध्यायमें कहेंगे । किसीके समझमें न आने योग्य जीवोंका भाग्य और प्रकृतिका

अधिष्ठाता अर्थात् महापुरुष और काल इन हेतुओंसे निर्विकार भगवतसे क्षोभको प्राप्त जो-जो रज, सत्त्व, तम, इन तीनों गुणोंसे महतत्त्व उत्पन्न हुए॥१२॥ रजोगुणप्रधान देवप्रेरित महत्तत्त्वसे सब भूतोंका आदि त्रिगुण अहंकार हुआ, अहंकारसे पांच भूतमात्रा और पांच महाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिय और पांच-पांच उन इंद्रियोंके देवता उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ वे सबके सब तत्त्व एक-एक पृथक्-पृथक् होकर जब रचनेके योग्य न हुए तब दैवयोगसे सबने मिलकर सुवर्णमय अण्ड रचा ॥१४॥ सो आत्मासे रहित अंडकोश समुद्रके जलमें हजार वर्षतक पड़ा रहा, जब उसमें परमात्माने प्रवेश किया, तब वह चैतन्य हो गया ॥ १५ ॥ उसकी नाभिसे सब जीवोंके समूहको धार सहस्र

रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिंगो दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ॥ संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन्॥१४॥सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववासीत्तमीश्वरः ॥ १५ ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥ सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥ लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥ ससर्ज च्छाययाऽविद्या पञ्चपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥ विससर्जात्मनःकायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ॥ मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥ २० ॥

भानुके समान कांतियुक्त एक कमल उत्पन्न हुआ, उसमें जगत्कर्त्ता स्वयंभू (ब्रह्माजी) उत्पन्न हुए ॥१६॥ जो जलरूप ह्रदयमें सोते रहे उन नारायणके आश्रयसे सब लोककी रचना की जैसी कि पूर्वकालमें थी, उसी प्रकार नाम रूपके विभागसे निर्माण की ॥ १७॥ आगेसे पांच पर्ववाली अविद्या छायासे रची, तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महत्तम, ये पांच पर्व हैं ॥ १८ ॥ जिस तनुसे यह विश्व रचा था उस तनुको त्याग दिया, क्योंकि वह तमोमय था, इससे रात्रि उत्पन्न हुई, इसलिये वे प्रसन्न न हुए तब भूख-प्यास लगनेवाली रात्रिको यक्षराक्षसोंने ग्रहण कर लिया ॥ १९ ॥ वे ब्रह्माके बनाये यक्षराक्षस भूखसे व्याकुल हो अजके ही खानेको दौड़े, वे भूखसे अधीर हो बोले कि

इसकी रक्षा मत करो, इसे खा ही जाओ ॥२०॥ ब्रह्माजी घबड़ाकर उनसे बोले कि तुम मुझे मत खाओ, मेरी रक्षा करो, हे यक्षराज ! तुम मेरी प्रजा हो ॥ २१ ॥ अपनी प्रभासे जो-जो देवता रचे, उस प्रकाशित प्रभा तेजको देवताओंने ग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने जांघसे असुरोंको उत्पन्न किया, वे स्त्रीलंपट, महाकामी लज्जाको त्याग ब्रह्माजीसे मैथुन करनेको दौड़े ॥ २३ ॥ उन निर्लज्ज असुरोंको भगवान् ब्रह्माजी पीछे आता हुआ देख अत्यंत क्रोध करने लगे, परन्तु फिर डरकर भाग गये ॥ २४ ॥ जब कहीं बचनेका ठिकाना न लगा तब जो दीनदुःखहरण शरणागतवत्सल भक्तोंके अनुग्रहके अर्थ भक्तोंकी इच्छानुसार आप स्वरूप धारण करते हैं, ऐसे

देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥ २१ ॥ देवताः प्रभया या याऽऽदीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥ देवो देवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥ ततो हसन् स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥ २४ ॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥ पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ॥ ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥ २६ ॥ त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ॥ त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७ ॥ सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥ तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् ॥ काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥ २९ ॥

प्रभु विरद वरदायक, श्रीसुरनायककी शरण जाकर ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे परमात्मन् ! हे प्रभो ! हे अभयदायक ! मेरी रक्षा करो, आपकी आज्ञासे मैंने प्रजा रची, यह पापी प्रजा मुझसे मैथुन करनेके लिये मेरे पीछे दौड़ी आती है ॥ २६ ॥ निश्चय है कि तुम ही एक सब लोकोंके क्लेश नाशक हो, हे नाथ ! जो तुम्हारे चरणकमलका आश्रय नहीं लेते उनको तुम ही एक क्लेश देनेवाले हो ॥ २७ ॥ वह आदि पुरुष अविनाशी श्रीनारायणजी ब्रह्माका यह कृपण भाव जान एकान्तमें ब्रह्मविद्यासे जिनका दर्शन हो वे भगवान् बोले—इस शरीरको भी त्यागो, यह श्रवण करते ही विरंचिने उस शरीरको त्याग दिया ॥२८॥ चरणोंमें नूपुरोंकी झमक, मदभरे

विह्वल नेत्र,कांचीकलापसे शोभित वस्त्रोंसे कटिपश्चात् भाग जिसका ढका हुआ ॥२९॥ दोनों कुच कंचनके कलश समान परस्पर अड़नेके कारण जिनके बीचमें कुछ बीच नहीं रहा, ऐसे मनोहर जिसके स्तन और अत्यन्त सुन्दर कीरकीसी नासिका बनी हुई, दाडिमके दानोंकीसी दातोंकी पांति और प्यारी मन मोहनेवाली जिसकी हँसी, तिरछी चितवन लाजके मारे वस्त्रोंकी जवनिकासे अपने शरीरको ढकती-दबाती; काले-काले केशोंकी सघन घटामें चंद्र-सा मुखारविन्द दीप्यमान ऐसी मृगनयनी, पिकबयनी, मनहरणी, चंपकवरणी, चंचलचटकीली, सजीली, सोहनी मनमोहनी बालाको देख सब दैत्य मोहित हो गये॥ ३० ॥ ३१ ॥ अहो रूप ! अहो धैर्य्य ! ! अहो इसकी किशोर

अन्योन्याश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥ गूहन्तीं व्रीडयाऽऽत्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥ अहो धैर्यमहो रूपमहो अस्य नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥ वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् ॥ अभिसंभाव्य विश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥ ३३ ॥ काऽसि कस्यासि रम्भोरु को वाऽर्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥ ॥ ३४ ॥ या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संदर्शनं तव ॥ उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥ ३५ ॥ नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ॥ मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥ ३६ ॥

अवस्था ! ! ! हे चाहनेवालो ! यह तो अनचाहीसी फिर रही है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी आकृति उस संध्याको असुरोंने बहुत वितर्क कर विश्वाससे सत्कार कर कुबुद्धिवालोंने पूछा ॥ ३३ ॥ हे चन्द्रानने ! तुम कौन हो ? किसकी कुमारिका हो ? यहां क्यों आयी हो ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? रूपधनके व्यवहार द्वारा तुम हमसे अभागियोंको बाधा देती हो ॥ ३४ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारा कल्याण हो, हमारे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हमें प्राप्त हुआ,हम तो गेंद खेलनेकी इच्छासे यहां आये थे,किन्तु हम असमर्थोंके मनको तुमने मथन कर चित चुरा लिया ॥ ३५ ॥ हे वरानने ! तुम्हारे चरणकमल एक ठिकाने नहीं ठहरते, तुम वारंवार गेंदको फेंकती हो बड़े स्तनके

भारसे भयभीत मध्यभाग विषाद पा रहा है, शान्तकी नाई तुम चलती हो और तुम्हारी निर्मल दृष्टि हृदयको वेध डालती है, केश तुम्हारे बहुत सुन्दर हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकारकी सायंतनकी संध्या स्त्रीरूपधारिणी लोभ करानेवाली स्त्री ऐसे मान, मूर्ख असुरोंने उसको पकड़ लिया ॥३७॥ गंभीरभावसे हँसकर अपने आपको अनुभव करनेवाली कांतिसे भगवान् ब्रह्माजीने फिर सृष्टि रचनेका विचार किया और गंधर्व अप्पसराओंको बनाने लगे ॥ ३८ ॥ ज्योत्स्ना कांतिमयी प्रियको भी जब त्याग दिया; तब विश्वावसु गन्धर्वने मुख्य प्रीतिसे उसको ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपने आलस्यसे भूत पिशाचोंको रचकर नंगे बालोंको खोले खड़ा देखकर नेत्र बंद कर लिये

इति सायन्तनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥ प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥ ३७ ॥ प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ॥ कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥ ३८ ॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् ॥ त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा ॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान् वीक्ष्य चामीलयद् दृशौ ॥ ४० ॥ जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भाणाख्यां तनुं प्रभोः ॥ निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृष्यते ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ॥ साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ तमात्मसर्गं तत्कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयोयद्वितन्वते ॥ ४३ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ स किन्नरान्किंपुरुषान्प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥ मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥ ४५ ॥

॥ ४० ॥ हे प्रभो ! अपना रचा हुआ जंभारूप तन भी त्याग दिया, वह निद्रा इंद्रियको विवश करने वाली है जिसे सब जीवोंमें देखते हैं जिससे उच्छिष्टको घिसते हैं उसको उन्माद कहते हैं, उन्मादसे सर्व जीवोंको महाक्लेश होता है ॥ ४१ ॥ भगवान् प्रभुने बढ़ी हुई आत्माको मान प्रत्यक्ष करके साध्यगण पितृगण रचे, जिनको कर्मकोविद लोग श्राद्धादिकद्वारा हव्य-कव्य देते हैं, ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजीने सिद्ध विद्याधरोंको तिरोधानसे रच अंतर्धाननामक अद्भुत आत्मा उनको दी ॥४४॥ अपने प्रतिबिम्बसे ब्रह्माजीने किन्नर किंपुरु-

षोंको रचा, आत्मासे आत्माको मान आत्माका प्रकाश देखा ॥ ४५ ॥ जो तनु ब्रह्माजीने त्याग दिया था वह रूप उन्होंने ग्रहण किया, उसीको एकत्र करके प्रातःकाल सब गाते हैं ॥ ४६ ॥ अत्यन्त चिन्तासे सोये भोगवान् देहसे बड़ी सृष्टिमें क्रोधसे उस वपुको रच फिर इस शरीरको भी तज दिया ॥ ४७ ॥ जो इस देहसे बोल च्युत हुए वे अहिनामक सर्प हुए, सर्प चलनेसे क्रूर नागभोग उरुकन्दर ये हुए ॥४८॥ जब ब्रह्माजीने अपने आपको कृतकृत्यकी नाईं माना तब अंतमें लोकपालक मनुओंको मनसे रचा ॥४९॥ फिर आत्मवान् ब्रह्माने अपना पुररूप नर शरीर रचा वह पहले रचे हुओंको देखकर प्रजापतिकी प्रसंशा करने लगे ॥ ५० ॥ धन्य है ! जगत्स्रष्टाने बड़ा सुकृत किया

ते तु तज्जगृहु रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥ ४६ ॥ देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥ ४७ ॥ येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥ ४८ ॥ स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥ ४९ ॥ तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ॥ तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५० ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् ॥ प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥ ५१ ॥ तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ॥ ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥ ५२ ॥ तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० सर्गवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

है, जिसमें स्थित होकर कर्म करते हुए सब अन्नका पारण करेंगे ॥ ५१ ॥ तप विद्यासे युक्त सुन्दर योगसमाधिसे हृषीकेश ब्रह्माने अपने समान प्रजा और ऋषियोंको रचा ॥५२॥ और जो योग, विद्या, समाधि, तप, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि, विरक्ति उन सबको एक अंशविभागसहित ब्रह्माजीने दिया और ऐसा अद्भुत शरीर रचा, नहीं जाना जाता कि इसमें कौन बोलता है ? और इसका नाम क्या है ? ॥५३॥ इति श्रीभाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

* कवित्त–केशशीशजूड़भाल भ्रहणीपलकनैन, गोलककपोलगडनासामुखश्रौन है । ठोड़ीहोठदाढदन्त रसानावसढाताल चिबुककंठिकाकंठकंधकर मौन हैं ॥ कांखकटियुजानाडी पेटपीठ; अंगुली हथेलीनखजंघास्थल जौन है ॥ नितंबचरणरोम एतें नाम अंगनके, तामें तू विचार नर तेरो नाम कौन है ॥

दोहा–इक्कीसवें श्रीहरि लखो, कर्दम तेज अपार । मनुकन्या इन योग्य है, कीन्हों यही विचार ॥ विदुरजी बोले कि, हे भगवन् ! स्वायंभुव मनुका परमश्रेष्ठ वंश कहो कि किस प्रकार मैथुन करके प्रजा बढ़ी ॥ १ ॥ स्वायंभुव मनुके दो पुत्र हुए,-प्रियव्रत और उत्तानपाद, उन्होंने धर्म और सत्यवती पृथ्वीकी रक्षा किस प्रकारसे की ? उसका सविस्तार वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे पापरहित ! स्वायंभुव-मनुके एक कन्या हुई जिसका नाम देवहूति जगत्में विख्यात था, वह कर्दम मुनिको ब्याही थी,उसका वृत्तांत कहो॥३॥कर्दम मुनि महायोगी योगलक्षणसंपन्नने देवहूतिमें कितने पुत्र उत्पन्न किये ? ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माके सुत दक्ष और रुचिप्रजापति मनुने भार्याको प्राप्त हो किस

विदुर उवाच ॥ स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥ प्रियव्रतोत्तान-पादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै ॥ यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २ ॥ तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता ॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ताकर्दमस्य त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ ४ ॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सह-स्राणां समा दश ॥६॥ ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षःकृते युगे ॥ ७ ॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मो-त्पलस्रजम् ॥ स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥ ९ ॥

प्रकार सृष्टि उत्पन्न की ? ॥५॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भगवान् कर्दममुनिसे ब्रह्माजीने कहा कि तुम अपार सृष्टि रचो, तब सरस्वती नदीके किनारे दशने हजार वर्षतक तप किया ॥६॥ तब समाधियुक्त योगक्रिया और भक्तिसे प्रसन्न (शरणागत) वरदायक भगवान् वासुदेवको प्राप्त हुए॥७॥ हे विदुर ! तब श्रीत्रिलोकनाथ भक्तभूषण भगवान् सत्ययुगमें प्रसन्न हो,शब्दब्रह्मस्वरूप शरीर धारण कर कर्दमजीको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाया ॥ ८ ॥ रजोगुणरहित, कोटिसूर्यसम वदनका प्रकाश, शुक्लकमलकी माला विराज रही है ॥ दोहा–नील अलक झलके झलक, छलक छलक छबि जात । ललक ललक जिनको अमर,ललना लखत लुभात॥ घूंघरवाली अलकें मुखारविंदपर बिखरीं,निर्मल वस्त्र

पहने ॥९॥ किरीट मुकुट शिरपर धारण किये,कानोंके कुण्डल कपोलोंपर लटक रहे; शंख,चक्र,गदा और पद्म शोभा दे रहे,श्वेतकमल,घुमाते हुए मनस्पर्शी स्मितनेत्रवाले॥१०॥गरुड़जीके कंधेपर चरणकमल धारे,कौस्तुभमणि गलेमें पड़ी,हृदयमें श्रीजी यह,अद्भुत शोभा मनको हर लेती थी ॥११॥ दर्शनसे ही सब मनोरथ पूर्ण जान कर्दमजीने अत्यन्त हर्षसे पृथ्वीमें शिर नवाय साष्टांग प्रणाम किया, फिर प्रेमसे, प्रीतिसे, वाणीसे व मनसे स्तुति करने लगे ॥१२॥ कर्दमजी बोले कि हे भक्तवत्सल ! हे स्तुति करने योग्य ! आज मेरे नेत्र सफल हुए, आज सब सत्त्व-राशि और सब सिद्धियां मुझको प्राप्त हुईं, जो आपका दर्शन हुआ; इस आपके दर्शनकी योगीजन कोटानुकोटि जन्म समाधि लगाकर

किरीटिनं कुण्डलिनं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनस्स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥ १० ॥ विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ॥ दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षश्श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥ ११ ॥ जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ॥ गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥ ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां राशीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥ तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ॥ उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य॥१५॥प्रजापतेस्ते वचसाऽधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥१६॥

बांछा करते हैं ॥१३॥ जो तुम्हारी मायाके वश मन्द बुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे संसारसमुद्रमें नौकारूप तुम्हारे चरणारविंदकी लेशमात्र कामके लिये उपासना करते हैं, उनके तुम सब मनोरथ पूर्ण करते हो, जो काममय मनोरथ नरकमें भी प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मुझको विवाहकी इच्छा है, परंतु स्त्री शीलवान्, बुद्धिनिधान, ज्ञानवान् मेरे समान हो,स्त्रीसे त्रिवर्ग सिद्धि होती है। अब मैं सब कामपूरक कल्प वृक्षरूप आपके चरणशरणमें पड़ा हूँ, हे प्रभो ! मेरा अन्तःकरण अच्छा नहीं है जो आपसे कामकी कामना चाहता हूँ ॥१५॥ हे जगदीश ! प्रजापतिरूप ! तुम्हारे वचनरूप रस्सीसे कामांध बँधा हुआ यह संसार है;हे शुक्ल! मैं भी निश्चय करके इस संसारमें प्राप्त कालरूप तुम्हारे अर्थ बलि

देता हूँ ॥ १६ ॥ जो लोक, लोकोंके त्याग परस्पर तुम्हारे गुणानुवादरूप मादक अमृतपानसे लोकधर्मका त्याग करते हैं, वे मनुष्य आपके चरणरूप छत्रके आश्रित होते काल भयको नहीं गिनते हैं॥१७॥यह कालचक्र तुम्हारे भक्तोंकी आयु नहीं काट सकता और सब विश्वकी आयु काटनेको तुम्हारा कालचक्र घूमता है, ब्रह्मरूप अक्षमें तो वह घूमता है। तेरहमास चक्रके आरे हैं, तीनसौ आठ दिन उसके पर्व (पूर्जा) हैं, छः ऋतु उसकी नेमी है, क्षण लगादिपत्र उसके अनंत हैं। शीत, उष्ण, वरषा, ये तीन नाभि हैं, कठोर उसका वेग है, (ये सात विशेषण) काल चक्रके हैं ॥१८॥ जब तुम अकेले होते हो तो आप जगत् रचनेकी इच्छा कर, दूसरी अपनी योगमायासे मकड़ीकी नाईं अपनी शक्तियोंसे

लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ १७ ॥ न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ॥ षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥ एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययाऽऽत्मन्नधि योगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवान्स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥ नैतद्बताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ॥ अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ॥ २० ॥ तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यव्यलीकं प्रणतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ॥ सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥

इस संसारको रचते, पालते, नाश करते और पुनः रचते हो ॥ १९ ॥ हे अधीश ! आप हमसे भक्तोंको अपनी माया द्वारा विषयसुख देते हो, परंतु वह आपको अच्छा नहीं लगता, तो भी अपनी कृपाके लिये वह हमको देना ही योग्य है, क्योंकि तुलसीमालासे शोभित आपके स्वरूपका दर्शन करनेसे मोक्ष होता है ॥ २० ॥ अनुभवजन्य ज्ञानसे क्रियाके अर्थ जिनके दूर हो गये हैं, अपनी मायासे सब लोकको रचते हो, ऐसे नमस्कार योग्य चरणकमल आपके थोड़ेसे भजन व सेवा पूजासे बहुतसे काम सिद्ध हों, ऐसे जो आप हैं, मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार नमस्कार करनेसे निष्कपट कमलनाभ भगवान् वासुदेव अमृतसमान वचन बोले, गरु-

ड़के ऊपर विराजमान हैं और प्रेमके स्मितसे जिनकी भ्रुकुटि चलायमान हैं ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ऋषे ! जिस कारण तुमने चित्त लगाकर मेरा पूजन भजन किया है, मैंने पहले ही तुम्हारे मनकी अभिलाषा जानकर सब ठीक उपाय कर रक्खा है ॥ २३ ॥ मैं सब प्रजाका स्वामी हूँ, मेरा पूजन कभी मिथ्या नहीं होता, मुझ समान जिनकी आत्मा और आपसे महात्माओंके हृदयमें तो मैं सदा वास करता हूँ ॥ २४ ॥ प्रजापति सुत, राजा मनु विख्यात मंगलीक हैं और शतरूपा उनकी स्त्रीका नाम है, ब्रह्मावर्त्त जो बिठूर है वहां सदा बसता है और सात द्वीप, नौखण्ड सबका पालन-पोषण करता है ॥ २५ ॥ हे मुने ! वह राजर्षि अपनी शतरूपा स्त्रीसमेत, परसोंतक आपके

श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चैत्त्यं मे पुरैव समयोजि तत् ॥ यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ॥ भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः ॥ ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्छास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥ २५ ॥ स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥ २६ ॥ आत्मजामसितापाङ्गीं वयश्शीलगुणान्विताम् ॥ मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥ समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् ॥ सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥२८॥ या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसाऽऽत्मनः ॥२९॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥ ३० ॥ कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥ ३१ ॥

देखनेको यहां आयेगा ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! सुन्दर कटाक्षवाली, शीलगुणवती, सुकुमार अवस्था, पतिके प्रेमकी अभिलाषिणी , सो उसके तुम अनुरूप हो, हे जगत्पते । वह अपनी पुत्री तुमको दे जायगा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् । तुमने इतने वर्षोंसे जिस स्त्रीमें मन लगाया, वह राजकन्या तुम्हारे मनोरथको शीघ्र पूर्ण करेगी ॥ २८ ॥ जो वह तुम्हारा वीर्य नव विभागेंसे नव कन्या उत्पन्न करेगा और तुम्हारी कन्याओंमें ऋषिगण अनायाससे अपनी सन्तान उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम सदा मेरी आज्ञामें स्थित होकर मुझको तीर्थ समान मान सब कर्मफल मुझको ही समर्पणकर मुझको ही प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंपर दया कर आत्मज्ञानी हो सबको अभय दान दे, मुझमें आप

सहित सब संसारको देखोगे और सब संसारमें व अपने आपमें मुझको देखोगे ॥३१॥ हे महामुने! मैं अपने अंशकलासमेततुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी देवहूतिमें कपिल मुनि अवतार धारण कर तत्त्वसंहिताका प्रकाश करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, प्रत्यक्षभूत इंद्रियोंके सम्मुख आकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद, कर्दमऋषिसे यह बात कह सरस्वतीपरिवेष्टित विंदुसरसे परमधामको चले गये॥३३॥कर्दम ऋषिके देखते-देखते वासुदेव भगवान् चले गये, जो सब सिद्धेश्वरोंका स्तुतिसिद्ध मार्ग है, गरुड़जीके पंखोंसे स्तोत्रसमुदाय सामवेद स्वरसहित उच्चारण हुआ उसे सुनने लगे॥३४॥ भगवान् जब चले गये तब कर्दम मुनि विन्दुसरपर बैठे उस समय प्रतीक्षा कर रहे थे॥३५॥ और यहां राजा मनु स्वर्णजड़ित रथ-

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ॥ तवक्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥ जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्यापरिश्रितात् ॥ ३३ ॥ निरीक्षितस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥ ३४ ॥ अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ॥ आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥ ३५ ॥ मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥ ३७॥ यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥ ३८॥ तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ॥ पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियाऽन्वितम् ॥ ४० ॥

पर बैठे अपनी पुत्रीको बैठाकर स्त्री समेत पृथ्वीपर्यटन करने चल दिये ॥ ३६ ॥ हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विदुरजी ! विचरते-विचरते उस शांतव्रत मुनिके आश्रमपर आये, जहां कर्दमऋषिने विवाहके हेतु तप किया था ॥ ३७ ॥ जहां दयाके कारण भगवान्ने शरणागत कर्दमपर प्रसन्न होनेसे अश्रुबिन्दु गिराये हैं ॥३८॥ उसी दिनसे उस आश्रमका नाम बिन्दु सरोवर हुआ, सरस्वतीसे परिवेष्टित है, पुण्यदायक है, आरोग्य करता है, सुधासमान जल है, महर्षिगणोंसे सेवित है ॥ ३९ ॥ फलदायक वृक्षलताओंसे शोभित, मनोहर कुन्ज, खगमृग-

पक्षियोंसे दीप्त, सब ऋतुओंमें फलफूलोंसे पूर्ण, वनपंक्तियोंसे शोभायमान थे ॥४०॥ मतवाले पक्षीगण जहां मनभावनी सुहावनी बोली बोल रहे, मतवाले भौंरें गुञ्जार रहे, मोर नटोंके सदृश पंख पसार-पसार मधुर वाणीसे पुकार रहे, मदमाती कोयल मीठी-मीठी कूकसे कूक रहीं ॥ ४१ ॥ कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुरबक, कुंद, मन्दार, कुटज, आम इत्यादिके भांति-भांति के वृक्षोंकी शाखा फल-फूलोंके भारसे नीचेको झुक रहीं हैं ॥४२॥ सुन्दर-सुन्दर तालोंमें जलकुक्कुट, जलकुक्कुटी, मेंढक, हंस, कुरर, सारस, चकई, चकवे, चकोर जलक्रीड़ा करते हुये मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥४३॥ कहीं हिरन, वराह, रोझ, श्वान, शल्लक, गवय, मतङ्गज, गोपुच्छ, वानर, सिंह, नकुल,

मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥ ४१ ॥ कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलाशनैः ॥ कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥ ४२ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥४३॥ तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥ ॥ ४४ ॥ प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥ ४५ ॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ॥ ४६ ॥ तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥ प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथाऽर्हणमसंस्कृतम् ॥४७॥ अथोटजमुपायान्तं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया प्रत्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥ ४८ ॥

कस्तूरीमृग डरावने सुहावने शब्द कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ राजा मनुने अपनी पत्नी और पुत्री समेत उस श्रेष्ठतीर्थमें प्रवेश किया, हवनयोग्य अग्निमें होम करते हुए कर्दम मुनिको बैठा देखा ॥ ४५ ॥ उग्र योगवाले शरीरसे देदीप्यमान और भगवतके मनोहर कटाक्षोंकी चितवन और उनके कहे हुए अमृतमय, चन्द्रकलाके सदृश वचनोंके श्रवणसे जो अधिक दुर्बल नहीं, अर्थात् तपस्यासे कृश होनेपर भी अकृश ॥४६॥ ऊंचे-ऊंचे कन्धे, कमलनयन विशालमूर्ति जटाधारी वल्कलवसन पहिने; मलिन जैसे कोई महारत्न संस्कार रहित इस प्रकार कर्दम मुनिको मनुजीने देखा ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त मनु पर्णशालाके निकट आये, कर्दमजीने राजा मनुको आता देख आगे बढ़-

कर उनको लिया, राजाने प्रणाम किया, राजाको यथायोग्य आशीर्वाद और बड़ाई दी और उनको पूजा ग्रहण कराया ॥ ४८ ॥ पूजन कर जब बैठ गये तब मुनि राजाको प्रसन्न कर भगवान् वासुदेवका वचन स्मरण करके कोमल वाणीसे बोले॥४९॥ हे देव! तुम लोगोंका फिरना सज्जन महात्माओंकी रक्षाके निमित्त है और असंतोंके बधके लिये है, जो तुम भगवान्की अनपायिनी शक्ति हो ॥ ५० ॥ जो राजा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म, प्रचेता इनका स्वरूप धारण कर हर स्थान में सब कार्य करते हैं, उन धर्मात्मा तुम सरीखे राजाओंको वारंवार नमस्कार है ॥५१॥ हे आदिनृपेंद्र! यदि जयप्रद कनककलित मणिजटित रथपर बैठ, प्रचण्ड कोदण्ड ले पापी दुरा-

गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन् भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४९ ॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यत्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥ ५० ॥ योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥ ५१ ॥ न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ॥ विस्फूर्जच्चण्ड-कोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥ ५२ ॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णंवेपयन् मण्डलं भुवः ॥ विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥ ५३ ॥ तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ॥ भगवद्रचिता राजन्भिद्येरन्बत दस्युभिः ॥ ५४ ॥ अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनङ्क्ष्यति ॥ ५५ ॥ अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ ५६ ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० स्वपुत्रीस्वायम्भुवमनुकर्द-मसमागमवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

चारियोंको त्रास न दो और पृथ्वीपर न घूमो तो सब धर्मका नाश हो जाय ॥ ५२ ॥ अपनी चतुरंगिणी सेनासे भूमंडलको खूंदो और सब सेनासमेत मार्तण्डके सदृश सात द्वीप नव खण्डोंमें तुम विचरते रहो ॥ ५३ ॥ हे राजन्! जब आप पर्यटन नहीं करते हो तब वर्णाश्रमके निबंधनरूप भगवत्के रचे हुए सेतु चोरोंके विदीर्ण हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ जब तुम सो जाते हो लोभी, लंपट और निरंकुश जीवोंसे अधर्म और पाप बढ़ जाता है, लोग चोरोंसे ग्रस्त होकर सब विनष्ट होने लगते हैं ॥ ५५ ॥ हे वीर! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आपका यहां

आना किस कारण हुआ ? आप वर्णन कीजिये; हम निष्कपट हृदयसे आपकी आशा पूर्ण करेंगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कर्दमाश्रमे स्वायंभुवमनुसमागमनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा—बाइसवें अध्यायमें, देवहूतिको व्याह । जैसे कर्दम ऋषी सों, कियो मनू नरनाह ॥ मैत्रेयजी बोले—जिनके गुणका और कर्मका प्रकाश संसारमें उदय हो रहा है, वह मनु लज्जावालोंकी नाईं लज्जा करके अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ मनुजी बोले कि, हे मुनिराज ! अपनी रक्षाके कारण ब्रह्माजीने अपने मुखसे अपने समान वेदविद विद्यायोग युक्त अलंपट तुम ब्राह्मणोंको प्रकट किया है ॥२॥ और अनंत भगवान्‌ने अपनी

मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत् स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ॥ छन्दोमयस्तपोविद्या योगयुक्तानलम्पटान् ॥ २ ॥ तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात् सहस्रपात् ॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्वयाऽनुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ॥ अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ ७ ॥

अनंत भुजाओंसे ब्राह्मणोंके प्रतिपालके लिये हमको उत्पन्न किया है, उनके हृदय ब्राह्मण हैं और क्षत्रिय भुजा हैं ॥ ३ ॥ इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंकी रक्षा करेऔर क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी रक्षा करे इस प्रकार परस्पर आदिपुरुष अविनाशी देव सत्-असत् आत्मा सबकी रक्षा करते हैं॥४॥ आपके दर्शनसे मेरे सब संशय मिट गये,जो आप भगवान्‌ने स्नेह करके रक्षाकी इच्छासे धर्मका वर्णन किया॥५॥धन्यभाग्य ! जो हमको आपका दर्शन हुआ,अवशेंद्रियोंको आपका दर्शन नहीं होता;धन्य है जो मुझ अमांगलिकके शिरपर मांगलिक चरणोंका रजस्पर्श हुआ॥६॥ बड़े आनन्दकी बात है, बड़ा अनुग्रह है, जो आपने आज्ञा की, आज मेरे कर्णकुहर पवित्र हुए जो आपकी अमृतसम मनोहर वाणी

सुनी ॥ ७ ॥ हे मुने ! मैं पुत्रीके प्रेमविवश दीन हूँ, यह कन्या मुझको अत्यन्त प्यारी है, आप कृपा करके मेरी विनय सुनिये ॥ ८ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपादकी यह भगिनी है और मेरी पुत्री है, शील, रूप, गुण, वयमें अपने समान पतिसे मिलनेकी यह अभिलाषा करती है ॥ ९ ॥ जबसे नारदजीके मुखसे आपके गुण रूप शील अवस्थाकी प्रशंसा सुनी है, उसी दिनसे इसने अपने मनसे निश्चय आपको अपना पति समझ लिया है ॥ १० ॥ हे द्विजाग्रगण्य ! श्रद्धासे इस कन्याको आपके चरणशरणमें लाया हूँ, आप इसको ग्रहण कीजिये, आपके गृहस्थकर्म करनेको यह सर्व प्रकार योग्य है ॥११॥ जो वस्तु आप ही घर बैठे मिल जाय उसका त्यागना उचित नहीं,

स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपयामुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ॥ अन्विच्छन्ती पतिं युक्तं वयश्शीलगुणादिभिः ॥९॥ यदा तु भवतःशीलश्रुतरूपवयो गुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥१०॥ तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपा ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥ ११ ॥ उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ १२ ॥ य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥१३॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ १५ ॥ कामः स भूयान्नरदेव तस्याःपुत्र्याः समाम्नाय विधौ प्रतीतः ॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयाऽङ्गकान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥ १६ ॥

जो सब संगसे निर्मुक्त है उसकी तो क्या बात है॥१२॥जो कोई प्राप्त होती वस्तुका निरादर करते हैं वे और पीछे याचना करते हैं उनका यह बढ़ा हुआ यश क्षीण हो जाता है और मान भी हत हो जाता है ॥१३॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने सुना था कि, आपकी इच्छा विवाह करने की है इस कारण इस देवहूति कन्याको आप ग्रहण करें ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि आपने बहुत अच्छा विचारा, मेरी विवाह करनेकी इच्छा है, तुम्हारी दुहिता भी अप्रदत्त अर्थात् अविवाहित है; हमारे दोनोंको अनुरूप यह आद्य विवाहकी विधि है ॥ १५ ॥ हे नारनाथ ! तुम्हारी इस कन्याका मनोरथ पूर्ण हो और हमें तुम्हें उत्साह हो यही वेदविधि है, भूषण वसनोंसे भूषित, अपनी कांतिसे श्रीकी

कांतिको क्षीण करनेवाली इस तुम्हारी सुताका कौन आदर नहीं करेगा ? ॥ १६ ॥ यह तुम्हारी कन्या पिकबयनी, मृगनैनी, चम्पकबरनी मनहरनी तुम्हारी कन्या एक समय महलके ऊपर चढ़ी गेंदसे क्रीडा कर रही थी इसकी मनोहर छबि निरख मोहसे मोहितचित्त होकर विश्वावसु गन्धर्व अपने विमानसेनीचे गिर पड़ा ॥ १७ ॥ देवललना उसकी ललितकलित छबि निहार मनमार-मारकर रह जाती थीं और रमाके चरणोंकी सेवा उनसे नहीं होती थी । सब स्त्रियोंकी मुकुटमणि वह मनुकीपुत्री उत्तानपादकी भगिनी अपने आप प्राप्त हो तो ऐसी कन्याको कौन न भजेगा ॥ १८ ॥ इस कारण ऐसे समयमें इस तुम्हारी साध्वी कन्याको हम अवश्य भजेंगे, परन्तु जबतक इसकेपुत्र न

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमाना द्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥ तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥ १८ ॥ अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ॥ अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्याञ्छुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाऽवतिष्ठते ॥ प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ॥ धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥ सोऽनु ज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥ २३ ॥

होगा, तबतक इसका अंगस्पर्श करेंगे, तदनंतर हम परमहंसोंके मुख्य भगवत् प्रोक्त हिंसारहित धर्मका आश्रयण करेंगे जिन्हें हम बहुत मानते हैं ॥ १९ ॥ जो परमात्मा अनंतविश्व रचता है, पालन करता है, संहार करता है; उसी प्रजापतिओंके पति अनंत भगवान्के वचन मुझे प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे उग्रधन्वा विदुर ! यह कह भगवान् कर्दमजी चुप हो गये, बुद्धिसे व मंदमुसकानसे देवहूतिके मनको लुभाकर ग्रहण किया॥२१॥और रानी शतरूपाने पुत्रीकी संमति लेकर प्रसन्न हो गुणवान् कर्दमजीको अपनी बेटी समर्पण की ॥ २२ ॥ फिर शतरूपा महारानीने दहेजमें बहुत और अनेक प्रकारके वस्त्राभूषण घरकी सब सामग्री स्त्री पुरुष दिये ॥ २३ ॥

राजाने सब व्यथासे दूर हो, समान वरको कन्या देकर उत्कण्ठासे विवश हो भुज भरकर देवहूतिको हृदयसे लगाया ॥ २४ ॥ सुताका वियोगराजा रानी न सह सके, नेत्रोंसे वारंवार आंसू गिरने लगे, फिर शतरूपा अपनी पुत्रीको गोदमें बैठा, हे दुहिता ! हे बेटी ! ! कह नेत्रोंके नीरसे पुत्रीकी शिखाको सिक्त करने लगी स्वायंभुव मनु शतरूपा कन्याको धैर्य दे मुनिवरसे बिदा मांग रथमें बैठ स्त्रीसमेत अपने नगरको चल दिये ॥ २६ ॥ ऋषि और मुनियों सहित सरस्वती तीर देख दण्डवत् कर दोनों ओरकी शान्त ऋषियोंके आश्रमोंकी सम्पदा देखते चले गये ॥२७॥ जब स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त्त देशमें आये तो प्रजागण गीत गाकर बाजे बजाकर अत्यन्त हर्षसे सब सम्मुख

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥ अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन्बाष्पकलां मुहुः ॥ आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥ २५ ॥ आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ॥ ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् ॥ गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता ॥ न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाः काशास्त एवासञ्छश्वद्धरितवर्चसः ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥ कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः ॥ अयजद्यज्ञपुरुषं लब्ध्वा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ ३२ ॥

खड़े हो स्तुति कर॥२८॥सब संपत्ति सहित बर्हिष्मती नाम पुरीमें लाये, जहां यज्ञरूप श्रीवाराहजीने अपने अङ्गको झाड़ा और उनके रोम वहां गिरे थे ॥ २९ ॥ उन रोमोंके हरे रंगके कुश और काश हो गये, जिन कुशाओंसे यज्ञनाशकोंका ऋषिलोग तिरस्कार कर यज्ञ करने लगे ॥ ३० ॥ भगवान् स्वायंभुव मनु भी कुश काशका आसन बिछाय यज्ञ कर आनंदसहित स्थान पर आये ॥ ३१ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरीमें प्रवेश किया जहांके मनोहर भवन त्रय तापके हरनेवाले थे वहां पत्नी पुत्रों समेत बास करने लगे और भोग भोगने लगे ॥३२॥

गन्धर्व स्त्रियोंसहित अपनी कीर्ति भी गानकर रहे हैं तथापि स्वयं प्रातःकाल सन्ध्या समय अनुरागी हृदयसे श्रीनारायणकी कथाप्रतिदिन सुनते भये ॥ ३३ ॥ योगमायामें निमग्न रहते, भगवत्परायणको अनेक प्रकार भोगभ्रष्ट करनेमें समर्थ न हुए ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्‌की कथा सुनते-सुनते ध्यान करते-करते परमात्माका गुण गाते-गाते मन्वन्तरका काल व्यतीत कर दिया ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार इकहत्तर युग भगवान् वासुदेवकी कथासे मन्वन्तरको जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंको कृष्ण कथामें ही व्यतीत किया, कारण कि इस देहका यही फल है कि, सुकृत कर्ममें अपनी आयुको व्यतीत करे* ॥३६॥ हे व्यासनन्दन विदुर ! ये शरीरी, दैविक, भौतिक, मानसिक और

संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥ ३३ ॥ निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥ ३४ ॥ अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वान्तरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥ स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥ भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥ यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान् नानाविधान् शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३८ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० सपत्नीकस्वायम्भुवमनोः प्रत्यागमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

जो शीतोष्णादिक अनेक प्रकारके ताप हैं, वे श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीके आश्रयवालेको कभी बाधा नहीं करते ॥ ३७ ॥ वर्णाश्रमादिक अनेक प्रकारके शुभधर्म, मनुष्योंके धर्म, सब जीवोंके धर्म जो-जो मुनियोंने पूछे वह मनुनेवर्णन किये ॥ ३८ ॥ आदि नृप स्वायंभुव मनुका चरित्र मैंने सब आपसे वर्णन किया, अब उनके सन्तानोंकी कथा सुनो ॥३९॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां सपत्नीकस्वायंभुवमनोर्बर्हिष्मतीप्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* कवित्त -पायो है मनुज देह औसर भन्यो है आय, ऐसी देह बार बार कहो कहां पाइये । भूलत है वावरे तू सबसे सयानो होय,रतन अमोल यह काहे को गँवाइये ।। समुझ विचार कर ठगनको सङ्ग त्याग, ठग जे हैं देख कहूँ मन न डुलाइये । सुन्दर कहत तु अब भी सावधान होय,हरिको भजन कर हरिमें समाइये ।।३७।।

दोहा–देवहूति कर्दम कथा, वरणौं सहित सनेह । नव कन्या उत्पति भई, तोहू रह्यो सँदेह ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब शतरूपा और स्वायंभुव मनु अपने नगरको चले गये तब साध्वी देवहूति अपने पतिके मनकी बात जाननेवाली प्रतिदिन प्रीतिसे पतिकी सेवा करने लगी, जिस प्रकारसे हिमाचलपुत्री महेश्वरकी सेवामें दिन-रात लगी रहती हैं ॥ १ ॥ विश्वास, शौच व अपनी गुरुतासे, दम, सुहृदता व मधुर वाणीसे शुश्रूषा करे ॥ २ ॥ कपट, दंभ, द्वेष, लोभ, पाप, मद इन सबको त्यागकर महातेजस्वी मुनीश्वरको सन्तुष्ट करती रहे, इस प्रकार अपने शरीरकी सब सुध बिसार कांतकी सेवा करते-करते सब शरीर शिथिल हो गया, परन्तु पतिकी सेवा करनेसे मन न थका ॥ ३ ॥ निश्चय

मैत्रेय उवाच ॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत् प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ॥ शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥ २ ॥ विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥ स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥ ४ ॥ कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानविमानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव सुहृत् स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥ ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपस्समाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥

करके सो देवर्षियोंमें श्रेष्ठ कर्दम, उस मानवी सदासेवा करनेवाली सबसे बड़े भाग्यवाली, पतिसे बड़े-बड़े आशीर्वादोंकी अभिलाषा करनेवाली ॥ ४ ॥ बहुत दिन सेवा करनेसे जिनका शरीर दुर्लभ हो गया है; ऐसी देवहूतिसे प्रेमसहित गद्गद वाणीसे पीडित हो कृपा करके ॥ ५ ॥ कर्दमजी बोले, कि हे मानवि ! आज मानदात्री तुम्हारी परम शुश्रूषासे और अत्यन्त भक्तिसे मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो अपना देह देहधारियोंको अत्यन्त प्याग है; वह देह तुमने मेरी सेवाके अर्थ लगा दिया और अपना जीवन-मरण कुछ न समझा, इस कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥ जो मैंने स्वधर्ममें रत होकर तप, समाधि, विद्या, आत्मयोगसे जीते भगवत्के दिव्य

प्रसाद प्राप्त किये हुए मुझमें हैं, उनको मेरी सेवा करके तूने अपने वशमें कर लिये हैं। अब मैं तुझको दिव्य-दृष्टि देता हूँ, जिसके प्रतापसे अभय अशोक सविस्तार संसारको तुम देखोगी ॥ ७ ॥ भगवान्‌की भ्रुकुटि टेढ़ी होनेसे जिनकी अर्थरचनाका विनाश होता है और वैभव तो क्या वस्तु है ? तू सिद्ध हो गयी है, इसलिये निज धर्मपूरक प्राप्त हुए हैं उन वैभवोंको अनुभव करो जो नृपोंकेसी क्रिया करने वाले मनुष्योंको भी नहीं प्राप्त होता है ॥८॥ इस प्रकार पतिकी सब योगमाया और विद्या व पाण्डित्यको देखकर देवहूतिकी सब पीड़ा और चिंता नष्ट हो गयी और फिर विनय प्रेमसे विह्वल हो गद्गद वाणीसे कुछ लज्जाकी चितवनसे बिलसित हँसित मुखारविन्दवाली

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धाऽसि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान् दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥ एवं ब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ॥ ९ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ॥ यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसंगो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥ १० ॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयाऽऽत्मा ॥ सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि, हे विप्रवर ! हे प्राणनाथ ! ! हे स्वामिन् ! ! ! आप अमोघ योगमायाके स्वामी हो, तुममें ये सब प्रस्तुत हैं, यह मैं भली प्रकार जानती हूँ,परन्तु तुमने जो मुझसे कहा था कि पुत्र उत्पत्तितक मैं साथ विहार करूंगा तुमने कहा था कि ऐसा ही होगा, सो अपने कहे अनुसार एक बार अंगसङ्ग करना योग्य है, क्योंकि महान् तेजस्वी पतिसे जो सती स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त गुणवान् होती है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! अङ्गसङ्गम करने योग्य कामशास्त्रोंकी शिक्षा है,जिससे मेरी यह मलीन और क्षीण देह रमण करने योग्य हो। तुम्हारे किये हुए कामसे मैं धर्षित हूँ, इस कारण उसको शान्त करनेके लिये उत्तम भवन बनाना चाहिये ॥ ११ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी ! प्रियाके प्रिय वचन सुन कर्दमजीने योगबलसे उसी समय एक ऐसा परमोत्तम विमान प्रकट किया, कि इच्छानुसार सब भूमण्डलमें घूमनेवाला ॥ १२ ॥ सब इच्छा पूर्ण करनेवाला दिव्य यान, बड़े मूल्यके रत्नोंसे जड़ा हुआ, सब वृद्धियोंके समूहोंसे संचित, मणि-माणिकोंके खम्भोंसे शोभित; ॥१३॥ दिव्य सामग्री समेत प्रत्येकका सुख देनेवाला, नाना प्रकारकी अद्भुत-अद्भुत ध्वजा व विचित्र पताकाओंसे विभूषित ॥ १४ ॥ विचित्र पुष्पोंकी सुन्दर माला अटक रही जिन पर भँवरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार शब्द कर रहे, रेशम वस्त्र, बढ़िया पीतांबरादिक अनेक प्रकारसे लगे हुए॥१५॥चौखण्डे,पँचखण्डे रचे हुए स्थानों व मंदिरोंमें पृथक्-पृथक् शय्या,

मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥१२॥ सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्विम् ॥ सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥ दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥ स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ १५ ॥ उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ॥ क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥ १६ ॥ तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ॥ शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥ १८ ॥ चक्षुष्मत्पद्मरागाढ्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानमहार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥

चमर, पर्यङ्कव्यजन आसन जहां-तहां विराजमान ॥ १६ ॥ उन स्थानोंमें नाना प्रकारकी शिल्पकी कारीगरीसे चित्रसारी और तिवारी ऐसी मनोहर सवारी थी कि जिनकी मणि मरकतमय भूमिमें अद्भुत वेदी बन रही थी ॥१७॥ द्वारों पर विद्रुमकी देहलियोंका प्रकाश, हीरोंसे जड़े वज्रके किंवाड विज्जुछटासम चमक रहे, शिखरोंपर इंद्रनील, मणि लसी हुई कनकके कलस कलशियां दमक रहे ॥ १८ ॥ भीतोंके भीतर हीरे, माणिक, पद्मराग जहां-तहां चित्र-विचित्र नेत्रोंके समान चमक रहे थे, और रंग-विरंगे अधिक मोलके शामियाने तने थे ॥१९॥ मणियोंके कृत्रिम हंस व कपोतोंको देख २ हंस कबूतरोंके झुण्डके झुण्ड उनको अपना सजाती समझ उड़ २ उनके निकट आ-आकर

बैठते थे ॥२०॥ विहार स्थान, शयन भवन, विश्राम गृह, उपभोग स्थल, आंगन, दुर्गसे बाहरके मंदिर, सविस्तार चौक उसमें ऐसे-ऐसे अद्भुत भवन यथासुख बने थे कि, जिनको देख कर्दमजीको भी विस्मय होता था ॥ २१ ॥ ऐसे शोभायमान मंदिरोंको देख, देहकी मलीनता और सखियोंके न होनेसे देवहूति अपने मनमें अत्यानंदित न हुई, तब सब जीवमात्रके अन्तर्यामी कर्दमजी देवहूतिसे बोले * ॥ २२ ॥ हे सुमुखि ! इस बिन्दुसरोवरमें स्नान करके इस विमानमें बैठ। यह तीर्थ अपने नेत्रोंसे आनन्दका बिन्दु इस भूमिपर डाल

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ॥ यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥ २१ ॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ॥ सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥ २२ ॥ निमज्ज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥ ॥२३॥ सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥ २४ ॥ अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥ २५ ॥ साऽन्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥ २६ ॥

कर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उत्पन्न किया है, यह मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला और आशीर्वादका देनेवाला है ॥ २३ ॥ वह पंकजनेत्रा देवहूति पतिका वचन मान, मलीन वस्त्र पहिने, दुर्बल शरीर, वेणीभूत केश धारण किये ॥ २४ ॥ मैली देह कीच मिट्टीमें सनी हुई, ऐसी देवहूतिने उस विस्तीर्ण सरस्वतीके शिव सरोवरमें स्नान किया ॥२५॥ सरोवरके भीतरसे एक हजार कन्या सब किशोर वय,

* शंका—देवहूतिने अपने पति कर्दममुनिसे प्रथम तो रतिसुखके लिये सुन्दर स्थान सुन्दर मंदिर बनानेकी याचना की, जब कर्दममुनिने महाअद्भुत अत्यन्त शोभायमान भवन बनाये तब मंदिरोंको देखकर उदास क्यों हो गयी ?

उत्तर—प्रथम देवहूतिने अपने पतिके प्रभावको नहीं जाना था, जब तपस्यासे कर्दम मुनिने महाअद्भुत विमान बनाया उसको देखकर अपने पतिके प्रभावको जान लिया कि यह बड़े सिद्ध हैं, मैंने ऐसा सामर्थ्यवान् पति पाकर तुच्छ यान मांगा, मोक्ष क्यों नहीं मांगा ? इस लिये देवहूति अपने मनमें उदास हो गयी थी ।

सर्वगुणसंपन्न, कमलसमान सुगंध, वाली दृष्टिगोचर हुई ॥ २६ ॥ देवहूतिको देख हाथ जोड़कर सब स्त्रियाँ बोलीं कि, हमसब आपके सब कर्मोंके करनेवाली दासियां हैं, हमको जो आपकी आज्ञा होगी वही करनेको तैयार हैं ॥२७॥ उस मनस्विनीको स्वच्छतासे स्नान करा कर अमूल्य वस्त्र दासियोंने पहिनाये ॥२८॥ फिर सर्वस्वादयुक्त अन्न जिमाय अमृतके समान मिष्ट मादक जल पिलाया और अमोल रत्नजटित वस्त्राभूषण पहिनाये ॥२९॥ फिर देवहूतिने पुष्पोंकी माला पहिने, शुक्लवस्त्र धार, निर्मल स्वस्त्ययन की हुई बहुत कन्या सम्मान करें, ऐसे अपने अंगको आरसीमें देखा ॥३०॥ शिरसे स्नान किये, सब आभरण शोभित गलेमें हार और हाथोंमें कंकण पहिने, सौभाग्यके

तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः ॥ वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥ स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥ दुकूले निर्मलेनूत्ने ददुरस्यै च मानद ॥ २८ ॥ भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥ २९ ॥ अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ ३० ॥ स्नातं कृतशिरस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥ श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया ॥ हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥ सुदंता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापांगेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३ ॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ॥ तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥

सब मांगलिक पदार्थ धारण किये, पांवोंमें स्वर्णके नूपुर झनझनाती ॥ ३१ ॥ बहुरत्नकी करधनी कटिमें पहिने, हीरोंके हार कण्ठमें शोभायमान ॥ ३२ ॥ सुन्दरदांत सुन्दर भौंहें, मनोहर प्रेम–रसभरे कटाक्षवाले नेत्र, पद्मरागनिंदा करनेवाली नील मेघनिभ अलकोंसे शोभित मुखारविंद दृष्टिगोचर किया ॥ ३३ ॥ उस मनोहर छबिको निरख अपने प्राणप्रीतम ऋषिश्रेष्ठका देवहूतिने स्मरण किया । वह वहां गयी जहां सब ऋषियोंमें अग्रगण्य कर्दमजी विराजते थे ॥ ३४ ॥ हजार सहचरियों समेत प्यारे अपने पतिकी योगमायाको देख देवहूतिको

महान् संशय हुआ, कि यह क्या आश्चर्य है ? ॥३५॥ मज्जन स्नान करनेसे अपूर्व शरीरकी कांति प्रकाशित है जैसी कि विवाहके समय थी, उस रूपको धारणकिये वस्त्रसे उरोजोंको छिपाये कर्दमजीने देवहूतिको देखा ॥३६॥ सहस्र विद्याधरियोंसे सेवित; मनोहर वस्त्र पहिने, उस मनोरमाको देखकर, हे विदुरजी ! कर्दममुनिने देवहूतिका कोमल मृणालवत् कर पकड़कर प्रेम सहित उस विमानपर बिठाया ॥३७॥ महिमा जिनकी लुप्त न हुई, प्रियामें आसक्त, विद्याधरियोंसे शुश्रूषित कर्दमजी प्रफुल्लित पद्मके समान सुन्दर आकाशके तारागण सेवित चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे ॥ ३८ ॥ उस विमानमें बैठकर आठों लोकपालोंके विहारका कुलाचलेन्द्र सुमेरुकी कन्दराओंमें

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ॥ आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रियया-ऽनुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यरताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभःस्थः ॥ ३८॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीस्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥ ३९ ॥ वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥ भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान्यथाऽनिलः ॥ ४१ ॥ किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥ ४२ ॥

कामदेवके सखा शीतल, मन्द, सुगन्ध, बयार चल रही, गंगाके गिरनेका कल्याणदायक शब्द हो रहा ऐसे सुमेरुपर्वतपर कुबेरसम कर्दमजी ललनागणोंको साथ लिये, सिद्ध जिनकी स्तुति करें वह कर्दमजी रमण करने लगे ॥३९॥ फिर कर्दमजी प्रसन्न होकर वैश्रंभक, नन्दन, सुरसन, पुष्प, भद्रक, मानस, चैत्ररथ इन सात देवताओंकी वाटिकाओंमें अपनी रमणीके साथ रमण करने लगे ॥ ४० ॥ प्रकाशमान पुरुष जहां चाहें वहां जाँय, बड़े विमानमें बैठकर लोकोंमें जैसे पवन चले वैसे सब विमानोंको उल्लङ्घन कर कर्दमजी सबके शिरोमणि हुए ॥४१॥ उन धैर्यवानोंको कौन वस्तु दुर्लभ है, जिन्होंने कष्टहरण श्रीनारायणके कमलरूपी चरणका आश्रय लिया है, सब

व्यसन उनके नाश हो जाते हैं ॥४२॥ फिर जितना भूमण्डल है वह सब अपनी भार्याको दिखाया, जिससे वह आश्चर्यान्वित हुई सबमें विचरकर महायोगी कर्दमजी अपने आश्रमको आये ॥४३॥ मनुकन्याके नव कन्या उत्पन्नकी तो भी मैथुनमें जिसका मन जब अपनी प्रिया देवहूति स्त्रीसे वह सौ वर्ष एक मुहूर्तकी नाईं रमण करते कर्दमजीको बीत गये ॥ ४४ ॥ तब उस विमानपर स्थित होकर देवहूति अपने पतिके साथ ऐसी मोहित हुई कि समयकी कुछ सुधि न रही ॥४५॥ इस प्रकार योगके प्रभावसे स्त्रीपुरुषको आनंद क्रीडा करते करते कामकी लालसामें सौ वर्ष व्यतीत हो गये॥४६॥देवहूतिको अत्यन्त स्नेहके कारण आत्मज्ञानी आत्माका भाव जानकर नौ प्रकारका रूप

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया ॥ बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥ विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ॥ रामां निरमयन्रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ॥ न चाबुध्यत तं कालं पत्याऽपीच्येन संगता ॥ ४५ ॥ एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसंकल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥ अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजा ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदाऽऽलक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥ लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ॥ उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ देवहूतिरुवाच ॥ सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥

विधानकर, विभु सब संकल्पके ज्ञाता कर्दमजीने देवहूतिमें वीर्य धारण किया, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुत्र, स्त्रीका वीर्य अधिक हो तो कन्या होती है ॥४७॥ इस कारण देवहूतिके शीघ्र ही नौ कन्या उत्पन्न हुई । वे सब श्रेष्ठ कोमलांगी, जिनका लालकमलका-सा रंग और अंगमें सुगंधि थी ॥ ४८ ॥ फिर जिस समय कर्दमजीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार संन्यास ले वनमें जानेकी इच्छा की उस समय पतिको देख सती देवहूति मोहसे विवशहृदय हो मुसकाई ॥ ४९ ॥ नीचेको ग्रीवा किये मणिसमान कांति चरणके अँगूठेके नखसे धरतीको खोदने लगी और धीरे-धीरे आंखोंसे आँसू पोंछ मृदुल वाणीसे ॥ ५० ॥ देवहूति बोली कि, हे नाथ ! आपने सब प्रकार मेरा मनोरथ पूरा

किया, तो भी मैं आपकी शरण आयी हूं, मुझको आप अभय दान दीजिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपको इतनी कृपा और करनी चाहिये, कि इन कन्याओंके योग्य कोई उत्तम कुलका वर ढूंढकर विवाह करते जाओ और एक मेरा शोकहर्ता पुत्र उत्पन्न कर पीछे वनको पधारें। ॥ ५२ ॥ हे प्रभो ! इन्द्रियोंके प्रसंगसे मैंने परमब्रह्मको त्यागकर इतना समय व्यतीत किया इसीमें मेरा मन तृप्त हो गया ॥५३॥ इंद्रिय सुखमें आसक्त होकर मैंने आपसे भोग-विलास किये,आपके परम भावको मैं नहीं जानती थी, तो भी मेरे अभयके अर्थ कुछ उपाय करना चाहिये ॥५४॥ संयोग संसारके बन्धनका कारण है, सो कुबुद्धिसे असत् पदार्थोंमें संयोग किया वही संयोग महात्माओंसे किया जाय तो

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ॥ इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥ ५४ ॥ सङ्गो यः संसृते हेंतुरसत्सु विहितो धिया ॥ स एव साधुषु कृतो निस्सङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥ नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपिमृतो हि सः ॥५६ ॥ साऽहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ॥ यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥ इति श्रीभा० म० तृ० कर्दमस्य नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशाति तमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

निश्चय मोक्षका हेतु होता है ॥५५॥ इस संसारमें आकर जिसने धर्मार्थ न तो कोई उत्तम कर्म किया एवं न वैराग्यार्थ कुछ तप और नारायणके चरणारविंदोंकी सेवा करनेको कुछ उपाय किया है, वह पुरुष जीता हुआ मृतकके समान है ॥५६॥ निश्चय है कि मैं भगवान्की मायासे मोहित हो गयी, जो आपसे मोक्षदायक पतिको पाकर भी इस संसारके बन्धनसे न छूटी, मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् हो, परन्तु भगवान्की भक्तिके विना उसके सब गुण वृथा हैं * ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

* सवैया–बुद्धि बड़ी चतुराई बड़ी मनमें ममता अतिनालिपटी है। नाम बड़ो धनवान बड़ो, करतूत बड़ो जगमें प्रगटी है ॥ गजवाजिय द्वार मनुष्य हजार, तौ इन्द्रसमानसे कौन घटी है। सो सब विष्णुकी भक्ति बिना मानो सुन्दर नारिको नाक कटी है ।

दोहा—चौबिसवें अध्यायमें, कपिलदेव अवतार । कर्दममुनि बनको गये, त्याग जगत् व्योहार ॥ मैत्रेयजी बोले कि मनुतनया देवहूतिने इस प्रकार ज्ञान वैराग्यके वचन कहे, उस समय भगवान् वासुदेवके कहे वचन स्मरण करके महात्मा कर्दमजी देवहूतिकी प्रशंसा कर॥१॥ ऋषि बोले कि, हे राजपुत्रि ! खेद त्यागो, अपने आत्माकी इस प्रकार निंदा मत करो, अक्षर भगवान् थोड़े दिनोंमें तुम्हारे गर्भमें आकर प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ तुमने अनंतव्रत धारण किये हैं,तुम्हारी कुशल होगी; दम,नियम, तप,धनदान श्रद्धासे परमात्माकी सेवा करो ॥३॥ तुम

मैत्रेय उवाच ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥ २ ॥ धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ॥ तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥ ३ ॥ स त्वयाऽऽराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ॥ छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ॥ सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥ ५ ॥ तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो यज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ ६ ॥ अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ॥ गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥ ७ ॥

आदिपुरुष अविनाशी श्रीमन्नारायणका आराधन करोगी तो त्रिलोकीनाथ ज्ञानउपदेशक श्रीभगवान् तुम्हारे उदरसे उत्पन्न होकर मेरा यश विस्तार कर तेरे हृदयकी ग्रन्थि और मोह ममताका छेदन करेंगे ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवहूति कर्दमप्रजापतिके वचन सुनकर उनपर पूर्ण विश्वास कर श्रद्धासहित अचिंत्यरूप कूटस्थ पुरुष जगद्गुरु ईश्वरका भजन करने लगी ॥५॥ कुछ दिनोंके उपरांत मधुसूदन भगवान् कर्दमजीके वीर्यको प्राप्त होकर, जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है वैसे देवहूतिके उदरसे उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें बड़े

१. शंका—कर्दम मुनिने देवहूतिसे कहा कि तुमने भलीभांति श्रीलक्ष्मीनारायणका पूजन किया है, इसलिये श्रीभगवान् तुम्हारे पुत्र होंगे परंतु यह भ्रम होता है किस जन्ममें ? यह सुन देवहूति फिर एकाग्र चित कर सावधानीसे पर मेश्वरका पूजन करने लगी ।

उत्तर—इसी जन्ममें देवहूति अपने हृदयमें रात-दिन भगवानको अपना पत्र होनेके लिये मानसिक पूजन करती थी, यह देवहूतिके कर्मोको कर्दममुनिने जान लिया ।

शब्दसे बाजे बजने लगे,गन्धर्व गाने लगे,सब अप्सरायें आनन्दसे नाचने लगीं ॥७॥ दिव्य आकाशवासियोंके छोड़े हुए पुष्प वर्षने लगे। सब दिशा जल और मन अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ सरस्वतीपरिवेष्टित उस कर्दमजीके आश्रमपर मारीचि आदि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी आये ॥९॥ हे रिपुसूदन ! विदुरजी ! भगवान् परब्रह्मने सत्त्व–अंशसे सम्यक् सांख्य शास्त्रको प्रकट करनेके लिये जन्म लिया है,यह बात स्वतः सिद्ध आत्मज्ञानवाले ब्रह्माजीको प्रकट हुई ॥ १० ॥ ब्रह्माजी विशुद्धचित्तसे उनके करनेकी जो इच्छा प्रकट हुई उसको अत्यन्त सत्कार कर हर्षित चित्तसे कर्दमजीसे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! हे मान देनेवाले ! तुमने निष्कपट होकर मेरी पूजाकी जो मेरा

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः॥प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ॥स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९॥ भगवन्तं परंब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ॥ तत्त्वसंख्यान विज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥ १०॥ सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेद-मभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ॥ यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥ १२ ॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ॥ बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३ ॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथा शीलं यथारुचि ॥ आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ॥

वचन मानसे तुमने ग्रहण किया॥१२॥पुत्रोंको पिताकी इतनी ही शूश्रूषा करनी चाहिये; "जो आज्ञा" ऐसा कहकर पितृवचन, गुरुवचन गौरवसे माने ॥ १३ ॥ हे सभ्य ! यह तुम्हारी नौ पुत्रियाँ अपने प्रभावसे अनेक प्रकारकी सृष्टिको बढ़ायेंगी ॥ १४ ॥ इस लिये इनके शील और रुचिके अनुसार मुख्य-मुख्य मरीचि आदि ऋषियोंके लिये इन कन्याओंको दो और संसारमें अपना यश विस्तार करो ॥ १५ ॥ हे मुने ! हम इस बातको भली-भांति जानते हैं कि प्राणियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आदिपुरुषने अपनी मायासे कपिलदेह धारण

किया है ॥ १६ ॥ हे देवहूति ! जिन आदिपुरुषने तुम्हारे गर्भमें प्रवेश किया है, ज्ञान जो शास्त्रका सिद्धान्त और विज्ञान जो अपरोक्ष अर्थात् विना देखे, विना सुने, विना कहे यथार्थ वस्तुका जान लेना, ये ही दोनों एक उपाय हैं, इनसे कर्मोंका जो मूल है, अर्थात् वासना, उसको उखाड़ेंगे, सुवर्णकेश कमलनयन, पद्मचिह्नवाले जिनके चरणारविंद हैं, ऐसे कैटभदैत्यके मारनेवाले तुम्हारे आत्मरूपका अज्ञान और मिथ्याज्ञानीकी ग्रंथिको काटकर सब पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ और यह तुम्हारा पुत्र सब संसारमें प्रसिद्ध होगा, सिद्धगणोंमें मुख्य सांख्य शास्त्रके आचार्योंमें सेव्यमान और लोकमें कपिलदेव नामसे विख्यात होकर तुम्हारी कीर्तिको

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥ एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ॥ अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति॥१८॥अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वस्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥ २० ॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ॥ यथोदितः स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहाय गतियुक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥

बढ़ायेंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जगत्कर्ता चतुरानन उन दोनों स्त्री पुरुषोंको धैर्य देकर सनत्कुमार और नारदमुनिसहित हंसवाहन पर बैठकर सत्यलोकको चले गये॥२०॥हे विदुरजी ! जब ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये, तब कर्दमजीने ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार अपनी नवों कन्याओंको विश्व रचनेवाले मारीचि आदि मुनीश्वरोंको दे दिया ॥२१॥ कलानाम कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको ॥२२॥ योग्यगति पुलहको, क्रियासती यज्ञको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको, और शांति अथर्वको दी, जिस शांतिसे यज्ञ समृद्ध होता है इस प्रकार उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ विवाह करके स्त्रियों सहित उनको अत्यन्त लालन किया॥२३॥२४॥

हे विदुर ! विवाह होनेके उपरान्त ऋषि कर्दमजीसे विदा मांग आनन्दित हो अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २५ ॥ कर्दमजी अपनी स्त्रीमें देवश्रेष्ठ विष्णु अवतार हुआ जानकर, एकान्तमें आ प्रणाम कर बोले ॥ २६ ॥ हे हरे ! अपने कर्मोंसे पापी जीव नरकमें दुःख भोगते हैं, उनका बहुत काल बीतने पर देवता उनपर प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ महात्मापुरुष एकान्तस्थानमें बैठकर अनेक जन्मके किये हुए सुन्दर योगसमाधिसम्बन्धी जप-तप साधन कर आपके पदपंकजके दर्शनार्थ उपाय करते हैं ॥२८॥ वही त्रिभुवनपति नारायण आज हमारे अपराधोंको बिसारकर, अपने दासोंका पक्ष पुष्ट करनेवाले हमसे तुच्छ ग्रामवासियोंके घरमें आपने जन्म लिया ॥ २९ ॥ अपना

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥ २५ ॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥ अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ॥ कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥ स एव भगवानद्य हेलनं नगणय्य नः ॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० ॥ तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ तं सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रिया पूर्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥ परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥

प्रण पूरा करनेको और ज्ञानवैराग्यकी शिक्षा करनेको और भक्तोंका मान बढ़ानेको मेरे घर आकर आपने अवतार लिया ॥३०॥ हे भगवन् ! यद्यपि चतुर्भुज आदि जो अद्भुत रूप हैं वे ही आपके योग्य हैं तथा आपके सुजन भक्तोंको जिस-जिस प्रकारसे रूपकी इच्छा होती है; हे रूपरहित ! आप उसी प्रकारका रूप धारण कर उनको प्रसन्न करते हो ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञानके मनोरथसे महात्मा पुरुष जिन आपके चरणपीठको नमस्कार करते हैं । उन ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य, श्रीसे पूर्ण जो आप हैं, उन आपकी मैं शरण हूँ, अर्थात् सर्वगुणनिधान आपकी शरण होनेसे मैं भी निष्काम हो गया ॥ ३२ ॥ परमेश्वर प्रधान पुरुष महत्तत्त्व, काल, कवि अहंकार,

लोक और लोकपालक अपने अनुभवसे संसारमें आनेवाले हैं, भक्तोंके आधीन जिनकी शक्ति और जिनके स्वरूपमें सब प्रपञ्च समाया रहता है, ऐसे कपिलदेव भगवान्‌की मैं शरण हूँ ॥३३॥ हे प्रजापतियोंके पति ! मैं आपसे संन्यास धारणके कारण आदेश मांगता हूं और यह भी जानता हूं कि आपके अवतार लेनेसे मैं पितृऋणसे छूट गया और मेरी मनःकामना भी सिद्ध हुई। अब संन्यासियोंकी पदवीमें स्थित हो, आपको हृदयमें धारण कर विशोक होकर विचरण करूंगा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुने ! सत्य लौकिक सब कार्योंमें मेरा कहना सबको प्रमाण है, इस कारण जो वाक्य मैंने आपसे कहे थे वे सब सत्य करनेको तुम्हारे यहां मैंने जन्म लिया है ॥ ३५ ॥ इस लोकमें लिंग शरीरसे मुमुक्षु लोगोंको आत्माके दर्शनके लिये और जगत्‌की दुर्वासना मोक्षके लिये और तत्त्वोंकी संख्याके लिये संसारमें

आस्मामिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णार्ण उताप्तकामः ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥ एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥३६॥ एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥ गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥३८॥ मामात्मानं स्वयं ज्योतिःसर्वभूतगुहाशयम् ॥ आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥३९॥ मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥ ४० ॥

मैंने जन्म लिया है ॥ ३६ ॥ बहुत कालसे यह सूक्ष्म, अनादि ईश्वर सम्बन्धी ज्ञानमार्ग नष्ट हो गया था, उसके प्रचार करनेको यह मनुज अवतार संसारमें मैंने धारण किया है ॥ ३७ ॥ जो कुछ कर्म करो वह मेरे निमित्त समर्पण करो यही पूर्ण संन्यास है, इस बातको मनमें धारण कर जहां इच्छा हो जाओ और अत्यन्त दुर्जय इस मृत्युको जीतकर मोक्षके अर्थ मेरा भजन करो ॥३८॥ मैं आत्मज्योति हूं और सब जीव मात्रके हृदयमें वास करता हूं,अपनी बुद्धिसे सर्वत्र परमात्माको जानकर विगतशोक हो, अभयपदको प्राप्त होओगे ॥ ॥ ३९ ॥ सब कर्मोंको नाश करनेवाली ब्रह्मविद्याका उपदेश अपनी माताके लिये विस्तारसहित करूंगा;जिससे वह संसार बन्धनसे छूटकर

तर जायँगी ॥४०॥ मैत्रेयजी बोले कि जब कपिलदेवजीने इस प्रकार कर्दमजीसे वचन कहे, तब कर्दम प्रजापति कपिलदेवजीकी प्रदक्षिणा करके वनको चले गये ॥४१॥ मुनि लोगोंका धर्म जो मौनव्रत है, उसमें स्थित होकर,आत्माके शरणागत हो, सबका सतसंग तजकर,मोह विगत हो फलाहार करने लगे, एक स्थान पर न ठहरें, सब पृथ्वीपर विचरते रहें ॥ ४२ ॥ जो कार्यकारणसे परे ब्रह्म है, उनमें मन लगा, गुणोंका जिसमें प्रकाश है ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें लवलीन हो एक भक्तिको अनुभव करते हुए ॥४३॥ अहंकार,ममता, त्याग, सुख-दुःख समान समझ, समदर्शी ज्ञानदर्शी हो, सबसे शांति बुद्धि कर जैसे समुद्रमें सब तरंगें शान्त हो जाती हैं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार महाधीर प्रजापति

मैत्रेय उवाच ॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निस्संगो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्याऽनुभाविते ॥ ४३ ॥ निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक्प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥ ४४ ॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥ ४५ ॥ आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० कापिले कपिलावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥ जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥

कर्दमऋषिने परम भक्ति भावसे अपना मन सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान् सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामीमें लगा आत्मज्ञानको प्राप्त कर सब बन्धनसे मुक्त हुए ॥ ४५ ॥ सब जड़, चेतनमें आत्मा भगवान् वासुदेवको स्थित देखने लगे और सब जड़ चेतनको भगवान् वासुदेव आत्मामें देखने लगे ॥ ४६ ॥ कामना द्वेषको त्याग सर्वत्र समानचित्त कर भगवान्की भक्तिमें लय हो भगवत्गतिको प्राप्त हुए, ॥४७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे कपिलदेवावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–देवहूति पच्चीसमें, बूझत मुक्ति उपाय । भक्तिमुक्तिकी रीति सब, कही कपिल समझाय ॥ श्रीशौनकजी बोले कि, तत्त्वसांख्यशास्त्रके कर्ता भगवान्

कपिलदेवजीने मनुष्योंको आत्मतत्त्वका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे आप ही अजन्मा होनेपर जन्म लिया ॥१॥ सब पुरुषोंमें शिरोमणि, योगिजनोंमें श्रेष्ठ,ऐसे वासुदेव भगवान्‌की कीर्ति और अत्यन्त परमेश्वरके चरित्र सुननेसे भी मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥ अपने प्यारे भक्तोंकी इच्छासे जो-जो स्वरूप त्रिभुवनेश्वर भगवान् धारण करते हैं और अपनी मनमोहिनी मायासे जो-जो अलौकिक लीला करते हैं और अपनी मनमोहिनी मायासे जो अलौकिक लीला की है, वह चरित्र मुझ श्रद्धालुके कीर्तन करनेके योग्य है,वह कृपाकर कीर्तन कीजिये॥३॥सूतजी बोले कि वेदव्यासजीके प्यारे सखा मैत्रेय भगवान्‌ने विदुरजीसे प्रीतिके मारे ब्रह्मविद्यामें प्रेरित इसी प्रकारके वचन कहे थे,

न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥ २ ॥ यद्यद्विधत्ते भगवा-न्स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥३॥ सूत उवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा॥प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः॥४॥मैत्रेय उवाच॥पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया॥ तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥ ६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ॥ येन संभाव्यमानेन प्रपन्ना ऽन्धं तमः प्रभो ॥७॥ तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥

जैसा तुमने मुझसे प्रश्न किया,वह हम तुमसे कहेंगे,आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥४॥मैत्रेयजी बोले कि,जब कर्दमजी वनको चले गये,तब कपिलदेवजी अपनी माताकी मनःकामनाको पूर्ण करनेके अर्थ उसी बिन्दु सरोवरपर वास करने लगे ॥५॥ अपने सुत अकर्मी तत्त्वमार्गके अग्र दिखानेवाले कपिलदेवजीको बैठा देखकर ब्रह्मका वचन स्मरण कर॥६॥देवहूति बोली, हे भूमन् ! हे प्रभो ! खोटी इंद्रियोंकी तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त हुआ, जिन विषयोंकी भावनासे अन्धतममें गिरना पड़ा ॥७॥ जो महागंभीर दुःखके समुद्रसे कठिनतापूर्वक पार जा

१. शंका–देवहूतिने कपिलमुनिसे कहा कि, हे पुत्र ! खोटी इन्द्रियोंसे तो मैं खेदित हो छूट गयी हूं तो फिर कपिलमुनिसे मुक्त होनेका उपाय क्यों पूछा ? क्योंकि जो खोटी इन्द्रियोंसे छूट गया तो वह सब संसारसे छूट गया, उसको मुक्ति होनेके उपाय पूछनेसे क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–देवहूति खोटी इंद्रियोंसे छूट गयी हूं तो भी भगवान्‌को अपना पुत्र देखकर मुक्ति होनेवाले कामोंका लोभ करके अथवा मुक्तिके कर्मोंको पुष्टकरनेके लिये पूछती हूं।

सके, उसके अन्धकारको पार करनेवाले, अनेक जन्मोंके अंतमें आपकी कृपासे मुझको इस सुन्दर स्वरूपका दर्शन हुआ है ॥८॥ जो पुरुषोंमें आद्य पुरुष भगवान् ईश्वर हैं,वह आप हो,अँधियारेसे अन्धे हुए लोकोंको सूर्यके समान नेत्ररूप तुम उदित हो॥९॥इस कारण हे देव ! यह असत् आग्रह, अहं, ममता, मोह आपने ही इनसे संयोग कर रखा है, आप हमारे मोहको दूर कीजिये ॥ १० ॥ शरणागत प्रतिपालक, भक्तवत्सल अपने भक्तोंकी मृत्युके वृक्षको काटनेके लिये कुठाररूप, सद्धर्ममें श्रेष्ठ,प्रकृतिपुरुष जाननेकी इच्छा करके मैं तुम्हारी शरण आयी हूं इसलिये आपको प्रणाम करती हूँ ॥११॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार अनिंद्य चाह अपनी माताकी सुनी, जो मनुष्योंको

य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान् किल ॥ लोकस्य तमसाऽन्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥ अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहं ममेतीत्येतस्मि न्योजितस्त्वया ॥ १० ॥ तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेःपुरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनन्द्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः॥१२॥श्रीभगवानुवाच॥ योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ॥ अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥ तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे ॥ ऋषीणांश्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ॥ गुणेषु सक्तं बन्धायरतंवापुंसि मुक्तये ॥ १५ ॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥ १६ ॥

मोक्ष देनेवाली बुद्धिसे सराहना कर आत्मज्ञानी संतोंकी गति मंद-मंद मुसकानसे शोभायमानमुखसे अपनी मातासे कहा ॥ १२ ॥ कि, पुरुषोंके कल्याणार्थ ब्रह्मविद्यामें आशा रखनी यही मेरा मत है जिस ब्रह्मविद्याके लाभ होनेसे सुख-दुःखका नाश हो जाता है ॥ १३ ॥ हे अनघे ! सर्व प्रकारसे बहुत निपुण योगको सुननेकी इच्छावाले योगियोंको जो योग मैंने प्रथम कहा था वही कहता हूं,तुम श्रवण करो ॥ १४ ॥ निश्चय करके चित्त इसके बंधनार्थ है और आत्माका चित्त मुक्तिके अर्थ भी कहा है; गुणोंमें आसक्तता होनेसे बंधन होता है और जो पुरुष ईश्वरमें लगे तो मुक्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ जब मैं, मेरा, यह अभिमान उठा हुआ काम लोभादि मलोंसे रहित

शुद्ध मन होता है, तब सब दुःखनाश होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परे निरंतर स्वयं ज्योति अणुमात्र अखंडित परमेश्वरको ॥ १७ ॥ ज्ञान, वैराग्य, भक्तियुक्त आत्माद्वारा सबसे उदासीन प्रकृतिसेपराक्रमका नाश करनेवाला ब्रह्म जीवब्रह्मको देखता है ॥ १८ ॥ भगवान् अखिलात्मामें लगे हुएके समान योगियोंको ब्रह्म सिद्धिके लिये, इससे अधिक और मंगलदायक मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ इस जीवका जगत्में आसक्त हो जाना यह अजर-अमर फांसी है, यही आसक्ति साधुसन्तोंमें करे तो उसके लिये मोक्षका द्वार खुला हुआ है ॥ २० ॥ मुनिजनोंका कथन है कि सबकी सब बातें सहे, सब देहधारियोंपर दयालुता रक्खे, सब जीवमात्रसे

तदापुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥ परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥१८॥ न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥ प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ॥ स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥ तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ॥ अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥ २१ ॥ मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥ मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ॥ तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥ त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः ॥ सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥ २४ ॥ सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥

सुहृद्भाव वर्तें, किसीको अपना शत्रु न समझे, शान्तगुण परकार्यसहायक साधुओंके अलंकार हैं ॥२१॥ जो मुझमें अनन्यभावसे दृढ़भक्ति करके मेरे लिये सब काम त्यागते हैं और सब स्वजन बन्धुओंसे स्नेह छोड़ते हैं ॥ २२ ॥ जो मेरी ही मनोहर मृदुल कथाको सुनते हैं, अथवा कहते हैं और जो अपना मन मुझमें लगाते हैं, उनको किसी प्रकारका ताप नहीं व्याप सकता ॥ २३ ॥ हे साध्वी ! जो साधु हैं वे सब संगसे रहित हैं और किसी तापसे तापित नहीं होते, उन महात्माओंका सत्सङ्ग करना चाहिये, इसलिये कि वे सब संगतके दोषको दूर करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ हे जननी ! सतोंके प्रसंगसे मेरे पुरुषार्थवाली हृदय और कर्णकी सुखदायक, आत्मज्ञान करानेवाली

कथा होती है, उसके सुनने और प्रेम करनेसे मोक्षमार्गमें शीघ्र श्रद्धा, प्रीति, भक्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें सहज ही में उत्पन्न हो सकती है ॥ २५ ॥ मेरे चरित्रोंका चिन्तन करनेसे प्रथम मनुष्यके हृदयमें भक्ति प्रकट होती है और भक्ति करनेसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यमें मेरी अलौकिक रचनाके विचार करनेसे योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योगके मार्गोंसे यत्न करे ॥ २६ ॥ प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करनेसे और ज्ञान-वैराग्य अधिक बढ़ानेका चिंतन करे,योगका साधन करे,सब कर्म मुझे समर्पण करे और एकाग्र चित्त हो मेरी दृढ भक्ति करनेसे प्राणी सर्वान्तर्यामी मुझको प्राप्त होता ॥२७॥ देवहूति बोली कि, ऐसी कौनसी भक्ति है जिसको मैं कर

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥ असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥ २७ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ कास्वित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमञ्जसाऽन्वाश्नवा अहम् ॥ २८ ॥ यो योगो भगवद्वाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे विजानीहि यथाऽहं मन्दधीर्हरे ॥ सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वाऽर्थं कपिलो मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥ ॥ ३१ ॥

सकूं ? क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मुझको किस प्रकारकी भक्ति करनी चाहिये ? जिसके प्रभावसे विना प्रयास तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है,ऐसा मैंने सुना है ॥२८॥ भगवान्का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है,सो कैसा है ? और उसके कितने अंग हैं ? जिससे तत्त्वज्ञान होता है ॥२९॥ हे हरे ! ऐसी सुगम रीतिसे कोई शिक्षा मुझको दो कि जिसके प्रभावसे मैं मन्दमति स्त्री भी तुम्हारे अनुग्रहसे कठिन बातको सहजमें समझ लूं ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, कपिल देवजीने अपनी जननीके मनोरथको जानकर अधिक स्नेह किया; जहाँ शरीरधारी होकर जन्मे उस माताको तत्त्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रकी शिक्षा, भक्ति, विस्तृत योगकी रीतिसे कपिलदेवजी कहनेको उद्यत हुए

॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, गुणोंके जिनके शरीर वेदविहित कर्म करे, ऐसी इन्द्रियों अथवा उनके अधिष्ठातृ देवताओंका सत्वगुण एक मन है उनकी जो स्वभाविकी वृत्ति है, वही भक्ति है ॥३२॥ निष्प्रयोजन की हुई भागवती भक्ति सिद्धिसे भी बड़ी है, जैसे जठरानल भोजन किये हुए अन्नको भस्म कर देती है,वैसे ही भक्ति भी वासनाको जला देती है ॥ ३३ ॥ मेरे चरणोंकी सेवामें जिन पुरुषोंकी चेष्टा रहती है और जो केवल मेरे ही लिये सब कर्म करते हैं, वे लोग सायुज्यमोक्षकी इच्छा नहीं रखते, वे सज्जन पुरुष इकट्ठे होकर मेरे चरित्रोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे अम्ब ! वे महात्मालोग मेरे कोटिशशिसम प्रसन्नवदन, अरुण नयन, दिव्यवरप्रद रूपोंको वाणीसे

श्रीभगवानुवाच ॥ देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ॥ सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥ नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ॥ येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥ पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥ ३५ ॥ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥ ३६ ॥ अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वाऽस्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७ ॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥

कहते हैं और आनंदित होकर निहारते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शन योग्य रूप, उदार विलासहास, अवलोकन, संभाषण अत्यन्त मनोहर भक्तिसे जिनके प्राण व मन और इंद्रियोंको वशमें कर लिया है; उनको विना इच्छाके भी सूक्ष्म गति देती है ॥ ३६ ॥ मेरे भक्तोंको यद्यपि मायावी ईश्वरकी बनायी हुई सत्यलोकादिकोंकी भोग सम्पत्ति और अष्टाङ्ग योगोंकी विभूतिरूप, अणिमादि ऐश्वर्य स्वतः (अनायास) प्राप्त होते हैं, पर जिनकी अविद्या निवृत्त हो गयी ऐसे मेरे भक्त मेरी जो आनन्दमयी वैकुण्ठधाममें विभूति है उसीकी स्पृहा रखते हैं जो सत्पुरुष मुझमें परायण हैं वे शांतरूप कभी नाश नहीं होते और मेरा कालचक्र उनको नहीं मार सकता, क्योंकि जिनका मैं प्रिय

आत्मा हूँ, पुत्रके तुल्य प्रतिपालक, मित्रके समान विश्वासी, गुरुके सदृश उपदेशक, भ्राताके समान हितकारी और देवतावत् पूज्यवर हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस लोक और परलोकको और दोनों लोकोंमें जानेवाले आत्माको और आत्माके पीछे जो यहां धन,पशु,गृह इत्यादिक और वस्तु हैं ॥३९॥ उन सबको त्याग कर और विश्वमुख मुझको जो अनन्यभावसे भजते हैं,उनको मैं संसार सागरसे पार उतार देता हूँ ॥४०॥ भगवान् प्रधान पुरुषेश्वर और सब पदार्थोंकी आत्मा व अधिष्ठाता जो मैं हूँ, मेरी शरणागत विना आत्माको सब जीवोंका तीव्र

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥ ३९ ॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥ भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥ ४० ॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१ ॥ मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निश्श्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० कपिलोपाख्याने भक्तिलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

भय कभी निवृत्त नहीं हो सकता ॥४१॥ मेरे भयसे पवन चलता है, सूर्य तपता है,इन्द्र जल वर्षाता है, अग्नि दाह करता है और मृत्यु संसारमें घूमती-फिरती है ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्त भक्तियोगसे योगीजन अपनी कुशलताके लिये निर्भय हो मेरे चरणारविन्दका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ पुरुषोंके आनन्दका हेतु इस लोकमें इतना ही है कि तीव्र भक्तियोगसे स्थिर मन मुझमें अर्पित करें, * इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कपिलयो गोपाख्याने योगमाणिक्यमञ्जूषायां भक्तिलक्षणवर्णनंनाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

---

* सवैया–मंगल होत सबै सुख देस, सदा अणिमादिक मोद बढ़ावत । पावन और न हूँको करे प्रिय, संतभासयनिवादको छावत ।। शद्धहितै नियक्ति चितै कर, कर्मबितैके इतै नहीं आवत जो भजि है यदुनन्दनको, सोई जन्मपदारथको फल पावत ।।

दोहा–छब्बिसवें अध्यायमें, पुरुष प्रकृतिको ज्ञान। भिन्न भिन्न लक्षण सहित, कहौं पदार्थ बखान ॥ श्रीभगवान् बोले कि अब मैं तुमको तत्त्वोंके लक्षण पृथक्-पृथक् सुनाता हूँ जिनके जाननेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त होता है ॥१॥ पुरुषकी आत्माका दर्शन जो ज्ञानमोक्षके लिये है वह तुमसे वर्णन करता हूं वही ज्ञान हृदयकी ग्रंथिका भेदन करनेवाला है ॥ २ ॥ अनादि आत्मा पुरुष निर्गुण प्रकृतिसे परे, पूजनीय तेजका आप ज्योतिःस्वरूप हैं, जिससे यह विश्व प्रकाशित है ॥३॥ यह प्रभु सूक्ष्म दैवी गुणमयी, यदृच्छासे प्राप्त प्रकृतिकी लीला करके प्राप्त हुए। यहां यह सिद्धांत है "आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है–आवरण शक्ति जो है वही जीवोंकी उपाधि

श्रीभागवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥१॥ ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥२॥ अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥४॥ गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥ एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥६॥ तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ॥ भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥

अविद्या है और विक्षेप-शक्ति जो है, वह परमात्माकी माया है। और पुरुष भी जीव और ईश्वर दो प्रकारका है" जो प्रकृति अज्ञानसे संसारमें आता है वह तो जीव है और प्रकृतिको वशमें करके विश्वकी सृष्ट्यादि करता है वह ईश्वर है ॥ ४ ॥ ज्ञानकी ढकनेवाली मायाको, विचित्र अपने समान प्रजाको गुणोंसे रचती देख जीव ज्ञान–चेष्टासे मोहित हो अपने स्वरूपको भूल गया, अर्थात् "मैं देह हूँ" यह समझने लगा ॥ ५ ॥ इस प्रकार परमेश्वरके ध्यानसे और प्रकृतिके किये हुए गुणोंसे कर्म करनेपर भी यह जीव कहता है कि "मैं कर्म करता हूँ" कर्तृभावको आत्मामें मानता है ॥ ६ ॥ यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है, इस कारण अकर्ता है, तो भी इस अकर्ताको अपने आपमें कर्मत्व-धर्म्मको

माननेसे ही कर्मोंका बन्धन होता है और जो किसीके अधीन नहीं है उसीको भोगोंमें पराधीनता होती है और जो सुखात्मक है, उसको जन्म अर्थात् मृत्यु प्रवाह होता है ॥७॥ कार्य,कारण,कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानो,सुख-दुःखके भोक्ता प्रकृतिसे परे पुरुष है ॥८॥ देवहूति बोली कि हे पुरुषोत्तम ! प्रकृति पुरुषका लक्षण कहो और इनकी सत्-असत् आत्माका जो कारण है वह कहो॥९॥ श्रीभगवान् बोले कि स्वतः विशेष अर्थात् भेद रहित होनेपर भी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधानतत्त्व है उसे प्रकृति कहते हैं, क्या ब्रह्मको प्रकृति कहते हो ? नहीं, वह त्रिगुणा है और ब्रह्म गुणरहित है, तब क्या महतत्त्वादि हैं ? नहीं वे कार्य नहीं है, महत्तत्त्वादि कार्य हैं, क्या काल आदि हैं ? नहीं, वे कार्य-

कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥ १० ॥ पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥ १२ ॥ इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥ वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥ १३ ॥ मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ॥ चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥ १४ ॥ एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ॥ सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥ १५ ॥

कारण-रूप है, वह कार्य-कारण रूप नहीं हैं, तब क्या जीव प्रकृति है ? नहीं, वह नित्य है ॥ १० ॥ पांच-पांच, चार, और दश यह चौबीस तत्त्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक कहलाता है॥११॥पृथ्वी,जल,पवन,अग्नि,आकाश ये पांच महाभौतिक होते हैं, और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, और शब्द ये पंच तन्मात्रा हैं ॥ १२ ॥ कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जिह्वा, श्रोत्र, नासिका ये पंच ज्ञानेंद्रिय हैं, वाक, कर, चरण, शिश्न, गुदा ये पांच कर्मेंद्रिय हैं, मिल कर दश इंद्रियाँ हैं ॥१३॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्माके भीतर हैं, लक्षण रूप वृत्तियोंसे चार प्रकारका भेद लक्षित होता है ॥१४॥ सगुण रूपका इतना ही व्याख्यान है,यह संक्षेप मात्र मैंने तुमसे कहा,जो काल है वह भी मायाकी

ही एक अवस्था पच्चीस तत्त्व होकर रहती है ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहंकारवश हो मूढ़तासे कहते हैं कि, यह काल परमेश्वरका प्रभाव है, और देह हम हैं, इस प्रकार अज्ञानसे देहाभिमानी पुरुषको जगत्का भय बना रहता है ॥१६॥ हे माता! जिसका कोई विशेष स्वरूप नहीं, तीनों गुणोंकी साम्यावस्था ही जिसका स्वरूप है,ऐसी प्रकृतिकी चेष्टारूप कालसे भगवान्का अनुमान होता है॥१७॥जो भगवान् अपनी मयासे सबा जीव मात्रके भीतर प्राप्त हो रहे हैं,भीतर पुरुषसे और बाहर कालरूपसे रहते हैं॥१८॥ दैवसे जिसके धर्म क्षोभको प्राप्त हुए,ऐसी अपनी योग मायामें परपुरुषने हिरण्यमय महत्तत्त्वको रचा ॥१९॥ अपने भीतर विश्वको जो धारण किया था उसको प्रकट किया और सर्वान्तः स्थिर जगत्का अंकुर महतत्वको अपने आप सुलानेवाले तुमको अपने तेजसे पी लिया॥२०॥जो सत्वगुण स्वच्छ शांत रागद्वेष रहित,भगवा-

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम्॥ अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥ १६ ॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥ अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥ १८ ॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥ १९ ॥ विश्वमात्मगतं व्यञ्जन्कूटस्थो जगदङ्कुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ॥ यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः ॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥ २२ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥ क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥

न्का उत्तम स्थान है, जिसको वासुदेव कहते हैं,महत्तत्त्वरूप चित्त है, पंडितलोग इसमें यह सिद्धांत करते हैं कि उपास्य वासुदेव हैं, क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता हैं इसी प्रकार उपास्य व अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं, रुद्र अधिष्ठाता है, मनमें अनिरुद्ध उपास्य हैं,चन्द्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य हैं ब्रह्मा अधिष्ठाता है ॥२१॥ पृथ्वीका संसर्ग होनेसे प्रथम जैसे जलकी स्थिति स्वच्छ और शांत होती है, वैसे ही दूसरे विकारके प्राप्त होनेसे प्रथम स्वच्छता अर्थात् भगवान्के विभवका ग्रहण करना लयविक्षेप शून्य होना, शांत होना इन वृत्तियों द्वारा महतत्त्वका लक्षण कहा जाता है॥२२॥भगवान् के वीर्यसे जिनकी उत्पत्ति ऐसा महतत्त्व विकारको प्राप्त हुआ,तब क्रिया शक्ति अहंकार त्रिविध उत्पन्न

हुआ॥२३॥वैकारिक,तैजस, तामस, जिससे हो, वह मन, इंद्रियाँ, पंचमहाभूत महत्तत्त्व इनसे प्रकट होते हैं ॥२४॥ अहंकारके उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं;जिनके सहस्र शीर्ष हैं,उनको साक्षात् अनन्त कहते हैं,वह संकीर्ण पुरुष हैं,भूत इंद्रिय मनोमय हैं॥२५॥कर्तृत्व,करणत्व,कार्यत्व,शांतत्व,घोरत्व,विमूढतत्त्व में अहंकारका लक्षण है॥२६॥जब सात्त्विक अहंकार विकारको प्राप्त होता है तब मनस्तत्त्व प्रकट होता है और संकल्प-विकल्पसे जो कामना उत्पन्न होती है वह मनका लक्षण है॥२७॥ सब इंद्रियोंके अधीश्वर, शरत्कालके कमल समान श्याम स्वरूपको, योगियोंसे सुन्दर आराधन करनेके योग्य उनको अनिरुद्ध कहते हैं॥२८॥हे जननि ! तैजस अहंकार तत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ;तब बुद्धि

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ॥ संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ॥ यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥ २७ ॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥ २८ ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥ २९ ॥ संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥ स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥३०॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥ तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम् ॥३२॥ अथाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ॥ तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

तत्त्व उत्पन्न हुआ;इसमें द्रव्यका स्फुरण ज्ञान इन्द्रियोंका अनुग्रह होता है ॥२९॥ संशय,मिथ्याज्ञान,निश्चय,स्मृति, निद्रा, ये बुद्धिके लक्षण हैं, सब वृत्तियोंसे पृथक् ॥३०॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय ये दश राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई कहते हैं, क्रियाशक्ति प्राणकी है और विज्ञानशक्ति बुद्धिकी है,ये दोनों राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं,इसलिये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी इसीसे उत्पन्न हुए हैं ॥३१॥ भगवान्के वीर्यसे प्रेरित तामस अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ, उससे शब्दमात्र प्रकट हुआ और शब्दसे नभ उत्पन्न हुआ और शब्दकी उपलब्धि करनेवाली श्रोत्रइन्द्रिय, राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं॥३२॥शब्दसे सब पदार्थोंके नाम होते हैं, जो मनुष्यकी दृष्टिमें नहीं आता तो भी वह किसी

पदार्थको देखकर उसके चिह्नमात्रका ज्ञान होना, उसकी मात्रा जाननी, यह कवियोंने आकाशके लक्षण कहा है। शब्दके अर्थको अर्थात् जिससे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं जानना और देखनेवालेके चिह्नमात्रका ज्ञान न होना और उसकी मात्राको पहिचानना ये बुद्धिमानोंने आकाशके लक्षण कहे हैं ॥३३॥ प्राणिमात्रमें अवकाश (छिद्र) रखना, और बाहर-भीतरके व्यवहारको आश्रय देना, प्राणइंद्रिय आत्मामें स्थान रखना, आकाशकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ३४ ॥ शब्दतन्मात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षुब्ध हुआ, तब उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रकट हुई, उससे वायु उत्पन्न हुई, त्वगिन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठिनता, शीतलता और उष्णता, ये स्पर्श-

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ॥ प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥ ३४ ॥ नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च संग्रहः ॥ ३५ ॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् ॥ समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥३८॥ द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेवच ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥ ३९ ॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥ ४० ॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वा रसग्रहः ॥ ४१ ॥

रूपवाले पवनकी तन्मात्रा हैं, यही स्पर्शका लक्षण है ॥ ३६ ॥ वृक्षादिकोंके पत्तोंको चलायमान करना, शब्दका ले जाना, तृणादिकोंको मिलाना, प्राप्त कराना, सब इन्द्रियोंको कर्म द्वारा बल देना, ये वायुके लक्षण कहे हैं ॥ ३७ ॥ जब स्पर्शवाली वायु दैवसे प्रेरित हुई तब उससे रूप प्रकट हुआ, उससे तेज हुआ, उससे ग्रहण करनेवाली चक्षुइन्द्रिय हुई ॥३८॥ हे माता ! रूप पदार्थोंको आकार देता है और द्रव्यमें गौणरीतिसे प्रतीत होना और पदार्थोंकी रचनाके पीछे प्रतीत होना, यह भी रूपमात्राकी वृत्ति है ॥ ३९ ॥ प्रकाश, पाचन, पान, भोजन, शीत, मर्दन, भूख, प्यास, सुखाना, ये तेजकी प्रवृत्तियाँ हैं ॥४०॥ जब दैवेच्छासे रूपगुणवाला तेज विकारी हुआ, तब उससे रस-

तन्मात्रा हुई, उससे जल हुआ; उसको ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥ ४१ ॥ यह एक रस भौतिक विकारसे कषैला, मधुर, चर्परा; कड़वा और खट्टा आदि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ गीलापन, गोला बांधना, तृप्ति करना, जीवन, प्यास मिटाना, नर्म करना, ताप दूर करना, कूपादिसे जल निकालने पर भी अधिक होना यह जलकी वृत्ति है ॥ ४३ ॥ रसगुणवाला जल, जब दैवसे प्रेरित हो विकारको प्राप्त हुआ तब उसमें गन्धतन्मात्रा हुई, उससे पृथ्वी हुई, नासिकासे गंधग्रहण होती है ॥ ४४ ॥ यह एक ही गंध संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे मिली, गंध और सुगंध, शांत व उग्र आदि अनेक भेदोंवाली होती है ॥ ४५ ॥ प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मका भाव करना, स्थान

कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥ भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् ॥ तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥ रसमात्राद्विकुर्वाणा-दम्भसो दैवचोदितात् ॥ गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥ ४४ ॥ करम्भापूतिसौरभ्यशान्तोदग्रादिभिः पृथक् ॥ द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एको विभिद्यते ॥ ४५ ॥ भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥ सर्वसत्त्वगु-णोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥ ४६ ॥ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥ वायोर्गुण विशेषोऽर्थो यस्य तत्स्प-र्शनं विदुः ॥ ४७ ॥ तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥ अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥ भूमे-र्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥ परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन् समन्वयात् ॥ अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥ ४९ ॥

देना, धारण करना, आकाशादिकोंका मठाकाशादिरूपसे भिन्न होना और सब जीवन मात्रके गुणोंका भेद करना ये पृथ्वीकी वृत्तिके लक्षण हैं ॥ ४६ ॥ आकाशका मुख्य गुण शब्दरूपविषयवाली श्रोत्रेन्द्रिय कहलाती है और वायुके मुख्यगुणयुक्त स्पर्शगुणवाली त्वगि-न्द्रिय कहलाती है ॥ ४७ ॥ तेजके मुख्यगुणरूपकी विषयवाली चक्षुइन्द्रिय है और जलके मुख्यगुणरसके विषयवाली जिह्वा इंद्रिय है, पृथ्वीका मुख्यगुण गन्धको विषय करनेवाली घ्राणेन्द्रिय कहलाती है ॥४८॥ इन पूर्वके पदार्थोंका पिछले पदार्थोंमें सम्बन्ध होनेसे अपने कारण आकाशादि पदार्थोंका धर्म शब्दादिकार्यरूप वायुआदि पदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्शादिके संग दीखता है,इसीसे पृथ्वीमें चारों कार-

णोंके धर्म शब्द, स्पर्श,रूप, रस और अपना धर्म गंध यह देखनेमें आते हैं ॥ ४९ ॥ जब यह महत्तत्त्वादि सातों पदार्थ परस्पर न मिले, तब इनमें और तत्त्वोंमें भी काल-कर्म गुणोंके साथ जगदादि ईश्वरने प्रवेश किया ॥५०॥ फिर परमेश्वरके प्रवेश करनेसे जब यह क्षोभको प्राप्त हुए, तब अचेतन अंड प्रकट हुआ, उससे विराट् पुरुष हुआ ॥ ५१ ॥ चौदह भुवनवाला यह भगवान्का स्वरूपभूत पृथ्वीरूप ब्रह्माण्ड बाहरकी ओर प्रधानसे घिरे हुए; जलादि सात आवरण जो क्रमसे एक-एकसे दशगुणे बड़े हैं, उनसे घिरे हैं ॥ ५२ ॥ उदासीनताको त्याग कर भगवान् महादेवने जलमें पड़े हुए हिरण्यमय अंडकोशमें प्रवेश कर बहुत प्रकारसे छिद्र कर दिये॥५३॥मुख प्रथम प्रकट

एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥ कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥ ५० ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ॥ उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥५१॥ एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥ तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥ ५२ ॥ हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ॥ तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥ ५३ ॥ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोऽतो घ्राण एतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥ तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौश्रोत्रं ततो दिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥ तत ओषधयश्चासञ्छिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥ ५६ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ५७ ॥ हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥ ५८ ॥

हुआ, उससे वाणी हुई, उसके देवता वह्नि हुए, फिर नाक उत्पन्न हुई, जो प्राणोंको चलानेवाली हुई, इससे घ्राण इन्द्रिय हुई ॥ ५४ ॥ घ्राणसे वायु उत्पन्न हुई, इन दोनोंसे चक्षु हुए, उससे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान प्रकट हुए, उसमें श्रोत्र इंद्रिय हुई, उनसे दशों दिशा प्रकट हुई ॥ ५५ ॥ फिर विराट्को त्वचा निकली उसमें रोम, मूछ, केश आदि हुए, उनसे सब औषधियां उत्पन्न हुई फिर शिश्नेंद्रिय हुई ॥ ५६ ॥ उसमें जलरूपवीर्य उत्पन्न हुआ, फिर गुदा उत्पन्न हुई, गुदामें अपान रहता है, अपानवायुसे लोकोंकी भय देनेवाली मृत्यु प्रकटी ॥ ५७ ॥ फिर विराट्के दोनों हाथ उत्पन्न हुए, उनमें बल हुआ और इन्द्रदेवता प्रकट हुए, फिर विराट्के पांव निकले, उनमें

गति हुई और हरिदेवता प्रकट हुए ॥ ५८ ॥ फिर नाड़ियां निकलीं; उनमें रुधिर भरा और नदियां प्रकटीं, फिर उदर उत्पन्न हुआ उसमें भूख-प्यास हुई, सागर देवता हुआ, फिर विराट्के हृदय उत्पन्न हुआ, उसमें मन उत्पन्न हुआ ॥ ५९ ॥ मनमें चन्द्रमा प्रकट हुआ फिर सब वाणियोंके पति बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ फिर हृदयमें अहंकार उत्पन्न हुआ; उसमें क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता प्रकट हुए, फिर विराट्के हृदयमें चित्त इंद्रिय उत्पन्न हुआ और चित्तमें क्षेत्रज प्रकट हुआ ॥ ६० ॥ यह सब देवता उत्पन्न होकर उस

नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् ॥ नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥ ५९ ॥ अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥ मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ॥ अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्त्यस्ततोऽभवत् ॥ ६० ॥ एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥ वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६१॥ घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ अक्षिणी चक्षुषाऽऽदित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६२॥ श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६३ ॥

विराट्के देहमें घुसे, परन्तु उसको उठा न सके, फिर क्रमसे आकाशादिकोंने उठानेको उसमें प्रवेश किया, वाणीके मार्गसे अग्निने मुखमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा ॥ ६१ ॥ घ्राणइंद्रिय सहित नाकमें पवन घुसीतो भी विराट् न उठा चक्षु इंद्रिय सहित भास्करने नेत्रोंमें प्रकट किया तो भी विराट् न उठा ॥ ६२ ॥ श्रोत्रके संग दिशाएँ कानमें घुसीं तो भी विराट् न उठा फिर रोमसहित सब ओष-

१. शंका–हे मुनियो ! मैं ईश्वरवाचक जीव जलमें जो विराट्रूप अंड रहा उसको उठानेके लिये सब इंद्रियां अपने-अपने देवताओं समेत अपना यत्न करने लगीं परंतु वहांसे नहीं उठा, वह विराट् कौन है ?

उत्तर–जिस विराट्रूप परमात्मासे यह तीन लोक चौदह भुवन उत्पन्न होते हैं, वह विराट् उसको नहीं जानना चाहिये, यह जो विराट् कहे चौरासी लाख योनियोंकी देहको विराट् मुनियोंने कहा है जो देह जीवसे चैतन्य हो रही हैं, जीवसे ही नष्ट होती हैं, सब इंद्रियां अथवा देहमें ही रहती हैं, परंतु जीव विना देह नष्ट होते है, ऐसी देह विराट्रूप विराट् जीवको पाकर चैतन्य हो गयी ।

धियाँ त्वचामें घुसीं तो भी विराट् न उठा॥६३॥वीर्यसहित जलने शिश्नमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा, अपान सहित मृत्यु गुदामें आयी तो भी विराट् न उठा॥६४॥इन्द्रने बल सहित हाथोंमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा गति सहित विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया तो भी विराट् सावधान न हुए॥६५॥नदियाँ रुधिरसहित नाड़ियोंमें घुसीं तो भी विराट् न जागा, क्षुधा-तृषा सहित समुद्रने उदरमें प्रवेश किया तो भी विराट् न चेता ॥६६॥ मन सहित हृदयमें चन्द्रमाने प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा फिर बुद्धिसहित ब्रह्माजी हृदयमें बैठे तो भी विराट् न उठा, अभिमान सहित रुद्रने हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् न उठा ॥ ६७॥ चित्त सहित चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वरने

रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६४ ॥ हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६५ ॥ नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६६ ॥ हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ बुद्ध्या ब्रह्माऽपि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६७ ॥ चित्तेन हृदयं चैत्त्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥६८॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रिय मनोधियः ॥ प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥६९॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥ ७० ॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० कापिले तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

जब हृदयमें प्रवेश किया, उसी समय विराट् पुरुष जलसे उठ बैठा ॥ ६८ ॥ जैसे सोये हुए पुरुषको प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि जिनके विना कोई अपने पराक्रमसे उठा नहीं सकता इसी प्रकार इस विराट्पुरुषको चेतन क्षेत्रज्ञके विना कोई नहीं उठा सका ॥ ६९ ॥ सब जीव २ के प्रति इन ईश्वरके योगसे उत्पन्न जो बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है, उससे विरक्ति और विरक्तिसे एकान्तमें बैठकर ज्ञान उत्पन्न करे, फिर पुरुषको चाहिये कि देहमें आत्माका विचार करे, जब आत्माका विचार निश्चय हो जाय, तब नित्य उसीका ध्यान और चिन्तवन किया करे ॥ ७० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

दोहा—सत्ताइस अध्यायमें, साधनयोग विचार। प्रकृतिपुरुषके ज्ञानसे, वर्णों मोक्ष प्रकार ॥ भगवान् कपिलदेवजी बोले कि यद्यपि पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तो भी प्रकृतिके गुणोंके किये हुए दुःखसुखादि गुणोंमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि पुरुष निर्विकारी, अकर्ता और निर्गुण होनेसे जलमें सूर्यकी परछांईकी नाईं लिप्त नहीं होता ॥ १ ॥ वही पुरुष जब गुणोंमें सब ओरसे आसक्त हो जाता है, तब कहता है कि देह मैं हूँ, इस प्रकार अहंकारसे विमूढ़ बनकर फिर कहता है कि कर्ता मैं हूँ इस प्रकार सदा अभिमानी बना रहता है ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥ स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्ताऽस्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्य निर्वृतः ॥ प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥३॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥ अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥ भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥५॥

इसी अभिमानसे बेवश होकर और सुख न पाकर सत् असत् मिश्रित योनियोंमें प्रकृतिके सङ्गके कर्म और दोषोंसे संसारके चक्रमें घूमता रहता है, कभी जन्म कभी मरण ॥ ३ ॥ विचारकी रीतिसे देखिये तो संसार कोई वस्तु ही नहीं और विषयवासना करने-वालोंसे संसार छूटता ही नहीं। स्वप्न सब प्रकारसे झूठा है, तो भी उस स्वप्न देखनेवाले मनुष्यके वह अनर्थ उस समय नष्ट नहीं होते, अनर्थका आगम भोगना ही पड़ता है * ॥ ४ ॥ इसलिये कुकर्मियोंके मार्गमें आसक्त चित्तको सहज-सहजमें तीव्र भक्तियोग विरक्तिसे

---

१. शंका—जीव निश्चयकरके अभिमानी हो जाता है। सो भगवान्की इच्छासे या अपनी इच्छासे भ्रष्ट हो जाता है यह हमारे मनमें बड़ी भारी शंका है ?

उत्तर—निरंजन जीव है सो न तो अपनी इच्छासे अभिमानी होता है और न भगवान्की इच्छासे अभिमानी होता है, खोटी इंद्रियोंकी नित्य संगति करता है, उसी कुसंगतिसे मूर्ख होकर अभिमानी हो जाता है, जैसे वारुणिके पात्रमें गंगाजल रक्खा जाय तो गंगाजल मदिरा नहीं होगा, जल ही रहेगा, परंतु मनुष्य मदिरा जानकर उसको छुयेंगे नहीं तथा गंगाजलके बरतनमें मदिरा रख दिया जायगा तो मदिरा गंगाजल नहीं होगा, मदिरा ही रहेगी परंतु मनुष्य यही जानेंगे कि इस पात्रमें गंगाजल है, इसी प्रकार गंगाजल है, इसी प्रकार गंगाजलके समान जीव मदिराके पात्र सरीखे खोटी इंद्रियोंकी संगतिसे अभिमानी हो जाता है।

* यहां एक दृष्टांत है कि एक लकड़ी बेचनेवाला लकड़ियों का बोझा—शिरपर धरे कहीं से आता था, गर्मीका समय था एक इमलीके पेड़के नीचे कुएँके समीप ठंढ़ी छाया देखकर बैठ गया, उसी समय एक सिपाही घोड़ेको

अपने वशमें करे ॥ ५ ॥ श्रद्धासहित योगमार्गादिकोंसे अभ्यास करता रहे और मुझसे निष्कपट प्रीति रखे, मेरी कथा सुने ॥ ६ ॥ सब जीवमात्रमें सम भाव वर्त्तै, किसीसे शत्रुता न करे, कुसङ्गका त्याग करे, ब्रह्मचर्य्य धारण करे, मौनव्रत रहे। अपना धर्म बलवान् समझकर उसमें स्थिर रहे ॥ ७ ॥ जो भगवत् इच्छासे मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहे, लघु भोजन करे, मुनियोंकी वृत्ति धारण करे, एकान्तमें वास करे, शान्त वृत्तिमें सबसे मित्रता रक्खे, सबपर दयालु हो आत्मज्ञानी रहे॥८॥कुटुम्बसहित देहमें आसक्त न हो, ज्ञानसे तत्त्वका दर्शन करे, प्रकृतिपु-

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥ सर्वभूत समत्वेन निर्वैरे-णप्रसङ्गतः ॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ्मुनिः ॥ विविक्त-शरणःशान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥ १० ॥ मुक्तलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ सतो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥

रुषको देखे ॥ ९ ॥ प्रकृतिपुरुषका जब निश्चय विवेक हो जाता है तब बुद्धिकी तीनों अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्ति होती है उस समय सब अमङ्गलोंसे पृथक् रहे। बुद्धिसे परमात्माको प्राप्त हो जैसे चक्षु इन्द्रिय द्वारा सूर्यको देखे, उसी प्रकार अपने अहंकारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकर आत्माका दर्शन करे ॥ १० ॥ इस प्रकार अभ्यास करते-करते परमात्मा जो उपाधिरहित मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रू-पसे आभासमान मायाका अधिष्ठान है उस ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो सद्बन्धु, असत्के चक्षु, सर्वत्र परिपूर्ण हैं, उनके अतिरिक्त और दूसरा

कुदाता नचाता दौड़ाता चला आता था,सवारको देख लकड़हारा मनमें कहने लगा कि सब अवस्था लकड़ी ही बेचते बेचते बीती और खोपड़ीमें गढ़े पड़ गये, जो परमेश्वर मुझको भी घोड़ा देता तो में भी इसी प्रकार सवार होकर नचाता, कुदाता, इसी मनोरथमें शरीरको पवन जो लगा तो नींद आ गयी, तो स्वप्नमें क्या देखता है कि उस बोझका घोड़ा बनाकर, स्वप्नमें सवार होकर कुदानेको झटका दिया त्यों ही झट कुएमें जा पड़ा, ज्यों त्यों करके पथिकोंने उसको निकाला तो वह बोला कि आज मैंने अपने मनमें घोड़ेपर चढ़नेका संकल्प किया था तब यह कुदशा हुई और जो नित्यघोड़ेपर चढ़ते होंगे, न जानिये उनकी क्या गति होती है ? कदाचित् वह तो घड़ी घड़ी नदी और कूपोंमें गिरते होंगे, इसलये में अपनी लकड़ी ही बेचने में प्रसन्न हूं मुझको किसी घोड़ेवोड़ेसे प्रयोजन नहीं, अनर्थ आगमन होनेसे उसको उसका फल मिला, इसी प्रकार विषयोंके ध्यान करनेसे प्राणी संसार के बंधन से नहीं छूटता ।

कोई नहीं है ॥ ११ ॥ जैसे आकाशके भास्करका जल स्थित प्रकाश स्थलवासी पुरुषको दीखे, उसी भाँति अपने प्रकाशसे सूर्य जलस्थित प्रतिबिम्बसे स्वर्गस्थ सूर्य दीखता है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार तीन वृत्तिवाला अहंकार पंचभूत इंद्रियाँ मनोमय अपने प्रकाशसे इस सदा कालमें होनेवाले आभाससे सत्यदृष्टि ईश्वर लक्षित होता है ॥ १३ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें निद्राके कारण पंचमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप मन इन्द्रियाँ बुद्ध्यादिक इस संसारमें निद्रासे असत्में लीन हो जाते हैं; उस समय आत्मा विनिद्र होकर सब अहंकारको त्याग देता है ॥१४॥ तब आत्मा नष्ट तो नहीं होता है, परन्तु झूठे ही अपनेको नष्टवत् मानता है, जब सब अहंकार नष्ट हो जाता है, तब नष्टचित्तवाला

यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥ एवं त्रिवृदहंकारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ॥ स्वभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र निर्निद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥ मन्यमानस्तदाऽऽत्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥ १५ ॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्नविमुञ्चति कर्हिचित् ॥ अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥

जैसे आतुर होता है, वैसे ही ईश्वरके दर्शनकी इच्छा होती है ॥ १५ ॥ यह जीव ऐसे विचारकर आत्माको प्राप्त हो जाता है, अहंकारसहित द्रव्यकी जो अवस्था है वह मेरी ही कृपा है ॥ १६ ॥ देवहूति बोली कि, हे ब्रह्मन् ! हे जनार्दन ! प्रकृति कभी पुरुषको नहीं छोड़ती, क्योंकि पुरुष प्रकृतिके आश्रय है और प्रकृति पुरुषके आश्रय है, इस कारण इनका विलग होना बन नहीं सकता ॥१७॥ जैसे गन्ध कभी पृथ्वीसे पृथक् नहीं होती, गंधमें पृथ्वी, पृथ्वीमें गंध, जलमें रस, रसमें जल, इसी प्रकार परमेश्वरमें बुद्धि है, प्रकृति और पुरुषका अलग होना कठिन है ॥ १८ ॥ अकर्ता पुरुषको और जिसके आश्रयसे कर्मके बन्धनमें और प्रकृति सद्गुणोंमें यह पुरुष फँसा हुआ है, उसकी

केवल्यमोक्ष कैसे हो सकती है ? वह कहिये ॥ १९ ॥ कभी तत्त्वके विचारनेसे यह महातीव्र भय दूर हो जाता है, परन्तु उसका निमित्त नष्ट नहीं होता; वह फिर पीछे यह शङ्का खड़ी हो जाती है ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे जननि ! कोई निमित्त हो ऐसे निमित्तके धर्म करनेसे, निर्मल करनेसे, बहुत दिनके शास्त्र सुननेसे, मुझमें तीव्र दृढ़भक्ति करनेसे ॥ २१ ॥ तत्त्वदर्शन होता है; ऐसे ज्ञानसे, बलवान् वैराग्यसे, तप सहित योगाभ्याससे, तीव्र अपनी समाधिसे ॥ २२ ॥ इस पुरुषकी माया दिनरात जलकर शनैः शनैः छिप जाती है, जैसे अग्नि काष्ठको जलाकर उसीमें लीन हो जाती है, जैसे अग्निकी आदिकारणभूत लकड़ी अपने आपमेंसे उत्पन्न हो अग्निसे आप जलकर

क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥ २१ ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपो युक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥ नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते॥२५॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥

भस्म हो जाती है, इसी प्रकार साधनदशामें अविद्याके किये हुए देहादिक अभिमानसे, उत्पन्न ज्ञानादिसाधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट हो जाती है ॥२३॥ भोग भोगकर फिर अपने हृदयमें उसका दोष विचारकर उसको त्याग दिया, वह प्रकृति अपनी महिमा स्थित पुरुष ईश्वरका कभी कुछ अशुभ नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ जैसे सोते हुए पुरुषको स्वप्न दिखाई देता है, जबतक वह न जागे तबतक वह स्वप्न उस मनुष्यको अनेक दुःखोंका देनेवाला है और वही स्वप्न जागनेसे जब उसको ज्ञानका संस्कार हुआ तो वह स्वप्न कुछ भी कष्टकारी नहीं हो सकता ॥ २५ ॥ इसी प्रकार तत्त्वके जाननेवाले और मुझमें मन लगानेवाले आत्माको प्रकृति कभी अपने वशमें नहीं कर

सकती ॥२६॥ इस प्रकार अनेक जन्मके साधन करनेसे ब्रह्मलोक तक सब पदार्थोंके त्यागनेसे मेरे पूर्ण भक्त मेरी अनन्त भक्तिसे जब मेरे यथार्थ रूपका उसको ज्ञान हो जाता है, तब अध्यात्मज्ञानमें उसकी प्रीति होती है, तब आत्मज्ञानसे मुनि होता है* ॥२७॥ मेरा भक्त मेरी अतीव कृपासे मोक्षका भागी होता है, मोक्षदायक मेरा स्थान कैवल्य जिसका नाम मेरे आश्रय है उस वैकुण्ठको॥२८॥इस संसारमें धीर अनायास प्राप्त होते हैं, अपनी दृष्टिसे सब संशय नष्ट हो जाता है, इस शरीरको त्यागकर वहां जाता है, जहांके गये योगीजन फिर लौट-कर संसारमें नहीं आते ॥ २९ ॥ हे माता ! जब योगीजनोंका योग बढ़ता है, तब मायाकी वृद्धि होनेसे अणिमादिक सिद्धियां बढ़ती हैं,

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥२८॥ प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरःस्वदृशा छिन्नसंशयः ॥ यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥ यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जते ऽङ्ग ॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥ ३० ॥ इति श्रीभा० म० तृती० कापिले मोक्षरीतिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥

उनके बढ़नेका कुछ और प्रयोजन नहीं है, केवल वे विघ्न करनेके लिये आती हैं, जो उस समय भक्तका चित्त उनमें आसक्त न हुआ तो उसको मेरी अनन्य अत्यन्त सुखदायिनी व अनपायिनी गति प्राप्त होती है जहां मृत्युका कुछ भय नहीं ॥३०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां मोक्षरीति वर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा—वर्णौं अट्ठाईसमें, योगाष्टांग विधान । निरुपाधी वर्णन करूँ, हरिस्वरूपका ध्यान॥ भगवान् बोले कि, हे नृपात्मजे ! अब बीज सहित योगका लक्षण कहता हूं कि जिस विधिके अनु-

* कवित्त—कामी है न यती है न सूम है न सती है न, राजा है न रंक है न तन है न मन है । सोवै है न जागै है न पाछे है न आगे है न गृही है न त्यागी है न घर है न वन है ॥ स्थिर है न डोले है न मौन है न बोलै है न बंधो है न खुलो है न स्वामी है न जन है ! ऐसो जब जोवें तब मेरी गति जाने सब, सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञान शुद्धधन है ॥

ष्ठानसे प्रसन्न होकर मन सत्पथमें लगता है * ॥ १ ॥ अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करे, पापसे अलग रहे,जो अपने भाग्यके अनुसार प्राप्त हो उसीमें सन्तोष करे,आत्मज्ञानी पुरुषोंके चरणारविंदोंका पूजन करे ॥ २ ॥ लौकिक सम्बन्धी धर्मसे निवृत्त रहे, मोक्षधर्ममें प्रीति करे; परिमित और महाशुद्ध भोजन करे। परिमित उसको कहते हैं कि, पेटके दो भाग तो अन्नसे भरे और एकमें जल, चौथा वायुके आने जानेको खाली रखे। एकान्त स्थानमें वास करे, जहां किसी प्रकारकी बाधा न हो॥३॥जीव हत्या न करे, सत्य बोले,चोरी न करे,जितनेमें

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥ दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ॥ मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥ मौनं सदासनजयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥ प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥ ५ ॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥ वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥ एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्धया युञ्जीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥ ७ ॥

अपना प्रयोजन सिद्ध हो, उतना ही संचय करे, अधिक न करे, ब्रह्मचर्य धारण करे, तप करे, शौचसे रहे, वेदका पाठ करे, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदके चरणारविंदकी वन्दना करे ॥ ४ ॥ वृथा न बोले, मौन धारण करे, आसनको जीतनेका अभ्यास करे, स्थिर रहे, शनैः-शनैः प्राणको जीते मनको और इंद्रियोंको विषयसे खींचकर हृदयमें रखे ॥ ५ ॥ सब प्राणोंके स्थान जो मूलाधारादिक हैं, उनमेंसे एक देशमें मन सहित प्राणको धारण करे और त्रिलोकीनाथ भागवान्की लीलाका ध्यान करे और मनको आत्माकार करे॥६॥इनसे और इनसे अधिक और

* शंका-कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि हे माता ! बीजसहित योगका लक्षण में तुमसे कहूंगा ऐसा बचन अपनी मातासे कहा। परंतु योगका बीजसहित लक्षण क्यों नहीं कहा ? सो योगके बीजका लक्षण क्या है ? उत्तर-सज्जनोंकी संगतिमें प्रेम करना और दुष्ट जनोंकी संगतिमें प्रेम न करना ऐसा विचारकर नेत्रोंसे नित्य भगवान्में स्नेह देखना और दुष्टकर्मको बुरा देखना यही योगके बीजका लक्षण है और कपिलदेवजी पहलेसे जानते थे कि हमारी माता ज्ञानमें कच्ची है इसलिये योगके बीजका लक्षण कहनेको प्रस्तुत थे पीछे संगति कही, परंतु फिर भलीभांति जान लिया कि हमारी माता ज्ञानमें बड़ी पक्की है इसलिये योगके बीजके लक्षण कहनेको क्या आवश्यकता है ?

साधनोंसे मनको जीते और असत्मार्गोंमें जो मन लगा है उसको धीरे-धीरे बुद्धिसे जीते और प्राणको जीते, निरालस्य होकर रहे ॥ ७ ॥ पवित्र देशमें रहे, विशेष करके प्रथम तो आसनको जीते, फिर कुशापर कृष्णचर्म, उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर मृग मांगलिक आसन मारकर बैठे, शरीरको सीधा रखकर प्राणको वश करनेका अभ्यास करे यह स्वस्तिकासन है ॥८॥ पूरक, कुम्भक, रेचकसे प्राणके मार्गको साधे और प्राणायामोंके उलटे क्रमसे चित्तका शोधन करे, जिससे यह चित्त फिर चञ्चल न हो ऐसा स्थिर करे ॥ ९ ॥ जिन्होंने श्वास जीते ऐसे योगियोंका मन थोड़े ही दिनोंमें शुद्ध हो जाता हैं जैसे पवन अग्निके धर्मसे तापित सुवर्ण मलको त्यागकर निर्मल हो

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन्स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥ ९ ॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥ १० ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥ यदा मनः स्व विरजं योगेन सुसमाहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्न वदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ १४ ॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥ १५ ॥

जाता है ॥ १० ॥ प्राणायामोंसे तो वात, पित्त, कफके मलको और धारणासे सब पापको दूर करे, प्रत्याहारसे विषयोंको दूर करे और ध्यानसे रागादिकको दूर करे ॥ ११ ॥ जब योगके प्रभावसे मन शुद्ध हो जाय तब सावधानतासे भगवत्के स्वरूपका ध्यान करे और अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहे ॥१२॥ वारिजसमान जिनका प्रसन्न वदन,अरुणकमलवत् नेत्र,नीलकमलदल सम श्यामवर्ण, शंख, चक्र, गदा धारण कर रहे हैं, यह ध्यान करे ॥१३॥ सुन्दरसरसिजकेशरवत् पीताम्बर पहिने, श्रीवत्स वक्षस्थलमें देदीप्यमान् है, कौस्तुभमणि मुक्तामय माला कंठमें विराजमान् है ॥ १४ ॥ मत्तभ्रमरोंकी ध्वनि जिसपर हो रही ऐसी मनोमोहिनी सोहनी वनमाला धारण किये

हैं और अमूल्य हार, कंकण, किरीट, भुजबंद, नूपुर, जिनके अंग और चरणारविन्दोंमें दीप्यमान है ॥१५॥ क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित कटि पश्चात् भाग है, भक्तोंके हृदयकमलमें जिनका आसन है, दर्शन करनेयोग्योंमें दर्शन करने योग्य, शान्तचित्त, मन और नयनोंको आनन्द बढ़ानेवाला जिनका मनोहर स्वरूप है॥१६॥अत्यन्त शोभायमान जिनकादर्शन है, सब लोकवासी जिनको नमस्कार और दंडवत् करते हैं; जिनकी किशोर अवस्था है, अपने अनुचरोंपर अनुग्रह करनेमें नित्यप्रति कुशल हैं ॥१७॥ तीर्थरूप यश जिनका कीर्तन करने योग्य है; पुण्यश्लोकोंमें यश करनेवाले भगवान्के अंगोंका ध्यान करे। अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहे, जबतक कि मन उस बाँके बिहा-

काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ सन्तं वयसि कैशोरे भक्तानुग्रहकातरम् ॥ १७ ॥ कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥१९॥ तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥ विलक्ष्यैकत्र संयुञ्ज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥ संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ॥ उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिस्सृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनश्शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २२ ॥

रीकी मूर्तिमें लय न हो जाय॥१८॥ दर्शनके योग्य जिनकी अलौकिक लीला है, ऐसे घट-घट वासी, वृन्दावननिवासी; सुखरासी मदन मोहनकी चाहे विराजमान् मूर्तिका, चाहे चलते-फिरते स्वरूपका, चाहे शयन करती हुई श्यामसुन्दरकी मूर्तिका, चाहे खड़ी हुई प्रतिमाका शुद्ध चित्तके भावसे ध्यान करे; उनकी अद्भुत लीला देखने ही योग्य है ॥१९॥ मुनिलोग उनको चित्तमें स्थान देकर सब अवयवसुन्दर स्थित ईश्वरका दर्शन कर भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगायें ॥ २० ॥ पहले तो वज्र, अंकुश, ध्वज, पद्म इन चिह्नोंसे युक्त उठे हुए अरुणशोभित नखमंडलकी किरणोंसे ध्यान करनेवाले भगवान्के चरणकमलका ध्यान करे ॥ २१ ॥ जिनके चरणप्रक्षालनके गंगाजल

तीर्थके मस्तकपर धारण करनेसे मङ्गलमय भूतनाथ और अधिक मङ्गलरूप हो गये; इसी प्रकार अपने चरणचिह्नरूप बज्रसे ध्यान करने वालोंके पापरूप पर्वत चूर्ण करनेवाले भगवान्के पदाम्बुजका बहुत कालतक ध्यान करे ॥ २२ ॥ सब जगतका विधान करनेवाले विधाता ब्रह्माकी माता, साक्षात् लक्ष्मी, सब देवता सदा प्रेम प्रीति सहित दिनरात जिसके चरणारविन्दकी वन्दना करते हैं,कमलसे जिसके नेत्र, वह महालक्ष्मी अजन्मा विभुके अपने द्वारा लालित जानुद्वय हृदयमें करपल्लवकी कांतिसे बड़े लालित्यके साथ जिनका सेवन करती है,उन भवभंजन निरंजन भगवान्के दोनों घुटनोंपर्यन्त युगल जंघाओंका हृदयमें ध्यान करे ॥ २३ ॥ फिर गरुड़जीकी भुजाओंमें शोभित

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवन्दितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्सं-लालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥ उरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभा-सौ ॥ व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकाञ्चीकलापपरिरम्भिनितम्बबिम्बम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्म-नस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥

महापराक्रमी अलसीके कुसुमसमान दोनों ऊरुवोंका चित्तमें ध्यान करे। फिर अति लम्बा पीताम्बर झमझमाता हुआ उसमें वर्तमान कांची कलापका मिलना ऐसे भगवान्के शोभायमान नितम्बका ध्यान करे ॥ २४ ॥ फिर चतुर्दश भुवनोंके कोष जिनके हृदयमें विराजमान, जहां आत्मयोनि ब्रह्माका स्थान है, सब लोकात्मक कमल जिसमें उत्पन्न हुआ था उस नाभिसरोवरका ध्यान करें; फिर उठे हुए मरक-तमणिके श्रेष्ठ विशदहारोंकी चटकीली किरणोंसे गौरवर्ण भगवान्के दोनों स्तनोंका ध्यान करे जिनकी कैसी सुन्दर शोभा है ॥२५॥ सर्व श्रेष्ठा महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीका वासस्थान, महात्माओंके मन और नेत्रोंका परम सुखदायक वक्षस्थलका मनमें ध्यान करे। सब लोक

जिसको नमस्कार करते हैं, उन प्रभुके कंठमें जो कौस्तुभमणि भूषण भूषित है, उसकी शोभाका चित्तमें ध्यान करे ॥२६॥ फिरजिन बाहुओंके कंगन, मंदराचलगिरिके घूमनेसे घिसकर जो उज्ज्वल हो गये हैं,जिनमें लोकपाल देवता वास करते हैं,उन भुजाओंका ध्यान करे,फिर जिसका अनंततेज सहा न जाय, ऐसे हजार धारवाले सुदर्शनका चिंतन करे,फिर जिन भगवान्के हस्तकमलमें राजहंसवत् शंख विराजमान है, उसका ध्यान करे॥२७॥ फिर वासुदेव भगवान्की प्यारी कौमोदकी गदा जो कि शत्रुवीरोंके रक्तकी कीचमें लिपटी हुई है उसका स्मरण करे। भ्रमरोंके झुंडके झुंड जिसपर गुंजार रहे हैं उस भगवान्की वनमालाका ध्यान करे,जो जीवात्माकी परमतत्त्व निर्मल कौस्तुभमणि भग

बाहूँश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ॥ संचिन्तयेद्दशशतारमसह्यतेजः शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७ ॥ कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धा मरातिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥ २८ ॥ भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः संचिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ॥ यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्यावलोकमधिकं कृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनाय विसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥ ३१ ॥

वान्के कंठमें चमक रही है,उसका ध्यान करे॥२८॥अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करके अपनी बुद्धिसे जिन्होंने मूर्तिमान अवतार धारण किये हैं, उन भगवान्के मुखकमलका ध्यान करे कि जिस पर दमकते हुए मकराकार कुण्डलोंके प्रकाशसे निर्मलकपोलोंकी शोभा और उन्नत जिसमें नाक है ॥२९॥ श्रीजीका जहां स्थान भ्रमरोंसे सेव्यमान अपने वैभवसे कुटिलकुंतल समूहयुक्त हो मीनसमानका तिरस्कार करनेवाले, मनोमय निरालस भ्रू जिसमें ऐसे श्रीभगवान्के नेत्रकमलका ध्यान करे ॥३०॥ फिर अपनी कृपासे महाघोर अत्यन्त भयानक तापत्रयके नाश करनेके लिये नेत्रोंमे निकल मनोहर मुसकान संयुक्त बहुत प्रसन्न होनेवाले प्रमादयुक्त अत्यन्त भावनासे हृदयमें अनंतकाल तक भगवान्के

अवलोकनका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ सब अवनतोंके तीव्रशोकसे प्रकट अश्रुसागरके शोषण करनेवाले अतिउदार श्रीभगवान्‌के मंदहास्यका ध्यान करे; फिर भगवान्‌ने मुनिमनोंके मोहित करनेवाले मकरध्वजको मोहनेके लिये जिसे अपनी मायासे रचा है,ऐसे भ्रूमण्डलका ध्यान करे ॥ ३२ ॥ ध्यानका स्थानप्रहसित अधिक अधर (होंठ) की कांतिसे लाल तनमें झांईके पड़नेसे कुंदकलीके दाँतोंकी पंक्ति भी कुछ-कुछ अरुणाईसी लिये ज्ञात होती है,उनका अपने हृदयाकाशमें ध्यान करे।इस प्रकार प्रेमरसीली विष्णुकी भक्तिसे उसीमें मनको लगाये,उसके अतिरिक्त और किसी वस्तुके देखनेकी चाहना न करे, चित्तको उसीमें स्थित रखे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करते-करते भावमें

हासं हरे रवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमाययाऽस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासाऽरुणायिततनुद्विजकुन्दपङ्क्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याऽऽर्द्रयाऽर्पितमना न पृथक् दिदृक्षेत् ॥३३॥ एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ ३४॥ मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥ ३५ ॥ सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥

हरिमें लोभकर भक्तिसे द्रवीभूत हृदयमें अत्यन्त आनन्दसे प्रफुल्लित हो जाय और भगवत्‌से मिलनेकी अति उत्कण्ठासे अश्रुपात करके वारं-वार पीड़ित धीरसे चित्तरूप मत्स्यवेधके काँटेके सदृश उसे शनैः-शनैः भगवत्‌के अंगसे ध्यान न्यून कर दे ॥ ३४ ॥ मुक्तोंके आश्रय जब निर्विषय विरक्तमन सहसा सूर्यके सदृश मोक्षको प्राप्त होता है,जब पुरुष आत्माको आनंदमय एकरूप देखता है, तब संसारसे निवृत हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मनकी अंतिम निवृत्तिसे सुखदुःखसहित ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हुआ योगी सुखदुःखका भोगना, जो पहले अपने स्वरूपमें विदित होता था; उसे अविद्यासे उत्पन्न हुए अहंकारमें त्याग देता है, अर्थात् सुखदुःखका भोक्तापन असत् अहंकारमें

ही है, मुझमें नहीं है, ऐसे देखता है क्योंकि उसको आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दीखता है अर्थात् हो चुका है ॥ ३६ ॥ पहलेकहे हुए लक्षणसे सिद्ध हुआ योगी अपने देहको भी नहीं देखता, फिर सुखदुःखको क्योंकर देखे; जैसे मदमत्त मनुष्योंको पहने हुए वस्त्रका ज्ञान नहीं रहता इसी प्रकार योगीको अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता, मत्तपुरुषका वस्त्र प्रारब्धसे जाता रहे या रह जाय उसको उसकी सुधि नहीं रहती, इसी प्रकार योगीका देह चाहे आसनपर रहे वा चला जाय उसे उसकी सुधि नहीं रहती ॥३७॥ प्रारब्धके आधीन हुआ उसका देह जबतक उसका प्रेरक हो तबतक इन्द्रियसहित जीता रहता है, परन्तु समाधि पर्य्यंत योगको प्राप्त हुआ, आत्मस्वरूपका ज्ञाता योगी स्वप्नअवस्थाकी देहके

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३७ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥३९॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वाऽपि स्वसंभवात् ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमतात्तदग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणात् प्रधाना जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥४१॥ सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥४२॥

समान, मैं और मेरा करके नहीं जानता ॥ ३८ ॥ जैसे पुत्र धनसे पुरुष अपने आपको अलग मानता है, ऐसे ही आत्मभाव मानकर अभिमत देहादिकसे ईश्वरको पृथक् मानता है ॥ ३९ ॥ जैसे अज्ञानी मनुष्य ज्वलित काष्ठसे कणका धूम होता है ऐसा पृथक् मानते हैं, परन्तु वास्तवमें दाहक और प्रकाशक अग्निसे अलग है; इसी प्रकार सब ब्रह्ममय ही है ॥ ४० ॥ जैसे पंचभूत इन्द्रियाँ, अन्तःकरण प्रधान जीवसंज्ञासे आत्मा अलग है, इसी प्रकार द्रष्टा भगवान् ब्रह्म पृथक् है ॥ ४१ ॥ जैसे सब प्राणिमात्रमें आत्मा व्याप्त है और सब जीवमात्र आत्मामें व्याप्त हैं, इसी प्रकार सब पदार्थोंमें मैं हूँ और मुझमें सब पदार्थ हैं, ऐसे अनन्यभाव करके सब प्राणियोंमें तदात्मतासे

जो देखते हैं, वे सिद्ध हैं ॥४२॥ जैसे अपनी योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनियोंकी गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व दृष्टि आती है, इसी प्रकार आत्मा एक होने पर भी प्रत्येक देहके गुणोंकी विषमतासे दीर्घह्रस्वादि भेदके कारण अनेक प्रकारका दृष्टि आता है ॥४३॥ इसलिये यह अपनी सत्, असत् आत्मिक विचारमें आये ऐसी प्रकृतिको भगवान्‌की कृपासे जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित होता है और कुमति, कपट,लोभ,मोहमें फँसकर खोटे संगसे जीवका नाश हो जाता है *॥४४॥इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेभाषाटीकायां कापिलेयोपाख्याने अष्टाङ्गयोगध्यानयोगवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा–भक्तियोग उनतीसमें, कालतेज वैराग्य। घोरदुःखजी

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥ योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥ तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥ इति श्रीभा० म० तृती० कापिले साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥ देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत् परमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथासांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥ भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा लोकसंसृतीः ॥ ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥

वनमरण, कहौं जासु जस भाग्य ॥ देवहूति बोली की हे प्रभो ! महदादिकोंका लक्षण और प्रकृतिपुरुषका स्वरूप पारमार्थिक जैसा हो और जिस प्रकारसे इनका ज्ञान हो, वह कहो ॥१॥ हे भगवन् ! जैसे सांख्य शास्त्रमें इनका मूल आपने कहा, परन्तु उसके कहनेका अभिप्राय भक्तियोग है, इस कारण भक्तियोगका मार्ग मुझसे विस्तार सहित आप कहिये ॥ २ ॥ हे जगत्पते ! जिससे इस पुरुषको सब ओरसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय ऐसे लोकके अनेक प्रकारके आवागमनको कहो ॥ ३ ॥ और ईश्वररूप और कालका स्वरूप कहो; जिसके

* कवित्त—कुमतिसे यश जाय गर्वसे लक्षण जाय, कुनारीसे कुल जाय योग जाय संगसे। भूखसे मर्यादाजाय लड़ाईसे पुत्र जाय, सोचसे शरीर जाय शीलता कुसंगसे ॥ कपटसे धर्म जाय लोभसे बड़ाई जाय, मांगनेसे मान जाय पाप जाय गंगसे। क्रोधसे तपस्या जाय अनीतिसे राज जाय, वंशकी प्रशंसा जाय वीर मुरे जंगसे ॥

भयसे लोग कुशलकर्म करते हैं ॥ ४ ॥ झूंठे, अभिमानी, शरीरादिक पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले; अज्ञानी, कर्मासक्त, निराधार, अहंकारमें बहुत दिनसे सोये हुए, कर्म करते-करते श्रान्त हो गये, ऐसे शठलोगोंके चैतन्य करनेके लिये और उनकी निर्मलबुद्धि करनेके अर्थ व योग-शास्त्रका प्रकाश करनेको आप इस जगत्में सूर्यरूप उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे महामुने ! हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! इस प्रकार माताके बहुत मीठे वचनोंकी सराहना कर, अत्यन्त, प्रसन्न हो, प्रीतिसे भरे करुणासे पीड़ित मीठे वचन कहे ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे जननि ! भक्तियोग अनेक प्रकारका है और बहुत मार्गोंसे प्रकाशित होता है, पुरुषोंकी प्रकृति सत-रज-तमोगुणके होनेसे उनके

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योग-भास्करः ॥५॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥६॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥ अभि-संधाय यद्धिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ॥ संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥८॥ विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्य-मेव वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥९॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ १० ॥

संकल्पमें भेद पड़ जाता है ॥७॥ संकल्पसे, हिंसासे, दंभसे, मत्सरतासे, क्रोधसे जो भिन्न दृष्टिका भाव मुझमें करते हैं, वह तामसी भक्ति है ॥८॥ विषयभोगकी चाहना कर यश ऐश्वर्य्यके लिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करते हैं वह राजसी भक्ति है ॥ ९ ॥ पाप नाशनेके उद्देश्यसे अथवा सिद्ध साधनके उद्देश्यसे जो मूर्ति आदिकमें कर्म करे अथवा जो पूजन करे उसमें यह माने कि भगवत्‌की आज्ञा है, इस लिये पूजनेहीके योग्य है, ऐसे भावसे जो भक्ति करते हैं, वह सात्त्विकी भक्ति है। इसका प्रयोजन यह है कि श्रवण कीर्तनादिक जो नवधा भक्ति है, वही फल देनेके लिये तीन प्रकारकी तामस, तीन प्रकारकी राजस, तीन प्रकारकी सात्त्विक भक्ति होनेसे सत्ताईस (२७) प्रका-

रकी हुई और सुननेसे एक-एक में नौ-नौ भेद हो जाते हैं, तब इक्यासी (८१) प्रकारकी हो जाती है, यह सगुणभक्तिके भेद हैं ॥१०॥ मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मैं जो अन्तर्यामी हूँ, मुझमेंसे कभी न निकले, इस प्रकार मनकी गति लगाये, जैसे गङ्गाजल धाराप्रवाहसे समुद्रमें लय हो जाता है, फिर नहीं लौटता ऐसे ही ईश्वरमें लीन हो जाय भेद न रक्खे ॥ ११ ॥ निर्गुण भक्तियोगका यह लक्षण है; पुरुषोत्तमकी फलानुसन्धान भेदभावरहित भक्ति करे। श्रीपतिके अतिरिक्त दूसरेकी आशा न करे ॥ १२ ॥ मेरे साथ एकलोकमें वास, समान ऐश्वर्य, सदा निकट रहे, मेरे समान रूप होजाय, एकरूप हो जाय इन पांचों मुक्तियोंको मैं देता हूँ, परन्तु मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त और

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ ११ ॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥ सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १३ ॥ स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेनस्वधर्मेण महीयसा ॥ क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥ १५ ॥ मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ॥ भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमेन च ॥ १६ ॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ॥ मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नाम संकीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥

कुछ नहीं ग्रहण करते ॥ १३ ॥ यह अत्यन्त निर्गुणभक्ति योगभक्ति है, जिससे तीनों गुणोंका उल्लंघन करके मेरे भावको प्राप्त होता है, इससे अधिक और दूसरी भक्ति नहीं ॥ १४ ॥ सुन्दर नित्य नैमित्तिक महास्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारद पंचरात्रतन्त्रोक्त पूजा करनेसे और हिंसारहित पूजा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ मेरी प्रतिमाके दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति प्रणामादिकसे सब जीवमात्रमें मेरी भावनासे धैर्य्यसे, वैराग्यसे हृदय पवित्र होता है ॥१६॥ महात्मा लोगोंका आदर-सम्मान करनेसे, दीनोंपर दया करनेसे, अपने समान कक्षामें मित्रता करनेसे, यम-नियम करनेसे, शरीर शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ ब्रह्मविद्याके सुननेसे, मेरे नामोंके उच्चारण-

और संकीर्तनसे, साधुसन्तोंकी संगति करनेसे, अहंकार त्यागनेसे चित्त शुद्ध होता है॥१८॥जो पुरुष मेरे धर्मके गुणोंका साधन करता है, उसका हृदय शुद्ध हो जाता है, केवल मेरे गुणोंके सुननेसे ही पुरुषको मेरा स्वरूप विना ही श्रम प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ जैसे सब स्थानोंमें पवन द्वारा गन्ध आती है, उसी प्रकार भक्तियोगमें लगा हुआ अविकार मन आत्मामें आप आ मिलता है ॥ २० ॥ सब जीवमात्रमें भूतात्मा मैं सदा स्थित रहता हूँ, मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्तिका पूजन करते हैं वह विडम्बनामात्र है ॥ २१ ॥ मैं सबके शरीरमें

मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः॥ पुरुषस्याञ्जसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥१९॥ यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ॥ एवं योगरत चेत आत्मानमविकारि यत् ॥ २० ॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥२१॥ यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ॥ हित्वाऽर्चां भजते मौढ्या-द्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥ द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥ २३ ॥ अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥ नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥

रहने वाला हूँ मुझे छोड़कर जो मनुष्य मूर्तिकी अर्चा करते हैं,वे अपनी मूर्खतासे राखमें हवन करते हैं ॥ २२ ॥ सब प्राणियोंकी देहमें जो मैं विराजमान हूँ जो मुझसे द्वेष रखता है, अभिमान रखता है, भेदभाव रखता है, उन प्राणियोंका मन कभी शांत नहीं होता ॥ २३ ॥ हे मातः ! ऊँचे-नीचे द्रव्योंसे,क्रियासे अर्चासे मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ और जो जीवोंका अनादर करता है उसपर मैं प्रसन्न नहीं होता ॥२४॥

---

१. शंका–कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि हे जननि ! सब चराचर जीवोंमें हम स्थित हैं, हमको तो कोई जानता नहीं हमारा अनादर करके प्रतिमाका पूजन करते हैं उन लोगोंको कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, जैसे राखमें हवन करनेसे कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता हे मातः ! प्रतिमा पूजन वेदके वाक्य मानकर होता है ऐसे वेदोंके वचनका छेदन मूर्ख भी नहीं करते और कपिलदेवजीने बड़े ज्ञानी होकर वेदोंके वचनका खंडन क्यों किया ? कि प्रतिमाका पूजन नहीं करना ?

उत्तर–सब देहोंमें परमात्माको मानना कि परमात्मा सब देहोंमें स्थित है, यह ज्ञानियोंका कर्म है, ऐसा मानने वाले प्राणी प्रतिमाको नहीं मानते, यह कर्म अज्ञानियोंके लिये नहीं है, अज्ञानियोंका कर्म प्रतिमाका पूजन है, कपिलदेवजीकी माता [illegible] तथा कपिलदेवजी भी ज्ञानी हैं, इसलिये ऐसे ब्रह्मज्ञानके वाक्य कहे, अज्ञानियोंके लिये नहीं कहे ।

सब जीवमात्रमें परमात्मा मैं हूँ, जबतक मेरे अनुभवका हृदयमें प्रकाश न हो तबतक मनुष्यको मूर्ति आदिकका पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ आपमें और मुझमें जो प्राणी अंतर समझते हैं; उन भिन्न दृष्टिवालोंको मैं सदा कष्ट देता रहता हूँ ॥२६॥ इस लिये मुझको सब जीवोंमें और भूतोंमें विराजमान जानकर सब प्राणियोंका अंतरयामी मैं हूँ मुझसे दान मान मित्रता रखकर भेददृष्टिसे न देखना चाहिये ॥ २७ ॥ हे शुभे ! अचेत जीवोंमें सचेतन अर्थात् प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे इंद्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ उनमें स्पर्शज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनमें रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं उनमें गन्धज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ॥ तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥ २६ ॥ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ॥ अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्तत-तश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ॥ तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥२९॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ॥ तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥ ३० ॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥ ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ॥ मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ ३३ ॥

शब्द ज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥२९॥ उनमें रूपवेत्ता काकादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें दोनों ओर दन्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें बहुत पांववाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये श्रेष्ठ हैं, उनसे दो पैरवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ द्विपदोंमें चारों वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणोंमें वेदपाठी श्रेष्ठ हैं, वेदपाठियोंमें अर्थके जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ अर्थ जाननेवालोंमें संशयच्छेदी मीमांसा करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्वकर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं, उनसे मुक्तसंग श्रेष्ठ हैं, उनसे ईश्वरीय कर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं, ॥३२॥ जिस पुरुषने अपने धर्म-कर्मका फल और अपना शरीर मुझे अर्पण कर दिया है उनमें वह श्रेष्ठ है, मुझमें जिसने अपनी आत्मा समर्पी, मुझमें ही सब कर्मोंका संन्यास करता है उस समदृष्टि महात्मासे कोई

अधिक श्रेष्ठ नहीं ॥३३॥ ऐसे समदर्शीके समान कोई दूसरा नहीं है,समदर्शी मनुष्य वैकुण्ठको जाता है वह आदिपुरुष अविनाशी सबके घट-घट में विराजमान है। इस लिये सब जीवमात्रको अत्यन्त आदर-सम्मानसे मनहीमनमें दण्डवत् प्रणाम करे॥३४॥ हे मनुसुते ! भक्ति-योग और योग दोनों मैंने तुमसे कहे, इन दोनोंमेंसे एकका भी साधन करे तो वह पुरुष परमेश्वरके निकट पहुँच सकता है ॥३५॥ सबका स्वामी प्रकृतिपुरुष रूप और उनसे पृथक् जो परमात्मास्वरूप है,परम प्रधान पुरुष उसीको देव कहते हैं,जिसमें यह जीव अनेक-अनेक प्रकारकी योनियोंको भोगता है ॥ ३६ ॥ रूपभेदके आश्रय होनेसे दिव्यकाल कहलाता है, जिससे भिन्नदृष्टिवालेको महदादिभूतोंका भय होता

मनसेतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टोभगवानिति ॥३४॥ भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३७ ॥ योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः ॥ स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३८ ॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ॥ आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥ ३९ ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥४०॥ यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४१ ॥ स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४२ ॥

है ॥ ३७ ॥ सर्वाधार और यज्ञोंके फलदायक जो ईश्वर जीवोंके भीतर प्रविष्ट होकर सब जीवोंको भक्षण करते हैं, वही विष्णु हैं, वही यज्ञ हैं, वही काल है, वशी करनेवालोंका प्रभु है ॥ ३८ ॥ इस कालका न तो कोई प्यारा है, न कोई शत्रु है, न कोई बांधव है, वही अप्रमत्त होकर प्रमत्त पुरुषोंका अन्त करता है॥३९॥ जिस कालके भयसे पवन चलता रहता है, मार्तण्ड तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, तारागण प्रकाश करते हैं ॥ ४० ॥ जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधि सहित अपने-अपने समयपर पुष्प और फल उत्पन्न करती हैं॥४१॥ जिसके भयसे नदियाँ दिन-रात बहती रहती हैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ सकते, अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, पर्वतों सहित भूमि

डूबती नहीं ॥४२॥ जिसकी आज्ञासे यह आकाश सब श्वास लेनेवालोंको सावकाश देता है, महत्तत्त्व सात आवरण युक्त इस लोकमें इस देहका विस्तार करता है ॥४३॥ जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश स्वर्गादिकमें युग-युग वर्तमान रहते हैं और वारम्वार संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते रहते हैं॥४४॥ वह अनन्त अन्त करनेवाला कालअनादि आदि करनेवाला है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है, परन्तु कालको भी मृत्युसे संहार करता है, वह परमात्मा कालरूप अपनी इच्छानुसार काम करता है ॥४५॥ इति श्रीभागवते म० तृ० भा० टी० बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥२९॥ दोहा—नारीतनुके नेहमें जिनका मन दिन रात। करौं तीस

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम् ॥ ४३ ॥ गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृ-दव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनाऽन्तकम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० म० तृती० बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ कपिल उवाच ॥ तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥ काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥१॥ यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ॥ तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते॥२॥ यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥

अध्यायमें, तिनको यश विख्यात ॥ कपिलदेवजी बोले कि, इस काल करालके पराक्रमको यह जीव नहीं जान सकता, जैसे पवनसे चलायमान मेघमाला वायुके विक्रमको नहीं जान सकती ॥१॥ अपने शरीरके सुखके लिये यह जीव अनेक दुःखसे जिस वस्तुका संग्रह करता है, उस वस्तुको कालभगवान् नष्ट कर देते हैं, जिसके लिये रात-दिन प्राणी सोचमें पड़ा रहता है ॥२॥ सोचमें क्यों पड़ा रहता ? कि जो वस्तु नाशवान् है; यह मूर्ख परिवारसहित देहको, धनको, खेतको, मोहसे इन नाशवान् वस्तुओंको अज्ञानी ध्रुवसमान स्थिर मानता ॥ ३ ॥ निश्चय करके यह जीव संसारमें जिस-जिस योनिमें जाता है उसी-उसी योनिमें आनन्दसे रहता है, परन्तु कभी वैराग्य धारण नहीं करता॥४॥

नरकवासी जीव भी अपने शरीरके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते,नरकको ही आनंदभवन मानते हैं,देवकी माया से जीव ऐसे विमोहित हो रहे हैं ॥५॥ और शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, गज, वाजि, बन्धुजनोंमें अपना हृदय अत्यन्त फँसाये रहता है, वह अपने आपको बहुत बुद्धिमान् और सुखनिधान मानता है॥६॥और अपने कुटुम्बियोंके पालन-पोषणके संदेहमें सब शरीर उसका सरदी-गरमीसे जलता-गलता रहता है,तो भी वह मूढ़ सदा बुरे हृदयसे बुरे-बुरे कर्म करता ही रहता है ॥७॥ खोटी वेश्यादिक स्त्रियोंकी एकान्तमें मैथुनादिक मायासे शरीर इन्द्रिय सब विक्षिप्त रहती हैं और तोतली रसभरी बालकोंकी मधुर वाणीके साथ झूंठी बातें कर उन्मत्त सा बना रहता है॥८॥ धनके लोभसे कर्म

नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमाया विमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥ संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥७॥ आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहो रचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ॥ कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥ अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥ १० ॥ वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ॥ लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११ ॥ कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति मूढधीः ॥ १२ ॥

करे उसमें भी अधर्म, सदा दुःख, ऐसे घरमें आलस्य तज दुःख दूर करनेके लिये उपाय करता है और गृहस्थीको सुखके समान मानता है ॥ ९ ॥ और महाहिंसा करके इधर-उधरसे धन इकट्ठा कर परिवारका पालन-पोषण करता है और आप उनकी जूठन खा-खाकर अपनी अवस्था पूरी करता है और अंतसमय नरकमें जाता है ॥ १० ॥ जब उसकी जीविका बंद हो जाती है, तब उसके उपार्जनके लिये सहस्रों उपाय करता है, इसी प्रकार बारंबार यह महालोभी, निर्धन यत्न करता जब मनमें हार मानता है, तब पराये धनके लेनेकी इच्छा करता है ॥ ११ ॥ जब कुटुम्बके पालन-पोषणका सामर्थ्य न रहा और उद्यम निष्फल होने लगा, तब वह मंदभागी, मंदबुद्धि,

कृपण अत्यन्त सोचवश होकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा है ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब वह प्राणी कुटुम्बके पालन-पोषणमें सामर्थ्य नहीं करता, तब उसके कुटुम्बी लोग पहलेकासा उसका आदर-सत्कार नहीं करते, जिस प्रकार किसान बूढे बैलका आदर नहीं करते॥ १३॥ इतनेपर भी ज्ञान और वैराग्य उस मूर्खको नहीं होता, अब वह बृद्ध मनही मन कहता है कि, हाय! जिनका पालन-पोषण मैं करता था, आज वह मेरा पालनकरते हुए कडुए वचन कहते हैं; हा! जराके आनेसे मेरा रूप कुरूप हो गया, मरनेके सम्मुख घरमें घुटना पड़ा ॥ १४ ॥ घरके लोग जब भोजन कर चुके हैं तब अनादरसे कुछ खाने-पीनेको श्वानके समान दूरसे टुकड़ा डालते हैं, रोग सब शरीरमें प्रकट हो गये, मंदाग्निसे

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तदा ॥ नाद्रियन्ते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारकफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ॥ वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥

भोजन भी थोड़ा खाया जाता है, उठने-बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही; नेत्रोंसे दीखना बंद हो गया॥१५॥ जब मृत्युका समय आया, तब वायुसे नेत्र फटने लगे, पुतलियाँ ऊपरको चढ़ गयीं, आंसू निकलने लगे, नाड़ियाँ रुक गयीं, कासश्वासके किये हुए क्लेशोंसे कंठमें कफ घिरने लगा ॥१६॥ उस ससय शोचवश हो भाईबन्धु चारोंओरसे घेरकर बैठ जाते हैं और बहुत ही पुकारपुकार कर बूझते हैं कि हे पिता, हे दादा! कुछ धन धरा धराया हो तो बता दो? अब तुम्हारा चित्त कैसे है? वह तो कालकी फाँसीमें फँसा हुआ है, कंठ रुका हुआ है, अपना सुख-दुःख मुखसे कुछ नहीं कह सकता, तब लोग फिर उसको समझाते हैं कि आप कुछ द्रव्य बतावें तो हम गाय मँगाकर आपसे पुण्य

१ कवित्त —दाताघर जाती तौ कदर ऐंसी नांहि पाती, मेरे घर आयी तौ बधाई बांट बावरी। खाने दशखाने तहखाने में छिपाय राखूं, होहु न उदास मेरो यही चित्त चावरी॥ खाऊँ न खवाऊँ मर जाऊँ तौ सिखाय जाऊँ, नाती और पूतन को आपनो स्वभाव री। दमड़ी न देहूँ कभी स्वप्नमें भिखारिनको, कृपण कहै लक्ष्मी से बैठी गीत गाव री।

करायें * ॥ १७ ॥ जिसने कुटुम्बके बचाने और चारों ओरसे उनके पालन करनेमें कसर न की, अपनी इन्द्रियोंको न जीता, वह नष्ट-बुद्धि, वह अज्ञानी रोते हुए अपने बन्धुबान्धवोंमें मर गया ॥ १८ ॥ उस समय उसके लेनेके लिये क्रोधसे लाल नेत्र किये, महा-भयानक यमराजके दो दूत आये दंडपाश उनके हाथोंमें देख त्रासके कारण वह पापी जीव विष्टा मूत्र करता रहता है ॥ १९ ॥ वह दूत उसे

एवं कुटुम्बभरणे व्यपृतात्माऽजितेन्द्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥१८॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ १९ ॥ यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घमध्वानं दण्डयं राजभटा यथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥

उसी समय परवश पकड़ गलेमें फांसी डाल उस नरदेहमेंसे उस जीवको निकाल; यातनादेह (जो यमलोकमें कष्ट भोगनेको नियत है) में रख हाथ बांधकर राजाके दूत जैसे अपराधीको बरवश पकड़ व घसीटकर ले जाते हैं उसी भांति उस जीवको बड़ी दूरके मार्गसे ले जाते हैं ॥ २० ॥ उन दूतोंके मारनेसे पीटनेसे उसका हृदय फट जाता है, देह कांपने लगती है, गिरते, पड़ते, मार्गमें कुत्ते फाड़नेको

---

* कवित्त – द्रव्यहीसों पितापर पुत्रको प्रेम होत, द्रव्यहीसों पुण्य और द्रव्यहीसों नाम है । द्रव्यहीसों देवी और देवता प्रसन्न होत, द्रव्यहीसों जगत्माहिं होत सारो काम है ॥ द्रव्यहीसों धर्म अर्थ मनोरथ पूरे होत, द्रव्यहीसों धर्म अर्थ काम परम धाम है । द्रव्यहीसे खातर और चातुर होत द्रव्यहीसों, शालग्राम द्रव्यहीको महिमा सब ठाम है ॥

१. शंका–कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि यमराजके दूत यमकी पाश जीवके गलेमें बांधकर घसीटते घसीटते यमपुरीमें जीवको ले जाते हैं; यह बड़े संदेहकी बात है, कि जीवके गला नहीं है फिर बिना देहके गला कैसे हो सकता है, जिसमें पाश डालकर जीवको यमपुर ले जाते हैं ?

उत्तर–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे चौरासीलाख योनियोंकी देह बनी है, परंतु प्रत्यक्ष दीखनेमें वायुसे देह वर्द्धित होती है । पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश यह चार तो देहमें प्रत्यक्ष देखने में नहीं आते और पवन प्रत्यक्ष मुखमें नाकमें, गुह्यमें चलता हुआ दिखायी देता है, जबतक देहमें वायु चलती रही है तबतक जीवित कहलाती है और पवनके बन्द होते ही देहको मृतक कहते हैं, जीवकी वार्ताको महात्मा पुरुषोंने और कविजनोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है, परन्तु सब शास्त्रोंका भी ऐसा मत है कि इस शरीरमें पवन जो है वही जीव है, वायुके अंशसे देहके सब अंग चैतन्य रहते हैं, इसलिये यमके दूत पवनरूप जीवके गलेमें पाशसे बांधकर उसी वायुरूप जीवको यमपुरीमें ले जाते हैं ।

दौड़ते हैं, उस समय वह प्राणी आर्त होकर अपने किये पापोंको याद करता है ॥ २१ ॥ मार्गमें क्षुधा-तृषा सताती है, भोजन देखनेको नहीं मिलता, ऊपरसे सूर्यकी गर्मी पड़ती है, नीचे धरती जलती है, फिर तपती हुई बालूपर तपना पड़ता है, जब कहीं थककर बैठ जाता है और नहीं चलता तब यमदूत बड़े निर्दयपनसे कोड़े मारते हैं, मार्गमें न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं पानी पीनेको मिलता है। उस समय मुखसे हाय हाय निकलती है ॥ २२ ॥ और जहां-तहां थकित होकर गिर पड़ता व मूर्च्छित हो जाता है फिर उठ कर चलने लगता है, इसी प्रकार उस पापी जीवको महाअंधकारव्याप्त मार्गमें होकर यमदूत यमपुरीको ले जाते हैं ॥ २३ ॥ निन्यानवे

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि-निराश्रमोदके ॥ २२ ॥ तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्छितः पुनरुत्थितः ॥ यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥ २३ ॥ योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥ आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥ आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिक दंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ॥ पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥ २७ ॥

हजार ९९००० योजन मार्ग चार घड़ीमें उस महापापीको ले जाते हैं, और पापीको छः घड़ीमें यमपुर ले जाते हैं, वहां अनेक-अनेक प्रकारकी यातनायें भोगनी पड़ती हैं ॥ २४ ॥ कहीं तो उस जीवकी देहको लकड़ियोंसे जलाते हैं, कहीं इसीका मांस इसको भक्षण कराते हैं, कहीं आप ही अपने मांससे अपना पेट भरता है ॥२५॥ कहीं यमलोकमें श्वान, गीध, जीतेकी आंते निकाल-निकाल ले जाते हैं, कहीं साँप, बिच्छू डांसादिककी पीड़ासे दुःख पाकर अपने किये कर्मोंका फल भोगता है ॥ २६ ॥ कहीं उसका शरीर काट-काट खंड-खंड करते हैं, कहीं हाथी दांतोंपर धर-धरकर घुमा-घुमाकर पटक देते हैं, कहीं पांवोंसे दबा-दबा शुण्डसे उठा चीर-चीर कर बगेल देते हैं, कहीं पांवोंसे

पीस-पीस कर मारते हैं, कहीं पर्वतोंके शृङ्गोंसे पटक देते हैं, कहीं पानीमें डुबो देते हैं, कहीं गढ़ेमें बन्द कर देते हैं ॥ २७ ॥ जो तामिस्र, अंधतामिस्र और रौरवादिक नरकोंकी पीड़ा है, सो नरनारी भोगते हैं, जो पूर्व कुकर्म किये हैं उनका फल उनको भोगना पड़ता है ॥ २८ ॥ हे मातः ! यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, क्योंकि नरक और स्वर्ग दोनों यहीं दिखायी देते हैं, जो-जो कष्ट नरकमें सहने पड़ते हैं वे संसारके मध्य भी देखनेमें आते हैं ॥२९॥ जो प्राणी केवल इस प्रकार अपने परिवारका पालन-पोषण करता है वा अपना उदर भरता है उसके वे कर्म उसके साथ जाते हैं और जब मरकर यमपुरीमें जाता है, तब उसको अपने पापका फल इकले ही भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ इस

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः॥भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः॥२८॥ अत्रैव नरकः स्वर्ग-इति मातः प्रचक्षते॥ यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥२९॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा ॥ विसृज्ये-होभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदंस्वकलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयोभूतद्रोहेण यद् भृतम्॥३१॥दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान्॥भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृत वित्तइवातुरः॥३२॥केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः॥याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम्॥३३॥अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः॥क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥३४॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० कापिले कर्मविपाको नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥

अपने शरीरको छोड़कर एक ही जीव नरकको जाता है, प्राणिद्रोह ये जो पाप किये हैं, वह सब वहीं भोगने पड़ते हैं ॥ ३१ ॥ दैवके प्राप्त किये हुए कुटुम्ब पोषणके लिये किये हुए अपने पापको अकेलेमें पुरुष भोगता है और जिसका धन लुट जाता है ऐसे पुरुषकी नाईं वह आतुर हो जाता है ॥३२॥ केवल अधर्मसे जो परिवार पालनेमें तत्पर है,वह प्राणी अन्धतामिस्रतमका जो स्थान है, उसमें जाता है॥३३॥ नरकलोकसे जो नीचे यातनादिक नरक हैं उन सबको क्रमसे भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब फिर शुद्ध होकर मनुष्यदेहको पाता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कामिनां नरकादिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३० ॥

* राग विहाग–तबतें गोविंद क्यों न संभारे ? अपने लोभ लाभके कारण चलत न कबहूँ हारे ॥ १ ॥ अपने एक जीवनके कारण जीव सहस दश मारे ॥ उन जीवनपर क्यों छूठोगे दानवगीर तुम्हारे ॥ २ ॥ भूमि-परे तब शोचन लागे भये कठिन दिन भारे ॥ सूरदास कहे कण्ठ पकरि तब निकसत प्राण दुवारे ॥ ३ ॥

दोहा—इकतिसमें वर्णन करों, शोणितवीर्य मिलाप। राजसयोनी होत जब, मिलत पुण्य औ पाप॥ श्रीभगवान् कपिलदेवजी बोले कि, दैव-प्रेरित पिछले जन्मोंके कर्मोंके प्रभावसे देह प्राप्तिके लिये यह जीव पुरुषके वीर्यकणके आश्रय होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट होता है॥ १॥ एक रातमें शुक्रशोणित मिलता है, पांच रातमें बुद्बुदासा होता है, दश दिनमें बेरके समान हो जाता है, फिर मांस पिंडाकार हो जाता है॥२॥ एक मासमें शिर बनता है, दो मासमें बाहु चरण आदि अंगके आकार बन जाते हैं, तीसरे मासमें नख, रोम, हाड़, चाम, सब इंद्रियोंके छिद्र

श्रीभगवानुवाच॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥ १॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्॥ दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥ २॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्याद्यङ्गविग्रहः॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥ ३॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः॥ षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥ ४॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे॥ ५॥

बन जाते हैं॥३॥ चौथे मासमें सातों धातु प्रकट होती हैं, पांचवें मासमें भूख-प्यास उत्पन्न होती हैं; छठें मासमें जेरमें लिपटा हुआ माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है॥ ४॥ माताके भोजन किये हुए अन्नादिकसे इसकी धातु बढ़ती है और वह जीव जीवोंकी खान ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें दिन-रात पड़ा रहता है। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि "स्त्रीकी नाभिमें एक बालककी वृद्धि करनेवाली आप्यायनी नाड़ी बँधी है उसीके द्वारा स्त्रियोंके खाये पिये पदार्थका रसांश उस गर्भको पहुँचता है और वह जीव उसीको पीपीकर दिन-दिन बढ़ता है" ॥५॥

१. शंका—कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि जीव यमपुरीमें कष्ट भोग करके पुरुषका वीर्य होकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, ऐसा हम सब सुनत हैं, बड़े आश्चर्यकी बात है कि वायुरूप जीव शीशे और रांगकी नांई गलकर जलरूप कैसे हो गया?

उत्तर—वायुरूप जीवको नित्य सब पदार्थोंमें जाना होता है, सब वस्तुमें चर-अचरमें सूक्ष्मरूप होकर प्रवेश करता है इसलिये वायुका देहरूप जीव यमपुरीमें कष्ट भोगकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, क्योंकि वायु तो सबमें जब चाहे तब जैसा रूप धरके घुस जाता है।

सुकुमारतासे गर्भके कीड़े जो क्षण-क्षणमें उसको काटते हैं, उस कठिन पीड़ासे वह जीव अत्यन्त व्याकुल हो मूर्छित हो जाता है, वह कृमि भूखसे व्याकुल होकर जीवको सताते हैं॥६॥और कीड़ोंके काटे हुए घावोंपर जो जननीके खाये, कटु,तीक्ष्ण,उष्ण,लवण,रूखे,अम्लादि नाना भाँतिकी वस्तु जो खाती हैं, उनके लगनेसे उस जीवके शरीरमें अत्यन्त पीड़ा होती है॥७॥उदरके भीतर जरायुसे बंधा और बाहर जननीकी आंतोंसे बँधा,नीचे योनिकी ओर शिर किये धनुषकीसी टेढ़ी पीठ झुकाये मल मूत्रमें पड़ा रहता है,हाथ-पांवतक नहीं चला सकता,यह माताका उदर नहीं है बंदीगृह है॥८॥अपने तनुकी चेष्टा करनेका कुछ सामर्थ्य नहीं रहता; जैसे पिंजरेमें पक्षी अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता,

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम् ॥ मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥ मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वांगोत्थितवेदनः ॥ ७॥ उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ ॥ अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ ९ ॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिवसोदरः ॥ १० ॥ नाथ मान ऋषिर्भीतःसप्तवध्रिः कृताञ्जलिः ॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ ११ ॥ जन्तुरुवाच ॥ तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥

वहाँ इस प्राणीको पिछले सौ जन्मके कर्मोंकी याद आती है,उस समय वह दीर्घ श्वास भरकर पश्चात्ताप करता है और सुख तो वहाँ नाम को भी नहीं मिलता॥९॥गर्भके समान दुःख तो न हुआ न होगा,सातवें महीनेमें इसको अधिक बाधा होती है,यह एक ठिकाने नहीं ठहर सकता, प्रसूति वातसे सदा काँपता रहता है,और विष्ठाके कीड़ोंको अपना सम्बन्धी समझता है॥१०॥उस समय दुःखी हो वह जीव वारंवार परम उदास हो गर्भवासकी त्रास देख सात धातुओंसे बँधा हुआ हाथ जोड़ व्याकुल वाणीसे उस परमात्माकी स्तुति करता है॥११॥ जीव कहता है कि हे शरणागतवत्सल! विश्वके पालन करनेके लिये आप अपनी इच्छासे अनन्तरूपधारी भगवान् वासुदेवके भूमिपर पर्यटन करते हुए निर्भय

चरणारविंदके मैं शरण हूं, कि जिसने मुझ पापीको यह गर्भवासकी गति दिखाई ॥१२॥ जिस ईश्वरकी मायासे इस संसारके कर्मबन्धनसे जननीके उदरमें पंचमहाभूत इन्द्रिय अन्तःकरणरूप मायाका आश्रय लेकर कर्मोंसे बँधा हुआ हूं,अब उस विशुद्ध अविकार अखण्ड ज्ञानस्वरूपको इस तप्त हृदयमें वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ जो ईश्वर पंचभूत रचित शरीरमें ढका हुआ विदित होता है, जैसा ही इन्द्रिय, गुण अर्थ चैतन्य आत्मक मैं हूं, ऐसे देहरहित होनेपर भी प्रसिद्ध महिमावाले ऋषि परमेश्वर प्रकृति पुरुषसे परे जो आप हैं वह मैं आपके चरणारविंदोंकी वन्दना वारंवार करता हूं ॥ १४ ॥ जिसकी मायासे अपने निजस्वरूप और ज्ञानका विस्मरण होनेसे यह जीव बहुत

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १३ ॥ यः पञ्चभूतरचित रहितः शरीरे छन्नो यथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोःपुमांसम् ॥ १४ ॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन् सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥ १५ ॥ ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १६ ॥ देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदा नु ॥ १७ ॥

गुणकर्मसे किये हुए इस जगत् सम्बन्धी मार्गमें महाकष्टसे विचरण करता हुआ परमात्माकी कृपा विना और किसी युक्तिसे अपने निजस्वरूपको नहीं जान सकता, क्योंकि भगवत् कृपा विना ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान विना मोक्ष कहां ? इस लिए ईश्वरकी सेवा करनी उचित है ॥१५॥ स्थावर जङ्गममें अनुवर्तें जिसका अंश ऐसे देव ईश्वरके विना जो यह कालका ज्ञान मुझको हुआ, इस ज्ञानको मेरे हृदयमें किसने प्रकाश किया वह कौन है ? इसलिये जीव कर्मपदवींमें वर्तमानके तापत्रयनाशार्थ उस परमात्माको भजता हूं ॥ १६ ॥ माताके देहरूपी विवरमें यह तनु जठराग्निसे अति तप्त रुधिर, विष्ठा और मूत्रके कूपमें गिरा हुआ जीव यहांसे बाहर, निकलनेके लिये अपने

मासोंको गिनता है और यह कहता है कि, हे दीनबन्धो ! दीनानाथ ! इस जीवको यहांसे कब निकालोगे ? ॥१७॥ हे नाथ ! आप बड़े दयालु हैं, आपने मुझे दशमासको यह गति दी। हे दीनानाथ ! आप अपने किये उपकारसे आपही सन्तुष्ट होते हो। हाथ जोड़नेके अतिरिक्त आपका प्रत्युपकार कौन कर सकता है ॥१८॥ सात धातुका जिसका शरीर वह तो अपने देह सम्बन्धी दुःख सुखको ही देखता रहता है और मैं तो परमात्माकी कृपासे उसके दिये ज्ञानसे जो सम-दमआदि सब साधन बन सकें ऐसी स्थितिमें हूं उस पुरुषको मैं बाहर और हृदयके भीतर चित्रकी नाईं विश्वस्त मान कर देखता हूं ॥१९॥ हे विभो ! मैं अत्यन्त दुःखवासमें बसता हूं तो भी इस अन्धकूपसे

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यितु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥ पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्त्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवास गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत ॥ २० ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥

बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं, क्योंकि बाहर आते ही आपकी माया व्यापेगी और जिसके सम्बन्धसे स्त्री, पुत्रादिकके मोह ममतामें फँसना पड़ेगा ॥ २० ॥ इस कारण अब मैं यही चित्तको स्थिर करके आपके कोमल चरणकमलोंको हृदयमें धारण करूँगा और उन्हींके अनुग्रहसे अपनी सुहृद आत्मा करके आत्माका तमसे उद्धार करूँगा, फिर ऐसा अनेक रन्ध्रोंका शरीर जिसमें नाना प्रकारके व्यसन होते हैं,यह मुझको न हो और यह कठिन कष्ट मुझको भोगना न पड़े, क्योंकि अब श्रीकृष्णचन्द्र कृपानिधानका मैंने आश्रय लिया है ॥२१॥ कपिलदेवजी बोले कि इस प्रकार गर्भमें जो दशमासका जीव स्तुति कर रहा था उसको बाहर निकलनेके लिये प्रसूतिवायुने तुरन्त पृथ्वीपर फेंक दिया ॥ २२ ॥

वायुके फेंकनेसे वह जीव नीचेको मुखकिये श्वास बन्द बड़े कष्टसे बाहर निकलता है और सब ज्ञान उसी समय शमन हो जाता है ॥२३॥ भूमिपर गिरकर रुधिर मूत्रमें विष्ठाके समान चेष्टा करता है और कहां कहां करके वारंवार रोता है और ज्ञानके जाते रहनेसे विपरीत गति हो जाती है ॥२४॥ रोनेके अतिरिक्त और वह कुछ भी नहीं कह सकता, अपने पराये प्रयोजनको नहीं जानता। जननी-जनक उसके पोषणके लिये भूखा समझ कभी दूध पिलाते हैं, कभी उदरकी बाधा समझ कभी घूटी देते हैं, परंतु उसकी इच्छानुसार एक भी काम नहीं होता, जब वह भूखके मारे रोता है तब माता-पिता उसकी दीठ उतारते हैं परंतु वह किसी बातको 'हां, ना' नहीं कर सकता ॥२५॥ गरमी-सरदीसे पीड़ित अपवित्र शय्यापर पड़ा रहता है, मच्छर, मक्खी, खटमल आदि उस जीवको काटते हैं, उस समय न तो वह अपने तनुको खुजा सकता

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्छिर आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २३ ॥ पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २४ ॥ परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ २५ ॥ शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुः स्वेदजदूषिते ॥ नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २६ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ॥ २७ ॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानाद्धिमन्युः शुचार्पितः ॥ सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥२८॥

है, न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न कोई उपाय ही कर सकता है, केवल अपनी व्यथाको आपही जानता है ॥ २६ ॥ कच्ची खालमें मच्छर, डांस, खटमल आदि अनेक जीव इस जीवको काटते हैं, इसीसे वह बालक बारबार रोता है, ज्ञान सब नष्ट हो जाता है, जैसे और कीड़े हैं, ऐसे ही इसको भी एक कीड़ा समझो ॥ २७ ॥ इस भांति अनेक भांतिके कष्ट भोगकर फिर बाल अवस्थामें पठन-पाठनका दुःख सहकर अज्ञानपनसे उसको भी नहीं सीखता, खेलकूदमें ही वृथा समय खोया, जब तरुणाई आयी तब मनमानी वस्तु पाकर महाअभिमानी बन अज्ञानसे क्रोध और कष्ट उठाने लगा देहके सङ्ग बढ़े हुए काम क्रोधके घमण्डमें विषयी जनोंके सङ्ग मिलकर अपनी आत्माके नाशार्थ

लड़ाई करता है ॥ २८ ॥ पञ्चभूतके देहमें वारंवार यह अज्ञानी जीव अपने अभिमानसे कहता है कि यह शरीर मेरा है, मैं इसका पालन करता हूँ, ऐसी असत बातें ग्रहण करने लगता है, कुमतिसे सुमतिका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ देहके अर्थ कर्म करता है, जिस कर्मसे बँधकर संसारको प्राप्त होता है, क्लेश देता हुआ जो यह शरीर है इसके लिये यह प्राणी दिन-रात कर्म किया करता है और सदा जीवन-मरणके चक्रमें पड़ा घूमता ही रहता है ॥ ३० ॥ फिर शिश्न और उदरके लिये उद्यमकारी असतोंके मार्गमें स्थित होकर उसी मार्गमें चलने लगता है और फिर कुसंगतिके प्रभावसे उसी भांति नरक भोगता है ॥ ३१ ॥ और सत्य, शौच, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा,

भूतः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ २९ ॥ तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥ योऽनुयाति ददत् क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥ ३० ॥ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥ आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥ शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम् ॥३२॥ तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ॥ सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥३३॥ न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसंगतः ॥ ३४ ॥ प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥ रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३५ ॥

यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य्य यह सब खोटे पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥३२॥ इस लिये अशान्त, मूढ़, अज्ञानी, खंडितमन, असाधु, सोचके योग्य; योषिताओंके क्रीड़ामृग अर्थात् नीच स्त्रियोंसे रमण करनेवाले नीच मनुष्योंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ और प्रसंगोंसे जैसा यह बँधा है, उससे अधिक मोह नहीं होता, जैसा कि स्त्रियोंके संगसे होता है और उनकी संगति करनेवाले पुरुषोंकी संगतिसे अत्यन्त ही मोह बढ़ता है और महा क्लेश होता है ॥ ३४ ॥ चतुरानन अपनी पुत्री सरस्वतीको देख उसके वश हो गये, जब सरस्वतीसे कुछ न बन पड़ा तो मृगीका रूप धारण कर भागी, उस समय ब्रह्माजी भी लज्जा तज मृग बन उसके पीछे भागे॥३५॥

जब ब्रह्माजी जैसे ज्ञानीकी यह गति है तब उनके रचे हुए मरीचादि,उनके रचे हुए कश्यपादि, उनके रचे हुए देवता मनुष्यादि उनमें ऐसा अखण्डित बुद्धिवाला कौन है ? जिसका चित योषितरूप मायाको देख खंडित न हो, एक श्रीनारायणको तो हम नहीं कह सकते कि जो सब संसारके प्रलय पालन करनेवाले मौन रूप धारण किये विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ मेरी स्त्रीमयी मायाका बल देखो, जो दिशाओंके जीतनेवाले शूरवीरोंको भी केवल भृकुटी चढ़ाकर अपने पांवमें लुटा लेती है ॥ ३७ ॥ कदाचित् जो मनुष्य योगका पार पाना चाहे वह स्त्रियोंका संग न करे, मेरी सेवासे आत्मज्ञानी होता है, फिर वह योगीश्वर स्त्रियोंको नरकका द्वार समझता है ॥ ३८ ॥ परमेश्वरकी रची

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखण्डितधीः पुमान् ॥ ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ ॥ ३६ ॥ बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ॥ या करोति पदाक्रान्तान्भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥ ३७ ॥ संगं न कुर्यात् प्रमदासु जातु योगस्य पारं पारमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥ ३८ ॥ योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥ तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ३९ ॥ यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ॥ स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥४०॥ तामात्मनो विजानीयात् पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥ देवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ ४१ ॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥ भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ४२ ॥

हुई स्त्रीरूपी माया जो धीरे-धीरे अपने निकट आये तो उसको अपनी मृत्यु जाने, जैसे तृणोंसे छिपा हुआ कुआ ॥ ३९ ॥ मुमुक्षु स्त्रीके प्रति कहते हैं, पुरुषसमान आचरण करती हुई मेरी माया उस वित्तके देनेवालेको पति माने तो उस पुरुषरूप मायाको मृत्यु समझे, जिससे पूर्वजन्ममें आप पुरुष था, फिर मरणसमय स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीधर्मको प्राप्त हुआ, इस भांति फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा फिर स्त्रीकी इच्छासे स्त्री होगा ॥ ४० ॥ पति, पुत्र, गृहरूप नारी अपनी मृत्यु जानो, वधिकके गाने और बीणा बजानेसे जैसे मृगकी मृत्यु है, इसी प्रकार दैवसे प्राप्त नारीको अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४१ ॥ जीवरूप अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें एक कर्मका भोक्ता निरन्तर

पिछले कर्मको किया करता है ॥ ४२ ॥ पंचभूत इंद्रिय मनोमय देह जीव इसके संग है; जीवका रुकना इसका मरण है, आविर्भाव होना जीवका संभव है ॥ ४३ ॥ द्रव्यकी प्राप्तिके स्थान जो नेत्रगोलकादि; उनकी जब कामलादि दोषके कारण द्रव्यके रूपादिनिरीक्षणमें द्रष्टा जीवकी अयोग्यता होती है, वही इस जीवका देहाभिमानजनित औपचारिक मरण है और अहंमान अर्थात् यह देह ही मैं हूँ इस प्रकारके देहतादात्म्याभिमानसे जो स्थूल शरीरकी उत्पत्ति वही इसकी औपचारिक उत्पत्ति है ॥ ४४ ॥ जैसे नेत्रोंको द्रव्य–अवयव–दर्शनकी अयोग्यता जब होती है तब ही चक्षुके द्रष्टाको इनके द्रष्टत्वाभावकी अयोग्यता होती है॥४५॥ इस कारण न तो मृत्युका भय माने,

जीवस्यानुगतो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४३ ॥ द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा ॥ तत्पञ्चत्व महंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४४ ॥ यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ॥ तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः॥४५॥तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः॥ बुद्ध्या जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥४६॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥ मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४७॥ इति श्रीभा० म० तृतीय० कापिले जीवगतिवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान् धर्मानेवावसन् गृहे ॥ काममर्थं च धर्मान्स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥ १ ॥

न जीवकी आशा ठाने और न जीवनके प्रयत्नोंका आदर करना चाहिये । जीवगति जानकर धीर मुक्तसंग होकर इस संसारमें विचरे ॥४६॥ सुन्दर देखनेवाली, योग और वैराग्यवाली, सत्यविचार करनेवाली,बुद्धिसे मायाविरचित लोकमें शरीरासक्तिको त्यागकर आनंदसे विचरे * ॥४७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कापिलेयोपाख्याने पुण्यपापैरिह मनुष्ययोनिसम्प्राप्तौ जीवगतिवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३१॥ दोहा–बत्तिसमें सुरलोकको, सात्विकपनसे जाय । तत्त्वज्ञान बिन फिर फिरै, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥

---

* कवित्त––योग करै यज्ञ करै वेदविधि त्याग करै, जप करै तप करै यों ही आयु छूटि है । यम करै नेम करै तीर्थहू व्रतादि करै, पुहुमि अटन करै वृथा श्वास टूटि है ॥ जीवको यतन करै वनमाहिं वास करै, पचि पचि यों ही मरै कालशिर कूटि है । और हू अनेक विधि कोटिन उपाय करै, सुन्दर कहत बिनु ज्ञान नहिं छूटि है ॥

कपिलदेवजी बोले,कि जो कोई गृहस्थ गृहस्थके धर्मोंका आचरण घरमें बैठकर करते हैं और अर्थकामरूपकी कामनाके लिये उन सब कामोंका अनुष्ठान कर फिर उन सब कामोंको पूर्ण करते हैं ॥१॥ वे मनुष्य कामनाओंमें विमूढ़ हो भगवद्धर्मसे पराङ्मुख होकर श्रद्धालु बनकर यज्ञोंसे देवता-पितरोंका यजन करते हैं॥२॥और जिनकी बुद्धि और श्रद्धा पितृ और देवताओंमें लग रही है वे मनुष्य पितृदेवताओंका व्रतकर इन्द्र-लोकमें जाते हैं और वहां अमृत पान कर फिर जन्म लेते हैं॥३॥जब शेषशय्यापर अनंतासन नारायण शयन करतें हैं,तब गृहस्थोंके सब लोक लयको प्राप्त हो जाते हैं,इससे यह ज्ञात होता है कि सकाम कर्म करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं वे स्थिर नहीं रहते॥४॥जो धीर पुरुष कामअर्थके

स चापि भगवद्धर्मान् काममूढः पराङ्मुखः ॥ यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयाऽन्वितः ॥२॥ तच्छ्रद्धयाऽऽक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥ गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥ ३ ॥ यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः ॥ तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ॥ निस्सङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः ॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥ सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥७॥ द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ तावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥८॥ क्ष्माम्भोऽनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूता-दिभिः परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ९ ॥

लिये स्वधर्मका द्रोह नहीं करते हैं और सब संग त्याग, सब कर्म त्याग, अत्यन्त शान्त शुद्धचित्त॥५॥ निवृत्तिकर्ममें प्रीति कर और ममता व अहंकारको त्यागकर अपने धर्मका सात्त्विकभावसे आचरण करके अत्यन्त शुद्ध चित्तसे सूर्यद्वारा उस विश्वमुख पुरुषको प्राप्त होते हैं जो पर अपरके स्वामी,अभिन्ननिमित्तोपादान कारण होकर इस विश्वकी उत्पत्ति,पालन और संहार करते हैं॥६॥७॥जो पुरुष परमेश्वरदृष्टिसे ब्रह्माका पूजन करते हैं वे ब्रह्माके सौ वर्ष बाद प्रलय समय तक ब्रह्माके लोकमें वास करते हैं॥८॥ द्विपरार्द्धलक्षण कालका अनुभव कर पृथ्वी,जल,अग्नि, पवन,आकाश,मन,इंद्रिय,उनके अर्थ,पंचभूत, अहंकार इनसे युक्त संसारके संहारकी इच्छा करनेवाला गुणत्रयमय शरीरवाला ब्रह्मा अपने

सौ वर्षको भोगकर परमेश्वरमें लीन हो जाता है॥९॥तब यहांसे दूर जाकर भगवत्के सेवक योगीजन,जिन्होंने पवनमनको जीत वैराग्य लिया है, वे अभिमान त्यागनेवाले ब्रह्माके ही साथ अमृतस्वरूप पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको प्राप्त होते हैं; परन्तु ब्रह्मासे पहले उस पदवीको नहीं पा सकते,क्योंकि ब्रह्माके समयतक उन देहाभिमानियोंका अभिमान निवृत्त नहीं हो सकता॥१०॥हे प्रकाशरूपिणी! अब सब जीवोंके हृदय-कमलमें जिनका स्थान है, उनका अनुभव तुमको सुना दिया, अब भक्ति भावसे उनकी शरण जाओ॥११॥ स्थावर जंगमके आद्यऋषि सहित ब्रह्माजी योगीश्वर सनकादिक सिद्धयोग प्रवर्तक वह भी ॥ १२ ॥ भेददृष्टि करके अभिमानसे निष्काम कर्म करके कर्ताभाव होनेसे पुरुषोंमें

एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥ १० ॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥ आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ १२ ॥ भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥१५॥ ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः ॥ कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥ रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ॥ पितॄन्यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥१७॥

श्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको ॥ १३ ॥ वह ब्रह्मा अपने पदको प्राप्त हो ईश्वररूप कालकरके संसारमें फिर जन्म लेकर जैसे पहले ब्रह्मा थे उसी पदवीको फिर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ हे सति ! परमेष्ठीके ऐश्वर्यको धर्मनिमित्त सेवा कर फिर संसारमें जन्म लेते हैं ॥१५॥ और जो लोग इस संसारमें आसक्तमन हैं, श्रद्धाकर कर्ममें लग रहे हैं, सब ओरसे जिनका कोई निषेध न करे ऐसे कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ और रजोगुणसे जिनके मन हरे गये हैं, कामोंमें आत्मा उनकी लगी हुई है, इंद्रिय नहीं जीती है, घरमें जिनका मन सदा लगा रहता है और नित्य पित-

रोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ अर्थ, धर्म, काममें मनको लवलीन रखते, ईश्वरसे विमुख कथनीय यश गाने योग्य जिनके पराक्रम हैं, उन मधुद्वेषी परमपुरुषकी कथासे जो विमुख हैं ॥ १८ ॥ और जो पुरुष नारायणकी सुधारूपी कथाको त्यागकर रसिकग्रन्थोंमें मन लगाते हैं और उनहींके चरित्रोंको पढ़कर प्रसन्न होते हैं, जैसे सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको तजकर विष्ठाभोजी विष्ठासे ही प्रसन्न होता है, ऐसे जो नीचलोगोंकी कथा कहानी सुनते रहते हैं, वे अभागी निश्चय भाग्य रहित हुए हैं, दैवने उनको भाग्यहीन बनाया है ॥ १९ ॥

त्रैवर्गिकास्तेपुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥ नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥ हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥१९॥ दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ॥ प्रजामनुप्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥२०॥ ततस्ते क्षीणसुकृताःपुनर्लोकमिमं सति ॥ पतंति विवशा दैवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥ २२ ॥

जिन्होंने गर्भसे लेकर श्मशानपर्यन्त क्रिया की है, वे पुरुष सूर्यसे दक्षिणमार्ग होकर पितृलोकको जाते हैं, फिर कुछ काल व्यतीत कर अपने पुत्रादिकोंमें ही आकर जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ हे सति ! पितृलोकसे जब उसका सुकृत क्षीण होता है, तब देवतालोग उसके सब साधनोंको नष्ट कर देते हैं, उससे वह प्राणी विवश होकर फिर इसी मृत्यलोकमें आकर जन्म लेता है ॥ २१ ॥ इस लिये सब भावसे परमे-

---

१. शंका—कपिलदेवजी महाराजने अपनी मातासे कहा कि सब प्राणी संसारके कार्य सिद्ध होनेके लिये दुष्ट इंद्रियोंके वशीभूत जन नित्य परमात्माको भूलकर पितरोंका पूजन करते हैं, ऐसे भेदरूप वचन सांख्ययोगशास्त्रके जाननेवाले कपिलमुनिने क्यों कहा ? सांख्ययोगवाले तो सदा चर अचरको एकसम मानते हैं। सांख्ययोग जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि, पितर जो हैं वह ईश्वरका रूप है तब भगवान्‌के रूप जो पितर उनमें भेद कहां ? क्यों पितर और हैं भगवान् और हैं, ऐसी दृष्टि कपिलदेवजीने क्यों की ?

समाधान—कपिलमुनिने ऐसे रोचक वाक्य इसीलिये कहे, कि किंचिन्मात्र भेद कियेसे भगवान्‌में मनुष्योंका प्रेम बढ़ेगा, तो मनुष्य सुख पावेंगे और भगवान्‌की भक्तिकी पुष्टता हो जायगी, जैसे किसी ग्रामको जाना हो तो भटकना क्यों ? किसीसे सुन्दर मार्ग पूछ लेना और समझकर उस ग्रामको चले जाना, ऐसे ही वाक्य कपिलदेवजीने कहे हैं भेदरूप वचन नहीं कहे ॥

श्वरके पदारविन्दका भजन करना मुख्य है, उनके गुणाश्रयीभूत भक्तिसे भजनीय चरणकमल भगवान्के हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करे तो शीघ्र ही वैराग्य, ज्ञान, ब्रह्मदर्शन हो जाता है ॥ २३ ॥ जब इस भक्तका मन इंद्रियोंकी वृत्तिद्वारा समान अर्थोमें अर्थात् प्रिय अप्रियमें विषयभावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥ तब निःसंग, समदर्शी, त्यागने और ग्रहण करनेसे रहित हो जाता है, तब उसको आपही विदित हो जाता है कि स्वयंप्रकाश परमानंद आत्मा मैं ही हूं, ऐसा निश्चय हो जाता है ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष देखनेके योग्य पृथक्भावसे भगवान् एक प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ इस विश्वमें समग्रयोगसे योगीजन अपना अभिमत

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥२४॥ स तदैवात्मनाऽऽत्मानं निस्सङ्गं समदर्शनम् ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ २६ ॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसंगस्तु कृत्स्नशः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ अवभा त्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥ यथा महानहंरूपस्त्रिवृत् पञ्चविधः स्वराट् ॥ एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः ॥ २९ ॥ एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥ समाहितात्मा निस्सङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥ ३० ॥ इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद् ब्रह्मदर्शनम् ॥ येनानुबुध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥

अर्थ इतना ही मानते हैं कि, सब प्रकारसे सबसे संग छूट जाय ॥ २७ ॥ बहिर्मुख इंद्रियोंसे, अर्थरूपसे, भ्रांतिसे, शब्दादिधर्मसे, एक ज्ञान रूप, निर्गुण, बृहत्त्वादि गुणसे विशिष्टचैतन्य ब्रह्म प्रकाशता है ॥२८॥ जैसे प्रथम एक रूप परमात्माका था, वही महत्तत्त्व, अहंकार, त्रिगुण, पंचभूत, स्वराट्, एकादशविधिका शरीर इनके रूपसे अनंत रूप प्रकट हुए । जिन महत्तत्त्वादिकोंसे इस प्राणीका देहरूप जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ जिस पुरुषका मन भक्तिसे, वैराग्य, श्रद्धासे, योगाभ्याससे एकाग्र हो गया है जिसकी आत्मा सब संग त्याग कर विरक्तिसे देखती है, वह महात्मा पुरुष इस भेदका निश्चय कर सकता है ॥ ३० ॥ हे मातः ! साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप हो जाता है और

प्रकृतिपुरुषका तत्त्व दीखने लगता है, वह ज्ञान मैंने तुमको सुनाया ॥३१॥ मुझमें निष्ठाकर ज्ञान योग करना और निर्गुण भक्ति,इन दोनोंका अर्थ एक ही है,भगवत् शब्द लक्षणरूप है ॥३२॥ जिस प्रकार रूप रस आदि, अनेक गुणयुक्त सब ही वस्तु पृथक् पृथक् मार्गवाली इंद्रियोंसे अनेक भांतिकी विदित होती है, जैसे कि हरड़ नेत्रसे हरित, जिह्वासे कसैली, त्वचासे अशीत प्रतीत होती है, इसी प्रकार एक ही भगवान् शास्त्रोंके द्वारा नानाप्रकारके ज्ञात होते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारकी शुभक्रिया करनेसे जैसे कुआँ, बावड़ी; वाटिका, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय आदिके यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, आत्माके विचार, इंद्रियोंके जीतने, मनके दमन और कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास करनेसे

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥ ३२ ॥ यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपः स्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥ ३४ ॥ योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणःस्वदृक् ॥ ३६ ॥ प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥ कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥ ३७ ॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वङ्गप्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत् खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥ ४० ॥

॥ ३४ ॥ अनेक अंगके योगाभ्यास, भक्तियोग, दृढ़ वैराग्य, सकाम निष्काम धर्म, प्रवृत्तिनिवृति मार्गमें निष्ठासे ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वबोध, दृढ़वैराग्य, सगुणनिर्गुण स्वदृक् भगवान्‌की इन सब साधनोंसे प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ मैंने भक्तियोगका स्वरूप तुमसे चार प्रकारका कहा और संसारके संहारकर्ता अप्रकट गतिवाले कालका भी स्वरूप तुमसे कहा ॥३७॥ हे मातः ! प्राणीकी अनेक योनि अविद्याकर्मसे निर्मित होती है, जिनकी गतियोंमें प्रविष्ट होनेसे अपने शुद्धस्वरूपको भूल जाता है, जैसा है, वैसा नहीं जानता और न ईश्वरकी गतिको पहिचानता है ॥ ३८ ॥ यह ज्ञान खल, अविनय, अभिमानी, दुराचारी, पाखण्डीको कभी सुनाना नहीं चाहिये ॥ ३९ ॥ लोभीको, गृहस्थको,

अभक्तको और मेरे भक्तोंका द्रोह करनेवालोंको तो कभी भूलकर यह ज्ञान न सुनाये ॥ ४० ॥ इस ज्ञानके सुननेका अधिकारी वह है, जो श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीसे शत्रुता न करे, जीवमात्रसे मित्रता करनेवाला, शुश्रूषा करनेवाला, मेरी सेवामें तत्पर हो ॥ ४१ ॥ बहिर्मुख वैराग्यवाला; शान्तचित्तवाला, मत्सर रहित, पवित्र आत्मा, जो मुझको सबसे अधिक प्यारा माने, ऐसे पुरुषोंको यह ज्ञान उपदेश करना उचित है ॥ ४२ ॥ हे अम्ब ! जो पुरुष श्रद्धासे वारंवार इस कथाको सुने और कहे वह मुझमें मिलकर मेरी पदवीको प्राप्त होगा * ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कापिलेयोपाख्याने सम्पूर्णवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥४१॥ बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् ॥ निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥ य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० म० तृतीयस्कन्धे कापिले संपूर्णवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ १ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोऽन्तः सलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥

दोहा—तेंतिसवें अध्यायमें, कपिलदेवको ज्ञान । सुनो देवहूती जबै, पायो पद निर्वान ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार कपिलदेवजीके ज्ञानरूपी वचन सुनकर मोहपटली जिसकी दूर हो गयी, वह कर्दमजीकी प्यारी पत्नी और कपिलदेवजीकी माता देवहूति तत्त्वविषयोंसे अंकित सिद्धभूमि सांख्यशास्त्रके कर्ता कपिलदेवजीको प्रणाम कर स्तुति करने लगी ॥ १ ॥ देवहूति बोली कि यद्यपि आप ऐसे हैं तो भी अजन्मा, जलशायी, पञ्चमहाभूत इंद्रियार्थात्ममय यह आपका शरीर है, आप मेरे उदरसे जन्मे, सबका बीज यह संसार उसमें तुम्हारा मैं वारंबार

* सवैया — प्रीति प्रचण्ड लगे परब्रह्महिं और सब कुछ लागत फीको । शुद्ध हृदय मन होय तो निर्मल द्वैतप्रभाव मिटे सब जीको ॥ गोष्ठीज्ञान अनन्त चले जंह सुन्दर जैसे प्रवाह नवीको । ताहिते जानि करो निशिवासर साधुको सङ्ग सदा अति नीको ।

ध्यान करती हूँ ॥२॥ हे नारायण! जिस समय आप जलके भीतर शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, उस स्वरूपका ब्रह्माजीने भी केवल ध्यान मात्र दर्शन किया उनको उस स्वरूपका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वह चतुरानन आप ही जिनकी नाभिकमलसे प्रकट हुए हैं, वह आपकी महिमाको नहीं जान सकते, आप ही विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करते हो। संसारसे अनेक वीर्योंके विभाग किये कोई क्रिया नहीं करते। सत्यसंकल्प आत्माके ईश्वर तर्कमें नहीं आते, सहस्रशक्तिरूप आप हो ॥ ३ ॥ हे नाथ! जिस उदरमें प्रलयके समय यह सब विश्व था और आप अपनी विश्वमोहिनी मायासे बालक बन अपने चरणका अँगूठा चूसते हुए वटपत्रपर शयन कर रहे थे, हे प्रभो! तुमको मैंने उदरमें धारण

स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥ स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगान्ते वटपत्रएकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ ४ ॥ त्वं देहतन्त्रप्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ॥ यथाऽवतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥ यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ ७ ॥

किया ॥ ४ ॥ हे समर्थ! पापियोंके नाशके लिये और अपनी आज्ञा पालनके ऐश्वर्य प्राप्तिके कारण जैसे आपने सूकरादिक अवतार धारण किये हैं इसी प्रकार अपने आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये अवतार लिया है ॥ ५ ॥ आपके नाम श्रवण कीर्तन, प्रणाम, स्मरण करनेसे चाण्डाल भी यज्ञ करने योग्य हो जाता है, हे विभो! जिसने आपका दर्शन किया है, उसके शुद्ध होनेमें तो सन्देह ही क्या है?॥६॥ हे नाथ! वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; जिसकी जीभसे आपका नाम निकलता है, इस लिये वह प्राणी सब प्राणियोंसे उत्तम विदित होता है कि जो पुरुष आपका यश वर्णन किया करते हैं, उन्होंने निःसंदेह पिछले जन्ममें कोई तप किया होगा, अथवा होम, तीर्थस्नान और एकाग्रचित्त

हो वेदपाठ किया होगा, विना पूर्वजन्मके प्रभाव के भगवद्भजन करना बहुत कठिन है, जिसने तुम्हारा नाम लिया उसने सब कुछ किया॥ * ॥७॥ परब्रह्म, परमपुरुष, सावधान हृदयमें ध्यान करने योग्य और तेजके प्रतापसे संसारकी मायाके नाश करनेवाले ऐसे सर्वव्यापक विष्णु वेदगर्भ आप कपिलदेवजीको मैं वारंवार प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पर पुरुष भगवान् कपिलदेवजीकी जब देवहूतिने इस प्रकार स्तुति की, तब गम्भीरवाणीसे कपिलदेवजी जननीपर दयालु हो बोले ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि, हे मातः ! सुन्दर सेवन करने योग्य मेरे कहे हुए मार्गमें स्थित होनेसे तुम थोड़े ही कालमें जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगी ॥ १० ॥ जिस

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ वाचा विक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः॥९॥ कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥१०॥ श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद् ब्रह्मवादिभिः ॥ येन मामभवं यायाः मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम् ॥ स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥१२॥ सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहितः ॥ १३ ॥

ब्रह्मविद्याका ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षियोंने सेवन किया है, इस मेरे मतपर श्रद्धास्नेहसे चल । इस भवभयसे निवृत्त हो जो मेरे समीप रहते हैं और जो ज्ञानी पुरुष मेरे इस सिद्धान्तका शान्तिचित्तसे चिन्तन करते हैं, वे अभयलोकको जाते हैं और जो इस मतसे विमुख हैं, वे सदा जन्ममरणके चक्रमें घूमा करते हैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् कपिलदेवजी उस ब्रह्मवादिनी अपनी माता, सती देवहूतिको अपनी आत्मगति दिखाकर और समझाकर, आज्ञा ले आप तो वहांसे चले गये ॥ १२ ॥ और वह देवहूति पुत्रके कहे हुए मार्गसे योगाभ्यासमें एकाग्रचित्त हो सब आश्रमोंमें पुष्परचित मुकुटतुल्य, सरस्वती नदीके तीरपर सावधानतासे वास करने लगी ॥ १३ ॥ उसी

---

* भजन –रे मन कृष्णनाम कहि लीजै । गुरुके वचन अटल कर मानहु साधुसमागम कीजै ॥ पढ़िये गुनिये भक्ति भागवत और काह कत कीजै । कृष्णनाम रस बह्यो जात है तृषावन्त ह्वै पीजै ॥ कृष्णनाम बिन जन्म बाद है वृथा जीवन कह जीजै । सूरदास हरि शरण ताकिये जन्म सफल कर लीजै ॥

१ यह स्थान गुजरातमें सीध पुरीके समीप है वहां सरस्वतीजी बहती हैं, वहीं बिन्दुसरोवर है, वहीं कपिलदेवजीके आश्रम इत्यादि सब हैं ॥

बिन्दुसरोवरमें तीन वार स्नान कर, पीत कुटिल अलकोंको धारण किये कृश शरीरपर चीर पहने अपने आपको उग्र तपमें धरती हुई ॥ १४ ॥ कर्दमजी प्रजापतिने तप और योगके प्रभावसे वर्द्धित, जिसकी उपमा नहीं, देवता प्रार्थना करें ऐसे अनुपम गृहस्थाश्रमको त्याग दिया ॥ १५ ॥ दुग्धफेनके समान निर्मल और कोमल शय्या, हाथी दांतके जिसमें पाये; सुवर्णकी सामग्री; कञ्चनके आसन, सुन्दर स्पर्शयोग्य जहां बिछे थे ॥ १६ ॥ स्वच्छ स्फटिकके आलोंमें महामरकतमणि जड़ी थीं; रत्नोंके दीपक प्रकाश करते थे और स्त्रीरत्नोंसे सब स्थान शोभायमान थे ॥ १७ ॥ भवनोंके उद्यान जिनमें अनेक-अनेक प्रकार के पुष्पोंवाले वृक्ष फूलोंसे फूले हुए, कल्पवृक्षोंसे रमणीक, पक्षियोंके जोड़े जहां कूज रहे, मतवाले भौंरे जहां गुञ्जार रहे, सरोवरोंमें सुन्दर-सुन्दर कमल खिल रहे,जिनकी रज मक-

अभीक्ष्णावगाहकपिशाञ्जटिलान् कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥ १४ ॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥ स्वच्छस्फटिककुडयेषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९ ॥ हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ॥ किंचिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥

रन्दको भ्रमर पान करते थे और झरझरकर जलमें गिरती थी ॥ १८ ॥ उस फुलवाड़ीमें हरिके पूजनार्थ जिस समय देवहूति जाती थी, तो उस समय देवताओंके भृत्य गंधर्व-गण समीप मधुर-मधुर स्वरोंसे गाते थे और कमलकी सुगन्धिवाली वापीके भीतर जिसको कर्दमजी रमण कराते थे ॥ १९ ॥ देवहूतिका सुखभवन ऐसा शोभायमान था कि इन्द्राणी उसके सुखकी अभिलाषा करती थी ऐसे सुखको कर्दमजीके वियोगमें त्याग दिया था, जब पुत्रका वियोग हुआ तो उसके विरहमें आतुरतासे उनका मुख कुम्हला गया ॥ २० ॥ प्रजापति कर्दमजीके स्त्री, पुत्रका मोह तज वनको चले जानेसे और जब दूसरे पुत्रका वियोग हुआ, उस समय तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी इतनी

अधिक देवहूति व्याकुल हुई,जैसे बछड़ेके बिछुड़नेसे उत्तम गायकी दुर्दशा हो जाती है॥२१॥हे विदुरजी ! वह देवहूति अपने पुत्र कपिलदेव जीका ध्यान करनेसे थोड़े ही कालमें वैभवयुक्त घरकी इच्छा त्याग अनन्यगतिको पहुँच गयी॥२२॥जो ज्ञान ध्यानगोचर भगवद्रूप भगवान् कपिलदेवजीने देवहूतिसे कहा था उसीका ध्यान करने लगी और प्रसन्नमुखवाले पुत्रकी चिन्ताका त्याग किया॥२३॥भक्तिके प्रवाहयोगसे बली वैराग्यसे और युक्त अनुष्ठानसे; ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ॥२४॥ विशुद्ध जीवात्मा विश्वतोमुख आत्माको, अपने अनुभवसे जिसके माया सम्बन्धी विशेषगुण अन्तर्हित हो गये हैं उसका ध्यान करने लगी॥२५॥सर्वान्तर्यामी भगवान् ब्रह्ममें जिसका मन स्थिर हो गया और सब भाव दूर हो

तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निस्स्पृहा तादृशे गृहे ॥ २२ ॥ ध्यायन्ती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥ २३ ॥ भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ॥ युक्तनुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥ विशुद्धेन तदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ॥ स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वात् क्षीणक्लेशाऽऽप्त निर्वृतिः ॥ २६ ॥ नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ॥ न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥ २७ ॥ तद्देहः परतः पोष्योऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात् ॥ बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम् ॥ देवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥ एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ॥ आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥ ३० ॥ तद्वीरासीत् पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥ ३१ ॥

गये, सब क्लेश मिट गये और सब जीवन्मुक्तका सुख प्राप्त हुआ॥२६॥नित्य समाधि लगानेसे गुणोंके सब भ्रम दूर हो गये उस समय अपने देहका अनुसंधान न रहा;जैसे स्वप्नकी वस्तुका स्मरण जागे हुए पुरुषको नहीं रहता, इसी प्रकार देवहूतिको अपने देहका स्मरण जाता रहा॥२७॥ वह देह कर्दमादिसे रक्षित अकृश मनको कुछ ग्लानि नहीं मानती थी,मलसे ढकी हुई धूमसहित अग्नि जैसे प्रकाश करती है॥२८॥ तपयोगमय, खुले केश,वस्त्र पहने,ईश्वररक्षित,वासुदेवमें जिसकी बुद्धि प्रविष्ट,ऐसी वह अपने शरीरका अनुसंधान भूल गयी॥२९॥इस प्रकार कपिलदेवजीके कहे हुए मार्गमें चलनेसे थोड़े ही दिनोंमें परब्रह्म आत्माके सुखरूप भगवान्को प्राप्त हुई॥३०॥हे विदुर!जहां वह देवहूति जीवन्मुक्त हुई,पुण्यतम,

परमपवित्र, त्रैलोक्यमें विदित सिद्धपद नामसे वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! योगबलसे उसके शरीरका सब मल भस्म हो गया और देवहूतिकी मनुष्यदेह सरस्वतीनदीरूप हो गया;वह नदी सब नदियोंसे श्रेष्ठ हुई,सब सिद्धोंकी सिद्धिको देनेवाली है जिसके निकट सिद्धपुरुष वास करते हैं॥३२॥भगवान् कपिलदेवजी महायोगी पिताके आश्रमसे मातासे आज्ञा लेकर ईशानकोणकी ओरको गये॥३३॥ वहां सिद्ध,चारण,गंधर्व,सुर,मुनि,अप्सरागणोंने उनकी स्तुति की और समुद्रने भी उनका पूजन कर अनेक-अनेक प्रकारकी भेंट दे अपने भीतर रहनेको स्थान दिया ॥३४॥ अबतक भगवान् कपिलदेवजी महाराज त्रिलोकीकी शांतिके निमित्त सावधान हो,योग धारण कर उसी स्थानपर

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान् पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ॥३३॥सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः॥स्तूय-मानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः॥३४॥आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः॥ त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः॥३५॥एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ॥कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः॥॥३६॥य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविंदम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलोपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ॥ ३ ॥

विराजमान हैं और सदा सांख्यशास्त्रके आचार्य उनकी सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥ हे तात ! हे पापरहित ! जो तुमने भगवान् कपिलदेवजी और सती देवहूतिका पवित्र संवाद हमसे पूछा, उसे विस्तार सहित हमने वर्णन किया ॥ ३६ ॥ यह परमगुह्य कपिलदेवजीका आत्मयोग साधनेके लिये जो महात्मापुरुष सुनेंगे और कहेंगे, उनकी बुद्धि गरुड़ध्वज भगवान्के चरणारविंदोंमें लगी रहेगी ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा-गवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कपिलान्तर्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ शुभमस्तु ॥

शंका–त्रिलोकीके नाथ कपिलदेव भगवान्ने समुद्रकी दी हुई भूमिमें बैठकर क्यों तप किया । जो दीनसे दीन होता है वही कोई वस्तु दूसरेसे मांगता है ।

उत्तर–सांख्ययोग नष्ट हो गया था, उस सांख्ययोगको प्रकट करके और पृथ्वीमें सांख्ययोगकी स्थिति करनेके लिये भगवान् कपिलदेवजीने अवतार धारण किया है, जैसा चराचर जीव प्रसन्न होकर शुभ कर्म करेंगे, वैसा भगवान् भी कर्म करेंगे, किसी प्राणिमात्रको दुःख नहीं देंगे, इसलिये समुद्रके दिये स्थानमें पूजन ग्रहण किया ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

अत्रिऋषि
पृथुराजा
विदुर
मैत्रेय
आकुती.
ऋषि
रुद्र
ऋषि
प्रसूति
दक्षादि
वीरभद्र
यज्ञ.
पुण्यजन
प्राचीनबर्हि.
नारद
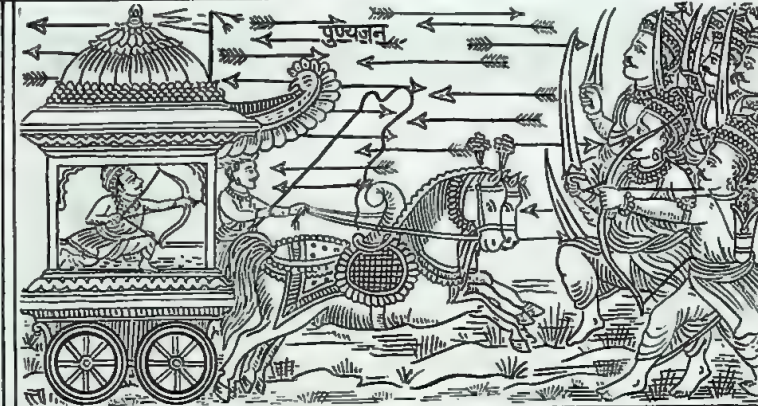
सोरठा-जय प्रभु जगदाधार, करुणानिधि करुणायतन। भक्तहेत तन धार, हरत भूमिको भार तुम ॥ जय वृंदावन ईश, जय यदुपति जय श्यामघन। जय जय जय जगदीश, चरणशरण मुहिं राखिये ॥ हे वृन्दावनचन्द्र, श्रीगोविन्द सुखकन्द हरि। हरहु सकल दुख द्वंद, काटे गजके फंद जिमि॥ शिव अज सनत्कुमार; नारद शारद शेष शशि। राखो नाम तुम्हार, शरणागतवत्सल प्रभु॥ करहु कृपा तुम आज; मूषक वाहन गजवदन। जय गणेश गणराज, कहौं चतुर्थस्कंध अब ॥ दोहा-इसी चतुर्थ स्कंधमें, हैं इकतिस अध्याय। तिनकी भाषा रचत हौं, सुमिरौं श्री यदुराय ॥ कहौं प्रथम अध्यायमें, मनुपुत्रिनको वंश। यज्ञरूप अवतार धर; करें असुरविध्वंस ॥ मैत्रेयजी बोले कि, मनुजीने शतरूपानारीमें आकूति, देवहूति, प्रसूति, नाम तीन पुत्री और दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ यद्यपि रुचिप्रजापति आकूतिका भाई

श्रीकृष्णाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ॥ स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

अर्थात् मनुका पुत्र था, परन्तु तो भी मनुने शतरूपाकी सम्मतिसे रुचिप्रजापतिके साथ पुत्रिकाधर्मका आश्रय लेकर उसका विवाह कर दिया, पुत्रिकाधर्म उसको कहते हैं कि "यह कन्या विना भाईकी अलंकृत भूषित तुमको देता हूं, इससे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा मैं लूँगा"॥ २ ॥ ब्रह्मतेजस्वी श्री भगवान् रुचिप्रजापतिने परमसमाधिसे उसमें एक जोड़ा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जो उनमें पुरुष हुआ वह साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूपधारी थे और जो स्त्री वह नित्य श्रीनारायणके संग रहने वाली दक्षिणा हुई, यह लक्ष्मीजीका अंशरूप थी ॥ ४ ॥ उस महाप्रकाश अपनी पुत्रीके पुत्रको अत्यन्त प्रसन्नतासे स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और रुचिप्रजापतिने आनन्दसहित दक्षिणाको अपने पास रख लिया ॥ ५ ॥ दक्षिणा जब कामकी इच्छाके योग्य हुई, तब भगवान् यज्ञपतिने उसके साथ विवाह किया और अत्यन्त

प्रसन्न होकर उस दक्षिणामें बारहपुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव, रोचन ॥ ७ ॥ यह स्वायम्भुवमन्वन्तरमें तुषित नामके देव हुए, मरीचि आदि ऋषि हुए और यज्ञ सुर गण ईश्वर इन्द्र हुए, श्रीभगवान्-जीके छः प्रकारके अवतार ये भी हैं॥८॥राजा मनुके महाबली और अतिपराक्रमी प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए;उनके पुत्र-पौत्र नातियोंके वंशसे मन्वन्तर अत्यन्त भर गया ॥ ९ ॥ हे तात ! मनुने देवहूतिका विवाह तो कर्दमजीके साथ कर दिया, उसकी कथा तो मैं प्रथम ही आपसे कह आया हूं ॥ १० ॥ अब भगवान् मनुजीने ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको प्रसूति नाम कन्या विवाह दी, जिस प्रसूतिके

तोषः प्रतोषः संतोषः भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥ तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥ १० ॥ दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥ पत्नी मरीचस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥

वंशका विस्तार संसारमें ऐसा बढ़ा कि जिसका यश आजतक त्रिलोकीमें छा रहा है ॥११॥ और जो कर्दमजीकी नौ पुत्रियां थीं वे ब्रह्म-र्षियोंकी पत्नियाँ हुई ! उनमेंसे प्रसूतिके जो सन्तान हुई उनका वृत्तांत मुझसे सुनिये॥१२॥ मरीचिकी पत्नी कर्दमजीकी कन्या कलाने कश्यप व पूर्णिमा दो पुत्र उत्पन्न किये उन दोनोंके वंशसे यह सब संसार परिपूर्ण हो गया ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन ! पूर्णिमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, विरज व विश्वग । इनके अतिरिक्त देवकुल्यानामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो नारायणके चरण नित्य प्रति प्रेमसे धोती थी और उन्हींके प्रता-पसे जन्मान्तरमें आकाश गंगा अर्थात् सुरसरिता हुई ॥ १४ ॥ अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाके सुन्दर यशकर्ता तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो विष्णु-

शिवके अंशसे दत्तात्रेय, दुर्वासा, सोम ये तीनों महातेजस्वी हुए ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि, हे गुरो! अत्रि ऋषिके भवनमें देवताओंमें श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन और संहारकर्ता इन तीनोंने किस कारण आकर अवतार लिया ? कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि, अत्रि ऋषिको ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समझकर ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके लिये प्रेरणा की, उस समय अत्रिऋषि अपनी भार्याको सङ्ग ले कुलाचल पर्वतपर ऋक्षनामक तीर्थमें जाकर तप करने लगे ॥ १७ ॥ जहां पुष्पोंके गुच्छे, अशोक व पलाशके वृक्षोंमें लाल-लाल लटक

विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥ २० ॥ तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥

रहे हैं, उसकी अद्भुत शोभा व निर्विन्ध्या नदीके चारों ओर झरनोंके जलका शब्द हो रहा है ॥ १८ ॥ उस मनोहर स्थानमें सुख-दुःखको समान समझकर प्राणायामसे चित्तको रोक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़े हो पवनको भक्ष्य बना तप करने लगे ॥ १९ ॥ और इस प्रकार वे वारंवार चिंतन करते थे कि जगदीश्वर, जगत्का जो स्वामी है मैं उसकी शरणागत हूँ, वह जैसा आप है इसी प्रकारकी सन्तान मुझको दे * ॥ २० ॥ प्राणायामकी बढ़ी हुई अग्नि जो ऋषीश्वरके शीशमें प्रकट हुई उससे त्रिभुवन तपने लगा, उस समय तीनों देवता अर्थात्

१. शंका–ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिसे कहा कि जो संकल्प आपने मनमें करके तप किया है उसी संकल्पकी सिद्धि होनेके लिये हम तीनों जन आपके सन्मुख आये हैं, अत्रिमुनिने अपने मनमें जो संकल्प करके तप किया था वह क्या संकल्प था जिसको अत्रिमुनिने भी गुप्त रक्खा और ब्रह्मा, विष्णु, महेशने भी गुप्त रक्खा।

उत्तर–अत्रि मुनिने ॐकार अक्षरको ब्रह्मा, विष्णु, शिव समरूप समझकर और ॐकारका रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिवको अपना पुत्र होनेके लिये ॐकार अक्षरका जप किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिके हृदयका गूढ़ार्थ विचार कर तीनों देव अत्रिमुनिके पुत्र हुए, दत्तात्रेयजी, दुर्वासा मुनि और चन्द्रमा।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥२१॥ अत्रिमुनिके स्थानपर गये, जाकर देखा तो अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग ये सब देवता अत्रिमुनिके यशका गान करते हैं ॥ २२ ॥ इन दोनों देवताओंके प्रकट होनेसे मुनिका मन चकित हो गया परन्तु तो भी एक पांवसे खड़े होकर मुनिने श्रेष्ठदेवोत्तमों का दर्शन किया ॥ २३ ॥ और पुष्पादिक अञ्जलिमें लेकर, प्रसन्न मनसे दण्डवत् प्रणाम कर वृष, हंस, गरुड़पर बैठे और अपने-अपने त्रिशूल, कमण्डलु, चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित तीनों देवताओंका पूजन किया ॥ २४ ॥ अनुग्रहकी दृष्टि व मुसकाते मुखसे प्रसन्न जानकर और उनकी सुशोभित कांति जानकर अपने मिचे हुए नेत्रोंको मल ॥ २५ ॥ दोनों हाथ जोड़, उनमें ही अपने मनको लगा

अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैस्स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥ कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥ २७ ॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥

कोमल मधुर मनोहर वाणीसे त्रिलोकीनाथोंकी स्तुति कर ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि, युगयुगमें सृष्टि, उत्पत्ति, पालन व संहार करनेके लिये विभाग किये हुए मायाके गुणोंसे जिन्होंने देह धारण किये हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो, आप तीनोंको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, उन तीनोंमेंसे आप कौन हैं ? मैंने तो एकको बुलाया था इस बातको आप मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ मैंने यहां विविध-विधान व अनेक प्रकारके उपचार करके संतान होनेके लिये केवल एक भगवान्का ध्यान किया था, आप तीनों देव कृपा करके यहां कैसे आये क्योंकि आप शरीरधारियोंके मनसे भी दूर हो अर्थात् मनमें नहीं आ सकते ऐसे आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए यह बड़ा आश्चर्य है ॥ २८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वे तीनों देवश्रेष्ठ इस प्रकार मुनीश्वरके वचन सुनकर हे प्रभो ! इस प्रकार कोमलवाणीसे हँसकर कहने लगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जैसा संकल्प आपने किया था,उसी प्रकार हम आये,इसमें किंचिन्मात्र भी अंतर नहीं हुआ, आपने हम सबका ही ध्यान किया था ॥ ३० ॥ हे मुने ! इसलिये हम तीनोंके अंशसे जगत्–विख्यात आपके तीन पुत्र होंगे और सब संसारमें आपके यशका विस्तार करेंगे, उसीसे आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे तीनों सुरेश्वर मनोवांछित वर देकर और मुनिसे आदर पाकर उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके सम्मुखसे अपने-अपने स्थानको गये ॥३२॥ कुछ कालोपरान्त ब्रह्माके अंशसे सोम सुत हुआ और विष्णुके अंशसे

मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्तेसंकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्त आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥ ३१ ॥ एवं काम वरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥ श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ॥ सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षाद् ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥

योगवेत्ता दत्तात्रेयजी प्रकट हुए और शिवके अंशसे महा ऋषि दुर्वासा उत्पन्न हुए। अब अंगिराऋषिके वंशका वृत्तान्त सुनो ॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धा नाम पत्नीमें चार कन्या उत्पन्न हुई-सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति ॥ ३४ ॥ उनके दो पुत्र और हुए, जो स्वायंभुव मन्वन्तरमें विख्यात हैं, एक तो साक्षात् भगवान् उतथ्य हुए और दूसरे ब्रह्मज्ञानी सुरगुरु बृहस्पतिजी ॥३५॥ और पुलस्त्य-जीके हविर्भू नाम पत्नीमें अगस्त्यजी उत्पन्न हुए,जो दूसरे जन्ममें जठराग्निरूप हुए और उनके दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा हुआ॥३६॥

विश्रवाके इडविडाभार्यामें यक्षपति देवता कुबेर हुआ, केशिनी नाम भार्यामें रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र हुए * ॥ ३७ ॥ हे महामुने ! पुलहकी गति नाम सती स्त्रीमें तीन पुत्र उत्पन्न हुए । कर्मश्रेष्ठ, वरीयान्, सहिष्णु ॥ ३८ ॥ और क्रतुकी क्रियानाम भार्याने ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान साठ सहस्र वालखिल्यादि ऋषि उत्पन्न किये ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! वसिष्ठजीकी ऊर्जा नाम स्त्रीमें चित्रकेतु आदि

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च तथाऽन्यस्यां विभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥ ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ॥ उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमाञ्छक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥४२॥ भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥

निर्मल ब्रह्मऋषिसे सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥४०॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान, द्युमान् और दूसरी भार्यामें शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ और अथर्वणकी चित्ति नाम पत्नीमें धृतव्रत, अश्वशिरा, दध्यञ्च नाम पुत्र उत्पन्न हुए । अब हमसे भृगुमुनिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥४२॥ हे महाभाग ! ख्यातिनाम भार्यामें भृगुजीने धाता-विधाता नाम दो पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रील-

* एक थोड़े पढ़े लिखे पंडित थे, परंतु बात बनानेमें पहिले सिरके चतुर थे, वे एक दिन किसी शास्त्री पंडितके स्थानपर गये, शास्त्रीजीने बड़े आदरसत्कार से अपने निकट बैठाकर पूछा कि, आप कहांसे आये हे ? उक्त पंडितजी बोले कि, श्रीगंगाजीके किनारे मधुसूदनजीके मंदिरमें रामायणकी कथा होती है वहां गया था । शास्त्रीजी बोले कि, कौनसा काण्ड होता है, और अज क्या कथा हुई थी ? पंडितजी बोले कि लंकाकांड होता है आज पंडितजीने राम-राभणका युद्ध इस प्रकार वर्णन किया कि, सब श्रोता पंडितजी को वारंवार धन्यवाद देते थे । शास्त्रीजी बोले कि, आप पंडित होकर अशुद्ध शब्द बोलते हो (राभण) शब्द नहीं हैं, रावण है, पंडितजी बोले कि, कुम्भकर्ण, विभीषण, दोनों के नाम में तो दूसरा अक्षर (भ) है फिर रावणमें भी दूसरा अक्षर (भ) अवश्य होना चाहिये, क्योंकि वह तो सबसे बड़ा था, उसके नाम में दूसरा अक्षर (व) किसी प्रकार नहीं बन सकता, वरन् इसी की साक्षी में किसी महात्माने यह श्लोक भी कहा है—

श्लोक —भकारः कुम्भकर्णेऽस्ति भकारोऽस्ति विभीषणे । तयोर्भ्रातरि ज्येष्ठे च भकारो न कथं भवेत ।

क्ष्मीजीको उत्पन्न की ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति, नियति दोनों पुत्री धाता, विधाताको विवाह दीं। धाताके आयति नाम पत्नीमें मृकण्ड नाम सुत हुआ और विधाताके नियति नाम भार्यामें प्राण नाम पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥ और मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राणके सुत वेदशिरा मुनि हुए और भृगुके पुत्र भगवान् उशना नामक शुक्राचार्य्य हुए ॥ ४५ ॥ हे विदुर ! मुनीश्वरोंने सृष्टि रचकर इस प्रकार लोकोंकी वृद्धि की ऐसे कर्दमकन्याकी संतति मैंने तुम्हारे प्रति कही है यह श्रद्धासे सुननेवालोंके पापोंको नष्ट करती है ॥ ४६ ॥

आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥ मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥ त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ ४६ ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ ४७ ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ ४८ ॥ श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ ४९ ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥ शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ ५० ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥ ५१ ॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसूति नाम कन्याके सङ्ग विवाह किया॥४७॥और उसमें निर्मल कांतिवाली चन्द्रवदनी सोलह पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे तेरह तो धर्मको विवाह दीं, एक अग्निको एक पितृगणोंको और एक संसारनाशक शिवजीको विवाह दी ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति ॥ ४९ ॥ बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति ये तेरह धर्मकी दारा हुईं। श्रद्धाने शुभ नाम पुत्र उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय,शांतिने सुख, तुष्टिने मुद और पुष्टिने गर्व पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धिने अर्थ ॥ ५१ ॥ मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, ह्रीने प्रश्रयको उत्पन्न किया और मूर्तिके यहां सब गुणोंके उत्पादक नर-नारायण नाम

दो ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके जन्मके समय यह विश्व परमानंदित हुआ ॥ ५१ ॥ और मन, दशों दिशा, वायु, सरित् और सब पर्वत अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ और स्वर्गमें दुन्दुभि आदि उत्तम-उत्तम बाजे बजने लगे; देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, ऋषीश्वर प्रसन्न हो स्तुति करने लगे, गन्धर्व, किन्नर मधुर-मधुर स्वरोंसे गाने लगे॥ ५३॥ देवांगना नृत्य करने लगीं, ब्रह्मादिक देवता स्तोत्र पढ़-पढ़ स्तुति करने लगे, इस प्रकार सब संसारमें परम मङ्गल हो गया ॥५४॥ सब देवता कहने लगे कि जो भगवान् अपनी निज मायासे आकाशरूपकी नाईं अपनी आत्माको प्रकाश करनेके लिये आज धर्मके मन्दिरमें आद्यऋषि मूर्तिरूप हो प्रगट हुए, उन आद्यपुरुष महात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥

मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ५३ ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत् परममङ्गलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५५ ॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ॥ दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् ॥ ५६ ॥ एवं सुरगणै-स्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥ ५७ ॥ ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहा-गतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५८ ॥ स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ५९ ॥

॥ ५५ ॥ अपने विद्याके बलसे देवता जिनके तत्त्वका अनुमान करते हैं, वे भगवान् जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये तत्त्वगुणसे रचित लक्ष्मीके निवासभूत कमलकी भी तिरस्कारकर्ता अपने जनोंके सम्मुख करुणा युक्त दृष्टिसे देखो॥५६॥ हे विदुर! इस प्रकार जब देवता-ओंने प्रार्थना की, तब भगवान् नर-नारायण देवताओंकी ओर निहार अपनी पूजा अंगीकार कर गंधमादन पर्वतको चले गये ॥ ५७ ॥ सो ये उन्हीं दोनोंने भूमिका भार उतारनेके लिये यहां अवतार धारण किया है। इनमें नरके अंशसे तो कुरुकुलमें अर्जुन उत्पन्न हुआ और साक्षात् नारायणने यदुकुलमें श्रीकृष्णरूप धारण किया ॥ ५८ ॥ अग्निकी पत्नी स्वाहाने महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न किये पावक,

पवमान, शुचि ये उनके नाम हैं ॥ ५९ ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस (४५) अग्नि उत्पन्न हुए, इस प्रकार प्रपिता, पितामह, पिता पुत्र मिलकर उनचास अग्नि (४९) हुए ॥६०॥ वैदिक कर्मरूप यज्ञमें ब्राह्मण जिनका नाम ले लेकर अग्निदेवताको आहुति देते हैं वे सब अग्नि ये हैं ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण हैं, इनमें कोई साग्नि हैं और कोई अनग्नि हैं। इन सबकी पत्नी केवल एक दक्ष पुत्री स्वधा है ॥ ६२ ॥ पितरोंसे स्वधामें दो कन्या उत्पन्न हुई वयुना और धारिणी, ये दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान, विज्ञानमें परायण हुईं ॥ ६३ ॥ शिवजीकी पत्नी सती, शिवजीकी सेवा करने लगी, परन्तु सतीको आपके समान गुणवान्, शीलवान् पुत्र प्राप्त

तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ त एवैकोनपञ्चाशत् साकं पितृपितामहैः ॥ ६० ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६२ ॥ तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे॥६३॥ भवस्य पत्नीतु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६४ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थस्कन्धे मनुकन्यान्वये नरनारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत् कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥

नहीं हुआ ॥ ६४ ॥ दक्षप्रजापतिने शिवजीको सती विवाही; परन्तु अपने समान नहीं समझा और शिवजीके प्रतिकूल चला, तब सतीने रोष करके युवा अवस्था न देखी, छोटी ही अवस्थामें योगाभ्यास करके निर्मल बुद्धिसे अपनी देहका त्याग कर दिया ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मनुकन्यान्वये नर-नारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—कहौं द्वितीय अध्यायमें, प्रजापतिनको यज्ञ । कियो वैर जिमि शंभुसे, दक्षप्रजापति अज्ञ ॥ सुनि मित्रासुतके वचन, विदुर परमसुख पाय । जोरि युगल करकंज पुनि, विनय करत परि पाय॥ विदुरजी बोले कि, शीलवानोंमें शीलसिंधु शिवसे दुहितृवत्सल दक्षप्रजापतिने किस लिये

विद्वेष किया और अपनी कन्या सतीका अनादर क्यों किया ॥१॥ शान्तिरूप, चराचरके स्वामी, द्वेष रहित, जगत् पूज्य, त्रिलोकीनाथ, आत्माराम, सुराधीश ऐसे भोलेभाले, शिवसे दक्षने क्यों विरोध किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जामाता और ससुरमें ऐसा भारी वैर कैसे पड़ गया ? जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको भी त्याग दिया, यह सब कथा भिन्न-भिन्न कर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि विश्व रचनेवाले मरीचिके यज्ञमें वसिष्ठ नारदादि बड़े-बड़े ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने-अपने अनुगामियोंसहित देवगण मुनि और अग्नि

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत्॥२॥एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् जामातुः श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजेदुस्त्यजान् सती॥३॥मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताःपरमर्षयः ॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिञ्चिं शर्वं च तद्भासाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधुसत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥

सब इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ उस महासभाका अधिकार अपने तेजकी कांतिसे दूर करते हुए सूर्यके समान प्रकाशवान् दक्षको आता देखकर ॥ ५ ॥ सब सभासद अपने-अपने स्थानोंसे अग्निसमेत उठ खड़े हुए, क्योंकि उसके तेजके प्रभावसे सबके हृदयमें घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी, परन्तु ब्रह्मा और महादेवजी आसनसे न उठे ॥ ६ ॥ और सब सभासदोंने दक्षप्रजापतिका अत्यन्त आदर-सम्मान किया, तब

---

१. शंका–शास्त्रोंमें लिखा है कि श्वशुरको पिताके समान मानना चाहिये, ऐसी मर्यादाके रक्षण करनेवाले महादेवजी ब्रह्माकी सभामें दक्ष जो सतीके पिता थे और शिवजीके श्वशुर थे उनको देखकर अपने आसनसे क्यों नहीं उठे ? यह बड़ी शंका है ।

उत्तर–जब बड़ा राज्य दक्ष प्रजापतिको प्राप्त हुआ तब दक्ष सब सज्जन महात्माओंकी निन्दा रात दिन करने लगा और बड़ा अभिमान हो गया, तब सब सज्जन महात्माओंने दक्षका अभिमान नाश करनेके लिये शिवजीकी प्रार्थना की । तब शिवजी दक्षका मान भंग करनेके लिये बीज उत्पत्ति करनेके वास्ते सभामें आये, उस समय दक्षको देखकर शिवजी नहीं उठे, शिवजीने विचार किया कि उसको देखकर हमको अपने आसनसे उठना चाहिये हम नहीं उठेंगे तो यह महाअभिमानी हमको क्रोधसे कटु वचन कहेगा तब उसके अभिमानका हम नाश करेंगे ॥

दक्ष लोकगुरु ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसन पर बैठ गया॥ ७॥अपने आनेसे पहले शिवको बैठा देखा और अपने मनमें समझा कि शंकरने मेरा अनादर किया, क्योंकि मुझको देखकर न उठे, इस बातको न सह सका और कोपदृष्टिसे तिरछे नेत्र कर बोला ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मऋषियो ! हे देवताओ ! ! हे अग्निसहित सब जनो !!! सुनो, महात्मापुरुषोंका जो उत्तमाचार है वह कहता हूँ, कुछ अज्ञान और ईर्ष्यासे नहीं कहता ॥ ९ ॥ शिवको कुछ लज्जा नहीं, यह लोकपालोंके यशका नाश करनेवाला है, इस अभिमानीने अपने अभिमानसे सज्जनोंके चलाये हुए मार्ग और आचरणोंको दूषित कर दिया ॥ १० ॥ यह मेरा जामाता मेरे शिष्यभावको प्राप्त है, ब्राह्मण और

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत् तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाशुचयेऽमानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥

अग्निके सम्मुख, गायत्रीसम मेरी पुत्रीका साधुकी नाईं पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और इस मर्कट सम नेत्रवालेने मेरी मृगछौनासी नेत्रवाली भोली-भाली कन्याका पाणिग्रहण करके इसको उचित था कि औरोंके समान उठकर मुझको प्रणाम करता, परन्तु इसने वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ इसीलिये मैं अपनी कन्याका इस क्रिया रहित, अशुचि, अनाचारी, महाअभिमानी, मर्य्यादाहीनके साथ विवाह करना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने अपनी मूर्खतासे बिना इच्छाके बेटी विवाह दी, जैसे कोई शूद्रको वेद लक्षण सुन्दरवाणी सिखलाता है ॥ १३ ॥ यह घोर मर्घटका निवासी, भूत, प्रेत, पिशाचोंके संग रहनेवाला उन्मत्तके तुल्य, नंगा, शिरके बाल खोले, कभी

हँसता कभी रोता फिरता है * ॥१४॥ चिताके भस्मको सदा शरीरमें लगाता है, प्रेतोंके मुँडोंकी माला सदा कण्ठमें पहनता है, हड्डियोंके गहने पहने श्मशानमें विचरता है। नाम तो लोगोंने इसका शिव रख दिया है, परंतु निरा अमंगलकी खानि है और उन्मत्त लोगोंसे इसकी प्रीति है, प्रमथ भूतोंका पति यह है इस भूतनाथ, भ्रष्टाचरण, दुष्टहृदय, कठोरचित्त शिवको ब्रह्माके कहनेसे अपनी महासीधी-साधी सती इस अज्ञानीको विवाह दी। मुझे यह बड़ा भारी खेद है ॥ १५ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने अप्रतिकूल बैठे शिवकी इस प्रकार निन्दा करके वह क्रोधी दक्ष जलका आचमन कर शिवको शाप देने लगा ॥ १७ ॥ कि यह शिव देवताओंके यज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु,

चिताभस्मकृतस्नानःप्रेतस्रङ्न्रस्थिभूषणः॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः॥पतिं प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्म नाम् ॥१५॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥ अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ ॥ २० ॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१ ॥

देवताओंके संगमें भागका अधिकारी न हो, क्योंकि देवगणोंमें यह अधम है ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित्! सब सभासदोंमें जो मुखिया थे उन्होंने भी अत्यन्त निषेध किया, तो भी दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर, वहांसे उठ अपने स्थानको चला गया ॥ १९ ॥ शिवजीके गणोंमें प्रधान नंदीश्वरने जब शिवके शाप देनेका समाचार सुना, उस समय महारोषमें भर लाल-लाल नेत्र कर महादारुण शाप दिया और जिन ब्राह्मणोंने शाप देनेके समय दक्षकी बड़ाई की थी, उनको भी शाप दिया ॥२०॥ श्रीभगवान् महादेवजी समदर्शी हैं, किसीसे द्रोह नहीं

* कवित–वेष जगसे निराला पिये भांग भर प्याला, रहै मतवाला साथी भूतन बनाये हैं। गल सोहे मुंडमाला कर डमरू विशाला, सदा ओढें मृगछाला चिता, भस्म तनु हैं ॥ एक लाये मतबैल पाला जाते होत प्रतिपाला नाम धरो है अकाला जटा शिर बढ़ाये हैं। ऐसा हृदयका काला कहीं नहीं देखा भाला, वर नेत्रों में ज्वाला व्याल तनु लिपटाये हैं ॥

रखते, ऐसे प्रभुसे द्रोह करके अज्ञानी पृथक् दृष्टिवाला तत्त्वसे विमुख हो ॥ २१ ॥ जो कपटकर्ममें परम प्रवीण गृहोंमें संसारके सुखकी इच्छासे आसक्त हैं, वेदवादियोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य धर्म मानते हैं ॥२२॥ देहको जीवको ईश्वर माननेवाली बुद्धिसे पशुवत् ईश्वर की गति भूल स्त्रीकामी दक्षका थोड़े ही समयमें बकरेसा मुख हो जाय ॥ २३ ॥ विद्या, बुद्धि, कर्ममयी अविद्यामें यह जड़ हो और यहां जो लोग शिवजीका अपमान करनेवाले हैं और जो उनके साथी हैं, वे सदा संसारमें जन्मते-मरते रहें ॥ २४ ॥ जिसकी मीठी वाणी पुष्पके समान खिली हुई बहुत सुगंध देनेवाली केवल चित्तको प्रसन्न करनेवाली है ऐसी वेदवाणीके मोह करनेवाले मधुरवचनसे

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥२२॥ बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥२३॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥२४॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः समुह्यन्तु हरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥ २६ ॥ तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥ भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ॥ पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥

मूर्खोंके मन मथित हो रहे हैं, वे हरद्वेषी सदा मोहको प्राप्त हों ॥ २५ ॥ और ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्य विचार रहित हों, सबके घर भोजन करें; केवल उदरपोषणके ही लिये विद्या, तप, व्रत करें और धन शरीरके सुखके लिये संसारमें याचक बनें और घर-घर मांगते फिरें ॥ २६ ॥ द्विजकुलको नंदीने जब इस प्रकार शाप दिया, यह शाप सुन भृगुजीसे न रहा गया और महाकठोर शाप दिया ॥२७॥ जो कोई शिवका व्रत धारण करेगा और उनका अनुवर्ती होकर चलेगा, वह पाखंडी हो सत्शास्त्रोंमें भ्रष्ट होगा ॥ २८ ॥ नष्टाचरण, मूढ़मति, जटाभस्मधारी, हड्डियोंकी माला पहने, शिवकी दीक्षामें वे लोग प्रवेश करें, जिन्होंने मद्य मांस ही देवताओंके समान पूज्यवर मान रखा है ॥२९॥

ब्रह्म ब्राह्मणोंकी जो तुम निंदा करते हो, यह पुरुषोंकी मर्यादा स्थापक हैं, इसलिये जो शिवके गण हैं, वे सब पाखण्डके आश्रित होंगे ॥३०॥ सनातनधर्म्मका श्रेष्ठ मार्ग लोगोंका यही है, ऋषीश्वर, मुनीश्वर इसीपर आरूढ़ थे, क्योंकि वेदमार्ग सदा कल्याणदायक है, इसमें भगवान् वासुदेव प्रमाण हैं ॥ ३१ ॥ वह ब्रह्म परमशुद्ध महात्माजनोंका सनातन मार्ग है, उनकी तुम निंदा करते हो, इसलिये पाखण्डी हो और वहाँ रहो जहाँ भूतेश्वर तुम्हारे देवता हैं ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भृगुजीके मुखसे इस प्रकारका शाप सुना, तब महादेव कुछ विमनसे होकर अपने गणोंसमेत वहांसे उठकर कैलासको चले गये॥३३॥ हे विदुरजी ! उन प्रजापति विश्व रचनेवालोंने सहस्र वर्षतक यज्ञ

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ॥ सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥ ३० ॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥ ३१ ॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्यैवं ददतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥ तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वासं यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयाऽन्विता ॥ विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे दक्षशापोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाऽभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ २ ॥

करके सब पूजनीय विष्णु भगवान्का पूजन किया ॥ ३४ ॥ फिर तीर्थ गंगा-यमुनाके संगममें यज्ञान्त स्नान कर, निर्मल चित्त हो अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषटीकायां दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ दोहा—सती तृतीय अध्यायमें, सुनेउ पितागृह यज्ञ । बिन न्यौते लागी चलन, बर्जेउ शिव सर्वज्ञ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सदा इसी प्रकार वैरभाव करते महादेवजीको और दक्षको महान् काल व्यतीत हो गया ॥ १ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने दक्षको प्रजापतियोंका अधीश बनाना

नियत किया तो उसको बड़ा गर्व हुआ ॥ २ ॥ तब दक्षने वाजपेययज्ञ कर अपने अभिमानसे ब्रह्मिष्ठोंका निरादर कर सब यज्ञोंमें उत्तम बृहस्पतिसव नामक यज्ञका आरंभ किया ॥३॥ उस समय यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता, सब अपनी-अपनी भार्याओंको शृंगार करा-कर अपने-अपने संग लाये ॥ ४ ॥ आकाशमें देवगणोंको परस्पर बातें करते जाते देख उनके मुखसे सती दाक्षायणीने अपने पिताके यज्ञका महोत्सव सुना ॥ ५ ॥ और सब दिशाओंसे देवताओंकी स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंको लिये विमानोंमें बैठी पदक कण्ठमें पहने अमूल्य वस्त्र धारण किये जा रही थीं ॥ ६ ॥ अपने आश्रमके निकट चञ्चलाक्षी उज्ज्वल रत्नजटित कुण्डलोंसे देदीप्यमान सुन्दर-सुन्दर

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ॥ बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ ५ ॥ व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ॥८॥ तस्मिन् भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन् भवताऽभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥

युवतियोंको निहार उत्कंठित हो अपने पति महादेवसे कहा ॥७॥ सती बोली कि, हे नाथ ! आपके श्वशुर दक्षप्रजापतिके यहां यज्ञ महोत्सवका आरंभ है, हे वाम ! जो आपकी इच्छा हो तो मुझको लेकर आप भी वहां चलिये, अभी वहां यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ है, क्योंकि अभी सब देवता बराबर चले जाते हैं ॥८॥ उस यज्ञमें अपने पतियों समेत मेरी बहिनें भी निश्चय सुहृदोंके देखनेको और उनसे मिलनेको जायँगी, इससे मेरी भी अभिलाषा है कि आपके साथ चलकर मैं भी अपने मातापितासे मिलूँ और उनके दिये वस्त्र-आभूषण ले अपने मनकी आशा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे प्राणपते ! मुझको निश्चय है कि अपने भर्ताओं समेत मेरी बहिनें पिताकी बहिनें माताकी बहिनें अवश्य

आयेंगी, स्नेह रखनेवाली कोमल चित्तवाली अपनी माताको देखूंगी, क्योंकि मुझको बहुत कालसे उनके देखनेकी उत्कण्ठा है और महाऋषियोंने जो उत्तम यज्ञ आरंभ किया है, उसके देखनेकी भी लालसा है ॥ १० ॥ यद्यपि यह आश्चर्यमय आपकी मायासे निर्मित, त्रिगुणात्मका आपमें जगत् प्रकाश कर रहा है इस लिये आपको तो इस बातका कुछ कौतूहल नहीं, परन्तु मैं जो दीन स्त्री जाति तुम्हारे तत्त्वको नहीं जान सकती, ऐसी मैं अबला अपनी जन्मभूमिको देखना चाहती हूं, अतः हे नाथ। आप साथ चलिये ॥ ११ ॥ हे संसारनिवर्तक ! हे शितिकण्ठ !! और भी तो स्त्रियां पतियोंके संग जा रही हैं, उनको देखो तो कैसे-कैसे मनोहर हंसवत् श्वेतविमानों पर

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ॥ अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छितं कर्तुं भवान् कारुणिको बतार्हति ॥ त्वयाऽऽत्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून् यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥

बैठी हुई मेरे पिताके घरको जाती हैं, जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है ॥ १२ ॥ मरणधर्मरहित ! पिताके घर कौतुक सुनकर बेटीका चित्त किस प्रकार चलायमान न होगा; पति, गुरु, पिता, मित्र, सुहृद, सम्बन्धी इनके घर तो विना बुलाये भी जानेमें कुछ दोष नहीं है ॥ ॥ १३ ॥ हे देव ! मेरे ऊपर आप कृपा करके यह मेरी मनोवांछा पूरी करो, आप परमज्ञानी हैं, तो भी मुझपर अनुग्रह करके मुझे दिव्यचक्षु द्वारा आपने अपने अर्द्धांगमें धारण किया है, इस लिये मैं आपसे वारंवार विनय करती हूँ, कि इस समय मुझपर अनुग्रह करना ही उचित है ॥१४॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, जब इस प्रकार सतीने शिवजीसे विनय की, तब विश्व रचनेवालोंके सन्मुख दक्षने जो मर्मभेदी कटुवचन-

रूपी बाण मारे थे, उनका स्मरण कर सबके सुहृद महादेवजीने अपनी प्रिया सतीसे हँसकर कहा ॥१९॥ शिवजी बोले कि हे शोभने ! यह तेरा कहना बहुत ठीक है कि विना बुलाये बन्धुओंके घर जाय, परन्तु कब ? कि जब जो अपने मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करे तो जानेमें कुछ अपराध नहीं ॥१६॥ और जब विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, कुल ये छः जो सत्पुरुषोंके गुण हैं, उनके द्वारा जब असत्तम अतिधूर्तोंसे प्रेरित होते हैं तब उनकी बुद्धि विनष्ट हो जाती है और अभिमान बढ़ जाता है, उस समय मदांध हो महात्माजनोंके

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ॥ स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतद्दृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥ येऽभ्यागतान् वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथाऽरिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥ १९ ॥

पराक्रमको नहीं देखते ॥ १७ ॥ जिनके चित्त ऐसे असावधान हैं, उन असज्जनोंके घरकी ओरको दृष्टि उठाकर देखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि वह कुटिलबुद्धि अपने घर आये हुओंको महाक्रोधसे भ्रुकुटि चढ़ाकर तिरछी दृष्टिसे देखा करते हैं ॥१८॥ ऐसे अभिमानी कुटिल कुटुम्बियोंके दुर्वाक्योंसे जैसी कठिन पीड़ा होती है, ऐसी वैरियोंके शराघातसे शरीर छिन्न-भिन्न भी हो गया तो भी नहीं होती, क्योंकि जिसके हृदयको शर फाड़कर पार भी निकल जाय उसको भी किसी समय निद्रा आ जाती है, परन्तु दुष्टसंबन्धियोंके दुर्वा-

१. शंका–सतीसे शिवजीने कहा कि जो प्राणी अभिमानवश अभ्यागतोंसे द्रोह करता है उसका त्याग करना ही उचित है और उससे बोलना बंद करके सब कामोंमें उस दुष्टको त्याग देना चाहिये, जिन महात्मा और अभ्यागतोंका ऐसा उत्तम माहात्म्य है, वे अभ्यागत कौनसे हैं ?

उत्तर–जो प्राणी कभी भी देहके सुखदुःखको नहीं जानते और भजन करने में अत्यंत चतुर हैं ऐसे पुरुषोंकी अभ्यागत संज्ञा है ये ही अभ्यागत लोक त्रिभुवनको पवित्र करते हैं ।

क्योंसे जिसका मर्मस्थान वेधा जाता है, वह दग्धहृदय दिन-रात दहता ही रहता है ॥ १९ ॥ हे शुभानने ! यह मैं भलीभांति जानता हूँ, कि तुम दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंमें सबसे अधिक प्यारी हो, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं, तो भी उन पिता से तुमको आदर-सम्मान प्राप्त न होगा, क्योंकि मेरे नामसे दक्षके हृदयमें ताप आता है ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्ति और यश देखकर दुष्टजन उनकी श्लाघा और उच्चपदवीको पहुँच नहीं सकते, वे पापीहृदयवाले कुजन अपने मनमें जलकर उनसे द्वेष करते हैं, जैसे राक्षस हरिसे वैर करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! जो सज्जन पुरुष आपसे बड़ेको देखकर परस्पर उठ खड़े होते हैं, प्रणाम करते हैं, दण्डवत करते हैं यह मर्यादा

व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियाऽऽत्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात् कः परितप्यते यतः॥२०॥पापच्यमानेन हृदाऽऽतुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥ २१ ॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादिनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥ २२ ॥ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे मनसा विधीयते ॥ २३ ॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥

परमोत्तम है । वे लोग अपने अन्तःकरणसे सर्वान्तर्यामी, परमपुरुष, गुहाशय, ईश्वरका मान करते हैं, कुछ देहाभिमानियोंको नहीं करते सो हम उस समय करते हैं॥२२॥विशुद्धसत्त्व वासुदेव शब्द है, आवरणरहित पुरुष वासुदेव प्रकाशता है, इससे सब जीवमात्रमें शुद्धसत्त्व भगवान् वासुदेव विराजमान हैं, इससे ऐसे अन्तःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इंद्रियोंसे अगोचर हैं, मैं उनको प्रणाम द्वारा सेवा करता हूँ ॥ २३ ॥ हे वरारोहे ! यद्यपि दक्षप्रजापति तुम्हारा देहकर्ता पिता है, परंतु तो भी मेरा द्रोही है, तुमको उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसके अनुचर भी मुझसे वैर रखते हैं,सब देवता जानते हैं कि मेरा कुछ अपराध नहीं था,फिर भी दक्षने विश्व रचने-

वाले प्रजापतियोंके यज्ञमें मुझको दुर्वचन कहकर मेरा अपमान किया ॥ २४ ॥ अतः जो मेरे वचनका उल्लंघन कर दक्षके घर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा; क्योंकि अतिप्रशंसितका अपने सुजनोंसे जो तिरस्कार हो तो मरणके तुल्य होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां उमाशिवसंवादो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ दोहा–हर तज चतुराध्यायमें, सती गई पितु गेह। शम्भु भाग देखेउ नहीं, तुरत उठी जर देह ॥ मैत्रेयजी बोले कि, शिवजी तो यह बात कहकर चुप हो गये, परन्तु मनमें कहने लगे कि सतीके तनुका दोनों ओरसे विनाश हुआ और सती पिताके देखनेकी इच्छा कर महादेवके भयसे कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात् पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० महापु० चतुर्थ० उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलातिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥२॥ ततो विनिश्श्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात् स्त्रैणविमूढधीर्गृहान् प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात् सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥ ४ ॥ तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥ ५ ॥

आती थी;दुबिधामें मन था ॥१॥ सुहृदोंके दर्शनकी इच्छाके नाशसे विमन हो प्रेमके वशीभूत हो रोने लगी और आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। सती क्रोधमें आकर कांपने लगी और ऐसी विह्वल हुई कि उनके समान दूसरा कोई नहीं हो; इस प्रकार भवने भवानीको देखा मानो अभी भस्म कर देगी ॥ २ ॥ फिर वहांसे कठिन श्वासा लेती घरसे निकल, शिवको त्याग शोक और क्रोधसे व्यथित हो हृदयमें दुःख मान, स्त्रीस्वभावसे मूढ़मति सती कि जिनको महात्माजनोंके प्यारे श्री विश्वनाथ शिवने प्रेमसे अपना आधा अङ्ग बांट दिया ऐसे भोलेनाथका साथ छोड़ पिताके घरको चल दीं ॥ ३ ॥ तब सतीको शिवके गण नंदीवृषपर चढ़ाकर, मैना, गेंद, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र,

पंखा, माला आदि लिये गाते और दुंदुभी, शंख, वीणा, बांसुरी बजाते प्रसन्न होकर चले ॥ ४ ॥ ५ ॥ चारों ओरसे ब्राह्मण वेदध्वनि करके यज्ञसम्बन्धी पशुको मार रहे हैं। ब्राह्मण पूजन कर रहे हैं, चारों ओर देवता विराजमान हैं, मृत्तिका, काष्ठ, लोहा, सुवर्ण, कुश और चर्म इनके बनाये हुए पात्र जहां यज्ञशालामें धरे थे उस यज्ञमें सती पहुँची ॥ ६ ॥ परन्तु यज्ञकर्ता दक्षके भयसे माता और भगिनीके अतिरिक्त और किसी देव, मुनि, नगरनिवासीने कुशल क्षेम न पूछा और उसकी ओर न देखा, क्योंकि उसके पिताने उसका सम्मान नहीं किया, केवल एक माता और बहिन तो स्नेहके आंसू भर गद्गद कण्ठसे प्रीतिसहित आनंदसे मिलीं ॥७॥ पिताके अनादर और अवज्ञासे

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥ ६ ॥ तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सौदर्यसंप्रश्न समर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान् निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥

माता और मौसियोंके उत्तम आसनका देना और निरादरसे शुश्रूषाका करना सतीने कुछ स्वीकार न किया और बहिनोंने कुछ रीति-प्रीतिकी बातें कीं, परन्तु सतीने उनका कुछ ध्यान न किया ॥८॥ क्योंकि उस यज्ञमें कहीं शिवजीका भाग नहीं देखा, तो समझा कि विश्वेश्वर विभुका विना अपराध निरादर किया, ऐसे अभिमानीके यज्ञको देख भुवनेश्वरी भवानी महाक्रोधमें भर गयीं, मानो अभी त्रिलोकीको भस्मकर देंगी, इस प्रकार यज्ञशालामें सतीने रोष कियां ॥ ९ ॥ तब भूतगण दक्षके मारनेको दौड़े, उस समय अपने तेजसे

१. शंका-दक्षने अपने यज्ञमें शिवकी निन्दा करनेके लिये क्या चिन्ह कर रक्खा था, जिस चिन्ह को देखकर सती भस्म हो गयी ?

उत्तर-दक्षने अपनी यज्ञशालाके एक खम्भेमें अपने हाथसे ऐसा लिखकर लगा दिया था कि सबके लिये सूचना की जाती है कि इस हमारे यज्ञमें जो कोई प्राणी शिवका नाम मुखसे उच्चारण करेगा वह प्राणी उसी समय-

शिवगणोंको रोककर शिवद्रोही कर्ममार्ग करनेसे जिसको अभिमान हुआ, उस अभिमानी और अज्ञानी दक्षको सब सभाके सम्मुख गम्भीर-वाणीसे धिक्कार देकर ॥१०॥ सती बोली–सब शरीरधारियोंके प्रिय आत्मा, अचिंत्यरूप, चितानन्द ऐसे भोलेभाले शिवजी, न तो कोई इनसे बड़ा न किसीके शत्रु, सबके आत्मा, उनसे तेरे विना कौन शत्रुता करे ? ॥ ११ ॥ हे द्विज! औरोंके गुणोंमें साधु दोष ग्रहण नहीं करते हैं, तुम सरीखे निंदक खोटे मनुष्य दूसरेके गुणोंमें दोषोंको ही ग्रहण करते हैं, वे अधम हैं और महापुरुषगण परायेके थोड़े गुणोंको बहुत करते हैं और मध्यस्थ पुरुष अपने ज्ञानसे यथावस्थित गुणदोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं, वे केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, दोषोंपर

श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥ दोषान् परेषां हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु ॥ सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्त तेजस्सु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यदद्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ॥ पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥

ध्यान नहीं देते, वरन् थोड़ेसे गुणोंको अधिक करके मानते हैं, अरे शठ ! ऐसे सज्जन पुरुषोंका तूने अपमान किया है ॥ १२ ॥ शरीरको ही आत्मा माननेवाले नीचलोग सदा ईर्षासे महत्पुरुषोंकी निंदा करते, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, क्योंकि महात्माजनोंके चरणारविन्दोंकी रजसे और प्रतापसे शठ और दुष्टजनोंके लिये निंदा ही शुभ है ॥ १३ ॥ शिव यह जो दो अक्षरका नाम है, जो कोई किसी प्रकारसे एक बार भी यह नाम अपने मुखसे लेता है, उसके पापोंका तत्क्षण ही विनाश हो जाता है, ऐसे आनन्दस्वरूप जिनकी

–यज्ञशालासे बाहर निकाल दिया जायगा जो कदापि हमारा पिता ब्रह्मा भी इस यज्ञमें शिवका नाम लेगा तो वह भी यज्ञसे निकाल दिया जायगा और दूसरे प्राणीकी क्या सामर्थ्य है ? भावीके वशीभूत होकर सब मुनि भी दक्षके त्राससे डर गये, इसीलिये दक्षको उत्तर नहीं दिया कि यह दुष्ट क्या अन्याय करता है जो खंभेमें शंकरकी ऐसा निंदा लिखी है उसी निंदाको खंभेमें लिखी हुई देखकर सतीको क्रोध हुआ और दक्षके यज्ञकी अग्निमें जलकर भस्म हो गयी ।

आज्ञा संसारमें कोई उल्लंघन न कर सके, तू ऐसे सर्वशक्तिमान् शिवजीका द्रोह करता है, तेरा कल्याण कभी न होगा ॥ १४ ॥ अरे ? जिन कैलासपति महादेवजीके पदपंकजकी रज ब्रह्मरजसे मिली हुई मकरंदकी इच्छावालोंके मनरूपी भ्रमरोंसे सेवित सब लोकोंके मनकी कामना पूर्ण करनेवाले विश्वबन्धुसे तूने द्वेष किया है ॥ १५॥ जिन शिवको तू अशिव कहता है, क्या तेरे अतिरिक्त ब्रह्मादिक उनको नहीं जानते ! श्मशानमें जटा फैलाये, चिताभस्म शरीरमें लगाये, मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण किये, भूतगणोंको साथ लिये, पिशाचोंमें वास करते हैं, तो भी उनके चरणकमलकी रज ब्रह्मादिक अपने मस्तकपर धरते हैं ॥ १६ ॥ धर्मके रक्षक ईशकी निरंकुश होकर जहां लोक

यत्पादपद्मं महतां मनोलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥ १५ ॥ किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाश्श्मशाने॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत् पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥ १६ ॥ कर्णौ पिधाय निरियाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥ १७ ॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥ १८ ॥ न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ॥ यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत् स्थितः ॥ १९ ॥

निंदा करते हों यदि वहां अपनी कुछ पार न बसाये, तो कान बंद करके वहांसे उठ जाय और जो निंदकके मारनेका सामर्थ्य हो, तो जैसे बने वैसे उसकी जिह्वा काटकर खण्डखण्ड कर डाले, फिर अंतको अपने प्राण त्याग कर दे यह सनातन धर्म है ॥ १७ ॥ हे नीलकण्ठके निंदक ! तेरे शरीरसे उत्पन्न जो यह मेरा देह है, इस देहको नहीं रखूंगी,क्योंकि जो कोई भूलसे अशुद्ध अन्नका भोजन कर ले,वह वमन करनेसे ही शुद्ध होता है॥१८॥अपने आत्मस्वरूपमें रत रहनेवाले महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें प्रीति नहीं करती, जैसे देवता और मनुष्योंकी गति अलग-अलग है, एक संग नहीं हो सकती इसलिये प्रवृत्तिमार्ग हो अथवा निवृत्ति मार्ग हो, परन्तु अपने धर्ममें स्थित

होकर किसीकी निंदा करनी उचित नहीं ॥१९॥ मुनियोंने दोनों मार्ग सत्य कहे हैं, प्रवृत्ति कर्ममें अग्निहोत्रादिक करना चाहिये और निवृत्तिकर्ममें शम, दमादि, सत्य भाषण, राग और वैराग्य, इन दोनों चिह्नोंका आश्रय करना चाहिये, यह सब वेदने बहुत विचार करके कहा है और जो मनुष्य इन दोनों कर्मोंको एक ही समय करे तो यह परस्पर विरोधी हो जाते हैं और शिव तो परब्रह्म ईश्वर हैं, वे चाहे ईश्वरकी आज्ञा मानें, चाहे न मानें उसपर वेदकी आज्ञा नहीं है॥२०॥ हे पितः ! जो पदवी हमको प्राप्त है, वह तुमको कभी नहीं मिल सकती,क्योंकि हमारी इच्छामात्रसे अणिमा महिमादिक सिद्धियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिनका बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, जो अन्न

कर्म प्रवृतं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ॥ विरोधि तद्योगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥ २० ॥ मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥ २१ ॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत् कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२ ॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥२४॥

खानेवाले प्राणपोषी,यज्ञशालामें हवन कर धूममार्ग करके जो सेवन करते हैं उनको प्राप्त नहीं होती, हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रकट हैं, अवधूत लोग जिनकी सेवा करते हैं॥२१॥ अरे शिव-अपराधी ! तुमसे जो यह मेरा देह उत्पन्न हुआ है इस देहसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं । तुझ सरीखे कुमति दुर्जनके नामसे मुझे लाज आती है, उसके जन्मको धिक्कार है,जो महात्माओंका निंदक है ॥२२॥ भगवान् शिव वृषध्वज हंसीसे भी कभी पुकारेंगे, हे दक्षसुते । उस समय मुझे महाक्लेश होगा और मुसकान मान तज लज्जित होना पड़ेगा, इसलिये वह अधम शरीर जो तुझसे उत्पन्न हुआ है उसका मैं अभी त्याग करूंगी ॥२३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे शत्रुहन् ! इस प्रकारकी

बातें सती दक्षसे कह मौन हो उत्तरकी ओरको मुख करके बैठ गयीं और आचमन कर, पीतवसन धार, नेत्र मूंदकर योगमार्गका साधन करने लगीं ॥ २४ ॥ और आसनको जीत प्राण, अपान पवनको नाभिचक्रमें समान कर वहांसे उदानवायुको उठा, बुद्धिके साथ हृदयमें स्थित कर अनिन्दित होकर कंठमार्गसे भ्रुकुटीके मध्यमें लाकर स्थापित किया ॥ २५ ॥ इस प्रकार महात्माजनोंके परमपूज्य सदाशिवने जिसको आदरसम्मानसे गोदीमें रखा ऐसे अपने कोमल शरीरको त्यागती हुई दक्षप्रजापति पर क्रोधकर मनस्विनी सतीने अपने शरीरमें पवन और अग्निकी धारणाको धारण किया ॥२६॥ और अपने पति जगद्गुरु शिवजीके चरणकमल का चिंतन करने लगी, उस निर्दोष

कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥ २५ ॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥ ३६ ॥ ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ॥ ददर्श देहं हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥ २७ ॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ॥ हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥ २८ ॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ॥ जहावसून् यद्विमताऽऽत्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥ ३० ॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥

सतीने औरको नहीं देखा और पापरहित समाधिके अनलसे अपने गात्रको भस्म कर दिया ॥ २७ ॥ उस समय देखनेवालोंका पृथ्वी और आकाशमें महाभयानक हाहाकार शब्द हुआ, कि खेद है कि शिवजीकी प्रिया सतीने दक्षके निरादरसे क्रोधित होकर अपना तनु त्याग दिया ॥२८॥ अहो प्रजाओ ! इस महादुरात्मा चराचरके प्रजापतिकी घोर दुष्टता तो देखो, जिसके अनादर करनेसे अनेक प्रकारके मान करने योग्य निष्पाप सतीने अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ २९ ॥ यह अत्यन्त क्रोधी, कठोर हृदय, शिवद्रोही, लोकमें बड़ी दुर्नामताको प्राप्त होगा, क्योंकि जिसने अपने अपराधसे मरती हुई पुत्रीको नहीं बचाया ॥ ३० ॥ इस प्रकार परस्पर लोग बातें कर रहे थे,

उसी समय अद्भुत सतीका देह त्याग देखकर महादेवके पार्षद आयुध ले लेकर दक्षके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ गणोंके आनेका वेग सुनकर भगवान् भृगुजी यज्ञके नाशकोंके नाशक यजुर्वेद मन्त्रकी आहुतिसे दक्षिण अग्निमें होम करने लगे॥३२॥ भृगुजीके हवन करनेसे और अपने तपके बलसे अमृत पिये हुए सहस्रों ऋभु नामक देवता बड़े वेगके साथ वेदीसे उठकर निकल पड़े ॥३३॥ वे हवनकी अधजली लकड़ी हाथमें लिये सुन्दर ब्रह्मतेजसे बढ़े हुए ऋभुनामक देव गणोंको मारने लगे, तो सब प्रमथ गुह्यक शिवके पार्षद यक्षोंसमेत भूत प्रेत सब दिशाओंको भागने लगे ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां सतीदेहत्यागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥३४॥ इति श्रीभाग० म० चतुर्थ० सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धस्सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन् दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥

दोहा—इस पञ्चम अध्यायमें, सतीमरण सुन ईश । वीरभद्र भेजो तुरत, हरो दक्षको शीश ॥ मैत्रेयजी बोले कि, दक्षप्रजापतिके निरादरसे सतीके तनुका त्याग और अपने पार्षदोंकी सेनाका ऋभु नामक देवताओंसे विद्रावण शिवजीने जो नारदके मुखसे सुना तो महादेवजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥१॥ और क्रोधित होकर दांतोंसे होठोंके पुट दबा धूर्जटि रुद्रने झट उठकर भयंकर रूपसे अट्टहासके साथ महाघोर नाद कर बिजलीकी अग्निके समान बालोंकी उग्रकांतिवाली जटाको उखाड़कर पृथ्वीपर दे मारी ॥ २ ॥ जटाको धरणीपर पटकते ही उसमेंसे एक वीरभद्रनामक पुरुष प्रकट हुआ । महादेहधारी, स्वर्गतक लम्बा शरीर, सहस्रभुजा, मेघवत् वर्ण, सूर्यके समान तीन

लाल-लाल नेत्र, महाविकराल डाढ़ें, प्रज्वलित अग्निसदृश बाल, कपालमाला धारण किये अनेक प्रकारके उठे हुए आयुध हाथोंमें लिये श्रीभूतनाथके सम्मुख हाथ जोड़कर विनती करने लगा ॥३॥ कि हे नाथ ! मैं क्या करूँ, मेरे लिये क्या आज्ञा है ? इस प्रकार वीरभद्रको हाथ जोड़े खड़ा देख भगवान् भूतेश्वर बोले, कि हे रुद्र ! हे भट ! तू मेरे सब भटोंमें अग्रणी हो, क्योंकि तू मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है, अभी दक्षका नाश कर, तुझ विना दक्षको और कोई नहीं मार सकेगा ॥ ४ ॥ हे विदुर ! अत्यन्त क्रुद्ध श्रीमहादेवजीकी आज्ञा पा वीरभद्र देवोंके देव, सर्वसमर्थ शिवजीकी परिक्रमा करके उस समय अप्रतिमवेगसे वह अपने आपको महाबलियोंका बल विनाश करनेको बलवान् समझता

तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥ ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदाऽऽत्मानमसङ्गरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः सह रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वान्ति नहि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ॥ गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥

था ॥ ५ ॥ अत्यन्त गम्भीर नाद करनेवाले रुद्रपार्षदोंको संग ले वीरभद्रने महाभयंकर शब्द कर, मृत्युका नाश करनेवाला, त्रिशूल हाथमें ले जिसके चरणोंके घुँघरुओंके शब्दसे दिग्गजोंको शब्दायमान करता, वीरोंका मान हरता, धरणीको धमकाता, पर्वतोंको गिराता, दक्षके देशकी ओरको धाया ॥६॥ जब दक्षका मख पांच योजन रहा तब ऋत्विज, यजमान, सभापति, ब्राह्मण, उत्तर दिशाकी ओर धूल उड़ती और महा धुंधकार देख परस्पर विचार करने लगे कि आज उत्तरकी ओर यह कैसा अंधकार है ? अरे यह धूल कहांसे आयी ? ॥ ७ ॥ ऐसी तीव्र पवन भी नहीं चलती ! चोर भी नहीं है उनका उग्र दंडदाता राजा प्राचीनबर्हि अभी जीता है और गौवोंके आनेका भी यह

समय नहीं है, तो फिर यह धूल कहांसे आती है ? आज सब संसारकी प्रलय तो नहीं हो जायगी ? यह आश्चर्य देख सब चकित हो रहे थे ॥ ८ ॥ प्रसूति आदि सब स्त्रियाँ उद्विग्न मन कर बोलीं-अरी ! यह वही अपराध है, जो सब बेटियोंके देखते-देखते निरपराधिनी अपनी सुता सतीका दक्ष अन्यायीने अनादर किया ॥ ९ ॥ जो भूतेश्वर त्रिभुवननायक शिव अंतकालमें जटाजूट फैला अपने त्रिशूलके अग्रभागसे दिग्गजोंको निर्मूल करते हैं और जब अस्त्रोंको उठाकर भुजारूपी ध्वजाओंको फैलाकर और उच्चाट्टहाससे गर्जनशब्द करके दशों दिशाओंके दिग्गजोंको विदीर्ण कर नाचते हैं ॥ १० ॥ क्रोधका तेज जिनका सहा नहीं जाय उन महाक्रोधीकी क्रोधभरी भ्रुकुटीसे और कठिन

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥ यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥ यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥ तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥

कराल दाढ़ोंसे बिखेर दिया है, सर्वत्र नक्षत्र मंडल जिन्होंने और प्रलयकालकी ज्वालावत् लाल-लाल तीन विशाल नेत्र हैं, जिनके ऐसे प्रचण्ड अखण्ड तेजवान् शिव शूलपाणिके कोपसे ब्रह्मा भी सुख नहीं पा सकता॥ ११॥इस प्रकार महात्मा दक्षके यज्ञमें उद्विग्न दृष्टि कर परस्परवार्ता कर रहे थे, इतनेमें अनेक भांतिके सहस्रों उत्पात महाभयदायक पृथ्वी और आकाशमें होने लगे॥ १२॥हे विदुर ! इतनेमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये, काले-पीले वेष किये, मगरके समान जिनके उन्नत मुख, वामन आदि अनेक शंकरकिंकर, रुद्रगणोंने दक्षके यज्ञको चारों ओरसे घेर लिया ❋ ॥ १३॥

---

१. शंका–दक्षके यज्ञकी ब्राह्मणोंने वेदके मंत्रोंसे रक्षा की थी और जब वीरभद्रने यज्ञका विध्वंस कर डाला तब उन वेदके मंत्रोंने देवरूप होकर यज्ञकी रक्षा क्यों नहीं की ?

उत्तर–जब यज्ञके हवन कुंडमें सती जलकर भस्म हो गई तब सतीके शरीरको देखकर भविष्यके जाननेवाले मुनियोंने जान लिया कि यज्ञ अब बहुत शीघ्र भ्रष्ट होगा देर नहीं है, ऐसा जानकर बहुत शीघ्र वेदके मंत्रोंको विसर्जन कर दिया ।

किसीने यज्ञशालाके पूर्वपश्चिम स्तंभके समीप पश्चिमको जो देवशाला प्राग्वंश था उसको तोड़ा, किसी गणने यज्ञशालाके पश्चिम ओर पत्नीशाला थी उसको फोड़ा, यज्ञशालाके आगे स्थित सभा मंडप था किसीने उसको तोड़ा, सभाके आगे अग्नि धरनेकी शाला थी किसीने उसको तोड़ा, किसीने यजमानोंके घर तोड़े किसीने पाक भोजनशाला तोड़ डाली ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड़ कलश फोड़ दिये, किसीने अग्नि बुझा दी, किसीने कुंडमें मूत दिया, किसीने वेदी और मेखलाका भेदन कर दिया ॥ १५ ॥ कोई-कोई मुनियोंको मारने लगे, कोई स्त्रियोंको भयानक वेष दिखाकर डराने लगे, किसीने देवताओंको खड़ा देखकर पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमानने भृगुको बांध लिया, वीरभद्रने दक्षको घेर लिया, चण्डीशने पूषादेवको पकड़ा, नंदीश्वरने भगदेवको पकड़ा ॥ १७ ॥ शिवके

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ॥ अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ॥ भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसत् श्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥ भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन् दतः ॥ २१ ॥

गणों और पार्षदोंने उनको तक तककर ऐसे पत्थर मारे कि जिससे ऋत्विज, सभासद, सब देवता; अत्यन्त पीड़ित होकर चारों ओरको भाग गये ॥ १८ ॥ हाथमें स्रुवा लिये जो हवन कर रहे थे उन भृगुजीकी दाढ़ी मूँछे पकड़कर वीरभद्रने उखाड़ डालीं, क्योंकि शिवशापके समय भृगु मूछोंपर हाथ फेरकर हँसे थे ॥१९॥ भगवान् वीरभद्रने भगदेवताकी आंखें निकाल लीं क्योंकि शापके समय दक्षको उसने सभामें सूचना की थी ॥ २० ॥ और पूषाकी गर्दन पकड़कर उसके दांत उखाड़ डाले, जैसे बलदेवजी कलिंग देशके राजाके दांत तोड़ डाले थे, इसी प्रकार पूषाके दांत झाड़ दिये, क्योंकि यह भी शिवजीको शाप देते समय दांत दिखाकर ठट्ठे मार-मार कर हँसा था ॥ २१ ॥

दक्षकी छातीपर चढ़कर वीरभद्र महातीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसका शिर काटनेको उद्यत हुए, तो भी काटनेको समर्थ न हुए ॥२२॥ जब अस्त्रशस्त्रोंसे उसकी त्वचा न कट सकी तब वीरभद्रको बड़ा विस्मय हुआ और पशुपतिको मनमें धार बहुतकालतक विचार करता रहा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति वीरभद्रने उस यज्ञमें कंठ घोटकर मारनेका उपाय देखकर यजमान, पशुरूप दक्षका शिर पराक्रम करके देहसे मरोड़कर उखाड़ लिया ॥ २४ ॥ बहुत अच्छा हुआ, यह उसके कर्मकी जहां-तहां भूत-प्रेत-पिशाचोंमें प्रशंसा हुई और दक्षके पक्षमें महाशोक-संताप हुआ ॥ २५ ॥ उस समय वीरभद्रने अत्यन्त क्रोधित होकर दक्षका शीश दक्षिणाग्निमें हवन कर दिया और यज्ञस्थानको विध्वंस कर फूंक जार कर

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् त्र्यम्बकस्तदा ॥२२॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन् दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० चतु० वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ उच्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥

अपनी भूतसेनाको संग ले, कैलासको चले गये ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम पंचमोध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—इसी षष्ठ अध्यायमें, ब्रह्मादिक सब देव । दक्ष जिवावन हेतु सब, गये जहां महादेव ॥ १ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब सब देवगण शिवकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश, निस्त्रिंश, गदा, परिघ, मुद्गर इत्यादिसे मारे गये तब टूटे, कटे अंगभंग सब देवताओंने डरके मारे अत्यन्त व्याकुल होकर ऋत्विक और सभापतियोंको सङ्ग ले ब्रह्माके समीप जा नमस्कार कर सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २ ॥ परंतु इस भविष्य वृत्तान्तको कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण पहलेसे ही जानते थे,

इसीलिये वे दोनों दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ देवताओंकी दुहाई सुनकर ब्रह्माजी बोले कि तेजवंतोंका अपराध किया हो और दूसरा उस अपराधका बदला चाहे, तो उसका मनोरथ उसको फलदायक न होगा ॥४॥ यद्यपि उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा भी किया, तो भी तुम सब उनके अपराधी हो, क्योंकि सदा यज्ञमें शिवको भाग मिलता रहा और आज शिवका भाग नहीं निकला, अब तुम शीघ्र चित्त शुद्ध कर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवके चरण पकड़कर उनको प्रसन्न करो, तो वे तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे ॥५॥ मैं यह चाहता हूँ कि, दक्ष उठें और यज्ञ फिर हो, जिन महादेवके कोपसे लोकपालसहित लोक नष्ट हो जाते हैं, उन सदाशिवके पास जाकर शीघ्र निवेदन करो, जो कि

तदाकर्ण्य विभुःप्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं पराडुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥५॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्म तन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥ स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥ ८ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥ नानामणिमयैः श्रृंगैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥

दुष्टदक्षके दुर्वाक्योंके बाणोंसे उनका हृदय विंध रहा है ॥ ६ ॥ और उन स्वाधीन शिवके तत्त्व और पुरुषार्थके प्रमाण और बलवीर्यको न तो मैंने जाना और न विष्णु भगवान् जान सकते हैं, न तुम लोग जान सकते हो और दूसरे पुरुषकी तो क्या सामर्थ्य है ? ॥७॥ फिर ऐसे अवसरपर क्या उपाय बन सकता है ? ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओंको समझा-बुझाकर पितरोंको और प्रजापतियोंको संग ले अपने स्थानसे जहां त्रिपुरारी शिवजीके रहनेका परम श्रेष्ठ आश्रम जो पर्वतोत्तम कैलास है, वहां चले गये ॥ ८ ॥ जहां जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योगकी सिद्धि रहती हैं और किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा नित्य वसते हैं ॥ ९ ॥ नाना प्रकारके मणिमय शृङ्गवाले गेरूआदि धातुओंसे और

चित्र-विचित्र रंगोंसे शोभा हो रही थीं और भांति-भांतिके वृक्ष, लता, गुल्म, फूल, फलोंसे भरे लटक रहे थे, नानाप्रकारके मृगोंके समूह जहां-तहां दौड़ते-फिरते थे ॥ १० ॥ नानाप्रकारके निर्मल झरने झर रहे थे, अनेक प्रकारकी कंदरा और शिखर शोभा दे रहे थे, उनमें सिद्धलोगोंकी युवतियाँ अपने-अपने पतियोंके सङ्ग अत्युत्तम रीति-प्रीतिसे विहार कर रही थीं, मयूर अपनी मयूरनियोंके संग उमंगमें भर मधुरवाणीसे बोल रहे थे, कामांध भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गुञ्जार रही थीं ॥११॥ रक्तनेत्रवाली कोकिला कुहू-कुहू शब्द उच्चार रही थीं और अनेक प्रकारके पक्षी अपनी-अपनी मनोहर बोलियां बोल रहे थे ॥ १२ ॥ मनकी अभिलाषाके पूर्ण फलदायक वृक्षोंकी शाखा ऊंचे-

नानामलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ॥ रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजन्तमिव मातंगैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वीरवेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥ १६ ॥ पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः ॥ १७ ॥

ऊंचे पर्वतोंपर पवनके झकोरोंसे ऐसे झूम रही थीं, मानों हाथ उठा-उठाकर पर्वत पक्षियोंको बुला रहे हैं, मन्द-मन्द गति हाथियोंकी ऐसी दृष्टि आती थी, मानो पर्वत चल रहे हैं, झरनोंकी ध्वनि ऐसी सुनायी देती थी मानो भूधर परस्पर बातें कर रहे हैं ॥ १३ ॥ और वहां मन्दार, पारिजात, सरल, ताल, तमाल, शाल, कोविदार, असन, अर्जुन, ॥ १४ ॥ आम, नीम, कदंब, पुन्नाग, नागकेसर, चम्पक, गुलाब, अशोक, बकुल, कुन्द, कुरबक ॥ १५ ॥ स्वर्णपर्ण, शतपत्र, अनेक प्रकारकी बांसी, कुब्जक, मल्लिका, माधवी लताकी न्यारी ही शोभा थी ॥१६॥ पनस, पलाश, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, वट, हींग, भोजपत्र, ओषधी, सुपारी, मोटी सुपारी, जामन ॥१७॥ राजपूग, खजूर,

आम्रातक, आमले, प्रियाल, मधुक, इंगुदी, हिंगौट आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंकी शोभा हो रही थी ॥ १८ ॥ और भी अनेक जातिके वृक्ष और वेणु कीचकोंसे शोभायमान थे। कहीं तालोंमें कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतपत्र जातिकी कमलिनी खिल रही थीं, सरोवरोमें मनोहर पक्षियोंके वृन्दोंकी कलकल ध्वनि मनको मोह लेती थी। मृग, शाखामृग, मर्कट, सिंह, सूकर, ऋक्ष, सेही, ॥१९॥ गवय, रोझ, कस्तूरीमृग, भेड़िये और महिषादिक पशु जहां-तहां घूम रहे थे, कर्णोमें आंतवाले पशु, एक पगके जीव, घुड़मुँहे पशु, वृक, कस्तूरीमृग और केलेके समूहोंसे ढकी हुई कमलनियोंकी शोभा हो रही थी ॥ २० ॥ आगे बढ़कर देखा तो नन्दानाम गंगा चारों ओर बह रही है, तटके

द्रुमजातिभिरन्यैश्चराजितं वेणुकीचकैः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ १८ ॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥ मृगैः शाखा मृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः ॥१९॥ गवयैर्नाभिभिर्व्याघ्रैर्निर्जुष्टं महिषादिभिः ॥ कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ २० ॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २१ ॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ॥ वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नामपङ्कजम् ॥२२॥ नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ॥ तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥ २३ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥ २४ ॥

निकट जल चला जाता है और सतीजीके स्नानकी सुगंधिसे पुण्य रूप हो रही है और जहां-तहां पुलिन कदली वनसे घिरे हुए ऐसे सुन्दर शोभायमान शिवजीके परमोत्तम कैलासपर्वतको देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २१ ॥ और उसके निकट अतिरमणीक अलकानाम्नी कुबेरकी पुरीको देखा और सौगंधिक नामक कमलोंका वन दृष्टि आया ॥ २२ ॥ श्रीपति भगवान् वासुदेवके पदपंकजकी रेणुसे परमपवित्र नन्दा और अलकनन्दा नगरसे बाहर दो सरिता बह रही हैं ॥ २३ ॥ हे विदुर ! उन सरिताओंमें नित्यप्रति देवताओंकी कुलांगना रतिकी इच्छावाली अपने-अपने विमानोंसे उतर कर विहार करती हैं और अपने भर्ताओंके अतिसूक्ष्म शरीरधारी

पुरुषोंपर नीर छिड़क उनका श्रम हरती हैं ॥ २४ ॥ देवरमणी जो उन सरिताओंमें मज्जन करती हैं और कुचोंसे कुंकुम धुलधुलकर जो जलमें बहता है उससे तो उन सरिताओंका सलिल पीतवर्ण और सुगंधित हो रहा है, उसी सुगंधके कारण विना ही प्यास उस जलको हाथी पीते हैं और अपनी हथिनियोंको पिला पिलाकर मुदित करते हैं ॥ २५ ॥ वे देवांगना चांदीसोनेके अमूल्य रत्नोंसे जटित सैकड़ों विमानोंमें बैठे कैसी शोभा दे रही थीं, जैसे गगनमण्डलोंके बादलोंमें बिजली चमकती है ऐसी ॥२६॥ कुबेरकी पुरीसे निकलकर सौगंधिक-वनमें पहुँचे जहां परम सुखदायक चित्र विचित्र सुमन, मनोवांछित मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान सहस्रों वृक्ष शोभायमान थे

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ॥ वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥ २५ ॥ तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २६ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २७ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥ २८ ॥ वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ॥ अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥ २९ ॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥ प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३० ॥ स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३१ ॥

॥ २७ ॥ लाल कण्ठवाली कोकिलाओंके वृन्दके वृन्द मृदुलवाणीसे जहां तहां कोलाहल कर रहे थे, भ्रमरोंका मनोहर शब्द हो रहा था, कमलयुक्त जलाशय देदीप्यमान थे; कलहंसादिक जलविहंग निजपत्नियोंके सङ्ग विचर रहे थे ॥२८॥ वनके बलवान् हाथियोंके गमनसे, हरिचन्दनके वृक्षोंमें रगड़से, सुगन्धयुक्त पवनके प्रभावसे यक्षोंकी रमणियोंका मन मन्मथ वारंवार मथ रहा था॥२९॥प्रबाल रत्नकी सोपान-वाली बावड़ियाँ कमलमालासे शोभायमान दृष्टि आती थीं और किंपुरुष वहां विहार कर रहे थे। सौगंधिक वनकी ऐसी अनुपम शोभा देखते हुए आगे बढ़े, तो निकट ही एक वटवृक्ष दृष्टि आया ॥३०॥ वह वटका तरुवर चारसौ कोश ऊंचा और तीनसौ कोशमें उसका विस्तार था,

उसके चारों ओर सघन छाया आठों प्रहर रहती थी और न किसी पक्षीका उसमें घोंसला था और ताप तथा धूप तो वहां देखनेको भी नहीं थी ॥ ३१ ॥ उस वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षु जनोंके रक्षक सदाशिव विराजमान थे, मानो क्रोध तजकर अंतक बैठा है, इस प्रकार देवताओंने महादेवजीको बैठा देखा ॥३२॥ शांत शरीरवाले सनन्दन आदि महासिद्ध शांतस्वरूप शिवजीकी सेवा कर रहे थे और यक्षराज राक्षसोंका अधीश और शिवजीका सखा कुबेर मस्तक नवाये चरणारविंदोंकी ओर तक ज्ञान वैराग्य और आनन्दका रस छक रहा था ॥ ३३ ॥ वे शिवजी महाराज विद्या, तप, योगमार्गमें स्थित, सबके ईश्वर, विश्वके सुहृद् और वत्सलतासे सब लोकोंके मङ्गल करने

तस्मिन् महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ३३ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३४ ॥ लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ॥ अंगेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३५ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३६॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुंप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया॥३७॥ तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः॥३८॥

वाले ॥ ३४ ॥ और अतीव सुहावन और मनभावन तपस्वी वेष धारण किये हैं, शीशपर जटा बढ़ाये, मृगचर्म ओढ़े, अंगमें विभूति लगाये, हाथमें दण्ड लिये, संध्याकालके मेघपंक्तिकी कांतिके समान अपने मस्तकपर चन्द्ररेखा धारण कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ दोहा—कुश आसन आसीन प्रभु, लसत भालविधु बाल । जेहि दरसत सब जननके, मिटत सकल जंजाल ॥ इस प्रकार आसनपर बैठे हैं और नारदजी जो कुछ उनसे पूछते हैं, उनको सब सज्जनोंके सम्मुख सनातन परब्रह्मका ज्ञान सुना रहे हैं ॥३६॥ बांये चरणको दहिने ऊरूपर धर और बांई जानुपर अपना कर धरकर दाहिनेबाहुके प्रकोष्ठपर अक्षमाला सहित तर्कमुद्रा धारण किये बैठे हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मसुखकी समाधिमें

स्थित, सबसे विरक्त, गिरीश, योगज्ञानी, सब मनुओंके आद्यमनु महादेवजीको हाथ जोड़कर सब लोकपाल मुनि लोगोंने प्रणाम किया॥२८॥ सुर-असुर जिनके चरणकमलको नित्यप्रति दण्डवत् करते हैं, महादेव देवताओंके सहित चतुराननको आता देखकर शीघ्र उठे खड़े हुए और जैसे सर्वपूज्य विष्णु वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था, उसी प्रकार शिवजीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया ॥ ३९ ॥ और जो सिद्धगण महर्षियों सहित शशिशेखर शिवजीके समीप उपस्थित थे, उन लोगोंने भी उसी भांति ब्रह्माजीको प्रणाम किया, इस प्रकार जिन ब्रह्माजीको सबने नमस्कार किया वही ब्रह्माजी चन्द्रचूड महादेवजीसे हँसकर बोले ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले, कि हे ईश ! तुमको मैं

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाऽभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥३९॥ तथाऽपरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनुनीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४०॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः॥शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४१॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यसि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४२ ॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४३॥ त्वं कर्मणां मङ्गलमंगलानां कर्तुः स्म लोके तनुषे स्वः परं वा ॥ अमंगलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययःकेन तदेव कस्यचित् ॥ ४४ ॥

भलीभांति जानता हूं कि तुम विश्वरूप जगत्की योनि, बीज, शक्ति, प्रकृति पुरुषके ईश, भेदरहित, निर्विकार, परब्रह्म, निरन्तर ईश, सर्वान्तर्यामी ईश्वर हो ॥४१॥ हे भगवन् ! स्वरूपधारी, शिवशक्तिरूप, प्रकृति पुरुषमें विहार करते हुए तुम ही मकरीकी नाईं इस सृष्टिको रचते हो, पालते हो, और फिर अपने आपमें लीन कर लेते हो, तुम्हारी गतिका कोई पार नहीं पा सकता ॥४२॥ धर्म, अर्थ पूर्ण करनेको और वेदकी रक्षाके लिये निमित्तमात्र दक्षने यज्ञ किया था और सब संसारकी मर्यादा भी आपकी ही बांधी हुई है, जिन मर्यादाओंको व्रतधारी ऋषिलोग श्रद्धासहित आजतक पालन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे मङ्गलरूप ! शुभ कर्म करनेवालोंको तुम स्वर्ग परलोकदायक हो और अशुभ

कर्म करनेवालोंको भयंकर नरक अन्धतामिस्र वासके देनेवाले हो, तो फिर किस कारण पुरुषोंको इन मर्यादाओंके प्रतिकूल फल प्राप्त होता है॥४४॥तुम्हारे पदारविंदोंमें जिनके मन आत्मा अर्पित हैं और सर्व जीवमात्रमें आपको ही देखते हैं और सब जीवोंमें ईश्वरको देखते हैं,आत्मा सब जीवमें देखनेवाले महात्माजनोंको कभी क्रोध नहीं आ सकता और आपका तो कहना ही क्या है ?॥४५॥ पृथक् जिनकी बुद्धि, कर्मोंपर दृष्टि, दुष्टहृदय, दूसरोंके प्रतापसे रात्रिदिन दुःखानेवाले, दुर्वाक्योंसे औरोंके मर्मभेदन करनेवाले दैवसे भ्रष्ट, अनेक कर्मोंके मारे, आपसरीखे महात्माओंका धर्म है कि उनको न मारे, क्योंकि वे अपने कर्मोंके मारे हैं ॥ ४६ ॥ जिस देशमें जिस समय नारायणकी दुस्तर मायासे पृथक्

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४५ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मा वधीद्दैवत्यवधान् भवद्विधः ॥ ४६ ॥ यस्मिन् यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४७ ॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतः स्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४८ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनोः प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ४९ ॥ जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥ ५० ॥

दृष्टिवाले अभिमानी मोहित होकर सज्जनोंसे विरोध करते हैं, परन्तु तो भी वहां साधुजन अपनी नम्रतासे, परमेश्वरकी इच्छा ऐसे ही थी, यह विचार कर उन लोगोंपर कृपा करते हैं, परंतु उनको मारते नहीं ॥४७॥ आप तो परपुरुषकी कठिन मायासे लिप्तनहीं हो, अतएव समस्त जगत्के द्रष्टा हो, हे प्रभो ! उस मायासे जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयीहै, अतः जो सदा कर्मोंके बंधनमें बँधे हैं, उनपर आप कृपा करने योग्य हो ॥ ४८॥ हे रुद्र ! आपके विना ही दक्षका यज्ञ समाप्त न हुआ, अब आप मरे हुए दक्षप्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो । कुत्सित होम करनेवालोंने आपको भाग नहीं दिया, उसका फल तत्काल अपनी आंखोंसे देख लिया ॥ ४९ ॥ अब इतना अनुग्रह कीजिये कि यह हमारा यजमान

तो जी जाय और भगदेवको नेत्र दिये जायँ, भृगुकी मूछें निकल आयें और पूषाके दांत पहलेकेसे हो जायँ ॥ ५० ॥ हे मन्यो ! देवताओंके और ऋत्विजोंके अंग जो आयुध और पाषाणोंसे टूट गये हैं, उनपर अनुग्रह करके आप सबको आरोग्य करो ॥ ५१ ॥ हे कल्याणरूप ! यज्ञविध्वंसक !! जो कुछ इस यज्ञमें शेषभाग बचा है, वह सब आपका भाग है, इस प्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, अब आप कृपा करके यह कह दीजिये कि, यज्ञहन-रुद्रके भागसे यह तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो इसलिये हम सब देवता आपके पास यह कहने

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ॥ भवताऽनुगृहीतानामाशु मन्योस्त्वनातुरम् ॥५१॥ एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५२॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ॥ देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

आये हैं[1] ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, प्रकट भये भगवान । शिव ब्रह्मादिक देव सब, स्तुति करत बखान ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे महाबाहो विदुर ! जब ब्रह्माने इस प्रकार शिवजीकी स्तुति की, तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो हँसकर बोले कि, हे कमण्डलुपाणे ! सुनिये ॥१॥ श्रीमहादेवजी बोलेकि हे प्रजेश ! इन अज्ञानियोंके अपराधको मैं अपने मुखसे कुछ नहीं कह सकता हूँ और न कुछ चिंतन करता हूं क्योंकि ये मूर्ख लोग दैवकी मायासे मोहित

---

१. शंका—ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा कि हे पार्वतीनाथ ! यज्ञमें जो वस्तु सबके खाने भोगनेसे बचे वह आपका भाग है, ऐसी घृणित वस्तु शिव जगत्पति होकर क्यों ग्रहण करते हैं ?

उत्तर—व्याकरण शास्त्रके प्रमाणसे उच्छिष्टशब्दका अर्थ जूठका नहीं है, उच्छिष्टशब्दका यह अर्थ है कि तीन लोक चौदह भुवनमें जो चराचर जीव हैं सबका नाश हुए पीछे जो वस्तु शेष रहे, अपनी आत्मामें आनन्दरूप ब्रह्म जो है उसकी उच्छिष्ट संज्ञा है, उस आनन्दरूप ब्रह्मको उच्छिष्ट जानो और भजन करनेमें जिसका स्वभाव है उसको यज्ञ कहना, यज्ञ नाम-संसारका है, उस यज्ञरूप संसारका नाश होनेके पीछे जो ब्रह्मानंद शेष रहता है वह भाग शिवका है, ब्रह्माने कहा कि हे भूतेश्वर ! आप ब्रह्मानंद हो, मूर्खों के कर्मका स्मरण करना नहीं चाहिए ।

* कवित्त—अहो मुण्डमाली बलशाही को तुम्हें समान, बार बार विनै कर आपको मनायकै । ज्ञान ध्यान ज्ञाता तुम सपतिके दाता तुम, छोड़ो मत नाता तुम लीजै अपनायकै ।। ऐसे समै महिमा बखानै को न शालिग्राम, आज करामात सब विश्वको दिखायकै । सांकरेमें शंकर सहाय करो शीघ्र जाय, जगमांहि लीजै यशं दक्षको जिवायकै ॥

हो रहे हैं, इस लिये मैंने इनके उचित दण्ड दिया है ॥ २ ॥ दक्ष प्रजापतिका शिर तो जला दिया, इसलिये बकरेका मुख इनके धड़पर लगा दिया जाय और भगदेव मित्रदेवताके नेत्रोंसे अपने यज्ञ सम्बन्धी भागको देखें ॥ ३ ॥ पिसा हुआ अन्न पूषा यजमानोंके दांतोंसे भक्षण किया करें और जिन देवताओंने मुझको यज्ञका उच्छिष्ट दिया है, उनके सर्वांग पूर्ण हो जायँगे ॥ ४ ॥ वे अध्वर्यु और ऋत्विज कि जिनके अंग सर्वथा नष्ट हो गये हैं, उनकी भुजाओंका काम अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे होगा और हाथोंका काम पूषाके हाथोंसे हुआ करेगा और भृगुकी दाढ़ी मूंछ बकरेकी मूंछ की होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! शिवजीके स्नेहभरे वचन सुनकर भूतमात्र

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥ ७ ॥ विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान् भवः ॥ संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥ ८ ॥

और देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न हो साधु-साधु कह धन्यवाद देने लगे॥ ६ ॥ फिर सब देवता और मुनियोंने जब शिवजीकी विनय की, कि कृपा करके आप वहां चलिये और सब कार्य पूर्ण कीजिये, तब देवताओंकी आज्ञा शिरपर धर शिवजी ब्रह्मा और ऋषियोंसहित देवताओंको साथ ले उस देवयज्ञशालामें पहुँचे ॥ ७॥ और सम्पूर्णतासे यज्ञ कराकर जो कुछ शिवजीने कहा, उसी भांति यज्ञमें पशुका

१. शंका–ब्रह्मासे शिवजीने कहा कि हे ब्रह्माजी ! मूर्खोंके कर्मोंका हम चिन्तन नहीं करते, उत्तम, मध्यम [illegible] जो नीच हमारे लिये करते हैं उन सबको हम सह लेते हैं, फिर दक्षका नीच कर्म समझकर उसके यज्ञको विध्वंस क्यों किया ?

उत्तर–शिवजीने विचार किया कि दक्ष महापापी है और बड़ा अभिमानी है, जो सब प्राणीमात्रकी रक्षा करता है वह दक्ष ऐसा दुष्ट हो रहा है जो यह दंड न पायेगा तो ब्रह्मकर्म छोड़के राक्षस हो जायगा, अतः अनुग्रह करके शिवने दक्षके यज्ञका नाश करके उसको दंड दिया, दक्षका नीचकर्म समझकर उसके यज्ञका नाश नहीं किया ।

शिर काटकर दक्षके धड़पर धरकर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ शीश जोड़कर शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखा ! दृष्टिके पड़ते ही दक्षप्रजापति ऐसे उठकर बैठ गया मानो निद्रासे अभी जगा है और नेत्र खोलकर देखा तो शिवजी सम्मुख खड़े हैं ॥ ९ ॥ यद्यपि शिवजीके द्वेषसे उसका चित्त दूषित हो रहा था, परन्तु शशिशेखरका दर्शन करते ही सब वैरभाव मिट गया और शरत् कालके तड़ागके तुल्य दक्षका मन निर्मल हो गया ॥ १० ॥ और वारंवार मनमें यह विचार करता था, कि दीनदयालु भूतेश्वर महादेवजीकी स्तुति करूं, परन्तु अनुरागवश हो कुछ मनसे नहीं उच्चार सका और अपनी मरी हुई दुहिता सतीका स्मरण कर उत्कठासे आँखोंमें आंसू भर आया ॥ ११ ॥

संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥९॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥ ११ ॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितस्सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥ दक्ष उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्माऽऽत्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ॥ तद्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥ १४ ॥

और जैसे-तैसे बड़ी कठिनाईसे मनको रोककर प्रेमसे व्याकुल हो वह सुबुद्धि दक्ष कपटभावको हृदयसे त्यागकर शिवजीकी स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ दक्ष बोला कि, हे भगवन् ! मैंने तो आपका तिरस्कार किया था, तो भी उस अपमानका ध्यान त्याग करके मुझको दण्ड दिया। यह आपने मुझ दीनपर बड़ी दया की, जो अधम ब्राह्मण तिरस्कार योग्य हैं, आप और विष्णु भगवान्, जब उन्हीं ब्राह्मणोंका निरादर नहीं करते, तब तपव्रतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी अवज्ञा आपसे कब हो सकती है ॥१३॥ हे प्रभो ! अपने विद्या तप व्रतधारी ब्राह्मणोंको वेदमार्गकी रक्षा करनेके लिये प्रथम आपने मुखसे प्रकट किया है, इसलिये हे विभो ! आप विपत्तियोंसे ब्राह्मणकी सदा रक्षा करते

हो, जैसे पशुपालक दण्ड हाथमें लेकर पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ आपके तत्त्वज्ञानको मैंने न जानकर सुरसभाके मध्य दुर्वाक्य-रूप शरोंसे आपको दुःखित किया था। तो भी आपने उस दोषको नहीं माना और मुझे प्रतिष्ठित जनोंकी निन्दा करनेके कारण नरकमें पड़ते हुएको क्षमादृष्टिसे बचा लिया, हे नाथ! आपके किये हुए उपकारसे आप ही सन्तुष्ट होओ, मेरा सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं आपको दे सकूं ॥१५॥ मैत्रेयजी बोले कि इस भांति दक्षने शिवजीसे अपना अपराध क्षमा करा चतुराननकी सम्मतिसे उपाध्याय ऋत्विज आदि यज्ञ कर्म सुन्दरतासे विस्तार कराया ॥ १६ ॥ तीन कपालका पुरोडाश विष्णुके निमित्त यज्ञ सम्पूर्ण करनेके हेतु प्रमथादिक

योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ॥ अर्वाक् पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपादृ्दृ-ष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ॥ कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥ १६ ॥ वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥ पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्गशुद्धये ॥ ॥ १७ ॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ॥ मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ॥ कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रै-र्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥

वीरोंकी शुद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने होम दिया ॥ १७ ॥ हे विदुर! अध्वर्युने जब हवि हाथमें लेकर यजमानसे विशुद्धबुद्धिसे हवन कर श्रीवासुदेव भगवान्का ध्यान किया, उसी समय श्रीभगवान् आकर प्रकट हुए ॥ १८ ॥ जिस गरुड़के पंखोंसे सामवेदके मंत्रोंकी ध्वनि निकलती है; उसपर विराजमान होकर श्रीभगवान् आये, उस समय उनके तेजके सम्मुख सबका तेज मन्द विदित होता था और दशों दिशायें उनके तेजसे प्रकाशमान हो रही थीं ॥ १९ ॥ श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, सूर्य समान किरीट शिरधारे, नील अलकें भ्रमरवत् शोभित मुखवाले, श्रवणोंमें कुण्डल लटकाये, नानाप्रकारके आभूषण पहिने भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, शर, चाप, खड्ग, ढाल धारण किये,

और कनेरके पुष्पवत् श्रीभगवान्, देदीप्यमान विदित होते थे ॥२०॥ वक्षस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान, वनमाला पहने, उदार हँसीयुक्त अवलोकनकी कलासे विश्वको रमण कराते, पार्श्वमें घूमते हुए, व्यजन, चमर, राजहंसवत् दोनों ओर डुल रहे थे और ऊपरकी ओर पूर्ण शशिसम श्वेत छत्र अत्यन्त शोभाको बढ़ा रहा था ॥२१॥ उन भगवान्को ब्रह्मा, इन्द्र, शिव और सब देवगणादिकने आता देख उठकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन श्रीवासुदेव भगवान्के तेजके प्रकाशसे सबकी कांति मलिन हो गयी ! ऐसे वे पुरुष अञ्जलियोंके संपुट शिरपर करके मोहसे संभ्रम हो गद्गदवाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ तब ब्रह्मादिक देवताओंकी मनवाणीकी सब वृत्तियां

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥ अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरंविश्वसृजां परं गुरुम् ॥ सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥

विसर गयीं ! भगवान्की महिमाको नहीं पहुँच सकीं तो भी उन्होंने कृपा करनेके लिये निज स्वरूप धारण कर अपने निकट आये हुए भगवान्की यथामति अनुसार सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञाधीश, विश्वके रचनेवाले, ब्रह्मादिकोंके परमगुरु और नन्द सुनन्द आदि पार्षदों सहित भगवान्के समीप जाकर प्रजापति दक्षने पूजाकी सामग्री समर्पण की, तब श्रीनारायणने वह पूजाके द्रव्यका पात्र अपने हस्तकमलसे ग्रहण किया, तब दक्षने प्रसन्न हो, हाथ जोड़ बड़ी सावधानीसे भगवान्की स्तुति की ॥२५॥ दक्ष बोला कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे रहित, अपने रूपमें स्थित पवित्र, चैतन्यस्वरूप, अद्वितीय, केवल एक आप ही हो, आप मायाका तिरस्कार कर

स्वाधीन होनेपर भी फिर उसीमें स्थित होकर पुरुषरूप बन मायारूपी नाटक रचते हो, तब उस मायामें रहनेसे ऐसा, विदित होता है कि राग-द्वेषादिक कर्म आपमें भी आ गये हैं, परन्तु यह मेरी दृष्टिका भेद है और आप तो निर्लेप और निर्विकार हैं ॥ २६ ॥ सब ऋत्विज बोले कि, हे निरञ्जन! हे उपाधिरहित!! हे भगवन्!!! हम लोग रुद्रके शापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह रखने वाले हैं। परन्तु आपके तत्त्वको नहीं जान सकते, धर्मका उपलक्षण वेदत्रयीप्रतिपाद्य यह यज्ञ है, ऐसे जानकर हम यज्ञ करते हैं, जिससे अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ये तीनों अवस्था दूर होती हैं ॥२७॥ सभासद् बोले कि, हे शरणागतवत्सल! इस उत्पत्तिके कालरूपी संसारका महा कठिन पंथ है, जिसमें कोई विश्रामका स्थान दृष्टि नहीं आता, न कोई रक्षक है और हैं तो अनेक क्लेशदायक विषम स्थान हैं, मृत्युरूप उग्रसर्प फण उठाये फुङ्कार

ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात् कर्मण्यवग्रहधियो भगवन् विदामः ॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदो व्यवस्थाः ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेन्तकोग्र-व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ॥ द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौ कस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माऽविद्यलोकोऽपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥

रहा है, सुखदुःखादिकरूप नानाप्रकारके अनेक गम्भीर गढ़े हैं, दुष्टपुरुष मृगरूपी घातक प्राणियोंके भयदायक हैं, मोहरूपी नदी नाले हैं और शोकरूपी दावाग्नि भड़क रही है, तृष्णा और कामनासे दुःखित हो उस मार्गमें जाता है, विषयमार्ग तृष्णावश अज्ञानको साथ लिये भ्रमके भारको शिरपर धरे शीघ्र चलता है, फिर यह कामव्याप्त जीव कब आपके चरणरूपी मंदिरको प्राप्त हो सकता है? ॥ २८ ॥ रुद्र बोले कि, हे वरद! सर्व विषयोंमें वैराग्यवाले सत् अर्थदायक! असक्त मुनियोंके आदरभावसे पूजनीय! तुम्हारे चरणकमलमें रचित बुद्धिवाला, अविद्याकामसे लोकमें विंधा हुआ, आपकी पूर्ण प्रेमभरी दयादृष्टिसे मैं अपने मनको लगा रहा हूँ, उसको मूर्ख लोग आचार

भ्रष्ट करते हैं तो भी आपके अनुपम अनुग्रहसे उस बातको मैं कुछ नहीं समझता ॥२९॥ भृगुजी बोले कि आपकी गम्भीरमायासे देहधारी ब्रह्मादिक देवता भी अन्धकारमें सोये हुए आत्मज्ञानको भूल रहे हैं, आत्मामें रहनेपर भी आपके तत्त्वको अबतक नहीं जानते, हे भक्तोंके आत्मबन्धो भगवन् ! मुझपर प्रसन्न होओ ॥३०॥ ब्रह्माजी बोले कि ज्ञान अर्थ गुणाश्रय पदार्थोंको पृथक्-पृथक् रीतिसे विचार करनेवाली इन्द्रियोंसे प्राणियोंकी दृष्टिमें जो कुछ आता है, वह आपका सत्यस्वरूप नहीं है, क्योंकि ज्ञानका पदार्थ और इन्द्रियोंका अधिष्ठानरूप आपका मायाके पदार्थोंसे सर्वत्र पृथक् है ॥ ३१ ॥ इन्द्र बोले कि हे अच्युत ! विश्वभावन, संसारपालक, चिदानन्द, असुरवंश विध्वंश करनेवाले,

भृगुरुवाच ॥ यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ॥ नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनाऽपि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत् स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥ ॥ ३१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥३२॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन् नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥

यह ऊंचे उठे हुए आयुधवाला, अष्टभुजी सुन्दर स्वरूप भी आपका योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ पत्नियाँ बोलीं कि हे यज्ञरूप ! हे रमेश ! ! यह केवल तुम्हारी ही यजनके लिये दक्षप्रजापतिने रचा था, उस पशुपति महादेवने आज दक्षपर कोप करके विध्वस्त कर दिया सो हे कमलनयन ! हे शांतबुद्धे !! हे यज्ञात्मक !!! यह यज्ञ उत्सव रहित श्मशानवत् महाअशुचि हो गया है, आप अपनी कमलवत् पावन दृष्टिसे इसको पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि हे भगवन् ! आपकी माया बड़ी दुरंत है, किसीसे जानी नहीं जाती, जिस रूपसे आप विचरते हो उसमें लिप्त नहीं होते, जिस हेतुसे ऐश्वर्यके लिये ईश्वरी लक्ष्मीजीकी उपासना ब्रह्मादिक करते हैं, वह लक्ष्मी आठ पहर आपके चरणारविंदोंकी ओर

ताकती रहती है, तो भी आप उसको आदर नहीं देते ॥ ३४ ॥ सिद्ध लोग बोले कि क्लेशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुआ प्याससे पीड़ित हो, यह हमारा मातंगरूपी मन आपकी कथारूपी उज्ज्वल अमृतकी नदीमें स्नान करनेसे और शीतल जल पीनेसे फिर जगद्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता और उस नदीसे बाहर नहीं निकलना चाहता । अब हमको ऐसा विदित होता है कि परब्रह्मके संग एक रंग हो गया॥ ३५ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति बोली कि हे रमापते ! श्रीनिवास ! ! हे परमात्मन् ! ! ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, श्रीसहित हमारी रक्षा करो, हे अधीश ! तुम्हारे विना यह यज्ञ शोभा नहीं देती थी, जैसे शिरहीन कबंध शोभा नहीं देता ॥ ३६ ॥ लोकपाल बोले कि हे भूमन् ! विज्ञानरूप, ज्ञान-

सिद्धा ऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ॥ तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥३५॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ॥ त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथापूरुषः ॥ ३६ ॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन् यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥ ३७ ॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान् नतेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुण-याऽऽत्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतयेस्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥

गुण प्रकाशक; दृश्यमात्रको जाननेवाले, प्रत्यगात्मरूप, सर्वद्रष्टा आप हो, यह असत् पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इंद्रियाँ तुम्हारा स्वरूप देख नहीं सकतीं, क्योंकि इस पञ्चभूतात्मक शरीरमें जो छठे जीवरूपसे आप विदित होते हो, वही आपकी माया है ॥३७॥ योगे-श्वर बोले कि हे प्रभो ! हे ईश !! हे वत्सल !!! तर्क करते हैं कि आप विश्वात्मा हैं, आपसे जीव अपनी आत्माको भिन्न नहीं समझता, उससे अधिक प्यारा और आपको कोई नहीं है, यद्यपि ऐसे हैं तो भी अनन्यभक्तिसे जो आपकी उपासना करते हैं उनपर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ दैवसे जगत्की उत्पत्ति और लयमें जीवके अदृष्टके कारण जिसके गुणोंका नानाप्रकारसे भेद होता है, ऐसी आपकी अद्भुत मायाने जिनके

स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि भिन्न-भिन्न भेद रचे हैं, परंतु स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदभाव दूर करनेसे उसका कारण कुछ भी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि सत्त्वावच्छिन्न, चैतन्य स्वरूपधारी धर्मादिकोंके उत्पन्न करनेवाले और जिनके गुणतत्त्वको न तो मैं जानता हूँ और न कोई दूसरा जानता है; ऐसे निर्गुण निर्विकारको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अग्नि बोले कि आपके तेजसे जो मुझमें प्रकाश है इसीसे उत्तम-उत्तम यज्ञोंमें टपकते हुए घृतका हव्य मैं धारण करता हूँ और सब देवताओंको पहुँचाता हूँ उन यज्ञोंके रक्षक और यज्ञरूप पांचप्रकारसे पंच यजुमंत्रसे सुन्दर यज्ञ किये जाते हैं। हे यज्ञमूर्ते

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥४०॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ॥ तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥ ४१ ॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ॥ पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य च भूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥

भगवन् ! हम वारंवारं आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि पहले आप महाप्रलयमें रचे हुए विश्वको अपने उदरमें धरकर आप ही आद्यपुरुष उस जलमें शेषशय्यापर सोये थे, सिद्धोंने अपने हृदयमें जिनकी अध्यात्म, पदवी विचारी है, वह भगवान् आज हम लोगोंके नेत्रगोचर हुए, यह आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया,आप सदा दासोंका ऐसे ही पालन किया करते हैं ॥४२॥ गंधर्व बोले कि देव ! मरीचि आदि ऋषि, ब्रह्मा, इन्द्रादिक देवगण, रुद्र जिनमें मुखिया हैं, ये सब आपके अंशके अंश भाग हैं और यह सब संसार आपके विहार करनेका खिलौना है । हे भूमन् ! हे नाथ ! ! हे दीनबन्धो ! ! ! ऐसे जो आप हैं उन आपको हम निरन्तर नमस्कार

* पांच यज्ञ ऐतरेय उपनिषदकी श्रुतिमें हैं— "स एव यज्ञः पञ्चविधः– अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशु, सोम इति ।" तथाच श्रुतिः— आश्रावयेति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् ! ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कारः ॥ अर्थ– आश्रावय अस्तु श्रौषट्, यज ये यजामहे, वषट् इत्यर्थः ।

करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर बोले कि, ऐसा पराक्रमी और पुरुषार्थी देह पाकर जो पुरुष आपकी मायाके अधिकारमें हो, अभिमानमें आकर कोई-कोई मनुष्य कहने लगता है कि मै हूँ, यह मेरा है, ऐसे वचन कह उलटे मार्गमें चलने लगता है, अपने कुटुम्बियोंके अनादर करनेपर भी मूर्खतासे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा रखता है, वह आत्माका भी मोह तुम्हारी कथामृतके सेवन करनेसे सब नष्ट हो जाता है ॥४४॥ ब्राह्मण बोले कि यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता, अग्निहोत्र,स्वधा, सोमवल्ली, लता, घृत, दुग्ध और यज्ञपशु सब आप ही हो, इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे त्रयीगात्र ! आप पहले महासूकर रूप

विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्माययाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन् कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयंत्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्ररुद्राभिमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥ भगवान् स्वेन भावेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥

धारण कर योगीजनोंके स्तुति करनेसे महागम्भीर शब्द कर वसुधाको डाढ़पर रखकर रसातलसे ऐसे ले आये, जैसे गजेन्द्र लीलापूर्वक पद्मिनीको ले आता है । हे प्रभो ! यज्ञ और क्रतुरूप आप ही हो ॥ ४६ ॥ तुम हम लोगोंपर प्रसन्न होओ, सत्कर्मसे परिभ्रष्ट हो जो तुम्हारे दर्शन की चाहनावाले हैं, उनपर अनुग्रह करके उनको अपना दर्शन दो, हे यज्ञेश ! जब यज्ञमें लोग आपके नामका उच्चारण करते है, उसी समय यज्ञके विघ्न क्षय हो जाते हैं । हे विघ्नविनाशन ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इस प्रकार सब देवगण ऋषिलोगोंने हृषीकेश भगवान्की स्तुति की तब कवि, दक्ष, रुद्र, वीरभद्रके विनाशित यज्ञको फिर प्रवृत्त किया ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा

सब भागके भोक्ता, यज्ञभावन भगवान् अपना भाग ले प्रसन्न हो दक्षप्रजापतिसे बोले ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् बोले—जगत्‌का परमकारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश, उपाधिरहित जो मैं हूँ, वही ब्रह्मा और शिव जगत्‌के आदिकारण हैं ॥५०॥ हे द्विज ! मैं ही त्रिगुणात्मक अपनी गुणमयी मायाको धारण कर विश्वकी स्थिति करनेके लिये उन-उन कार्योंके योग्य पृथक्-पृथक् क्रिया, योग, संज्ञा धारण करता हूँ ॥ ५१ ॥ केवल अद्वितीय परमात्मा, परब्रह्म जो मैं हूँ वे अज्ञानी लोग ब्रह्म, शिव और जीवमें भेदकर समझकर भिन्न-भिन्न रीतिसे देखते हैं ॥५२॥ जैसे पुरुष अपने शिर हाथ चरण आदि अपने अंगोंमेंसे किसी अंगको दूसरेका नहीं जानता,इसी प्रकार महात्मापुरुष सब प्राणियों

श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ॥ सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रेसंज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ५२ ॥ यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत् समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ ५६ ॥

में मेरा ही रूप मानते हैं ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रका आत्मा और अद्वितीय केवल मैं हूँ। जो पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंमें एक भाव समझता है और भेदबुद्धिसे नहीं देखता वह शांतिको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार हृषीकेश भगवानने जब दक्ष प्रजापतिको उपदेश किया, तब प्रजापतियोंके पति दक्षने अपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजन कर फिर दूसरे देवताओंका पूजन किया ॥ ५५ ॥ फिर चित्तको सावधान करके यज्ञके अवशेष भागसे संपूर्ण कर्म पूर्ण करनेवाले महादेवजीका पूजन करके कर्मसे समाप्तिके देनेवाले दूसरे जो अमृतपान करनेवाले देवता हैं उनको भाग दिया ॥५६॥ फिर सब कर्मको समाप्त करके स्तुति

करने लगे, ऋत्विजोंको साथ लेकर उसने सबका भाग दे पीछे यज्ञांत स्नान किया और विप्रोंके लिये दक्षिणा देकर यथासुख विहार करने लगा ॥ ५७ ॥ भगवान्‌की कृपासे दक्षको अपने ही प्रभावसे सब सिद्धियां प्राप्त हो गयी थीं, तो भी धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर सब देवता सुरपुरको चले गये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार दक्षसुता सतीने अपने पूर्वतनुको त्यागकर पीछे हिमाचलकी भार्या मैना नाम्नी रानीमें जन्म लिया, यह बात हम सबने सुनी है ॥ ५९ ॥ वह हिमाचलकी पुत्री अम्बिका, भवानी, पार्वती, प्रलयकालमें सोई हुई शक्ति जैसे आद्य पुरुषको प्राप्त होती है, इसी प्रकार फिर दूसरी वार भी उन्हीं शिवजीको प्राप्त हुई, जो एकवृत्तिसे भक्तोंके मुख्य आश्रयरूप

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥ तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ॥ ५९ ॥ एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्या-दुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६० ॥ इदंपवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनु-कीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुति-वर्णनं नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हैं ॥ ६० ॥ दक्षप्रजापतिके यज्ञविनाशक भगवान् शिवजीका यह कर्म भागवत बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुना था, वह आपको सुना दिया ॥ ६१ ॥ पापपुञ्जका हर्ता और कोटिकष्टविनाशकर्ता, यश और आयुका बढ़ानेवाला तेजका चमकानेवाला, यह अत्यन्त पवित्र शिवजीका चरित्र है, जो मनुष्य प्रेम प्रीतिसे सुने और सुनाये वह प्राणी शिवजीकी भक्तिके प्रतापसे सब पापसे छूट जाता है, ❋ ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

* भजन- शंकर सुख करन सदा, संतन सुखदाई ॥ सेवत सुर नर मुनीश, आद्यरूप जगत ईश । सोहत नित गंग शीश, भस्म अङ्ग छाई ॥ १ ॥ पंचवदन अति विशाल, सोहत दृग लाल लाल । बालचन्द्र वसत भाल, शोभा अधिकाई ॥ २ ॥ पूरण आनंदकन्द, मेट सकल द्वन्द्व फन्द । बैठे निर्द्वन्द्व मन्द, मनको जराई ॥ ३ ॥ ज्ञान भक्ति मुक्ति धाम, रटत रहत अष्टयाम । राम राम राम राम, रघुपति रघुराई ॥ ४ ॥

दोहा–ध्रुव अष्टम अध्यायमें, मात वचन सुनि कान। गये विपिन तप करनको, मिले आय भगवान्॥ मैत्रेयजी बोले कि सनकादिक, नारद, ऋतु, हंस, अरुणि और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं किया, ऊर्ध्वरेता हुए॥ १॥ हे शत्रु दमन! अधर्म भी ब्रह्माजीका पुत्र है, इसलिये उसके वंशका भी वर्णन करते हैं, अधर्मकी मृषा नाम पत्नीमें दंभ नामक पुत्र और माया नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, सो मृत्युके पुत्र नहीं था, इसलिये उन दोनोंको अपने घर उसने रख लिया॥२॥ हे महामते! दंभकी माया नाम भार्यामें लोभ नामक पुत्र और निष्कृति नाम पुत्री हुई, लोभकी निष्कृति नाम स्त्रीमें क्रोध नामक सुत और हिंसा नाम्नी सुता

मैत्रेय उवाच॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः॥ नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः॥१॥ मृषाऽधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायां च शत्रुहन्॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः॥२॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महा-मते॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः॥३॥ दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा॥ ४॥ संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ॥ त्रिः श्रुत्वैतत् पुमान् पुण्यं विधुनोत्या-त्मनो मलम्॥५॥ अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः॥६॥ प्रियव्रतो-त्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ॥ ७॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरु-चिस्तयोः॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः॥ ८॥

उत्पन्न हुई। क्रोधके हिंसा नाम्नी पत्नीमें कलि नाम तनय और दुरुक्ति नाम्नी तनया प्रकट हुई॥३॥ हे सत्तम! कलिकी दुरुक्ति नाम स्त्रीमें भय नाम पुत्र और मृत्यु नाम दुहिता प्राप्त हुई, भयकी मृत्यु नामक स्त्रीमें निरय नाम बेटा और यातना नाम्नी बेटी हुई॥ ४॥ हे अनघ! संक्षेपसे मैंने यह सर्ग वर्णन किया जो पुरुष तीन बार इस अधर्मवंशावलीको सुने उसके शरीरके सब मलका नाश हो जाता है॥ ५॥ हे परीक्षित! पुण्य कीर्तिवाले श्रीभगवान्के अंशसे जिनका जन्म हुआ उन स्वायंभुवमनुका वंश वर्णन करता हूँ॥ ६॥ शतरूपाके पति मनुके भगवान् वासुदेवकी कलासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए और जगत्की रक्षामें स्थिर रहने लगे॥ ७॥ राजा उत्तानपादकी

दो रानियां थीं, सुनीति और सुरुचि, सो उनमें सुरुचिपर उस राजाका अधिक प्रेम था और सुनीति जो ध्रुवजीकी माता थी, वह राजाको प्यारी नहीं थी ॥८॥ एक दिन वह राजा सुरुचिके पुत्रको गोदमें बिठाकर खिला रहा था, उसका नाम 'उत्तम' था, उसी समय ध्रुवजी भी कहींसे आ गये और जब पिताकी गोदीमें बैठनेको उपस्थित हुए, तब पिताने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ९ ॥ और आरोहण करनेकी इच्छा करते हुए अपनी सौतके पुत्र ध्रुवजीको सुनाकर सुरुचिने राजाके सम्मुख ईर्षासे अभिमानके वचन कहे ॥ १० ॥ सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! आप राजकुमार हो तो भी राजसिंहासनके बैठने योग्य नहीं हो; क्योंकि तुमने मेरी कुक्षिमें जन्म नहीं लिया है ॥ ११ ॥ अरे

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥ ९ ॥ तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥ बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥ नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ॥ हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदुह्य बालम् ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥ १५ ॥

अभी तू बालक है इसी लिये तुझे इस बातका कुछ ज्ञान नहीं, कि मैं दूसरी स्त्रीके गर्भमें जन्मा हूँ । जो चेष्टा तू करता है, वह मनोरथ तेरा बहुत दुर्लभ है ॥ १२ ॥ यदि तू राजसिंहासनकी इच्छा करता है तो तपसे आदिपुरुष परमात्माकी आराधना कर । जब उनकी कृपासे मेरे गर्भमें जन्म लेगा, तब राज्य सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करना ॥ १३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सौतेली माताके दुर्वाक्यरूपी कठिन बाणोंसे बिंधा हुआ, वह ध्रुव रोपसे श्वास लेता, दंडहत उरगके सदृश, मौन साधे देखता हुआ, पिताके पाससे रोता हुआ; माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे अधर होठ जिसके फड़क रहे थे । अपने पुत्र ध्रुवको गंभीर श्वास लेता हुआ देखकर उसकी माता सुनीतिने

दौड़कर उसको गोदीमें उठा लिया और जो कुछ उसको सौतने कहा था वह बात पुरवासियोंके मुखसे सुनकर अत्यन्त पीड़ित हुई ॥१५॥ और धैर्यको त्याग शोक दावाग्निके मध्यमें स्थित लताकी नाईं कुँभलाकर वह अबला विलाप करने लगी और सौतके वचनोंको स्मरण कर करके वह कमलाक्षी कमलवत् लजीले नेत्रोंसे आंसू बहाने लगी ॥ १६ ॥ लंबे-लंबे श्वास भरती, दुःखके पारको न पाती वह अबला अपने बालकसे बोली कि हे पुत्र ! औरोंका अपराध मत मानो, जो पहले दूसरेको दुःख देता है; उसको उसका फल निःसन्देह भोगना पड़ता है ॥ १७ सुरुचिने जो कहा सब सत्य है, क्योंकि एक तो तूने मुझ भाग्यहीनके उदरमें जन्म लिया, दूसरे मेरे स्तनोंका दूध

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज श्रिया दृशा बाष्पकला-मुवाह ॥ १६ ॥ दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ माऽमङ्गलं तात परेषुमंस्था भुङ्क्ते जनो यत् परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥ १९ ॥ यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनाया-त्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥ २० ॥ तथा मनुर्वो भगवान् पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥

पीकर इतना बड़ा हुआ, राजा मुझको भार्या कहते तो हैं, परन्तु मनमें अत्यन्त लज्जित होते हैं ॥ १८ ॥ हे वत्स ! ईर्षा छोड़कर निष्कपट होकर जो सत्य वचन तेरी विमाताने कहा है, उसको तू स्वीकार करके श्रीवासुदेव भगवान्‌के चरणारविन्दोंका आराधन कर, जो उत्तमकी नाईं राज्यसिंहासनकी इच्छा हो तो ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणी जिन भगवान् वासुदेवके संसारके पालनेके लिये आत्म श्वास जीतनेवाले जिनकी वंदना करते हैं,ऐसे चरणकमलकी सेवा कर, ब्रह्माजी निश्चय ही ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ उसी भाँति तुम्हारे पितामह भगवान् मनुने जिन आदि पुरुष अविनाशी अंतर्यामीका एकाग्र बुद्धिसे उत्तम दक्षिणावाले यज्ञद्वारा पूजन करके और उपायसे नहीं मिले, ऐसे

भूमिके और स्वर्गके सुखके साथ-साथ मुक्तिके सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! जिन भक्तवत्सल श्रीनारायणके चरणारविन्दोंके पथको मुमुक्षु लोग खोज रहे हैं, तुम भी उन भगवानका आश्रय लो और दूसरा भाव न हो, ऐसे निजधर्म सुशोभित मनमें आद्यपुरुषको स्थित कर श्रीभगवान् वासुदेवका भजन करो ॥२२॥ विना कमलनयन भगवान्के तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला मुझको कोई नहीं दिखायी देता, हे वत्स ! ब्रह्मादिक सब देवता जिसकी खोजमें रहते हैं और लक्ष्मीजी कोमलकमलसे हाथमें कमल लिये जिनकी चाहना करती हैं, उनके चरणारविन्दकी उपासना करो ॥२३॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे मनोवांछित माताके मधुर वचन सुन अपनी मातासे और छोटे-छोटे अपने

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ॥ अनन्यभावे निजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरंग विमृग्यमाणया ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ संनियम्यात्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाऽप्यवमानं ते सम्मानं वाऽपि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥ २७ ॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ ॥

संगके खेलनेवाले बालकोंसे यह बात कह और वासुदेव भगवान्को अपना हितू जान, पिताके पुरसे चल दिया ॥ २४ ॥ भगवान्के परमभक्त पापनाशक नारदजी इस बातको सुनकर उसके मनका पूर्ण दृढ़व्रत जान अपना हस्तकमल उसके शिरपर धरकर विस्मित हो मनही मनमें कहने लगे ॥ २५ ॥ अहो ! क्षत्रियोंका तेज ऐसा उग्र है कि यह अपने मानभङ्गको किंचिन्मात्र भी सहन न कर सका, यह बालक है तो भी विमाताके दुर्वाक्योंको हृदयमें धारण नहीं कर सका ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि हे कुमार! खेल-खिलौने आदिकोंमें आसक्त बालकोंका कोई अपमान करे,वा संमान करे तो उसमें हम कुछ बुरा भला नहीं देखते॥२७॥जो तुमको मान अपमानका ज्ञान है,तो सन्तोषके हेतु ये भिन्न

नहीं है क्योंकि संसारमें पुरुषको मोहसे ही सुख-दुःख होते हैं और किसी प्रकारसे नहीं होते ॥ २८ ॥ हे तात ! इस लिये जब ईश्वर सहायक होते हैं तो कार्य भी सिद्ध होते हैं, इस बातको निश्चय कर परमात्मासे जो कुछ प्राप्त हो, उतनेमें मनुष्यको चाहिये कि अपने मनमें सन्तोष कर ले॥२९॥ और तू माताके कहे हुए योग करने योग्य है, जिनका प्रसन्न होना पुरुषोंपर बहुत कठिन है, दुःखसे आराधन करने योग्य है, यह मेरी भी सम्मति है ॥ ३० ॥ मुनिलोग सबका संग तजकर तीव्रयोगसमाधिसे अनेक जन्मोंसे उनकी पदवीका अनुसरण करते हैं, तो भी जान नहीं सकते ॥३१॥ इसलिये इस हठको छोड़ दे, क्योंकि यह तेरी हठ अच्छी नहीं है और अभी फलदायक भी नहीं होगी, जब

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥ अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनाव-रुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥ मुनयः पदवीं यस्य निस्संगेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृग-यन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥ अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥ ३३ ॥ गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥ ३४ ॥ ध्रुव उवाच ॥ सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥

योग साधनका समय वृद्धावस्था आ जायगी, तब इसके लिये भी प्रयत्न करना ॥३२॥ दैवने जिसके भाग्यमें जो लिखा है, उसको उचित है कि सुखसे दुःखसे उतनेमें ही अपने मनको प्रसन्न रखो,क्योंकि जो उतनेमें ही अपनी आत्माको सन्तुष्ट रखता है,वह पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है ॥३३॥ जो आपसे गुणमें अधिक हो तो उसको देखकर आनंदित होना चाहिये, उसकी निंदा न करें और जो आपसे हीन हो तो उसपर अनुग्रह रखना चाहिये,उसका अनादर न करे और जो अपने समान हो तो उससे मित्र भाव रखना चाहिये परन्तु उससे अपनी उन्नति न चाहे। जो पुरुष इस रीतिसे चलता है,उसका किसी प्रकारसे तापसे विनाश नहीं होता॥३४॥ध्रुवजी बोले कि अ पने सुख-दुःखसे नष्ट

मनवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान्‌ने यह शांतिका उपाय दिखाया है, पर हम सरीखे मतिमन्द मनुष्योंको इसका दर्शन भी नहीं हो सका॥३५॥ तो भी घोर क्षत्रियसुभावको धारण किये मुझ अविनीत अभागेके हृदयमें यह आपका उपदेश ठहर नहीं सकता, क्योंकि सुरुचिके दुर्वाक्य-रूपी शरोंसे मेरा हृदय विंधा पड़ा है ॥३६॥ हे ब्रह्मन् ! संसारमें जो उत्तम पद है उसको कोई नहीं पा सकता; जिस पदको हमारे पिता-पितामह और कोई दूसरा भी उस पदवीको नहीं पहुँचा हो; ऐसे त्रिभुवनके उत्तम पदको जीतनेका मेरा मनोरथ है, वह उपाय कृपा करके मुझे बताओ ॥ ३७ ॥ आप साक्षात् भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हो और वीणा हाथमें लिये जगत्‌के हितके हेतु मार्तण्डकी नाईं खण्ड-खण्डमें

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधुवर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥ नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान् नारदस्तथा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥ नारद उवाच ॥ जनन्याऽभिहितःपन्था स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थं य इच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥

घूमते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, नारद ध्रुवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्य वाक्योंसे उस बालकपर परम स्नेह किया ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि तेरी जननीने जो तेरे अभिप्रायका पंथ बताया है, वह निश्चय मोक्षदायक और वासुदेव भग-वान्‌से मिलानेवाला है, इसलिये मनको सावधान करके उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अपना सुख चाहे तो वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके निमित्त श्रीमन्नारायण के चरणारविंदका आराधन करे, क्योंकि प्रधान कल्याणका कारण वही है ॥ ४१ ॥ इसलिये हे पुत्र ! श्रीयमुनाजीके तटपर अत्यन्त रमणीक मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद सदा विराजते हैं, वहां तू जा, निश्चय तेरा

कल्याण होगा ॥ ४२ ॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर नित्य यमुनाजीके अमृतरूपी जलमें त्रिकाल स्नान कर, अपने नित्यकृत्यसे निश्चित हो, दृढ़ आसन जमाकर तू वहां रहना॥४३॥पूरक, रेचक, कुम्भक, यह तीन प्रकारकी जिसकी वृत्ति हैं, ऐसे प्राणायामसे धीरे-धीरे प्राण इन्द्रिय मनके मलको दूर करके धीर मनसे गुरुरूप कृष्ण भगवान्‌का ध्यान कर ॥४४॥ जनोंके ऊपर प्रसन्न होनेमें सुमुख, निरन्तर प्रसन्नवदन; सुन्दर नेत्र, सुन्दर नासिका, सुन्दर भ्रुकुटी; सुन्दर कपोल देवताओंमें सुन्दर ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ तरुण अवस्था, रमणीय अंग, अरुण होंठ, देखने योग्य बिम्बवत् अधर, नम्रीभूत आश्रितोंके सुखदायक, शरण्यरूप, करुणानिधान॥४६॥ श्रीवत्सका चिह्न धारण किये, मेघवत्, श्यामवर्ण,

स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥४७॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवनमालिनम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ काञ्चीकलाप पर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निर्वृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥ ५२ ॥

वनमाली, अन्तर्यामी, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभित चतुर्भुज हैं ॥४७॥ किरीट, कुण्डल, केयूर, कङ्कणसे देदीप्यमान, कौस्तुभ मणिऔर आभरण, ग्रीवामें देदीप्यमान पीताम्बर पहरे ॥४८॥ कटिमें क्षुद्रघंटिका धारण किये, कञ्चनके नूपुर चरणारविंदोंमें सजाये, अत्यन्तदर्शन योग्य शांतिचित्त, मन और नेत्रोंके आनंदवर्द्धक ॥ ४९ ॥ नख-मणिपंक्तिसे शोभित, पूजित चरण, हृदयकमलकी कलियोंपर विराजमान, जीवात्मामें स्थित हैं ॥ ५० ॥ मंद-मंद मुसकाते, प्रेमसहित अवलोकन, वरदायकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका पहले धारणासे दृढ़ हुए एकाग्र मनसे ध्यान कर ॥५१॥ इस प्रकार मङ्गलदायक श्रीयदुनायकके स्वरूपका जो ध्यान करता है, उस पुरुषका मन तुरंत परमानंदित

हो अन्य विषयोंसे निवृत्त हो जाता है ॥५२॥ हे नृपनंदन ! परमगुह्य जो जपने योग्य मन्त्र है सो सुन, जिसको सात रात्रि मनुष्य जपे तो आकाशके सब देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं॥५३॥ "ॐनमो भगवते वासुदेवाय" उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीव जिनमें निवास करें, उनके लिये नमस्कार है, सज्जन पुरुषोंको उचित है कि इस मन्त्रसे भगवान् वासुदेवकी नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे देशकालके विभागोंको जानकर द्रव्यमयी पूजन करे ॥ ५४ ॥ पवित्र जल वनके फल फूलादिक सुंदर अंकुर, वस्त्र, तुलसीदलसहित भगवान् वासुदेवका पूजन करे ॥ ५५ ॥ शालग्रामशिलादिककी मूर्ति बनाकर द्रव्यमय पूजा करे, अर्वाका पृथिवी जलआदिकसे पूजन करे; इंद्रियोंको जीत, मनको शांत कर, मौन बन, वनके कन्दमूल खाय ॥ ५६ ॥ और अपनी इच्छासे जो अवतार

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" ॥ मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥ सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥ ५५ ॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वार्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्हृदयंगमम् ॥ ५७ ॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥ ५८ ॥ एवं कायेनमनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्यया ॥५९॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥ ६० ॥

धारण करते हैं; उनका चिंतन करे और विष्णु भगवान् फिर अपनी अचिंत्य मायासे अवतार ले सुन्दर सुन्दर लीला करेंगे, इस प्रकार हृदयमें ईश्वरका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ पहले ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने भगवान् वासुदेवकी परिचर्य्या जिस प्रकार की है उन्हीं विधानोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रका उच्चारण करके मन्त्रमूर्तिके अर्थ प्रयोग करे ॥ ५८ ॥ उस प्रकार मन, वचन, शरीरसे मनोगत ईश्वरकी परिचर्य्या करे, इस भांतिकी सेवा करनेसे भगवान् भक्ति करनेवालेको मनोवांछित फल देते हैं ॥५९॥ निष्कपट भजन करनेसे पुरुषोंको भाववर्द्धन करनेवाले भगवान् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ और जो मन अभिलषित धन पुत्रादिक फल चाहते हैं, उसी समय उसको देते हैं ॥ ६० ॥

जो भक्त मुक्ति होनेकी इच्छा करे वह विरक्त होकर भक्तियोगके दृढ़ किये हुए भावसे साक्षात् निरन्तर भावसे भजन करे ॥ ६१ ॥ नारदजीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवजीने उनकी परिक्रमा दे प्रणाम कर भक्तिरूप हरि चरणारविंदसे शोभित मथुराके निकट मधुवनको गमन किया ॥६२॥ ध्रुवजीके वनमें जानेके उपरान्त नारदजी राजा उत्तानपादके अन्तःपुरमें पहुँचे, राजाने नारदजीको आता देख अर्घ्य दे बड़े आदरसत्कारसे पूजन कर आसन दिया; उसपर आनन्दपूर्वक विराजमान होकर ॥६३॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपका मन मलिन, तन छीन हो रहा है; ऐसी क्या चिन्ता है ? आपका धर्म, अर्थ,कर्मसहित नष्ट तो नहीं हो गया॥६४॥राजा

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तपोवन गते तस्मिन् प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ अर्हिताहेणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ॥ किं वा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ॥ ६४ ॥ राजोवाच ॥ सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना ॥ निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान् कविः ॥६५॥ अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मा स्मादन्त्यर्भकं वृकाः ॥ श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ॥६६॥ अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ॥ योऽङ्कं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥ ६८ ॥

बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्त्रीके विवश होकर निर्दयपनसे सकल सुलक्षणधाम महात्मा अपने पांच वर्षके बालक पुत्रको उसकी माता समेत घरसे निकाल दिया ॥६५॥ हे नारदजी ! जिसका कोमल मुखारविन्द कुम्हला रहा है, ऐसे अनाथ भूखे थके हुए सोते बालकको कहीं भेड़िया न खा जाय, क्योंकि वनमें अकेला होगा ॥६६॥ हाय ! मुझ दुरात्मा दुर्जन दुर्भागी स्त्रीजितकी ओर तो देखो, वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढ़ता था और मुझ महानीचने नारीविवश हो उसको गोदीमें न लिया ॥ ६७ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपने-अपने

पुत्रकी महिमाको नहीं जाना, वह बड़ा प्रतापी है और भगवान् उसके रक्षक हैं इस लिये ऐसे सुतका सोच तुम न करो, क्योंकि " जिसका राम रक्षक उसका कौन भक्षक" ॥ ६८ ॥ जो लोकपालोंसे भी न हो सके; ऐसे-ऐसे महाकठिन कर्म करके वह ध्रुव तुम्हारा यश विस्तार करता हुआ बहुत शीघ्र आयेगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुनकर पुत्रका सोच करने लगे और राज्यलक्ष्मीका किंचिन्मात्र भी आदर न किया ॥ ७० ॥ ध्रुवजीने देवर्षिकी आज्ञानुसार मथुराजीमें आ यमुनाजीमें स्नान कर वहां एक

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ एष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव ॥ ६९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥ तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन् हरिम् ॥ ७२ ॥ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत् समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन् देवमधारयत् ॥ ७५ ॥

रात्रि उपवास किया, फिर सावधान हो एकान्तचित्त कर भगवान्का ध्यान करने लगा ॥ ७१॥ तीन-तीन रात्रिके अंतमें कैथ और बेरोंके आहारसे अपने शरीरकी स्थितिके अनुसार एक मास व्यतीत किया और अत्यन्त प्रीति बढ़ाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरणारविन्दका ध्यान किया ॥७२॥ दूसरे मासमें ध्रुवजीने छठे-छठे दिन आपसे आप गिरे हुए तृण और पत्तोंको खा खाकर उदरपूर्ति की और हरिका भजन किया ॥७३॥ तीसरे मासमें नौ-नौ दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोक ईश्वरका समाधिसे पूजन किया ॥ ७४ ॥ चौथे महीनेमें

१ शंका-कटहल, बदरीफल, सूखे पत्र, जल, वायु इन भोजनोंसे ध्रुवकी भूख भी नहीं गयी और उपवासका व्रत भी भ्रष्ट हो गया, तब इन फलोंको छोड़कर केवल उपवास ही करके ध्रुवजीने तप क्यों नहीं किया । उत्तर-यह वचन धर्मशास्त्रमें लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जो यज्ञोपवीत नहीं लेने पाये और बालपनमें ही वनको चला जाय तो विना जनेऊके तप करना चाहिये, परंतु विना आहार किये उसे तपकी सिद्धि न होगी, बड़े बुद्धिमान ध्रुवने ऐसा जान फल और पत्ते खाकर तप किया, ऐसा भोजन करनेपर उपवास भी नहीं हुआ और तृप्ति भी नहीं हुई !

बारह-बारह दिनमें श्वासको जीतकर वायु भक्षण कर श्रीगोविन्दके चरणारविंदका ध्यान किया ॥ ७५ ॥ जब पांचवाँ मास प्रारंभ हुआ तब नृपनंदन ध्रुवजी श्वासको जीत खम्भकी नाईं एक चरणसे खड़े होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे॥७६॥इसकेअनन्तर सब ओरसे मनको खींचकर हृदय पञ्चभूत अर्थात् शब्दादि विषय और इंद्रिय अंतःकरणमें भगवत्के रूपका ध्यान करने लगे।ऐसे कृष्णमय हो गये कि जहां देखो वहां कृष्ण ही कृष्ण दिखायी देते थे ॥७७॥ जब महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वरकी उसने इस प्रकार धारणा की तब एकाएकी तीनों लोक कांप उठे॥७८॥जब वह नृपकुमार एक चरणके आधारसे खड़ा रहा तब धरणी उसके अंगूठेसे दबी तो झुकने

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ ७६ ॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ॥ ध्यायन् भगवतो रूपं नाद्राक्षीत् किंचनापरम् ॥७७॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥ यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही॥ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे॥७९॥तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया॥लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम्॥८०॥देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भगवन् प्राणरोध चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥ ८१ ॥

लगी, जैसे गजेन्द्रके एक पग दक्षिण और वाममें धरनेसे पद-पद पर नौका झुक जाती है, ऐसे थोड़ीसी एक ओरको झुक गयी ॥ ७९ ॥ अनन्य मन प्राण जीत दशों द्वारोंको रोककर आत्माके साथ अभेद दृष्टिसे विश्वात्मा विष्णु भगवान्का जब उसने ध्यान किया तब श्वासके रोकनेसे सब विश्वका श्वास रुका और लोकोंका दम घुटने लगा,तब लोकपाल और सब देवता महादुःखी हुए और इस भेदको न जाने, भगवान्की शरणमें गये ॥ ८० ॥ देवता बोले कि हे भगवन् ! सर्वान्तर्यामी चराचरलोकके प्राण क्यों रुक गये, इसका कारण हम नहीं जानते, हे शरणागतवत्सल ! हम सब आपकी शरण हैं, इस महाविपत्तिसे हमें बचाओ ॥ ८१ ॥

श्रीभगवान् बोले कि तुम कुछ भय मत करो, एक बालकने तप किया है,सो उसको मैं अभी जाकर निवृत्त करूँगा तुम अपने अपने स्थानको जाओ उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके तप करनेसे मुझमें उसकी आत्मा सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हुई है*॥८२॥ इति श्रीमद्भा० महा०भा० टी०ध्रुवस्य मधुवन समागमवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥दोहा–इस नवमें अध्यायमें,ध्रुव हरिसों वर पाय। आय भवन सबसे मिले,मात चरण शिर नाय॥ मैत्रेयजी बोले कि,जब उन देवताओंका भय दूर हो गया, तब सब भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके सुरपुरको चले गये और श्रीभगवान् गरुड़पर चढ़कर अपने भृत्यके देखनेके लिये मधुवनमें आये॥१॥ध्रुवजी नेत्र बंद किये अपने ध्यानमें मग्न थे। योगसे पकी

श्रीभगवानुवाच॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा॥८२॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० ध्रुवोपाख्याने मधुवनसमागमनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच॥ त एवमुच्छिन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्॥ सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥ १ ॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम्॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत्॥ दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन्॥ ३ ॥

हुई तीव्र बुद्धि करके हृदयकमलके कोशमें प्रकाशित चपलासम चमकवाले भगवत्के चतुर्भुजी स्वरूपको जब हृदयमें न देखा तो एका एकी चौंक उठे और आंख खोलकर चारों ओरको देखा तो वही सुन्दर सुहावनी मनभावनी मूर्ति जिनका हृदयमें ध्यान कर रहे, वेही भगवान् सन्मुख विराजमान हैं॥ २ ॥ उनका दर्शन करके विस्मयको प्राप्त हो, देहको पृथ्वीमें नवा दण्डवत् की और ऐसा जान पड़ा कि मानो मनोहर छबिके रसको नेत्रोंसे पियेंगे, मुखसे चुम्बन करेंगे,भुजाओंसे मिलेंगे,इस प्रकार ध्रुवजीने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया॥३॥

* राग भैरवी—भक्त हैं मेरे जीवन प्रान॥ जब जब भीर परत भक्तन पर धरत हमारो ध्यान। उसी समय सुधि लेत गरुड़ चढ़ त्याग खान अरु पान॥ १ ॥ भक्त०॥ भक्तहेतु अवतार लेत हूं भूमण्डलमें आन। हम भक्तन के भक्त हमारे करत सदा सम्मान॥२॥भक्त०॥ जो कोइ मेरी शरण लेत हैं मुझको अपनो जान। मेरे हृदय वसत सो निशिदिन सज्जन सुजन सुजान॥३॥ भक्त०॥ मैं अपने पूरण भक्तोंको देत हृदय सुस्थान। शालिगराम नामसे बढ़कर और कौनसो दान॥ ४ ॥ भक्त०॥

और कुछ भगवान्‌की स्तुति करनेकी इच्छा थी, परंतु कुछ कहना नहीं जानता था, इस भोलेभाले बालकके और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् वासुदेवने उसके मनकी भावना जान हाथ जोड़ खड़ा देख, उसपर अनुग्रह करके पांचजन्य शंख उसके कपोलोंसे छुवा दिया ❋ ॥ ४ ॥ ध्रुवजी उसी समय देववाणीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे जीव और ईश्वरके निर्णयको जान ज्ञान, विज्ञान और भक्ति भावसे सब प्रकार प्रगट है प्रताप जिनका ऐसे ध्रुव स्थाननिवासी भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ ध्रुवजी बोले कि जो अखिल

स तं विविक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः॥कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः॥ तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥ ध्रुव उवाच ॥ योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरण-श्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥

शक्तिधारक मेरे भीतर प्रवेश कर, मेरी सोयी हुई वाणीको और हाथ, पांव, कर्ण, त्वचा, प्राणादिकोंको सर्वशक्तिधारी अपने तेजसे जिलाते है, उन भगवान् पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे नाथ ! तुम एक हो, अपनी मायारूप अनेक गुणशाली शक्तिसे महदादिक; सब यह जगत् रचकर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस मायाके असत् गुणोंमें नानारूप होकर प्रकाशित होते हो, जैसे काष्ठमें अग्नि नानारूप

---

१. शंका–ध्रुवने पहले भगवान्‌को अपने हृदयमें देखकर फिर तुरंत अपने सन्मुख भगवान्‌को खड़ा देखकर फिर जान-बूझकर मूर्ख क्यों हुए, भगवान्‌के किंचिन्मात्र नाम लेनेसे मनुष्य परमज्ञानी हो जाते हैं और ध्रुवजीने तो दर्शन किया फिर पीछे मूर्ख क्यों हुए ?

उत्तर–पांच वर्षकी अवस्थामें ध्रुवको पिताने त्याग दिया, इसलिये रात दिन ध्रुव दुःखी रहते थे और भगवान्‌को देखकर प्रेमसे ध्रुवकी आंखों से जल बहने लगा और कंठ गद्गद हो गया, शरीर पुलकायमान हो गया। इस कारण ध्रुवसे बोला नहीं गया, और भगवान्‌की स्तुति भी ध्रुवसे नहीं हो सकी ।

होकर प्रकाश करती है ॥७॥ हे भगवन् ! शरणागत ब्रह्माने आपके दिये हुये ज्ञानसे जैसे सोता हुआ उठता है, ऐसे इस विश्वको देखा, अतः हे आर्तबन्धो ! आपके किये उपकारोंका जाननेवाला, मुक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले आपके पादमूलको किस प्रकार भूल सकता है ? ॥८॥ जन्म-मरणसे मोक्ष देनेवाले आपको जो पुरुष विषयादिक कर्मोंके लिये भजते हैं, निःसन्देह वे आपकी मायामें भ्रष्टमति हैं, क्योंकि कल्पवृक्षके सदृश आपको पूजकर वे पुरुष मृतककी नाई, शरीर करके उपभोगकी चाहना करते हैं, हाय ! अरे मूर्खो ! विषयजन्य सुख तो प्राणियोंको नरकमें भी प्राप्त हो सकता है ॥ ९ ॥ हे नाथ ! शरीरधारियोंको जो सुख आपके चरणारविन्दके ध्यानसे अथवा आपके

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तः प्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥ ८ ॥ नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥ या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किं त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥ १० ॥ भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ॥ येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥ ११ ॥ ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्ज नाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्धलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ १२ ॥

वैष्णवजन ब्राह्मणोंकी कथा श्रवणसे होता है, वह आनन्द अपनी महिमामें और ब्रह्ममें तो है ही नहीं, फिर यमराजके खड्गरूप कालसे मरनेवाले, विमानसे गिरनेवाले सुरपुरवासियोंको कहां मिल सकता है ॥ १० ॥ हे अनन्त ! सदा आपकी निरंतर भक्ति करनेवाले, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरणवाले महात्मा जनोंका सदा सत्संग बना रहे। जिन सज्जनोंके मुखसे आपके गुणोंकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे उन्मत्त हो इस महादुःखदायी संसारको विना प्रयास उलंघन करूंगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! हे कमलनाभ ! जो पुरुष आपके चरणकमलकी सुगंधिके लोभी हृदयवालोंका सत्संग करते हैं, वे लोग न अतिशय प्रिय अपनी देहको समझते हैं और न इस शरीरसंबन्धी

सुत, सुहृद, भवन, धन, स्त्री इत्यादिका अनुसंधान करते हैं ॥ १२ ॥ हे ईश ! हे परम ! ! पशु, पक्षी, पर्वत, द्विज, सर्प, देव, दैत्य, सत्, असत्, विशेष समेत महदादि अनेक कारणवाले आपके केवल इस विराट्रूपको तो मैं जानता हूँ, परन्तु इससे परे उस परमेश्वर स्वरूपको नहीं जानता, जहां कोई वादविवाद न कर सके और शब्दका भी सञ्चार नहीं है ॥ १३ ॥ महाप्रलयके समय इस विश्वको उदरमें रखकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीको गोदमें एक पुरुषरूप शयन करते हो, जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न हुए सुवर्णमय लोककमलकी कर्णिकामें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उन भगवान्‌को मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ तुम नित्यमुक्त हो, सब ओरसे विशुद्ध हो, सदा ज्ञानवान् हो, सर्वव्यापक

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥ कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णञ्छेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदंके ॥ यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ १४ ॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥

हो, सर्वान्तर्यामी हो, आदिपुरुष हो, भगवान् हो, त्रिगुणोंके ईश्वर हो जो बुद्धिकी अवस्था है उन्हें अखंडित अपनी दृष्टिसे देखते हो, विश्वकी स्थितिमें अतिपूज्य हो, सबसे पृथक् होकर तुम रहते हो ॥ १५ ॥ जिसमें विरुद्धगतिवाले विद्यादिक सर्व शक्तियाँ क्रमसे निरन्तर होती हैं, उस विश्वके उत्पन्न करनेवाले अनन्त, अखण्ड, अनादि, निर्विकार, आनन्दमय परब्रह्मकी मैं शरण हूँ ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! पुरुषार्थ मूर्तिके तुम्हारे चरणकमलके भजन करनेवालोंके आशीर्वादसे सब सत्य आशिष (परमार्थफल) निश्चित होते हैं, हे श्रेष्ठ ! यह वार्ता ऐसे है, तथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछड़ेको दूध पिलाकर सिंहादिकसे रक्षा करती है, उसीकी नाईं आप अनुग्रह युक्त करुणारससे कातर होकर

मुझसरीखे दीनोंकी सब ओरसे रक्षा करते हो ॥१७॥ मैत्रेयजी बोले कि सत्संकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने जब इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तानुरागी भक्तवत्सल भगवान्ने आनंदित होकर यह वचन कहा ॥१८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजपुत्र! तेरे मनका विचार मैं जानता हूँ, उसे मैं देता हूँ, हे सुव्रत! तेरा मंगल हो, हे ध्रुव! वह पद और दूसरे मनुष्यको आजतक दुःखसे भी नहीं मिला ॥ १९ ॥ हे भद्र! जो प्रकाशमान ध्रुवस्थान है, वहां और कोई स्थित नहीं है, जिसमें ग्रह, नक्षत्र, ताराओंका ज्योतिश्चक्र अर्पित है ॥ २० ॥ उसी ज्योतिश्चक्र की * मेढीमें लगे हुए वृषभचक्रवत् स्थित है और ऊपरके कल्पवासियोंसे अधिक स्थायी है अर्थात्

मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥ चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥ २१ ॥ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिता मण्डलं भुवः ॥२२॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २३ ॥ इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥

त्रिलोकीका लय होनेपर भी उसका लय नहीं होता। धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र वनवासी मुनि अर्थात् सप्तऋषि तारामण्डल सहित जिसकी परिक्रमा करके विचरते हैं, हे ध्रुव! वह सबमें सिद्ध ध्रुवस्थान मैंने तुझको दिया ॥ २१ ॥ अब तू अपने नगरको जा, तेरा पिता तुझको राज्यतिलक देकर बनको जायगा और तू गन्धर्वोंसे युद्ध कर अपना मनोरथ पूज धर्मानुसार छत्तीस सहस्र वर्षपर्यन्त भूमण्डलकी रक्षा करेगा ॥ २२ ॥ तेरा भाई उत्तम आखेटको जायगा और वहां उसका प्राण नष्ट होगा, तब अपने पुत्रके ढूँढ़नेके लिये उसकी जननी वनमें जायगी और वहां जब वह न मिलेगा, तो उसीके ध्यानमें दावानलमें जलकर मर जायगी ॥ २३ ॥ तब तू महाचक्रवर्ती हो यज्ञ

* धान निकालनेका घूमते हुए पशुके बन्धनका जो बीचका खम्भ होता है उसको "मेढी" कहते हैं।

करेगा और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा दे इन्द्रसे भी अधिक विभूतिको प्राप्त करेगा और बहुतसे यज्ञ करके और सब सत्य आशीर्वाद यहां भोग अन्तमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ फिर सब लोक जिसको प्रणाम करते हैं, सप्तऋषियोंसे भी ऊपर उस मेरे स्थानको जायगा और ऋषि तेरी स्तुति करेंगे, जहांका गया फिर लौटकर यहां नहीं आ सकता ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार पूजित हो, अपना स्थान दिखा उस बालकके देखते-देखते गरुड़ध्वज भगवान्ने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ २६ ॥ यद्यपि वह ध्रुव विष्णु भगवान्के पादारविन्दकी सेवामें लब्धसंकल्प मोक्षरूप अपनी मनःकामनाको प्राप्त हो गया था, तो भी अपने मनमें प्रसन्न न

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्चितम् ॥ लब्ध्वाऽप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिनानैकभवेन यत्पदं विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥

हुआ; क्योंकि श्रीपति भगवान्के दर्शनका वियोग विचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओरको चला ॥ २७ ॥ विदुरजी बोले कि जो विष्णु भगवान्का परमपद सकाम पुरुषोंको महादुर्लभ है, वह भगवत्के पदार्चनसे उस सिद्धिको एक ही जन्ममें प्राप्त होकर उसने अपने आपको निष्फलसा क्यों समझा ! ध्रुव तो सब अर्थवेत्ता थे ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि विमाताके वाक्यरूपी बाणोंसे बिंधे हुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यान बना रहा, और मुक्तिपति भगवान्से मुक्ति नहीं मांगी, राज्यका ही अनुराग मनमें लगा रहा इसीसे राज्य मांगा परंतु उसको पश्चात् बहुत ताप हुआ ॥ २९ ॥ ध्रुवजी बोले कि, अनेक जन्मोंसे समाधि लगाकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदनादिकोंने

जिस पदको नहीं पाया, वह मैं छः मासमें अव्यक्त भगवान्की पदछायाको प्राप्त होकर, हाय ! मैं भिन्नमति फिर संसारका संसारमें रहा ॥ ३० ॥ अहो ! मंदभागी मेरी दुरात्माका भाव तो देखो, संसारनाशक भगवत्के चरणकमलको प्राप्त होकर नाशवान् पदार्थको मांगा ॥ ३१ ॥ मेरे वरदानको सुनकर देवतालोग सहन न कर सके, उन देवताओंने मेरी मति हर ली, हाय ! मेरी मति मंद होनेका कारण यही है, जो मुझ दुरात्माने नारदजीका वचन न माना ॥ ३२ ॥ जगत्में कोई दूसरा मेरा विरोधी नहीं था तो भी दैवी मायाके अधीन होकर जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें द्वितीय अनेक असत् वस्तु देखता है, वैसे ही व्यर्थ भाईका ही जो हृदयमें शत्रुभाव लग रहा है,उस क्लेशसे

अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥ ३१ ॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥३२॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥

वृथा संतापको प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥ जैसे आयुक्षीणकी चिकित्सा करना वृथा है, इसी प्रकार मैंने जो यह मांगा है, वह सब वृथा है, क्योंकि मुझ कर्महीन अभागेने विश्वात्मा विश्वाधार जो अनेक जन्म तप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्रसन्न होते हैं,उन सर्वशक्तिमान् भगवान्को प्रसन्न करके फिर इस नाशवान् संसारको ही मांगा, धिक्कार है, धिक्कार है, मेरी इस अज्ञानताको, सब ठौर भाग्य बलवान् है, न तप है, न विद्या है ॥ ३४ ॥ भगवान् तो मुझको परमधाम देते थे और अपने समान बनाते थे, परंतु मुझ भाग्यहीनने अपनी शठतासे शठ बन मान मांगा, जैसे निर्धन पुरुष चक्रवर्ती राजाको प्रसन्न करके धनधान्यको छोड़ धानोंका तुष मांगे, इस प्रकार मैंने मांगा * ॥ ३५ ॥

* एक दृष्टांत स्मरण हुआ " चार पंडित रोजगारके लिये अपने घर से परदेशको चले, उनमें एक ज्योतिषी, दूसरा नैयायिक, तीसरा वैयाकरणी, चौथा वेदान्ती था, वे एक नगरमें पहुँचे और सबने यह विचार किया कि राजासे मिलना चाहिये, ज्योतिषीजीसे कहा कि कोई श्रेष्ठ मुहूर्त विचारो, ज्योतिषीजीने कहा कि आधीरातका मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है, यह विचार चारों आधीरात के समय राजभवन को चल दिये, वहां का दरवाजा बन्द हो गया था, बहुत सोच विचार किया कि अब क्या करें ? निदान परनालेके मार्गसे होकर प्रवेश किया, देखा तो वहां एक धानकी भूसीका ढेर पड़ा है, सब बोले कि इसीको ले चलो, हमारी भैंस की सानीके ही काम आवे, यह चोरोंने भूसी–

मैत्रेयजी बोले कि हे तात! आपके समान जो भगवान् वासुदेवके चरणमूलके सेवा करने वाले दास हैं, वे दास्यभावके विना और पदार्थकी इच्छा नहीं करते क्योंकि मानकी समृद्धि तो यदृच्छासे ही प्राप्त हो जाती है ॥ ३६ ॥ नगरके निकट जब ध्रुव आया तो दूतोंने राजासे कहा कि महाराज ! आपका पुत्र ध्रुव आता है। पुत्रका आना सुन राजाको विश्वास न आया, जैसे मरे हुएके आनेका वृत्तान्त सुनकर कोई विश्वास नहीं करता है ऐसे ही पुत्रका आना सुन राजाको श्रद्धा न हुई और कहा कि मुझ अमांगलिकके मंगल कहांसे आया ? ॥ ३७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ॥ वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनस्समृद्धयः ॥ ३६ ॥ आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथाऽऽगतम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥३७॥ श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ३८ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ३९ ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥

फिर नारदजीके वाक्योंमें विश्वास करके आनन्दके वेगसे धर्षित हो, ध्रुवजीके आनेका समाचार सुन दूतोंको बहुत धन और हार दिये ॥ ३८ ॥ सुन्दर-सुन्दर सुवर्णके रथ उत्तम-उत्तम वस्त्रोंसे मढ़े जिनमें श्यामकर्ण घोड़े जुते, ऐसे-ऐसे सुहावने मनभावने रथोंपर बैठ-बैठकर, ब्राह्मण, गुरु, कुलवृद्ध, मंत्री, सज्जन बन्धुजनोंको साथ लिया ॥ ३९ ॥ और शंख, दुन्दुभी, बाँसरी बजाते, ब्राह्मण, वेदध्वनि करते हैं, इन सबके साथ पुत्रके दर्शनकी उत्कण्ठासे राजा शीघ्र पुरसे चला ॥ ४० ॥ सुनीति और सुरुचि दोनों राजा उत्तानपादकी स्त्री सुंदर शृंगार

—बांधी। व्याकरण शास्त्री बोले कि राजासे भेंट हुई ही नहीं, भाई ! राजासे भेंट कर लो जाकर देखा तो राजा पंलगपर सो रहे हैं, इनको निहार राजा पुकार उठा कि चोर हैं ! चोर हैं ! पकड़ लो, यह बोले कि चोर नहीं हैं, हम पंडित हैं, आपके दर्शन करनेके लिये आये हैं। तब राजाने दण्डवत् करके कहा कि आपने बड़े कुसमयमें शुभागमन किया ? पंडित बोले महाराज मुहूर्त इसी समयका था, फिर राजाने कहा कि आपकी जो इच्छा हो सो माँगो। पंडितोंने कहा केवल आपके दर्शनोंकी ही आकांक्षा थी और लेनेके लिये तो पहले ही भूसीकी गठरियें बांध चुके, राजाने कहा तुम्हारी इच्छा, मार्ग में आकर बड़ा पश्चात्ताप चारोंने किया, ।" सोई गति ध्रुवजीकी हुई।

करके सुवर्णकी पालकियोंमें बैठकर उत्तम कुमारको संग ले ध्रुवकी अगवानीको चलीं ॥ ४१ ॥ उपवनके समीप ध्रुवको आता देख राजा शीघ्र स्यन्दनसे उतरकर प्रेमविवश पुलकायमान हो पुत्रके पास गया ॥ ४२ ॥ और मनमें अत्यन्त उत्कलित होनेके कारण श्वास लेता हुआ भगवत्के चरणस्पर्शसे जिस ध्रुवके सब पाप नष्ट हो गये थे, उस अपने सुतसे भुजा पसारकर मिले ॥ ४३ ॥ वारंवार उसका शिर सूंघकर राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे सुतको स्नान कराया और राजा उत्तानपादके मनके सब मनोरथ सफल हुए ॥ ४४ ॥ फिर ध्रुवने पिताके चरणोंको दण्डवत प्रणाम किया। राजाने बहुत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, फिर विमाताके पदोंमें मस्तक नवाकर

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ४२ ॥ परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघ बन्धनम् ॥ ४३ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ४४ ॥ अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ॥ ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४६ ॥ यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ ४७ ॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्त्रौघं मुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥ सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥

प्रणाम किया। जो ध्रुव सज्जनोंमें अग्रणीय और आदर-सम्मान पानेवाला था ॥ ४५ ॥ अपने पावोंसे उस ध्रुवको उठा हृदयसे लगाकर नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! युग-युग जीओ ॥४६॥ जो सुरुचिने ध्रुवमें अत्यन्त प्रेमप्रीतिभरी बातें कीं तो क्या आश्चर्य ? जिसके ऊपर स्वयं हरि भगवान् मैत्री आदि गुणोंसे प्रसन्न होते हैं, उसको सब प्राणीमात्र नमस्कार करते हैं, जैसे जल आपसे आप नीचेकी ओरको ढला चला जाता है ॥४७॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमविवश परस्पर मिलनेसे रोमांचित हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे ॥ ४८ ॥ फिर सुनीति ध्रुवकी जननीने अपने प्राणोंसे भी प्यारे सुतसे मिलकर हृदयकी दाहको शीतल किया और अंगके

स्पर्शसे परमानन्द हो सब विषाद मनसे त्याग दिया ॥ ४९ ॥ हे विदुर ! उस समय सुनीतिके स्तनोंसे दूध टपकने लगा और नेत्रोंसे निर्मल जलकी धारा बहने लगी, उस समय वीरपुत्रको जननी दोनों धाराओंसे वारम्वार सींच रही थी ॥ ५० ॥ उस सुनीतिकी सब लोग सराहना करने लगे कि बहुत अच्छा हुआ, जो भक्तोंका दुःख हरनेवाला;समस्त भूमण्डलका रक्षक,पांच वर्षका तेरा पुत्र जो नगरसे निकल गया था, वह धरणी और धर्मका आधार कुशलपूर्वक तुझको मिला ॥ ५१ ॥ निश्चय होता है कि भगवान् वासुदेव प्रणतोंके दुःखभञ्जन, भक्तमनरञ्जन, श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविन्दका तूने भलीभांति आराधन किया है, जिनके ध्यान करनेवाले वीरपुरुष महाकठिन मृत्युको भी जीत लेते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ध्रुवकुमारको वारम्वार लाड़लड़ाते और देख

पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ॥ तदाऽभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५० ॥ तां शशंसुर्नरा राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्त्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥ तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासस्स्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥

देख सुख पाते थे। उस ध्रुवको उत्तम कुमार समेत हथिनी पर चढ़ाकर राजा आनन्दपूर्वक नगरकी ओरको चले और सब लोग आगे आगे स्तुति करते हुए चले ॥ ५३ ॥ उस नगरमें जहां-तहां मरकतमणि लस रहे थे। तोरण, वंदनवार द्वार-द्वार पर विराज रही थीं समूहके समूह, केलेके खंभोंके जहां-तहां वैसे ही श्रीफल सुपारीके छोटे-छोटे वृक्ष शोभा दे रहे थे ॥ ५४ ॥ आम्रपल्लव वस्त्र माला और मोतियोंके लम्बे-लम्बे हार जिनमें लटक रहे थे, द्वार-द्वारपर दीपोंकी जगमग ज्योति हो रही थी, उनके प्रकाशसे सुवर्णके कलश कलशियां बिजलीसी झमझमा रही थीं ॥५५॥ नगरकोट, कोटद्वार, गोपुर, मंदिर मंदिरपर सुन्दर-सुन्दर सुवर्णकी सामग्री सुशोभित और सब ओरसे

श्रीमत् विमान शिखरोंकी कांतिसे देदीप्यमान थे ॥५६॥ जहां सुन्दर सुन्दर चौकटियां, बीथी, अटा, अटारी और मार्ग सेवतीके जलसे छिड़का हुआ, चन्दनसे चर्चित, खीलें, चावल, पुष्प, फल, तंदुल, लौंग, बखेर, रहे हैं और भेटें धरी हैं ॥५७॥ दधि, दुर्वा, सरसों, फल, अक्षत थालोंमें धरकर पुरकी स्त्रियाँ दौड़ दौड़कर ध्रुवसे मिलनेको आती थीं ॥ ५८ ॥ और अत्यन्त स्नेहसे सत्य आशीर्वाद देती थीं, उनकी कोकिलकंठियोंके मनोहर गीतोंको सुनते हुए ध्रुवजी पिताके भवनमें चले गये ॥ ५९ ॥ महामणियोंके उस परमोत्तम मंदिरमें पिताने बहुत लालन किया, स्वर्गमें देवता जैसे वास करते हैं ऐसे पिताके भवनमें ध्रुवजी निवास करने लगे ॥ ६० ॥ जिसमें

मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ॥ लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५७॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥५८॥ उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥ ५९ ॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥६०॥ पयः फेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ॥ ६१ ॥ यत्र स्फटिककुडयेषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्यो वैडूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६४ ॥

हाथीदांतके पायोंका पलंग, सुवर्णकी सामग्री, दूधके फेनके समान शय्या बिछी हुई थी, बहुमूल्य आसनोंकी शोभा हो रही थी और सब कर्मकी सामग्री ठौर-ठौर धरी थी ॥ ६१ ॥ बिल्लौरकी भीतें जिनमें महामरकतमणिके आले बने हुए, उनमें मणियोंके दीपक जहां-तहां धरे जगमगा रहे हैं और स्त्रीरत्न जहां बहुत इकट्ठे हैं ॥६२॥ अत्यन्त रमणीक जहां बाग लग रहे हैं, वहां विचित्र कल्पद्रुम समान वृक्षोंपर रंग-रंगके पक्षियोंके जोड़े अपनी-अपनी मनोहर बोलियाँ बोल रहे थे, और मतवाले भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड गुञ्जार कर रहे थे ॥६३॥ कनकमयी बावड़ी-तड़ागोंमें निर्मल नीर झकोल रहे थे, वैदूर्यमणियोंकी सुन्दर शोभायमान् सोपान चारों ओर वन रही थीं। पद्म, कंज,

उत्पल, कह्लार जिसमें चार प्रकारके कमल फूल रहे थे और हंस, सारस, बक, चकवे, चकवियोंके समूहके समूह किलोलें कर रहे थे। सुरेन्द्र, नागेन्द्र और किसी नरेन्द्रके जो ऐश्वर्य आजतक नहीं हुई वह सब ऐश्वर्य भगवान्‌की कृपासे ध्रुवजीके नगरमें उपस्थित था॥६४॥ उत्तानपाद राजा अपने ऋषिपुत्रका अद्भुत प्रभाव कानोंसे सुनकर और नेत्रोंसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ ॥६५॥ ध्रुवजीको हरिभक्त जानकर और अपनी वृद्धावस्था देखकर प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि अधिकार तो उत्तम कुमारका है, क्योंकि वह ज्येष्ठ पुत्र है परन्तु मेरे मनमें यह विचार है कि राज्यपद ध्रुवजीको दूँ, क्योंकि ध्रुवमें सब गुण हैं सचिव और प्रजागण एकवार पुकार उठे कि हे पृथ्वीनाथ! आपने ठीक विचार किया है, ध्रुवजीका ही राज्याभिषेक करना चाहिये। प्रजाओंकी सम्मतिसे सबको अनुरागी देख

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः ॥ वनं विरक्तःप्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीभा० म० च० ध्रुवोपाख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥

राजाने राज्याधिकार दे पृथ्वीका पति ध्रुवको किया ॥ ६६ ॥ और राजा उत्तानपाद अपना देह वृद्ध जानकर सबसे विरक्त हो अपनी आत्माकी गति विचार करके तप करनेके लिये वनको चल दिया ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां ध्रुवस्य भगवत्कृपया पुनः राज्य प्राप्तवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–इस दशमें अध्यायमें, ध्रुव अलकापुर जाय। जैसे मारे यक्ष सब, अति वीरता दिखाय। मैत्रेयजी बोले कि शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमी नाम्नी कन्यासे ध्रुवजीने विवाह करके उसमें 'कल्प' और 'वत्सर' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥१॥ दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला नाम्नीसे महाबली ध्रुवजीने 'उत्कल' नामक पुत्र उत्पन्न किया और

उसी रानीसे एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ उत्तम कुमारने अपना विवाह ही नहीं किया था। वह पहले ही हिमालय पर्वतके भीतर आखेट खेलनेको गया था, वहां एक बलवान यक्षने उनको मार डाला और उसकी माता भी उसके समान गतिको पाकर मर गयी ॥ ३ ॥ जब ध्रुवजीको मालूम हुआ कि उत्तमकुमार यक्षके हाथसे मारा गया, तब कोप अमर्ष शोकमें मग्न हो जयदायक रथमें बैठ कर अकेले ही पुण्यजनोंके निवासस्थल (अलकापुरी) पर चढ़ाई की ॥४॥ रुद्रके अनुचर जिसमें वास करते हैं ऐसी उत्तर दिशामें जाकर

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥ ३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचाऽर्पितः ॥ जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेवि-ताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥ ५ ॥ दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहु खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहन्तस्तं निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥

हिमालय की गुफामें ध्रुवजीने अलकापुरी देखी ॥५॥ तब बड़ी बाहुवाले ध्रुवने शंख ध्वनि, की, जिसके शब्दसे आकाश और दशों दिशायें गूँज उठीं; मानो वज्रपात हुआ, हे विदुर ! उद्विग्नमन करके यक्षोंकी स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत हुई ॥ ६ ॥ तब शंखनाद सुनकर कुबेरके महाबली उपदेव, महाभट, गुह्यक, राक्षस, गंधर्वोंने प्रथम तो पृथ्वी और पर्वतोंकी ओर देखा; जब कुछ दृष्टि न आया तो क्रोधवंत हो कुबेर बोला कि ऐसा कौन बली है, जो हमसे युद्ध करने आया और शंख बजाया ? यह कह हथियार उठाये ध्रुवजीके सम्मुख आये॥७॥

१. शंका–ध्रुवने अपने भ्राता उत्तमकुमारके मरनेका वृत्तान्त सुनकर बड़ा भारी युद्ध मूर्खोंके सदृश क्यों किया ? भगवान्का प्यारा होकर विचारसे हीन काम करना यह बड़े आश्चर्यकी बात है और राज्यके लिये क्षत्रियोंको युद्ध करना यह बड़ी शोभा है, बिना प्रयोजन युद्ध करना यह अत्यन्त मूर्खपन है ।

उत्तर–भाईके मरणका कारण सुनकर, क्षत्रियोंको निंदित है, ऐसा ध्रुवजी जानते रहे तो भी लोककी निन्दासे डरे कि सब जगत्में दुर्नामता होगी कि ध्रुवके भाईको यक्षोंने मार डाला और ध्रुवने कुछ भी उनसे बदला नहीं लिया और यक्षोंको त्रास नहीं दिया, यह कायरपन क्षत्रियों को नहीं करना चाहिये, इस लोक निन्दाके भयसे भगवान्के प्यारे ध्रुवजीने यक्षोंके साथ युद्ध किया ?

ध्रुवजी प्रचण्ड कोदण्ड हाथमें लेकर सारथीसे बोले कि शीघ्र रथको ले शत्रुसेनाकी ओरको चल, आज इस शत्रुदलको मारकर मनकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा। नृपनंदनके गम्भीर वचनसुन सूतने रथको ऐसे दौड़ाया कि पवन भी मनमें लज्जित होता था। जाते ही धनुष टङ्कार कर मारमार मचा दी और रथको ऐसा दौड़ाता फिरता था,जैसे घनमें दामिनी दौड़ती है, कभी यहां कभी वहां बाणोंसे चारों ओर ऐसा अन्धकार छा गया कि वीरोंको दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रहा, कि कहां है पूर्व और कहां है पश्चिम ! एक-एक यक्षके तीन-तीन बाण एक सङ्ग मारे ॥८॥ जब उनके मस्तकोंमें तीक्ष्ण बाणोंके घाव लगे तब सब अपने आत्माका पराजय मानकर ध्रुवके पराक्रम और वीरताकी प्रसंशा करने लगे॥९॥परंतु ध्रुवजीकी धीरता और वीरता यक्षोंसे सही नहीं गयी, जैसे भुजङ्गके अङ्गमें पांव लगनेसे वह उसका सहन नहीं

स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥ तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शरैरविध्यन्युगपद्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥

कर सकता, इसी प्रकार यक्षोंके हृदयमें क्रोधकी दावानल भड़की और महाक्रोधवंत हो ध्रुवसे द्विगुण बाण चलाने लगे क्योंकि इनको तो अपना बदला लेना था ॥ १० ॥ परिघ, निस्त्रिंश, पाश,शूल, खड्ग, परशु, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी और विचित्र पक्षोंवाले विशिख वर्षाने लगे ॥११॥ एक लक्ष, तीस सहस्र १३०००० यक्षोंने ध्रुवजीको चारों ओरसे आकर घेर लिया और अपने अपने रथोंपर बैठे अत्यन्त कुपित हो बाण चला रहे थे ॥१२॥ उस समय उत्तानपादका पुत्र बहुत शस्त्रोंसे ऐसे ढक गया जैसे अधिक वर्षा होनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिप जाता है॥१३॥जो सिद्ध लोग आकाशमें विमानोंपर बैठे देख रहे थे, उनमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ कि हाय ! आज सर्वनाश हो गया,

आज मनुवंशका मार्तंड पुण्यजन रूपी सागरमें डूब गया॥१४॥ जय चाहनेवाले यातुधान जब युद्धस्थलमें जय-जय शब्द उच्चारण करने लगे, उस समय ध्रुवके रथका एक ऐसा प्रकाश हुआ जैसे कुहरामें से सूर्य निकलता है और दशों दिशाओंमें प्रकाश हो जाता है॥१५॥ उस समय ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार कर द्वेष और खेदके उत्पन्न करनेवाले शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको अपने तीव्र बाणोंसे काटकर ऐसे बखेर दिया, जैसे पवन मेघोंके समूहको खण्ड-खण्डकर देता है ॥ १६ ॥ ध्रुवके धनुषसे जो बाणोंके निकर निकलते थे, वे यक्षोंके कवचोंको भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुस जाते थे जैसे वज्र पर्वतको तोड़कर भीतर प्रवेश करता है। एक-एक बाण दश-दश राक्षसोंके हृदयको विदीर्ण कर निकल जाता था, ऐसे लक्षों बाण ध्रुवने यक्षोंको मारे ॥ १७ ॥ कंचनके कुण्डल जिनमें झलक रहे, ऐसे-ऐसे सहस्रों शिर

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संच्छिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥ हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥ २० ॥ अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥

शरोंसे छिदे हुए हैं और हेमतालसम जंघा, कंकण, भुजबंद, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काट डालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगड़ियोंसे ढकी हुई संग्रामभूमि योद्धाओंका मन मोहनेवाली ऐसी अनुपम शोभा दिखायी देती थी मानो नये शृंगार किये आनंदमें मग्न हैं ॥ १९ ॥ क्षत्रियवंश उजागर जो ध्रुवजी हैं, उनके तीक्ष्ण बाणोंसे जिनके अंग कट गये थे ऐसे वीरपुरुष रणस्थलमें पड़े थे और जो मरनेसे बच रहे थे वे संग्रामांगणसे ऐसे भाग गये, जैसे पंचाननको देखते ही हाथियोंके यूथके यूथ पलायन हो जाते हैं ॥२०॥ मनुकुलभूषण ध्रुवजीने जब उस महासंग्राममें किसी शस्त्रधारीको खड़ा न देखा तो शत्रुकी पुरीमें जानेका विचार किया; फिर मन ही मनमें

विचारा कि यह गुह्यक लोग बड़े मायावी होते हैं, न जानिये क्या उपद्रव कर बैठें ? इनके कर्तव्यको मैं नहीं जान सकता । हे सारथी ! तेरी क्या इच्छा है ? मैं नगरमें जाऊं वा न जाऊं ? सारथी बोला कि हे नाथ ! कदापि भूलकर भी नगरमें पैसार न कीजिये, क्योंकि माया रचनेमें ये यक्ष लोग बड़े छली और बड़े बली हैं, कोई न कोई छल अवश्य करेंगे तो फिर जीती हुई बाजी हाथसे जाती रहेगी और सदा पश्चात्ताप मनमें बना रहेगा ॥ २१ ॥ ध्रुव विचित्ररथी अपने सारथीसे यह बातें कर रहे थे और वैरियोंके पुनुरुद्योगकी शंकासे विचार-पूर्वक रथको रोके हुए खड़े थे, कि इतनेमें आश्रित समुद्रके गर्जन-सा शब्द सुनायी दिया और चारों ओरसे आंधी-सी धूरि उड़ती दृष्टि पड़ी । पवन ऐसे वेगसे चलने लगी, मानो आज ही सब भूमिके भूधरोंको उखाड़कर फेंक देगी ॥२२॥ एक क्षणमात्रमें सब गगनमंडल

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यतः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ॥ शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नमस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥ अहयोऽशनिनिश्श्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाक्षिभिः ॥ अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥

मेघसमूहोंसे व्याप्त हो गया, संसारमें अन्धकार छा गया, चारों ओर अनेक प्रकारकी दामिनी दमकने लगी, महाभयानक वज्रपात होने लगा और बादलके गर्जनेका ऐसा महाघोर शब्द होता था, मानो आज ही प्रलय हो जायगी ॥ २३ ॥ हे पापरहित विदुर ! क्षणमात्रके पश्चात् आकाशसे रक्तकी धारा वर्षने लगी । पुरीष, पीव, मूत्र, चर्बी, मांसादिक अधम पदार्थोंकी वृष्टि होने लगी और ध्रुवके आगे आकर कबन्ध गिरने लगे॥२४॥फिर आकाशमें एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पहाड़ दिखायी दिया, मानो चारों दिशाओंमें एक वितान तान दिया है,और फिर उसमेंसे लाखों पाषाण गिरने लगे,फिर अखण्ड वृक्षोंकी वर्षा होने लगी;फिर अत्यन्त भयानक अग्निके अंगारके अङ्गारे आने लगे, फिर दशों दिशाओंसे गदा, परिघ, मुसल, खड्ग और महाकठोर कुठार गिरने लगे ॥२५॥ फिर कुपित हो वज्रसमान श्वास लेते

हुए सहस्रों सर्प फण उठाये फुंकारते कुपित हो आंखोंसे अग्निसी लपटें निकालते ध्रुवपर धाये, फिर मतवाले, मतंग,सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष, श्वानोंके समूहके समूह चारों ओर दौड़ने लगे, फिर दो-दो शिरवाले; पांच पांच शिरवाले, दश दश शिरवाले, पांच भुजावाले, दश भुजा वाले, वीस भुजावाले, तीन चरणवाले, छः चरणवाले, नौ चरणवाले, अनेक-अनेक भांतिके भूत,प्रेत, वैताल आने लगे और ध्रुवजीको भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ फिर समुद्र भयंकर लहरें लेता चारों ओरसे भूमिको डुबाता भूधरोंको गिराता चला आता है और प्रलयकालके समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानकरूपसे ध्रुवजीके समीप आ गया ॥ २७ ॥ कायरोंको ऐसे अनेक प्रकारके तीक्ष्णत्रास दिखानेके

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥ २७ ॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ सस्रृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥ २८ ॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्त-राम् ॥ निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥ २९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशाम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० ध्रुवोपाख्याने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

लिये असुरोंने अपनी आसुरी माया रची ॥ २८ ॥ असुरोंने जब ध्रुवजीपर अत्यन्त दुस्तर मायाओंका प्रयोग किया,तब ऋषीश्वर और मुनीश्वर अत्यन्त कृष्णभक्त ध्रुवको दुःखी देखकर आकाशसे पुकार-पुकार मंगलवाची शब्द कहने लगे ॥२९॥ सप्तऋषि बोले कि हे ध्रुव ! हे उत्तानपादके कुमार ! ! कुछ शंका न कीजिये श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका ध्यान लगाओ वह शार्ङ्गधन्वाधारी भृत्योंके भयहरन हारे वासुदेव भगवान् शरणागत प्रतिपालक तुम्हारे शत्रुओंका शीघ्र नाश करेंगे । हे ध्रुव ! जिनका नाम लेने सुननेसे विना परिश्रम, विना उपाय इस संसारसे पार हो जाते हैं * ॥३०॥ इति श्रीम० म० च० भाषाटीकायां ध्रुवस्य यक्षैः सह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

* भजन—श्रीगोविन्द परमानन्द सन्तन हितकारी ॥ दीनबन्धु दामोदर मधुसूदन मुरलीधर । विश्वनाथ विश्वंभर व्रजपति वनवासी ॥१॥ जनपर जब परत भीर, तुरत धरत नरशरीर । क्षण भरमें हरत पीर. सांवरे बिहारी ॥२॥ हरि हरि जब टेरी गज, धाये झट खगपति तज । धन धन गरुड़ध्वज, भक्तनभयहारी ॥३॥ करुणाकर कष्ट हरण, बीरोत्तम धीरधरण । अब तो हूं चरण शरण, हे प्रभु तुम्हारी ॥४॥ दुःशासन दुष्टराज, नग्न करन चहत आज । देख रह्यो सब समाज,लाज सब विसारी ॥५॥ वेग आय लो बचाय, नातो सब लाज जाय, फिर तुम कहा करहु आय, जब न रहै सारी॥६॥हे गोविन्द हे गिरिधर, हे यदुपति हे श्रीधर ! ऐसे कह आंसू भर, द्रौपदी पुकारी॥७॥

दोहा–एकादश अध्यायमें, देख यक्षसंहार। मनुने वर्जा ध्रुवको, हे सुत इनहि न मार॥ मैत्रेयजी बोले कि सप्तऋषियोंका यह वचन सुनते ही ध्रुवजीने आचमन करके धनुषपर नारायणास्त्रका सन्धान किया ॥१॥ हे विदुर! नारायणास्त्रका सन्धान करते ही यक्षोंकी रची हुई माया क्षणमात्रमें ऐसे विनष्ट हो गयी, जैसे ज्ञानका उदय होते ही सब क्लेश दूर हो जाते हैं ॥२॥ जब ध्रुवजीने नारायणास्त्रका प्रयोग किया उस समय सुवर्णके अन्त भागवाले मनोहर हंसोंके पंखरूपी बाण धनुषसे निकल निकलकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश करने लगे जैसे भयंकर शब्दवाले मोर

मैत्रेय उवाच॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम्॥ १॥ संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा॥ २॥ तस्यार्षमस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः॥ विनिस्सृता निर्विविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः॥ ३॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः॥ तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः॥४॥ स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान्॥ निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्ययमूर्ध्वरेतसः॥ ५॥

वनमें प्रवेश करते हैं ॥३॥ कठिन धारवाले शरोंसे मारे हुए पुण्यजन संग्राममें अत्यंत क्रोधित हो शस्त्र उठा-उठाकर चारों ओरसे ध्रुवजीपर झपटे, जैसे गरुड़के सम्मुख सर्प फण उठाकर दौड़ता है॥ ४॥ ध्रुवके बाणोंसे रणस्थलमें जिनके बाहु, ऊरु, जङ्घा, शीश, अधर, कन्धे, उदर, कट गये थे उनको सूर्यमण्डलसे परे जो परमधाम है वहां पहुँचा दिया, जहां भक्तजन सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं॥ ५॥ *

खगपतिपर हो सवार, धाये यशुदाकुमार, बढ़ाइये पट अपार, झटपट असुरारी ॥ ८ ॥ धन धन ध्रुव ज्ञानवान, भक्तनमें अतिसुजान, जगमें को तुम समान, धर्मध्वजा धारी ॥९॥ जो जन हैं परमभगत, हरि हरि दिनरात जपत, तिनको नहिं देख सकत, एक क्षण दुखारी ॥ १० ॥

* शंका–ध्रुवने यक्षोंको मारकर योगियोंके लोकको क्यों भिजवाया जो पुरुष युद्धमें मारे जाते हैं, उनको स्वर्ग प्राप्त होता है, परंतु ब्रह्मांडमें प्राणोंके चलानेवाले ब्रह्मांडको फोड़कर परम पदको जानेवाले मुनियोंके लोकको युद्धमें मरे हुए प्राणी कभी भी नहीं जाते, ध्रुवने यक्षोंको कैसे उस लोकको भिजवा दिया?

उत्तर–ध्रुवने यक्षोंको नारायणास्त्र मारा और नारायणास्त्र यक्षोंके शरीरमें छू गया, नारायणास्त्रके मारनेसे अथवा उसी अस्त्रको छूने वा भगवान्के दास ध्रुवको देखकर यक्षोंने अपने प्राणोंको छोड़ दिया इसलिये यक्ष गण परमपदको प्राप्त हुए।

महाबाहु ध्रुवके हाथसे निरपराधी बहुतसे गुह्यकोंको मरे हुए देखकर करुणासागर मनुजी ध्रुवके पितामह सप्तऋषियों सहित ध्रुवजीके समीप आकर॥६॥मनुजी बोले कि हे पुत्र! यह क्रोध पापका रूप और नरकका देनेवाला है, इसको छोड़ दे,वृथा रोष करके इन पुण्यजनोंको तुमने मारा ॥७॥हे वत्स ! हमारे कुलके योग्य यह कर्म तुम्हारा नहीं है, निरपराधी यक्षोंका मारना इस कर्मकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं ॥८॥ एक यक्षके अपराध करनेसे तूने सहस्रों यक्ष मार डाले। हे भ्रातृवत्सल ! हे अंग ! ! एक भाईका वध होनेसे तुमने कुपित होकर सब यक्षकुलका विध्वंस कर दिया ॥९॥ हृषीकेश भगवान्के भक्तोंका यह मार्ग नहीं है, जो उत्तम शरीर पाकर आत्मज्ञानी होकर पशुओंके समान जीवोंकी हिंसा

तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥ ६ ॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाऽङ्ग भ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ॥ यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्यापदुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ १२ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥

करते हो ॥१०॥ सब जीवमात्रमें अपने समान भाव जानकर सब जीव जिसमें वसते हैं,ऐसे हरिका आराधन करनेके प्रतापसे श्रीकृष्णचन्द्र अन्दकन्दके परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और तूने भगवान्का ध्यान भी किया है और श्रीवैष्णवोंमें श्रेष्ठ भी है और महात्मापुरुषोंके वृत्तकी शिक्षा भी पायी है, फिर यह निंदित कर्म क्यों किया ? ॥१२॥ सहनशीलता, दया, मैत्री, क्षमा सब जीवमात्रमें करनी योग्य है, क्योंकि सबमें समताका भाव रखनेसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जब भगवान् वासुदेव जिसपर प्रसन्न होते हैं, तब प्राकृत

गुणोंसे वह पुरुष छूटकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्माके आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और पंचभूतसे यह सब स्त्रीपुरुष जन्म लेते हैं और सब जानते हैं कि स्त्रीपुरुषके ही मैथुनकर्म करनेसे इस जगत्में नर-नारी उत्पन्न होते हैं, फिर पिता, भ्राता, पुत्रादि संबंध सब वृथा हैं ॥१५॥ हे राजन् ! परमात्माकी विचित्र माया द्वारा गुणोंके उलटे पुलटे होनेसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता रहता है ॥१६॥ इसमें निर्गुणपुरुष श्रेष्ठ ईश्वर तो केवल निमित्त मात्र है, उसमें कोई गुण नहीं; जैसे चुम्बक पत्थरके निमित्तसे लोहा घूमता है, इसी प्रकार यह कार्य्यकारणात्मक संसार घूमता रहता है ॥१७॥ संसार द्वारा जिनके वीर्यका विभाग किया गया है वह भगवान् अपनी कलाशक्तिसे आप अकर्ता है, तो भी इस संसारको वारम्वार रचता है और आप अहंता होनेपर भी इस संसारका वारम्वार संहार करता है, निश्चय है

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥ १६ ॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनाऽन्तकम् ॥ १९ ॥ न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसंघाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःखस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥

कि सर्वशक्तिमान् भगवान्की चेष्टा कोई जान नहीं सकता । चौपाई—"हरिचरित्रको जाननहारा । कहाकरत जो करत विचारा" ॥ १८ ॥ वह अनंत अन्त करनेवाला काल अनादि सबकी आदि करनेवाला है, वह जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युसे कालरूप होकर मारता है ॥ १९ ॥ वह परमात्मा प्रजाको समान भावसे देखता है, उस मृत्युरूप परमेश्वर कालरूपके न तो कोई अपना है न कोई पराया है। असमर्थ, अनाथ होकर यह सब जीवसमूह कर्मोंके वश होकर कालके दौड़नेसे उसके पीछे दौड़ते हुए चले जाते हैं, जैसे पवनके प्रसंगसे रजके कण उड़े चले जाते हैं ॥२०॥ जीवकी आयुकी हानि और रक्षा यह दोनों बातें कर्माधीन हैं और परमात्मा तो स्वयं इच्छा चारी है उसके

तो न कमी क्षति है, न कभी वृद्धि है। कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ ऐसे जीवका भगवान् विधान करते रहते हैं॥२१॥ हे नृप ! इस संसारकी अद्भुत रीति है, आचार्य तो कर्मको ईश्वर कहते हैं, कोई स्वमावको ईश्वर कहते हैं, कोई कालको ईश्वर कहते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं और वात्स्यायनादि ऋषि कामदेवको ईश्वर कहते हैं॥२२॥ उस अप्रमेय, अव्यक्त, शांतरूप, महत्तत्त्वादि अनंत शक्तियोंके उत्पन्नकर्ता भगवान्की इच्छाको कोई नहीं जान सकता तो फिर उनके जन्मकर्मका भेद कैसे जान सकता है ?॥ २३ ॥ हे वत्स ! इन कुबेरके यक्षोंने तुम्हारे भ्राताको नहीं मारा है। हे तात ! जन्म मरण तो पुरुषके भाग्यसे होता है ॥ २४ ॥ वही विश्वका रचनेवाला है,

केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ॥ विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥ २४ ॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ॥ अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥ यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥

वही पालन करनेवाला है और वही नाश करनेवाला है। यद्यपि ऐसा है तो भी अहंकारके त्यागनेसे गुण कर्मसे लिप्त नहीं होता ॥२५॥ वही कालरूप ईश्वर भूतात्मा भूतोंका ईश, सबका पालक, अपनी माया शक्तिसे युक्त होकर जीवोंको रचता है, पालता है, संहार करता है ॥२६॥ हे तात ! जो अभक्तोंको मृत्युरूप, भक्तोंको अमृतरूप है, उस जगत्परायण सर्वात्माकी शरणमें तू जा, जिसको विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजी बलि देते हैं, जैसे नथनोंमें पोई हुई रस्सीके वशीभूत हो "बैल" सब स्थानोंमें घूमता-फिरता है॥२७॥ जब तू पांच वर्षका था, तब तूने अपनी माताको त्याग विमाताके मर्मभेदी वचनोंसे मर्मस्थानमें छिद्र होनेके कारण वनमें जाकर परमात्माके चरणारविंदका आरा-

धन कर साक्षात् दर्शन किया और त्रिलोकीके मस्तकपर जो सर्वोत्तम स्थान है वह उच्चपद लिया ॥२८॥ हे अङ्ग ! आत्मासे विरोधको दूर करके आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षरको आत्माविमुक्त आत्मदर्शीका अनुसरण कर, जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होता है ॥२९॥ जब तू दिव्य दृष्टि द्वारा परमात्माका अनुशरण करेगा उस समय पृथक् आत्मरूप, अनंत, आनंदमात्र, व्यापक सर्वशक्ति जिसमें प्राप्त ऐसे परमात्मामें पराभक्ति होगी, फिर पीछे धीरे "मम" "अहंकार" जो अविद्याकी ग्रंथि वह कट जायगी, * ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! जैसे औष-

तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ॥ आत्मानमन्विच्छ विमुक्त मात्मदृक् यस्मिन्निदम्भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपसन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रथिंविभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥

धिके सेवन करनेसे रोग शांत हो जाता है, इसी प्रकार भगवत्-भजनसे इस क्रोधको शांत कर, जिससे तेरा कल्याण हो । यह क्रोध अमंगलका मूल है अनेक शास्त्रोंके सुननेका यही फल है कि चित्त जिससे शान्त हो जाय॥३१॥और जो पुरुष क्रोधके वशमें हो जाता है, उसको ज्ञान नहीं रहता, सबको डराता है, इसलिये जो अपने आत्माका अभय चाहे तो वह प्राणी क्रोधसे बचा रहे, क्योंकि क्रोध बुद्धिका विनाशक है ॥३२॥ शिवके भ्राता कुबेरका तुमने अपमान किया और यह समझकर यक्षोंका वध किया कि मेरे भाईको मार डाला है॥३३॥

---

* राग भैरवी—इस प्राणीको कृष्णभजन ही, परमानन्द दिखाता है रे । विना किये हरिभक्ति जगतमें मुक्ति न कोई पाता है रे ॥१॥ धन दौलत अरु कुटुम कबीला, कोई काम न आता है रे । सब अपने अपने स्वारथके मुख देखेका नाता है रे ॥२॥ दारा पुत्र पौत्रके ऊपर, फूला नहीं समाता है रे । माया मोह लोभके वश हो, वृथा जन्म गवांता है रे ॥३॥ अब भी समझ अरे अज्ञानी, कहे जिन्हे तू भ्राता है रे । अन्त समय कोइ काम न आवे, आप अकेला जाता है रे ॥४॥ काल आय जब शिरपर गर्जत कफ घटमें घिर जाता है रे । आंख फाड़ तब चहुं दिशि देखत शिर धुनि धुनि पछताता है रे ॥५॥ हरि हरि भज राजस तामस तज, जो तेरा सुखदाता है रे । वोही सर्व जगत्का स्वामी सब दुखद्वन्द्व मिटाता है रे ॥ ६ ॥ माया मोह द्रोह ममता तजि जो नर हरिगुण गाता है रे । "शालिग्राम" वही इस जगमें, पूरण भक्त कहाता है रे ॥ ७ ॥

हे वत्स! अब नम्रतासे मीठे वचनोंसे उनको प्रसन्न करो, क्योंकि महात्मा पुरुषोंके तेजसे हमारे वंशका नाश न हो जाय ॥३४॥ इस प्रकार स्वायंभुवमनुने अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा देकर उसकी वंदनाको स्वीकार करके सप्तऋषियोंको साथ ले अपने भवनको गमन किया॥३५॥ इति श्रीमद्भा० महा० चतुर्थ० भा० टी० मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥११॥दोहा–द्वादशमाहिं कुबेरने, ध्रुवयश कियो बखान। तब ध्रुव निजपुर जायकै, कीने यज्ञ महान॥ मैत्रेयजी बोले–ध्रुवजीको हिंसा करनेसे निवृत्त देख और क्रोधसे विगत हुआ जान भगवान् कुबेरने चारण, यक्ष, किन्नरोंके साथ हाथ जोड़े स्तुति करता ध्रुवजीको देखकर ॥ १ ॥ कुबेर बोले

तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥३४॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम्॥ तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥ इति श्रीभा० म० चतु० एकादशोऽध्यायः॥११॥ मैत्रेय उवाच॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान् धनेश्वरः॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम्॥ १ ॥ धनद उवाच॥ भोभो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः॥२॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः॥ ३ ॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम्॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम्॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम्॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ ६ ॥

कि हे क्षत्रियनन्दन! हे पापरहित! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं क्योंकि तूने अपने दादाकी आज्ञा मानकर दुस्त्यज वैरको त्याग दिया॥२॥ न तो तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, सब प्राणियोंके जीवन मरणका कारण काल ही है ॥३॥ "मैं" और "तू" यह बुद्धि पुरुषकी अज्ञानसे होती है; और सब स्वप्नवत् है, जैसे असत्पदार्थके ध्यान करनेसे स्वप्नद्रष्टाको सत् ही भासता है, यही बंध मोक्षका कारण है ॥ ४ ॥ हे ध्रुव! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम अपने स्थानको जाओ और भगवान् अधोक्षज सर्व भूतात्म विग्रह परमेश्वरको सर्व भावसे प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ जिनके चरणकमल भजनीय, संसारके नाशक, शक्तियुक्त, गुणमयी आत्ममायासे रहित परमात्माको संसार

निवृत्तिके लिये तुम भजो ॥६॥ हे नृपनन्दन ! जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो निशङ्क होकर वही वर मांगो, क्योंकि तुम वरदानके योग्य हो और हमने यह भी सुना है कि तुम भगवान् कमलनाभके चरणारविन्दके आश्रित हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजाओंके राजा कुबेरने जब परमात्माके परमभक्त महाविद्वान ध्रुवजीसे कहा कि वर मांगो, तब महाभागवत ध्रुवने यह वर मांगा, कि मेरा मन हरिमेंसे कभी चलायमान न हो, ऐसी ही रति सदा भगवत्की भक्तिमें बनी रहे;जिससे यह पुरुष इस दुरत्यय अंधकारसे विना यत्न किये पार हो जाते हैं ॥ ८ ॥ इडबिडाके पुत्र कुबेर प्रसन्न मनसे ध्रुवको यह वरदान दे ध्रुवजीके सम्मुखसे अंतर्धान हो गये और ध्रुवजी अपने

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशंकितः ॥ वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वरायचोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥

नगरको चल दिये ॥ ९ ॥ फिर जिसमें अनेक प्रकारकी दक्षिणा दी जाती है, ऐसे यज्ञोंसे यज्ञेशका पूजन कर द्रव्य क्रिया और देवता संबन्धी कर्म करके साध्य जो फलरूप कर्म है उसके फलदायक यज्ञपति विष्णु भगवान्का यजन किया॥१०॥और सबके आत्मा, सर्वत्र व्यापक अच्युत भगवान्की तीव्र वेगवाली भक्ति करते करते अपने आत्मामें और सब जीवोंमें स्थित एक सर्वसमर्थ भगवान्को देखने लगे ॥११॥ और शीलसिंधु, ब्रह्मण्य, दीनदयालु, धर्मकी सीमाके रक्षक, सर्व शास्त्र और श्रुतियोंके ज्ञाता उस ध्रुवको सब प्रजा पिताके समान मानने लगी ॥ १२ ॥ इसी प्रकार छत्तीस सहस्र ३६००० वर्षतक भूमंडलमें राज्य किया, भोगोंसे पुण्यको और अभोगोंसे

अशुभ पापको क्षय करते रहे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार बहुत कालतक जितेंद्रिय हो त्रिवर्गको व्यतीत कर अपने पुत्रको राज्यतिलक दे दिया ॥१४॥ इस संसारको मायारचित मानकर अविद्यारचित स्वप्न व गंधर्व नगर समान जानने लगे ॥ १५ ॥ तन, धन, स्त्री, पुत्र, सुहृद, सेना, ऋद्धि, भंडार,अंतःपुर,रमणीक विहारकी भूमि और समुद्रपर्यन्त भूमंडलका राज्य इन सबको कालसे नष्टवान् मानकर ध्रुवजी बदरिकाश्रमको चले गये ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर सर्वेन्द्रिय विशुद्ध शुद्धचित्त हो, कल्याणरूप जलमें स्नान कर आसन लगाकर पवन, मन,सब इंद्रियाँ जीत, भगवान्के स्थूल विराट्स्वरूपमें मनको लगाया । फिर बहुत कालतक उस स्वरूपका ध्यान करते-करते अभेद

एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं माया रचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितं स्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाञ्चिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः ॥ विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानुदेवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ॥ स्थितावववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥ २० ॥

हो समाधिमें स्थितप्रज्ञ हो, स्थूलस्वरूपको भी तज ब्रह्मरूप हो गये॥ १७ ॥ श्रीहरि भगवान्की निरंतर भक्ति करते करते यह गति हो गयी कि आनंदके बाष्पबिन्दुओंके प्रवाहसे वारंवार पीड़ित हो हृदय द्रवीभूत हो गया,देह पुलकायमान हो गया,लिंग शरीरके त्यागनेसे उसे अपने आत्माका भी स्मरण न रहा ॥ १८ ॥ उस समय आकाशसे उतरता हुआ एक अनुपम विमान ध्रुवजीको दिखायी दिया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा दशों दिशाओंको प्रकाशित करता है, इसी प्रकार सब दिशाओंमें प्रकाश हो गया ॥ १९ ॥ उसमें देवश्रेष्ठ भगवान्के दो पार्षद नंद सुनंद नामक बैठे देखे । वे चतुर्भुजी, श्यामवर्ण, किशोर वय, अरुणांबुज समान नेत्र, पीतपट धारण किये, किरीट, हार, भुज

बंद, मकराकृति कुण्डल पहने, गदा हाथमें लिये खड़े थे॥ २० ॥ उनको विष्णु भगवान्के पार्षद जानकर शीघ्र उठ खड़ा हुआ और चित्तमें संमोह हो जानेके कारण पूजाके क्रमकी विस्मृति हो गयी और भगवान्के मुख्य पार्षद समझ भगवत्के नाम लेता हुआ दोनों हाथ जोड़कर दंड-वत् प्रणाम करने लगा ॥२१॥ भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दमें जिसका मन लग गया है, उस नम्रतापूर्वक कन्धा नीचेको किये, हाथ जोड़े ध्रुवको खड़ा देखा, तब सुनंद नंद उसके निकट आकर मंदमंद मुसकाय भगवान् कमलनाभके परम प्रधान पार्षदोंने कहा ॥ २२ ॥ सुनंद नंद बोले, कि हे महाराज! तुम्हारा कल्याण हो सावधान होकर हमारी वाणी सुनो—आपने पांच वर्षकी छोटी अवस्थामें महा कठिन

विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥ तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ॥ सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥ २२ ॥ सुनन्दनन्दावूचतुः ॥ भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥

तप करके देवताओंको तृप्त करनेवाले भगवान्को प्रसन्न किया है॥ २३ ॥ उन सब जगत्के धारण-पोषण करनेवाले धनुषधारी श्रीनारायणके हम पार्षद हैं, तुमको भगवान्के परमधामको ले जानेके लिये हम यहाँ आये हैं॥२४॥जो महाऋषियोंसे न जीता गया आजतक विचार ही कर रहे हैं,उस विष्णुपदको तुमने जीता है,जिसके प्राप्त होनेके लिये बड़े-बड़े विवेकी खड़े सोच विचार कर रहे हैं,उस स्थानपर चलकर तुम विराजमान हो, जहां सूर्य चन्द्रमादिक ग्रह, नक्षत्र, तारागण आपकी प्रदक्षिणा दिया करेंगे॥२५॥हे ध्रुव ! आजतक जिस स्थानमें न तो कोई आपका पुरुष पहुँचा, न कोई और प्राणी पहुँचा, वहाँ उस जगतवंद्य विष्णु भगवान्का परमपद है, उसमें तुम निवास करो ॥ २६ ॥

इसलिये परमोत्तम विमान देवताओंके शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान्‌ने तुम्हारे लिये भेजा है, अतः हे आयुष्मन्! आप इसपर चढ़ो ॥२७॥ मैत्रेयजी बोले कि उरुगाय भगवान्‌के प्यारे ध्रुवने भगवान्‌के परम अधिकारी पार्षदोंके सुधारूप वचन सुन स्नानकर, नित्यकृत्यसे निश्चित हो, मांगलिक अलंकार पहन मुनियोंको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लिया ॥२८॥ फिर उसी विमानकी प्रदक्षिणाकर पूजनके पश्चात् पार्षदोंके चरणोंकी वंदना कर हिरण्यमय स्वरूप धारण करके उस उत्तम विमानपर बैठनेकी इच्छा की ॥ २९ ॥ उसी समय मृत्यु आकर

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ॥ गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥

उपस्थित हुई और ध्रुवजीको प्रणामकरके बोली कि कृपानाथ ! मुझे अंगीकार करो, तब ध्रुवजी बोले कि तू आगयी, यह बहुत अच्छा किया, परंतु थोड़ी देर विलम्ब कर इस प्रकार उसे बैठाकर उसके शीशपर चरण धर उस अद्भुत विमानपर बैठे[1] ॥ ३० ॥ उस समय मृदंग, दुंदुमी, ढोल इत्यादिक अनेक अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे, बड़े-बड़े मुखिया गंधर्वलोग गीत गाने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी

१. शंका–त्रिलोकीमें अनेक प्रकारके भगवद्भक्त हुए, परंतु कोई भक्त ऐसा नहीं हुआ कि जिसने कालके मस्तकको पांवों से दबाकर श्रीविष्णु भगवान्‌के लोकको गया हो ? कल्पकल्पान्तर तप करते मुनियोंको व्यतीत हो गये हैं, परंतु कालके मस्तकको पांवसे छुवाकर कोई मुनिभी परमपदको आज तक नहीं गया और ध्रुवने बड़ा आश्चर्य किया कि, थोड़ेही दिन तप करके कालके मस्तकको पगमें दाबकर भगवान्‌के लोकको गया; यह बड़े भारी सन्देहकी बात है ?

उत्तर–तपस्वियोंमें ध्रुवजी कुछ बड़े तपस्वी नहीं हैं और बहुत तपस्या भी ध्रुवने नहीं की, परंतु भगवान् कृपाके सागर हैं और ध्रुवको समझा कि यह अत्यन्तबालक है। इसके पिताने घर से निकाल दिया है, इसके पिता हम ही हैं, ऐसा जानकर ध्रुवपर भगवान्‌ने अनुग्रह किया, इसीके प्रभावसे ध्रुव कालके मस्तकको चरणसे दाबकर भगवान्‌के परमपदको गया ।

वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥ जब ध्रुव ध्रुवलोकको जाने लगा तब उसको अपनी विमाता सुनीतिका स्मरण हुआ तब उसका अपराध क्षमा कर बोला कि यह सब सुनीतिका ही प्रभाव है, इस दीन अबलाको अकेला छोड़कर कैसे मैं स्वर्गको जाऊँ ? ॥ ३२ ॥ यह ध्रुवजीका निश्चय जान देवश्रेष्ठ सुनंद नंदने विमानमें बैठी आगे जाती सुनीतिको दिखाया ॥३३॥ जहां तहां मार्गमें विमानोंपर बैठे देवता ध्रुवजीकी प्रशंसा करते थे और क्रम-क्रमसे सब ग्रह और देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ देवपथसे त्रिलोकीको उल्लंघन कर सप्तऋषियोंको उल्लंघन किया, फिर सबसे परे अचल गतिवाले विष्णुपदको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ जो विष्णुधाम अपनी कांतिसे ही देदीप्यमान

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ॥ यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम्॥३६॥शान्ताःसमदृशःशुद्धाःसर्वभूतानुरञ्जनाः ॥ यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥ गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥

है, उसीके प्रकाशसे यह तीनों लोक प्रकाशते हैं और जो मनुष्य मनुष्योंपर दया नहीं करते हैं वे वहां नहीं जा सकते क्योंकि दिन रात शुभकर्म करनेवाले वहां जाते हैं ॥ ३६ ॥ और जिनके स्वभाव शांत हैं, समदृष्टि हैं, शुद्धचित्त हैं, सब जीवकी रक्षा करते हैं, अच्युत भगवान्को ही अपना प्रिय बांधव मानते हैं, वे लोग जिस लोकमें जाते हैं,वही लोक ध्रुवजीको प्राप्त हुआ॥३७॥इस प्रकार उत्तानपादका तनय ध्रुव भगवत्परायण होनेसे त्रिभुवनका निर्मल चूड़ामणि हुआ ॥ ३८ ॥ हे विदुर ! गम्भीर वेग आलसरहित ज्योतिषचक्र जिसमें लग रहा है, वह इस प्रकार घूम रहा है कि जैसे मेढीमें बैलोंका समूह भ्रमण करता है, ऐसे पदको ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥

नारदजीने ध्रुवजीकी महिमा देखकर वीणा बजाते प्रचेताके यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गानेके समय ध्रुवजीका चरित्र तीन श्लोकोंमें बनाकर गाया ॥४०॥ श्रीनारदजी बोले कि, पतिव्रता सुनीतिके सुत ध्रुवजीको तपके प्रभावसे जो पदवी मिली उस परमपदवीको भगवद्धार्मिक वेदवादि लोग अनेक यत्न करनेसे भी नहीं पा सकते, तो और नरेशोंकी तो बातही क्या है ? ॥४१॥ जिस ध्रुवने पांच वर्षकी अवस्थामें अपनी विमाताकी वाणीरूप बाणोंसे बिंधे हुए हृदयसे वनमें जाकर जो भगवान् विजयी होकर भक्तोंके गुणोंसे पराजित हो जाते हैं उन विश्व विजयी भगवान्‌को अपने वशमें कर लिया ॥ ४२ ॥ और जो क्षत्रबंधु भूमिमें उस पदवीको अनेक वर्ष तप करके भी नहीं प्राप्त कर सकते,

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदञ्श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥ ४१ ॥ यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्छरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥४२॥ यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशश्चरितं संमतं सताम् ॥ ४४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥

वह पांच -छः ही वर्षकी अवस्थामें थोड़े दिनोंमें तप करके ध्रुवजी भगवान्‌को प्रसन्न कर उनके परमपदको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि महाप्रतापी, कीर्तिमान् महात्मा पुरुषोंका प्रिय ध्रुवजीका चरित्र जो आपने मुझसे पूछा, वह सब वृत्तांत मैंने आपके सम्मुख यथावत् वर्णन कर दिया ॥४४॥ यह ध्रुव चरित्र धन, यश, पुण्य,आयु, मंगल,स्वर्ग और ध्रुवपदका देनेवाला, आत्माको पवित्र करनेवाला, प्रशंसाको बढ़ानेवाला और सब पापोंका नाशक है ॥४५॥ जो कोई इस भगवान्‌के प्रिय मनोहर चरित्रको वारंवार श्रद्धासे सुनता है, उसको भक्ति प्राप्त होती है, जिससे सब क्लेश समूहोंका नाश हो जाता है॥४६॥इस चरित्रके सुननेवाले अपनी मनःकामनाको प्राप्त

होते हैं, बड़ाईवालेको बड़प्पन, शीलवालेको शीलता, तेजकी इच्छावालेको तेज और मनस्वियोंको मानका देनेवाला है ॥४७॥ परमपवित्र है आत्मा जिसकी ऐसे ध्रुवजीका यह उत्तम चरित्र प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके ब्राह्मणोंमें बैठकर सावधानतासे वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ पूर्णमासी, अमावास्या, द्वादशी मिश्रित एकादशी, श्रवणादि नक्षत्रमें, व्यतीपातयोगमें, संक्रांतिमें और रविवारको जो पुरुष निष्काम होकर भगवानकी भक्तिसहित ॥ ४९ ॥ श्रद्धा धारण करनेवाले सज्जन पुरुषोंको यह चरित्र सुनाये, उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती, वह आप अपने स्वरूपमें हो सिद्धिको पाकर सिद्ध हो जाता है॥५०॥और जो पुरुष अज्ञानियोंको भगवान्के सन्मार्गको

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥ पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि च ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनाऽऽत्मानं संतुष्ट इति सिद्ध्यति ॥ ५० ॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वाऽर्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

प्रदान करता है और ज्ञान देता है उस कृपालु और दीनोंके उद्धारक मनुष्यपर देवता सदा अनुग्रह करते रहते हैं॥५१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! जिस ध्रुवजीके पवित्र कर्म आजतक प्रसिद्ध हैं, उसका यह चरित्र तुम्हारे आगे वर्णन किया, कि जो ध्रुव बालकपनमें ही खेल खिलौने और अपनी माताके घरको त्याग कर भगवत्के चरणारविन्दकी शरण गया था, वे भगवान्के चरण सदा भक्तोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले और सब संशयके मिटानेवाले हैं॥५२॥ * इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

* भजन—हरियश सब दुख काटन हारा ॥ यह संसार स्वप्नकी माया जिसको सत्य विचारा ॥ यहां कोई अपना नहिं दीखै, झूठा द्वन्द्व पसारा ॥ १ ॥ भाई बंधु और कुटुम्ब कबीला मात पिता सुत दारा। येही तेरे परम शत्रु हैं, जिन्हें कहै तू प्यारा ॥ २ ॥ बिन ब्रजचन्द्र मुकुन्द नंदसुत, कोई नहीं हमारा। जिनके चरण कमलसे निकली, श्रीगङ्गाकी धारा ॥ ३ ॥ तीन लोककी पावनकरनी, सगरवंश निस्तारा। "शालिग्राम" भक्तमनरंजन, क्यों हरिनाम बिसारा ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पृथुसुत अंग सुजान। देखि पुत्रकी दुष्टता, वनको कीन पयान ॥ सूतजी बोले कि, पांच अध्यायोंमें तो ध्रुव-चरित्र वर्णन किया और अब ग्यारह अध्यायोंमें राजा पृथुका चरित्र वर्णन करेंगे। ध्रुवजीके विष्णुपद प्राप्त होनेका वृत्तांत मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान् अधोक्षजमें भाव उत्पन्न होनेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना प्रारंभ किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे सुवृत्ति ! प्रचेता कौन थे, उनका क्या नाम था ? किसके कुलमें विख्यात हुए ? किसके पुत्र थे ? और किस स्थानपर यज्ञ किया ? सो भिन्न-भिन्न सब मुझसे कहो ॥ २ ॥ देवताओंके समान जिसका दर्शन उन नारदजीको मैं महाभागवत मानता हूं जिन्होंने भगवत्की परिचर्या विधि

सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥ विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताःकुत्र वा सत्रमासते ॥ २ ॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कात्स्न्र्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ॥ सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥६॥ सजन्मनोपशान्तात्मा निस्सङ्गः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥७॥ आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसंततम् ॥८॥

(योगक्रियाकी रीति) "पञ्चरात्र" ग्रंथमें कही है ॥ ३ ॥ स्वधर्मपालक प्रचेतासे पूजित यज्ञपुरुष भगवान्का वर्णन भगवान् नारद मुनिने किया है ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कुछ वहां नारदजीने भगवत् कथा वर्णन की है वह मेरे आगे वर्णन करो, क्योंकि भगवत्कथा सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥५॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने पुत्र उत्कलको ध्रुवजी जब राज्य दे वनको चले गये, तब उत्कलने पिताकी सब भूमि और राजलक्ष्मीके लेनेकी इच्छा नहीं की ॥६॥ वह जन्मसे शांतात्मा, सङ्गरहित, समदर्शी और अपनी आत्माको सब लोकमें पूर्ण और जगदात्माको अपनेमें मानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मसुखमें शांत हो अपने देहको भूल गया और ज्ञानरसमें निमग्न, आनन्दमय और मोक्षरूप परब्रह्म

परमात्माको जानता था ॥ ८ ॥ और अखंडित योगाग्निसे उसके सब पाप और अन्तःकरणकी भावना जलकर भस्म हो गयी थी, अपने स्वरूपका अनुसन्धान कर अपनेसे भिन्न और किसीको नहीं देखता था ॥९॥ वह आत्मज्ञानी अकेला नगरसे निकलकर चल दिया, राखमें दबी अग्निसमान वह तेजधारी उत्कल मार्गमें जाता हुआ जड़,अन्ध,बधिर, उन्मत्त,मूककेसी आकृति किये बालकोंको दृष्टि आता था॥१०॥ सचिव और कुलके वृद्धपुरुषोंने उत्कलको उन्मत्त और जड़ समझकर उससे कनिष्ठ भ्रमिके सुत वत्सरको राज्याधिकार दे दिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी बड़ी स्त्री स्वर्वींथिके पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा और

अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडान्धबधिरोन्मत्त मूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥ प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुस्सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं धृतव्रतम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अङ्गं सुमनसंख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १७ ॥

दोषा नाम दो पत्नी थीं; उनमेंसे प्रभाके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, प्रातः, मध्यंदिन और सायं ॥ १३ ॥ तीन पुत्र दोषाने उत्पन्न किये प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट और व्युष्टने पुष्करणी नाम भार्यामें सर्वतेजस नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥१४॥ और सर्वतेजसकी आकूति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम मनु पुत्र हुआ, मनुकी पटरानी नड्वलामें ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ पुरु १, कुत्स २, त्रित, ३, द्युम्न ४, सत्यवान् ५, ऋतव्रत ६, अग्निष्टोम ७, अतिरात्र ८, प्रद्युम्न ९, शिबि १० और उल्मुक ११ ॥ १६ ॥ उल्मुकके पुष्करणी नाम भार्यामें छः पुत्र उत्पन्न हुए—

अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय ॥ १७ ॥ अङ्गकी सुनीथा नाम पत्नीमें महाभयङ्कर वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, कि जिसकी दुष्टतासे राजर्षि अङ्ग वैरागी होकर नगरसे निकल गया ॥ १८ ॥ हे विदुर ! वेनके महापाप कर्म देखकर मुनियोंने वाग्वज्ररूपी शाप दिया, शापके देनेसे उस वेनका प्राणान्त हो गया, तब मुनीश्वरोंने वेनकी दाहिनी भुजाको मथा ॥ १९ ॥ जब पृथ्वीपर कोई राजा नहीं रहा तो प्रजा चोरोंके भयसे अत्यन्त दुःखी हो गयी, तब मुनियोंने वेनके दाहिने हाथको मथा जिससे नारायणके अंशसे आद्यराज पृथुने पृथ्वीश्वर अवतार धारण किया ॥२०॥ विदुरजी बोले कि महाशीलवान्, साधु, ब्रह्मण्य, सज्जनोंके सम्मान करनेवाले महात्मा अंगके

सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥२१॥ किं वांऽहो वेनमुद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ॥ दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥

ऐसा अन्यायकारी दुष्ट पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ ? कि जिसका अन्याय देखकर राजा विमन हो वनको चला गया ॥२१॥ और राजा वेनका क्या ऐसा पाप देखा जो मुनीश्वरोंने ऐसे दण्डधारी राजाको महाघोर शाप दिया ? ॥२२॥ उत्तम नीति तो यह है कि प्रजापालक पापात्मा भी हो तो भी प्रजाको उसका अनादर करना योग्य नहीं, क्योंकि राजामें आठ लोकपालका अंश होता है और अपनी सामर्थ्यसे लोकपाल देवताओंकी शक्ति धारण करता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मण्य ! राजा वेनका चरित्र सम्पूर्ण मुझसे कहो, क्योंकि इस चरित्रके सुननेकी मुझको परम अभिलाषा है और तुम्हारा भक्त हूँ ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजर्षि अंग राजाने महाअश्वमेध यज्ञ किया, उसमें वेदवादी विप्रोंके आह्वान करनेसे देवता लोग नहीं आये, तब आश्चर्यमय होकर ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि ॥ २५ ॥

हे राजन् ! आप श्रद्धासहित जो यज्ञके उत्तमोत्तम पदार्थ देते हो, तो भी तुम्हारा हवि हवनदेवता ग्रहण नहीं करते ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह हवन योग्य जो है सो सब बहुत शुद्ध है और श्रद्धाविधियुक्त देते हैं, वेदमन्त्रोंका आजतक सार गया नहीं है, फिर हविपदार्थका अनादर देवताओंने कभी नहीं किया, न जानिये यह क्या कारण है, कुछ हमारी समझमें नहीं आता ? ॥२७॥ कर्मके साक्षी देवता लोग जो अपना भाग नहीं लेते हैं ऐसा किंचिन्मात्र भी यहां कोई हमसे उनका अपमान भी नहीं हुआ ॥२८॥ मैत्रेयजी बोले कि जब ब्राह्म-

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ॥ छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥ यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ॥ तद्द्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥ नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥३०॥ सदसस्पतय ऊचुः ॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक्स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्वमप्रजः ॥३१॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रज नृप ॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

णोंने यह वचन कहे तो अंगराजाने अति उदास हो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मौन वृत्तिको तजकर सभासदोंसे पूछा ॥ २९ ॥ कि हे सभासदो ! न तो देवता बुलानेसे आते हैं और न अपना भाग लेते हैं, ऐसा मैंने देवताओंका क्या अपराध किया है ? और मुझसे क्या व्यतिक्रम हुआ, मुझको समझाकर कहो ॥ ३० ॥ सभासदोंने कहा कि हे नरोत्तम ! इस जन्ममें तो आपने कोई पाप किया नहीं है, परन्तु यह कोई पूर्व जन्मका पाप है, जिससे आपपुत्र हीन हो। * ॥ ३१ ॥ इसलिये आप पुत्र होनेका कोई उपाय करो और इस मनोरथसे आप

---

* कहीं ऐसा भी लिखा है --एक समय राजा अंग बालपनमें मानससरोवरके निकट क्रीड़ा करनेको गये थे, सो वहां एक तरुवर पर किसी राजहंसके बच्चे घोसलेमें रक्खे थे और हंस कहीं बनमें चले गये थे । उनमेंसे एक बच्चे को राजाने बालकपनकी चञ्चलतासे पकड़कर मुट्ठी में दबा लिया और वह बच्चा दबनेके कारणसे मर गया । जब हंस हंसिनी वहां आये और बच्चेको नहीं देखा, तब तो अत्यन्त व्याकुल हो नेत्रों से आंसू भरकर बोले कि हाय ! हमारे प्यारे बच्चेको कौन ले गया ? हंस हंसिनीकी कुदशा देख किसी ने कहा कि तुम्हारे बच्चेको राजा अंगने मार डाला यह वृत्तांत सुन हंस बोला कि राजा अंगने जैसा निर्वंश किया है उसी प्रकार राजा अंग भी निर्वंश हो जायगा । हंसिनी बोली कि हे स्वामी ! हम पशुओं से क्या होना है ? राजासे तो अनेक प्राणियोंका पालन होता है, आपको ऐसा कठिन शाप देना उचित नहीं था, हमारे कर्ममें तो दुःख भोगना लिखा ही था, परंतु राजाको दुःखी क्यों किया ? हंसिनीकी मृदुल वाणी सुनकर हंसने वर दिया कि यज्ञपुरुषकी पूजा करनेसे राजाके पुत्र होगा, सो हे राजन् ! तुम यज्ञपुरुषका पूजन करो ।

यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन भी करो कि जिसमें यज्ञपुरुष भगवान् आपको पुत्र दें ॥ ३२ ॥ जब ऐसा हुआ तो अपने-अपने भाग भी देवता ले लेंगे, क्योंकि पुत्रके अर्थ जो आप भगवान्‌का यजन करोगे तो उस यज्ञमें यज्ञपुरुष भगवान्‌के संग देवता आपसे आप आयेंगे ॥ ३३ ॥ पुरुष जिस-जिस मनोरथके लिये भगवान्‌का यजन करता है, भगवान् उसकी आशा पूर्ण करते हैं, क्योंकि जो जिस भावनासे

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैषां तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपञ्छिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥

भगवत् आराधन करता है, परमेश्वर वैसा ही फल उसको देते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब सब ब्राह्मणोंने निश्चय किया तब राजाने पुत्रके होनेके लिये सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक विष्णु भगवान्‌के पुरोडाशका हवन किया। * ॥ ३५ ॥ (पुरोडास उसका नाम है कि, एक स्त्रुवामे इमरती सोमलताके अमृतमें भीजी हुई देनेसे सर्वेश्वर भगवान् प्रसन्न होते हैं) जब ऐसा पुरोडास विष्णु भगवान्‌ने पाया तब उस कुण्डसे

---

* शंका–राजा अंगने अश्वमेध यज्ञ किया, तब उसके यज्ञमें देवताओंने अपना-अपना भाग ग्रहण नहीं किया, तब राजा अंगने बड़ा दुःख माना ! उस समय ब्राह्मणोंने राजा अंगसे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र नहीं है इस लिये तुम्हारे यज्ञमें देवता भाग ग्रहण नहीं करते, क्योंकि अपुत्रके हाथका जल-अन्न पितर और देवता ग्रहण नहीं करते फिर अनेक निर्वंशी राजाओंने यज्ञ किये तो उन राजाओंके यज्ञमें देवताओंने अपना भाग क्यों ग्रहण किया ?

उत्तर–अंगसे दूसरे गिनतीसे हीन जो और राजा थे, वे अपने-अपने कुलके धर्ममें निपुण थे और बड़े विवेकवान् थे, इसलिये पुत्रहीन थे तो भी ज्ञानहीन नहीं थे। इस कारण देवता उनके यज्ञोंमें भाग लेते थे, और राजा अंगकी सुनीथा स्त्री थी, उसके संग रात–दिन भोगकी इच्छासे अपने कुलके धर्मको भ्रष्ट कर दिया, नीचबुद्धि हो गया इसलिये अंगको पुत्रहीन जानकर अंगका दिया हुआ भाग देवताओं ने ग्रहण नहीं किया ॥

सुवर्णकी माला पहने, श्वेतवस्त्र धारण किये, कंचनके एक बड़े भारी थालमें सुन्दर खीर लिये हुए एक पुरुष निकला, उसका सबने दर्शन किया ॥ ३६ ॥ राजाने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे वह खीर उस पुरुषके हाथमेंसे अपने हाथमें ले ली और उसे सूंघ उस उदारचित्त राजाने आनंदित होकर अपनी भार्याको दे दी ॥३७॥ उस पुत्र होनेवाली रानीने खीरको पाकर पतिके गर्भको धारण किया, जब समय पूर्ण हुआ तो पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ३८ ॥ वह बालक मृत्यु जो उसका नाना था उसके अनुसार हुआ । मृत्यु अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुआ था इस लिये वह अधार्मिक हुआ, उसके जन्मके समय बड़ा भयानक उत्पात हुआ और ब्राह्मणोंने इसका नाम वेन रक्खा, उसके सब आचरण

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यतौ पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हन्ति साधून्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत ॥ ४१ ॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥

नानाकेसे थे ॥३९॥ वह धनुषबाण धारण किये, वनमें फिरता था और जो मृग, साधु, दीन सम्मुख आता था उसको कभी न छोड़ता था और सब ही कहते कि यह वेन निर्दयी है ॥ ४० ॥ खेलनेके स्थानमें अपने समान क्रीड़ा करनेवाले बालकोंको अतिदारुण निर्दयी हठ करके अहेरीकी नाईं पकड़-पकड़कर मार डालता था ॥ ४१ ॥ उस महानीच पुत्रका अत्याचार देखकर राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, जब शिक्षा करनेका सामर्थ्य न रहा तो अत्यन्त दुःखित होकर आप ही आप कहने लगा ॥४२॥ कि जिन पुरुषोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने भगवान्‌का पूजन भलीभांति किया है क्योंकि उनको दुष्ट संतानका महाकठिन दुःख तो नहीं भोगना पड़ता है ॥ ४३ ॥ जिससे

अपयश, अपकीर्ति, अधर्म मनुष्योंको होता है और सबको जिससे द्रोह और अनंत व्याधि होती हैं ॥४४॥ पुत्र आत्माको मोहित कर बंधन करनेवाला है, अतः कौन ऐसा पंडित है जो इससे अधिक मान करेगा,इसलिये अनेक क्लेशका देनेवाला घर है ॥ ४५ ॥ शोक देनेवाले सुपुत्रसे कुपुत्रको मैं अच्छा समझता हूं क्योकि कुपुत्रके घरमें रहनेसे पुरुषके मनमें वैराग्य हो जाता है और ग्लानि मानकर घर छोड़ देना पड़ता है ॥ ॥४६॥ इस प्रकार वैराग्ययुक्त हो आधीरातके समय उठकर फिर सोया नहीं। किसी मनुष्यने देखा नहीं अपनी पत्नी सुनीथाको सोती ही छोड़कर सर्वसमृद्धि सहित गृहको त्याग वनको अकेला चल दिया ॥४७॥ जब प्रातःकाल हुआ और राजा अंगको मंदिरमें न देखा, तब तो

कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ॥ पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥४६॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरवभर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागव० म० चतुर्थ० वेनसुतदुःखादङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥

पुरोहित, सचिव,सुहृद्गण आदिकोंने अतिशोकसे कातर होकर सब पृथ्वीपर ढूँढा, परंतु राजा कहीं नहीं मिला, जैसे कुत्सित योगी हृदयके भीतर अंतर्यामी पुरुषका अनुसरण करते हैं और नहीं पाते॥४८॥जब राजा अंग इनको कहीं नहीं मिला तो सब उद्यमसे हार मान नगरके आये, सबने इकट्ठे होकर ऋषियोंकी वंदना की। हे विदुर ! नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि राजा अंग आजकहीं घरसे चले गये, क्योंकि दुष्ट पुत्र सदैव दुःख देनेवाले होते हैं। ❋ ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां वेनसुतदुःखात् अङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥दोहा–इस चौदह अध्यायमें, अंग पुत्र भय मान। गये विपिन तब वेनको,दियो राज्य सन्मान॥मैत्रेयजी बोले

* सवैया––आयसु मातपिताकि न मानत, नीति तजै कसरीति वहावत। आपतो मानगुमान भरे, सतसंगिनहूंको गरूर गहावत॥ एक हूं कामसरों न कभू, निर्लज्ज अधी लघु लोभ लहावता कायरकाम कुमारगगामि सुऐसी कुचाली कपूत कहावत॥

कि भृगुआदि मुनिलोगोंने क्षेमचिंतक विना राजाकी पृथ्वीको देख मनुष्योंकी पशुसमान संज्ञा देखी ॥ १ ॥ उन ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रीलोगोंने वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सब प्रजाकी असंमतिसे वहांका राज्यतिलक वेनको दिया * ॥ २ ॥ अति उग्र शिक्षक वेनको नृपासनपर बैठा देखकर सर्पके भयसे जैसे मूसे छिप जाते हैं, ऐसे सब चोर वटमार जहाँतहाँ छिप रहे ॥ ३ ॥ राज्यासनपर बैठ, आठ लोकपालोंकी विभूतिसे गर्वित, महा अहंकारी अपने आपको उत्तम बलवान् माननेवाला वह महाअभिमानी वेन महात्माओंका तिरस्कार

वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागान्स्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ॥ पर्यटन्रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥

करने लगा ॥४॥ और निरंकुश हाथीकी नाईं मदांध, अभिमानसे भरा हुआ पृथ्वी आकाशको मानो कम्पायमान कर रहा है, इस प्रकार रथमें बैठकर समस्त पृथ्वीपर विचरता था ॥ ५ ॥ और सब प्रजाके लिये यह आज्ञा करा दी कि कोई मनुष्य होम, यज्ञ, दान मत करो, नगरमें भेरी और धौंसा बजाकर धर्मका निवारण कर दिया ॥ ६ ॥ उस दुराचारी वेनका यह अत्याचार देखकर लोगोंको दुःखी जानकर दया करके सब मुनिलोग एकत्र हो विचार करने लगे ॥ ७ ॥ और परस्पर बोले कि अरे कष्ट ! तू दोनों ओरसे लोगोंको सताने लगा, जैसे

* शंका—मुनियोंने वेनको दुष्ट जानकर भी राजा क्यों बना दिया और फिर राजा बनाकर उसे भस्म क्यों किया ? यह तो बालकोंके सदृश कौतुक किया, यदि कोई कहे कि, राज्य पाकर वेन सबको दुःख देने लगा तो यह ठीक नहीं क्योंकि उसके दुखको तो पहिलेही जान लिया था फिर मुनियोंने राज्य उसको क्यों दिया ?

उत्तर—ब्राह्मणोंने ऐसा विचार किया था कि, वेन राजा हो जायगा तो बड़े-बड़े महात्मा पुरुषोंकी संगति पाकर परमज्ञानी और अतीव बुद्धिमान बन जायगा, किन्तु वेनने राज्य पाकर महात्मालोगोंकी आज्ञा नहीं मानी और सुखके बदले में उलटा दुःख देने लगा तब राज्य देनेवाले मुनियोंने वेनको शाप देकर भस्म कर दिया ।

दोनों ओरसे काष्ठमें अग्नि लग जाती है, तो बीचमें चीटियां मर जाती हैं वही दशा अब इस प्रजागणकी हो रही है, क्योंकि एक ओर तो चोरोंका भय और दूसरी ओर राजाका भय, यह महाकठिन कष्ट इन लोगोंसे कैसे सहा जायगा ? ॥ ८ ॥ विना राजाके नगर सूना समझकर तो इस अयोग्यको हमने राज्यका भार सौंपा, अब इसकी ओरसे भी सब देहधारियोंको भय होता है फिर अब हम लोगोंका कल्याण कैसे होगा ? ॥ ९ ॥ जो भुजंगको दूध पिलापिलाकर पालता है, वह अनर्थकारी सर्प प्रथम अपने पालनेवालेको ही काटता है, ऐसे ही यह महाक्रूर बुद्धि दुष्टस्वभाव वेन सुनीथाके गर्भमें जन्मा है ॥१०॥ हमने अच्छा समझकर प्रजापालक बनाया था, किंतु यह दुष्ट

अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥ निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ॥ तथाऽपि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥ लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुश्श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १४ ॥

उलटा हमारा ही नाश करता है, क्या करें अब तो हमने इसको अपना राजा बना ही लिया, इसलिये उसको चलकर समझा दें फिर हमारे शिर कोई दोष न रहेगा ॥ ११ ॥ हमने जान बूझकर इस अत्याचारीको भूप बनाया है, अब साम दामसे समझायेंगे और वह मंद-भागी हमारे समझानेसे भी नहीं मानेगा तो जानेंगे कि यह बड़ा अधर्मी है ॥ १२ ॥ तब लोगोंके धिक्कारसे दग्ध हुए इस दुष्टको हमलोग अपनी शक्तिके तेजके प्रभावसे लेशमात्रमें जलाकर भस्म कर देंगे इस प्रकार परस्पर सोच विचारकर क्रोधको छिपाकर सब ऋषि, मुनि और प्रजागण उसके पास गये और उसके निकट जाकर साम, दाम इत्यादिक उपायोंसे समझाया ॥ १३ ॥ सब मुनिलोग बोले कि, हे राजन् !

हे पुत्र ! ! हे नृपवर्य !!! हम आपसे वह बात कहने आये हैं, जिसमें आपकी आयु, बल, कीर्ति और लक्ष्मी अधिक हो ॥ १४ ॥ पुरुषोंको उचित है कि तनसे, मनसे, वचनसे, बुद्धिसे धर्मके आचरण करते रहें, क्योंकि धर्मके आचरणसे शोकरहित लोककी प्राप्ति होती है, जहां सर्व त्यागीलोग निवास करते हैं और सदा आनन्द रहता है ॥ १५ ॥ हे वीर ! वहां प्रजाकी कुशलसे आपके धर्मका नाश नहीं होता, इसलिये धर्मका नाश होनेसे राजा धर्म ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाता ॥ १६ ॥ हे राजन् ! दुष्टमन्त्री और चोरादिकोंसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा यथा-वत् करे और शास्त्र मर्यादाके अनुसार दण्ड ले तो राजाको इस लोकमें और परलोकमें परमानन्द प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जिस राजाके

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५॥ स ते मा विन-शेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाधवमात्येभ्यश्चौरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १७॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २० ॥ तं सर्व-लोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥२१॥

राज्यमें पुरमें भगवान् यज्ञरूप अपने वर्णाश्रम धर्मसे सदा पूजे जाते हैं ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! जो राजा अपनी निज शिक्षासे स्थित हैं, उन राजाओंके ऊपर भगवान् सर्वधर्मपालक विश्वात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥१९॥ और जब जगत्के राजाओंके भी महाराज जगदी-श्वर श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हों तो उस प्राणीको कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? क्योंकि लोकपालसहित सब लोग उसके भयसे उसका आदर-सम्मान कर उसको भेंट देते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सब लोक, देवता, यज्ञ जिसमें सदा निवास करते हैं उन वेदत्रयीमय, द्रव्यमय, तपोमय ईश्वरको आपकी कुशलके अर्थ नानाविधिके विधानोंके विचित्र यज्ञोंसे सब प्रजा समृद्धिके लिये यजन करती है, वह आप उनके यज्ञोंमें सहायता करने

योग्य हो ॥ २१ ॥ हे वीर ! आपके देशमें ब्राह्मणलोगोंके यज्ञ करनेसे श्रीनारायणकी कला देवतालोग सन्तुष्ट होकर सबको मनोवांछित फल देंगे, इस लिये उन देवताओंकी अवज्ञा आपको नहीं करनी चाहिये ॥ २२ ॥ वेन बोला कि तुम सब मूर्ख हो, जो अधर्मको धर्म करके मानते हो, क्योंकि जो सब समृद्धियोंका दाता है, उस पतिको त्यागकर जारपतिकी उपासना करते हो ॥ २३ ॥ जो मूढ़ नृपरूपी ईश्वरका अनादर करते हैं, वे प्रजागण इस लोक और परलोकमें कहीं सुख और कल्याण नहीं भोगते हैं ॥ २४ ॥ और वह यज्ञ पुरुष भगवान् कौन है ? जिसमें तुम्हारी भक्ति है, अरे मूर्खो ! तुम लोग ऐसे हो, जैसे परकीया स्त्रियाँ अपने पतिको तजकर जारसे स्नेह करती हैं,

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥ वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥२३॥ अवजानन्त्यमी मूढा भूपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥ विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपां पतिः ॥२६॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक्पुमान् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याञ्चां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥ २९ ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाञ्चायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥

इसी प्रकार तुम्हारी झूठी भक्ति है ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, उपेंद्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, सागर ॥ २६ ॥ यह और जो वर, शापदायक देवता हैं वे सब राजाकी देहमें वास करते हैं क्योंकि सर्वदेवमय नरेश होता है ॥२७॥ इस लिये हे ब्राह्मणो ! ईर्षा, वैर त्यागकर सब कर्मोंमें मेरा पूजन करो और यज्ञ रूप मैं हूँ मुझको बलिदान दो, मुझसे अधिक और कौन दूसरा यज्ञरूप पूजन करने योग्य है ? ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार वह कुमार्गी, कुबुद्धि, पापी, पाखण्डमें स्थित सब मङ्गलोंसे भ्रष्ट उस वेनको बहुत समझाया, परन्तु उस दुष्ट नरेशने मुनियोंका उपदेश न माना ॥ २९ ॥ उस अभिमानी अपने आपको पंडित समझनेवाले वेनने-

घर आये ब्राह्मणोंका जब अत्यन्त अनादर किया तब, हे विदुर ! ब्राह्मण अपना उपदेश व्यर्थ समझकर बड़े क्रोधित हुए ॥ ३० ॥ और उन मुनीश्वरोंने यह निश्चय किया कि इस पापीका स्वभाव महादारुण है,इस लिये इसका मारना ही उचित है,क्योंकि जो यह चाण्डाल जीता रहेगा तो अवश्य सारे संसारको भस्म कर डालेगा ॥३१॥ यह अत्याचारी नरदेवोंके योग्य सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञ पुरुष भगवान्की निंदा करके धर्मका विध्वंस करना चाहता है ॥३२॥ जिस भगवान्ने अपनी कृपा करके इसको इस प्रकार विभव और बड़ाई दी है, उन भगवान्की इस अशुभ वेनके विना दूसरा कौन निंदा कर सकता है ? ॥३३॥ इस प्रकार क्रोधमें भरकर उन ऋषि-

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥३१॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेवव-रासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥ को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमै-श्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥३३॥ इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥३४॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥ हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३६ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभ-यंकरान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥

योंने उस अच्युत भगवान्के निंदा करनेवाले वेनको एक हुंकार शब्दसे मार दिया, क्योंकि यह हुंकार शब्द मारणप्रयोगमें आता है * ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे वेनको मारकर सब ऋषि मुनि अपने-अपने स्थानको चले गये। तब उस शोकवती सुनीथाने मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराकर उसको रख छोड़ा, क्योंकि वह ऋषियोंकी योगविद्या भलीप्रकार जानती थी ॥ ३५ ॥ एक समय सब मुनिजन सरस्वतीजीके जलमें स्नान कर अग्निमें हवनादिकसे निश्चित हो सरिताके तटपर बैठे हुए सत्कथा कह रहे थे ॥ ३६ ॥ संसारके भयदायक उत्पात दृष्टि आने लगे, उसको देखकर ऋषिलोगोंने विचारा कि इस समय पृथ्वीपर कोई प्रजापालक नहीं है,

* कवित्त—जाने हरि त्यागे ताहि त्यागें सब लोगनने, ऐसे ही वेननृप डीगे नाहिं पापसे । आपहीको ब्रह्मा शिव विश्वनाथ कहवायो, काहूको अधिक नाहिं समझैहैं आपसे ॥ सूर्य और चन्द्रमामें मेरोही प्रकाश होत, देवतोंमें महातेज मेरे ही प्रतापसे । बुरो होत शालिग्राम विप्रनको दुःख देनो, वेनको विनाश भयो विप्रनके शापसे ।

इसलिये हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भय है ॥ ३७ ॥ मुनिलोग यह विचारही रहे थे कि इतनेमें चोरोंके दलके दल घिर आये और उनके घोड़ोंके दौड़नेसे चारों ओर धूल उड़ती उनके देखनेमें आयी ॥ ३८ ॥ राजाके मर जानेसे लोगोंका सब धन चोर लूट ले गये और बड़ाभारी उपद्रव भी मचा, प्रजामें परस्पर मारपीट होने लगी, तब ऋषियोंने विचार किया ॥ ३९ ॥ यदि ऐसा ही उपद्रव रहा तो हम लोगोंको बड़ा दोष लगेगा, क्योंकि जो ब्राह्मण समदृष्टि और शांति होनेपर भी उन लोगोंकी न रक्षा करे तो उनका सब ब्रह्मतप क्षीण हो जाता है, जैसे फूटे पात्रमें दूध नहीं रहता, इसी प्रकार उनका तेज नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यद्यपि आप इस उपद्रवको

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चौराणामपि लुम्पताम् ॥ ३८ ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥ ३९ ॥ चौरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥ ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥ ४१ ॥ नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वांगो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥ ४४ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५ ॥

शांत कर सकते हैं तो भी राजर्षि अङ्गके वंशमें यह स्थित होने योग्य नहीं है, इस वंशमें सब राजा श्रीकृष्णाश्रय होनेवाले परमभक्त ही होते आये हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निश्चय कर सब ऋषिलोग मिलकर नगरमें आये और मरे हुए वेन महीपतिकी जङ्घा मन्त्रोंसे शीघ्र मथने लगे, तब उसमेंसे एक छोटासा पुरुष प्रकट हुआ ॥ ४३ ॥ काकके सदृश काला अत्यन्त छोटे-छोटे हाथ पांव, ठोड़ी बड़ी, गहरी नाभ, लम्बी नाक, लाल नेत्र और लाल ही शिरके बाल थे ॥ ४४ ॥ वह पुरुष नम्रीभूत दीनकी नाईं हाथ जोड़कर मुनियोंसे बोला कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ? हे विदुर ! तब मुनियोंने उससे कहा कि "निषीद" अर्थात् बैठ जा; इसलिये उस पुरुषका नाम निषाद हुआ ॥ ४५ ॥

इसके वंशमें निषाद अर्थात् भील लोग हुए उस वेन दुष्टके शरीरमें महापाप भरा हुआ था, वही पाप निषादरूप बनकर बाहर निकला और जिससे वेनके शरीरका कल्मष ग्रहण किया इसी लिये उसके वंशवालोंको नगरमें वास करनेका अधिकार नहीं है, पर्वतोंकी खोहोंमें रहते हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पंचदशो अध्यायमें, मथे वेणुके हाथ । ताते पृथु प्रगटो तुरत, भयो सो पृथ्वीनाथ ॥ श्री मैत्रेयजी बोले कि फिर उस अपुत्र वेन महीपतिकी भुजा-

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे पृथूपाख्याने निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ॥ बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम्॥२॥ऋषय ऊचुः॥एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी॥इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥ अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥

ओंको मुनियोंने मथा, तो उसमें एक जोड़ा अर्थात् एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥१॥ उस जोड़ेको जन्मा देखकर वे ब्रह्मवेत्ता ऋषि भगवान्‌की कला जान अत्यन्त सन्तुष्ट हो बोले ॥ २ ॥ ऋषि बोले कि, यह परम पुरुष संसारकी रक्षाके लिये विष्णु भगवान्‌की कलासे उत्पन्न हुआ है और यह देवी श्रीनारायणके हृदयमें नित्यप्रति वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे प्रकटी है ॥ ३ ॥ यह जो पुरुष है, वह सब राजाओंमें आदिराज बड़ा तेजस्वी और यशस्वी महाराज पृथु नामसे प्रसिद्ध होगा और सब संसारमें अपना यश

* शंका—ऐसे महादुष्ट वेनके देहसे श्रीलक्ष्मीनाथ नारायण क्यों प्रगट हुए और भूमिको दुःखी देखे विना भगवान् कभी अवतार नहीं लेते, वेनके समयमें पृथ्वीको क्या दुःख हुआ जिस कारण शीघ्र आनकर भगवान् प्रकट हुए ?

उत्तर—वेनने जो प्रजाको दुःख दिया और उनका नाश किया उस प्रजाके दुःखको देखकर अथवा जीती प्रजाको महाक्लेशित देखकर दीनबन्धु दीनानाथ मुनिमनरञ्जन भक्तभयभञ्जन भगवान्‌ने भूमिके और प्रजाके ऊपर अनुग्रह करके शीघ्र प्रकट होनेकी इच्छा की तब भगवद्भक्त ब्राह्मणोंने परमात्माका विचार जानकर वेदोंके मन्त्रोंसे वेनकी देहको शुद्ध करने लगे तब उसी शुद्ध शरीरसे भगवान् उत्पन्न हुए ।

विस्तार करेगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर सुदती देवी गुणभूषणोंसे भूषित वरारोहा, अर्चिनाम, छबिकी भी छबि बढ़ानेवाली, अपने पति पृथुकी सेवनीय होगी ॥५॥ और यह पृथु तो संसारकी रक्षाके लिये साक्षात् विष्णु भगवान्का अंश प्रकट हुआ है और यह श्रीनारायणके हृदयमें सदा वास करनेवाली, भगवत्परायण, श्रीलक्ष्मीजीने आकर अवतार लिया है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण लोग उनकी प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व यश गाने लगे, सिद्ध लोग पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और देवांगना नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ स्वर्गसे शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभी आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते देवता, ऋषि, पितृगण ॥८॥ सब लोकपाल शिवको साथ लेकर जगद्-

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥६॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥८॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥ पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥ तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥ सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥

गुरु ब्रह्माजी भी वहां आये और पृथुके दहिने हाथमें गदाधारी चक्रका चिह्न देखा ॥ ९ ॥ और दोनों पावोंमें कमलके चिह्न देखकर ब्रह्माजीने समझ लिया कि यह साक्षात् विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुआ है, क्योंकि जिसके हाथोंमें दूसरी रेखाओंसे मिली हुआ रेखाका चक्र न हो उसको परमेश्वरका अंश जानना चाहिये ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकको आरंभ किया और सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ लोग लाने लगे ॥११॥ नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, नाग, गौ, खग, मृग, आकाश, पृथ्वी और सब जीवमात्र भेंट ले-लेकर उपस्थित हुए ॥१२॥ और महाराज पृथुने स्नान करके सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन अलंकृत अर्चिपत्नीसे शोभित मानो दूसरा अग्नि विरा-

जमान है, ऐसे देदीप्यमान दिखायी देने लगे ॥१३॥ हे विदुर ! कंचनका सिंहासन तो कुबेरने उसके लिये दिया और वरुणने चन्द्रकांति समान छत्र समर्पण किया, जिसमेंसे सदा शीतल जल टपकता रहता है ॥ १४ ॥ और अत्यन्त विशाल दो चमर वायुने भेंट किये, धर्मने कीर्तिमय माया अर्पण की, इन्द्रने परमोत्तम किरीट दिया और यमराजने संयमन नाम दंड दिया जो दुष्टोंका विनाश करनेवाला था ॥ ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार समर्पण किया, श्रीहरि चक्रधरने चक्र सुदर्शन अर्पण किया और श्रीलक्ष्मी-जीने अखण्डित ऐश्वर्य दिया ॥ १६ ॥ रुद्रने दशचन्द्र नाम खड्ग दिया, और शतचन्द्र नामक ढाल श्रीपार्वतीजीने दी, चन्द्रमाने अमृतमय

तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥ दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाऽम्बिका ॥ सोमोऽमृतमया-नश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पाव-लिमन्वहम् ॥१८॥ नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥ सिन्धवःपर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

घोड़े दिये और अत्यन्त सुन्दर रथ त्वष्टाने दिया ॥ १७ ॥ अग्निने मेढ़े और बैलके सींगोंसे बना हुआ धनुष दिया, सूर्यने किरणमय शत्रुके भस्म करनेवाले बाण दिये, भूमिने योगमय पादुका दीं; कि जिनको पहनकर जहां चाहे वहां चले जाओ और आकाश सदा पुष्पोंका हार देता रहा ॥ १८ ॥ और आकाशमें विचरनेवाले नभचर लोगोंने नाट्य, सुन्दर गीत, बाजे और अंतर्धान होनेकी शक्ति दी, ऋषि मुनियोंने सत्य आशीर्वाद दिये, समुद्रने अपना पुत्र शङ्ख दिया ॥ १९ ॥ समुद्र, पर्वत, नदियोंने उस महात्माके रथको मार्ग दिया। सूत, मागध, बंदीजन उसकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उन स्तुति करनेवालोंको अपने समीप खड़ा देखकर महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघसमान गंभीर वाणीसे

हँसकर यह वचन कहा ॥ २१ ॥ पृथु बोला कि हे सूत ! हे मागध ! ! हे सौम्य बन्दीजनो ! ! ! अभीतक लोकमें मेरे गुण प्रकट नहीं हैं तुम किस लिये मेरी स्तुति करते हो ? संसारमें जिसके गुण विदित होते हैं, उसकी स्तुति करनी चाहिये, तुम्हारी वाणी मेरे लिये मिथ्या न होनी चाहिये, हे श्रेष्ठवाणीवाले पाठको ! इसलिये कालान्तरमें जब हमारे गुण प्रकट दीखने लगें ॥ २२ ॥ तब तुम भले प्रकार हमारे वंशकी प्रशंसा करना, यह तुम नहीं कह सकते कि हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि उत्तमश्लोक परमेश्वरके गुणानुवादके आगे और मनुष्यके गुण सभासद नहीं गाते हैं ॥ २३ ॥ आत्माके महागुणके सम्मुख स्तावकोंसे असंतोंके गुणकी सम्भावनामात्रसे कौन स्तुति

पृथुरुवाच ॥ भो सूत हे मागध सौम्य बन्दिँल्लोकेऽधुनाऽस्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ॥ २२ ॥ तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ॥ तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४ ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपिविश्रुताः ॥ ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० चतु० पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कराये ? वे मूर्ख इस बातको नहीं जानते कि यह गुण मुझमें होंगे, इस बातसे वञ्चित होनेके कारण वे लोग मेरा उपहास करेंगे ॥ २४ ॥ जो सामर्थ्यवान्, लज्जावान् और कीर्तिमान् पुरुष हैं वे अपनी स्तुति करानेमें भी निंदा समझते हैं, जैसे विक्रमी ब्राह्मणका वध आदि पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं, ऐसे परम उदार पौरुषके सामने स्तुतिकी निन्दा करते हैं ॥ २५ ॥ हे सूतादिको ! हम श्रेष्ठ कर्म करके अभी लोकमें विख्यात नहीं हुए, फिर बालकके समान आपसे कैसे अपनी स्तुति करायें ? ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–इस षोडश अध्यायमें, पृथुको अति सत्कार। लोकपाल अरु सूतगण, कीनो विविध प्रकार॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा पृथु तो इस प्रकार अपनी बड़ाईका उनसे निषेध करता ही रहा, परंतु मुनियोंकी प्रेरणासे पाठकगण और गायक अमृतरूपी वाणीसे उसकी सेवा और स्तुति प्रसन्न मन होकर करने लगे॥ १॥ जो आपने साक्षात् देववर्य मायासे अवतार लिया है और वेनके अंगसे उत्पन्न हुए हो, जब आपके पुरुषार्थोंमें बृहस्पत्यादिकोंकी भी बुद्धि भ्रमजालमें आ जाती है, तो फिर आपके चरित्र वर्णन करनेका हमारी क्या सामर्थ्य है ?॥ २॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तो भी उदारयशी और भगवान् विष्णुकी कलावतार पृथुके कथामृतमें आद्दत होकर मुनिलोगोंका जैसा उपदेश है

मैत्रेय उवाच॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया॥ १॥ नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया॥ वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः॥ २॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलावतारस्य कथामृतादृताः॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि॥३॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन्॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम्॥ ४॥ एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः॥ काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम्॥ ५॥ वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः॥ ६॥

और उन्होंने अपने योगबलसे जैसा हमारे हृदयमें प्रकाश किया है, उसके अनुसार आपकी अनुपम महिमाका विस्तार करते हैं॥ ३॥ आप धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ हैं और लोगोंको धर्मके मार्गमें चलानेवाले हैं और धर्मकी सीमाकी रक्षाके लिये सेतु हो, धर्मकी मर्यादारूप सेतुके तोड़नेवालोंके नाशक हो॥४॥ केवल आप ही अपनी देहसे तनु धारण करते हो, यही समय-समयके यथाभाव होना, लोकका हित करते हैं, एक देहमें लोकपालोंके शरीर धारण करते हैं॥ ५॥ उसी प्रकार लोकपालोंके शरीरका पालनपोषण और सुकालमें धन लेवेंगे और दुर्भिक्षकालमें धन देकर प्रजाकी सहायता करेंगे, सब जीवमात्रमें समान बर्ताव कर सब जीवमात्रपर समदृष्टि रखकर अपने प्रतापका

प्रकाश बढ़ायेंगे ॥ ६ ॥ जैसे वसुमती सर्व संसारका भार सहन करती है, ऐसे ही यह कृपालु पृथु पृथ्वीकी गति धारण करके दीन दुःखी जन इसके ऊपर पग भी धर देंगे तो भी उनका अपराध क्षमा करेंगे ॥ ७ ॥ जो कभी इन्द्र वर्षा नहीं करेगा तो यह नरदेव देहधारी विना प्रयास श्रीहरि देव कृच्छ्र प्राणसे इन्द्रके सदृश वर्षा करके आर्तजनोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ चन्द्रवत् वदन, अमृतमूर्तिसे अनुरागी चितवनके देखनेसे मनोहर मन्द मुसकानसे सब संसारको तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ यह अप्रकट मार्ग होंगे जैसे वरुणके सब काम गुप्त हैं, ऐसे ही यह पृथ्वीनाथ गंभीर बुद्धि रक्षितचित्त होंगे, इनके गमनागमन मार्गको कोई नहीं जान सकेगा और न इनके परिणामकी किसीको सुधि होगी

तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ॥ भूतानां करुणः शश्वदातानां क्षितिवृत्तिमान् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ॥ कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥ अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ॥ अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुःप्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥ अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥ १२ ॥ नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ॥ दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥

कि यह क्या करेंगे और इनके प्रयोजनका भाव कोई नहीं जान सकेगा और यह अनन्त महात्माओंके गुणोंके एक धाम हैं, यह पृथु प्रचेताके समान जितेन्द्रिय होंगे ॥ १० ॥ वेनरूप अरणिसे प्रगट हुए पृथुरूप अग्निका कोई शत्रु शीतल करनेवाला न होगा और सबके निकट रहने पर भी शत्रुको ऐसे ज्ञात होंगे कि अत्यन्त दूर बैठा है और कोई पुरुष अपने पुरुषार्थसे इनको जीत न सकेगा ॥ ११ ॥ सब जीवमात्रके बाहर और भीतरके सब कर्मोंको चार द्वारा देखते हुए प्राणियोंका अधीश आत्मभूत वायुके समान उदासीन रहेंगे ॥ १२ ॥ धर्ममार्गमें ऐसे सत्यवादी होंगे कि अदण्ड्यको दण्ड कभी न देंगे, चाहे पुत्र हो, चाहे शत्रु, न्यायके समय किसीका पक्षपात न करेंगे, जो

दण्ड देनेके योग्य होगा उसीको दण्डका भागी करेंगे ॥ १३ ॥ इन पृथुका अखण्ड शासन मानसाचलपर्वतसे लेकर जहांतक भगवान् भास्कर[1] अपनी किरणोंसे तपते हैं, वहांतक राज्य करेंगे ॥ १४ ॥ अपनी चेष्टा करके सब लोगोंको प्रसन्न करेंगे फिर मनके आनंदकारी मनोहर वाक्योंसे प्रजाको अत्यानंद करेंगे और प्रजा प्रसन्न होकर कहेगी कि हमारे महाराज दुःखभंजन हैं ॥ १५ ॥ दृढ़व्रत, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले, वृद्धजनोंके दास, शरणागतवत्सल, सब प्राणीमात्रके मानदाता, दीनदयालु होंगे ॥ १६ ॥ परस्त्रीको माताके

अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥ १४ ॥ रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ॥ मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥

समान माननेवाले, अपनी भार्याको अपने अर्द्धांगसदृश जाननेवाले, प्रजामें पिताके समान प्रीति करनेवाले, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके किंकर होंगे ॥ १७ ॥ सब देहधारियोंको अपनी आत्माके समान प्रिय, सुहृदोंको आनंद बढ़ानेवाले, निःसंग पुरुषोंकी संगतिवाले, दुष्टोंको दंड देनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ यह तो साक्षात् त्रिभुवननायक, निर्वेद भगवान्, त्रिगुणी मायाके अधीश सबमें वसे हैं, आत्माकी कलासे अवतार

---

१. शंका–जो-जो अवतार नारायणने धारण किये, वे सब त्रिभुवनपति हुए, परंतु सूतलोगोंने राजा पृथुको जहां तक सूर्य तपते हैं वहां तक की पृथ्वी की रक्षा करना क्यों कहा ? उत्तर–तीन लोकके पति ईश्वरने राजा वेनसे पृथ्वीको नष्ट हुई जानकर और राजाओं की सनातन मर्यादा नष्ट हुई जानकर अकेले पृथ्वीको सुख देनेके लिये पृथु भगवान्को प्रकट किया इसलिये राजा पृथुको सूतोंने केवल भूपाळ कहकर वर्णन किया ।

धारण किया है, जिसमें अविद्यारचित निरर्थक नानाभांतिके प्रतीत होते हैं ऐसे दृष्टि आते हैं ॥ १९ ॥ यह नरदेवोंके नाथ उदयाचलसे लेकर सब भूमण्डलको जैसे मार्तंड प्रदक्षिणा देते हैं, इसी प्रकार अकेले जयप्रद रथमें बैठ धनुषबाण लेकर समस्त भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करेंगे ॥२०॥ आठों लोकपाल सहित सब राजालोग जहां तहां इनके लिये भेंट देंगे और उन आदिराज चक्रायुधकी स्त्रियाँ इन आदिराजको श्रीनारायणकी कला समझकर वारंवार यश उच्चारण करेंगी ॥ २१ ॥ यह अधिराज गोरूप धरणीको दुहेंगे और प्रजामें प्रजापतिकी नाईं वृत्ति करेंगे और लीलाकरके अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोड़कर सब पृथ्वीको समान करेंगे, इन्द्रकी नाईं पर्वतोंको भेद-

अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः॥आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथाऽर्कः॥२०॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ॥ मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उच्चरन्त्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥२२॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि-दिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधाञ्छतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहार-षीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४॥ एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ॥ आराध्य भक्त्याऽलभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्या-त्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥

कर चूर्ण करेंगे ॥ २२ ॥ जिस समय ये अपने आजगव धनुषका टंकार करके निर्द्वंद्व होकर संग्राममें विचरेंगे जैसे पूंछ उठाकर पंचानन पृथ्वीपर घूमता है, इस प्रकार विचरेंगे, तब सब दिशाओंसे दुष्टलोग भाग जायँगे ॥२३॥ जहां सरस्वती प्रगट हुई है, वहां ये सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करेंगे, जब सौ यज्ञ पूर्ण हो जायँगे तब अन्तमें वर्तमान होनेपर इन्द्र आकर इनका घोड़ा चुराकर ले जायगा ॥ २४ ॥ यह अपने स्थानके समीप उपवनमें भगवान् सनत्कुमारको इकेला पाकर श्रद्धापूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल वासुदेव भगवान्के ज्ञानको प्राप्त करेंगे, कि जिस ज्ञानके जाननेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ जहां-तहां प्रजागण महापराक्रमी भूपतिका यश मधुर

वाणियोंसे गाकर विख्यात करेंगे, तब अपने पराक्रमकी कथा अपने कानोंसे सुनेंगे॥२६॥और इनकी आज्ञाको कोई भंग न कर सकेगा, सब दिशाओंको जीतकर अपने तेजसे सब लोकके शूलोंको निकालकर सुर असुर,इन्द्र इनकी गाथाको गायेंगे और यह महानुभाव भूमिके पति होंगे ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—सत्रहमें सब अन्नको, धरणि बीज गइ खाय । जब पृथु कोपे धरणि पर, धरणि शरण लीआय ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब इस प्रकार उस भगवान् पृथुको गुणकर्मोंसे विख्यात किया, तब राजा पृथुने उनकी अत्यन्त सराहना कर प्रणाम किया, उनका पूजन कर

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० सूतादिस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौराञ्जानपदाञ्छ्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥ २ ॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥ ३ ॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥

आदरसत्कार सहित उनको संतुष्ट किया॥१॥और ब्राह्मणादिक चारों वर्ण भृत्य,अमात्य,पुरोहित,पुरवासी सब प्रकृति प्रजाका राजा पूजन करने लगे ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि अनेक रूप धरनेवाली धरणीने क्यों गोरूप धारण किया ? और जब पृथुने उसको दुहा तो उस समय वत्स कौन था और दोहनी क्या थी ? ॥ ३ ॥ और स्वभावसे ऊँची-नीची पृथ्वीको समान क्यों किया ? और उसके पवित्र यज्ञके घोड़को इन्द्रदेवता क्यों चुराकर ले गया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे वेदवादियोंमें श्रेष्ठ ! ! भगवान् सनत्कुमारसे परम ज्ञानको प्राप्त कर पूर्ण ज्ञानी हो वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ ? ॥५॥ और श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद भगवान्का और भी जो कुछ सुन्दर विख्यात यश

पुण्यदायक भगवान् पृथुकी कथाके आश्रित हो वह आप वर्णन कीजिये ॥६॥ आपके चरणारविन्द अनुरागी भगवत्का भक्त जो मैं हूँ,सो मुझसे आप कहो कि उस पृथुने वेनके अंगसे उत्पन्न होकर पृथ्वीको किस लिये दुहा ? ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि जब विदुरजीने वासुदेव भगवान्की कथाके लिये इस प्रकार प्रेरणा की तब उनकी प्रशंसा कर प्रसन्नमन होकर मैत्रेयजीने कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले हे अंग ! जब पृथुको राज्यतिलक ब्राह्मणोंने दिया और प्रजापालनका आमंत्रण किया,तब सब भूतल अन्नरहित हो गया और सब प्रजागण क्षुधार्त हो कृशशरीर हो गये, तब प्रजापतिके समीप जाकर बोले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हमको क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है, जैसे वृक्षमध्य

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाऽभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥ वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निनाकोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्ययाताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेव देव ॥ यावन्ननङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वंकिल लोकपालः ॥ ११ ॥

स्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं, ऐसे ही जठराग्निसे हम सब जल रहे हैं, हे शरणागतपालक ! हम तुम्हारी शरण हैं और ब्राह्मणोंने आपको हमारा अधिपति बनाया है, आप हमारी सब वृत्तियोंका साधन करो ॥ १० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारी रक्षा करो, भूखके कारण हमारे प्राण पयान किया चाहते हैं; अन्न देनेके लिये आप कोई ऐसा यत्न करें कि जिससे हमको अन्न प्राप्त हो । हे नरदेव ! इतनी शीघ्रता करो कि अन्न विना हमारे प्राण न निकल जायें, क्योंकि जब हमारा शरीर ही न रहा तो फिर अन्न हमारे किस कामका ? चौपाई–"का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछताने ॥" आपको यह उपाय शीघ्र ही करना चाहिये,क्योंकि परमात्माने आपको जीविकाका पति

और लोगोंका पालक बनाया है ॥११॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! प्रजागणोंके आर्तवचन सुनकर पृथुने बहुत कालतक विचार किया तो भलीभांति दुर्भिक्षके प्रयोजनको समझ लिया ॥ १२ ॥ कि वसुमती सब ओषधियोंके बीजको निगल गयी है, इसीसे अन्नको उत्पन्न नहीं कर सकती। यह बात अपने चित्तमें निश्चय कर धनुष बाण ले जैसे त्रिपुरासुरके मारनेके लिये शिवने धनुष चढ़ाया था उसी प्रकार

मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥ १२ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ॥ संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥ १३ ॥ प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४ ॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि संधाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥

भूमिके भस्म करनेको महाकालके समान क्रोधित होकर परम प्रचंड बाण धनुषपर संधान कियां ॥१३॥ जब पृथुको क्रोधसे लाल-लाल नेत्र किये और चाप चढ़ाये देखा तो पृथ्वी डरके कारण थरथर कांपने लगी और धेनुका रूप धरकर भागी; जैसे वधिकके भयसे मृगी भागती है, ऐसे ही वसुंधरा व्याकुल होकर भागी ॥१४॥ भागती हुई भूमिको भूप देखकर रथपर चढ़, महाक्रोधित हो अरुणनयन कर,

---

१. शंका–प्रजाके वचनोंको सुनकर उस समय राजा पृथुने कुछ दूसरा और उपाय प्रजाके सुखी होनेके लिये नहीं विचारा, प्रजाके सुख देनेवाले सब यत्न त्यागकर बड़े भारी मूर्खोंकी नाई पृथ्वीको मारनेके लिये क्यों उद्यत हुए ? क्योंकि प्रजाके सुख होनेके उपाय लोकशास्त्रमें अनेक प्रकारके वर्णन किये हैं और पृथ्वीको मारना किसी शास्त्रमें नहीं लिखा ?

उत्तर–बड़े दयावान् पृथ्वीराज अवतार धारण करके राजगद्दीपर बैठे तो क्या देखा कि महाघोर अन्याय पृथ्वीपर हो रहा है, उसको देखकर पृथु राजाने अपने मनमें विचार किया कि वेनके राज्यके राजा बिगड़े हैं अब और जो आगे होंगे, वह सब राजा भी इनको देखकर बिगड़ जायेंगे तो पृथ्वी रसातल को चली जायगी, इस लिये इन दुष्टोंको त्रास दिखाकर शिक्षा देनी चाहिये । दुष्टराजाओंको ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वीने प्रजाको दुःख दिया था वह वेनके राज्यसे अब पृथुराज पृथ्वीको प्रजाका द्रोही जानकर प्रजाके सुख देनेके लिये पृथ्वीको मारनेको धनुष उठाया, तब तो सब राजा परस्पर कहने लगे; कि अरे भाई प्रजाको सुख दो नहीं तो सब मारे जायेंगे । ऐसे दुष्ट राजा पृथुकी त्राससे प्रजाको सुख देने लगे; इसलिये पृथ्वीको मारनेका विचार राजा पृथुने किया था । कुछ क्रोध करके पृथ्वीको मारनेका विचार नहीं किया था ।

धनुषबाण चढ़ाये उसके पीछे दौड़े और जहां-जहां पृथ्वी गयी वहां-वहां पृथुने उसका पीछा न छोड़ा ॥ १५ ॥ वह देवी वसुमती दिशा, विदिशा, अवनि, आकाश, उनके मध्यका अंतरिक्ष जहांजहां भागकर गयी,उन्हीं उन्हीं स्थानोंपर पृथुको शस्त्र लिये आता हुआ अपने पीछे देखा, सब लोकपालोंके लोकोंमें अत्यन्त शोकाकुल हो भागी भागी फिरी ॥१६॥ जैसे प्रजा मृत्युके सामने थरथर कांपती है और कोई नहीं बचा सकता,ऐसे ही पृथुके सामने किसीका सामर्थ्य न हुआ जो विना दीनदयालुके दीन पृथ्वीकी रक्षा करे। जब कहीं शरण न मिली तब भागनेसे निवृत्त हो पीछे लौटी ॥ १७ ॥ और मस्तक नवाकर महाबाहु राजा पृथुसे बोली-हे धर्म ! हे शरणागतप्रतिपालक ! !

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ॥ धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७ ॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ॥ त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ॥ अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥ प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जन्तवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥ मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥२१॥ पृथुरुवाच॥वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोषि च नो वसु॥२२॥

हे आपद्रक्षक ! ! ! सब संसारके पालन करनेके लिये आप उत्पन्न हुए हो, तो मेरा भी पालन करो ॥ १८ ॥ मुझ दीन निरपराधिनीको क्यों मारते हो ? आप तो धर्मज्ञ कहलाते हो फिर मुझ अबलापर कैसे हाथ डालोगे ?॥१९॥यदि स्त्री कोई अपराध भी करे तो साधारण मनुष्य भी उसको नहीं मारते और आप तो आर्तबंधु, प्रणतपाल, दीनवत्सल हो, आपका कहना क्या है ? ॥ २० ॥ जिसमें सब विश्व स्थित है ऐसी दृढ़ नौकारूप मुझको तोड़कर फिर इस संसारको और अपने शरीरके आधारको जलपर किस प्रकार धारण करोगे ? ॥ २१ ॥ पृथु बोले कि हे वसुंधरे ! तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये मैं तुझको विना मारे कदापि न छोडूंगा, क्योंकि यज्ञमें तू अपना भाग लेनेको

तो उपस्थित हो जाती है और धान्यादिक उपार्जन नहीं करती, फिर तू दंडकी भागी न होगी ? ॥ २२ ॥ और सुन जो गाय सदा घास और दाना तो खाय और दूध दे नहीं, तो उस दुष्टाको दंड देना योग्य है या नहीं ॥ २३ ॥ तूने मुझे अयोग्य समझकर ब्रह्माजीके पहले रचे हुए जो औषधियोंके बीज थे उन्हें अपने उदरमें रोक लिये हैं उनको तू प्रकट नहीं करती ॥ २४ ॥ "चौपाई–रे धरणी कुमती दुखदाई, नहिं जानत मेरी प्रभुताई ।" यह दीन प्रजा भूखोंकी मारी व्याकुल हो अत्यन्त दुःखी हो रही है, अतः अब अपने तीव्र बाणोंसे तेरा शरीर विदीर्ण कर तेरी मज्जासे इस आर्त प्रजागणको प्रमुदित करूंगा ॥ २५ ॥ पुरुष, स्त्री, नपुंसक अपनी बड़ाई आप करनेवाला, प्रजाको क्लेश देनेवाला,

यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥२३॥ त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा ॥ न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥ अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ २६ ॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥

दयाहीन, साधुओंसे द्रोह रखनेवाला और अधम, इतने पुरुषोंका मारना राजाको न मारनेके समान है क्योंकि इनके मारनेका कुछ दोष नहीं ॥ २६ ॥ अरी गर्वीली कुमति भरी ! दुर्मदवाली धरणी ! तूने कपट करके गोरूप धारण किया, मैं तिल-तिल समान तेरे खंड-खंड करके अपने अनुपम योगबलके प्रतापसे प्रजाको जलके ऊपर धारण करूंगा ॥ २७ ॥ क्या तूने मेरे प्रतापको कुछ नहीं समझा ? इस प्रकार क्रोधमयी महाकराल मूर्ति कालके समान धारण किये पृथुको देख धरणी नम्र हो, थरथराती-कांपती हाथ जोड़कर बोली ॥ २८ ॥ धरा बोली कि जय परपुरुष पृथ्वीशकी, नाना प्रकारकी माया करके शरीर धारण करनेवाले, आत्मा स्वरूपके अनुभवसे दूर हुए हैं जिन्होंने द्रव्य,

क्रिया और कारकसंबन्धी अहंकार और अहंकारनिमित्तक रागद्वेषादिक, ऐसे धर्मज्ञको मैं वारंवार नमस्कार करती हूं ॥ २९ ॥ जिस ब्रह्माने अपने रचे हुए जीवोंके लिये मुझको रचा है और मुझको सब प्राणिमात्रका आधार बनाया है। स्वेदज, अण्डज, पिंडज, जरायुज, यह चारों प्रकारके जीव मेरे ऊपर वास करते हैं सोई स्वतन्त्र विश्वनाथ आज हाथमें धनुष-बाण लेकर मेरे मारनेको उद्यत हुए हैं,अब मैं ऐसे परमात्माको छोड़कर और किसकी शरण लूं ? ॥ ३० ॥ आदिमें जिस परमेश्वरने अपने अधीन रहने वाली प्रवर्तक मायासे चराचरको उत्पन्न किया है और उसी अपनी मायासे संसारकी रक्षाके लिये हुआ है, वह धर्मपरायण परमात्मा मुझको किस लिये मारता है ॥ ३१ ॥

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ॥ स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥ य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययाऽऽत्माश्रययाऽवितर्क्यया ॥ तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३१॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ॥ तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ॥ संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥

सत्य है कि परमात्माकी चेष्टा उनकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंसे नहीं जानी जाती जिसने स्वतः एक होनेपर भी मायासे अनेकरूप और स्वाधीन परमेश्वरने यह जगत् रचा है और ब्रह्माके द्वारा भी चराचर विश्वको उत्पन्न करवाया है॥३२॥द्रव्य, क्रिया,कारण, चेतन आत्मा द्वारा अपनी शक्तियोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय करता है, अति उत्कट और निरुद्ध शक्तिवाले वेधा परपुरुषके अर्थ मैं वारंवार नमस्कार करती हूं ॥३३॥ हे विभो ! हे अज ! ! आपने उसी अपनी आत्मासे रचे हुए महाभूत इंद्रिय अन्तःकरणात्मक इस अपने उत्पन्न किये हुए विश्वको उत्तम रीतिसे स्थित करनेके लिये आदिरूप धर जो हिरण्याक्ष दुष्टको मार रसातलसे मेरा उद्धार

किया था ॥ ३४ ॥ और पानीके ऊपर नौकारूपसे स्थापित आधारभूत मेरे ऊपर रही हुई प्रजाओंके पालन करनेके लिये जो आप पृथु रूप धारण करके उत्पन्न हुए हो; उसी धरणीके धारण करनेवाले आप उग्र बाण चढ़ाकर मेरे मारनेको उपस्थित हो, क्या कहूँ ? बड़े अचम्भेकी बात है ! ॥ ३५ ॥ निश्चय है कि मुझ सरीखे जिनके चित्त परमात्माकी मायासे मोहित हैं, वे पुरुष भगवान्‌के भक्तोंकी चेष्टा भी जब नहीं जान सके तो फिर परमात्माकी चेष्टा जाननी तो महा कठिन है, उसको कैसे जान सकते हैं ? भगवान्‌के समान जितेन्द्रिय वीर पुरुषोंके लिये बारम्बार मेरा नमस्कार है, कोई कहे कि पृथुने इतनी बड़ी पृथ्वीको व्याकुल कर दिया तो यह बात कुछ

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥ नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ॥ न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥ इति श्री भा० म० चतुर्थ० पृथूपाख्याने धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥ संनियच्छाभि भो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥ २ ॥

आश्चर्यकी नहीं है, भगवत्‌के भक्तोंको सब सामर्थ्य * है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीका पृथुधरणीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा—अष्टादश अध्यायमें, धरा वचन प्रियमान । वत्सपात्र सब जानके, लगे करन पयपान ॥ मैत्रेयजी बोले कि, क्रोधसे होठ जिसके फड़क रहे थे, ऐसे पृथुराजकी स्तुति कर भयभीत पृथ्वी बुद्धिसे मनको सावधान करके फिर बोली कि ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! क्रोध शांत करो और मुझको अभयदान देकर मेरी विनय सुनो, जैसे भ्रमर पुष्पका सारसार रस ले लेता है।

---

* भजन—कहा कमी जाके राम धनी ॥ मनसामाहिं मनोरथ पुरवे, सुभनिधान जाकी बात बनी । अर्थ धर्म कामना मोक्षफल, चार पदार्थ देत छनी ॥ इन्द्रादिक हैं जाके सेवक, नर बपुरेकी कौन गनी ॥ कहा कृपणकी माया धनी है, करत फिरत अपनी अपनी ॥ खाय सके खर्च नहिं जाने, ज्यौं भुजंगवश रहतमनी । आनंदमगन रामगुणगावत, बिसरत दुखकी काट तनी । सूरदास प्रभुको सुमिरत नित, तिनसों हरिसों सदा बनी ॥

ऐसे ही जो बुद्धिमान विलक्षण लोग होते हैं वे सब वस्तुका सार ग्रहण कर लेते हैं ॥ २ ॥ इस लोकमें और परलोकमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुरुषोंके कल्याणकी सिद्धिके लिये योगप्रयोग कृषी आदि उपाय बतलाये हैं और उन्होंने कर्मारम्भ किये हैं ॥ ३ ॥ जो महात्माजनोंने उपाय बतलाये उन प्रयत्नोंको जो लोग श्रद्धा सहित अच्छी रीतिसे सावधान हो अनुष्ठान करते हैं, वे प्रतिकूल पुरुष भी उन उपायोंके विना अनायास सफल हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जो अज्ञानी उन प्रयत्नोंका तिरस्कार करके अपने मनसे अथवा और किसी रीतिसे नूतन उपाय करते हैं तो उनके वारंवार प्रारम्भ किये हुए फल सब नष्टहो जाते हैं ॥ ५ ॥ हे विशांपते ! ब्रह्माजीकी पहली रची हुई ओषधि और जो अन्नादिक था, उनको वेन आदि व्रत रहित कुकर्मी लोगोंको भोगते मैंने देखा ॥६॥ जब आप जैसे लोक-

अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ॥ अवरः श्रद्धयोपेत उपायान्विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४ ॥ताननादृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयम् ॥ तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते ॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ॥ चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ॥ तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥

पाल होकर न तो मेरा पालन किया और न प्रजाका पालन किया और उलटा उसका निरादर किया, जब लोकमें चोर ही चोर हो गये तब मैंने यज्ञके लिये सब औषधियोंको ग्रस लिया, क्योंकि यह औषधि पापियोंके योग्य नहीं है, जो इन औषधियोंको पापी भक्षण कर लेंगे तो फिर मुनिलोग यज्ञके समय कहांसे लायेंगे । मैंने अपने मनमें यह विचार कर सब अन्न भक्षण कर लिया, इसी कारण संसारमें दुर्भिक्ष हो गया ॥ ७ ॥ निश्चय है कि वह द्रुम-वेली अब अधिक समय व्यतीत होनेसे मेरे देहमें क्षीण हो गयी हो, जो कुछ उपाय महात्माजनोंने बतलाया है; उसी उपायसे और अपने योगबलसे आप मुझसे ले लो ॥ ८ ॥ हे वीर ! प्रथम तो एक वत्स

कल्पना करो जिससे मैं तुम्हारी प्यारी रहूँ और दूसरे उसी प्रकारकी मेरे अनुसार दोहनी बनाओ जिससे मैं आप पर प्रसन्न होकर दुग्ध रूपी आपकी सब अभिलाषा पूर्ण करूँ ॥ ९ ॥ हे महाबाहो ! हे भूतभावन ! ! जो तुम प्राणियोंके लिये मनोवांछित अन्नकी इच्छा करते हो तो किसी दुहनेवालेको स्थापित करो ॥१०॥ हे विभो ! हे राजन् ! ! आप मुझको बराबर कर दीजिये कि जिससे वर्षाऋतुके समाप्त हो जाने पर भी दैवका वर्षाया हुआ पानी मेरे ऊपर सदा नालोंमें भरा ही रहे ॥ ११ ॥ ऐसे प्रिय हितकारी वाक्य पृथ्वीके सुनकर भूपतिने मनुको वत्स बना, हाथोंमें सुन्दर दोहनी ले, धेनुरूप धरणीसे अन्न दुहने लगे ॥ १२ ॥ उसी प्रकार और भी ज्ञानी लोग सब

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥१०॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्त्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥ इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥ तथा परे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥ १४ ॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥१५॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुरासवम् ॥१६॥ गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥ वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधुसौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ॥ आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥

ओरसे सार ग्रहण करने लगे और ऋषि मुनिआदिक पन्द्रह जनोंने भी महाराज पृथुकी वश की हुई पृथ्वीको अपनी इच्छानुसार दुहा ॥ १३ ॥ हे विदुर ! ऋषियोंने बृहस्पतिको वत्स बनाया और इंद्रियरूप पात्रमें परम पवित्र वेदमय दूधको दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको वत्स बनाया और कंचनमय पात्रमें अमृत वीर्य, ओज, बल, रूप पय दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुर श्रेष्ठ प्रह्लादको वत्स बनाकर लोहेके पात्रमें सुरा, आसवरूप दूध दुहा ॥ १६ ॥ गंधर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको वत्स बनाकर कमलमय दोहिनीमें मधुर वाक्य और सुन्दरतासहित गान विद्यारूप दूध दुहा ॥१७॥ महाभगवान् श्राद्धदेवताने श्रद्धा करके अर्यमा नाम पितृको

वत्स बनाकर कच्चे माटीके वर्तनमें पितृगणके योग्य अन्नरूप क्षीरको दुहा ॥ १८ ॥ और सिद्धलोगोंने कपिलदेवजीको वत्स बनाकर संकल्पमयी नाम सिद्धिविद्याको दुहा ॥ और जो विद्याधर आदिक थे, उन्होंने आकाशपात्र खेचर विद्यारूप दूधको दुहा ॥ १९ ॥ और जो मायावी लोग थे उन्होंने मयदैत्यको वत्स बनाकर गुप्त हो जाना इत्यादि अद्भुत प्रकृतिवाले पुरुषसम्बंधी संकल्पमात्रसे प्रकट होनेवाली मायारूप दूधको दुहा ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच जो रुधिरपान करनेवाले थे, उन्होंने रुद्रको वत्स बनाकर कपालोंमें रुधिररूप मदिराको दुहा ॥ २१ ॥ ऐसे ही वृश्चिकादिकोंने सर्प नाग तक्षकको वत्स बनाकर बिलरूप पात्रमें विषरूप दूधको दुहा, जिनके डसनेसे मनुष्य उसी समय मर जाता है ॥ २२ ॥ सब पशुओंने नंदिकेश्वरको वत्स बनाकर वनरूप पात्रमें मृगेंद्रदंष्ट्रि करके घास तृणादिकरूप

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् ॥ सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥१९॥ अन्ये च मायिनो मायामन्तर्द्धानाद्भुतात्मनाम् ॥ मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम्॥२०॥यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥ तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः॥२२॥पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ॥अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः॥२३॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥ सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥२४॥वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु॥२५॥सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक्पयः॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥२६॥ एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ॥ दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७॥

दुग्ध दुहा ॥ २३ ॥ मांसाहारी जीवोंने सिंहको वत्स बनाकर अपने शरीररूप पात्रमें मांसरूप दूधको दुहा और पक्षियोंने खगराजको वत्स बनाकर सब पक्षी चर कीटादि अचर फलादिरूप दूधको दुहा ॥ २४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर वनस्पति आदि अनेक प्रकारके रसरूप दूधको दुहा, पर्वतोंने हिमाचलको वत्स बनाकर, शिखररूप पात्रमें नानाप्रकारकी धातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ सब जनोंने अपने-अपने मुखियाओंको वत्स बनाकर अपने-अपने पात्रमें सब मनोवांछित फल देनेवाली पृथुराजकी वशीभूत की हुई पृथ्वीसे अपने मनमाना पृथक् पृथक् दूध दुहा ॥२६॥ हे कुरुनन्दन ! ऐसा अन्नभोजन करनेवाले पृथुआदिक सर्वत्र पुरुषोंने अपने-अपने अभीष्ट अन्नको दुहा, परन्तु दोहिनी

वत्सादि भेद हो जैसे उस दूधमें भी हो गया ॥ २७ ॥ फिर तो राजापृथु पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब कामदात्री पृथ्वीको अपनी प्यारी पुत्री बनायी और प्रेमसे दुहिताके वत्सल हुए ॥ २८ ॥ फिर राजाधिराज विभुने अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ फोड़ कर इस भूमंडलको इकसार कर दिया ॥ २९ ॥ फिर भगवान् पृथु प्रजाओंके जीवनका दाता, पिताके समान आनन्द देनेवाले जहां तहां इस पृथ्वीपर यथायोग्य निवासके लिये उत्तम-उत्तम निवासस्थानकी कल्पना करने लगे ॥ ३० ॥ ग्राम, नगर, पुर, अनेक प्रकारके दुर्ग,

ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥२८॥ चूर्णयन्स्वधनुष्कोटया गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥ ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान्खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥ प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥ यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे पृथूपाख्याने पृथिवीदोहनवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

गोशाला, ग्वालियोंके रहनेके लिये स्थान; सेनाओंके रहनेके लिये सैन्य, भवन, पर्वतके प्रान्तभागके ग्राम जहाँ-तहाँ वसा दिये ॥ ३१ ॥ पृथुके राज्यसे पहले पुर ग्रामादिककी रचना कहीं भी नहीं थी, जहाँ अपना सुख देखते थे, वहाँ निर्भय होकर स्थान बना लेते थे, उन्हीं लोगोंको हम वारंवार धन्यवाद देते हैं ❋ ॥३२॥ इति श्री० महा० च० भा० टी० दोहनवत्सादिभेदेन पृथुराज्ञा पृथ्वीदोहनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

---

१ कवित्त—वालमीकी नारद वसिष्ठ व्यास विश्वामित्र, भारद्वाज लोमशऋषि आदि जे कहावे हें । दिनोंरात भगवत्का महिमामांहि मग्न रहें, जिनका यश वेद पुराण सदा गावे हें ॥ घाम शीत वर्षा सब वनहीमें टेर करी, उनहीको शालिगराम पूरण बतावे आज कालके मनुष्य थोरेसे जीवनपर, अटा औ अटारी न्यारी न्यारी बनवावे हें ॥

१. शंका—राजा पृथुके राज्यमें पहले पृथ्वीपर पुर, ग्राम, नगर, पट्टन नहीं थे और पहले पृथ्वीपर राजा तो अनेक हो गये, जो पृथ्वीपर राजा पृथुके पूर्वकालमें नगर, ग्राम, पुर, पट्टन और किसान लोगोंके रहनेको खेती करनेको ग्राम नहीं थे तो राजालोगोंका कोष (खजाना) किस प्रकार भरता था और राजाओंके लाखों रुपयेके काम किस रीतिसे होते थे ? और राजालोग भाग किस वस्तुका लेते थे, इससे ज्ञात होता है कि पहले केवल जङ्गल ही रहा होगा ।

उत्तर—विद्वान्लोग पृथुके पहले अर्थमें बहुत दिन नहीं मानते । पृथुके पहले इस अर्थमें पृथुके पहले वेनका राज्य मानते हैं, वेनके राज्यमें सब नगर ग्रामादिक नष्ट हो गये थे । इस बातमें कुछ शंका नहीं करनी चाहिये ।

दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, इंद्र हरो पृथुवाज ।ताके मारनके लिये, उद्यत भे पृथुराज ॥ मैत्रेयजी बोले कि फिर राजा पृथुने सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया, जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं और ब्रह्मामनुका ब्रह्मावर्त क्षेत्र है ॥ १ ॥ भगवान् इंद्रने पृथुका यह अभिप्राय समझा कि जो इसके सौ यज्ञ संपूर्ण हो जायँगे तो यह मेरा इन्द्रासन छीन लेगा, इस लिये उनके महोत्सवको न देख सका ॥ २ ॥ उस यज्ञमें यज्ञपति साक्षात् भगवान् वासुदेव ईश्वर सर्वात्मा सर्व लोगोंके गुरु श्रीभगवान् आकर प्रत्यक्ष प्रकट हुए थे ॥ ३ ॥ जिसके साथ चतुरानन ब्रह्माजी, पंचानन महादेवजी, लोकपाल और लोकपालोंके अनुचर भी उद्यत थे और गन्धर्व, मुनि, अप्सरागण

मैत्रेय उवाच ॥ अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ॥ ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥ तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः ॥ शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥ यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥३॥ अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥४॥ सिद्धा विद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥५॥ कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ॥ दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥७॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ॥ तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥ सिन्धवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकास्सपालकाः॥९॥

सब आपका यश वर्णन कर रहे थे ॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, गुह्यक आदिक, सुनंद, नंद नामक मुख्य भगवान हरिके पार्षद ॥ ५ ॥ कपिलदेव, नारद, दत्तात्रेय, सनकादिक योगेश्वर और जो जिनके मन भगवत्के सेवनमें थे वे सब आकर उपस्थित हुए ॥ ६ ॥ हे भारत ! जहां सर्व मनोवांछित देनेवाली भूमि गोरूप धारण कर राजा पृथु यजमानको सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले अर्थको देती हुई ॥ ७ ॥ क्षीर, दधि, गोरस, सब प्रकारके रस नदियोंमें बहने लगे और जिनके विस्तृत देह ऐसे मधुस्रावि वृक्षफलादिक पदार्थ उत्पन्न करने लगे ॥ ८ ॥ समुद्रने रत्नोंके समूह दिये, पर्वतोंने भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य चार प्रकारका अन्न लोकपालसहित सब लोगोंने

भेंटें दीं ॥ ९ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेव जिसके रक्षक ऐसे महाराजको पृथुराजके अत्यन्त उदयवाले कर्म देखकर भगवान् इंद्रके मनमें ईर्षा उत्पन्न हुई और पृथुके शुभकर्मका सहन उससे न हो सका, इसलिये प्रतिघात (विघ्न) करने लगा ॥ १० ॥ और यहां अंतके सौवें (१००) अश्वमेध यज्ञमें पृथु यज्ञपतिकी पूजा करने लगे, तब इन्द्र आत्मश्लाघा करके अंतर्धान हो यज्ञके घोड़ेको चुराकर ले गया ॥ ११ ॥ आकाशमार्गमें भागते हुआ इन्द्रको भगवान् अत्रिऋषिने देखा कि राजा पृथुके यज्ञका अश्व चुराये लिये जाता है; जिसने सब स्थानोंमें पाखंड फैला रक्खा है, जो अधर्मसे धर्मकेसा भ्रम करनेवाला है ॥ १२ ॥ अत्रि ऋषिके संकेत करनेसे महाराज पृथुका पुत्र महारथी महाक्रोध कर उसके पीछे दौड़ा और पुकार कर बोला, खड़ा रह ! कहाँ भागा जाता है ! अरे

इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ॥ असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥ १० ॥ चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्द्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥ ११ ॥ तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा ॥ आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥ १२ ॥ अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ॥ अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥ तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम् ॥ जटिलंभस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥ १४ ॥ वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् ॥ जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥ १५ ॥

चोर ! अरे अभिमानी ! ! किसने तेरा देवराज नाम रक्खा है, अरे निर्लज्ज ! अरे अधम ! ! मेरा तुरंग लेकर कहां जायगा, मैं अभी पकड़ कर तेरा शिर काटूंगा, हमारे पिताके यज्ञका अश्व हर लेना तूने सहज ही समझ लिया, बस अब आगे न भाग ॥ १३ ॥ जब महारथी पृथुके पुत्र विजिताश्वने समीप जाकर देखा तो तनुमें भस्म मले, जटा धारण किये, यह तो मूर्तिमान् धर्म जान पड़ता है, अथवा यह कोई संन्यासी है, यह इन्द्र नहीं, ऐसा समझ उसपर बाण नहीं चलाया और उससे पूछा कि हे तपस्वी ! तुमने इन्द्रको घोड़ा लिये जाता देखा, तपस्वीने कहा कि इन्द्रको मैंने तुरंग लिये जाता नहीं देखा । तब जाना कि माया करके इन्द्र अंतर्धान हो गया निदान इंद्रके वधसे निराश होकर विजिताश्व लौटनेको उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ जब अत्रिने समझा कि पृथुराजका पुत्र इन्द्रके वधसे

निवृत्त हो गया, तब अत्रि ऋषिने फिर उसके वध करनेके लिये विजिताश्वको भेजा और कहा कि हे पुत्र ! इस अधर्मीको मार यही तेरे पिताके मखकाविध्वंस करने वाला है, यही सुराधम इन्द्र है, यह संन्यासी नहीं है, इसीने घोड़ा चुराया है ॥ १५ ॥ जब अत्रिने पृथुके पुत्रको इस प्रकार समझाया तब विजिताश्व अत्रिकी वाणी सुन फिर लौटा और धनुषबाण सन्धानकर बोले कि हे नाथ ! मुझे धोखा हो गया, परन्तु अब किसी प्रकार यह नहीं बच सकता, चाहे ब्रह्मलोकमें क्यों न जाय ? यह कह आकाश मार्गमें होकर उसके पीछे ऐसा दौड़ा

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥ १६ ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥ तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ॥ नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥ १८ ॥

जैसे गृध्रराज रावणके प्रति दौड़ा था ॥ १६ ॥ जब इन्द्रने जाना कि मैं इसके हाथसे नहीं बचूंगा, तब भागा । उस समय विजिताश्वने कोदण्डपर कठिन प्रचण्ड बाण चढ़ाया । तब वह इन्द्र अश्व और अपना पाखण्डरूप त्याग अन्तर्धान हो गया, वह महारथी अपने अश्वको लेकर पिताकी यज्ञशालामें आया और दण्डवत करके वह अश्व अपने पिताको दिखाया ॥ १७ ॥ बड़े-बड़े वेदवेत्ता महात्मा पुरुष और ऋषि लोगोंने उसके अद्भुत विक्रमको देखकर और सुरेन्द्रको पराजय कर घोड़ा आनेसे इसका विजिताश्व नाम रक्खा ॥ १८ ॥

---

१. शंका—अत्रि मुनि मुनियोंमें बड़े श्रेष्ठ और भूत, भविष्य, वर्तमान कालके जाननेवाले ज्ञानियोंमें चंद्रमाके समान प्रकाशवान् ऐसे अत्रिमुनिके सन्मुख इन्द्र पृथुके यज्ञ में घोड़ेको चुराकर ले गया उस समय अत्रिमुनिने रक्षा क्यों नहीं की ?

उत्तर—पूर्वजन्ममें इन्द्रने जब सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ किये थे, तब स्वर्गके राज्यको पाया था। इसी लिये इन्द्र देवता भगवान्‌को बड़ा प्यारा है, यज्ञ प्रभावसे भगवान् इन्द्रका मानभङ्ग नहीं करते । मुनिजन मन्त्रोंसे यज्ञकी रक्षा बहुत प्रकारसे करते हैं, परन्तु इन्द्र यज्ञमें तो भी विघ्न कर देता है । वेदमन्त्रोंका तथा ईश्वरका उसको किंचिन्मात्रभी भय नहीं होता, क्योंकि पूर्वकालके यज्ञोंका पुण्य उसके पास है, इसीलिये पृथुके यज्ञमें अत्रिको भी घोड़ेको रक्षा करनेका वश नहीं चला।

वह सामर्थ्यवान् पुरंदर फिर वहां आया और घोर अन्धकार फैला फिर गुप्तरूप धरा, कि जिसको कोई पहचान न सके । यज्ञके खम्भमें जो सुवर्णकी संकलासे तुरंग बँध रहा था उससे खोल संकल समेत घोड़ेको चुरा ले गया "परंतु यह भेद किसीने न जाना" जब इंद्र वाजिको कुछ दूर ले गया तब सब अन्धकार जाता रहा॥१९॥फिर अत्रिने आकाशमार्गमें इन्द्रको घोड़ा लिये जाता हुआ देखा तोफिर राजकुमारसे कहा कि हे विजिताश्व ! जिस अश्वको तू इन्द्रसे छीनकर लाया था, उस अश्वको इन्द्र फिर चुराकर ले गया, विजिताश्वने कहा कि अब इन्द्रको जीता ही न छोडूंगा जो फिर उपद्रव करे। यह कह फिर धनुष बाण ले इन्द्रके पीछे हुआ उसे आते देख भयभीत हो इन्द्रने झट अपनी माया रच अघोरी रूप धारण कर लिया, माथेपर मनुज कपाल धारे, एक हाथमें मृतक शरीर लिये एक हाथसे बैलकी नाथ पकड़े आगे-आगे जाता देखा, परंतु कपाल खट्वांग धारण किये देखकर राजकुमारने इसपर बाण प्रहार न किया, फिर

उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥ अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ॥ कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥२०॥ अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥ २१ ॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥ २२ ॥ यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खण्डानि लिंगं खण्डमिहोच्यते ॥ २३ ॥

विजिताश्वने पूछा कि इधरको कोई पुरुष घोड़ा लेकर गया है। अघोरीने कहा कि हमने नहीं देखा, उस समय विजिताश्व निराश हो फिर अपने भवनको लौटा ॥ २० ॥ अत्रिने फिर प्रेरणा की कि अरे पुत्र यही है देवराज घोड़ेको चुरानेवाला, तब विजिताश्व फिर क्रुद्ध होकर शरसंधान किया, फिर इंद्र अश्वको और उस रूपको तजकर अंतर्धान हो गया ॥२१॥ फिर आगे बढ़कर विजिताश्वने देखा तो घोड़ा खड़ा है, परंतु पुरंदर नहीं,वह महाबलवान् तुरंगको लेकर फिर पिताके यज्ञमें आया और महर्षि महात्मा और पिताके चरणोंमें प्रणाम किया उस समय सब सिद्ध मुनि और समाजके मनुष्य विजिताश्वकी प्रशंसा करने लगे कि कौन इनकी समता कर सकता है ? कि जिसने सुरेशको जीतकर घोड़ा छुड़ा लिया और पुरंदरने जो जो पाखण्डरूप धारण किये थे, उन्हीं निन्दनीय वेषोंको अज्ञानी और मूर्ख लोग धर्म समझ कर ग्रहण करते हैं ॥ २२ ॥ घोड़ेके चुरानेके मनोरथसे वासवने जो-जो वेष धारण किये वही पापके चिह्न खण्ड-खण्डमें प्रकट

हुए ॥२३॥ पृथुके मखभंग करनेकी अभिलाषासे अश्वके चुरानेके लिये जो-जो रूप धरकर इन्द्रने अपना पीछा छुड़ाया उन पाखण्डोंमें मनुष्योंकी मति लगी रहती है ॥ २४ ॥ वह पाखण्ड धर्म यह है, दिगम्बर अर्थात् नग्न रहना, जैसे जैन रक्तपट अर्थात् बौद्ध भगोंए वस्त्र धारण करनेवाले और कापालिक शिरपर जटाजूट बांधे शरीरमें भस्म लगाये, सेली, सींगी गलेमें डाले, हाथोंमें झोली-खप्पर लिये जैसे गोरखपंथी और कोई परमहंस कहलाते हैं, अनेक प्रकारके जो यह धर्मके समान प्रकट होनेवाला पाखण्ड मार्ग प्रसिद्ध है,इनको धर्मका मार्ग समझकर बहुधा बहुत मनुष्य भ्रांतिमें आकर इनके भ्रमजालमें फँस जाते हैं,क्योंकि यह बाहरसे देखनेमें बड़े शोभायमान और मनोहर और हेतुवादमें विलक्षण होते हैं,परंतु भीतर कपट,क्रोध,लोभ, मोहमें लवलीन रहते हैं । हे विदुर ! ऐसे पाखण्डी लोगोंका संग विद्वान् लोग नहीं करते क्योंकि पाखंडियोंका संग सदा पाप और अज्ञानको उत्पन्न करता है ॥२५॥ इन्द्रका यह अनर्थ देखकर और यह अभिप्राय

एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ॥ तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥ २४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥ २५ ॥ तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७ ॥ वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजञ्जुहवाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥

जान भगवान् पृथुने उस अभिमानी इन्द्रपर महाक्रोधित हो धनुष हाथमें लेकर बाण सँभाला उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो ब्रह्मांडको अभी खण्ड-खण्ड कर देंगे, दशों दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित हो गयी और सब ओर लाल ही लाल दृष्टि आने लगा, धरणी कँपकँपाने और कूर्म कुलमलाने लगा,उल्कापात आकाशमें प्रकट हो गये,समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी,दिग्गज चिक्कारने लगे,त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया, ॥ २६ ॥ जिसके सम्मुख जाना तो क्या देखना भीअति कठिन है ऐसे असह वेगवाले पृथुकी इन्द्रके वधकी इच्छा जानकर मुनियोंने राजासे कहा कि अहो महाबाहो इस यज्ञमें पशुवधके अतिरिक्त और दूसरेका वध करना उचित नहीं ॥ २७ ॥ और यदि इन्द्रके मारनेकी आपकी इच्छा है तो नृपनंदन ! हे नृपेन्द्र ! ! तुम्हारे यशसे हतकांति, अर्थनाशक, मनोरथके विध्वंस करने

वाला अभिमानी इन्द्रको हम उन मंत्रोंसेआह्वान करके बुला लेंगे, जिनके सार नहीं गये हैं, फिर हम हठ करके आपके वैरी इन्द्रको इसी अग्निकुण्डमें होम कर देंगे, आप क्या तुच्छ इन्द्रपर शर चलाते हो, इसके पीछे लाखों जीवोंका घात करना यह धर्मात्माओंका काम नहीं क्योंकि एक अकेला इन्द्र ही नहीं मरेगा, किंतु सब स्वर्गका क्षय हो जायगा ॥२८॥ ब्राह्मणोंका वचन सुन पृथुने कहा कि जबतक तुम उस अधर्मी इंद्रको मेरे सम्मुख अग्निमें न होम दोगे, तबतक मैं कदापि धनुषबाण हाथसे न त्यागूँगा, क्योंकि इस पापीने मेरे यज्ञमें विघ्न डाला है। हे विदुर! पृथुकी आज्ञा मान ऋत्विजने रोष करके अपने-अपने हाथमें श्रुवा उठा इन्द्रका उद्देश्य कर अग्निकुण्डमें आहुति देनी चाही तब उसी समय ब्रह्माजीने आकर मुनियोंसे कहा कि ॥ २९ ॥ आप लोगोंके भस्म करनेयोग्य इन्द्र नहीं है, क्योंकि जिस इंद्रको मारनेकी तुम्हारी इच्छा है, वह यज्ञरूप भगवान् है, उसीके यज्ञद्वारा यजन किये जाते हैं वह सब देवताओंका स्वरूप है, ईश्वरको परमप्रिय है,

इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥२९॥ न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥ ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भ-वान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥ नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥

और दूसरे यह यज्ञ नाम सातवां इन्द्र साक्षात् भगवान्‌का अवतार है॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो! इन्द्रके वध करनेमें बड़ा अधर्म है, इस लिये तुम इन्द्रसे मित्रता करो, इन्द्रने जो पृथुके कर्मको विध्वंस करना चाहा और पाखण्ड वेष धारण किया केवल अधर्मके लिये अघोरी तनु धरा उसको देखो ॥ ३१ ॥ हे पृथो! एककम सौ यज्ञोंसे ही आपकी महाकीर्ति है और पूरे ही सौ यज्ञ हो गये तो क्या? आपके भले प्रकार यजन किये हुए बहुत यज्ञ हो गये, अब आप और यज्ञ करके क्या करोगे ? क्योंकि तुम तो मोक्षधर्मके वेत्ता हो, क्या तुच्छ इन्द्रपदके लिये इतना परिश्रम करते हो जिसके सौ यज्ञ पूरे हो जाते हैं, वह इन्द्र होता है, आपको इन्द्रासनकी क्या आवश्यकता है, जो कीर्ति आपकी आजदिन संसारमें छा रही है वह सुरेशको स्वप्नमें भी नहीं मिल सकती ॥ ३२ ॥ हे पृथुराज ! इन्द्र आपका ही स्वरूप है, इसलिये इन्द्र पर आपको कोप करना नहीं चाहिये, आपका जय हो, आप और सुरेश दोनों भगवत्‌का स्वरूप हो, यह बात सब संसारमें प्रसिद्ध है ॥३३॥

हे महाराज ! अब इस यज्ञमें आप विघ्नकी चिंता मत करो, हमारा वचन आदरपूर्वक सुनो, जिस कार्यका दैव विनाश करता है और जो पुरुष उसका ध्यान चित्तमें करता रहता है,वह क्रोधका मारा अन्धा होकर मोहरूपी कूपमें जा पड़ता है,फिर उसका कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि चित्तपर शांति नहीं रहती और जो पुरुष क्रोधित चित्तसे कार्य करता है, वह नरकमें जाता है ॥ ३४ ॥ अब इस यज्ञको मत करो, देवताओंके मनमें इसका दुराग्रह होता है, क्योंकि इन्द्रके अनेक प्रकारवाले पाखण्डोंसे महा अधर्म होता है ॥ ३५ ॥ जिस इन्द्रने तुम्हारे यज्ञका घोड़ा चुराया और यज्ञ भङ्ग करनेके लिये अनेक उपद्रव किये, उस पुरंदरके रचे हुए नये-नये पाखण्डोंसे लोग धर्मको छोड़ अधर्ममें प्रवृत्त होंगे तो इस पापके भागी आप होंगे, इसलिये आप क्रोधको तज इन दीनजनोंकी ओर देखो ॥ ३६ ॥

माऽस्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥ ३४ ॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥ एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलाऽसि वैन्य ॥३७॥ स त्वं विमृश्यास्यभवं प्रजापतेःसंकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं जहि प्रभो ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनाऽपि च संदधे ॥३९॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥

वेनके अधर्मसे सब धर्मोंका नाश हो गया, सब वस्तु लुप्त हो गयीं और उसीके तनुसे आप भगवद्रूप भगवत्की कला उत्पन्न हुए हो, हे वेन वंशोद्भव पृथो ! धर्मकी मर्यादा और महात्मा पुरुषोंकी रक्षाके लिये आपने संसारमें अवतार लिया है ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! हे प्रजापते ! ! इस विश्वकी उत्पत्ति विचार इस विश्वका मंगल जैसे हो सके वैसा ही उपाय करके विश्व रचनेवाले प्रजापतियोंके संकल्प परिपूर्ण करो और पाखण्डरूपी इन्द्रकी माया प्रबल प्रचण्ड नवीन मार्ग चलानेवालीका नाश करो ॥३८॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार जब जगद्गुरु ब्रह्माजीने राजा पृथुको समझाया तब राजा पृथुने यज्ञकी हठ त्याग वात्सल्य भाव कर इन्द्रसे मिलाप कर लिया ॥३९॥ जब राजा पृथु यज्ञां-

तके समय दीक्षान्त-स्नानसे निवृत्त हो गये तब उस महाकर्मकारी पृथुके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जो मांगा वही वस्तु दे उनके मनोरथ पूर्ण किये। और प्रसन्न ब्राह्मणोंने भी राजा पृथुको अनेक प्रकारके वरदान दिये ॥ ४० ॥ हे विदुरजी ! सत्य आशीर्वादवाले श्रद्धासे लब्ध दक्षिणा-वाले, सत्कार किये ब्राह्मण प्रसन्न होकर आदिराज पृथुको आशीर्वाद देकर कहने लगे ॥ ४१ ॥ कि हे महाबाहो ! तुम्हारे बुलाये पितर, देव, ऋषि, मनुष्य हम सभी आये हैं और दान व मानसे पूजित हुए अतिसंतुष्ट हैं ॥४२॥ इस प्रकार राजा पृथुसे पूजित हुए संपूर्ण देव आदि राजा पृथुको आशीर्वाद देकर उसके उत्तम यज्ञकी श्लाघा करते अपने-अपने स्थानोंको प्राप्त हुए ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ-

विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥ ४१ ॥ त्वयाऽऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥ दत्ताशीर्वचनाः सर्वे पूजिताः पृथुना च ते ॥ स्वं स्वं स्थानं ययुर्हृष्टाः शंसन्तो यज्ञमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० इन्द्रकृतपाखण्डमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक्तमभाषत ॥ १ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ एष तेऽकारषीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह ॥ क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥

स्कन्धे भाषाटीकायां पृथुचरित्रे इन्द्रकृतपाखण्डमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–पृथुहि बीस अध्यायमें, आन श्रीभ-गवान। करी परस्पर प्रीति अति,दीन्ह महावरदान॥ मैत्रेयजी बोले कि श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथ यज्ञपति यज्ञोंके भोक्ता,विभुने सुरेशको अपने साथ ले यज्ञोंसे प्रसन्न हो राजा पृथुसे कहा ॥१॥ श्रीभगवान् बोले कि इस इन्द्रने आपका सौवां (१००) अश्वमेधयज्ञ भंग करना चाहा था, सो अब यह आपकी शरण है और आपसे अपना अपराध क्षमा कराना चाहता है, आप इसका अपराध क्षमा करिये॥२॥ हे नरदेव ! उत्तम बुद्धिवाले साधुपुरुष संसारमें जीवोंसे द्रोह नहीं रखते, क्योंकि वे लोग भली भांति जानते हैं कि देह आत्मा नहीं है ॥३॥ जब आप सरीखे

पुरुष द्रोह करें और देवमायासे मोहित हो जायँ तो फिर बरसों तकका किया हुआ सन्तोंका सत्संग, शास्त्रोंका प्रीतिपूर्वक श्रवण करना, वृद्धपुरुषोंकी सेवा करनेसे क्या फल हुआ ? केवल वृथा परिश्रम किया ॥ ४ ॥ देखो ! अविद्याजन्य, कामनाकृत कर्मोंसे यह अधम शरीर रचा गया है,जो ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार इस शरीरको क्षणभंगुर समझते हैं वे आत्माज्ञानी पुरुष इस देहमें कभी आसक्त नहीं होते॥५॥जो इस देहमें आसक्त नहीं हैं, वे महात्मा लोग इस देहसे उत्पादित घरमें, पुत्रमें, धनमें कब मन लगा सकते हैं ? ॥ ६ ॥ यह आत्मा शरीरसे अलग है, क्योंकि आत्मा एक है और बालक, युवा, वृद्धादि भेदसे अनेक प्रकारके रूप दृष्टि आते हैं, आत्माशुद्ध चैतन्य है, शरीर मलिन है, आत्मा स्वयं प्रकाश है, शरीर जड़वस्तु है, आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है, आत्मा गुणोंका आश्रय है, शरीर कारणभूत गुणोंके

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ॥ आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥ ६ ॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्माऽऽत्मनः परः ॥७॥ य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ॥ नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥ यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ॥ कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥

आश्रित है, आत्मा सर्वव्यापक है, शरीर परिच्छिन्न है, आत्मा आवरणरहित है, शरीर घरद्वारसे आवृत्त है, आत्मा सबका साक्षी है, शरीर दृश्य है, आत्मा निरात्म है शरीर स्वात्म है, आत्मा सब जीवोंसे परे है ॥ ७ ॥ जो पुरुष इस प्रकार सब आत्माओंको आत्मामें स्थित ऐसे सबमें ईश्वरको जानते हैं, वे मायासे स्थित भी हैं, तो भी मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं हो सकते, क्योंकि वह मुझसे स्थित हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! फलकी कामनाको त्यागकर श्रद्धायुक्त स्वधर्मसे जो पुरुष सदा मेरा भजन करता है, उसका चित्त धीरे-धीरे प्रसन्न हो जाता है ॥९॥ जब पुरुष विशालहृदय प्रसन्नचित्त हो गया,तब सब गुणोंको त्याग, ज्ञानी हो;शांतिको प्राप्त होकर कैवल्य ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ उदासीनके समान द्रव्य, ज्ञान, क्रिया, आत्माके भीतर स्थिर परमात्माको जो जानते हैं, वे पुरुष निःसन्देह मोक्षको प्राप्त

होते हैं ॥ ११ ॥ इस नाशवान् भिन्नलिंग शरीरका संसार है द्रव्य, क्रिया, कारक और चेतनके चिदाभासात्मक दीखता है और जो ज्ञानी पुरुष मुझसे स्नेह रखते हैं, वे सदा सम्पत्ति और विपत्तिको समान समझकर विकारको प्राप्त नहीं होते ॥१२॥ हे वीर! सम, उत्तम, मध्यम, अधम सुख-दुःखमें समदृष्टि हो, इंद्रिय और अन्तःकरणको जीत, अपने रचे हुए लोगोंको लोकयुक्त होकर जो मैंने तुमको सचिवादिकका अधिकारी किया है, उसको अपने सङ्ग रखकर सब लोगोंका पालनकर ॥ १३ ॥ राजाका धर्म है कि प्रजाकी पालना करे, उसीमें उसका कल्याण होता है। जो राजा प्रीतिपूर्वक प्रजाकी रक्षा करता है, वह उस सुकृतका छठा भाग परलोकमें पाता है और जो प्रजाका पालन नहीं करता, उससे दण्ड लेता है, उसका सब पुण्य क्षय हो जाता है और प्रजाका पाप भोगना पड़ता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार उत्तम

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ॥ दृष्टासु संपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥१३॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्साम्पराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ॥ हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥१४॥ एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ॥ ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान्द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरं च मत्कंचन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ॥ नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥ १७ ॥

ब्राह्मणोंमें ब्रह्मोत्तमोंने जो परम्पराके धर्मको मुख्य रक्खा है, उसमें प्राप्त होकर और अन्य धर्मोंमें आसक्त न होकर पृथ्वीकी रक्षा करोगे तो प्रजागण आपसे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और कुछ काल व्यतीत होनेपर सनकादिक तुम्हारे स्थानपर आयेंगे और आनंद सहित उनका दर्शन आपको होगा, क्योंकि सब लोक आपसे अनुरक्त हैं ॥ १५ ॥ हे मानवेन्द्र! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, कुछ तो वर मांगो, क्योंकि मैं आपके गुण और शीलके वशीभूत हो गया हूँ न तो मैं यज्ञसे प्रसन्न हूँ, न तपसे, न योगसे, मैं तो केवल समदर्शी पुरुषोंसे प्रसन्न हूँ और उन्हींके हृदयमें सदा वास करता हूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब विश्वनाथ भगवान्ने इस प्रकार आज्ञा की तो विश्व-

विजयी पृथुने विष्णु भगवान्‌की आज्ञा अपने शिरपर धारण की ॥ १७ ॥ और प्रेमसे श्रीगोविन्दके चरणारविंदकी वंदना की। इस प्रकार राजा पृथु नीचे नेत्र कर इन्द्रसे मिला और मनसे सब शत्रुताका परित्याग कर दिया ॥ १८ ॥ फिर विश्वात्मा भगवान्‌का राजा पृथुने पूजन किया और अनेक प्रकारकी भेंट आगे धरी और अधिक प्रेमभरी भक्तिसे भगवत्‌के पदाम्बुज ग्रहण किये ॥ १९ ॥ यद्यपि श्री वैकुण्ठनाथ वैकुण्ठके जानेको उद्यत थे; परन्तु अपने प्रिय भक्त पृथुपर कृपा करके विलम्ब किया और सज्जन सुहृद कमलनयन विष्णुभगवान् पृथुकी ओर देखने लगे और निज धामको न गये ॥ २० ॥ वे आदिराज पृथु हाथ जोड़े खड़े हैं परंतु हरिको देख न

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥ भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः ॥ पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥ स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः॥ न किंचनोवाच स बाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥ अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ॥ तदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥ वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ॥ ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥

सके, क्योंकि नेत्रोंमें जल भर रहा था और मुखसे वचन इस लिये न निकल सके कि पुलकायमान शरीर होनेसे गद्गदकंठ हो गया, मुखसे नहीं बोला गया, बैठकर हृदयमें भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ २१ ॥ फिर कुछ कालोपरान्त आंसू पोंछकर आदिराजने आदिपुरुषका दर्शन किया, परन्तु हरिकी मनोहर मूर्तिको देखते-देंखते नरेशकी तृप्ति न हुई,यद्यपि देवता धरणीपर पांव नहीं रखते,परंतु प्रेमके वशीभूत हो भगवान् पदसे पृथ्वीका स्पर्श करे और गरुड़जीके ऊंचे कंधेपर करका अग्रभाग धरे दृष्टिगोचर श्रीनारायणसे नरनाहने जैसे-तैसे कर कहा ॥ २२ ॥ पृथु बोला कि हे प्रभो ! सब वर देनेवाले परमात्माको सम्मुख पाकर बुद्धिमान् पुरुष कैसे वर मांग सकता है, ब्रह्मा

होना, इन्द्र होना, यह तुच्छ वरदान देहधारी नरक वासी देहधारियोंको भी प्राप्त हो सकते हैं, इस लिये हे कैवल्यपते ! हे विश्वेश ! ! यह वर मैं आपसे नहीं मांगूंगा ॥२३॥ हे हृदयानंद ! वह वर तो अलग रहे; परंतु मुझको तो मोक्षकी भी इच्छा नहीं, क्योंकि वहां महात्माजनोंके अंतर्हृदयसे मुख द्वारा निकला हुआ, तुम्हारे पदपंकजका मकरंद अर्थात् श्रवणादिक आनंद नहीं है, फिर मैं उस ब्रह्मानंदको लेकर क्या करूं ? इस लिये, हे नाथ जो आप मुझपर प्रसन्न हो और मुझको वरदान देना चाहते हो तो, यही वरदान मांगता हूँ कि आपकी कथा श्रवण के अर्थ मेरे दश सहस्र (१००००) कर्ण हो जावें ॥२४॥ हे उत्तम श्लोक ! महत्पुरुषोंके मुखारविन्दसे निकलती हुई आपके पदाम्बुजकी कथारूप सुधाकी कणिकासे मिली हुई पवन भी तत्त्व मार्गकी विस्मृतिसे मार्गमें भूले पड़े हुए उन कुत्सित योगी जनोंको स्पर्श करते ही

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ॥ महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥२४॥ स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥ यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ॥ कथं गुणज्ञो विरमे-द्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥ २६ ॥ अथो भजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥ अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥

आत्मज्ञानका ध्यान कराती है, इस लिये मैं तो आपकी भक्तिका सारग्राही हूँ, मुझको और वरदानोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है॥२५॥ हे सुश्रव ! महात्मापुरुषोंके सत्संगमें जो मनुष्य एकवार भी आपके मंगलदायक यशको श्रवण कर लेता है, यदि वह गुणज्ञ हो तो उससे कभी अवसान नहीं पाता और जो पशु ही हो तो उसकी गिनती नहीं और श्रीलक्ष्मीजी भी त्रिभुवनकी ठकुरायनी और सब गुणोंको संग्रह कर-नेकी इच्छासे आपके ही सुयशका वर्णन करती हैं ॥ २६ ॥ इसलिये आप जो सब पुरुषोंमें पुरुषोत्तम और गुणोंके स्थान हो, लक्ष्मीकी नाई आपके चरणारविन्द सेवन करूंगा । यद्यपि एक ही कालमें एक ही पतिकी एकही प्रकारकी सेवा करनेसे हम दोनोंमें परस्पर कलह होनेका भय है और जो आप यह कहो कि सेवा करनेका अपना-अपना समय नियत कर लो तो क्लेश न होगा, सो हे स्वामी !

समयका व्यतीत करना महा कठिन है, हमसे क्षणभर मी आपका वियोग नहीं सहा जायगा, मला कहीं जीव मी शरीरसे भिन्न हो सकता है। परंतु इतना मैं मानता हूँ कि लक्ष्मीजीका और मेरा क्लेश न होगा, क्योंकि मेरा और लक्ष्मीजीका चित्त आपके चरणोंमें ही एकाग्र रहेगा, तो फिर उसमें किसी प्रकारकी कलहका अंकुर नहीं उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जगज्जननी लक्ष्मी जिस हृदयेशके चरणारविन्दोंमेंसे मेरे माग लेनेकी इच्छा करती है, उससे कदाचित् विरोध मी होगा तो मी कुछ संदेह नहीं, क्योंकि आप दीनदयालु हो, इससे मेरी तुच्छ सेवाको मी बहुत करके मानोगे और आप तो अपने स्वरूपानंदमें रमण करते हो, इस लिये आपके मनमें लक्ष्मीका कुछ पक्ष नहीं, आपका नाम तो समदर्शी है ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष मायाके गुणोंके कार्यसे रहित हैं, वे ज्ञानी पुरुष आपका

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नःसमीहितम् ॥ करोषि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥२८॥ भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ॥ वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितम् ॥ ३१ ॥

मजन करते हैं, उन सज्जन पुरुषोंको आपके चरणकमलके अनुस्मरणके अतिरिक्त और दूसरा कुछ भी अभिप्राय हमको नहीं जान पड़ता ॥२९॥ आपके भजन करनेवाले जो भक्तलोग हैं, उनसे जो आप कहते हो कि वरदान मांगो, यह कहना आपका विशेष करके विश्वको मोहने वाला है, यह मैं मली प्रकार जानता हूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप वाणीरूपी डोरीमें ये जन बँधे हुए हैं, और जो यह बँधे हुए न होते तो वारंवार मोहित जीव फिर कैसे कर्म कर सकते हैं ? ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! साक्षात् आपकी मायाने आपके सत्यस्वरूपसे अलगकर रक्खा है और अज्ञानी लोग आपके परमानंद स्वरूपको त्यागकर पुत्र-पौत्रादिककी आशा करते हैं, इसलिये इन मनुष्योंमेंसे मैं भी एक जीव हूँ वह मुझे वरदान क्या करना है ? मेरा हित तो आपको इस प्रकार करना चाहिये, जैसे पिता विना प्रार्थना किये अपने पुत्रपर प्यार करता है

और कुमार्ग से बचा सुमार्गमें चलाता है ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार आदिराजने विश्वनाथ भगवान्‌की स्तुति की, तब वासुदेव भगवान् शार्ङ्गपाणि हँसकर बोले कि हे राजन् ! तुम्हारी प्रीति मेरे चरणोंमें अधिक है इसलिये मेरी पूर्ण भक्ति तुमको प्राप्त होगी, मुझको बड़ा आनंद हुआ जो आपने मेरी भक्ति करनेकी इच्छा की, ऐसी इच्छासे मेरी दुस्त्यज मायासे जीव तर सकता है ❀ ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते ! महामोहको त्यागकर जो पुरुष मेरी आज्ञानुसार सावधानतासे चलता है वह सब ठौर आनन्द पाता है ॥३३॥

मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयाऽऽदिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशकरो लोकः सर्वत्रा-प्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगाभूतान्यनेकशः ॥ ३५ ॥ यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥

मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार वेनवंश उत्पन्न पृथुराज ऋषिके गंभीरवचनोंकी सराहना कर पूजन करवाय उसपर अनुग्रह कर वासुदेव भगवान्‌ने वैकुण्ठ जानेका विचार किया ॥३४॥ वहां देवता, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, खग और जो अनेक प्राणी ॥ ३५ ॥ यज्ञमें आये थे उनको यज्ञरूप ईश्वरकी बुद्धिसे राजाने सबको वाणीधनसे आदर-सत्कार सहित हाथ जोड़कर

१. शंका—श्रीमद्भागवतमें प्रथम तो श्रीशुकदेवजीने वर्णन किया कि पृथुराजा विष्णुका रूप है और फिर पृथुके यज्ञके अन्तमें भगवान्‌ने राजा पृथुसे कहा कि, हे राजन् । हमारे स्वरूपमें तुम्हारी भक्ति तथा तुम्हारी बुद्धि सर्वकाल इसी प्रकारकी बनी रहेगी। इस बातसे ज्ञात होता है कि राजा पृथु भगवान्‌का अवतार नहीं है। मनुष्यके समान भगवान्‌ने वरदान दिया, कौन पृथु है? हमको यह बड़ा सन्देह है।

उत्तर—आप स्वयं भगवान् अवतार नहीं धारण करते, पृथ्वीका भार नाश होनेके लिये अपने अंश करके अवतार लेते हैं भगवान्‌के अंश अनेक प्रकारके रूप धरकर, भगवान्‌सरीखे कार्य करते हैं। किसी अवतारमें भगवान् अपने अंशको सिखाते हैं और भूमिमें आकर किसी अवतारमें नहीं भी सिखाते, सिखाना क्या? भगवान् कहते हैं कि तुम हमारे अंश हो, हमको भूलना नहीं, इसलिये पृथुको भी सिखा गये हैं कि हमारे रूपमें तुम्हारी भक्ति और बुद्धि सदा बनी रहेगी।

संमान किया था, उन सबको भगवद्रूप मान बिदा किया और उनके पीछे भगवान्‌के पार्षद भी चले गये ॥ ३६ ॥ और भगवान् भी राजर्षि उपाध्याय सहित अच्युत राजा पृथुका मन हरकर अपने परमधामको चले गये ॥ ३७ ॥ आत्मरूपके उपदेशक, जिनकी महिमा जाननेमें नहीं आती; वह देवाधिपति देव श्रीवैकुण्ठनाथ इस पदको कहते हुए अन्तर्धान हो गये,तब उनको नमस्कार कर राजा पृथु अपने पुरमें आया ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विष्णुना पृथोर्यज्ञे अनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा--इक्किसवें अध्याय में,आये देव दिनेश । राजा पृथुने सबनको,दियो ज्ञान उपदेश ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब राजा पृथु नगरमें गया तो देखा कि मोती, पुष्पमाला, वस्त्र, सुवर्णके तोरणोंसे सब नगर देदीप्यमान हो रहा है और महासुगंधित धूपकी जहां-तहां सुगंध हो रही

भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० श्रीविष्णुना पृथोर्यज्ञेऽनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥ मैत्रेय उवाच ॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥ महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥ १ ॥ चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत् ॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिभिरर्चितम् ॥२॥ सवृन्तैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥ प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः ॥ अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥ ४ ॥ शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ॥ विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥ ५ ॥

है ॥ १ ॥ चन्दन अगरके जलसे बीथी,चौहटे,राजमार्गोंमें छिड़काव हो रहा है । पुष्प, अक्षत, फल, अंकुर, खीलें, दीपमालिकाकी शोभा ऐसी विदित होती थी मानो मणियोंकी माला लटकी है॥२॥सुंदर-सुंदर सुगंधित पुष्पफलादिक लगे हुए केलेके खम्भ और छोटे-छोटे पूगीफलके वृक्ष थोड़ी-थोड़ी दूरपर लगा दिये हैं, आम्रपत्रकी बन्दनवारें उनमें शोभित हैं, अनेक वृक्षोंके पल्लव और मालाओंकी शोभा ठौर ठौर बनायी गयी है ॥३॥ उज्ज्वल-उज्ज्वल मणियोंसे जटित कुण्डल कानोंमें पहिने सुन्दर-सुन्दर कन्याएँ दधि, दूर्वा, फल, फूल, अक्षत, रोली,चन्दनादि मांगलिक द्रव्यके थाल हाथोंमें लिये राजा पृथुका शुभागमन सुन सम्मुख चलीं ॥ ४ ॥ सख, शहनाई, दुन्दुभीके शब्दसे

और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिसे सब नगर पूरित हो रहा था और सब प्रजागण उनकी स्तुति करते थे, परन्तु सब प्रकारका ऐश्वर्य होनेपर भी राजा पृथुने अपने मनमें किसी प्रकारके अभिमान न मान अपने राजभवनमें प्रवेश किया ॥५॥ महाकीर्तिमान् पृथुराजने जहां-तहां नगरवासियोंसे सम्मान पाकर फिर पीछे सब पुरवासियोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और अत्यन्त प्रसन्न हो उन लोगोंको नाना प्रकारके पारितोपिक और प्रिय पदार्थ प्रदान किये ॥६॥ निंदारहित शुभकर्मकर्ता महात्मा पृथुराजने अनेक प्रकार श्रेष्ठ कर्म करके जगत्की रक्षा की और अपने पूर्ण प्रतापके मार्तण्डका समस्त भूमण्डलमें प्रकाश किया और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणोंमें अनुराग कर मोक्षको प्राप्त हुए ॥७॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुने! अनेक गुणसम्पन्न और महात्मा पुरुष जिनकी श्लाघा करते हैं ऐसा आनन्ददायक

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ॥ पौराञ्जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥ ६ ॥ स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ॥ कुर्वञ्छशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धशेषसुरार्हणः ॥ बिभ्रत्स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥ को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः सपाला उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥

महाराज पृथुराजका सुयश सुनकर, उस उत्तम यशके वर्णन करनेवाले मैत्रेयजीका आदर-सम्मान कर भगवान्के परमप्रिय सभाजित विदुर भगवान्ने कहा ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले की जब राजा पृथुका ब्राह्मणोंने राज्य तिलक किया था और देवतालोगोंने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पदार्थ भेंटमें दिये थे और विष्णु भगवान्ने अपना तेज दिया था,उस तेजको अपनी बाहुओंमें धारण करके उन बाहुओंसे वसुधाको दुहा ॥९॥ ऐसा कौन अभिज्ञ पुरुष है जो उस महाभागवत पृथुकी कीर्तिको न सुने? क्योंकि जिनके किये हुए पराक्रमके उच्छिष्ट सब भूप हैं और उनके ही वसुमतीके दुहनेसे सब लोक लोकपाल और देवताओंकी तबतक प्रतिपालना होती है, इसलिये उसका पावन (पवित्र) चरित्र मुझसे

कहो ॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि गंगा-यमुना नदियोंके बीचके क्षेत्रमें राजा पृथु निवास करते थे, सुखकी इच्छाके लिये नहीं केवल अपने किये पुण्यका त्याग करनेकी इच्छासे अपने भाग्यके भोगको भोगने लगे ॥ ११ ॥ सातद्वीप नौ खण्डमें जिनकी आज्ञाको कोई उल्लंघन न कर सका और सब संसारमें केवल यही एक दंडदाता राजा पृथु था, एक तो ब्राह्मणकुलको कभी दंड नहीं दिया, दूसरे अच्युत गोत्रवाले वैष्णवोंसे कभी दंड नहीं लिया, जो कि भगवत्के पूर्ण भक्त थे ॥ १२ ॥ हे पांडुवंश भूषण! एक समय राजा पृथुने महायज्ञमें दीक्षा ली, तो वहां सब

मैत्रेय उवाच ॥ गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तराक्षेत्रमावसन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ॥ अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदाऽऽसीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः ॥ उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥ १४ ॥ प्रांशु पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥ १५ ॥ व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥

भूपति, देवता, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोगोंका बड़ा भारी समाज जुड़ा ॥ १३ ॥ उस समाजमें जो बड़े-बड़े महात्मा पुरुष आये थे, उन सबका यथायोग्य आदर सम्मान पूजन करके सब राजा उठे तो ऐसा विदित होता था, कि जैसे तारागणके मध्यमें चन्द्रमा उदय होता है ॥१४॥ उसके अंगकी अनुपम शोभा थी। उन्नत शरीर, पुष्ट और दीर्घ बाहु, गौरवर्ण, कमलवत् अरुण नयन, सुन्दर नाक, चन्द्रमासा मुख, सुधासम मृदुल वाणी, सौम्य स्वरूप, ऊंचे कन्धे, मदनमदहरण रद और मंद मुसकान मनको मोहनेवाली थी ॥ १५ ॥ विशाल वक्षःस्थल, दीर्घ

* शंका—चारों वेदोंमें सब गोत्र लिखे हैं और हम लोगोंने सुने भी हैं परंतु अच्युतगोत्र क्या है जिस अच्युतगोत्रमें कुछ अपराधी हो गया हो तो भी वह अदंडय होता है। जब ऐसा कोई मृत्युलोकमें करुणा कि, साधुओंकी अच्युतगोत्रसंज्ञा है तो भी सत्य कृत त्रेता द्वापरमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य साधु होते थे तो यह अच्युतगोत्र कैसे हो सकेंगे क्योंकि इन तीनों का जो गोत्र गृहस्थमें रहा सोही बना रहेगा।

उत्तर-जिन प्राणियोंको दश १० इंद्रियोंका सुख नहीं जान पड़ेगा और अजगरकी नाई पड़ा रहना मिल गया तो खालिया और नहीं मिला तो चिन्ता नहीं करना और त्रिलोकमें सब देहोंमें भगवान्का रूप देखना ऐसा जो जीव अच्युतगोत्र शास्त्रमें कहा है ऐसा अच्युतगोत्र भगवान् प्राण है।

कटिपश्चाद्भाग, त्रिवलीसंयुत उदरमें गोल रेखा, गंभीर नाभी मानो छबिका कूप, महापराक्रमी, कंचनसे उज्ज्वल कदलीवत् ऊरू, उठे अग्र भागवाले चरणारविन्द थे ॥१६॥ सूक्ष्म कुटिल श्याम और चिकने शिरके बाल, कंबुसम कंठ, कामधनुषसी भ्रुकुटी, अर्धचन्द्रसम त्रिपुंड्र भालपर विराजमान, अमूल्य वस्त्र पहिने और यज्ञोपवीत धारण कर रहे थे ॥ १७ ॥ सब शरीरकी शोभा उन झीने वस्त्रोंमें प्रकट हो रही थी और नियममें सब आभूषणोंको त्याग कृष्णमृगका चर्म धारण कर लिया था और कुशा हाथमें लिये श्रीलक्ष्मीवान् अपने यज्ञ कृत्यसे निश्चिंत होकर सभामें बैठे थे ॥१८॥ शरद ऋतुके प्रकाशवान् ताराओंके समान चिकने और दाहके बुझानेवाले प्रेमसरोवर नक्षत्र मानो पुतलीके समान शोभायमान नेत्र हैं, ऐसे नेत्रोंसे राजा पृथुने चारों ओरको देखकर सब सभासदोंका हर्ष बढ़ाया और चार चित्रपद

सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकन्धरः ॥ महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥ व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥ शिशिरः स्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥ १९ ॥ चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टंगूढमविक्लवम् ॥ सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २१ ॥ अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषुः सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥ २२ ॥

मुनिमन हरनेवाली मनोहर गम्भीर वाणीसे उस समय बोले॥१९॥राजा बोले कि सभासदो ! आपका कल्याण हो ! जो-जो साधु सज्जन पुरुष यहां आये हों मैं सबकी सेवामें यह वचन निवेदन करता हूँ, जिसमें सबके लिये आनन्द हो, केवल मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि जो बुधवर अपने सब धर्मके जाननेकी इच्छा करें वे अपने विचारको महात्मा जनोंके सम्मुख प्रकट करें ॥ २० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेको, चोर और दुष्टात्माओंके दंड देनेको, अपनेको आजीविका देनेको, सब धर्मके सुन्दर सेतुओंमें उत्तम धर्मकी मर्यादा पृथक्-पृथक् सबको स्थापन करनेको सब कार्योंमें मुझको नियत किया है कि॥२१॥ मुझको वह लोक कामदायक प्राप्त हो,जिसकी प्रशंसा ब्रह्मवादी लोग करते हैं,मुझको

निश्चय है कि जिनपर भगवान् संतुष्ट होते हैं,उन वेदवेत्ता पुरुषोंकी संपूर्ण कामना सिद्ध करते हैं ॥२२॥२३॥ जो राजा प्रजासे दंड लेते हैं और धर्म नहीं सिखाते वे प्रजाके पापको भोगते हैं और अपने ऐश्वर्यका नाश करते हैं ॥२४॥ इसलिये हे प्रजागणो ! मेरा मंगल करनेके लिये भगवान्में चित्त लगाकर तुम अपने धर्मका पालन और अपना कर्तव्य कर्म और तुम द्वेष छोड़ कर विष्णु भगवान्की भक्ति करोगे तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूंगा ॥२५॥ हे देवर्षि, पितृगण, देवता, ऋषि, निर्मल बुद्धिवालो ! तुम भी मेरे कहनेको सराहना करो, क्योंकि धर्मके विषयमें कर्ता, शिक्षक, आज्ञा देनेवालोंको मरने उपरांत परलोकमें बराबर फल मिलता है ॥ २६ ॥ हे पूजनीय महात्मा-जनो ! कोई तो ऐसे हैं, जो ईश्वरको नहीं मानते, कोई-कोई ऐसे भी हैं जो ईश्वरको मानते हैं और कोई ऐसे हैं कि न आप मानें, न दूसरेको

तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥ २३ ॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥ प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २४ ॥ तत्प्रजा भर्तृपिण्डार्थं स्वार्थसेवान-सूयवः ॥ कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २५ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनु-ज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥ २६ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥ २७ ॥ मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥ २८ ॥ ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २९ ॥

मानने दें, इन तीनोंको विभिन्न प्रकारका फल प्राप्त होता है और यह फल सयुक्तिक भी प्रतीत होता है ॥२७॥ इस लोकमें और परलोकमें कोई तो अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य और आरोग्य देह पाता है और कोई भिखारी और रोगी दिखायी देता है, इससे विदित होता है कि कोई जगत्का कर्ता ईश्वर न होता तो इसका होना कैसे होता ? मनु, उत्तानपाद, महीपति ध्रुव, प्रियव्रत राजर्षि और हमारे पिताका पिता अर्थात् दादा राजा अङ्गको जो करनेके योग्य था वह किया ॥२८॥ इसी प्रकार ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, राजा बलि, धर्मकी मर्यादा बांधनेवाले ये सब श्रीभगवान् वासुदेवको अपना इष्ट देव और उत्पन्नकर्ता मानते रहे इसी प्रकार और सब महात्मा लोगोंने भी कहा है कि कर्म जड़ है, यह कुछ आप फल नहीं दे सकता, इसलिये कर्मका फल देनेवाला निश्चय परमेश्वर है ॥ २९ ॥

राजा वेन परमेश्वरको नहीं मानते थे और धर्मसे विमोहित, इसलिये स्वर्ग और अपवर्गके निन्दा करने योग्य थे, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मिलनेमें सबका एकसा विचार किया जाय तो कर्म जड़ होनेसे उसका दातृत्व नहीं घटता और देवता पराधीन हैं,इसलिये देवता भी फल देने योग्य नहीं,इस प्रकार दो पुरुषोंके कर्म समान होनेपर भी उनके फलमें अन्तराय नहीं पड़ता है और किसी समय कर्म करनेसे भी उसका फल नहीं मिलता,इसलिये अपने आप सब कर्मका कर्ता-अकर्ता सर्व सामर्थ्यवान् निश्चय एक परमेश्वर ही जान पड़ता है॥ ३०॥उस परमेश्वरके चरणारविन्दका स्नेह दिनरातका बढ़ा हुआ महात्मा जनोंके जन्म-जन्मके पापका नाश करता है,जैसे विष्णुके पदांगुष्ठसे निकली हुई श्रीगंगा बुद्धिके मलका नाश करती है ॥ ३१ ॥ मनके सकल मल नष्ट होनेसे वैराग्यके लिये विशेष विज्ञानवाला, वीर्यवान्, जिनकेचरणकमलके

दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥ ॥ ३० ॥ यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥ सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिस्सृता सरित ॥ ३१ ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदङ्घ्रिमूले कृत केतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ॥ अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३४ ॥

मूलमें जिनका वास ऐसे पुरुष क्लेशके देनेवाले संसारमें नहीं आते॥३२॥ सब छल-कपट त्याग तुम सकल कामना सिद्ध करनेवाले चरणारविन्दको अपनी आत्माकी वृत्तियों द्वारा तन, मन, वचन, काय, गुण, अपने कर्मोंसे भजो, यह भलीभांति समझ लो कि जैसे अधिकार हैं वैसी ही अर्थकी सिद्धि होगी,क्योंकि भगवत्के पदारविन्द सब मनोरथके पूर्ण करनेवाले हैं॥३३॥यद्यपि विष्णु भगवान् स्वरूपसे पवित्र अनेक गुणवान और निर्गुण हैं,तो भी कर्ममार्गमें नाना प्रकारके यज्ञरूप भी वही हैं, क्योंकि यज्ञरूप सबसे पृथक् विधि है। द्रव्य, गुण, क्रिया, मंत्र, संकल्प, पदार्थशक्ति उक्तियों करके अर्थ अन्तःकरण लिंगनाम करके विशुद्ध विज्ञानस्वरूपसे प्राप्त होते हैं, परन्तु यह सब कर्म भगवत्के

ही रूप हैं ॥३४॥ माया काल अन्तःकरण धर्म संग्रहमें यह शरीर चेतना प्राप्त होकर क्रिया फलके भावसे विभु भगवान् ही आनन्दरूपमें प्रकाश करते हैं, जैसे अग्नि एकरूप होनेपर भी काष्ठकी संगतसे काष्ठहीके सदृश हो जाती है, इसी प्रकार परमात्माका विचार है ॥ ३५ ॥ अहो ! यह सब मुझपर अनुग्रह करेंगे, क्योंकि यज्ञभोक्ताओंके ईश्वर श्रीभगवान् वासुदेव सब गुरुको अपने धर्मके योग्यसे पृथ्वीमें निरन्तर दृढ़व्रतधारी मेरे जन यजन करते हैं,ये धन्य हैं॥३६॥ अब हरिभक्तिकी दृढ़ताके लिये ब्राह्मणोंकी भक्ति प्रथम करे। यह कहते हैं कि भगवान् जिनके देवता ऐसे ब्राह्मण देदीप्यमानमें राजकुलसे किसी प्रकार तिरस्कार नहीं हो सकता, महर्षि-सी सहनशीलता, तपविद्यासे कुछ नहीं

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ॥ क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥३५॥ अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥ ३६ ॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ॥ अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥ ३८ ॥ यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३९ ॥ पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ॥ यन्नित्यसंबन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥ ४० ॥

होता है॥३७॥ ब्रह्मण्य देव और महत्पुरुषोंमें प्रधान पुरातन पुरुष भगवान् नित्य जिनके पादारविन्दकी वंदना करनेसे अखंडित लक्ष्मी और जगतका पवित्र करने वाला यश और सब बड़ोंमें अग्रगण्यताको प्राप्त हुए॥३८॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश जिनको अत्यन्त प्यारे हैं, उन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंमें अनुराग देखनेसे बहुत संतुष्ट होते हैं, इसलिये उन सर्वधर्मपरायणोंके कहे हुए धर्मोंमें मन लगाना और सब प्रकारसे ब्राह्मणोंके कुलकी सेवा करनी उचित है॥३९॥ जिनके नित्य संबन्ध जिनकी नित्यप्रति सेवा करनेसे आपसे आप ही तत्काल हृदय शुद्ध हो जाता है और उन्हींकी सेवासे मोक्षको प्राप्त हो जाता है, उन्हींकी सेवासे मनको समता और सुख प्राप्त हो जाता है, ऐसे

ब्राह्मणोंसे बढ़कर और देवताओंका मुख कौनसा है? अर्थात् ब्राह्मण ही देवताओंके मुख हैं॥४०॥यह निश्चय है कि तत्त्ववेत्ता अपने हाथसे श्रद्धा-सहित,ब्राह्मणोंको भगवान्‌की चैतन्यमूर्ति समझकर जिन-जिन देवताओंके नाम ले-लेकर ब्राह्मणोंके मुखमें उत्तम-उत्तम भोजन कराते हैं उस उत्तम मिष्टान्नको अनन्त भगवान् प्रसन्न होकर भोजन करते हैं। जिसको कुछ ज्ञान नहीं ऐसा जो अचेतन अग्नि है उसमें हवन करनेसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। विप्रोंकी सेवा करनेवाले परमहंसोंको जो गति मिलती है,वह गति उनको प्राप्त होती है॥४१॥ हे आर्य पुरुषो! जो ब्राह्मण नित्य निर्मल सनातन श्रद्धा, तप, मङ्गल, मौन, संयमोंसहित समाधिसे अर्थदृष्टिके निमित्त इस वेदको धारण करते हैं; जिसमें यह संसार दर्पणके सदृश प्रकाश करता है,मङ्गल इसका नाम है ॥ ४२ ॥ उन ब्राह्मणोंकी चरणरजको समस्त आयुपर्यन्त अपने किरीटपर धारण करूं मेरा यह

अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्य-पर्यगुः ॥४१॥ यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ॥ समाधिना बिभ्रति हाऽर्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥४२॥ तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रति आशु पापं नश्यत्यमुं सर्व-गुणा भजन्ति ॥४३॥ गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणुतेऽनु संपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनःसानु-चरश्च मह्यम् ॥ ४४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥ ४५ ॥ पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥ ४६ ॥

मनोरथ है, इसलिये इस सुन्दर रजको तुम लोग भी अपने शीशपर धारण करो, क्योंकि जो इस रजको अपने शीश पर धारण करते हैं, उनके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और सब गुण उस जीवको प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ सब गुणोंके स्थान, शीलवान्, धनी, वृद्धोंके आश्रमोंकी सब सिद्धि उसका आप वर्णन करती हैं जो ब्राह्मणोंके कुलका दास है, उन ब्राह्मणोंका कुल, गौओंका कुल सब मुझपर प्रसन्न हों और जनार्दन अपने पार्षदोंसहित मुझपर प्रसन्न हों ॥ ४४ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि जब राजाने इस प्रकार मधुर वचन कहे, तब राजासे पितृदेव, द्विजाति, देवता महात्मा पुरुष प्रसन्न मनसे धन्यवाद देकर राजाकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ पुत्रके सुकर्मसे पिता स्वर्गलोक जीत लेता है और यही सत्य-सत्य वेदकी वाणी है और ब्राह्मणोंके शापरूपी दण्डसे मरा हुआ पापात्मा वेन पृथ्वीके पुण्य प्रभावसे नर-

कसे तर गया ॥४६॥ देखो, हिरण्यकशिपु भगवत्‌की निंदा करके नरकमें जाता था, परन्तु पुत्रके प्रभावसे नरकसे बचकर स्वर्गवासी हुआ॥४७॥ हे वीरवर्य पितः ! हे पृथ्वी नाथ ! ! भगवान् आपको दीर्घायु करे और तुम सब प्रजाका पालन करो, क्योंकि आपने त्रिभुवनके स्वामी श्री नारायणके चरणारविन्दमें दृढ़ भक्ति की है, आपके समान ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाला और दूसरा कौन है ? ॥४८॥ हे पवित्रकीर्ति-वाले ! बड़े आनन्दका समय है कि तुमसे नाथ पाकर आज हम सनाथ हुए, क्योंकि हम जानते हैं कि जो श्रीमुकुन्द हमारे नाथ हैं, तुम उन परम पवित्र उत्तमश्लोक ब्रह्मण्यदेव विष्णु भगवान्‌की कथाका उपदेश कराते हो ॥ ४९ ॥ हे नाथ ! सब जीवमात्रको शिक्षा करना

हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः ॥ विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४७ ॥ वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४८ ॥ अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथः ॥ य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥ ४९ ॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिःकरुणात्मनाम् ॥ ५० ॥ अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ५१ ॥ नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ॥ यो ब्रह्मक्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५२ ॥ इति श्रीमा० म० चतु० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

आपको कुछ अति अद्भुत बात नहीं है, क्योंकि दयालु महात्माओंका प्रजापर दया करनेका स्वभाव ही होता है ॥५०॥ हे प्रभो ! हम अभागी अपने अभाग्यसे नष्टदृष्टि होकर इस संसारसागरमें पड़े भटक रहे थे, आपने अपनी वाणीरूप नौका पर चढ़ाकर आज हम अज्ञानियोंको पार उतार दिया ॥ ५१ ॥ चारों वर्णमें प्रवेश करके अपने तेजसे प्रजाको और इस विश्वको धारण करनेवाले और प्रजाके हितकारी सत्त्वगुणोंकी खानि विश्वनाथ विश्वम्भरको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं * ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषाटीकायां प्रजानामनुशासने ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

* भजन—प्रभुजी तुमबिन कौन सहाई ॥ सब अपने अपने स्वारथके, कुटुम्ब लोग अरु भाई ॥१॥ संपतिमें मित्राई राखत, गुण अवगुण न गनाई ॥ विपति पड़े कोई संग न लागत, छाँडत मीतमिताई ॥२॥ घरकी नारी गारी भाषत, नित उठ करत लराई ॥ कर्मरेखको दोष न लावत, निन्दा करत परायी ॥३॥ सब विधि भक्त भयो कमलापति, यदुनायक यदुराई ॥ सिंधु अथाह बीचके बोरत तुमबिन कौन गहाई ॥४॥ ज्यों गज और प्रह्लाद उबारे, महिमा ध्रुवहि दिखाई ॥ विपत्ति विदारण पतित उधारण तुमरो नाम कहाई ॥५॥ कीजे लाज नाम अपनेकी, संकट मेटो आई ॥ सूर पुकारत आरत तेरो, राखिलेहु शरनाई ॥ ६ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, हरिआज्ञा अनुसार। ब्रह्मज्ञान वर्णन करत, पृथुसों सनत्कुमार॥ मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार महापराक्रमवाले राजा पृथुकी सब प्रजागण स्तुति कर रहे थे, उसी समय वहां सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनि सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार राजा पृथुकी सभामें आकर उपस्थित हुए ॥१॥ उन सिद्धेश्वरोंको राजा पृथु और उनके भृत्योंने अपने तेजसे लोगोंका पाप नाश करते आकाशसे उतरते देखा और अपने जीमें जान लिया कि यह तेजपुंज अघभञ्जन मुनिमनरञ्जन सनकादिक महाराज हैं ॥२॥ उनके दर्शनसे गये हुए प्राण मानो फिर पीछेको लौटे, इस प्रकार सभासद और भृत्यों सहित राजा पृथु उठ खड़ा हुआ, जैसे महाउत्कंठासे जीवात्मा गन्धादिक विषयोंके संमुख जाता है ॥ ३ ॥ फिर विनती कर शिर नवाय राजा पृथुने गौरवके वशीभूत हो उन ऋषियोंको कनकासन

मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुंपृथुलविक्रमम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारःसूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान् कुर्वन्त्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ॥ विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥ ४ ॥ तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालीकबन्धनः ॥ तत्र शीलवतांवृत्तमाचरन् मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान् स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥ पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितंकिं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥ ७ ॥

अर्घ्यादि देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा और आदर-संमान किया ॥ ४ ॥ और उनके चरणारविंदको धोकर वह चरणोदक अपने शिरपर सींचा, उस शीलसिंधुनृपतिका यह कृत्य शीलवानोंका अत्यन्त आदर-सत्कार करनेवाला था ॥ ५ ॥ कंचनके सिंहासनपर बैठे ऐसे शोभायमान दृष्टि आते थे जैसे वेदीके बीचमें अग्नि प्रज्वलित होती है। नीतिसहित दोनों हाथ जोड़कर उन शिवजीके ज्येष्ठ भ्राता सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धासंयमसंयुक्त प्रसन्न होकर प्रार्थना की ॥ ६ ॥ पृथु बोले कि हे मङ्गलायनो ! अहो ! मैंने ऐसा क्या सुकर्म किया है, जो मुझको आपका दर्शन हुआ ? क्योंकि योगीजनोंको भी आपका दर्शन महाकठिन है ॥ ७ ॥

उसको इस लोकमें और परलोकमें कौनसी बात दुर्लभ है जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न हैं और जिनपर ब्राह्मणोंकी दयादृष्टि है उनपर महादेव और भगवान् पार्षदों सहित सदा प्रसन्न रहते हैं॥८॥यद्यपि आप त्रिभुवनमें पर्यटन करते हैं और आपको कोई नहीं देख सकता,संसारके वशीभूत बुद्धिवाले जैसे सर्वव्यापक परमात्माको नहीं देख सकते ॥९॥ वह निर्धन साधु गृहस्थ भी धन्य हैं,जिनके घरमें पूज्योंमें श्रेष्ठ लोग जल, तृण, भूमिसे आदर-सत्कार पाते हैं, उनको परम श्रेष्ठ और भाग्यवान् जानना चाहिये ॥ १० ॥ जिनके घर तीर्थपादीय श्रीवैष्णवोंके पादतीर्थसे वर्ज्जित है, वे सर्व धनधान्यसे परिपूर्ण हों तो भी सांपोंके बिलके समान हैं और घरके वासी वृक्षवत हैं अर्थात् उनकी

किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च॥ यस्य विप्राःप्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ ८ ॥ नैव लक्ष्यते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान् ॥यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः॥९॥अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः ॥१०॥ व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः ॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवार्जिताः ॥११॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद् व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥ कच्चिन्नः कुशलं नाथ इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ॥ व्यसनावाप एतस्मिन् पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहं कृतविस्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥ १५ ॥

सम्पदा किसी कामकी नहीं ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन व्रतोंको मुमुक्षुलोग श्रद्धासे धैर्य धरकर करते हैं वह नियम आपने बाल अवस्थासे किये हैं, आपका शुभागमन हमको बहुत अच्छा हुआ ॥ १२ ॥ हे समर्थो ! हम लोग विषयोंको ही स्वार्थ मानते हैं और अपनेकर्म करके अनेक व्यसनवाले संसारमें हमसे पतित भी सकुशल हैं ॥१३॥ आप सरीखे आत्माराम महात्मा पुरुषोंसे कुशल पूछना उचित नहीं, क्योंकि आप तो जगत्को कुशलदायक हो और भगवान्के प्रेममें मग्न रहते हो, आपके तो कुशल और अकुशल यह सब चित्तकी वृत्ति है ॥ १४ ॥ आप तपस्वी पुरुषोंके मित्र हो, इसलिये आपकी प्रतीत करके मैं आपसे पूछता हूं, कि इस संसारमें विना

परिश्रम किये क्षेम किस प्रकारसे होता है॥१५॥निश्चय है कि अज्ञानियोंकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले आप साक्षात् भगवत्के स्वरूप हो और आपने अपना अजन्मसिद्ध रूप जो धारण किया है और पृथ्वीपर पर्यटन करते हो,यह अपने दासोंपर अनुग्रह करनेका कारण है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पृथुकी सुन्दर सारभरी मधुरवाणी सुनकर, प्रीतिसे मंद-मंद मुसकाकर सनत्कुमारोंने कहा ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाराज पृथो ! आप कौनसी बात नहीं जानते; क्योंकि सबजीवमात्रका हित करके आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया । हम आपकी प्रसंशा नहीं कर सकते, महात्मा पुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही परोपकारिणी होती है ॥ १८ ॥ निश्चय है कि साधु लोगोंका सत्संग दोनोंके लिये सुखदायक है, क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर द्वारा ज्ञानवैराग्यसे परिपूर्ण कल्याणका विस्तार होता है ॥ १९ ॥

व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथोस्तत् सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ॥ स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥ सनत्कुमार उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ॥ भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥ संगमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः ॥ यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥ १९ ॥ अस्त्येव राजन् भवतो मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने ॥ रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥२०॥ शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ॥ असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥ २१ ॥ सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ॥ योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥ २२ ॥

हे राजन् ! आपने अपने मोक्षका साधन तो ठीक-ठीक बना ही रखा है, क्योंकि मधुनामक दैत्यके मारनेवाले मधुसूदन भगवान्के पदपंकजके गुणानुवादमें अलौकिक प्रीति आपकी है,यही मोक्षका मुख्य साधन है और यही अत्यन्त कठिन है वह आपने भलीप्रकार साध ही रखा है। जिस भगवत्के चरणारविन्दकी रतिसे नैष्ठिकी मति आत्माके भीतर कोमल काम वासनाओंका कषायरूप मल नष्ट हो जाता है ॥२०॥ मनुष्योंके मंगलके लिये शास्त्रोंमें भली प्रकार विचार कर यही साधन सिद्ध किया है,किसीके संग नहीं अर्थात् सबसे पृथक् व्यापक आत्मा, निर्धन ब्रह्ममें अच्छी पूर्ण प्रीति होनी यह सब सिद्धान्तोंका सिद्धांत है ॥ २१ ॥ और प्रीति होनेका मुख्य साधन भी यही है, कि

श्रद्धा करना, भगवद्धर्म का आचरण करना, परमात्माके जाननेकी इच्छा करना, आत्मविद्यायोगमें निष्ठा रखना, योगेश्वरोंकी उपासना करना, सदा पुण्ययशवाले श्रीमन्नारायणकी पुण्यरूप कथा नित्य प्रसन्न होकर सुनना ॥ २२ ॥ धन, इन्द्रिय, बाग गोष्ठी इनमें तृष्णा न करना, इनके संमत जो कामादिक उनका संग्रह न करना, एकान्तमें भगवान्के अनुसंधानमें रुचि रखकर अतिसंतुष्ट रहना, श्रीहरिके गुणरूप अमृत को पान करके अपनी आत्माको प्रसन्न रखना ॥२३॥ जीवमात्रकी हिंसा न करना,परमहंसोंकी नाईं सदा मग्न रहना,श्रीमुकुन्द आनंदकन्दके चरितामृतका प्रेमसे पान करना,कामवासना त्यागकर यम नियम धारण करना,हानिमें किसीके अनुचित कर्म देखकर भी निन्दा न करना, किसी वस्तुमें चेष्टा न करना, लाभ हानिमें हर्ष-विषाद न करना, दुःख—सुखको समान समझना, शीत उष्ण सदा

अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण च ॥ विविक्तरुच्या परितोष आत्मन् विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥ २३ ॥ अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ॥ भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥ २५ ॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ॥ दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ २६ ॥

सहना ॥ २४ ॥ श्रीनारायणके भक्तोंके वारंवार कार्य पूर्ण करनेवाले भगवान्के गुण नामोच्चारण करना, अर्थात् प्रातःकाल महाभारत,मध्याह्न कालमें रामायण और सन्ध्याकालमें श्रीमद्भागवतका श्रवण करना, इस प्रकार अपना सब समय व्यतीत करना और अत्यन्त भक्तिमें मन लगाना, सत्असत्में संग न करना, इस प्रकार साधन करनेसे सम्पूर्ण कार्यकारणरूप पदार्थसे प्रबल भक्ति और वैराग्य उत्पन्न होता है और अनात्मा निर्गुण ब्रह्ममें अनायास प्रीति होती है ॥ २५ ॥ जब ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठाकी बुद्धि होती है, तब विज्ञानकी अग्नि हृदयमें ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे बढ़ती है,वह ज्ञान विना आचार्य और गुरुजनोंके प्राप्त नहीं हो सकता, उसके प्रतापसे महापंचभूतात्मक जीवके रहनेका कोश, हृदयकी अविद्याआदि पंचक्लेशरूप लिंग शरीरका अंकुर पीछे उत्पन्न न हो जाय वह ज्ञानाग्नि सब वासनाओंको भस्म कर देती

है, जैसे बढ़ी हुई दावानल काष्ठको भस्म कर देती है, फिर अहंकारका वीर्य उत्पन्न नहीं होता ॥२६॥ जब अंतःकरण दग्ध हो गया, तब सब विध गुणोंसे मुक्त आत्माको बाहर-भीतर कुछ अंतर नहीं जान पड़ता, उसके कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं, फिर परमात्मा और जीवात्माका भेद जो कि पहले रहता है वह सब निवृत्त हो जाता है, फिर वह प्राणी जैसे स्वप्न अवस्थाके भावको स्वप्न व्यतीत हुए पर नहीं देखता इसी प्रकार अपने स्वरूपसे संसारके घटादिक पदार्थोंको और अंतःकरणके दुःखसुखोंको भी नहीं देखता ॥ २७ ॥ आत्मा इन्द्रियोंके अर्थ जीव ईश्वरमें भेद अंतःकरणरूप उपाधि होनेसे पुरुषको प्रतीत होता है और किसी प्रकारसे नहीं, क्योंकि जाग्रत् और स्वप्नमें अंतःकरणकी उपाधि होनेसे आप देखनेवाला और देखनेकी वस्तु और उनका मेलकर्ता, अहंकार दृष्टिमें

दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ॥ परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥ २७ ॥ आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ॥ सत्याशय उपाधौ वै पुमान् पश्यति नान्यदा ॥ २८ ॥ निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥ २९ ॥ इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात ॥ ३० ॥

आता है, परंतु सुषुप्तिमें हृदयकी उपाधि न होनेसे कुछ भी देखनेमें नहीं आता ॥२८॥ यहां साक्षीके लिये दृष्टान्त है, यह सब संसार जल अथवा दर्पण आदि निमित्त होनेसे पुरुष आपमें और अपने प्रतिबिम्बमें भेद समझता है और कहता है कि एक मैं हूँ और दूसरा प्रतिबिम्ब है, परंतु जब जल और दर्पण नहीं रहता तो फिर एक ही दृष्टि आता है, दूसरा नहीं दिखायी देता, ऐसे ही जीवका और ईश्वरका भेद है और किसी प्रकार नहीं ॥ २९ ॥ विषयोंकी ओर ध्यान करनेवाले प्राणियोंकी इन्द्रियोंको विषय अपनी ओर खींच लेता है और इन्द्रियां मनको खींच-खांचकर अपने वशीभूत कर लेती हैं और मन बुद्धिकी विचार चेतनाको हर लेता है, जैसे सरोवरके तटपर विशीर्ण मूलका वृक्ष वह अपने मूलद्वारा नीचे ही नीचे नीरको खींच लेता है इसी प्रकार समझ लेना, परंतु वह गुप्त भेद अज्ञानी पुरुषोंके ज्ञानमें नहीं

आता इसी प्रकार इन्द्रियोंकी खिंचावट अज्ञानी लोगोंके ध्यानमें नहीं आती ॥३०॥ बुद्धिकी चेतनाके अचेत होनेसे सब अगली-पिछली वारंवारकी स्मृति नष्ट हो जाती है और स्मृतिके नाश होनेसे चित्त ज्ञान दोनों भ्रंश हो जाते हैं, उनके रोकनेको महात्मा पुरुष आत्माका वश करना कहते हैं ॥ ३१ ॥ इससे अधिक पुरुषको और कोई भी अपने स्वार्थका नाश नहीं है, क्योंकि जिस परमात्माको तजकर विषयको प्रिय समझा है, यह सब अपनी ही आत्माकी हानि करनी है ॥ ३२ ॥ अर्थ और इन्द्रियोंका ध्यान करना और रात-दिन विषय वासनाका विचार रखना, यही पुरुषके सब पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है, क्योंकि यह तृष्णा और विषयवासना शास्त्र जन्य ज्ञान और स्वरूपानुभव दोनोंका नाश कर देती है और इनका विनाश होनेसे जीव स्थावर संज्ञाको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष इस गूढ़

भ्रंश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥ तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥ यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥ अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥ ३४ ॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥ परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥३६॥ तत त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥

अन्धकार नरकसे पार होनेकी इच्छा करे,वह पुरुष कभी विषयवासनाओंका संग न करे, क्योंकि यह विषयवासना अर्थ,धर्म,काम, मोक्ष चारों पदार्थोंकी अत्यन्त क्षतिकारक है ॥ ३४ ॥ इन चारों पदार्थोंमें मोक्ष ही प्रधान समझा जाता है, क्योंकि अर्थ, धर्म और काममें सदा कालका भय बना रहता है, परन्तु मोक्षमें किसी प्रकारका भय नहीं ॥ ३५ ॥ जगत्में ब्रह्मा शिवादिक जो आपसे उत्पन्न हुए उन सबके अस्मदादिक जो भाव हैं, वे गुणोंके उलट-पुलट होनेसे ईश्वरसे सबके आशीर्वादोंका विध्वंस हो जाता है इसलिये यथार्थ सुख किसीको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे नरेन्द्र ! जगत्के स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे आवृत जो क्षेत्र

जीव है, उनके अन्तर्यामी हृदयमें सब प्रकारसे प्रकाशमान हो प्रत्यक्ष तथा देश, काल तथा वस्तुके प्रमाणसे रहित हो प्रकाशते हैं और अंतर्वृत्तिसे जो ज्ञात भी होते हैं, वह आदिरूप अविनाशी चिदानन्द भगवान् मैं ही हूं इस प्रकार समझते हैं ॥ ३७ ॥ मायाका विवेक जिसमें नहीं है उसमें यह विश्व सत्-असत् भावसे प्रकाश करता है, जैसे मालामें सर्पके समान मायारूप भासता है, ऐसे जानो, वह परमात्मा जो नित्यमुक्त, शुद्ध, चैतन्य, ज्ञानस्वरूप सब ओरसे जाना गया, तब कर्मोंसे मलिन प्रवृत्ति जिससे दूर हो गयी है, उन परमेश्वरकी शरणमें मैं हूँ ॥ ३८ ॥ तिनके चरणारविन्दकी पल्लवरूप उँगलियोंकी सुन्दरताकी भक्ति करके बड़े-बड़े सज्जन पुरुष कर्म आशयरूप हृदयकी ग्रंथियोंको साधुजन दूर करते हैं, ऐसे ही विषयोंकी ओर जाती हुई अपनी इंद्रियोंको रोककर यतीलोग वासुदेव भगवान्का भजन

यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुति स्रजिवाऽहिबुद्धिः ॥ तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥ यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ॥ तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ॥ तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥ ४० ॥ मैत्रेय-उवाच ॥ स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक् प्रशस्योवाच तं नृपः ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्त्तानुकम्पिना ॥ तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥ ४२ ॥

करते हैं, ॥३९॥ इस दुस्तर महासागर संसारमें छः इन्द्रियरूप मगर जिसमें सदा वास करते हैं ऐसे महागम्भीर संसाररूप समुद्रको जो योगादिक साधनोंसे हरिनामरूपी नाव विना पार उतरनेकी चेष्टा करते हैं, उन मनुष्योंको अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है, इसलिये आप तो सब बाधाको त्याग, भगवान्के भजन करने योग्य चरणकमलरूप नाव बनाकर इस दुस्तर कष्टरूप संसारसागर से पार होओ ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारको इस प्रकार सुंदर आत्मज्ञानका मार्ग दिखाया, तब राजा पृथु, सनत्कुमारकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥४१॥ राजा बोले कि हे भगवन्! आर्तरक्षक हरिने प्रथम ही मुझपर अनुग्रह किया था उसके सिद्ध करनेके लिये हे ब्रह्मन्!

आप लोग यहां आये ॥४२॥ और आप दयालु धर्मवेत्ताओं ने दया करके मेरा सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया, यह राज्य और मेरा देहादिक जो है, सब साधु लोगोंका ही उच्छिष्ट है। हे नाथ! गुरुदक्षिणामें मैं अब क्या दूँ ? ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन्! प्राण, स्त्री, पुत्र, गृह, सब परिवार, राज्य, सेना, धरणी, भण्डार यह सब साधु लोगोंका ही है, इसी लिये मेरा इनपर कुछ अधिकार नहीं है, अब मैं दक्षिणामें इनको कैसे दे सकता हूँ यह तो सब आपका ही है, जैसे दास स्वामीकी ही वस्तु स्वामीको देता है, इसी प्रकार आपका सर्वस्व आपको ही समर्पण करता हूँ ॥४४॥ सैनापत्य, राज्य, दंड, न्याय और सबको प्राप्त करना, सब लोकोंका स्वामित्व और वेदशास्त्राज्ञाका धारण करना, यह सब ब्राह्मणलोगोंके

निष्पादितं च कार्त्स्न्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥ ४३ ॥ प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च स परिच्छदाः ॥ राज्यं बलं महीं कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ तस्यैवानुहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥ ४६ ॥ यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत् प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥ ४७ ॥

ही अधिकारके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपने ही पदार्थको आप भोगते हैं, अपनी ही वस्तुको आप धारण करते हैं और अपना ही द्रव्य आप लेते हैं और ब्राह्मणोंके ही चरणारविन्दके अनुग्रहसे क्षत्रियादिक विप्रोंके दिये हुए अन्नको नवीन-नवीन प्रकारसे भोग लगाते हैं ॥ ४६ ॥ निगमागम और ब्रह्मविद्यामें कुशल वेदके जाननेवाले आपने जो मुझको अध्यात्मज्ञानका उपदेश किया और हरिके मिलनेका मार्ग दर्शाया, उस उपकारका प्रत्युपकार केवल विनय करनेके अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं कर सकता हूँ ? और गुरुजनोंमें कोई किसी उपायसे उऋण नहीं हो सकता और जो उऋण होना चाहे वह सब प्रकारसे शठ और अज्ञानी है, इसलिये हे महादयालो! आप ही अपने किये

१. शंका—ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है, कि सनकादिक मुनियोंने न तो किसीकी स्तुति की है और न किसीकी निन्दा की है। सब देहोंमें भगवान्का रूप देखते हैं, फिर राजा पृथुकी प्रशंसा क्यों की।

उत्तर—सनकादिक मुनि नित्यप्रति भगवान्की स्तुति करते हैं तथा पृथु भी भगवान्के अंश हैं इस लिये सनकादिक मुनियोंने पृथुकी प्रशंसा की तो कुछ अयोग्य नहीं अर्थात् योग्य ही है॥

हुए उपकारसे मुझपर दया करो॥४७॥श्रीमैत्रेयजी बोले कि जब इसप्रकार उन मुनियोंका राजा पृथुने अत्यन्त आदर-सम्मान किया,तब वह आत्मयोगके अधिपति आदिराज श्रीपृथुराजाके शीलस्वभावकी वारंवार सराहना करते हुए सनकादिक सब मनुष्योंके देखते-देखते आकाश-मार्ग होकर ब्रह्मलोकको चले गये॥४८॥पृथुमहाराज महात्मा पुरुषोंमें श्रेष्ठ अध्यात्मविद्यामें स्थित होकर सब कामके सदृश पूर्ण आत्माको कृतार्थता मानता हुआ वह॥४९॥ उस राजा पृथुने देश,काल,धन,बल और योग्यताके अनुसार जो-जो उचित कर्म थे उसी रीतिसे करके ब्रह्मको साक्षात् मानने लगा ॥ ५० ॥ और कर्मोंका फल ब्रह्ममें समर्पण करके कर्मोंकी आसक्तिको त्याग, सावधान होकर, सब कर्मोंका

मैत्रेय उवाच ॥ त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः ॥ शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन् मिषतां नृणाम् ॥४८॥ वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवात्मानं मेने आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ॥ यथोचितं यथावित्तमकरोद् ब्रह्मसात्कृतम् ॥५०॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ५१ ॥ गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियाऽन्वितः ॥ नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ५२ ॥ एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्चिष्यात्मसंमतान् ॥५३॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥ ५५ ॥

अध्यक्ष आत्माको प्रकृति से परे मान करके राजा पृथु अपने नगरमें राज्य करता रहा ॥ ५१ ॥ यद्यपि वह राजा पृथु घरमें वास करता था और सब पृथ्वीका चक्रवर्ती राज्य था और लक्ष्मीसे सर्वत्र भवन परिपूर्ण था, परन्तु तो भी इंद्रियोंके अर्थमें आसक्त न हुआ और अहंकारको त्याग सूर्यके समान दूसरे ही अपने प्रतापके तेजसे संसारके अंधकारको दूर करता रहा ॥५२॥ इस प्रकार ब्रह्मज्ञानसे कर्मोंको करने लगा, तब उस राजा पृथुने अर्चिनाम स्त्रीमें अपने समान पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥५३॥ विजिताश्व,धूम्रकेश,हर्यक्ष, द्रविण, वृक, सब लोकपालोंके गुणोंको राजा पृथु अकेला धारण करता था ॥५४॥ जैसा-जैसा समय आता था राजा पृथु उसी प्रकार सृष्टिकी रक्षा करता

था और जगत् सृष्टिकी रक्षाके लिये भगवान्के अवताररूप राजा पृथु अपने मन,वाणी और शीलस्वभावकी वृत्तियोंसे सुन्दर गुण करके प्रजाओंका मनोरञ्जन करता था ॥ ५५ ॥ सोमराजके समान आप पृथु नामधारी राजा हुए, जैसे सूर्य आठ महीनेतक पृथ्वीका जल सोखता रहता है और चार महीनोंमें सब त्याग देता है, इसी भांति यह राजा पृथु भी अपने समय पर द्रव्य प्रजासे लेता था और उनकी आवश्यकताके समय उनको दे देता था ॥ ५६ ॥ पावकके सदृश दुर्धर्ष तेजस्वी और महेन्द्रके समान दुर्जय, क्षमामें क्षितिकी नाईं और स्वर्गके समान मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला था ॥ ५७ ॥ जैसे घन वर्षा करके सब संसारके जीवोंका मनोरथ पूर्ण करता

राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद्विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च भुवो वसु ॥ ५६ ॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः ॥ तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥५७॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥ ५९ ॥ मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव ॥ ६० ॥ कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥ ६२ ॥

है,इसी प्रकार राजा पृथु सबको मनोवांछित वस्तु दे देकर सन्तुष्ट करता था। वह समुद्रके समान अगाध बुद्धिवाला और पराक्रममें सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल और धैर्यवान् था ॥ ५८ ॥ शिक्षामें धर्मराजकी नाईं, आश्चर्य कर्म करनेवालोंमें हिमाचलके समान; धनमें कुबेरके सदृश और अर्थ गुप्त रखनेमें वरुणके समान था ॥ ५९ ॥ बल, विक्रम और वेगमें पवनवत् पृथ्वीपर भ्रमण करता था और दुःसहमें भगवान् भूतनाथ रुद्रके समान शत्रुओंको देखता था॥६०॥स्वरूपमें कामदेवके समान, मनस्वितामें मृगराजके समान, मनुष्योंपर स्नेहरखनेमें मनुके समान और प्रभुतामें भगवान् ब्रह्माजीके सदृश ॥ ६१ ॥ वेदवादियोंमें सुरगुरुके समान, स्वाधीनता और आत्मज्ञानियोंमें साक्षात्

श्रीविष्णु भगवान्के समान, गौ, ब्राह्मण, गुरु और हरिभक्तोंकी भक्ति करनेमें मानो लज्जा,विनय, सुशीलता और परोपकारमें सदा अपने आत्माके समान था ॥ ६२॥ कीर्तिवान् पुरुष जहां-जहां त्रिभुवनमें उच्चस्वरसे पृथुराजाका यश गाया करते थे, इसलिये उसका सुयश रामचन्द्रके यशके समान सुरसुन्दरी मधुरवाणीसे वारंवार गान करने लगीं *॥६३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भषाटीकायां पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–तेइसवें अध्यायमें, जग तज पृथु महिपाल। नारि सहित आनंदसे, गयेउ स्वर्ग तत्काल॥ मैत्रेयजी बोले कि एक समय आत्मज्ञानी राजा पृथुने अपनी आत्माको वृद्ध देखा, जिसमें अपनी आत्मासे

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुंभिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥ इति श्रीभा० म चतु० पृथूपाख्याने सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत् सताम्॥निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान्॥२॥आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव॥प्रजासु विमनस्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥

सब संसारके पदार्थ बढ़ाये सो प्रजापति हुए॥१॥ स्थावर,जंगम, जगत्के सब जीवोंकी जीविकाके दाता, महात्मापुरुषोंके धर्मधारी, जितेंद्रिय राजा पृथुने जिस कार्यके लिये पृथ्वीपर जन्म लिया था, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार वह सब कार्य सिद्ध किये ॥ २ ॥ विरहसे रुदन करती हुई पृथ्वीको अपने पुत्रोंको सौंप कर, प्रजामें जिसका मन नहीं, वह राजा पृथु अपनी स्त्रीको साथ लेकर तप करनेके लिये तपोवनको चल दिया ॥ ३ ॥ वहां भी दृढ़तासे नियमोंको धारण करके वैखानस आश्रममें सम्मत हो वानप्रस्थमार्गमें मन लगाकर उग्र तप करना आरम्भ किया,जैसे पहले धरामण्डलके विजय करनेमें बड़ा परिश्रम किया था, वैसे ही वानप्रस्थ पुरुषोंके परममान्य तप

* भजन–धन धन धेन पृथु राज पृथ्वीपति, संतनके सुखदायक हो जी। याचक किये अयाचक तुमने, गोद्विजसाधुसहायक हो जी॥ पुत्रसमान प्रजा सब पाली, राजनमें नृपनायक हो जी। सकल देवता करत प्रशंसा हे प्रभु तुम सब लायक हो जी॥ महिमा अपरम्पार तुम्हारी, गुणियोंके गुणनायक हो जी।

करनेमें प्रयत्न किया ॥ ४ ॥ कभी तो कंद, मूल, फल आहार करके दिन व्यतीत करते हैं,कभी सूखे हुए पत्तोंका भोजन करते हैं, कितने एक पक्ष जल ही पी-पीकर रहे, फिर पीछे पवनका भक्षण करने लगे ॥५॥ वीर मुनि ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तापते रहे और चातुर्मासकी वर्षाका जल अपने शिरपर सहते रहे शीतकालमें कण्ठपर्यंत जलमें खड़े रहते थे और सदा पृथ्वीपर सोते थे ॥ ६ ॥ उस सहनशीलने प्रथम वाणी जीती, फिर इन्द्रियोंको जीत ऊपरको वीर्य चढ़ाया फिर पवनको जीत कर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी उपासनाके अर्थ अति उत्तम तप करने लगा ॥७॥ धीरे-धीरे तपकी शक्ति अधिक होनेसे कर्म नष्ट हो जानेसे राजाका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और प्राणायामके प्रभा-

कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित् पक्षान् वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर उदके स्थण्डिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः॥आरिराधयिषुः कृष्णमचरत् तप उत्तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्माऽमलाशयः ॥ प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम् ॥ योगं तेनैव पुरुषमभजत् पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥ १० ॥ तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्त्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्त्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

वसे छः इंद्रियाँ वश में हो गयीं और सब बन्धन छूट गये ॥८॥ सनत्कुमार भगवान्ने जो परम आध्यात्मिक ज्ञानकी शिक्षा की थी, उसी योगमार्गसे परमपुरुष परमेश्वरका वह पुरुष श्रेष्ठ राजा पृथु भजन करने लगा ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मी साधु श्रद्धाके यत्न करनेसे उस महात्मा राजा पृथुकी भगवान् ब्रह्ममें एक ईश्वरकी निष्ठावाली अनन्य भक्ति हो गयी ॥ १० ॥ सब कर्म शुद्धसत्त्वात्मा उन भगवान्की वारंवार संस्मरणरूप अनुभूतिसे राजाको विरक्त ज्ञान हुआ, उस तीक्ष्णज्ञानके प्रभावसे उसने संदेहके स्थानको तोड़कर निज जीवकोशकी ग्रंथियोंको काट दिया ॥ ११ ॥ सब बंधन छिन्न हो जानेसे निज स्वरूपको प्राप्त हुआ और आत्मा गतिचेष्टाको त्यागकर धीरे-धीरे सब

वासनाको त्याग दिया, फिर ब्रह्मज्ञान उदय करके इस शरीरको त्यागते हुए, परन्तु जबतक योगगतियोंमें प्रमत्त नहीं होता तबतक योगीकी सिद्धियोंमें रूपके आसक्त होनेकी भूल हुआ करती है इसलिये राजा पृथुका हरि भक्तिमें अनुराग होनेसे सिद्धियोंकी ओर चित्त चलायमान न हुआ ॥ १२ ॥ इस प्रकार उस वीरोत्तमवीर पृथुने आत्मामें मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो दृढ़ समय पाकर अपने कलेवरको त्याग दिया और ब्रह्मोपासनाको आरंभ किया॥१३॥ पांवकी एडीसे गुदाको दाबकर मूल आधारसे शनैः-शनैः पवनको रोककर नाभिके कोठोंमें स्थित किया, वहांसे हृदयमें फिर उरः स्थानमें, फिर कण्ठमें फिर शिरमें चढ़ाते हुए ॥१४॥ सबसे इच्छा छोड़ अनुक्रमसे

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥ संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥ १४ ॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निस्स्पृहः ॥ वायुं वायो क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ॥ क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम्॥१६॥ इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादि-नाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥ १७ ॥ तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्म-स्थमसावनुशयी पुमान् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात् प्रभुः ॥ १८ ॥

इस वायुको ब्रह्मरंध्रमें पहुँचाया । वायुको वायुमें और शरीरके पार्थिव भागको पृथ्वीमें और तेजके भागको तेजमें मिला दिया ॥ १५ ॥ आकाशको आकाशमें और जलका अंश जलमें इस रीतिसे अपने-अपने विभागसे पांचों तत्त्वोंको पांचों तत्त्वोंमें मिला दिया। फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें ॥ १६ ॥ मनको इंद्रियोंमें और इंद्रियोंको इंद्रियोंकी मात्रामें जो जिससे उत्पन्न हुआ था उसको उसीमें मिला दिया फिर आकाशको तामस और अहंकारमें लीनकर, अहंकारको महत्तत्त्वमें मिला दिया ॥ १७ ॥ और सब कार्योंके निवासरूप महत्तत्त्वोंको प्रकृतिमें मिला लिया, उस प्रकृतिको जीवमें धारण किया और जीवको आत्मामें लगाया और आत्माको पर-

मात्मामें लगाकर फिर ज्ञान और वैराग्य वीर्यसे परब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर कैवल्य मुक्तिको राजा पृथु प्राप्त हुए। जब समर्थ हो जाता है तब प्रसन्न आत्मा जीव वैकुण्ठको जाता है॥१८॥अर्चिनाम उनकी महारानी जो कि अतिसुकुमारी,छबिकी खानि,जिसने कभी चरण पृथ्वीपर नहीं धरा था वह अपने पतिके पीछे चली गयी थी ॥१९॥ और जिस-जिस रीतिसे राजा पृथु जिस धर्मका अनुष्ठान करते थे उसीका अनुष्ठान यह भी करती थीं और ऋषियोंकीसी वृत्ति करके कन्द, मूल, फल आदि खाकर अपने स्वामीकी सेवा करती थीं और सेवाके परिश्रमसे

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ १९ ॥ अतीव भर्तुर्व्रत-धर्मनिष्ठया शुश्रूषया चारषदेहयात्रया। नाविन्दतार्तिं परिकर्षिताऽपि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥ २० ॥ देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ॥ आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सा सती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २१ ॥ विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ॥ नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २२ ॥

उनका शरीर भी बहुत दुर्बल हो गया था, परन्तु तो भी उस पीड़ाको वह नहीं मानती थीं, क्योंकि अपने प्यारे पतिके करस्पर्श और मान मिलनेके सुखसे उस क्लेशको किंचिन्मात्र भी नहीं समझती थीं ॥२०॥ जब सब चेष्टा जाती रही, तब अपने प्यारे पृथ्वीके पतिका मृतक शरीर देखकर उस सतीने कुछेक विलाप किया और दुःखित होकर नेत्रोंसे नीर बहाया, फिर मनमें धैर्य धारण कर पर्वतके निकटवर्ती भूमिमें ईंधन इकट्ठा कर, चिता बनाकर उसमें अपने स्वामीकी देहको धरा ॥२१॥ और फिर उसने आप भी नदीमें स्नान कर चिताके

१. शंका—श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा था कि, राजा पृथुने ब्रह्ममें लीन होकर अपने शरीरको त्याग दिया। क्योंकि ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीको अग्निसंस्कार नहीं लिखा है और ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणियोंकी दाह-क्रिया हम लोगोंने आजतक कहीं नहीं सुनी ?

उत्तर—आपका कहना बहुत सत्य है। ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीका दाह होना नहीं लिखा, परन्तु पतिव्रता स्त्रीको अपने पतिके साथ जलना लिखा है, पृथुकी स्त्री पतिव्रता थी। पृथुकी देहके संग अपनी इच्छा से अपने प्यारे पतिकी प्रीतिसे अपने पतिकी देहको जलाकर उसी पतिकी देहके साथ आप भी जलकर पतिलोकको चली गयी। इसलिये राजा पृथु ब्रह्ममें लीन हो गये, परन्तु स्त्री अपने पतिमें लीन होनेके लिये पतिकी देहको चितामें धरकर उसके संग आप जलकर भस्म हो गयी।

समीप आकर मृतक संस्कार सब करके उदार कर्म करनेवाले अपने भर्ताको जलांजली देकर, आकाशमें देखनेको जो देवता आये थे, उनको नमस्कार कर, अग्निकी तीन परिक्रमा दे, अपने पतिके पादारविन्दका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश किया ॥२२॥ अपने भर्ता वीरवर राजा पृथुके पीछे उस महाराजेश्वरी पतिव्रता अर्चिको सती हुई देख वरदान देनेके लिये सहस्रों देवांगनायें देवताओंको संग लिये उसकी स्तुति करती थीं ॥ २३ ॥ उस मन्दराचल पर्वतकी चोटीपरपुष्पोंकी वर्षा कर करके देवांगना और देवता आकाशमें दुंदुभी बजा-बजाकर परस्पर उसकीप्रशंसा करते थे ॥२४॥ देवांगना बोलीं, अहो ! यह पृथुपत्नी संसारमें बड़ी भाग्यवती और पतिव्रता है; इसके शीलकी प्रशंसा हम नहीं कर सकतीं, क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जैसे यज्ञपुरुष नारायणकी सेवा करती हैं ऐसे ही इस भाग्यशीलाने सब प्रकार अपने स्वामीका

विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ॥ तुष्टुवुर्वरदादेवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २३ ॥ कुर्वंत्यः कुसुमासारं तस्मिन् मन्दरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्तिस्म परस्परम् ॥ २४ ॥ देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥ २५ ॥ सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २६ ॥ तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥ २७ ॥ स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ॥ लब्ध्वाऽपवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवन्तीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ॥ यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥ २९ ॥

सेवन किया है ॥ २५ ॥ यह सती निश्चय करके महाराज पृथुके पीछे-पीछे जाती है, देखो ! विचारमें नहीं आ सकता, ऐसे अचिन्त्य कर्मके प्रतापसे अस्मदादिकोंको उल्लंघन करके अपने पतिके सङ्ग वैकुण्ठको जाती है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य इस संसारमें चञ्चल आयुको पाकर भगवत्पदके देनेवाले आत्मज्ञानका साधन करे, हम विचारपूर्वक कहते हैं कि, उन पुरुषोंको कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥ २७ ॥ महाकष्टसे इस मुक्तिदायक मनुष्य देहको पाकर जो पुरुष विषयोंके वशीभूत हो जाता है, उसको आत्मद्रोही और ठगा हुआ जानना चाहिये ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि देवताओंकी स्त्रियाँ इस प्रकार स्तुति कर रही थीं, उस समय आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवद्भक्त पृथु राजाने जिस लोकमें

गमन किया था, उसी लोकमें अर्चिमाताने भी गमन किया॥२९॥महाप्रतापी राजा पृथुका ऐसा पराक्रम था। वह उस अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्र वाले पुण्यात्माका चरित्र जैसा था वैसा हमने आपसे वर्णन किया ॥३०॥ जो मनुष्य सावधान होकर इस महापुण्यरूप चरित्रको एकाग्रचित्त हो श्रद्धासहित पाठ करे और सुने अथवा औरको सुनाये वह पृथुकी पदवीको पायेगा ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण तो ब्रह्मतेजस्वी होगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति होगा, वैश्य जो पाठ करेगा तो समृद्धिवान् होगा और शूद्र सुने तो शुद्ध हो जायगा ॥३२॥ जो नर-नारी इस चरित्रको आदर सहित तीन बार सुने तो अपुत्रको पुत्र प्राप्त होगा और निर्धनको धन प्राप्त होगा ॥३३॥ अकीर्तिमान्की कीर्ति अधिक होगी, मूर्ख चतुर

इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥ ३० ॥ य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् ॥ श्रावयेच्छ्रणुयाद्वाऽपि स पृथोः पदवीमियात् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठन् विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥ ३२ ॥ त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवाऽऽदृता ॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥ ३३ ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥ ३४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ ३५ ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदनुयाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥ ३६ ॥

होगा, यह उत्तम चरित्र पुरुषोंको परम मङ्गलदायक और अमङ्गलका नाश करनेवाला है ॥३४॥ यह चरित्र धन, यश, आयुका बढ़ाने वाला और परमधामको पहुंचानेवाला है और कलिमलका नाशक है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको सिद्धिदायक है ॥३५॥ और उनको उचित है कि इस उदार चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनें, क्योंकि इन चारों पदार्थोंका यह चरित्र मुख्यकारण है, परमेश्वरके परम धामका प्राप्त करानेवाला और मोक्षदायक है जो राजा दिग्विजय करनेके लिये निकले उसको उचित है कि चलते समय इस उत्तम चरित्रको घरसे सुनकर चले,क्योंकि जिन-जिन राजाओंके देशमें वह जायगा, वह जैसे राजा पृथुको भेंट देते थे उसी प्रकार उस राजाके

आगे भेंट रखकर उसकी प्रार्थना करेंगे ॥ ३६ ॥ इसलिये ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि सर्वसंग त्याग केवल भगवत्में निष्प्रयोजन भक्ति रखकर यह राजा पृथुका पावन पवित्र पुराणरूप चरित्र सुनें सुनायें और प्रेमसहित पढ़ें ॥ ३७ ॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र विदुर! महामाहात्म्यका सूचक यह आख्यान हमने तुमसे कहा, जो पुरुष इसको मन लगाकर सुनेगा वह राजा पृथु की गतिको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ प्रतिदिन जो मनुष्य इस चरित्रको आदरसहित सुने अथवा सुनाये वह श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द जिनके चरणारविन्द भवसागरसे पार उतारनेको नौकारूप हैं, उनकी उत्तम गतिसे मोक्षको प्राप्त होता है* ॥३९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथुचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—भये बर्हि प्राचीनके, पृथु परपौत्र सुजान। तिनके परचेता भये, रुद्र गीत कियो गान ॥ मैत्रेयजी बोले कि, वनगमनके पश्चात् महा यशस्वी राजा पृथुका पुत्र विजिताश्व महाराजा हुआ। उसने अपने छोटे भाइयोंपर अत्यन्त स्नेह करके सब दिशाओंका राज्य उनको दिया॥१॥ हर्यक्षको पूर्वकी ओरका, धूम्रकेशको दक्षिणकी ओरका, वृकसंज्ञकको पश्चिमकी ओरका और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया॥२॥ राजा पृथुने जब अश्वमेध यज्ञ किया था, तो इंद्रने यज्ञका घोड़ा चुराकर ले गया था, उस घोड़ेको

मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत् पठेत् ॥ ३७ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन् कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन् पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः ॥ भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा० महा० चतुर्थ० पृथुचरित्रसमाप्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयोभ्योऽददात् काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥ हर्यक्षायादिशत् प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥ २ ॥ अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वाऽन्तर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसंमतम् ॥ ३ ॥

१ भजन—राग खमाच तिताला। यातें सब तज भज हरिनाम। विन हरिभजन त्रिलोकीमाही, किन पायो विश्राम ॥ १ ॥ शिव विरंचि नारद जाको यश गावत आठों जाम। सो त्रिभुवन नायक सुखदायक जनपालक घनश्याम ॥२॥ पतित उधारन भवभयटारन, नाम एक श्रीराम। शालिगराम नामही निर्मल, भक्ति मुक्तिका धाम ॥ ३ ॥

यह इंद्रके पाससे ले आया था, तब इंद्रने इसकोअन्तर्धान होनेकी विद्या सिखा दी थी, तबसे इसका नाम लोग अन्तर्धानी कहने लगे थे। फिर शिखंडिनी नाम स्त्रीमें इसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, पावक, पवमान और शुचि ॥ ३ ॥ ये तीनों अग्नियोंके नाम हैं, यह तीनों अग्नि पहले वशिष्ठजीके शापसे विजिताश्वके घर पुत्र रूपसे उत्पन्न हुए,फिर यहांसे मोक्ष पाकर अपनी योगगतिको प्राप्त हुए ॥४॥ अन्तर्धानविद्यावाले विजिताश्व राजाने दूसरी नभस्वती नाम स्त्रीमें हविर्धान नाम पुत्र उत्पन्न किया, वह ऐसा प्रतापी था, जिसने अश्व चुरानेवाले इन्द्रको जान भी लिया परंतु तो भी उसको नहीं मारा ॥५॥ राजाओंकी वृत्ति यही है कि कर लेना, दण्ड देना और विना मूल्य दिये किसीकी वस्तु भय दिखाकर ले लेना, यह सब निर्दय कर्म समझकर राजा विजिताश्वने दीर्घकालसे यज्ञके मिष करके सब कर्म त्यागकर बनमें वास

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ॥ वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥४॥ अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ॥ य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥ ६ ॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥ हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥ ८ ॥ बर्हिषत् सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ॥ क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥ ९ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥ ॥ १० ॥

किया ॥ ६ ॥ वहां भी सब भयभञ्जन भक्तमनरञ्जन परमात्मा हंस पुरुष सर्वांतर्यामी भगवान्का एकाग्रचित्तसे पूजन करता था, वह ब्रह्मज्ञानी अपनी समाधिसे विष्णुलोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर ! हविर्धानने हविर्धानी अपनी भार्यामें बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत छः पुत्र उत्पन्न किये,॥८॥ हे राजा परीक्षित ! उन हविर्धानके पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र महाभाग्य बर्हिषद राजा बड़ा उग्रबुद्धि और धर्मपरायण हुआ और कर्मकाण्डमें पारंगत था, योगविद्यामें अत्यन्त विलक्षण था ॥ ९ ॥ इस महाप्रतापी राजाने समस्त भूमण्डलमें कोई स्थान यज्ञ विना नहीं छोड़ा और जिसके देवयजनमें वारंवार यज्ञ होते थे और प्राचीदिशाकी ओर अग्रभाग करके कुशाओंसे

इस सब वसुधाको परिपूर्ण कर दिया, इसीलिये इस राजाका नाम प्राचीनबर्हि हुआ ॥ १० ॥ इसने ब्रह्माकी आज्ञासे शतद्रुति नाम समुद्रकी पुत्रीसे विवाह किया। कन्या सर्वांगसुन्दरी, नवयौवना, किशोरवय, मनमोहिनी, छबिकी धाम, सोलह श्रृङ्गार किये, सर्व-भूषणसम्पन्न विवाहमें अग्निकी प्रदक्षिणा कर रही थी, जैसे अग्नि सप्तऋषियोंकी स्त्री शुकीपर मोहित हो गया था ऐसे ही उसकी मनोहर

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुमलंकृताम् ॥ परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥ ११ ॥ विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥

कांति देखकर राजा प्राचीनबर्हि उसपर आसक्त हो गया ॥११॥ उस नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे दश दिशाओंके दिक्पाल, देवता, दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग लोकके नागोंको मोहित कर लिया ॥ १२ ॥

---

१. शंका—राजा प्राचीनर्बाहिने यज्ञमें बड़े विस्तारसे पूर्वदिशाको कुशोंका मुख किया और पश्चिमदिशाको कुशोंका मूल किया । इस प्रकार कुशोंको बिछाकर अनेक यज्ञ किये। सात द्वीप पृथ्वी कुशोंके बिछौनेके नीचे हो गयी जैसे पलंग बिछौनेके नीचे हो जाता है। यह बड़े कौतूहलके समान सुननेमें आया और बड़ा अयोग्य वाक्य है कि सात द्वीप पृथ्वी कुशोंके बिछौनेके नीचे हो गयी; यह बात हम लोगोंको अत्यन्त कौतुकरूप जान पड़ती है ?

उत्तर—मैत्रेय ऋषिने सातद्वीप पृथ्वीको वसुधातल नहीं कहा था। ब्राह्मणोंका शरीर जो है उसको वसुधातल कहा था, वसुधा नाम भगवान्‌का है, उन भगवान्‌को जो हृदयमें धारण करे उसका नाम वसुधा है। भगवान् में प्रीति रखना उसका नाम भी वसुधा है, भगवान्‌की प्रीति ही सुन्दर आनन्दभवन है, वही ब्राह्मणोंका हृदय है और साक्षीके लिये ये श्लोक हैं—

महीतलं न मुनिना प्रोक्तं हि वसुधातलम् । ब्राह्मणानां शरीरं तु कथ्यते वसुधातलम् ॥ १ ॥ येश्वरं च वसुधत्ते सा प्रोक्ता वसुधा द्विजैः । विष्णुप्रीतिस्तलं तस्य द्विजानां हृदयं स्मृतम् ॥ २ ॥ आत्मदेहं दर्शयित्वा विदुराय महामुनिः । स्वकरांगुलिनिर्देशं ब्राह्मणास्तेन तर्पिताः ॥ ३ ॥

•भगवान्‌ने अपनी देह अपने हाथकी अंगुलीसे विदुर जीको दिखायी कि, हे विदुर ! यह मेरा हृदय जो है, वही वसुधातल है। इसी वसुधातलको प्राचिनर्बाहिष राजाने कुशाओंका बिछौना करके शरीरको ढक दिया और ब्राह्मणोंको तृप्त कर दिया, क्योंकि कोविदोंको विना माँगे दिया और संकल्प करनेके समय हाथमें कुशले तो कुशाका मुख पूर्व दिशाकी ओर रखे और कुशाकी मूल पश्चिम दिशाकी ओरको रखनी चाहिये यह शास्त्रकी रीतिसे संकल्पकी विधि है। राजाने इस प्रकार कुशा हाथमें लेकर संकल्प किया और ब्राह्मणोंके हृदय वसुधातलको कुशाओंके बिछौनेके नीचे कर दिया, ऐसा अर्थ मैत्रेयजीने कहा था, प्राणियोंके बसनेवाली इस वसुधाको नहीं कहा था ।

१ यह कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखा है कि एक समय सप्त ऋषियोंके यज्ञमें समऋषिकी स्त्रीको देखकर अग्नि कामाग्निसे संतप्त हो उसपर मोहित हो गया और अग्निकी भार्या स्वाहा नाम सप्तऋषि भार्यारूपधारिणी होके माया उसके वीर्य शुकीरूप करके अग्नि कामना करते हुए और उसपर अत्यन्त मोहित हो गये. इस प्रकार यह संपूर्ण कथा समझनी चाहिये। यहां इस नवविवाहित नवोढा शतद्रुतिके नूपुरोंकी ध्वनि ने दशों दिशाओंके देवता दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, नर, नागादिकोंको जीत लिया ॥

प्राचीनबर्हि शतद्रुति नाम मार्यामें दश पुत्र उत्पन्न किये, यह दशों प्रचेता नामसे विख्यात थे और एकसे नाम,एकसे व्रत धारण करनेवाले और सब धर्मपरायण थे ॥१३॥ सृष्टि रचनेके लिये पिताने इन सबको आज्ञा दी;तब यह सब तप करनेके लिये समुद्रके तटपर गये, वहां इन्होंने जलमें खड़े होकर दशसहस्र वर्षतक तप करके तपोंके पति श्रीमन्नारायणका पूजन किया ॥१४॥ जब वह तप करनेके लिये घरसे चले थे उस समय मार्गमें शिवजीने दर्शन देकर प्रसन्नतापूर्वक जिस मन्त्र और पूजनका उपदेश किया था, उसी उपदेशके अनुसार एकाग्रचित्त हो,इन्द्रियोंको जीत,वासुदेव भगवान्का ध्यान करने लगे॥१५॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्रचेताओंसे शिवजीका मार्गमें जिस प्रकार समागम हुआ और प्रीतिपूर्वक उनको उपदेश किया वह और जो दिनरात के तप करनेमें प्रसन्न हुए वह सब यथावत् वर्णन करो

प्राचीनबर्हिषः पुत्रा शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ १३ ॥ पित्राऽऽदिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दशवर्षसहस्राणि तपसाऽऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥ १४ ॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रचेतसां गिरित्रेण यथाऽऽसीत्पथिसंगमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥ १६ ॥ संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥ १७ ॥ आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥ शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥ १९ ॥ समुद्रमुपविस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥२०॥

॥१६॥ हे विप्रर्षे ! योगसाधनवाले योगीजन भी आठ पहर जिन महादेवका एकाग्रमनसे ध्यान करते हैं, परंतु साक्षात् उनका दर्शन नहीं पाते ऐसे कल्याणरूप ब्रह्मानंद सदाशिवका दर्शन प्राणियोंको होना महाकठिन है ॥ १७ ॥ भगवान् शिव आप आत्माराम भी हैं तो इस लोककी रक्षाके लिये महाभयानक अपनी शक्तिको संग लिये घूमते-फिरते हैं ॥१८॥ मैत्रेयजी बोले कि वह साधु प्रचेता पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण कर तप करनेकी अभिलाषासे पश्चिम दिशाकी ओर चले गये ॥ १९ ॥ चलते-चलते समुद्रके निकट पहुँचे, वहां एक अत्यन्त विस्तृत महागंभीर सागरके समान एक सरोवर देखा, वह सरोवर सज्जनोंके मनके समान निर्मल जलसे भर रहा था और

जलमें क्रीड़ा करनेवाले जलजंतु मच्छ कच्छादिक अत्यन्त प्रसन्नताके साथ प्रीतिपूर्वक आनंदसहित रहते थे॥२०॥नीलकमल, रक्तकमल, उत्पल, अम्भोज, कह्लार, इन्दीवर आदिक अनेक प्रकारके कमलोंकी खानि थी,जिसमें हंस, सारस, चकवा, चकवी, कारंडव पक्षी जहां-तहां मनोहर शब्द कर रहे थे ॥ २१ ॥ मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर स्वरीले शब्दोंसे वृक्ष और लताओंके रोम खड़े हो रहे थे और कमलोंके समूहोंकी पराग पवनके संग दशों दिशाओंको सुगंधित कर रही थी ॥ २२ ॥ वहां दिव्य मार्ग था, गंधर्वोंका मनोहर गान हो रहा था। सुंदर मृदंग ढोलका शब्द सुनायी देता था,उस मनोहर शब्दको सुनकर दशों राजपुत्र विस्मित हो गये ॥ २३ ॥ उसी समय उस सरोवरसे

नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २२ ॥ तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २४ ॥ तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥२५॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ धर्मज्ञाञ्छीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥ अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥ २७ ॥ यः परं रंहसः साक्षात् त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ॥ भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥ २८ ॥

पार्षदोंसहित श्रीभगवान् महादेवजी भी निकले तो इन दशों कुमारोंको आनंदसहित शिवजीका दर्शन हुआ, उनके सम्मुख देवगण गंधर्व आदि स्तुति कर रहे थे ॥२४॥तपे हुए सुवर्णके समूहके समान कांतिमान् त्रिनेत्र प्रसन्न होनेमें सुमुख ऐसे नीलकंठ भूतनाथको महाआनंदसे प्रणाम किया ॥२५॥ तब शरणागतप्रतिपालक, धर्मवत्सल, दीनदुःखहरण, धर्मके जाननेवाले, शीलसंपन्न श्रीभगवान् शिवजी प्रीतिसहित मधुरवाणीसे प्रचेताओंसे बोले ॥२६॥ रुद्र बोले कि हे प्राचीनबर्हिके पुत्रो ! जो कुछ तुम्हारी करनेकी इच्छा है वह हमने जान ली,तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मैंने तुमको दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो कोई वेगसे परे साक्षात् त्रिगुण जीवसंज्ञितसे परे जो भगवान् वासुदेवकी

शरणागत है, वह मेरा परम प्रिय है ॥ २८ ॥ जो पुरुष अपने धर्ममें निष्ठा रखता है वह सौ जन्मोंमें ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, सहस्र जन्म जो पुण्यमें निष्ठा रखता है वह मेरे पदको पाता है और जो परम भागवत हैं, वे तो निःसंदेह माया रहित विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं, सब देवता और मैं अविकारीके अंतमें परमेश्वरके लोकको प्राप्त होते हैं, अब मैं शिव होकर अधिकारीके समान वर्तमान हूँ॥२९॥ तुम सब भागवत भगवत्के भक्त हो इस लिये मुझको अधिक प्यारे हो। भगवद्भक्तोंसे परे और कोई दूसरा मुझको अधिक प्यारा नहीं ॥ ३० ॥ इस लिये यह स्तोत्र परम पवित्र और सर्व मंगलमय, मोक्षदायक और सब विघ्नोंको शांत करनेवाला है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, तुम चित्त लगाकर सुनो और जिस प्रकार हो सके उस प्रकार एकान्तमें बैठकर जप करना॥३१॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे परमदयालु दीना-

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिञ्चितामेति ततः परं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाऽहं विबुधाः कलात्यये॥२९॥ अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा॥ न मे भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ ३० ॥ इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह ताञ्छिवः ॥ बद्धाञ्जलीन्राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं त आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ॥ भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥ नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ॥ वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥ संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३५ ॥

थ भगवद्भजनमें परायण, भगवान् शिवजी हाथ जोड़े खड़े देख, उन राजपुत्रोंको उपदेश करने लगे ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र बोले—कि हे प्रभो ! आपकी महिमा बड़े-बड़े आत्मज्ञानी पुरुषोंको परमानंददायक है तो वह आनंद मुझको भी देना चाहिये, जो सदा सिद्धिदायक मंगलरूप है, आपने उसका सेवन किया है, इस लिये मैं सबकी आत्माके अर्थ नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ कमलनाभ, जिनकी नाभिमें भूतसूक्ष्म और पंच महाभूत इन्द्रियोंके आत्मा सर्वान्तर्यामी अपने आप प्रकाशरूप जो वासुदेवरूपसे चित्तके नियन्ता निर्विकार हो, सो हे भक्तिरूप ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३४॥ संकर्षणरूपसे आप अहंकारके हरनेवाले, सूक्ष्म अनंत और मुखाग्निसे प्रलयके समय

लोकको दाह करनेवाले हो और विश्वके ज्ञानदायक यदुकुलके नायक सर्वान्तर्यामी प्रद्युम्नके अर्थ मेरा नमस्कार है ॥३५॥ सब इन्द्रियोंके ईश, सब इन्द्रियोंके आत्मा अनिरुद्धके निमित्त मैं वारंवार नमस्कार करता हूं, जो आप सूर्यरूप धारण कर समस्त भूमंडलको अपने तेजसे प्रकाशित करते हो और जो आप परमहंस पूर्ण क्षयवृद्धिरहित हो, आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ स्वर्ग मोक्षके द्वाररूप सदा पवित्र हृदयमें निवास करते हो, आपके लिये नमस्कार है, हिरण्यसम जिसका वीर्य, चातुर्होत्र करनेवाले अर्थात् यज्ञोंके साधनरूप और यज्ञोंका विस्तार करनेवाले अग्निरूप मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३७ ॥ पितृ और देवताओंके अन्नदाता, तीनों वेदोंके पति और यज्ञ वीर्य

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ॥ नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३७ ॥ नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥ सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥ ३९ ॥ अर्थलिङ्गाय नमसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ॥ नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥ नमस्ते आशिषामीश मनवे कारणात्मने ॥ नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥

रूपवाले चन्द्ररूप आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ, प्राणियोंके तृप्तिदायक और सब रसमय जलरूप आत्मा आपको, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ सब जीवमात्रके शरीररूप, पृथ्वीरूप स्थूल तनुधारी, त्रिभुवनके पालनेवाले, मन इन्द्रिय शरीरके बलरूप ईश्वरको मेरा प्रणाम है ३९ ॥ अर्थ, चिह्न, गुणोंसे सबको नाम देनेवाले आकाशरूप बाहर-भीतर जिसकी आत्मा पुण्यलोकरूप अत्यन्त तेजस्वी पवित्र स्वर्गरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥४०॥ प्रवृत्ति, निवृत्ति मार्गरूप, पितृदेवरूप कर्मवाले धर्म फलदायक और मृत्युरूपसे अधर्मका फलरूप क्लेश देनेवाले आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ ४१ ॥ सब आशीर्वादोंके ईश्वर मनुरूप, कारणरूप जिसकी आत्मा, दीर्घ धर्म-

वाले अखण्ड ज्ञान रूप आदिपुरुष मंत्ररूप कृष्णमूर्तिको मेरा नमस्कार है पुराणपुरुष सांख्य योगके ईश्वर बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य-रूप परिपूर्ण श्रीवैकुण्ठनाथके लिये मेरा नमस्कार है ॥४२॥ कर्ता, कर्म, कारण तीनों शक्तियों सहित, रुद्ररूपधारी अहंकारमय (आनंद) आत्माके लिये मेरा नमस्कार है, अर्थ चित्त क्रिया शक्तिरूप,वाणीको नानाप्रकारसे उत्पन्न करनेवालेके विभूति रूपके लिये मेरा नमस्कार है ॥४३॥ सब भागवतोंसे पूजित, अत्यन्त प्रियतम रूपधारी, अपने भक्तोंके लिये सब इन्द्रियें गुण अंजनरूप जो आपका दर्शन है, वह दर्शन कृपा करके हमसे दीन दासोंको दो, क्योंकि हमारे चित्तमें सदा इस दर्शनकी लालसा बनी रहती है ॥ ४४ ॥ सघन वर्षाकालके मेघवत् श्यामवर्ण, सब सुन्दरताके राशि, सुन्दर विस्तृत चार बाहु, शोभायमान, अत्यन्त रुचिर मुखकी छबि है ॥४५॥ कमलकोशके

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥ चेत आकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ४३ ॥ दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४४ ॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ॥ चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं सम-कर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥ प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४७ ॥ स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥ सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥ श्रियाऽनपायिन्याऽऽक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत ॥ ४९ ॥

अन्तर्गत पत्रोंके समान शोभायमान नेत्र, सुन्दर भ्रू, सुन्दर नाक, सुंदर दांत, सुन्दर कपोलवाला मुखारविंद जिसमें सुशोभित समकर्ण-सहित ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे हास्ययुक्त नेत्र और अलकोंसे शोभायमान सुशोभित कमलकी पीली केसरके समान पीताम्बर धारण किये, उज्ज्वल-उज्ज्वल कुण्डल कानोंमें देदीप्यमान हैं ॥ ४७ ॥ दमकते हुए किरीट, वलय, हार, नूपुर और छुद्रघंटिकासे मंडित, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, वनमाला और कौस्तुभ मणिकी अद्भुत सम्पदाओंसे भूषित ॥ ४८ ॥ सिंहके समान कंधोंपर कुण्डलादि भूषणोंकी शोभा धारण किये, ग्रीवामें कौस्तुभ मणि सौभाग्ययुक्त विराजमान, विश्लेषरहित लक्ष्मीजीकी स्वर्णरेखांकित पाषाण कसौटीरूप वक्षः-

स्थलमें शोभित है ॥ ४९ ॥ पूररेचकसे संविग्न कंकणवत् मनोहर पीपल पत्रके समान उदर, श्वास और उच्छ्वासके कारण चलायमान त्रिवलीसे शोभित जलके भ्रमरके समान गम्भीर नाभि,मानो उसीमेंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है और फिर विश्वको उसीमें प्रवेश करनेके लिये उपस्थित है ऐसा जान पड़ता है ॥ ५० ॥ श्याम कटिपश्चाद्भागपर सुन्दर पीताम्बरके ऊपर सुवर्णकी कौंधनी पहिने, समान श्रेष्ठ चरण, जङ्घा, ऊरुमें अनुन्नत जानु शोभित है ॥ ५१ ॥ शरत्कालसम्बन्धी मनोहर कमलपत्रके समान शोभायमान कांतिवाले नखोंकी कांतिसे अन्तःकरणके अज्ञानका नाश करनेवाले,पादारविंदसे अपने प्यारे ध्रुव प्रह्लादादिक भक्तोंके भय दूर करनेवाले,आप अपने मनहरण स्वरूप का दर्शन हमको दिखावो । हे गुरो ! हमसे तमोगुण सेवियोंको मार्गके दिखानेवाले गुरु आप ही हैं ॥ ५२ ॥ जिस पुरुषको अपनी मलिन

पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ॥ प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥५० ॥ श्यामश्रोण्याऽधिरोचिष्णुदुकुलस्वर्णमेखलम् ॥ समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु निम्नजानु सुदर्शनम् ॥ ५१ ॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५२ ॥ एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ॥ यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥ भवान्भक्तिमतां लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः॥५४॥तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया॥एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥

आत्माको शुद्ध करनेकी इच्छा हो, उसको चाहिये कि आपके इस मनोहर स्वरूपका ध्यान करे और अपने धर्मको न छोड़े, क्योंकि, जो अपने धर्ममें स्थित हैं, उनको आप भक्तियोग और अभयदान देनेवाले हो ॥ ५३ ॥ स्वर्गवासी देवता भी जिनकी आशा करते हैं और आत्मज्ञानी लोगोंकी आप गति हो और देहधारियोंको दुर्लभ हो,परन्तु तो भी आप अपने भक्तिमान् पुरुषोंको सुलभ हो ॥ ५४ ॥ महात्माजनोंको भी जिस भक्तिका मिलना महादुर्लभ है, उस एकांतभक्तिसे दुराराध्य आपकी उपासना करके और आपके मनोहर चरणारविंदोंके मूल छोड़कर और किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते, क्योंकि वह आनन्द स्वर्गादिकमें भी नहीं मिलता ॥ ५५ ॥ जो काल

अपने तेज और बलवीर्यके प्रभावसे अपनी भ्रुकुटीके चढ़ानेसे ही विश्वका विध्वंस कर सकता है,वह भी आपके चरणसेवियों पर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकता और उसपर अपना अधिकार नहीं चला सकता और दण्ड देना तो बहुत कठिन है॥५६॥भक्त जनोंके सत्सङ्ग-करनेवालोंकी सङ्गतिके आगे अर्द्धक्षणके समान न तो मैं स्वर्गको समझता हूँ और न मुक्तिको और न मनुष्योंके आशीर्वादोंको और राज्य आदिक सुखकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥ ५७ ॥ इसलिये पापहारी तीर्थरूप यशस्वी आपके चरणारविंद हैं, उनके सेवन करनेसे और गङ्गाजीके स्नान करनेसे जिनके बाहर-भीतरके सब पाप नष्ट हो गये हैं,सब जीवोंपर दया करते रहते हैं,निर्मल अन्तःकरण और शीलस्वभाव-वाले महात्मापुरुषोंसे हमारा सत्सङ्ग बना रहे, यह अनुग्रह मैं आपका चाहता हूँ ॥५८॥ जब महात्मा पुरुषोंकी सेवा करनेके लिये चित्त

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥ अथानघाङ्घ्रेस्तव-कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५८ ॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ५९ ॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुस्स्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥ ६१ ॥

विषयोंके विक्षेपसे रहित हो जाय और हृदय गुप्तका तम दूर हो जानेसे जब अंतःकरण विशुद्ध हो तब उस चित्तमें योगीजनोंको आपकी अद्भुत गति और आपका मनोहर स्वरूप देखनेमें आता है ॥ ५९ ॥ जिस ब्रह्ममें यह सब विश्व दृष्टि आता है और सब विश्वमें जो ब्रह्म दिखायी देता है, वह तत्त्व परब्रह्म ज्योतिस्स्वरूप आकाशवत् सबमें आप ही व्यापक हो और आपका ही विस्तार है॥ ६० ॥ बुद्धिमें भेद करनेवाली माया है, वह आपके विषे कोई नाम भी नहीं कर सकती, ऐसी बहुरूपधारिणी मायासे जो ईश्वर आप निर्विकार होकर इस विश्वको रचता है, पालता है, नाश करता है, जिसमें किंचित् भेदबुद्धि नहीं, सत्यके समान प्रकाशवान् है, ऐसे स्वाधीन ईश्वरकी

हम शरणागत हैं॥६१॥यह मुझको भली प्रकार निश्चय है किआप मंद भावसे रहित हो तो भी पंचभूत इंद्रिय और अन्तःकरणसे जाने जाते हो। महात्मालोग श्रद्धासहित नानाप्रकारकी क्रियाओंसे आपके अद्भुत रूपका अनेक विधियोंसे पूजन करते हैं, उन्हीं पुरुषोंको हम वेद शास्त्रमें चतुर कहते हैं, जो ऐसे विलक्षण स्वरूपको त्यागकर केवल ज्ञानमें मनको लगाते हैं उनको हम विलक्षण नहीं समझते ॥ ६२ ॥ आप ही एक आद्य पुरुष हो क्योंकि प्रलयके समय तो आपकी मायाशक्ति निद्राके वशीभूत हो जाती है और विश्व रचनेके समय उस माया शक्तिसे जब आप रज सत्त्व तमका भेद करते हो, तब उन भेदोंसे महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि,जल, देवता, ऋषि, भूत-गण और भी अनेक पदार्थोंकी खानि यह विश्व जिनसे उत्पन्न होता है॥६३॥ आप अपनी शक्तिके प्रभावसे अपने रचे हुए विश्वमें प्रविष्ट

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजस्सत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६३ ॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥६४॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥ भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ ६५ ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यते क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६६ ॥

होकर अपने आत्माके अंशसे इस विश्वरूप पुरमें चार-चार प्रकारके जीवको रचते हो। स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज इन जीवोंमें आप प्रवेश करते हो, इसी लिये इस जीवका नाम पुरुष है और ऋषिलोग बाहर भीतर वसके इंद्रियोंके द्वारा सुखभोग भोगते हैं॥ ६४ ॥ महाप्रचण्ड जिसका वेग सबको चलायमान करता है, सो यह काल है, उसको आपने-अपने वशमें कर रखा है, पंचभूतोंसे पंचभूतोंका तत्व अनुमान करते हो; जैसे मेघपंक्तियोंको पवन जहां चाहे वहां खींच ले जाती है, इसी प्रकार जीवोंको दूसरे जीवोंसे चलायमान कर आप खींच ले जाते हो; परन्तु यह सब संसारका खींचनेवाला आपका कालरूप किसीके देखनेमें नहीं आता ॥६५॥ प्रमत्त महाचिंतासे

प्रवृद्ध जिसका लोम, विषयोंमें जिसकी लालसा और विषय प्राप्त होनेपर भी अत्यन्त लोभ करनेवाले प्राणी नित्य सावधानतासे रहनेवाले कालरूप आप क्षुधासे गलफुओंको चाटता हुआ सर्प जैसे मूसेको निगल जाता है;ऐसे ही झटपट आप उसको झपट लेते हो ॥६६॥ ऐसा कौन पण्डित है, जो आपके चरणकमलको त्यागेगा, जो आप कहें वह अपमानसे व्यथित भी हैं और उनका शरीर जीर्ण भी हो गया है तो भी आपको कभी नहीं त्यागेंगे, जिसकी शंकासे हमारे गुरु ब्रह्माने आपके चरणारविंदोंका पूजन किया है, जिसकी प्राप्तिके लिये दृढ़ विश्वाससे चतुर्दश मनुओंने मृत्युके भयसे भजन किया है ॥६७॥ हे ब्रह्मन्! हे परमात्मन्!! सब विश्व रुद्रके भयसे त्रासवान् हो रहा है, इस लिये जाननेवाले जो हम हैं, आप ही हमारे शरणरूप और भयनाशक हैं ॥ ६८ ॥ महादेवजी बोले कि, हे नृपनन्दनो! एकाग्रचित्त

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥ विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश॥६७॥अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् ॥ विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः॥६८॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः॥६९॥ तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ॥ समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः ॥ ७१ ॥ इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः ॥ भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७२ ॥ ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥ अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७३ ॥

करके इस रुद्रगीत स्तोत्रका जप करो और स्वधर्ममें निष्ठा रक्खो और अन्तःकरण भगवतको अर्पित करो, इसीमें तुम्हारा मंगल होगा ॥ ६९ ॥ जो सबकी आत्मामें स्थित आत्मा है और सब प्राणीमात्रमें स्थित हैं, उन्हींका पूजन करो, उन्हींका ध्यान करो, उन्हींकी स्तुति करो, उन्हीं हरिका वारम्वार स्मरण करो ॥ ७० ॥ इस योग आज्ञाको धारण करके मुनिव्रत करो और चित्तको सावधान करके सब कोई आदरसत्कारपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करो और अभ्यासपूर्वक आदरसे इसका जप करो ॥ ७१ ॥ जब हम सब ब्रह्माजीके पुत्र भृगुआदिसे सृष्टि रचनेकी इच्छा की तब प्रथम प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टिके बढ़ानेके लिये हमको यह स्तोत्र पढ़ाया था॥७२॥ हमने इसी

स्तोत्रका पाठ करके तमोगुणको ध्वस्त किया और विविध प्रकारकी प्रजा रची ॥७३॥ यदि मनुष्य नित्य सावधान होकर इस मन्त्रका जप करे तो वह भगवान् वासुदेवमें परायण होगा और थोड़े ही कालमें कल्याणको प्राप्त होगा ॥७४॥ इस विश्वमें सब कल्याणोंका कल्याण देनेवाला परमश्रेष्ठ और सबसे प्रधान यह ज्ञान है, जिस पुरुषको ज्ञानरूप नाव प्राप्त हो जाती है वह इस महादुस्तर अपार संसारसे बेखटके पार हो जाता है ॥७५॥ जो कोई श्रद्धासहित मेरे गाये हुए इस भगवत् स्तोत्रका पाठ करेगा, वह विना प्रयास दुराराध्य भगवान् वासुदेवका आराधन करेगा ॥ ७६ ॥ परमेश्वरसे जो पुरुष जिस वस्तुकी आशा करता है, वह सब पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं और मेरे इस गीतको

अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निश्श्रेयसं परम् ॥ सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥ य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥७७॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥७८॥ गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ॥ जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

जो प्रीतिसे गाते हैं, उनसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ज्ञान दे अपावनको भी पावन कर अनेक प्रकारके मंगल देते हैं ॥ ७७ ॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर हाथ जोड़ श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे वा सुने अथवा औरको सुनाये, वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता ॥७८॥ हे राजकुमारो! परमपुरुष परमात्माका जो यह स्तोत्र मैंने गाया है, उसको जपो और एकाग्रमन करके महातप करो, तो अन्तमें तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा। * ॥७९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

---

* भजन–पूजा इस विधि प्रभुकी करिये ॥ धूप दीप नैवेद्य पुष्प फल, हरिके सम्मुख धरिये ॥१॥ अग्दद कण्ठ अङ्ग पुलकावलि, प्रेमनीर चख भरिये ॥ गाय गायगुण प्रेमप्रीतिसों, भवसागर सों तरिये ॥२॥ श्रीयदुवरके चरण गहि कलि मलते क्यों डरिये ॥ शालिग्राम दया कर हे हरि, पाप ताप सब हरिये ॥ ३ ॥

दोहा–मनबुद्धिके संगते, जन्म मरणको भाव । पच्चिसवें अध्यायमें, कथा पुरंजन राव ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, अब राजा पुरंजनका उपाख्यान वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर सुनिये । जब इस प्रकार शिवजीने राजपुत्रोंको उपदेश किया तब प्रचेताओंने विधिपूर्वक शिवजीकी पूजा की, उस पूजाको अंगीकार कर राजकुमारोंके देखते-देखते हर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१॥ रुद्रका गाया हुआ भगवत् स्तोत्रका जप करते-करते उन सब प्रचेताओंको जलके भीतर खड़े-खड़े दश सहस्र वर्ष बीत गये ॥ २ ॥ हे विदुर ! प्राचीनबर्हि राजाका मन कर्मोंमें अत्यन्त ही आसक्त था,उसको परमकृपालु वेदांततत्त्वज्ञाता नारदजीने ज्ञानोपदेश दिया ॥३॥ नारदजी बोले कि हे राजन्!कर्म कर-करके तुम कौनसा कल्याण चाहते हो?एक कल्याण तो वह होता है कि जिसमें दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्ति हो, वह इस यत्नके करनेसे

मैत्रेय उवाच ॥ इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥ नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥३॥ श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणाऽऽत्मन ईहसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ॥ न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥६॥ नारद उवाच ॥ भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥ एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरतो वैशसं तव ॥ संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥

यह प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ राजा प्राचीनबर्हि बोले कि, हे महाभाग ! मेरी बुद्धि तो कर्मोंसे बिंध रही है, मैं कल्याणको नहीं जानता, आप मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान कहो कि जिसके प्रभावसे मैं कर्मोंके बन्धनसे मुक्ति पाऊं ॥५॥ जिसमें अनेक प्रकारके छल-छिद्ररूप धर्म हैं, ऐसे घरमें पुत्र, दारा, धनको मुख्य समझनेवाले अज्ञानी लोग संसारमार्गमें ही घूमते-फिरते रहते हैं और परमेश्वरको नहीं जानते ॥ ६ ॥ श्री नारदजी बोले कि हे राजन् ! हे प्रजापते ! आपने अपने यज्ञमें निर्दयी बनकर सहस्रों पशुओंको मार डाला, उन जीवोंको देखकर तुमको दया नहीं आयी ॥ ७ ॥ यह सब पशु तुम्हारा मरण चाहते हैं, और तुमने जो-जो दुःख इनको दिये हैं उनको स्मरण करके

अपने मनमें क्रोध उत्पन्न करते हैं, जब तुम मरोगे तो यह लोहेके मढ़े हुए शृङ्गोंसे तुम्हारा शरीर विदीर्ण करेंगे * ॥८॥ अब मैं इस विषयमें एक पुरातन इतिहास वर्णन करता हूँ, जिसमें राजा पुरंजनका चरित्र है, वह आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ९ ॥ हे राजन्! बड़ा यशस्वी एक पुरंजन नाम राजा था, जिसका अविज्ञात नामक एक सखा था, जो सब चेष्टाओंको जानता था ॥ १० ॥ इस कथाको आगे पंचम स्कन्धमें विस्तारसहित वर्णन करेंगे और किसी-किसी कठिन शब्दका व्याख्यान जहां शब्द आयेगा उसको वहीं कहेंगे जैसे—"स्वकर्मभिः पुरं

अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥ तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ॥ ११ ॥ न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२ ॥

शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः। न विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरः तस्य सखा" अविज्ञातनामा। पुरंजन जीवका नाम है, अविज्ञात चेष्टावाला अविज्ञात ईश्वरका नाम है, वह पुरंजन राजा अपनी राजधानीके लिये उत्तम स्थानके ढूँढनेको समस्त भूमंडलमें फिरा परन्तु अपने समान कोई स्थान नहीं पाया, तब मनमें अत्यन्त दुःखी हुआ ॥११॥ विषयसुख भोगनेवाले उस राजाकी पृथ्वीपर जितने पुर हैं उनमेंसे एक पुर भी सब सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला, वे पुर कौनसे हैं? पशु, पक्षी कीटादिक जो-जो देह हैं, वह सब दुःखोंकी खान हैं,

* शङ्का—नारदमुनिने प्राचीनर्बाह राजासे कहा, कि राजा यज्ञमें तुमने बहुत जीव मारे हैं सो वह सब जीव तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं, कि जब राजाका देहान्त होगा तो राजा इसी मार्गमें होकर आवेगा तो हम उससे अपना पलटा लेंगे और जैसे झटका झटकाकर हमको मारा है इसी प्रकार हम उसको मारेंगे राजा जब तुम मरोगे तो तुम्हारा जीव उसी पथको जायगा, तब तुमको वह सब जीव कुठारसे काटेंगे; हम कहते हैं कि, जिस समय देहको जीव त्यागता है उसी समय जैसा कर्म जीव करता है वैसेही योनिमें जन्म लेता है फिर बहुत दिन मार्गमें बैठना वैरियोंको देखना, कुठरोंसे काठाना, यह सब बातें नारदजीने क्यों कहीं?

उत्तर—जो प्राणी जिस प्रकार जीवोंको मारता है उसी प्रकार रूप यमराजके दूत धारण करके मारनेवाले प्राणियोंको बड़ा दुःख देते हैं उस समय उस जीवको ऐसा विदित होता है कि जिसको मैंने मारा वह यही है, यह नहीं ज्ञान होता है कि, यह वह नहीं है तो यमके दूत हैं, ये इसलिये नारदजीने जीवका मार्गमें बैठना वर्णन किया है।

कोई मनोवांछित सुखका देनेवाला नहीं, और है तो मनुष्य देह है सो अनेक जप, तप करनेसे प्राप्त होता है, इस लिये कोई दूसरा देह उसको सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला ॥ १२ ॥ एक समय वह राजा फिरता-फिरता हिमाचल पर्वतकी दक्षिणभूमिके नीचे चला गया, वहां उसने एक अद्भुत नगर देखा, कि जिसमें अत्यन्त सुन्दर नवद्वार सर्वसुलक्षण सम्पन्न किसी प्रकारका दोष उसमें नहीं जान पड़ा, वह मनुष्य देह था, उसमें मुख, नेत्र, श्रवण, नासिका, गुदा और लिंग आदि नवद्वार हैं, वहां अंधा, लँगड़ा, लूला, कोई भी अंग वैकल्यरूप दोष नहीं था। हिमाचलके दक्षिण ओर कहनेका कारण यह है कि भरतखंड हिमाचलके दक्षिणकी ही ओर है जो भरतखंड कर्मभूमि कहलाता है, ऐसा मनोहर नगर देखा ॥ १३ ॥ यह नगर प्राकार, उपवन, अटारी, खाई, झरोखे, तोरणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था और सोने,

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥ ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरीं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ॥ स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः सङ्कुलां सर्वतो गृहैः ॥१४॥ नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ क्लृप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥ सभाचत्वर रथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥ चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥

चांदी, लोहेके शृङ्गोंमें चारों ओर सब भवन जगमगा रहे थे, यह जो उस नगरकी शोभा वर्णन की, वह जो अष्टांग और देहमें षट्चक्र हैं, वही मंदिर अटा अटारी हैं और वह जो राजस, तामस आदिक चित्तकी वृत्तियां हैं वही स्थानोंपर सोने, चांदी, लोहेकी कलश कलशियां हैं ॥ १४ ॥ इस नगरके मंदिर, स्थान, नीलमणि, स्फटिक, वैडूर्य्य, मुक्ता, मरकतमणि और माणिकादिक रत्नोंके बने हुए हर्म्यस्थलीसे प्रकाशित हैं, श्रीयुक्त नागपुरी अर्थात् नाग लोगोंकी भोगपुरीसे इस नगरकी शोभा कुछ न्यून नहीं थी ॥१५॥ कहीं सभा, चौराहे, राजमार्ग, हाटें, कहीं विश्रामस्थान ध्वजा, पताका और मूङ्गोंकी वेदियोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान थे ॥ १६ ॥ इस पुरीके बाहरकी ओर एक सुन्दर उपवन दिव्य वृक्षलताओंसे सघन चन्दनादिसे सुगंधित हो रहा था, तालोंमें कंजोंपर भ्रमरोंका गुंजार और अनेक प्रकारके जहां

तहां कोलाहल हो रहे थे ॥ १७ ॥ पुष्प और शीतल जलके झरनोंके कणोंसे लगी हुई पवन त्रयतापकी हरनेवाली बह रही थी, उससे चलायमान मूंगोंके समान वृक्षोंकी शाखा और पत्तोंकी शोभा सरोवरके जलमें झलक रही थी, उन तालोंमें जो कमलिनी खिल रही थीं, उनकी पराग जो उड़ती थी उससे सब भूमि सुगंधित हो रही थी ॥ १८ ॥ अनेक वनके मृगसमूह मुनिव्रत धारण किये, अहिंसा-धर्मका पालन कर रहे थे और निर्भय एकसंग विचरते फिरते थे, कोकिला कुंजोंमें जो कूज रहे थे, तो उनकी मधुर वाणियोंसे यह बात ज्ञात होती थी कि मानो पथिकोंको अपने निकट बुला रहे हैं॥१९॥ ऐसा मनरंजनपुर देखकर पुरञ्जनने वहां निवास किया तदुपरान्त एक दिन प्रसन्न मन हो उस पुरके उपवनमें विहार करने गये तो वहां क्या देखा ! कि उस उपवनमें अपनी इच्छासे एक सुन्दर स्त्री दश अनुच-

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥ चलत्प्रवालविटपनलिनीतट संपदि ॥ १८ ॥ नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥ पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥ समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ॥ २२ ॥ पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ॥ पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥

रोंको साथ लिये फिरती है और एक-एक दासीके सङ्ग सौ-सौ पुरुष उनके चारों ओर खड़े रक्षा कर रहे हैं ॥ २० ॥ एक पांच शीश-वाला सर्प उस मनोरमा स्त्रीकी रक्षामें उपस्थित है। वह कामरूप कामिनी जिसकी सोलह वर्षकी अवस्था परमसुन्दरी उस उपवनमें अपने लिये किसी वरको ढूँढ़ती फिरती है ॥ २१ ॥ उस यौवनवती बालाके दाडिम-बीज जैसे दांत, शुककीसी नासिका, आरसीके सदृश गोल कपोल, चन्द्रमाके समान श्रेष्ठ मुख और एक प्रकारके दोनों कुण्डल कानोंमें विराजमान हैं ॥ २२ ॥ पीले रङ्गके वस्त्र पहिने, सुन्दर कटिपश्चाद्भागवाली, श्यामवर्ण अति सूक्ष्म कटिमें सुवर्णकी कौंधनी धारण किये, चपलाकीसी चञ्चलाहट और चरणोंमें रत्नजटित नूपुरोंकी

झनझनाहटसे ऐसा विदित होता था मानो देवमाया पृथ्वीपर उतर आयी ॥ २३ ॥ यौवन, अवस्थाकी झलकाहटसे कञ्चनके कलशके समान स्तन प्रकट हो रहे हैं; दोनों इकसार चकवी–चकवाके समान व्यवधान रहित थे; वह मत्तमतंग गतिवाली लज्जाके मारे वारम्वार उरोजोंको अञ्चलसे ढांपती थी ॥२४॥ लज्जासहित मन्दमुसकानसे अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी;वह चञ्चलाक्षी मनोहर कटाक्षसे और ऊपरकी ओर घूमती हुई भ्रुकुटीरूप धनुषसे छूटे हुए प्रेम भरे बाणोंसे और नेत्रोंकी अनीरूप मालोंसे,राजा पुरञ्जनके हृदयमें शाल हो गये, तब राजा पुरञ्जनने बड़ी चतुराईके साथ उस मृगनयनीसे पूछा ॥ २५ ॥ हे पिकबयनी ! तुम कौन हो ? और किसकी दुहिता हो ? और हे सती ! यहां कहांसे आयी हो ? यह पुरी किसकी है, नगरीके निकटवर्ती इस उपवनमें किस कारण फिरती हो और तुम्हारी क्या इच्छा है ?

स्तनौव्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ ॥ वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥ २४ ॥ तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥ स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भमद्भ्रुवा ॥ २५ ॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥ क एतेऽनुपथा ये ते एकादश महाभटाः ॥ एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरस्सरः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमापतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥ त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥ २८ ॥

वह मुझसे कहो ॥२६॥ यह ग्यारह जो महाभट तेरे संग हैं यह कौन हैं ? इनमें ग्यारहवां बड़ा बलवान् जान पड़ता है, सो इसका क्या नाम है ? और सौ-सौ ललना जो इनके साथ हैं, यह कौन हैं ? और यह जो तुम्हारे आगे-आगे रक्षाके लिये सर्प चलता है, यह कौन है ? ॥ २७ ॥ तुम लज्जा तो नहीं हो ? जो धर्म अपने पतिको ढूंढ़ती फिरती हो ? वा भवानी हो जो शिव ब्रह्मज्ञानीको खोज रही हो ? जैसे सरस्वती ब्रह्माका और लक्ष्मी नारायणका अनुशरण करती हैं, ऐसे मुनिवत् इस एकान्त वनमें किसके अनुशरणमें विचरती फिरती हो ? मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तुम्हारा जो प्रियतम होगा, उसकी सब अभिलाषा तुम्हारे चरणारविंदके प्रभावसे परिपूर्ण होती

होगी, अब मुझको सब प्रकारसे निश्चय होता है कि तुम साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी हो, परन्तु यह बतावो कि तुम्हारे हस्तके अग्रभागोंमें जो कमलका फूल था, वह कहां गिरा दिया ॥ २८ ॥ हे सुमुखी ! मैं भलीभांति जानता हूँ कि तुम पूर्वोक्त स्त्रियोंमें नहीं हो और यह सब देवांगना हैं, मध्यमा भूमिकी छूनेवाली और कोई नहीं है, इस लिये लक्ष्मी जैसे श्रीनारायणके साथ वैकुण्ठलोकको शोभित करती है ऐसे जो मैं महावीर अनेक कर्मकारी सकल सुलक्षणधाम हूं, मेरे साथ रहकर तुम इस पुरीको सुशोभित करो क्योंकि मेरे साथ इस पुरीमें रमण करने योग्य तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ हे शोभने ! तेरी लाज भरी मृदुमुसकान, घूमती भ्रुकुटीसे प्रेरित किया हुआ मनोभव तुम्हारी दृष्टिकी तिरछी चितवनकी पैनी अनीसे खंडित इंद्रियवाला मुझको बाधा करता है ॥३०॥ इस लिये हे मृदुहासिनी ! तुम्हारा यह मनोहर

नासां वरोर्वन्यतमां भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्य लङ्कर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥ यदेष माऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥ ३० ॥ तदानने सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानमधीरवत् ॥ अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीरमोहिता ॥ ३२ ॥ न विदाम वयं सम्यक् कर्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥ ३३ ॥

मुखारविन्द इंदुका लजानेवाला, जो कि बांकी भ्रुकुटी और चंचल नेत्रोंसे शोभित, लम्बे-लम्बे श्याम रंग अहिशावकसम अलकोंके समूहसे घिरा हुआ, कोकिलावत् मधुरवाणी बोलनेवाला व इंदुकालजानेवाला जो कि यह तुम्हारा मनोहर मुखारविंद है, सो तुम लाजके मारे इस अपने मुखको मेरे सम्मुख नहीं करती ? ॥ ३१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार राजा पुरंजन अधीरवत् उस नारीके सम्मुख याचना कर रहे थे,तब वह नारी भी राजाकी छबि देखकर मोहित हो गयी॥३२॥और अत्यन्त आदर सत्कार करके राजाका वचन मान हँसकर बोली-हे पुरुषसिंह ! मैं उसका नाम नहीं जानती कि किसने मुझे उत्पन्न किया है और यह भी विदित नहीं कि मेरा क्या नाम

रक्खा है और क्या गोत्र है ॥ ३३ ॥ हे वीर ! मैं यह भी नहीं जानती कि कबसे मेरी आत्मा है, मुझको तो केवल इतनी सुध है कि अभी मैं इस उपवनमें आयी हूँ, इससे अधिक और कोई बात मुझको ज्ञात नहीं । मैं इतना भी तो नहीं कह सकती कि यह नगरी किसने बसायी और कौन इसका बनाने वाला है ॥ ३४ ॥ हे मान देनेवाले ! यह जो ग्यारह पुरुष हैं, ये मेरे मित्र हैं, जो यह नारियां हैं ये मेरी सखियां हैं और जब मैं सो जाती हूँ तो यह नाग जागता रहता है और इस नगरीकी रक्षा करता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुनाशक ! ! आपने बहुत अच्छा किया जो यहां शुभागमन किया, मुझको परमानंद हुआ, आपका कल्याण हो, जो आपको सांसारिक विषयवासनाओंके भोगनेकी चाहना है, तो मैं अपने बन्धुओंसमेत और इनके साथ जो यह स्त्री हैं, इन सबको साथ लेकर आपकी सेवा करूंगी॥३६॥ हे विभो ! यह जो नव-

इहाद्य सन्तमात्मानं न विदाम ततः परम् ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥ ३४॥ एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥३५॥ दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिंदम ॥३६॥ इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥ मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगाञ्छतं समाः ॥३७॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् ॥ असम्परायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥ ३८ ॥ धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ॥ लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥ ॥ ३९ ॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥ क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥

द्वारकी नगरी है इसको आप अपनी समझकर इसमें विराजमान हो, सौ वर्षतक मेरे संग सुखसे आनंद भोग करो ॥ ३७ ॥ आपसे अधिक रसिक शिरोमणि और दूसरा पुरुष कौन है जिससे मैं रमण करूं ? जो कि न तो रतिके आनंदको जानता है, न वह पण्डित है, न किसी और ही विद्यामें विचक्षण है, सब विषयवासनाओंको त्याग चिंतन कर बैठ गया है, न परलोकको चिंता है न इस लोककी चिंता है, सो पशुप्राय है ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र, सुख, मोक्ष, अमृतसम सुयश, शोक और जो गुण जिसमें लेशमात्र भी नहीं ऐसे निर्मल लोग बहुत मिलते हैं, परंतु संन्यासी लोग इनको कुछ नहीं समझते ॥ ३९ ॥ सब लोग इस गृहस्थाश्रमको ही पितृ,

देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी सब जीवमात्रके आत्माका परमसुख देनेवाला कहते हैं ॥४०॥ वीरोंमें विख्यात, उदार, रूपवान् प्रियदर्शन-दायक आपसरीखे पतिको पाकर मेरे समान कौन ऐसी स्त्री है, जो आपसे वरको न वरे ॥ ४१ ॥ हे महावाहो ! भुजंग देहके समान लम्बी भुजावाले आपसे पुरुषोंमें किसका मन आसक्त न होगा, जो आप अनाथ समूहोंके सब दुःखको दयायुक्त मंद हास्यके अवलोकनसे ही पीड़ा दूर करनेके लिये विचरते फिरते हो ॥४२॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वह स्त्री–पुरुष, दोनों उस स्थानपर परस्पर रीति-प्रीतिकी बातें कर पुरंजनीका हाथ पकड़, राजा पुरंजन उस पुरीमें प्रवेशकर सौ वर्षकी अवधि बांधकर आनंद भोग करने लगे ॥ ४३ ॥ जहां-तहां उस राजा पुरंजनकी उत्तम कीर्ति गायक लोग ललित रागोंमें गा रहे थे और स्त्रीसहित पवित्र पुष्करिणीमें स्नान कर करके जलक्रीड़ा कर

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ॥ न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥४१॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥ योऽनाथवर्गाधिमलंघृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥४२॥ नारद उवाच ॥ इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥ उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥ क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां य कश्चनेश्वरः ॥४५॥ पञ्च द्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥ पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताऽऽविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥ ४७ ॥

रहे थे ॥ ४४ ॥ उसी पुरीमें जो सात द्वार हैं, वे पृथक् पृथक् देशोंके जानेके मार्ग हैं, सात द्वार तो ऊपरके हैं और दो द्वार नीचे हैं, मुख, नासिका २, नेत्र २, कान २, यह सात ऊपरके द्वार हैं और गुदा, लिंग यह दो नीचेके हैं, ये नवों छिद्र पृथक्-पृथक् विषयोंके भोगके लिये बने हैं, इसमें जो सत्यस्वरूप आत्माराम है उसको कोई नहीं जानता ॥ ४५ ॥ इस पुरीमें पांच (५) द्वार तो पूर्वकी ओर हैं, एक दक्षिणकी ओर है एक उत्तर की ओर और दो पश्चिमकी ओर हैं । हे महीश्वर ! अब इन देशोंके नाम पृथक्-पृथक् मैं तुमसे कहता हूं ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी दो द्वार नेत्र हैं । पटबीजनेकी नाई थोड़ा प्रकाश करता है वह वामनेत्र है और अधिक

प्रकाश जो करता है वह दक्षिण नेत्र है। यह दोनों एक सूधपर बनाये गये हैं, इन दोनों द्वारोंमें राजा पुरंजन विभ्राजित नाम देशमें(रूप)द्युमान् नाम (चक्षु इंद्रिय) मित्रके साथ जाता है ॥ ४७ ॥ नलिनी और नालिनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्वकी ओर हैं। यह भी एक ही सूधमें हैं, वामदक्षिण दोनों नाकके छिद्र हैं, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन अवधूत (घ्राण) नाम सखाके संग सौरभ नाम (गंध) देशमें जाता है ॥ ४८ ॥ उसी दिशामें मुख्या (मुख) नाम पांचवां द्वार है इस द्वारसे पुरंजन राजा (बोलना) अनेक प्रकारके अन्नका स्वाद लेना, रसज्ञाता, व्यवहारकारी, अन्न नाम देशमें रसज्ञ नाम (रसना) प्रीतमके साथ जाता है ॥४९॥ इस पुरीमें पितृहू (दक्षिणकर्ण दक्षिणकी ओरके पितरोंका बुलानेवाला है, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन दक्षिण पांचालदेश, प्रवृत्तिमार्गवाला कर्मकाण्डविषयक शास्त्र) में श्रुतिधर

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥ ४८ ॥ मुख्या नाम पुरस्ताद्द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ॥ विषयौ याति पुरराड् रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥ पितृहूर्नृप पुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरञ्जनः ॥ राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥ देवहूर्नाम पुर्या द्वाउत्तरेण पुरञ्जनः ॥ राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५१॥ आसुरी नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ॥ ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥ ५२ ॥ निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्द्वास्तया याति पुरञ्जनः ॥ वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥५३॥ अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ॥ अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥

नाम (श्रोत्रइंद्रिय) अपने प्यारेके साथ जाता है ॥ ५० ॥ इस पुरीमें देवहू नाम (वामकर्ण) यह द्वार उत्तरकी ओर देवताओंका बुलानेवाला है, इस द्वारसे राजा पुरंजन श्रवणसे उत्तर पांचाल नाम (निवृत्तिशास्त्र) देशमें श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) सखाके साथ जाता है ॥ ५१ ॥ इस पुरीमें आसुरी नाम (शिश्न) पश्चिमकी ओरका द्वार है, इस द्वारसे पुरंजन दुर्मद नाम (उपस्थइन्द्रिय) मित्रके साथ ग्रामक (मैथुनसुख) नाम देशमें जाता है ॥ ५२ ॥ निर्ऋति नाम (गुदा) पश्चिमकी ओरका द्वार है इस द्वारसे राजा पुरंजन लुब्धक नाम (पायुइन्द्रिय) मित्रके संग वैशस नाम (मलत्याग) देशमें जाता है ॥ ५३ ॥ इस मनोहर पुरमें नव द्वारोंके व्यतिरिक्त निर्वाक्

(पैर) और पेशस्कृत् (हाथ) नाम दो द्वार और भी हैं। इसपर दो अंधे द्वारपाल सदा बैठे रहते हैं, परंतु यह कभी खुलते नहीं, सदा बंद ही रहते हैं, इनमेंसे निर्वाक नाम द्वारसे इंद्रियोंका राजा पुरंजन चलाता है, दूसरे द्वारवाला अंधा उससे कार्य कराता है ॥ ५४ ॥ यह राजा विषूचीन (मन) नाम द्रष्टाको साथ लेकर अपने अंतःपुर (हृदय) में जाता है तब अपनी भार्या (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियोंके परिणाम) की संगतिमें मोह (तमोगुणका कार्य), प्रसाद (सत्त्वगुणका कार्य) और अत्यन्त हर्ष (रजो गुणका कार्य) को प्राप्त होता है ॥५५॥ इस प्रकार कर्मोंके वशीभूत हो, कामकी आतुरतासे मोहके जालमें फँसकर ठगा हुआ यह मूर्ख राजा पुरंजन (जीव अपनी पत्नी बुद्धि) की आज्ञानुसार कार्य करने लगा ॥ ५६ ॥ जिस समय वह बाला पुरंजनी मदिरा पीती है, तो यह आप मदिरा पीता है, उसके मदमें ऐसा विह्वल

स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनंसमन्वितः ॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥ एवं कर्मसु संयुक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः॥महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत॥५६॥ क्वचित् पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः॥ अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥ क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदन्त्यां रुदति क्वचित् ॥ क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥५८॥ क्वचिद्धावतिधावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥ क्वचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति॥क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥

हो गया कि जो कुछ वह करती है वही यह करता है, जब वह भोजन करती और जल पीती है तो उसी समय आप भी भोजन करता और जल पीता है ॥ ५७ ॥ जब पुरंजनी गाती है तो यह भी गाता है, जब वह रोती है तो आप भी रोने लगता है, जब वह हँसती है तो आप भी हँसने लगता है, जब वह बोलती है तो आप भी बोलता है ॥ ५८ ॥ और जब वह पुरंजनी भागती है तो आप भी भागता है, वह बैठ जाती है तो आप भी बैठ जाता है, जब वह सोती है तो आप भी सो जाता है ॥५९॥ जो पुरंजनी किसीकी बात सुनती है तो यह भी सुनता है और पुरंजनी किसीकी ओर देखती है तो यह भी देखता है और वह कुछ अपनी नासिकासे सूंघती है तो यह भी

सूंघता है, जो वह किसीको छूती है, तो यह भी उसको स्पर्श करता है ॥ ६० ॥ जो उस पुरंजनीको शोकाकुल देखता है तो आप भी शोकके समुद्रमें डूब जाता है, जो उसको हर्षित देखता है तो आप भी हर्षित हो जाता है, जब वह प्रफुल्लित होती है तो आप भी प्रफुल्लित हो जाता है॥६१॥ जब सब प्रकारसे उसकी स्त्रीने उसको ठगकर वशमें कर लिया, तो उसकी विना इच्छा वह कोई कार्य नहीं कर सकता था. और मृगकी तरह वशीभूत रहता था ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महा० चतुर्थ० भाषाटीकायां पुरंजनीरमणचरित्र वर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ दोहा—छब्बिसमें आखेट अरु, जाग्रतस्वप्नवृतान्त । रहो नारिके नेहमें, कियो नाहिं चित शांत ॥ श्री नारदजी बोले कि वह महाधनुषधारी पुरंजन राजा (जीव) एक समय सुवर्णका कवच (रजोगुण) पहन कंचनमय रथ (स्वप्न अव-

क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनुमोदते ॥६१॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥६२॥ इति श्रीभा० चतुर्थे० पुरञ्जनपुरञ्जनीरमणचरित्रवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥१॥ एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥ पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥ २ ॥

स्था सम्बन्धी देह) में बैठकर अक्षय तूणीर (अनंत वासनाओंसे भरा हुआ अहंकार) पंचप्रस्थनाम (पांच विषय) वनमें मृगया खेलनेके लिये गया; वह रथ अत्यन्त वेगगामी और शीघ्र चलनेवाला था, (स्वप्न अवस्थाका देह जाग्रत अवस्थाकी देहके समान नहीं रहता इस लिये वेगगामी कहा, अत्यन्त तीव्र वेगवाले उसमें पांच अश्व जुते हैं (पंच ज्ञानेन्द्रिय) उसमें दो दंडी हैं (अहंता और ममता), दो उसमें चक्र हैं (पुण्य और पाप), एक उसमें जुवा है (माया अर्थात् अज्ञान) जिसमें तीन वेणुकी ध्वजा हैं, (त्रिगुण-सत्त्व,रज, तम) पांच जिसमें बन्धन हैं (पंचप्राण) ऐसे शोभायमान रथमें बैठकर राजा पुरंजन वनमें विहारके लिये गया ॥ १ ॥ जिसमें एक वागडोर है (मन), एक सारथी है (बुद्धि), एकही रथवानके बैठनेका स्थान है (अंतःकरण) और दो धुरे हैं (शोक और मोह)। पांच उसकी

विक्रम गति हैं (पंच कर्मेंद्रिय), सात उसमें बरूथ हैं (सात धातु), पांच प्रकारकी इस रथकी सामग्री पांच विषय) प्रक्षेप करनेवाली हैं ॥ २ ॥ उस पुरंजन राजाने सुवर्णके आभूषण पहन, कञ्चनका कवच (रजोगुण) अक्षय बाणरूप तरकस (अनंत बासनाओंसे भरा हुआ अहंकार उपाधि), एक बड़ा भारी धनुष (कर्ता और भोक्ता मैं ही हूँ ऐसा अभिनिवेश) धारण किये, दश अक्षौहिणी (दश इंद्रिय) और एक उनका सेनापति (मन) को पुरंजन राजा (जीव) अपने सङ्ग लेकर पंचप्रस्थ नाम (पांच विषय) वनको चला॥३॥ वह महा अहंकारी राजा पुरंजन धनुष (विषय भोगमें अभिनिवेश), बाण (रागद्वेषादिके) हाथमें उठा अपनी परम प्रिया रानी (बुद्धि)

हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषु कार्मुकः ॥ विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥ आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥ तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने ॥ यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥ य एवं कर्म नियतं विद्वान्कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥

जो त्यागनेके योग्य नहीं थी, उस विवेकवती बुद्धिको त्यागकर (मृगरूपविषयों) के मारनेसे (भोगनेकी इच्छासे निर्जन वनमें जाकर मृगया खेलने लगा (विषय भोगने लगा) ॥ ४ ॥ वह महा निर्दयी क्रूरचित्त राजा पुरंजन असुरबुद्धि तीक्ष्ण शरोंसे वनमें जाकर वनके जीवोंको मारने लगा ॥ ५ ॥ आखेटके लिये शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है,तीर्थ श्राद्धादिक जब आये तो राजा पवित्र पशुओंको वनमें जाकर लुब्धककी नाईं मार लाये, परन्तु उन्हीं पशुओंको मारना कि जिनका मांस धर्मशास्त्रमें पवित्र लिखा है, उनको भी वनमें ही मारना, घरपर उनके मारनेका भी निषेध है, ❀ ॥ ६ ॥ जिस प्रकार शास्त्रने हिंसामें नियम किये हैं इसी रीतिसे औरकर्मोंमें भी नियत

---

* फिर इस प्रकारकी शास्त्रमें और भी अनेक विधि हैं, यह कभी मत समझना कि शास्त्र में इनके मारनेकी ही विधि हैं, देखो जब बालकका चित्त अत्यन्त खेलमें लवलीन हो, तब वह एकाएकी किसी प्रकार नहीं रुक सकता उसको शनैः शनैः रोकेंगे तो रुक जायगा, और कोई विघ्न नहीं होगा, कोई समय उसके खेलनेका नियत कर दिया जाय कि तू पांच श्लोक कण्ठाग्र करके फिर अपना खेल खेलो, परंतु उसमें भी इतना ध्यान रक्खो कि कुलीन और सुबोध लड़कोंके साथ खेलना; उसमें भी इतना और विचार लेना कि धूप न हो समय देख लेना परंतु रात भी न हो, जब उसके सब समय छुटा दिये केवल एक सन्ध्याका समय शेष रह गया, उसका यज्ञोपवीत करके संध्या पढ़ा दी और कहा कि हे पुत्र ! बिना सन्ध्या, तर्पण किये गति–मुक्ति नहीं होती, जब वह सन्ध्या, तर्पण करने लगा तो उसका सन्ध्याका खेलना भी छूट गया, ऐसे ही शास्त्र भी जो एकाएकी लोगों को रोकता तो–

नियम किये हैं। जो विद्वान पुरुष इस प्रकार निश्चय करके कर्मोंको करते हैं, उन मनुष्योंको अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे वह पुरुष किसी प्रकारके कर्ममें लिप्त नहीं होता ॥७॥ और जो इन नियमोंके विरुद्ध कर्म करे तो उसका हृदय शुद्ध नहीं होता और हृदयकी शुद्धि विना ज्ञान कहां, तो फिर अज्ञानी बन मदमत्सरताके वशीभूत हो ऐसे करने लगता है कि "मैं कर्ता हुँ" इस प्रकार अभिमानमें आरूढ़ होकर बुद्धिका विनाश कर लेता है, जब बुद्धि न रही तो बुद्धिहीन बन संसार सागरकी लहरोंमें पड़कर महानीचसे नीच योनिमें जन्म लेता है ॥८॥ उस राजा पुरंजनके उस वनमें चित्र विचित्र पक्षवाले शरोंसे अनेक जीवोंके अंगभंग हुए और दुःख पाने लगे,

अन्यथाकर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥ तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥ विप्लवोऽभूद् दुःखितानां दुस्सहः करुणात्मनाम् ॥ ९ ॥ शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥ १० ॥ ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥

उन दुःखी जीवोंका नाश हुआ, यह बात दयालुपुरुषोंसे नहीं सही गयी ॥ ९ ॥ शशा, शूकर, अरण्यमहिष, लीलगाय, रुरु, शेही, पवित्र अपवित्र अनेक प्रकारके पशुओंको मारता-संहारता राजा पुरंजन अत्यन्त श्रमित हो गया॥१०॥ स्वप्नावस्थाका वर्णन तो तुमको सुनाया, अब जाग्रत अवस्थाका वर्णन करते हैंः–तब भूख--प्याससे अत्यन्त पीड़ित हो, थकाथकाया लौटकर पुरंजन अपने घरपर आया; श्रम दूर कर स्नानसे निवृत्त हो भोजन करके शय्यापर शयन किया, निद्राके आनेसे शरीरकी सब थकावट दूर हुई ॥ ११ ॥

–लोग नहीं मानते और विघ्न होते, इस लिये शास्त्र ने विषयी लोगों का मान रखनेके लिये कुछ कुछ नियम लिखकर हिंसाका निषेध किया है कि जिससे लोग आपसे आप ही कुछ दिनों पीछे समझ बूझकर हिंसासे निवृत्त हो जायं ॥

* शङ्का—पुरंजनी रानी पहिले जिस कर्मको करती थी, उसके पीछे उसी कर्मको पुरंजन करता था, ऐसा श्रीमद्भागवतमें लिखा है । फिर पुरंजनी जो अपनी स्त्री थी उसको त्यागकर पुरंजन राजा वनको क्यों चला गया?

उत्तर—राजा पुरंजन तो विचारसे हीन था और स्त्रीके वशमें था, और ठगा गया भी था, इसीसे रातदिन व्याकुल भी रहता था मूर्ख भी था मृगमारनेमें मनको लगाकर स्त्रीको त्यागकर चला गया और यह नहीं विचारा कि, पीछे मेरी दुर्गति पुरंजनी क्या करेगी ।

आंख खुल गयी तो सुगन्ध, चन्दन, पुष्पहारादिकसे शरीरको सुगन्धित और सुशोभित कर, सब अङ्गोंमें सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहन, स्त्रीके समीप जानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ तृप्तचित्त, प्रसन्नवदन, अभिमानमें भरा हुआ, कामविवश चित्त होकर रनवासमें गया, वहां श्रेष्ठ बुद्धि-वाली शय्यायोग्य, गृहस्थिनी, अपनी सुमुखी भार्याको नहीं देखा ॥१३॥ तो उस समय अत्यन्त उदास होकर उस वरारोहा अपनी प्रियाकी सखियोंसे पूछने लगा, कि हे स्त्रियो! तुम्हारी कुशलता तो है? जैसे तुम अपनी स्वामिनीसमेत पहले आनंद चित्त विचरती फिरा करती थीं, ऐसे आज क्यों नहीं विचरती? इसका क्या कारण है? ॥ १४ ॥ जिस घरमें घरकी शोभा शुभानना स्त्री वा सर्व सुख देनेवाली माता नहीं

आत्मानमर्हयाञ्चक्रे धूपलेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलङ्कृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥ तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः ॥ न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥ अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः ॥ १४ ॥ यदि न स्याद् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥ १५ ॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जतं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥ १६ ॥ रामा ऊचुः ॥ नरनाथ न जानीम-स्त्वत्प्रिया यद् व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥

होती, अथवा पति विना स्त्री ही हो तो उस घरकी सम्पदा शोभाको प्राप्त नहीं होती। ऐसे घरमें कौन विद्वान पुरुष वास कर सकता है कौन चतुर पुरुष विना पहियोंके रथमें आरूढ़ होगा? कहां है वह मेरी प्राणप्यारी जो क्षण-क्षणमें उत्तम परामर्श दे और प्यार कर-करके मेरे मनको मोहित करती थी ॥१५॥ वह ललना कहां है? जो इस व्यसनरूप सागरमें डूबते हुए मुझे उबारती थी और पद-पदपर मेरी बुद्धिको सावधान करती रहती थी, वह कहां चली गयी? ॥ १६ ॥ स्त्रियां बोलीं—हे नरनाथ! हे शत्रुनाशक!! हम नहीं जानतीं कि तुम्हारी क्या इच्छा है। परंतु बिना बिछौना बिछाये पृथ्वीमें पड़ी सो रही हैं, चलकर देख लो ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि पुरंजन अपनी स्त्रीको पृथ्वीमें पड़ी देखकर-

जिसके सङ्गसे इसका सब ज्ञान नष्ट हो गया था, अत्यन्त दुःखित हुआ ॥१८॥ राजा पुरंजन मनमें अत्यन्त उदास हो मधुरवचनोंसे सांत्वना कर दुःखी चित्तसे अपनी प्यारीके प्रेमको बढ़ाने लगा और जो क्रोधदृष्टि थी उसको अपने आत्मामें मान लिया, परंतु उसके देखनेमें ऐसा चिह्न और लक्षण कोई भी नहीं जान पड़ा कि जानबूझकर यह किस कारण कोप किया है ॥ १९ ॥ फिर प्यारीको प्रसन्न करनेके लिये वह वीर राजा पुरंजन धीरे-धीरे उसके समीप गया और उसके चरणारविंदको छू अपनी गोदीमें बैठाकर इस प्रकार अपनी प्यारीकी प्रार्थना करने लगा ॥२०॥ पुरंजन बोला कि हे चन्द्रानने ! निश्चय है कि तुम्हारे किये हुए पुण्यरूप ईश्वरके समान वह भृत्य प्रसन्न रहते हैं और स्वामी उनको अपना समझकर शिक्षा और दंड दे और जो स्वामी दासको दंड नहीं दे तो दासोंको भाग्यहीन जानना चाहिये ॥ २१ ॥

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ॥ प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥ अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ॥ पस्पर्शपादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥ २० ॥ पुरञ्जन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागस्स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥ २१ ॥ परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणाऽर्पितः ॥ बालो न वेद तत् तन्विबंधुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ॥ नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २३ ॥

अपने भृत्योंको जो स्वामी दंड दे तो भृत्योंको अपना अहोभाग्य समझना चाहिये, हे कृशोदरि ! वृद्धोंके दंड देनेका जो बालक दुःख मानते हैं और क्रोध करते हैं, वे अत्यन्त मंदभागी हैं, क्योंकि वह बालक अपने वृद्ध पुरुषोंको नहीं जानते कि यह हमारे हितकारक हैं ॥ २२ ॥ हे सुदति ! सुभ्रु ! ! हे मनस्विनि ! ! ! तेरा मनोहर मुखारविन्द चन्द्रवत्, अनुरागभारसे भूषित, लाजसे शोभित, मधुरहास्य युक्त, तिरछी चितवनके अवलोकनके कारण अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता है, जिसमें श्याम वर्ण सर्पिणीसी अलकें कपोलोंपर पड़ी अमृतके कणोंको चाट रही हैं । सुभग नासिका और मनोहर भाषणवाले मुखपरसे घूँघटपट उठाकर क्यों नहीं अपना चन्द्रवदन अपने प्रेमियोंको

दिखाती हो ॥ २३ ॥ हे वीरबाला ! ब्रह्मवंश और भगवद्भक्तके व्यतिरिक्त और किसी दूसरेने तेरा अपराध किया हो तो मुझे बता, उसे मैं दंड दिये विना कभी न रहूंगा, यह तू निश्चय समझ लेना क्योंकि त्रिभुवनमें अथवा चौदह भुवनोंमें निरंतर मेरा भय न मानकर प्रसन्न रहनेवाला कोई भी वीरपुरुष मुझको नहीं दिखायी देता ॥ २४ ॥ आजतक तेरा मुखारविन्द विना तिलक, मलीन, हर्षरहित, कोपसे भयानक, प्रेमशून्य मेरे देखनेमें नहीं आया था और यह तेरे मनोहर कुच भी शोकसे लचे, नेत्रोंके जलसे भीजे नहीं देखे और बिंबफलसे लाल रंगवाले सुधा रस भरे कोमल अधर तांबूलके न खानेसे कुंकुमकेसी कांति जिसमें नहीं दीखती, ऐसे अधर कभी मेरे देखनेमें नहीं

तस्मिन् दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात् कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ २४ ॥ वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुंकुमपङ्करागम् ॥ २५ ॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० पुरञ्जनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

आये ॥ २५ ॥ इतना अपराध तो मुझसे अवश्य हुआ है कि तुझसे विना पूछे व्यसनमें आतुर होकर आखेटको चला गया, वह अपराध क्षमा कर, कामदेवके बाणोंके वेगसे सब ऐश्वर्यको त्याग धैर्य रहित हो, जिस पत्नीका पति बारम्बार उसके चरणोंमें पड़े तो अपने वशीभूत अपने पतिकी अभिलाषा न पूर्ण करनेवाली ऐसी कौन स्त्री है जो अपने पतिको कण्ठसे न लगायेगी ? जो कुलीन स्त्री हैं, वे सदा अपने पतिकी सेवामें तनमनसे उपस्थित रहती हैं, * ॥२६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनेन स्वापराधक्षमापन वर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* कवित्त–नारी स्वर्गरूप नारी जीवनप्राण, नारी जगत्‌रूप सब सुर मुनि कहत हैं । नारी हो तरण तारण नीवारण कोटिकष्ट, ब्रह्माशिवविष्णु शोभा नारीसों लहत हैं ॥ वृन्दावासी नारीको धारी शीश शालिग्राम, चतुर और अनारी सब नारीको कहत हैं । नारी ही सारे संसार में है जीवन मूल, अंतसमय सबके प्राण नारीमें रहत हैं ॥

दोहा—सत्ताइस अध्यायमें, पुत्रादिककी प्रीत । भई पुरंजन राजके, कन्याकाल प्रतीत ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार पुरंजनको पुरंजनीने अपने मधुर वाक्य और सुन्दर कटाक्षोंसे मोहित करके वशमें किया और उसको विहार कराती हुई आप विहार करने लगी ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस राजा पुरंजनने सुन्दर स्नान की हुई चन्द्रमुखवाली, सुंदर श्रृंगार की हुई स्वस्त्ययन जिसका किया हुआ और तृप्त अपने समीप आती हुई अपनी राजमहिषीका बहुत आदर-सम्मान किया ॥२॥ दोनों अत्यन्त लिपट-लिपटकर मिले, फिर हृदयसे लगाकर एकान्तमें गुप्त भाषणसे उस कामिनीका मन अपने वश कर, ज्ञान,ध्यानको तज, उस मनमोहिनी बालाको ही सर्वसाधनरूप

नारद उवाच ॥ इत्थं पुरञ्जनं सम्यग् वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥ स राजामहिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्दद्धुपागताम् ॥ २ ॥ तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ॥ न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥ ३ ॥ शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥ तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोऽभिभूतो न निजं परं च यत् ॥ ४ ॥ तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत् पुत्रान् पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः ॥ क्षतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥

समझने लगा और ऐसा आसक्त हुआ कि दिन-रात दुरत्यय कालके प्रचण्ड वेगको भी भूल गया और उसीके संग रहने लगा ॥३॥ सुंदर सुहावनी रसीली शय्यापर अपनी मनरंजनी पुरंजनीकी भुजाका तकिया लगाये,वह मदांध महामनस्वी शयन करता और उसीको सर्वोत्तम अत्यन्त श्रेष्ठ मान अपने सत्यस्वरूपको भूल गया और अपने परायेका भी कुछ ध्यान न रक्खा ॥४॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब अत्यन्त कामासक्त हो रमण करनेसे ऐसा बेसुध हुआ कि उसकी युवावस्था क्षणार्धकी नाई व्यतीत हो गयी ॥५॥ तब राजा पुरंजनने अपनी भार्या पुरंजनीमें ग्यारहसौ (११००) पुत्र उत्पन्न किये, (ग्यारह इंद्रियोंके परिणाम) इतनेमें सम्राटकी आधी आयु व्यतीत हो गयी ॥ ६ ॥

हे प्रजापते ! रसके एकसौ दश (११०) पुत्रियां उत्पन्न हुई (बुद्धिकी वृत्तियां) माता पिताका यश और कीर्ति बढ़ानेवालीं और सब शील वान् गुणनिधान उदारतासे युक्त थीं ॥ ७ ॥ अब पौरंजन वंश चला सो पांचाल देशके (शब्द-स्पर्श आदि विषय) अधीश्वर उस राजा पुरंजनने अपने वंशको वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका अच्छी कुलीन कन्या (हित, अहित, चिंता,) के साथ विवाह किया और कन्याओंका भी उनके समान वर (योग, विषय भोग) देखकर विवाह कर दिया ॥ ८ ॥ राजा पुरंजनके पुत्रोंमेंसे एक-एक पुत्रके सौ सौ (१००-१००) पुत्र उत्पन्न हुए (अनेक प्रकारके कर्म) जिनसे राजा पुरंजनका वंश पांचाल देशमें बहुत बढ़ा ॥९॥ घरमें धन अधिक देख,पुत्र पौत्रोंकी प्रीतिके वश हो मोहपाशमें फँस विषयके बंधनमें बँध गया जैसे मर्कट और कीर पिंजरेमें बन्द हो जाते हैं ॥ १० ॥ उस राजा पुरंजनने भी तेरे समान

दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥ शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥ स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥ पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ॥ यैर्वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु स मेधितः ॥ ९ ॥ तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वब- ध्यत ॥ १० ॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥ देवान् पितॄन् भूतपतीन् नानाकामो यथा भवान् ॥ ११ ॥ युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ॥ आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥ १२ ॥ चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ १३ ॥ गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥ परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥ १४ ॥

पशुमारक अनेक प्रकारकी घोर पशुओंकी दीक्षा लेकर महाभयानक पशुवाले यज्ञोंसे देव पितृ और भूतपतियोंका यजन किया ॥११॥ इस प्रकार उस योग्य प्रमत्त, कर्महीन, परिवारासक्त चित्त राजा पुरंजनका वह समय आया (वृद्धावस्था) जो समय स्त्रियोंको अत्यन्त अप्रिय है ॥ १२ ॥ हे महीश्वर चण्डवेग नाम (वर्ष) गन्धर्व लोकका अधीश्वर है, और तीनसौ साठ (३६०) महाभट योद्धा उसके समीप (दिन) रहते हैं ॥१३॥ और उतनी ही उनकी भार्या हैं । (रात्रि) मैथुन योग्य सित-असित हो जाती हैं (कृष्णपक्षकी और शुक्लपक्षकी) प्रतिदिन अपने पतियोंके साथ ही विचरती रहती हैं, और पुरुष-स्त्री दोनों मिलकर सदा पुरंजनकी शोभायमान पुरीको लूटते रहते हैं ।

(अवस्थाको)॥१४॥ जब चण्डवेगके अनुचर पुरंजनकी नगरीको अधिक सताते हैं तब इस पुरीका पुराधीश (रक्षा करनेवाला) पंचवक्र सांप (पञ्चप्राण) उनको रोककर उनसे युद्ध करनेको उपस्थित होता है ॥ १५ ॥ सात सौ बीस (७२०) महाबलवान् गन्धर्व-गन्धर्विनियोंसे पुरंजन नगरीके नरेशने सौ वर्षतक युद्ध किया॥१६॥ अपने सब सम्बन्धी जब क्षीयमाण हो गये और आप अकेलेने जब बहुत-बहुत पुरुषोंसे युद्ध किया, तब वह सर्प बलहीन हो गया और पुरंजन सब नगरवासियों समेत अपने कुटुम्बियोंके निकट बैठकर चिन्ता करने लगा ॥१७॥ वह मधुभोगी अपने अनुचरोंसहित पांचालदेशमें वास करता और जो कुछ उसके पार्षद भेज देते उसीको ग्रहण कर अपने मनको सन्तुष्ट करता और नारीके वशीभूत हुआ, वह राजा पुरंजन देश छिन जाने और शत्रु (मृत्यु) के आनेके भयसे भी कुछ

ते चण्डवेगानुचराः पुरञ्जनपुरं यदा ॥ हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत् प्रजागरः ॥ १५ ॥ स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ॥ पुरञ्जनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे स्वसंबन्धे एकस्मिन् बहुभिर्युधा ॥ चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥ १७ ॥ स एव पुर्यां मधुभुक् पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिंगृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद् भयम् ॥ १८ ॥ कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती ॥ पर्यटन्ती न बर्हिष्मन् प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥ या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात् पूरवे वरम् ॥ २० ॥ कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥ २१ ॥

भयभीत न हुआ ॥१८॥ हे राजन् ! उसी समय कालकी पुत्री अपने वरके लिये सब त्रिलोकीमें ढूँढ़ती फिरी, परन्तु उसको किसीने अंगीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ तब उस दुर्भागिनीका दुर्भगा नाम जगत्में विख्यात हुआ, प्रथम इस दुर्भगाको राजा पुरुने वरा, तब उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा पुरुको राज्य दिया॥२०॥ एक समयमें ब्रह्मलोकसे मैं मृत्युलोकको आता था और यह कालकन्या चारों ओर पर्यटन करती फिरती थी, मार्गमें मुझे मिली और मुझको देखकर मोहित हो गयी और मुझसे बोली कि हे स्वामिन् ! मुझको वर लो, वह अपने जीमें यह भी जानती थी कि यह पूर्ण ब्रह्मचारी हैं परन्तु कामके वशीभूत हो फिर हठकर मेरे निकट आयी और कहा हे स्वामिन् !

मुझको वरना पड़ेगा ॥२१॥ जब मैंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया तब वह मेरे ऊपर बड़ी क्रोधित हुईऔर मुझको यह दुःसह शाप दिया कि हे मुने ! तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया अब तू एक स्थानपर वास नहीं कर सकेगा॥२२॥जब उसकी अभिलाषा पूर्ण न हुई तब वह निराश होने लगी, तब मैंने उसको कहा कि तू यवनोंके राजा भयको वर ले,वह मेरी आज्ञा मान भय नरेशके निकट गयी॥२३॥ हे वीर ! आप यवनेश हैं इस लिये मुझे अधिक प्रिय जान पड़ते हो, इस लिये मेरा मन आपके वरनेको चाहता है, जो स्त्री-पुरुष

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुस्सहम् ॥ स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥ २२ ॥ ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम्॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥ ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥ संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥ द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ॥ यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥ अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु॥ एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते॥२६॥

अपनी जिस कामनाके लिये आपके पास आता है, उसकी मनःकामना पूर्ण होती है ॥२४॥ लोक अथवा शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो पदार्थ देने योग्य है, उस पदार्थकी कोई आकर याचना करे और वह पदार्थ उसको न मिले,अथवा जो पदार्थ लोक और शास्त्रकी रीतिके अनुसार लेने योग्य है,वह पदार्थ कोई उसको समर्पण करे और वह उसे स्वीकार न करे तो वे दोनों मूर्ख और अज्ञानी हैं॥२५॥हे मंगल रूप ! अब आप मुझकोअंगीकार करो, क्योंकि मैं आपके ऊपर मतवाली हूँ आप मुझपर दया करो दीनों पर दया करना ही साहसी

---

* शंका—प्राचीनर्वाहि राजासे नारदजीने कहा, कि मैं कामको अपनी देहमेंसेनष्ट करने वाला हूँ, इसलिये मेरा नाम देवर्षि है, ऐसे नारदजी कामकी सुन्दर मंदिर जो कामिनी है उससे क्यों मोहित हो गये और उन्मत्तोंकी नाई स्त्रियोंके पीछे-पीछे रोते फिरे विष्णुपुराण संहितामें यह कथा लिखी है नारदको मोह न होने को सो नारदको मोह कैसे हुआ ।

उत्तर—जिस दिन प्राचीनर्वाहिसे नारजीने कहा, कि मैंने जितेंन्द्रिय हो कांमदेवका नाश कर दिया, उस दिनके पीछे नारदजीको मोह उत्पन्न हुआ दिन प्राचीनर्वाहिसे कहा था उस दिन तो वैसे ही रहे थे दूसरे दिन मोहित हो गये नारदका वाक्य सत्य है।

पुरुषोंका परम धर्म है ।जब कालकन्याने इस प्रकार विनयपूर्वक वचन कहे, तब यवनेश्वर,भय जो कि बात देवताओंकी समझमें भी आनी कठिन (मरण) है वह मुसकाकर उससे बोला ॥२७॥ मैंने अपने आत्मज्ञानसे तेरे लिये पति अनुसरण कर लिया है, वह तू अमंगलरूप श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं है, यदि तू किसीके सम्मुख जाकर विनय करेगी, तो भी कोई तुझको अंगीकार नहीं करेगा ॥ २८ ॥ इस लिये तू मेरा कहना मान, कर्मसे विनिर्मित लोकको तू प्रकट गतिसे भोग, यह किसीको विदित न हो कि कहांसे आयी और कैसी है, कोई तुझको न पहिचाने,इस प्रकार सब संसार (सब शरीर) जो कि कर्मोसे बने हुए हैं,उनको बलात्कार पकड़ कर भोग और मेरी सेना अपने संग ले

कालकन्योदिता वाचो निशम्य यवनेश्वरः ॥ चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितां तामभाषत ॥ २७ ॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥ २८ ॥ त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥ प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥ इति श्रीभा० म० चतु० पुरञ्जनोपाख्याने कालकन्योपाख्यानं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥ प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥

जा, इस रीतिसे एक क्या सब संसारके पुरुष तेरे पति हो सकते हैं, (सब प्रजा नाशको प्राप्त हो सकती हैं) ॥२९॥ नारदजी बोले कि हे बर्हिष्मन्! तू यह भी भय मत करना कि संसारमें मुझको कोई हत्यारा समझकर मार डालेगा;तूही सबको अपने वशमें रक्खेगी और प्रजा गन्धर्व मेरा भ्राता है और तू मेरी भगिनी बन जा,मैं भी अपनी भयानक सेनाको साथ लिये तुम दोनोंके पीछे-पीछे सब संसारमें गुप्त होकर फिरता रहूंगा,परन्तु ऐसे महात्मा पुरुषोंको नहीं सताऊँगा *॥३०॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भा०टी०कालकन्योपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें,वैदर्भी आख्यान । पुरञ्जनीको जन्म पुनि, मोक्ष परम बलवान॥श्रीनारदजी

* कवित्त–मानुषको जन्म पाय कीन्हो जिन साधु संग, गुरुसों लह्यो जु भेव सोई बड़भागी है । कुमतिको विदार सुमतिसों बढ़ाई प्रीति, वाही है संयोगी जाको सुरत शब्द पागी है ।। सोई संन्यासी जो शून्यशिखरवासी भयो, कर्मको बिनाशी हरिपद अनुरागी है, हो मनको त्यागी अनुरागी ईश दरशनको, सोई है वैरागी जाको रामसों लौलागी है ।। ३० ।।

बोले कि हे बर्हिष्मन् ! भय नामक यवनेशकी सेनाके जो बलवान् योद्धा (रोग) थे वह प्रज्वार और कालकन्याके संग संसारमें घूमने लगे ॥ १ ॥ हे नरेश ! उन्होंने एक दिन वेगसे भूमिके भोगयुक्त जीर्ण प्राणरूप सर्पसे रक्षित थी, उस पुरंजनकी पुरीको आकर झटपट घेर लिया ॥ २ ॥ कालकन्या पुरंजनकी पुरीको बलात्कार भोगने लगी, जिससे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ सब नगरीके चारों ओरके द्वारोंमें होकर यवनराजके सैनिक नगरीमें घुस भांति-भांतिकी पीड़ा देकर उसे लूटने लगे ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार अपनी पुरीमें पुरंजनने पाड़ा देखी, तब वह अभिमानी पुरंजन कुटुम्बकी ममतासे व्याकुल हो, अनेक प्रकारके तापोंसे पीड़ित होने लगा ॥ ५ ॥ उस कालकन्याने जिससे मिलाप किया वह श्रीहीन, कृपण, विषयमें लगी हुई आत्मा बुद्धि उसकी नष्ट हो गई

त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥ २ ॥ कालकन्याऽपि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ॥ ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निस्सारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतो दिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥ ५ ॥ कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान् पौत्रानुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥ ७ ॥ आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ॥ दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन् दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥

और गन्धर्वोंने बलसे सब ऐश्वर्य नष्ट कर दिया ॥६॥ जब पुरंजनकी पुरीका सब विभव लूट कर विध्वंस कर दिया तब पुत्र, पौत्र, भृत्य (इन्द्रियाँ और कार्यकर्ता इन्द्रियोंके देवता) को प्रतिकूल चलता देखा, (मनवांछित विषय न देने और अवांछित विषय देनेसे) निरादर करने लगे (अपने वशमें न रहे) और प्यारी पत्नीने भी सुहृदता त्याग दी, (बुद्धि भी ठिकाने न रही) स्त्री भी अपनी नहीं रही ॥ ७ ॥ अपनी देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पांचाल देशको (विषय) शत्रुओंसे (विघ्न) दुःखित देखकर राजा पुरंजन मनमें अत्यन्त चिन्ता करने लगा, उसके दूर होनेका कोई यत्न न बन सका ॥८॥ जब सब विषय कालकन्याके भोगनेसे निःसार हो गये और

कुटुंबियोंने भी स्नेह त्याग दिया तो भी वह दीन पुरंजन उनकी वांछा ही करता रहा । परलोकसम्बन्धी कल्याणोंसे अथवा इस लोकसंबंधी परिवारादिकोंकी प्रीतिके छूटनेपर भी पुत्र दाराका लालन-पालन चित्तमें बना ही रहा ॥ ९ ॥ जब गन्धर्व यवनोंने उस पुरीमें भारी उपद्रव मचाया और कालकन्याने पुरवासियोंका मर्दन किया और पुरंजनको नगरसे बाहर निकालना चाहा परंतु उस समय पुरंजनकी इच्छा निकलने की नहीं थी ॥ १० ॥ निदान बेवशीको निकलना ही पड़ा । उस समय भय (मृत्यु) का बड़ा भ्राता प्रज्वार (कालज्वर) आकर उपस्थित हुआ और अपने भाईके हित करनेके लिये उसने उस नगरीको भस्म कर दिया ॥ ११ ॥ जब सब परिवारसमेत वह पुरी जलकर भस्म हो गयी, तब कुटुम्बी उस कुटुम्बिनीके साथ वंशसहित अत्यन्त संताप करने लगे ॥ १२ ॥ यवनोंने सब स्थान जब घेर

गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥ तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ॥ कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥१२॥ यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ॥ पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥ गन्तुमैच्छत् ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥ शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः ॥ यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥ १५ ॥ दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥ स्वत्वावशिष्टं यत् किंचिद् गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥

लिये और कालकन्याकी पुरीको ग्रसा और प्रज्वारने पुरीको धरकर आग लगा दी, तब वह पुरपालक (सर्प) भी परिताप करने लगा ॥ १३ ॥ अत्यन्त दुःखसे थरथर कांपने लगा और जब नगरीकी रक्षा उससे न हो सकी तब उस जलती हुई आगमेंसे निकलकर भागनेकी इच्छा की, जैसे जलते हुए वृक्षकी खखोड़लमेंसे सांप निकलकर भागता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब सब अवयव उसके ढीले हो गये और सब पुरुषार्थ गंधर्वोने हर शत्रु यवनोंने पुरीको चारों ओरसे घेरा तब वह पुरंजन नेत्रोंसे आंसू बहाने लगा ॥ १५ ॥ दुहिता, पुत्र, पौत्र, बहू, जामाता, अनुचर, गृह, कोष, सब परिवार जिसमें केवल एक सत्वमात्र शेष रह गया, कि यह मेरे हैं, यह सत्यभाव हुआ ॥ १६ ॥

और उसको मोह-ममतासे अपना समझकर घरोंके भीतर कुबुद्धिसे बँधा हुआ, उस दीन पुरंजनका जब भार्यासे वियोगका समय उपस्थित हुआ तब पुरंजन मनमें विचारने लगा ॥ १७ ॥ कि जब मैं इस लोकको त्यागकर परलोकको चला जाऊँगा, तो यह अनाथा कुटुम्बिनी मेरी पत्नी अपने छोटे-छोटे बालकोंका किस प्रकार पालन-पोषण करेगी ॥१८॥ यह ऐसी शीलवती और पतिव्रता थी कि इसने आजतक विना मेरे भोजन कराये कभी भोजन नहीं किया, पहले मुझको स्नान कराकर तो पीछे आप स्नान किया और जब कभी मैंने क्रोध किया, तो थरथर काँपने लगी और सदा मेरे स्नेहमें परायण रहती थी, जो मैं ललकारता तो नीचेको शिर झुकाकर चुप साध लेती ॥ १९ ॥ जब मेरा क्रोध शांत होता,तो यह सुबोधा मुझको बोध कराती, जब मैं कभी परदेशको जाता तो यह शोककी मारी

अहंममेति स्वीकृत्य गृहेषुकुमतिर्गृही ॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥ लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी ॥ वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती ॥१८॥ न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा ॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥ १९ ॥ प्रबोधयति मामज्ञं व्युषितेः शोककर्शिता ॥ वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥ कथं नु दारका दीना दारकीर्वा परायणाः ॥ वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥ २१ ॥ एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् ॥ ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद् यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ॥ अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥ २३ ॥

आधी भी नहीं रहती थी, यह पुत्र पौत्रवती भी है और गृहस्थीके सब व्योहारोंको भी जानती है, परन्तु तो भी मुझ विना मृतकके समान हो जाती है ॥ २० ॥ हाय ! यह पराये घरकी धन पुत्री और यह अनाथ छोटे- छोटे पुत्र मुझ विना कैसे अपने दिन व्यतीत करेंगे, मैं भली-भांति जानता हूँ कि इनकी वह कुगति होगी, कि जो दुर्दशा समुद्रमें नाव टूट जानेपर नावमें बैठनेवालोंकी होती है ॥२१॥ यह अपनी कृपण बुद्धिसे इस प्रकारसे सोच करने लगा परंतु यह ऐसे कठिन शोक करनेके योग्य नहीं (परमात्माका अंश) था, उसी समय उसके पकड़नेके लिये भयनामक यवनोंका राजा आकर उपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ और पशुकी नाईं इस राजा पुरंजनको जब यवन लोग बांधकर अपने

घरकी ओर ले चले, तब उसके अनुयायी अत्यन्त व्याकुल हो शोकमें डूबे हुए हाहाकार करते उसके पीछे भागे ॥ २३ ॥ उस समय नागसे भी कुछ उपाय न बन पड़ा, तब वह भी नगरीको छोड़कर चल दिया,उसके जाते ही सब पुरी विशीर्ण होकर अपने-अपने ठिकानेको चली गयी ॥ २४ ॥ और जब बलवान् यवनोंने पुरंजनको बलात्कार पकड़ लिया और घसीटने लगे तो भी उस अज्ञानीको अपने पूर्व सुहृदका स्मरण नहीं हुआ ॥ २५ ॥ उस दयालुने यज्ञादिक सकाम कर्मोमें निर्दयी बनकर जिन-जिन पशुओंको मारा था, वह सब पशु उसके अपराधको स्मरण कर, महाक्रोधित हो कुल्हाड़ोंसे उसका शरीर छेदन करने लगे ॥ २६ ॥ और अपारतमसे स्मृति जिसकी विस्मृत हो गयी और प्रमदाके प्रसङ्गसे दूषित हो गया, ऐसे उस राजा पुरंजनने अनेक वर्ष तक पीड़ाको भोगा ॥२७॥ परन्तु मनमें उसी

पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः ॥ यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥ २४ ॥ विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥ नाविन्दत् तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥ २६ ॥ अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥ शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥ २७ ॥ तामेव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८ ॥ उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरञ्जयः ॥ ॥ २९ ॥

पुरंजनीका ध्यान बना रहा, उसी ध्यानसे वह उत्तम-स्त्री विदर्भराज सिंहके घरमें जाकर उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ इस प्रसंगसे यह जान लेना कि स्त्रीके ध्यानसे स्त्री ही होता है,धार्मिक विशुद्ध मलयध्वज नामक भागवत्के संग हुआ,उस सत्संगके कारण विष्णुभक्ति और वैराग्यके हेतु उसी पतिरूप गुरुकी पतिव्रताके धर्मसे सेवा करते-करते भगवत्की कृपासे ज्ञान प्राप्त होनेके कारण स्त्रीजन्म लेनेवाले पुरंजनकी मुक्ति हुई । इस विदर्भराजाकी पुत्री (पूर्वजन्ममें जो राजा पुरंजन था वह) का स्वयंवर हुआ, उस स्वयंवरमें ऐसा नियम किया गया था कि जिस नरेशका विक्रम अधिक हो, उसको यह कन्या दी जाय, (पण्डा अर्थात् बुद्धि पांड्य बुद्धिमान्) जो कि शत्रुओंका जीतनेवाला, और

दक्षिणदेशमें(दक्षिणदेशमें भक्ति अधिक है,इससे ज्ञात होता है कि वह परम वैष्णव था)श्रेष्ठ और पराक्रमी गिना जाता था,उस राजाने संग्राममें दूसरे शत्रुओंको पराजित कर विदर्भराजाकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया (पुरंजनको भगवद्भक्तका सत्संग हुआ) ॥२९॥ उस मलयध्वजने उस स्त्रीमें एक मनोहर कन्या श्रीकृष्ण अनुरागिनी श्यामकमलसे नेत्रवाली उत्पन्न की, फिर उस कन्याके जन्म होनेके उपरांत उस राजाके सात पुत्र और उत्पन्न हुए श्रवण, कीर्तन,स्मरण, चरणसेवन, अर्चन, वन्दन और दास्यरूप, जो कि द्रविण देशके रक्षक गिने जाते हैं ॥३०॥ हे राजन् ! इन सात पुत्रोंसे एक एकके अनेक सुत उत्पन्न हुए (श्रवण आदिक भक्तिके सात्त्विक, राजस और तामसादिक अनंत भेद हैं) जिनके वंशके (अनेक संप्रदाय) इस पृथ्वीकी मन्वन्तरसे भी कुछ अधिक कालतक रक्षा करेंगे फिर अज्ञानादिकोंसे बचायेंगे॥ ३१ ॥ पांड्य

तस्यां स जनयांचक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्त सुताम् सप्तद्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥ एकैकस्यामव-
त्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥ ३१ ॥ अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥
यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥ ३२ ॥ विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराध-
यिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥ ३३ ॥

राजाकी कन्या (कृष्णसेवा रुचि) जो कि उत्तमव्रत (शम दमादिक) धारण करनेवाली थी, उसका विवाह अगस्त्य (मन) मुनिके साथ हुआ। अगस्त्यमुनिने इस स्त्रीमें दृढच्युत नाम(वैराग्य) पुत्र उत्पन्न किया, दृढच्युतके इध्मवाह नामक पुत्र हुआ, (ब्रह्मज्ञानी गुरुकी शरणागत लेना, ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा लेनेके लिये गुरुके समीप जाना)। उस समय समिध हाथमें लेनेके लिये वेदमें आज्ञा है, इस कारण इध्म (समिध) को वाह अर्थात् उठानेका यह अर्थ है, वह गुरुकी शरणागत होनेसे सूचित करता है,वैराग्य होनेसे गुरुकी शरणागत जाना बन सकता है इसलिये वैराग्य और इध्मवाहके पिता-पुत्रका संयोग कहा और वैराग्यपिता अगस्त्य अर्थात् मन और माता कृष्णसेवारुचिको कहा, वह भी होना ही है ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वजने अपने पुत्रोंको पृथ्वीके विभाग करके पृथक्-पृथक् सबको बांट दिये (नवधा

भक्तिके श्रवणादिक नौ प्रकारके पुत्रोंको उसके अन्तर्गत बता दिये) फिर उस राजाने भगवद्भजन करनेको कुलाचल पर्वतको जानेकी भावना की ॥ ३३ ॥ मदभरे नेत्रवाली रानी वैदर्भी, गृह, पुत्र, भाजनको त्यागकर ऐसे चलने लगी, जैसे चंद्रिका चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है, ऐसे ही अपने स्वामीके पीछे दौड़ी । स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही मुख्य है, क्योंकि स्त्रियोंके तो पति ही परमेश्वर हैं ॥३४॥ वहां चन्द्रवासा, ताम्रपर्णी और वटोदका नाम बड़ी गम्भीर-गम्भीर नदियां हैं, उनके पावन (पवित्र) जलसे मज्जन कर दोनों स्त्री पुरुषोंने अपनी अन्तःकरणकी शुद्धि और देहके मलोंका विनाश किया ॥ ३५ ॥ कन्द, मूल, फल, दल, तृण व जलसे धीरे-धीरे निर्वाह

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥ ३४ ॥ तत्र चन्द्रमसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥ ३५ ॥ कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत् समदर्शनः ॥ ३७ ॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन् रतिम् ॥ ३९ ॥ स व्यापकतयाऽऽत्मानं व्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनि ॥ विद्वान् स्वप्न इवामर्षसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४० ॥

किया, फिर शरीरको कृश कर ऐसा महाकठिन तप करने लगा ॥३६॥ कि शीत, गर्मी, पवन, वर्षा, क्षुधा, प्यास, प्रिय, अप्रिय और सुख दुःख इन सबको जीत समदर्शी हो गया ॥३७॥ जब जप, तप, यम, नियमोंके करनेसे सब वासनाएँ भस्म हो गयीं, तब राजाने इन्द्रियें, पवन, अन्तःकरण, मनको जीतकर अपने आत्माको परब्रह्ममें लगाया ॥ ३८ ॥ देवताओंके सौ वर्षतक खम्भकी नाईं स्थिर होकर वह राजा एक स्थानपर खड़ा रहा और निरंतर भगवान् वासुदेवमें प्रीति रखनेसे उसको शरीरादिक अनात्म वस्तुओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ ३९ ॥ सो आत्माकी व्यापकता मान और आत्मासे भिन्न भी नहीं है यह संसारको स्वप्नसमान समझकर साक्षीसे विरा

मको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जिसका साक्षात् भगवान्‌रूप गुरुने भली प्रकार वेदमें विचार किया है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानदीपकके चारों ओर प्रकाश होनेसे विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति हो गयी, तब जाना कि जो अनन्त ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ और जो मैं हूँ वह ब्रह्म है, यह तत्त्वज्ञान महात्मापुरुषोंने यथार्थ वर्णन किया है ॥४१॥ परब्रह्ममें तो सब प्राणियोंको माना और परब्रह्मको सब प्राणियोंमें जाना, इस दृष्टिसे सब विश्वको देखकर अपने शरीरका त्याग किया ॥ ४२ ॥ विदर्भराजाकी पुत्री जो महाश्रेष्ठ पतिव्रता थी, वह सब सुख भोग त्यागकर ब्रह्मज्ञानी पतिको देवता समान मान मलयध्वजकी प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी ॥४३॥ और नियम, धर्म, व्रतोंके करनेसे वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी, बालोंकी लटायें बँध गयीं और बल्कल वसन पहने ऐसी दिखायी देती थी, मानो धूमरहित अग्निकी

साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ॥ विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥ परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथाऽऽत्मनि ॥ वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२ ॥ पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥ ४३ ॥ चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥ बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ॥ ४४ ॥ अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत ॥ ४५ ॥ यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ॥ आसीत् संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥ ४६ ॥ आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाऽश्रुभिः ॥ स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥ ४७ ॥

शिखा अग्निके शांत होनेपर आपसे आप शांत और शीतल हो जाती है, ऐसे वह शीलवती भी अपने पतिके निकट रहनेसे शांतस्वरूप हो गयी थी ॥ ४४ ॥ और इसने अपने प्रियतमके मरनेका कुछ ध्यान नहीं किया, जैसे नित्यप्रति पतिकी पूजा किया करती थी उसी प्रकार स्थिर हो आसनपर बैठकर अपने पतिकी सेवा करने लगी ॥ ४५ ॥ जब पतिकी सेवा करते-करते चरणारविन्दोंका स्पर्श किया तो पद गरम नहीं जान पड़े, तब तो संविग्न हृदय हो ऐसी शोकाकुल हुई जैसे पतिसे बिछुड़कर मृगी शोकसागरमें डूब जाती है ॥ ४६ ॥ वह अनाथिनी अबला अपने आत्माका सोचकर अश्रुधारासे स्तनोंको

सींच अत्यन्तव्याकुल हो, उस महागम्भीर वनमें उच्चस्वरसे रो-रोकर विलाप करने लगी ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे ! हे प्रियतम ! ! हे भयहरण ! ! ! उठो, उठो यह दीन पृथ्वी चोर और अधम क्षत्रियोंके भयसे व्याकुल हो रही है, इस दीन दुखियाकी रक्षा कौन करेगा ? विना आपके इस कार्यका करनेवाला मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥ ४८ ॥ इसलिये आप समुद्र पर्यन्त इस वसुधाकी रक्षा करो, ऐसे विलाप कर करके वह अनाथिनी बाला वनमें पतिका अनुसरण कर फिर अपने स्वामीके चरणोंमें शिर धरकर अश्रुधारा बहाने लगी ॥ ४९ ॥ फिर उसने मनमें धैर्य धारण कर काष्ठ बटोर चिता रचकर उसपर पतिका देह धर अग्नि लगाकर आप भी उस चितामें बैठनेको

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् ॥ दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥ ४८ ॥ एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ॥ पतिता पादयोर्भर्तू रुदन्त्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥ चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥ आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥ ५० ॥ तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥

प्रस्तुत हुई ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! उसी समय इसका प्राचीन सखा(ईश्वर) जो कि परमज्ञानी था; वह विप्ररूप धरकर वहां आया और मनोहर वाणीसे धैर्य देकर उस रोती हुई वैदर्भीसे यह वचन कहा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण बोला कि तू कौन है ? और किसकी कन्या है ? और यह चितामें जो सो रहा है यह कौन है ? जिसके सोचमें तू मग्नहो रही है; और तू मुझको भी जानती है कि नहीं मैं तेरा प्राचीन सखा हूँ और सृष्टिके समय मुझमें स्थित होकर तूने मेरे संग अनेक प्रकारके सुखविहार किये थे ॥ ५२ ॥

१. शंका—जब पुरंजन स्त्री बनकर अपने पतिके संग भस्म होनेके लिये चितामें बैठनेको उपस्थित हुआ तब भगवान्ने ब्राह्मणका रूप धरकर ज्ञानसे जीव स्त्री हो गया था उसको सब हाल बतलाने लगे परन्तु प्रथम ज्ञान क्यों नहीं दिया कि ऐसा जीव दुःख पाता है, यह सन्देह है ?

उत्तर—प्रथम स्त्रीरूप पुरंजन अपने अभिमानसे बड़ा उन्मत्त हो रहा था। भगवान्ने ज्ञान दिया, वह सुन लिया परन्तु स्मरण नहीं रक्खा, जब अभिमान नष्ट होता है तो जीव ज्ञान सीखता है, मानवालेको ज्ञान कहां ? भगवान्ने जीवरूपस्त्रीको बड़ा अभिमानी जानकर पहले वारंवार ज्ञान नहीं कहा, जब मान नष्ट हो गया तब कहते ही जीवने ईश्वरको मान लिया।

हे सखे आप मुझको जानते होंगे परन्तु इतना तो मुझको ध्यान आता है कि मेरा एक अविज्ञात नामक सखा था(परमात्मा)और मुझको त्याग भूमिकी इच्छासे विषयवासना भोगनेके लिये आश्रमके खोजनेको गया था ॥ ५३ ॥ हे आर्य ! हम तुम तो दोनों मानसरोवर (हृदय) वासी हंस (शुद्ध) हैं, अतः हम और आप दोनों मित्र सहस्रों वर्षोंतक विना ही स्थान रहे थे (महाप्रलय हुआ उस समय तक) जीव तुम हो ईश्वर मैं हूँ ॥ ५४ ॥ हे बन्धो ! उस समय विषयोंमें आपकी बुद्धि थी;अतः मुझको त्यागकर विषयके सुखकी कामनासे तुम पृथ्वीमें गये और किसी स्त्री (माया) की रची हुई पुरी तुम्हारे देखनेमें आयी, उसमें तुम विचरने लगे, ऐसे पृथ्वी पर मैंने तुमको देखा; अब उस पुरीका वर्णन आपसे करते हैं॥५५॥उस पुरीमें पांच तो उपवन थे और नवद्वार थे, एक उस पुरीका रक्षक था, तीन कोट

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥ हित्वा मां पदमन्विच्छन्न भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥५४॥ स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन् पुरमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५ ॥ पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥ षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६॥ पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥५७॥ विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥

थे, छः वणिक थे,पांच हाटें थीं और पांच ही मूलकारण थे और एक स्त्री वहांकी स्वामिनी थी ऐसी वह पुरी थी॥५६॥हे प्रभो ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह तो पांच उपवन समझो, देहमें जो प्राणरूप नव छिद्र हैं, उन्हींको नवद्वार समझो,एक जो प्राण है, वही पुरीका रक्षक समझो; पृथ्वी, तेज, जल यही तीनों दुर्ग समझो; श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञानेंद्रिय और छठा मन, इन छहोंको वणिक समझो॥५७॥कर, पद, वाणी, शिश्न, गुदा इन्हीं पांच कर्मेंद्रियोंको हाटें समझो; क्षिति,जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतोंको मूलकारण समझो और बुद्धिको स्वामिनी समझो, उसका पति जो वह आत्मा है, अपनी भार्याके विवश होनेसे अपने निज स्वरूपको

भूल जाता है ॥५८॥ उस पुरीमें क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होता है, जिसका नाश कभी नहीं होता वह भूत प्रकृति है और इसमें जो पुरुष है, वह शक्तिका अधीश है, वही उस पुरीमें वास करता है, परन्तु जाना नहीं जाता है, ज्ञात हुआ कि आप उस पुरीमें जाकर उस स्वामिनीके दास बने और उसके संग रमण करने लगे, इस कारण तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं रही, हे प्रभो ! उसी कुसंगसे इस पापीय दशाको आप प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ न तो तुम विदर्भराजाकी पुत्री हो और न यह राजा पांड्य तुम्हारा स्वामी है, न पुरञ्जनीके तुम पति हो, केवल उस नौ द्वारवाली पुरीमें मोहके वशीभूत होकर रुक रहे हो ॥ ६० ॥ यह सब माया मेरी ही रची हुई है, जो तुम पूर्व जन्ममें अपने लिये पुरुष मानते थे और अब अपने लिये सती स्त्री मानते हो, यह यथार्थमें दोनों बातें वृथा हैं, यह माया तो मेरी ही रची

तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥५९॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत् तव ॥ न पतिस्त्वं पुरञ्जन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत् पुमांसं स्त्रियं सतीम् ॥ मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः ॥ न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥ ६२ ॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥ ६३ ॥

हुई है,हम तुम तो दोनों शुद्ध हंस हैं,अब मैं अपना सत्यस्वरूप वर्णन करता हूँ,उसे कान लगाकर सुनो और मेरी गति देखो॥६१॥हे जीव ! हम तुम दोनों एक ही हैं, जो तू है, वह मैं हूँ,इस बातको ज्ञानरूपी नेत्रोंसे विचार कर देख ले, भिन्न नहीं हैं। जो पंडित हैं, वे कभी हमारे तुम्हारे बीचमें भेद नहीं समझते ॥६२॥ तो अल्पज्ञ सर्वभेद कैसे मानते हैं ? उसका उत्तर यह है कि जैसे एक देहका प्रतिबिम्ब आदर्शमें देखा जाय तो दीर्घ,विमल और स्थिर दिखायी देता है, उसी प्रतिबिम्बको कोई दूसरे दर्पणमें अपनी ही आंखसे देखे तो लघु, मलिन और चञ्चल दृष्टि आता है,उसमें दर्प्पणके छोटे-बड़े होनेका भेद है,प्रतिबिम्बका भेद नहीं,इसी प्रकार दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिके

विकारका भेद है, परन्तु वास्तवमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार उस मानसहंस जीवको उस मानससरोवरवासी हंस ईश्वरने ज्ञान दरशाया, तब इसने अपने स्वरूपमें स्थित होकर ध्यान किया तो ध्यानके करते ही उसको वह स्मृति हुई कि मैं ब्रह्म हूँ और ईश्वरके वियोगकी बुद्धिरूप स्मृति जो नष्ट हो गयी थी वह फिर प्राप्त हो गयी ॥ ६४ ॥ दोहा—बहु दिनकी भूली सुरति, तुरत गई तेहि आय । शोक और संताप सब,क्षणमें दियो विहाय ॥ हे प्राचीनबर्हिष्मन् ! मैं तेरे आगे साक्षात् आत्मज्ञानकी कथा कहता तो कभी तू नहीं समझता और न तेरे ध्यानमें आता, इसलिये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करके हमने तुझे दिखाया परोक्ष उसको कहते हैं, जो

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥ स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥ बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥६५॥ इति श्रीभाग० महा० चतुर्थ० पुरं० स्त्रीचिन्तया स्त्रीत्वमाप्तस्य पुरञ्जनस्य दैवेन मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥ कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥

नेत्रोंसे देखनेमें न आये और परोक्ष रीतिसे वर्णन करनेका यह अभिप्राय है कि भगवान् विश्वपालक इस इतिहासके विचारनेसे चित्तमें प्रकट हो जाते हैं * ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वप्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ उनतिसवें अध्यायमें, करूं स्पष्ट परोक्ष । नारिसङ्गसे नरक है, हरि प्रसंगसे मोक्ष ॥ प्राचीनबर्हि नृप बोले कि, हे भगवन् ! आपका वचन मेरी समझमें अच्छी रीतिसे नहीं आया, क्योंकि ऐसी महा

---

* भजन—जाको तू नरतन मानत, यह आपरूप भगवान् है । अहंकारने जबसे घेरो, कहन लगो मेरो और तेरो । भूल गये निजरूप अनेरी, तू सर्वज्ञ सुजान है ॥ १ ॥ भली बुरी करनी जब करि है, बन्धनमें सबही तो परि है निष्क्रियको कछु नाहीं डर है, तोको कर्मकी आन है ॥ २ ॥ मैं हूं देह है मेरी, केवल यह भूल है तेरी । पंचतत्वकी यह तो ढेरी, जान क्यों भया अजान है ॥ ३ ॥ सत्चित आनंद भाव सांवरो, पंचकोशते हो जा न्यारो । नामरूप कछु नाहि निहारो, येही निर्मल ज्ञान है ॥ ४ ॥

कठिनार्थ वार्ताको तो वे समझ सकते हैं; जो वेदान्ती, आत्मज्ञानी, कविजन हैं और मैं तो केवल कर्मकाण्डमें मोहित हो रहा हूँ,ऐसी गूढ़ बातोंको मैं कैसे समझूं, इसलिये मुझको फिरसे समझाकर कहो ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि जिसको मैंने राजा पुरंजन कहा है, उसको जीव समझना चाहिये, क्योंकि जीव अदृष्टरूप द्वारसे अपने आत्माके पुरोंको प्रकट करता है कि जिन जीवोंमें कितने तो एक-एक पगवाले होते हैं, कितने दो पांवके होते हैं, कोई तीन चरणवाले, कोई चार चरणवाले, कोई अनेक पगवाले होते हैं और कोई विना ही चरणके होते हैं

नारद उवाच ॥ पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद्यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥ यदा जिघृक्षुः पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥ ५ ॥ सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥ सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ और अविज्ञात नामक जो जीवका सखा कहा उसको ईश्वर समझना चाहिये, वह ईश्वर नाम, क्रिया, गुणोंसे किसीके जाननेमें नहीं आ सकता ॥३॥ जब सम्पूर्णतासे पुरुष प्रकृतिके भोगनेकी इच्छा करता है तब उस शरीरमेंसे नव छिद्र, दो हाथ, दो पांववाले नर देहको उसने बहुत उत्तम मानकर वास किया ॥४॥ और जिसको मैंने पुरंजनी कहा वह बुद्धि है,जिसके सम्बन्धसे जीव 'मैं' और 'मेरा' कहने लगता है और इस देहमें जीव बुद्धिके आश्रित होकर इंद्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता है ॥ ५ ॥ उस पुरंजनीके जो दश (१०)

---

१. शंका—नारदमुनि सबके हृदयकी बात जाननेवाले थे, और प्राचीनर्वाहि राजाको अत्यन्त मूर्ख समझ लिया था, तो फिर गूढ़ ज्ञान के वचन राजासे क्यों कहे, क्योंकि गूढ़ार्थको चतुरप्राणी समझते हैं मूर्ख लोग कभी नहीं समझते ।

उत्तर—नारदजीने पहले ही प्राचीनर्वाहि राजाका ज्ञानसे कच्चा हृदय जानकर और श्रेष्ठकर्मोंसे हीन समझकर उन्मत्त, कामी क्रोधी जान राजाके ऊपर अनुग्रह करके एक क्षणमात्रमें प्राचीनर्वाहिको परमज्ञानी बनाकर फिर महागूढ़ार्थ वचन राजासे कहे।

सखा कहे, वे इन्द्रियां हैं, जिनमेंसे किसी-किसी इंद्रियसे विषयका ज्ञान होता है और किसी-किसी इन्द्रियसे केवल कर्म ही होता है, इसमें जो पुरंजनीकी सहेलियां कही हैं वे इंद्रियकी वृत्तियां हैं, और पांच शिरका सर्प जो हमने कहा, वह पंचवृत्तिरूप प्राण है (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) ॥ ६ ॥ जिसको मैंने महाबलशाली सेनापति कहा वह मन है, वह मन ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय, दोनोंका नायक है और पांचालदेश जो कहा वह पांच इंद्रियोंके विषय हैं, जिसमें नव द्वारका पुर है ॥७॥ जिसमें दो नेत्र, दो नासिका, दो श्रवण, एक मुख, एकलिंग, एक गुदा, यह नव द्वार हैं, इन नव द्वारोंसे जीव इंद्रियोंको अपने साथ लेकर बाहर आता है ॥८॥ दो नेत्र, दो नासिका और एक मुख, यह पांच तो पूर्वके द्वार हैं, दक्षिण कान, दक्षिणकी ओरका द्वार और वाम कान उत्तरका द्वार है ॥ ९ ॥ पश्चिमकी ओर

बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ॥ पञ्चालाः पञ्च विषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥ ७ ॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥ द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥८॥ अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥ पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताऽऽविर्मुखी चात्र नेत्रे चैकत्र निर्मिते ॥ रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ १० ॥ नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्याऽऽस्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥ ११ ॥ आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ १२ ॥

नीचेको दो द्वार एक गुदा, और एक शिश्न इस शरीरमें हैं। खद्योत और आविर्मुखी नाम जो कहे, वह दोनों समासम एक सूधमें निर्माण किये हैं, इनको नेत्र समझना ॥ १० ॥ इन्हीं द्वारोंसे जीवात्मा चक्षु इन्द्रियकी सहायतासे विभ्राजित नाम देशोंमें जाकर रूपको देखता है और नलिनी नालिनी नाम जो दो द्वार कहे वह नासिका है और सौरभ देश जो कहा वह गन्ध है जिससे सुगंध ज्ञान होता है नाक, मुख दोनोंको कम्पायमान करनेवाली व्यवहारकारी वाणी रस ज्ञानी यहां रस आपण व्यवहार है, विचित्र अन्न बिहूपन है, वाणी और रसना यह दोनों परममित्र हैं, बोलना उसका धर्म है और भोजनका निवारण करनेवाला है,पितरोंको बुलानेवाला दाहिना कान

है और देवताओंको बुलानेवाला बांया कान है, ॥११॥१२॥ दक्षिण पांचालदेश प्रवृत्तिमार्गका शास्त्र है और उत्तर पांचालदेश निवृत्तिमार्गका शास्त्र है पितृयान और देवयान शास्त्र सुन, जैसे पितृलोग और देव लोकका वास होता है ॥ १३ ॥ आसुरी नाम जो पश्चिमद्वार कहा, वह शिश्न है, वह नीचेका द्वार है, जिससे मैथुन करते हैं; वह मैथुन करनेवाले ग्रामक लोग हैं दुर्मदमित्र जो उपस्थ इंद्रिय है और निर्ऋति गुदाका देवता है, ॥ १४ ॥ लुब्धक जो कहा, वह पायु इंद्रिय है और वैशसदेश वह नरक है, लुब्ध जो अन्धी इन्द्रिय है, वह मैं कहता हूँ अन्धद्वार हाथ पांव दो हैं जिनसे यह पुरुष कर्म करता है और चलता है, ॥ १५ ॥ जो अन्तःपुर कहा वह हृदय है और उसमें जो द्रष्टा कहा वह मन है जिसके सत्त्व, रज और तम से हृदयमें प्रमाद, हर्ष, मोह उत्पन्न होता है और

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्तधराद् व्रजेत् ॥ १३ ॥ आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥ १४ ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ॥ हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥ १५ ॥ अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ॥ तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥ १६ ॥ यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ तथा तथोपद्रष्टाऽऽत्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥ देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयो गतिः ॥ द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥ १८ ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ॥ पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥

जीवात्मा सब जानता है, तो भी बुद्धिके उन-उन गुणोंकरके गुणोंसे युक्त होकर दर्शन स्पर्शन आदिक जो-जो कार्य बुद्धि करती है, उन सब कर्मोंको अपना कर्तव्य मानता है और स्वप्नमें उसीके अनुसार विकारको प्राप्त होता है, अथवा जागनेपर भी उसी प्रकार इन्द्रियोंको बदलता रहता है ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ कभी विकारी होता है, कभी उसी प्रकार जो उपद्रष्टा जीव है वह उन वृत्तियोंको करता रहता है। रथ जो कहा वह स्वप्न अवस्थाका देह है इंद्रियरूप घोड़े जिसमें जुत रहे हैं, रथकी उग्रगति जो कही वह संवत्सरका वेग है, जो किसी समय नहीं रुकता और दो पहिये जो कहे वह पुण्य और पाप हैं, तीन ध्वजा जो कही वे सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं, पांच बंधन जो कहे वह पांच प्राण हैं, ॥ १८ ॥ रस्सी जो कही वह मन है, सारथी जो कहा वह बुद्धि है, बैठनेका स्थान जो कहा वह हृदय है, जुआ

जो कहा वह सुख-दुःख आदि द्वंद्व हैं सामान जो कहा वह पांच विषय हैं, यवनिका जो कही वह सप्तधातु हैं, ॥ १९ ॥ आकूति जो कही वह प्राणोंकी शक्ति है, रथका पराक्रम जो कहा वह मृगतृष्णाका दौड़ना है उसके संग सेना जो कही वह एकादश इंद्रियाँ हैं और जो आखेट कहा वह पंच ज्ञानेंद्रियोंका आनंद देनेवाला है और चंडवेग गंधर्व जो कहा वह महाप्रचंड वेगवाला संवत्सर है,जिससे काल उपलक्षित होता है ॥ २० ॥ तीन सौ साठ जो गंधर्व कहे, वह संवत्सरके दिन हैं और तीन सौ साठ ही सांवली और गोरी जो उनकी स्त्रियां कहीं, वह कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके वर्षभरकी रात्रि तथा दिन हैं और ये दिन रात व्यतीत होके आयुका क्षय करतीं हैं ॥ २१ ॥ कालकी सुता

आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥ संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २० ॥ तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥ हरन्त्यायुः परिक्रांत्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ॥ स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥ २२ ॥ आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥ २३ ॥ एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २४ ॥ प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २५ ॥

जिसका कोई भी सम्मान नहीं करता है, वह जगत्में वृद्धा अवस्था है, उस मृत्युको लोगोंका क्षय करनेके लिये यवनेश्वरने अपनी बहिन बनाया ॥ २२ ॥ उस मृत्युके चारों ओर घूमनेवाले सैनिक जो कहे वह आधि-व्याधि उस यवनकी सेनाके वीर हैं और जो प्रज्वार कहा वह शीतोष्ण दो प्रकारका ज्वर समझना;जो मृत्युका भ्राता है और सब प्राणियोंको पीड़ा देनेमें महाप्रचण्ड जिसका वेग है,वह प्रज्वार नामक अनेक प्रकारका ज्वर है ॥२३॥ ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके आध्यात्मिकादिक त्रयताप क्लिश्यमान शरीरमें शरीर ही तमोगुणमें होकर ज्ञानी स्वयं निर्गुण होनेपर भी अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता है ॥२४॥ प्राण इंद्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चय करके निर्गुण जीव विषयोंकी

तृष्णाके लवमात्र सुखका ध्यान कर सो जाता है और मम, अहं यह कर्म करता है॥२५॥ स्वयं परमात्मारूप होनेपर भी यह जीवात्मा जो कि परमात्मा परमगुरु वासुदेव भगवान् हैं उनको जानकर भी अविद्याकी प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त हो जाता है॥ २६ ॥ तब गुणोंका अभिमानी जीव परमवश होकर सात्त्विक, राजस, तामस कर्म किया करता है और उन कर्मोंके करनेसे महाकष्टदायक लोकोंमें जाता है और उन्हीं कर्मोंके अनुसार वारंवार संसारमें जन्म लेता है ॥२७॥ सात्त्विक कर्म करनेसे महाप्रकाशवान् लोकोंमें जाकर उत्तमकुलमें जन्म पाता है। राजस कर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें परिश्रमसे पूरित मध्यम वंशमें जन्म लेता है और तामसकर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें अज्ञान और क्लेशकारी लोगोंके घरमें उत्पन्न होता है ॥२८॥ यह महा अधम जीवात्मा अपने कर्मोंके गुणानुसार कभी पुरुष, कभी

यदाऽऽत्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥ २६ ॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥ शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथा कर्माभिजायते ॥ २७ ॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमश्शोकोत्कटान्कचित् ॥ २८ ॥ कचित्पुमान्क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयम-न्धधीः ॥ देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥२९॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥ चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥ ३० ॥ तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ॥ तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥

स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षीका जन्म धारण करता रहता है ॥२९॥ जैसे भूखा श्वान दीन होकर घर-घरमें भटकता फिरता है, कहीं तो अच्छेसे अच्छा भोजन खाता है और कहीं मार खाता है, अपने भाग्यके अनुसार भोग भोगता है ॥३०॥ ऐसे ही कामासक्त हृदयवाला जीव, स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें ऊंच-नीच जातिमें भ्रमण करता हुआ प्रारब्धानुसार सुख-दुःख पाता रहता है ॥३१॥ कष्टके दूर करनेका सच्चा उपाय तो संपूर्ण है ही नहीं और जो किया भी जाय तो भी दैवसे, भूतसे, आत्मा हेतुसे किसी रीतिसे भी जीवका वियोग नहीं हो सकता ॥३२॥ जैसे बहुत बोझके भारको मनुष्य शिरपर धरकर चलता है, जब शिर दुखने

लगता है तब उस भारको कंधेपर धर लेता है परंतु वह सब भार शरीरपर ही है, ऐसे ही दुःख दूर करनेके जो उपाय हैं, वे भी दुःखरूप ही हैं, इसलिये यह प्राणी दुःखसे कभी छूट नहीं सकता ॥ ३३ ॥ दुःखके जड़भूत तो कर्म ही ठहरे, वे कर्म और कर्म करनेसे कभी नहीं छूट सकते, क्योंकि कर्म केवल ज्ञान रहित और वासना सहित हैं; इसलिये जैसे अपने दूसरे कर्मको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं कर सकता जैसे एक स्वप्नमें दूसरा स्वप्न दीखता है, तो वह पहला स्वप्न दूसरे स्वप्नको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं कर सकता, इसी प्रकार एक कर्म और उसका दूर करनेवाला दूसरा कर्म यह दोनों अज्ञानजन्य होनेके कारण एकरूप होनेसे उसमेंका एक कर्म दूसरे कर्मको दूर नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥ यद्यपि स्वप्न झूठा है, तो मी उपाधिरूप मनकी जबतक स्वप्नावस्था रहती है, तबतक वह उपाधि मिट नहीं सकती, ऐसे यह

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३५ ॥ अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥ ३६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥ सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्याद-धीयतः ॥ ३८ ॥ यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ३९ ॥

संसार सम्पूर्ण मिथ्या है, तो मी चित्तमें जबतक विषयोंका ध्यान बना रहता है, तबतक वह किसी रीतिसे मिट नहीं सकता ॥ ३५ ॥ इसलिये अज्ञान जो महाबलवान् है, जिसके हेतु परमपुरुषार्थ रूप आत्मा अखंड प्रवाहरूप संसार हुआ है, उस अज्ञानका विध्वंस परम-गुरुरूप भगवान्‌की भक्तिसे ही हो सकता है॥३६॥वासुदेव भगवान्‌में अत्यन्त प्रीतिसे दृढ़ मक्ति योग किया जाय तो उससे ज्ञान और वैराग्य दोनों उत्पन्न होते हैं॥३७॥ हे राजर्षे ! भक्तियोगका मुख्य कारण केवल अच्युत भगवान्‌की कथा है, इसलिये जो पुरुष श्रद्धासहित भगवान् वासुदेवकी कथा सुनते हैं और निरंतर अपने चित्तमें ध्यान करते हैं,उनको स्वल्पकालमें मक्ति योग प्राप्त हो जाता है॥३८॥हे राजन्! भगव-

क्त,निर्मल अंतःकरणवाले साधु भगवत्के गुणानुवाद श्रवण व कीर्तनमें जिनका चित्त लग रहा है, ऐसे ॥३९॥ महात्मा सज्जन पुरुष जहां होते हैं, वहां मधुदैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरित्रामृतकी नदियाँ सब ओर बहती रहती हैं। हे राजन्! इन सुधारूप नदियोंका जल जो पुरुष छल छिद्ररहित होकर सावधानतासे श्रवणद्वारा पान करते हैं और तृप्त नहीं होते, उन भक्तजनोंको क्षुधा, पिपासा, भय,शोक,मोह कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता ॥४०॥ विना सत्संगके यह जीव सदा दुःखी रहता है, यह बातें सब स्वभावसे होती हैं; स्वाभाविक क्षुधा तृषादिक उपद्रवोंसे आलसी पुरुषोंके लिये हरिकथामृतरसकी प्राप्ति होनी महाकठिन है और अहंकारी पुरुष भगवान् वासुदेवकी कथारूप अमृतके सागरमें पहुँचकर भी प्रेमरूपी सुधाका पान नहीं कर सकता ॥ ४१ ॥ प्रजापतियोंके पति

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ॥ ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृश-न्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥ ४० ॥ एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥ न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥ ४१ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः ॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥ अद्यापि वाचस्पत-यस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥ पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ॥ मन्त्रलिंगैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥ ४५ ॥ यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥ स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ ४६ ॥

साक्षात् ब्रह्माजी, भगवान् शिवजी, मनु, दक्षादिक प्रजापति,सनकसनंदनादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥४२॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं भगवत्कथामें जो कि ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ अबतक वेदवाणियोंके वक्ता, तप, विद्या, समाधि करके सबके देखनेवाले परमेश्वरको देख रहे हैं तो भी उसको जान नहीं सकते हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि वेदका विस्तार और उनकी महिमा अपरम्पार है और कोई अर्थोंका भी पार नहीं पाता,इसलिये वेदवादी जो महात्मा पुरुष हैं, वे वेदके मन्त्रोंमें कहे हुए चिह्नवाले इंद्रादिक देवताओंकी कर्मके आग्रह सहित भक्ति करते हैं; उनको भी परब्रह्म परमात्माका ज्ञान होना महाकठिन है ॥ ४५ ॥ इस लिये हृदयमें चिन्तन करनेसे जिस

समय भगवान् आत्मासे भावित जिसपर अनुग्रह करते हैं, तब वह पुरुष जगत्के व्यवहार और कर्मकाण्डको त्याग वेदमार्गमें लग जाता है ॥ ४६ ॥ हे प्राचीनबर्हिष्मन् ! इसलिये यज्ञादिक सकाम कर्म अज्ञानसे सत्यके समान प्रतीत होते हैं और उनके फलादेश सुननेसे कानोंको प्रिय लगते हैं, ऐसे कर्ममें परमार्थ दृष्टि मत करो, वे कर्म केवल श्रोत्रइंद्रियस्पर्शी हैं; सिद्धान्त वस्तुके स्पर्श करनेवाले ये कर्म नहीं हैं ४७ ॥ वे लोग अपने लोकको नहीं जानते, जहां भगवान् जनार्दन देव विराजमान हैं । धूम्रसमान बुद्धिवाले लोग कहते हैं कि वेदका तात्पर्य केवल कर्मोंपर है, वे मूर्ख वेदके तात्पर्यको न जानकर अकर्मवेदको सकर्म करते हैं ॥ ४८ ॥ तुझको किंचिन्मात्र अभिज्ञान नहीं, क्योंकि पूर्वकी ओर जिनके अग्रभागवाले कुशाओंको बिछाकर समस्त भूमण्डलपर अनेक यज्ञ किये और महाभिमानी

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्न ज्ञानादर्थकाशिषु ॥ माऽर्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥४७॥ स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ॥ आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४८ ॥ आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम् ॥ स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥ ४९ ॥ हरिर्देहभृतामात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः ॥ तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥ ५० ॥ स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५१ ॥

बन अनेक पशुओंका वध किया और तू ऐसा मूर्ख बन गया कि यथार्थ कर्म और सत्यधर्मको नहीं जाना,इसी लिये भगवान् तुझसे प्रसन्न नहीं हुए,जिस कर्मसे भगवान् प्रसन्न हों,वही सत्यकर्म है और जिससे परमात्मामें मन लगे, वही सत्यविद्या है,वही वर्ण उत्तम है, वही कुल श्रेष्ठ है, वही आश्रम शुभ है जिसमें भगवत्भक्त होते हैं॥ ४९ ॥ नारायण ही सब देहधारियोंके आत्मा हैं, आप ही प्रकृतिके ईश्वर हैं,इसलिये उन्हींके चरणकमलकी शरणागति लेनेसे पुरुषोंको अनेक प्रकारके मङ्गल और सिद्धियां होती हैं॥ ५० ॥ वे भगवान् सबके प्रियतम आत्मा हैं और उनकी भक्तिमें किसी प्रकारका अणुमात्र भी भय नहीं होता, जो लोग इस प्रकार परमेश्वरको जानते हैं, वे ही जगत्में

विद्वान् हैं और जो पुरुष विद्वान हैं वे ही गुरु हैं, वे ही भगवान् हैं ॥५१॥ नारदजी बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! तूने मेरे कहे हुए इतिहासका जो स्पष्टार्थ पूछा वह मैंने भिन्न-भिन्न कर तुझसे कहा, अब मैं वह गुह्य सुन्दर वार्ता तुझसे कहता हूँ जो इस विषयमें पूर्ण निश्चय की हुई है, तुम मन लगाकर सुनो ॥५२॥ "एक और प्रकारसे जीवका वर्णन करते हैं सो सुनो" तुच्छ पदार्थका चरनेवाला मृग पुष्पोद्यान (स्त्री) के साथ उसीमें मतवाला हो रहा है, और भ्रमरगणोंके गानेसे उसके कान लुभा रहे हैं; सम्मुख भेड़ियेके समान दिन, पक्ष, मासादिक कालके विभाग तेरी आयुके भक्षणके लिये उपस्थित हैं और तू उनको कुछ नहीं समझता और बैठा आहार विहार कर रहा है और पीछे व्याधरूप काल धनुषबाण लिये तेरे हृदयको वेधन करनेके लिये बैठा है, अब तुझको अपने आत्माका विचार करना चाहिये॥५३॥पुष्पोंके

नारद उवाच ॥ प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभः ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ क्षुद्रंचरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगयलुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५३ ॥ (दण्डकम्) सुमनस्सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्वयौपस्थ्यादि विचिन्वंन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥

समान जिनके धर्म,ऐसी स्त्रियोंके शरणरूप पुष्पवाटिकामें पुष्पोंकी मधुगन्धके सदृश अत्यन्त तुच्छ जो काम कर्मके फलसे उत्पन्न जो कामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषयभोगादिको ढूंढ़ें, स्त्री-पुरुष दोनों उन विषयोंपर मन लगाकर, भ्रमरगणके सुन्दर गीतकी नांई अतिमनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यन्त लोभित जिसका मन, कर्ण ऐसा यह जीव आगे भेड़ियोंके यूथवत् आपकी आयु हरनेवाले, दिनरात कालके लव विषे उनको कुछ न समझकर घरमें विचरे, विहार करे,पीठकी ओरसे नहीं दीख पड़े, ऐसे प्रवृत्त एक वधिकरूप यम धर्मराज वह हृदयमें बाणसे जीवका भेदन करता है, ऐसे उस आत्मा जीवको हे राजन् ! उसका हृदय भिन्न

हुआ ऐसे देखनेको तुम योग्य हो ॥ ५४ ॥ तुम इस प्रकार अपनी चेष्टा उस मृगके सदृश विचारो और इस बातका विचार करके अपने मनको हृदयमें आकर्षित कर और सब बहिर्वृत्तियोंका रोध करो, परन्तु इस गृहस्थाश्रमको त्यागकर जिसमें नीच कामी पुरुषोंके यूथकी बातें हैं और जो कि भगवान् प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उनको प्रसन्न करो, इस प्रकार अनुक्रम करके सबसे विराम कर ॥५५॥ प्राचीनबर्हि बोले कि हे ब्रह्मन् ! हे नारदजी ! जो आपने कहा, वह मैंने सुना और विचारा परंतु उस बातको यह उपाध्याय जो मुझको कर्मका उपदेश करते हैं, क्या वे नहीं जानते थे। और जो जानते थे तो मुझसे क्यों नहीं कहा ! ॥ ५६ ॥ हे नारद ! इन विषयरूपाध्यासोंमें जो असंभावना रूप है, (मैं ईश्वर हूँ वा नहीं) यह मेरे मनमें बड़ा भारी संशय था, वह आपके अनुग्रहसे सब कट गया, इसी प्रकारका एक

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥ जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरमक्रमेण ॥ ५५ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥ नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥ ५६ ॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥ ५७ ॥ कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ५८ ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥ कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ५९ ॥

दूसरा संदेह और है, जहां इंद्रियोंकी वृत्ति नहीं जा सकती है और ऋषिलोग भी उसमें मोहित हो जाते हैं, वहां और दूसरेकी क्या सामर्थ्य है ? ॥ ५७ ॥ जिस देहसे पुरुष इस जगत्में कर्मोंको करता है, और देहको यहां छोड़कर परलोकको चला जाता है और वहां जाकर दूसरे शरीरसे इन कर्मोंके फलोंको भोगता है, वह मुझको यह सन्देह है कि इस देहसे किये हुए कर्म दूसरे देहसे किस प्रकार भोगे जाते हैं ? ॥५८॥ यह बात वेदवादी लोग सदा कहा करते हैं और आप भी पहले कह चुके हो, कि पुरंजनने जो-जो कर्म किये थे, उनका फल मरनेके पश्चात् उसको अगले जन्ममें मिला, वह आपका कहना सत्य है, परंतु इसमें मुझको बड़ा संशय है, क्योंकि कर्म करनेवालेको कर्मका फल मिलना चाहिये, परंतु दूसरे शरीरके किये कर्मोंके भोगको दूसरा शरीर भोगे यह कहना आपका किसी प्रकार संभव नहीं, जो शरीर

कर्मोको करे उसी शरीरको उसका फल मिलना चाहिये और जिस शरीरने कर्म किये ही नहीं, उसको उसका फल मिलना यह महाअन्याय है और धर्मके विरुद्ध है, फिर मुझे एक संशय और बड़ा भारी है, कि पुरुष वेदविरुद्ध जो कर्म करता है वह तो किंचित् कालमें ही अदृश्य हो जाता है, जैसे कोई अग्निमें हवन करे और वहां जितनी देरतक हवन करता रहेगा, वह उतनी ही देर तक दृष्टि आता रहता है और हवन होनेके पश्चात् वह थोड़े ही कालमें अदृष्ट हो जाता है। जो कर्म छिप गया, अथवा नष्ट हो गया, उसका फल परलोकमें मिले यह बात किसी प्रकारसे मेरी समझमें नहीं आती, फिर संदेह किस प्रकारसे शमन हो सकता है ? ॥५९॥ श्री नारदजी बोले कि कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूलदेहको कुछ नहीं है, क्योंकि लिंगशरीर अर्थात् जिसमें मुख्य है, वह अन्तःकरण है, यह अन्तःकरण स्थूलदेहके साथ नष्ट नहीं होता, वरन् एक स्थूलदेहका नाश होकर दूसरा जो स्थूलशरीर मिलता है, उसमें वही अन्तःकरण रहता है, इसलिये जिस अन्तः

नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ॥ भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥ ६० ॥ शयान-मिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ॥ कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥ ६१ ॥

करणने एक स्थूलशरीरमें कर्म किया था, वही अन्तःकरण दूसरे स्थूलशरीरके कर्मका भोग पुरुष भोगता है॥६०॥ अब हम लिंगशरीरको स्वप्नदृष्टांतसे स्पष्ट दिखलाते हैं, परंतु उसमें वास्तविक रीतिसे भोक्तृत्व अन्तःकरणका है और वह अन्तःकरण जाग्रत अवस्थाके शरीरमें जो था वही स्वप्नके शरीरमें है, इसलिये मैं तुम्हारे सम्मुख वर्णन करता हूं कि जैसे अपने जीते जी ही पृथक्-पृथक् शरीर प्राप्त होते हैं, परंतु उस शरीरमें भोक्ता नहीं फिरता, ऐसे ही मरण पश्चात् शरीर बदल जानेपर भी उसमें भोक्ता जो अन्तःकरण है, वह नहीं पलटता । जाग्रत् अवस्थामें मनके अन्तर संस्काररूपसे जो कर्म लगे हुए हैं, वे ही स्वप्नअवस्थामें दूसरा शरीर प्राप्त होनेपर भोगने पड़ते हैं । इसी प्रकार एक जन्ममें अन्तःकरणके अन्तर संस्काररूपसे जो कर्म लगे हुए हों, वे ही कर्म दूसरे जन्ममें भोगने पड़ते हैं, सबकी जड़ तात्पर्य यह है कि स्थूलशरीरको कर्तृत्व नहीं है, क्योंकि अन्तःकरण जो कर्म करनेवाला है, उसमें यह स्थूलशरीर केवल

द्वाररूप है॥६१॥यह अन्तःकरण अनेक पुत्रादिकोंके स्थूलशरीरमें स्नेह रखता है,कि यह मेरा पुत्र है यह मेरा पौत्र है और अपने स्थूलशरीरमें भी ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व आदिका घमण्ड कर बैठता है;तो इससे यह भली प्रकार विदित होता है कि अन्तःकरणके केवल अभिमान करनेका जड़स्थान स्थूलशरीर है परन्तु इस बातसे स्थूलशरीरका कर्त्तापन निश्चय नहीं हो सकता,वास्तविक कर्त्ता अन्तःकरण ही है और अन्तःकरणने जिस शरीरमें अहंकार किया हो उसी शरीरमें रहकर किये हुए कर्मसे अन्तःकरणके ही कारण पुनर्जन्म होता है,इस बातसे यह निश्चय हुआ कि कर्त्ता भी अन्तःकरण ही है और भोक्ता भी अन्तःकरण ही है ॥ ६२ ॥ कर्मका नाश हो जाना यह बात मुक्तिसे विरुद्ध है और जन्मका कर्म किसी प्रकार नहीं मिटता, यह बात युक्तिसे निश्चय होती है। सब इंद्रियोंके अपने-अपने विषयोंके संग एक कालमें मेल होनेपर भी उन सब विषयोंका ज्ञान अपने आपको एकसंग नहीं हो सकता,इससे यह अनुमान जान पड़ता है कि इंद्रियोंका अधिष्ठाता भी कोई वस्तु अवश्य है,उसीका नाम मन प्रसिद्ध कर रक्खा है, मनका जबतक इंद्रियोंके सङ्ग मेल नहीं होता, तबतक इंद्रियोंका विषयके सङ्ग मेल होनेपर भी

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन्॥ गृह्णीयात्तत्पुमात्राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥ यथाऽनुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ॥ एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥६३॥ नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम्॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥६४॥ तेनास्य तादृशं राजँल्लिङ्गिनो देहसंभवम् ॥ श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥

अपने आपको उस विषयका ज्ञान नहीं हो सकता, यह बात सबमें प्रसिद्ध है, इस भांति चित्तकी वृत्तियां भी एक ही कालमें उत्पन्न नहीं होतीं, परंतु अनुक्रमसे होती हैं,इसी बातसे अनुमान होता है कि चित्तकी वृत्तियोंका उत्पन्न करनेवाला पूर्वशरीरका सम्बन्ध कर्म है, जो-जो कर्म जिस-जिस समय भोगनेके होते हैं उस-उस समयमें वह कर्म अपना भोग देनेके अनुकूल चित्तकी वृत्तिको प्रकट करता है, इससे पूर्वसंबन्धी कर्म किस प्रकार विनष्ट नहीं हो सकता, परन्तु अवशेष रहता है ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! इस वर्तमान शरीरसे किसी कालमें किसी स्थानमें जिस प्रकारका और स्वरूपका पदार्थ अनुभवमें नहीं आया हो तथा कभी देखनेमें नहीं आया हो और सुननेमें भी न आया हो उसी प्रकारका और उसी स्वरूपका किसी कालमें स्वप्न और प्रयोजनमें अपने मनमें आता है, यह तो सब बातसे अवश्य मानना पड़ता है कि पूर्वजन्ममें उस पदार्थका वैसा अनुभव अवश्य हुआ होगा ॥ ६४ ॥ क्योंकि जिस वस्तुको कभी नहीं देखा हो, वह वस्तु

चित्तमें कभी नहीं भासती इस बातसे उसका अनुभव करने योग्य पूर्व शरीर होनेका अथवा पूर्वशरीरका और इस शरीरका चित्त एक होनेका और पूर्वशरीरके कर्मोंका संस्कार मनमें लगे रहनेका ठीक-ठीक निश्चय होता है ॥६५॥ वर्तमान समयमें होनेवाला प्राणी पूर्व जन्म उच्चयोनिमें था, वा नीच योनिमें और अब अगला जन्म उच्चयोनिमें होगा, अथवा नीचयोनिमें, यह बात भी भली-बुरी चित्तकी वृत्तियोंसे जानी जा सकती है, इस बातसे भी जान पड़ता है, कि पूर्वजन्म था और आगेको जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि मनुष्यका मन जो है उसीको पूर्वरूप कहते हैं, तुम्हारा कल्याण होगा, अथवा न होगा, ऐसे जान लेना ॥६६॥ इस विषयमें मनुष्य अनेक-अनेक प्रकारका तर्क-वितर्क करते हैं। जो पूर्वजन्ममें देखी हुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नके देखनेमें आती हो, तो वह वस्तु किसी कालमें भी देखनेके योग्य नहीं, फिर वह वस्तु स्वप्नमें कैसे दीख सकती है ? स्वप्नमें तो कभी पहाड़के शिखरपर समुद्र दिखायी देता है, दिनमें तारे दृष्टि आते हैं और अपना शीश-भुजा कटी हुई दीख पड़ती है, यह क्या कारण है ? उसका प्रत्युत्तर यह है; कि समुद्र तो पृथ्वीपर है और तारा रात्रिमें

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ ६६ ॥ अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते॥ यथा तथाऽनुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम्॥६७॥ सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ॥ आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥ ६८ ॥

ही हैं और अपनी कटी हुई भुजा शीशका प्रतिबिम्ब पानी वा तैलादिकमें देखना यह यथार्थ है, वहां पहाड़के शिखररूप स्थलका, दिवसरूप कालका और संग्रामादिक क्रियाका जो भेद है, वह केवल निद्राआदिका दोष है, यह मानना अत्यंत सुगम है, परन्तु पूर्वजन्मको न मानकर इस जन्ममें न हुआ हो, वही स्वप्नमें दिखायी देता है, ऐसे माननेवालेको भी देशकाल और क्रियामें भेद पड़नेके हेतु केवल निद्राके ही दोष मानने पड़ेंगे, इस विषयमें जिनकी प्राप्ति न हो वह दोनों पक्षोंमें समान है, इसलिये प्रतिपक्षवालेका तर्क करना सम्पूर्ण अयोग्य है ॥ ६७ ॥ जो पुरुष महादरिद्र हो, वह भी कभी स्वप्नमें अपने आपको चक्रवर्ती राजाके समान देखता है,परन्तु इस बातमें कुछ असम्भव नहीं है क्योंकि सब इन्द्रिय गोचरक्रमके अनुसार मनमें समूहके समूह आते हैं और भोगनेके पश्चात् चले जाते हैं और सब प्राणी मनसहित ही आते-जाते हैं। कोई मनुष्य मनरहित हो जाय, ऐसा नहीं हो सकता, परन्तु सब प्राणी मनवाले

हैं-और जब मनवाले हैं तो मनमें अनुक्रमानुसार पदार्थोंका प्रवेश होना निश्चित है,इसलिये सम्पूर्ण वस्तुका अनुभव न हुआ हो,ऐसी वस्तु कोई भी नहीं है,सबके पदार्थ अनुभवमें आते हैं, केवल इतना ही कहनेसे पूर्ण नहीं होता क्योंकि किसी-किसी समय सब पदार्थ एकसङ्ग ही देखनेमें नहीं आते ॥६८॥ केवल एक सत्त्वगुणमें निष्ठा पाया हुआ मन भगवान् वासुदेवके विराट्रूपका ध्यान मनमें समा जाता है, उस समय सब विश्व मानो मनमें व्याप्त हो जाता है, यह ऐसे विदित होता है, यद्यपि राहु अदृश्य है, तो भी चन्द्रमाके संबंधमें जब आता है तो स्पष्ट दिखाई देता है, इसी भांति यद्यपि सब विश्वका दीखना अपने आपको असंभव है, परंतु शुद्धचित्तमें सब विश्वका संचित दीखना योगीश्वरोंको प्रत्यक्ष है ॥ ६९ ॥ इस प्रकार स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी लिंगशरीरका नाश नहीं होता, इस बातसे यह दोष किसी रीतिसे नहीं आता, कि कर्त्ता और भोक्ता और है यदि किसीको यह शंका हो कि लिंगशरीरके कर्तृत्वके और भोक्तृत्व स्थूल शरीरके

सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥ तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ६९ ॥ नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ॥ यावद् बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥ ७० ॥ सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥ नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७१ ॥ गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥ लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥ ७२ ॥

द्वारा है,परन्तु स्थूलशरीर रहित केवल लिंग शरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व है ही नहीं,इसलिये किसी समय स्थूलशरीर न हो तब लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व न रहनेसे मुक्ति अवश्य होनी चाहिये, परन्तु सबका सिद्धांत यह है-कि बुद्धि, मन, इंद्रियाँ और विषयोंका समूहरूप यह अनादि लिंगशरीर जबतक है, तबतक प्राणीके स्थूलशरीरका सम्बंध किसी भांति नहीं मिट सकता ॥७०॥ सोना, मूर्छा, महाकष्ट, मृत्यु और ज्वरमें इन्द्रियोंका विनाश होनेसे स्थूलशरीरमें मृत्युप्रज्वारके समान मैं हूँ, ऐसा अहंकार सदा नहीं प्रकाशता परन्तु सूक्ष्मरूपसे बना रहता है,मानो उस समय स्थूल शरीरको लिंगशरीरसे विधान होता है, यह बात कदापि न समझना ॥७१॥ गर्भमें और बाल अवस्थामें इंद्रियाँ पूर्ण न होनेसे तरुण अवस्थामें जिस प्रकार स्थूल शरीराभिमान एकादश इन्द्रियोंसे स्पष्ट चिह्न नहीं प्रतीत होता, जैसे अमाव-

स्याके चन्द्रमाका बिम्ब विद्यमान होनेपर भी चन्द्रमा स्पष्ट दिखायी नहीं देता, ऐसे ही गर्भ और बाल्यावस्थामें स्थूलशरीरका अभिमान विद्यमान होनेपर भी स्पष्ट दृष्टि नहीं आता, इसलिये जबतक स्थूलशरीरका सम्बंध नहीं मिटता, तबतक संसार भी नहीं मिट सकता, यही सबका सिद्धांत है ॥७२॥ अर्थके अविद्यमान होनेसे संसारकी निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि स्वप्नमें जैसे अनेक प्रकारका अनर्थ दीखता है और जबतक वह स्वप्न दीखता रहता है तबतक वह अनर्थ दूर नहीं होता, ऐसे ही यह जीवात्मा जबतक विषयोंके ध्यानमें लगा रहता है, तबतक इस असार संसारकी निवृत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ७३ ॥ ऐसे ही पञ्चभूतात्मक, त्रिगुणमय, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रारूपसे यह विस्तृत विकारात्मक लिंगशरीर चैतन्यपरमात्माकी चैतन्यतासे युक्त होनेपर जीव इस नामसे कहा जाता है,

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ७३ ॥ एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडशविस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥ ७४ ॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ॥ हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥ ७५ ॥ यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥ ७६ ॥

अर्थात् परमात्माका अंश यह आत्मा जब लिंगशरीरसे युक्त होता है, तब जीव कहलाता है और जब लिंग शरीरको त्याग देता है तब वह पूर्णब्रह्मरूप हो जाता है ॥७४॥ यह जीवात्मा इसी लिंगशरीरसे अनेक देह धारण करता है और इसी लिङ्गशरीरसे सबका त्याग करता है, यह लिंगशरीर जिस स्थूलशरीरको त्याग देता है, उस स्थूलशरीरकी मृत्यु कही जाती है और जिस दूसरे स्थूलशरीरको ग्रहण करता है उस स्थूलशरीरका जन्म हुआ कहलाता है। हर्ष, शोक, भय, दुःख, सुख भी जीवात्माको लिंगशरीरहीके कारण प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ जैसे जोंक पूर्वके तृणको तबतक नहीं छोड़ती है जबतक वह दूसरे तृणको नहीं पकड़ लेती, ऐसे ही मरणके समय जीव जबतक पूर्वदेहके अभिमतको नहीं छोड़ता,तबतक प्रारब्ध समाप्त होकर दूसरा स्थूलशरीर नहीं मिलता, तबतक उसके पूर्व शरीरका अभिमान नहीं जाता,

अर्थात् पहले शरीरकी स्थितिको नहीं भूलता ॥७६॥ हे नरेन्द्र ! जबतक कर्मोंके वियोगसे और दूसरी देहको यह जीव प्राप्त नहीं होता, तबतक सब जीवोंका मन जो है वही केवल इस संसारका हेतु है ॥ ७७ ॥ जिस समय इंद्रियोंके आचरण किये हुए विषयोंका चिन्तन कर करके जो यह पुरुष वारंवार कर्म करता है, उन्हीं कर्मोंके सम्बन्धसे मन संसारका हेतु है और आत्मा असंग है, तो भी अविद्याके कारण शरीरादिक जड़ पदार्थके सम्बंधि कर्ममें आत्माका बंधन नहीं होता है ॥ ७८ ॥ इसलिये सब बन्धन दूर करनेके लिये सर्वात्मभावसे सब विश्वको भगवद्रूप जानकर श्रीनारायणका भजन करो, कि जिन नारायणसे इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है ॥ ७९ ॥

यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥ मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥ ७७ ॥ यदाऽक्षैश्चरितान्ध्याय-न्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥ ७८ ॥ अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥ पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ७९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८०॥ प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम्॥८१॥तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ॥ विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्भक्त्या ॥ तत्सा-म्यतामगात् ॥ ८२ ॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥ ८३ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, भक्तोंमें मुख्य भक्त भगवान् नारदजी इस भांति प्राचीनबर्हि राजाको जीव ईश्वरके स्वरूपका भेद दरशाकर, उस राजासे आज्ञा लेकर वहांसे सिद्धलोकको चले गये, ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्हि राजर्षि प्रजागणकी रक्षा करनेमें सब पुत्रोंको लगाकर आप तप करनेके लिये गंगासागरके निकट गया, जहां कपिलमुनिका आश्रम था, और सबका संग त्याग दिया ॥ ८१ ॥ वहां जाकर वह महावीर एका-ग्रचित्त कर, गोविंद भगवान्‌के पदाम्बुजका भक्तिभावसे भजन कर मुक्तसंग हो वह राजर्षि मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ ८२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे अनघ ! यह अध्यात्म–परोक्ष देवर्षिसे वर्णित आत्मज्ञानसम्बन्धी आख्यानको जो सुनेंगे वा सुनायेंगे वे दोनों लिंगशरीरसे मुक्त

हो जायेंगे ॥८३॥ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशके प्रभावसे सब विश्वको पवित्र करनेवाला; देवर्षिवर्यके मुखसे निकला हुआ, हृदयका शुद्ध करनेवाला और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ फलोंका देनेवाला यह इतिहास है,जो पुरुष इसका कीर्तन करते हैं, वे निःसन्देह ब्रह्मलोकको चले जाते हैं और सब बंधनोंसे मुक्त होते हैं, इस संसारमें कहीं भी भ्रमण नहीं करते ॥८४॥ यह अद्भुत अध्यात्म–परोक्षज्ञान मैंने तुमसे कहा । इससे परलोकमें कोई भी कर्म भोगना नहीं पड़ता और देहाभिमान और सब संशय मिट जाता है*॥८५॥इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनोपाख्याने अध्यात्मज्ञानवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥दोहा–भयेतीस अध्यायमें,अतिप्रसन्न श्रीभगवान।

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिस्सृतमात्मशौचम् ॥ यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८४ ॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाऽऽश्रमःपुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादे कर्मनिन्दाध्यात्मज्ञानयोर्वर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ विदुर उवाच ॥ ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥ १ ॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाऽथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ॥ आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥ २ ॥

दई प्रचेतन तरुसुता, और राज्यवरदान ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्रोंका वृत्तांत जो आपने कहा था,वह रुद्रगीतसे श्रीभगवान् वासुदेवको प्रसन्न करके कौनसी सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हे कैवल्य नाथके परमप्रिय ! बार्हस्पत्य श्रीबृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी उनके समीपके वासी श्रीशिवशंकर महादेवजीको यदृच्छासे प्राप्त होकर शिवजीके कृपापात्र प्रचेताओंको मोक्ष तो निश्चय

* सवैया—अतिदुर्लभ है तनु मानुषको यह पारसज्ञान निहारिये जी । गुरुमन्त्र दियो जो दया करके सोई श्वासनश्वास उचारिये जी ॥ सतप्रेमकी ज्वाल प्रचंड करो नर पापके योगको जारिये जी । दुखभन्जन नाम निरंजनको कबहूँ मत भूल बिसारिये जी ॥

मिली होगी, परंतु मुक्त होनेके पहले इस लोकमें अथवा परलोकमें उनको क्या प्राप्त हुआ ॥२॥ मैत्रेयजी बोले कि वह परम आज्ञाकारी प्रचेता, समुद्रके मध्यमें पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण करके रुद्रगीतसे जपरूप यज्ञसे त्रिलोकीके उत्पन्न करनेवाले श्रीनारायणको प्रसन्न करने लगे ॥ ३ ॥ जब तपस्या करते-करते उनको दशसहस्र वर्ष बीत गये, तब सनातन पुरुषने उनको दर्शन देकर अपनी शांतिरुचिसे उनके तपका सब कष्ट शमन किया ॥४॥ जैसे सुमेरु पर्वतके शिखरपर श्यामघटा शोभा देती है,ऐसे ही श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् गरुड़के कन्धेपर विराजमान थे, पीतवसन धारण किये, कौस्तुभमणि कण्ठमें झलकाये,दशों दिशाओंके अन्धकारका नाश कर रहे थे

मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः ॥ जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन्रुचा ॥ ४ ॥ सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥ काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥ पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाऽऽद्यः ॥ बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः ॥ सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥

॥ ५ ॥ कनकवर्ण, सुन्दर प्रकाशमान भूषणोंसे कपोल और मुख प्रकाशित हो रहा था, किरीट शीशपर झलक रहा था, अष्टायुध भुजाओंमें धारण कर रहे थे, अनुचर, मुनि, सुरेंद्र और देवता सेवामें उपस्थित थे, गरुड़जी किन्नरोंकी भांति अपने पंखोंके शब्दसे उनका यश वर्णन कर रहे थे ॥६॥ पुष्ट विशाल अष्टभुजाओंके मण्डल मध्य वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी तथा वनमालासे आद्यपुरुष भगवान् सब ओरसे शोभित थे । बर्हिष्मान् राजाके शरणागत पुत्रोंसे मेघनादसम वाणीसे दयायुक्त अवलोकनसे देख, अपना दास विचार यह कहा ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि,हे नृपनन्दनो ! तुम मुझसे वर मांगो, तुम्हारा कल्याण होगा ! तुम अपनी सुहृदतासे एक हो,एक ही धर्म पालन करते

हो, तुम्हारी सुहृदता देखकर मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ ॥ ८ ॥ जो पुरुष सन्ध्याकालमें प्रतिदिन तुम्हारा ध्यान करेगा, उसके भ्राता बन्धुजनोंमें सदा अत्यन्त स्नेह बना रहेगा, जैसा तुम परस्पर स्नेह करते हो वैसे सब जीवमात्रमें सुहृद्भाव होगा ॥ ९ ॥ जो पुरुष सावधान होकर सन्ध्याकाल और प्रातःकाल रुद्रगीतके पाठसे मेरी स्तुति करेंगे, उनके सब मनोरथ मैं सिद्ध करूँगा और सुन्दर बुद्धि दूँगा और जो कुछ तुमको दूँगा, उसका तो कहना ही क्या है ? ॥१०॥ जो तुमने आनंदित होकर पिताकी आज्ञा शिरपर धारण की है, इसलिये तुम्हारी महासुन्दर कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त होगी ॥ ११ ॥ और गुणोंमें ब्रह्माजीके समान सर्वगुणनिधान परमज्ञानवान् महाविख्यात

योऽनुस्मरति संध्यायां युष्माननुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥ ९ ॥ ये तु मां रुद्रगीतेन सायंप्रातः समाहिताः ॥ स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥ १० ॥ यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदाऽन्विताः ॥ अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ११ ॥ भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥ १२ ॥ कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ॥ देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत मा चिरम् ॥ १५ ॥

पुत्र तुम्हारे होगा जो अपनी संतानसे सब त्रिलोकीको पूर्ण करेगा ॥१२॥ हे राजकुमारो ! कंडुऋषिके प्रम्लोचना नाम अप्सरामें कमललोचना कन्या उत्पन्न हुई, उस कन्याका जन्म होते ही वह अप्सरा उसको वनमें त्यागकर स्वर्गको चली गयी, तब वृक्षोंने उस कन्याको ग्रहण कर लिया * ॥१३॥ वह कन्या क्षुधासे व्याकुल होकर रोने लगी,तो उस समय कन्याको दुःखी देखकर वृक्षोंके राजा चन्द्रमाने उसपर दयालु होकर उसके मुखमें अपनी कन अंगुली देदी, कि जिसमेंसे सदा अमृत टपकता रहता है ॥१४॥ प्रजाके रचनेमें सृष्टि करनेके लिये पिताने मुझको आज्ञा की, उस आज्ञाको सफल करनेके लिये, इस श्रेष्ठकन्याका शीघ्र विवाह कर, इसमें विलम्ब करना उचित नहीं ॥१५॥

* उसकी कथा इस भांति है "एक समय कंडुऋषि बनमें तप करते थे उनका तप भंग करनेके लिये इन्द्रकी भेजी प्रम्लोचा नाम अप्सरा कंडुऋषिके समीप रहने लगी, कुछ दिन पीछे उस अप्सरा के कंडुऋषिसे एक कन्या उत्पन्न हुई, तब उस कन्याको वृक्षों में डालकर आप स्वर्ग को चली गयी ॥"

तुम सब एकसे ही धर्मशील और एक ही स्वभाववाले हो, तुम सबके बीचमें यह एक ही स्त्री हो और तुम्हारे ही समान शीलवती हो और उसका मन सदा तुममें लगा रहे, इस स्त्रीमें तुम मन लगाओ ॥ १६ ॥ मेरी कृपासे दिव्यसहस्रवर्ष पर्यंत महाबली बनकर भूमिके लोगोंको भोगोगे ॥ १७ ॥ पीछे वियोगरहित भक्ति मुझमें करना गुणहृदय जब तुम्हारा पुष्ट हो जायगा तो मेरे धामको जाओगे और इस नरकरूप संसारके सुखोंमें वैराग्य उत्पन्न होगा, उस समय मेरी अखण्ड भक्ति करनेसे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता दूर हो जायगी ॥१८॥ जो लोग घरमें घुसे रहकर भी कर्म करें तथा मुझको समर्पण करें और मेरी ही वार्तामें दिन-रात व्यतीत करें, ऐसे पुरुषोंको गृह बंधनकारी कभी नहीं होता ॥ १९ ॥ जो मैं साक्षात् ब्रह्मवादियोंके हृदयमें क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन रूपसे प्रकट होता हूँ और ऐसा उत्तमस्थान

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ आपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥ १७ ॥ अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्व-गुणाशयाः ॥ उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥ १८ ॥ गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ॥ मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥ १९ ॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥ २१ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचोवेगपुरो जवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥

उनको देता हूँ कि जहांके गये न तो मोहको प्राप्त होते हैं न शोकको प्राप्त होते हैं जो तुम मेरी कथा का दिन-रात कीर्तन करते रहोगे तो तुम्हारे घरका किंचिन्मात्र भी बंधन न रहेगा ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार पुरुषार्थके पात्र और अत्यन्त सुहृत्तम, परमोपकारी जनार्दनके वचन सुनकर प्रचेता, कि जिनका रज, तम रूप मल श्रीनारायणके दर्शनसे शान्त हो गया है, वे प्रचेता हाथ जोड़ गद्गदवाणीसे श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥२१॥ सब प्रचेता बोले कि हे क्लेशविनाशन ! गुण विभासन, वेदने तुम्हारे उदार गुणनाम निरूपण किये हैं, ऐसे जो तुम हो, आपके अर्थ नमस्कार है, मन वचनके वेगसे आगे जिनका वेग, सब इन्द्रियोंके मार्गसे जिसका मार्ग

नहीं जाना जाय, ऐसे जो भगवान् हैं, उनके लिये वारंवार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपनी निष्ठा करके शुद्ध शांतमनमें व्यर्थ प्रकाशित हैं, ऐसे अद्वैतरूपके निमित्त हम प्रणाम करते हैं, विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहारके लिये मायाके गुणोंसे ब्रह्मादिक मूर्ति धारण करते हैं, उन भगवान्को हमारा वारंवार प्रणाम है ॥ २३ ॥ विशेष करके सत्त्वशुद्ध जिसका स्वरूप, सब दुःखोंका शमन करनेवाला और संसारके मोहको हरनेवाला जिसका ज्ञान ऐसे वासुदेव श्रीकृष्ण सब यादवोंके उत्पन्न कर्ता भव भय हर्ता भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलाक्ष ! हे कमलनाभ ! ! कमलोंकी माला धारण करनेवाले कमलपाद भगवान् आपको बारंबार हमारा नमस्कार है ॥ २५ ॥ कमलके केसरके सदृश निर्मलपीत वस्त्रवाले बांकेबिहारीके अर्थ मेरा नमस्कार है, सर्वजीव मात्रके अन्तर्यामी, सबके साक्षी

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥ २३ ॥ नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्त्वताम् ॥२४॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥ एतावदेव प्रभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ॥२८॥ येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥ २९ ॥ असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥

आपको हमारा प्रणाम है ॥२६॥ हम सरीखे क्लेश पानेवालोंको जो आपने सब क्लेशका क्षय करनेवाला स्वरूप प्रकट करके दर्शन दिया, वह बड़ा अनुग्रह किया, इससे अधिक और कौनसा अनुग्रह होगा ? ॥२७॥ हे विश्वनायक ! हे दीनदयालो ! ! समर्थ पुरुषोंको दीनोंपर ऐसे ही अनुग्रह करना योग्य है, जो अपनी बुद्धिसे समय-समयपर स्मरण करना, इतना ही दीनवत्सल कृपालुओंका होना बहुत है ॥२८॥ क्योंकि जब कृपालु लोग स्मरण करते हैं, तो दीन पुरुषोंके हृदयमें शांति हो जाती है। जब आप तुच्छ जीवोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी रूपसे विराजते हो तब हमलोग जो आपके उपासक हैं, उनके मनोरथको कैसे न जानोगे ? ॥२९॥ हे जगत्पते ! यही वर हम चाहते थे कि मोक्षमार्गके

दर्शनवाले परम पुरुषार्थरूप जो आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ हे नाथ ! परेसे परे जो आप हो और कारणके भी कारण हो इससे वारंवार यह वर मांगते हैं, क्योंकि भक्तजनोंको देनेयोग्य आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं है, इसी कारण जगत्में आपका नाम अनन्त विख्यात है ॥ ३१ ॥ अनायाससे भ्रमरको जब कल्पद्रुम मिल जाता है, तब वह और किसी दूसरे वृक्षकी इच्छा नहीं रखता, ऐसे ही अब हमको साक्षात् आपका पादमूल प्राप्त हो गया है, अब हम आपसे कौन-कौनसा वर मांगे ? और मांगनेकी भी इच्छा हो तो क्या मांगे ? क्योंकि मनमें अनेक-अनेक प्रकारकी कामनायें उत्पन्न होती हैं और कामनाओंका अन्त नहीं है ॥ ३२ ॥ इसलिए हम इतना वरदान मांगते हैं कि आपकी मायासे और अपने कर्मोंसे जबतक हम इस संसारमें भ्रमण करें तबतक आपके प्रसन्न करनेवाले हमको

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ॥ न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥ ३१ ॥ पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यं न सेवते ॥ त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥ ३२ ॥ यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसङ्गानां संगः स्यान्नो भवे भवे ॥ ३३ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ३४ ॥ यत्रेड्यन्ते कथा ॥ मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥ ३५ ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥ तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ॥ भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥ ३७ ॥

जन्म-जन्ममें श्रीवैष्णव लोगोंका सत्संग सदा बना रहे ॥ ३३ ॥ आपके भक्तलोगोंके लवमात्र सत्संगके समान न तो हम स्वर्गको समझते हैं, न हम मोक्षको मानते हैं और मनुष्यको राज्यादि सुखकी तो गणना ही क्या है ? ॥ ३४ ॥ जिसके सत्सङ्गसे सुन्दर-सुन्दर कथाओंकी स्तुति की जाती है, जिससे सब तृष्णाओंका नाश हो जाता है, जहां सब जीवमात्रमें वैर नहीं है, जहां किसी प्रकारका उद्योग नहीं है, वे ही लोग वैकुण्ठ गामी हैं, ॥ ३५ ॥ सब संन्यासियोंको गति देनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीमन्नारायणकी सत्यकथाओंमें सब संग जिन्होंने त्याग दिए हैं, ऐसे मुक्त संग पुरुष बारम्बार नारायण की स्तुति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ वह आपके भक्तजन तीर्थोंको पवित्र कर-

नेकी इच्छासे विश्वमें अपने-अपने चरणोंसे विचरते रहते हैं। उनके सत्संगसे संसारसे भयभीत मनुष्यकी आपमें रुचि होती है, आपके भक्तोंका समागम ऐसा शुभ है ॥ ३७ ॥ हे आद्यपुरुष! श्रीकृष्णचन्द्र प्यारेके सखा सुन्दर चिकित्सक शिवमृत्युके वैद्य भगवान् शिवजीके क्षणमात्रके सत्संगसे जन्म-मरण असाध्य रोगके शमन करनेवाले महावैद्यरूप आपके हम चरणशरणको प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! दूसरा वरदान हम आपसे यह मांगते हैं कि हमने जो वेद पढ़ा है गुरु, ब्राह्मण वृद्ध, पुरुषोंकी निरन्तर सेवा करके प्रसन्न किया है, सज्जनों, मित्रों, और भ्राताओंको नमस्कार किया है और किसी प्राणीमात्रसे वैर नहीं किया है, उसका यह उत्तम फल है ॥ ३९ ॥ हे ईश्वर! जो हमने अन्न तजकर चिरकालतक समुद्रके भीतर रहकर सुन्दर तप किया यह सब कर्म जलमें सोते हुए भूमा पुरुषके सन्तुष्ट करनेके लिए

वयं तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसंगमेन ॥ सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्मः ॥ ३८ ॥ यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदाऽनुवृत्त्या ॥ आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥ ३९ ॥ यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥ ४० ॥ मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥ अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वाऽऽत्मसमं गृणीमः ॥ ४१ ॥ नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ॥ वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ ४२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥

हमने किया है ॥ ४० ॥ मनु, स्वयंभू, भगवान् पितामह शिव, तपसहित ज्ञान विशुद्ध चित्तवाले और सत्त्वगुणी महात्मा पुरुष आपकी महिमाका पार न पाकर सदा आपकी स्तुति करते हैं, ऐसे ही हम अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति करते हैं ॥ ४१ ॥ सब जीवमात्रमें समरूप शुद्ध, परम, पुरुष, वासुदेव सत्त्वगुणमय जो भगवान् श्रीमन्नारायण हो, आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार प्रचेताओंने जब भगवान् वासुदेवकी स्तुति की तब शरणागतवत्सल हरि भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि "एवमस्तु" ऐसा ही होगा और जब दर्शन करते-करते नेत्रोंकी तृप्ति न हुई, तो प्रचेताओंने चाहा कि भगवान् यहांसे किसी प्रकार न जांय

तो भी अकुंठित प्रभाववाले महावीर्यवान् श्रीवैकुण्ठनाथ अपने वैकुण्ठधामको चले गये ॥४३॥ तब प्रचेता समुद्रके जलसे बाहर निकलकर चल दिये और वृक्षोंसे ढकी पृथ्वीको मानो सब ओरसे दाब देंगे ऐसे वृक्षको देखकर प्रचेता महाकोप करने लगे ॥४४॥ हे राजन्! महाक्रोधित हो प्रचेता पृथ्वीको वृक्षविहीन करनेके लिये प्रलयकालकी कालाग्नि रुद्रके सदृश अपने-अपने मुखोंसे आगसी उगलने लगे ॥ ४५ ॥ उस कालाग्निसे सब वृक्षोंको जलते हुए देखकर ब्रह्माजी उस कालाग्निके जलनेसे जो वृक्ष बचे उन्होंने प्रचेताओंसे डरकर और ब्रह्माजीके यहां आये और राजा बर्हिष्मानके पुत्रोंको उन्होंने नीतिके वचनोंसे ठंढा किया ✻ ॥ ४६ ॥ और उस कालाग्निके जलनेसे जो वृक्ष बचे

अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः ॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥ ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥ ४५ ॥ भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः ॥ आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥४६॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ॥ उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मरिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥ ४९ ॥

उन्होंने प्रचेताओंसे डरकर और ब्रह्माजीके उपदेशसे अपनी पुत्री प्रचेताओंको दे दी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी कन्याके साथ विवाह किया। इस सुन्दरभार्यामें प्रचेताओंके 'दक्ष' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ "यह दक्ष पहले जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र था, परंतु शिवजीके निरादर करनेके कारण इसका दूसरा जन्म क्षत्रिय कुलमें हुआ ॥४८॥ जो शरीर ब्रह्माजीका पुत्र था, वही कालकी गतिसे मृत्युको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें प्रचेताओंके घरमें उत्पन्न होकर यह दक्ष ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुष नाम मन्वंतरमें जब प्रथम रचनामें प्राप्त

---

१. शंका—प्रचेता भगवान्के बड़े भक्त और महात्मा होकर दयाहीन प्राणियोंके समान वृक्षोंको क्यों भस्म किया? महात्मा पुरुषोंका यह कर्म नहीं है, यह नीच कर्म महाचाण्डालोंका है।
उत्तर—तुम्हारा वाक्य सत्य है, निर्दयी कर्म चाण्डालोंका है, परन्तु जितना काम राजाओंका है वह सब काम विना दंड कभी नहीं सिद्ध हो सकता। चाहे अनेक उपाय करे परन्तु त्रास दिये विना नहीं हो सकता, इसीलिये प्रचेता वृक्षोंकी कन्याके साथ अपना विवाह करना चाहते थे, इस कार्यके लिये वृक्षोंको भस्म किया, कुछ निर्दयपनसे भस्म नहीं किया।

हुआ, तब अपने मनके समान प्रजा रचने लगा ॥४९॥ इस दक्षने सब तेजस्वियोंके मध्यमें अपनी कांतिसे सब पुरुषोंका तेज हरण किया और जो जन्मा उसको आपने ग्रहण किया, यह अपनी दक्षता (चतुरता) से सब कर्मोमें श्रेष्ठ था इससे इसका नाम सब दक्ष-दक्ष कहने लगे ॥ ५० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेमें ब्रह्माजीने इसका अभिषेक करके सबका पति नियत किया, इस लिये वह दक्ष मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने-अपने काममें सदा आज्ञा करता रहता था * ॥५१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा—इकतिसवें अध्यायमें, सौंप दक्षको राज । गये प्रचेता विपिनको, मोक्षमार्गके काज ॥ मैत्रेयजी बोले

यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥ ५० ॥ तं प्रजासर्गरक्षाया-मनादिरभिषिच्य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे प्रचेतसां गृहे दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन्गृहात् ॥ १ ॥ दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥ २ ॥ तान्निर्जितप्राणमनो वचोदृशो जितासनाञ्छान्तसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥

कि जब राजकार्य करते-करते और संसारके सुख भोगते सहस्रों वर्ष बीत गये तब प्रचेताओंके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और भगवद्वचनका शीघ्र स्मरण कर पुत्रोंपर अपनी स्त्रीको छोड़ संन्यास ले, दंड धारण कर घरसे वनको चल दिये ॥१॥ सब प्राणिमात्रमें जिनका आत्मज्ञान है, वह ब्रह्मयज्ञमें दीक्षित होकर पश्चिम दिशामें समुद्रके तीरपर जिस आश्रममें जाजलि नामक ऋषि सिद्ध हुए थे वहां जाकर तप करना आरंभ किया ॥ २ ॥ प्राण, मन, वचन, जीतकर दृष्टिको वशमें कर, दृढ़ आसन लगाय, शांतसमान विग्रह हो, निर्मल परब्रह्ममें आत्माको

* भजन—सब तज भज हरिनाम पियारे ॥ दीनदयालु कृपालु दयानिधि, भक्तनके रखवारे । पापी पतित गीध गणिकासे, कोटिन जन निस्तारे ॥ १ ॥ जहँ कहुं कष्ट परो भक्तन पर, सुनतहि तुरत सिधारे । कनककशिपुराणसे योधा, महायुद्ध कर मारे ॥ २ ॥ द्रुपदसुताके दुःशासनने, जब ही वस्त्र उघारे । जाय बढ़ाय दिये पट लाखन, खैंचनहारे हारे ॥ ३ ॥ कृपानिधान ज्ञानगुण सागर श्रीनन्द नंद दुलारे । गावत शालिग्राम रातदिन, अदभुत चरित तुम्हारे ॥

निश्चित कर वहां कुछ काल व्यतीत किया, तो भ्रमण करते-करते नारदजी वहां आये कि जिनकी देवता और दैत्य नित्य स्तुति किया करते हैं ॥ ३ ॥ नारदजीको आता देखकर प्रचेताओंने उठकर दंडवत् प्रणाम किया और आदरसत्कारसे यथायोग्य पूजन करके सुखसे बैठे हुए नारदजीसे प्रचेताओंने कहा ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि, हे देवर्षे ! आज आपका आना बहुत अच्छा हुआ, धन्य है हमारा भाग्य ! जो आपने मंगलमय दर्शन हमको दिया । हे ब्रह्मन् ! जैसे सूर्यका आगमन अभयके लिये है, ऐसे ही आप भी त्रिलोकीका भय दूर करनेके लिये विचरते हो ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! शिवजीने और विष्णु भगवान्‌ने जो ज्ञान हमको दिया था, वह सब ज्ञान हम घरके प्रसंगमें आसक्त

तमागतं तु उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥ पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ॥ तव चंक्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥५॥ यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ॥ तद् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥ तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ॥ येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ॥ भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥ नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

होकर भूल गये ॥ ६ ॥ इसलिये वह अध्यात्मज्ञान हमसे कहो, जिससे तत्त्व-अर्थका दर्शन हो, जिस ज्ञानसे इस महादुस्तर संसारसागरसे सहजमें हम पार उतर जायँ ॥७॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् नारदमुनिकी प्रचेताओंने जब इस प्रकार स्तुति की, तब महाकीर्तिमान् भगवान् नारदजी उत्तम श्लोकोंमें जिनकी आवेशित आत्मा, वे प्रचेताओंसे बोले ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि इस विश्वमें विश्वके आत्मा विश्वनाथ भगवान् वासुदेवकी सेवा जिनसे बन सके उन्हीं पुरुषोंका जन्म, कर्म, आयु, मन और वचन सफल है * ॥ ९ ॥

---

* शंका—सब प्रचेता शिवजीसे भगवान्‌से तथा नारदजीसे ब्रह्मज्ञान सीखे थे फिर नारदने प्रचेताओंको ज्ञान क्यों दिया ? सिखाने लगे कि मायासे सावधान रहियेगा । इस
उत्तर—प्रथम तो अभिमानसे नारदमुनि मायाको कुछ भी नहीं जानते थे, जब मायाने नारदमुनिको बहुत दुख दिया, उस दिनसे मायासे डरने लगे और अपने शिष्यको भी
लिये नारदजीने विचारा कि भगवान्‌की माया बड़ी बलवती है, किसीसे जानी नहीं जाती । प्रचेता ज्ञानमें पक्के तो हैं परन्तु और पुष्ट कर दें जिससे माया कभी इनकी बुद्धिको भ्रष्ट न करे, इसी लिये नारदजीने दूसरी बार
प्रचेताओंको ज्ञान दिया ।

अपने स्वरूपके उत्पन्न करनेवाले ईश्वरकी सेवा और उनका आत्मज्ञान हो सके तो शौक्ल (शुद्ध माता पितासे प्रथम जन्म), (सावित्र यज्ञोपवीत होनेसे दूसरा जन्म) और याज्ञिक (यज्ञकी दीक्षा लेनेसे तीसरा जन्म इस तीन प्रकारके जन्म होनेसे क्या फल हुआ ? अर्थात् क्या प्रयोजन निकला ? और देवताओंके समान आयु होनेसे भी क्या लाभ हुआ ? ॥१०॥ अनेक शास्त्र सुननेसे तप करनेसे, वाणीके वाक्य-विलाससे, चित्तकी वृत्तियोंके वश करनेसे निपुण बुद्धिसे जितेन्द्रिय मनसे ॥११॥ प्राणायाम आदि योगसे, सांख्य शास्त्रके ज्ञानसे, संन्यासमतके लेनेसे, वेद पाठके करनेसे और श्रेय मांगलिक कृत्य करनेसे क्या होता है ? अर्थात् जो आत्मा के प्रसन्न करनेवाले भगवान् वासुदेव ही प्रसन्न न हुए, तो इन साधनोंसे कुछ नहीं होता ॥ १२ ॥ सबका सिद्धांत यह है कि सब शुभाचरणोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और सब जीवमा-

किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥१०॥ श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ॥ बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥ ११ ॥ किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥ १२ ॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥ १३ ॥ यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ॥ प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥

त्रके हरि ही आत्मा हैं और फलोंमें प्रधान और अंतिम फल केवल आत्मा ही है और सब पदार्थ आत्माके लिए ही हैं। सब जीवमात्रमें जो आत्मा है वही परमात्मा है, जो परमात्मा सब अविद्याका विनाश करके निजस्वरूपको प्रकाशित करता है, वही आनंदका दाता सबका प्रिय है, इसलिए परमात्माकी सेवा और आत्मज्ञान हो जाय तो सब सफल है ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे उस वृक्षके गूदे, शाखा, उपशाखा, फूल, फल, पत्रादि सब तृप्त हो जाते हैं और जैसे मुखद्वारा भोजन करनेसे प्राणरूप हो सब इंद्रियोंकी तृप्तिको करता है, ऐसे ही अच्युत भगवान्‌की पूजा करनेसे सब देवतामात्रकी पूजा हो जाती है ॥ १४ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें जल सूर्यसे उत्पन्न होता है और ग्रीष्मऋतुमें समय पाकर वह जल सूर्यमें ही लय हो जाता है, ऐसे ही भूमिमें जितने जीव-मात्र हैं, वे और जो स्थावर, जंगम हैं वे, सब श्रीनारायणमें लीन हो जाते हैं ॥ १५ ॥ यह जो विश्व है, परमात्माका सर्व उपाधिरहित स्वरूप है, क्योंकि यह सब जगत् उसी परमात्मासे उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह जगत् उससे भिन्न नहीं है, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यसे भिन्न नहीं है, ऐसे ही जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं है, जैसे आकाशमें गंधर्व नगर किसी समय दृष्टि आ जाता है, ऐसे ही परमात्मामें जगत् किसी समय स्वरूपज्ञान रहनेसे दीखा जाता है, जैसे जाग्रत अवस्थामें सब प्राण इंद्रिय स्पष्ट दृष्टि आती हैं, परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें उन सबकी शक्ति निर्बल हो जाती है, ऐसे ही अज्ञानके समय जगत् दृष्टि आता है, परंतु ज्ञान होनेसे उसका किंचिन्मात्र भी चिन्ह नहीं

यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले ॥ भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥ १५ ॥ एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाऽज्ञा-नभिदाभ्रमात्ययः ॥ १६ ॥ यथानभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमस्सत्त्वमिति प्रवाहः ॥ १७ ॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगु-णप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥ १८ ॥

रहता, पंचभूत इंद्रियाँ और उनके देवताओंका भेद, भ्रम, दिव्य, क्रिया, ज्ञान ये सब भगवान्के स्वरूपसे ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिए भगवान्के स्वरूपका होनेसे ये सम्पूर्ण भ्रम दूर हो जाते हैं ॥ १६ ॥ हे प्रचेताओ ! आकाशमें जैसे मेघमण्डल कभी तमरूप कभी प्रकाशरूप दिखाई देते हैं और फिर पीछे उसीमें लय हो जाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्ममें अज्ञान दृष्टिसे यह रज, तम, सत्त्व देखनेमें आते हैं, जब ज्ञानदृष्टिसे देखा जाय तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार इस संसारका प्रवाह है, ज्ञानसे लीन और अज्ञानसे फिर भासने लगते हैं ॥ १७ ॥ इसलिए सब जीवमात्रमें एक आत्मा, सब देहधारियोंमें काल प्रधान पुरुष, परेश अपने तेजसे सबके कारण हैं, जिनके सत्यस्वरूपका ज्ञान होनेसे संसारका प्रवाह कभी देखनेमें नहीं आता, ऐसे परमात्माको दृढ़भावसे अपना आत्मा समझकर परोक्ष रीतिसे

साक्षात् उसका भजन करो ॥ १८ ॥ और संकल्प विकल्प अद्वय जिससे दूर होता है, द्वय आत्मवाद जिसमें उपरामको प्राप्त होता है ऐसे अनादि, मध्य, अन्त रहित निरन्तर आनन्दमात्र ज्ञानघन परमात्माको इस दिव्यदृष्टिसे भजो सब जीवमात्रपर तो दया करो और जो कुछ मिले उसींमें सन्तोष रक्खो, क्योंकि सब इंद्रियोंको शांत रखनेसे जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ लोक, धन और पुत्रकी तृष्णा सब जिस शरीरमेंसे दूर हो गयी, ऐसे निर्मल अन्तःकरणमें निरन्तर वर्द्धित भावनासे बुलाये हुए, निज जनोंके वशमें रहनेवाला जो

दयया सर्वभूतेषु संतुष्टया येन केन वा ॥ सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ १९ ॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ॥ निजजनवशगत्वमात्मनोऽयं न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥ न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु ॥२१॥

व्यापक आत्मा छिद्रवत् अक्षर ब्रह्म है वह भक्तोंके हृदयमेंसे कभी अलग नहीं होता ॥ २० ॥ जिनकी, बुद्धि निंदित है उनकी की हुई पूजाको भी भगवान् ग्रहण नहीं करते। वे तो निर्धनके धनदाता, श्रीकृष्णचन्द्र गिरिधारी भक्तहितकारी परमरसज्ञ हैं, यश, धन, कुल, कर्मके मदसे जो लोग महानिष्किंचन भगवद्भक्तोंका तिरस्कार करते हैं और उनको त्याग देते हैं * ॥ २१ ॥

---

* जैसे एक समय दुर्योधन श्रीकृष्णचन्द्रको निमंत्रण कर आये और घरपर आकर रसोई बनानेवालोंसे बोलेकि ऐसा स्वादिष्ट भोजन बनाना जो श्रीकृष्णने कभी न खाया हो, थोड़ी देर पीछे श्रीकृष्णको विदुरजी आकर निमंत्रण कर गये तब श्रीकृष्ण दुर्योधनके घर तो न गये, परंतु विदुरके घर पहुंचे, विदुराणी महारानीने घरमें बैठाकर बहुत आदर सन्मान किया और वृन्दावन विहारीकी मनोहर छवि देखकर ऐसी मग्न हुई कि, कुछ सुधि न रही और भोजन भी कुछ न बना सकी परंतु केलेकी फली रक्खी थीं, उनहींको छोल खिलाने लगी, बेसुधि तो थी ही, केलोंकी फलियोंके छिलके-छिलके तो श्रीकृष्णचन्द्रको खिलाती जाती थी, और सुन्दर-सुन्दर गूदा बगेलती जाती थी, विदुरजी देखकर बोले हे प्रिये ! तुझे क्या हो गया, जो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण है उनको फलियोंके छिलके खिला रही है और गूदा पृथ्वीपर डाल रही है तब भगवान् बोले कि, हे विदुर ! जो स्वाद छिलकों में है वह इन गहलोंमें नहीं, क्योंकि तुम तो उपायांतर बुद्धि से मुझको फली खिलाते हो और विदुराणीके उपायांतर बुद्धि नहीं है, यह कह आचमन कर बाहिर निकले सो देखे तो सन्मुखसे दुर्योधन आते हैं। और आकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि हे पुण्डरीकाक्ष भीष्म, द्रोण अरु मुझको परित्याग करके विदुर शूद्र दासीपुत्रके घर जाकर फलाहार किया धन्य आपको। श्लोक—"भिष्मं द्रोणं परित्यज्य मां चैव मधुसूदन। किमर्थ पुण्डरीकाक्ष कृतं वृषलभोजनम्" यह सुनकर, श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, भगवद्भक्त शूद्र नहीं होते. विप्र हैं भागवत कहलाते हैं सब वर्णोंमें वह शूद्र हैं, जो जनार्दनके भक्त नहीं हैं, श्लोक—" न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने।"

अपनी सेवा करनेवाली श्रीमहालक्ष्मी और लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मादिकोंको, राजाओंको अथवा देवताओंको सबको त्यागते हैं; अब अपनेसे ही पूर्ण हैं, निज भृत्यस्वरूपमें प्रसन्न रहते हैं, ऐसे परमेश्वरको कौन कृतज्ञ पुरुष त्याग सकता है ? अर्थात् कोई नहीं त्याग सकता ॥ २२ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार चतुराननके पुत्र देवर्षि प्रचेताओंको यह आख्यान और इसके अतिरिक्त और भी अनेक कथा सुनाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २३ ॥ और प्रचेता भी नारदजीके मुखसे त्रिभुवनके पापनाशक श्रीनारायणका सुयश सुनकर उनके चरणारविंदका ध्यान करते करते मोक्षको प्राप्त हो गये ॥ २४ ॥ हे विदुरजी ! जिसमें श्रीनारायणका वर्णन है सो प्रचेता और

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ॥ न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ॥ श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ॥२३॥ तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥ एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ॥ वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥ २६ ॥ यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥ २७ ॥ इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥ २८ ॥

नारदजीका संवादरूप आख्यान जो तुमने मुझसे पूछा था, सो मैंने प्रीतिसहित तुमसे कहा ॥ २५ ॥ शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार स्वायंभुव मनुके पुत्र राजा उत्तानपादका वंश तुमको मैंने सुनाया, अब हे नृपसत्तम ! अब राजा प्रियव्रतके वंशका वर्णन करता हूँ सो तुम सुनो ॥२६॥ जो राजा प्रियव्रत नारदजीसे आत्मविद्या सीखकर फिर पृथ्वीपर आये और अंतसमय सब पृथ्वीका राज्य अपने पुत्रोंको विभाग कर परमेश्वरके परमधामको प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ श्रीमैत्रेयजीसे वर्णित श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदकी यह सत्कथा विदुरजी सुनकर भक्तिकी वृद्धिके प्रभावसे नेत्रोंसे अश्रुविन्दु बहाने लगे और मैत्रेयजीके चरणारविन्दोंको शिरपर और श्रीकृष्णके पदांबुजोंको हृदयमें

धारण किया ॥ २८ ॥ विदुरजी बोले कि हे महायोगिन् ! हे महामुने मैत्रेयजी महाराज ! ! हे दीनदयालु करुणाकर ! ! ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले आपने अपना अनुग्रह करके आज यह अंधकारसे पार करनेवाला मार्ग मुझको दिखा दिया जहां किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं, जिससे विरक्त पुरुषोंका जीवनमूल भगवान् वासुदेवके स्वरूपका मुझे ज्ञान हुआ ॥ २९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पांडुकुलभूषण ! शांतचित्तवाले विदुरजी इस प्रकार महामुनि मैत्रेयजीको नमस्कार कर, उनसे आज्ञा ले अपने सुहृदजनोंके देखनेकी अभिलाषासे हस्तिनापुरको गये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविन्दमें जिनका चित्त लगा हुआ है, ऐसे

विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना ॥ दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुःप्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥३०॥ एतद्यःश्रृणुयाद्राजन्राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां चतुर्थस्कंधे प्राचेतसोपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥ ४ ॥

राजाओंके चरित्र जो सुनते हैं वे आयु, धन, यश, कल्याणदायक गति और ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे राजा परमभक्त थे और श्रीभगवान्के नामका निशिवासर ध्यान करते रहते थे और उसीको वेदका सार समझ संसारको स्वप्नवत् मानते थे, इसलिये जो हरिके भक्त हैं वे इस संसारमें धन्य हैं ! ❋ ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषाटीकायां प्राचेतसोपाख्यानवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थस्कन्धभाषाटीकामें समाप्त ॥

* भजन--धन धन रामभक्त सुखदानी ॥ वाल्मीकि नारद घटजोनी, अम्बरीष विज्ञानी । विश्वामित्र व्यास सनकादिक, हरिश्चन्द्रसे दानी । ध्रुव प्रहलाद सुदामा द्विजने, पायो पद निर्वान । जगतमाहिं विख्यात आजलों, जिनकी अकथ कहानी ॥ ब्रह्मा शेष गणेश अत्रि शुक, शंकर और भवानी । निशिदिन रटत पार नहिं पावत, थकित भई निज बानी ॥ आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, श्रीधर सारंगपानी । अपने मुख अपने भक्तनकी, महिमा आप बखानी ॥ भक्तहेत अवतार धार हरि, हरे असुर अभिमानी । शालिग्राम भक्तजन महिमा, भक्तोंहीने जानी ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते पञ्चमस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

शुक
परीक्षित
राजाप्रियव्रत
नारद
ब्रह्मा
नाभि
विष्णु
ऋषि

पुष्कर
दधि
शाक
क्षीर
क्रौंच
घृत
कुश
सुरा
शाल्मली
इक्षु
प्लक्ष
जम्बु
मेरु

रहूगणराजा
जडभरत
भरत
चोर:
भरत
हरिण

दोहा–अजर अमर अव्यक्त अज, अविनाशी अविकार। अलख अचिन्त्य अनादि अज, आर्त अनीहाधार ॥ सोरठा–हे ब्रजेश ब्रजचन्द, नन्दनँदन वसुदेवसुत। यशुमतिके सुखकंद, हरहु मोर दुख द्वन्द्व सब ॥१॥ श्रीगोविंद गोपाल, गोपीबल्लभ गोपपति ॥ कीजे कृपाकृपाल, कंसारी कालीदमन ॥ २ ॥ हे प्रभु ! सर्वाधार कनअँगुलीपर धार गिरि ॥ ज्यों ब्रज लियो उबार, ऐसेहिं मोहिं उबारिये ॥३॥ ज्यों वानरकी वार, वानर कीनी एकपल॥ ऐसेहिं मोहि उबार बार बार विनती करौ ॥४॥ माषहु पंचम स्कन्ध षड्विंशति अध्यायको॥ भाषावार्तिक बंध स्थान भन्यो जहँ भेदसो ॥५॥ दोहा–तहां प्रथम अध्यायमें, प्रियव्रत यथा अनूप ॥ ज्ञानीके जिमि भोग है ज्ञाननिष्ठ पुनि भूप ॥१॥ राजा प्रियव्रत का प्रथम आत्मज्ञान, फिर गृहस्थ आश्रममें अनुराग, उसके पीछे सब संगको छोड़कर मोक्षके पानेकी कथा सुन राजा परीक्षित विस्मयचित्त

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥ गृहेऽरमत यन्मूलःकर्मबन्धः पराभवः ॥ १ ॥ न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ॥ छायानिर्वृत्तचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहा मतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥ ४ ॥

होकर श्रीशुकदेवजीसे बोले कि हे मुने ! महात्मा प्रियव्रत परम भागवत थे इससे तो उनकी रति आत्मामें ही हो सकती है, वह किस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रत हुए थे ? यह आश्रम दोषरहित नहीं है, क्योंकि यह कर्मसे-बँधा हुआ है और अपने-अपने रूपके तिरस्कार का मूल है ॥ १ ॥ और गृहस्थाश्रममें रति उसके विषयमें अभिनिवेश करनेसे होती है। मुक्तसंगी भागवत पुरुषोंका तो कभी घरमें अभिनिवेश हो ही नहीं सकता ॥२॥ कुटुम्बकी लालसा करनेवाली बुद्धि होनेसे गृहस्थाश्रममें सत्य-सत्य रति होती है, परन्तु जो महान् पुरुष हैं, उनके चित्त सदाही भगवान्के चरणारविंदोंकी छायामें लगे रहते हैं, फिर भला ऐसे पुरुषोंकी कुटुम्बकी ओर लालसा होनेवाली बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! राजा प्रियव्रतने पुत्र, कलत्र और गृहादिमें अनुरागी होकर जो सिद्धि पायी और भगवान्में उसकी

अचल भक्ति हुई, इसका भी मुझे एक बड़ा भारी सन्देह है कि गृहस्थाश्रममें आसक्त पुरुषकी किस प्रकारसे सिद्धि और भगवान् की अटल भक्ति मिल गई थी ?॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सत्य तो यह है कि भगवान्के चरणारविंद-मकरन्दके रसमें जिन पुरुषोंका चित्त लगा हुआ है, भगवत्की कथाको ही अपनी परम मंगलकी पदवी समझते हैं और जो कदाचित् उसमें किसी प्रकारका विघ्न भी पड़ जाय तो भी वे इसका परित्याग नहीं करते, यह बात बहुत ही यथार्थ है ॥५॥ तात्पर्य यह है कि उन मनुजीने अपने पुत्र प्रियव्रतको राजनीतिमें कहे हुये सब प्रधान-प्रधान गुणोंका आश्रय जानकर इसको पृथ्वीका पालन करनेमें नियुक्त करना चाहा, परन्तु इन राजपुत्रने राज्यभारको ग्रहण नहीं किया । हे राजन् ! प्रियव्रतके राज्यभार न लेनेका कारण यह है कि वह परम भागवत् था । और देव ऋषि नारदजीके

श्रीशुक उवाच ॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदन्तरायविहताः स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ ५ ॥ यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाऽञ्जसाऽवगतपरमार्थसत्तत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दत् ॥ यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरणे आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥ ६ ॥ अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥ ७ ॥

चरणोंके आराधन करनेसे उनको आत्मतत्त्व भलीभांति ज्ञात हो गया था, इससे उन्होंने मनमें विचार किया कि, आत्मध्यानरूप कार्यके द्वारा नियम ग्रहण करेंगे और उन्होंने पहले ही चित्तको ग्रहण करके भगवान् वासुदेवको अपनी सब इंद्रियोंका क्रियाकलाप अर्पण कर दिया था, हे महाराज ! यद्यपि पिताकी आज्ञाका उलंघन करना बड़ा अनुचित है, तथापि प्रियव्रतने यह विचार किया था कि राज्याधिकार मिथ्या है और राज्यके प्रपञ्चसे पराभव होनेकी सम्भावना है, इस कारण प्रथम वह राज्य का भार लेना नहीं चाहता था ॥ ६ ॥ परन्तु भगवान् आदिदेव ब्रह्माजी सब मूर्तिमान वेद और मरीचि आदि समस्त निज जनोंके साथ अपने भवन सत्यलोकसे

उतरनेका विचार कर, हे राजन्! जैसे राजदूत लोगोंके द्वारा अपने आधीनस्थ मण्डलेश्वर राजाओंके अभिप्रायको जानता है, वैसेही गुणमय सृष्टिकी बढ़ानेवाली चिंताके द्वारा समस्त जगत्का अभिप्राय निश्चय करते हैं, वही ब्रह्माजी प्रियव्रतका वृत्तांत जानकर नारदजीके निकट जानेको अपने लोकसे उतरकर आने लगे ॥ ७ ॥ सत्य लोकके उतरनेके समय स्थान-स्थानमें चन्द्रमाके समान उसकी ज्योति प्रकाशित हुई और मार्ग ही मार्गमें देवता लोग उनकी पूजा करने लगे और सिद्ध, साधक, गंधर्व, चारण और मुनि इत्यादि यशका बखान करने लगे। ब्रह्माजी इस प्रकार पूजा प्राप्त करते-करते अपनी द्युतिसे गन्धमादन पर्वतकी गुफाओंको प्रकाशित करते प्रियव्रतके पास पहुँचे ॥ ८ ॥ उसी समय गंधमादन पर्वतकी गुफामें नारदजी प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश कर रहे थे और मनुजी अपने पुत्र

स तत्र तत्र गगनतले उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥ तत्र ह वा एवं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पिता पुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥९॥ भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥ ११ ॥

प्रियव्रतको लेनेके लिए वहां आये थे। हंसकी सवारीको देखतेही नारदजीने जान लिया कि हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजीका आगमन हुआ, इसलिये मनु और प्रियव्रतके साथ हाथ जोड़कर उसी समय उठ खड़े हुए और पूजाकी सामग्री हाथमें लेकर ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ हे भारत ! पूजाकी सामग्री उनके सामने रखकर फिर मीठे वचनोंसे उनके गुण व यश और सर्वोत्कृष्टताके विषयका वर्णन करने लगे। इसलिये ब्रह्माजी दया प्रकट करके कुछ हँसे और कृपादृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देखकर कहा ॥ १० ॥ ब्रह्माजी स्नेह सहित बोले कि हे तात ! जो मैं कहूँ सो सुनो, सत्स्वरूप अप्रमेय भगवान्में आरोप करके दोष देखना उचित नहीं है, क्योंकि हे वत्स तुम, तुम्हारे पिता, तुम्हारे गुरु, यह महर्षि नारद और हम सब ही अवश होकर जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥११॥

कोई देहधारी तपस्या, अथवा विद्या व योगसे, अथवा समाधिके बढ़ाये हुए बलसे अपने आप वा दूसरेके आश्रयसे वरन् किसी प्रकार भी उस परमेश्वरकी आज्ञाके नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं। और अर्थ व धर्मसे भी उसके लिये कार्यको अन्यथा करनेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत ! सब लोकोंमें उत्पत्ति, नाश, शोक, मोह, भय, सुख, दुःख इन सबके निमित्त कर्म करनेको परमेश्वरका दिया हुआ यह देह सब ही जीव धारण करते हैं, उसके अन्यथा करनेमें किसीको भी कुछ सामर्थ्य नहीं है ॥१३॥ हे वत्स ! कर्म करनेमें भी किसीको स्वाधीनता नहीं है, हम परमेश्वरकी वाणीरूपी रस्सीमें सत्त्वादिगुणपूर्वक जो सब कर्म हैं, उनके निबन्धनसे ब्राह्मणादि शब्द द्वारा दृढ़ बंधनकर सब उस परमेश्वरकी पूजा करते हैं, अर्थात् उनको ही बलि देते हैं। इस कारण बैल इत्यादि चौपाये जिस प्रकार नाकमें

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥ १२ ॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ १४ ॥ ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसंगात् ॥ आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ॥ १५ ॥ मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः॥ यथाऽनुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥ १६ ॥

नाथके पड़नेसे द्विपद मनुष्योंकी इच्छासे उनके लिये कर्म करते हैं, वैसे ही हम सब भी परमेश्वरकी इच्छासे उनके लिये कर्म किया करते हैं ॥१४॥ हे वत्स ! जैसे नेत्रवाला पुरुष अन्धेको छाया अथवा धूपमें जहां चाहे ले जाय, वहां ही उस अन्धेको जाना पड़ता है, ऐसे ही परमेश्वर हमारा प्रभु है, वह अपनी इच्छासे हमारे लिये पशु, पक्षी अथवा मनुष्यका जो कोई भी देह दे देता है, हमलोग उसको ही अंगीकार करके सुख व दुःख भोग किया करते हैं, वह सुख दुःख गुण कर्मके संग–हेतुसे वही ईश्वर देता है। अर्थात् बैल इत्यादि जैसे किसानके देनेपर ही घास आदि खानेको पाते हैं; अपनी इच्छासे खानेको नहीं पा सकते, वैसे ही हमलोगभी परमेश्वरका दिया हुआ सुख व दुःख भोग करते हैं, हमारी इच्छासे कुछ भी नहीं हो सकता ॥ १५ ॥ निद्रासे उठे हुये पुरुषको स्वप्नमें देखे हुए पदार्थका केवल स्मरणमात्र रहनेसे अभिमान

शून्य होकर प्रारब्धके कर्मभोग करते हुए देह धारण करना पड़ता है, परन्तु उनको दूसरी देहके सम्बन्धी गुण वा कर्म अथवा वासना नहीं रहती, क्योंकि ईश्वरकी इच्छामें कर्मोंका भोगना केवल अज्ञानीके लिये ही नहीं वरन् ज्ञानीको भी उसकी इच्छासे कर्मभोग भोगना पड़ता है, चाहे जीवन्मुक्त भी हो जाय परंतु जबतक प्रारब्ध कर्म रहेगा तबतक निज शरीरको तो अवश्य धारण करना पड़ेगा ॥ १६ ॥ उस स्थलमें अपने मनमें ऐसा मत समझ लेना कि घरमें रहकर इस लोकका भोग करने पर अभिमानका त्याग वा मोक्षकी संभावना नहीं रहती, अत एव घरका त्याग करना ही ठीक है। हे वत्स! जो पुरुष असावधान है और उसने अपनी इंद्रियाँ नहीं जीती हैं वह पुरुष यदि संगके भयसे एक वन से दूसरे वनमें भागा-भागा फिरे तो उसको वनसे भी भय हो सकता है, क्योंकि वह पुरुष बुद्धि और पांच इंद्रियाँ

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेंद्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥ १७ ॥ यः षट् सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ॥ अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥ १८ ॥ त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ॥ भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥

इन छः दुश्मनोंके साथ मिला हुआ है, परन्तु जिसने इंद्रियोंको जीत लिया है और आत्मामें ही जिसको रति उत्पन्न हुई है, उसके लिये गृहाश्रम क्या अनमल कर सकता है? ॥ १७ ॥ वत्स प्रियव्रत! जो पुरुष इन छः शत्रुओंको जीतना चाहे, तो प्रथम उसको घरमें ही रहकर इन सबकी गति रोककर जयके लिये प्रयत्न करे, जब रिपु दुर्बल हो जाये तब पीछे घरमें वा और कहीं घूमे, क्योंकि मनुष्य किलेका आश्रय करनेसे ही बलवान् वैरीको विजय करते हैं, पश्चात् जैसी इच्छा हो दुर्गमें अथवा और कहीं निवास करे ॥१८॥ हे वत्स! यह गृहरूपी दुर्गका आश्रय प्राकृत लोगोंके लिये ही जानना, तुम सरीखोंके लिये नहीं है, तुमने भगवान् वासुदेवके चरणकमलरूपी दुर्गका आश्रय लिया है, इससे यद्यपि तुमने अपने छः शत्रुओंको जीत लिया है, तथापि जबतक देह रहे तबतक ईश्वरके दिये हुए

सब भोगोंको भोगकर फिर संग परित्याग करके अपने-अपने रूपोंकी भावना करना, अर्थात् आत्मनिष्ठ हो जाना ॥ १९ ॥ महर्षि शुक-देवजी इतनी कथा वर्णन करके राजा परीक्षितसे बोले हे महीपाल ! महा भगवद्भक्त प्रियव्रत ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर मनमें विचारने लगे कि हम एक क्षुद्र प्राणी हैं, हमको त्रिभुवननाथ ब्रह्माजी ऐसा भला उपदेश देते हैं, उनको शिर झुकाकर बोला—"जो आपकी आज्ञा है मैं वही करूंगा" यह कहकर ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी ॥ २० ॥ ऐसा होनेसे मनुजीको बहुत ही संतोष प्राप्त हुआ उन्होंने आनंदित चित्तसे यथाविधि ब्रह्माजीकी पूजा की, ब्रह्माजी उसको ग्रहण करके प्रियव्रतका और नारदजीके सामने ही अपने लोकको जो मन और वाणीके अगोचर होनेसे व्यवहारशून्य है, जानेके लिये अंतर्धान हो गये । ब्रह्माजीने मनमें समझा था कि प्रियव्रतका योग भ्रष्ट होनेसे

श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तये आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥ २२ ॥ इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥

और नारदजीका एक शिष्य निकल जानेसे यह दोनों जन जानेके समय हमें क्रोधकी दृष्टिसे देखेंगे, परंतु ऐसा नहीं हुआ, बरन् प्रियव्रत व नारदजी एकटक लोचनसे ब्रह्माजीको देखते रहे। प्रियव्रतको योगसे हटाकर ब्रह्माजीका कार्य जब सिद्ध हुआ तब ब्रह्माजीके हृदयमें निवृत्त हुए प्राणीको फिर संसारमें लगा देनेसे विषाद हुआ था॥२१॥ मनुजीने अपने मनमें यह अभिलाष किया था कि पुत्रके हाथमें राज्यका भार सौंपकर वनको चले जायँगे, भगवान् ब्रह्माजीसे उनका मनोरथ सिद्ध होनेपर वह नारदजीकी सम्मतिसे समस्त भूमंडलका पालन और रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रको अभिषिक्त करके विषम विषमय संसारकी भोग वासनासे विरत हुआ ॥ २२ ॥ प्रियव्रतने यद्यपि जिन भग

वान् आदि पुरुषके प्रभावसे सब जगत्के बंधन कट जाते हैं, उनके दोनों चरणोंका नित्यप्रति ध्यान करनेसे सब रागादिक मलोंको जला डाला था और शुद्ध चित्त हो गये थे, तथापि आज्ञाका पालन करनेसे ब्रह्माजीका मान बढ़ानेके लिये उन्होंने पृथ्वीपति होकर पृथ्वीका पालन करना आरंभ किया। हे महाराज! यद्यपि प्रियव्रत निवृत्तिमार्गका पथिक था, तथापि ईश्वरकी इच्छासे फिर उसको कर्मका अधिकार प्राप्त हुआ॥ २३॥ जब कुछ समय प्रियव्रतको राज्य करते बीत गया तो उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी कन्या बर्हिष्मतीके साथ विवाह किया। इस स्त्रीके गर्भसे दश पुत्र उत्पन्न हुए और उर्ज्जस्वती नाम एक कन्या उत्पन्न हुई और दशों पुत्र राजा प्रियव्रतके ही समान रूप, गुण, शील, वीर्य और कर्म द्वारा उदार हुए, कन्या उन सबसे छोटी थी॥२४॥हे राजन्! प्रियव्रतके इन दश पुत्रोंके यह नाम हुए यथा—

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम॥ तस्यामुह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम॥ २४॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः॥ २५॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसः॥ त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन्॥ २६॥ तस्मिन्नुह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः॥ २७॥

आग्निध्र १, इध्मजिह्व २, यज्ञबाहु ३, महावीर ४, हिरण्यरेतस् ५, घृतपृष्ठ ६, सवन ७, मेधातिथि ८, वीतहोत्र ९ और कवि १० अग्निके नामपर ही इन सबके नाम थे॥२५॥ इन दश पुत्रोंमेंसे कवि, महावीर और सवन, यह तीन पुत्र निष्ठावान् ब्रह्मचारी हुए। उन्होंने बालकपनसे आत्म विद्यामें परिश्रम करके परमहंस आश्रममें प्रवेश किया था॥ २६॥ वह तीनों जन महाज्ञानी और शांत स्वभाववाले हुए, जो सब जीव समूहके निवासभूत और भयभीत जनोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उन सच्चिदानंद मुकुंदके चरणारविंदका स्मरण करके अखंडित भक्ति योगके प्रभावसे अपने-अपने अंतःकरण भलीभांति शुद्ध कर लिये थे। वे उन अंतःकरणोंमें सब भूतोंके आत्मा भगवान्के प्रतिष्ठित होनेसे देहादि

उपाधिसे रहित होकर तादात्म्य (भगवद्रूपता) को प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ हे राजन् ! प्रियव्रतके एक और दूसरी रानी थी, उससे भी तीन पुत्र उत्पन्न हुए, यथा—उत्तम, तामस और रैवत । यह तीनों पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार जिसके तीन पुत्रोंने शांति पायी, उस महात्मा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षतक पृथ्वीका पालन किया, उस राजामें दोर्दण्ड अखण्डनीय बल परिपूर्ण था । जब वह राजा पूर्णबलसे धनुषकी टंकार करता था तो विना युद्धके ही धर्मका विपक्ष करनेवाले सब ही पुरुषोंका नाश कर देता था, उसका भोग-विलास भी थोड़ा नहीं था, परमप्यारी बर्हिष्मती नारीके साथ प्रतिदिन आमोद-प्रमोदादि द्वारा मानो उसके विज्ञान और विवेकको परा जित कर दिया था । इस कारण वह विषयमें आसक्त करनेके लिये भोग विलास करनेके समय ऐसा प्रतीत होता था मानो आत्माको

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन् ॥ उत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥ २९ ॥ यावदवभासयतिसुरगिरिमनुपरिक्रमन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः ॥ ३० ॥

भूल गया हो ॥ २९ ॥ एक समय भगवान् सूर्य जब कि सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश कर रहे थे, उसका आधे-भूमण्डलमें प्रकाश था और आधी पृथ्वी पर अँधेरा छा रहा था, तब उस समय इस राजाने सूर्यकी ओर दृष्टि करके विचार किया, कि भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वतकी परिक्रमा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश करते हुए आधी पृथ्वीको प्रकाशित कर रहे हैं और आधी धरापर अन्धकार छा रहा है, यह बात तो कुछ भली नहीं इस लिये इस विषयमें अप्रसन्नता प्रकट करके प्रतिज्ञा की, कि हम अपने प्रभावसे रात्रिको भी दिन करेंगे । यह विचार सूर्यके समान वेगवान् अपने ज्योतिर्मय रथपर आरूढ होकर दूसरे सूर्यकी भांति सातवार सूर्यके

चारों ओर घूमे। हे राजन्! प्रियव्रतने जो ऐसा आचरण किया, इसको कोई असम्भव न समझे, क्योंकि भगवान्‌की भक्ति करनेसे उसका अलौकिक प्रभाव वर्द्धित हुआ था, परन्तु जिस समय कि राजा प्रियव्रत ऐसा कर रहे थे, उस समय चतुर्मुख ब्रह्माजीने उनके निकट

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥ जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञाः तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्दुत्तरोत्तरं यथा संख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ ॥

आकर उन्हें इस कार्यसे निवारण किया और कहा कि हे वत्स! यह तुम्हारा अधिकार नहीं है ॥ ३० ॥ पृथ्वीनाथ प्रियव्रतके रथके पहियोंसे जो सात गढ़े पड़ गये थे, वही सात समुद्र हुए और उन्हीं समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीप हुए ॥ ३१ ॥ उन सात समुद्रोंसे ही जम्बू

---

१. शंका—राजा प्रियव्रतका एकरथ, जिसमें बैठकर रात्रिके नाश करने और आठ प्रहरका दिन करनेके लिये सूर्यके पीछे-पीछे राजा प्रियव्रत क्यों घूमता फिरा? राजा प्रियव्रत रथमें बैठकर आकाशमें घूमा करता था, फिर रथके पहियोंसे पृथ्वीमें सात समुद्र कैसे होगये? जो पृथ्वीपर रथ घूमता तो निःसन्देह पहियोंके चिन्हसे समुद्र हो जाते और कुछ शंका न होती; परन्तु आकाशमें रथ चलनेसे पृथ्वीमें पहियोंसे सात समुद्र, सात द्वीप हो गये, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, तथा रथ तो एक ओर चौड़ाई लम्बाई एक प्रकारकी, फिर क्या कारण कि एकसे दूना दूसरा, दूसरेसे दूना तीसरा, तीसरेसे दूना चौथा, चौथेसे दूना पाँचवां, पाँचवेंसे दूना छठा, छठेसे दूना सातवां समुद्र और सात द्वीप हुए, यह बड़ी भारी शंका है?

उत्तर—पहले तो प्रियव्रतने अपने तपके अभिमानसे विचार किया कि रात्रिका मैं नाश करदूंगा, केवल अकेला दिन ही रक्खूंगा क्योंकि यह रात्रिका अन्धकार महादुःखदायक है, ऐसा मनमें विचार किया और अपने तपके तेजप्रकाशसे अन्धकार न होने दिया और सूर्य नारायणके पीछे-पीछे अपना रथ कर लिया। परन्तु फिर पीछे राजाको ज्ञान हुआ, समझा कि दिन-रातकी मर्यादा भगवान्‌की की हुई है, जो मैं रात्रिको नष्ट करूंगा तो भगवान् अत्यन्त कोप करके मुझको दण्ड देंगे। इस प्रकार अपने मनमें भय मान रात्रिका नाश नहीं किया। दूसरी शंकाका उत्तर—राजा प्रियव्रत तपके बलसे आकाशमें घूमता फिरता था, कभी-कभी भूमिपर भी घूमता था। कुम्हारके चक्रके समान रथको फिराता था जब भूमिमें रथको फेरने लगा तब बड़े वेगसे जो रथ घूमता था उसके पहियोंके चिन्ह पृथ्वीमें सात समुद्र हो गये और सात द्वीप हो गये। सातचक्र पृथ्वीके राजाने किये थे श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌ने विचार किया कि पृथ्वीपर अपनी बनायी हुई सनातनकी मर्यादा सात समुद्र सात द्वीप एकसे एक दूना उसको नष्ट देखकर जो पृथ्वीपर सदासे चले आये हैं, वह सात समुद्र और सात द्वीप पृथ्वीपर क्यों नहीं? मैं जानता हूँ, कि ब्रह्मा स्वयंभूने मनुसे जब सृष्टिकी रचना करायी, तब उन्होंने सात समुद्र और द्वीप नहीं बनाये, इस लिये अपनी माया करके वासुदेव भगवान् राजा प्रियव्रतके सारथी हुए और राजाने नहीं जाना कि मेरे सारथीको उठाकर दूसरे स्थानपर बैठा दिया और आप सारथी बनकर अपनी इच्छासे रथकी लम्बाई चौड़ाई तथा रथके पहियोंको जितना बड़ा करना चाहते थे, उतना ही बड़ा कर लेते थे और घोड़ोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर एक वारमें दूना, दूसरी वारमें तिगुना, तीसरी वारमें चौगुना इसी प्रकार समुद्र और द्वीप एकसे एक दुगुना जैसे प्रथम कल्पमें थे वैसे ही बनाकर वैकुण्ठधामको चले गये। इसी कारण समुद्र और द्वीप दूने-दूने हुए।

द्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप, यह पृथ्वीके सात द्वीप बने। हे राजन्! अब इन सब द्वीपोंका प्रमाण सुनो, यह सातों द्वीप क्रमशः एक-दूसरेके प्रमाणसे दूने हैं और समुद्रके बाहरी भागमें चारों ओर बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रोंके बाहरी भागोंमें एक द्वीप है इसी प्रकार सब द्वीपोंके बाहर एक-एक समुद्र अर्थात् खारीजल, इक्षुरसजल, सुराजल, घृतजल, दधिजल, दुग्धजल, और शुद्धजल, यह सात समुद्र सातों द्वीपोंकी मानो परिखा (खाई) हो गये हैं। यह सब द्वीप जो कि समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। इनका प्रमाण ऐसा है कि उसके ही तुल्य यथाक्रमसे पहले एक समुद्र, फिर उस एक समुद्रके परे एक द्वीप है यह सब सागर अलग-अलग असंकीर्ण रूपसे बाहरी भागमें ही व्याप्त हो रहे हैं, भीतर नहीं फैले हैं, राजा प्रियव्रतने यह सात

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्तः जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक् परित उपकल्पिताः ॥ तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्यैनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥ नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदंघ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ॥ चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥ ३५ ॥ स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ ३६ ॥

द्वीप अपने तुल्यचरित्रवान् सात पुत्रोंको अर्थात् अग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र नामक सात पुत्रोंको एक-एक द्वीपका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ उनके ऊर्जस्वती नामक जो एक कन्या थी उसका विवाह शुक्रसे हुआ, उसके ही गर्भसे देवयानी नामक शुक्रकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ हे राजन्! जो पुरुष भगवान्के भक्त हैं और उन्होंने भगवान्के चरणकी रेणु द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, उनमें इस प्रकारका पौरुष होना असंभव नहीं है, क्योंकि अत्यन्त चाण्डाल पुरुष भी भगवान्का नाम केवल एक वार उच्चारण करनेसे संसारके बंधनसे छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कुछ हो, राजा प्रियव्रत देवर्षि नारदजीके श्रीचरण-

आश्रय करनेके समय जो राज्यादि प्रपंच आ पड़ा उसके सम्बन्धसे अपने आत्माको अनिर्वृत समान मन ही मन वैराग्य करता हुआ ग्लानिसहित यह वचन बोला ॥ ३६ ॥ कि हाय ! मैंने अच्छा नहीं किया, जो अविद्यारचित विषयरूप विषम अंधकूपमें इंद्रियोंके वश होकर गिरा, सब ही वृथा है, अहो ! मैं अपनी स्त्रीका क्रीड़ामृग बना; मुझे धिक्कार है, यह कहकर राजा अपने आप ही आप अपनी बहुतसी निन्दा करने लगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके प्रसादसे राजा प्रियव्रतको ज्ञान प्राप्त हो गया और वह अपने आज्ञाकारी पुत्रोंके मध्य पृथ्वीका विभाग कर धन संपत्ति सहित अपनी स्त्रीको मृत शरीरके समान परित्याग करके फिर देवर्षि नारदजीके किये हुए उपदेश मार्गके अनुसार वर्तने लगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! स्त्री और धन ऐश्वर्यको बहुत दिनतक भोगनेसे फिर उनका त्यागना कठिन

अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे ॥ तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग् धिगिति गर्हयांचकार ॥ ३७ ॥ परदेवतायाः प्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदोहृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य ह वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥ यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्त वारिधीन् ॥ ३९ ॥ भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥

हो जाता है। परंतु प्रियव्रतका हृदय खेदरहित था और भगवान्‌के विहारकी चिंतामें मग्न रहनेसे उसका प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था, इस लिये उसको स्त्री और धनसंपत्तिका त्यागना कुछ कठिन नहीं हुआ, उसकी महिमाके विषयमें पहला कहा हुआ एक श्लोक है, वह मैं कहता हूँ आप सुनो, यथा—प्रियव्रत जो कर्म कर गया ईश्वरके विना कौन पुरुष उसके करनेको समर्थ हो सकता है ? उसके प्रभावकी कथाका कौन वर्णन कर सकता है ? उसने अंधकारका नाश करनेके लिये घूमते-घूमते अपने रथके पहियोंसे सात समुद्र खोदे थे ॥ ३९ ॥ फिर जिसने विभागपूर्वक द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीकी शांति और सब प्राणियोंका विवाद निवारण करनेके लिये नदी, पर्वत, बनादि द्वारा प्रत्येक

द्वीपकी सीमा नियत कर दी ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तोंके प्यारे जिस प्रियव्रतने भूमिका, स्वर्गका मनुष्यका और योग व कर्मके विभवको नरकके समान समझा था, उस परम भागवतकी समता कौन कर सकता है और किसका सामर्थ्य है ? * ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रियव्रतस्य प्रथमवैराग्यं पश्चाद्गृहस्थाश्रमःपुनर्वैराग्येण मोक्षप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—या दूसर अध्यायमें, श्री आग्नीध्र चरित्र । वर्णत भाषामें कछुक, सुखद विचित्र पवित्र ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार राजा

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ॥ यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशे प्रियव्रतविजयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥ सच कदाचित् पितृलोककामःसुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्वी आराधयांबभूव ॥ २ ॥ तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥

प्रियव्रत परमार्थ साधन करनेके लिये चला गया, तब उसका पुत्र आग्नीध्र उसकी आज्ञाको धारण कर धर्मकी ओर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीपनिवासी प्रजाको अपने पुत्रके समान लालन-पालन करने लगा ॥ १ ॥ उसने एक समय पुत्रकी कामना करके मंदराचल पर्वतकी गुफामें प्रस्थान किया और पुष्पादि विविध भांतिकी सामग्री एकत्र कर एकाग्र चित्तसे भगवान्‌की आराधना करने लगा * ॥ २ ॥ उसके अभिप्रायको बहुत ही शीघ्र श्रीआदिपुरुष भगवान्‌जी जान गये । उन्होंने आग्नीध्रकी तपस्याकाकारण जानकर देवताओंकी सभामें

---

* कवित्त—आपहू तरे हैं और जग सब तार दीनो, नगरके वासिन को पुत्रवत् निहारो है । चोर और तस्करको नाम नहिं राखो कहूं, जाको वा निहारो सोई धर्म कर्म वारो है ।। मनुके वंशमें पूरण अवतंस भयो, जाके परकाशको त्रिलोकीमें उजारो है । शालिग्राम दीनवन्धु नाम सत्य करिवेको, देखो कैसो प्रियव्रत प्रियव्रत धारो है ।। १ ।।

१. शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है, कि राजा आग्नीध्रने स्त्रीके लिये तप किया । जो वह तप न करता तो क्या उसका विवाह न होता ? राजा आग्नीध्र समस्त जम्बूद्वीपका अधिष्ठाता था । उसको राजा लोगोंने अपनी कन्या क्यों नहीं दी ? सब राजा लोग आग्नीध्रके अधीन थे फिर विवाह के लिये तप क्यों किया ?

उत्तर—सृष्टिकी आदिमें कोई भी क्षत्रिय नहीं था, अकेले स्वायंभुवमनुके पुत्र क्षत्रिय थे, जब मैथुनी सृष्टि ब्रह्माने बनायी तब पीछे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, जब क्षत्रिय पृथ्वीपर नहीं थे, तो आग्निध्रको कन्या कौन देता ? इस लिये आग्निध्रने विवाहके कारण तप किया ।

जो एक पूर्वचित्ति नामक अप्सरा गा रही थी, उसको आग्नीध्रजीके साथ रमण करनेके लिये उन्होंने आग्नीध्रजीके निकट भेजा ॥३॥ पूर्वचित्ति अप्सरा आदिपुरुषकी आज्ञानुसार गमन करके आग्नीध्रके आश्रमके समीप जो वन था उसमें घूमने लगी। यह उपवन अतिशय रमणीय था, वहां सघन विविध वृक्षोंकी शाखाओंके समूहोंके ऊपर अनेक-अनेक स्वर्णवल्लियाँ लिपट रही थीं, उसके ऊपर बहुतसे थलचारी पक्षी, मयूर, कीट, कोकिलादि अपने-अपने जोड़ोंके साथ षड्जादि मधुर स्वरसे गानकर रहे थे, उनके कण्ठका शब्द-सुनकर हंस, कारण्डव आदि जलचारी पक्षी भी कमलोंकी खानपर सावधान होकर विचित्र भांतिके शब्द कर रहे थे, जिससे बोध होता था, कि मानो वहांके सब तालाव ही कोलाहल कर रहे हैं ॥ ४ ॥ यह अप्सरा सुललित गमन करनेके लिये ऐसे हावभाव बताकर पग धरने लगी, कि उससे

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥ तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनाऽऽमीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥ तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरम् ॥ ६ ॥

अद्भुत गीत और विलास प्रकट हुआ और पग-पग पर उसके मनोहर चरणोंके गहने खन-खन ध्वनि करने लगे । यह नारद नरेश्वरकुमार आग्नीध्रजीने जब सुना, तब उन्होंने अपने दोनों नेत्र (जो समाधियोगमें सब भांतिसे लगे हुए थे) कुछ एक नेत्र खोलकर देखा ॥५॥ तब यह अप्सरा दृष्टि आयी, उसको देखते ही राजकुमार कामदेवके वशीभूत हो गये। हे राजन् ! विप्रचित्ति अप्सराको देखकर आग्नीध्रका कामके वश हो जाना कुछ विचित्र नहीं है । यह अप्सरा उनके बहुत ही निकट मधुकरीके समान पुष्पोंको सूंघ रही थी, उसकी गति विहार लजीली व विनययुक्त चितवन, मनोहर वचन और नेत्रादि अंग बहुत ही मनहरणकारक थे । इन नेत्रादिकोंके द्वारा मानो वह

दर्शकगणोंके नसोंमें कामदेवके प्रवेश करनेका द्वार किये देती थी ॥ ६ ॥ और दूसरे उसके मुखसे अमृतोपम स्वादवाले और आसवतुल्य मादक जो हँसीके वचन झरते थे,उनके साथ सुगंधित पवनके तुल्य श्वास निकलनेसे उसकी गंधसे मधुकरोंके झुंडके झुंड अन्धे होकर उसके वदनको घेर रहे थे, उन भौंरोंके भयसे जो वह शीघ्र-शीघ्र चरण उठाती थी उससे उसके पयोधर और वेणी व किंकिणी मनोहर भांतिसे डोल रही थीं। ऐसा हावभाव देखकर किसको मोह उत्पन्न नहीं होगा, इससे आग्नीध्र मोहित होकर कामदेवके वश हुए और जड़के समान हो कभी स्त्री, कभी पुरुष इस प्रकार उसको पुकार-पुकार कर कहने लगे ॥ ७ ॥ आग्नीध्रजी बोले–हे मुनिवर ! तुम कौन हो ? इस पर्वत पर क्या करनेकी वासना करते हो ! तुम क्या भगवान् पर देवताकी माया हो ? फिर उसीकी दोनों भ्रुकुटियोंको देखकर कहा–सखे ! तुम यह

निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पदन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ७ ॥
का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि कापि भगवत्परदेवतायाः ॥ विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥८॥ बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ॥ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ९ ॥

दो प्रत्यञ्चा रहित धनुष क्या अपने निमित्त धारण करते हो ? इन दोनोंसे क्या कुछ तुम्हारा अपना काम है ? अथवा मृग तुल्य अजितेन्द्रिय हम सरीखोंको खोजते हुए फिरते हो क्या इसी लिये यह अपने साथ रक्खे हो ? अर्थात् हमको वश करनेके लिये क्या यह दो धनुष धारण करते हो ? ॥ ८ ॥ फिर उसपर आक्षेप करके कहा कि भाई तुम्हारे यह दोनों कटाक्ष बाणरूप हुए हैं ॥ तुम्हारे दोनों कमल नयन इनके दो पलक हैं, अहो दोनों ही भ्रमरके कारण शान्त हो रहे हैं। यद्यपि उनमें पंख नहीं हैं, तथापि वे विना पंखोंके अतिशय कठिन दृष्टि आते हैं और फिर दोनोंका ही अगला भाग अतिशय तेज है, क्या तुम उसके बिना चलाये शांत न होगे ? अच्छा किसके ऊपर यह चलाना चाहते हो ? हमारी समझमें कुछ भी नहीं आता और डरके मारे हम जड़के समान हो रहे हैं, इस लिये हम केवल तुम्हारी

इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि आपका यह पराक्रम (घूमना) हमारा मङ्गल करनेके लिये हो तो अच्छा है ॥९॥ पीछे उसके शरीरकी सुगंधिसे जो अन्धे होकर कुछ भौंरे उसके पीछे-पीछे चले आते थे, उनको देखकर बोले कि हे ईश ! क्या तुम्हारे ये सब शिष्य हैं ? और आपके चारों ओर फिरकर सरहस्य सामवेदका पाठ और गान कर रहे हैं ? तुम्हारे मस्तकको शिखासे जो यह सब फूल खसे पड़ते हैं, अब भौंरे इस प्रकार उनका सेवन करते हैं कि ऋषिलोग जैसे वेदकी शाखाओंका सेवन करते हैं ॥ १० ॥ फिर नूपुरध्वनि सुनकर कहा ब्रह्मन् ! तुम्हारे दोनों चरणोंमें पड़े हुए दोनों नूपुररूपी पींजरोंके अंतरगत सब रत्नरूपी तीतरियोंको अतीव मनोहर केवल शब्द तो मैं सुनता हूँ, परन्तु यह वचन कौन कहता है, उस बोलनेवाले व्यक्तिका मुखारविंद मुझको नहीं दीखता, फिर उसके पीले वर्णवाले पहननेके वस्त्रको

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥१०॥ वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे यस्यामला तपरिधिः क च वल्कलं ते ॥ ११ ॥ किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥१२॥

नितम्बकी कांति समझकर बोले कि तुमने अपने सुन्दर नितम्बमण्डलमें यह कदम्बके फूलोंकी दीप्ति कहांसे पायी फिर पीछे मेखला देखकर बोले कि यह जिसमें अंगारोंकी लंगारकी लंगार दृष्टि आती है और दीपमालिकाका चक्रसा जो बन रहा है, यह क्या है ? और तुम्हारा वल्कल कहां गया ? ॥ ११ ॥ फिर दोनों स्तन देखकर बोले, कि हे द्विज ! इन दोनों स्तनोंके मध्यमें क्या कोई मनोहर पदार्थ आपने भर रक्खा है ? मैं इस कारण देखता हूँ कि तुम मध्यभागमें दुर्बल होकर अतिकष्टसे जिनको धारण करते हो, वह भाव देखकर हमको इस बातका अनुमान होता है और देखो हमारी दृष्टि केवल इन्हीं दोनोंके ऊपर लग रही है, फिर दोनोंके ऊपर कुंकुम लगा हुवा देखकर बोले, कि तुम्हारे दोनों कुचोंके ऊपर यह अपूर्व अरुण रंगका कीचड़ कैसे लग गया, जिससे कि तुम हमारे आश्रमको आमोदित कर रही

हो ॥१२॥ हे सुहृद् श्रेष्ठ ! तुम कौनसे स्थानमें रहते हो ? वह हमको दिखाओ, हमको विदित होता है कि आपके रहनेका स्थान बहुत ही चमत्कृत होगा, अहो ! वहांके रहनेवाले लोग छातीपर ऐसा अपूर्व अवयव धारण करते हैं, तुम्हारी छातीकी इन दो अवयवोंकी सजावट गढ़ावटका क्या वर्णन करूँ ? इनको देखकर हम सरीखे लोगोंका मन अतिशय क्षुभित हो जाता है, हे बन्धो ! तुम्हारे स्थानके रहनेवाले केवल यह अपूर्व अवयव ही धारण नहीं करते, वरन् उनके मुखमें मधुर आलाप और विलास सहित अद्भुत अधरामृत भी है ॥ १३ ॥ हे सखे ! तुमसे और एक बात पूछते हैं, कि लोकके मध्यमें तुमने देह धारण करनेके लिये कौनसी वृत्तिका आश्रय लिया है ? हमको जान पड़ता है कि भोजनसे तुम्हारी जीवन वृत्ति नहीं है, विना भोजन ही तुम प्राण धारण करते हो, क्योंकि तुम विष्णुजीके अंश हो विष्णुजी भोजन नहीं करते, सो तुम उनके वंशमें हो फिर भला किस प्रकारसे तुम्हारा भोजन संभव है ? सखे ! हम कुछ अपने मनसे ही

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्रे ॥ १३ ॥ का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोःकलाऽस्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ॥ उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १४ ॥ योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतंगो दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥ १५ ॥

गढ़के तुम्हें विष्णुजीका अंश नहीं बताते, बरन् यह जो देखते हैं कि तुम्हारे दोनों कानोंमें विष्णुजीकी नाईं दो मकराकृति कुण्डल दीप्तमान हो रहे हैं, फिर उनके निकट ही निमेषशून्य दो नयन शोभा विस्तार कर रहे हैं, दूसरे तुम्हारा यह वदन मानो ठीक सरोवरके समान है, क्योंकि इसमें यह दो नेत्र चंचल मीनयुगलके सदृश क्रीड़ा कर रहे हैं और मुखारविन्दके भीतर यह दांतोंकी पंक्ति राजहंसोंकी कतारके समान शोभा विस्तार कर रही है और समीपमें यह केश कलाप अलिकुलकी नांई शोभा फैला रहे हैं ॥ १४ ॥ हे बन्धु ! तुम अपने कर कमलसे जो इस गेंदको वारंवार उछालती हो, यह सब ओर घूमती हमारे दोनों नेत्रोंको चंचल करती है, अली ! तेरे यह वेणीबन्धन खसे पड़ते हैं, क्या तुम्हें इनकी सुध नहीं है ? अरी प्यारी ! यह धूर्त अत्याचारी पवन तुम्हारी नीवीके बन्धनको हरण करता है, सो

क्या इसका भी तुमको स्मरण नहीं है ? ॥ १५ ॥ हे तपोधन ! तुम्हारा यह रूप रंग तपस्वी लोगोंके तपका नाश करनेवाला है तुमने किस प्रकार तीव्र तपस्या करके यह अपूर्वरूप प्राप्त किया ? हे मित्र ! तुम अनुग्रह करके हमारे साथ तपस्या करो क्योंकि वे मनभावन ब्रह्माजी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर तुमको स्त्री कर दें ॥१६॥ हमको समझ पड़ता है कि भगवान् ब्रह्माजीने तुमको हमारे ही लिये भेजा है, इसलिये हम तुमको नहीं छोड़ेंगे, तुममें हमारे नेत्र और मन लगे हुए हैं, अब यह किसी प्रकार नहीं छूट सकता, इसलिये हे शुभानने ! चतुराननकी प्रदानकी हुई तुमको मैं कभी नहीं बिसार सकता, हे श्रेष्ठ अंगवाली जहां तुम्हारा मन चाहे उसी स्थानमें हमको ले चलो, क्योंकि हम तुम्हारे ही अधीन हैं और तुम्हारी ये सखियाँ भी अनुकूल होकर हमारे साथ-साथ रहें ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् !

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम्॥ चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे॥१६॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन् मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम्॥मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तुः शिवाः सचिव्यः॥१७॥श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधि सभाजयामास॥१८॥सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥१९॥ तस्यामुह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान् नव पुत्रानजनयत् ॥ सा सूत्वाऽथ सुतान् नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे॥२०॥

आग्नीध्र राजा देवताओंके समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंके मनानेमें भी वह अति विलक्षण और चतुर था, इस प्रकार उस आग्नीध्रने ग्राम्यजनोंके भीतर चतुरतावाली परिपूर्ण भाषाके द्वारा उस अप्सरा पूर्वचित्तिका भली-भांति आदर-सम्मान करके उसको मनाया ॥१७॥ जो वीरसमूहोंका पति है उसकी उत्तम विद्या, बुद्धि, वयस, रूप, श्री, उदारता और शीलता देखकर पूर्वचित्तिका भी चित्त उससे लग गया और दश करोड़ वर्षतक जम्बूद्वीपाधिपति इस पृथ्वीनाथके साथमें पृथ्वी और स्वर्गका दिव्यसुख भोगती रही ॥ १८ ॥ कालक्रमसे उसके गर्भमें राजा आग्निध्रसे नव पुत्र उत्पन्न हुए—नाभि, किं पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मयकुरु, भद्राश्व और केतुमाल ॥१९॥ पूर्वचित्तिने प्रत्येक वर्षमें

एक-एक सन्तान उत्पन्न की। इसी प्रकार जब नौ पुत्र उत्पन्न हुए तब वह उन सबको घरके भीतर ही परित्याग करके फिर अपना मन भगवान् ब्रह्माजीकी उपासनामें लगा दिया ॥ २० ॥ हे राजन्! आग्नीध्रके यह नव पुत्र जो हुए वे सब माताकी कृपाके स्वभावसे ही बड़े हृष्ट-पुष्ट और बलवान् हुए, इसलिये आग्नीध्रने उनके मध्यमें पृथ्वीके विभाग कर दिये, वे उन विभागोंके अनुसार अपने-अपने नामसे जम्बूद्वीपके नवखण्ड कर अपना राज्य भोगने लगे ॥ २१ ॥ आग्नीध्रराजा विषय-भोगसे परितृप्त नहीं हुआ, वह सदा विषयके सुखसाधन करनेको ही बड़ा करके मानता रहा, इसलिये वेदोक्त कर्म करनेसे जहां पितृलोक आमोद-प्रमोद करते हैं और जहां कि वह पूर्वचित्ति अप्सरा थी

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननवलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते॥२२॥ संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे आग्नीध्रचरितवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत॥१॥

उसी लोकको राजा आग्नीध्र गया ॥ २२ ॥ जब राजा आग्नीध्र परलोकवासी हुए तब उनके नौ पुत्रोंने मेरुकी नौ कन्याओंका पाणिग्रहण यथाक्रम किया, उन सब कन्याओंके ये नाम थे–मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति *॥२३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां आग्नीध्रचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–मंगलमय नृपनाभिको, कहिहौं चरित बखान। ह्वै प्रसन्न जेहि यज्ञमें, प्रगट भये भगवान् ॥ ता पाछे करुणायतन, शोभासिन्धु खरार। ह्वै तावश वा भवनमें, लीन ऋषिभ अवतार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा परीक्षित! तदनन्तर आग्नीध्रके पुत्र नाभिने पुत्रकी कामनाके लिये अपनी भार्या

* चौपाई––नाभिमेरुदेवीको व्याही प्रतिरूपा विपुरुष उछाही ॥ उग्रदंष्ट्रि व्याही, हरिवरषा। लता इलाव्रत लई सहरषा ॥ रम्या रम्यक लई ललामा। गही हिरण्यक वामा श्यामा ॥ नारी संग किन्हीं कुरु काजा। भद्र भद्रअश्व महाराजा ॥ केतुमाल लिये देववीतिका। दीन्ही सगरो रीति प्रीतिका ॥ यहि विधि नव आग्नीध्रकुमारा। व्याही मेरुसुता सुख सारा ॥ निज निज खंडन किये निवासा। पालत परिजन सहित हुलासा ॥ नीतिरीति महिमावि चलाई। अपनी फेरि दुहाई ॥

मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्तसे यज्ञानुष्ठान करके भगवान् यज्ञपुरुषकी अराधना की ॥ १ ॥ श्रद्धासहित पवित्र भावसे पूजामें वर्तमान इस राजाके प्रवर्ग नामक यज्ञके कर्म हो रहे थे, उस समय यद्यपि भगवान् विष्णुजी द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विक् दक्षिणा और विधि इन सात उपायोंकी संपत्तिसे भी नहीं प्राप्त होते, तथापि भक्त जनके ऊपर दया करनेके लिये स्वयं सुन्दर शरीर धारण करके उनके सामने अपने रूपको प्रकट किया, हे महाराज! भगवान्का स्वरूप धारण कर प्रकट होनेका यह तात्पर्य है, कि भक्त जनोंकी मनमानी हो जाये, सो ऐसी वासना उनके भक्तोंने की, तब ही उनका चित्त आकर्षित हो गया था। नारायणजीने नाभिके सम्मुख जो अपनी मूर्ति प्रकट की वह स्वतन्त्र थी, उसके सब अंग मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धनकारी थे, इससे वह मूर्ति अतिशय सुंदर और सुखदायक थी ॥ २ ॥ हे राजन्!

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रार्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥ २ ॥ अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितम् ॥ ३ ॥ स्फुटकिरणप्रवरमणिमयमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवो त्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ४ ॥

भगवान्की जो मूर्ति नाभिके सामने प्रकट हुई, उसमें चार भुजा प्रकाशवान् थीं, वह अतिशय तेजस्वी और पीतांबर पहिने, छातीमें श्रीवत्सका चिह्न शोभित हो रहा था और शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणि इत्यादि आभूषणोंसे अत्यन्त शोभायमान लगती थी। अधिक श्रेष्ठमणिजटित मुकुट, कुण्डल, कंकण, कटिमेखला, हार, केयूर, नूपुर, इत्यादि सब भूषणोंकी मनोहर किरणोंकी झलकसे उस मूर्तिका सब शरीर जगमगा रहा था, उस समय ऋत्विक सभासद और यजमान सबने ऐसा मनहरण अद्भुत शृङ्गार किये हुए विष्णु-भगवान्के सुन्दर स्वरूपको देखकर उसका बहुत आराधन कर मस्तक नवाकर विविध भांतिके उपहारद्वारा उनकी पूजा करने लगे, जैसे

दरिद्री संपदाको देख अति प्रसन्न होकर उसका बहुत सम्मान करता है; इसी प्रकार ऋत्विक् प्रभृति लोग स्तुति करते-करते बोले कि ॥४॥ हे पूज्यतम ! तुम परिपूर्ण होनेसे भी हम सरीखे भृत्य जनोंकी पूजा वारंवार स्वीकार करनेके योग्य होओ। हे प्रभो ! हम लोगोंमें इतना सामर्थ्य नहीं है कि आपकी स्तुति कर सकें, आपका स्वरूप जानना महादुर्लभ है, इसलिये हमने सत्पुरुष साधुगणोंके निकट केवल "नमस्कार! नमस्कार!!" इतनी ही स्तुति करना सीखा हैं हे भगवन् ! प्रकृति पुरुषसे परे जो ईश्वर हैं,उनके जो जो नाम और रूप (आकार) लोग कल्पना किया करते हैं वे सब कभी भी आपको स्पर्श नहीं कर सकते, इस लिये उन सब कल्पित नाम रूप आकारके

ऋत्विज ऊचुः ॥ अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नमः इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ५ ॥ सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथानादृते ॥ ६ ॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्द-सलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ७ ॥

द्वारा कौन पुरुष आपका स्वरूप निरूपण करनेमें समर्थ है? ॥५॥ इस मनुष्यकी बुद्धि प्रकृतिके गुणसे प्रपंचमें ही आसक्त रहनेसे स्वयं अपने ऊपर भी उसका अधिकार नहीं, आपके जो सब शिवतम और श्रेष्ठ गुण अपने जनोंके अनन्त पापोंका नाश करते हैं,उन उत्तम गुण गणोंके एक देशका अवश्य वर्णन कर सकता है। इसके सिवाय इस मनुष्यको और किसी प्रकारकी क्षमता नहीं है, अर्थात् ऐसे मनुष्य केवल आपके गुणगणोंका वर्णन करनेमें ही समर्थ हैं ॥ ६ ॥ हे परमेश ! परिजनगण अनुरागके वश होकर गद्गद वचन द्वारा जो आपकी स्तुति किया करते हैं और जल, तुलसीदल, पत्र, दूर्वा तथा पवित्र पल्लवसे आपकी सेवा किया करते हैं, तो आप उससे भी प्रसन्न हो

१. शंका—राजा नाभिने अपने यज्ञमें प्रकट भगवान् वासुदेवको देखा, फिर उनको नमस्कार और स्तुति क्यों नहीं की? इसका क्या कारण ? और जो यज्ञमें ऋषीश्वर मुनीश्वर थे, उन्होंने भगवान्को अनेक-अनेक प्रकारसे नमस्कार और स्तुति की और राजा नाभि दूसरे मनुष्यके समान सम्मुख खड़े रहे, जैसे कुछ यज्ञसे इनका संबंध नहीं, यह बड़ी भारी शंका है ?

उत्तर—राजा नाभि अपने यज्ञमें भगवान्को देखकर स्त्रीसहित अपने नेत्रोंमें जल भर लाये और भगवान् के दर्शन करके ध्यानमें मग्न हो गये। जब राजा नाभि स्त्रीसमेत बोल नहीं सके, पृथ्वीपर गिर पड़े, प्रेमके वशीभूत हो शरीरके रोमांच हो गये, इस प्रकार राजाको प्रेमातुर देखकर ऋषियोंने राजा नाभिकी ओरसे भगवान् वासुदेवकी स्तुति की। इसलिये नाभि राजाने भगवान्को नमस्कार तथा स्तुति नहीं किया।

जाते हैं ॥ ७ ॥ विना प्रीति हम अनेक अंगोंसे परिपूर्ण जो यह यज्ञ करते हैं, इससे आपका कोई प्रयोजन भी दृष्टि नहीं आता ॥ ८ ॥ हे नाथ ! आप सदा स्वतन्त्र साक्षात् स्वयं ही प्रकट हुए हो संपूर्ण पराक्रमके स्वरूपभूत अर्थात् परमानन्दब्रह्मस्वरूप हो, परन्तु हम कामनावाले भक्तोंके निमित्त केवल आपकी उपासना मात्र बन सकती है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! मूर्ख पुरुष स्वयं आपकी श्रेष्ठताको नहीं जानते, सो उनके निकट परात्यर्थ गुणवाली पुराणके द्वारा अपवर्ग (मोक्ष) नाम अपनी महिमा तथा उनकी अभिलाषा सिद्ध करनेके लिये तुम पूजित न होकर भी और दूसरे सापेक्ष व्यक्तियोंके समान दिखाई पड़ते हो, इसलिये हमारी पूजासे आपका कोई उपकार नहीं होगा, सो यह हमारे ही उपयोगी होकर आपने अपना दास जानकर हमको दर्शन दिया ॥ १० ॥ हे पूज्यतम ! यद्यपि आप वर देनेके लिये प्रकट हुए हैं,

अथानयाऽपि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥८॥ आत्मन एवानुसवनमञ्जसा व्यतिरेकेण बोभूयमाना शेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किं तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ९ ॥ तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेय परमविदुषां परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥१०॥ अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥११॥ असंगनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ १२ ॥ अथ कथंचित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ १३ ॥

तथापि हमारे राजाके इस यज्ञमें जब कि वरदाता आप अपने भक्तजनोंके अर्थात् हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए तब तो बस, यही हमारा वर हो गया, अब हम और क्या वर मांगे ? ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आपका दर्शन अति दुर्लभ है, जिन सब आत्माराम मुनिलोगोंका वैराग्य द्वारा तीक्ष्णीभूत ज्ञानरूप अग्निमें अनन्त मल जलकर भस्म हो गया है, उन लोगोंके लिये भी केवल आपका गुणगणपरम मङ्गलदायी होता है, इससे वे सदा ही आपके गुण समूहोंकी स्तुति किया करते हैं ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपके दर्शनसे ही हम लोग कृतार्थ हो गये, तथापि एक वर मांगते हैं; कि भूँख लगने, गिरने जंभाई लेने, अंगड़ाई और दुरवस्थाके समय पर जब कि हम आपको स्मरण करनेमें अस-

मर्थ हों, उस कालमें और ज्वर व मृत्युके समयमें भी आपका गुणसहित नाम हमारी वाणीसे निरंतर निकलता रहे, हे भगवन् ! आपके सब नामोंके प्रभावका हम क्या वर्णन करें, जिनके उच्चारण करते ही सब कलिमल विध्वंस हो जाते हैं। कलिकालमें हरिनामके समान और कोई मोक्षका उत्तम उपाय नहीं है ॥ १३ ॥ हे देव ! हमारी और भी प्रार्थना है, कि आप स्वर्ग और अपवर्गके स्वामी हैं, आपके निकट पुत्रका चाहनेवाला यह राजर्षि आपके समान पुत्रकी इच्छा करता है, जैसे कोई मनुष्य धनवान्से धान्यके ऊपरका छिलका मांगे, ऐसे इस लोकके फल आप समान पुत्रकी प्रार्थना करता है, क्योंकि यह संतान होनेको ही पुरुषार्थ करके समझता है, इस कारण आपसे यह प्रार्थना की है ॥ १४ ॥ हे नाथ ! दूसरे राजर्षिकी यह प्रार्थना कुछ असंगत भी नहीं है, क्योंकि आपकी माया अजेय है, उसकी पदवी कोई नहीं जान सकता, उस आपकी अपराजित मायासे किसीकी बुद्धि पराजित नहीं होती और महापुरुषोंके चरणोंकी उपासना नहीं करनेसे किसीकी

किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भगवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १४ ॥ को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १५ ॥ यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद् देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रति वोढुमविदुषाम् ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥ १७ ॥

बुद्धि विषयरूप विषके वेगसे नहीं घिर जाती है? ॥१५॥ हे अनेक कार्य करनेवाले नाथ ! हमने अति लघु कार्यके लिये यहां आपको बुलाया, हम लोग बड़े मूर्ख हैं; कुछ नहीं जानते, पुत्रको ही परम पुरुषार्थ मानते हैं। हे देवदेव ! आपके प्रति जो हमारी अवहेलना होती है, इसे आप सहन करनेके योग्य हो। हे नाथ ! आप सबको ही एकसा समझते हैं, इससे हम यदि कुछ विरुद्ध वर्ताव भी करें तो भी उससे आपको असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अग्नीध्रसुत नाभि राजाके ऋत्विक्जनोंने इस प्रकार गद्यमय वाणीसे श्रीभगवान्की स्तुति की। उसके पीछे जम्बूद्वीपाधिपति इस नाभि राजाने जिन सब मनुष्योंको वन्दना करनेके लिये नियत किया था, जब वे लोग भगवान्के चरणारविंदके वंदन करनेमें नियुक्त हुए, तब भगवान् वासुदेव दया प्रकट करके यह वचन बोले ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे ऋषिगण ! आप लोगोंके वचन कभी व्यर्थ नहीं होते, परन्तु आपने हमसे बड़ा कठिन वर मांगा, कि उस राजाके हमारे समान पुत्र हो, यह आपकी प्रार्थना सरल नहीं है, बड़ी कठिन है, क्योंकि हमसा दूसरा नहीं है, अपने समान हम ही हैं तो फिर इस राजाके किस प्रकार हम-समान पुत्र हो सकता है ? हम किस प्रकारसे यह तुम्हारी प्रार्थना परिपूर्ण कर सकते हैं ? और तुमने यह वर मांगा है जो कुछ भी हो, ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या होना उचित नहीं है, क्योंकि सब ब्राह्मणगण देवताके तुल्य हैं और ब्राह्मणकुल हमारा मुख है, ऐसा वेदमें कहा है ॥ १८ ॥ इसलिये हमारे समान दूसरा कोई न होनेसे हमको ही नाभिका पुत्र होकर अवतार लेना पड़ा ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीभगवान्‌की यह वार्ता नाभिकी स्त्री मेरुदेवी सुन रही थी और राजा नाभि भी उस समय वहां खड़े थे,

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्य आत्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥ १८ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्यामि आत्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निशामयन्त्यां मेरुदेव्यां पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥ २० ॥ बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्तभगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवतार ॥ २१ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्चम० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इसलिये श्रीभगवान्‌जीने ऋत्विजोंसे जो बात कही वह राजाने भी सुनी, ऐसी आज्ञा नाभिको कर भगवान् वासुदेव अंतर्धान हो गये ॥ ॥ २० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे विष्णुदत्त परीक्षित् ! जब महर्षिलोगोंने यज्ञमें इस प्रकारसे प्रश्न किया तब भगवान् विष्णुजी राजा नाभिके प्रिय करनेकी इच्छा करते हुए, इसके पीछे नग्न तपस्वी, ज्ञानी तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको उपदेश देनेके लिये राजा नाभिके अन्तःपुरमें उनकी रानी मेरुदेवीके गर्भमें शुक्ल शरीर धारण कर ऋषभदेवजीने अवतार लिया * ॥ २१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां नाभि नृपस्य मेरुदेव्याम् ऋषभावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

* भजन–जन्मलियो ऋषभदेव महाराज ॥ परम अनूप स्वरूप मनोहर सब छबि रही विराज ॥१॥ जगतारण संकट निवारण सारण जनके काज ॥ प्रगट ऋषभदेव आनंदनिधि देवनके शिरताज ॥२॥ दियो पूर्ण उपदेश देशांतरमें सुखसाज । था भलियो झटपट दोउ करते बढ़त भक्त जहाज ॥ ३ ॥ घर घर आनंद छयो जगतमें पाप ताप गयो भाज ॥ शालिग्राम भक्त लोगनके हे अद्भुत् अंदाज ॥

दोहा—या चतुर्थ अध्यायमें, ऋषभदेव अवतार। कीन्हों जस कछु राज्य सो, वरणौं मति अनुसार॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! ऋषभदेवजीके उत्पन्न होते ही उनके अंगमें भगवान्के लक्षण सब थे, दाहिने चरणमें वज्र और दाहिने हाथमें चक्र और अंकुशादिके चिह्न प्रकट दिखायी देते थे, और सर्वत्र समभाव, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और बड़ी-बड़ी संपत्तियोंसे जिनका प्रभाव दिन-दिन बढ़ने लगा, यह सब देखकर प्रजा, राज्य, मन्त्री, ब्राह्मण और देवताओंके मनोंमें यही इच्छा थी कि ये ही राजा होकर प्रजाका पालन करें॥१॥ हे महा-

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥१॥ तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥ तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष ॥ तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥

राज! ऋषभदेवजीका आकार कवि लोगोंके वर्णन करनेके योग्य और अतिशय श्रेष्ठ हुआ और वे स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कांति यश इत्यादि गुणोंमें सर्व प्रधान हुए। इसलिये सर्वोपरि होनेसे उनके पिता नाभि राजाने उनका नाम "ऋषभ" रक्खा ❋ ॥२॥ हे परीक्षित्! ऋषभदेवजीके प्रभावका क्या वर्णन करें? एक समय देवराज इंद्रने उनकी उन्नति देखकर ईर्षासे उनके राज्यमें जल नहीं वर्षाया, यह योगेश्वर भगवान् इस वार्ताको जानकर कुछेक हँसे और अपनी आत्मयोगमायाके द्वारा अपने अजनाभ खण्डमें धूम-धामसे

१. शंका—हमने शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा लिखा देखा है कि, क्षत्रियकुलमें जो वालक जन्म लेता है तो उसका नाम वेदकी रीतिके अनुसार ब्राह्मण रखते हैं, परन्तु राजा नाभिने अपने पुत्रका नाम आपही क्यों रक्खा?

उत्तर—सतयुग, त्रेता, द्वापरमें सब प्राणी अपने वालकोंके दो नाम रखते थे, वेदकी रीतिसे तो ब्राह्मणोंसे नाम रखवाते थे और बालकोंके कर्म देखकर उनका नाम आप रखते थे, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर अपने पुत्रोंके कर्म देखकर, दान करके, ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके तव राजा नाभिने अपने पुत्रोंका नाम आप रक्खा; कुछ अभिमान करके वेदकी रीति नहीं त्यागी।

जलकी वर्षा की ॥३॥ जो कुछ हो, अभिलाषानुरूप सन्तान प्राप्त होनेसे राजा नाभि अत्यन्त हर्षमें भरकर अतिशय विह्वल हुए और भगवान् पुराण पुरुष जिन्होंने अपनी इच्छानुसार मनुष्यका अवतार स्वीकार किया, ऐसे भगवान् वासुदेवका पुलकायमान शरीर और गद्गद अक्षरोंवाली वाणीसे 'हे वत्स! हे तात!' इस प्रकारके स्नेहयुक्त वचन पुकारकर बड़े अनुरागसे उनका लालन-पालन करके अतिशय प्रीति करने लगे। हे राजन्! राजा नाभिका इस प्रकार आचरण करना असंभव नहीं है, क्योंकि यद्यपि साक्षात् भगवान्ने उनके गृहमें अवतार लिया, तथापि मायामोहित होनेके कारण "यह हमारे पुत्र हैं" ऐसी बुद्धि करके वह परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥४॥ जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब नाभि राजाने देखा कि पुत्र अब सब भांति योग्य हो गया है, पुरवासी लोग और अमात्यवर्ग भी सब

नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजास्त्वमरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥ विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनःकालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥ यस्य हे पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति॥ को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥ अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

इसके अनुरागी हो रहे हैं, यह समझ धर्मकी मर्यादा रक्षण करनेके लिये ऋषभदेवजीको राज्याभिषेक दे और उनको ब्राह्मणोंकी गोदमें रखकर अपनी स्त्री मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रममें चले गये और वहां जाकर निर्मल व तीव्र तपस्याके प्रभावसे चित्तको सावधान कर नरनारायण नामक भगवान् वासुदेवकी उपासना करते-करते कुछ काल उपरांत समय पाकर योगकी समाधिके द्वारा जीवन्मुक्त हो गये ॥५॥ हे पाण्डवेश! उस नाभि राजाके विषयमें महर्षि लोग दो श्लोकोंका पाठ किया करते हैं, उनका अर्थ यह हैः—भगवान् नाभिके वह प्रसिद्ध कर्म उनके पीछे और कौन पुरुष करनेको समर्थ होगा? वे क्या साधारण पुरुष हैं जिनके शुद्ध कर्म द्वारा भगवान् हरि स्वयं उनके

यहां पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे ॥६॥ और उन राजर्षि नाभिके सिवाय और कौन ब्रह्मण्य (ब्रह्मतेजसे युक्त) है ? उनके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणादिसे पूजित होकर मन्त्रके बलसे यज्ञेश्वर भगवान्के दर्शन करनेमें समर्थ हुए थे ॥७॥ जब राजा नाभि पुत्रको राज्य तिलक देकर चले गये तब भगवान् ऋषभदेवजीने अपने 'अजनाभ' नामके राज्यखण्डको कर्म क्षेत्र मानकर लोगोंके उपदेशार्थ कुछेक दिन विद्या पढ़नेके लिये गुरुकुलमें वास किया । फिर गुरुलोगोंकी आज्ञा लेकर घरको आये और लोगोंको धर्मशिक्षा देना और श्रुतिस्मृतिरूप दोनों प्रकारकी कर्मविधिका अनुष्ठान करने लगे । फिर इन्द्रने उनको जयन्तीनामकी एक कन्या दी थी, समयानुसार उसी स्त्रीमें उनके एक सौ (१००)

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मंगलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥ अथ ह भगवान्नृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ ८ ॥ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मवर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृक् विदर्भः कीकट इति नवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजन इति भगवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ ११ ॥

पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उन सौ पुत्रोंमेंसे भरत सबसे बड़े थे, वे महायोगी और श्रेष्ठ गुणसम्पन्न थे । उनके ही नामसे लोकमें इस खण्डको भारतवर्ष कहते हैं ॥९॥ हे महाराज ! ऋषभदेवजीके और जो निन्यानवे (९९) पुत्र थे; उनके मध्यमें कुशावर्त, इलावर्त ब्रह्मवर्त मलय केतु, भद्रसेन, इंद्रस्पृक्, विदर्भ और कीटक, यह नव नव्वेसे बड़े थे, परंतु भरतजीके अनुगत थे ॥१०॥ हे राजन् ! उन नव पुत्रोंसे छोटे और नव जन अर्थात् कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्यलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन, यह सब भगवत् धर्मके बतलानेवाले परम भक्त जन थे, इनका चरित्र भगवान्की महिमामें बढ़ाकर सबका चित्त शांत करनेके लिये पीछेसे (ग्यारहवें स्कंधमें)वर्णन करेंगे ! उसमें वासु-

देव और नारदजीका संवाद रहेगा ॥११॥ इन सबमें छोटे जयन्तीके जो इक्यासीवें (८१वें) पुत्र थे, वे पिताकी आज्ञा पालनेवाले, अतिशय विनीत, वेदोंके जाननेवाले थे, अतः वे यज्ञशील विशुद्ध कर्म करनेसे ब्राह्मण हो गये ॥ १२ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि हमारे प्रभु अनर्थकी परंपरासे दूर रहनेवाले और शुद्ध आनंद व ज्ञानस्वरूप ईश्वर हैं, तथापि अनीश्वरवादियोंके तुल्य विविध कर्म करते थे, इसका कारण यह था कि समयानुसार जो धर्म उत्पन्न हुआ है,उसको स्वयं आचरण करके वे अज्ञानी लोगोंको शिक्षा देते थे और वे परमदयालु, समदृष्टि शांतचित्त और सबोंसे सुहृद्भाव रखनेवाले ऋषभदेवजी यद्यपि दयावान् होकर वे धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, भोग, मोक्ष

यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥ १२ ॥ भगवान्नृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १३ ॥ यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १४ ॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादि भिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥ १५ ॥ द्रव्यदेशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १६ ॥

संग्रहके द्वारा घरोंमें लोगोंको नियमित करते थे ॥ १३ ॥ संसारकी रीति है, कि जो बड़े-बड़े महात्मा और राजा लोग जैसा-जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही दूसरे लोग भी कर्म किया करते हैं, क्योंकि कहा भी है कि–"यथा राजा तथा प्रजाः–" इसी कारणसे भगवान् ऋषभदेवजी इस प्रकारके कर्म करने लगे थे ॥ १४ ॥ यद्यपि वे सब धर्मोंके बतलानेवाले वेदके रहस्य स्वयं जानते थे तो भी ब्राह्मणोंके कहनेपर जैसा कुछ वे लोग कहते थे उसीके अनुसार साम, दाम, दंडादिक उपायोंसे सब प्रजाओंको शिक्षा देते थे ॥१५॥ उन्होंने सब भाँतिसे विधिपूर्वक सौ-सौ वार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके वह सब यज्ञ साधारण नहीं हुए। द्रव्य, देश, काल, यौवन, श्रद्धा, ऋत्विक्

आदि द्वारा अनेक देवताओंके अर्थ अतिशय बढ़-चढ़कर हुए थे ॥ १६ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी इस भारतवर्षके स्वामी होकर सब प्रकारसे इस देशकी रक्षा करने लगे। उस समय किसी पुरुषकी दूसरे किसी पुरुषसे अपने लिये आकाश कुसुमकी नाईं कुछ भी प्रार्थना करनेकी इच्छा नहीं होती थी और कोई भी पुरुष दूसरेकी वस्तुपर दृष्टि नहीं करता था, अधिक क्या कहें ! ऋषभदेवजीके राज्यके समय प्रजाओंको अपने स्वामीके लिये क्षण-क्षणमें वृद्धि, शील, स्नेह, उद्रेकके सिवाय और कुछ चाहना नहीं थी ॥ १७ ॥ यह भगवान् ऋषभदेवजी एक समय सब देशोंमें घूमनेके लिये निकले। चलते-चलते ब्रह्मावर्त वर्षमें पहुँचे, वहां बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें प्रवेश करके देखा

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १७ ॥ स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तं गतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महा० पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ऋषभ उवाच ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टन्कामानर्हते विड्भुजां ये॥ तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥ १ ॥

कि हमारे पुत्र गण भी बैठे हैं! यद्यपि वे संमत चित्त थे और विनय नम्र व प्रणय द्वारा सुयंत्रित थे, तो भी प्रजाके उपदेश करनेके लिये उनको सबके सामने शिक्षा प्रदान करके वक्ष्यमाण वचन बोले * ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायांऋषभदेवस्य शतसन्तानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा-ऋषभदेव वर्णन कियो, निज पुत्रनसो ज्ञान। परमहंस अरु मोक्षपद, सोही कहौं बखान ॥ ऋषभदेवजी बोले कि, हे पुत्रगण! जो सब जीव मनुष्य लोकमें जन्म लेकर मनुष्य देहको प्राप्त हुए हैं; उनको यह देह दुःखके देनेवाले

* कवित्त—ब्रह्म तो वही है सच्चिदानंदघन, निर्विकार निर्विकल्प स्वयं नित प्रकाशे हैं ।। माया तो वही है जो रज तम सतगुणको धार, नानारूप नामों में उपजै और बिनाशे हैं ।। ईश्वर तो वही है निजरूपको न भूले कभी, माया गहै माया से पृथकही भासे हैं ।। जीव तो वही है जो अविद्या संयोग पाय, भूला निज रूप भ्रम फांस ना निकासे हैं ।।

समस्त विषयोंमें नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि यह सब विषय भोग तो विष्ठा-भोगी वराह आदिकोंको भी मिल जाता है, इस लिये हे सब पुत्रो ! दिव्य तपस्या करो, तपस्या ही श्रेष्ठ वस्तु है, क्योंकि इससे अंतःकरण शुद्ध हो जाता है और अंतःकरण शुद्ध होनेसे परब्रह्मानंदकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ पंडितलोग महात्मा जनोंकी सेवाको मुक्तिका द्वार और स्त्री परिवारादिके संगको संसारका कारण कहते हैं। अर्थात् नरकका द्वार है, परन्तु महात्माजन किसको कहना चाहिये, तुम सुनो-जो सबका सुहृद हो, शांत चित्त हो,क्रोधरहित हो, सदाचारी हो और जिसका चित्त सब प्राणियोंमें समान है वे ही महात्माजन हैं ॥ २ ॥ और सब पुरुषोंमें मैं जो ईश्वर हूँ मुझमें प्रीति करके जो पुरुष उसको ही पुरुषार्थ समझते हैं, जिसकी विषयासक्ति सब पुरुषमें तथा पुत्र, कलत्र और मित्रादि युक्त गृहमें प्रीति नहीं है और जो कि

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ॥ महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥ २ ॥ ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ ३ ॥ नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ॥ न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ ४ ॥ पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ॥ यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥ ५ ॥ एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥

लोकमें देहयात्रा निर्वाह करनेके अतिरिक्त अधिक धनमें जिनकी चाहना नहीं है, वे ही मनुष्य महात्माजन हैं ॥३॥ हे पुत्रो ! वह मनुष्य चतुर होकर जब कि इंद्रियोंकी प्रीतिके लिये परिश्रम करता है, तब निःसंदेह मतवालासा होकर विरुद्ध कर्म (पाप) करता है। एक वारके विरुद्ध कर्म करनेसे आत्माको दुःख देनेवाला यह देह उत्पन्न हुआ है, भला फिर भी उस विरुद्ध कर्मका वारंवार करना अच्छा है ? हम तो इसको अच्छा नहीं समझ सकते ॥ ४ ॥ पुरुष जबतक आत्मतत्त्वके जाननेकी इच्छा नहीं करता, तभीतक उसके निकट अज्ञानतासे आत्मस्वरूपका तिरस्कार होता है ॥ ५ ॥ क्योंकि जबतक क्रिया रहती है, तबतक यह मन कर्ममें लगा रहता है और वह कर्म स्वभाव

ही शरीरके बंधनका कारण है। इससे पहला किया हुआ कर्म ही मनको अपने वशमें अर्थात् फिर भी कर्ममें लगाता है। जबतक अविद्यासे उपाधि युक्त आत्मस्वरूप जो मैं वासुदेव हूँ, मुझमें प्रीति नहीं करता तबतक देहके इस संबन्धसे जीव नहीं छूटता ॥ ६ ॥ हे वत्सगण ! केवल देहसे मुक्ति नहीं होती, इतना ही नहीं वरन् और अनर्थ भी वर्तमान रहते हैं क्योंकि स्वार्थके विषयमें प्रमत्त रहनेसे पुरुष विवेक युक्त होकर सब इंद्रियोंकी चेष्टाको मिथ्या नहीं जानता, अर्थात् यह सब आत्मासे संबन्ध नहीं रखती, ऐसा नहीं निश्चय किया तो भी आत्मस्वरूपके भूल जानेसे मैथुन सुख पापगृहको प्राप्त होकर संताप पाता है ॥७॥ वत्सगणो ! इस संसारमें स्त्रीके साथ मिलनेसे सुख प्राप्त होता है, संताप नहीं होता, ऐसा जो कहते हैं, वे महाभ्रममें पड़े हुए हैं, क्योंकि स्त्री और पुरुष इन प्रत्येकके जन्म लेते ही

यदा न पश्यत्ययथागुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥ ७ ॥ पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेनं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥ ८ ॥ यदा मनो हृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥ हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासयातपसेहानिवृत्त्या ॥ १० ॥

एक एक हृदयग्रंथि होती है और फिर जब कि पुरुष स्त्रीके साथ मिल जाता है, तब और एक-एक हृदयग्रंथि हो जाती है, वह बहुत बड़ी और दृढ़ग्रंथि पड़ती है। प्रत्येक हृदयग्रंथिसे केवल देह और सब इंद्रियोंमें "हम हमारा" इस प्रकारके ज्ञानसे मोह उत्पन्न हो जाता है। इस दृढ़ हृदयग्रंथिसे गृह, क्षेत्र, पुत्र कुटुम्ब, धन, इत्यादिके विषयमें महामोह उत्पन्न होता है। इस कारण संसार-आश्रममें स्त्रीके साथ मिलना सुखका कारण नहीं। वरन् महामोह उपजानेवाला और दुःख दिखानेवाला है ॥८॥ परन्तु ऐसा भी मत समझो कि पुरुष स्त्रीके साथ मिलनेसे उसका यह भाव कभी नहीं छूटता, जब कि पुरुषकी कर्मसे बँधी हुई दृढ़ मनरूपी हृदयकी गांठ उस मिथुनी भावसे निवृत्त हो जाती है, तब संसारका हेतुभूत जो अहंकार है, उसको छोड़कर मुक्तिरूप परमपदवीको वह पहुँच सकता है॥९॥हे पुत्रो ! यदि कोई

कहे कि अहंकारका त्याग करना किसी प्रकारसे नहीं हो सकता, ऐसा नहीं, अहंकारके त्यागनेके चौबीस २४ कारण हैं। जैसे परमहंस और शुक्लस्वरूप मैं हूँ मुझमें भक्ति करना १, मुझमें अनावृत्ति करना २, तृष्णा रहित होना ३, सुखदुःखके भारको सहना ४, इस लोक और परलोकमें सब प्राणियोंके दुःखको देखना ५, तत्त्व जिज्ञासा ६, तपस्या ७, काम्यकर्मका छोड़ देना ८ ॥१०॥ मेरे निमित्त कर्म करना ९, मेरी कथा कहना-सुनना १०, जो सब पुरुष मेरे भक्तोंको ही परम आराधना करने योग्य देवता जानते हों, उन मेरे भक्तोंका सत्सङ्ग करना ११, मेरे गुण कीर्तन करना १२, वैररहित होना १३, सबको समान समझना १४, उपसम अर्थात् इंद्रियोंका रोकना १५, आत्मा शरीर और घरमें "यह मेरा यह पराया" ऐसी बुद्धि को छोड़नेकी वासना करना १६ ॥११॥ अध्यात्म शास्त्र (वेदान्त शास्त्र) का विचारना १७,

मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसङ्गाद् गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ११ ॥ अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सम्यक् ॥ सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येणशश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचाम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥ कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्धमविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ॥ अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग् व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥१४॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥ इत्थंविमन्युरनुशिष्यादज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ १५ ॥

निर्जनमें वास करना १८, प्राण इंद्रिय और मनको भलीभांति जीतना १९, शास्त्रमें श्रद्धा रखनी २०, ब्रह्मचर्य्य धारण करना २१, कर्तव्य कर्मका त्याग नहीं करना २२, वचनोंको नियममें रखना २३ ॥१२॥ सर्वत्र हमारे अनुभव करनेका निपुण अनुभव तत्त्व ज्ञान और समाधि २४, इन सब साधनोंमेंसे धैर्य, यत्न और ज्ञान युक्त होकर अहंकारका नाम उपाधिका त्याग करे॥१३॥ हे पुत्रो ! इस प्रकारसे जब अहंकार दूर हो जायँ, तब फिर सब कर्मोंका आधाररूप हृदयमें जो ग्रंथिका बंधन, जो अविद्यासे पड़ गया है उसको सावधान होकर उपायसे, जैसा कि मैंने उपदेश किया है, वैसे ही भलीभांतिसे त्यागकर पश्चात् इस उपायसे भी अलग हो जाना ॥१४॥ हे पुत्रगण ! जो हमारे लोकके जाननेकी कामना

करे, हमारा अनुग्रह रूप प्रयोजनका जो आशय है वह पिता-पुत्रोंको और गुरु-चेलोंको, राजा-प्रजाओंको ऐसी शिक्षा दें । परन्तु उपदेश किये जानेपर भी यदि कोई सिखाया हुआ विषय न करे, तो उससे सिखानेवालोंको क्रोध न करना चाहिये। कारण कि अधिक करके जो पुरुष तत्त्व नहीं जानते, वे अच्छा समझकर कर्म ही करनेमें लगे हुए हैं उनको फिर सकाम कर्मोंमें लगाना चाहिये, क्योंकि फिर सकाम कर्मोंमें लगाना अन्धोंको कुएँमें डालनेके समान है, फिर उनसे क्या परिश्रम हो सकता है ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष बहुत ही कामना करता है और उसकी दृष्टि अच्छा-बुरा देखनेमें अन्धी है और धनकी चेष्टा करता है, किंचित् सुखके कारण परस्पर वैर करना चाहता है, वह मूर्ख इस बातको नहीं जानता, कि अन्तमें मुझको दुःख प्राप्त होगा, वह दुःखको सुख समझता है॥१६॥ऐसे कुबुद्धि व्यक्ति

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्तदुःखं च न वेद-मूढः ॥ १६ ॥ कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्त्तमानम् ॥ दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथाऽन्धम् ॥ १७ ॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ॥ दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ १८॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ॥ पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ ॥ १९ ॥

अविद्यामें पड़े रहते हैं, उनको देखकर कौन सदय विद्वान् जानबूझकर इस विषयमें उसको प्रवृत्त करायेगा ? अर्थात् कोई भी उससे वियोग नहीं करायेगा । जो अन्धा मनुष्य बुरे कर्ममें पड़ जाय तो उसको बुरे मार्गमें जाता हुआ देखकर क्या कोई विद्वान् और सावधान मनुष्य उस अन्धेको उसी मार्गमें जानेका उपदेश देगा ? ॥ १७ ॥ परन्तु इस प्रकारसे संसारको प्राप्त हुए जीवको परम भक्तिके मार्गका उपदेश दे करके मुक्त करना आवश्यक है। जो उसको इस संसारसे नहीं छुड़ाता वह उसका गुरु नहीं, सगा नहीं, पिता नहीं, माता नहीं, देव नहीं और पति भी नहीं है। वरन् शत्रु कहना चाहिये ॥१८॥ हे पुत्रगण ! हमारा यह मनुष्यरूपका शरीर अवितर्क्य अर्थात् अपनी इच्छासे

हमने धारण किया है । भाव यह है कि मैं प्राकृत मनुष्य नहीं हूँ और हमारा हृदय जिसमें सत्त्व वर्तमान है, वैसा यह शुद्ध तत्त्वस्वरूप है, क्योंकि हमने अधर्मको पीठपर करके निकाल दिया है, इस कारण श्रेष्ठ पुरुष मुझको ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ १९ ॥ तुम सब मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो इसलिये द्वेष त्यागकर सब मिलकर स्थिर बुद्धिसे अपने सहोदर इन बड़े भ्राता भरतजीकी सेवा करो, हे पुत्रो ! इनकी सेवा करनेसे तुम्हारा प्रजापालन और मेरी सेवा भी हो जायगी, अर्थात् यह भरत तुम्हारे सबसे बड़े सहोदर भाई हैं, सो इनकी आज्ञामें रहना तुमको आवश्यक है, बस ऐसा करनेसे तुम्हारे सब ही कर्तव्य कर्म सफल हो जायँगे ॥ २० ॥ ऐसे ही ब्राह्मणोंकी सेवा करना भी तुम्हारा धर्म है, क्योंकि चेतन-अचेतन सब प्राणियोंमें स्थावर श्रेष्ठ हैं । स्थावरमें सर्पादि जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं जङ्गमसे

तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥ २० ॥ भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ॥ ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ २१ ॥ देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ॥ भवः परः सोऽथ विरिञ्चिवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ॥ यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि कामं न तथाऽग्निहोत्रे ॥ २३ ॥

ज्ञानयुक्त पशु श्रेष्ठ हैं, पशुओंसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं । मनुष्योंसे भूत प्रेतादि प्रथम गण श्रेष्ठ हैं, प्रथम गणसे गन्धर्व गण श्रेष्ठ हैं, गन्धर्व गणोंसे सिद्धगण प्रधान हैं, सिद्धोंसे किन्नरगण श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ किन्नरोंसे असुरगण श्रेष्ठ हैं, असुरोंसे देवता लोग बड़े हैं । देवताओंसे इंद्र बड़े हैं, इन्द्रसे ब्रह्मपुत्र दक्षादि श्रेष्ठ हैं । दक्षादिकोंसे शङ्कर श्रेष्ठ हैं, यह शङ्कर ब्रह्माजीके बलसे बलवान् हैं, इस कारण उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, ब्रह्माजी हमारी पूजा करते हैं, इस कारण ब्रह्माजीसे हम श्रेष्ठ हैं हम इन ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, इससे ब्राह्मणगण हमसे भी श्रेष्ठ होनेके कारण सबके पूजनीय हैं । इस कारण तुम अवश्य विप्रोंके चरणोंकी सेवा करो ॥ २२ ॥ फिर वहां बैठे हुए ब्राह्मणोंको पुकार सब बोले, कि हे

विप्रगण ! हम किसी प्राणीको विप्रके समान नहीं देखते । और ऐसी आशा भी नहीं है, कि किसी प्राणीको ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ देखेंगे अर्थात् जब कि हमारे मतके अनुसार ब्राह्मणके समान कोई नहीं तब ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ कोई कहांसे होगा ? ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ क्यों है, उसे कहता हूँ, तुम सुनोः-मनुष्यलोग श्रद्धा सहित भलीभांति जो ब्राह्मणके मुखमें अन्नादिका होम करते हैं (अर्थात् उनको भोजन कराते हैं) सो उनसे हमारा भोजन होता है, अग्निमें होम करनेसे हमारा वैसा तृप्तिकर आहार नहीं होता ॥ २३ ॥ और जो ब्राह्मण इस लोकमें हमारी वेदरूप प्राचीन मूर्ति धारण किये हुए हैं और जिनमें परम पवित्र सत्त्वगुण, शम (मनको वशमें रखना), दम (इन्द्रियोंको रोकना), सत्य, दया, तपस्या, तितिक्षा, (सहनशीलता) और प्रताप आदि गुण विराजमान हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ मैं किसको समझूँ ? ॥२४॥

धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥ २४ ॥ मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ॥ येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥ २५ ॥ सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि ता ध्रुवाणि ॥ संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥ २६ ॥ मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २७ ॥

हे विप्रगण ! ब्राह्मणोंके सन्तोषकी वार्ता क्या कहूँ ? हम जो अनंत और परात्पर विष्णु स्वर्ग और अपवर्गके अधिपति हैं, हमसे भी तो वे कुछ प्रार्थना नहीं करते, इसलिये उनकी अन्यराज्यादि लेनेकी इच्छा कब हो सकती है ? अर्थात् कभी सम्भव नहीं हो सकती । बस वे लोग अकिंचन हैं, केवल मेरी भक्ति करते हैं । फिर भला वे और किसीसे किस पदार्थकी प्रार्थना करेंगे ? ॥ २५ ॥ हे पुत्रो ! स्थावर जङ्गम जितने भूत हैं, उन सबमें हमारा निवास जानकर तुम क्षण-क्षणमें उनका सम्मान करो । जिससे तुम्हारी दृष्टि मत्सरादि दोषोंसे रहित हो जाय । हे वत्सगण ! सर्व जीवोंका सम्मान करना है हमारी पूजा है ॥ २६ ॥ और हमारी पूजा करना ही मन, वचन, चक्षु, व अन्य

इंद्रियोंके व्यापारका साक्षात् फल है। हमारी पूजाके विना पुरुष महामोहमय यमकी फांसीसे किसी प्रकार नहीं छूट सकता ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! महानुभाव भगवान ऋषभदेवजी यद्यपि उनके पुत्रगण सब प्रकारसे स्वयं ही शिक्षित थे, तथापि संसारी लोगोंको उपदेश करनेके लिये पुत्रोंको इस प्रकारका उपदेश देकर आप शांत स्वभाव और कर्म-बन्धनसे रहित प्रधान मुनियोंकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्यलक्षण और परमहंस धर्म सिखानेकी वासनासे अपने सम्मुख पुत्रोंमें बड़ा पुत्र महाभागवत और महाभागवतोंका दास भरत था, उसको पृथ्वीका पालन करनेके लिये राज्यका भार सौंपकर उनका शरीरमात्र परिग्रह रह गया तब संसारका मायामोह त्याग उन्मत्तकी

श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान्स्वमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपसमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रहउन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २८ ॥ जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥ २९ ॥ तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटखर्वटवाटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणेसदपदेश उभयानुभवस्वरूपेणस्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३० ॥

नाईं दिगंबर वेष किये; खुले बाल रहकर अग्निहोत्रकी अग्निको अपने रूपमें ही आरोप कर संन्यास धारण करनेके लिये ब्रह्मावर्तसे चल दिये ॥२८॥ लोग उनसे बोलते हैं तो भी वे उनके बीचमें जड़, मूक, अन्धे, बहिरे, पिशाच, मतवालेके समान विना बोले खड़े रहते थे, क्योंकि उन्होंने मौनव्रत ग्रहण कर लिया था और अवधूत अर्थात् संन्यासीके सदृश उनका वेष हो रहा था॥२९॥वे इस प्रकारसे इकले पुर, ग्राम, खान, किसानोंके ग्राम, पुष्पादि वाटिका, सेना निवासके डेरे, गोपस्थान, गोशाला यात्रियोंके मिलनेके स्थान, पर्वत, पुष्पादि वन और मुनियोंके आश्रम इत्यादि जहां ही जाते थे, उस स्थानके ही मार्गमें मक्खियाँ जिस प्रकार बनैले हाथीको व्याकुल करना चाहती हैं, वैसे ही दुष्ट दुरात्मा

लोग इन्हें भय दिखलाते, ताड़ना करते, शरीरपर पेशाब कर देते, थूँक देते, पत्थर, विष्ठा और धूलि फेंकते, संमुख अधोवायु छोड़ते और दुर्वचन आदिक अनेक प्रकारकी दुष्टता करते थे, परन्तु ऋषभदेवजी इन सब बातोंको कुछ भी नहीं गिनते थे क्योंकि यह शरीर असत्य पदार्थोंका स्थान है। मिथ्यामय जो यह सब संसार नाममात्रका सत्य है, इसमें असत्का अनुभवरूप जो अपनी ममता और अहंकारकी स्थिति है, उसके द्वारा उनका अपना मेरा इस बातका अभिमान दूर हो गया था इसलिये कोई बात भी उनके मनमें किसी प्रकारका विकार न उपजा सकी, सदा अकेले पृथ्वीपर विचरते रहते थे ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके हाथ, पैर, वक्षस्थल, कन्धे, आदि अंग अतिशय कोमल थे और भलीभांति सुडौल होनेसे सब ही मनोहर शोभा धारण कर रहे थे और वह आप ही स्वभावसे सुन्दर थे और स्वाभाविक हँसनेसे उनके

अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥ ३१ ॥ यर्हि वाव स भगवाँल्लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥ ३२ ॥

मुखपर अत्यंत शोभा विदित होती थी, दोनों नेत्र नवीन कमलदलके समान चौड़े और लंबे व अरुणवर्ण थे, उसमें सन्तापके नाश करने वाले तारे झलक रहे थे और कपोल, कर्ण, कण्ठ, नासिका, यह सब अंग बराबर और सुशोभित थे। यद्यपि गूढ हास्ययुक्त वदनके महोत्सव निहार कर पुरनारियोंके मनमें मदन उत्पन्न हो जाता था, तथापि अग्रभाग पद कपिशवर्ण, जटायुक्त, कुटिल केशभार लम्बा होनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उनका शरीर यत्न न करनेसे मलिन हो रहा है। इस कारण उस समय वह ऐसे जान पड़ते थे, जैसे किसीको ग्राहने ग्रस लिया हो॥३१॥जब उन्होंने विचारा कि लोग बहुत तंग करते हैं और ऐसे योगका साधन नहीं होगा, क्योंकि संसारके लोगोंका संग दुःखका मूल है, तब इन सबसे पीछा छुड़ानेके लिये उन्होंने अजगर नामक व्रत धारण किया अर्थात् एक ही स्थानमें रहकर

शयन करना, भोजन करना, जल पीना, चर्वण करना, मल मूत्र त्याग करना, इत्यादि क्रियायें करनी उन्होंने आरंभ कर दीं और विष्ठाके ऊपर लोटने लगे, इससे शरीरके बहुत अंगोंमें विष्ठा लग गया॥३२॥परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि उनके विष्ठामें दुर्गन्धिका नाम नहीं था, वरन् उसकी सुगंधिसे वहाँकी पवनतक अतिशय सुगंधित हो गयी, उस पवनसे उस स्थानके निकट दशयोजन तक सुवासित

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात्सुरभिं चकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥ ३४ ॥

हो गया ॥ ३३ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होकर इस प्रकार गौ, मृग, एवं कागके तुल्य आचरण करने लगे, कभी चलते-चलते, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे-बैठे ही भोजन, पान और मल-मूत्र त्याग कर देते थे, इससे गौ, वा मृग, अथवा कागके

---

१. शंका—आजतक हमने शास्त्र-पुराण बहुत सुने परन्तु किसी मनुष्यके पुरीषकी प्रशंसाका वर्णन किसी कविने नहीं किया। भगवान्‌के अवतार भी हुए उनके पुरीषकी प्रशंसा किसीने नहीं की और यहाँ लिखा है, कि, ऋषभदेवजीके पुरीषकी सुगंधित पवनके प्रशंगसे दशयोजन अर्थात् ४० चालीस कोसके घेरे में चारों ओर सब दिशाओंमें महकती रहती थी। यह आश्चर्य होता है कि मलमें सुगंध किस प्रकार हुई? जैसे कीड़ा अपनी पीठपर पर्वतको धरकर चले। मच्छर, माखी; डाँस यह सब समुद्रके जलको सोख जाँय, यह आश्चर्य बातें हैं, परन्तु यह सबसे बढ़कर आश्चर्ययुक्त बात है कि पुरीषमें सुगंधि कैसे हुई यह सब शंकाओंसे बढ़कर शंका है?

उत्तर—जैसे बालकोंके रोग दूर करनेके लिये माता, पिता, भाई-भौजाई प्रभृति अनेक उपाय करते हैं कि, किसी प्रकार औषधि खाले परन्तु जब वह औषधि नहीं खाता तो उसको प्यार करके मीठी-मीठी वस्तुका लोभ दिखाते हैं कि ले बेटा यह अमृती है, यह बतासे हैं, यह हम अपने बेटेको पेड़ा देते हैं; परन्तु वह होती कड़वी दवाई ही है और मीठे पदार्थोंका नाम इस लिये लिया जाता है कि किसी प्रकार पुत्रका रोग जाता रहे। ऐसे ही सब संसारके जीव भ्रष्ट हो रहे हैं, उन प्राणियोंको मोक्ष देनेके लिये भगवान् लोभ दिखाते हैं। ऋषभदेव भगवान् मोक्षमार्गको नष्ट देखकर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विचार किया। हमको तो बहुत दिन मृत्युलोकमें रहना ही नहीं और विना बहुत दिनके, सत्संगसे मोक्षमार्ग प्रकट नहीं हो सकता, ऐसा विचार कर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विष्ठामें सुगंधि उत्पन्न करके जगत्‌को दिखाया कि, सत्संगमें ऐसा चमत्कार है। ऐसे अद्भुत चमत्कारोंको देखकर सब संसारके लोग इस लोभमें फँस जायेंगे और इससे अधिक और कोई उत्तम उपाय नहीं है; यह लालच दिखाकर लोगोंसे कहने लगे कि, हे भाइयो! मोक्ष मार्गका सेवन करो, देखो! ऋषभदेव मोक्ष मार्गका सेवन करते हैं, तो जिनके मलमें चालीस कोसतक अतर-फुलेलके सी सुगंधि आने लगी, तो इनको यमका भय क्यों होगा? आप लोग भी मोक्षमार्गका सेवन करेंगे तो आपकी भी ऐसी ही कीर्ति और शक्ति होगी।

तुल्य उनके समस्त आचरण हो गये थे ॥३४॥ हे राजन् ! योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभदेवजी इस प्रकार लोगोंकी भीड़ निवारण करनेके लिये और योगियोंको किस प्रकारका आचरण चाहिये, उसके दिखानेके लिये विविध भांतिकी योगचर्य्या करते थे, परन्तु वे स्वयं भगवान् और अपने स्वरूपभूत केवल परब्रह्ममें देहादिके अनुसंधानरहित और परम महत् अर्थात् उत्तरोत्तर शतगुण रूपसे बढ़ा हुआ जो आनंद है, वह उनका स्वरूप है ! और ऐसे सब प्राणियोंके आत्मा जो वासुदेव हैं इस कारण उपाधि भाव परित्याग करनेसे स्वतःसिद्ध व समस्त फलोंसे भरपूर थे । इस कारणसे आकाशगमन, मनके समान शरीरका वेग होना, अंतर्धान होना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना और दूरकी

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानान्तरोदरभवेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धान-परकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ राजोवाच ॥ न नूनं भगवत आत्मारामाणां योग समी-रितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥

वस्तुको ग्रहण कर लेना आदि जो योगकी सिद्धियें हैं वे यदृच्छासे प्राप्त हो गयी थीं, परन्तु ऋषभदेवजीने अपने मनसे उनका आदर नहीं किया था * ॥३५॥ इसपर एक कवित्त है:—इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भा० टी० श्रीऋषभदेवानुचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ दोहा–गर्व रहित तनुतज ऋषभ, षडध्यायके माहिं । जारे दावानलहि जो, देखत देखै नाहिं ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! जिन पुरुषोंकी आत्मामें ही रति है, उनकी योगसे प्रदीप्त हुई ज्ञानरूप अग्निमें कर्मबीज, (रागद्वेषादिक) दग्ध हो जाते हैं और उनके पास यदृच्छासे सिद्धियां आजाती हैं तो उनके क्लेशकी देनेवाली हो नहीं सकतीं, फिर किस लिये भगवान् ऋषभदेवजीने

* कवित्त–आयेको हर्ष नहीं गयेको शोक नहीं कैसो निर्द्वन्द्व भयो समझनेकी बात है । देह नेह नेर नहीं लक्ष्मीको हेर नहीं मनको कहूँ फेरे नहीं पाहन सम गात है । लोकनकी रीति नहीं काहूँ सों प्रीति नहीं हार और जीत नहीं वण न जात है । ऐसो जब ज्ञान होत तबही कुछ ध्यान होत ब्रह्मके समान होत ब्रह्म में समात है ॥ १ ॥

यदृच्छासे आयी हुई सिद्धियोंका अनादर किया ? ॥१॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन् ! तुमने कहा वह सत्य है, परन्तु इस पृथ्वी पर कुछ एक बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार शठ किरात मृग पकड़ लेनेपर भी उसका विश्वास नहीं करता ऐसे ही चंचलतायुक्त इस मनके सम्यक् रूपका विश्वास नहीं करते ॥२॥ इस कारण तत्त्वोंके जाननेवालोंने कहा है, कि मन अत्यन्त चंचल है अतएव कहीं किसीके साथ मित्रता करनी न चाहिये, क्योंकि इस प्रकार मनका विश्वास करनेसे शिवजीकी बहुत कालसे संचित की हुई तपस्या विष्णुजीकी मोहिनी रूपको देखकर क्षणमात्रमें क्षीण हो गयी थी ॥३॥ हे राजन् ! इसका कारण यही है कि जो योगी इस प्रकारके चंचल मनका विश्वास करता है, उसका मन जिस प्रकार विश्वासी पतिकी व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्रोंको अवकाश देकर पतिको मरवा डालती है, वैसे ही कामदेवको

ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किं त्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छन्ते ॥ २ ॥ तथा चोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥ ३ ॥ नित्यं ददाति कामस्य च्छिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥ ४ ॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद् बुधः ॥ ५ ॥ अथैवमखिललोकपाललला-मोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥

और उसके अनुचर क्रोधादिक रिपुगणोंको उनकी इच्छानुसार कर्म करने देना, अपने भ्रष्ट करनेको अवकाश देना है ॥४॥ हे महाराज ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, और भय आदि सब कर्मबंधन जिसके कारणसे होते हैं, उस मनको कौन ज्ञानी पुरुष अपने आधीन मानेंगे ? ॥ ५ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि लोकपालोंके शिरोमणि थे; तथापि पीछे उनके संगमें कोई अनुचर भी नहीं रहा, सब संन्यासीके समान अनेक वेष भाषा और अनेक-अनेक आचार-व्यवहारका अवलम्बन करनेसे उनमें किसी रीतिसे भगवत्का प्रभाव नहीं दीखता था । उन्होंने इस प्रकारसे कुछ कालतक घूमते रहकर फिर यह भी दिखाया कि किस प्रकारसे देह त्याग करना चाहिये, यह योगियोंको सिखलानेके लिये अपने शरीरके त्याग करनेकी इच्छा की, इसलिये आत्मामें ही साक्षात् ठहराये हुए परमात्माको अपने साथ भेद रहित स्वरूपसे

देखकर देहाभिमानका त्याग कर दिया॥६॥यद्यपि उनका देहाभिमान इस प्रकारसे निवृत्त हो गया था, तथापि योगमाया और वासना द्वारा उनका देह जिस प्रकार कुम्हारका चाक एकवार चलानेसे देरतक घूमा करता है, वैसे ही संसारके वश होकर बार-बार भ्रमण करते-करते कोङ्क, वेङ्क, कुटक और दक्षिण कर्णाटक देशमें आपसे आप ही पहुँच गये। वहां कुटकाचलके वनके निकट उन्होंने किसी वासनासे कुछ छोटे-छोटे पत्थर लेकर अपने मुखमें डाल लिये। फिर बावलेके समान बाल खोलकर नङ्गी देहसे इधर-उधर घूमने लगे॥७॥८॥दैवात् वायुके वेगसे उस वनमें (जहां कि ऋषभदेवजी घूमते थे,) बांस बहुत ही कंपायमान हुए। उन सबके परस्पर रगड़नेसे शीघ्र ही भयानक दावानल

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन सङ्क्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥७॥ अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥ ८ ॥ यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाण भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते ॥ ९ ॥ येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना अस्नानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥ १० ॥

प्रज्वलित होकर वनको सर्व भांतिसे ग्रास कर लिया, उन (ऋषभदेवजी) की देहको भी साथ ही भस्म कर दिया, और वे अग्निमें ही प्रविष्ट हो गये, क्योंकि अग्निके संस्कारसे शुभगति प्राप्त होती है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! भगवान् ऋषभदेवजी पंडितोंकी वर्णन की हुई अवस्थामें भ्रमण करते-करते जिस प्रकारके आचरण किये थे, उसको जानकर कोंक, वेंङ्क, कुटकादि देशके अर्हत नामक राजा स्वयं इस प्रकारकी शिक्षा करेंगे और निडर हो अपना धर्म छोड़-छाड़कर अपनी बुद्धिसे पाखण्डरूप कुमार्ग प्रवृत्त करायेंगे क्योंकि कलियुगमें अधर्मकी ही वृद्धि होगी, इस लिये भवितव्य अर्थात् प्राणियोंके पूर्व संचिन किये हुए पापके फलसे इन राजाओंकी बुद्धि विमोहित होजायगी ॥१०॥ इन अर्हत राजाओंसे

ही कलियुगी मनुष्यगण देवमायासे मोहित होकर अपने-अपने शौच आचार परित्याग करके देवताओंका निरादर, आचमन न करना, शौच न करना, केश नोचना, इत्यादि खोटे-खोटे कर्म अपनी-अपनी इच्छासे धारण करेंगे। इसीसे उन सब पुरुषोंकी बुद्धिका नाश हो जायगा, जब बुद्धिका नाश हो जायेगा तो वे सब सदा ही वेद, ब्राह्मण, विष्णु व सज्जन पुरुषोंकी निन्दा किया करेंगे ॥ ११ ॥ ये सब लोग अंधपरम्पराके तुल्य अवेद मूलक इस प्रकारकी इच्छानुसार प्रवृत्तिका विश्वास कर अपने आप ही घोर अंधकार (नरक) में गोते खायेंगे ॥ १२ ॥ यद्यपि भगवान्का यह अवतार ही ऐसा अनर्थ करनेवाला हुआ तथापि जो पुरुष रजोगुणमें व्याप्त हैं, उनका मोक्ष किस प्रकारसे हो? यह सिखानेके लिये यह अति प्रयोजनीय हुआ, इस कारण पंडित लोग उस अवतारका गुण वर्णन करते

तेच ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयाऽन्धपरम्परयाऽऽश्वस्तास्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥ ११ ॥ अयमवतारोरजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणाञ्छ्लोकान्गायन्ति ॥१२॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ १३ ॥ अहो नु वंशो यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥ को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १५ ॥

हुए अनेक श्लोकोंको गाया करते हैं ॥१३॥ उन सब श्लोकोंका अर्थ यह है, यथाः-अहो! ससागरा पृथ्वीमें इन सब दीपोंमें यह भारतवर्ष अतिशय पुण्यवान् खण्ड है, क्योंकि यहांके जन्मे हुए लोग श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद भगवान्के और ऋषभावतारयुक्त चौवीस अवतारोंके उत्तमोत्तम कर्म और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ १४ ॥ अहो! राजा प्रियव्रतका वंश यश करके आश्चर्यरूपसे पवित्र हुआ क्योंकि पुराण पुरुष भगवान् उनके वंशमें अवतार लेकर मोक्षमूल धर्मका आचरण कर गये हैं ॥ वे ऋषभदेवजी अज हैं अर्थात् जन्म नहीं ग्रहण करते और क्या कोई योगी मनोरथ करके भी उन ऋषभदेवजीकी रीतियोंपर चल सकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने अवस्तु समझकर जिस योग मायाका अर्थात् सिद्धियोंका अनादर किया था, उनको ही प्राप्त करनेके लिये योगीजन

विविध भांतिके यत्न करते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! भगवान् ऋषभदेवजी लोक, वेद, देव, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु थे। उनके विशुद्ध चरित्रके मध्य जो कुछ कहा गया है, वह पुरुषोंके सब पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलदायक है। जो बुद्धिमान पुरुष श्रद्धापूर्वक इसको सुनता वा सुनाता है, उसकी दोनों जन्मोंमें ही भगवान् वासुदेवजीकी एकांत भक्ति रहा करती है ॥ १६ ॥ जिसके लिये कविगण अपने आत्माको जो अनेक प्रकारके पापरूप संसारके संतापमें निशिदिन तपते रहते हैं और मनको वारंवार स्नान कराकर उसीके द्वारा परम निर्वृत्तिको प्राप्त होते हैं और उसी भगवद्भक्तिको मङ्गलमय समझकर अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। और वे महात्मा

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयाऽनुशृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १६ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसार परितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १८ ॥

जन उसीमें मग्न होकर फिर उससे परम पुरुषार्थ रूप जो मुक्ति पदार्थ है, उसको विना प्रार्थनाके श्री भगवान्जीके प्रसादसे आप उपस्थित होनेपर भी उसका आदर नहीं करते, क्योंकि जो भगवान्के भक्त हैं उनको सब पदार्थ आप ही मिल जाते हैं, परन्तु वे सब प्रकारसे भगवान्की भक्तिको ही सुख मानते हैं ॥ १७ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भगवान् हरि तुम्हारे और यादवोंके पति अर्थात् पालन करनेवाले गुरु अर्थात् उपदेशक, दैव अर्थात् उपासना करने योग्य प्रिय अर्थात् सुहृद और कुलके नियन्ता और कभी-कभी दैत्यादि कार्योंमें सेवक भी बन जाते थे तो भी हे महाराज! भगवान् तुम्हारे प्रति अनुकूल थे और जो लोग उनका भजन करते हैं उनको तो वे

मुक्ति दे देते हैं, परंतु भक्तियोग तो कभी किसीको नहीं देते, जिसको प्रेमलक्षण कहते हैं ॥ १८ ॥ हम भगवान् ऋषभदेवजीको नमस्कार करते हैं। * निरन्तर अनुभव किया हुआ जो स्वरूप है, उसके लाभ होते ही उनकी सब तृष्णा दूर हो गयी थी। देहादि सुखनिमित्त तथा अनेक मनोरथोंकी सिद्धिके विषयमें जिन पुरुषोंकी बुद्धि सदा लगी रहती है उनके ऊपर करुणा करके ऋषभदेवजीने उभय लोकका उपदेश किया था, ऐसे ऋषभदेवजीको वारंवार नमस्कार है। इति श्रीभा०म०प०भा०टी०श्रीऋषभदेवचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥ लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यान्नमोभगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥ इति श्रीभागव० म० पञ्चम० ऋषभदेवानुचरितं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिन्तितः तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे॥१॥तस्यामु ह वा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि॥ २॥ सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणंधूम्रकेतुमिति ॥ अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशंति ॥ ३ ॥

दोहा–राज्य करत यागादिसों, हरिचरणनमें प्रीति। करी भरत नृपनेह कर, वरणों सोई नीति ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि महाभागवत भरतजी भगवान् ऋषभदेवजी अपने पिताकी आज्ञा मान पृथ्वीकी रक्षा और प्रजाके पालनमें नियुक्त हुए और उनकी ही आज्ञानुसार उन्होंने विश्वरूपकी पुत्री पंचजनीका पाणिग्रहण किया ॥ १ ॥ अहंकारसे जिस प्रकार सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस स्त्रीके गर्भसे उनके पांच पुत्र उत्पन्न हुए, वे पांचों पुत्र संपूर्ण भावोंसे अपने पिता भरतजीके समान हुए ॥ २ ॥ उनके नाम यह थे–सुमति, राष्ट्र-

---

* शंका—श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें भगवान्के सब अवतार वर्णन किये परंतु न रकार किसीको नहीं किया ज्ञानमें चतुर वैराग्यका पुल्ला मन करनेमें सूर्यके समान शुकदेवजी महाराजने ऋषभदेवजी को नमस्कार क्यों किया ।

उत्तर—भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, परंतु जैसा संसारके मनुष्य कर्म करते हैं वैसा ही भगवान्ने किया, और ऋषभदेवजीने जगत्को मोक्षका मार्ग सिखाया और अपने आप भी मोक्षहोनेके कर्म किये इसलिये परमज्ञानी श्रीशुकदेवजी महाराजने ऋषभदेवजीको विषमहीन जानके और परमहंस मानके नमस्कार किया।

* कवित्त—रामहीको नामरटे बुद्धिबल प्रबल होय. रामहीको नामरटे उत्तम कुल पावै है ॥ रामहीको नामरटे चक्रवर्ती राज्य मिले, रामहीको नाम परमधामको दिखावै है ॥ रामहीको नामरटे ऋद्धि और सिद्धि होत, रामहीको नामरटे निर्भय नरदेह मिलै, राम राम रटत निर्वाण हो जावै है ।

भृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु । हे राजन् ! पृथ्वीके इस वर्ष का नाम पहले अजनाभ था; परंतु जबसे भरत राजा हुआ तबसे इसका नाम भारतवर्ष होकर प्रसिद्ध हुआ । राजा भरत सर्वज्ञ थे, पृथ्वीनाथ होकर अपने बाप एवं दादेके तुल्य प्रजाके ऊपर वत्सलता प्रकाश करते रहे, अपने-अपने कर्ममें रत प्रजागणका लालन-पालन करते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ और श्रद्धा सहित अनेक छोटे और बड़े यज्ञ करके उनके द्वारा यज्ञमूर्ति और क्रतुमूर्ति विष्णु भगवान्जीकी पूजा करते रहे अर्थात् उनको जिस-जिस अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयज्ञमें अधिकार था, उन सबोंके द्वारा कभी सर्वाङ्गयुक्त, कभी विकलाङ्ग करके दोनों भांतिसे भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे, और चातुर्होत्र विधिसे सदा ही उपासना करते रहते थे ॥ ५ ॥ और जिनकी अंग क्रिया नित्य करनेमें आती है

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाःप्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत्॥४॥ ईजे च भगवंतं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाऽऽहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥५॥ संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचितांगक्रियेष्वपूर्वं यत्तत् क्रियाफलधर्माख्यं परेब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिंगानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्त्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥

ऐसे यज्ञ जहां होते थे और ऋत्विक् लोग अग्नि छोड़नेके लिये जब हवि ग्रहण करते थे, तब यजमानरूप यह राजा उसका अनुष्ठान करनेके लिये अपूर्व जो इन सब क्रियाओंका फल है और जिसका नाम धर्म है, वह परब्रह्म परमात्मा यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवमें ही वर्तमान है । इस प्रकार विचार करके यज्ञका भाग लेनेवाले सूर्यादि देवताओंके भी भगवान् वासुदेवको चक्षु इत्यादि अवयवमें विचार कर ध्यान करता था । हे महाराज ! राजर्षि भरत यज्ञादि क्रियाओंके लिये अपूर्व भगवान् वासुदेवका जो ध्यान करता था इसका कारण यह है, कि इन्हीं सब देवताओंमें भगवान् ही मुख्य हैं, ऐसा माना जाय; तो भी वेदके मन्त्रोंसे बोधित किये हुए इन्द्रादि देवताओंके नियंता होनेसे सबके ही कर्ता नहीं हुए, इस कारण उन्हीं परम देवता यज्ञपुरुष भगवान्के अर्थ यज्ञका समर्पण करना उचित है ।

भरतजी इस प्रकारका विचार करके आत्माकी चतुराईसे शीघ्र ही राग द्वेषादिक मलसे निवृत्त हो गये ॥ ६ ॥ और इन सब विशुद्ध कर्मोंके करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा, उससे हृदयके बीचमें स्थित हुआ जो आकाश है, वही है जिनका पहँचाना हुआ स्थान, वहीं परब्रह्म भगवान् वासुदेवका महापुरुषरूपसे दर्शन होता था, जो महापुरुषाकार हैं और श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, वनमाला, शंख, चक्र, और गदा इत्यादि धारण करनेसे जो विराजमान हो रहे हैं और अपने भक्त नारदादिकोंके हृदयमें चित्रिततुल्य पुरुषरूपसे अपने आप ही देदीप्यमान हैं, वह उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवमें राजा भरतकी बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई और उस भक्तिका वेग दिन-दिन अधिक बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ महात्मा भरतजीने अपने राज्यसंबन्धी भोगके प्रारब्ध समयकी समाप्तिका काल सहस्रों वर्षतकका नियम

एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरया अजायत ॥ ७ ॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यंतावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥ यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ८ ॥ यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥ ९ ॥

नियत किया था, वह समय जब इस प्रकार व्यतीत हो गया तब अन्त समय आया जानकर उन्होंने अपने पिता, पितामहका राज्य-बन्धन, जिसको अपने अधिकारसे भोग रहे थे उसको शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको यथायोग्य विभाग करके बांट दिया और सब ऐश्वर्य सम्पदाओंसे परिपूर्ण भवनको त्याग, संन्यास धारण कर, पुलस्त्य मुनिके आश्रममें तप करनेके लिये चले गये। (हरिक्षेत्रमें वह आश्रम है, वहीं विद्याधर कुण्ड है) ॥८॥ वहांके वास करनेवाले सज्जन पुरुषोंको भगवान् वासुदेव प्रेमके वशीभूत हो आजतक भक्तोंकी इच्छानुसार वत्सलतासे दर्शन देते हैं उस आश्रममें गंडकी नाम परमोत्तम नदी है, जिसको चक्र भी कहते हैं, वहीं विद्याधरकुण्ड है, जिसकी शिला-

ओंमें ऊपर-नीचे हिरण्यगर्भ नाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं, उन्हींका नाम शालग्राम। जो गण्डकी अपने चक्रोंसे ग्राम और प्रदेशोंको चारों ओरसे पवित्र करती है ॥ ९ ॥ इस प्रकार हरिक्षेत्रके उपवनमें राजर्षि भरत अकेले रहा करते थे और भाँति-भाँतिके कुसुम, किसलय, तुलसी, जल, कन्द, फलादिक, चढ़ाकर श्रीभगवान्‌की सदा शुद्ध मनसे आराधना करते रहते थे और विषयोंकी तृष्णाको त्याग शान्तिकी वृद्धि कर परमानन्दमें मग्न रहते थे ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रतिदिन भगवान्‌का पूजन करनेसे उनका अनुराग बढ़ गया और

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥ १० ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भग वत्सपर्यां न सस्मार ॥ ११ ॥

अनुरागके बढ़नेसे उनका हृदय शिथिल होता जाता था और हर्षके प्रभावसे उनका शरीर पुलकायमान हो गया, दूसरे हर्षके वेगसे उनकी देहमें वारंवार रोमाञ्च होते थे और उत्कण्ठाके वश होनेसे प्रेमके आंसू निकलकर दोनों नेत्रोंकी दृष्टिको रोकने लगे, तो दर्शनशक्ति बन्द हो गयी। भरतजी जब इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त हुए तब स्वयं भगवान्‌की आराधना करने लगे परन्तु उसका भी बराबर

१ भजन—(रागभैरव) शालिग्राम कृपाके सागर, मन तू क्यों नहीं ध्यावत है रे। सतयुग–द्वापर-त्रेता कलिमें, एकहि रूप पुजावत है रे ॥ १ ॥ शुद्ध हिमाचल पर्वत भीतर, मुक्तिक्षेत्र कहावत है रे। एकबार चरणामृत ले जो, सो फिर जन्म न पावत है रे ॥२॥ भक्त होयकर भोग लगावें, अन्त स्वर्ग में आवत है रे। हरिप्रसाद देवनको दुर्बल, तनुके पाप नशावत है रे ॥३॥ जन्म जन्मके पाप कटत हैं, पार्षद हो सुख पावत है रे। हरिके निकट रटत निशिवासर, हरि हरि गावत है रे ॥ ८ ॥ धूप दीप नैवेद्य आरती कर जो शंख बजावत है रे। पुरुषोंमें पुरुषोत्तम सो तुलसीपत्र चढ़ावत है रे ॥ ५ ॥

१. शंका—पुलह मुनिके आश्रममें विश्राम करके भरतने जो तुलसीपत्र और पुष्पोंसे पूजन किया, वह किसका पूजन किया? क्योंकि वदके जाननेवाले ऋषि, मुनियोंने भगवान्‌के अनन्तरूप कहे हैं।

उत्तर—भरतने एकाग्रचित्त द्वारा श्रीवैकुण्ठवासी जगत्पति भगवान्‌का ध्यान करके, उन्हीं भगवान्‌के मन्त्रोंसे जो अपने मनमें वस्तु थी वह सब वस्तु उन्हीं वैकुंठनाथके चरणोंमें समर्पण करके अत्यन्त प्रेमसे वैकुण्ठ नाथका पूजन किया।

स्मरण नहीं रखते थे, क्योंकि अपने प्रियतम प्यारे भगवान्‌के अरुण चरणारविन्दका ध्यान करते-करते भक्तियोग की प्राप्ति हो गयी थी, उससे हृदयमें सर्वत्र परमानन्द उफनकर चारों ओरको फैल जानेसे उसमें भरतजीका मन निमग्न हो गया था ॥ ११ ॥ वे भरतजी मृगचर्म पहन कर तीनों कालकी सन्ध्या करते हुए नित्यप्रति स्नान करनेके कारण पिंगल वर्ण और कुटिल जटासमूह सदा गीला रहनेसे अतिशय शोभित होते थे। इस प्रकार भाँति-भाँतिके भगवद्व्रत धारण करके उदय होते हुए सूर्यमण्डलके प्रकाशक ऋक्‌मंत्र विशेष से भगवान् हिरण्यमय पुरुषकी आराधना इस मंत्रसे किया करते थे ॥ १२ ॥मंत्र—परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ! सुरेतसाऽदः

इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥ १२ ॥ परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसाऽदः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः ॥१३॥ इति श्रीभागवते महा०पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयंकर उदपतत् ॥ १ ॥

पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः   सब जगत्‌का उत्पन्न करनेवाला, प्रकाशात्मक परमेश्वर रजो गुणसे परे सब कर्म फलदायक तेजरूप है, उसने मनसे ही इस विश्वको उत्पन्न किया, फिर इस विश्वमें अपनी चित्तशक्तिसे प्रवेश करके रक्षा की, इच्छावाले जीवको मनुष्योंमें रहनेवाली बुद्धिकी वृत्तिको उपजानेवाले उन सूर्य नारायणके आत्मरूपवाले तेजकी हम शरण हैं * ॥ १३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभरतकृतहरिक्षेत्रपूजन-शालग्रामोत्पत्ति-गण्डकीमाहात्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा—हरि सेवत नृप भरत नित, चितसे अष्टाध्याय। अन्तरायसे मृग भये, मृगसुत—सों मन लाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् !

* भजन—प्रभु टुक मेरी ओर निहारो ॥ विपतिविदारण नाम तुम्हारो, हमरिहु विपति बिदारो ॥ १ ॥ गणिका गीध व्याधसे, तारे पतित हजारो ॥ वाल्मीकिको भक्त बनायो, वेद पढ़ायें चारो ॥ २ ॥ द्रुपदसुताकी लज्जा राखी, जलते गजहि उबारों। हरिणकशिपु रावण कंसासुर, केश पकर कर मारो ॥ ३ ॥ जब जब भीर परी भक्तनपर तब तक नरतनु धारो शालिग्राम नाम यदुपतिको, सब दुख मेटन हारो ॥ ४ ॥

एक समय भरतजी महानदी गंडकीमें स्नान और नित्य नमित्तिक और सब आवश्यक कर्म समाप्त करके तीन मुहूर्तका नियम लेकर नदीके तीर बैठ ओंकारका जप कर रहे थे। हे राजन् ! उस समय एक हरिणी जल पीनेकी इच्छासे अकेली उस नदीके निकट आयी वह हरिणी अधिक प्यास लगनेसे जल पी रही थी कि इतनेमें निकट ही एक सिंह गर्ज उठा ॥ १ ॥ उसका गर्जना लोकोंका भय उपजानेवाला बड़ा तीक्ष्ण था हरिणीका हृदय एक तो स्वभावसे ही व्याकुल था और दूसरे सिंहकी गर्जना सुनकर उसके मनमें और भी अधिक भय उत्पन्न हुआ और उसके हृदयको महाव्याकुल करने लगा, इस कारण वह हरिणी इधर-उधर घूमकर चकित हो देखने लगी, यद्यपि उसकी प्यास नहीं बुझी थी तो भी डरके कारण सहसा छलांग मारकर नदीके पार होनेको हुई ॥ २॥ हे राजन् ! वह

तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरि भयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगत तृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम॥२॥तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भःस्रोतसि निपपात तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥ ३ ॥ तं त्वे-णकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमप-दमनयत् ॥४॥ तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेना-त्मनियमाः सहयमाः पूरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ५ ॥

हरिणी गर्भवती थी, महाभयसे उसका गर्भ अपने स्थानसे विचलित हो गया, इस कारण जैसे ही उसने छलांग भरी कि उसका गर्भ योनिद्वारा निकलकर नदीकी धारमें गिर पड़ा, एक तो हरिणीके अंतःकरणमें महाभय उपस्थित हुआ था, दूसरे गर्भ गिरा और गर्भ किस समय गिरा कि नदीके पार उछलनेमें छलांग मारते समय, तीसरे वह अपने झुण्डसे बिछुड़ी हुई थी, इस कारण ऐसा परिश्रम पड़नेसे बहुत पीड़ित होकर एक पर्वतकी गुफामें जा पड़ी और पड़ते ही शीघ्र उसके प्राण शरीरसे निकल गये ॥ ३ ॥ यहां राजर्षि भरतजीने नदीके तट पर बैठे हुए देखा, कि दीन हरिणीके बच्चेकी माता बच्चेको छोड़कर चली गयी और बच्चा नदीकी धारमें बहने लगा, तब बंधुके समान दया करके मरी हुई हरिणीके बच्चेको उठाकर भरतजी अपने आश्रममें ले आये उस हरिणीके बच्चेका

क्रम-क्रमसे "यह हमारा ही है" ऐसा अभिमान और स्नेह भरतजीको उत्पन्न हुआ। इस कारण वह दिन-रात घासादि लाकर उसका पालन-पोषण और भेड़िया इत्यादि जंतुओंसे रक्षण, प्रीणन और चुम्बनादिसे प्यार करनेमें लगे रहते थे। इन कार्योंके करनेसे दिन-रात उस बच्चेमें अनुरागी रहनेके कारण उनके नियम (स्नानादि), यम (अहिंसादि) और अर्चा (ईश्वरकी आराधनादि करना) प्रतिदिन एक-एक करके थोड़े-थोड़े कम होने लगे और कुछ दिन पीछे एक साथ ही सब छूट गये ❋ ॥ ४ ॥ ५॥ और वह सदा यही चिंता

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं चर्मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविश्रब्धश्च ॥ अत एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ६ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमनशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतराानुपेक्षन्ते ॥ ७ ॥

करते रहते कि अहो ! यह हरिणीका बच्चा अति दीन है, कालकी गतिसे यह अपने संगके बंधु-बाँधवोंसे छूट गया है, अब परमेश्वरने इसको हमारी शरणमें किया है, अब यह हमको ही माता, पिता, भ्राता, जातिवाला और यूथपति जानता है,हमारे सिवाय यह किसीको नहीं जानता और हमारा ही बड़ा विश्वास करता है, इसलिये हमको भी असूया त्याग करके, अर्थात् इसके वास्ते हमारा स्वार्थ नष्ट होता

---

१. शंका—राजा भरतने जिन भगवान्‌की पूजा-भक्ति करनेके लिये अपने राज्यको त्याग दिया और वनको चले गये। ऐसा श्रेष्ठ पूजन, हरि-भक्ति और अपना क्रिया-कर्म मृगके बच्चेके लिये क्यों छोड़ दिया ? कोई कहे कि मृगीके बच्चेके मोहसे व्याकुल हो करके हीनपुरुषोंकी नाईं भगवान्‌का पूजन त्याग दिया; तो भी बड़ा भारी आश्चर्य होता है, क्योंकि राज्य और कुटुम्बका मोह छोड़ दिया और पशुके मोहमें व्याकुल होना ऐसा जान पड़ता है, जैसे पंगु पुरुषका पर्वत पर चढ़ जाना कदापि नहीं हो सकता, यह बड़ा भारी आश्चर्य विदित होता है ?

उत्तर—जब राजा भरत एक दिन वनको गये, तो वनमें जाकर क्या देखते हैं कि, धवल मुनि संसारकी लज्जासे आप मृगस्वरूप धारण करके और अपनी सुन्दर स्त्रीको मृगी बनाकर रमण कर रहे हैं;उनको देखकर राजा भरत हँसे, तब उसी समय राजा भरतको धवलमुनिने शाप दिया कि हे दुष्ट ! मृगीके बालकको तू रक्षा करेगा, उस मृगीके बच्चेकी रक्षासे तेरा एक जन्ममें मोक्ष नहीं होगा, तीन जन्म जब बीत जायँगे तब मुक्ति होगी । इस शापसे भरतने कौतूहल समान मृगछौनामें मन लगाकर उसीके मोहमें भगवान्‌का पूजन आदि त्याग दिया था।

है, यह दोषदृष्टि दूर करके अपना आश्रय लिये हुए इस हरिणके बच्चेको घासादि दें, भेड़िये इत्यादि जीवोंसे रक्षा कर, इसके शरीरको थप थपा कर और चुम्बनादिसे पालन करना चाहिये, क्योंकि शरणागतके निरादर करनेसे जो दोष होता है,उसको मैं भलीभांति जानता हूँ,सो इसके पालनमें ध्यान देना हमारा कर्तव्य नहीं है बड़े और महाशील स्वभाववाले ही साधु और दीनबंधु होते हैं, वे लोग ऐसे कार्यके लिये अपने बड़े भारी स्वार्थपर भी ध्यान नहीं ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे उस मृगबालकके साथ बैठना, उठना, शयन करना, भ्रमण करना, स्नान करना और भोजनादि कार्योंमें ही भरतजी आसक्त हो गये और उस मृगछौनाके ही स्नेहमें उनका हृदय फँस गया॥८॥ अपने लिये कुश, कुसुम, समिध, फल, मूल, जल लेनेके लिये जब वनमें जाने लगते थे, तब भेड़िया, सिंह आदि आकर इस मृगबालकको

इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥८॥ कुशाकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ ९ ॥ तदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति ॥ एवमुत्संग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ १० ॥ क्रियायां निर्वृत्यमानायामन्तरालेषूत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्याद् वत्स ते सर्वतः इति ॥ ११ ॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥ १२ ॥

खा न जायँ, इस लिये उस बच्चेको भी अपने साथ ही वनमें लेकर जाते थे॥९॥कोमल स्वभाव उस भोले-भाले बच्चेके लिये भरतजीका हृदय स्नेहके भारसे भर गया था, इसलिये मार्गमें जाते-जाते मोहके भावसे आसक्तमति होकर स्नेहके मारे उसको कंधेके ऊपर उठाकर ले चलते थे और कभी गोदीमें, कभी छातीसे लगाकर अत्यन्त लाड़-प्यार व पुचकार कर परमहर्षको प्राप्त होते थे ॥१०॥ अपने कर्तव्य यज्ञादि किया आरंभकरके समाप्ति न होनेपर बीचमें उठ बैठते थे और जब उस बच्चेको देखते थे तब उनका अन्तःकरण स्वस्थ हो और उसको पुकार कर आशीर्वाद प्रार्थना करके यह कहते थे, कि हे वत्स ! तुम्हारा सब प्रकारसे मङ्गल हो ॥ ११ ॥ यदि कदाचित् यह बच्चा

इधर-उधर चला जाता था तो जिस प्रकार कृपणपुरुष धनका नाश होनेसे शोक करता है, वैसे ही भरतजी अति उद्विग्न चित्त होते थे और अत्यंत ही उत्सुकताके हेतु उस बच्चेके विरहमें उनका हृदय विकल और सन्तापित होता था, इसलिये महामोहमें पड़कर उसके लिये शोकसे विह्वल हो करुणा कर-करके भरतजी यह वचन कहा करते थे ॥ १२ ॥ अहह! यह क्षीण हरिणीका बच्चा मृत जननीका बालक अति दीन है, यद्यपि मैं अनार्य भाग्यहीन और शठ हूँ और किरातके समान मेरी मति छलनेवाली और अति टेढ़ी है, तो भी उस हरिणीके बच्चेने मेरा विश्वास किया है, इसलिये सुजनके समान अपना चित्त निर्मल होनेसे वह हमारे अपराध (शाव्यादि) न गिनकर क्या नहीं आयेगा? ॥१३॥ बोध होता है कि मैं उसे इस आश्रमके स्थानमें निर्विघ्न कोमल तृण भक्षण करते हुए देखूँगा, भगवान् उसकी

अपि बत सवै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुत अहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेकृतसुकृतस्य कृतविश्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति किम् ॥ १३ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्त देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥ १४ ॥ अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥ १५ ॥ निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥ १६ ॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसन्तोषं स्वानामपनुदन् ॥ १७ ॥ क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥१८॥

रक्षा करें ॥ १४ ॥ कोई भेड़िया व्याघ्र अथवा और कोई हिंसक जन्तु उसको अकेला जानकर कहीं खा न जाय! ॥१५॥ जिनके उदय होनेसे सब संसारका मङ्गल होता है, वेदस्वरूप सूर्यदेव अस्ताचलको गमन करना चाहते हैं। परंतु अब तक उस मृगवधूका धरोहर स्वरूप वह मृग-शावक क्यों नहीं आया? ॥१६॥ अहो! वह राजकुमारके समान हरिणका शिशु देखने योग्य, मनोहर अनेक प्रकारकी बाललीला करके अपने स्नेही जनोंके खेदको दूर करनेवाला फिर क्या आकर मुझको सुखी करेगा? ऐसा मैंने कोई असुकृत नहीं किया फिर किस प्रकार मेरे भाग्यमें यह सुख प्राप्त होगा? ॥१७॥ अहो! खेलनेके समय मिथ्या, स्नेहके कोपके मिषसे समाधिके छलसे जब मैं दोनों नेत्र

मूंद लेता था, तब वह मृगछौना मेरे चारों ओर फिरता और चकित होकर कोमल सींगोंके अग्र भागसे मुझको स्पर्श करता था ॥१८॥ फिर कुशोंके ऊपर मैं होम करनेकी सामग्री रख देता था तब वह हरिणसुत खेलते-खेलते चपलताके वश हो; दांतोंसे कुश पकड़कर यद्यपि उस सामग्रीको दूषित कर देता था परन्तु जैसे ही मैं क्रोध प्रकाश करता था कि उस क्रोधके करनेसे वह अतिशय भयभीत होकर ततक्षण ऋषि कुमारके समान क्रीड़ा परित्याग करके निश्चल होकर नीचेको मुख कर लेता था ॥१९॥ राजर्षि भरतजी इस प्रकार अत्यन्त विलाप करके आश्रमसे चलते हैं और आगे उन्हें खुरोंके चिह्न दृष्टि आते हैं, तब संभ्रांत चित्त होकर फिर आप ही आप कहने लगते हैं कि आह ! यह पृथ्वी अतिशय भाग्यवती है। न जाने इसने क्या तप किया था ? जो स्थान-स्थानमें अंकित उस हरिणछौनाके चरण चिह्नोंकी पंक्तिसे

आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपलब्धो भीतभीतः सद्युपरतरासऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥ १९ ॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमा-खरखुरपदपंक्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥ २० ॥ अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २१ ॥

हमारे निकट उसके घरका मार्ग बतलाती है और अपनेको भी उन चरणचिह्नोंसे भूषित करके ब्राह्मणोंके यज्ञ करनेका स्थान बताती है, हम उस मृगशावकके अतिशय विरहमें दुःखित हो रहे थे, अब इन खुरोंके चिह्नोंको पृथ्वीमें अंकित हुआ देख कुछ धैर्य आया ॥२०॥ उसके पीछे चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमण्डलमें मृगका चिह्न देखकर कहने लगे, अहो ! क्या जब हमारा छौना आश्रमसे बाहर निकलकर कहीं चला गया तो उसे दीनोंको प्यार करनेवाले तारा-पति भगवान् चन्द्रमाजी महाराजने अपने आश्रमका भूला भटका,मृतक जननीका बालक, बांधवोंके समूहसे विछुड़ा हुआ; भोली भाली मनोहर छबि देखकर, दया करके अपने निकट रखकर उसकी रक्षा करते हैं ॥२१॥

फिर चन्द्रमाकी किरण जो उनकी देहपर पड़ी तो उसके स्पर्शका सुख पाकर कहने लगे—अहो ! उस मृगबालकके ढूंढ़नेसे जो उसके वियोगकी तपती हुई दावाग्निकीशिखाके समान जो हमारे हृदयरूप स्थल कमलको सन्तापित करती थी,इसको जानकर भगवान् चन्द्रमाजीने दया करके सुशीतल शांत वदनके सलिलरूप अमृतमय किरणसे हमको सुख उपजाया, लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि मुखकमलके जलसे तापको शांत करते हैं ॥२२॥ हे राजन् ! वह योगधारी तपस्वी भरतजी इस प्रकारके असंभव मनोरथसे व्याकुल हृदय हो मृगशावकके समान प्रकाशमान् अपने आराधक कर्मोंके द्वारा योगानुष्ठानसे और भगवान्की आराधना रूप कर्मसे नष्ट भ्रष्ट हो गये,महाराज ! अपने कर्मसे ही उनकी आराधना व योग नष्ट हुआ । यदि ऐसा न होता तो जिस पुरुषने पहले मुक्तिमें विघ्न जानकर अत्याज्य पुत्रोंको भी

किं वाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥ २२॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः ॥ साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२३॥ तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२४॥

परित्याग कर दिया था, उसको फिर दूसरी जातके मृगशावकमें सहसा अपने पुत्रके समान आसक्ति क्यों होती । जो हो, इस प्रकार विघ्नोंके पड़ जानेसे योग भ्रष्ट हुए, अपने आत्माकी चिन्ताको जलांजलि दिये हुए राजर्षि भरतजी उस मृगशावकके ही लालन-पालनमें नियुक्त हो गये हैं तो इतनेमें ही सर्प जिस प्रकार मूषकके बिल अर्थात् भट्टकको प्राप्त होता है,वैसे ही तीव्र वेगवाला,जो टालनेसे न टले; ऐसा मृत्युसमय उपस्थित होकर उनको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ उस समय भी वह ध्यानयोगमें देख रहे थे, कि मानो वह मृगका बच्चा पुत्रकी नाईं बगलमें बैठकर शोक करता है, इस कारण मृगमें ही अनुरागपूर्वक आसक्त चित्त होनेसे उस मृगशावकको ही देखते हुए आत्मादेह

परित्याग करके साधारण पुरुषोंके समान मृगशरीरको प्राप्त हुए, परंतु उनके पहले जन्मकी स्मृति देहके संग नाशको नहीं प्राप्त हुई, इसलिये अपने मृग शरीर पानेका कारण स्मरण करके भगवान्‌की आराधना करनेके कारण पहले जन्मकी स्मृति उनको बनी थी, सो इससे अत्यन्त अछतापछताकर मृगरूप भरतजी आप ही आप कहने लगे ॥२५॥२६॥ कि बड़ा विघ्न हुआ, क्या कष्ट है ? मैं उन वीर ज्ञानी जनोंके मार्गसे भ्रष्ट हुआ, सब संगका परित्याग करके पुण्य वनमें रहता हुआ अतिधीर भावसे श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और भगवान्‌जीके स्मरण आदि कार्योंमें लगा रहता था और क्षणमात्र भी वृथा न खोकर बहुत समयमें सब भूतोंके आत्मा भगवान्

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥ २५ ॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनुपरिसुस्राव ॥ २६ ॥ इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीमातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्जरात्प्रत्याजगाम ॥ २७ ॥

वासुदेवमें जो मनको स्थापित और स्थिर किया था, सो अपने अज्ञानपनसे उस मृगशावकके संगमें एकवार ही उस विषयसे निकल गया, हा ! मैं कैसा मूर्ख हूं ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे उनके मनके बीच महा वेदना उपस्थित हुई, परंतु उन्होंने उसको प्रकाश नहीं किया और अपनी मृगी जननीका परित्याग करके जिस कालञ्जर पर्वतपर जन्मे थे, उस स्थानसे फिर हरिक्षेत्रमें पुलह ऋषिके आश्रमपर आये। हे राजन् ! यह आश्रम शांत स्वभाववाले मुनिजनोंका प्यारा है, उसके निकट ही जहां शालके पेड़ बहुत थे, वहां एक ग्राम था, उस ग्रामका नाम शालवृक्षसहित होनेसे शालग्राम था ॥ २७ ॥

वहां जाकर संगके भयसे कि कहीं फिर किसीका संग न हो जाय, इस लिये भयभीत मनसे अकेला रहता और सूखी लता, पत्ते और तृणमात्र भोजन करके जीवन धारण करता था। जिस प्रारब्धसे मृगशरीर पाया है, वह निमित्त कब पूरा हो चुकेगा, केवल इतनी ही बाट देखता रहता था। कुछ समय व्यतीत होनेपर जब काल आया तो वहां गंडकी नदीके प्रवाहके मध्य खड़े होकर अपने मृग शरीरका त्याग कर दिया ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां भरतस्य मनुष्यदेहत्यागपूर्वक मृगशरीरप्राप्ति-वर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–नवाध्याय जडभरतके, नहीं गुण दोष विचार। देवी ढिग

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्ताव-सानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ २८ ॥ इति श्रीभागव॰ महा॰ पञ्चम॰ भरतोपाख्याने मनु-ष्यदेहत्यागपूर्वकमृगशरीरप्राप्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरः प्रवरस्य शमदमतपस्स्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृश श्रुतशी-लाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुः ॥ मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥ १ ॥ यस्तु तत्र पुमांस्तं परम-भागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥ २ ॥

मारन लगे, तबहुँ रहे अविकार ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षितसे कहने लगे कि,हे राजन्! एक ब्राह्मणके नव पुत्र हुए। वह विप्र आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुआ, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और शम, दम, तपस्या, वेद पढ़ना, दान, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, नम्रता, आत्मज्ञान और आनंदमें सदाअनुरागी था। उसके जो पुत्र उत्पन्न हुए वे भी सब अपने पिताके समान, विद्या, शीलता, आचार, उदारता, इत्यादिक गुणोंसे भूषित हुए। नव पुत्र तो एक स्त्रीसे प्रकट हुए थे और छोटी दूसरी स्त्रीसे पुत्र कन्याका एक जोड़ा उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ हे राजन् उस जोड़ेमेंका पुत्र जो था, उसको सब ही कहते हैं कि यह पुत्र परम भागवत् है, वही राजर्षि भरतजी थे, उन्होंने

* भजन–विनहि प्रयास भक्त तनु त्यागत। देह गेह सों नेह न करहीं, तजत शरीरं बार नहिं लागत ॥ १ ॥ जबहि प्रसन्न होत हरि तिनपर, तब हरीसों या ही बर मांगत। हमहि न कछु इच्छा है स्वामी, राखहु सदा चरण शरणागत ॥ २ ॥ इसी हेत जप योग यज्ञ व्रत करत नियत नित निशिदिन जागत। अन्त समय मुखसे हरि निकसत, शालिग्रामसकल भय भागत ॥ ३ ॥

अब मृग देहको त्यागकर उस देहमें फिर विप्रत्वको प्राप्त किया॥२॥हे राजन् ! राजर्षिने विप्रकुलमें जन्म ग्रहण करके भी यह विचारा कि सङ्ग दोषसे फिर कहीं अपना पतन हो जाय, इसलिये भगवान्के युगल चरणारविंदका स्मरण और गुण वर्णन करनेमें कर्मके बंधनोंका नाश हो जाता है यह मनमें भली भांतिसे विचार करते हुए सब लोगोंके निकट अपनेको पागल व मूर्ख अथवा अन्धा, या बहरासा दिखाते थे। हे महाराज ! उनके मनमें आत्मभ्रंश-भयके उत्पन्न होनेका कारण यह था कि भगवान्के अनुग्रहसे और देह पाकर भी इनको अपने पूर्व जन्मकी याद आती थी ॥ ३ ॥ यद्यपि यह सन्तान जड़ हुआ तो भी उस ब्राह्मणका मन संतानके स्नेहमें बँधजानेके कारण उसने उनके समावर्तनान्त सब संस्कार यथाशास्त्र कही हुई विधिसे किये। और यज्ञोपवीत देकर उनके सब नियम शौच,

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरण चरणारविन्दयुगल मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥ तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनःशौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयद् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥ सचापि तदु ह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥ ५ ॥

आचमनादिक कर्मोंके नियम, यद्यपि इस पुत्रको अच्छे नहीं लगते थे, तो भी पिताका कार्य पुत्रको सिखानेका है, इस कारण उनको सब सिखाने लगा ॥ ४ ॥ परन्तु यह जड़ भरतजी पिताके शिक्षा देनेपर उनके समीप आचारादिमें गड़बड़ीका व्यवहार करने लगे इनके पिताने वेदव्रतादिके आदिमें श्रावणादि मासमें इसको प्रणवसहित त्रिपदगायत्री मन्त्र पढ़ायेंगे, ऐसा विचार किया अतएव वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें ही अर्थात् चैत्रादि चार मासमें (ओंकार) और शिर सहित गायत्री मंत्र सिखा देनेकी चेष्टा की परंतु तो भी उस ब्राह्मणका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ, अर्थात् जड़ भरत चार महीनेमें भी ओंकार और शिर सहित गायत्री मंत्र नहीं सीखे ॥ ६ ॥

वह ब्राह्मण उस जड़ पुत्रको अपने आत्माके तुल्य समझता था, इस कारण उसके चित्तका अनुराग जड़भरतमें बहुत था, "और संतानको पढ़ाना सिखाना आवश्यकीय कार्य है" इस असत् आग्रहमें व्यग्र होकर नियमित कालतक ब्रह्मचर्य धारण करनेवालोंके कर्तव्य कर्म शौच, पढ़ना, व्रत, नियम, गुरुकी सेवा इत्यादिकरना, यद्यपि उन सब कर्मोंके करनेमें पुत्रकी रुचि नहीं थी तो भी स्नेहके वश होकर सदा ही यह ब्राह्मण पुत्रको उपदेश करता था, कि पुत्र किसी प्रकारसे पंडित हो जाय, उसके मनमें यह जो वासना थी, वह किसी प्रकारसे पूरी न हुई,आशामात्र ही केवल काल व्यतीत करने लगी। यह विप्र इस प्रकारसे असावधान हो,जड़भरतके पंडित बनानेकी चिन्तामें था,

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥ ६ ॥ अथ यवीयसी द्विज सती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्यामुपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥ ७ ॥ सच प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहुमिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीति निमित्तम् ॥ ८ ॥ नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥

इतनेमें सावधान कालने आकर उसका संहार कर डाला ॥ ६ ॥ जब उस ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी, तब उसकी छोटी स्त्री अपने उदरसे उत्पन्न हुए पुत्र कन्याको सवतके हाथमें सौंप आप पतिके साथ पतिलोकको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ पतिके मर जानेपर भरतके भाइयोंने उस भरतको जड़मति समझकर उपदेश देने व शिक्षा देनेका प्रबंध एक वारगी त्याग कर दिया। हे राजन्! भरतके भाइयोंकी बुद्धि वेद विद्यामें नहीं थी, केवल कर्मविद्याको ही पुरुषार्थ समझते थे, परंतु ब्रह्मविद्यामें उन्होंने कुछ परिश्रम नहीं किया था, इस कारणसे भरतजीकी महिमाके प्रभावको नहीं समझते थे॥८॥पशुओंके तुल्य पामर मनुष्य भरतको जड़ अथवा बहरा गूंगा समझकर उनके साथ जिस प्रकारसे

वार्तालाप करते थे, भरतजी भी उनको वैसा ही उत्तर देते थे और जो कोई जो काम कराता था तो उसकी इच्छानुसार वही कार्य कर देते थे । मनुष्य विना वेतनके कार्य करानेके लिये इनको पकड़ लेजाने पर जो कुछ खानेकी सामग्री पाते अथवा वेतनसे वा प्रार्थना करनेसे अथवा आपसे ही जो कुछ अच्छा बुरा अन्न मिलता था उसको भोजन मात्र कर लेते, इससे इंद्रियोंकी प्रसन्नता होगी, ऐसा विचार नहीं करते थे क्योंकि उत्पादक शून्य, जिसका कोई बनानेवाला नहीं और कोई उसका प्रगट करनेवाला नहीं, ऐसा जो विशुद्ध अनुभव है और उसका स्वरूप जो आनंदमय आत्मा है, उसकी प्रीतिमें ही संतुष्ट रहते थे, अर्थात् आत्माका ऐसा रूप है, यह ज्ञान उनको प्राप्त हो गया था, दूसरे मान-अपमानादिका जो द्वन्द्व (झगड़ा) है और उससे होने वाले जो सुख-दुःख हैं, उनके विषयमें भी उनको देहाभिमान नहीं था ॥९॥ इस कारण शीत, गरमी, वात, वर्षादिमें वह नग्न शरीरसे अकेले बैलके समान घूमा करते थे । उनका

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरितिब्रह्मबन्धुरिति संज्ञया अतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥
यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किं तु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्य मृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥

शरीर बैलके समान हृष्ट-पुष्ट था, और अंग-प्रत्यंग सब कड़े थे, पृथ्वीमें शयन करनेसे तेलके न मलनेसे, स्नान न करनेसे, सदा उनके शरीर पर धूलि उड़ती रहती थी इस कारण ब्रह्मतेज महामणिके समान मलिन रहकर अप्रकाशित रहता था, दूसरे कमरमें मैले-कुचैले फटे पुराने कपड़े और छातीमें मलिन यज्ञोपवीत पड़ा रहनेसे कोई उनकी महिमा नहीं जानता था । कोई उनको "यह पुरुष नीच ब्राह्मण जातिका है" कोई "ब्रह्मबन्धु" अर्थात् ब्राह्मणोंमें अधमकहकर उनका अपमान करते थे ॥ १० ॥ जब कि वे किसीसे उसका कार्य करके वेतन स्वरूप आहारकी प्रार्थना करते हुए फिरने लगे तब उनके भाइयोंने उन्हें आहारका लोभ दिखाकर चावलोंके खेतमें क्यारियोंके बनानेमें नियुक्त किया, तब जड़ भरतजी इस कार्यको ही करने लगे । परंतु यह, मिट्टी डालनेसे क्यारी बराबर होगी, या अधिक वा छोटी हो जायेगी, इस बातको जड़भरतजी नहीं जानते थे । कभी घासके संगमें अन्नको ही काटते थे और जो कोई पशु खेतमें आता था तो उसको

अत्यन्त प्रेमसे चराते थे। कभी पक्षियोंको देखकर कहते कि–"आवो रे भाई! चुग लो खेत, यहां छोड़ दो खाली रेत" उनके भ्राता उन्हें चावलोंकी किनकी,खल तूष,भुने हुए उरद और बटलोईके नीचेका लगा हुआ अन्नादि जो कुछ भी देते थे उसको ही जड़भरतजी अमृतके समान जानकर भोजन कर लेते थे ॥११॥ हे राजन्। जड़भरतजीके यह जो चरित्र वर्णन किये इनसे स्पष्ट ही जान पड़ता है,कि उनमें राग, द्वेष व मनकी चंचलता कुछ भी नहीं थी। उनके विषयमें एक और कथा वर्णन करता हूं आप चित्त लगाकर श्रवण कीजिये–"एक समय किसी नगरमें एक सामंतक नाम शूद्रोंका राजा चोराधिपति भद्रकालीका परमभक्त था, उसके कोई पुत्र नहीं था, उसने देवीसे प्रार्थना की कि हे जगज्जननी! हे आनंदवर्द्धिनी! जो मेरे पुत्र होगा तो मैं तुझको नरबलि दूंगा, यह कह उसने अपनी कोठरीमें एक मनुष्यको बंद कर रक्खा था, कुछ कालोपरान्त उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पुत्रकी कामना पूरी होनेसे भद्र, कालीजीकी प्रीतिके लिये मनुष्यका बलि

अथ कदाचित्कश्चिद् वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥ तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसाऽऽवृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान्वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरः प्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथ त एतमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥ १४ ॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाऽभिषिच्याहतवाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥

दान देनेकी तय्यारी की ॥ १२ ॥ उसका वह मनुष्य पशु जो कि यज्ञमें बलिदान देनेके लिये रख छोड़ा था, दैवात् बंधनसे छूटकर भाग गया; तब उस राजाके अनेक अनुचर उस मनुष्य पशुको ढूंढनेके लिये इधर-उधर दौड़े, परंतु उसका कहीं पता नहीं लगा, तब वह अनुचर घूमते-घूमते अँधियारी निशामें दो पहर रात्रीके समय खेतकी ओर गये, तो वहां वह ब्राह्मणपुत्र जड़भरत एक निराली भांतिसे खड़े होकर अर्थात् वीरासनसे मृग शूकरादिकोंसे खेत रखाते थे, ऐसा उन अनुचरोंने देखा ॥१३॥ और उसको देख सुलक्षण समझ यज्ञमें बलिदान बनानेके योग्य जान, परस्पर कहने लगे कि इससे ही हमारे स्वामीका कार्य पूरा हो जायगा ॥ इस कारण हर्षसे प्रफुल्लित वदन होकर उन जड़भरतजीको पकड़कर देवीके मंडपमें ले गये ॥ १४ ॥ उसके पीछे चोरोंने अपने विधानके अनुसार जड़भरतजीको स्नान

कराकर नये कपड़े पहनाये और गहने व सुगंधित मालायें पहना, तिलक आदि लगा अच्छा सजाया, फिर भोजन कराके, धूप, दीप, फूल, हार, चावल; नवीन पत्तोंकी कोंपलें और फलादि उपहार दे, पूजा करके संगीत, स्तोत्र और मृदंग व ढोलोंके बड़े-बड़े बाजोंके साथ उनको भद्रकालीके समीप ला, शिर झुकाकर बिठलाया ॥ १५ ॥ उसके पीछे तस्करराजको पुरोहित कर्मके करानेमें जो पुरुष नियुक्त था, उसने इस पुरुषरूप पशुके आसनसे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिये देवीके मन्त्रसे अभिमंत्रित की हुई तीक्ष्ण कराल करवाल ग्रहण की ॥१६॥ इन सब तस्करोंका स्वभाव रजोगुण और तमोगुण पूर्ण था और उन लोगोंका धन मदके कारण मर्य्यादारहित हो गया था इसलिये वे लोग भगवान्‌की कलायुक्त ब्रह्मकुलका अपमान कर अपनी इच्छानुसार उलटे मार्गपर चले । इस कारण ये लोग भयंकर कार्य

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥ १६ ॥ इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विरहतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद् ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसा अतिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥ भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाऽऽटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात् स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरः कन्दुकलीलया ॥ १८ ॥

करनेमें लगे, परन्तु भद्रकाली देवी क्या उनकी पूजा ग्रहण कर सकती हैं? वे पहले ही मूर्तिको परित्याग करके बाहर निकल आयीं ! क्योंकि जो ब्रह्मर्षिकी संतान, किसीसे वैरभाव न रखनेवाले, सब प्राणियोंके मित्र आपत्कालके समय लौकिकी हिंसामें भी जिनके मारडालनेकी आज्ञा नहीं हो सकती, उनका शिर काटकर बलिदान होना, देवीजी सामने रहकर नहीं देख सकतीं अतःइस बातकी तय्यारी होते देखकर ही देवीजीका शरीर असह्य ब्रह्मतेजसे बहुत ही जलने लगा। इस कारण उन्होंने प्रतिमाका त्याग किया ॥१७॥ अधिक करके देवीजीके शरीरमें दाह होनेके कारण उनमें अतिशय क्रोध और वेग आ गया उस वेगके कारण उनकी भ्रुकुटी और कराल डाढें अरुण वर्ण नयन भयंकर हो गये । वह

मानो जगत्का नाश कर डालेंगी, इस प्रकारके भावसे क्रोधमें भरकर घोरतर शब्द सहित ठठाय-ठठाय हँसने लगीं। और उन पापात्मा दुष्ट तस्करादिकोंके ऊपर झपटकर उनके ही खड्गसे उन लोगोंका शिर काट लिया, शिर कट जानेसे उन सब तस्करोंके गलेसे जो अति गरम आसव तुल्य रुधिर निकलने लगा, उसको अपनी योगिनी पिशाचिनियों सहित जगदम्बाजीने पान किया। इतना पिया कि विह्वल होकर अपने पार्षदों सहित ऊँचे स्वरसे गाकर नृत्य करने लगीं। और उन मृतक तस्करोंके मस्तकोंको गेंदके समान उछाल-उछाल कर उनसे खेलने लगीं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा परीक्षित्। इन सब तस्करोंकी ऐसी दुर्गतिका होना कुछ विचित्र नहीं है, क्योंकि बड़े पुरुषोंके साथ अत्याचार करनेसे इसी प्रकारसे बहुधा अपने आप ही बुरे पुरुषोंका बुरा हो जाया करता है, यह निश्चय

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां ॥ निर्वैराणां साक्षाद्भगवता-अनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जडभरतोपाख्याने बलिदानान्मुक्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

जानो ॥१९॥ हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जो सब पुरुष भगवत्की उपासना करनेवाले परमहंस हैं, उनकी देह आदिमें आत्मभावरूप हृदय ग्रंथि छूट जाती हैं और वे सब प्राणियोंके मित्र आत्मा स्वरूप हो जाते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं रहता, स्वयं भगवान् सावधान होकर कालचक्ररूप प्रधान आयुधसे, उन्हीं भद्रकाली इत्यादि रूपों द्वारा सदा ही अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। इससे जहांपर किसी प्रकारके भयकी संभावना नहीं है, उन भगवान्के चरणारविन्दोंकी जो कोई-शरण आते हैं, उनका यदि शिर भी कट जाय तो भी वे विना संभ्रमके रहते हैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। और उनसे परमेश्वर भी प्रसन्न रहते हैं और यह कहते हैं * ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महा-पुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां जडभरतस्य बलिप्रदानान्मुक्तत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

* भजन—जो कोई चित्तसे मोहिं न बिसारे में न विसारूं प्रण है यही मेरा ॥ धर्मप्रिय हो धर्म बढ़ाऊं सफल कार्यकर अर्थ बताऊं मुक्ति चाहै तो पार लगाऊं छिन पाल नाहिं न लागत बेरा ॥ १ ॥ रोग हरूं चिन्ताको टारूं अभय करूं शत्रुको मारूं, निर्भय कर जग वेग उतारूं, सेवा करूं आप बन चेरा ॥ २ ॥ भक्तहेत नरदेह धरत हूं, संकटमाहिं सहाय करत हूं असुर मार भूभार हरत हूं भक्तन हृदय करत नित डेरा ॥ ३ ॥ बलिके द्वार रहो नित ठाढ़ो, द्रुपदसुता के अंबर बाढो बड़त गजको जलते काढ़ो भक्तन को नित करत निबेरा ॥ ४ ॥

दोहा—भरत पालकी तर दिये, रहूगण दश अध्याय। सुन उत्तर निज वचन रहु, उतर गहे निज पाय॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! किसी समय एक दिन सिन्धु और सौवीर देशका राजा रहूगण पालकीपर चढ़ा हुआ कहींको जा रहा था। उनका बड़ा प्रधानवाहक इक्षुमती नदीकेतीर उपस्थित होकर जब कि और कहारोंको ढूंढ़ता था, तब भाग्यने लाकर इन्हें आगे कर दिया, इस प्रकारसे उस राजाके प्रधानकर्मचारी कहारोंके जमादारने द्विजवर जड़भरतजीको वहां देखा। वह इनको देखकर मनही मन कहने लगा कि यह मनुष्य, बड़ा लम्बा चौड़ा और हृष्ट

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥ १ ॥ यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां शिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह ॥ हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥

पुष्ट दृष्टि आता है, वह ऐसा जान पड़ता है कि यह मनुष्य, बैल अथवा गधेके समान बोझ ले चलनेमें समर्थ होगा। इस प्रकारसे विचार करके वह जिन सब कहारोंको बलात्कार पकड़कर पालकी लिवाये जाता था, उनके ही साथ जड़भरतको पकड़कर पालकीमें लगा दिया, महात्मा भरतजी यद्यपि पालकी उठानेके अयोग्य थे, तथापि और दूसरे कहारोंके संग पालकीको उठाकर ले चले॥१॥ किसी जीवकी हिंसा न

१. शंका—राजा रहूगणने पालकीके ले चलनेवाले आठ ही कहार क्यों लिये क्या और पालकी ले चलनेवाले नहीं थे और राजा होकर एक अधिक आदमी नहीं रक्खा। जो गूंगा कुछ बात कहे तो लोगोंको आश्चर्य ज्ञान होता है। ऐसे यह भी आश्चर्य है क्योंकि बड़ा ही दरिद्री और जो लोभी भी राजा होगा उसके यहाँ भी पालकी ले चलनेवाले कहार बहुत होंगे, फिर क्या कारण जो रहूगणके यहाँ कहार एक भी अधिक न था कि, जो एक कहारके हारजानेसे पालकी जंगलमें पड़ी रही। जब दूसरे मनुष्यको पकड़कर मंगाया तो पालकी चली यह बड़े आश्चर्यकी बात है?

उत्तर—राजा रहूगणके यहाँ सहस्रों कहार पालकी ले चलनेवाले थे, एक हार गया तो दूसरा उपस्थित था और वह भी हारा तो तीसरा उपस्थित था। इस प्रकार अनेक कहार पालकीमें लगाये, परंतु भरतके मुखारबिन्दसे राजाको ज्ञान प्राप्त लिखा था इसलिये जिसको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दी जाय वही दुःखी हो जाय। सात आदमी तो अच्छे रहें उनमेंसे एक मनुष्य दुःखी हो जाय। राजाने अनेक उपाय किये परंतु सात कहार तो सुखी रहें आठवाँ दुःखी हो जाय, पालकीमें कन्धा दिया और कहारको रोगने ग्रसित किया और राजाको तीर्थके जानेकी अत्यन्त शीघ्रता थी, इसलिये जब पालकी चलानेके लिये कोई कहार शेष नहीं रहा, तब और मनुष्यका अनुसरण किया। राजा कुछ दरिद्री और कंगाल नहीं था।

हो, इस निमित्त भरतजी आगेको बाण छोड़नेसे वह जितनी दूर जाकर गिरता है उतना स्थान देखकर तब आगेको चरण धरते थे उनके इस प्रकार चलनेसे सब कहारोंकी एक प्रकारकी चाल न हो सकी और पालकी टेढ़ी होकर गिरनेको हुई तो रहूगण राजाने इसको देखकर बेगारी कहारोंसे तर्जगर्जकर कहा कि अरे! तुम पालकी बराबर क्यों नहीं चलाते हो टेढ़ी क्यों हुई जाती है? ॥२॥ कहार लोग राजाके तर्जन सहित वचन सुनकर दंडके भयसे शंकित हुए और विनय करके सब वृत्तांत कहने लगे ॥ ३ ॥ कि हे नरदेव! हमारी असावधानता नहीं है। हम सब तो आपकी आज्ञानुकारी होकर भली प्रकार पालकीको ले चलते हैं। यह मनुष्य जो इस मुहूर्तमें पकड़कर लाया गया है यह शीघ्रतासे नहीं चलता और इसके साथमें हम भी शीघ्र नहीं चल सकते। राजा रहूगणको कहारोंके यह वचन सुनकर निश्चय हुआ कि सत्य

अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छंकितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः ॥ अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान् सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकले-वरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहं ममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूततूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥

ही एक मनुष्यके संगसे सब संगीलोग दोषी हो सकते हैं, यद्यपि यह राजा वृद्धोंकी सेवा करनेवाला था, तो भी स्वभावके वश होनेसे उसको कुछ एक क्रोध आ गया। रजोगुणसे आच्छन्नबुद्धि होकर राखसे ढकी हुई अग्निके समान जिसका ब्रह्मतेज ढका हुआ था उन जड़ भरतजीको धिक्कार देकर उपहासके वचन बोला ॥ ४ ॥ ५ ॥ अहो! भाई भरत! हमको निश्चय बोध होता है कि तुम बहुत थक गये हो, अकेले बहुत दूरसे पालकी उठाकर लाये हो, तुम्हारा शरीर बड़ा दृढ़ नहीं है और तुम्हारे अङ्ग भी पुष्ट नहीं हैं। तुमको बुढ़ापा तो नहीं आ गया है? क्यों, क्या यहसब मनुष्य तेरे साथी नहींहैं? रहूगण गर्वित होकर इसप्रकारसे तर्जन-गर्जन करता हुआ हँसीके वचन कहने लगा।

भरतजीने उनको कुछ उत्तर न दिया किन्तु मौनी होकर पहलेके समान पालकीको ले जाने लगे। हे राजन्! भरतजीके मौनी होनेका कारण यह है कि वह ब्रह्मस्वरूप होनेसे अपने चरम कलेवर जो इंद्रिय कर्म (पाप-पुण्य) अन्तःकरण अविद्या द्वारा रचित हुआ था, उसमें "मैं और मेरा" इस प्रकारके मिथ्या ज्ञानको भरतजीने त्याग कर दिया था ॥६॥ इस प्रकार जब जड़भरतजी पालकीमें जुड़े जाते थे, तब इतनेमें ही वह पालकी फिर टेढ़ी हुई। तबरहूगण अत्यन्त क्रोध करके बोला—अरे! यह क्या तू जीता हुआ ही मृतक तुल्य है, तू मेरी आज्ञाका अपमान करता है? अरे! हमको तू अपना स्वामी नहीं समझता, तू बड़ा मतवाला है रह तो सही, यम जिस प्रकार प्राणि-समूहको शिक्षा देते हैं वैसे ही हम तुझको इस मतवाले-पनकी शिक्षा करेंगे। जिससे तू अपने आप अपने स्वभावको प्राप्त हो जायगा ॥७॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः॥ किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यसि इति॥ ७॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स भगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिः स्मयान इव विगतस्मय इदमाह॥ ८॥ ब्राह्मण उवाच॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः॥ गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः॥ ९॥

हे राजन्! इस प्रकार रहूगण राजा अपनेको नरदेव और पंडित समझता था और इस बातका उसको अभिमान भी था, इस कारण रजोगुण और तमोगुणके बढ़े हुए मदमें मत्त होकर इस प्रकार अनेक असंगत वचनोंसे भगवान्‌वासुदेवके प्रिय भक्त भरतजीका तिरस्कार किया। वे भरतजी, जो सब प्राणियोंके मित्र सुहृद आत्मा और परब्रह्म-स्वरूप ब्राह्मण हुए थे, वे गर्वको त्यागे हुए कुछेक हँसे। हे परीक्षित! योगेश्वर लोगोंका आचार किस प्रकारका होता है? इस बात को रहूगणकी बुद्धि नहीं जानती थी, इसी कारणसे भरतजीका उन्होंने ऐसा तिरस्कार किया, कुछेक हँसकर भरतजी रहूगण राजासे बोले कि ॥ ॥ ८॥ हे वीर! तुमने उपहास करके जो कुछ कहा वह सब कुछ मिथ्या नहीं है। यदि जो वहनकर्ताका कोई भार हो और वह भार यदि उठानेवाली देहको लगता हो और उसके साथ मेरा भी कोई

संबन्ध हो तो ऐसा होनेसे भी इस समय भार न रहनेके कारण तुम्हारे यह वचन विरुद्ध हो सकते हैं, परंतु हमसे इस विषयका कुछ संबंध नहीं है, इस कारण जो जो कहा, वह मिथ्या व असंगत नहीं है। परंतु तुमने हमको 'स्थूल नहीं' यह जो वचन कहा, ऐसा वचन पंडित जन चेतनके लिये कभी नहीं कहते; मूर्ख लोग ही कहा करते हैं क्योंकि इस प्रकारका वचन शरीरके ही ऊपर लग सकता है, आत्माके ऊपर कभी नहीं लग सकता, इस कारण यह शरीर पुष्ट है, कुछ मैं पुष्ट नहीं हूं ॥ ९ ॥ और दूसरे जो पुरुष देहके सहित उसके अभिमान द्वारा जन्मा हो, उसको ही मोटापन, दुबलापन, आधि, व्याधि क्षुधा, तृषा, भय, क्लेश,इच्छा, जरा, निद्रा,रति, क्रोध,शोक, भय और अहंकार जनक मद उत्पन्न होता है। हमको देहाभिमान नहीं है, इस लिये इसमेंसे हममें कुछ भी नहीं है ॥ १० ॥ हे राजन्! और तुमने जो हमको "जीवित-मृतक" कहा इसमें यह कहना है कि कुछ हम ही जीवन्मृत नहीं हैं, सब संसार ही जीवन्मृतक है विकारी अर्थात्

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयंकलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम्॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥११॥ विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्यामि यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ॥ क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथाऽपि राजन् करवाम किं ते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ॥ अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥

परिणामशील पदार्थमात्र ही जीवन्मृत दृष्टि आते हैं और विकृत सब ही पदार्थोंका आदि और अंत है और तुमने जो हमसे कहा कि "स्वामी की आज्ञाका निरादर करता है" इसके विषयमें यह कहना है कि जिस स्थलमें आपका वह स्वामि-भाव अविचल हो उस स्थानमें ही आदेश करना और मेरा कर्म करना युक्त हो सकता है, नहीं तो तुम्हारा राज्य ध्वंस हो गया और हमारा राज्य हुआ, तो इसके विपरीत होनेका संभव है अर्थात् हम आज्ञा करें और आपको कार्य करना पड़े॥११॥ यद्यपि जबतक तुम राजा हो तबतक अपने आपको स्वामी कह सकते हो, तो भी एकमात्र व्यवहारके अतिरिक्त उसमें विशेष बुद्धिका थोड़ा भी अवकाश दृष्टि नहीं आता, क्योंकि प्रभु कौन है ? प्रभुता क्या है ? सो जो कुछ हो, यदि तुम अपने आपको प्रभु होनेका अभिमान रखते हो तो, हे राजन्! आज्ञा दो कि

तुम्हारा क्या कार्य करें, हे राजन् तुमने जो हमको कहा कि "तू उन्मत्त है" और "तू अपने स्वभावको प्राप्त हो जायगा" इस बातमें हमको इतना ही कहना है कि हम उन्मत्त वा मत्त, अथवा जड़तुल्य हो रहे हैं, वह सत्य है, परन्तु वास्तवमें हम ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये हैं तुम उपाय करके दंड ही दो, अथवा शिक्षा ही दो, उससे हमारा कुछ नहीं बनता बिगड़ता, क्योंकि हम जीवन्मुक्त हैं, जीवन-युक्त हैं, हमारा अर्थ वा अनर्थ कुछ भी नहीं हो सकता और यदि हमको तुम जीवनयुक्त नहीं जानते और बावला समझते हो, यदि तुम्हारे मतके अनुसार हम वैसे ही हों तो भी हमको दंड देना; शिक्षा करना पिसे हुएको दुबारा पीसना है, क्योंकि वास्तव में जड़स्वभाववाले मनुष्य शिक्षा पाकर भी चतुर नहीं हो सकते ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! शांत शीलवान् मुनिवर जड़भरतजी इस प्रकारसे रहूगण राजाके वचनोंका उत्तर दे, पूर्व जन्मके कर्म जो प्राप्त हुए थे, उनको भोगकर, प्रारब्ध कर्मोंका क्षय कर चुके थे, पूर्ववत्

श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन्राजयानमपि तथोवाह ॥ १४ ॥ स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिविमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसंमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन् विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात् क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥ १६ ॥

इस राजाकी पालकीको लेकर चलने लगे। देहमें आत्मबुद्धिके कारण जो अविद्या है, उससे वह छूट गये थे, इस लिये पालकी उठानेमें उन्होंने कुछ क्लेश वा अपमान नहीं समझा ॥१४॥ हे पाण्डवेय परीक्षित् ! सिंधु और सौवीर देशका अधिपति यह रहूगण राजा हृदयकी गांठको तुड़ानेवाले और अनेक-अनेक योगके ग्रन्थोंके अनुसरण करनेवाले भरतजीके यह वचन सुनकर पालकीसे उतर पड़ा। उत्तम श्रद्धा उत्पन्न होनेसे तत्त्वजिज्ञासामें उसको अधिकार प्राप्त हुआ, इस कारण "मैं राजा हूँ" इस गर्वको त्यागकर मुनिवर भरतजीके चरण-कमलोंमें गिरकर अपना अपराध क्षमा कराकर कहने लगा ॥१५॥ हे ब्रह्मन्! आपके कन्धेमें यज्ञोपवीत देखता हूँ, क्या आप ब्राह्मणोंमेंसे कोई हैं ? वा आप दत्तात्रेयादिकोंमेंसे कोई अवधूत हैं ? आप क्यों गुप्त भावसे फिरते हैं ? आप किसके पुत्र हैं ? कहां आपका निवासस्थान

है ? आप यहांपर किस कारणसे आये थे ? यदि हमारे मंगल करनेके लिये आना हुआ हो तो क्या आप शुक्लमुनि अर्थात् कपिलदेवजी तो नहीं हो ? ॥ १६ ॥ हे योगिन् ! मैं देवराज इंद्रके वज्रका भय नहीं करता, महादेवजी के शूलसे भी शंका नहीं करता और यमदण्ड देखकर भी मैं नहीं डरता, अग्निके कोपसे, सूर्यके तापसे, पवनके वेगसे, कुबेरके पाशसे और सोमके अस्त्रसे मैं इतना भय नहीं मानता जितना ब्राह्मण जातिका अपमान होनेसे, मैं बहुत ही डरता हूँ ॥१७॥ इस कारण आपसे जो प्रश्न किया, उसका उत्तर दीजिये । यद्यपि आप अपने विज्ञानरूपका प्रभाव छिपाकर सङ्गको छोड़ जड़के समान फिरते हैं तथापि मेरे निकट आपकी अनन्त-महिमाका प्रकाश होता है । क्योंकि आपने योगसे गूँथे हुए जो समस्त वचन कहे, मैं मनमें भी उन वाक्यों का अर्थ प्रकाश करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥ ८॥

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ १७ ॥ तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ॥ वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमं ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥१८॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत् साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥ १९ ॥ स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपि स्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥ दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतोदानयनाद्यभावात् समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥ २१ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपके मुखसे यह वचन सुनकर ज्ञानके विषयमें कुछ प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा होती है इस लिये महायोगेश्वर और आत्मतत्त्वके जाननेवाले मुनियोंमें प्रधान और ज्ञानशक्तिसे अवतीर्ण, साक्षात् हरि कपिल मुनि जो आप हैं, आपको गुरु करके "इस संसारका निस्तार क्या है ?" यह पूछनेको प्रवृत्त होता हूँ और हे नाथ ! इसी कारण मैं आपके पास जाता था ॥१९॥ हे प्रभो ! मैंने जिस प्रकारसे वर्णन किया, आप वैसे ही हैं । इसमें कोई संदेह नहीं और कदाचित् लोगोंके देखनेके वास्ते अपने चिह्न गुप्त करके आप घूमते हैं ? हाय ! घरमें फँसे मंदबुद्धि लोग किस प्रकार आपमें योगेश्वरोंकी गति देख सकते हैं ॥ २० ॥ हे प्रभो ! आपने पहले जो मेरे वचनोंके उत्तर दिये वे मुझको ठीक-ठीक नहीं जान पड़ते, आपने कहा कि-"हमको श्रम नहीं होता" यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती, भला यह किस

प्रकारसे हो सकता है? क्योंकि जो पुरुष किसी कार्यको करता है तो उसके करनेसे उसको अवश्य ही श्रम होता है जब कि मैं अपने राज्यकी और युद्धादिककी क्रिया करता हूं, तो उसका श्रम अवश्य ही मुझको होता है। जब कि मैं अपने प्रभुत्व और युद्धादि किया करनेके समय श्रम देखता हूं, तब सहजसे ही अनुमान होता है कि आपको भी भार ले चलनेसे श्रम हुआ है। दूसरे आपने कहा कि–"एकमात्र व्यवहारके सिवाय और कुछ दृष्टि नहीं आता" हे ब्रह्मन्! यह वार्ता भी संगत नहीं हो सकती। इस कारण व्यवहार विषय (संसार) झूंठा है, ऐसा समझ नहीं पड़ता, वरन् सत्य-सा समझ पड़ता है, क्योंकि जो घटादि पदार्थ मिथ्या हों तो उनसे किस प्रकार जलादि लानेके कार्य हो सकें? ॥२१॥ और आपने जो कहा कि–"सुख दुःखादि केवल देहके धर्म हैं" वे वास्तवमें हमारे नहीं हैं। इस बातसे भी मेरे मनमें यह संशय होता है कि यह सब शरीरका धर्म होनेपर भी सत्य क्यों न होगा? क्योंकि देखता हूँ कि तौलीको आगके ऊपर चढ़ा देनेसे उस

स्थाल्यग्नितापात् पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ॥ देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥ २२ ॥ शास्ताऽनुगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किंकरो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥ २३ ॥

तौलीके तापसे उसके बीचमेंका दूध तत्ता अर्थात् गरम हो जाता है। उस दुग्धादिके उत्तापसे उसमेंके पड़े हुए चावलोंका बाहिरी भाग तप्त होता है। फिर बाहिरी भागके उत्तापसे चावलका मध्यभाग पक जाता है। यह बात सब प्रकारसे यथार्थ है किसी भांति मिथ्या नहीं, इस कारण परस्परके अग्निसम्बन्धसे जिस प्रकार चावल पक जाते हैं, वैसे ही देह, इन्द्रिय, प्राण और मन यह सब शरीर धर्मकी अनुवृत्तिके द्वारा पुरुष संसारमें लग जायगा इसमें क्या असंभव है? बस गरमी आदि पड़नेके हेतु शरीरको सन्ताप हुआ, उससे सब इन्द्रियोंको, उससे प्राणोंको, फिर उससे जब मनका सन्ताप होना दृष्टि आता है, तब देह स्थूल होनेपर भी परस्परताके कारण आत्मा क्यों नहीं स्थूल होगी? ॥ २२ ॥ और आपने जो कहा कि–"स्वामिभाव नित्य नहीं है" यह सत्य है, परंतु नित्य होनेपर भी जब जो पुरुष राजा होता है, तब उस समय तो वह प्रजाका शासन पालन करता ही है। दूसरे आपने कहा कि–"असावधान लोगोंको शिक्षा

देना, पिसेको पीसना, अर्थात् निष्फल श्रम करना है, " यह भी मुझको ठीक नहीं जँचता, क्योंकि जो पुरुष भगवान्के दास होते हैं वे कभी निष्फल कर्म नहीं करते। अर्थात् जड़ पुरुषको शिक्षा देनेसे यद्यपि उसकी जड़ताको दूर नहीं किया जा सकता, तथापि सबोंके शासन करनेवाले परमेश्वरकी आज्ञा पालन करनेसे उस जड़के लिये यत्न करना विफल नहीं होता, परमेश्वरकी आराधना करना ही राजाका धर्म है। और आज्ञा-पालन करनेके द्वारा उसके लिये चेष्टा करनेसे पापोंके समूहसे छुटकारा हो जाता है ॥२३॥ हे प्रभो ! इस प्रकारसे आपकी कही हुई सभी बातें मुझको अनुचित जान पड़ती हैं। इससे आप अनुग्रह करके मुझपर स्नेहदृष्टि कीजिये। मैंने राजापनके अभिमानसे

तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ॥ कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥ न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥ महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृक् नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागव० महापु० रहूगणजडभरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आप सरीखे साधु पुरुषोंका जो अपमान किया है, ऐसा अनुग्रह मेरे ऊपर कीजिये कि जिससे साधुओंके अपमान करनेसे जो पातक लगता है, उससे मेरा निस्तार हो जाय ॥२४॥ हे प्रभो ! आप विश्व (संसार) के सगे और सखा हो, इस लिये सबमें ही समदृष्टिके हेतु अपनी देहमें भी आपको देहाभिमान नहीं है, इससे मैंने जो आपका अपमान किया है उससे यद्यपि आपको कोई विकार नहीं हुआ है तथापि मेरे समान पुरुष क्या ? जो महादेवजीके समान सामर्थ्य रखते हों वे भी महात्मा पुरुषोंके अपमानसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं * ॥ ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणजड़भरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

* क्योंकि जिसने परमेश्वरके भक्तोंको सताया है, उसने उसका फल तत्काल ही पाया है, देखो ! हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संग अत्याचार किया, भगवान्ने उसके बदलेमें उसका प्राण लिया, दुःशासनने द्रौपदीके साथ अधर्म किया; भीमसेनने उसके बदले उसका रुधिर पान कर लिया; अतः सब महात्मा पुरुषोंका यही वचन है कि भक्तोंका सताना किसी प्रकार अच्छा नहीं है " ॥ २५ ॥

दोहा–बूझो जब जड़भरतसे, निपुण रहूगण राय। परमज्ञान सो सब कह्यो, एकादश अध्याय॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार रहूगण राजाके वचन सुनकर जड़भरतजी कहने लगे कि हे वीर! तुम अविद्वान् होकर भी विद्वान् लोगोंके समान बातें करते हो, परंतु हमको जान पड़ता है कि तुम श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो, क्योंकि तुम स्वामी भृत्यादि लौकिक व्यवहार को अम्लान मुखसे सत्य कहते हो, पंडित लोग तत्त्वविचार करके कभी इस प्रकारसे नहीं कहते, बस, तत्त्वका विचार न करनेसे ही स्वामी भृत्यादिका व्यवहार प्रगट होता है, इससे वह सत्य नहीं है॥१॥ हे राजन्! दूसरे संसारी स्वामी भृत्यादिके व्यवहारके समान वैदिक कर्मकाण्डका व्यवहार भी सत्य नहीं है, कि जिन सब वेद वचनोंमें अनेक गृहसम्बन्धी यज्ञोंके विस्तारविषयक विद्याओंका प्रतिपादन है परन्तु उनमें शुद्ध अर्थात् हिंसादि-

ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः॥ न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥ १ ॥ तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥ ॥ २ ॥ न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वाऽनुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥ ४ ॥

रहित और रागादिरहित तत्त्ववाद प्रायः निश्चय रूपसे नहीं प्रकाशता, परन्तु जो कर्म करे वह नारायणार्पण कर दे तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेसे परमार्थ फलरूप तत्त्वज्ञानका हेतु हो जाता है ॥ २ ॥ तथापि वेदान्त सुने हुए किसी-किसी पुरुषकी कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है, वह कुछ वैदिक धर्मकी सत्यता प्रमाण नहीं हो सकती, क्योंकि जिस प्रकार स्वप्नका सुख दिखाया वह जैसे अनित्य होनेसे त्याग करनेके योग्य है, ऐसे ही गृहस्थीका सुख भी दृश्य और अनित्य होनेसे अग्रहणीय है। ऐसा जिसने मनमें निश्चय नहीं किया, उस पुरुषको वेदान्तके वाक्य, यद्यपि वह तत्त्वज्ञानके अर्थ बहुत श्रेष्ठ हैं तो भी उसको तत्त्वज्ञान नहीं दे सकते ॥३॥ हे राजा परीक्षित्! रहूगण राजाने प्रपञ्चरूप जगत्को जो सत्य कहा था, विप्ररूप योगीवर जड़भरतजीने इस प्रकार उसके

वाक्योंका खण्डन किया और फिर उसकी कही हुई संसारकी नित्यता खण्डन करनेके लिये बोले-हे वीर ! जबतक पुरुषका मन रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके वश रहता है, तबतक ही वह निरंकुश रहकर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंसे धर्म अधर्मका विस्तार किया करता है ॥ ४ ॥ और यह केवल मन पाप पुण्यकी वासनासे युक्त है, और वही आत्माके शरीर धारण करनेका हेतु आत्मस्वरूप है, इससे यह सब विषयोंमें रंग जाता है, उससे विषयोंके द्वारा चलायमान और विवृत अर्थात् कामादि परिणामयुक्त हो जाता है, परन्तु यह मन पंचमहाभूत और इंन्द्रियोंकी सोलह कलाओंके बीचमें मुख्य है। वही अलग-अलग नाम सहित पशु-पक्षी आदि विशेष-विशेष देह धारण करता है और उन देहोंके कारणोंसे ही आत्माकी श्रेष्ठता व नीचता प्रकट हो जाती है ॥ ५ ॥ दूसरे यह मन संसारचक्रके छलसे माया द्वारा शरीरोंकी रचना करके अपनी आत्माको आलिंगन करता हुआ, सुख-दुःख अथवा मोह जो अपने कर्मकी काल-प्राप्तिका अनिवार्य

स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ्नामभिरूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥ दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति॥आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥ तावानयं व्यवहारःसदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ॥ तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोःक्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नञ्छिखाः साधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ॥ ८ ॥

समय है, उसको भी सर्व प्रकार उत्पन्न करता है, यह मन ही जीवको अनेक प्रकारकी उपाधि करता है, इससे यही जीवको अपने भीतर मिथ्या अध्यात्म कराकर "मैं ही मन हूँ" इस प्रकार दरशाकर भवसागरकी लहरोंमें ग्रामकंटककी नाईं छलकर इधर-उधर घूमा करता है ॥६॥ इस लिये जबतक मन रहता है, तबतक जाग्रत्-स्वप्नरूप व्यवहार प्रकाशमान होकर सदा क्षेत्रज्ञ जीवका दृश्य होता है, इस कारण पंडित लोग इस मनको ही गुणोंके अभिमान करनेका रूप अधमता देनेवाला कहते हैं ! और यह भी विद्वान् लोग कहते हैं कि ॥७॥ प्राणियोंका मन गुणमें अनुरागी रहनेसे वह व्यसनका निमित्त होता है। अर्थात् जीवको जन्ममरणादिका कष्ट देता है। और जब वही गुणहीन हो जाता है तब वह कल्याणको देता है,जैसे जबतक दीप, घृत और बत्तीको जलाता रहता है तबतक उसमेंसे धूमयुक्त शिखा निकलती रहती है,

किन्तु दूसरे समय जब कि घृत नहीं रहता तब वह दीपक बुझकर तेजरूप धारण करता है। इसी प्रकार मन भी जब गुणकर्म्मोंमें लगा रहता है, तब ही अनेक प्रकारकी वृत्तियोंका आश्रय करता है और वही मन जो गुण कर्मोंसे अलग हो जाता है तो तत्त्वरूप हो जाता है ॥८॥ हे राजन्! सब वृत्तियाँ एकादश प्रकारकी होती हैं, उनमें पांच क्रियाकार और पांच ज्ञानाकार और एक अभिमान। पंडित लोग शब्दादि विषय ग्रहणादि कर्म तथा शरीर इन ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंको विषय कहते हैं ॥ ९ ॥ वह सब विषय यह हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच ज्ञानेंद्रिय द्वारा ज्ञानाकार सबकी वृत्तियोंके विषय होते हैं, और जैसे ग्रहण, गमन, मलत्याग करना और रमण करना आदि पांच विषय पांच कर्मेंद्रिय द्वारा कर्माकार सब वृत्तियोंके विषय होते हैं। और शरीर ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि है, वह 'मेरा' इस

पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ॥९॥ मन्त्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥ गन्धाकृतिः स्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ १० ॥ एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥ द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ॥ सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १२ ॥

प्रकार भोगायनत्व रूपमें अभिमानका विषय हो जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि इसके सिवाय मूढजनोंकी बारह वृत्तियाँ हैं, उनमें भी यह शरीर है, शय्या नाम ग्रहण करके विषय हो जाता है, शरीरका नाम पुर है, उसमें जीव अहंकार द्वारा शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है ॥ १० ॥ पांच ज्ञानेंद्रियोंके विषय रूप शब्द विसर्गादिक पञ्च कर्मेंद्रियोंके द्वारा कर्माकार वृत्तियोंके विषयमें भोग गति करना, शिल्प ग्यारहवां स्वीकार करना कि, यह ममाकार है और शय्या अहंकारको बारहवां आचार्योंने कहा है॥ ११॥हे राजन्! पहले कही हुई ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट और काल इन सबके कारणसे प्रथम शत प्रकार, फिर सहस्र प्रकार उसके पीछे कोटानुकोटि

प्रकार हो जाती है, परंतु इन सबके इस भांतिसे कोटि प्रकार होनेपर भी यह क्षेत्रज्ञसे ही होते हैं और उसकी सत्तासे ही सत्ता प्राप्त होती है, परस्पर अथवा अपने आपसे ही नहीं हो जाते मनुजोंकी मायारचित जीव अर्थात् जीवोपाधि और अविशुद्ध करता यह सब वृत्तियाँ उसकी माया हैं, यह सब नित्य हैं। कभी-कभी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें आविर्भूत होती हैं, कभी सुषुप्ति दशामें तिरोहित हो जाती हैं, क्षेत्रज्ञ आत्मासाक्षी हो इन सबको सब ही अवस्थामें देखता रहता है ॥ १२ ॥ हे राजन्! क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है, एक जीव, दूसरा ईश्वर। जीवका स्वरूप पहले बतला चुके हैं, अब ईश्वरका स्वरूप कहते हैं, वह सुनो। वह आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी है। पुरुष अर्थात् पूर्ण

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजङ्गमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥

स्वरूप है। पुराण अर्थात् जीवके कारणभूत है, साक्षात् अर्थात् अपरोक्ष है, परंतु स्वयंप्रकाश रूप दूसरे उसका जन्मादिक नहीं। और वहांपर जो ब्रह्मादि हैं उनका भी प्रभु है, वह नारायण अर्थात् जीवसमूह उनके अयन (वासस्थान) और वह भगवान् अर्थात् ऐश्वर्य्यादि संपन्न है। और वासुदेव हैं अर्थात् सब भूतोंका आश्रय और अपने अधीनमें जो माया है, उसके द्वारा आत्मामें अर्थात् जीवमें नियामक रूपसे वर्तमान रहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार वायु प्राणस्वरूपसे देहमें प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंके ऊपर प्रभुताई करता है

---

१. शंका—राजा रहूगणसे जड़भरतने कहा कि, मायासे जो बनाया हुआ जीव उसको जितने मनके पदार्थ हैं सो सब होते हैं, उन्हीं पदार्थोंको जीव भोगता है, परन्तु भरतने जीवको मायासे बनाया क्यों कहा? जीव माया करके रचित नहीं हैं, जीव भगवान्‌का अंश हैं, किन्तु मायाके वशीभूत हो रहा है, भरतने जीवको मायारचित क्यों कहा?

उत्तर—जो प्राणी जिससे भय मानता है, वह प्राणी अपना त्रास देनेवाला छोटा भी होगा तो भी उसको सबसे बड़ा करके मानेगा। ज्ञानी पुरुषोंके सम्मुख माया सबसे छोटी है, परन्तु जड़भरतको वारंवार माया दुःख देती है, जब मायासे भरत डर गये, तब सब पदार्थोंको भरतने बड़ा माना। जड़भरतने अपने आपको मायासे दुःखी देखकर मायासे बहुत डरे इसी डरसे जीवको माया करके बनाया कहा है, क्योंकि उस समय भरत ऐसे मायासे डरे थे कि उनने मनमें विचारते थे कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव मायासे बड़े नहीं हैं, माया सबसे बड़ी है।

वैसे ही क्षेत्रज्ञ आत्मा परमपुरुष भगवान् वासुदेव सब जगत्में व्यापक होकर उसके ऊपर प्रभुता करते हैं॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र ! यह शरीर ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे जबतक मायाको नहीं छोड़ता और सब संगको और छः शत्रुओंको नहीं जीत लेता और जबतक अपनी आत्माको नहीं जान लेता तबतक संसारमें इधर-उधर घूमता-फिरता है ॥ १५ ॥ दूसरे जबतक इस मनको आत्माकी उपाधिका कारण और संसारके सब तापोंका क्षेत्र जानकर निश्चय नहीं होता, तबतक संसारमें छुटकारा नहीं मिलता। हे राजन् ! मनको संसारके तापका क्षेत्र क्यों कहते हैं वह सुनो-शोक, मोह, लोभ, क्रोध, राग, द्वेष, इन सबमें संयुक्त होकर मन ही ममताको जन्माता है और उससे ही संसारी ताप

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां वयुनोदयेन ॥ विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥
न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं संसारतापावपनं जनस्य ॥ यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥
भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ॥ गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥
इति श्रीभागव० म० पञ्च० जडभरतोपाख्याने रहूगणाय मनोविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

होता है। इससे मन ही सब संसारी तापोंका क्षेत्र है ॥१७॥ इस कारण तुम अपने गुरुरूप जो हरि हैं उनके चरणोंके उपासनारूप जो अस्त्र हैं, उनको चलाकर सावधान हो इस मनका विनाश करो। हे राजन् ! यह मन महा पराक्रमी अत्यन्त प्रबल शत्रु है, उपेक्षा करनेसे उसकी अत्यन्त वृद्धि हो जायगी और यद्यपि वास्तवमें यह स्वयं मिथ्यास्वरूप है, तो भी आत्माको अज्ञान कर सकता है। इसलिये इसकी उपेक्षा मत करो। * ॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणमनोविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

* भजन-यह मन मायामें लिपटानो ॥ कथा पुराण झूठ सब समझत, कुटुम सत्य कर मानो ॥ १ ॥ बार-बार समुझावत हूँ में क्यों तू भयो दिवानो। झूठे घरको सत्य बतावत, सांचो गेह भुलानो ॥ २ ॥ अबहूँ समझ नाहिं कछु बिगरो, ज्योंका त्यों सव जानो। जब उड़ जाय पींजराते शुक, तब परि है पछितानो॥ ३ ॥ चौरसीमें फिरै भटकता, कहूं नहिं लगे ठिकानो। अंत समय कोउ होत न साथी, यमपुर परि है जानो ॥ ४ ॥ शालिग्राम काम नहिं आवत, अपनो और बिरानो। सब संसार स्वप्न की माया, सांचे राम गुण गानो ॥ ५ ॥ १८ ॥

दोहा—बूझो पुनि जड़भरतसों, रहु संशय मन लाय। मेटो सब सन्देह तिन, द्वादशवें अध्याय ॥ रहूगण बोले कि हे योगीश्वर ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी यह देह परमेश्वरके समान सब लोकोंकी रक्षा करनेके ही लिये है। वास्तवमें आप आत्मस्वरूप अर्थात् परमानंदका प्रकाश करके आपने अपनी देहको तुच्छ समझा है। हे प्रभो ! इस द्विजबंधुके वेषसे आप अपने स्वतन्त्र अनुभवको छिपाकर रखनेवाले आपके लिये नमस्कार है॥ १॥ हे ब्रह्मन् ! ज्वर-रोगसे ग्रस्त मनुष्यके लिये ओषधि जैसे सुखदायक होती है और ग्रीष्मकी लुओंसे दग्ध पुरुषके लिये शीतल जल जिस प्रकार शांति करता है ऐसे ही मेरे लिये आपके यह सब वचन हुए हैं। इस निन्दनीय कार्यके मदरूप भुजङ्गने जो मेरी दृष्टिको डस लिया था, उस दृष्टिको अब आपके वचनरूपी अमृतकी ओषधि मिल गयी ॥ २ ॥

रहूगण उवाच ॥ नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमोऽवधूतद्विजबन्धुलिङ्गनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्य यथाऽगदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥ तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥३॥ यदाह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ॥ न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥४॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ॥ तस्यापि चाङ्घ्र्योरधिगुल्फजङ्घाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥

इस कारण जिस-जिस विषयमें संशय है वह तो मैं पीछे आपसे पूछ लूंगा, अब पहले जो आपने वेदान्त, अध्यात्मज्ञान योगमें सने हुए वचन कहे, वह सब अति कठिन है। मैं उनको कुछ भी नहीं समझ सका, उनको जिस प्रकार मैं भलीभांति समझ सकूं उस रीतिसे आप उनकी व्याख्या कीजिये, इस विषयको जाननेके लिये मेरे चित्तमें अत्यन्त उत्साह हो रहा है ॥ ३ ॥ हे योगीश्वर ! आपने जो कहा कि—"वहनादि क्रिया और उसका फल श्रम होना, इत्यादिक प्रत्यक्ष दीखनेपर भी कुछ नहीं है। अर्थात् कारण होनेपर भी यथार्थ रूपमें तत्त्व विमर्शनार्थ समर्थ नहीं है, सो इस बातसे मेरे मनमें अत्यन्त भ्रांति हो रही है ॥४॥ जड़भरतजी बोले कि हे पार्थिव !

यह सब पृथ्वीका विकार है, जो पदार्थ पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है, वह किसी कारणसे पृथ्वी पर चलने लगता है, उसको अपने जन अथवा कहारादि नामोंसे प्रसिद्ध कर रक्खा है और जो स्थिर वस्तु है उसको आपने मृतिका वा पत्थर अथवा काष्ठादिक समझ लिया है, परन्तु वास्तवमें विचार कर देखिये तो उस जनमें और पाषाणमें कुछ अन्तर नहीं है। पाषाण जड़ होनेके हेतु किंचिनन्मात्र भी परिश्रम वा भार आदि नहीं उठा सकता और न उसमें उठानेका सामर्थ्य है, इसी प्रकार कहारका भी भार उठाना अथवा परिश्रमादि कर्म समझना वृथा है। इसको भी जड़ समझना चाहिये, क्योंकि जिस वस्तुको परिश्रम होता है उसको जो सत्य-सत्य निरूपण हो सकता हो तो निश्चय अपने आपको अथवा औरको परिश्रम होना सत्य भी मान लेता, परंतु उसका सत्य होना ही असम्भव है, क्योंकि अंगोंके अतिरिक्त अंगोंका निरूपण ही किसी प्रकार नहीं हो सकता, प्रथम यह निश्चय कीजिये कि कहारकी देहमें क्या-क्या अंग हैं देखो! जो पृथ्वीसे उत्पन्न

अंसेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ॥ यस्मिन् भवान्रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ ॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान् विष्टया विगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥

हुआ कहार है उसके पृथ्वीपर ही पांव हैं और पांवोंपर गुल्फ है, गुल्फपर जङ्घा है, जङ्घाओंपर जानु जानुओंपर सांथल, सांथलोंपर मध्य देश, मध्यदेशपर छाती, छातीपरग्रीवा और शिर है और इधर-उधर कंधे हैं ॥५॥ कंधोंके ऊपर कोई अवयव भी हो सो भी नहीं है, उसके ऊपर काठकी बनी पालकी है, उस शिबिकामें भी कोई अंग नहीं है, उसमें सौवीर नाम एक राजा पार्थिव विकार (मिट्टीका थुवा) बैठा हुआ देखता हूं, इस पार्थिव विकारमें ही तुम्हारा आत्माभिमान है; कि मैं सिन्धु देशका नरेश हूँ और पालकीमें सवार हूँ। बस, इसी गर्वके मदसे तू अन्धा हो गया है ॥६॥ यह सब बोझा ढोनेवाले मनुष्य अधि ककष्ट भोग करके अति दीन मलीन तनु क्षीण हो रहे हैं। जिनको देखकर चित्त महादुःखी होता है, उनको तूने बलात्कार बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोता है, इस कारण तू अतिनिर्दयी

और महापापी है और इतनेपर निर्लज्ज हो कहता है कि मैं सबकी रक्षा करता हूं ऐसा कहकर जो तू अपनी बड़ाई करता है, यह सब मिथ्या है। तू अति दुष्ट है विवेकी जनोंकी सभामें तू शोभाको नहीं पा सकता ॥ ७ ॥ हे राजन्! ऊपरके अंगोंका भार नीचेके अंगोंका लगता होगा ऐसा निश्चय नहीं होता, क्योंकि जैसा अंगवाले एक पदार्थका तथा अंगोंका भी निरूपण नहीं हो सकता, इस बातको मैं भली प्रकार जानता हूँ, जबकि पृथ्वीसे ही चराचर सब पदार्थोंका नाश और उत्पत्ति होती है तब पृथ्वी भी अलगका विकार नहीं है, नाममात्रसे अलग है और कोई वस्तु इन सब व्यवहारोंका मूल है और अर्थ क्रिया द्वारा यह ज्ञानमें आये तो तू ही इसको निश्चय कर ॥ ८ ॥ इस प्रकार जिसमें पृथ्वी शब्दका व्यवहार है उसको भी मिथ्या समझना चाहिये। वह भी किसी प्रकार सत्य नहीं है, क्योंकि वह भी अपने

यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम्
॥८॥एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः॥९॥
एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

कारिणीभूत सूक्ष्म परमाणुओंमें लय हो जाती है। हे राजन्! इससे ऐसा मत समझो कि (परमाणु सब नित्य हैं) हे वीर! मनसे कार्यकी उत्पत्तिके लिये समस्त परमाणुवादियोंने कल्पित कर लिये हैं। उनके समूहसे ही अर्थात् पृथ्वी इत्यादि समझनेके आश्रयमें ही विशेष-विशेष पदार्थ रचे गये हैं। हे महाराज! यह प्रपंच भगवान्की मायामें मिला हुआ है, इस कारण समस्त परमाणु भी अविद्यासे कल्पित हो सकते हैं, परन्तु किसी प्रकारसे यह परमाणु सत्य नहीं है ॥ ९ ॥ हे राजन्! आत्मामें कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, कभी कार्य, कारण और कभी जड़ताका धर्म देखकर जो दूसरा (द्वैत) दीख पड़ता है, वह दूसरा भी मिथ्या है। द्रव्य, स्वभाव, आशय; काल कर्म इत्यादि यह सब मूलतत्त्व अविद्या प्रयुक्त हैं इनको तू जान, भला फिर सत्य क्या है? ॥ १० ॥

---

१. शंका-संसारमें जो वस्तु मोटी अथवा पतली, उत्तम वा मध्यम, बड़ी तथा छोटी, पाप वा पुण्य, रात वा दिन, हानि वा लाभ, जन्म या मरण आदि जिसे जोड़ी कहते हैं, वह दोका जोड़ है। वह सब मायाका बनाया हुआ है, ऐसा बचन रहूगण राजासे भरतने क्यों कहा? क्योंकि यह तो सब भगवान्का बनाया हुआ है।

उत्तर—बीज बिना कोई भी जीव जन्म नहीं ले सकता, इसी लिये ईश्वरकी आज्ञाको प्राप्त हुई माया, उसीको मुनीश्वरलोग शक्ति भी कहते हैं, उस मायासे भ्रम यह है कि बिश्वास किसीका नहीं मानना, उसी भ्रम करके यह संसार उत्पन्न होता है, इस लिये बड़े योगी जड़भरतने मायासे किया हुआ कहा।

हे महाराज! विशुद्ध जिसके बाहर-भीतर दूसरा कुछ भी नहीं है, परिपूर्ण अपरिच्छिन्न और निर्विकार जो ज्ञान है वही परमार्थ सत्य है। उसी ज्ञानका नाम भगवान् शब्द है, उस ज्ञानको ही पंडित लोग वासुदेव कहते हैं॥११॥हे रहूगण! वह स्थान जहां परब्रह्म विराजमान है महत्पुरुषोंकी चरणरजकी सेवा किये विना न तो तपस्यासे, न वैदिक कर्म करनेसे न अन्नादिक दान करनेसे न गृहस्थ धर्ममें रहकर परोपकार करनेसे, न वेदाभ्याससे, न अग्निसे, न सूर्यकी उपासना करनेसे अर्थात् किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता। इस कारण बड़े पुरुषोंके चरणरजकी सेवा करनेसे ही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥१२॥ हे राजन्! महान् पुरुषोंमें सदा ही भगवान्के गुणानुवादकी चर्चा रहती है, उनके निकट विषयवार्ताका किंचित् भी सम्बंध नहीं रहता, उस भगवत् गुणानुवादकी सदा सेवा करनेसे वही भगवत्-गुणानुवाद भगवान्के प्रति मुमुक्ष-

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ॥११॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥ अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ॥ आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ १४ ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ॥ अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥ १५ ॥

जनोंको श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करता है अर्थात् भगवत्संबन्धी आत्मज्ञान देता है ॥१३॥ हे रहूगण! संसारका सङ्ग तो योगका विनाश करनेवाला है, इसको मैं भलीप्रकार जानता हूँ, क्योंकि मैं अपनी गति अपने नेत्रोंसे देख चुका हूं। मैं पूर्व जन्ममें भरतनाम एक राजा था, प्रथम ही अनेक दर्शन और श्रवण करनेसे संगके निमित्तका बन्धन छूट गया था, इस कारण मैं नित्य प्रति भगवान्की आराधना करता था, फिर दैवात् एक मृगके संग होनेसे मैं मृगत्वको प्राप्त हुआ, और मेरा सब स्वार्थ नाशको प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥ परन्तु हे वीर! भगवत् आराधना भ्रष्ट हो जानेपर भी उद्धार कर देती है, देखो मैंने पूर्व जन्ममें जो भगवान्की आराधना की थी, उससे उत्पन्न हुई जो स्मृति, उसने मुझको मृग देहमें भी नहीं त्याग किया, अर्थात् पहले जन्मकी याद बनी रही। इस कारण लोगोंका संग हो जानेके डरसे मैं सबका

सँग छोड़-छाड़कर अकेले घूमा करता हूं ॥ १५ ॥ इसी कारण मनुष्यलोग कुसंग त्याग महापुरुषोंके संगसे ज्ञानरूपतलवार उत्पन्न कर उससे अपने मोहको काट संसारमार्गके परे भगवान् हरिको प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि सज्जनोंके सत्संगसे भगवान्के सब कर्म दृष्ट और श्रवण गोचर हो जाते हैं और उसीसे अंत समय भगवान्के स्वरूपमें लय हो जाता है ❀ ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणाय जड़भरतब्राह्मणेन श्रीभगवत्कथास्वरूपनिरूपणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ दोहा–विषयीको वैराग्य दिय, यह तेरह अध्याय । बनकर बरणो जगतको, सुनिये चित्त लगाय ॥ जड़भरत ब्राह्मण फिर रहूगण राजासे बोले कि हे राजन् ! संसारका

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यति पारमध्वनः ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसंवादे श्रीभगवत्कथास्वरूपनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमस्सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥ २ ॥

मार्ग अति दुर्गम है, उसमें प्रविष्ट होकर रजोगुण, तमोगुण और सतोगुणमें विभाग की हुई जिसकी दृष्टि है और कर्म हैं उन सबको ही कार्य समझकर देखते वेश्याके समान धनके बटोरनेकी चाहनासे चारों ओर घूमता है, परन्तु उस चारों ओर घूमनेसे भवाटवी अर्थात् जंगलमें चला जाता है, और किसी प्रकारसे सुखको प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥ हे नरदेव ! इस जंगलमें बड़े-बड़े छः चोर हैं, वे सब बनियोंके झुण्डवाले नायकोंको अयोग्य देखकर बलात्कार उनका धन लूट लेते हैं । और वहांपर बड़े-बड़े शृगाल भी हैं, जो कि वणिकोंके बीचमें प्रवेश करके

भजन—संतोकी महिमा अपरम्पार । सत्संगति सम धर्म न दूजो, कह रहे वेद पुकार ॥ १ ॥ जप तप नियम ध्यान व्रत संयम कीजे वर्ष हजार । कठिनाईसे मिलत परम पद, कोटिन विघ्न विकार ॥ २ ॥ सत्संगतिसे तुरत होत नर, भवसागरके पार । संगतिकी गति शेष शंभु अज, जानत भले प्रकार ॥ ३ ॥ सत्संगतिसे वसिष्ठ नारद, कीन्हों ब्रह्म विचार । लव निमेषकी सतसंगतिको लग न सकत युग चार ॥ ४ ॥ सत्संगति प्रभावसे धारो, शेष धरणको भार । "शालिग्राम" भक्तकी संगति, अधम उधारन–हार ॥ ५ ॥

जिस प्रकार भेड़िया भेड़को उठाकर ले जाता है, वैसे ही शृगाल बनियोंको खींचकर ले जाते हैं ॥ २ ॥ इस अटवीमें अनेक वृक्ष, लता और गुच्छोंसे ढके हुए गहरे गढे हैं, वणिकलोग वहां बलात्कार विश्राम करके भयंकर डांस और मच्छरोंसे बड़ा उपद्रव पाते हैं। कहींपर यह वणिक लोग साश्चर्य गंधर्वपुरीको देखते हैं, किसी-किसी स्थानमें अतिशय वेग उल्मुकाकार गृह (पिशाचविशेषका बबूला) देख उसको सुवर्ण समान देखते हैं और उसके लेनेका लालच करते हैं ॥ ३ ॥ वासस्थान, जल और धन इन सबमें इन वणिकोंकी आत्मबुद्धि होनेसे उन्हीं वस्तुओंके लिये यह सदा उस अटवीमें इधर-उधर दौड़ा करते हैं। कहीं आंखोंमें धूल पड़ जानेसे अर्थात् पवनसे उड़ी हुई धूलके द्वारा नेत्रोंमें धुन्ध छा जाती है, तो उन धुँधली आंखोंसे छिपी हुई दिशा विदिशाओंको नहीं देख सकता, कहीं झींगर बोल रहे हैं परंतु देखनेमें

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ॥ क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित् क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षाञ्छ्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चाऽऽलषते निरन्धः ॥ आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥६॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विषण्णचेताः शोचन्न विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥

नहीं आते, उन झींगरोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है, कहीं उल्लुओंके शब्दसे उनका मन अत्यन्त व्याकुल होता है। हे वीर ! यह सब वणिक इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, कहीं-कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौड़ते हैं अर्थात् मृगमरीचिकाके जलको दौड़ते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ और कभी वे लोग जलहीन जलाशयोंकी ओर जाते हैं, परंतु उसमें गिरते ही अंग-भंग हो जाते हैं, इस कारण जितनी दुःख मिलनेकी संभावना है, उतनी जल मिलनेकी आशा नहीं। और कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं, कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं। कभी इस लिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न ले लें ॥६॥ किसी-किसी

स्थानमें और दूसरे लोगोंसे सर्वस्व हरे जानेपर विषादको प्राप्त हो उस सर्वस्वके लिये शोक करते-करते मूर्छित हो जाते हैं। कहीं गंधर्व-पुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्त भर आह्लाद किया करते हैं॥७॥ कहीं-कहीं चलते-चलते पावमें कांटा खोवड़ादिके लगनेसे पर्वतपर चढ़नेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदाससे होते हैं। कहीं-कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीड़ित होनेसे भूखकी ज्वालासे क्षण-क्षणमें लोगोंके ऊपर क्रोध करते थे॥८॥ कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा वा डसा हुआ जीव वनमें सोता है। कहीं हिंसक प्राणियोंके काटनेसे दुःख पाकर अंधतामिस्रवत् कुएमें गिर पड़ता है॥ ९॥ किसी-किसी स्थानमें कोई-कोई वणिक क्षुद्ररस अर्थात् शहदके ढूंढनेको जाकर उनकी मक्खियोंके द्वारा काटनेसे अधिक दुःख पाते हैं यदि कदाचित बड़े कष्टसे इस विषयमें मान भी पाया,

चलन्क्वचित् कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते॥पदेपदेऽभ्यन्तरवह्निनाऽर्दितः कौटुम्बिकः कुद्ध्यति वै जनाय ॥८॥ क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः॥ दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥ ९॥ कर्हि स्म चित् क्षुद्ररसान् विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥१०॥ क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते॥ क्वचिन्मिथो विपणन् यच्च किंचिद्विद्वेषमुच्छंत्युत वित्तशाठ्यात्॥ ११॥ क्वचित्क्वचित् क्षीणधनस्तु तस्मिञ् शय्यासनस्थानविहारहीनः॥ याचन् परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥ १२॥ अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन् मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन् विपन्नः॥ १३॥

अर्थात् मधु मिल भी गया तो उसको भोग नहीं कर सकते, क्योंकि उनसे दूसरे बलवान् बलात्कारसे उस शहदको छीन लेते हैं॥१०॥ कहीं कोई लोग शीत, गरमी, वायु, वर्षाकी रोक नहीं कर सकते और दुःख सहते बैठे रहते हैं। कहीं कोई लोग लेन-देन करके बहुत थोड़ा धन परस्परसे लेकर धनकी ठगाई करनेसे विद्वेषको प्राप्त हो रहे हैं॥ ११॥ किसी-किसी स्थानपर कोई-कोई लोग धनहीन होनेके कारण इस अटवीमें शय्या, आसन स्थान और विहारसे रहित होकर यही वस्तु दूसरेसे मांगते हैं, परन्तु औरसे कामना पूर्ण नहीं होती, तब परायी वस्तुकी अभिलाषा करके उसके लिये अपमानको सहते हैं॥ १२॥ हे राजन्! भवाटवीमें कोई व्यक्ति परस्पर धनसे और

पदार्थोंका अदला-बदला करनेके कारण दूसरोंसे वैर बढ़ाते हैं। और कोई-कोई उनके साथ परस्पर बड़े-बड़े संबंध करते हैं कोई-कोई लोग बड़े-बड़े परिश्रम और धनका नाश व और-और उपद्रवोंके कारण नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥१३॥ हे वीर ! उन सब नाशको प्राप्त हुए मनुष्योंको जहां पर कि वे मर गये वहीं छोड़कर, नये जो उत्पन्न हुए उनको साथ लेकर फिर कभी वहांसे नहीं लौटते अर्थात् जहांसे इन्होंने चलनेका आरंभ किया है वहांपर फिर लौटकर नहीं आते। सब वनियोंके झुण्डमेंसे कोई भी अबतक इस मार्गके द्वारको प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् इस संसार-मार्गका पार जो योग है, उसको भी नहीं पहुँच सकता ॥ १४ ॥ हे वीर ! जो पुरुष शूर हैं और उन्होंने प्रधान-प्रधान दिक्पाल हाथियोंतकको जीत लिया है वे भी इस भवाटवीमें "हमारी भूमि है हमारी भूमि है" इस प्रकार भूमिके कारण

तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥१४॥ मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे शयीरन् न तु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥ १५ ॥ प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ॥ क्वचित् कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन् सख्यं विधत्ते बककंकगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन् न रोचयन् शीलमुपैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥ १७ ॥

परस्पर वैरभाव करके संग्राम स्थलमें गिरकर शयन करते हैं अर्थात् मर जाते हैं, इस कारण निर्वैर संन्यासी लोग विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं, वे लोग इस गतिको कभी नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १५ ॥ हे राजन् ! भवाटवीमें भ्रमण करनेवालोंका और भी वृत्तांत कहता हूँ, वह तुम सुनो :—कभी कोई पुरुष लता शाखाओंके आश्रयसे उनपर बैठे हुए पक्षियोंके कलरवकी ध्वनि श्रवण करनेके लिये लालसा करके उसमें आसक्त होता है। कहीं पर कोई कभी-कभी हरिचक्र (सिंहसमूह) से भीत होकर बगले, कौवे और गिद्धोंसे मित्रता करता है ॥ १६ ॥ परन्तु गिद्धादिकसे ठगे जाकर पीछे आपही हंसोंके कुलमें प्रवेश करता है, पीछे उनका भी आचार-व्यवहार प्रिय न समझकर वानरोंसे मेल करता है और इस जातिके खेल-कूदसे अपनी सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करता है, परस्पर एक दूसरेका मुख देखनेसे मोहित

होकर अपनी अवधि कितनी है, अर्थात् जीवन समय कितना है, उसको भूल जाता है ॥१७॥ कहीं-कहीं कोई-कोई पुरुष पुत्र स्त्रीपर स्नेह करके उनके निमित्त सब वृक्षोंमें अर्थात् दृष्टार्थ विषयोंमें क्रीडा करनेके व्यवसायमें अति दीन हो जाता है। इस कारण अपने बंधनमें विवश अर्थात् परित्याग करनेमें असमर्थ होता है, कहीं वही पुरुष असावधानीसे पर्वतकी कंदरामें गिर जाता है और वहांपर हाथियोंके भयसे लता पातोंको पकड़कर लटका रहता है ॥ १८ ॥ और वह पुरुष इन विपत्तियोंसे किसी प्रकार छूटकर अपने संगियोंके संगमें पहलेके समान मिल सकता है, परंतु संसारी मार्गमें मायासे पटका हुआ भ्रमणकारी कोई प्राणी अब तक यथार्थ तत्त्व नहीं जान सका है ॥ १९ ॥ हे रहूगण! तू भी मायासे इस संसारी संगमें फँसा हुआ है, इस कारण अपना राज्यकार्य छोड़ छाड़कर सब प्राणियोंके

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ॥ क्वचित् प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन् वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥ १८ ॥ अतः कथंचित् स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥ १९ ॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥ न यद्धृषीकेशयशः कृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥ न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥२२॥

साथ मित्रता कर विषयोंमेंसे चित्तकी आसक्तिको उठाकर हरिकी सेवाके द्वारा तेज धारवाली तलवार हाथमें लेकर इस संसारके पार हो जा ॥२०॥ राजा रहूगण बोला कि हे ब्रह्मन्! मनुष्य जन्म सब जन्मोंकी अपेक्षा बहुत उत्तम है और हे प्रभो! यद्यपि स्वर्गीय देवादिकोंकी अपेक्षा यह जन्म श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु स्वर्गमें भी यदि आपके समान महात्मा पुरुषोंके साथ समागम न हो तो वहांपर देवादि जन्म प्राप्त होनेसे भी क्या लाभ है? हे प्रभो! आप क्या साधारण मनुष्य हैं? भगवान्‌का यश श्रवण करने और कहनेसे आपकी आत्मा पवित्र हो गयी है ॥२१॥ इस कारण आपके चरण रेणुकी निरंतर उपासना करनेसे पुरुषकी पापराशि दूर होकर उसको भगवान् की निर्मल भक्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। इस बातमें मुझको अपना ही दृष्टांत दृष्टि आता है, कि एक मुहूर्त भर आपका समा-

गम होनेसे मेरे कुतर्कोंका मूल जो अविवेक था वह विनाशको प्राप्त हो गया ॥२२॥ न जाने ब्रह्मवेत्ता लोग किस रूपसे घूमा करते हैं; यह न जाननेके कारण सबको ही नमस्कार करके कहा कि महत् पुरुषोंको नमस्कार, बालकोंको नमस्कार ! युवा पुरुषोंको नमस्कार ! ! खेलमें मग्न विप्र कुमारोंसे लेकर सब ही ब्राह्मणोंको नमस्कार करता हूँ, और जो भी ब्राह्मणगण अवधूतोंका चिन्हसा धारण करके पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं,उनके लिये भी बहुत-बहुत नमस्कार। उन लोगोंका अनुग्रह राजा लोगोंके कल्याणार्थ हो ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे उत्तराके

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ बटुभ्यः ॥ ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज ॥ एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥ २५ ॥

पुत्र परीक्षित् ! सिंधु देशाधिपति रहूगण राजाने यद्यपि अपमान किया था तो भी ब्रह्मर्षितनय महानुभाव जड़भरतजीने परम करुणासे दयाकरके उसको ब्रह्म-विज्ञानका उपदेश किया। इसके पीछे जब राजा रहूगणने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंकी वंदना की तब वे तरंग-पूर्ण समुद्रके तुल्य आनन्दसे पूर्ण हो गये परंतु उनका अंतःकरण सदा ही स्थिर था। जो हो,इसके पीछे जड़ भरतजीने फिर पहलेके समान घूमना आरंभ किया ॥२४॥ सौवीर-पति

---

* शंका—श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीमद्भागवतके चार स्कन्ध वर्णन किये तथा राजाभी चारों स्कंधोंको सुनता गया, परंतु शुकदेवजीने राजाको ऐसा दुलार वचन क्यों कहा ? और दुलारनाम लेकर चारों स्कन्धमें क्यों वर्णन किया, हे राजन् ! हे राजशार्दूल ! हे नृपशिरोमणे ! हे कौरवोत्तम ! हे कुरुकुलभूषण। ऐसा आदि लेकर अनेक प्रकारके संबंधोंसे दुलार करके कथा कही परंतु पञ्चमस्कन्धके १३ तेरहवें अध्याय और २४ चौबीसवें श्लोकमें परीक्षित्को उत्तरामात क्यों कहा ? उत्तरामातका अर्थ यह है कि, उत्तरा है तुम्हारी माता, ऐसे हे परीक्षित् ! यह वही शंका होती है कि जो और कभी परीक्षित् की माताका नाम लेकर राजाका दुलार शुकदेवजी करते तो शंका नहीं होती ?

उत्तर–शुकदेवजीने परीक्षित्को भगवान्के कीर्तनमें अत्यन्त लोभी जानकर तथा देह नाश होनेकी चिन्ताको त्यागकर बारम्बार भगवान्के चरित्रोंको बूझ रहे हैं, वासुदेव भगवान्में परीक्षित्को ऐसा प्रीतिमान् जान के श्री शुकदेवजीने विचार किया कि, परीक्षित्की माता जो उत्तरा है उसको धन्य है, जिस उत्तराने परीक्षित्को उत्पन्न किया सो धन्य हैं, ऐसा हर्ष करके राजाको उत्तरामात इस पदसे दुलार करके श्रीशुकदेवजीने कथा वर्णन की थी।

रहूगण राजा भी भरतजीसे तत्त्वसहित परमात्मज्ञान प्राप्त करके तत्क्षण ही देहमें आत्मबुद्धि (जो अविद्याके कारण देहमें आरोपित हो गयी थी) त्याग कर दी। हे राजन्! भगवान्‌के आश्रयवाले महात्मा भरत जीका आश्रय ग्रहण करनेसे रहूगण राजाका अहंकार शीघ्रही विनष्ट हो गया ॥ २५ ॥ राजा परीक्षित्‌ने पूछा कि हे भागवतवर श्रीशुकदेवजी महाराज! आप सब कुछ जाननेवाले हैं, आपने अपरोक्ष वचनोंके द्वारा वणिक सार्थसहित रूपक करके जो इस संसार अटवी मार्गका वर्णन किया, विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिसे इसका विषय कल्पित हो सकता है, अर्थात् वे लोग बुद्धिके बलसे इन्द्रियोंको दस्युतुल्य और पुत्र कलत्रादिकको शृगाल इत्यादिके सदृश

राजोवाच ॥ यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः ॥ अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥ इति श्रीभागव० महापु० पञ्चम० भवाटव्युपवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन् दुर्गाध्ववदसुगमेऽवन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रीतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुणचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे ॥ यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥

जान करके इस विषयको समझ सकते हैं, परंतु अल्पबुद्धि मनुष्यको भली भांति इसे समझना कठिन है, इस कारण जो कुछ आपने कहा है, उसे सभीके समझनेके लिये कल्पना करके इस दुर्गम विषयको समझा कर कहो, जो मेरी समझमें सुगम रीतिसे आ जाय * ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणाय सूक्ष्म भवाटवीवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ दोहा—वन रूपक कर जगतको, कहौं चौदहाध्याय। ताहीको अब खोल कर, कहौं प्रगट दरशाय॥ जो राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा, वही प्रश्न शौनकने

* रेखता—नहीं मैं कुछ समझता हूं, तुम्हारी ज्ञानकी। बातें मैं तो मतिमन्द अज्ञानी समझमें है कठिन आनी। बखानी आपने जो जो, मेरे सम्मानकी बातें ॥ १ ॥ रहा नित मूर्खों के संग चढ़े क्या साधुओंका रंग। सदा पी भङ्ग गाफिल हो, करी अभिमानकी बातें ॥ २ ॥ मेरा मन डूबा जाता है, समझमें कुछ न आता है। आपने जो कही मुझसे महा उद्यानकी बातें ॥ ३ ॥ यत्न ऐसा निकालो अब, समझमें मेरी सब। लिखी है वेदमें जो जो, सहजसी ईशकी बातें ॥ ४ ॥ यह शालिग्राम कह देंगे, जो सब कुछ जानते होंगे। छुटै जिससे महाममता; ऐसी हो कल्यानकी बातें ॥ ५ ॥

सूतजीसे किया,शुकदेवजीने और सूतजीने दोनोंको एक हीं प्रकारका उत्तर दिया। राजा परीक्षित्ने जब इस प्रकार प्रार्थना की तब श्रीशुक-देवजी बोले कि हे राजन् ! इस संसारमें जीवगण धनके उपार्जन करनेमें वणिकोंके तुल्य तत्पर रहते हैं, यह भगवान्‌की मायासे संसारी मार्गमें गिरे हुए हैं,इस कारण गुरु जो भगवान् हरि हैं,उनके चरणारविन्दके सेवकोंकी पदवी अर्थात् भगवत् जनों करके अनुष्ठित भक्तिका मार्ग अबतक प्राप्त नहीं होता । हे परीक्षित् ! संसारी मार्ग सुगम नहीं है, जो सब पुरुष देहमें आत्माभिमान करते हैं उनके सत्त्वादि विशेष-विशेष गुणसे विभक्त सर्व कर्म मंगल अमंगल दोनोंमें ही मिल जाते हैं, उनके द्वारा विविध देहश्रेणी रची जानेसे उनसे संयोग-वियोगादि रूप अनादि संसार होता है। सब, संसारके अनुभवके द्वाररूप छः प्रकारकी इंद्रियाँ हैं, उन करके यह संसारमार्ग दुर्गम मार्गके तुल्य अति-शय कठिन हो गया है। हे राजन् ! इस प्रकारके दुर्गम मार्गमें पग धरनेको किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं होगी,ऐसा हम कह नहीं सकते। भगवान् विष्णुकी मायासे अवश होकर सब ही उसमें वास करते हैं। और अपनी-अपनी देहसे रचे हुए सब कर्मोंका फल वहां (भवाटवीमें) भोगा

तद् यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात् परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु साम्पराय उदाहरन्ति ॥ तद् धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुना-थस्याजितात्मनो यथासार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥ २ ॥

करते हैं। उन प्राणियोंकी चेष्टा कभी सफल होती है, कभी अनेकानेक विघ्नोंके कारण पूरी भी नहीं होती है। इस प्रकारकी संसार-अटवीमें जो विविध भांतिके ताप हैं उनको भगवत्-चरणारविन्दसेवकोंकी पदवी विनाश करनेको समर्थ है, परन्तु भगवान्‌की मायाके वश होकर जीवगणोंको वह पदवी सहजसे प्राप्त नहीं हो सकती,इस संसाररूप अटवीमें छः इंद्रियाँ हैं, वे ही कर्मोंके द्वारा महाप्रबल चोरोंके तुल्य हैं॥१॥ क्योंकि संसारमें बड़े कष्टसे बटोरा हुआ पुरुषका धन, जिसको पंडित लोग धर्मका स्वरूप कहा करते हैं, जहां यह जीव असावधान हुआ कि जिस प्रकार संगी लोग असावधान संगीका धन हरण कर लेते हैं, वैसे ही यह सब इंद्रियाँ जो चोर हैं यह दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और संकल्प, विकल्प इत्यादि गृहसंबंधी तुच्छ पदार्थोंमें लगाकर उसका यह धन हरण कर लेती हैं, वह मनुष्य अजिते-न्द्रिय और घरमें ग्राम्य वस्तुओंके भोग करनेमें आसक्त रहता है, इससे वह अपने धन लेजानेवाली इंद्रियोंको कुछ भी नहीं जानता ॥२॥

हे राजन्! इस अटवीमें अनेक भेड़िये और शृगाल हैं परंतु वे नाममात्रके ही हैं। वास्तवमें संसारी परिवारमें जो कि स्त्री पुत्रादिक हैं, वही कार्य करनेमें शृगाल भेड़ियेके तुल्य हैं। क्योंकि अतिलोभी कुटुम्बी पुरुष अत्यन्त प्रयत्नसे रक्षापूर्वक मेढ़ेके समान सुन्दर धनको उसकी विना इच्छा बड़े छल-बल चतुराईसे उसकी आखोंमें धूल डाल भेड़ियेके समान भेड़वत् उसके संचय किये हुए धनको ले ही लेता है ॥ ३ ॥ दूसरे "उस भवाटवीमें अनेक घास बेलोंसे ढके हुए दुर्गम गढ़े हैं" इत्यादि जो कहा है, उसका तात्पर्य यह है, कि जिस प्रकार खेतमें प्रति वर्ष जो हल चलाया जाय तो उस खेतका बीज जल नहीं जाता, परन्तु फिर वह अन्न बोनेके समय तृण गुल्म, लता इत्यादिके उपजनेसे दुर्गम गढ़ेके समान हो जाता है वैसे ही यह गृहस्थाश्रम सब कर्मोंका क्षेत्ररूप है। इसमें

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकशृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत् संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपिहरन्ति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवति ॥ एवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन् न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥ ४ ॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिः प्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥ ५ ॥

भी सब कर्म एकबार भी नाशको प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह गृहस्थाश्रम कामनाओंका भण्डार है, देखो जिस प्रकार किसी बरतनमें कपूर रक्खा हो और वह उड़ जाये तो भी उसकी सुगंधि उस पात्रसे नहीं जाती, ऐसे ही कर्म चाहे सब नष्ट हो जांय, परंतु जबतक वासना क्षय नहीं होती, तबतक उपजते ही रहते हैं ॥ ४ ॥ इस गृहस्थाश्रममें जो पुरुष रत होता है, उसका प्राण अर्थात् धन संपत्ति डांस, मच्छरके तुल्य नीच मनुष्य और टीड़ी, पक्षी चोर, चूहे इत्यादिकोंके तुल्य तस्कर लोग पीड़ा देकर छीन लेते हैं, तथापि यह पुरुष गृहस्थाश्रमके मार्गमें घूमनेसे शांत नहीं होता, बरन् मिथ्या दृष्टि होनेसे अविद्याकाम और कर्मोंसे रँगे हुए मनके हेतु गन्धर्व–नगर तुल्य अघटमान नर-

लोकको सत्यरूप देखता है ॥५॥ दूसरे किसी-किसी स्थानमें भोजन स्त्रीसंग इत्यादि व्यसनोंका लोलुप होकर मृगतृष्णाके जलके तुल्य सब विषयोंकी ओर दौड़ता है ॥ ६ ॥ और "किसी-किसी स्थानमें उल्मुकाकार गृह देखकर उनको श्रेष्ठ सुवर्ण समझ उनके लिये ललचाता है" इत्यादि जो कहा है, इसका अर्थ यह कि जिस प्रकार शीत निवारण करनेके लिये अग्निकी चाहना करनेवाले लोग वनमें अग्निके समान चमकते हुए पिशाच विशेषको देखकर उस पिशाचके पीछे-पीछे दौड़ा करते हैं, वैसे ही पुरुष इस संसारमें कहीं सुवर्ण प्राप्त होगा, यह इच्छा करके दौड़ता फिरता है, परन्तु यह वस्तु अशेष दोषोंका स्थान है, पवित्र भी नहीं है, विष्ठाविशिष्ट है क्योंकि ऐसा सुननेमें आया है कि अग्निकी विष्ठासे सुवर्ण होता है। पुरुषका उसके लिये बहुत इच्छा करनेका कारण यह है कि वह सुवर्णवत् लोहित वर्ण जो रजोगुण है, उससे ही पुरु-

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षो दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥

षका चित्त घिरा हुआ है ॥७॥ हे वीर ! "निवास, जल, धन" इत्यादि जो कहा उसका अर्थ यह है, कि निवास, जल, धन, इत्यादि जो समस्त वस्तु अपने निर्वाहके लिये हैं, उनके लिये अभिनिविष्ट होकर यह पुरुष इस गहन संसारमें इधर-उधर भटकता फिरता है॥८॥दूसरे "कहीं आंखोंमें धूल पड़ जानेसे हवा करके उड़ी हुई धूलीके द्वारा धूंधुली दिशा विदिशाओंको नहीं देख सकता" इत्यादि जो कह आये हैं, इसका अर्थ यह है कि इस संसारके मध्यमें कभी पवनके तुल्य जो स्त्री है पुरुष उसकी गोदीमें चढ़ बैठता है, गोदीमें बैठनेसे उस समय जो अनुराग जन्मता है, उस राजसी धूल पड़े हुए नेत्रोंके समान होकर मर्यादाको छोड़ देता है और रात्रिकालके भूतके समान दिशाओंके देवता जो कि अच्छे बुरे कर्मके साक्षी हैं उनको भी नहीं देखता और सब मर्यादाओंको त्याग कर देता है, जो मर्यादा छोड़नेके कारण साक्षि-

स्वरूप जो वर्तमान है उसको नहीं जानता॥९॥"और कहीं-कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौड़ते हैं।" इत्यादि जो कहा है उसका तात्पर्य यह है कि संसारमें पुरुष कभी-कभी आप ही आप एकवार ऐसा विचारता है कि सब विषय व्यर्थ हैं, परंतु देहाभिमानके कारण शीघ्र ही स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है, इस कारण मृगतृष्णाके जलके तुल्य फिर उन सब विषयोंकी ओर दौड़ता है ॥ १० ॥ हे राजन् ! "कहीं अनेक नदी देखते हुए झिल्ली नामक कीड़ोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है" यह जो कहा इसका अर्थ यह है कि संसारमें कहीं-कहीं झिल्ली-झनकारके तुल्य अतिकर्कश विषयोंमें उत्साहके लिये प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रु-पक्षकी और राज-कुलकी फटकारसे पुरुषके कर्ण-शूल और हृदय व्यथा होती है ॥११॥ "यह सब वणिक इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका

क्वचित् सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिधान्येन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन् म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥ यदा तु परबाधयाऽन्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥ १४ ॥

कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, संसारमें जब पुरुषके पहले किये हुए सुकृत क्षीण हो जाते हैं, तब विषतिन्दुक इत्यादि अपुण्य वृक्ष लता और विषकूप समान इस लोक और परलोकके लिये धन खोकर स्वयं मृतकके तुल्य हो जाते हैं और जीवन्मृत लोगोंके निकट दौड़ते फिरते हैं ॥१२॥ हे वीर ! और "कभी वे लोग जलहीन जलाशयोंकी तरफ जाते हैं" इत्यादि कहे हुए वचनोंका अर्थ कहता हूँ उसे श्रवण करो—कि संसारमें कभी-कभी असत्प्रसंगसे पुरुषकी बुद्धि ठगी जाती है, इससे निर्जल नदीमें गिरनेसे जिस प्रकार उसी समय शिर फट जाता है और क्लेश होता है, वैसे ही पुरुष पाखण्ड पंथमें पड़ जानेके कारण इस लोक और परलोकमें दुःख पाता है ॥ १३ ॥ और " कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं "

इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह हैकि जब संसारके मध्यमें पुरुष भूख-प्याससे पीड़ित होनेके कारण बड़ा क्लेश पाकर अपने पास अन्न नहीं देखता, तब पिताको, पुत्रको और जिनके पास पिता वा पुत्रका कुछ थोड़ा भी लेना-देना रहता है उनको दुःख देता है ॥१४॥ हे राजन् ! "कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, यह जो गृह है यही दावानलके तुल्य है और प्रिय वस्तुके निमित्त सन्तप्त है अर्थात् घरमें कुछ भी प्रिय वस्तु नहीं है और जिसमें सुखका लेशमात्रतक नहीं वरन् परिणाममें उसको महाकष्ट है, पुरुष दावानलके संतापको प्राप्त हो उस शोकानलमें दग्ध हो महासन्तापको पाता है ॥ १५ ॥ 'कभी इस लिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न ले लें' इस उक्तिका यह तात्पर्य है कि इस संसारमें कभी-कभी राजा लोग कालके वशमें पड़कर प्रतिकूल हो राक्षसोंके समान व्यवहार करते हैं अर्थात् प्रियतम धनरूप प्राण हरण कर लेते हैं, उससे पुरु-

क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित् कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥ कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत् सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥ १७ ॥ क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥

षोंको मृतकके तुल्य जीवनलक्षणसे रहित होकर रहना पड़ता है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! "कहीं गन्धर्व-पुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्तभर आह्लाद किया करते हैं" इत्यादिका तात्पर्य यह है कि पुरुष कभी-कभी बाप, दादा इत्यादि बीते हुए पुरुषोंकी चिंताको प्राप्त होकर उनको और उनके असत् धनको सम्मान कर कि वे लोग मानो वर्तमान हैं,इस प्रकारसे मनमें समझता हुआ क्षणभरके लिये स्वप्नकेसा सुख प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥ "कहीं-कहीं चलते-चलते कांटा कंकड़ आदिके लगनेसे पर्वतपर चढ़नेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदास सा होता है" इस वचनका भाव यह है कि गृहाश्रममें जिन सब कर्मोंकी विधि है वे बहुत हैं, इस कारण वे समस्त पर्वतके तुल्य अति दुर्गम हैं । उनका अन्त करनेकी इच्छा होनेसे पुरुषका मन कभी भी लौकिक व्यसनोंमें खिंच जाता है, इससे कंटक और कंकड़वाली भूमिमें

प्रवेश करनेके समान वह दुःख पाता है ॥ १८ ॥ "कहीं-कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीड़ित होनेसे भूखकी ज्वालामें लोगोंके ऊपर क्रोध करता है" यह जो कहा, सो इसका भाव यह है, कि बड़े परिवारका आदमी स्वच्छन्दतासे देहाभ्यन्तरवर्ती दुःसह जठरानलसे पीड़ित होनेके कारण निःसार होकर कभी परिवारवाले लोगोंके ऊपर क्रोध प्रकाश किया करता है॥१९॥ हे राजन् ! "कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा व डसा हुआ जीव वनमें सोता है" इत्यादि जो कहा, उसका तात्पर्य भी कहता हूँ वह तुम सुनो, कि संसारमें पुरुष निद्रारूप अजगरके वश हो जाता है, निद्राके समय निर्जन वनमें सोनेके समान अन्धकारमें मग्न होकर शयन करता है और कुछ भी नहीं जानता इस कारण वह फेंके हुए मुरदेके समान जान पड़ता है। किसी प्रकारका ज्ञान

क्वचिच्च दुस्सहेन कायाभ्यंतरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत् किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद् भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत् पतति ॥ २१ ॥ कर्हि स्मचित् काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥ अथ च तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरंति ॥ २३ ॥

नहीं रहता ॥ २० ॥ "कहीं अन्धे लोग अन्धे कुएमें गिरकर डूबे रहते हैं" इत्यादि वाक्यका अभिप्राय यह है, कि इस संसारके बीच कभी-कभी पुरुषकी गर्वरूप डाढ़ टूट जाती है और दुर्जनरूप हिंसक शूकर उसको निद्रा नहीं लेने देते। इस कारण हृदय व्यथित होनेसे उसके ज्ञानका क्षय हो जाता है और वह अज्ञानसे अन्धा होकर अन्धेके समान उस अंधे कूपमें गिर पड़ता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस संसारमें काम शहदकी बूंदके समान है। पुरुष कभी-कभी इस कामकी खोज करता हुआ फिरता है, परंतु जब परायी स्त्री और पराये धनके ऊपर झपट करता है तब उस स्त्रीके स्वामी अथवा राजासे मारा जाकर अपार नरकमें गिर पड़ता है ॥ २२ ॥ इस कारण पंडित

कहते हैं कि प्रवृत्तिमार्गमें अपना कर्म ही इस काल और परकालमें संसारमें जन्म होनेका क्षेत्र है ॥ २३ ॥ बस, संसार यदि एक जनकी झपटसे छूट जाये, तब दूसरा पुरुष देवदत्त उससे बलात्कार छीन लेता है। उससे फिर तीसरा जन विष्णुमित्र हर लेता है। इसी भांति धारावाहिक होता रहता है। इसी कारण उससे अनवस्था हो जाती है ॥ २४ ॥ संसारमें कभी-कभी शीत वायु इत्यादि बहुत भांतिके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापोंकी दुर्दशा निवारण करनेको असमर्थ होनेसे पुरुष अपार दुःखी हो चिन्ता करके शोक किया करता है ॥ २५ ॥ कहीं परस्परमें परस्परका धन व्यवहार करके दूसरेके निकटसे कुछेक अर्थात् कांकिणी मात्र (वीस कौड़ियें) या इससे भी कम लेकर ठगता है, फिर इस ठगाई करनेके कारण विद्वेष को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

मुक्तस्ततो यदि बंधाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिंतया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किंचिद् धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमपहरन् यत्किंचिद् वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥ अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥ २७ ॥ क्वापिदेवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥ २८ ॥

कि हे परीक्षित ! इस संसार मार्गमें और बड़े-बड़े कष्ट इत्यादि उपसर्ग तो नित्य रहते हैं, इनके शिवाय सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्षा, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, मृत्यु, जरा इत्यादि और भी अनेक बड़े-बड़े उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ संसारमें कहीं मायारूपी स्त्रीकी भुजलताओंसे आलिंगित होते ही पुरुष विवेक और विज्ञानसे रहित हो जाता है—ऐसी रची कठिन यह नारी देवहुको मनमोहन—हारी। शिव अज नारद शशि कविहीको क्षणमें मन मोह्यो सबहीको ॥ ऐसी स्त्रीके साथ विहार करनेके लिये, घरका आरंभ करनेके लिये उसका हृदय व्याकुल हो जाता है, इसलिये उसके आश्रयमें जो पुत्र

कलत्र इत्यादि रहते हैं उनके देखने, व मृदुल वचन श्रवण करने और अनेक प्रकारकी चेष्टा अवलोकन करनेमें हृदय हरे जानेके कारण आत्माको अपार घोर अन्धकारमें फेंक देता है ॥२८॥ हे राजन् ! हरिचक्रका अर्थ भुजावान् विष्णुजीका चक्र, वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्ध जो काल है, वही उसका स्वरूप है । वह चक्र निरंतर परिवर्तित होकर अर्थात् भ्रमण करके बालादि अवस्थाओंके फेर फारसे तृण स्तम्बसे लेकर ब्रह्माजी आदिक समस्त भूतको अपने वेगसे हरण करता है, परंतु कोई भी उस चक्रका प्रतीकार करनेको समर्थ नहीं होता । क्योंकि यह चक्र सर्वभांतिसे अप्रमत्त अर्थात् अतिशय सतर्क है, इस कारण पुरुष कालस्वरूप इस हरिके चक्रसे उठकर यह कालचक्र ही जिनका

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात् परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रं निजायुधं साक्षाद् भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबककवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २९ ॥ यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरुवञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्य आराधनमेव तदरोचयञ्छूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥ ३० ॥

आयुध है, वह ईश्वर जो साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुष हैं,उनका अनादर करता हुआ जो कि पाखण्डी देवता काक, गृध्र,बक और बटेर पक्षीके समान, श्रेष्ठ जनोंके आचारोंसे वर्जित उनको ही पाखण्ड शास्त्रकी रीतिके अनुसार भजने लगता है ॥ २९ ॥ किंतु वह तो स्वयं ही ठगे हुए हैं, इस कारण यह पुरुष जब पाखण्डी देवताके निकट अतिशय ठगा जाता है, तब ब्राह्मण कुलमें जाकर वास करता है । परंतु उस अवस्थामें उसको ब्राह्मणोंके आचार-व्यवहार और श्रुति स्मृतिके कहे हुए कार्य जो भगवान् यज्ञपुरुषजीके आराधन करनेके कर्म हैं, वे सब उनको अच्छे नहीं लगते और वेदान्त आचारोंको जो शूद्र लोग अशुद्ध होनेके कारण पाल नहीं सकते वे पुरुष उनमें ही अनुरागी होकर शूद्र

तुल्य हो जाते हैं, अग्निहोत्रादि तो कुछ कर्म हैं नहीं, वानर जातिके समान केवल स्त्रीसंग और कुटुम्बका पालन-पोषण करना कर्म है ॥३०॥ यह पुरुष शूद्रतुल्य हो जानेके कारण रोगरहित इच्छानुसार विहार करता-फिरता है, अतः उसकी बुद्धि अतिशय मन्द हो जाती है। इस कारण वह परस्पर एक दूसरेका मुख देखकर अपने मनमाने काम करता है और पशु कर्मोंमें इस प्रकार लग जाता है, कि अपने मृत्युसमय तकको भूल जाता है। हे राजन्! संसारमें कभी-कभी यह पुरुष जिस प्रकार बन्दर वृक्षों पर चढ़कर उछल-कूद करते हैं, वैसे ही इस लोकके गृहादि विषयमें क्रीड़ा करनेका अनुरागी हो जाता है और ऐसा होनेसे स्त्रीपुत्रादिकोंमें उसकी प्रीति हो जाती है और वह

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचित् द्रुमवदैहिकार्थेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥ ३३ ॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥

मैथुन करनेको ही परम उत्सव मानता है॥३१॥३२॥ इस प्रकार संसार मार्गमें बंद होनेके कारण पुरुष मृत्युरूप हाथीके भयसे कभी-कभी गिरि गुफाओंके तुल्य घोर अन्धकारमें अर्थात् शोकादि विपत्तियोंमें गिर जाता है॥३३॥ कभी शीत, वात इत्यादि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिकरूप विविध भांतिके दुःख निवारण करनेमें असमर्थ होकर क्लेश पाता है और अशेष विषयवासनाओंमें शोक किया करता है ॥३४॥ कभी-कभी परस्पर एक दूसरेसे लेन-देन कर ठगाई करके कुछेक धन इकट्ठा करता है, परन्तु उससे भी सुखी न होकर अपमानादिको प्राप्त

१. शंका—चौरासी लाख योनियोंमें सब जीव मोहके वशीभूत होकर अपने-अपने परिवारके पालन-पोषण करनेमें रात-दिन लगे रहते हैं, परन्तु श्रीशुकदेवजीने सब जीवोंको त्यागकर परिवारके पालन करनेमें बानरकी उपमा क्यों दी? क्या बानर सब जीवोंसे अधिक परिवारका पालन करता है?

उत्तर—जगत्में सब जीव कुटुम्बके पालन-पोषण करनेमें चतुर है, परन्तु नीति शास्त्रमें लिखा है कि वानरके समान परिवारका मोह तथा पालन-पोषण कोई प्राणी नहीं कर सकता, इस लिये शुकदेवजीने बन्दरकी उपमा परिवारके पालन करनेमें दी।

होता है ॥३५॥ कभी-कभी धन न रहनेसे शय्या, आसन इत्यादि उपभोग पदार्थोंके न मिलनेसे मनोरथके द्वारा जो वांछित है, सदुपायसे उनको न पाकर फिर उनको बुरे पापों करके लाभ करनेका मनमें विचार करता है, जिससे कि उसको लोगोंसे बहुत ही अपमान मिलता है ॥३६॥ परंतु यह बड़े आश्चर्यकी बात है,कि धनकी आसक्तिसे परस्पर वैर भी बढ़ाते हैं और तो भी पुरुष एक दूसरेसे लेन-देन करता ही रहता है ॥३७॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे इस संसार मार्गमें अनेक-अनेक क्लेश वा अनेक उपद्रवोंसे बाधित होकर जो पुरुष आपदामें पड़ जाता है अथवा नाशको प्राप्त हो जाता है तो दूसरे मनुष्य उसको उसी स्थानमें त्याग कर नये-नये उत्पन्न मनुष्योंका साथ कर

क्वचित् क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादपि लभते ॥ ३६ ॥ एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥ ॥ ३७ ॥ एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन् मुह्यन् बिभ्यद् विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदंडा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥

कभी शोर करते हैं, कभी मोह करते हैं, कभी भय पाते हैं, कभी सिंहनाद करते हैं, कभी विवाद करते हैं, कभी हर्षित होते हैं, कभी गाते हैं, कभी रोते चिल्लाते हैं, इस प्रकार संसारमें अधिक बँध जानेसे साधु पुरुषोंके सिवाय कोई अबतक इस संसार मार्गसे नहीं लौटा, जिस मार्गमें यह नरलोकसमूह बँधा हुआ है, पंडित लोग उस मार्गसे पार होनेके लिये सदा ही उपदेश किया करते हैं ॥३८॥ हे राजन् ! साधु लोगोंके सिवाय और पुरुषका इस संसार मार्गसे पीछे न लौटनेका कारण यह है कि यह मार्ग योगानुष्ठानसे भी नहीं रुक सकता, शांतिशील और मनको वशमें रखनेवाले जिन मुनियोंने दण्डतक छोड़ दिया है, वे इस मार्गको जानते हैं, बरन् उन लोगोंमें भी अनेक

इस मार्गके रोकनेमें असमर्थ हुए हैं॥ ३९ ॥ जो सब दिग्विज यी राजर्षि सदा योग, यज्ञ किया करते हैं, वे लोग भी इस मार्गके रोक लेनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ नहीं हुए। वे केवल रणशायी और इसी वसुधाकी मोह ममतामें फँसकर प्रत्येक मनुष्यसे अनेक-अनेक प्रकारकी शत्रुता ठानी और यही कहानी-गाते हैं कि "यह भूमि हमारी" ऐसा समझकर "सैन जोरि नित करत लड़ाई। धरणी हित जिय देत गँवाई" संग्रामस्थलमें प्राण दे इस अपनी पृथ्वीको छोड़कर अकेले चले गये ॥ ४० ॥ कोई-कोई लोग अपने कर्मसे सूत्रको पकड़ करके जैसे-तैसे संसारकी आपदासे छूट भी जायें परंतु फिर भी संसारी मार्गमें प्राप्त होनेसे नर-लोक समूहके ही निकट आ जाते हैं, स्वर्गमें गये हुए लोगोंकी भी यही गति होती है ॥ ४१ ॥ योगिवर शुकदेवजी महाराज इस प्रकारसे जड़भरतजीकी कही हुई भवाटवीकी

यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन्॥ अस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धा यान्ति विसृज्य स्वयमुपसंहृताः॥४०॥ कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद् विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥ ४१ ॥ तस्येदमुपगायन्ति ॥ आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महात्मनः ॥ नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४३ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४४ ॥

वास्तविक व्याख्या करके राजा परीक्षित्से बोले कि, हे राजन्! उन राजर्षि भरतजीके पवित्र चरित्र इस प्रकारसे संक्षेपमें संग्रह करके लोग सदा गाया करते हैं। जिस प्रकार मक्खियाँ गरुड़के मार्गका अनुसरण नहीं कर सकतीं, वैसे ही और कोई राजा उन ऋषभदेवके पुत्र राजर्षि भरतके मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥४२॥ उन भरतजीने भगवान्की भक्तिके हेतु युवा अवस्थामें ही स्त्री, पुत्र, मित्र, राजत्व इत्यादि विषय, जो कि अत्यन्त मनोहर और त्यागनेके योग्य नहीं थे, उन सब पदार्थोंका क्षणमात्रमें विष्ठाके समान त्याग कर दिया ॥४३॥ उनके चित्तकी भक्ति भगवद्भक्तिके निमित्त प्रबल थी, इससे उन्होंने जो अत्याज्य राज्य पुत्र कलत्र और धन जन इत्यादिमें और

सुरवरोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जो दया-भाजन होनेके निमित्त उनकी ओर दीन भावसे देखती थी, उसमें भी अनिच्छा की, यह कर्म उनके योग्य ही हुआ, क्योंकि जिन समस्त महापुरुषोंका चित्त भगवान्‌की सेवामें अनुरागी हो रहा है, उनका निकट परमपुरुषार्थ-वाली मुक्ति भी अति तुच्छ पदार्थ है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने मृग-देहका परित्याग करनेके समय जो यज्ञरूप भगवान् यज्ञादि फल-दाता धर्मानुष्ठानकर्ता अष्टांगयोगरूपी ज्ञान ही जिसका प्रधान कार्य था ऐसे योग मूर्ति मायाके नियन्ता इस कारण नार (जीवसमूह) जिनको अयन (आश्रय) अर्थात् जो सर्व जीवोंके अन्तर्यामी हैं, उन भगवान् हरिको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ "यह वचन बड़े शब्दसे

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन् मृगत्व-मपि यः समुदाजहार ॥ ४५ ॥ य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महा० पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने ब्राह्मणरहूगणसंवादे पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

उच्चारण किया था" उनके मार्गका अनुसरण करनेको और कौन पुरुष समर्थ होगा॥४५॥ हे राजन् ! राजर्षि भरतके गुण और कर्म अति-शय पवित्र थे, प्रत्येक भगवद्भक्त इन दोनोंका सम्मान किया करते हैं, इस कारण महात्मा भरतजीका यह चरित्र अतिशय मंगलदायक, दीर्घायु करनेवाला तथा धन,यश,स्वर्ग और मोक्षका साधन करनेवाला है। जो पुरुष भक्तिसहित इस चरित्रको श्रवण करेंगे अथवा पढ़ेंगे और सुनकर हर्षित होंगे वे आपही आप अपने सब कल्याणोंको प्राप्त होंगे, दूसरोंके निकटसे उनका कल्याण ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं रहेगी ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षाभाटीकायां भरतोपाख्याने भवाटवीपरोक्षविवरणवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

* भजन—जो जन निशि दिन हरिगुण गावत । निस्सन्देह आनन्द सहित सो भक्ति मुक्ति फल पावत ॥ १ ॥ काल व्याल दूरहिते कांपत, यम नेरे नहिं आवत । सेवा करत पार्षद निशि दिन, ठाढ़े चंवर डुलावत ॥ २ ॥ सुन्दर सुभग विमान सजाकर, सब मिल ताहि चढ़ावत । शंख मृदंग बजाय धूमसे, परमधाम पहुंचावत ॥ ३ ॥ विष्णुरूप होजात विष्णुपुर, विष्णु दास कहलावत । शालिग्राम भक्तिकी महिमा शेष कहत सकुचावत ॥ ४ ॥

दोहा—भरतचरित वर्णन कियो,पंचदशो अध्याय। अब मैं तिनके वंशके, सब नृप कहौं गिनाय॥इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि भरतका पुत्र सुमति हुआ, कोई-कोई पाखण्डी लोग इसको जीवन्मुक्त मार्गका अनुसरण करता हुआ देखकर अपनी पापीयसी बुद्धिसे "साक्षात् बुद्ध अवतार हुआ" यह कलियुगमें उसकी कल्पना देवतारूपसे करेंगे, किन्तु वेदमें इसके देवता होनेका कहीं प्रसंग भी नहीं है। जो हो, इस सुमतिसे बुद्ध सेनाके गर्भमें 'देवताजित'नामक एक पुत्र हुआ ॥१॥२॥ देवताजितके आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, उसकी धेनुमतीके गर्भसे परमेष्ठी नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, परमेष्ठीकी स्त्री सुवर्चला थी, उससे परमेष्ठीके प्रतीह नामक

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मज सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥ १ ॥ तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥ य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥ प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः ॥ प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥ ४ ॥

महात्मा पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ जिस प्रतीहने सब लोगोंके निकट आत्मविद्याकी व्याख्या करके उसके द्वारा आप भी पवित्र हो भगवान् विष्णुजीके साक्षात् दर्शन किये थे ॥ ४ ॥ इन प्रतीहके सुवर्चला नाम स्त्रीके गर्भमें प्रतिहर्ता प्रस्तोता और उद्गाता यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, ये तीनों पुत्र यज्ञानुष्ठान करनेके विषयमें अत्यन्त पंडित और चतुर थे। उनके बीच प्रतिहर्ताकी स्त्री स्तुतिमें अज और भूमा यह दो पुत्र

१. शंका—शास्त्रमें तथा लोकमें मुनियोंने शुकदेवजीको समदृष्टि कहा है, कि शुकदेवजी अच्छे बुरेको एक सम देखते हैं, ऐसे परमहंस होकर श्रीशुकदेवजीने दूसरे प्राणीको पाखण्डी क्यों कहा ?

उत्तर—शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें चारों वेदोंका राक्षस नाश करते हैं, परन्तु कलियुगमें पाखण्डी लोग निश्चय चारों वेदोंका नाश करेंगे। कलियुगमें जो प्राणी उत्पन्न होंगे उन प्राणियोंको सिखानेके लिये तथा चतुर करनेके लिये कलिकालके प्राणी विद्वान् होंगे तो वेदकी रक्षा होगी, इसलिये दूसरेको पाखण्डी कहा, क्योंकि अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये थोड़ा भेद करते हैं।

हुए ॥ ४ ॥ भूमाके ऋषिकुल्यानाम स्त्रीमें उद्गीथ नामक पुत्र हुआ, उद्गीथके देवकुल्यानामक स्त्रीमें प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ, प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, विभुके रति स्त्रीमें पृथुवेण, पृथुवेणके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त और नक्तके द्रुतिनाम भार्यामें गय नाम पुत्र जन्मा । यह गय राजा बड़ा यशस्वी और राजर्षियोंमें परमोत्तम था और जो कि जगत्की रक्षा करनेकी वासनासे सत्त्वगुण धारण किया है, साक्षात् उन भगवान् विष्णुजीके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणोंसे महापुरुषताको प्राप्त हुआ था ॥ ६ ॥ यह राजर्षि-श्रेष्ठ राज्यमें अभिषेकित होकर राज्यधर्म कहकर प्रजागणोंका

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायाम् ॥ प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुः ॥ विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे ॥ नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ५ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनाऽर्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्ये आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥६॥ गयं नृपः कःप्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ७ ॥

लालन-पालन-शासनादि धर्मके कार्य करता था और यद्यपि गृहाश्रममें रहनेसे उसके याग यज्ञादि धर्म भी आचरण करने योग्य थे, परन्तु उसके यह दोनों प्रकारके धर्म सब भांतिसे भगवान्‌में अर्पण होनेके कारण परमार्थ रूप हो गये थे, इस कारणसे इन दोनों धर्मोंसे और ब्रह्मज्ञानियोंकी चरण-सेवासे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा उसकी बुद्धि संस्कारित और शुद्ध हो गयी थी और उसके चित्तसे देहाभिमान दूर हो गया था, इस कारण वे सदा ही स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मानन्दका अनुभव करते थे, परन्तु इस प्रकारसे होकर भी वे अभिमानरहित होकर पृथ्वीका पालन करते थे । हे पाण्डववंशावतंस परीक्षित ! इस कारणसे इतिहासके जाननेवाले पुण्य पुरुष अनेक-

अनेक गाथायें रचकर उनका यश और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ ६ ॥ उन गाथाओंका अर्थ यह है कि महात्मा गय यज्ञस्वरूप, मनस्वी धर्मरक्षक, श्रीमान् साधुजनोंकी सभाके पति और साधुओंके सेवक हैं, इससे भगवान्के अंशके विना और कौन नृपति कामादिकसे उनकी बराबरी कर सकेगा ? अर्थात् वह भगवान्के अंश हैं वह अपने आप ही अपनी समता कर सकते हैं ॥ ७ ॥ (और भी) जिन साध्वी दक्षकी कन्याओंका आशीर्वाद अव्यर्थ है ऐसी उन कन्याओंने नदियोंके सहित परमहर्षसे जिनका अभिषेक किया था और जिनके कल्याण-विषयमें निराकांक्षी होनेपर भी गुणरूप वत्सद्वारा स्तनस्पृशा आनेसे धरणीने जिनकी प्रजागणोंके लिये अनेक-अनेक कल्याण स्वयं ही दोहन कर दिये थे, भला उनकी कर्मोंमें बराबरी करनेको कौन समर्थ होगा ? ॥ ८ ॥ (और भी) जिसके निष्काम होनेपर भी समस्त वेद अथवा

यमभ्यषिञ्चन्हरया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥ ८ ॥ छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ॥ प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥ ९ ॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धा विशुद्धा चलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १० ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ॥ प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥ ११ ॥

वेदोक्त कर्म उसकी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण करते थे और राजालोग समरक्षेत्रमें शरोंसे पूजित होकर जिसको (कर) देते थे और ब्राह्मण लोग पालन और दक्षिणादिक पूजा पाकर अपने-अपने धर्म और पुण्यके फलका छठवां भाग जिसको देते थे, ऐसा कौन पुरुष उसके समान कार्य करनेको समर्थ होगा ? ॥ ९ ॥ (और भी) जिसके यज्ञमें बहुत सोमपान करनेसे यज्ञमूर्ति भगवान् इंद्र अतिशय मत्त होते थे और उससे श्रद्धा सहित शुद्ध और अविचल भक्तियोगसे अर्पण किये हुए यज्ञकी पूजाको पूज्य द्रव्यके समान श्रीभगवान् प्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते थे, उस महाप्रतापी राजाकी बराबरी कौन कर सकता है ? ॥ १० ॥ (अथवा) जिन भगवान्के प्रसन्न होनेसे देवता, मनुष्य, पशु पक्षी, लता, तृण इत्यादिसे लेकर ब्रह्माजी और सब ब्रह्माण्ड प्रसन्न हो गया था, आप विश्वनाथ

विश्वंभर सर्वान्तर्यामी साक्षात् वेदस्वरूप भगवान् विष्णुजी गय राजाके यज्ञमें "हम तुम्हारे यज्ञमें प्रसन्न हुए" यह कहकर स्वयं प्रसन्नता प्रकाश करते थे, इस कारण कौन पुरुष इस गय राजाके समान हो सकेगा ॥ ११ ॥ उक्त राजर्षि गयसे जयन्तीनाम स्त्रीके गर्भमें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों पुत्रोंमें चित्ररथकी भार्या ऊर्णा हुई, उसके गर्भसे सम्राट् नामक एक पुत्रने जन्म लिया ॥ १२ ॥ सम्राट्ने उत्कला नामक स्त्रीमें मरीचिनामक एक पुत्र उत्पन्न किया। मरीचिसे बिंदुमतीके गर्भमें बिंदुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुए, बिंदुमानसे सरघा नाम स्त्रीमें मधु नामक राजर्षिने जन्म लिया, इन मधुकी स्त्री सुमनामें वीरव्रत उत्पन्न हुए, इन वीरव्रतने भोजा नामिका अपनी स्त्रीके गर्भसे मन्थु और प्रमन्थु यह दो पुत्र उत्पन्न किये। उन मंथुकी स्त्री सत्या हुई, उससे भौमनका जन्म हुआ,

गयाद् गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुः ॥ चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट॥१२॥तत उत्कलायां मरीचिः॥मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत॥ तस्मात् सरघायां मधुनामाऽभवत्॥मधोः सुमनसि वीरव्रतः॥ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते ॥ मन्थोः सत्यायां भौवनः ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट ॥ त्वष्टुर्विरोचनायां विरजः ॥ विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम्॥१३॥तत्रायं श्लोकः॥प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः॥अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुःसुरगणं यथा॥१४॥इति श्रीभागव०म०पञ्चम० प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥ राजोवाच॥उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमावा सह दृश्यते॥१॥

इन भौमनसे दूषणा नाम स्त्रीमें त्वष्टाने जन्म लिया। उन त्वष्टाकी स्त्री विरोचना हुई, इसके गर्भमें विरज जन्मे, विरज बड़े महात्मा थे। उनकी स्त्रीका नाम विषूची था, उसके गर्भसे विरजके सौ (१००) पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ १३ ॥ इन विरजका गुण कीर्तन करनेके विषयमें एक श्लोक है कि प्रियव्रतके वंशमें सबसे पीछे राजा विरजका जन्म हुआ; जिस प्रकार भगवान् विष्णुजी देवताओंको सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार विरजने अपनी कीर्ति और गुणोंसे इस वंशकी शोभाका विस्तार किया ॥ १४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भषाटीकायां प्रियव्रतवंशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ दोहा—रचना सकल सुमेरुकी, सोलहमें कहौं गाय। पृथ्वीरूपी कमलकी,जुदे कर्णिका प्राय ॥ अनन्तर श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् कहने लगे, कि हे ब्रह्मन्! भगवान् सूर्य नारायण अपनी

किरणोंसे जहांतक प्रकाश करते हैं और जहां-जहां निशानाथ चन्द्रमा शुक्ल और कृष्णपक्षमें तारागणोंके सहित दीख पड़ते हैं, वहांतक भूमण्डलके विस्तारका विशेष वर्णन आप कर चुके हैं ॥ १ ॥ उतने परिणाममें भूमण्डलके मध्य राजा प्रियव्रतके रथके पहियेसे खुदकर सात समुद्र बने हैं, दूसरे हे भगवन् अपने इन सात समुद्रोंसेही इस भूमंडलके मध्यका और सातों द्वीपोंका संक्षेपमात्र ही वर्णन किया है। इन सब द्वीपोंका परिणाम और लक्षणयुक्त विशेष विस्तार सहित सब वृत्तान्त सुननेकी हमारी अत्यन्त अभिलाषा है ॥२॥ हे योगिन् ! भगवान्के गुणमय स्थूलरूप (ब्रह्मांड) में लगा हुआ मन भी कदाचित् निर्गुण सूक्ष्मतम स्वयं प्रकाश परब्रह्म स्वरूप जो परमपुरुष वासुदेव हैं, उनमें निवेशित होनेको सामर्थ्यवान् होगा, इसलिये हे गुरो अनुगह करके इस विषयको वर्णन कीजिये ॥३॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ताः ॥ यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचितः ॥ एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥३॥ ऋषिरुवाच ॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेःकाष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात् प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥ यो वाऽयं जम्बूद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥ यस्मिन् नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥

बोले कि हे महाराज ! पुरुष यदि देवसमान परमायुको प्राप्त हो तो भी विशेष रचनाके नाम और रूप भगवान्की मायाकी विभूतिका अन्त मन वचनसे जाननेको समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये प्रधान-प्रधान द्वीपोंके नाम, स्थिरता और चिह्न वर्णन करके ही तुम्हारे निकट भूगोलके सब स्थानोंकी व्याख्या करेंगे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! यह भूमंडल एक बड़े भारी कमलका स्वरूप है, सप्तद्वीप उसके कोष हैं, इस सप्तद्वीपरूप कोषके मध्यमें मध्यवर्ती कोष जम्बूद्वीप है यह द्वीप पहला है, इसकी चौड़ाई और लम्बाई लक्ष योजनकी है यह जम्बूद्वीप कमलपत्रके समान चारों ओरसे गोल है ॥ ५ ॥ इस द्वीपमें नौ खंड हैं, इन नौ खंडोंमें भद्राश्व और केतुमालखंडके सिवाय प्रत्येकका विस्तार

नौ नौ सहस्र योजन है; यह नौ खण्ड आठ सीमा पर्वतोंसे सुन्दर भांतिसे विभक्त किये हैं ॥६॥ इन सब खण्डोंके मध्यमें इलावृत्त नामक खण्ड है, जो सबके अभ्यन्तर है, उसके मध्यस्थलमें सब कुलाचल पर्वतोंका राजा और सर्वतः सुवर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है। इस सुमेरु पर्वतकी ऊँचाई और इस द्वीपका विस्तार परिणाम लक्ष योजन है, यह पर्वत चोटीकी ओर (बत्तीस हजार योजन) और मूलमें (सोलह हजार योजन) फैला हुआ है, और पृथ्वीमें भी सोलह हजार योजन गड़ा हुआ है और बाहिरी भागमें चौरासी हजार योजन दिखाई देता है, जो हो, यह सुमेरु पर्वत इस प्रकारसे भूमण्डल बड़े भारी कमलकी कर्णिका (डंडी) का रूप हुआ है ॥७॥ हे राजन् ! इलावृत्त वर्षके उत्तर भागकी उत्तरादि दिशाओंमें बराबर बराबर नीलगिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान् गिरि हैं, यह तीनों पर्वत यथाक्रम

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतःकुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतःक्षारोदावधयो द्विसहस्रं पृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्माद‍ुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥ ८ ॥ एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥९॥

रम्यक वर्ष, हिरण्यमय वर्ष और कुरु वर्षके सीमापर्वत स्वरूप हो रहे हैं, यह तीनों पर्वत पूर्वकी ओर लम्बे हैं, इन तीनों पर्वतोंकी दोनों कक्षाओं (बगल) में क्षार समुद्रतक सीमा है,इनका विस्तार दो हजार योजन है। इन पर्वतोंमें प्रथम पर्वतकी अपेक्षा पिछला पर्वत लम्बाईमें दशांशसे कुछ अधिक भागमें कम है। अर्थात् केवल एकादश अंश दीर्घताके परिणाममें छोटे हैं ॥८॥ इस प्रकार इलावृत्त वर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक क्रमसे तीन पर्वत हैं, ये तीनों पर्वत पहले कहे हुए नीलादि पर्वतोंके समान पूर्व दिशाकी ओर लम्बायमान हैं और प्रत्येक दश-दश हजार योजन ऊँचे हैं। हे राजन् ! यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष और

भारतवर्षके सीमा पर्वत हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकारसे उक्त इलावृत्त वर्षके पूर्व और पश्चिम दिशामें यथाक्रम माल्यवान् और गंधमादन नाम पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत उत्तरमें नील पर्वत और दक्षिणमें निषेधाचलतक लम्बे हैं और दो-दो हजार योजन चौड़े हैं। यह दोनों यथाक्रम केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा हो रहे हैं ॥१०॥ सुमेरुके चारों ओर मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार पर्वत-रूपी खम्भ हैं, इन पर्वतोंमें प्रत्येकका विस्तार और ऊँचाई दश-दश हजार योजन है, इन चारों पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिम देशके पर्वत पूर्व पश्चिमको फैले हुए हैं ॥ ११ ॥ इन चारों पर्वतोंपर चार ही सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं, पूर्व दिशा की ओर मन्दर पर्वत पर आम, दक्षिण दिशामें मेरुमन्दर गिरिके ऊपर जामुन, पश्चिम दिशाकी लतामें सुपार्श्व भूधरके ऊपर कदम्ब और उत्तर दिशाकी सीमामें कुमुद

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥ मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥ १२ ॥ ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रामिति ॥ १४ ॥

शैल पर वट, यह वृक्ष पर्वतोंकी ध्वजाके समान दृष्टि आते हैं, और ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे और ग्यारह-ग्यारह सौ योजन उनकी शाखाओंका विस्तार है। और सौ-सौ योजनकी मुटाई है ॥ १२ ॥ हे भरतकुलश्रेष्ठ ! इन चार वृक्षोंके निकट ही चार ह्रद हैं, उनमेंसे एकमें दुग्ध जल, दूसरेमें मधुजल, तीसरेमें ईखके रसका जल और चौथेमें शुद्ध मीठा जल है। इन चारों ह्रदोंके जलमें अतिशय चमत्कार है, उपदेवता लोग इन ह्रदोंके जलका सेवन करके स्वाभाविक योगैश्वर्य धारण करते हैं ॥ १३ ॥ इस स्थानमें ऊपर कहे हुए चार ह्रदों के अतिरिक्त चार श्रेष्ठ उद्यान भी हैं, इन सबके नाम यथा नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं ॥१४॥

इन सब उद्यानोंमें प्रधान-प्रधान देवता जो देवांगनाओंमें रत्नस्वरूप स्त्रियोंके पति हैं। वे अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ मिलकर विहार किया करते हैं इस प्रकारसे विहार करनेके समय उपदेवतागण उनकी महिमा गाया करते हैं ॥१५॥ मन्दर पर्वतके मध्यमें देवताओंका जो एक आमका वृक्ष है, वह ग्यारह योजन ऊँचा है, उस वृक्षके अग्रभागसे सदा अनेक-अनेक अमृततुल्य बहुत मधु फल गिरा करते हैं। यह सब फल पर्वतोंके शिखरके समान बड़े-बड़े होते हैं ॥ १६ ॥ इन सब बड़े-बड़े फलोंकी अति मधुर सुगंधि है और जब यह गिरकर

येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥ मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥ १६ ॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥१७॥ यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बूनाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥ १९ ॥

फटते हैं, तब सौरभ सुवासित अरुण वर्णका रूप होनेसे धाराप्रवाह इनका रस ही जल स्वरूप होनेसे उसमें अरुणोदा नामक एक नदी हुई है, वह नदी मन्दर पर्वतके शिखरसे निकलकर पूर्वकी ओर इलावृत्त खण्डको पवित्र करती हुई पूर्वकी ओर को चली गयी है ॥ १७॥ इस जलके सेवन करनेसे ही भवानीजीकी अनुचरी यज्ञाङ्गनाओंके अङ्गमें सुगंधि हो जाती है, उनके शरीरको छूकर पवनमें ऐसी सुगंधि हो जाती है कि चारों ओर दश-दश योजनतक वह सुगंधियुक्त पवन आमोदित करती रहती हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार जंबू वृक्षके समस्त

१. शंका—कदम्ब, आम्र, जामुन, बड़ इन वृक्षोंका चरित्र सुनकर तथा इन वृक्षोंसे उत्पन्न हुए जो नदी तथा कुण्ड सब पदार्थोंको देनेवाले सुनकर हमारा चित्त अत्यन्त चकित हो रहा है, और कांपता है, क्योंकि आज तक ऐसी बात सुननेमें नहीं आयी, कि नदीमें और कुण्डमें सब पदार्थ भरे रहते हैं?

उत्तर—जब ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब अपने-अपने धर्ममें और वेदके मार्गमें दृढ़ और स्थित थे। तब नदियोंका, कुण्डोंका, वृक्षोंका जो जो प्रभाव श्रीमद्भागवतमें लिखा है वह सब सत्य था। जब चारों वर्णोंने कलियुगमें अपने-अपने धर्मको और वेदमार्गको त्याग दिया और पाखण्डी बन पाखण्ड मतको ग्रहण किया, तब भगवान्‌ने समझा कि ये दुष्ट इन स्थानोंको भी भ्रष्ट करेंगे यह विचार कर उन कुण्ड और वृक्षोंको गुप्त कर दिया और सब किसीका प्रभाव हर लिया।

भा० पं०
॥८३॥

फल जो हाथीके शरीरके समान बड़े और कृष्णवर्ण होते हैं और जिनकी गुठली अति छोटी होती है, जब वे ऊपरसे गिरते हैं तो फट जाते हैं और उनके रससे जम्बू नाम एक नदी उत्पन्न हुई है, वह नदी मेरु मंदरके शिखरसे दश हजार योजन ऊँचेसे पृथ्वीपर गिरती है और जिस स्थानमें गिरती है उस स्थानसे अपने दक्षिणमें समस्त इलावृत वर्षमें व्याप्त होकर बह रही है॥१९॥ इस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उसके जलके रससे भीगी वायु और सूर्यके संयोग भलीभांति पक जानेपर जम्बू नद नामक महामूल्यवान् सुवर्ण हो जाता है, जिस सुवर्णके देवादि सबही अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ मुकुट,कटक,कटिमेखला, इत्यादि आभरण बनाकर पहना करते हैं ॥२०॥२१॥ सुपार्श्व-

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति॥२०॥यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति॥२१॥यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिस्सृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात् पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृत्तमनुमोदयन्ति ॥२२॥ या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥ एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥ २४ ॥

पर्वतकी कक्षामें महाकदम्ब नामक जो बड़ा भारी कदम्बका पेड़ है,उसके समस्त कोटरोंसे पांच-पांच मधुकी धारा उस पर्वतपरसे गिर अपने पश्चिमकी ओरमें इलावृत वर्षको अपनी सुगंधिसे चारों ओर सौ-सौ योजनतक सुवासित कर देती है ॥२२॥ जो प्रजागण इसी पर्वतकी मधुधाराओंका सेवन करते हैं, उनके वदनकी सुगंधिके स्पर्शसे वायु सुगंधित होकर सौ-सौ योजन तक चारों ओर महका देती है ॥२३॥ इसी प्रकारसे कुमुद पर्वतपर शतवर्ण नामक जो वटवृक्ष हैं उसके स्कन्धोंसे नीचे दही, दूध, घी, मधु, गुड अन्न इत्यादि हैं और वसन, भूषण, शयन, आसनादि समस्त मनोवांछित वस्तु दोहनकारी जो नद इस पर्वतके अग्रभागसे निकलकर अपने उत्तर इलावृत्त देशको महोपकार

करके उत्तरकी ओर समुद्रमें मिल गये हैं ॥ २४ ॥ इन नद नदियोंमें स्नान करनेसे वहां रहनेवाले प्रजागणोंको कभी अंगकी विकलता, थकावट, खेद, जरा, रोग, अकालमृत्यु, शीत वा गरमीके कारण विलावन और विघ्न आदि जो संतापविशेष हैं वह सब कुछ भी नहीं होते, केवल महासुख भोगमें ही समय बिताया करते हैं ॥२५॥ हे राजन् ! कुरंगी, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनि, वास, कपिञ्जल, शंख, बैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नीरद प्रभृति वीस पर्वत सुमेरुके मूलमें चारों ओर बने हुए हैं, जिनसे कि यह पर्वत कर्णिका अर्थात् कमलपत्रके समान है और सुमेरु पर्वतके केशरकी नांई है ॥ २६ ॥ सुमेरु पर्वतके पूर्व ओर जठर देवकूट पर्वत

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति ॥ यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैडूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥ २६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः ॥ एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतौ ॥ एवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरौ अष्टाभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥ मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदंति ॥ २८ ॥

हैं। यह दोनों पर्वत प्रत्येक उत्तर दिशाको अठारह हजार योजन लम्बे और दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं। इसी प्रकार सुमेरुके पश्चिम दिशामें पवन और पारियात्र दो पर्वत हैं, जो दक्षिण दिशाकी ओर लम्बे हैं। दक्षिण दिशामें कैलास और करवीर गिरि हैं। यह दोनों पर्वत पूर्वकी दिशाको लम्बे हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और मकर नाम दो पर्वत हैं, यह पश्चिमकी ओर विस्तृत हैं, इस प्रकार मूलसे सहस्र योजन परित्याग करके चारों ओर अग्निकी परिधिके समान इन आठ पर्वतोंसे घिरा हुआ काञ्चनगिरि अर्थात् सुमेरु पर्वत चारों ओरसे प्रकाश कर रहा है ॥२७॥ इसके जाननेवाले पंडित लोग कहते हैं कि इस सुमेरुके मस्तक पर सबसे ऊँची मध्यस्थलमें भगवान्

आत्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी निर्मित है,उसका विस्तार दशहजार योजन है,वह सुवर्णकी बनी हुई है और चारों ओर समान चतुष्कोण है॥२८॥ इस पुरीके ऊपरी भागमें पूर्वादि सब दिशाओंमें क्रमसे उत्तरादि अष्ट लोकपालोंकी आठ पुरी बनी हुई हैं, इन सब पुरियोंका वर्ण उनमें रहते हुए लोकपालोंके वर्णके समान है। और प्रत्येकका परिमाण ब्रह्मपुरीके परिमाणसे चतुर्थ अंश अर्थात् ढाई हजार योजन है *॥२९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां भुवनकोषवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा-सत्रहवें सब दिशनमें, श्रीगंगाको गौन। इलावृत्तमें शम्भुकृत, संकर्षण व्रत भौन॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! इस अध्यायमें कलिमलदल-हरणी, परमानन्दकरणी, सर्वसुखदायिनी, श्रीगंगामहारानीके माहात्म्यकी कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये।

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृताः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागव० म० पञ्च० भुवनकोशवर्णनं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार ॥ १ ॥

साक्षात् श्रीभगवान् विष्णुजीने जब बलि राजाके यज्ञमें जाकर अपना विराट्रूप धारण कर तीनों लोकोंको नापा,उस समय दाहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर जैसे ही बांयां चरण ऊपरको उठा रहे थे, वैसे ही वामचरणके अंगुष्ठ नखसे ब्रह्माण्डके ऊपरी भागके कटनेसे जो छिद्र हुआ था, उस छिद्रमेंसे चरण-विहारिणी,भयभवनिस्तारिणी, गंगाजीकी जो ब्रह्मधारा,ऊपर स्थित हुए ब्रह्माण्डके भीतर पैठी थी,यह वही धारा-मस्तकसे उतरकर पृथ्वीमें उतरी है। यह जलकी साधारण धारा नहीं है, इसकी धारासे धुलनेके कारण भगवान्के चरणकमलमें लगा हुआ जो कुंकुम अरुण वर्ण हो गया था उसके नागकेशर सदृश रंग जानेसे इस धाराने अत्यन्त शोभा धारण की थी। यद्यपि इससे

* श्लोकः—मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती। तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गना परा ॥ १ ॥ श्रद्धावती धन्धवती तथा चान्या महोदया। यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अखिल जगत्का मल विनाशको प्राप्त हो जाता है, तो भी यह वारिधारा आप ही अत्यन्त निर्मल है और भगवान्के चरणोंसे उत्पन्न हुई, इस लिये इसके "जाह्नवी, भागीरथी" इत्यादि नाम रक्खे गये हैं, हे राजन् ! विष्णु भगवान्के चरणकमलसे निकली हुई, यह गंगाजी यद्यपि बलि राजाके यज्ञसमय उपस्थित ब्रह्माण्डके भीतर छिद्रमें प्रविष्ट हुई थीं, तो भी वहांसे सहसा पृथ्वीपर नहीं आयीं। बहुत बड़े काल अर्थात् दो सहस्र युगके पीछे स्वर्ग-मस्तकसे पृथ्वीपर उतरी हैं। हे राजन् स्वर्गका मस्तक किसे कहते हैं, उसका वृत्तांत भी संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, तुम श्रवण करो। पंडितलोग जिसको विष्णुपद कहते हैं, वही स्वर्गका मस्तक है ॥ १ ॥ उत्तानपादके पुत्र परमभागवत वीरव्रत, दृढ़संकल्प ध्रुवजी विराजमान थे, उन्होंने श्रीगंगाजीको देख मनमें परमानन्द मानकर कहा, कि यह हमारे कुलदेवता भगवान् हरिके चरणका जल है, ऐसा मनमें समझ प्रतिज्ञा सहित अबतक प्रतिदिन परम आदर-सन्मानसे अपने मस्तकपर उस वारिधारा (गंगा) को धारण

यत् तद् विष्णुपदमाहुः ॥ यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कंठयविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनाऽपि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥ ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावज्ञायां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥ ३ ॥

कर रहे हैं। इन महात्मा ध्रुवजीके हृदयका मध्यभाग क्षण-क्षणमें बढ़ती हुई भक्तिके योगसे अत्यन्त द्रवीभूत होता है, इस कारण उत्कंठासे विवश उनके कुछेक बंद हुए कमलरूपी युगल नेत्रोंसे अश्रुबिंदु गिरते हैं, और सर्व शरीरमें रोमांच हो आता है ॥२॥ हे राजन् ! गंगाका प्रभाव जाननेवाले महर्षिगण "यही गङ्गा तपस्याकी परमसिद्धि है इनसे और कोई सिद्धि नहीं है" इस प्रकारका निश्चय करके अपनी-अपनी जटाके समूहमें इन गङ्गाजीको धारण करते हैं, हे भारतवंशावतंस ! सप्त ऋषियोंके इस प्रकारके निश्चय होनेका हेतु यह है कि, सबके आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवमें एकान्तिक भक्तियोग प्राप्त करनेसे और दूसरे पुरुषार्थ व आत्मज्ञानमें जिसकी आस्थामात्र नहीं वरन् उससे दूर रहनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये इस प्रकारके निर्लोभी मुमुक्ष जन जैसे मुक्तिको धारण करते हैं, उन्हींके समान परमयत्न और

आदर-सत्कार सहित वह सप्तर्षि गंगाजीको धारण किये रहते हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीके चरणसे उत्पन्न हुई यह गंगाजी सप्तऋषियोंके स्थानसे हजारों करोड़ों विमानोंके समूह जिसमें शोभित हैं, ऐसे आकाश मार्गसे उतरकर चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई सुमेरु पर्वतपर स्थित हुए ब्रह्माके सदन (स्थान) में गिरती हैं ॥ ४ ॥ वहांपर अलग-अलग नामसे चार धाराओंमें विभक्त होकर सर्वतः (चारों ओरको) बहती हुई सरित्पति समुद्रमें मिली हैं । उन चारों धाराओंके नाम यह हैं—सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा ॥ ५ ॥ उन चार धाराओंमे प्रथम ही सीता ब्रह्मसदनसे प्रकट हो, केसराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई प्रधान-प्रधान शिखरोंपर गिरती

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥ तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्यन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति ॥ सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥ सीता तु ब्रह्मसदनात् केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वा अन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥ एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभिचक्षु- प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥ भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृंग- वतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ८ ॥ तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटात् हैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठंती भारतमभिवर्षं दक्षि- णस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ९ ॥

है, इसके पीछे इन सब शृङ्गोंसे क्रमसे नीचेको बहकर गंधमादन पर्वतके शिखरोंपर गिरकर फिर भद्राश्व खण्डके मध्यमें बहकर पूर्वकी ओर लवण समुद्रमें मिल गयी है ॥ ६ ॥ इसी प्रकारसे चक्षुनामक धारा माल्यवान् पर्वतके शिखरसे निकलकर महावेगवती केतुमालखं- डके सम्मुख होती हुई पश्चिम दिशाके समुद्रमें जाकर मिली है ॥ ७ ॥ भद्रा नामक धारा उत्तर दिशामें सुमेरुके शिखरसे गिरकर एक शिखरसे दूसरे पर्वतके शिखरपर होती हुई कुमुद पर्वतके शिखरसे चलकर नीलगिरि शिखरपर आयी है । वहांसे बहकर श्वेतपर्वतके शृङ्गपर वहांसे शृङ्गवानपर्वतपर पहुँच वहांसे नीचे गिरी और उत्तर कुरुदेशमें होकर क्षार समुद्रमें मिली है ॥ ८ ॥ अलकनन्दा नामक

धारा भी इसी प्रकारसे पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती ब्रह्मलोकसे गिरती, बहुतसे गिरि-शृङ्गोंको उल्लंघन करती हुई, बड़े भारी तीव्रवेगसे लुढ़कती, हेमकूटमें होती हुई, भारतवर्षमें व्याप्त होकर दक्षिणकी ओर लवण समुद्रमें जा मिली है। गंगामें स्नान करनेके लिये आये हुए मनुष्योंको एक-एक पगपर अश्वमेध व राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे राजन् और भी बहुत भांतिके नद-नदी सुमेरु इत्यादि पर्वतोंसे उत्पन्न होकर प्रत्येक खण्डमें शत-शत धाराओंसे बहती हैं ॥ १० ॥ परन्तु जितने खण्ड हैं, सबमें भारतवर्षको ही कर्मक्षेत्र कहते हैं और जो आठ खण्ड हैं, वे स्वर्ग-वासियोंके शेष पुण्य भोगनेके स्थान हैं। वह स्वर्ग नामसे विदित भूमिके विकार ही हैं ॥ ११ ॥

यस्यां स्नानार्थं पानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति॥ अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥ तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति॥११॥एषु पुरुषाणामयुतं पुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालोवर्तते ॥१२॥ यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलतापिटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥ १३ ॥

इन आठ वर्षोंमें जो पुरुष वास करते हैं, उनकी आयु दश सहस्रवर्षकी होती है। देवताओंका सा रूप होता है,और दश हजार हाथियोंके समान उनमें बल होता है, वज्र तुल्य दृढ़ शरीर होता है, उस शरीरमें ऐसा बल वयस व हर्ष होता है, कि उससे सुरत सम्बन्धीय मिथुन (स्त्री पुरुष अतिशय प्रमुदित होते हैं) और सम्भोग करनेके अन्तमें एक वर्षकी आयु जब रह जाती है,तब उन लोगोंकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकारसे विषयसुखकी श्रेष्ठताके हेतु इन सब वर्षोंमें पुरुषोंका त्रेतायुगके समान परम सुखसे समय व्यतीत होता है ॥१२॥ इस लिये इन सब खण्डोंके मनुष्य देवपति हैं; वे सब अपने-अपने योग्य स्थानोंमें अपने-अपने मुख्य सेवकोंसे पूजित होकर

अपनी-अपनी इच्छानुसार बड़े-बड़े महात्मा पुरुष आश्रमोंमें, पर्वतोंमें, कन्दराओंमें, और निर्मल जलाशयोंमें अनेक-अनेक प्रकारसे जलविहार करते रहते हैं और छहों ऋतुओंमें वहांके वृक्षोंकी शाखाओंमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे फूल रहे हैं, हरे-हरे पत्तोंके समीप कोमल-कोमल कोपलें पीली, लाल, हरित ऐसी शोभा दे रही हैं मानो मनको विनामूल्य मोल लिये लेती हैं और डाली-डालीपर फलोंकी छबि निराली ही समृद्धियोंसे भरी पृथ्वीकी ओर झुकी रहती हैं, जैसे धनी पुरुष धन पाकर नीचा हो जाता है, उनपर भांति-भांतिके पुष्पोंसे लदी लहलहाती चुहचुहाती हुई लताओंने जिन लम्बे-लम्बे द्रुमोंका आश्रय ले रक्खा है, तो भी पुष्पोंके अधिक, भारसे और पवनके संचारसे नीचेको ऐसी झुक जाती हैं मानो पृथ्वीको अपनी जननी समझकर वारंवार शिर झुका-झुकाकर नमस्कार कर रही हैं और वायुके वेगसे जो सुमन गिरते हैं, मानो झरझर कर अपनी माता वसुन्धराको चढ़ाती ही हैं, ऐसे सुन्दर-सुन्दर शोभायमान वनके वृक्षोंसे आश्रमोंमें जहां-तहां अद्भुत छबि छा रही है और वहां जो सुन्दर-सुन्दर ताल और सरोवर हैं उनकी शोभा कहांतक वर्णन किया जाय ?

नवस्वपि वर्षेषु भगवान् नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाऽद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥ इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञः ॥ यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत् पश्चाद् वक्ष्यामि ॥ १५ ॥

उन नवीन-नवीन भांतिके विकसित कमल और कलियोंकी सुगंधसे प्रसन्न हो होकर राजहंस, कलहंस, जलमुर्गावियां, कारण्डव, सारस और चकवे इत्यादि पक्षियोंके कलरवसे और भँवरोंके समुदायकी गुञ्जार जलाशयमें सुन्दर-सुन्दर सुरसुंदरी सुन-सुनकर मन ही मन आनंदित हो, परम पवित्र जल देख-देख अनेक-अनेक प्रकारकी जलक्रीड़ा कर कर कामदेवसे क्षुभित हास विलासादिकोंसे जिनके मन वशीभूत हो रहे हैं और उनके हावभावको निहार-निहार वहांके जलविहार करनेवाले देवताओंके मन और नेत्रोंका मकनातीस (चकमक) पत्थरके समान परस्पर खींचातानी हो रही थी ॥१३॥ इन कहे हुए खण्डोंमें महापुरुष भगवान् नारायण भक्तोंके ऊपर परम अनुग्रह करनेके लिये अपनी मूर्तियोंके समूहमें आजतक सम्यक् प्रकारसे विराजमान हो रहे हैं ॥ १४ ॥ इलावृत खंडमें सदा सहस्र शिरवाले संकर्षणका ही पूजन होता है और वही महादेवके हृदयमें वास करते हैं, इसलिये इलावृत–खंडमें भगवान् शिव ही एक पुरुष हैं, वहां

और कोई पुरुष नहीं है, क्योंकि लोग श्रीभवानीके शापको जानते हैं, वे लोग कभी उस स्थानमें भूलकर भी पांव नहीं रखते और जो कोई पुरुष विना जाने-बूझे उस खण्डमें चला भी जाता है तो वह तत्क्षण स्त्रीस्वरूप हो जाता है, इसका विशेष वृत्तान्त पीछे नवम स्कन्धमें कहेंगे ॥१५॥ इस इलावृतखण्डमें भवानीवल्लभ पार्वतीपति भूतनाथकी असंख्यता अर्बुद पार्वतीकी अनुचरी (स्त्रीगण) दिन रात शिवजीकी सेवा करती हैं, शिवजी महाराज शेषभगवान्‌की आराधना किया करते हैं, वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस नामकी चार मूर्ति महापुरुषकी चौथी तामसी अपनी आत्माकी प्रकृति संकर्षण भगवान्‌का रूप धारण कर अपनी समाधि रूपसे जिससे स्वयं आप प्रकट हुए हैं, उसी प्रतिमासे अन्तर्वर्ति चैतन्य होकर भगवान् महादेवजी इस मन्त्रका दिन रात जप करते रहते हैं॥१६॥ "ॐ नमो भगवते

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः संकर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥ भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृष्णस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१८॥ न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥

महापुरुषाय सर्वगुण संख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नमः ॥" अर्थ—उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान् महापुरुष, सर्वगुणप्रकाशक, अनन्त अव्यक्त श्रीसंकर्षण भगवान् को मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥१७॥ हे भजनीय भगवन् ! सम्पूर्ण ऐश्वर्य देनेवाले, भक्तिके परम स्थान, अपने भक्तोंके अत्यन्त आदरदायक, अपने जनोंको अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन देनेवाले, संसार नाशक, सब जन जिनकी भावना करें, ऐसे परमेश्वरके शरणागतरक्षक चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ ॥ १८ ॥ मायाके गुण चित्तकी वृत्तिसे आप प्रतिदिन देखते हैं, तो अपनी दृष्टिको किंचिन्मात्र लिप्त नहीं करते जैसे हम लोग क्रोधके वेगको जीतनेका सामर्थ्य नहीं रखते, इसलिये हमको इस संसार—सागरसे बचना कठिन है, ऐसे आप ही अपनी आत्माको जीतकर वशमें रखते हैं, इसलिये जो अपनी आत्माको जीतनेकी इच्छा करे; अर्थात्

मोक्षपदको लेना चाहे, वह कौन सामर्थ्यवान् है जो आपका भजन न करे ? ॥१९॥ अज्ञानी, कुबुद्धि, मायासे विमोहित असत् दृष्टिवाले मनुष्यको आपके मद भरे लाल-लालनेत्र मतवालेके सदृश, भयानक रूप मायासे दृष्टि आते हो, देखो ! कि लज्जाकी मारी नागवधू विधानपूर्वक आपकी पूजा भी करती हुई डरती हैं और आपके चरणारविन्दोंका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं, क्योंकि मनोभावसे ग्रसी हुई कामातुर हो रही हैं, कदापि कोपदृष्टिसे देखकर हम भस्म कर दें और दूसरे चन्दन और पुष्पादिको कोई इसलिये भी नहीं चढ़ा सकतीं, कि आपके कोमल पदोंमें चन्दनके कण और पुष्पोंकी पंखुरियां कहीं चुभ न जायँ॥२०॥इस विश्वकी उत्पत्ति,पालन,संहारके करनेवाले अनन्त और

असदृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरेह्रिया यत्पादयोः स्पर्शन धर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥ यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ॥ न वेदसिद्धार्थमिव क्वचित् स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान् विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ २२ ॥

सन्त और वेद मन्त्र आपको उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयसे रहित कहते हैं आपके दश सहस्र मस्तकोंमेंसे न जाने कौनसे मस्तकपर यह अण्ड-कटाह सरसोंके दानेके समान रक्खा है, इस बातकी आपको इतनी भी सुध नहीं, ऐसे शेष भगवान्के लिये नमस्कार है * ॥ २१ ॥ जिनका आद्य महत्तत्त्व और सत्त्वगुण जिसका आश्रय है, वह आपके गुणसम्बन्धसे महाविज्ञानरूप सत्त्वप्रधान भगवान् वासुदेव हुए, उनकी नाभिसे भगवान् ब्रह्माजी हुए, जिनसे मैं रुद्र होकर त्रिगुणात्मक अपने तेज अहंकारसे, देवता—वर्गभूत—वर्ग और इंद्रिय—वर्गको

---

* भजन—तेरी महिमा अपरम्पार किसीने पार न पाया रे । योगी यती संन्यासी अमर है जिनकी काया रे । हरि हरि हरि रटते ही जिनने जन्म गमाया रे ॥ १ ॥ शेष सहस्र मुख रटत पञ्चमुख शिवने गाया रे । चार मुख ब्रह्माने चारों वेदोंको सुनायारे ॥ २ ॥ किसीने घरमें बैठ जनक सम योग कमाया रे । कोई वनके वैरागी त्यागी जगमें कहलाया रे ॥३ ॥ कोई विना तंतरी मंत्र मरघटमें जगाया रे । किसीने वनके ध्यानी रघुवरसे लगाया रे ॥ ४ ॥ हरिकी शालिग्राम जगत्में अद्भुत माया रे । सबने खोज किसीके हाथ न आया रे ॥ ५ ॥

उत्पन्न करता हूं ॥ २२ ॥ जैसे कीट और विहंग रस्सीसे बँधकर पराये वशमें हो जाते हैं, इसी प्रकार आपके वशमें होकर यह हम सब महत्तत्त्व, देवता, भूत और इंद्रियगण हो रहे हैं,जिनके अनुग्रहसे हम सब ब्रह्माण्डको बनाते हैं और आपको कारयिता कहते हैं ॥२३॥ जिनकी रची हुई माया कर्मोंकी पूर्वरूप धारिणी मायाको गुणसर्गोंसे मोहित होकर जो जन उसको सहज जानते हैं, परन्तु इस बातका कुछ भी उपाय नहीं कर सकते कि किस रीतिसे हमारा निस्तार होगा, जिनकी ऐसी मनमोहिनी अद्भुत माया है ऐसे विश्वके उत्पन्न पालन और नाशकर्ता भगवान्के अर्थ हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां इलावृतखंडे भग-

एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ॥ महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे इलावृतखण्डे भगवत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियांतनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐनमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्नसद् यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥ ३ ॥

वत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ दोहा—छहों खंडमें जो वसत,प्रभु अरु प्रभुके दास। अष्टादशमें सबनके,कहौं चरित्र विलास॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! भद्रखंडमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक खंडपति और उसके प्रधान-प्रधान सेवक लोग वास करते हैं, वे साक्षात् भगवान् वासुदेवकी धर्ममयी हय ग्रीवजीकी परमप्रिय मूर्तिको उत्तम समाधिसे अपने-अपने हृदयमें धारण करके वक्ष्यमाण मन्त्रका जप करनेके समय यह स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ "ओं नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः ॥" भद्रश्रवा बोले कि—उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान्, आत्माके शुद्ध करनेवाले धर्मस्वरूप आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥ अहो श्रीभगवान्की गति

भा॰ पं॰
॥९८॥

अतिविचित्र है, कि लोग प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे देखते हैं, कि दिन रात प्राणी कालके मुखमें चले जाते हैं, तो भी प्राण हरण करनेवाली मृत्युकी चिंता नहीं करते बरन् और अधिक असत् कर्मोंके सेवन करनेका ध्यान करते हैं और जब बालक सन्तान व वृद्ध पिताके मर जानेसे उनकी दाह क्रिया करके जानते भी हैं कि कालकी यह करालगति है तो भी अपने आपको अजर अमर समझकर उस धनको सम्मान भावसे ग्रहण करके उससे अपना जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं, सो यह भी नहीं कि उस धनसे धर्मको संचय करें, बरन् किंचित् विषयसुखके भोगनेकी लालसासे केवल पाप—कर्मका ही विचार किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! हम ऐसा नहीं कह सकते, कि विद्वान लोग इस विश्वकी आलोचना नहीं करते। हम प्रकट ही देखते हैं कि पंडित लोग इस संसारको नाशवान् कहते हैं और आत्मतत्त्वके जाननेवाले योगीजन समाधि लगानेके समय जिसको नाशवान् होना प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं तो भी हे अज ! वे लोग तुम्हारी मायासे

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथाऽपि मुह्यन्ति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥ वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथे हिताय इति ॥ ६ ॥

मोहित हो जाते हैं, आपकी यह चेष्टा भी साधारण चमत्कारक नहीं है, यह कृत्य भी आपका अत्यन्त विस्मय करनेवाला है, इससे अब हम शास्त्रादिक जाननेके लिये वृथा परिश्रम नहीं करेंगे, सब परिश्रमोंको त्यागकर केवल आपके चरणारविन्दोंको ही प्रणाम करते रहेंगे ॥४॥ हे प्रभो ! तुम निवारण और अकर्ता होनेपर भी वेदने इस विश्वका सृजन, पालन, प्रलयकर्ता आपको ही बनाया है, यही ठीक है, तुममें कुछ भी असंभव नहीं है, क्योंकि तुम मायासे सबके आत्मस्वरूप और कार्यमात्रके पालक हो, इसलिये आपकी ही सब करतूत है और आप सबसे भिन्नरूप हो, इसीसे तुम्हारा अकर्तृत्त्व भी ठीक हो सकता है ॥ ५ ॥ हे जनार्दन ! उन चारों वेदोंका तामसी शंखासुरने तिरस्कार किया तो विक्षिप्त हो प्रलयकालके समय जलमें डूब गये थे, तब युगांतके समय आपने हयग्रीव शरीर धारण करके

भा॰ पं॰
॥६०॥

पातालसे सब वेदोंका उद्धार किया और ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर आपने चारों वेद उनको प्रदान कर दिये तुम वही भगवान् सत्य संकल्प जगत्के हितकारी हो, इस लिये आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥६॥ हे राजन् ! हरिखण्डमें विष्णु भगवान् नरसिंह-रूप धरकर विराजते हैं, हे भरतवंशावतंस ! भगवान्‌ने जो यह अद्भुत स्वरूप धारण किया इसका कारण सप्तमस्कंधमें कहेंगे। प्रिय-रूप महापुरुष, गुणभाजन परम भागवत प्रह्लाद जिनके शील और आचार दैत्य और दानवकुलके लिये तीर्थके समान हैं वह प्रह्लाद इस खंडमें रहनेवाले पुरुषों समेत एकाग्रचित्त हो अत्यन्त भक्ति योगसे उस अद्भुत स्वरूपकी उपासना करके इस अधोलिखित मन्त्रका उच्चारण किया करते हैं ॥ ७ ॥ "ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे, आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस

हरिवर्षे चापि भगवान् नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये ॥ तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥७॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे ॥ आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम् ॥८॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥९॥ माऽगारदारात्मज वित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

ग्रस ओं स्वाहा अभयअभयमात्मनि भूयिष्ठा ओं क्ष्रौं ॥" अर्थ-ओंकार सहित भगवान् नरसिंहको वारंवार नमस्कार करता हूं, आप सब तेजोंके तेज स्वरूप होकर प्रकट हो और वज्र समान नखोंसे तथा वज्र समान डाढ़ोंसे कर्मरूप वासनाओंको रांधो रांधो अर्थात् भस्म करो, भस्म करो, अज्ञानरूप अंधकारको ग्रसो, ग्रसो अर्थात् नाश करो, नाश करो। हे भगवन् ! आत्मामें अभयरूप हो अभयरूप हो। "ओं क्ष्रौं" यह बीजमंत्र है॥ ८ ॥ हे विश्वरूप ! जिससे सब संसारका मंगल हो। खललोग अपनी क्रूरता छोड़ दें, सब प्राणिमात्र अपने-अपने अंतःकरणमें परस्पर दूसरेके कल्याणकी चिंता करते रहें और उनका मन उपशम आदिका आश्रय करे, हमारी और दूसरे प्राणियोंकी बुद्धि निष्काम होकर भगवान् वासुदेवमें लगी रहे ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! हमारा किसीका संग न हो, और कदाचित् हो भी तो भगवान्‌के भक्तोंका साथ

हो, क्योंकि वे ही भक्ति और मुक्तिका मार्ग दिखाते हैं और घर, स्त्री, पुत्र, धन और बंधुजनोंसे हमारा संग किसी प्रकार न हो, क्योंकि भोजन मात्रसे संतुष्ट होनेवाला जो प्राणी है, वह जैसा शीघ्र सिद्ध हो जाता है, वैसे इन्द्रियोंको प्रसन्न रखनेवाला, गृहमें आसक्त चित्त होनेवाला मनुष्य किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥१०॥ भगवद्भक्तोंके सत्संगसे पुरुष भगवान् मुकुन्दके विक्रमको जान जाता है। उस विक्रमके असाधारण प्रभावको श्रवण करके जो पुरुष उनकी सेवा करते हैं, विष्णुभगवान् श्रवण द्वारा उनके हृदयमें प्रवेश करके उनके मनके मल हर लेते हैं और गङ्गा-यमुना तीर्थादिकमें वारंवार स्नान करनेसे केवल मनुष्योंके तनका ही मल छूटता है, मनका मल वैसा ही बना रहता है, इस लिये भगवद्भक्तोंकी संगति करनेकी किसकी इच्छा न होगी ? और श्रीमुकुंदके चरित्रको कौन नहीं सुनेगा; भगवान्की ओर जिनकी निष्काम प्रीति होती है उनका मन आप ही शुद्ध हो जाता है, एवं मन शुद्ध होनेसे प्राणी आप ही हरिभक्त हो जाता है, फिर पीछे उन-

यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हि साक्षाद् भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥ १३ ॥

पर भगवान् वासुदेव भी प्रसन्न हो जाते हैं और भगवान्के प्रसन्न हो जानेसे सब देवता धर्मज्ञानादि सहित उस पुरुषके हृदयमें नित्यप्रति वास करते हैं, परन्तु जो पुरुष गृहादिके अनुरागी हैं और हरिभक्ति रहित हैं, फिर भला उनमें उत्तम गुण, ज्ञान वैराग्यादिकोंके होनेकी संभावना कहां वह सदा केवल विषयके सुखोंको देख मनोरथ बांधकर दौड़ता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जैसे जल मछलियोंकी आत्मा है और विना जल मछलियाँ कभी नहीं जी सकती, क्योंकि उनका जल ही जीवन प्राण है, ऐसे ही भगवान् वासुदेव सब शरीरधारियोंकी आत्मा हैं, इस लिये जो पुरुष महत् प्रसिद्ध है वह यदि हरिको त्यागकर गृहमें आसक्त हो जायँ तो जैसे शूद्रादिजाति स्त्री-पुरुषोंको केवल आयुसे बड़प्पन प्रसिद्ध है वह उसी बड़प्पनको धारण कर सकते हैं, ज्ञानादिकोंसे पूजनीय स्त्री-पुरुषके मध्यमें पुरुषका जो अधिक महत्त्व है, वैसा महत्त्व

उसमें कभी नहीं हो सकता॥१३॥इस लिये इस गृहका परित्याग करके निज नृसिंहजीके चरणोंमें रह कर निर्भय हो जाइये। तृष्णा,राग,विषाद, मृत्यु, मान–चाह, भय दीनता और मनकी पीड़ाका मूल संसार है, वह सबको डुबानेवाला है और जन्म-मरणका कारण है ॥१४॥ केतुमाल खण्डमें भगवान् नारायण कामदेवरूपसे विराजमान रहते हैं और सदा उनकी यही वासना रहती है, कि लक्ष्मीजी प्रसन्न रहें तथा संवत्सर और उनकी कन्या, रात्रिके अभिमानी देवता और उनके पुत्र दिनके अभिमानी देवतागण जो कि इस खण्डके पति हैं, वे प्रजापतिके पुत्र हैं, सौ वर्षके जितने दिन रात्रि होते हैं उतनी ही इन प्रजापतिके पुत्रोंकी संख्या है, अर्थात्–३६००० सहस्र हैं, इनपर भी वे

तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभय-मिति ॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षप-तीनां पुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥ १५ ॥ अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तम्भितसुन्दर-भ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधि-योगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते ॥ इदं चोदाहरति ॥ १७ ॥

परमहित करते हैं। हे भरतवंशावतंस! संवत्सरोंके विशेष हित करनेका हेतु यह है, कि महापुरुष भगवान्‌के चक्र के तेजकी तापसे उन कन्याओंके अंतःकरण अतिशय निर्बल और कंपायमान हो जाते हैं और उनके गर्भ, वर्षके अन्तमें पतित होकर प्राणरहित हो जाते हैं इस लिये उस खण्डमें पुरुषोंकी संख्या अधिक नहीं होने पाती ॥१५॥ और भगवान् कामदेवके रूपमें ललित गति विलास और मंद मुस-कान सहित अवलोकनकी लीला प्रकट करते और अपनी भ्रुकुटियोंको कुछ-कुछ ऊंचा करते-करते मुखारविन्दकी शोभासे रमाको रमण कराकर अपनी इंद्रियोंको तृप्त करते हैं ॥१६॥ वह रमा देवीजी भी संवत्सरके रात्रि समय उनकी कन्याओंके अर्थात् इन रात्रिकी अधिष्ठाता

देवियोंके साथ और दिनमें इन कन्याओंके स्वामी अर्थात् दिनके अधिष्ठाता देवताओंके साथ मिलकर भगवान्‌के इस मायामय रूपकी उपासना कर सदा इस मंत्रका जाप किया करती हैं ॥ १७ ॥ "ॐ, ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने, आकूत्तीनां चित्तीनां चेतसा विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोंमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥" अर्थ–इंद्रियोंके अधिपति उन भगवान् हृषीकेशको हम नमस्कार करते हैं। जिनका स्वरूप सर्व श्रेष्ठ वस्तुओंसे जाना जाता है। जो ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेंद्रिय, (संकल्प व अध्यवसायादि) और उनके सब विषयो के अधिपति हैं, ग्यारह इन्द्रियें और पांच विषय यह सोलह पदार्थ उनके अंश हैं, वह वेदमय हैं, अर्थात् वेदोक्त कर्मद्वारा वे होते हैं, दूसरे उनका देह

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मन आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥१९॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधिमन्यते परम् ॥ २० ॥

अन्नसे बढ़नेवाला है, इस कारणसे अन्नमय है, परमानन्द प्रकाशमय तथा अमृतमय हैं। सबके विषय हैं, इस कारण सर्वमय हैं और सामर्थ्य और बल इन सबके कारण हैं, इन सबके सहित होनेसे सह स्वरूप हैं और कान्ति और काम उनकी मूर्ति है, सो हम उनको नमस्कार करते हैं, वे हमारे लिये दोनों लोकोंमें (इस लोक और परलोकमें) अनकूल हों ॥ १८ ॥ फिर वे स्तुति करके कहते हैं कि हे प्रभो ! आप स्वयमेव ही सब इन्द्रियोंके पति हैं, जो स्त्रियां अनेक प्रकारसे तुम्हारी आराधना करके तुम्हारे सिवाय और पतिकी इच्छा करती हैं, वे उनके पतिगण उनकी प्रिय सन्तान, सन्तति, अथवा धन व आयुकी रक्षा कर सकते, क्योंकि वे तो आप ही परवश रहते हैं ॥ १९ ॥ इस कारणसे वे सब पतिहीनही हैं, क्योंकि पति तो ऐसा होना चाहिये, जो कि स्वयं निर्भय और भयातुरकी

सब भांति रक्षा कर सकता हो वही पति है, हे प्रभो ! इसी कारणसे एक आपही सबके पति हैं आपके सिवाय और दूसरा पति नहीं हो सकता । आत्मलाभके अतिरिक्त और किसी वस्तुको अधिक नहीं समझते, इसलिये आपका सुख किसीके भी आधीन नहीं है, हे प्रभो ! हम जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य ही है, नहीं तो यदि आपकी पराधीनता और नानारूपकी स्वीकारता स्वीकार की जाय तो मंडलेश्वरोंके समान आपको भी परस्परसे भयकी सम्भावना हो सकती है ॥२०॥ हे भगवन् ! जो स्त्री केवल आपके चरणकमलोंकी ही पूजा करनेकी कामना करती है और दूसरी वस्तुकी इच्छा नहीं करती, वह अति चतुर है, क्योंकि उसको सब कामनायें प्राप्त हो जाती हैं परन्तु जो कोई अबला किसी एक फलकी कामना करके आपकी पूजा करती है उससे अधिक बेसमझ और कोई नहीं, क्योंकि तुम उसको उसका केवल

य तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साऽखिलकामलम्पटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्य ते ॥ २१ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विदन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥ स त्वं ममाप्यच्युतशीर्ष्णि वन्दितंकराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः ॥ २३ ॥

मनोवांछित ही फलदान करते हो, उससे अधिक नहीं देते, फिर जब भोगनेसे वह फल नष्ट हो जाता है, तब पीछेसे उस स्त्रीको अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ हे अजित ! मैं लक्ष्मी हूँ, इससे सुख सम्पत्तिकी कामना करके कभी-कभी सत्य ही ब्रह्म, शिव और दूसरे सुर, असुरगण भी मुझको प्राप्त करनेके लिये उग्र तप किया करते हैं परंतु आपके चरणारविंदोंकी शरण ग्रहण किये विना वे लोग मेरे विलसित ऐश्वर्यको प्राप्त नहीं हो सकते, इसका कारण यह है कि मेरा चित्त आपमें ही लगा हुआ है और इसीसे मैं आपके आधीनमें हूँ, सो जो पुरुष आपका ध्यान करते हैं, मैं उनकी ही ओर अवलोकन करती हूँ ॥ २२ ॥ इस कारण हे प्रभो ! आप वही पुरुष हैं कि जिनकी सेवा

१. शंका—लक्ष्मीजीने भगवान्से पूछा कि, हे भगवन् ! जो मनुष्य त्रिलोकीमें आपका पूजन, सेवन, भजन नहीं करते, वे मनुष्य मुझको कभी भी प्राप्त नहीं होते, ऐसे वाक्य लक्ष्मीजीने क्यों कहे ? क्योंकि दुष्ट जीव जैसे कि दैत्य, दानव, अत्याचारी मनुष्य, यह सब चारों युगोंमें विष्णु भगवान्को नहीं जानते कि विष्णु भगवान् क्या वस्तु हैं और सेवन, पूजनका तो कहाना ही क्या है ? परंतु उनके घरमें लक्ष्मी अचल होकर रहती हैं, इस बातसे तो लक्ष्मीका वाक्य झूठा जान पड़ता है ।

विना किये कोई कार्य ही सिद्ध नहीं हो सकता, आपके हस्तकमलसे सब कामनाओंकी वर्षा होती है और इसी लिये सदा साधु लोग जिनकी स्तुति किया करते हैं और जो कि आप अपने भक्तजनोंके मस्तकपर करकमल धरकर सब मनोरथ पूर्ण करते हैं अनुग्रह करके वही हस्तकमल मेरे मस्तकपर भी धरो। हे वरेण्य! मैं ऐसा नहीं कह सकती कि मेरे प्रति आपका आदर नहीं है, मैं प्रकट देखती हूँ आप छातीके ऊपर मुझको अपने श्री अङ्गमें धारण करते हैं, परंतु हे प्रभो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि मेरा तो केवल आप आदर ही करते हैं परंतु अपने भक्तोंपर आपका बड़ा अनुग्रह है, अथवा आप इश्वर हैं सो आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सके, ऐसा किसका

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितम् ॥ स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयति इदं चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः। इति ॥ २५ ॥

सामर्थ्य है? ॥ २३ ॥ हे राजन्! और दूसरे खंडोंका विवरण सुनो। रम्भकखण्डमें विष्णु भगवान् अपने मत्स्यरूपसे विराजते हैं, कि जो स्वरूप इस खण्डके अधिपति मनुजीको पहले दिखाया गया था, श्राद्धदेव मनुजी आजतक अत्यन्त भक्तिभाव और प्रेम रीतिसे भगवान्की उस मनोहर मूर्तिके पूजनमें नियुक्त हैं और यह मन्त्र निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं ॥ २४ ॥ यथा—मत्स्यमन्त्रः—"ओं नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायोजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः॥" अर्थ—हम महा मत्स्यरूपी भगवान्को नमस्कार करते हैं, जो

उत्तर-दैत्य, दानव, म्लेच्छादि और जो कोई दुष्ट मनुष्य भगवान्को नहीं जानते और लक्ष्मीका सुख भोगते हैं, वे पूर्व जन्ममें भगवान्के सेवक थे, मृत्युलोकमें आकर अपने-अपने कर्मसे हो गये हैं और भगवान्को भूल गये हैं, तपसे भ्रष्ट होकर दुष्टबुद्धि मनुष्य कोई सुन्दर योनिको प्राप्त होता है, कोई नीचयोनिको प्राप्त होता है, परंतु भगवान्के सेवनरूप तपस्याके द्वारा अचल लक्ष्मीका सुख भोगता रहता है। जबतक भगवान्की सेवाका पुण्य उनका बना रहता है, तबतक अचल लक्ष्मीका सुख भोगते जब सेवाका पुण्य नष्ट हो जाता है और इस जन्ममें भगवान्का पूजन नहीं किये तो वे अन्तमें बहुत दुःख पाते हैं। इसलिये लक्ष्मीजीने भगवान्से कहा था कि जो मनुष्य आपका सेवन नहीं करते वे मुझको कभी नहीं प्राप्त होते।

सत्त्वगुण प्रधान और सर्व मुख्य प्राणरूप और साहस, बल व सामर्थ्य इत्यादिके स्वरूप हैं॥२५॥ और स्तुति करके कहते हैं कि हे प्रभो! आप सब भूतोंके भीतर-बाहरसे घूमते रहते हैं और इतने पर भी लोकपालगण तुम्हारे रूपको नहीं देख सकते और शेषजी भी आपकी महिमाको नहीं कह सकते, परंतु आपका वेदरूप नाद अति बड़ा है, वह सत्य है, हे भगवन्! लोग जिस प्रकार काठकी पुतलीको वश कर लेते हैं, वैसे ही जिन्होंने विधिनिषेधरूपवचनोंसे सब जगत्को अपने वशमें कर रक्खा है, आप वही ईश्वर हैं॥२६॥हे ईश! इन्द्रादि लोकपालगण आत्मस्वरूप ज्वरमें ग्रसे रहनेके कारण आपको छोड़ करके अलगरूपसे दोपाये-चौपाये, अथवा स्थावर जंगम जो-जो इस जगत्में दृष्टि आते हैं, उनमेंसे किसी वस्तुके भी पालन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये आप ही प्राणरूपसे सबके पालक और परम ईश्वर

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥ भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः इति ॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपि भगवान् निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति ॥ मन्त्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥

हैं॥२७॥हे भगवन्! यह पृथ्वीपर सब औषधि और लताओंके आश्रय है;इस कारणसे आप प्रलयकालकी बड़ी तरंगे उठते हुए सागरके जलमें डूबी हुई इस पृथ्वीको और हमको धारण करके रक्षा करनेके लिये आपने बड़ा उत्साह प्रकट किया था, वह हम आपको नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! आप ही सब जगत्के रहनेवाले प्राणियोंके नियन्ता हैं, आपको नमस्कार है॥ २८ ॥ हे राजन्! हिरण्यमय खंडमें भगवान् नारायण कूर्म शरीर धारण करके विराजते हैं, वहां पर रहनेवाले पुरुषोंके साथ पितृगणोंके अधिपति अर्यमा निरंतर उनकी उपासना करते रहते हैं और क्षण-क्षण इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥२९॥ यथा—"ओं नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षि

तस्थानाय नमो वर्ष्मणे भूम्ने नमोनमोऽवस्थानाय नमस्ते॥" अर्थ–हम कूर्म भगवान्को नमस्कार करते हैं,हे प्रभो ! समस्तसत्त्वगुण आपका विशेषण है, ऐसे आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! जलमें रहनेके हेतु आपका स्थान कोई देख नहीं सकता है, ऐसे आपको नमस्कार है। हे देव ! आप अतिशय बर्ष्माण हैं अर्थात् कालसे आपका अवच्छेद नहीं होता, आपको नमस्कार है। हे प्रभो! आप सर्वगत और सबके आधार हैं, आपको नमस्कार है ॥३०॥ हे भगवन् ! आपने अपनी मायासे जो यह आकृति प्रकाश की है, सो दृश्य पृथ्वी आदिसे लेकर सब पदार्थ इसी रूपमें हैं, इसी कारण आपसे अलग कुछ भी नहीं है। हे भगवन् ! आपका यह रूप अनेक रूपोंसे निरूपण किया जाता है परंतु यह मिथ्या है, तो भी दिखानेके कारण मृगतृष्णाके जलके समान इसकी संख्या नहीं की जा सकती है, इसलिये हम आपको नमस्कार

यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूषितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात् तस्मै नमस्ते व्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥ जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते। इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते ॥ तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति ॥ इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥ ३४ ॥

करते हैं, हे प्रभो! आपके आकार–विशेषको कोई नहीं बतला सकता॥३१॥हे भगवन् ! जरायुज (मनुष्य गवादि),अंडज(पक्षी इत्यादि),स्वेदज (जूं इत्यादि), उद्भिज्ज (लतावृक्षादि), अर्थात् स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितृ, भूत, इंद्रिय, स्वर्ग; आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, गृह और नक्षत्र यह सब आपके ही नाम हैं आप एक ही हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आपके नाम, रूप और आकृतियोंके बहुत असंख्य भेद हैं, जिनकी संख्या नहीं की जाती, तथापि कपिलादि विद्वानोंने उनकी चौबीस संख्या कल्पना की है, वही संख्या जो तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है, आप ही उस तत्त्वज्ञानके नमूने हैं, अर्थात् परमार्थ ध्यानरूपी आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! उत्तर

कुरुखण्डमें भगवान् यज्ञपुरुष वाराहरूप प्रकाश करके विराजते हैं, वहांपर यह पृथ्वी देवी कुरुगणसहित अविचल भक्ति प्रकट करके उनकी सेवा करती है और इन परम सिद्धान्त उपनिषद्के वाक्योंका उच्चारण करती है॥३४॥यथा ("ओं नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिंगाय यज्ञकतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषायनमःकर्म्मशुक्लाय त्रिथुगाय नमस्ते) अर्थः-हम भगवान्को नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! आप मंत्रसे जाने जाते हैं। अयूप-यज्ञ और सयूप-क्रतु इत्यादि जो कुछ दिखलायी देता है, वह सब आपका ही स्वरूप है। हे प्रभो ! आप कर्मोंसे शुद्ध अर्थात् यज्ञानुष्ठान करनेवाले और तीन युगके स्वरूप हैं। आपको हमारा वारंवार प्रणाम है ॥ ३५ ॥ अहो ! काष्ठके भीतर जिस प्रकार अग्नि गुप्त रहती है, उसी प्रकार अग्निके समान जिसका स्वरूप देह और इंद्रिय आदि पदार्थोंमें गूँथा हुआ है। निपुण विद्वान् लोग विवेकके

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विवजातवेदसम् ॥ मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयाऽङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥ करोतिविश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितैर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥

साधन मन और कर्म व उसके फलसे जिनके दर्शन करनेकी वासनासे सदा खोजते फिरते हैं और उसी ढूंढभालसे जिसकी आत्मा प्रगट होती है, उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ जो कि मायाकार्यके विषय इंद्रियादि व्यापार, देवता, देह, काल और अहंकार इन सब उपलक्षणोंसे जिनका यथार्थरूप देखनेमें आता है और यम नियमादिकोंसे जो साधु लोग निश्चयात्मक बुद्धियुक्त हैं उनके निकट जिसकी मायासे बनी हुई आकृति दूर हो जाती है, उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार चुंबकके निकट रहनेसे लोहा स्वयमेव उसके चारों ओर फिरा करता है, वैसे ही माया द्रष्टा (परमेश्वर) के दर्शनके हेतु जीवके निमित्त वांछा न होनेपर भी जीवकी

वांछित इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है, सो उस गुण कर्म और जीवोंके साक्षिस्वरूप भगवान्‌को हमारा प्रणाम है ॥३८॥ और जगत्‌के कारणरूप वाराह स्वरूप धारण करके रसातलसे मुझ पृथ्वीको डाढ़केअग्रभागपर धारण करके हाथीकेसमान प्रलय समुद्रमेंसे निकले थे और फिर दूसरे हाथीके समान दैत्य हिरण्याक्षको संग्राममें क्रीडा करते-करते मारकर बाहर निकल आये; उन सर्वव्यापक परमात्माको वारंवार हमारा प्रणाम है * ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रम्यकोत्तरखण्डे सेव्यसेवकभुवनकोषवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा—हरि अनुचर द्वैखण्डके, कह उनीसाध्याय । बहुरो भारतवर्षकी, कहौं अधिकता

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥३९॥ इति श्रीभाग० म० पञ्चम० भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामंश्रीरामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परम भागवतो हनुमान् सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥

गाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि किंपुरुषखंडमें विष्णुभगवान् आदिपुरुष जानकीवल्लभ लक्ष्मणजीके भ्राता श्रीरामचन्द्र महाराजके चरणारविन्दको हृदयमें धारण कर उनके संमुख हाथ जोड़े हुए भक्त-अनुरागी परमभागवत महावीर हनुमानजी किंपुरुषखंडके निवासियोंके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं ॥१॥ और गन्धर्वगण जो कि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका जो मंगलमय चरित्र है, चौपाई-"वालमीकिकृत श्रीरामायण, परम प्रेमसों राम परायण ॥ मारुत सुत ढिग नित सो गावत । वीण मृदंग सप्रेम बजा-

* भजन—प्रभुकी महिमा अपरम्पार । पढ़त विरंचि वेद नित चारों, तऊ न पावत पार ॥१॥ शेष महेश गणेश शारदा, निशि दिन करत विचार । हार मान चुप रटत फिर, उरमें धीरज धार ॥ २ ॥ वाल्मीकि नारद वशिष्ठ भृगु खोजत वारम्वार । नेति नेति कर कहत सकल मिल; धन्य धन्य करतार । बड़े बड़े सुर सिद्ध मुनि जन, तन मन धन सब वार । शालिग्राम लेत शरणागत, समस्त जगत आधार ॥ ४॥

वत ॥ रामकथा कलिकलुश-नशावन। आनँदनिधि भक्तन-मन-भावन" उसको हनुमान्‌जी आर्ष्टिषेणके साथ एकाग्रचित्तसे अपने अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुना करते हैं और इस मंत्रका निरंतर जप करते रहते हैं ❀ ॥ २ ॥ यथा—"ओं नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः। आर्य्यलक्षणशीलव्रताय नमः। उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुपाद निकर्षणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजायनमः ॥" अर्थ—उत्पति—पालन—प्रलय—कर्ता भगवान् उत्तमश्लोकके लिये नस्कार है। जितने कि श्रेष्ठानुश्रेष्ठ चिह्न और शीलव्रत हैं, वे सब उनमें विराजमान हैं, उनका चित्त सदा ही वशमें है, सब लोकोंका विषय उनको ज्ञात है, वह कसौटी पत्थरके समान सज्जनताकी प्रसिद्धिके निर्धार स्थान है, वह ब्रह्मण्यदेव महापुरुष और महाराज हैं, उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूं॥३॥मैं उन परमा-

ॐ नमो भगवत उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकर्षणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥ ३ ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥

त्मास्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरण हूं, जिनको वेदान्तके वचनोंसे एकरूप कहकर प्रसिद्ध करते हैं यह वही है, शुद्ध अनुभव ही उसका स्वरूप है। शांत स्वरूपके प्रकाश होनेसे उनके गुणोंकी सब जाग्रत आदि अवस्था नहीं है। वे दृश्य पदार्थोंसे पृथक्, नाम-रूपरहित और निरहंकार हैं। केवल शुद्ध चित्तसे उन परब्रह्मका रूप जाननेमें आता है। ऐसे परब्रह्म श्रीरामचन्द्र अवधेश रघुराजको मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ ४ ॥ उन सर्वव्यापी राजादशरथके पुत्र होकर मनुज समान अवतार धारण करनेका तात्पर्य यह है कि रावणादि राक्षसोंका वध करें, क्योंकि इस घोर राक्षसने "मनुष्यके अतिरिक्त और किसीसे न मरू" ऐसा वर पाया था। इस रामचन्द्र अवतार लेनेका केवल

* कवित्त—जाको शुद्ध हियो ताको अनुभव तुम्हारो होत; नाथ निज तेजहीसे माया गुण नाशी है। जगतके व्यापी निज जापीको अतापी करो, नामरूप आपके अनन्त दिव्य भासी हैं ॥ आपके समान नहीं अधिक कहांते होय, अहंकार क्षार होत प्याये मुदरासी हैं। कालत्रासनाशी तत्काल कर निहाल देत, राजै रघुराज जैसे अवध विलासी हैं ॥

इतना ही आश्रय न था, बरन् मनुष्योंकी शिक्षाके लिये भी था, कि स्त्रीके संगसे मैं ईश्वर हूँ, तो भी इतने क्लेश सहने पड़े और मनुष्यका तो कहना ही क्या है? अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले विश्वके आत्मा उनको जानकीजीके विरहका कैसा दुःख? ॥ ५ ॥ वह धैर्यवान् धीर पुरुषोंके आत्मा भक्तवत्सल परमप्रिय श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजी महाराज त्रिलोकीमें किसीपर भी आसक्त नहीं हैं, इसी लिये उनको धीर पुरुषोंकी आत्मा कहा और उनको स्त्रीमें मोह किसी प्रकार नहीं हो सकता और द्वारपर खड़े हुए लक्ष्मणजीका दुर्वासा ऋषिके आनेका संवाद देनेके लिये मंदिरमें प्रवेश करनेपर देव परामर्शसे उनको प्राणसे मार डालनेके लिये उपस्थित होकर भी वशिष्ठजीके वचनोंसे जो लक्ष्मणजीका त्याग किया था, सो यह युक्ति संगत नहीं हो सकती, परन्तु वह सब कुछ किया, निदान उसका वास्तविक तात्पर्य यही है कि सब संसारके लोगोंकी शिक्षाके लिये यह काम किये और वे तो आदिपुरुष अविनाशी कमलपत्रके समान सबसे

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥ सुरोऽसुरो वाऽप्यथ वा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति ॥८॥ भारतेऽपि वर्षे भगवान् नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमो परमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥

अलग हैं ॥ ६ ॥ उच्च कुलमें जन्म, सुन्दर स्वरूप, मनोहर वाणी, गम्भीर बुद्धि, उज्ज्वल जातिसे श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि वे केवल एकमात्र भक्तिके ही करनेसे संतुष्ट होते हैं, देखो, नीच कुलमें हमारा जन्म, न हममें कोई सुन्दरताई, न हममें कोई गुण, न कोई ऊंची जात और हमारी चंचलताई सब संसारमें प्रसिद्ध है—तो भी केवल भक्तिके वश होकर इन लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीने हमको अपना सखा बनाया, ॥ ७ ॥ इस लिये देवता व दानव अथवा नर-वानर कोई क्यों न हो? सबको चाहिये कि अनेक प्रकारसे यत्न करके उन मानवरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना अवश्य करें, क्योंकि वे बड़े कृतज्ञ हैं। थोड़े भजन करनेको भी अधिक मानते हैं, उनकी उपासना करनेसे महाफल मिलने की आशा है, वे सब अयोध्यावासियोंको अपने संग ले गये थे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते

हैं कि, हे राजन्! भरतखण्डमें भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रममें गुप्त रूपसे विराजते हैं, जिनकी गति जानी नहीं जाती। धीर लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दुष्कर तपस्या करते हैं, तपस्याके समय उनका धर्म, ज्ञान और वैराग्य इस प्रकारसे अधिकताको प्राप्त होता है और वह इस प्रकार जितेन्द्रिय और निरहंकार होकर रहते हैं कि उनसे ही आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाता है महात्मा देवर्षि नारदजीके पंचरात्र शास्त्रमें जो भगवान्के अनुभवका वर्णन है वही पंचरात्र भगवान्के कहे हुए सांख्ययोग सहित सावर्णि मनुको उपदेश करनेवाले हैं। इस कारण भारतवर्षकी वर्णाश्रम धर्मवाली प्रजागणोंके साथ परमभक्तिभावसे नारदजी इन भगवान् नर नारायणकी उपासना करते हैं और इस मन्त्रको जपते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ यथा–"ओं नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचन वित्ताय ऋषिऋषभाय भर

तं भगवान् नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति ॥ इदं चाभिगृणाति ॥१०॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभायनरनारायणाय परमहंसपरमगुरव आत्मारामाधिपतये नमोनम इति ॥११॥ गायति चेदम् कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृग् यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भोभगवान् जगाद यत् ॥ यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्यादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥

नारायण परमहंसपरमगुरुवे आत्मारामायाधिपतये नमो नमः ॥" नारदजी बोले कि हम ऋषि ऋषभभगवान् नर नारायणको नमस्कार करते हैं। वह शांतस्वभाव निरहंकार वैराग्यवान् पुरुषोंके परमधन, परमहंसोंके परमगुरु, ज्ञानी पुरुषोंके अधिपति उन नर नारायण भगवान्को बारंबार नमस्कार है ॥ ११ ॥ और फिर यह गान करते हैं कि जो इस विश्वके सृष्टयादिका कर्ता होकर भी "मैं कर्ता हूँ" ऐसा कहकर अपने मनमें अहंकार नहीं करते और शरीरमें रहकर भी शरीरके धर्म, भूँख-प्यास आदिसे पराभव नहीं पाते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्य पदार्थोंसे विकृत नहीं होती, उन भगवान्को हम नमस्कार करते हैं। वे किसीमें आसक्त नहीं हैं इससे उन शुद्ध चैतन्यस्वरूप और सबके साक्षी नारायणको हम नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥ फिर कहते हैं कि हे परमेश्वर! योगी पुरुष जन्म लेकर अन्त-

कालके समयतक भक्तियोगसे देहाभिमानको छोड़कर तुममें जो मन लगाते हैं यही उनके योगकी चतुराई है, भगवान् हिरण्यगर्भजीने उसको ही पुरुष योग कहा है ॥१३॥ परंतु इस लोक और परलोककी कामनाके विषयमें मूर्खलोग जिस प्रकार स्त्री, पुत्र और धनकी चिंता करते हुए मृत्युके निकटसे भय पाते हैं, वैसे ही जो पुरुष विद्वान् होकर भी पाते हैं तो उनका शास्त्र पढ़ा हुआ केवल परिश्रम मात्र है ॥१४॥ हे अधोक्षज ! जिससे कि विद्वान् पुरुषकी भी ऐसी अवस्था है, उससे आप हमको सहज वासनारूप उस योगका उपदेश कीजिये। जिस आपकी मायासे मुझमें 'मैं' मेरा यह ममता लगी हुई है जो किसी भांति त्याग न होनेसे उपाय द्वारा भी नहीं भेदी

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ॥ शङ्केतविद्वान् कुकलेवरात्ययाद् यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजम् ॥ इति ॥१५॥ भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये शतसहस्रशः शैलाः ॥ तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ १६ ॥ एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥ १७ ॥

जा सकती, सो यह छूट जाय ॥ १५ ॥ हे राजन् ! भारतवर्षमें भी बहुत नदियां और पर्वत हैं अर्थात् मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कूटल, कौल्लक, सह्य, देवागार, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्यमान, शक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूठ, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलाचल, गोमुख, इंद्रकील, कामगिरि व और भी सहस्रों पर्वत हैं और इनके तटसे उत्पन्न हुई नदियां व नद भी असंख्य हैं ॥ १६ ॥ उन नदियोंके नाममात्रके लेनेसे पुरुष पावन पवित्र हो जाते हैं, फिर भारत खण्डके वासी जो उन नदियोंके जलमें दिन-रात स्नान और क्रीडा करते हैं उन भारतवासियोंकी समता संसारमें आजदिन कौन कर सकता है ? ॥ १७ ॥

चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेर्णी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्ध, अन्ध, शोणभद्र, यह दोनों महागम्भीर नद हैं, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिमासा, शौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता असिक्नी और विश्वा यह बड़ी महानदी हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस वर्षमें जन्म प्राप्त करके पुरुषगण अपने-अपने

चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुः अन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृद्धा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वयः आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥ योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसंगः ॥ २० ॥

सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके द्वारा यथाक्रमसे अपनी दिव्य तथा मानुष और नारक गतिका विधान करता है, क्योंकि यहांपर सब पुरुषोंकी गति सब प्रकारसे कर्मानुसार ही होती है ! जिस भांतिसे मोक्ष प्रकार अर्थात् संन्यास वानप्रस्थादि कहा है, उसके उल्लंघन न करनेसे मोक्षकी प्राप्ति भी इसी वर्षमें होती है[1] ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मोक्ष जिस प्रकारसे होता है, वह श्रवण करो—जब विष्णुभक्त पुरुषोंका

---

१. शंका—मृत्युलोकमें जो छोटी नदियां हैं, जिनका नाम भी कोई नहीं जानता, उनका तो वर्णन व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें किया और उज्जैनके सम्मुख बहनेवाली क्षिप्रा नदी जिसका शास्त्रमें नाम विख्यात है, लोकमें और पुराणोंमें प्रजागण भी क्षिप्राको भलीभांति जानते हैं, ऐसी उत्तम क्षिप्रा नदीका भगवान् व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवत में वर्णन क्यों नहीं किया ?

उत्तर—एक दिन शिवरात्रिके समय बहुतसे मुनिजन शंकर महादेवके पूजन करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये । उसी दिन दैवयोगसे क्षिप्रा नदी भी जलसे परिपूर्ण हो रही थी । मुनिजन उतरने लगे तो क्षिप्राने मार्ग नहीं दिया,—

श्रेष्ठ सङ्ग होता है, तब भगवान् वासुदेव जो सब प्राणियोंके आत्म रागादि रहित, वाक्यके अगोचर, अनाधार और परमात्मास्वरूप हैं उनमें जो निष्काम भक्ति होती है वही मोक्षका स्वरूप है, क्योंकि शरीरकी अनेक प्रकारकी गति जो अविद्यारूपी ग्रंथि है, वह इस भक्तिसे टूट जाती है ॥ २० ॥ इस कारणसे भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म सब पुरुषार्थोंका साधन कहकर देवतालोग गान करते हैं । यथा–अहो ! इन मनुष्यगणोंने क्या कोई अनिर्वचनीय पुण्य कार्य किया था जिससे कि भगवान् हरि स्वयं विना साधन किये ही इनके ऊपर प्रसन्न हो गये हैं अथवा इस बातमें आश्चर्य ही क्या है ? इन सब पुरुषोंने भारत भूमिके मध्यमें मुकुन्द गोविंदकी सेवा करने योग्य जन्म पाया है । और हम तो भारतवर्षमें जन्म लेनेके लिये केवल लालसा ही लगाये रहते हैं ॥ २१ ॥ हाय ! हमारे यज्ञ दुष्कर तपस्या कठिन-कठिन व्रतानुष्ठान

एतदेव हि देवा गायन्ति ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥

और दानादिकोंसे क्या हुआ ? और यह जो तुच्छ स्वर्गकी प्राप्ति हुई है इससे ही क्या फल दीखता है ? यहां पर स्वच्छंदतापूर्वक भगवान् नारायणके चरणकमल का स्मरण नहीं होता, कदाचित् जो कुछ होता भी वह अधिक इंद्रियोंकी सेवा करनेसे नष्ट हो गया ॥ २२ ॥ हमने कल्पान्तपर्यन्त परमायु प्राप्त होकर जो इस स्थानको जीत लिया है वह इसके पीछे भी जन्म लेना पड़ेगा, इसलिये हमारे इस स्थान के जय करनेकी अपेक्षा मनुष्यगण अल्पायु होकर जो भारत भूमिको जीत लिये हैं, वह अच्छा है क्योंकि वे पुरुष मनुष्य देहसे अपना-अपना क्रिया-कर्म संन्यास लेकर भगवान् श्रीहरिके अभयपदको भली-भांति प्राप्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ जिस स्थानमें भगवान् हरिकी

—मुनिलोग पश्चिम दिशाके तटपर बैठे ही रह गये । जब शिवरात्रिको शिवका पूजन न हुआ, सब रात्रि मुनियोंको नदीके निकट बैठे ही बीत गयी । तब सबने मिलकर शाप दिया कि हे दुष्टा नदी ! भागवतमें जिसका वर्णन हुआ वह धन्य है परंतु तेरा आदर भागवत पुराणमें नहीं होगा । इसलिये मुनियोंसे शापित जानकर व्यासजीने श्रीमद्भागवत में क्षिप्राका वर्णन नहीं किया ।

कथामृतरूप नदी नहीं बहती, जहां हरिकथाश्रय भगवद्भक्त साधुगण नहीं हैं और जहांपर नृत्यादि उत्सव-युक्त हरिकी पूजा नहीं है, वह स्थान यदि ब्रह्मलोकके समान हो तो भी उसकी सेवा नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि जो पुरुष इस भारत भूमिमें ज्ञान और उसके अर्थ क्रिया व द्रव्यसमूहसे परिपूर्ण मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर भी इस मोक्षके लिये यत्न करे तो वह पक्षियोंके समान फिर बंधनमें बँध जाते हैं अर्थात् जालसे बँधे हुए व्याधके हाथसे छूटकर भी फिर जिस प्रकार असावधान होकर वृक्षपर विहार करते हुए बँध जाते हैं, वैसे ही यह सब पुरुष भारतभूमिमें मोक्षार्थ जन्म प्राप्त करके भी अपने कर्मके दोषसे फिर संसारी बन्धनमें बँध जाते हैं ॥२५॥ परन्तु भारतवासी मनुष्यगण अतिशय भाग्यवान् हैं, क्योंकि ये लोग श्रद्धाभक्ति सहित पुरोडाशादिभेदसे उन देवताओंके उद्देश्यसे जो हवि छोड़ते

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ नवै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥ २५ ॥ ये श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥ यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥ २८ ॥

हैं वह एक ही भगवान् इंद्रादि पृथक्-पृथक् नामोंसे आह्वान किये जाकर उस समस्तको ग्रहण करते हैं। यद्यपि ये सब कल्याणोंके प्रभु हैं और स्वयंही परिपूर्णस्वरूप हैं, तथापि उस हविको त्याग नहीं सकते ॥ २६ ॥ यद्यपि भगवान् याचना किये जानेपर याचक पुरुषोंका प्रार्थित विषय दे देते हैं, परन्तु तो भी उनको परमार्थ नहीं देते, क्योंकि इस प्रकार प्रार्थित विषय प्राप्त कर फिर भी उनको मांगनेकी सम्भावना है। परंतु जो कि निष्काम हैं, उनको किसी विषयमें प्रार्थना न करनेपर भी भगवान् उन लोगोंकी सब अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले अपने चरण पल्लव स्वयं दान करते हैं ॥२७॥ इसलिये हमने भलीभांतिसे जो यज्ञ किये हैं, वेदाध्ययन वा और कोई जो शुभ कर्म किये हैं जिससे कि यह स्वर्ग-सुखका भोग कर रहे हैं यदि उस पुण्यमेंसे कुछ बचा हो तो उससे भारतवर्षमें हमारा जन्म हो, जिससे कि

भगवान् हरि ही एक सेवा करने लायक हैं, यह स्मरण रहेगा, अधिक करके श्री भगवान् जो इस भारतवर्षमें भजनकारियोंका कल्याण विस्तार किया करते हैं और वहांके वासियोंको परम सुख देते हैं ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि जम्बू-द्वीपके आठ उपद्वीप हैं। सगर राजाके पुत्रोंने यज्ञीय घोड़के ढूँढ़नेके समय जब पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा था तब उन लोगोंने यह सब द्वीप बनाये थे ॥ ॥२९॥ इन सब द्वीपोंके नाम, यथा—स्वर्गप्रस्थ १, चन्द्रशुक्ल २, आवर्तन ३,रमणक ४, मंदहरिण ५, पाञ्चजन्य ६, सिंहल ७ और लङ्का ॥ ३० ॥ हे भारतवंशावतंस ! इस प्रकार जम्बूद्वीपके खण्डोंका विभाग यथायोग्य मैंने आपसे वर्णन

श्रीशुक उवाच ॥ जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥ तद् यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥ ३० ॥ एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा॰ म॰ पञ्चम॰ जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षण-संस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मजः इध्मजिह्वः एवं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥

किया ॥३१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां पंचमस्कन्धे जम्बूद्वीपे भरतखण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ दोहा—प्लक्ष आदि छै द्वीपकी, स्थित वीस अध्याय। बहुरो लोकालोककी कहौंकथा समझाय ॥ मुनिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! अब प्लक्षआदि छः द्वीपोंका प्रमाण लक्षण और आकारसे सब वर्षोंके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपके विस्तारका जितना परिमाण है उतना ही अर्थात् लाख योजनके विस्तारवाले लवणसागरसे वह घिरा हुआ है, इस कारण जिस प्रकार जम्बू नामक द्वीपसे सुमेरु पर्वत घिरा हुआ है ऐसा ही प्लक्षद्वीप भी लक्ष योजन विस्तारवाले लवणसागरसे घिरा हुआ। यह प्लक्षद्वीप पहले कहे हुए

जम्बूद्वीपसे दूना बड़ा है, इस द्वीपसे लवणसमुद्र घिरा हुआ है। अर्थात् जिस प्रकार बाहिरी भागके उपवनसे खाई घिरी रहती है, वैसे ही प्लक्षद्वीपसे लवणसमुद्र घिरा हुआ है, वहां पर एक बड़ा भारी प्लक्षका वृक्ष है, उसकी उँचाईका परिमाण पहले कहे हुए जम्बूवृक्षके समान है, अर्थात् लक्ष योजन ऊँचा है; इस प्लक्षवृक्षसे ही इस द्वीपका नाम "प्लक्षद्वीप" हुआ है, यह वृक्ष सुवर्णके समान रंगवाला है। इस द्वीपमें सात जीभवाला अग्नि रहता है, राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपतिने इस द्वीपको सात द्वीपमें विभाग करके

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूटो इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः ॥ अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः ॥ यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तंत्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥

आप समाधि लगाकर आत्मयोगसे अपने शरीरको त्याग दिया ॥ २ ॥ इध्मजिह्वके किये हुए इन सात वर्षोंके नाम, यथा-शिव १, यवस २, सुभद्र ३, शांत ४, क्षेम ५, अमृत ६, अभय ७, इन सात वर्षोंमें सात ही तो पर्वत अतिशय प्रसिद्ध हैं और सातही नदियां विख्यात हैं ॥ ३ ॥ उनमें सात प्रसिद्ध पर्वतोंके नाम यथा—मणिकूट १, वज्रकूट २, इन्द्रसोम ३, ज्योतिष्मान् ४, सुवर्ण ५, हिरण्यष्ठीव ६ और मेघमाला ७। और प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यह है—अरुण १, नृम्णा २, आंगिरसी ३, सावित्री ४, सुप्रभाता ५, ऋतम्भरा ६, सत्यम्भरा ७।

---

१. शंका—द्वीपान्तरोंमें आपसे कुशके वृक्षकी, सेंमलके तरुकी, पाकरके पेड़की, शिरीषके पादपकी, जामुनके रूखकी और कमलकी इस प्रकार लंबाई चौड़ाई सुनकर हम सब लोगोंके मनमें अत्यन्त शंका बढ़ती है, क्योंकि यह वृक्ष है, कि आश्चर्यका रूप है?

उत्तर—राजा प्रियव्रतके किये जो कर्म हैं, उन कर्मोंमें शंका कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जो आश्चर्य करने योग्य कर्म राजा प्रियव्रतने किये है, वह सब कर्म भगवान्ने किये है। राजा प्रियव्रतको एक निमित्तमात्र नियत कर रक्खा है, क्योंकि पञ्चमस्कंधके प्रथम अध्याय १ श्लोक ३९ में व्यासजीने कहा है कि राजा प्रियव्रत द्वारा किये जो कर्म हैं उन कर्मोंको करनेके लिये केवल ईश्वरका ही सामर्थ्य है, और दूसरे पुरुषका सामर्थ्य नहीं है; ऐसा व्यासजीके वाक्यसे जान पड़ता है कि जो आश्चर्यरूप काम राजा प्रियव्रतने किये, वह सब काम भगवान्ने किये हैं, इसलिये राजा प्रियव्रतके किये हुए कर्मोंमें शंका करनी नहीं चाहिये, क्योंकि भगवान् क्या नहीं कर सकते ?।

इन सब महानदियोंका जल स्पर्श करनेसे पुरुषोंका राजस तामस गुण नष्ट हो जाता है। यहांके स्थानीय हंस, पतंग, उर्द्धायन और सत्याङ्ग नामक चारों वर्ण सहस्र वर्षकी आयुवाले होते हैं, उनका दर्शन और स्वरूप देवताओंके समान होता है, इसलिये वे लोग वेद विद्यासे जो भगवान् वेदमय सूर्यान्तर्यामी आत्मस्वरूप हैं, उनकी वेदत्रयीसे उपासना किया करते हैं और इस मंत्रका जप किया करते हैं ॥४॥ मंत्रः—"प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि" इति हे राजन्! उस समय जो मंत्र पढ़ा जाता है, उसको अर्थ सहित कहता हूँ वह तुम सुनो, यथा—पुराण पुरुष भगवान् विष्णुजीके मूर्तिस्वरूप उन सूर्य नारायणकी हम शरण ग्रहण करते हैं, वे अनुष्ठीयमान धर्म, प्रतीयमान धर्म, ब्रह्म बोधक देव और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं॥ ५ ॥ हे भारतश्रेष्ठ! प्लक्ष प्रभृति पांच द्वीपोंमें पुरुषोंकी

प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धि रविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥ प्लक्षः स्वमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेनसुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७ ॥ यत्र ह वै शाल्मलीप्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दस्तुतः पतत्रिराजस्य ॥ सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधितिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यस्सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत् ॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥

आयु, इंद्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, विक्रम, बुद्धि और स्वभावकी सिद्धि सबमें समान भावसे वर्त्तमान रहती है॥६॥ प्लक्षरूप अपने समान परिमाणवाले ईखरसके समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ वैसे ही शाल्मलि द्वीप जो प्लक्ष द्वीपसे दुगुना बड़ा है वह भी अपने समान परिमाणवाले मदिराके समुद्रसे घिरा हुआ है॥७॥ हे राजन्! इस द्वीपमें भी प्लक्षवृक्षके तुल्य विस्तारवाला बड़ाभारी शाल्मलीका पेड़ है, लोक जिसको भगवान् वेद करके स्तुत पक्षियोंके राजा श्रीगरुड़जीका स्थान बतलाते हैं, उसको शाल्मलिद्वीप कहते हैं। शाल्मलिका वृक्ष होनेके कारण इस द्वीपका नाम शाल्मली हुआ ॥ ८॥ शाल्मलिद्वीपके अधिपति राजा प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहुने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके मध्यमें

जिनके नाम सात वर्षोंके ऊपर ही थे, बांट दिये, उन सात खण्डोंके नाम, यथा-सुरोचना १, सौमनस्य २, रमणक ३, देववर्ष ४, पारिभद्र ५, आप्यायन ६ और अविज्ञात ७ हैं ॥९॥ इन सात खंडोंमें सात नदियाँ और सात पर्वत प्रसिद्ध हैं। सात पर्वतोंके नाम, यथा-स्वरस १, शातशृंग २, वासुदेव ३, कुंद ४, मुकुंद ५, पुष्पवर्ष ६ और सहस्रश्रुति ७ हैं। सात नदियोंके नाम, यथा-अनुमती १, सिनीवाली २, सरस्वती ३, कुहू ४, रजनी ५, नन्दा ६ और राका ७ हैं॥१०॥हे राजन्! इन सब खण्डोंमें रहनेवाले पुरुषोंके श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर, और इषंधर इत्यादि चार वर्ण हैं, वे लोग वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रदेवको भजते हैं अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्ल पक्षमें यथाक्रमसे

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥ १० ॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं देवमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥ ११ ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न अस्त्विति ॥ १२ ॥ एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणस्वमानेनावृतो घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति॥१३॥तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजा हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत ॥ १४ ॥

पितृ और देवताओंके अन्तका विभाग करते हुये अन्न देनेवाले चन्द्रमा सब प्रजाके राजा हैं ॥११॥१२॥ हे राजन्! सुरोद सागरके बाहिरी भागमें कुशलद्वीप है, वह ऊपर वर्णन किये हुए प्लक्षद्वीपके परिमाणसे दूना है और पूर्वोक्त द्वीपकी नाई समान परिमाणवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें देवताओंका बनाया हुआ एक कुशका स्तम्भ है, इससे ही उसका नाम "कुशद्वीप" हुआ है। यह कुशस्तम्भ ऐसा विदित होता है मानो साक्षात् दूसरा अग्नि है, अपनी कोमल शिखाकी दीप्तिसे समस्त दिशाओंको सदा ही प्रकाशमान करता रहता है ॥१३॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं, कि हे परीक्षित्! एक कुशद्वीपका अधिष्ठाता प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता अपने खण्डके नामवाले सात

पुत्रोंको इस द्वीपके यथायोग्य विभाग करके आप तप करनेको चला गया। उसके सात पुत्र और सात खण्डोंके नाम यथा–वसु १, वसुदान २, दृढरुचि ३, इनाभिगुप्त ४, स्तुत्यव्रत ५, विविक्त ६, और वामदेव ७ ये सातोंके नाम हैं ॥ १४ ॥ इन सात पुत्रोंके सात खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं, इन सात पर्वतोंके नाम, यथा–चक्र १, चतुःशृङ्ग २, कपिल ३, चित्रकूट ४, देवानीक ५, ऊर्ध्वरोमा ६ और द्रविण ७। सात नदियोंके नाम, यथा– रसकुल्या १, मधुकुल्या २, मित्रविन्दा ३, श्रुतिविन्दा ४, देवगर्भा ५, घृतच्युता ६ और मन्त्रमाला ७ इन सब नदियोंका जल स्पर्शकर पवित्र हो कुशद्वीप–निवासी जन कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्ण हैं, वे अपने कर्मकौशलसे अग्निस्वरूप भगवान्‌की अर्चना करते हैं और यह मन्त्र उच्चारण करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ मन्त्रः–"परस्य

वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेव नामभ्यः ॥ तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुश्शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवनीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति ॥ १५ ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा वेदगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥ १६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥ तथा घृतोदाद् बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परितः उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥

ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्। देवानां पुरुषाङ्गां यज्ञेन पुरुषं यज॥" अर्थ–हे जातवेद ! तुम परब्रह्मका हव्य साक्षात् पहुँचा देते हो, इस कारण देवताओंके यज्ञद्वारा परम पुरुष भगवान्‌की अर्चना करते हुए उनके सब अंगोंके नामोंसे दिया हुआ हव्य अग्निमें समर्पण करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! ऊपर कहे हुए कुशद्वीपके बाहिरी भागमें क्रौञ्चद्वीप है। यह द्वीप कुशद्वीपसे परिमाणमें दूना है और जिस प्रकार कुशद्वीप घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार यह द्वीप "क्षीरसागरसे" घिरा हुआ है। इस द्वीपमें क्रौंच नामक एक श्रेष्ठ पर्वत है, इस कारण यह द्वीप "क्रौंचद्वीप" नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ १८ ॥ यद्यपि स्वामिकार्तिकजीने अपनी शक्तिसे इस पर्वतके किनारे और

कुंज तोड़ दिये थे, तथापि यह पर्वत चारों ओरवाले क्षीरसागर जलसे सींचे जाने और जलके देवता वरुणजीसे करके रक्षित होनेसे निर्भय हो गया ॥ १९ ॥ इस "क्रौंचद्वीप" का अधिष्ठाता प्रियव्रत राजाका घृतपृष्ठ नामक पुत्र हुआ, उसने अपने द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात खंडोंमें विभाग करके अपने सब खण्डोंमें अपने पुत्रोंको अधिपति रूपसे स्थापित करके आप आत्मज्ञानी बन जिन भगवान् हरिका परम कल्याण स्वरूप है और जो सबके आत्मा हैं उन वासुदेवके चरणारविन्दका आश्रय ले लिया ॥ २०॥ हे राजन् ! घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके नाम, यथा–आम १, मधुरुह २, मेघपृष्ठ ३, सुधामा ४, भ्राजिष्ठ ५, लोहितार्ण ६ और वनस्पति ७। इन सात खण्डोंमें सात पर्वत और सातही महानदियाँ अतिशय प्रसिद्ध हैं। शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबहण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र, ये सात पर्वत ह ॥२१॥

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान् निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥ २० ॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुताः ॥ तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्य श्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हणो नन्दोनन्दनः सर्वभद्र इति ॥ २१ ॥ अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥ यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥ २२ ॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवस्स्वः ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः । इति ॥ २३ ॥

उन सात महानदियोंके नाम, यथा–अभया १, अमृतौघा २, आर्यका ३, तीर्थवती ४, वृत्तिरूपवती ५, पवित्रवती ६ और शुक्ला ७ इन सब नदियोंका जल अति पवित्र और निर्मल है, इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुषगण इस जलको पीते हैं और "पुरुष ऋषभ, द्रविण, देवक" इत्यादि इस खण्डके रहनेवाले चारों वर्ण जल–अंजलिसे जलमय वरुण भगवान्की पूजा किया करते हैं और सदा यह मंत्र पढ़ा करते हैं ॥ २२ ॥ मन्त्रः–आपः पुरुषवीर्य्याःस्थःपुनन्तीर्भूर्भुवस्स्वः । ता नः पुनीनामीवघ्नीःस्पृशतामात्मना भुवः अर्थ–हे आपः आप लोगोंने ईश्वरसे सामर्थ्य पाया है, इसीसे भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकरूप त्रिलोकीको तुम पवित्र करते हो, हम आपको स्पर्श करते हैं आप हमारे शरीरको

पवित्र करो। आप अपने ही रूपसे पापका नाश करनेवाले हो, इसलिये सरलतासे हमको पवित्र करो ॥२३॥ हे राजन्! इस द्वीपसे आगे शाकद्वीप है, उसका विस्तार बत्तीस ३२०००००० लक्ष योजनका है। यह द्वीप भी अपने समान परिमाणवाले दधिसागरसे चारों ओर सब प्रकारसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें शाक नाम एक बड़ा भारी वृक्ष है; इस वृक्षके पत्ते भीतरसे कड़े स्पर्शवाले और बाहरसे कोमल स्पर्शवाले हैं, इस वृक्षसे ही इस द्वीपका नाम "शाकद्वीप" हुआ है, इस वृक्षकी अतुल सुगंधि है, जिससे कि यह द्वीप सर्वदा सुगंधित रहता है ॥२४॥ इस द्वीपके अधिष्ठाता भी राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि नाम राजा हुए। यह मेधातिथि इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामसे सात

एवं परस्तात् क्षीरोदात् परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः यस्मिन् शाको नाम महीरुहःस्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥ २४ ॥ तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान् विधाय्या (प्या) धिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥ २५ ॥ एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ॥ ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति ॥ २६ ॥ अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रश्रुतिर्निजधृतिरिति ॥ २७ ॥ तद्वर्षे पुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥ २८ ॥

खण्डोंमें विभाग करके उन सब खण्डोंमें यथाक्रमसे पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वाधार इन नामवाले सात पुत्रोंको सातवर्णोंमें अधिपतिरूपसे स्थापन किया। पीछे आप भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तप करनेके लिये उसके तपोवनमें चले गये ॥२५॥ इन खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सात ही महानदियाँ अतिशय प्रसिद्ध हैं। उन सात सीमा पर्वतोंके नाम यथा-ईशान १, उरुशृंग २, बलभद्र ३, शतकेशर ४, सहस्रस्रोता ५, देवपाल ६, और महानस ७। प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यथा-- अनघा १, आयुर्दा २, उभयसृष्टि ३, अपराजिता ४, पंचपदी ५, सहस्रपदी ६ और निजधृति ७ हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन खण्डोंके रहनेवाले

पुरुष "ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत" इत्यादि वर्णधारी होकर प्राणायामसे राजस, तामसको दूर करते हुए परम समाधियोगसे वायुरूपी भगवान्‌की उपासना किया करते हैं। और यह मंत्र सर्वदा उच्चारण किया करते हैं ॥२८॥ मन्त्रः--अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः। अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥" अर्थ-जो प्राणादि वृत्तिद्वारा सब प्राणियोंके अंतरमें प्रविष्ट होकर उनका प्रतिपालन करते हैं वे सबके अन्तर्यामी साक्षात् ईश्वर हैं, सब जगत् जिनके अन्तरमें विराजमान है, वह भगवान् (वायु) हमारी रक्षा करें ॥२९॥ इसी प्रकार दधि-जल-सागरके आगे पुष्करद्वीप है, यह द्वीप शाकद्वीपसे विस्तारमें दुगुना अर्थात् ६४००००० चौसठ लक्ष योजन है। यह द्वीप चारों ओर अपने समान परिमाणवाले शुद्ध स्वादुजल समुद्रसे बाहिरी भागमें सब भांतिसे घिरा हुआ है,

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २९ ॥ एवमेव दधिमण्डोदात् परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितं तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥ तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥ ३१ ॥

इस द्वीपमें एक बड़ा भारी कमल है, वह अग्निकी शिखाके समान एक लक्ष निर्मल कनकमय पत्रोंसे सदा दीप्तिमान् रहता है। वही भगवान् भुवनेश्वर ब्रह्माजीका आसन कल्पित किया गया है ॥३०॥ इस द्वीपमें मानसोत्तरनामक एक पर्वत है। वह पूर्व और पश्चिम खण्डोंका सीमा पर्वत है, इसका विस्तार व उंचाई १०००० दश सहस्र योजन है इस द्वीपमें इंद्रादि लोकपालोंकी चार पुरी हैं। इन सब पुरियोंके ऊपरी भागमें सूर्यका रथ, जो कि सुमेरुपर्वतकी सदा चारों ओरसे परिक्रमा किया करता है। उसका चक्र देवताओंके अहोरात्र अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो अयनोंपर नियत कालमें भ्रमा करता है ॥३१॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रत-वंशीय वीतिहोत्र नामक

राजा हुए। उनके दो पुत्र रमणक और धातकी हुए। वीतिहोत्र राजा इस द्वीपको दो खण्डोंमें विभाग करके, उनमें अपने दोनों पुत्रोंको खण्डोंका अधिपति बनाकर अपने चित्तको अपने बड़े भ्राताओंके समान भगवान्‌की आराधनामें लगा दिया इन दोनों खण्डोंके पुरुषगण ब्रह्मसालोक्यादि साधनोंसे पद्मासन ब्रह्मस्वरूप भगवान्‌की आराधना किया करते हैं और इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥ ३२ ॥ मन्त्रः–"एतत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्। एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मैभगवते नमः॥" अर्थ–जो कि प्रसिद्ध कर्म फलोंके चिह्नरूप हैं जिनसे ब्रह्मा प्रकाश पाता है और परमेश्वरमें ही जिनकी निष्ठा है, इस कारणसे जो अद्वितीय हैं और सभी लोग जिनकी भक्तियोगसे अर्चना किया करते हैं, उन शांत स्वभाववाले षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान्‌को हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीसुखदेवजी बोले कि हे

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाऽऽराधयन्ति ॥ इदं चोदाहरंति ॥ ३२ ॥ एतत् कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयेत् ॥ एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः ॥ ३३ ॥ इति ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्याऽऽदर्शतलोपमा ॥ यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित् पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात् सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! इस द्वीपके आगे लोकालोक नामपर्वत लोक-अलोकके मध्यमें रचा हुआ है। लोक नाम उसका है जहां सूर्यका प्रकाश रहता है, और अलोक वह है जहां सूर्यका प्रकाश नहीं होता ॥ ३४ ॥ मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें जितने परिमाणवाली भूमि है, स्वादुजल समुद्रके आगे भी उतने ही परिमाणकी भूमि है। (शिवतन्त्रमें कहा है कि दो करोड़, त्रेपन लाख, पचास सहस्रके प्रमाणमें सब द्वीप और सातों समुद्र हैं, शिवजी कहते हैं, हे पार्वतीजी! देशकोटमें सुवर्णमय भूमि है। देवताओंके विहारार्थ लोकालोक पर्वत उससे आगे हैं) वहां पर बहुतसे प्राणी वसते हैं। फिर उसके पीछे स्वर्णमयी भूमि है, वह भूमि दर्पण तलके सदृश अतिशय निर्मल है। यदि उसपर कोई पदार्थ रक्खा जाता है, तो फिर वह अति कष्टसे पाया जाता है। इसलिए इस भूमिमें देवताओंके सिवाय और प्राणी नहीं हैं ॥३५॥

हे राजन्! इन दो खण्डोंके बीचवाले पर्वतका लोकालोक नाम होनेका यही कारण है कि इस पर्वतके मध्य स्थलमें रहकर लोक अर्थात् सूर्यादि–लोक–विशिष्ट देश और अलोक अर्थात् उनके उजालेसे रहित देश इन दोनों खंडोंको परस्पर अलग-अलग-स्थापित करता है। इसीसे इनका नाम 'लोकालोक' हुआ ॥३६॥ उसे त्रिलोकीके अन्तमें सब ओरसे ईश्वरने रचा है, जिससे कि सूर्यादि ध्रुव अपवर्ग ज्योतिर्गणोंकी किरणें कदाचित् पीछे की ओर न पहुँच जायें इतने परिमाणकी इस पर्वतकी चौड़ाई और ऊंचाई है। ऐसा यह पर्वत त्रिलोकीकी सीमा स्वरूप है ॥३७॥ हे राजन्! इस प्रकारसे पंडित लोगोंने नाम, लक्षण और आकारसे इन सब लोकोंकी रचनाका वर्णन किया है।

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते ॥३६॥ स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात् सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीँल्लोकानावितन्वाना न कदाचित् पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥ ३७ ॥ एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिंतितः कविभिः ॥ स तु पञ्चाशत्कोटिश्चगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८ ॥ तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ३९ ॥ तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिःस्वपार्षदप्रवरैःपरिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः संधारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात् सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥ ४० ॥

हे भरतवंशावतंस! जिस लोकालोक पर्वतकी कथा पहले कही, वह पचास कोटि योजन है। इस भूगोलका चौथा भाग यह लोकालोक पर्वत है। अर्थात् मेरुसे चारों ओर साढ़े बारह करोड़ योजन दूर है ॥ ३८ ॥ इस पर्वतके ऊपरी भागमें चारों ओर सब गजपति विश्वगुरु ब्रह्माजीने स्थापित किये हैं। इन चारों दिग्गजोंके नाम यह हैं—ऋषभ, पुष्करचूण्ड, वामन, अपराजित। इन्हीं चारोंसे सब लोकोंकी स्थिति हो रही है ॥३९॥ दूसरे जो भगवान् महापुरुष ऐश्वर्य आदिकोंके पति और सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं; जो कि इन सब दिगह-

स्तियोंके और अपने विभूति स्वरूप इन्द्रादि लोकपालोंके विविध वीर्यको बढ़ानेके लिये और सब लोकोंका मंगल करनेके लिये, गिरिवरपर विराजमान रहते हैं, वहांपर वे निष्कर्म होकर नहीं विराजते, किंतु वे विशुद्ध सत्त्व, जिससे कि ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इत्यादि अष्ट महासिद्धि लक्षित होती हैं; उनको प्रकाशित करते हैं। उनको चारों ओरसे विष्वक्सेनादि प्रधान-प्रधान पार्षदगण घेरे रहते हैं। यद्यपि श्रीभगवान्‌जी इस पर्वतपर रहकर विशुद्ध सत्त्व प्रगट करते हैं तथापि उस समय भी उनके करकमल अस्त्ररहित नहीं रहते। अर्थात् अपने श्रेष्ठ हथियारोंसे युक्त भुजदण्ड सदा ही अतिशय शोभा पाया करते हैं॥ ४० ॥ हे राजन्! ऊपर भगवान्‌जीके जिस प्रकार विराजमान होनेकी कथा कह आया, अब उसका तात्पर्य कहता हूँ, तो आप श्रवण कीजिये। यह जो सब विविध भांतिकी लोकयात्रा है, यह सब भगवान्‌की योगमायासे रची गयी है। इन सबकी रक्षा करनेके लिये भगवान् अपनी लीलाओंसे इस प्रकारके वेषकी रचना स्वीकार किया

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेति ॥४१॥ योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद् बहिर्लोकालोकाचलात् ॥ ततः परस्ताद् योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥ अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥ ४३ ॥ मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यद्भूत् ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥ ४४ ॥

करते हैं ॥ ४१ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! पहले लोकालोक नामक दो खण्डोंके प्रसंगमें अलोक खण्डका जो मध्यभाग विस्तारवाला कहा है, उससे ही इसका परिमाण जान लेना, क्योंकि यह खण्ड लोकालोक पर्वतके बाहिरी भागमें हैं, इसलिये उसका परिमाण सुमेरुके एक पार्श्वमें साढ़े बारह करोड़ योजन है। इस अलोक खण्डके आगे योगेश्वर लोग जा सकते हैं। ऐसा ऋषिलोग कहते हैं कि द्विज-पुत्रके लानेके समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था, इसी कारण वह अतिशय शुद्ध है और योगेश्वरोंकी गति वहां है ऐसा कहकर प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४२ ॥ हे राजन्। विस्तारसे ब्रह्माण्डका परिमाण कह चुका। अब तुमसे चारों दिशाओंका परिमाण कहता हूँ। ब्रह्माण्डके मध्यस्थलमें सूर्यभगवान् हैं, स्वर्ग और भूमिके बीचमें जिनका अन्तर है, वही ब्रह्माण्डका मध्य स्थल है, सूर्य और अण्डकटाह इन दोनोंके मध्यस्थलका परिमाण पच्चीस करोड़ योजन है ॥ ४३ ॥ हे राजन्! सूर्यका नाम मार्तंड होनेका कारण

यह है कि मृत अर्थात् अचेतनअण्डमें वह वैराजरूपसे प्रविष्ट हुये थे, इसलिये उसका 'मार्तंड' नाम हुआ और दूसरे वे हिरण्मयाण्डसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये 'हिरण्यगर्भ' इस शब्दका भी उनके लिये प्रयोग होता है॥४४॥ हे भरतवंशावतंस ! सूर्यसे ही दिशा, आकाश, पृथ्वीआदिके विभाग हुए हैं और भोगस्थान मोक्षस्थान व नरक और अतलादि सर्वप्रकारके लोकोंको सूर्य ही परस्परसे अलग करके विभाग करते हैं॥४५॥ इसलिये सूर्यरूपी भगवान्‌की ही उपासना करनी चाहिये, क्योंकि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पेटके बल चलनेवाले (सांप विच्छू आदि) और लता व बीजसमूहके आत्मा और तेजके अधिष्ठाता हैं॥४६॥ इति श्रीम० म० प० स्कन्धे भा० टी० भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपखण्डानां परिमाणलक्षण वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ दोहा—कालचक्रकर भ्रमत नित, रवि इकीस अध्याय। अपनी ही गतिसे बहुरि, सब राशिनमें जाय॥

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥ इति श्रीभाग० महा० पञ्चम० भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाणलक्षणं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति ॥ १ ॥ यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनाम् ॥ ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ २ ॥ तन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा ॥ स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भूमण्डलकी रचना इतना परिमाण अर्थात् विस्तारमें पंचशत कोटि योजनका प्रमाण और लक्षण दिखाकर वर्णन की। स्वर्गमण्डलका वर्णन जाननेवाले शास्त्रकार लोग इस भूमंडलके परिमाणसे ही स्वर्ग मंडलका परिमाण भी कहा करते हैं ॥१॥ इस कारणसे जिस प्रकार चने आदिकी दाल की जाय तो एक दालकी दूसरी दालके समान ही हो सकती। उसके ही समान भूमंडलका जितना परिमाण है, उतना ही स्वर्ग-मंडलका परिमाण है, इन दोनोंके मध्यभागमें जो आकाश है, वह दोनोंसे मिला हुआ है ॥२॥ उस आकाशके

१ भजन—रवि ही सकल वस्तु उपजावें। भांति भांतिके फल पुष्पादिक, शुभ सुगन्ध महकावें ॥ १ ॥ जो जो वस्तु रची ब्रह्माने, सबमें झलक दिखावें। सबमें भासत तेज सूर्यको, पाले अरु सुखावें ॥ २ ॥ आठ मासमें जो जल सोखत, चार मास [illegible] ावें। उसही जलसे अन्न अनेकन, वृक्ष लता प्रगटावें ॥ ३ ॥ जेठ मासमें तपत दशों दिशि, अग्निरूप दरसावें। शालिग्राम जगत-सुखदायक, परपूरण ब्रह्म कहावें ॥ ४ ॥

मध्यस्थलमें भगवान् सूर्यनारायण त्रिलोकीको ताप (धूप) देते हैं और अपनी दीप्तिसे त्रिभुवनको दीप्तिमान् करते हैं। सूर्य ही उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामक अपनी मंद, शीघ्र और समान गतिसे यथाकालमें ऊपर जाना, नीचे आना, समान स्थानमें चलनेको प्राप्त होकर नियत कालपर आकर मकरादि राशिमें रात-दिनको बड़ा-छोटा और समान कर देते हैं * ॥ ३ ॥ अर्थात् जब सूर्य, मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं, तब दिन-रात प्रायः समान हुआ करते हैं, और जब वृषादि पंचराशिसे गमन करते हैं, तब दिन बढ़ जाते हैं और महीने महीनेसे रात्रि क्रमशः कमती होती जाती है ॥ ४ ॥ और जब सूर्य वृश्चिकादि पंच राशियोंमें वर्तमान होते हैं तब दिन रात उलट-पलट हो जाते हैं, अर्थात् दिन छोटा और रात्रि बड़ी हो जाया करती हैं ॥ ५ ॥ वास्तवमें

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥ यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥ ६ ॥ एवं नवकोट्य एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति ॥ तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमिनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

जबतक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तबतक दिन बड़े रहते हैं और जब दक्षिणायण होते हैं तबतक रात्रि बड़ी हुआ करती है ॥ ६ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे दिवाकरकी मंद, शीघ्र और समान चालसे मानसोत्तर पर्वत और मेरुके मध्यमें भ्रमण करनेका मार्ग नव करोड़ इक्यावन लाख (९५१००००००) योजन है, ऐसा ज्ञानी पंडित और ऋषिगण कहा करते हैं। मानसोत्तरमें सुमेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी पुरी 'देवधानी' है। दक्षिणकी ओर यमकी पुरी 'संयमनी' है, पश्चिमकी ओर वरुणकी 'निम्नलोचनी' नाम पुरी है उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी नामक

* शंका—सूर्यनारायण आकाश में वास करते हैं, पृथ्वीके नीचे सूर्य नहीं रहते, फिर व्यासजी महाराजने कैसे कहा कि सूर्य तीन लोकमें प्रकाश करते हैं?

उत्तर—भूमिके नीचे जो सात लोक हैं उन लोकोंकी कथा श्रीशुकदेवजीने नहीं कही थी, मृत्युलोकके ऊपर जो लोक हैं उन लोकोंके बीचमें जो लोक हैं उनको त्रिलोकी कहा था, उन ही तीन लोकोंमें सूर्यनारायण प्रकाश करते हैं।

पुरी है, इन सब पुरियोंमें सुमेरु पर्वतके चारों ओर विशेष-विशेष समयमें उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्धरात्रि हुआ करती है। यह चार काल सब उदय-अस्त इत्यादि प्राणियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण हैं अर्थात् सूर्य भगवान्का उदय-अस्त देखकर ही प्राणिगणोंकी चेष्टादि हुआ करती हैं। वहां भी सुमेरु दक्षिणकी ओर वसनेवालोंको इंद्रकी पुरीसे और जो पश्चिमके निवासी हैं, उनको यमपुरीसे, जो उत्तरकी ओरके रहनेवाले हैं उनको वरुणकी पुरीसे और जो पूर्वके रहनेवाले हैं,उनको चन्द्रमाकी पुरीसे उदयादिक होते हैं। महात्मा पुरुषोंने ऐसा कहा है ॥ ७ ॥ परंतु जो प्राणी सुमेरुपर बसते हैं, उनको मध्याह्नकालिक सूर्य ताप दिया करते हैं। यद्यपि सूर्य नारायण बायीं ओरको चलते हैं, अर्थात् नक्षत्रोंके संमुख होकर गमन करनेसे यद्यपि सुमेरुको बायीं ओर रखकर गमन करते हैं, तथापि प्रदक्षिणावर्तके प्रवर्तक प्रवाह नामक वायु ज्योतिश्चक्रको भ्रमण करनेसे प्रतिदिन एकएक वार दक्षिण दिशाको जाया करते हैं, इसलिये चक्रगतिके कारण अति दूरसे सूर्यको

तत्रत्यानां दिवसमध्यं गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥ ९ ॥ यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्द्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥

अत्यन्त भूमिके निकट ही लगा हुआ देखा जाय, इसका ही नाम उदय है, उनको आकाशमें चढ़ा हुआ देखना इसका ही नाम मध्याह्न है, भूमिमें प्रविष्टसा देखना अस्त कहलाता है। वहांसे अधिक दूरका चला जाना ही अर्धरात्रि है। वेदमें भी समुद्रके तीरकी दृष्टि क्रमसे कही हुई है कि दिवाकर प्रातःकालके समय जलमेंसे उदय होता है। और संध्याकालके समय जलमें प्रविष्ट हो जाया करते हैं। वास्तवमें यह बात कल्पित है कुछ सत्य नहीं है ॥ ८ ॥ परंतु जिस स्थानमें दिवाकर उदित होते हैं, उसके सूत्रपात स्थानपर ही अस्त हो जाते हैं, मध्याह्नकालके समय जहाँके प्राणियोंको पसीना उपजाते हुए धूप देते हैं, उसके सब सूत्रपात स्थानमें अर्धरात्रि होनेसे वहांके प्राणियोंको उस समय निद्रित कर देते हैं। इसलिये जो लोग उनका अस्त देख सकते हैं, वे इस स्थानमें आनेके कारण (सम्मुख सूत्र पड़नेके स्थानपर) सूर्य नारायणको नहीं देख सकते ॥ ९ ॥ जब सूर्य भगवान् इंद्रपुरीसे चलते हैं, तब पंद्रह घड़ीमें यमपुरी पहुँच जाते हैं, इतने कालान्तरमें सवा

दो करोड़ साढ़े बारह लाख और पच्चीस हजार अर्थात् दो करोड़ सैंतीस लाख पिछत्तर सहस्र २३७७५००० योजन मार्ग चलते हैं। फिर सूर्य यमकी पुरीको जाते हैं ॥१०॥ इसी भांति वहांसे वरुणपुरी और चन्द्रपुरीको जाते हैं और वहांसे फिर इंद्रपुरीमें आते हैं। इसी प्रकार दूसरे ग्रह चन्द्र आदि भी ज्योतिश्चक्रसे नक्षत्रोंके साथ ही तो उदय होते हैं और नक्षत्रोंके साथ ही अस्त हो जाते हैं ॥११॥ हे राजन्! इस प्रकारसे सूर्य भगवान्‌का वेदमय रथ एक मुहूर्तमें पहले कही हुई चारों पुरियोंके चारों ओर चौतीस लक्ष आठसौ ३४००८०० योजन मार्गको घूम जाते हैं ॥१२॥ इस रथका एक ही पहिया है (इसका नाम संवत्सर है)। ऐसा कहते हैं कि उस पहियेके बारह आरे तो बारह मास हैं, और छः उसकी पुट्ठी हैं (जो ऋतु कहलाती हैं) और शीत, गरमी, वर्षा यह तीन उसकी नाभि हैं, उसकी धुरीका भाग सुमेरु पर्वतका

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रींच पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥ ११ ॥ एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२ ॥ यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतोत्तरभागो मानसोत्तरे कृतेतर भागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥

मस्तक है और दूसरा भाग मानसोत्तर पर्वतपर स्थापित है। उस मानसोत्तरमें सूर्यका रथ स्थापित है, जिसमें पिरोया हुआ कोल्हूके पहियेके समान सूर्यके रथका चक्र मानसोत्तरपर बराबर घूमता रहता है॥१३॥हे राजन्! सूर्यके रथमें दो धुरे हैं, प्रथम धुरा तो सुमेरु और मानसोत्तर-तक फैला हुआ है, उसका परिमाण एक करोड़, सत्तावन लक्ष, पचास हजार १५७५०००० योजन है।दूसरे धुरेका परिमाण इससे चौथाई है अर्थात् उन्तालीस लाख साढ़े तैंतीस सहस्र ३९३३५०० योजन है। पहला धुरा दूसरे धुरेके पूर्व भागमें बँधा हुआ है और कोल्हूके धुरेके समान ध्रुवलोकके वायुपाशसे उसका ऊपरका भाग बँधा हुआ है ॥ १४ ॥ इस नीड अर्थात् बैठनेका स्थान छत्तीस

लक्ष ३६०००००० योजन बड़ा और उससे चौथाई अंश अर्थात् नवलाख ९००००० योजन ऊँचा है और इस रथका जुआ नव लक्ष ९००००० योजनका बड़ा है। इस रथमें गायत्र्यादि नामधारी सात अपूर्व तुरंग अरुण नाम सारथीके जोते हुए भगवान् मार्तण्डके रथको खैंचकर ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य महाराजके सारथी कर्ममें नियुक्त होकर अरुण यद्यपि आगे बैठे रहते हैं, परन्तु उनका मुख सूर्य नारायणके सम्मुखही रहता है ॥ १६ ॥ और वालखिल्य नामक ऋषिगण जिनके शरीरका परिमाण अंगुष्ठ-पर्वमात्र है और जिनकी संख्या साठ हजार है, वे सब इन सूर्य नारायणके सम्मुख संभाषण करनेके लिए नियुक्त होकर अनेक प्रकारसे सदा उनकी स्तुति किया करते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार और भी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, देवता इत्यादि जिनकी संख्या एक-एक करके चौदह

पुरस्तात् सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥ यथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवंति ॥१७॥ तथाऽन्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥ १८॥ लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥ इति श्रीभा० म० प० ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

हैं और जोड़की रीतिसे सात जोड़ हैं, वे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम वाले सूर्य भगवान्‌की अलग-अलग कार्य करनेके द्वारा उपासना किया करते हैं। और इन सबके नाम भी पृथक् पृथक् हैं। दोहा—यह सातों गण सङ्गमें, पृथक् पृथक् कर नाम। अस्तुति करत दिनेशकी, गाय गाय गुण ग्राम ॥१८॥ हे राजन्! दिवाकर इस रीतिसे परिवृत्त होकर भूमण्डलमें नव करोड़, एक लक्ष, पचास हजार ९०१५०००० योजन गमन करते हुए प्रत्येक क्षणमें दो सहस्र दो योजन मार्ग चलते हैं। सूर्य सबसे बड़े देवता हैं, सूर्य ईश्वर * हैं ॥ १९ ॥ इति श्री भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यरथमण्डलवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

१. दृष्टांत—"एक पीपलके वृक्षपर एक उल्लूका घोंसला था। उस पीपलको प्रातःकाल आ—आकर मनुष्य जल दिया करते थे, तब उल्लूके बच्चे अपनी मातासे बोले कि माता! सूर्य तो दीखता ही नहीं यह सब मूर्खलोग किसको जल देते हैं? उनकी माता बोली कि बेटा! सूर्य तेरे बापने न देखा, न दादाने देखा, तू कहाँसे देखेगा, क्योंकि सूर्यके तेजके कारण उल्लूके नेत्र मिच जाते हैं, उनको सूर्य नहीं दीखता, ऐसे ही मूर्खोंको परमेश्वर नहीं दीखते और सूर्यनारायण तो नित्य उदय होते हैं।"

दोहा—बाइस शशि शुक्रादिको, उत्तरोत्तर स्थान। इन्हीं ग्रहोंकी चालसे, नर दुख सुख ले जान॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे राजन्! आपने जो यह वर्णन किया कि भगवान् सूर्य नारायण सुमेरु और ध्रुवकी प्रदक्षिणा करके घूमते-घूमते सब राशियोंके सम्मुख विना-प्रदक्षिणा किए हुए गमन करते हैं, तो यह बात हमारे विचारमें परस्पर विरुद्ध मालूम होती है। इस बातका किस प्रकारसे निर्णय किया जाय? ॥ १ ॥ तब श्रीशुकदेवजी हर्षसहित बोले कि जिस प्रकार घूमते हुए कुम्हारके चाकके साथ उसके ऊपर घूमतीहुई चीटियाँ आदिकी गति दूसरी प्रकार जान पड़ती है, क्योंकि चक्रके एक-एक भागको त्यागकर वे आती हुई ज्ञात होती हैं, ऐसे ही नक्षत्र राशियोंके द्वारा उप-

राजोवाच॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति॥ १॥ स होवाच॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशांतरेष्वप्युपलभ्यमानत्वात्॥ एवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात्॥२॥ स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति॥३॥ तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति॥ ४॥

लक्षित कालचक्रसे ध्रुव और मेरुकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रताके साथ चलनेके कारण उनके आश्रय सूर्यादि ग्रहोंकी गति और ही प्रकारसे नक्षत्रादिके मध्यमें ज्ञात होती है॥ २॥ हे राजन्! साक्षात् नारायण वह भगवान् आदि पुरुष लोगोंका मङ्गल करनेके लिए कर्म शुद्धिकी निर्मित स्वरूप जो अपनी वेदमय आत्मा है, उसको बारह प्रकारसे विभाग करते हुए वसन्त आदि छहों ऋतुओंमें सब कर्मोंके भोगानुसार उन-उन ऋतुओंके गुण अर्थात् शीत उष्ण आदिका विभाग करते हैं। परमपुरुषके इस व्यापारमें आत्मतत्त्वके जाननेवाले विद्वान् लोग भी वेद शास्त्रकी आलोचना करके तर्क-वितर्क किया करते हैं॥ ३॥ इसलिए सब पुरुष जो कि वर्णाश्रम आचारपर चलनेवाले हैं वे लोग

वेदमें कहे हुए कर्मोंसे इंद्रादिरूपी और ध्यानादि योग विस्तार करके अन्तर्यामी उन सूर्य भगवान्‌की उपासना करके सब यथार्थ कल्याणको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४ ॥ यह सूर्य ही सब लोकोंके आत्मा हैं, स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें जो आकाश मण्डल है उसके मध्यमें काल चक्रमें स्थित होकर यही सूर्य बारह महीनोंकी (राशि) भोग करते हैं । मेषादि राशियोंके नाम ही इन सब मासोंके नाम हैं, यह सब मास संवत्सरके अंग हैं । हे राजन् ! सब महीने अलग-अलग भांतिके होते हैं तथा चंद्रमाकी गतिसे दो पक्षका महीना होता है । सूर्यकी गतिके हिसाबसे सूर्यके सवा दो नक्षत्र भोग करनेके कालको एक मास कहते हैं । यह एक महीना पितरोंके महीनेका एक दिन-रात होता है । अर्थात् इन दोनों कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षमें एक मास होता है, वह यथाक्रमसे पितृलोकका दिन और रात्रि होती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायण

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान् मासः पक्षद्वयं दिवानक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥ अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥ ७ ॥ एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥ ८ ॥

जितने कालमें संवत्सरका छठा भाग अर्थात् दो राशियोंको भोग करते हैं, वह काल ऋतु कहा जाता है इसलिये यह ऋतु संवत्सरका एक अंग है, इस प्रकार सूर्यनारायण जितने समयमें पृथ्वीके आधे भागमें घूम जाते हैं, वह उतना काल अयन कहा जाता है ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे सूर्य नारायण जितने कालमें स्वर्गमण्डल और पृथ्वीमंडल यह दो मंडल आकाश मंडलसहित संपूर्ण रूपसे भ्रमण कर भोग करते हैं वही काल संवत्सर है । इन सूर्यकी ही मन्द, शीघ्र और समान गतिसे संवत्सर, परिवत्सर, इडा वत्सर, अनुवत्सर और वत्सर इन पांच नामोंमें पांच प्रकार होते हैं, ऐसा पंडित लोग कहते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! सूर्यमंडलके ऊपर लक्ष योजनके ऊपर चन्द्र ग्रह

दृष्टि आता है। यह चन्द्रमा दो पक्षमें चलता है। सूर्यके एक संवत्सरमें चलता है। और चन्द्रमा सवा दो दिनमें सूर्यके एक मासके बराबर चलता है। और चन्द्रमा एक दिनमें सूर्यके एक पक्षके चलनेके बराबर चलता है! शुक्लपक्षके पड़वाको संक्रांति जब हो तो सौरमास और चान्द्रमास दोनोंका प्रारंभ होता है, इस प्रकार वर्षका नाम संवत्सर है। और सूर्यकी गणनासे छः दिन बढ़ते हैं और चन्द्रमाकी गणनासे छः दिन घटते हैं। इस प्रकारसे बारह-बारह दिनका अन्तर होनेसे सूर्य और चन्द्रमा आगे पीछे हो जाते हैं, तो पांच वर्षके मध्यमें दो अधिक मास पड़ जाते हैं। छठे वर्ष दोनोंका हिसाब एक हो जाता है और फिर पड़वाके दिनसे संक्रांति होनेसे फिर वही छठा वर्ष संवत्सर कहलाता है। और इसी प्रकार प्रथम वर्षको संवत्सर, दूसरेको परिवत्सर, तीसरेको इडावत्सर, चौथेको अनुवत्सर और पांचवेंको वत्सर कहते हैं। कभी-कभी चन्द्रमाकी गति अति शीघ्र होनेके कारण यह ग्रह सूर्यके बराबरीसे भी आगे हो जाता है ॥८॥ चन्द्रमंडलकी

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥ य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान् मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात् त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥

सब कलायें जब आपूर्यमाण रहतीं अर्थात् बढ़ती हैं तब देवगणोंका दिन होता है। और जब क्रम-क्रसे कलायें क्षीण होती जाती हैं, तब पितृ लोकोंका दिन होता है। हे राजन्! चन्द्र ग्रह इस प्रकारसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा पितरोंका दिन-रात करते हुए तीस-तीस मूहूर्तमें एक-एक नक्षत्रको भोग करते हैं। यह ग्रह अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण सब जीवोंका प्राण और सबके जीवनका हेतु है। इसी कारण चन्द्रमाको जीवदाता भी कहते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये षोडशकलायुक्त चन्द्ररूपी भगवान् परम पुरुष मनोमय, अन्नमय तथा अमृत मय हैं। अधिक करके यह देवता, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबके प्राणोंको तृप्त किया करते हैं और बुद्धिका देनेवाला है, इसलिये ऋषिलोग उसको सर्वमय कहकर वर्णन करते हैं। हे राजन्! पहले कहे हुए चन्द्रमंडलसे दो लक्ष योजन ऊपर

सब नक्षत्र सुमेरुकी दक्षिण ओर कालचक्रके साथ ईश्वर करके जुड़े हुए होनेके कारण भ्रमण करते हैं ॥१०॥११॥ हे भारत ! नक्षत्रमंडलके दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र ग्रह है। सूर्यके सम्मुख किसी नक्षत्रको भोग करते हुए यह ग्रह उनके पीछेकी दिशामें रहता है और एक सङ्ग फिरनेके समय यह अति शीघ्रगामी होकर क्रमवाले नक्षत्रोंको उलङ्घन करके फिरा करता है। यह शुक्र ग्रह भी सूर्यके समान शीघ्र, मन्द और समान गतिवाला हो जाता है। यह सदा लोकोंके अनुकूल रहता है। प्रायः यह वर्षता भी है, इस कारण जो ग्रह वृष्टिके रोकनेवाले हैं, यह उनको भी शांत कर देता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! शुक्रकी जिस प्रकारसे गति और स्थिति है, इसी प्रकार बुधकी गति जानना

तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात् सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति ॥ लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयन् चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥ उशनसा बुधो व्याख्यातः ॥ तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदाऽर्काद् व्यतिरिच्येत तदाऽतिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥ १३ ॥ अत उर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥ तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥

अर्थात् बुध ग्रह भी कभी सूर्यके आगे और कभी-कभी पीछे रहता है। परन्तु शुक्रग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपर यह बुध ग्रह दृष्टि आता है। यह ग्रह भी प्रायः लोकोंका शुभकारी है। परन्तु जब सूर्यसे अलग हो जाता है, तब बहुधा अतिशय पवन, निर्जल, मेघघटा और अनावृष्टि इत्यादि भयका यह विस्तार किया करता है॥१३॥बुध ग्रहके ऊपर मंगल ग्रह है, वह भी दो लक्ष योजनसे दृष्टि आता है। यह ग्रह भी तीन-तीन पक्षमें क्रम-क्रमसे बारह राशियोंको भोग करता है और यदि उसकी टेढ़ी गति न हो तब यह बहुत अमंगलसूचक अशुभ ग्रहसमान हो जाता है ॥१४॥ मंगल ग्रहके ऊपर दो लक्ष योजन पर भगवान् बृहस्पतीजी हैं। इनकी गति यदि टेढ़ी न हो तो यह

एक वर्षमें एक-एक राशिको भ्रमण करते हैं। बृहस्पतिजी ब्राह्मण कुलपर बहुधा अनुकूल ही रहा करते हैं ॥ १५ ॥ बृहस्पतिजीके ऊपर दो लक्ष योजनपर शनैश्चर ग्रह प्रकाश करता है। उसको एक-एक राशिके घूमनेमें तीस-तीस महीने लग जाते हैं । और उतने ही संख्याके वर्षोंमें अर्थात् तीस वर्षमें उसका सब राशियोंपर घूमना समाप्त होता है, यह ग्रह लगभग सब ही प्राणियोंको अशांतिका देने वाला है ॥१६॥

तत उपरिष्टाद् योजनलक्षद्वयात् प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥ १६ ॥ तत उत्तरस्माद्दृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलक्ष्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत् परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥ १७ ॥ इति श्रीभागव० म० पञ्चम० ज्योतिश्चक्रवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

शनिग्रहसे उत्तरकी दिशामें ग्यारह लक्ष योजनके अन्तरमें ऋषिगण दृष्टि आते हैं । वह ऋषि समस्त लोकोंको शांति देते हुए भगवान् विष्णुके परमपदकी सदा प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥१७॥ इति श्रीम०म०पं०स्कन्धेभा०टी०ज्योतिश्चक्रेनवग्रहाणां वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

१. दृष्टांत–एक समय रावणने सब ग्रहोंको कारागारमें बंद कर दिया, परंतु शनिश्चर नहीं आया, जब रावणने शनैश्चरदेवताको न देखा, तो मंत्रियोंको बुलाकर बोला–कि क्या कारण जो शनैश्चर हमारे बंदी गृहमें नहीं हं ? मंत्रियोंने कहा–कृपानाथ ! शनैश्चर क्रूर देवता हैं और अत्यन्त दुःखदायक है, इसलिये उसको नहीं लाये क्योंकि दुष्टको घरमें रखना अच्छा नहीं, ऐसा कहा है –''दुष्टसंग जनि देय विधाता'' रावणके तो खोटे दिन आ ही गये थे, काल शिरपर गर्ज रहा था, अतएव बोला कि उसको अभी पकड़ लाओ सब मंत्री सेनाको लेकर शनैश्चरके पास गये और जाकर कहा–तुमको रावणने बुलाया है । शनैश्चरजी बोले कि अच्छा चलो, जब ही शनैश्चरने लंकाकी ओर आंख उठाकर देखा तो दृष्टिके पड़ते ही लंकाके कंगूरे गिरने लगे । रावण बोला–यह क्या ? मंत्रियोंने कहा कि शनैश्चर देवताने लंकाकी ओर दृष्टि उठाकर देखा है, इतनेमें शनैश्चर सम्मुख आकर पहुँच गया ? तब उसको देखते ही रावणने स्तुति की और कहा कि अब आप कृपा पूर्वक अपने स्थानको चले जाइये । यह सुन शनैश्चर बोले कि अव घर लौटना कैसा ? अब तो हम घरसे चल ही दिये 'दुःखमथवा सुखम्' अब तो साढ़े सात वर्ष लंकापुरीमें ही निवास करेंगे । शनैश्चरके आते ही रावणकी बुद्धि बिगड़ी और जगत् जननी जानकीजीको हर लिया। तब कोशलेन्द्र महाराजाधिराज रामचन्द्रजीने कुटुम्ब सहित उस रावणका विध्वंस कर दिया । इसी से ऐसा लिखा है कि –''सर्वेषामशान्तिकरःशनिः'' इति ।।

* कवित्त—आदि है न अन्त है न अगम अनन्त है, पावन असंग औ अव्यक्त अप्रमान है । एक है प्रकाशक हैं प्रकाशक हैं महाकाशव्यापक हैं, निर्गुण निरंजन हैं चिदानन्द ज्ञान हैं ।। दीनपै दयालु सदा अजर अविनाशी हैं अलख अनीह औ अवाच्य निरबान है । विश्व करतार भरतार जगहार प्रभु, वेद रूपधारी दुखहारी भगवान हैं ।।

* शंका—हमने सब शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा सुना है कि, सब ऋषि लोग भूमिमें तप करते हैं परन्तु जो मुनिजन ऋषिलोकमें निवास करके तप करते हैं भूमिमें पृथ्वीपर तप करनेवाले वही हैं या दूसरे कोई हैं ?

दोहा-वरणों ध्रुव स्थानको, तेइसवें अध्याय । पुनि शिशुमार स्वरूपको, हर्षित कहौं सुनाय ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे भरतावतंस। देवर्षि लोगोंका जो स्थान हमने कहा उससे तेरह लक्ष योजन ऊपर विष्णु भगवान्का प्रसिद्ध स्थान है । जहां उत्तानपाद राजाके पुत्र महाभागवत ध्रुवजी, अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म इन सबके साथ जब नक्षत्ररूपी हुए थे, उसी दिनसे आजतक प्रदक्षिणा दिया करते हैं। और कल्पभर जीवित रहनेवालोंके आधार होकर भगवान्की आराधना करते हैं ! इन ध्रुव

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात् परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत् तद् विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते ॥ तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥ स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्ति ॥ २ ॥ एवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति ॥ नभसि यथा मेघाःश्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥ ३ ॥

महाराजकी महिमा प्रथम (चतुर्थस्कन्ध) में वर्णन की गयी है ॥ १ ॥ अनिर्भेद्य महावेग-युक्त कालकी गति बारी-बारीसे ग्रह नक्षत्रादि सब ज्योतिर्गणोंको निरंतर गगनमंडलमें घुमाया करती है, उसका भी अवलम्ब बनानेके लिये परमेश्वरने इन ध्रुवजीको एक थंभरूप बना दिया है, इसलिये उनका प्रकाश निरंतर ही होता रहता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अन्न आदिके पीसनेके लिये मढ़ी स्तम्भ (कीली) में बँधे हुए पशुगण अपने-अपने स्थानमें रहकर समय-समयपर कीलोंके आश्रयसे घूमा करते हैं, वैसे ही यह ग्रहादि-नक्षत्र-गण भी काल

उत्तरः-पृथ्वीपर तो तपस्या करनेवाले मुनि लोग हैं, वह अपने तपकी सिद्धि को समाप्त करके पृथ्वीको तजकर ऋषिलोकको चले जाते हैं और ऋषिलोकमें बैठ भगवान्का ध्यान करते रहते हैं, और कठिन कठिन तपको छोड़ देते हैं । उनही ऋषियोंके शिष्य पृथ्वीपर निवास करते रहते हैं और अपने अपने गुरुओंके आश्रमों [illegible] तप करते रहते हैं ॥

चक्रके भीतर और बाहरमें बँधकर इस ध्रुवका ही अवलम्बन किये हुए हैं और पवनके घुमाये हुए कल्पके अन्ततक चारों ओर घूमते रहते हैं, परन्तु जिस प्रकार मेघ और बाजादि पक्षीगण कर्मकी सहायतासे पवनके वश हो आकाश मंडलमें घूमा करते हैं और गिरते नहीं, वैसे ही ज्योतिर्गण भी जिनकी गति कर्मसे बनी हुई है सब वे उन परम पुरुषके अनुग्रहसे आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु पृथ्वीपर नहीं गिरते॥ ३ ॥ कोई-कोई कहते हैं, यह ज्योतिश्चक्र शिशुमार रूपमें भगवान् वासुदेवजीकी योगधारणासे टिका हुआ है, इसलिये इसके गिरनेकी कोई शङ्का ही नहीं है ॥४॥ यह शिशुमार चक्र नीचेको शिर किये और कुण्डली-भूत शरीर हो रहा है। इसकी पूछके अग्रभागमें तो ध्रुवजी हैं और पूछके आगे अधोभागमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म यह तीन देवता हैं, पूछके मूलमें धाता-विधाता हैं और कमरमें

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥ ४ ॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्छिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः॥ तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति॥ पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः॥ तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये॥ यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः॥५॥ पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोः मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत॥ तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रतिलोम्येन प्रयुञ्जीत ॥ शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥

सप्त ऋषिगण प्रतिष्ठित हैं। इस शिशुमारके दाहिनी ओर कुण्डलाकारवाले शरीरकी दक्षिण बगलमें अभिजित इत्यादि पुनर्वसुतक चौदह नक्षत्र हैं और वाम बगलमें भी पुष्यादि उत्तराषाढातक चौदह नक्षत्र हैं, इस लिये कुण्डलके विस्तारानुसार इस शिशुमारके सब अवयव दोनों पार्श्वोंमें सम संख्यावाले हैं और इस शिशुमारके पृष्ठ देशमें अजवीथी और उदरमें आकाशगङ्गा है ॥ ५ ॥ हे राजन्! ऊपर कहे हुए शिशुमारचक्रकी दक्षिण ओर वाम बगलमें जो सब नक्षत्र हैं, उनके हम विशेष-विशेष स्थान बताते हैं वह तुम श्रवण करो। पुनर्वसु

और पुष्य यह दोनों नक्षत्र यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्बपर हैं, आर्द्रा और अश्लेषा यथा चक्रसे उसकी दक्षिण और वाम चरणमें हैं। अभिजित् और उत्तराषाढ़ा यथाचक्रसे उसकी दक्षिण और वाम नासिकापर हैं। श्रवण, उत्तराषाढा यथाक्रमसे उसके दायें और बायें नेत्रमें हैं, धनिष्ठा और मूल यथाक्रमसे उसके दक्षिण और वाम कर्णमें हैं। मघा आदि अनुराधातक दक्षिणायन संबंधीय आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वकी अस्थिमें लगे हुए हैं, इसी प्रकारसे मृगशिरादि उसके उलटे अर्थात् उत्तरायण संबंधीय जो आठ नक्षत्र हैं, वे सब उसके दक्षिण पार्श्वकी अस्थियोंमें लगे हुए हैं और शतभिषा व ज्येष्ठा यथा क्रमसे उसके दांये और बायें कन्धोंमें स्थापित हैं ॥६॥

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥ एतदुहैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षणमाण उपतिष्ठेत ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥

इस शिशुमारकी उत्तर ठोढीमें अगस्त्य, अधर ठोढ़ीमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, पृष्ठ-शृङ्गमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार प्राण व अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वाङ्गमें केतु और रूओंमें अन्य तारागण लगे हुए हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! यह जो शिशुमारका चक्राकारका वर्णन हुआ, यही भगवान् विष्णुजीका सर्वमय रूप है, सब पुरुषोंका सदा ही संध्याके समय सावधान हो मौन धारण कर इस चक्रका देखना अवश्य कर्तव्य है और उस समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये। मन्त्र—"नमो ज्योतिर्लोकायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि ॥" अहो ! ज्योतिर्गणोंके आश्रय और कालचक्ररूपी

१. शंका—शिशुमारचक्रके हृदयमें और नवग्रहोंके बीचमें नारायण भगवान् वास करते हैं, ऐसा भागवतमें हम सबने सुना है और यह भी कहिये कि नारायण भगवान् कौन हैं ? जो श्री वैकुण्ठनाथ श्रीनारायण हैं, वे ग्रहोंके बीचमें निवास कैसे करते हैं ?

उत्तर—धर्मनन्दन जो श्री नारायण हैं, जिन्होंने बदरिकाश्रममें बहुत दिनतक तप किया, वे ही नारायण शिशुमारचक्रमें निवास करते हैं, जो सब देवता हैं, उनको सुन्दर धर्म सिखानेके लिये ग्रहोंके मध्यमें वास करते हैं ।

देवाधिपति, उन महापुरुषको वारंवार हमारा नमस्कार है, हम निरंतर उनका चिन्तन करते हैं ॥८॥ यह शिशुमार भगवान् ग्रहव नक्षत्रा दिकोंके स्वरूप सर्व देवताओंके अधिपति हैं, इस लिये जो लोग त्रिकालमें उनका पहला कहा हुआ मंत्र जपा करते हैं उनके पापोंको शिशुमाररूप भगवान् नष्ट कर देते हैं; जो पुरुष तीन कालकी संध्यामें उनको प्रणाम करेगा वा उनका स्मरण करेगा उस पुरुषके तत्काल ही सब पाप नाशको प्राप्त हो जायँगे * ॥ ९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां शिशुमारचक्रवर्णनं नाम

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥ इति श्रीभागवते म० पञ्चम० शिशुमारसंस्थानं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात् सवितुर्योजना युते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके ॥ योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः ॥ तस्य तात जन्कर्माणि चोपरिष्टाद् वक्ष्यामः ॥ १ ॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–रविके नीचे ग्रह जिते, ते सब कहूं सुनाय । अनलादिक वर्णन करों, अब चौबिस अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कोई-कोई विद्वान् कहते हैं कि सूर्यके नीचेके भागमें दश सहस्र योजनके अन्तरपर यह राहु नक्षत्रके समान घूमता है । यह राहु सिंहिका राक्षसीका पुत्र असुरोंमें नीच, किसी प्रकारसे देवभाव और ग्रह-भावको प्राप्त होनेके योग्य नहीं था, केवल

---

* दृष्टान्त–एक बड़े मालदार लाला थे, उन्होंने अपने पुत्रका विवाह किया, तो सब नगरकी जौनार की और अनेक-अनेक प्रकारके षट्रस भोजन जिमाये और किसी समय युवा अवस्थामें उनकी किसी वेश्यासे रीति–प्रीति थी । सेठजीने अपने मनमें विचार किया कि जो मैं उसको अपने घर बुलाता हूँ, तो लोग हँसी करेंगे कि यह वृद्धावस्थामें भी वेश्याके वशीभूत हो रहे हैं। इन्हें बेटे–पोते की कुछ लज्जा नहीं । यह बात विचार एक थालमें कुछ थोड़ेसे लड्डू, पेड़े बरफी, अमिरती, खुरमें, खजले, हलुवा, पूरी, खस्ता, कचौरी, और अनेक प्रकारकी मिठाई धरकर बेटोंसे किसी और का नाम ले वेश्या के घर पहुँचे वह एक बड़े ऊँचेवाले खाने पर रहा करती थी । सेठजी सहज-सहजमें ऊपरको चढ़े, जब आधी दूर पहुँच गये तो उनके हाथ-पांव कांपने लगे । क्योंकि वृद्धावस्था में सीढ़ियों पर चढ़ना महा कठिन है, जब और ऊपरको न चढ़ा गया तो यह पुकारे, अरी ले अरी ले ! मेरा चित्त तो बहुत चाहता है, परंतु मैं तेरे निकट नहीं आ सकता । तब उनके मुखसे घबराहटमें 'अरी ले, अरी ले' तो न निकला, परंतु 'हरी ले, हरी ले' निकला, उसी समय इनका पांव जो रपटा तो जीनेसे नीचे गिरकर लालाजीकी इतिश्री हो गयी अर्थात् प्राण निकल गये। हरी हरी नाम सुनकर उसी समय भगवान् वासुदेव वैकुण्ठनाथने अपने पार्षदोंको बुलाकर कहा कि मेरे भक्तका देहान्त हुआ है, तुम अभी विमान लेकर जाओ और उसको हमारे समीप ले आओ, क्योंकि उसने अन्त समय मेरा नाम लिया, 'जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ।।' यह सुन भगवान्के पार्षद उसी समय उसको विमानपर बैठाकर परमधामको ले गये । देखो, धोखेमें नाम लेनेसे उस वैश्यको मुक्ति हो गई और जो हितचितसे परमेश्वरका नाम लेते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? ।

भगवान्‌की कृपासे इसने देव-भाव और ग्रह-भाव प्राप्त कर लिया है इसके जन्म और कर्मका वृत्तान्त फिर (आठवें स्कंधमें) कहेंगे ॥ १ ॥ इस राहुके अधोभाग रहकर सूर्य नारायण तपते हैं । कहते हैं कि सूर्य-मण्डलका विस्तार दशहजार योजन और चन्द्रमंडलका विस्तार बारह हजार योजन है, परंतु राहु मंडलका विस्तार इन दोनोंसे बड़ा अर्थात् तेरह हजार योजन है, इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर छल किया था, तब सूर्य व चन्द्रमाने उस समय विष्णु भगवान्‌को बता दिया था, कि यह देवता नहीं है, दैत्य है । तब विष्णु भगवान्‌ने इसका शिर काट डाला था परन्तु अमृतके पान करनेसे वह मरा नहीं और देवभाव व ग्रहभाव

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद् वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥ ३ ॥

को प्राप्त हो गया तबका वैर लेनेको अबतक पौर्णमासी वा अमावास्याके दिन जब सूर्य व चन्द्रमाका पूर्ण प्रकाश होता है तब उस प्रकाशको न सहन करके यह इन दोनोंके पीछे दौड़ता है ॥ २ ॥ भगवान् विष्णुजीने इस बातको जानकर चन्द्रमा और सूर्यकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन नामक अपना प्रिय अस्त्र अथवा भागवत चक्र नियत किया । इस चक्रका तेज अति असहनीय है और यह सदा ही घूमता रहता है इसलिये उस चक्रको घूमता हुआ देखकर राहु, सूर्य अथवा चन्द्रमाको पकड़नेके लिये एक मुहूर्तमात्रतक खड़ा होता है और पीछेसे डरकर दूसरे ही पीछेको लौट जाता है। इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके अन्तरमें जितनी देर राहु खड़ा रहता है, उसकोही लोग

---

१. शंका–राहु और केतु, सूर्य चन्द्रमाको अत्यन्त पीड़ा देते हैं और इन दोनों सूर्य चन्द्रमाकी रक्षा करनेके लिए भगवान् चक्र सुदर्शनको लेकर आते हैं, वारंवार आने-जानेमें चक्रसुदर्शनको भी महाकष्ट होता है, फिर ऐसे दुःख देनेवाले राहु केतुको भगवान् वासुदेव क्यों नहीं मारकर विध्वंस करते जो फिर किसीको दुःख न हो ? इसका उत्तर जो कोई दे कि राहु केतु अमृत पी गये थे, इसलिए यह किसीके मारनेसे नहीं मर सकते तो सत्य है, परंतु अमृत भी तो भगवान् ही का बनाया हुआ है, जिसको भगवान् मारना चाहते हैं तो उसकी रक्षा भगवान् भी नहीं कर सकते ?

उत्तर–भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रसे राहु-केतुको मारा था, तबसे राहु-केतु चक्र सुदर्शनको स्पर्श करनेसे पवित्र हो गया इसलिए भगवान् सुदर्शन चक्रसे पवित्र राहु केतुको नहीं मार सकते, दोनोंके शरीरमें सुदर्शन चक्रका जो चिन्ह उपस्थित है उसको देखकर भगवान् राहु-केतुके ऊपर प्रसन्न हो गये ।

ग्रहण कहा करते हैं ॥ ३ ॥ राहु ग्रहके समान ही परिमाण योजन नीचे अर्थात् तेरह सहस्र योजन अधोभागमें सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके रहनेका स्थान है ॥ ४ ॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस भूत, प्रेत और पिशाचगणोंसे विहार करनेका स्थान अन्तरिक्ष है, यह स्थान शून्यमात्र है, वहांपर ग्रहादि कुछ नहीं हैं। इस स्थानका परिमाण कहते हैं, वह तुम श्रवण करो जहांतक मेघमाला दृष्टि आती है और जहांतक वायु तीव्र वेगसे बहती है, इस स्थानका विस्तार भी वहीं तक है ॥५॥ हे राजन् ! यक्षोंके स्थानोंके नीचे शत योजन दूर यह पृथ्वी है, इसके ऊपर भागवाले भूर्लोकादिकोंकी सीमा कहते हैं, वह तुम सुनो। जहांतक पृथ्वीके विकार हंस, भास, बाज, गरुड़ आदि पक्षिराज

ततोऽधस्तात् सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥ ततोऽधस्तात् यक्षरक्षः पिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद् वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥ ६ ॥ उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्तभूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः ॥ अतलं १ वितलं २ सुतलं ३ तलातलं ४ महातलं ५ रसातलं ६ पातालम् ७ इति ॥ ७ ॥ एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसंति ॥ ८ ॥

उड़ते रहते हैं, वहांतक इस भूर्लोककी सीमा है ॥ ६ ॥ हे कौरववंशप्रवीर ! पृथ्वीमें जैसी स्थिति और जैसे-जैसे सब स्थान हैं, वह मैंने समस्त ही आपसे वर्णन किये। हे राजन ! पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, उनमेंसे एक-एक दश दश हजार योजनके मध्यमें विस्तारसे रचे हुए हैं। इन सात विवरोंके यह नाम हैं यथा--अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ॥७॥ इन सब नीचेके भुवनोंमें अर्थात् पातालोंमें फुलवाड़ियां, विहार करनेके स्थान स्वर्गसे भी अधिक रमणीक और काम भोग, ऐश्वर्य आनन्द और विभूतियों करके सुन्दर समृद्धियोंसे पूर्ण हैं और वहां मंदिर, वन, उपवन, उद्यान, विहारस्थल, इन सब स्थानोंमें दैत्य, दानव और सर्पगण घरोंकी भांति

रहकर परम सुखसे बसते हैं। उनके स्त्री, पुत्र, सुहृद, मित्र और नौकर-चाकर नित्य उनपर अनुरागी और सदा प्रफुल्लित रहा करते हैं। ईश्वर नारायणजीसे भी उनका कोई अभिलाष कभी अधूरा नहीं जाता, वे लोग सदा ही आनन्द उत्सव किया करते हैं॥ ८ ॥ हे महाराज! इन सब पातालोंमें मयदानवकी मायासे बनायी हुई अनेक पुरियां सदा दीप्तिमान् रहती हैं। वहांके भवन, प्राकार, गोपुर, चित्त-सारी, अटारी, सुचित्तस्थान, सभा, चौराहे और आयतन इत्यादि बड़े-बड़े स्थान मणियोंसे बने हुए शोभित हो रहे हैं। वहां विवरेश्वर गणोंके बड़े-बड़े ग्रहोंके भूभाग नाग, असुर, कपोतोंके जोड़े, तोते, मैना आदि पक्षियोंसे भरपूर हैं॥ इसलिये यह सब पाताल इन सब वस्तुओंसे मानो सर्व प्रकार सजकर विराज रहे हैं ॥९॥ वहांकी वाटिका और बागोंमें मालती, मदनबाण, गन्धराज इत्यादि अनेक

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्य-चत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥ उद्यानानि चातितरां मनइंद्रियानंदिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीर-नीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरि-न्द्रियोत्सवैरमरलोकाश्रियमरतिशयितानि ॥ १० ॥

प्रकारकी पुष्पलतायें पूरित ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे आलिंगन कर रही हैं और उन वृक्षोंकी शाखायें कोमल-कोमल हरी लाल, कोंपलों और फूल-फलोंके भारसे मानो नीचेको झुकी जाती हैं, जैसे सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर नीचेको झुक जाते हैं। उस अनुपम शोभाको देख-देख मन, इंद्रियें आह्लादसे पुलकायमान होती हैं, वहांके सब सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण, जिनमें मछलियोंके क्रीडा करनेसे वह जल चञ्चल रहता है और उन जलाशयोंमें अनेक प्रकारके कमल खिल रहे हैं—कुमुद, कल्हार, कुवलय, नीलकमल और लाल कमलके फूलोंके वनके वन खिले हुए रहते हैं। भांति-भांतिके पक्षियोंके जोड़े, उस स्वच्छ जलमें जहां-तहां पैरते रहते हैं, जब वे सब विहार करने और बोलने

लगते हैं, तो ऐसा मनोहर शब्द निकलता है, जिसको सुनकर सुननेवालोंकी इंद्रियां स्थिर नहीं रहतीं और चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। यह नगर अमर नगरकी शोभासे भी अधिक शोभायमान है ॥१०॥ इन पातालोंमें सूर्यादि ग्रहोंके न रहनेसे वहां दिन-रात्रिके कालका भी विभाग नहीं। इसलिये कालसेन जो भयकी संभावना है, वह भी वहां नहीं है ॥ ११ ॥ और यहां पर सब स्थानोंमें बड़े-बड़े सर्पराजोंके शिरकी मणियां अन्धकार का नाश करनेको सदा ही प्रकाशमान रहती हैं ॥१२॥ हे राजन्! इन सब स्थानोंमें जो लोग वास करते हैं; वे सदा ही दिव्य औषधियोंसे रस अन्न पिया खाया करते हैं, इसके पीने-खानेसे उनको कभी आधि (मनका दुःख) व्याधि (शरीरमें कुष्ठरोग)

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥ यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबान्धते ॥१२॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्य-दौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥ १३ ॥ नहि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवंति पतंति च ॥ १५ ॥ अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति ॥ यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति ॥ या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंल्लापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति ॥ यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति अयुतमहागजबल आत्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥

अथवा जरा आदि अवस्था नहीं प्राप्त होती, उनकी देहमें कुछ विवर्णता होनेकी सम्भावना नहीं। और दुर्गंधि अथवा पसीना परिश्रम अथवा उत्साहरहित होना इत्यादि यह बातें वहां कभी किसीको प्राप्त नहीं होती ॥ १३ ॥ इसलिये तेजरूप भगवान् नारायणके चक्र विना उनके ऊपर मृत्यु भी अपनी प्रभुताई नहीं कर सकती ॥ १४ ॥ हे राजन्! भगवान्का चक्र सब कुछ करनेका सामर्थ्य रखता है क्योंकि उसको कुछ भी असाध्य नहीं है, उसके पातालमें प्रवेश करनेसे दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ पतित हो जाते हैं ॥ १५ ॥ इस समय हम अतलादि नीचेके भुवनमें रहनेवालोंका वृत्तांत तुमको सुनाते हैं, अतल नामक प्रथम पातालमें मयदानवका पुत्र बलनामक असुर वास

करता है, इस बलासुरसे ही ९६ छयानवें माया उत्पन्न हुईं । कोई कोई मायावी उन सब मायाओंके कुछ-कुछ अंश अबतक धारण करते हैं, जब उस बलासुरने जँभाई ली तब उसके मुखसे स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली यह तीन प्रकारकी स्त्रियां उत्पन्न हुईं । हे राजन् ! जो स्त्रियां अपनी जातिके पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह स्वैरिणी, जो अपनी जाति और परायी जातिके सब पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह कामिनी और जो अनियमित हो व्यभिचार करनेवाली स्त्रियां हैं, वह पुंश्चली कहलाती हैं। यह सब स्त्रियां पहले कहे हुए पातालोंमें जो पुरुष आता है उसे सुहाटक नाम सुवर्ण रसके पिलानेसे भोग करनेमें समर्थ कर अपने असाधारण विलास-सहित अवलोकन, मंदहास्य, अनुराग सहित मीठे बोल और आलिंगन आदिसे अपनी इच्छानुसार केलि कराती हैं । हे राजन्! सुवर्णके रसका गुण बड़ाही आश्चर्य देनेवाला है। उसके सेवन करनेसे

ततोऽधस्ताद् वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते ॥ यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकीनाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति ॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥ १७ ॥

ततोऽधस्तात् सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चीकीर्षमाणेना दितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तस्वलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनाऽपि ॥ १८ ॥

पुरुष अपनेको 'हम ईश्वर हैं, हम सिद्ध हैं' इस प्रकारसे समझता है और दशहजार मतवाले हाथियोंके समान सामर्थ्यवान् होकर मदांधके समान किसीको कुछ न समझकर जहां-तहां निर्द्वन्द्वसा फिरा करता है ॥ १६ ॥ अतल नामक पातालके नीचे वितल नामक दूसरा पाताल है, वहां भगवान् हाटकेश्वर शिवजी अपने पार्षद गणों सहित और प्रजापतिकी सृष्टिको बढ़ानेके लिये भवानी-सहित मिथुनी भावसे विराजमान हैं। हे राजन् ! इस वितल नामक भूविवरसे ही भवऔर भवानीके वीर्यद्वारा हाटकी नामक नदी उत्पन्न हुई है। हे कौरव कुमार! एक समय वायुकी उत्तेजनासे अग्नि, शिव और पार्वतीजीके वीर्यको पीते थे, जिसको पीकर उन्होंने हाटकनामक सुवर्ण उगला । इस स्थानके रहनेवाले असुराधिपोंके रनवासमें पुरुष स्त्रियों सहित उसी सुवर्णके भूषण धारण करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वितलके नीचे तीसरा

पातालमें सुतल है, वहांपर महायशस्वी, पुण्यकीर्ति विरोचननन्दन महाराज बलिजी अबतक निवास करते हैं। हे महाराज ! भगवान् विष्णुजीने देवराजका प्रिय करनेकी इच्छा करके दितिसे वटु (वामन) रूप शरीर धारण करके प्रथम इन बलिका त्रिलोकीका राज्य हरण कर लिया, परन्तु पीछे फिर अपने आप ही कृपा करके उनको अपने राज्यमें प्रवेश कराया, जिससे राजा बलिके इतनी समृद्धि लक्ष्मी हुई कि इंद्रादि देवताओंके पास भी वैसी संपत्ति नहीं, इस कारण राजा बलि इस स्थानमें रहकर निरन्तर उन आराधना करने योग्य भगवान्की आराधना कर निर्भय रहते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! राजा बलिका सुतल पातालके मध्यमें जो इतना ऐश्वर्य हुआ वह उसको कुछ भूमिके दानका फल नहीं है। हे महाराज ! भगवान् वासुदेव जो सब जीवोंके नियन्ता और आत्माराम हैं, इसलिये साक्षात् परमात्मस्वरूप जो उनको

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत् तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे सर्वजीवनियन्तर्यात्मारामे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥ १९ ॥ यस्य ह वाव क्षुत्पतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति ॥ यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥

तीर्थके समान पात्र मिले, वह उनको श्रद्धा सहित सावधान मनसे परम आदरपूर्वक बलिराजाने उनको भूमिदान की, वही साक्षात् स्वर्गका द्वार हुआ। उसका फल परमपुरुषार्थ मुक्ति पदार्थ ही हो सकता है। यह अनित्य विभव किसी प्रकार उसका फल नहीं हो सकता ॥१९॥ क्योंकि क्षुधा, छींक, जँभाई गिरने आदिके समय भी जब पुरुष अवश होकर एकबार जिनके नामके उच्चारण करनेसे निश्चय कर्मकी फांसीसे छूट जाता है। हे राजन् ! कर्मबन्धन कुछ साधारण बंधन नहीं है। मुमुक्षु पुरुष लोग इस बंधनके ही हटानेके लिए योगानुष्ठानादि बड़े कठिन-कठिन क्लेश सहा करते हैं ॥ २० ॥ इसलिए उन भगवान्में समर्पण किया हुआ भूमिदानका फल यह ऐश्वर्यमात्र है, यह कभी संभव नहीं हो सकता। विशेष करके भगवान् भक्त लोगोंके प्रिय, आत्मज्ञानियों को ज्ञानके और अपने स्वरूपके देनेवाले वह क्या अपने

परमभक्त बलिके लिए किसी और प्रकारका आचरण कर सकते हैं ? ॥ २१ ॥ इसलिये राजा बलिके पास सुतल लोकमें जो इतना विभव हुआ, वह राजा बलिके प्रति यह भगवान्का अनुग्रह नहीं हुआ, क्योंकि भोग विभव केवल मायामय है, इससे तो परमेश्वरका स्मरण छूट जाता है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! राजा बलिकी एकान्तिक भक्तिका वृत्तान्त कहता हूँ उसे तुम सुनो--भगवान्ने और उपाय न पाकर भिक्षाके छलसे राजा बलिके तीनों लोक हरण कर लिये थे । केवल राजाका शरीरमात्र शेष अर्थात् बच रहा था, ऐसा करके भी उनको सन्तोष नहीं हुआ और फिर वरुणकी फांसीसे राजाको भलीभांति बांधा और पर्वतकी गुहाके समान पातालमें डाल दिया । परन्तु राजा बलिने इतना दुःख पाकर भी केवल इतना कहा था ॥ २३ ॥ यह इंद्र जिनके बृहस्पतिजी बड़े ही सहायक हैं और जिनकी सम्मति

न वै भगवान् नूनममुष्यानुजग्राह ॥ यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामय भोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥ यद्भगवताऽनधिगतान्योपायेन याञ्चाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रति मुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचत ॥ आत्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृतं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥ यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥

करनेके लिये इंद्रने वरण किया था, हमको ज्ञात होता है कि ये भी पुरुपार्थके विषयको कुछ नहीं जानते, क्योंकि इन्होंने उन उपेन्द्रको त्याग करके उनके द्वारा हमारे पाससे त्रिभुवन मांगा और स्वयं उनके दास होनेकी प्रार्थना न की, इसलिये जब भगवान् प्रसन्न हों तो उनके निकट दासभावकी ही प्रार्थना करनी उचित है । इस त्रिभुवनके गम्भीर वेगवान् कालका मन्वन्तर है, उसके सामने यह त्रिलोकीका राज्य क्या पदार्थ है ? ॥ २४ ॥ इस कारण हमारे दादा (प्रह्लाद) ने भगवान्से दासपन की ही भिक्षा मांगी थी । जब प्रह्लादके पिता हिरण्यकशिपु मर गयेतब भगवान् उनको उनके पिताका कंटकहीन राज्य देनेको उपस्थित हुए थे और उस राज्यके ले लेने

से कुछ भयकी भी संभावना नहीं थी, तो भी यह भगवान्से अलग है, यह विचार करके हमारे दादा प्रह्लादजीने उस राज्यको ग्रहण नहीं किया ॥ २५ ॥ परन्तु हम सरीखे पुरुष कि जिनके रागादि क्षीण नहीं हुए हैं, इससे भला ऐसे लोग जिनपर भगवान्की कृपा न हो किसे प्रह्लादजीके मार्गानुसार चलनेकी इच्छा न करें ॥ २६ ॥ योगी श्रेष्ठ शुकदेवजी इस प्रकारसे राजा बलिके कुछेक प्रभावको वर्णन करके बोले–कि हे राजन् ! बलिका चरित्र हम आगे (आठवें स्कंधमें) वर्णन करेंगे। हे भारत ! राजा बलिकी महिमा क्या वर्णन करें ? कि अखिल जगत्के गुरु भगवान् नारायणजी हाथमें गदा धारण किये उसके द्वारपर आठों पहर द्वारपालके समान पहरा दिया करते हैं। एक समय दशकंधर (रावण) राजा बलिके द्वारपर दिग्विजय करनेके लिए आया, तब भगवान् वामनजीने अपने चरणोंके अँगू-

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वाऽस्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥ २६ ॥ अथ तस्यानुचरितमुपरिष्टाद् विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निज जनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥ ततोऽधस्तात् तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादा-ल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥

ठेसे उसको उठाकर दश हजार योजनपर फेंक दिया क्योंकि भगवान्का हृदय अपने भक्तजनोंपर सदा ही दयासे पूर्ण रहता है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सुतल लोकके नीचे तलातल नामक पाताललोक है। जिस प्रकारसे सुतललोकमें भगवान्का भक्त राजा बलि भगवान् हरिका स्थापित किया हुआ सुखसे वास करता है, वैसे ही मय नामक दानव मायावी दैत्योंका गुरु त्रिपुरका अधिपति, जो महादेवजीसे रक्षित होनेके कारण तलातलमें पूजा जाता है। भगवान् त्रिपुरारि जब त्रिलोकीके मंगल करनेकी कामनासे प्रथम उससे तीनों पुर दग्ध कर दिये थे और पीछेसे उसके प्रति प्रसन्न हो गये, उनके प्रसन्न होनेसे वह दानव फिर उनके चरणकमल प्राप्त करके निर्भय हो पूजा जाने

लगा ॥ २८ ॥ तलातल लोकके नीचे महातल पाताल लोक है। वहां बहुतसे फण धारण करनेवाले कद्रुके पुत्र सरोष सर्प वास करते हैं। उन सब सर्पोंके मध्यमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण इत्यादि मुख्य हैं, उनकी देह अतिशय दीर्घ है, वे सर्प भगवान्‌के वाहन गरुड़जीके भयसे सदा उद्विग्नचित्त रहते हैं और कभी-कभी असावधान चित्त होकर स्त्री, पुत्र, सुहृद और कुटुंबियोंके संगमें कहीं-कहीं विहार करनेको जाया करते हैं ॥ २९ ॥ महातल लोकके नीचे रसातल पाताल लोक है। वहांपर दितिके पुत्र दानवगण और निवातकवच

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित् प्रमत्ता विहरन्ति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहत-बलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद् बिभ्यति ॥ ३० ॥

इत्यादि कालेय असुर समूह जो कि हिरण्यपुरमें वास करनेसे देवताओंके शत्रु विख्यात हुए हैं, वह लोग बिलेशय (सर्प) के समान वास करते हैं, यह सब यद्यपि जन्मसे ही महाबलवान और महा साहसी होते हैं, परंतु जिन भगवान्‌के तेजसे सब लोक देदीप्यमान हैं, उस तेजसे ही इनके बलका अभिमान टूटता रहता है। वह अबतक इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण किये हुए मंत्ररूप वाक्योंसे देवराज इन्द्रसे

* इस विषय में यह इतिहास वेदमें प्रसिद्ध है, कि "एक समय असुर लोगोंने देवताओंकी गायें हर करके छिपा रक्खी थीं, देवराज इन्द्रने उनको खोजने के लिये सरमा नामक देवताओंकी कुतियाको भेजा, सरमाको देखकर दैत्य लोगोंके मनमें यह शंका हुई कि कदाचित् देवराज इन्द्रको गायें छिपानेका वृत्त ज्ञात हो गया, यह समझ उन्होंनेसन्धि करनेके लिये सरमासे कहा कि क्या अच्छा है। परन्तु सरमाकी इच्छा सन्धि करने की नहीं थी वह इन्द्रकी स्तुति कर दैत्योंको क्रोध सहित बचन कहने लगी—अरे दैत्यो! तुम इन्द्र करके मारे जाओगे इस लिये शीघ्र भागो! तबसे यह सुनकर असुरगण सदा इन्द्रसे डरा करते हैं।"

भय पाते हैं । ॥ ३० ॥ महातलके नीचे पाताल लोक है, वहांपर वासुकी इत्यादि नागलोगोंके अधिपति गण अर्थात् शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त इत्यादि महाफणधारी और महाक्रोधी सर्प वास करते हैं । रसातलके नीचे पाताल नामक सातवां लोक है । उसमें बड़े-बड़े महाकाय और महारोषवाले सर्प रहते हैं । उसका अधिष्ठाता राजा वासुकी नाम नाग हैऔर महाकुलिश, महाशंख, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल अश्वतर और देवहत वासुकी-सहित ये दश नाग उनमें प्रतिष्ठित गिने जाते हैं । इन सब नागोंमें किसीके पांच मस्तक, किसीके सात, किसीके दश, किसीके शत और

ततोऽधस्तात् पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति ॥ येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते म० पञ्चम० अतलादिबिलवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्त्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं संकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥

किसीके सहस्र शिर हैं । उनके फणोंमें दीप्तिशाली जो बड़ी-बड़ी मणियाँ हैं, वे सब मणियाँ अपनी-अपनी ज्योतिसे पातालके घोर तिमिरको दूर कर देती हैं ❀ ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां अतलादिबिलवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥ दोहा--शेष सात पाताल तल, थित पचीस अध्याय । जिनते प्रकटे रुद्रजू, प्रलयकालको पाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! पातालकी जड़में तीस ३०००० सहस्र योजनकी दूरी पर भगवान्‌की जो तामसी नामक कला (अंश) है उसका नाम अनंत है । सारस्वत तंत्र निष्ठावाले अर्थात् भगवद्भक्त उनको संकर्षण कहा करते हैं । संकर्षण कहनेका यह हेतु है कि 'हम' हमारा' इत्यादि

सवैया---ज्ञानको भान प्रकाशत ही तम दूर भयो प्रगटो उजियारो । तुम मेरे नहीं मैं तेरा हूँ केशव बात यही भलिभाँति विचारो ॥ पानीकी लहर न लहरको पानी आँखन देख लियो भ्रम सारो । निर्भय रामत भिन्न नहीं कछु या विधि रामको रूप निहारो ॥

अभिमान जो मायाका चिह्न है, उस अहंकारके अधिष्ठान द्वारा वे द्रष्टा और दृश्यको खींचा करते हैं अर्थात् एकमें मिला देते हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! सहस्र शिरवाले अनंत मूर्ति जो भगवान् शेषजी हैं उनके एक शिरपर यह अवनिमण्डल सरसोंके दानेके समान धरा हुआ है ॥२॥ जो प्रलय कालमें इस जगत्के संहार करनेकी वासनासे संकर्षण नामक एकादश व्यूहमें रुद्र होते हैं और क्रोधके वश होनेके कारण थमती हुई मनोहर दोनों भ्रुकुटियोंको टेढ़ी करते तीन शिखावाला शूल हाथमें उठाते हैं ॥ ३ ॥ जिनके युगल चरण कमलके अरुण वर्ण नख मणिमण्डल दर्पणस्वरूप होनेसे उनके मध्यमें नागपतिगण बड़े-बड़े भक्तोंके साथ एकांत भक्तिके सहित नमस्कार करते-

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेवशीर्षाणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥ यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण सांकर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिखण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्त्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डलमण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥ ४ ॥ यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुंकुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥

करते हर्षित मनसे अपने-अपने वदनके प्रतिबिम्बको अवलोकन करते हैं । हे महाराज ! नागपति गणोंका वदन वास्तवमें देखनेके योग्य है, उनके श्रवणमें अति उज्ज्वल कुण्डल देदीप्यमान रहनेसे उन कुण्डलोंके प्रभामण्डलद्वारा उनकी ग्रीवा अतिशय शोभित होती है ॥ ४ ॥ नागराजोंकी कुमारियाँ अपने-अपने कल्याणकी कामना कर लजीले नेत्रोंसे उनके मुखारविन्दको अवलोकन करती हैं । इस लिये शेष भगवान्के वलय विलसित, विपुल, धवल, सुभग और रुचिर भुजरूप जो दो चांदीके समान स्तंभ हैं उनमें नागराजकी कन्यायें सदा

अगर, चन्दन और कुंकुमका लेप किया करती हैं, परन्तु उन भुजाओंके स्पर्श करते ही उनके हृदय मथित हो जाते हैं और मनमें मनोभाव जाग उठता है। उस समय उनका मन्दमन्द हँसना अतिशय रुचिर और ललित हुआ करता है। हे भारत ! नागराज कुमारियाँ भगवान्के जिस वदनको अवलोकन करती हैं, वह देखनेके ही योग्य है क्योंकि वह अनुराग और मदसे सदा ही हर्षयुक्त रहता है और उसी वदनमें करुणा अवलोकन युक्त दोनों नेत्र सर्वदा मदसे चलायमान और कुछेक रतनारेसे रहते हैं ॥ ५ ॥ कैसे वे नेत्र हैं कि-यह अनंत गुणसागर आदिदेव अनंतजी अपने क्रोधके वेगको रोककर सब लोगोंका मंगल करनेके लिये इस स्थानमें विराजमान हैं ॥ ६ ॥

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥ ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान् माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥ ७ ॥ य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायंभुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥ ८ ॥

वहांपर सुर, असुर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, उरग और मुनिगण निरंतर उनका ध्यान करते हैं और दोनों नेत्र मदसे सदा मुदित, विकृत और विह्वल रहते हैं, वे सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद देवतागणोंको सदा तृप्त किया करते हैं। नीलवर्ण वस्त्र धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, सुभग और सुन्दर दोनों भुजायें हैं। देवराज इन्द्रका हाथी जिस प्रकार कांचनमय जंजीर धारण करता है, वैसे ही शेष भगवान् वैजयन्ती माला धारण किये हुए हैं, उस मालाकी शोभा क्या कहें ? उसमें विमल सुगंधियुक्त मधुरसमें भ्रमरगण मत्त होनेसे उनके मधुगीती, चमत्कारी और श्रीधारी हो जाते हैं ॥७॥ शेष भगवान् इस प्रकार पूजन करनेसे और ध्यान धरनेसे मुमुक्षु जनोंके

हृदयमें प्रवेश करके उनके अनादि काल कर्म वासनासे गूँथे हुए और उनका देहाभिमान जो कि त्रिगुणात्मकसे रचा गया हृदयमें अविद्यासे पूर्ण है उस विकारकी गांठोंको शीघ्र खोल देते हैं। देवर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभामें तुम्बुरु गन्धर्वकेसाथ उन भगवान्की महिमा इस प्रकारसे वर्णन की थी ॥ ८ ॥ यथा-इस जगत्की उत्पत्ति इत्यादिका कारण सत्त्वादि तीन गुण, जिनके कटाक्षसे अपने-अपने कार्य करनेको समर्थ हुए हैं जिनका स्वरूप अनादि और अनंत है, जिन्होंने एकमात्र वस्तुस्वरूप होकर आत्मामें अनेक प्रकारके प्रपंच लगा दिये हैं, उन शेष भगवान् का तत्त्व यह लोक किस प्रकार जान सकता है ? ॥९॥ जिनसे सत्-असत् प्रकट होता है और जो हमसे भक्त

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् नानाऽधात् कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसादिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ॥ हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भागवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥

जनोंके ऊपर प्रसन्न होकर विशुद्ध तत्त्व मूर्ति धारण की है। अपने भक्त जनोंका मन वश करनेके लिये जिनकी रची हुई लीलाओंसे महा बलवान् पराक्रमी सिंह शिक्षा पाते हैं; ऐसे परमोदार अनंत बलवान् सहस्र शिरवाले शेष भगवान्को त्यागकर और किसकी आशा करें ? ॥ १० ॥ जिनका नाम औरके मुखसे सुनकर आते अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसीसे एकवार भी उच्चारण कर लेता है, उस पुरुषके और सुननेवाले पुरुषोंके अशेष पापोंका नाश कर देता है, फिर इसके कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? कि नाम शुद्ध है। इस लिये मुमुक्षु जन ऐसे भगवान्को छोड़कर और किसी पुरुषका क्यों आश्रय करेंगे ? ॥ ११ ॥ अहो जिनके यह सहस्र शिर हैं और

* शंका—श्रीशुकदेवजी महाराजने कहा कि, मुक्त होनेकी इच्छा चाहनेवाले लोगोंको हैं सो शेष भगवान्के अतिरिक्त दूसरा कौन है ? जिसका सेवन करें ? संसारसे मुक्तिके देनेवाले शेषभगवान्के अतिरिक्त दूसरा देवता और कोई नहीं है, ऐसा वाक्य कभी भी आजतक हमलोगोंने नहीं सुना कि मुक्ति देनेवाले शेष भगवान् हैं, शुकदेवजीने बालकोंकी नाई क्यों ऐसे वचन कहे ?

उत्तर—व्यास मुनिने शेष शब्दके दो अर्थ किये हैं, व्याकरणको जो मनुष्य नहीं जानते वह मनुष्य तो शेष उसीको कहते हैं; जो अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण कर रहे हैं और जो मनुष्य व्याकरणको अच्छी रीतिसे जानते हैं वह सब शेष शब्दका अर्थ इस प्रकार करेंगे कि, तीन लोक चौदह भुवनमें सब चरअचरका नाश हुए पीछे जिस भगवान्का नाश नहीं होता उसको शेष कहते हैं सोई शेष, भगवान् मुक्तिकी इच्छा करनेवाले जीवोंको सुख देनेवाले हैं इसीलिये मुक्तिकी इच्छा करनेवाले शेष भगवान्को छोड़के दूसरे किस देवताका पूजन करेंगे। जो संसारके नष्ट हुए पीछे शेष भगवान् केवल आपही आप रह जाते हैं उनके लिये श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा है।

उनमेंसे जिनके एक माथेपर नदियाँ, समुद्र, पर्वत-सहित समस्त भूगोल परमाणुमात्र स्थिर हो रहा है, जिनका विक्रम अनंत और अधिक है, कौन पुरुष है जो सहस्र मस्तक प्राप्त करके उन महाकाय, बहुरूप, महावीर्यवान् परमेश्वरके वीर्यकी गिनती कर सकता है ?॥ १२ ॥ अहो ! भगवान् अनंतजीका ऐसा प्रभाव है, उनके बल व अनुभवका क्या ठिकाना है ? परन्तु वे ऐसे होकर भी इस पृथ्वीके नीचे विराजमान हो लोकोंके हितार्थ लीलामात्र धरणीको धारण कर रहे हैं, उनका आधार कोई नहीं है, यह अपने आप ही अपने आधार हैं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा कह फिर राजा परीक्षित्से बोले कि हे राजन् ! हमने जिस प्रकारका उपदेश पाया था वैसे ही यह सब वृत्तांत आपसे वर्णन किया, सब लोकोंकी उनके कर्मानुसार गति बनायी गयी है । उसे सब मनुष्यगण अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त

मूर्धन्यर्पितमणुवत् सहस्रमूर्धो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥ आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत् सहस्रजिह्वः ॥ १२॥ एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगंतव्या गतयो यथाकर्मनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥ १४ ॥ एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत् कथयाम इति ॥१५॥ इति श्रीभागवते महापु० पञ्चमस्कन्धे पातालवर्णने शेषमहाराजस्वरूपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ महर्षे एतद् वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥

किया करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये पुरुषगण प्रवृत्तिलक्षण धर्म करनेसे उनके फलस्वरूपमें उनको यह बड़ी-बड़ी और छोटी-छोटी गति प्राप्त हुआ करती है। आपने जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही सब वर्णन हमने आपसे किया अब इस समय तुम क्या सुनना चाहते हो, वह हमसे कहो (परन्तु इस प्रवृत्तिमार्गमें लक्ष्मीके मदमें सब अन्धे हो जाते हैं) ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे भाषाटीकायां श्रीशेषस्वरूपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ दोहा–नरकनको वर्णन करूं अब छब्बिस अध्याय । धर्मदूत जहँ पापियन, देत दण्ड धमकाय ॥ अनन्तर राजा परीक्षित् निकट बैठे हुए श्रीशुकदेवजीसे बोले कि हे महाराज ! पुरुषकी

१. दृष्टान्त–एक बनिया रसोई जीमनेके लिये बैठा, तब मूसा थाली के समीप आकर नित्य कूदा करता था तब बनिया बोला इसके बिलमें कुछ धन है इससे यह कूदता है । उसका बिल खोदा तो बीस सहस्र रुपये २०००० निकले। फिर तो मूसेका कूदना बन्द हो गया । ऐसे ही धन पाकर सब संसार कूदता है, निर्धनसे चला भी नहीं जाता, यह बात प्रसिद्ध है ।

ऐसी अलग-अलग गति क्यों होती है? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणोंके तारतम्यके हेतु जो कर्ता है, उनको विचित्र होनेसे श्रद्धाकी विभिन्नतासे सब कर्म अलग-अलग हो जाते हैं। अर्थात् सात्त्विकी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको परमानंद और अनेक प्रकारका सुख मिलता है, राजसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको सुख दुःख दोनों प्राप्त होते हैं और तामसी श्रद्धा-सहित कर्म करनेवालेको केवल कष्ट ही भोगना पड़ता है और यदि उन श्रद्धाओंमें भेद हो जाता है, तब सब प्रकारकी गतियोंमें भी भेद-भाव हो सकता है ॥ २ ॥ इस कारणसे अधर्म करनेवालेके तमोगुणमें भेद श्रद्धाका विपरीताचरण कर्म फल होता है। इसलिये अनादि

ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धायाः कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥ अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद् भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद् यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥

अविद्याकृत सब कामनाओंको परिणाम स्वरूप वह सहस्र-सहस्र प्रकारकी नरककी गति (यातना) होती है। वह इस समय उनमेंसे प्रधान-प्रधान नरकका वर्णन करता हूँ आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे भगवन्! क्या सब नरक पृथ्वीके मध्यमें हैं अथवा कोई देश विशेष है? और क्या ब्रह्माण्डके बाहिरी भागमें हैं, अथवा ब्रह्माण्डके अभ्यन्तर पृथ्वीके व्यतिरिक्त कोई स्थान है? ॥ ४ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि त्रिलोकीके मध्यमें दक्षिण दिशाकी भूमिके नीचे और जलके ऊपर जिस स्थानमें अग्निष्वात्तादि पितृलोग वास करके परम समाधिका आश्रय कर अपने-अपने वर्णवाले पुरुष लोगोंकी मंगलकामना

किया करते हैं ॥५॥ अपने अथवा जिस स्थानपर पितृपति यमराज अपने गणोंकेसाथ अपनेस्थानमें आये हुए मृतक गणोंके कर्मानुसार इनके दोषका विचार कर उनको दण्ड देते हैं, वे सब विषयमें किसी अंशसे भगवान्के शासनका उल्लंघन नहीं करते हैं। ॥ ६ ॥ वहीं पर नरक है। ऋषियोंके मतसे इनकी संख्या इक्कीस है। हे राजन्! मैं तुमसे इन सब नरकोंका नाम, रूप, लक्षण और वृत्तांत कहता हूँ, सो तुम श्रवण करो। हे महाराज, इन इक्कीस नरकोंके नाम ये हैं, यथा-तामिस्र १, अन्धतामिस्र २, रौरव ३, महारौरव

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ तत्र हैके नरकानेकविंशति गणयन्ति ॥ अथ तांस्ते राजन् नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामः ॥ तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति ॥ किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकः अवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥ तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते ॥ अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥

४, कुम्भीपाक ५, कालसूत्र ६,असिपत्रवन ७, शूकरमुख ८, अन्धकूप ९, कृमिभोजन १०, सन्दंश ११,तप्तसूर्मि १२, वज्रकंटकशाल्मली १३, वैतरणी १४, पूयोद १५, प्राणरोध १६, विशसन १७, लालाभक्ष १८, सारमेयादन १९, अवीचि २० और अयःपान २१ हैं। इनके सिवाय १ क्षारकर्दम, २ रक्षोगणभोजन, ३ शूलप्रोत, ४ दंदशूक, ५ अवटनिरोधन, ६ पर्य्यावर्तन और ७ सूचीमुख यह सात नरक और हैं, इस प्रकारसे अट्ठाईस नरक अनेकप्रकारके कष्टके मूल हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य पराया धन, परायी स्त्री और पराया पुत्र हरण करते हैं, उनको भयंकर यमराजके गण घोर कालकी फांसीसे बांधकर बलात्कार तामिस्र नरकमें डाल देते हैं। इस नरकमें अन्धकार ही अन्धकार छा रहा है। उसमें गिरकर पापी भोजन व जल न पाकर और दण्डके ताड़नसे और तर्जना इत्यादि विविध व्यथा-

ओंसे पीड़ित होता है, इसलिये आर्त होकर शीघ्र ही मूर्च्छांको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य किसीको छल करके उसकी स्त्री आदि लेकर आप भोग करते हैं, वे अन्धतामिस्र नरकमें गिराये जाते हैं; जिस प्रकार वृक्षोंको गिरानेके लिये उसकी जड़को काटते हैं वैसे ही यमदूत पाप करनेवालोंको विविध भांतिकी पीड़ा देकर इस नरकमें डाल देते हैं, जो कि इस नरकमें गिरनेसे मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति, व्यथाके मारे भ्रष्ट और नष्ट हो जाती है, इसलिये ऋषिलोगोंने इस नरकका नाम अन्धतामिस्र रक्खा है ॥९॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इस संसारमें "यह शरीर मैं हूँ" और "यह धनादि हमारा है" इस प्रकारके अज्ञानमें मोहित होकर प्राणियोंके ऊपर विद्रोहाचरण करके प्रतिदिन केवल अपना

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते ॥ यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥ ९ ॥ यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥ १० ॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद् रौरवमित्याहुः ॥ रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥ ११ ॥ एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥

शरीर, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्बका भरणपोषण करता है वह मनुष्य इस देह और कुटुम्बको त्याग करके इस पापके कारण रौरव नरकमें गिराया जाता है ॥१०॥ हे महाराज ! इस नरकका रौरव नाम क्यों हुआ ? सो इसका भी कारण कहते हैं, तुम सुनो-इस संसारके लोग जिस-जिस प्रकारसे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे अपने किये हुए कर्मके दोषवश जब यमकी यातनाको प्राप्त होते हैं तब वे सब प्राणी रूरू होकर अर्थात् उनके किये हुए सब हिंसा कर्म 'रूरूरूप' परिणाम प्राप्त होकर उसी भांतिसे उनको मारते हैं, इसलिये ऋषि लोगोंने इस नरकको रौरव कहा है । हे राजन् ! जानते हो कि रूरू किसे कहते हैं ? सर्पसे भी अधिक खल भारशृङ्ग नामक एक जीव है उसका नाम रूरू है ॥ ११ ॥ महारौरव नरक भी इसी प्रकारका है । इस संसारमें जो मनुष्य केवल अपनी देहका ही भरणपोषण करते हैं, वे लोग

इस महारौरव नरकमें गिरते हैं, वहां पर क्रव्याद नामक रूरूगण मांस ग्रहण करनेके लिये उसको विविध प्रकारकी पीड़ा देकर विनष्टकर देते हैं॥ १२ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें अतिशय उग्रमूर्ति होकर अपने प्राणोंके पोषणार्थ पशु-पक्षियोंको जीवित ही पाक करते हैं। जो कि यह कर्म अति निर्दयी है, इसलिये राक्षसलोग भी इस कार्यकी निंदा करते हैं, जो ऐसा पाप करते हैं उनको परलोकमें यमदूत लोग कुम्भी पाक नरकमें डालकर तत्ते तेलमें भूनते हैं ॥१३॥ जो लोग पृथ्वीमें ब्राह्मण, पिता और वेदसे विद्रोहाचरण करता है वह कालसूत्र नामक नरकमें गिराया जाता है। इस नरककी परिधि दश हजार योजन है, उसमें तांबेके समान गर्म भूमि है। ब्रह्मद्रोही इस नरकमें पड़कर

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति॥१३॥यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरकेऽयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिश्शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासादितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तलवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति तया परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते॥१५॥

ऊपरसे सूर्यकी किरणोंको और नीचेसे अग्निके उत्तापको पाकर सन्तापित होते हैं। क्षुधा और प्यासके मारे उनकी देह भीतर और बाहर दग्ध होती है। वह जीव इस प्रकारकी पीड़ा से पीड़ित होकर कभी गिर पड़ता है; कभी बैठता है, कभी खड़ा हो जाता है, कभी चारों ओर भागता-फिरता है, पशुओंकी देहमें जितने रुवें हैं, उतने ही सहस्र वर्ष तक इस पापीको यह पीड़ा भोगनी पड़ती है। यह बात ठीक ही है कि--"अहिंसा परमो धर्मः" कहा भी है कि दोहा—दुर्बलको न सताइये, जाकी मोटी हाय। मुई खालकी श्वाससे, लोह भस्म ह्वैजाय॥" इस कारण पशुओंका वध न करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो मनुष्य विना विपत्ति आये, इच्छानुसार वेदमार्ग छोड़ देते हैं और पाखंड धर्म ग्रहण कर लेते हैं, उनको यमके दूत असिपत्रवन नामक नरकमें ले जाकर कोड़ोंकी मार लगाते हैं। यह पापी वहांपर प्रहारकी वेदनासे इधर-उधर भागता फिरता है, वह भागनेके कारण तालवान् और असिपत्र, जिनकी तलवारकी धार समान अनी बनी हैं उनके लगनेसे उस पापीके

अंग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। तब वह पापी हाय ! मैं मारा गया,हाय! मैं मारा गया, कहकर अतिशय यंत्रणा पाकर तीव्र व्यथाके मारे मूर्छित होकर पग-पगपर गिर पड़ता है। हे राजन्! अपने धर्मको त्याग करनेवाला इस प्रकारसे अपने धर्मको त्याग पाखंड मत ग्रहण करनेका फल भोगता है, कहा भी है कि-"स्वधर्म्में निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" ॥ १५ ॥ जो राजा अथवा राजपुरुष (नगरपाल, कोटपाल, इत्यादि दंड देनेवाले) विना दंडके योग्य पुरुषको दंड देते हैं वा ब्राह्मण जातिको प्राणान्तक दंड देते हैं, वे राजा और राजपुरुषादि अतिशय पापी होते हैं, वे लोग इस पापके करनेसे परलोकके मध्य शूकरमुख नामक नरकमें गिरते हैं; किसान लोग जिस प्रकार गन्नेको कोल्हूमें पेरते हैं, वैसे उस नरकमें अतिशय बलवान् राजा अथवा यमकिंकरगण राजपुरुषके अंगोंको इसी प्रकारसे पिची करते

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्डचे दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान् नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्त्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति ॥ तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥ १७ ॥

हैं, जिससे पापी लोग चिल्ला-चिल्लाकर अति नाद करते हैं। जिस प्रकार राजा अथवा राजपुरुष निर्दोषी पुरुषोंको दंड देते हैं और उस समय वे मोहको प्राप्त होकर मूर्छित हो जाते हैं, वैसे ही नरकमें राजा और राजपुरुष मोहित और मूर्छित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ परमेश्वरने जिसका ब्राह्मणादि स्वभाव देखकर विधि-निषेधकी व्यवस्था कर दी है और परमेश्वरके दिये हुए विवेकके बलसे औरकी पीड़ा जाननेको जिनका सामर्थ्य है वह मनुष्य यदि उन प्राणियोंको कि जिनकी वृत्ति मनुष्यरक्त पीनेकी ईश्वरने बनायी है, उन खटमल आदि जीवोंको पीड़ा दे या मार डालें, तो इस पापके करनेसे परलोकके मध्य वह अन्धकूपमें डाला जाता है। ये सब प्राणी अर्थात् पशु, पक्षी, मृग,

सरीसृप, मच्छर, जूं, खटमल और मक्खी आदि जिस किसी जीवको जो कोई प्राणी मारता है, वही जीव सब चारों ओरसे उस नरकमें उस पापीको मारते काटते हैं और अन्धकारके मारे उस प्राणीको नींद नहीं आती, जीव जिस प्रकार पीड़ित शरीरमें रहकर अनेक दुःख भोगता है, वैसे ही यह मनुष्य अन्धकारमें पड़ा तड़फता रहता है और कहीं बैठनेका स्थान नहीं पाता, कीड़े दिनरात काटते रहते हैं ॥१७॥ जो मनुष्य किसी प्रकारकी भोजन करने योग्य उत्तम वस्तु उपस्थित होनेपर विना बाँटे किसीको न देकर और पंचयज्ञके अनुष्ठान करनेसे विमुख हो अकेला आप खा जाता है, ऋषिलोग उस पुरुषको कौएके समान आचारहीन कहकर वर्णन करते हैं, वह मनुष्य कृमिभोजन नामक नरकमें पड़ता है, उस नरकमें एक लाख योजन विस्तारवाला कृमिकुण्ड है। यह मनुष्य उसी कुण्डमें पड़कर स्वयं कृमि

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८ ॥ यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद् वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वाऽपहरति अन्यस्य वाऽनापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः संदंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥ १९ ॥ यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥ २० ॥

बन कृमियोंको ही भक्षण करता है, इस प्रकारसे जबतक उनके काटने और पंचयज्ञ न करनेके प्रायश्चित न करनेवाले पापीका पापक्षय नहीं होता तबतक उसकी आत्माको वहां कष्ट होता रहता है ॥१८॥ जो मनुष्य चोरीसे अथवा बलसे ब्राह्मणका सुवर्ण या रत्नादि हरण कर लेते हैं अथवा विना आपदा आये किसी पुरुषकी वस्तु चुरा लेते हैं, तो यमकिंकर उसका शरीर लोहेके बने हुए तपाये चिमटोंसे तोड़ते हैं और सन्दंश नामक नरकमें डाल देते हैं। हे राजन्! इस लोकमें जो पुरुष अगम्य स्त्रीसे गमन करता है वा स्त्री अगम्य पुरुषको भजती है, इन दोनों जनोंको यमके दूत निर्दयी होकर वारंवार कोड़ोंकी मार किया करते हैं और पुरुष लोहेकी बनी तपायी हुई स्त्रीको मूर्तिसे और स्त्रीकी लोहेकी बनी

तपायी हुई पुरुषकी मूर्तिसे लिपटाते हैं ॥२०॥ जो मनुष्य पशु आदिकोंके संघ मैथुन करता है, उसको यमदूत नरकमें डालकर वज्रकंटक-युक्त शाल्मलीवृक्षके ऊपर चढ़कर छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ॥२१॥ इस पृथ्वीमें जो राजालोग अथवा राजपुरुष अच्छे कुलमें उत्पन्न हो धर्मकी मर्यादाको तोड़ देते हैं, वे सब वैतरणीमें गिराये जाते हैं। वह वैतरणी सब नरकोंकी खाई स्वरूप है, वहाँ जलजन्तु गण इधरसे इन पापियोंको भक्षण करते हैं, जिससे कि उनकी आत्मा वियुक्त होकर प्राण निकल जाते हैं, वे पापी लोग अपने-अपने किये हुए अधर्म कर्मोंका स्मरण करके विष्ठा, मूत्र, पूय, रुधिर, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और वसा बहनेवाली उस नदीमें गिरकर सब प्रकारसे

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥ ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्त उपतप्यन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥ २२ ॥ ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलपूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान् निघ्नन्ति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥ २४ ॥

सन्तापित हुआ करते हैं ॥२२॥ जो मनुष्य इस लोकमें शूद्रोंके पति होकर अपने-अपने शौच, आचार और नियमोंको नाश कर देते हैं और निर्लज्ज होकर पशुके समान इच्छाचारी होकर घूमते हैं, वे परलोकमें पूय, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा और लारसे पूर्ण हुए एक समुद्रमें गिर पड़ते हैं और अतिघृणित इन सब वस्तुओंको भक्षण करते हैं ॥ २३ ॥ हे राजन्! इस संसारमें जो ब्राह्मणादि वर्ण कुत्ते और गधोंको पालकर उनके स्वामी बनते हैं और शिकार द्वारा विहार करते हुए शास्त्रके विना बताये समयमें मृगोंका वध करते हैं, जब उनकी

मृत्यु होती है, तब यमदूत लोग उनको लक्ष्य बना-बना कर बाणोंसे वेधा करते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें दम्भयुक्त होकर दम्भके अर्थ किये हुए यज्ञोंमें पशुगणोंको मारते हैं, वे परलोकके मध्य वैशस नामक नरकमें पड़ते हैं, यमदूत इस नरकमें ऐसे पापियोंको विविध भांतिकी पीड़ा देकर उनके अंगोंको छिन्न-भिन्न किया करते हैं ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इस लोकमें कामके वशीभूत होकर अपनेसे विना व्याही स्वजातिकी स्त्रीमें वीर्य छोड़ता है, अर्थात् मैथुन करता है, तो मरे पीछे यमदूत लोग उस पापा-

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान् निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥ २५ ॥ यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्त शतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥ २७ ॥

त्माको वीर्यकी नदीमें गिराकर वीर्य पिलाते हैं ॥२६॥ जो मनुष्य इस लोकमें चोर वृत्ति अवलम्बन करते हैं, अथवा गृहोंमें अग्नि लगाते हैं अथवा प्राणनाश करनेके लिये विष पिलाते हैं, और जो राजा अथवा राजसेना ग्राम मेलेको लूट लेते हैं ऐसे मनुष्योंके मरनेके पीछे सात सौ वीस (७२०) संख्यावाले यमदूत हैं, वे श्वानका रूप धरकर अपनी वज्रतुल्य डाढोंसे उनको फाड़-फाड़ कर हड्डियोंसमेत चबा जाते हैं ॥२७॥

---

१. शंका–हम सबने ऐसा कभी नहीं सुना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्वान, गर्दभ आदि जो पशु हैं उनके पति होते हैं, शुकदेवजीने ऐसे वचन क्यों कहे ?

उत्तर–श्वानका पति होना तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिए प्रकट ही है, क्योंकि उस श्वानको तीन वर्ण पालते हैं और गर्दभका पति होना तीनों वर्णोंको नहीं चाहिये। किसी-किसी देशमें बकरेको भी गर्दभ कहते हैं और बकरेका पालन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका चारों युगोंमें चला आया है। कोई यज्ञके लिये, कोई जीवकी दया मानकर, इन तमाम कारणोंसे बकरेको पालते थे, इसलिए व्यासनन्दन श्री शुकदेवजीने तीनों वर्णोंको श्वान गर्दभका पति कहा, क्योंकि तीन वर्णोंको कुत्ता, बकरा, पालना धर्म शास्त्रमें अत्यन्त बुरा लिखा है, परंतु जो प्राणी प्रमादसे उनका पालन करते हैं, वे अत्यन्त दुःख भोगते हैं।

जो मनुष्य इस लोकमें गवाही देनेके समय, अथवा न देनेके समय, वा दान देनेके समय, किसी प्रकारसे मिथ्या बोलते हैं, तो उन्हें यमके किंकर नीचेको शिर करके सौ योजन ऊंचे पर्वतके शिखरसे अति ओछे अवीचि नामक नरकमें डालते हैं। हे राजन्! अवीचि नाम नरकका वृत्तांत कहते हैं वह तुम सुनो कि जहांपर पाषाणकी पृथ्वी भी जलके समान जान पड़ती है, इस लिये उस नरकका नाम अवीचि नियत किया है, यमदूत उन पापियोंको उस नरकमें डालते हैं, उनके देहके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं तो भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते और फिर उस पापीको पर्वतके ऊपर ले जाते हैं और वहांसे उसको गिरा देते हैं, इसी प्रकारसे अनेक भांतिकी पीड़ा देते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन्!

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित् स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत् तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥ २९ ॥ अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्छिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥ ३० ॥

इस लोकमें जो ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय सुरापान करे वा और कोई मनुष्य जो कि अपने नियमसे रहित है और क्षत्रिय अथवा वैश्य यज्ञार्थ सोमपान करके फिर अज्ञानतासे मदको पीता है, यज्ञके देवता लोग ऐसे पापियोंको नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर लात मारते हैं और अग्निके संयोगसे पिघलाया हुआ कृष्णवर्णका लोहा उनके मुखमें डालकर सब शरीरपर छिड़कते हैं ॥२९॥ हे राजन्! इस लोकमें अधम पुरुष जो अपनेको बड़ा कहकर अहंकार करते हैं, तपस्या, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रम आदि द्वारा श्रेष्ठ पुरुषोंका आदर-सम्मान नहीं करते, वे जीवितही मृतकतुल्य हैं और मरनेके पीछे परलोकमें वे क्षारकर्दममय नामक नरकमें नीचेको शिर करके डाले जाते

हैं और अनेक यातना पाते हैं॥३०॥जो पुरुष इस लोकमें दूसरे पुरुषको मार करके उसको भैरवादि देवताके यज्ञमें होम देते हैं और जो स्त्री पुरुष उस बलि दिये हुए मनुष्यके शुष्क मांस आदिको खाते हैं, वे निहत मनुष्य अथवा पशु परकालमें तमोरूप राक्षस हो जाते हैं और जिस प्रकार इन सब मनुष्योंने पहले इनको भक्षण करकेनृत्य कियाथा वैसे ही वे यमसदनमें उन समस्त पुरुष स्त्रियोंको कसाइयोंके समान उनका शरीर अस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न करते हैंऔर हर्षसहित उनका शोणित पान कर करके नृत्य करते हैं॥३१॥जो मनुष्य इस लोकमें विना अपराध प्राणियोंको ग्राममें अथवा वनमें विश्वासके उपायोंसे विश्वास दिलाकर शूल व डोरी आदिसे बाँधते हैं और जीवनकी रक्षा चाहनेवाले उन सब प्राणियोंको खिलौनेके समान समझकर उनके साथ निर्दयीपनेके खेल करके अनेक प्रकारकी ताड़ना देते हैं, उन्हें मर-

येत्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषाः ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भिकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनक-तया घातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां वाऽभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्त-तस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥ ३२ ॥ ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अन्धावटकुशूल गुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥ ३४ ॥

नेके पीछे परलोकमें शूलादि यमयातनासे छिन्न-भिन्न देह और क्षुधा, तृषासे मरना पड़ता है और कौए बटेर इत्यादि भयंकर चोंचधारी पक्षिगण उसको इधर-उधरसे आघात करते हैं, तब वह पापी जीव विषादपूर्वक आर्त होकर अपने किये हुए पापोंका स्मरण कर करके पछताते हैं॥३२॥ जो मनुष्य राक्षसोंके तुल्य उग्रस्वभाव हो इस लोकमें प्राणियोंको व्याकुल करते हैं, वे परकालमें दन्दशूक नामक नरकमें गिरते हैं । हे राजन् ! वहाँ पंचमुख और सप्तमुखवाले राक्षस उनको चूहेके समान धरकर निगल जाते हैं ॥३३॥ जो मनुष्य इस लोकमें अंधकारमय गढ़े, कोठे और गुहादिकोंमें प्राणियोंको बंद करके यातना देते हैं, वे लोग परलोकमें इन ऊपर कहे हुए सब स्थानोंमें आप ही

बंद हो जाते हैं और विषसहित अग्नि और धुएँसे महा पीड़ाको प्राप्त होते हैं ॥३४॥ जो मनुष्य इस लोकमें गृहस्वामी हो अतिथि और अभ्यागत को देखकर क्रोध करता है और रोषके वश हो मानो टेढ़ी आंखसे उनको दग्ध करता हुआ देखता है, वह मनुष्य परलोकके विषे नरकमें गिरता है और इस पापदृष्टि वाले मनुष्यकी दोनों आंखें वज्रतुल्य चोंचसे कंक, बटेर, गीध इत्यादि पक्षीगण बलसे निकाल लेते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें धनके गर्वसे "हम श्रेष्ठ हैं" इस प्रकारका अभिमान कर टेढ़ी दृष्टि करते हैं और सबके ही प्रति यह शंका करनेवाला कि यह धन हरण कर लेगा, धनके व्यय होनेका कारण नाश होनेकी चिन्तासे जिसका वदन सदा शुष्क रहता है इस लिये वह

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य वाऽपि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥ यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृत्तिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रह पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायसा इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥ एवंविधा नरका यमालये संति शतशः सहस्रशः ॥ तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशंति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र ॥ इह तु पुनर्भवेत उभयशेषाभ्यां निविशंति ॥३७॥ निवृत्तिलक्षमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावनेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पत उपगीयते यत् तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठंरूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥

किसी प्रकारसे सावधान नहीं रह सकता है, वरन् वह पहरेदारके समान धनकी केवल रक्षा किया करता है, जो मनुष्य इस प्रकारसे धनके इकट्ठा करनेमें, बढ़ानेमें और केवल उसकी रक्षा करनेमें ही अपने मनको लगाता है, ऐसा करनेसे वह पापी होकर परकालमें सूचीमुख नरकमें गिरता है, वहां उस धनके लालची पापी पुरुषको यमके दूत दरजियोंके समान सब भांतिसे सर्वाङ्गको विद्ध करके डोरीमें पोहते हैं ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपते ! यमालयमें इस प्रकारके सहस्रों नरक हैं, यहांपर जिन-जिन पापियोंका वृत्तान्त कहा, वे सब ही इन सब

नरकोंमें डाले जाते हैं। हे भूपाल ! जिस प्रकार पापकारी लोग इन ऊपर कहे हुए नरकोंमें गमन करते हैं, वैसेही धर्मके आचरण करनेवाले अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं परंतु जिन सब पुरुषोंके भोगद्वारा धर्म और अधर्मका अंत होता है, तब वे लोग फिर जन्म ग्रहण करनेके लिये मृत्यु लोकमें आकर प्रवेश करते हैं॥३७॥हे राजन् ! निवृत्ति स्वरूप जो धर्मका मार्ग है वह पहले ही "दूसरे स्कन्धमें" मैंने आपको सुना दिया है और सब पुराणोंने जो इस भुवनकोषको चौदह प्रकारसे कल्पना किया है, वह सब प्रकारसे ऐसे ही हैं, जैसे हम वर्णन कर आये हैं, यही महापुरुष भगवान् वासुदेवकी मायाके गुणोंका स्थूलरूप है, इसका विवरण जो पुरुष आदर सहित श्रद्धा और भक्तिसे पढ़ता और श्रवण करता है, उनकी बुद्धि विशुद्ध होजाती है, अतः वे भगवान् परमात्माके गूढ़ उपनिषद्—संबंधीय विषय जान

श्रुत्वास्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ॥ स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मे धिया नयेत् इति ॥ ३९ ॥ भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभस्समुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥ गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥ हरिः ॐ ॥ समाप्तोऽयं पञ्चमस्कन्धः ॥

सकते हैं ॥ ३८ ॥ इस लिये यती लोग भी भगवान्के स्थूल सूक्ष्मरूप यथावत् श्रवण करके स्थूलविषयोंकी चिन्ता करते हुए आत्माको जीत करके फिर बुद्धिद्वारा क्रम-क्रमसे सूक्ष्म विषयोंमें भी स्थापन कर लेते हैं॥ ३९ ॥ श्रीशुक देवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! पृथ्वीके मध्यमें द्वीप, वर्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, आकाश, दिक्, नक्षत्र, पाताल, नरक इत्यादिकी रचना जिस प्रकारसे हुई है, वह तुमसे सब हमने वर्णन की। यह समस्त लोक रचना भगवान् ईश्वरका स्थूल शरीर है जो सब जीवसमूहोंका आश्रय है ॥ इस बातपर एक कवित्त है * ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीका अष्टाविंशतिनरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* कवित्त—भक्तजन निज निभावनाके अनुसार, सभी न्यारे न्यारे रूप रामके सँभारैं हैं। मुनिजन सच्चितआनन्दरूप रामहिको, प्रकट प्रलय चिंत्य हृदयमें विचारैं हैं। योगीजन प्राणनको धारकै कपालमाँहि, रामको प्रकाश रूप त्रिकुटीमें निहारैं हैं। ज्ञानी जन रामहिको रूप लखें सर्व ठौर, नाना नाम रूपनकी कल्पना विडारैं हैं।१॥ कोटि कोटि यत्ननते छूटैं नाँहि जन्म मृत्यु, एक रामनाम सो सो बन्ध सब टारैं हैं। कोटि कोटि मन्त्रनसे अन्तर न शुद्ध होत रामहिका नाम एक कलिमल जारैं हैं। कोटि कोटि वस्तु पाय तृष्णा नाँहि दूर होत, एक रामनाम सब तृष्णाको विदारैं हैं। कोटि कोटि देवनको ध्यायें नाँहि राम मिलें, रामहीके ध्याये निर्भय रामको निहारैं हैं ॥२२॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते पञ्चमस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते षष्ठंस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

परीक्षित
शुक

यमदूत
विष्णुदूत

अजामिल
विष्णुदूत

विश्वरूप
देव

वृत्रासुर
इंद्र

स्त्रिया
अंगिरा
नारद
चित्रकेतु.
मृतपुत्र

ऋ.मं.
शंकर
चित्रकेतु
विमानमें

इंद्र
दिति

दोहा—विघ्नहरण मंगल करण, सोहत हाथ त्रिशूल। विद्यावर—दायक सदा, सिद्धि—सदन सुखमूल ॥ १ ॥ कृष्णचरण कोमल अमल, सकल-सिद्धि-दातार। तिनकी रज अज शीशधर, रचत भुवन दशचार॥२॥दोहा—पहिलेमें हरिदूतने, पापी लीन छुटाय। यमदूतन यमराजसे, कही कथा सब जाय॥ राजा परीक्षित् योगिवर श्री शुकदेवजीसे विनय सहित वाणीसे फिर पूछने लगे कि, हे भगवन्! आप प्रथम (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्ग यथावत् कह आये हैं, जिसके क्रमसे अर्च्चिरादि लोककी प्राप्ति होकर फिर उससे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है और उसीसे ब्रह्माजीके संग मोक्ष हो जाता है ॥ १ ॥ हे मुने! दूसरा प्रवृत्तिरूप जो मार्ग है स्वर्गादि सुख ही जिसका साधन है

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ॥ क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १ ॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणा नानानरकाश्चानुवर्णिताः ॥ मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥ ५ ॥ अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥

और प्रकृतिके लय न होनेसे जो पुरुषका बार-बार भोगार्थ देहारंभस्वरूप है, वह भी आप पीछे (तीसरे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं ॥ २ ॥ और अधर्मस्वरूप जो अनेक प्रकारके नरक हैं, उनका भी वर्णन आप कर ही चुके हैं, और मन्वन्तरकी भी व्याख्या आपने कही ही है; जिसमें स्वायम्भुव मनु प्रथम हुए ॥ ३ ॥ इसके पीछे आपने प्रियव्रत और उत्तानपाद राजाका वंश और उनका चरित्र वर्णन किया और द्वीप, खण्ड, समुद्र, नदी, पहाड़, उद्यान, वृक्षादिकी भी स्थिति आपने कही ॥ ४ ॥ पृथ्वीमण्डलकी स्थिति, भाग, लक्षण, प्रमाण, ज्योतिश्चक्र और भूमिके विवर, जिस प्रकार ईश्वरने रचे, उन सबकी आपने व्याख्या की ॥ ५ ॥ हे महाभाग! अब वे मनुष्य

---

१ कवित्त—लसत अमंद मंद हँसत मुखारविन्द, सोहत पटपीत और उर वनमाल है। बांयें हाथ बांसुरिया दायेंमें लकुट लिये, पांयनमें घुंघुरू और अलबेली चाल है। अलके अमोल लोल कुण्डल कपोल गोल मोरि, मोर पंखनको शीशपर विशाल है। कोटिन मन्मथके मनको मथनहारो, ब्रजमें उत्पन्न भयो नन्दजीको लाल है ॥१॥

गण जिस उपायसे घोर-कठोर विविध भांतिकी पीड़ाओंके आधार नरकोंको, प्राप्त न हो सकें, अतः इस समय अनुग्रह करके वही कथा आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जो पुरुष शरीर अथवा मन व वचनसे कोई पाप करके इस लोकमें उनका प्रायश्चित मनुआदि ऋषीश्वरोंके कहे अनुसार नहीं करते हैं, तो जिन नरकोंके नाम प्रथम कह आये हैं और जिसमें घोर पीड़ा विद्यमान रहती है, मरनेके पीछे वह पुरुष निःसन्देह उन नरकोंमें पड़ते हैं ॥ ७ ॥ इस लिये मरनेसे पहले ही अर्थात् जीवित अवस्थामें ही जिससे विपत्तियोंसे बचा जाय तबतक मनको नियमित रखकर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करनेका यत्न करना उचित है, नहीं तो अधिक समय बीत जानेसे दुगुना प्रायश्चित्त करना होगा । जैसे सब रोगोंके निदानका जाननेवाला वैद्य जिस

श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं यथांऽहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ॥ ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥ तस्मात् पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत् पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥ ९ ॥ क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥ १० ॥

प्रकार रोगका भारी और हलकापन विचार कर अर्थात् वात, पित्त, कफकी न्यूनाधिकता देखकर चिकित्सा करता है, वैसे ही छोटा-बड़ा पाप विचार कर उसके समान ही प्रायश्चित्त करना उचित है ॥८॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! पाप करनेसे राजा दंड देता है, यह तो प्रत्यक्ष ही है, इसके अतिरिक्त पाप करनेवाले नरकमें गिरते हैं, यह शास्त्रोंमें सुना ही है, इससे जाना गया कि अवश्य ही पाप अपना अहितकारी है, परन्तु ऐसा जान-बूझकर भी प्रायश्चित्त करनेके पीछे पुरुष विवश होकर फिर पाप करते हैं, इस लिये द्वादश वार्षिक व्रतादिकोंको किस प्रकार प्रायश्चित्त कहकर गिन सकें, क्योंकि इनसे मूलसहित दोषकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ दूसरे कभी प्रायश्चित्त करके पापसे निवृत्ति पाता है, कभी फिर वैसा ही पाप करता है । इसलिये यदि एक बार ही पाप जड़ (मूल) से न उखड़ गया, तब

तो अवश्य ही नरकमें गिरना पड़ेगा जब यह प्रमाण पाया गया तब फिर प्रायश्चित्त करनेका प्रयोजन ही क्या है ? हम समझते हैं कि ऐसा प्रायश्चित्त हाथीके नहानेके समान व्यर्थ है, क्योंकि हाथी स्नान करनेके उपरान्त फिर अपनी देहको धूलिसे वैसा ही मलीन कर लेता है, वैसे ही मनुष्य प्रायश्चित्त करके यदि फिर पाप करे तो फिर भी उसको नरकमें पड़ना ही होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कर्मसे कर्मका विनाश नहीं होता और चान्द्रायणादि जो प्रायश्चित्त हैं उनसे इस प्रकारकी वाञ्छा नहीं की जा सकती कि इनसे एक बार ही पापका नाश मूलसहित हो जायगा, क्योंकि इन सब प्रायश्चित्तोंके अधिकारी अविद्वान् लोग हैं, उनकी अविद्याका नाश होने पर प्रायश्चित्तसे एकबार पापका क्षय होनेपर भी संस्कारके वश फिर वे लोग दूसरे पाप करने लगते हैं, हे राजन् ! यदि तुम पूछो कि

श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ॥ अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥ नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ॥ एवं नियमकृद्राजञ्छनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ॥ त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥ देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयाऽन्विताः ॥ क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ॥ अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥

मुख्य प्रायश्चित्त क्या है ? तो इसका उत्तर यह है, कि ज्ञान ही मुख्य प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ परन्तु नित्य सावधान होकर यत्न करनेपर क्रम-क्रमसे यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है; यह नहीं कि एकबार ही प्राप्त हो जाय। जैसे कोई नित्य ही केवल पथ्यसे अन्न ही भोजन-करे तो धीरे-धीरे उसको सतानेके लिये सब व्याधि असमर्थ हो जायँगी ऐसे ही नियम करनेवाला पुरुष भी क्रम-क्रमसे ब्रह्मज्ञानके जान नेको समर्थ हो जाता है ॥ १२ ॥ इस कारण धर्मज्ञ वीरपुरुष श्रद्धायुक्त होकर तप (मन और सब इंद्रियोंकी एकाग्रता), ब्रह्मचर्य, शम (मनको रोकना), दम (बाहरी इंद्रियोंको रोकना), दान, सत्य, शौच, यम (अहिंसा) अथवा नियम (जपादि) से मन, वचन, कायसे किये हुए संपूर्ण बड़े-बड़े पापोंको भी नष्ट कर देते हैं। जैसे अग्नि बांसोंके वनको जला डालती है ॥ १३ ॥ इसलिये ऐसा ही प्रायश्चित्त

मुख्य है, परन्तु इसके अतिरिक्त और भी प्रायश्चित्त हैं। अर्थात् वासुदेव परायण कोई-कोई जन केवल भक्तिसे ही अपने समस्त पापोंको उखाड़ कर फेंक देते हैं, जैसे सूर्य भगवान्की किरणोंसे कुहरके अन्धकारका नाश हो जाता है॥१५॥हे कौरवराज! यह भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि पापी पुरुष भगवान्में मन समर्पण करके भगवद्भक्त पुरुषोंकी सेवामें मन लगानेसे जिस प्रकार पवित्र हो सकता है, वह तपस्यादिक करनेसे ऐसा पवित्र कभी नहीं हो सकता॥१६॥ इसलिये इस लोकमें भक्तिमार्ग ही सबसे उत्तम मार्ग है और परम कल्याणदायक है। इस मार्गमें किसी प्रकारके विघ्नादिकी भी संभावना नहीं हैं, सुशील, दयालु, निष्काम और नारायणपरायण साधु लोग इस मार्गमें नित्य वर्तमान रहते हैं। इसी कारण ज्ञानमार्गके समान दूसरा मार्ग नहीं, क्योंकि इस मार्गमें किसी प्रकारका भय और खटका नहीं है॥१७॥ हे राजेन्द्र!

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥१६॥ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥ न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥ १८ ॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ॥ नते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥ २० ॥

एक भक्ति ही निरपेक्ष होकर पवित्र करनेको समर्थ है, कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त भक्तिके विना स्वयं पवित्र नहीं कर सकते। जिस प्रकार नदियां मदिराके घटोंको पवित्र नहीं कर सकतीं वैसे ही बड़ा भारी प्रायश्चित्त किये जानेपर भी नारायणसे विमुख हुए पुरुषको कोई प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ भक्ति चाहे बहुत थोड़ी भी हो, परंतु पवित्र करनेको वह भलीभांति समर्थ है। इसका प्रमाण देखो, जो पुरुष भगवान्के पादारविन्दोंमें एकवार किंचिन्मात्र भी अपना मन लगा देते हैं। इस एक वारके मन लगानेसे उनका मन भगवान्में केवल अनुरागी हो जाता है कुछ ज्ञानयुक्त नहीं होता, तथापि यम अथवा फांसी हाथमें लिये हुए यमदूत स्वप्नमें भी उस पुरुषको नहीं दिखायी देते, क्योंकि भगवान्में केवल एक बार ही मन लगानेसे सब प्रायश्चित्त आप ही हो जाते हैं ॥१९॥ हे राजन्! इस विषयमें अनेक लोग एक पुरातन इतिहा-

सका उदाहरण दिया करते हैं, विष्णुदूत और यमदूतोंके संवादोंमें यह इतिहास बनाया गया है, हम उसको कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ २० ॥ हे राजन् ! कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नामक एक ब्राह्मण दासीका पति हुआ था, सर्वदा दासीकी संगतिसे दूषित होनेके कारण उसके सब सदाचार विनष्ट हो गये थे ॥ २१ ॥ वह ब्राह्मणबन्धु जुआ खेलना, दांव लगा देना, ठगाई और चोरी इत्यादि निन्दनीय कर्म किया करता था और उससे ही अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता था, इस कारण उस अजामिलसे सदा ही मनुष्योंको क्लेश पहुँचा करता था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार निंदित कर्मोंसे स्त्री पुत्रादिकका भरण-पोषण करते हुए उस ब्राह्मणका कालक्रमसे परमायु सम्बंधी बड़ा भाग निकल गया, अर्थात् उसकी अवस्था अट्ठासी ८८ वर्षकी हो गयी ॥२३॥ और उसकी वृद्धावस्था तक उसके

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ॥ नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥ बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ॥ बिभ्रत् कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥ २२ ॥ एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यागान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ॥ बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥ २४ ॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥ २५ ॥ भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयंत्रितः ॥ भोजयन् पाययन् मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥ स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥ २७ ॥

दश पुत्र उत्पन्न हुए । उन पुत्रोंमें सबसे छोटेका नाम नारायण था। सबसे छोटा बालक होनेके कारण वह पुत्र पिता-माताका अत्यन्त प्यारा हुआ ॥ २४ ॥ जरा अवस्थाको प्राप्त हुआ वह अजामिल मधुर बोलनेवाले उस बालकमें ही प्रेम लगाकर सदा उसका खेल और कौतुक देखकर आनन्द पाता था ॥ २५ ॥ स्नेहके वश होकर भोजनके समय अथवा जल पीनेके समय उस बालकको संग लेकर ही भोजन पान करता था और अनेक- अनेक प्रकारसे लाड़-प्यार करता हुआ सदा छोटे पुत्रमें ही मन लगा रहनेसे कालके वश हो, काल जो अपने निकट आता जाता था, उसको वह अजामिल नहीं जान सका ॥२६॥ हे राजन् ! अज्ञानी अजामिल इस प्रकारकी दशामें वर्तमान था। जब उसका मृत्यु समय उपस्थित हुआ तब भी उसने नारायण नामक अपने छोटे पुत्रमें ही मन लगाया और नारायण ही नारायण

वारंवार मुखसे कहने लगा ॥२७॥ मृत्युके समय अजामिलने देखा कि अतिशय भयानकरूप, महाभयंकर वदन रोम जिनके उठे हुए हैं, ऐसे तीन यमदूत भूतके समान फांसी हाथमें लिये हुए सामनेसे आ रहे हैं, उनकी इच्छा यही थी कि अजामिलको यमपुर ले जाँय ॥ २८ ॥ ऐसे यमदूतोंको देखकर अजामिल अतिशय व्याकुल हुआ और कुछ दूर अपना नारायण नामक जो परमप्यारा दुलारा अपने खिलौनेको लिये हुए खेल रहा था; उसको झीनी वाणीसे पुकारने लगा; कि हे नारायण ! हे नारायण ! इन यमदूतोंसे मुझे बचा ॥ २९ ॥ हे महाराज ! अब आश्चर्यका वृत्तान्त सुनो, मृत्युके समय अजामिलके मुखसे नारायणका नाम कीर्तन सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद तुरन्त उसके निकट आकर उपस्थित हुए। विष्णुदूतोंके अचानक आनेका कारण यह हुआ कि उन्होंने विचारा कि यह पुरुष अंत सम-

स पाशहस्तांस्त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् ॥ वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद् दासीपतिमजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरस्सराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥

यमें हमारे स्वामी का नाम ले रहा है ॥ ३० ॥ बस, नारायण नाम पुकारते ही विष्णु भगवान्‌के पार्षद अजामिलकी आत्मा उसके हृदयसे खींचकर ग्रहण करते हुए यमदूतोंको बलात्कार निवारण करके बोले कि तुम लोग इसको मत छूना ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! धर्मराजके दूतोंको अजामिलके ग्रहण करनेसे जब रोका तब महाक्रोध करके उनके सुन्दर विष्णुदूतोंसे बोले कि, तुम कौन हो, जो हमको धर्मराजकी आज्ञा पालन करनेसे रोकते हो ? ॥ ३२ ॥ तुम किसके दूत हो, यहां कैसे आये ? और किस लिये इस दुराचारी पापीको यम पुरमें ले जानेसे रोकते हो ? तुम देवता हो ? या उपदेवता हो ? प्रधान हो ? वा सिद्ध हो ॥ ३३ ॥ हम लोगोंने तुम्हारा परिचय नहीं पाया; इस

लिये तुम हमारे इन वचनोंको सुनकर क्रोध न करना। हम तुम्हारे सबके ही लोचन कमलदलके समान देखते हैं, आप सब लोग रेशमी पीताम्बर धारण किये, कुंडल पहनते हैं और गलेमें फूलोंकी माला विराजमान हैं ॥ ३४ ॥ सब ही नवीन अवस्थावाले, चतुर्भुजधारी धनुष, तूणीर, कृपाण धारण किये, शंख, चक्र, पद्म और गदा हाथमें लिये हैं ॥ ३५ ॥ अपने चमत्कारकी कान्तिसे सब लोकोंकी दिशाओंके अंधकार हरनेवाले और संसारमें अपने प्रभावका प्रकाश करनेवाले आप धर्मराजके अनुचर होकर हमको क्यों निषेध करते हो और इस पापीको यमपुर क्यों नहीं जाने देते ? ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब यमदूतोंने ऐसा कहा तब भगवान्‌के आज्ञाकारी पार्षद विचारने लगे कि इन लोगोंको दण्ड्यादंड्यका ज्ञान नहीं है, निःसंदेह ये लोग तस्कर हैं, हमारे भयसे भीत होकर यह अपने

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषङ्गासिगदाशंखचक्राम्बुजश्रियः ॥ ३५ ॥ दिशोवितिमिरालोकाः कुर्वतः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मपालस्य किंकरान् नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ॥ तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथंस्विद् ध्रियते दण्डः किं वाऽस्य स्थानमीप्सितम् ॥ दण्ड्याः किं कारिणः सर्वे अहोस्वित् कतिचिन्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूताः ऊचुः ॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥

आपको यमराजका किंकर बनाते हैं, इस लिये विष्णुके दूत क्षण कालतक चुप रहे; फिर हँसकर मेघसम गंभीर वचनोंसे उनको उत्तर देने लगे ॥ ३७ ॥ विष्णुके दूत बोले हे पाशधारी पुरुषगण ! तुम लोग धर्मराजके कैसे दूत हो ? हम तुमसे धर्मविषयक प्रश्न करते हैं; बतलाओ तो कि धर्मका लक्षण और प्रमाण क्या है ? ॥ ३८ ॥ और दण्डच प्राणियोंको किस प्रकार दण्ड दिया जाता है और दण्डका वांछित विषय क्या है ? और जो लोग दण्डनीय होते हैं, उनके क्या कर्म हैं ? क्योंकि मनुष्य ही कर्म किया करते हैं, पशु आदि तो कर्म करते नहीं, कर्म करनेवाले मनुष्योंमेंसे किस किसको दंड मिलता है ? ॥३९ ॥ यमदूतोंने उत्तर दिया कि जो वेदविहित है, अर्थात्

जिसका प्रमाण वेदोंमें पाया जाता है, वही धर्म है और जो उसके अविहित है, अर्थात् वेदोंसे निषिद्ध है, वही अधर्म है । इसलिये विधि निषेध स्वरूपमें धर्माधर्मका प्रमाण वेद ही है । हे देवगण ! वेदका प्रमाण क्या है ? ऐसी आशंका नहीं की जा सकती, क्योंकि वेद नारायणसे उत्पन्न और साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और वे वेद परमेश्वरके निःश्वासमात्रसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये वे स्वयम्भू नामसे सुने जाते हैं ॥ ४० ॥ यदि कोई कहे कि नारायण कौन है, तो सुनो—जिन्होंने अपने स्वरूपमें सात्त्विक, राजस, तामस गुणमय सब प्राणियोंको शास्तृत्वादि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्ययनादि क्रिया और वर्ण व्यवस्थादि रूपसे यथावत् विभाग किया है, वे ही नारायण हैं ॥ ४१ ॥ हे देवगण ! अधर्म भी नारायणका ही किया हुआ है, क्योंकि उन्होंने स्वयं अग्नि, वायु, अकाश, देवता, चंद्र, सूर्य, संध्या, दिन, रात,

ये स्वधाम्न्यमी भावा रजस्सत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याऽहनी दिशः ॥ कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥ ४३ ॥ संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान् ह्यकर्मकृत् ॥ ४४ ॥

दिग, जल, पृथ्वी और धर्म इन सबको बनाया है । यह सब जीवोंके आचरणको साक्षी देते हैं ॥४२॥ इस लिये ऊपर कहे हुए सूर्यादिसे जिस प्रकार धर्म जाना जाता है, वैसे ही अधर्म भी जान लिया जाता है। वह अधर्म ही दण्डका स्थान है, परन्तु दंड पाने योग्य जीव जिसका जैसा-जैसा अपराध होता है, उसको यथाक्रम वैसा ही दंड मिलता है ॥ ४३ ॥ हे पापरहित देवगण ! कर्मी पुरुषोंसे अच्छे-बुरे दोनों ही कर्म होने संभव हैं क्योंकि उसको गुणोंका सदा संग बना रहता है । हां यदि कोई शरीर सर्व भांतिसे कर्मशून्य हो तब तो अवश्य उससे अशुभ कर्म नहीं बन सकता, परन्तु ऐसा प्राणी कहां है ? जो देहधारी होकर कर्म न करता हो अर्थात् ऐसा प्राणी कहीं नहीं है, इसलिये समस्त कर्म करनेवालोंको पाप अवश्य ही होता है, इससे जाना गया कि सब ही दंडके योग्य हैं ॥ ४४ ॥

फिर जो जीव इस लोकमें जितना धर्म अथवा अधर्म बटोरता है वह स्वयं परलोकमें उस प्रकारसे ही उतना फल अवश्य ही भोग करता है, अर्थात् धर्मानुसार जिस प्रकार उसको सुख मिलता है वैसे ही अधर्मकरनेसे दण्डको प्राप्त होता है॥४५॥हे देवप्रवरगण! इतना ही नहींकि केवल सूर्यादिही धर्माधर्मके देखनेवाले और प्रकाशक हैं, वह युक्तिसे भी जान लिया जाता है,अर्थात् इस जन्ममें शांत–स्वभावसे, क्रूरस्वभावसे मूढ़पन अथवा सुखसे वा दुःखसे और सुखदुःखके मेल इत्यादिसे गुणकी विचित्रताके हेतु सब प्राणियोंको जिस प्रकार त्रिविध देखा जाता है और जन्ममें भी यह वैसे ही हो सकते हैं;परन्तु धर्म और अधर्मके विना इस प्रकारका त्रिविध संभव नहीं।इसलिये वह अनुमानसे सिद्ध होता है ॥४६॥ और भी वर्तमान वसन्तादि काल जिस प्रकार अतीत, अनागत वसन्तादिकालके समस्त गुणोंके (फूल फलोंके) जतानेवाले होते हैं, वैसे ही विद्यमान जन्म भी भूत-भविष्यत् जन्मके धर्माधर्मका बतलानेवाला होता है ॥४७॥ हे देवगण ! ऊपर लिखे

येन यावान् यथा धर्मोऽधर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥ ४५ ॥ यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ४७ ॥ मनसैव पुरे देवपूर्वरूपं विपश्यति ॥ अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥ ४९ ॥

हुए नियमोंके अनुसार धर्माधर्मका ज्ञान और सब जीवोंको होता है। परंतु हमारे स्वामी धर्मराज अपनी पुरीमें बैठे-बैठे अपने मनसे ही सब जीवोंका पूर्वरूप अर्थात् धर्माधर्म विशेषरूपसे देख लेते हैं, फिर अपूर्व प्रकारसे अर्थात् जो जिसके योग्य होता है, उसका वैसा ही विचार किया करते हैं, परन्तु वह भगवान् और अज हैं इस लिये उनका इस प्रकारसे करना कुछ असम्भव नहीं है ॥ ४८ ॥ हे महाशयो! जीव अज्ञानी अविद्याओंसे ग्रसा हुआ है। और भाग्यहीन कर्मोंसे लिप्त जो यह वर्त्तमान देह है, यह इसकी ही उपासना करता है,अर्थात् इस देहको ही आत्मा समझता है, पूर्व अथवा अपरको कुछ भी नहीं मानता, इस कारण उसको पूर्व जन्मोंकी स्मृति भूल जाती है । जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नवाले शरीरको ही सत्य समझता है, जाग्रत शरीरको वा स्वप्नसे प्रथम शरीरको कुछ भी नहीं समझता, वैसे ही पूर्व

जन्म होनेपर पिछलें जन्मका वृत्तांत यह प्राणी कुछ भी नहीं समझता ॥ ४९ ॥ यह जीव हस्तादि पांच कर्मेन्द्रियोंसे पांच कर्म करता है और श्रोत्र इत्यादि पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादि पांच विषय जानता है । अधिक करके षोडश पदार्थ जो मन है, उसके साथ मिलकर सत्रहवाँ स्वयं जीव होता है, परंतु यह जीव आप ही षोडश उपाधिके अन्तरमें हो सब इंद्रियोंके विषयका खोज करनेसे अकेला ही कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन इन तीनोंके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ५० ॥ हे देवप्रवर ! सोलह कलायुक्त शरीर और सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंके कार्यकी तीन शक्ति यह अनादि है, और यह इस जीवको केवल स्मृति उत्पन्न करा देती है । जिससे हर्ष,शोक, भय और पीड़ा ही विद्यामान हो जाती है ॥ ५१ ॥ हे सकलदेवश्रेष्ठ ! यह जीव अज्ञानी है और इसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद,ईर्षा यह (६)

पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान् पञ्च वेदार्थ पञ्चभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥ ५० ॥ तदेतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥ देहज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन् कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥ ५२ ॥ न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात ॥ ५३ ॥ लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥

छः वर्ग नहीं जीते हैं । इसके यद्यपि कुछ करनेकी इच्छा नहीं होती तो भी लिंग शरीर उससे कर्म कराता है, इस लिये कोशकार नामक कीड़ेके समान (रेशमका कीड़ा) जो अपने पूरे हुए रेशममें आपही लिपटकर मर जाता है, यह जीव भी अपने किये कर्मोंसे आप ही ग्रसकर मुग्ध हो जाता है । अर्थात् अपने निकलनेका कुछ भी यत्न उससे नहीं हो सकता॥५२॥यदि कहो की इसका प्रमाण क्या है कि लिंगशरीर जीवको कर्म कराता है तो इसका उत्तर यह है कि अनुभव ही इसका प्रमाण है, क्योंकि प्रकट देखा जाता है कि कोई पुरुष एक क्षणभरके लिये भी निष्कर्म होकर नहीं रह सकता,सब ही विवश होकर पूर्वकृत कर्मके संस्कारसे उत्पन्न हुए गुणद्वारा अर्थात् गुण कार्य रागादिकसे कर्म करनेको बाध्य होते हैं और सब कर्म किया करते हैं ॥ ५३ ॥ उन सब कर्मोंके करनेसे जो भाग्य है, वही जीवके

स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीरका कारण है, अर्थात् जिसका जैसा भाग्य है उसकी वैसी ही वासना होती है वह वासना सबसे अधिक बलवती है,उसी वासनासे जीवको पिताके समान अथवा माताके समान देह प्राप्त होता है और वीर्य,रुधिर तो सबका एकसा ही है॥५४॥ हे देवदूतगण ! प्रकृतिके सङ्ग वश होनेके कारण ही पुरुषकी इस प्रकारसे उलट-पुलट बुद्धि हो जाती है,परन्तु यदि पुरुष उसी बुद्धिसे परमेश्वरकी उपासनामें चित्त लगाता है तो शीघ्र ही माया विनष्ट हो जाती है॥५५॥हे महाशयो ! यह ब्राह्मण प्रथम अवस्थामें शास्त्रसम्पन्न, मृदुशील स्वभाव,सदाचारी, पूर्ण व्रतधारी,कोमलचित्त तथा विविध गुणोंका आधार था,यह इंद्रियोंको रोककर, सदा नियमानुसार ईश्वरकी आराधना करने वाला था और इसके तुल्य सत्यवादी, मंत्रका जाननेवाला व पवित्र पुरुष और कोई न था ॥ ५६ ॥ यह अहंकार

एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत स एव न चिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥ ५५ ॥ अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः ॥ धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद् द्विजः ॥ आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥ ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ॥ पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥ मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ॥ क्रीडन्तमनुगायन्तं हसन्तमनयाऽन्तिके ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥

रहित होकर गुरु, अग्नि, अतिथि, एवं वृद्ध जनोंकी सेवा करता था और सभी प्राणियोंके संग इसकी मित्रता रहती थी, विशेष करके यह साधुव्रतधारी,अल्पभाषी और किसीकी निन्दा नहीं करता था। पहले यह ऐसा भोला-भाला था कि—॥५७॥एक समय यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञा पालनेके लिये वनमें गया, वहांसे फल फूल, समिधा और कुश ग्रहण करके चला ॥५८॥ जब यह मार्गमें लौटता हुआ आ रहा था तो इसने एक कामी शूद्रको एक दासीके संग रमण करते देखा। मधुर मद पीनेसे उस दासीके नेत्र घूम रहे थे ॥ ५९ ॥ और उसके लहँगेका नारा (कमरबन्द) ढ़ीला होनेके कारण खुल गया था, वह कामी शूद्र सदाचारको त्याग इस ब्राह्मणके सम्मुख ही निर्लज्ज हो उस दासीको चिपटाकर उसके संग हास्य-परिहास्य और एकसंग गान व अनेक प्रकारके क्रीडा कौतुक करता था ॥ ६० ॥ यह ब्राह्मण उस

कामी पुरुषकी चन्दनादि सुगंध युक्त भुजाओंसे उस युवतीको लिपटाये देख उसी समय मोहित हो कामके वश हो गया ॥६१॥ इस ब्राह्मणमें जितना धैर्य और ज्ञान था इसने उसके बलसे बहुत देर तक अपने मनको बहुतेरा रोका, परन्तु तो भी कामसे कंपायमान मनको यह न रोक सका ॥ ६२ ॥ इस लिये उस दासीके दर्शनके कारण कामरूप महाग्रहके बहानेसे दुष्ट ग्रहने इसको ग्रस लिया जिससे उसकी स्मृति नष्ट हो गयी, यह उसी तरुणीकी नित्य चिन्ता करता हुआ और अपना धर्म-कर्म सब छोड़ दिया ॥ ६३ ॥ वह दासी जिससे प्रसन्न हो वही वस्तु लाकर उसके आगे धरता था इसी प्रकार अपने पिताका सब धन और मनोहर-मनोहर अनेक-अनेक भांतिके पदार्थ देकर उसको

स्तम्भयन्नात्मनाऽऽत्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ॥ न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेवमनसा ध्यायन् स्वधर्माद् विरराम ह ॥ ६३ ॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥ ६४ ॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ॥ विससर्जाचिरात् पापः स्वैरिण्याऽपाङ्गविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥

सन्तोष उत्पन्न करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ६४ ॥ परन्तु उत्तम कुलमें हुई परम सुशील, प्रतिव्रता, धर्मपरायण, देवीस्वरूप उस अजामिलकी युवा अवस्थावाली भोली-भाली विवाहिता स्त्री थी, परन्तु इस पापात्माने उस स्वैरिणीके नेत्रबाणसे विद्ध हो शीघ्र ही उस सतीका परित्याग कर दिया ॥ ६५ ॥ चोरीसे, झूठसे, ठगाईसे, जुएसे, न्याय-अन्याय करके जहां तहांसे आप जितना धन लाता था वह सब दासीको देकर केवल उसके कुटुम्बका पालन-पोषण करता था ॥६६॥ इसलिये हे देवदूतगण! यह अतिशय पापात्मा है। इसकी परमायु भी पापरूपी थी, इसने जीवित अवस्थामें मलरूप दासीका जूठा अन्न भोजन किया है। इसने शास्त्रका उल्लंघन करके स्वेच्छा

चारी हो चिरकाल बिताया है ॥ ६७ ॥ इस कारण इस पापीको हम दण्डपाणि यमराजके निकट ले जायेंगे। इस दुरात्माने अपने किये हुए पापोंसे छुटकारा पानेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है, इसलिये यह यमराजसे दण्ड पाकर शुद्ध होगा ॥६८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां अजामिलोपाख्यान वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ दोहा—इस दुसरे अध्यायमें, हरि भृत्यन धर ध्यान। यमदूतनसों विष्णुकी, कहो महात्म्य बखान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यमदूतोंके ऐसे वचन सुनकर न्यायकारी महा-

तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥ ६८ ॥ इति श्रीभागवत म० षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥ उपधार्याऽथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मःस्पृशते सभाम् ॥ यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २ ॥ प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥ स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥

विद्वान् विष्णुके दूतोंने विस्मयको प्राप्त होकर यमदूतोंसे कहा॥१॥विष्णु दूत बोले, अहो! क्या कष्ट है? धर्मदर्शी साधुलोगोंकी सभाको अधर्मने स्पर्श किया, क्योंकि सभामें धर्मदर्शी पुरुष लोग पापरहित पुरुषोंको वृथा दण्ड देते हैं॥ २॥ अहो! जो साधु पुरुष सर्वत्र समदर्शी होकर प्रजाको पिताके समान पालन करते और शिक्षा देते हैं, उनमें ही यदि अदंडचदण्डनादि (निरपराधीको दण्ड) विषम भाव हो तो फिर प्रजा किसकी शरण जाय? ॥ ३ ॥ जब ऐसे लोग ही अधर्माचरण करने लगेंगे तब और लोग भी वैसेही होनेके अनुरागी होंगे

---

१. शंका—अजामिल बड़ा पंडित और ज्ञानी था, गुरुमहात्मा एवं अग्निकी सेवा करनेवाला भी था। ऐसा अजामिल शूद्रीको देखते ही क्षणमात्रमें अपने धर्मकर्मसे भ्रष्ट हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, क्योंकि कोई मूर्ख भी इस प्रकार कामासक्त नहीं होता, यह इतना चतुर होकर एक क्षणमात्रमें क्यों भ्रष्ट हुआ?

उत्तर—गंगाकी बीच धारामें पराशर मुनि कामकी पीड़ासे महादुखी हो गये, तब भीलकी कन्याके संग रमण किया। उन पराशर मुनिको देखकर अजामिल बहुत हँसा। अजामिलको हँसता देखकर पराशरजीने शाप दिया कि हे दुष्ट! हमारी नाईं तू भी किसी समय शूद्रीको देखकर कामसे व्याकुल होकर ब्रह्मकर्मसे भ्रष्ट हो जायगा, हम तो एकवार भ्रष्ट होकर अपने शरीरको शुद्ध कर लेंगे, परंतु तुझमें किसी प्रकार भी ब्राह्मणत्व न रहेगा। एक क्षणमात्रमें चाण्डाल हो जायगा, इस शापके कारण अजामिल क्षणमात्रमें भ्रष्ट हो गया।

सवैया—दिव दीपक लोय बनी बनिता, जड़ जीव पतंग जहाँ परते। दुःख पावत प्राण गमावत है, वेरज नर हैं हटसों जरते। इस भाँति विलक्षण अक्षनके, वश होय अनीति नहीं करते। परती लख जे निरखें, धन हैं, धन हैं धनहैं नर ते॥ १॥

क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसे-जैसे आचरण करते हैं और लोग भी उनकेसे ही करनेकी चेष्टा करते हैं और सब सज्जन पुरुष जिसको प्रमाण कर लेते हैं, साधारण लोग भी उसके ही पीछे चलते हैं॥४॥क्या आश्चर्य है ? लोग जिसकी गोदीमें शिर धरकर निश्चिन्त हो सो जाते हैं, आप पशुके समान हैं, धर्म-अधर्मको कुछ भी नहीं जानते, तो वह आप विश्वासघाती कहलायेगा ॥ ५ ॥ वह पुरुष सब प्राणियोंका वास स्थान है, उसको यदि दया हो तो वह किस प्रकारसे इस लोकमें उसका बुरा करनेके योग्य होगा, जिसने मित्रताके विश्वास हेतु उनमें अपना आत्मा समर्पण कर दिया है, उससे द्रोह कभी करना नहीं चाहिये ॥ ६ ॥ अरे यमके दूतो ! यद्यपि इस पुरुष (अजामिल) ने जन्मसे लेकर कोटि-कोटि पाप कर अपने और अपने परिजनोंका भरण-पोषण किया था, तथापि जो नाम इसने पराधीनहोकर भी उच्चा-

यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥ स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विस्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥ ६ ॥ अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोटयंहसामपि ॥ यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७ ॥ एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥९॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥

रण किया है, वह केवल प्रायश्चित्त ही नहीं, परम ही स्वस्त्ययन अर्थात् मोक्षका देनेवाला है ॥७॥ इस पुरुषने अपने प्रिय पुत्रको पुकारनेके मनसे "नारायण यहां आओ" इस प्रकार चिल्लाकर कुछ आभासमात्रसे "नारायण" यह चार अक्षरका नाम उच्चारण किया है, बस इस नामके लेते ही इस पापीके किये हुए सब पापोंका प्रायश्चित्त हो गया ॥८॥ क्योंकि चोर, मद्य पीनेवाला, मित्र द्रोही, विप्रका घात करने-वाला, ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, हरिनिंदक, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, स्त्रीघातक, राजघातक, गोघातक, व और दूसरे जो जितने महा-पातकी नर हैं ॥ ९ ॥ उन सब पापियोंको यह (नारायण) नाम ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। इसका कारण यह है कि नामका उच्चारण करते ही उनके विषय भगवन्मय हो जाते हैं, अर्थात् भगवान् आप विचार करते हैं, कि यह नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष हमारा

भक्त है, इसकी सब भांतिसे रक्षा करना हमारा कर्तव्य है ॥ १० ॥ हे यमके अनुचरो ! मन्वादि ब्रह्मवादीमुनियोंने पापसे छुटकारा पानेके लिये जो व्रतादि प्रायश्चित्त कहे हैं, उनसे पापी पुरुष ऐसा शुद्ध नहीं होता, जैसा हरि भगवान्‌के नाममात्रका उच्चारण करनेसे शुद्ध हो जाता है। दूसरे नामका उच्चारण करनेसे पापनाशके सिवाय और फल भी मिलते हैं,क्योंकि नामका उच्चारण उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंको भी प्रकट कर देता है, नामका फल कृच्छ्रचान्द्रायणादि प्रायश्चित्तके समान पापका क्षय करके ही नहीं जाता रहता वरन् सदा बना रहता है ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्त और व्रतादिकोंके करनेसे पापोंसे छुटकारा हो जाता है, किन्तु यदि असत् पापोंमें अर्थात् पाप मार्गमें फिर मन दौड़ जाता है, तो यह प्रायश्चित्त एक बार ही पापका शोधक नहीं हो सकता, इसलिये जो पुरुष एक बार ही पापके क्षय करनेकी इच्छा

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥ यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥ नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्म निर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥ अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥ साङ्केत्यंपारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥ पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम् ॥ १५ ॥

करते हैं, उनके लिये भगवान् हरिका गुण कीर्तन करना ही एक उत्तम प्रायश्चित्त है। क्योंकि एक श्रीभगवान् ही चित्तके शुद्ध करनेवाले हैं जब चित्त शुद्ध हो गया तो फिर पाप कहां ?॥ १२ ॥ यह सब पापोंका प्रायश्चित्त कर चुका, इसलिये तुम लोग इस पुरुष (अजामिल) को पाप करनेवालोंके मार्ग पर न ले जाओ, इसके अनन्त पापोंका नाश हो गया। क्योंकि इसने मृत्युके समय नारायणका नाम संपूर्ण रूपसे ग्रहण किया है ॥ १३ ॥ हे धर्मराजसेनागण ! पुत्रादिकोंके लाड़-लड़ानेमें हो, हँसीमें हो,गीत आलापके पूर्ण करनेमें हो, अथवा पराधीनतामें लिया गया हो, जिस किसी प्रकारसे भी हो, नारायणका नाम लेनेसे अनेक पापोंका नाश हो जाता है ॥१४॥ अधिक क्या कहें, ऊँचे घर इत्यादिकों परसे गिरनेसे अथवा मार्गमें जाते-जाते गिर पड़नेसे, शरीरका कोई अंग टूटनेसे अथवा सर्पादिकोंके डसनेके समय अथवा

ज्वरादिकसे संतापित होनेमें, दंडादि द्वारा मार पड़नेके समय अवश होकर भी जो कोई पुरुष यदि "हरि" यह नाम उच्चारण करेगा, उसको नरककी पीड़ा स्पर्श नहीं कर सकेगी ॥१५॥ मन्वादिक महर्षियोंने सब पापोंकी छुटाई-बड़ाई विचारकर बड़े पापका बड़ा प्रायश्चित्त और छोटे पापका छोटा प्रायश्चित्त जो कुछ कहा है, उसकी व्यवस्था वही है, परन्तु हरिनाम किसी व्यवस्थामें नहीं, इसका स्मरण करते ही सब पापोंका नाश हो जाता है, जैसे वारुणीके एक बिंदु पीनेसे महापापी हो जाता है, ऐसे ही नारायणका नाम लेनेसे महापापकाक्षय हो जाता है ॥ १६ ॥ और महर्षियोंके कहे हुए व्रत दान तपस्यादिसे पापोंका ही शोधन हो जाता है, परन्तु पाप करनेवालोंका जो अधर्म करनेके कारण मलिन हृदय, अथवा किये हुए पापको जो सूक्ष्मरूप संस्कार है वह शुद्ध नहीं हो सकता और भगवान्के चरणकमलकी

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च॥ प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥ तैस्तान्यघानिपूयन्ते तपोदानजपादिभिः ॥ नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥ १७ ॥ अज्ञानादथ वा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥ १८ ॥ यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

सेवासे पापकी वासनाका भी शोधन हो जाता है, इसलिये और और प्रायश्चित्तादिकोंसे हरिनामका कीर्तन करना ही सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ॥ १७ ॥ यहांपर इस पुरुषने "पापका प्रायश्चित्त है" ऐसा समझकर कभी हरिनामका उच्चारण नहीं किया, यह आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि अज्ञानसे हो अथवा ज्ञानसे हो, उत्तमश्लोक भगवान्का नाम कीर्तन करनेसे पापके समूह भस्म हो जाते हैं, जैसे अग्नि काष्ठके समूहको जलाती है ॥ १८ ॥ यदि तुम कहो कि इस अजामिलने भगवद्भक्त पुरुषोंके निकट उपदेश नहीं पाया, इसलिए इसका लिया हुआ नाम किस प्रकारसे प्रायश्चित्त हो पापका नाश करेगा ? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कोई न जाननेपर भी इच्छा-

* कवित्त–नामके प्रभाव वाल्मीकि आदि ऋषि भये, नामके प्रभाव नन्द कृष्णपुत्र पायो है। नामके प्रभाव टेक राखो प्रल्हादजूकी; नामके प्रभाव द्रौपदीको पट बढ़ायो है ॥ नामके प्रभाव अजा मिलसे उधारे खल, नामके प्रताप वैकुण्ठमें पठायो है। सोई नाम पापनके काटिबेको शालिग्राम, वेदने भी स्व रूप नामको बतायो है ॥

गुसार अतिशय वीर्यवान् औषधि भक्षण कर ले तो वह औषधि अपना गुण अर्थात् आरोग्यता प्रकट कर देती है, वैसे ही हरिनामरूप मन्त्र अजानेमें भी उच्चारण करनेसे अपना कार्य अवश्य करता है, इसका कारण यही है कि शक्तिशाली वस्तु श्रद्धादिकी बाट नहीं देखती ॥१९॥ हे दूतगण ! इस धर्ममें जो सन्देह हो तो तुम अपने स्वामी यमराजसे पूछ लेना क्योंकि वह धर्मकी परमगुप्त वार्ताओंको भी भलीभांति जानते हैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उन विष्णुदूतोंने इस प्रकारसे भगवत धर्मको निर्णयपूर्वक कहकर उस ब्राह्मण (अजामिल) को यमकी फांसीसे छुड़ाकर मृत्युकी पीड़ासे उद्धार किया ॥२१॥ यमदूत लौटकर अपने स्वामी यमराजके निकट

पतिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन् यदि संशयः ॥ स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान् यमः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥ २१ ॥ इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ॥ यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥ २२ ॥ द्विजः पाशाद् विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववन्दे शिरसा विष्णोः किंकरान् दर्शनोत्सवः ॥ २३ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २४ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २५ ॥ भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत् स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२६॥

आये और जो बात हुई थी, वह आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तांत यमराजको सुनाया ॥२२॥ इस ओर इस ब्राह्मण (अजामिल) ने यमकी फांसीसे छूट भय त्याग सावधान हो मस्तक नवाकर उन विष्णुदूतोंको प्रणाम किया और उनके दर्शनसे परमानन्दको प्राप्त हुआ ॥२३॥ फिर भगवान् विष्णुके दूतोंने अजामिलका भाव देखकर समझा कि यह हमसे कुछ कहना चाहता है, इसलिए वे उसके सामनेसे उसी समय अंतर्धान हो गये ॥२४॥ अजामिलने विष्णु और यमराजके दूतोंका कथोपकथन सगुण और निर्गुण धर्म सुना ॥२५॥ अर्थात् यम दूतोंके मुखसे तीनों वेदोंका प्रतिपादन किया हुआ सगुणधर्म और विष्णुदूतोंके मुखसे भगवत् प्रणीत निर्गुण धर्म जाननेसे भगवान्में अति-

शय भक्तिसम्पन्न हो गया अर्थात् भगवान्का माहात्म्य सुनकर परमेश्वरमें अजामिलकी शीघ्र ही भक्ति हो गयी; इसलिए वह अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मोंका स्मरण करके बहुत ही पछताने लगा * ॥२६॥ खेद करते-करते बोला कि अहो ! अजितेंद्रिय होकर रहनेसे हमको बड़ा कष्ट हुआ, क्या घृणाकी बात है; मैंने दुष्ट स्त्रीके गर्भमें सन्तान उत्पन्न करके अपनी ब्राह्मणजातिका नाश कर दिया ॥२७॥ मैंने अत्यन्त कुकर्म किया, मैं अपने कुलका कलंक हूं, सज्जनोंमें निंदाका पात्र हूं, मुझको धिक्कार है, धिक्कार है, क्या यह मेरा साधारण

अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायताऽऽत्मनाः ॥ २७ ॥ धिङ् मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥ हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥२८॥ वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ॥ अहो मयाऽधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २९ ॥ सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥ ३० ॥

दुष्कर्म है, कि जो मैंने अपनी व्याही तरुणी पतिव्रता स्त्रीको त्याग करके सुरापान करनेवाली स्त्रीसे भोग करके काल बिताया ॥ २८ ॥ हाय ! मैंने अपने पिता-माता अत्यन्त वृद्ध तपस्वी और अनाथ, जो अन्य पुत्रादि व बन्धु बांधवों करके विहीन होनेसे सदा ही दुःख सन्तापमें रहते थे, वह मैंने नीचके समान अकृतज्ञ होकर ऐसे समयमें उनको त्याग दिया । उस समय मुझपर वज्र भी न टूट पड़ा ॥ २९ ॥ जैसा मैं पापी हूं इससे तो यही स्पष्ट होता है कि मुझको उसी घोर नरकमें पड़ना होगा, जहां धर्मके शत्रु कामी पुरुष यमकी

---

* शंका--नारायणका नाम मरते समय अजामिलने लिया तो उसका पातक सब नष्ट हो गया, अजामिल शुद्ध हो गया तब भगवान के दूतोंसे कुछ बात करनेकी इच्छा अजामिलने की तो दूतने विचार किया कि यह हमसे बोलेगा तो हम सबको पाप लगेगा, ऐसा समझकर क्यों चले गये ? क्योंकि अजामिल तो सब पापोंसे छूट गया था ।

उत्तर--नारायणके नामको अजामिलने जब लिया तब उसी नामके प्रभावसे यमराजकी त्राससे अजामिल छूट गया. परंतु सब पापोंसे नहीं छूटा, क्योंकि जो सब पापोंसे छूट गया होता तो भगवान्के दूत अजामिलको एक क्षणमात्रमे वैकुंठ धाम को ले जाते पृथ्वी पर तपस्या करनेका फिर क्या काम था ? दूतोंने अपने मनमें विचारा कि पापीके साथ बात करनेवाले प्राणीको ब्रह्म--हत्याका पाप लगाता है, ऐसा समझकर भगवान्के पार्षद अजामिलको छोड़कर चले गये, तब अजामिल पापका नाश करनेके लिये तप करने गया ।

पीड़ाको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ३० ॥ अभी थोड़ी देर पहले यहां मैंने अद्भुत स्वप्न देखा था, क्या वह जगत्में मुझको दिखायी दिया अथवा क्या वह स्वप्न था ? नहीं-नहीं स्वप्न किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता, यह सब चरित्र जागतेमें प्रत्यक्ष मैंने अपनी आंखोंसे देखा कि कई पुरुष हाथमें फांसी लिये मुझको पकड़कर घसीटे लिये जाते थे । इस समय वे लोग कहां चले गये ॥३१॥ मैं फांसीसे बंधा हुआ पृथ्वीके बिचले भागमें जा रहा था, उस समय एकाएक आकर जिन्होंने मुझको इस फांसीसे छुड़ाया वे चार सिद्ध पुरुष कहां हैं ? जिनका अति मनोहर दर्शन करके दोनों नेत्र तृप्त हुए थे ॥ ३२ ॥ यद्यपि इस जन्ममें मैं बड़ा पापी हुआ तो भी उन देवताओंका दर्शन प्राप्त करनेसे मुझको अनुमान होता है, कि पहले जन्मका मेरा बड़ा पुण्य था, जिससे कि उन देवताओंके दर्शनसे

किमिदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षाद् दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥ ३१ ॥ अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ व्यमोचयन् नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥ ३२ ॥ अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३३ ॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥३४॥ क चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥ क च नारायणेत्येतद् भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३५॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ॥ यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥ ३६ ॥ विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३७ ॥

इस समय मेरा यह आत्मा प्रसन्न हो रहा है ॥ ३३ ॥ जो मेरे प्रथम जन्मका पुण्य न होता तो भला मुझ अशुचि दासीके पतिकी जीभ मरनेके समय नारायणका नाम लेनेमें क्यों समर्थ होती ? ॥ ३४ ॥ कहां तो मैं कपटी, निर्लज्ज, पापी, ब्रह्मद्रोही, ब्राह्मण धर्मका नाशक और कहां यह परम मङ्गलदायक भगवान्का "नारायण" नाम ? जो पहला पुण्य न होता तो क्या यह नाम मेरे मुखसे निकल सकता था, कभी नहीं॥३५॥अब इस समय प्राण,मन और इंद्रियोंको रोककर ऐसा यत्न करूं कि जिससे घोर अन्धकारमें फिर कहीं न पड़ जाऊँ॥३६॥ इस समय अविद्या, काय, कर्मके बंधनको छोड़कर प्राणिमात्रसे सुहृद भाव, शांत दयावान् और आत्मवान् होकर अपनी आत्माको

मुक्त करूं ॥ ३७ ॥ इस स्त्रीरूप भगवान्की मायाने इस मेरे आत्माको ग्रास कर लिया था, हाय ! इस निंदनीय मायाने शाखामृगके समान हमको बहुत नचाया ॥ ३८ ॥ अच्छा, इस मायाने जो किया सो किया, परंतु इस समय सत्यवस्तुमें मेरी बुद्धि उत्पन्न हुई; अब मैं देह इत्यादिमें "अहंता-ममता" इत्यादि बुद्धिको छोड़कर भगवान्में अपना चित्त लगाऊँगा। उनके नामका कीर्तन इत्यादि करके मेरा चित्त शुद्ध हो गया है, इसलिये अवश्य उनमें मेरा मन लग जायगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! अजामिलको क्षण भरके लिये साधुसंग प्राप्त हुआ कि जिससे उसको इस प्रकारका सुन्दर ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके पीछे वह अजामिल पुत्रादि स्नेहरूप समस्त बन्धन

मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ॥ विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३८ ॥ ममाहमिति देहादौ हित्वा मिथ्याऽर्थधीर्मतिम् ॥ धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३९ ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ॥ गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ॥ प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४१ ॥ ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ॥ युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४२ ॥ यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ४३ ॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४४ ॥

तोड़कर गंगा-किनारे वास करनेके लिये हरिद्वारको चला गया ॥ ४० ॥ और वहांपर एक देवालयमें योगासन लगाकर योगमार्गमें स्थित हो समस्त इंद्रियोंको विषयोंसे खींचकर आत्मामें मनको लगा दिया ॥ ४१ ॥ उसके पीछे देह इंद्रिय इत्यादिसे आत्माको भलीभांति शुद्ध कर चित्तकी एकाग्रतासे आत्मा को ज्ञानमय निज स्वरूप (परब्रह्म) में लगा दिया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे परब्रह्ममें ही उसका चित्त निश्चल हो गया। उस समय उसने कई एक पुरुषोंको देखा, देखते ही पहचान लिया कि पहले भी इन महात्माओंको कहीं देखा है, इसलिये देखते ही शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥४३॥ हे राजन् ! उनके दर्शन करनेके पीछे अजामिलने इस तीर्थमें अपनी देह

गंगाजीके मध्य त्यागकर भगवान्‌के पार्षदोंका स्वरूप ग्रहण कर लिया ॥४४॥ वह महा पुरुष उन सब देवदूतोंके साथ सुवर्णमय विमानपर बैठकर जहां भगवान् श्रीपति विराजमान रहते हैं, आकाशमार्गसे वहांपर पहुँचा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! अजामिल ब्राह्मण होकर दासीका पति होनेसे निंदित कर्मोंके द्वारा पतित हो गया था, जिससे कि उसके सब धर्म व स्वदार नियमादि समस्त वृत्त नष्ट हो गये थे, इसलिये यमदूत उसको नरकमें डालने के लिये, लिये जाते थे, परन्तु भगवान्‌के नामकी महिमा देखो कि अन्तकालमें पुत्रको पुकारनेके लिये मनसे "नारायण" नाम लेते ही सब पापोंसे छूट गया ॥४६॥ इस लिये परम पवित्र भक्तजनोंको मोक्षदायक भगवान्‌के कीर्तनके

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः॥ हैमं विमानमारुह्य ययौयत्र श्रियः पतिः ॥४५॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा॥ निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥ ४६ ॥ नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ॥ न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४७ ॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥ ४८ ॥ न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ॥ यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४९ ॥

सिवाय और कोई पापोंको जड़से उखाड़नेवाला दूसरा उपाय नहीं है। इस कारण जितने प्रायश्चित्त हैं, उनमें रजोगुण व सत्त्वगुणसे मन सदा मलिन ही रहता है; परन्तु—कीर्तनसे मन निर्मल हो जाता है और फिर कर्ममें आसक्त नहीं होता ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! यह इतिहास परमगुप्त और पापका नाशक है, जो पुरुष श्रद्धासहित इसको श्रवण करेगा अथवा भक्तिके साथ औरको सुनायेगा ॥४८॥ वह कभी नरकमें नहीं जायगा, अधिक क्या कहें, यमके दूत उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकते, वह पुरुष कैसा ही दुराचारी

और अतिशय अमङ्गलरूप क्यों न हो ? परन्तु तो भी विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥४९॥हे महाराज ! अजामिलने मृत्युके समय पुत्रके ही नामसे भगवान्का नाम उच्चारण किया था, जब कि वह इस नामके लेते ही समस्त पापोंसे छूट नारायणके धामको चला गया, तब जो श्रद्धा सहितउनके नामको उच्चारण करते हैं उनके पाप छूट जांय तो इसमें संशय क्या है ? और जो मनुष्य नित्य "हरे कृष्ण ! जय गोविंद ! ! हे नारायण ! ! ! " ऐसा ही कहते रहते हैं,उनकी तो महिमा ही क्या है ? वह तो परम प्रेमी हैं*॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां अजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥दोहा तिसरेमें यमराजने, वैष्णव धर्म बखान ।शांति कर दिये दूत सब, कहकर उत्तम ज्ञान ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि, हे भगवन् !धर्मराजके दूतोंको जब भगवान्के

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महा० षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥ एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥ यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम्॥२॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमिनीपतिम् ॥ ३ ॥

दूतोंने निकाल दिया तब अपने स्वामीके निकट आकर अवश्य ही सब वृत्तांत कहा होगा, सब लोक जिनके वशमें हैं, उन्होंने दूतोंके मुखसे अपनी आज्ञाका भंग सुन उन लोगोंको क्या उत्तर दिया ? ॥ १ ॥ हे योगिवर ! यमके दण्डका भी भंग हो जाता है, यह तो किसी कालमें हमने किसीके मुखसे नहीं सुना सो इस बातसे सभी लोगोंको बड़ा भारी संशय होगा, वह आपके सिवाय और कोई इस हमारे संशयको नहीं छुड़ा सकता यह हमको निश्चय है इसलिये यह आप मुझे समझा कर कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले–कि हे राजा परीक्षित् ! विष्णुके दूतोंने जब यमदूतोंको निकाल दिया, तब वे लोग भग्नचित्त हो अपने स्वामी (धर्मराज) के निकट गये और समस्त वृत्तांत

* भजन—प्रेमी पूरण प्रेम निवाहें ॥ सोई धन्य प्रेमी जो निशिदिन, निज प्रीतमको चाहें । प्रीतम प्रेम रंग जो राते, तिनको सकल सराहें । जिस मनमें प्रेमाग्नी प्रगटी, सकल कल्पना दाहें । कहें रघुवीरदास प्रीतमको, प्रेम करत उतसाहें ॥ ५० ॥

कह सुनाये ॥ ३ ॥ यमदूतोंने यमराजसे कहा--कि हे प्रभो ! जीव-लोकोंके शासन करनेवाले कितने हैं, हम तो जानते हैं कि जीव तीन प्रकारके कर्म किया करते हैं, परन्तु उनके कर्म फलको प्रकट करनेके कितने कारण हैं ? ॥४॥ यदि बहुतसे शासन करने वाले और दण्डधारी हों तब परस्पर उन सबमें विरोध करनेसे किसी प्राणीको सुख और किसीको दुःख दोनों ही हो सकते हैं और जो सबका एक मत हो तो किसीको सुख-दुःख नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ कर्म करनेवाले पुरुष बहुत हैं, उनके कर्मफलोंके लिये यदि शिक्षा भी बहुतसी हो तो प्रभुत्व हो सकता है, परंतु इससे सब शिक्षाओंमें मुख्य जो शासन करना है, वह मण्डलान्तर्वर्ती शासन करनेवालोंकी शिक्षाके समान एक देशमें केवल उपकारके समान हो जाता है । अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्ती ही मुख्य शासन करनेवाला होता है, मंडलेश्वर राजाओंकी प्रभुताई

यमदूता ऊचुः ॥ कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५ ॥ किं तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथामण्डलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥७॥ तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥८॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥

तो केवल एक उपचार है वैसे ही सर्व शिक्षाओंका सिखाना और शासनकर्ताओंके लिये उपचरित पड़ता है ॥ ६ ॥ यह समझकर, कि शासन करनेवाले बहुतसे नहीं होते, हम यही जानते थे कि एक आप ही ईश्वरके सहित प्राणियोंके अधीश्वर शासन करनेवाले और दण्डधारी और आप ही मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ परंतु आपका किया हुआ दंड इस समय लोकोंके मध्यमें नहीं चल सकता, क्योंकि चार अद्भुत सिद्ध पुरुषोंने लीलासे ही आपकी आज्ञाको भंग कर डाला ॥ ८ ॥ हम लोग आपकी आज्ञासे एक पापीको बाँधकर यातना-गृहमें ला रहे थे कि उन लोगोंने अचानक आकर आपकी फाँसी तोड़ताड़कर बलात्कार उस पापीको हमसे छुड़ा लिया ॥९॥ सो हे प्रभो ! यदि आप हमारा हित चाहते हैं, तो हमको यह बतला दीजिये कि वे कौन हैं ! हम आपके निकट उनके जाननेकी

इच्छा करते हैं, क्योंकि यदि हम लोगोंने अज्ञानसे उनकी अवज्ञा की तो कहीं उलटा आपका ही बुरा न हो जाय ! हे देव ! उन पुरुषोंका बड़ा ही प्रभाव है क्योंकि उस पातकीने "नारायण" इतना ही शब्द उच्चारण किया था कि वे लोक "भय नहीं, भय नहीं" ऐसा कहते हुए शीघ्रतासे आ गये ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब दूतोंने इस प्रकार पूछा तो प्रसन्न हो भगवान् हरिके चरणारविन्दोंको स्मरण करते-करते उत्तर देने लगे ॥ ११ ॥ यमराज बोले-कि हे दूतगण ! हमारे सिवाय एक और पुरुष इन सब स्थानोंपर सबके ही सर्व-प्रधान अधीश्वर हैं, हम तो उनके किंकर हैं और उनके बनानेसे ही जंगम पदार्थके ईश्वर हुए हैं, उनमें भी केवल पापी मनुष्योंके ऊपर ही प्रभुताई करनेकी हमें सामर्थ्य है, जिस प्रकार तागे (डोरे) में वस्त्र टँका हुआ रहता है, वैसे ही जिसमें यह विश्व टँका हुआ है,

श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिर्बन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥१३॥ अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चिः ॥ आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणाः रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५॥

जिसके अंशस्वरूप ब्रह्मा, महेश्वर आदिसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, एवं लय होती है, यह समस्त लोक ही नथे हुए बैलके समान उनके वशमें चलते हैं ॥१२॥ जिस प्रकार रस्सीमें बैल बँधे रहते हैं, ऐसे ही भगवान्‌ने ब्राह्मणादि नामसे वेदवाक्यरूप सूत्रमें सब लोकोंको बांध लिया है अधिक करके यह सब जीव जो नाम और कर्मरूप बंधनसे बँधे हुए हैं और यही जीव चकित होकर जिसके निमित्त बलिवहन करतें हैं, अर्थात् जिसके वश हो रहे हैं और कर्म करते हैं ॥१३॥ जिसकी लीला अचिंतनीय है, इस लिये हम, महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, महेश्वर, विश्वेदेवगण, वसुगण, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण, और सिद्धगण ॥ १४ ॥ और प्रधान-प्रधान देवता

जो कि इस विश्वके रचनेवाले हैं और भृगु इत्यादि महर्षि जो लोग कदापि रजोगुण और तमोगुणको देखते भी नहीं हैं, वे सत्त्वगुण प्रधान होकर भी जिसकी चेष्टाको नहीं जान सकते, हे दूतगण ! इनके सिवाय दूसरे पुरुष जो कि मायामें लिपटे हुए हैं, वे लोग किस प्रकार उन्हें जान सकते हैं ? ॥१५॥ माया मोहमें लगा हुआ कोई भी प्राणी उनके जाननेको समर्थ नहीं हो सकता और जो इंद्रिय आदिकोंके भी विषय नहीं हैं, अर्थात् इंद्रिय, मन, प्राण, चित्त और वाक्य इत्यादि द्वारा किसी प्रकारसे भी प्राणिगण जिसको नहीं देख सकते और जो कि सब जीवोंके हृदयमें अन्तर द्रष्टा स्वरूप हो वर्तमान हैं इसलिये रूपादिकको जिस प्रकार नेत्र प्रकाश नहीं कर सकते हैं, वैसे ही इंद्रियादिक उनके प्रकट करनेको असमर्थ हैं, सो इस प्रकारके अधीश्वर केवल एक ही हैं ॥ १६ ॥ वे आत्मतत्त्व-स्वरूप सबके प्रभु,

यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते ॥ आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृत यस्ततः परम् ॥१६॥ तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ॥ प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ ॥१७॥ भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ॥ रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८॥ धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥

परमाधिपति अतिशय महात्मा हैं, तुम लोग जिनका वृत्तान्त कहते हो वह हमको निश्चय है कि वे सब उन्हीं भगवान्‌के दूत होंगे, क्योंकि भगवान्‌के दूत प्रायः उनके ही तुल्य रूप, गुण, प्रभाव और स्वभावयुक्त हो मनोहर मूर्ति धारण किये हुए घूमा करते हैं ॥१७॥ हे दूतो ! भगवान्‌के भृत्यगण देवताओंसे पूजित हैं, जिनका दर्शन अति कठिनतासे प्राप्त होता है, इसलिये महाअद्भुत विष्णुके दूत विष्णु भक्त मनुष्योंकी सर्वदा शत्रुसे और अग्नि जल इत्यादि सर्व पदार्थोंसे सब भांति रक्षा किया करते हैं॥१८॥तुम लोग इस प्रकारकी शंका अपने मनमें मत लाओ कि उन्होंने विष्णुभक्त हो किस प्रकारसे अजामिलको छुड़ाकर अकर्मका पक्षपात किया, क्योंकि साक्षात् भगवत्-प्रणीत जो धर्म है, उसको क्या भृगु इत्यादि ऋषि, क्या देवता, क्या सिद्धगण, क्या असुरनिकर, क्या विद्याधर, क्या चारण, कोई भी नहीं जानता,

फिर उनको मनुष्य लोग किस प्रकार जान सकेंगे ? ॥ १९ ॥ हे दूतो ! केवल स्वयम्भू १, शम्भु २, नारद ३, सनत्कुमार ४, मनु ५, कपिल ६, प्रह्लाद ७, जनक ८, भीष्म ९, बलि १०, शुकदेव ११ और हम १२ ॥२०॥ बस, यह केवल बारह जन ही भागवत–धर्मको जानते हैं, वह धर्म अतिशय गुप्त है, अत्यन्त दुर्बोध है, परन्तु इसके जान लेते ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥ हे सेनागण ! नाम कीर्तनादिसे भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोगका करना है, वही इस लोकमें पुरुषोंका परम धर्म है, उनको ही भागवत धर्म कहते हैं ॥२२॥

स्वयंभूर्नारदः शंभुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ ॥ २४ ॥

हे सब पुत्रो ! भगवान्के नाम उच्चारण करनेका माहात्म्य देखो कि केवल नामका ही उच्चारण करके पापी अजामिल मृत्युकी फांसीसे छूट गया ॥ २३ ॥ इस लिये भगवान्के गुण, कर्म और नाम इन सबका भली प्रकार कीर्तन करना ही मुख्य है, वह सब पापको क्षय कर सकता है, क्योंकि महापापी अजामिलने अपवित्र व मरणावस्थामें 'नारायण' कहा, अपने पुत्रके पुकारनेके बहानेसे उसका पाप ही नहीं छूटा,

१. शंका–यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि, हे दूतो ! भागवत रूप धर्मको ऋषि लोग नहीं जानते, प्रह्लाद और जनकजीको आदि लेकर हम बारह जन भागवत रूप धर्मको जानते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिन मुनियोंको भगवान्का दास कहते हैं, वे मुनिजन भगवान्के धर्मको क्यों नहीं जानते हैं ?

उत्तर–मुनिजन भगवान्से भी बड़े हैं, दूसरे प्राणीसे किसी काममें छोटे क्यों होंगे ? भक्त त्रिलोकीमें सबसे बड़े हैं, परंतु तपस्याके अभिमानसे भागवत रूप धर्मको नहीं देखते और विचारते हैं क्या हमारे तपसे भागवत धर्म बड़ा है, ऋषिजन तपस्या करके अभिमानी हो रहे हैं; इस लिये भागवत धर्मको नहीं जानते और प्रह्लाद जनक आदि सीधे साधु हैं, इनको भगवान्के सिवाय और कोई दूसरा आधार ही नहीं, इसलिये भागवत–धर्म न जाननेको यमराज अपने दूतोंसे कहे थे ।

वरन वह मुक्तिको भी प्राप्त हो गया॥२४॥यदि कहो कि भगवत्—नामके स्मरणमात्रसे ही जो अशेष पापोंका क्षय हो जाता है, तब द्वादश वार्षिक प्रायश्चित्त इत्यादि क्यों हैं ? (उत्तर) इन सब स्मृतिकार महापुरुषोंकी मति दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रही थी, इस लिये इस गुप्त नामके माहात्म्यको न जानकर उन्होंने द्वादश वार्षिक व्रतादि प्रायश्चित्तमान लिये हैं। अर्थवादसे मनोहर जो सब वेदकी विधि है, उसमें ही उनका चित्त नष्ट हो गया था, इसलिये वे स्वयं श्रद्धासहित वेदोक्त अग्निष्टोमादि बड़े-बड़े भारी यज्ञादिक कर्म करनेमें लगे रहते थे, अतः वे लोग नामके माहात्म्यको नहीं जानते थे,पूर्वोक्त बारह ऋषियोंसे अतिरिक्त जो और स्मृतिकार थे,वे सब दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे थे और पुष्पके समान जिसकी सुगंधि दशों दिशाओंको पवित्र कर रही है और चांदनीके तुल्य जगत्में छिटक रही है, ऐसी वेदत्रयी रूप परमोत्तम वाणीमें जड़बुद्धि बन रहे थे और इस गुप्त नामके माहात्म्यको कुछ भी नहीं जानते थे, अतएव द्वादश वार्षिक व्रतादि बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बतलाये हैं और वे स्वयं आज तक महाभारी यज्ञादिक कर्मोंमें लिपटे रहते हैं और भगवान्के नामको छोटा प्राय-

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५ ॥

श्चित्त समझते हैं, फिर छोटे लोगोंकी श्रद्धा उनमें कैसे हो सकती है? इसलिए उन लोगोंने बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बताकर सांसारिक पुरुषोंको भ्रम जालमें डाल रक्खा है? यद्यपि वाल्मीकि नारदकी कथाको वे भी भली-भांति जानते हैं और रामनामके प्रभावका जानना तो महा कठिन है, परन्तु यह जानते हैं कि रामनाम मोक्षदायक है, परन्तु छोटे लोगोंको बड़ा प्रायश्चित्त बताते हैं, क्योंकि मूर्खोंका चित्त बड़ी वस्तु पर जमता है, वे छोटी वस्तुको बहुत तुच्छ समझते हैं, इस लिए रामनामका जो गूढ मंत्र है, उसकी महिमा मूर्खोंके सामने प्रकट नहीं करते कि दो अक्षरों पर उनकी श्रद्धा न होगी, इस कारण उन मुनि लोगोंने बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बताये हैं और यह भी समझा कि जो सभी मनुष्य नामके माहात्म्यको जान लेंगे तो जीवन मुक्त हो जायँगे, जैसे जो अमृत सञ्जीवनीको नहीं पहचानते तो वे वैद्य रोगीके रोग शांतिके लिये सोंठ, मिर्च, जीरा, इलायची, हींग, पोदीना, सुहागा और सेंधा नमकका चूर्ण बता देते हैं अथवा निम्बादिके चूर्ण बताते हैं। प्रथम तो संजीवनीका जानना कठिन

और जिन्होंने जान रखी है वे अमूल्य समझकर किसीको देते नहीं। जैसे मृगराज सिंह अपने वशमें हो तो चतुर लोगोंको उचित है कि श्वान गीदड़ हरिणादिक छोटे-छोटे जन्तुओंपर उसको न छोड़े। वैसे ही तुच्छ पापकी निवृत्तिके लिये सर्वानन्ददायक परममांगलिक रामनाम का उपयोग करना ठीक नहीं, क्योंकि किञ्चिन्मात्रपापके लिये ऐसे अमूल्य रत्न रामनामसे प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं, इस बात पर एक दृष्टांत[1] है ॥२५॥ हे वत्सगण ! जैसे बुद्धिमान् मनुष्य यह सब विचार करके भगवान् अनन्तमें सम्पूर्ण अंतःकरणसे भक्तियोगका

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥ ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्या-त्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥ २६ ॥ ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ॥ तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवामदण्डे ॥ २७ ॥

विधान करते हैं, वे कभी हमारे दण्डको प्राप्त होनेके योग्य नहीं हैं, उनमें पाप हो ही नहीं सकता, यदि कदाचित् हो भी जाय तो भगवान्के नाम कीर्तन करनेसे तत्क्षण उस पापका नाश हो जाता है ॥ २६ ॥ इस समय तुम सब हमारी आज्ञा और वचन सुनकर मनमें स्मरण रखो कि जो साधु नारायणकी शरण हैं, सर्वत्र समदर्शी हैं, देवता और सिद्ध लोग जिनकी पवित्र कथाओंको रात-दिन वर्णन किया करते हैं, ऐसे साधुओंके निकट तुम लोग कभी मत जाना, क्योंकि उनके निकट भगवान् की गदा सदा सर्व प्रकारसे रक्षा किया करती

---

१. दृष्टांत–एक मुनीश्वर तप कर रहे थे। इतनेमें कोई (कोढ़ी) उनकी शरणमें आया और कहा कि, हे दीनदयालु ! मेरे कुष्ठका आप कुछ उपाय बताइये। परंतु वह तो ध्यानमें थे कुछ उन्होंने न सुना, उसने फिर कहा, फिर मुनिने न सुना, फिर उसने तीसरी वार कहा, फिर मुनिने ध्यान न किया, जब फिर वह चौथी वार कहनेको हुआ, तब मुनिके चेलेने अपने मनमें विचारा कि जो इसके गंभीर शब्दसे गुरुजीकी समाधि छूट गयी तो मेरे ऊपर बड़ा भारी क्रोध करेंगे इसलिये उसने भय मान कुष्ठीसे कहा कि तीन वार रामका नाम ले। तेरा कुष्ठ सब जाता रहेगा और शरीर शुद्ध हो जायगा। उसने जो तीन वार राम राम कहा तो सब कुष्ठ जाता रहा और शरीर कुंदनके समान लाल हो गया। मुनीश्वर जब समाधिसे जागे तो चेलेकी ओरसे मुंह फेर लिया और न बोले। तब तो चेलेने अपने मनम बड़ा दुःख माना और मनमें कहने लगा कि ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जो गुरुजी क्रोधित हो गये ? फिर चरणोंमें शिर झुका विनती कर बोला कि हे स्वामिन् ! मुझ दीनसे ऐसा क्या अपराध हुआ जो मेरी ओरसे आपने मुख फेर लिया ? कृपा करके मुझसे कहिये, जो मेरे मनका संदेह जाय, तब मुनि बोले कि अरे मूर्ख ! तूने रामनामकी महिमाको कुछ न जाना, जिस राम नामके एकबार कहनेसे करोड़ों कुष्ठी अच्छे हो सकते हैं ऐसे रामनामको तीन वार कहलाकर एक कुष्ठी तूने अच्छा किया, तूने रामनामके प्रभावको तुच्छ समझा ? अच्छा अब जो किया सो किया, फिर कभी ऐसा मत करना। रामनामकी महिमाको शेष, शारदा और ब्रह्मा तथा नारद भी नहीं जानते।

है, इसलिये उनको दण्ड देनेके लिये हमारी क्या सामर्थ्य है ? काल भी उनका कुछ नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ परंतु जो अपने धर्मका है जो कि निष्किंचन परम हंसोंके संगसे हीन हो सदा उनकी निंदा किया करते हैं उन मुकुन्दके पादारविंदमकरन्दका रस पान करनेमें विमुख नरकके मार्ग स्वरूप जो अपने धर्मका शून्य गृह है उसमें ही तृष्णा बांधे रहते हैं, उन लोगोंको हमारे निकट बेखटके ले आया करो ॥ २८ ॥ और जिनकी जीभ कभी भगवान्का गुण वर्णन या नाम उच्चारण नहीं करती और जिनका मस्तक कभी भगवान्के चरण कमलमें नहीं झुका, जिन्होंने एकवार भी नारायणका व्रत नहीं किया, उन्हीं सब आसक्त पुरुषोंको हमारे निकट लाना ॥ २९ ॥ धर्मराज अपने दूतोंको इस प्रकार आज्ञा करके फिर भगवान्से अपना अपराध क्षमा कराने लगे और बोले-कि हे नाथ ! इस समय हमारे पुरुष

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ॥ निष्किंचनैः परमहंसकुलैरसङ्गैर्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च नस्मरति तच्चरणारविन्दम् ॥ कृष्णायनो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥ तत्क्षम्यतां च भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः॥स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने॥३०॥श्रीशुक उवाच॥ तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥ ३१ ॥ शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३२ ॥ कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण् न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु॥अन्यस्तु कामहत आत्मरजःप्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात्॥३३॥

जो अन्याय कर्म कर आये हैं और आपके भक्तोंका तिरस्कार किया है, हे पुराण-पुरुष भगवान् आप इस अपराधको क्षमा करें । हम लोग तो आपके ही बनायें हैं, हम माहात्म्यको न जानकर अपराध करके हाथ जोड़ रहे हैं, इसलिये हमारा अपराध क्षमा किया जाय ॥ ३० ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले-कि हे कौरव ! भगवान् विष्णुजीका नामकीर्तन करना जगत्का मंगल रूप है, निश्चय जान लो कि इस नामके संकीर्तनसे बड़े-बड़े पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३१॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके उद्यम वीर्य पराक्रमके बार-बार श्रवण करने और कहनेवाले पुरुषोंका चित्त उत्पन्न हुई भक्ति द्वारा जिस प्रकार शुद्ध होता है वैसे व्रतादिकोंसे शुद्ध

नहीं हो सकता इसलिये जो पुरुष भगवान्‌के चरणारविंदका स्वाद एकवार प्राप्त कर लेता है उसकी पापाचारमें फिर रति नहीं होती। परन्तु इस स्वादसे जो पुरुष वंचित हैं, वे कामसे हत हो अपने पापसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्त रूप उस कर्मके ही करनेकी चेष्टा करते हैं जिससे फिर पाप उत्पन्न होता है ॥३२॥ ३३ ॥ हे राजन् ! यमके दूत अपने स्वामी यमराजके मुखसे भगवत् नामका माहात्म्य श्रवण करके विस्मित चित्त हुए ! उस समयसे नारायणके भक्तको देखते ही "अरे यह पुरुष हम लोगोंका नाश कर देगा" ऐसी आशंका करते उसकी ओरको देखते हुए डरते हैं ॥ ३४ ॥ हे कौरव ! महर्षि अगस्त्यजीने मलयाचलपर बैठकर भागवतमें विश्वास होनेके

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रति शङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन्॥३४॥इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसंभवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरि मर्चयन्॥३५॥इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्ध अजामिलोपाख्याने यमेन स्वभटान्प्रति भगवद्भक्तिनाममाहात्म्य-वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे॥१॥तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा ॥ अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥२॥

लिये वारंवार भगवान् हरिके चरणारविन्दोंकी पूजा करते-करते यह गुप्त इतिहास कहा था * ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठ-स्कन्धे भाषाटीकायां अजामिलोपाख्याने स्वभटान्प्रति यमेन भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ दोहा—चौथेमाहिं प्रजान हित, तपे दक्ष परवीन । हंस गुह्य स्तोत्रसे, हरि--आराधन कीन ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सुर, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षी इत्यादि सृष्टिकी कथा आपने जो संक्षेपसे प्रथम (तीसरे स्कंधमें) कही है ॥१॥ अब उसको ही विस्तारसे हम आपके मुखसे सुनना चाहते हैं और परम पुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रत्येक सर्गमें जिस शक्तिके द्वारा जिस प्रकारकी सृष्टि रची है उस

---

* ठुमरी—हरे राम कहो हरे राम कहो, राम राम कहो हरे हरे ॥ टेर ॥ मीन वराह हरी कच्छप, रामचंद्र अवतार धरे । परशुराम नरसिंह कृष्ण बल, सनकादिक चारों विचरे ॥१॥ नरनारायण यज्ञ पुरुष हैं, कपिलदेव हयग्रीव तरे । दत्तात्रेय ऋषभ मन्वंतर, पृथु मोहिनी अति सुधरे ॥ २ ॥ नारद वामन हंस व्यास प्रभु, बौद्ध होयकर ज्ञान करे । कल्की कलियुग अंतमाहिं भये, यह चौबीसों रूप धरे ॥ ३ ॥ रंगनाथजी जगन्नाथजी, पुरी द्वारका-नाथ वरे । गोवर्द्धनके नाथ नाथ जग, बद्रीनाथ नरनाथ खरे । ॥ ४ ॥ जगदीश्वर स्वामी, सर्वेश्वर सब ठौर सरे । कमलनयन कमलापति केशव कंसकेशिकर काल करे ॥ ५ ॥ मनमोहन मथुरामन मज्जन, मन्मथ मुरली मुकुट धरे ॥ ६ ॥ ३६ ॥

शक्ति सहित और जो पीछे सृष्टि रची गयी उसके सुननेकी हमारी अभिलाषा है ॥२॥ इतनी कथा कहनेके उपरान्त पुराणवक्ता सूतजी शौनकादि मुनिगणोंसे बोले-कि हे ऋषिवर्यवर्ग! महायोगी, व्यास पुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्की इस प्रार्थनासे प्रसन्न हुए और आनन्द प्रकट करके कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीशुदेवजी बोले--कि हे राजन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्र दश प्रचेताओंने समुद्रके भीतरसे निकलकर देखा कि पृथ्वीमंडल विविध वृक्ष लताओंसे युक्त हो रहा है। हे कुरुवंशावतंस ! वृक्ष लतादिकोंसे इस प्रकार पृथ्वीके छा जानेका कारण यह है कि नारदजीके उपदेशसे प्रचेतालोगोंने निवृत्तिमार्ग अवलम्बन कर लिया, जिससे कि उन राजाके पृथ्वीपर खेती इत्यादि नहीं हुई ॥४॥ तपस्याके करनेसे प्रचेतालोगोंको क्रोध उत्पन्न हुआ था। उस पृथ्वीको इस प्रकार लता वृक्षादिकोंसे छायी हुई देख वे लोग वृक्षोंके ऊपर महा-

सूत उवाच ॥ इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ॥ प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अन्तस्समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्युताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥

कुपित हुए और इन सबको भस्म करके निर्मूल करनेके लिये तत्क्षण उन लोगोंने अपने मुखसे वायुऔर अग्नि उत्पन्न की ॥ ५ ॥ हे कुरु श्रेष्ठ ! जब वायु और अग्निसे वृक्ष भस्म होने लगे तब वृक्षादिकोंके राजा भगवान् चन्द्रमा प्रचेता लोगोंका कोप शांत करनेकी कामना कर उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! वृक्ष अतिदीन हैं, इनपर द्रोह करना आपको उचित नहीं, क्योंकि आप तो प्रजापति हो,इसलिये विशेषरूपसे, प्रजाके बढ़ानेकी तुम लोग इच्छा करने वाले हो । इन वृक्षोंको इस प्रकार निर्मूल करना आपके लिये अति अयोग्य बात है ॥७॥ हे वत्सगण ! प्रजापतियोंके पति सर्वान्तर्यामी भगवान्‌ने पृथ्वीके वृक्ष व ओषधियोंको भक्ष्य और अन्नको उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

इसलिये अचर पदार्थ चर पुरुषोंके खाद्य हैं अपद पदार्थ पादचारियोंके भक्ष्य हैं, हस्तरहित प्राणी हस्तयुक्त प्राणियोंके भोजन हैं और चौपाये जन्तु दुपाये जन्तुओंके आहार हुए हैं । अतः उन भक्ष्य, भोज्य इत्यादिको भस्म करके निर्मूल करना प्रजापतिलोगोंको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ हे पापरहित वत्सगण ! तुम लोगोंके पिता देवदेव प्राचीनबर्हिजीने तुम लोगोंको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है और इन वृक्षोंसे प्रजाकी जीविका होती है, और फिर भला इन वृक्षोंको तुम कैसे भस्म करना चाहते हो ? ॥१०॥ आप लोग शान्त हो और साधु पुरुष जिस मार्गपर चलते हैं, उसीपर तुम भी चलो । और यह महाकोप जो तुमको उत्पन्न हुआ है, उसको त्याग दो । हे वत्सगण ! हम

अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ॥ अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥ तोकानां पितरौ बन्धुर्दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥ अन्तर्देहेषु भूतानामात्माऽऽस्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥

तुमसे जिस मार्गका अवलम्बन करनेको कहते हैं, उस मार्गका सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे पिता, पितामह और प्रपितामह जिस मार्गका सेवन करते आये हैं और कुलमें आजतक ऐसा काम किसीने नहीं किया ॥ ११ ॥ और विचार करके देखो कि जिस प्रकारसे बालकोंके पिता माता ही रक्षक हैं, आंखोंके पलक ही रक्षक हैं, स्त्रियोंके पति ही रक्षक हैं, भिक्षुकोंके गृहस्थ ही रक्षक हैं, अज्ञानियोंके ज्ञानी ही ज्ञान दायक हैं; वैसे ही प्रजाके प्रजापति लोग रक्षक हैं, तुमलोग प्रजापति हो इसलिये प्रजाकी जीविकाका नष्ट करना तुम्हें किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ १२ ॥ और सब भूतोंके भीतर आत्मस्वरूप परमेश्वर भगवान् वर्तमान रहते हैं, इसलिये सब जीवोंमें भगवान् हरिका

---

१. शंका–चन्द्रमाने प्रचेताके पुत्रोंसे कहा कि मनुष्यका आहार पशु है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–द्विपदानां चतुष्पदः–इस श्लोकका अर्थ चन्द्रमाने चतुष्पद अर्थात् चार पदवाले पशुको नहीं कहा । यहां ऐसा अर्थ किया है,चार प्रकारके भोजन हैं, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, इन चार प्रकारके भोजनोंको चतुष्पद कहा । चार प्रकारके स्वाद हैं; वे ही पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाले आहार हैं, यही बात विचारकर कही है, कुछ चतुष्पद (चार पांववाले पशु) को चन्द्रमाने नहीं कहा ।

स्थान समझना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही तुम लोग भगवान्को सन्तोष करा सकोगे ॥ १३ ॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष आत्मस्वरूप आकाशसे अकस्मात् उत्पन्न हुए महातीव्र क्रोधको ब्रह्मज्ञानसे जीत लेता है, उसने मानो सब ही गुणोंको जीत लिया ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अब इन दीन-हीन वृक्षोंको मत जलाओ जो जल गये वे जल गये, बचे हुए इन सब वृक्षोंको रहने दो, तुम्हारा मंगल हो ! इन सब वृक्षोंने एक कन्याका प्रतिपालन कर रखा है, तुमको वही कन्या दान करते हैं, यह कन्या अतिश्रेष्ठ है, तुम पाणिग्रहण करके इसको अपनी पत्नी बनाओ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! चन्द्रमाने इस प्रकार समझा-बुझाकर आप ही उद्योगी हो प्रम्लोचा अप्सराकी वह कन्या प्रचेता

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥ अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥ वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥ इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥ सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥१६॥ तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥ यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥१८॥ मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभस्स्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥ २० ॥

लोगोंको दे दी। उन लोगोंने भी धर्म सहित उसका पाणिग्रहण किया ॥१६॥ उस कन्याके गर्भमें प्रचेताओंसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए, जिनकी उत्पन्न की हुई प्रजासमूहसे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह दक्ष अपनी बेटियोंको बहुत प्यार करते थे। उन्होंने जिस प्रकार शुक्र और मनके द्वारा सब भूतोंकी सृष्टि उत्पन्नकी, अब सावधान होकर यह सब वृत्तांत तुम हमसे सुनो ॥ १८ ॥ हे कौरव श्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने प्रथम सुर, असुर, मनुष्य इत्यादि आकाशचारी, भूमिचारी और जलचारी सब प्रजाओंको मनसे उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ परन्तु इस प्रजाकी सृष्टि किसी प्रकारसे भी नहीं बढ़ी, यह देखकर दक्षप्रजापतिने संन्यास धर्म ग्रहण कर विंध्याचलके

निकटवाले एक छोटे पर्वतपर जाकर अति दुष्कर तपस्या करनी आरम्भ की ॥ २०॥ उस पर्वतके निकट ही अघमर्षण नामक एक पापका नाश करनेवाला तीर्थ था । चित्रकूटसे बाहर १२कोश अग्नेय कोणकी ओर और प्रयागसे बीस २० कोश नैर्ऋत दिशाकी ओर और रीवांसे बारह १२ कोश वायव्य कोणकी ओर वह पर्वत था । उसी तीर्थमें तीनोंकालकी संध्यामें स्नान करके दक्ष भगवान् हरिको सन्तोषित करने लगे ॥२१॥ और हंसगुह्य नामक प्रसिद्ध स्तोत्र पढ़कर भगवान् अधोक्षजकी स्तुति करने लगे । हे राजन्! भगवान् हरि जिस प्रकारसे प्रजापति दक्षके ऊपर प्रसन्न हुए वह हम तुमसे कहते हैं, तुम सुनो॥२२॥ उस हंसगुह्य स्तोत्रसे प्रजापति दक्षजीने इस प्रकार स्तुति की थी कि उनकी चिर शक्ति सत्य है,इस लिये वह जीव और माया दोनोंके नियम कहे।परन्तु इस प्रकार होनेसे भी जिन समस्त जीवोंके गुणोंमें

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसाऽतोषयद्धरिम्॥२१॥अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥२२॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥ २३ ॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२४॥ देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥२५॥

ही तत्त्वबुद्धि है, वह उनका स्वरूप नहीं देख सकते, क्योंकि उनका परिमाण और सीमा नहीं है और वह स्वयं प्रकाश पाते हैं।इसी कारण सिद्धरूप हैं, ऐसे सर्वोत्तम देवको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥२३॥ गुण अर्थात् विषय जिस प्रकार गुणीके अर्थात् इंद्रियादि विषयोंके सख्य अर्थात् प्रकाशत्वको नहीं जानता वैसे ही सख्य जीव भी इस वेदरूप पुरमें वास करके इस स्थानमें वास करनेवाले जो सखा हैं उनके इंद्रिय प्रवर्तकत्वादिरूप सख्यको नहीं जान सकते, क्योंकि उस जीवकी दृष्टि प्रपञ्चमें ही बँधी रहती है, ऐसे महाऐश्वर्यवान् ईश्वरको मैं नमस्कार करता हूं॥२४॥अहो ! देह, प्राण, इंद्रियाँ, अंतःकरण, पंचभूत, पंचतन्मात्रा यह सब आत्माको, अर्थात् अपने स्वरूपको और इंद्रियवर्ग तथा इन दोनोंमें श्रेष्ठ देवतावर्गको नहीं जान सकते, यद्यपि पुरुष अर्थात् जीव इन तीनके मूलभूत समस्त गुणोंको जानता है, तो

भी यह ऐसे ज्ञात होकर भी सर्वज्ञ भगवान्‌को नहीं जान सकते । ऐसे अनंत भगवन्‌की मैं स्तुति करता हूं॥२५॥जिनके द्वारा नाम रूपका निरूपण होता है,वह मनकी दृष्टि,स्मृति,विनाशके हेतु जब उपराम अर्थात् समाधिको प्राप्त हो जाते हैं,उस समय केवल स्वरूप ज्ञानसे जो प्रतीत होते हैं उन शुद्ध हंसको हम नमस्कार करते हैं, उनके प्रतीत होनेका स्थान भी अतिशय पवित्र है ॥ २६ ॥ जो प्रकृति पुरुष महत् अहंकार और पंचतन्मात्रा इन नव और तीन गुण और षोडश विकार स्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा हृदयके मध्यमें निश्चल हो रहे हैं और जो लोग यज्ञ करनेवाले पंद्रह सामिधेनी मंत्रोंसे प्रकाशित होते हैं, इसलिये अलौकिक अग्निके समान अतिशय गूढ होनेके कारण विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार पूर्वक खींचकर जिनका ध्यान करते हैं ॥२७॥ वह परमात्मा हमपर प्रसन्न हो जो ईश्वर सबसे बड़ा है,जिनके अनंत

यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥ मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥ वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ॥ मा भूत्स्वरूपं गुणरूपबृंहितं स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥ यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ॥ परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥

विशेषण हैं और जिनके मोक्ष सुखका अनुभव मायाके द्वारा नष्ट नहीं होता,वही भगवान् सर्व नामधारी ईश्वर और विश्वरूप हैं,जिनकी आत्मीय शक्तिका कोई वर्णन नहीं कर सकता है वे परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥२८॥अहो ! जो स्वयं प्रकाश है, इसलिये वचनसे कहनेमें नहीं आता है, बुद्धिके द्वारा जिनका व्यवहार होता है, इन्द्रियोंसे जो निरूपित होता है, मनके द्वारा जो संकल्पित होता है और ये सम्पूर्ण भी जिसका स्वरूप नहीं हो सकते,क्योंकि यह सब पदार्थ गुणोंसे बढ़ते हैं,वह परमात्मा इन सबसे अलग है,क्योंकि वे सब गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयसे अलग दृष्टि आते हैं ॥ २९ ॥ जिस अधिकरणमें जिस अपादानसे, जिस कारणसे जिसके सम्प्रदानको जिस कर्मको

और जिस करके जिस प्रकारसे जो कर्म कृत अथवा कारित होता है,वही सबका ब्रह्म है,वही सबका कारण है,क्योंकि वह सबके आगे अपने आपसे ही सिद्ध हो रहे हैं, वह पर और अपर सबका ही परम कारण है। और विजातीय शून्य है ॥ ३० ॥ जिनकी शक्तिवाद विवाद करने-वाले वादियोंके विवाद संवादकी भूमि है। और ब्रह्म ही अपनी-अपनी सब कहते हैं, जब सब पदार्थोंमें ब्रह्मका ही स्वरूप है और सब पदार्थोंका कारण है, फिर मीमांसक लोग परस्पर क्यों वादविवाद करते हैं ? कोई कहता है, यह जगत् सदा ऐसे ही चला आता है और यह जगत न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नष्ट होता है और विवादी लोग लोकमें अनेक-अनेक प्रकारके वाद-विवाद किया करते हैं और मोह-ममता जो ब्रह्माकी माया है उस अविद्या आदिकी शक्तियोंसे मोहित हो चित्तमें भांति भांतिके संकल्प विकल्प उठते रहते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मके स्वरूपमें इनमेंका कोई पदार्थ भी नहीं, वह परब्रह्म परमात्मा तो सबसे विलग है और ब्रह्मवादी लोग मीमांसा करके उनको समझाते भी हैं,

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ॥ कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥ ३१ ॥ अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो रेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥

परंतु तो भी वे सब अपनी-अपनी ही गीत गाते रहते हैं। जिसकी ऐसी अद्भुत माया है,उस अनंतगुणरूप भूमा भगवान्‌को मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥३१॥ कोई कहता है यह वस्तु है, कोई कहता है नहीं है, सबके मत मतान्तरोंमें अंतराय है और परस्पर विरुद्ध है। अहो ! जो योगशास्त्रमें "पदादि हैं" कहकर जिसकी उपासना-विधि बतलाते हैं और जो सांख्यशास्त्रमें "पदादि नहीं है" कहकर जिनकी उपासनाका निषेध करते हैं परस्पर विरुद्ध उन योग और सांख्य शास्त्रके द्वारा जो कुछ प्रतीत होता है वह बृहद्वस्तु ब्रह्मविवादमें और अविवादमें आस्पद है, अर्थात् वही परब्रह्म है, योग और सांख्य शास्त्रोंमें यदि कोई "पदादि हैं" और "पदादि नहीं हैं" ऐसा कहकर विवाद करनेसे इन दोनोंका धर्म अलग अलग हो तो इन दोनोंका विधि और निषेध एक वस्तुमें निष्ठ होनेसे उनका विषय एक हीहो गया है, जो कुछ हो, वही वस्तु परम कल्याणरूप है, क्योंकि विधि और निषेधके विषयमें नहीं है और विना अधिष्ठानके पदादि कल्पना और विधिके

निषेध असंभव होनेसे वह वस्तु अनकूल अर्थात् इन दोनोंके उपपादकरूपमें भी सिद्ध है ॥ ३२ ॥ अहो ! जो प्राकृत नाम रूप रहित होकर भी पादमूलके उपासनाकारी पुरुषोंके निमित्त अवसरोंके द्वारा विशुद्ध सत्त्व अनेक अनेक रूप और कर्मोंसे अनेक नाम ग्रहण करते हैं, जिनका ऐश्वर्य अचिन्तनीय है, वह अनंतरूप परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वायु पद्मादि विशेष-विशेष पदार्थकी विशेष-विशेष गंधका आश्रय करके अनेक गंधयुक्त हो प्रकाश पाती है और पृथ्वीकी रेणुका आश्रय कर काली-पीली-धुंधली इत्यादि अनेक रूपवाली हो जाती है वैसे ही जो भगवान् अर्व्वाचीन उपासनाके मार्ग द्वारा मनुष्य गणोंकी वासनाके अनुसार उन-उन ही देवताओंके रूपमें विविध प्रकारसे प्रकाश पाते हैं अर्थात् जो एक परमेश्वर ही उपासकों कि वासनाके अनुसार उनकेही इष्टदेव रूप हो विशेष-

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः ॥ नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथाऽनिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशंखासिचर्मेषुधनुष्पाशगदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥ महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥ ३८ ॥

विशेष फल प्रदान किया करते हैं वही परमेश्वर हमारे मनोरथ सफल करें, और किसी देवतासे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—कि हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने जब इस प्रकार स्तुति की तब भक्तवत्सल भगवान्ने उनके ऊपर सन्तुष्ट और प्रसन्न हो उस तीर्थमें ही प्रकट होकर अति चमत्कार रूपसे उनको दर्शन दिया ॥३५॥ श्रीभगवान् गरुड़पर बैठे थे, आठ विशाल बाहु जानु पर्यन्त लंबित हो रहे थे, आठों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, खड्ग, पाश यह आठ आयुध शोभायमान थे ॥३६॥ पीताम्बर पहने, श्याम वर्ण, प्रसन्नवदन, कमलवत् नेत्र, सर्वदा प्रसन्न, कण्ठसे लेकर चरणों तक वनमाला लटकाये, हृदयमें श्रीवत्सचिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि झलकाये ॥३७॥ मस्तक पर किरीट मुकुट सजाये कानोंमें मकराकार कुण्डल झलकाये उन त्रिभुवनेश्वर भगवान्के चरणोंमें नूपुर पड़े, कटिमें

किंकिणी कौंधनी इत्यादि भूषणोंमें हीरे रत्न जड़े, अंगूठी, बाजूबंद, कड़े हाथोंमें शोभायमान थे ॥३८॥ इस प्रकार सजे हुए पुरुषोत्तम नामक त्रैलोक्यमोहनरूप धारण करके वे प्रकट हुए। हे राजन् ! इस प्रकार वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीभगवान् अकेले नहीं प्रकटे वरन नारद, नन्द इत्यादि पार्षद और समस्त लोकपाल उनको चारों ओरसे घेरे खड़े थे ॥३९॥ और गान करते हुए सिद्ध,चारण व गन्धर्वगण दोनों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। हे राजन् ! इस प्रकारसे अति आश्चर्यरूप देखकर प्रजापतिके अंतःकरणमें परमानंद उत्पन्न हुआ ॥४०॥ मनके द्वार सब पूर्ण हो गये, अतिहर्षित चित्त होकर भूमिपर शिर नवाकर दंडवत् प्रणाम किया परंतु प्रेमके मारे कोई बात

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ॥ वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ ३९ ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्ध गन्धर्वचारणैः ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥ ४० ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ न किंचनोच्चारयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥ ४१ ॥ अपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥ तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ॥ चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परंगतः ॥ ४३ ॥ प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

उनके मुखसे निकल न सकी ॥ ४१ ॥ झरनेवाली नदी जिस प्रकार जलसे भर जाती है, वैसे ही अति भारी हर्षसे प्रजापतिके इंद्रियोंके द्वार परिपूर्ण हो गये थे, अर्थात् अति भारी आनन्दमें परिपूर्ण होनेके कारण उनकी रागादि इंद्रियोंकी वृत्ति मानो शून्य हो गयी। इस लिये वह वचन कहनेको समर्थ नहीं हुए और पुरुषोत्तमकी केवल वंदना ही की यद्यपि उन्होंने कुछ नहीं कहा तो भी सर्व भूतोंके चित्तकी जाननेवाले श्रीभगवान्ने उसी भांति अपने प्रणत परमभक्त इन प्रजापति दक्षसे कहा ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान् बोले-कि हे प्रचेतापुत्र महाभाग दक्ष मुझमें भाव सहित परमश्रद्धा करके तुम तपसे सिद्ध हो गये ॥४३॥ हे प्रजानाथ ! तुम्हारी यह तपस्या विश्वको

बढ़ानेवाली हैं, इससे हम तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि सब प्राणियोंकी विभूति भलीभांति बढ़े यही कामना है, वह तुम्हारे द्वारा हमारी कामना पूर्ण हुई इसलिये हम तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हैं, हे वत्स ! तुम सब प्रजापति, ब्रह्मा, शिव मनुष्यगण और देवेश्वरगण ये सब हमारी विभूति और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥४४॥४५॥ हे ब्रह्मन् । तप अर्थात् यम-नियमादि सहित ध्यान हमारा हृदय है, विद्या अर्थात् सांगमंत्र जप हमारा शरीर है, क्रिया अर्थात् भावना शब्द वाच्य पुरुष अपार हमारा आकार है, यज्ञ हमारा अंग धर्म है अर्थात् यज्ञानुष्ठानजनित अपूर्व हमारा मन है, यज्ञ भोक्ता देवगण हमारे प्राण हैं ॥ ४६ ॥ हे दक्ष ! आगे केवल हमही थे हमारे सिवाय कुछ भी बाहर भीतर नहीं था अर्थात् केवल चैतन्यमात्र था, वह भी इंद्रिय वृत्तिसे जाना जाता है इसलिये यह जगत्

तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ॥ अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्माऽसवः सुराः ॥ ४६ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचान्तरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४७ ॥ मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्य स्वयंभूः समभूदजः ॥ ४८ ॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेनेऽखिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥ अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ॥ नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥५०॥ एषा पञ्चजनस्यांग दुहिता वै प्रजापतेः ॥ असिक्नी नाम पत्नी त्वं प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५२ ॥

सर्वत्र सोते हुएके समान था ॥ ४७ ॥ उसके पीछे अनंतगुण जो हम हैं; हमसे माया द्वारा गुणमय विग्रह यह ब्रह्माण्ड जब प्रकाशित हुआ, तब उस समय ही आद्यस्वयम्भू अयोनिज होकर उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ वह हमारे वीर्यसे वर्द्धित होनेके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेको उद्यत हुए थे परंतु जब कि, उन्होंने अपनेको इस कार्यमें असमर्थ समझा तब हमने उनको तपस्या करनेका उपदेश दिया जिससे कि उन्होंने कठिन तपस्या की और उसी तपस्याके प्रभावसे नव (९) विश्व उन्होंने तुम उत्पन्न करनेवालोंको उत्पन्न किया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस लिये हे दक्ष ! प्रसिद्ध प्रजापति पंचजनकी यह कन्या यहां पर है, जिसका नाम असिक्नी है, तुम इसको अपनी स्त्री बनाओ

स्त्री पुरुषका रतिक्रीड़ारूप जो मैथुन धर्म है उसी मैथुन धर्मका आश्रय लेकर इस रूपवती और धर्मवती कन्यामें तुम अनेक प्रजा उत्पन्न करोगे॥५१॥५२॥हमारी मायाके वश होकर तुम्हारे पीछेकी सब प्रजा भी स्त्रीके साथ मैथुन धर्मसे पुत्रादिरूपमें उत्पन्न होगी और हमारे लिये भेंट देगी॥५३॥श्रीशुकदेवजी बोले--कि हे राजन्! विश्वभावन भगवान् इस प्रकार कहकर दर्शनकारी दक्षके सामने स्वप्नमें प्राप्त हुए पदार्थकी नाईं उस स्थानमें ही अन्तर्धान हो गये ॥५४॥ तब दक्षजीने यह कवित्त कहा ॥ कबित्त-राग उदै भोग भाव लागत सुहावनेसे, विना राग ऐसे लगे जैसे नाग कारे हैं। राग ही से पाग रहै तनुमें सदैव जीव, राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं ॥ राग ही से जगरीति झूठी सब सत्य जानै, राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं। रागी वीतरागीके विचारमें है बड़ो भेद, जैसे भटापथ काहू काहूको बयारे हैं ॥

त्वत्तोधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया॥ मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम्॥५३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० दक्षोत्पत्त्यादिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः॥ हर्यश्वसंज्ञानयुत पुत्रानजनयद्विभुः ॥१॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप॥ पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥ २॥ तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः॥ संगमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे प्रचेतसां दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा-पंचसमाहीं देवऋषि, कूट वचन कहे आप। दीने पुत्रनि मारु सब, दक्ष दिये तब शाप॥श्रीशुकदेवजी बोले कि प्रजापति दक्षने विष्णु भगवान्‌की मायामें फँसकर उस पंचजनकी कन्या असिक्नीके गर्भमें हर्यश्व आदि दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ हे नरेन्द्र! उन सब पुत्रोंका एकसा आचार-व्यवहार और एक ही प्रकारका स्वभाव हुआ, जब प्रजापति दक्षने उसको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी तो वे सब पश्चिम दिशाको चले गये ॥ २ ॥ पश्चिम दिशाके उस स्थानमें कि जहां सिंधुनदी समुद्रके साथ मिली है, उसी स्थानमें नारायणसुर नामक एक तीर्थ है वह अतिशय

पुण्यदायक है, बड़े-बड़े महात्मा मुनि लोग और सिद्ध गण सदा उसकी सेवा किया करते हैं ॥३॥ दक्षके पुत्र हर्यश्वगण उसी तीर्थमें पहुँचे और उसका जल स्पर्श करते ही उनके अन्तःकरणोंका अनंत मल भलीभांति धुल गया और परम हंस धर्ममें उनकी बुद्धि उदित हुई ॥४॥ तथापि उनके पिताने जो उनको सृष्टिके रचनेकी आज्ञा दी थी वह सब उसी काममें लगे हुए सृष्टिके उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़ी घोर तपस्या करने लगे ! एक दिन देवर्षि नारदजी उस स्थानपर होकर जा रहे थे, उन्होंने जाते-जाते देखा कि ये सब हर्यश्व पवित्र और शुद्ध होकर भी अपने पिताकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हो रहे हैं ॥५॥ इस लिये देवर्षि नारदजी उनसे बोले—कि हे हर्यश्वगण !

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ॥ प्रजाविवृद्धये यत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥ ५ ॥ उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥ नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ॥ क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥ ८ ॥ कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ ९ ॥

तुम लोग बालक हो, कैसे खेदकी बात है कि तुम सब सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये तपस्या करते हो, यह बड़ी मूर्खता है । भला इस पृथ्वीका अंत विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे ॥ ६ ॥ जहां अकेला ही पुरुष है, वह राज्य और जिससे कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल और जिनके बहुत रूप हों वह स्त्री और जो पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष ॥७॥ और वह नदी जो दोनों ओरको बहती है और वह गृह जो पच्चीस(२५)पदार्थोंसे अति अद्भुत है और उसमेंका ही वह चित्र-विचित्र ध्वनि युक्त हंस जो कठिन-कठिन शब्दोंसे और वज्रसे बना है, स्वतन्त्र और अपने आप घूमता है ऐसा तीक्ष्ण चक्र ॥ ८ ॥ इन सबको विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि

१. शंका—हर्यश्व जो दक्षके पुत्र हैं, वे सब भाई मिलकर सृष्टि रचनेके लिये तपस्या करने लगे तब उन सबको नारदजीने सृष्टि बनानेके लिये निषेध करके योग करनेकी क्यों आज्ञा दी ? सृष्टिके उत्पन्न होनेमें नारदजीकी क्या हानि थी ?

उत्तर—दक्षके पुत्रोंकी इच्छा सृष्टिके रचनेकी नहीं थी, योग करनेकी इच्छा थी, परंतु पिताकी आज्ञा मानकर सृष्टि रचनेके मिष तप करनेके लिये गये तब नारदजीने उनके हृदयकी बातको जानकर सृष्टि रचनेका निषेध किया, और योग करनेका उपदेश दिया ।

उत्पन्न करोगे ? तुम्हारे पिता सर्वज्ञ थे, उनके अनुरूप आज्ञा क्या है ? उसको भी भली भांतिसे पहले जान लेना कर्तव्य है, इन सब बातोंको विना जाने सृष्टि उत्पन्न करनेका शीघ्रतासे एकाएकी उपस्थित हो जाना किसी प्रकारसे हमको ठीक नहीं जँचता है ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले-कि हे परीक्षित् ! हर्यश्वगण इस बातको सुन अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे नारदजीके कहे हुए कूट वचनोंका उत्तर देनेको परस्पर विचार करते-करते कहने लगे कि ॥ १० ॥ देवर्षि नारदजीने दश वाक्य कहे । "विना जाने" इत्यादि जो वाक्य कहे हैं उनका अर्थ यही है-कि, भूमि अर्थात् क्षेत्र जीव संज्ञक यह लिंगशरीर जो आत्माके बंधनका कारण है, इसलिये देवर्षि नारदजीके इस वाक्यका यही तात्पर्य होगा कि लिंग शरीरके अंत अर्थात् विनाश दर्शन करके मोक्षके विरुद्ध असत् कर्म करनेसे क्या फल होगा ?॥११॥ और देवर्षि नारदजीने-

श्रीशुक उवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ॥ वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥ १० ॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥ एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १२ ॥ पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥ नानारूपाऽऽत्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥

"जहां एकमात्र पुरुष है,वह राज्य"इत्यादि जो वचन कहे हैं उनका भी यह अर्थ है कि एकमात्र ईश्वर ही सबके साक्षी हैं,उनका आश्रय और कोई नहीं है,वह अपने आप ही अपने आधार हैं, उन नित्यमुक्त ईश्वरको विना जाने और उनमें समर्पण विना किये वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा ? ॥१२॥ और देवर्षि नारदजीने-"जिसमें कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल विना देखे" इत्यादि जो वचन कहे हैं उनका तात्पर्य यही है-कि पुरुष जहां जाकर बिल स्वर्ग अर्थात् पातालमें गये हुए पुरुषके समान वहांसे फिर पीछेको न लौट सके, वह परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं,उस ब्रह्मको विना जाने निरर्थक नाशवान् स्वर्गके साधनकरनेवाले कर्मोंके करनेसे क्या फल मिलेगा?॥१३॥ और देवर्षिजीने "जिसके बहु रूप हों वह स्त्री" यह जो कहा,इसका अर्थ यह जान पड़ता है कि अपनी बुद्धि स्वैरिणी स्त्रीके समान मोहकी

करनेवाली और रज इत्यादि अनेक गुणोंसे युक्त है। जो पुरुष उस बुद्धिके अंतको प्राप्त नहीं होता, उसके अशान्तकर्म करनेसे उसको क्या फल मिलेगा ? ॥१४॥ और नारदजीने "पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष" इत्यादि जो कहा है,इसका आशय यह है-कि इस माया संगके वश जिसका ऐश्वर्य भ्रष्ट हो गया है,इस लिये कुत्सित स्त्रीके स्वामीके समान जो उस मायाके सुख दुःखरूप गतिका पीछा करते हैं, उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेकसे किये हुए कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा ? ॥१५॥ और मुनिने-"वह नदी जो दोनों ओरको बहती है" यह जो बात कही,इसका अर्थ यही है-कि संसारमें सृष्टि और प्रलय करनेवाली जो माया है, वही नदीस्वरूप है, क्योंकि प्रलय और सृष्टि यही दो इसके प्रवाह हैं, जो दोनों ओरको बहते हैं, यद्यपि तपस्या और विद्या इत्यादि इस नदीके कूल अर्थात् निर्गम स्थान हैं तथापि निर्गमको रोकनेके लिये जो पुरुष उस नदीके तेजको विना विचारे कर्मोंको करे तो उससे क्या फल होगा ! ॥१६॥ और

तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् ॥ तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥ सृष्टयप्ययकरीं मायां वेला कूलान्तवेगिताम् ॥ मत्तस्य ताम विज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १६ ॥ पञ्चविंशतितत्त्वा नां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥ ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥

देवर्षिने-"वह गृह जो पच्चीस (२५) पदार्थोंसे अति अद्भुत है" जो कहा,इसका तात्पर्य यह है कि अंतर्यामी पुरुष पच्चीस तत्त्वके अति आश्चर्यवाले आश्रय हैं,वह कार्य,कारण और संघातके अधिष्ठाता हैं, उनको जो पुरुष नहीं जानता उसको मिथ्या और स्वतंत्रतासे किये हुए कर्मोंसे क्या फल होगा ?॥१७॥और देवर्षिने "विचित्रकथायुक्त हंस" इत्यादि जो कहा इसका आशय यह है कि ईश्वरके प्रतिपादक शास्त्रोंमें चित्त और जड़रूप वस्तु विशेष रूपसे विचारी जाती है, इस लिये वह हंसस्वरूप है,हंस जैसे दूध और पानीको अलग-अलग कर देता है, ऐसे यह शास्त्र अचेतन और चैतन्य वस्तुको भिन्न-भिन्न कर देता है, किस कर्ममें बंधन और किस-किस कार्यसे मुक्ति है इसको दरशाया करता है, इस लिये उसकी सब कथा विचित्र है। इस शास्त्रको त्याग करके अर्थात् न जान करके केवल बहिर्मुख कर्म मात्रके करनेसे क्या फल

होगा ?॥१८॥ और देवर्षिने-"शस्त्र और वज्रादिसे बना हुआ स्वयं घूमता तीक्ष्ण चक्रका" जो वर्णन किया उसका अर्थ सुतीक्ष्ण कालचक्र है,वही अपने आप रात-दिन घूमता रहता है और यही सब संसारका संहार करता रहता है इस लिये वह स्वतन्त्र है, उस कालचक्रकी गतिको विना जाने असत्कर्मोंके करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥१९॥ और नारदजीने जो हमसे कहा कि-"तुम्हारे पिताकी अनुरूप आज्ञा क्या है, उसको भलीभांति विना जाने कैसे सृष्टि उत्पन्न करोगे?" इसका तात्पर्य यही है कि शास्त्र ही हमारा पिता है,क्योंकि वह द्वितीय जन्मका कारण है,निवर्तक होना ही उसकी आज्ञा है,उस निवर्त्तक आज्ञाको जो पुरुष नहीं जानता वह गुणयुक्त प्रवृत्ति-मार्गमें विश्वासवान् हो सृष्टि इत्यादि कार्योंमें किस प्रकार लग सकता है? दक्षकूट "मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायान्तरात्मनाम्। शास्त्रकालोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिः"॥

कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ॥ स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥ २० ॥ इति व्यवसिता राजन्हर्यश्वा एकचेतसः ॥ प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥ २१ ॥ स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे ॥ अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥ २२ ॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ॥ अन्वतप्यत कः शोचन् सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥ २३ ॥ स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ॥ पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान् सहस्रशः ॥ २४ ॥

इति॥२०॥हे राजन्! इस प्रकार निश्चय करनेके पीछे दक्षके पुत्र हर्यश्वगण एक मति करके नारदजीकी बातका प्रमाण और उनकी प्रदक्षिणा कर जिस मार्गमें फिर लौटना नहीं होता उस मार्गमें प्रस्थान करते हुए॥२१॥ देवर्षि नारदजी भी ब्रह्मस्वरूप भगवान् हृषीकेशके चरण कमलमें अपने मनको संपूर्ण रीतिसे लगाकर अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे गाने-लगे॥२२॥और कुछ समय बीतनेके पीछे प्रजापति दक्षजीने देवर्षि नारदजीके मुखसे ही सुना कि सब पुत्रगण, जो सुशीलतासे सदा शोभा पाते थे, वे अब अदृश्य हो गये हैं; यह जानकर दक्षजी शोकयुक्त हो अपने पुत्रोंके लिये शोक-सन्ताप करने लगे। अच्छे पुत्रवाला ही शोकका स्थान है, फिर भला सर्वश्रेष्ठ सन्तान हर्यश्वगणोंके लिये दक्षजीको शोक क्यों नहीं होगा?॥२३॥ हे राजन्! जब दक्षजी शोकके मारे व्याकुल हुए,तब भगवान् ब्रह्माजी उनके निकट

आये और अनेक प्रकारके वचनोंसे उनको समझा-बुझाकर चले गये। प्रजा उत्पन्न करनेकी दक्षके अंतःकरणमें बड़ी इच्छा थी। जब ब्रह्माजीने उनको समझाया बुझाया तब दक्षजीने फिर प्रजा उत्पन्न करनेके मनसे अपनी स्त्री उसी पाञ्चजनीके गर्भमें शबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥२४॥ प्रजापति दक्षजीने शबलाश्व नामक इन पुत्रोंको भी प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। यह भी व्रत धारण कर जहाँ इनके पहले भ्राता तप करके सिद्ध हुए थे, ये भी उसी नारायण सरोवर पर गये ॥२५॥ हे राजन्! नारायण सरोवरका पवित्र जल स्पर्श करते ही शबलाश्वगणोंका पाप धुल गया और चित्त शुद्ध हो गया। तब परब्रह्मस्वरूप अर्थात् प्रणवका जप करके बड़ा भारी तप उन लोगोंने आरंभ

तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तत्र महत्तपः ॥ २६ ॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान् कतिचिद् वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मन्त्रमिमम्भ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥ २७ ॥ ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥ इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥ दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ॥ अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥ भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥

किया ॥२६॥ कुछ महीने जल पीकर, कुछ महीने केवल वायु (हवा) भोजन कर उन्होंने बिताये और इस मंत्रका अभ्यास करते हुए उस मंत्रपति भगवान्‌की आराधना करने लगे॥२७॥ यथा—"ओं नमो नाराणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि॥" परम पुरुष महात्मा नारायण विशुद्ध सत्त्व गुणके आश्रय परमहंसरूपी भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ २८ ॥ हे राजन्! शबलाश्वगण प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे इस प्रकार तप करनेमें ध्यान लगा रहे थे, कि एक दिन देवर्षि नारदजी उनके निकट आये और जैसे इन्होंने हर्यश्वोंको कूट वचन कहे थे, उन लोगोंको भी इसी प्रकार कूट वचन कहे ॥२९॥ नारदजी बोले—कि हे दक्षनन्दन शबलाश्वगण! हमारे उपदेश किये वचनोंको तुम सुनो, तुम सब भाइयोंको प्यार करनेवाले अपने बड़े भाइयोंकी पृथ्वीको देखो ॥३०॥ जो धर्मज्ञ भ्राता अपने

भाईकी गतिको जाता है, वही पुण्यबंधु है, भ्राताके चाहनेवाले देवतागण उसको लेकर आनंद मनाया करते हैं॥३१॥हे आर्य! हे राजवर्य! देवर्षि नारदजी केवल इतना ही कहकर अपने स्थानको चले गये। उनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, इस लिये उनके इन वचनोंसे शबलाश्वगण भी अपने बड़े भाइयोंके मार्गकी रीतिपर चले ॥ ३२ ॥ वे लोग बहुत सुन्दर प्राचीन परमेश्वरके मार्गको गये।जिस प्रकार पश्चिमको गयी राति लौटकर नहीं आती वैसे ही आजतक वे लौटकर नहीं आये ॥ ३३ ॥ हे राजन्! इस ओर प्रजापति दक्षको अनेक-अनेक भांतिके उत्पात दीखने लगे, उन्होंने थोड़े दिन पीछे सुना कि नारदजीकी सम्मतिसे शबलाश्वनामक पीछे उत्पन्न हुए पुत्रगण भी विनाशको प्राप्त हुए ॥३४॥ इसलिये दक्षपुत्र शोकसे मूर्छित हो महर्षि नारदजीके ऊपर क्रुद्ध हुए। देवर्षि नारदजीने पहले ही जान लिया था कि पुत्रोंकीपार-

एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥ तेऽपि चान्वगमन् मार्गं भ्रातृणामेव मारिष ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥३४॥ चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥ दक्ष उवाच ॥ अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणांभिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥ ३६ ॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥३७॥

महंस्य धर्ममें निष्ठाकी कथा सुनकर प्रजापति दक्ष क्रोधित होंगे इसलिये नारदजी अनुग्रह प्रकट करनेके लिये उनके निकट गये। तब दक्षजी क्रोधवेगके मारे अधरों (होठों) को फड़काकर नारदजीका अपमान करने लगे ॥ ३५ ॥ दक्ष बोले—कि अरे असाधु! तेरा केवल वेष ही साधुके तुल्य है परन्तु वास्तवमें तू साधु नहीं, क्योंकि तूने हमारे पुत्रोंके ऊपर अतिशय असाधुपनका व्यवहार किया है, हमारे पुत्र निज धर्ममें प्रवृत्त थे, तूने उनको भिक्षुकमार्गका उपदेश किया, क्या यह साधुका कर्म है? ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण जन्म लेते ही तीन ऋणोंसे ऋणी होता है,वह तीनों ऋणोंसे विना कर्मोंकी मीमांसा किये विना छूटे मुक्त नहीं हो सकता। हे पापरूप! अभी हमारे पुत्रोंका ऋषिऋण

नहीं छूटा। पुत्र उत्पन्न करना और यह यज्ञानुष्ठान तो पीछे करना होता है फिर भला इन दो कार्योंके ही करनेसे देवऋण और पितृऋणसे किस प्रकार मुक्ति हुई, जो हो, तू अतिशय पापी है, क्योंकि संसारी सुख छुड़ाकर तूने हमारे पुत्रोंका यह लोक ही नहीं, वरन्, परलोक भी बिगाड़ दिया, क्योंकि अब उनका मोक्षमें अधिकार नहीं रहा। मनुस्मृतिमें है कि–"ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः"। श्रुतिः–"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजाया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी" इति ॥३७॥ तू बड़ा निर्दयी है, बालकोंकी पुत्रादि उत्पन्न करनेकी मति तूने बिगाड़ दी। क्या आश्चर्य है, तू इस प्रकारसे भगवान्‌का यह नाश करनेवाला होकर किस भांतिसे उनके पार्षद–गणोंके

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥ ३८ ॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं व वैरंकरमवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥ नानुभूय न जानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ॥ निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥ ४१ ॥

बीचमें फिरा करता है, क्या निर्लज्जता है! ॥३८॥ अरे! हम देखते हैं कि तेरे सिवाय सब भगवद्भक्त सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें उपस्थित रहते हैं परन्तु तू मित्रोंसे द्रोह करनेवाला है और जो वैरी न हो उसे तू वैरी बना देता है, इस प्रकारसे सब प्राणियोंका अप्रिय करनेमें तुझे लज्जा नहीं आती ॥३९॥ यदि तूने अपने मनमें ऐसा समझा है कि वैराग्यसे उपशम और उपशमसे स्नेहकी फाँसी टूट जाती है और विरक्त पुरुषोंके तीन ऋणोंका दूर करना अनावश्यक है, तो भी ज्ञानके विना मिथ्या इस प्रकारका वेष धारण कर इस प्रकार मति चलायमान करनेसे पुरुषोंको कभी वैराग्य नहीं हो सकता, जब वैराग्य ही नहीं, तब उपशम कहांसे होगा? जब उपशम नहीं तब स्नेहपाश छूटनेकी क्या संभावना है? ॥ ४० ॥ जबतक यह किसी बातका अपने आपही अनुभव करता है, तबतक विषयोंकी तीक्ष्णतासे जो आप वैराग्य

वान् हो तो ठीक है औरोंके सिखाने-बहकानेसे जो बुद्धि भिन्नकारणसे ज्ञान होता है, वह कुछ भी नहीं है ॥ ४१ ॥ जो हो, हम लोग साधु हैं कभी किसीका अप्रिय करना नहीं जानते, तूने हमारा यह सहनेके अयोग्य अप्रिय कर्म किया, इसको हमने सहन कर लिया ॥४२॥ परन्तु हे अधम ! संतानके नाश करनेवाले तूने हमारा जो अभद्र अर्थात् पुत्रगणोंका स्थान भ्रष्ट करके अमंगल किया इसलिये लोकोंके मध्यमें तुझे कहीं स्थान प्राप्त नहीं हो सकेगा अर्थात् एक स्थानपर बैठेगा तो तेरे मस्तकमें दर्द हो जायगा, तेरा जन्म भटकते ही भटकते कटेगा ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! साधुसम्मत देवर्षि नारदजीको जब पुत्रशोकसे व्याकुल हुए दक्षजीने शाप दिया तब नारदजी

यन्नस्त्वंकर्मसंधानां साधूनां गृहमेधिनाम् ॥ कृतवानसि दुर्मर्ष विप्रियं तव मर्षितम् ॥ ४२ ॥ तन्तुकृन्तन यन्नस्त्व मभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥ एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दक्षकृतनारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा ॥ षष्टिं संजनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥१॥ दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ॥ भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे ताक्ष्यार्य चापराः ॥ २ ॥

कुछ न कहकर उस शापको अंगीकार कर लिया, क्योंकि प्रतिशाप देनेमें समर्थ होनेपर भी उसका सह लेना ही साधुओंका मत है* ॥४४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां नारदशापवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा-साठ सुता उत्पन्न की, दक्ष छठे अध्याय । भिन्न-भिन्न वर्णन करौं, तिनके कुल-समुदाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले-कि हे राजन् ! इसके पीछे दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीकी आज्ञासे असिक्री अपनी स्त्रीमें अतिप्यारी(६०)साठ कन्या उत्पन्न कीं क्योंकि स्त्रियोंको एकाएकी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥१॥ उन साठ कन्याओंमेंसे

* मेरा कछु नाहि प्रभु तेरी प्रभुताई है। तेरा ही विश्व रचा तू ही विश्वरूप हुआ। तेराही तमाशा सब तूही तमाशायी है ॥ ध्यान है हर आन तेरा हरदम हैं बयान तेरा। जबसे कुछ ज्ञान हुआ तब से समझ आई है। तेराही दास सदा दर्शनकी आश सदा। कीजिये सहाय सदा सन्तन सुखदाई है ॥ १ ॥

दश धर्मको, तेरह कश्यपजीको और सत्ताइस चन्द्रमाको ब्याह दीं। भूतनाथ, अंगिरा और कृशाश्व इन तीन मुनियोंको दो-दो कन्या ब्याहीं और बाकी चार गरुड़जीको दे दीं ॥ २ ॥ हे राजन्! प्रजापति दक्षजीकी सब कन्या पुत्रवती हुई, उनके नाम अलग-अलग कहता हूं तुम सुनो। उनके ही पुत्र पौत्रादिकोंसे पृथ्वी परिपूर्ण हो गयी ॥ ३ ॥ हे महाराज! भगवान् धर्मने जिन दश कन्याओंका पाणिग्रहण किया उनके यह नाम हैं, यथा—भानु १, लम्बा २, ककुभ ३, जामि ४, विश्वा ५, साध्या ६, मरुत्त्वती ७, वसु ८, मूहूर्ता ९ और संकल्प १०, अब इनमेंसे प्रत्येकके वंशका विवरण कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ हे राजन्! भानुका पुत्र देवर्षभ, देवर्षभका पुत्र इन्द्रसेन। लम्बा-नामक जो धर्मकी पत्नी हुई उसके गर्भसे विद्योत, विद्योतके स्तनयित्नुनाम पुत्र हुए ॥ ५ ॥ हे राजन्! ककुभ नामक धर्मकी स्त्रीके संकट

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥३॥ भानुर्लम्बा ककुब्जामि-र्विश्वा साध्या मरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता संकल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु ॥४॥ भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्चस्तनयित्नवः ॥५॥ ककुभः संकटस्तस्यकीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ॥ साध्यो गणस्तु साध्यायाअर्थसि द्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥ मरुत्वांश्च जयन्तश्चमरुत्वत्या बभूवतुः ॥ जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥ मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ ये वै फलंप्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥९॥

नामक पुत्र हुआ, इस संकटका पुत्र कीकट हुआ, इससे पृथ्वीके समस्त दुर्ग अर्थात् दुर्गाभिमानी देवतागण उत्पन्न हुए, जामिका पुत्र स्वर्ग जिससे नन्दिगणकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन्! विश्वाके पुत्र विश्वेदेवगण हुए, इनके कोई संतान नहीं हुई, इसी लिये इनको लोकमें अप्रजा कहा करते हैं, इस प्रकारसे साध्याके संतान साध्यगण और उनका पुत्र अर्थसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ मरुत्त्वतीके गर्भमें दो पुत्र हुए। उनके नाम मरुत्वान् और जयन्त हुए। उनमें जयन्त वासुदेवके अंशसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये सब उनको उपेंद्र भी कहते हैं ॥ ८ ॥ हे राजन्! मौहूर्त्ताके गर्भमें मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए, वे लोक प्राणियोंको अपने कालका उत्पन्न हुआ फल दान किया

करते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पाके पुत्र संकल्प और उनके काम नामक पुत्र हुआ। हे राजन्! वसुके पुत्र आठ वसु हुए, उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ द्रोण १, प्राण २, ध्रुव ३, अर्क ४, अग्नि ५, दोष ६, वास्तु ७, विभावसु ८। बस, ये ही आठ वसु हैं! इनमें द्रोणकी स्त्री अभिमतिके गर्भसे हर्ष, शोक, भय इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ प्राणकी स्त्री ऊर्जस्वती भार्याके गर्भमें सह, आयु और पुरोजव पुत्र हुए, ध्रुवकी स्त्री धरणीने विविध पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ अर्ककी भार्या वासनासे तर्ष, भय आदि अनेक पुत्र पैदा हुए, अग्निकी स्त्री-वसुधाराके गर्भमें द्रविणक इत्यादि अनेक पुत्र और स्कंद जन्म ग्रहण किये ॥ १३ ॥ यह स्कंदजी लोकमें कृत्तिकाके पुत्र भी कहे

संकल्पायाश्च संकल्पः कामः संकल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥ ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥१२॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥ १४ ॥ वसोराङ्गिरसोपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ॥ ततो मनु श्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥ सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ १७ ॥

जाते हैं, परन्तु उनसे ही विशाखा दिककी उत्पत्ति हुई। हे राजन्! दोषनामक वसुकी शर्व्वरी नामक स्त्रीमें भगवान् हरिके अंशमें शिशुमार पुत्र उत्पन्न हुआ॥१४॥वसु नामक वसुकी भार्या अंगिरसीमें विश्वकर्मा नामक वे पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवता लोगोंके शिलपाचार्य प्रसिद्ध हैं॥१५॥ हे राजन्! विश्वकर्माजीसे चाक्षुष मनु उत्पन्न हुए, जिनके पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण हुए। हे कौरवश्रेष्ठ! विभावसु नामक वसुकी स्त्री ऊषाने व्युष्ट, रोचिष, आतप यह तीन पुत्र उत्पन्न किये, इन तीन पुत्रोंके मध्य आतपसे पञ्चयाम अर्थात् दिवसकी उत्पत्ति हुई जिससे कि सब प्राणी अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहकर जागते रहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! प्रजापति दक्षजीने जो अपनी दो कन्या भूतको दी

थीं, इस समय हम उनके वंशको कहते हैं, तुम सुनो भूतकी स्वरूपा नामक स्त्रीने रुद्रगणको उत्पन्न किया, उनके नाम ये हैं—जैसे रैवत १, अज, २, भव ३, भीम ४, वाम ५, उग्र ६, वृषाकपि ७ ॥ १७ ॥ अजैकपाद ८, अहिर्बुध्न्य ९, बहुरूप १० और महान् ११ । हे राजन् ! यह ग्यारह रुद्रोंके पार्षद जो प्रेतादि हुए वे इस भूतकी दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न हुए ॥१८॥ हे राजन् ! अंगिरा प्रजापतिकी स्वधा व सती नामक दो भार्या हुई। उनमें स्वधाने पितृगणको अपना पुत्र मानकर स्वीकार कर लिया और सतीने अथर्वांगिरह नामक एक वेदको पुत्र करके मान लिया ॥१९॥ हे राजन् ! कृशाश्व प्रजापतिकी अर्चि और धिषणा नामक दो भार्या थीं । कृशाश्वने अर्चिके गर्भसे धूमकेशको उत्पन्न किया और धिषणाके गर्भमें वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु यह चार पुत्र उत्पन्न किये।तार्क्ष्य प्रजापतिकी चार स्त्रियाँ

अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये प्रेतभूतविनायकाः ॥ १८ ॥ प्रजापतेरंगिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ॥ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिषणायां वेदशिरा देवलं वयुनं मनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतंगी यामिनी इति ॥ पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमःकला लेभे क्षये दिताः ॥ २३ ॥

हुई, विनता, कद्रू, पातंगी और यामिनी, इनमें पातंगीने पातंगोंका प्रसव किया, यामिनीने शलभ (टीडी) पुत्र उत्पन्न किये ॥२०॥२१॥ विनताने गरुड़ और अरुण नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, उनमें गरुड़जी साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुजीके वाहन हुए और अरुण सूर्य नारायणजीके सारथी हुए। हे राजन् कद्रूके गर्भसे अनेक नाग उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ हे भारत ! चन्द्रमाकी पत्नी कृत्तिकादि हुईं; परंतु प्रजापति चंद्रमा सब स्त्रियोंका निरादर करके केवल रोहिणीसे ही अति प्रीति किया करते थे, इसलिये और कन्याओंका दुःख देखकर दक्षजीने शाप दिया है तुम्हें क्षयी रोग हो जाय,इसलिये चन्द्रमासे इनकी स्त्रीके गर्भमें कुछ सन्तान नहीं हुई फिर प्रजापति चन्द्रमा क्षयी

रोग हो जानेसे अपने मनमें महादुःखी रहने लगा, तब अनेक विनयसे दक्षको प्रसन्न किया। पीछे दक्षने प्रसन्न होकर यह वर दिया कि कृष्णपक्षमें जो तेरी कलायें क्षीण हो जाती हैं वह कला शुक्लपक्षमें पूरी हो जाया करेंगी, इस प्रकार कला तो होने लगीं, परंतु संतान तो एक न हुई ॥ २३ ॥ हे राजन् ! कश्यपजीकी जो स्त्रियाँ हुईं; वे सब लोकोंकी जननी हैं, इसलिये उनके कल्याणकारी नाम सुनो ॥२४॥ क्योंकि यह सब जगत् कश्यपजीकी स्त्रियोंसे ही उत्पन्न हुआ है।अदिति, दिति,दनु, काष्ठ,अरिष्ठा,सुरसा, इला मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा,

श्रृणु नामानि लोकानां मातॄणां शंकराणि च ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥२४॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ २५ ॥ तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥ सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ २६ ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥२७॥ इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥ अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥२८॥

सुरभि, सरमा और तिमि, यह सब कश्यपकी स्त्रियाँ हुईं ॥२५॥ इनमेंसे तिमिके पुत्र यादोगण अर्थात् समस्त जलजन्तु उत्पन्न हुए और सरमाके पुत्र हिंसा करनेवाले चतुष्पद विशेष हुए हे नृपोत्तम ! सुरभीके पुत्र गो-महिष और दो खुरवाले और दूसरे पशु हुए ॥ २६ ॥ ताम्राके श्येन (शिकरा) गीध इत्यादि विहंगमगण और मुनिकी सन्तान अप्सरायें हुईं हे राजन् ! क्रोधवशाके पुत्र दन्दशूक और सर्प इत्यादि पेटके बल चलनेवाले उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ इलाके पुत्र सर्व प्रकारके भूरुह (वृक्ष लतादि) जन्मे और सुरसाके पुत्र राक्षस हुए

---

१. शंका–कश्यपमुनिकी तिमि, सुरसा, इला, सरमा, आदि स्त्रियां थीं? जिनके तृण, सर्प, गीध, जलचर कुत्ते इत्यादि ऐसे-ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके ऐसे-ऐसे पुत्र हुए, वे सब स्त्री जातिकी ब्राह्मणी थीं,उन्होंने श्वानादिक जो पुत्र उत्पन्न किये, उनका स्वरूप उनकी माताओं कासा था अथवा और किसी प्रकारका था ? यह मुझको बड़ा भारी संदेह है कि ब्राह्मणियोंके उदरसे ऐसी कुत्सित सन्तान क्यों उत्पन्न हुई ?

उत्तर–जैसे सीपमें मोती होता है, जैसे हाथीके मस्तकमें गजमोती होता है, जैसे मृगकी नाभिमें कस्तूरी होती है, जैसे गायके कानमें गोरोचन होता है, जैसे बांसमें वंशलोचन होता है, वैसे ही ब्रह्माकी इच्छासे तिमि, सुरसा, इला आदि कश्यप मुनिकी स्त्री थीं और जातिकी ब्राह्मणी भी थीं, कुछ पशु पक्षीरूप नहीं थीं, परंतु विधाताकी गति बड़ी अपरम्पार है, इसलिये ब्राह्मणियोंके पेटसे सब जीव, जन्तु, पशु, पक्षी उत्पन्न हुए ।

अरिष्टाके गंधर्वगण जन्मे, काष्ठाके संतान एक खुरवाले (घोड़े आदि) उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥। हे राजन् ! कश्यपप्रजापतिकी दनु नामक स्त्रीके ६१ एकसठ पुत्र हुए, उनमें १८ अठारह प्रधान-प्रधान पुत्रोंके नाम सुनो, द्विमूर्द्धा १, सम्बर २, अरिष्ट ३, हयग्रीव ४, विभावसु ५, ॥२९॥ अयोमुख ६, शंकुशिरा ७, स्वर्भानु ८, कपिल ९, अरुण १०, पुलोमा ११, वृषपर्वा १२, एकचक्र १३, अनुतापन १४, ॥३०॥ धूम्रकेश १५, विरूपाक्ष १६; विप्रचित्ति १७ और दुर्जय १८ हे राजन् ! इन कहे हुए दानवोंके मध्यमें स्वर्भानुकी सुप्रभा नामक जो एककन्या हुई, नमुचिने उसका पाणिग्रहण किया ॥ ३१ ॥ और वृषपर्वाके शर्मिष्ठा नामक जो एक कन्या हुई, नहुष पुत्र बली ययातिने उसके साथ

सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकाञ्शृणु॥ द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ २९ ॥ अयोमुखः शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥ ३० ॥ धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ॥ ३१ ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ॥ उपदानवी हयशिरा पुलोमाकालका तथा ॥ ३२ ॥ उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ उपयेमेऽथ भगवान् कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥ ३३ ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियंकरः ॥ ३४ ॥

यथा विधि विवाह किया हे राजन् ! दनुके पुत्र जो वैश्वानर हुए उनके उपदानवी, हयशिरा पुलोमा, और कालका चारुदर्शनवाली ४ कन्या हुईं यथा ॥ ३२ ॥ उनमें उपदानवीके साथ हिरण्याक्षने विवाह किया और हयशिरा क्रतुकी स्त्री हुई। और पुलोमा व कालका इन दोनों दानव कन्याओंके साथ प्रजापति कश्यपजीने ब्रह्माजीके कहनेसे विवाह किया ॥ ३३ ॥ उनके निवातकवच इत्यादि ६० हजार पुत्र हुए। यह सब पुत्र पौलोम और कालकेय नामसे प्रसिद्ध हुये थे और वे अनंतवीर्यवान् होनेसे सदा, युद्ध(विग्रह)करनेमें लगे रहते थे, और ऋषि, मुनि इत्यादिकोंके यज्ञमें सदा बाधा डाला करते थे हे राजन्! इसलिए तुम्हारे पितामह अर्जुनको स्वर्गमें इन्द्रने कहा

कि तुम मेरे परममित्र हो, उनको मारकर मेरा भय दूर करो, तब इंद्रके कहनेसे अकेले ही अर्जुनने इनसब दानवोंको मार डाला। हे राजन्! इस कर्मके करनेसे तुम्हारे पितामह अर्जुन देवराज इन्द्रके अतिशय प्यारे हुए थे ॥३४॥ दितिके सुत हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु हुए और एक सिंहिका नामक कन्या हुई ॥ ३५ ॥ हे महाराज! यह सिंहिका विप्रचित्ति दानवकी भार्या हुई। इस सिंहिकाके गर्भमें एक शत एक १०१ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सबमें बड़े राहु-केतु हुए, ये ग्रहभावको प्राप्त हुये ॥३६॥ अब अदितिके वंशका वर्णन करते हैं, वह तुम सुनो- इस वंशमें भगवान् विभु अपने अंशसे स्वयं अवतीर्ण हुए थे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! विवस्वान् १, अर्यमा २, पूषा ३, त्वष्टा ४, सविता ५,

दितेः सुतो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ कन्या च सिंहिका नाम बभूव कुरुसत्तम ॥ ३५ ॥ विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागताः ॥३६॥ अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नारायणो देवःस्वांशेनावातरद् विभुः ॥ ३७ ॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः ॥ धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥ ३८ ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ स वै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥ ३९ ॥ छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥ कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ४० ॥ अर्य्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४१ ॥

भग ६, धाता ७, विधाता ८, वरुण ९, मित्र १०, शक्र ११ और उरुक्रम १२ यह बारह सूर्य अदितिके पुत्र हुए ॥३८॥ उनमें विवस्वान् से भाग्यवती संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव नामक मनु हुए और यम, यमुना, यह दो पुत्र कन्या उत्पन्न हुए, हे राजन्! इस संज्ञाने ही वड़वा होकर अर्थात् घोड़ीका रूप धारण करके अवनिमंडलमें चरते-चरते दो अश्वनीकुमारोंको उत्पन्न किया ॥३९॥ और छायाने विवस्वान्से शनैश्चर और सावर्णिमनु दो पुत्र और तपती नामक एक कन्या उत्पन्नकी तपती कन्याने संवरणको पति बनाया ॥ ४० ॥ अर्यमाकी मातृका स्त्रीके गर्भमें चर्षणी नामक अनेक संतानें हुई। इन सब पुरुषोंके मध्यमें विशेष आत्मानुसंधानसे भगवान् ब्रह्माजीने मनुष्य-जातिकी

कल्पनाकी है ॥ ४१ ॥ पूषाके कोई सन्तान नहीं हुई, वह पुत्ररहित और दंतहीन होकर पिसी हुई सामग्रीको भक्षण करता है, क्योंकि पहले दक्षजीके ऊपर कुपित भगवान् शिवको निहारकर अपने सब दांत निकालकर यह पूषा ऊँचे शब्दसे हँसा था, इसी कारण इसके सब दांत शिवजीके गणोंने तोड़ डाले थे॥४२॥ हे राजन् ! त्वष्टा प्रजापतिकी रचना नामक स्त्री हुई, इसके गर्भमें सन्निवेश और विश्वरूपकी उत्पत्ति हुई यद्यपि यह विश्वरूप शत्रु लोगोंकी भगिनी (बहन) के तनय थे, तो भी जब अंगिरागोत्री बृहस्पतिजीने देवतावोंको त्याग दिया था, तब देवता लोगोंने इन्हीं विश्वरूप जीको अपना पुरोहित बनाया था ॥४३॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ दोहा--सप्तममाहीं देवगुरु, दियो इंद्र बिसराय । विश्वरूपको इंद्र पुनि, कियो पुरोहित

पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत् पुरा ॥ योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥ ४२ ॥ त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका ॥ सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥ ४३ ॥ तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि ॥ विमतेन परित्यक्ता गुरुणाऽऽङ्गिरसेन यत् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभाग ० म० षष्ठ० दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवञ्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥ २ ॥ विश्वैर्देवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥ विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ॥ निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥

जाय ॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे यह प्रसंग सुन, शिर नवाकर राजा परीक्षित् फिर बोले कि हे भगवन् ! देवता लोग तो बृहस्पतिके बड़े भारी शिष्य थे,उनको देवगुरु बृहस्पतिजीने किस कारणसे त्यागा ? बृहस्पतिजीके चेलोंने क्या अपराध किया ? वह अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् । देवराज इंद्र त्रिभुवनके ऐश्वर्यको पाकर एक समय मदोन्मत्त हो सन्मार्गको छोड़ मरुद्गण ४९, वसुगण ८, रुद्रगण ११, आदित्यगण १२, ऋभुगण, विश्वेदेवगण, साध्यगण, और दोनों अश्विनीकुमारोंके साथ बैठे थे ॥२॥ सभाके मध्यमें सिंहासनके समीप सिद्ध, चारण, गंधर्व, एवं ब्रह्मवादी मुनि ॥ ३ ॥ विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, पतंग, उरगादि खड़े

होकर इनकी सेवा और स्तुति करते थे ॥ ४ ॥ गंधर्वगण इंद्रके प्रसन्न करनेको सुललित स्वरसे गीत गा रहे थे, मस्तकपर चन्द्रमण्डलके समान छत्र लगा हुआ था और दोनों बगलोंमें चामर व्यजन इत्यादि महाराजोंके समस्त चिह्न शोभायमान हो रहे थे, इन सबसे युक्त होकर देवराज इंद्र अपने आधे आसनपर अपनी प्यारी शचीको बैठाये बैठे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें देवताओंके और इन्द्रके गुरु बृहस्पतिजी जो एक प्रधान मुनि हैं, वे वहां पर आ पहुँचे। तब इन्द्रने न तो इनको आसन दिया, न कुछ आदर-सत्कार ही किया

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनास्थितः ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥ विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ सोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥ ८ ॥ ततो निर्गत्य सहसा कविरांगिरसः प्रभुः ॥ आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥ तर्ह्येव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥

॥ ७ ॥ वाणियोंके पति, सुर-असुर जिनको देखते ही प्रणाम करते हैं, ऐसे बृहस्पतिजीको देख इन्द्र अपने आसनसे नहीं उठा और न इनको बैठनेके लिए-आसन ही दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रके इस व्यवहारको देखकर देवगुरु बृहस्पतिजी इनको ऐश्वर्यका मद जान उसी समय सभासे लौटे और किसीसे कुछ न कहा, मौन साधे अपने आश्रमको चल दिये ॥९॥ कौरवश्रेष्ठ ! जब बृहस्पतिजी

१. शंका–तीन लोकका राज्य करते-करते इन्द्रको बहुत युग बीत गये और बृहस्पति जो उनके गुरु थे वे प्रति दिन इन्द्रकी सभामें आते थे, कभी गुरुका निरादर नहीं किया, परंतु उस दिन इन्द्रने गुरुका निरादर क्यों किया ? क्यों बुद्धि भ्रष्ट हो गई ?

उत्तर–राजा बलिको दुःखी देखकर शुक्राचार्य्य शत्रुको जीतनेके लिये राजा बलिसे यज्ञ कराया और उस यज्ञकी समाप्तिके लिये जो-जो सामग्री इकट्ठी की थी, उससे आनंदपूर्वक वह यज्ञ समाप्त हो गया। उसी दिन इन्द्रके पुण्य नष्ट हो गया, तब बलिके यज्ञके पुण्यसे इन्द्र उन्मत्त अर्थात् पागल हो गया, तब बलिके यज्ञवाले शुक्राचार्य्यने विचार किया कि जब इन्द्र अपने गुरुका निरादर करेगा तब इन्द्रको राजा बलि पराजित करेंगे, सिवाय इस उपायके इन्द्रको जीतनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं पाया जाता, ऐसा विचार कर बलिके शत्रु इन्द्रको मोहित करके इन्द्रसे बृहस्पतिका निरादर कराया, इस लिये उस दिन इन्द्रने गुरु बृहस्पतिजीका निरादर किया।

वहांसे चले आये, तब देवराज इन्द्रको चैतन्यता आयी, वह विचार कर यह अपने आपको बहुत धिक्कार देने लगा, कि मैंने गुरुजीका बड़ा निरादर किया, आप ही आप अपनी निन्दा करने लगा ॥१०॥ इन्द्र बोले– कि मैंने जो कर्म किया वह अतिशय बुरा है, हाय ! कैसे खेदकी बात है, मैं कैसा मन्दबुद्धि हूं? जो मेरे गुरुजी सभामें आये और मैंने ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर उनका कुछ भी आदर नहीं किया, वरन् और निरादर किया ॥११॥ मेरे ऐश्वर्य व सम्पत्तिको धिक्कार है। अब आगे कौन ज्ञानी पुरुष स्वर्गाधिपतिकी लक्ष्मीको चाहेगा ? मैं सात्त्विक देवतागणोंका ईश्वर हूं, मुझको भी इस लक्ष्मीने इस प्रकारका आसुरभाव प्राप्त कराया ॥१२॥ जो प्राचीन पुरुष कहते हैं कि सिंहासनपर बैठा हुआ राजा किसीको देखकर न उठे, मैं निश्चय कहता हूं कि वे श्रेष्ठ धर्मको नहीं जानते ॥१३॥ यह सब

अहो बत मयाऽसाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥ को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ ययाऽहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥१२॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन ॥ प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥१३॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ॥ ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥ अथाहममराचार्यमगाध धिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥

पुरुष निन्दनीय मार्गका उपदेश करनेवाले स्वयं ही नरकके अंधकारमें गिरते हैं और जो लोग उनके वचनोंका विश्वास करते हैं, वे लोग मानो पत्थरकी नावसे पार जानेकी इच्छा करते हैं, जैसे नावके डूब जानेपर सब डूब जाते हैं, ऐसे ही अंधतामिस्र नरकमें अवश्य पड़ेगा ॥१४॥ जो हो, अब मैं शठभाव छोड़कर गुरुजीके मनानेकी चेष्टा करता हूं, क्योंकि वह सब देवताओंके आचार्य ब्राह्मण हैं, उनकी बुद्धि अति गम्भीर है, मैं जाकर मस्तक झुका उनके चरणोंम प्रणाम करूँगा॥१५॥हे राजन् ! देवराज इन्द्रका इस प्रकारसे अछताना-पछताना बृहस्पतिजी जानकर अति शीघ्रता कर गृहसे बाहर हो अदृश्य गतिको प्राप्त हो गये। क्योंकि यह वृत्तान्त उन्हें अध्यात्मविद्यासे ज्ञात हो

गया ॥ १६ ॥ अनन्तर महेन्द्र देववृन्दके साथ गुरुजीको ढूंढ़ने लगे । परन्तु सर्व ज्ञानके उपाय द्वारा सब जगह देखनेपर भी इन्द्रको उनका पता न लगा,इसलिये यह सब देवताओंके साथ अतिशय दुःखित हुआ और किसी प्रकार भी इन्द्रका मन सावधान न हुआ॥१७॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रजीके विमर्शकी वार्ता सुनते ही असुरगण अपने आचार्य शुक्राचार्यका मत ग्रहण कर शस्त्र उठाकर देवताओंके साथ संग्राम करनेको उपस्थित हुए और युद्ध होने लगा॥१८॥दैत्यलोगोंके तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाणोंसे देवता लोगोंके मस्तक,बाहु,ऊरु इत्यादि अंग छिन्न-भिन्न होने लगे इसलिये देवता लोग कातर होकर देवराज इन्द्रके साथ ब्रह्माजीके निकट गये और शिर नवाकर शरणकी प्रार्थना करने लगे ॥१९॥ स्वयम्भू ब्रह्माजीके हृदयमें देवेन्द्रको इस प्रकार कातर होकर आये देखकर अतिशय दया उत्पन्न हुई और करुणासहित

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ॥ ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वै-वासुरा सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ॥ देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नां-गोरुबाहवः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाऽभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ॥ कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥ २१ ॥ तस्यायमनयस्यासीत् परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥ मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ॥ सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥२३॥

वचनोंसे समझाते बुझाते हुए उनसे बोले ॥२०॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरवरगण ! तुमने बड़ा बुरा कार्य किया है, कि जितेंद्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका आदर-सत्कार नहीं किया ॥ २१ ॥ उसी अन्यायके आचरणका फल यह हार है,जिस हारको मनमें धारण कर तुम आये हो, नहीं तो तुम समृद्धिशाली हो । तुम लोगोंके वैरी वर्ग सदा पराजित होते आये हैं, अर्थात् हन्ता होकर क्षीण हो रहते थे, वे लोग क्या फिर तुम्हारे द्वेषी होकर कभी जीत सकते ॥ २२ ॥ परन्तु हे इन्द्र ! गुरुका तिरस्कार और सत्कार ही घटती बढ़तीका कारण है, उसका दृष्टान्त देखो । तुम लोगोंके विद्वेषी असुरगण एकबार अपने आचार्यका निरादर करके क्षीण हो गये थे, इस समय भक्तिपूर्वक अपने

उन आचार्यकी आराधना करनेसे फिर वह कैसे बुद्धिशाली हो गये हैं, शुक्राचार्यको इष्ट देवता माननेसे इस समय उन दैत्योंका ऐसा प्रभाव है, कि उन्होंने आपके वासका स्थान भी बलसे हरण कर लिया ॥२३॥२४॥ हे देवराज ! शुक्राचार्यजीके शिष्योंका इस समय मन्त्र अभेद क्यों नहीं होगा, ब्राह्मण और भगवान् गोविन्द जिस नरेशके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं उसका कभी अकल्याण नहीं होता और जिनसे यह रूठे हुए हैं, ऐसे पुरुषोंका तो पग-पगपर अमंगल है ॥२५॥ जो हो गया सो हो गया, इस समय तो उसका उपाय ही नहीं, इस समय तुम लोग एक काम करो, कि त्वष्टाके पुत्र विश्वासरूप ब्राह्मणके पास जाकर उनका आदर-सत्कार करो, वे जितेन्द्रिय और तपस्वी हैं। वे

आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २४ ॥ त्रिविष्टपं किं गणयंत्यभेद्यमन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ नविप्र गोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ २५ ॥ तद् विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ॥ सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्यपरिष्विज्येदमब्रुवन् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः संपाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २८ ॥ पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥ २९ ॥ आचार्यो ब्रह्मणोमूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥ ३० ॥

तुम लोगोंसे आदर-सत्कार पाकर अवश्य कामना पूर्ण करेंगे। परन्तु कब, जबकि तुम इसके असुरपक्षपाती कर्मको क्षमा करोगे ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकारके वचन सुनकर देवतागण त्वष्टाके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वरूप ऋषिके समीप गये और उनको भेंट देकर कहने लगे कि हम अतिथि तुम्हारे आश्रममें आये हैं, तुम्हारा मंगल हो। हे तात ! बड़े लोगोंकी समयानुसार प्रार्थना को तुम पूर्ण करो ॥२७॥२८॥ हे राजन् ! सत्पुरुषोंका बड़ोंकी सेवा करना ही परमधर्म है, जो पुत्र पुत्रवान् हैं उनको भी चाहिये कि पितृसेवा अवश्य करें फिर, इसमें ब्रह्मचारियोंकी तो बात ही क्या है? ॥२९॥ हे तात ! जो उपनयन कराते हैं, जो आचार्य वेद पढ़ाते

भा० ष०
॥३०॥

हैं वे वेदकी मूर्ति हैं,पिता प्रजापतिकी मूर्ति है,भ्राता मरुद्गणोंकी मूर्ति है और माता साक्षात् पृथ्वीमूर्ति है ॥३०॥ बहन दयाकी मूर्ति है, अतिथि साक्षात् धर्मकी मूर्ति है, अभ्यागत पुरुष अग्निकी मूर्ति और सब प्राणी ईश्वरकी मूर्ति हैं, अर्थात् सर्व प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखना उचित है॥३१॥इसलिये हे तात ! हम लोग तुम्हारे पितृगण दानव लोगोंकी उत्पत्तिसे अतिशय आर्त हो रहे हैं, हमारे वैरियोंसे पराभवरूप पीड़ा अपनी तपस्यासे निवारण करके तुम,हम लोगोंका आदेश पालन करनेके योग्य हो ॥३२॥ हे वत्स ! तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, इसलिये गुरु हो, हम लोग आपको अपना पुरोहित बनानेकी वासना करते हैं, क्योंकि तुम्हारे तेजसे हम अपने वैरियोंको सहज ही जीत

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३१ ॥ तस्मात् पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथाऽञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तवतेजसा ॥ ३३ ॥ न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ॥ छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ॥ सविश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३५ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३६ ॥

लेंगे॥ ३३ ॥ हे वत्स ! तुम हमसे छोटे हो,उससे तुमको पुरोहित बनाने और हमारे प्रणाम करनेसे लोकमें निन्दा होगी, ऐसी शङ्का तुम मत करना, क्योंकि लोकमें अपने प्रयोजनके लिए छोटेके चरणोंमें प्रणाम करनेसे निन्दा नहीं होती,दूसरे मंत्रभिन्न स्थान ही वयसमें बड़ाईका कारण है,इसलिये मंत्र देनेसे तुम ही हमारे बड़े हो जाओगे॥३४॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! परीक्षित् जब महातपस्वी विश्वरूपसे इस प्रकार देवताओंने पुरोहिताईके लिये आर्त होकर कोमल वचनोंसे कहा ॥ ३५ ॥ तब विश्वरूप बोले कि, हे देवगण ! यद्यपि शील पुरुष लोग अधर्मका हेतु कहकर पुरोहिताईके कर्मकी निन्दा करते हैं और यह कर्म पूर्वसिद्ध ब्रह्मतेजका क्षय करनेवाला

है तथापि आप लोगोंकी प्रार्थनाके भयसे यह हमको स्वीकार करना पड़ेगा । हे नारायण ! आप लोग लोकोंके ईश्वर हैं, आप लोगोंकी चाहनाकी बात हम सरीखे पुरुष किस प्रकारसे न माननेमें समर्थ होंगे ? हम आप लोगोंके शिष्य अर्थात् शिक्षाके योग्य हैं, आप शिक्षा देनेवालोंका वचन न स्वीकार करना शिष्यका स्वार्थ है ॥ ३६ ॥ हे अधीश्वरगण ! जिन पुरुषोंको कुछ चाहना नहीं है, जिन लोगोंके शिल अर्थात् क्षेत्रमें स्वामीका उपेक्षित कणिस (बाल) ग्रहण और उञ्छ अर्थात् मार्गादिमें गिरे हुए धान्यादिका एक-एक कण बीनकर ग्रहण करना ही धन है, हम उन लोगोंकी वृत्तिके द्वारा ही गृहाश्रममें साधु लोगोंकी समस्त क्रियाओंका निर्वाह किया करते हैं । खोटी मतिवाले लोग पुरोहिताईके प्राप्त होनेसे हर्षित होते हैं, परन्तु हमारे लिए यह तिरस्कार है । इसलिये यद्यपि पुरोहिताईका कर्म

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेहनिर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ॥ कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३७ ॥ तथाऽपि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ॥ भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ॥ पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३९ ॥ सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्याऽपि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ४० ॥

करना हमारा कर्तव्य नहीं है ॥३७॥ तथापि आप लोग हमारे गुरु हैं अतः आप लोगोंकी यह प्रार्थना बहुत थोड़ी है, सो इस प्रार्थनाका अंगीकार न करना यह हमको उचित नहीं । हम आप लोगोंकी संपूर्ण बातें प्राण और धन (तपोबल) से अवश्य पूरी करेंगे यह तो बात ही क्या ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवता लोगोंको इस प्रकार वचन देकर महातपस्वी विश्वरूप देवता लोगोंके मध्य पुरोहिताईमें प्रवृत्त हो बड़े उद्योगके साथ पुरोहिताईका कार्य करने लगे ॥ ३९ ॥ शुक्राचार्यकी विद्यासे यद्यपि देवता लोगोंके द्वेषी दानवोंकी लक्ष्मी रक्षित होती थी तो भी इन महर्षिने "नारायण कवच" स्वरूप वैष्णवी विद्याके बलसे उन (दैत्यों) के निकटसे उस

लक्ष्मीको हटाकर इन्द्रको अर्पण कर दी ॥ ४० ॥ हे कौरव ! उदारबुद्धि विश्वरूपने वही विद्या इन्द्रको दी है, कि जिस विद्यासे देवराज इन्द्रने रक्षित होकर असुरसेनाको जीत लिया * ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां इन्द्रादिदेवैर्विश्वरूपपौरोहित्याय प्रार्थनावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥दोहा-विश्वरूप जो इन्द्रको, दे नारायण वर्म। सब दैत्यनको जीतके, राखौ अपने धर्म*॥

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पौरोहित्यायेन्द्रादिकृतं विश्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥

इसके उपरांत राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! आपने कहा कि देवराज इंद्रने "नारायणकवचसे रक्षित होकर वाहन सहित शत्रुकी सब सेना सरलतासे जीतकर त्रिलोकीके धन और संपत्तिको भोगा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह कवच किस प्रकारका ? देवराज इन्द्रने उससे रक्षित

* इन्द्रका सहस्राक्ष नाम ऐसे हुआ कि, महारूपवती गौतमकी स्त्री अहल्यासे विहार करने को एक समय इन्द्रका मन चलायमान हुआ तब इन्होंने चन्द्रमाको अरुणशिख अर्थात् मुर्गा बनाकर गौतमजीके आश्रमपर बुलवाया। गौतम प्रभात हुआ जान स्नान करनेको गये, तब इन्द्र गौतममुनिका वेष धारणकर उनके स्थानपर आये । गौतमजीको जब गंगाजीने कहा अभी तो आधी रात है स्नान करनेका समय नहीं, तुम्हें किसीने छल तो नहीं लिया, जो अभीसे स्नान करने चले आये, यह सुन गौतमजीने घरपर आकर सब लीला देखी और चन्द्रमाके धोताका छींटा मारा कि, जिसका उसके हृदयमें कलंक हुआ और इन्द्रको शाप दिया, तुम तो एक ही भगके लिए यहाँ आये, तुम्हारे ही शरीरमें हजार १००० भग हो जायेंगे कि, जिससे फिर तुम्हें आवश्यकता ही न पड़े, जब इन्द्रने गौतमजीको बहुत मनाया तब इन्होंने कहा कि, जब रामावतारमें इक्ष्वाकुलतिलक दशरथअजिरविहारी दैत्य संहारीअसुरारी श्रीरामचन्द्र अवधविहारीके दर्शन करने जाओगे तब यही हजार भग तुम्हारे नेत्र हो जायेंगे, इसलिये जब रामावतार हुआ, और इन्द्रने त्रिलोकीनाथ जानकीपति दशरथनन्दन जगवन्दन दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दके दर्शन किया तब ही सहस्र नेत्रहो गये और सहस्र नेत्र होनेसे इनका सहस्राक्ष नाम हुआ ॥

* सवैया—जो परनारि निहारि निलज्ज हँसे बुध हो न वड़ेरे ॥ जूंठनकी जिमि पात्तल पेल, खुशी उर फूकर होत घनेरे ॥ जे अनकी यह टेक अहै, तिनकी जगमें अपकीरति है रे । परलोक विषे बिजली, सुकर शतखण्ड सुखाचलके रे ॥

होकर किस प्रकारसे अस्त्र उठाये हुए शत्रुओंको जीता, वह कहिये ॥ २ ॥ यह सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! विश्वरूपको पुरोहिताईमें वरण करके देवराज इन्द्रने उनसे कवचको पूछा था, तब विश्वरूपने उनको नारायण नामक कवचका उपदेश दिया, जिस प्रकारका यह कवच है, और विश्वरूपने उसको जिस प्रकारसे उपदेश किया, मैं वह सब प्रसंग कहता हूँ तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रके पूछनेपर विश्वरूपने उनसे कहा था कि हे महेन्द्र ! हाथ-पांव धो आचमन करके, पवित्री धारण कर, उत्तरकी ओर मुख

श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥ नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते ॥ पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥ मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥ ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥

करके बैठ, अष्टाक्षर–"ओं नमो नारायणाय" बारह अक्षर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्रोंसे अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणीको जीते ॥ ४ ॥ फिर नारायण कवचको बांधे, परन्तु जब किसी प्रकारका भय उपस्थित हो, तभी इस कवचका बांधना कर्तव्य है । हे देवेन्द्र ! पाँव, जानु, उर, उदर, आस्य, वक्षःस्थल ॥५॥ मुख और मस्तक इन्हीं सब अंगोंमें प्रणवपुटित मन्त्रका विपर्यय एक-एक वर्णका आदिसे लेकर ओंकार आदिका विन्यास करे "ओं नमो नारायणाय" इस मंत्रका विपर्यय अर्थात् उल्टा करे अर्थात् पादादि मस्त-

---

१. शंका–राजा परीक्षितकी मृत्यु जब समीप आ गयी, तब राजाने भगवान्‌की कथा तो पूछनी छोड़ दी । नारायणवर्म क्यों मुनिसे पूछा ? नारायणवर्म तो शरीरके रक्षार्थ है, शरीर तो राजाका छूटनेवाला है, फिर नारायणवर्मसे क्या प्रयोजन निकला ?

उत्तर–सज्जन पुरुष अपने सुखके लिये कुछ भी कर्म नहीं करते; किन्तु दूसरेके सुखके लिये अनेक कर्म करते हैं, जैसे नदी रात दिन जलसे भरी रहती है, परंतु अपने लिये नहीं भरी रहती; दूसरे जीवोंको सुख देनेके लिये जलसे भरी रहती है और पर्वत, चारा, लकड़ी, औषधि इत्यादि अनेक वस्तु अपने ऊपर रखता है परंतु अपने लिये नहीं; एवं जैसे वृक्ष दूसरेके सुखके लिये फल, फूल, पत्र आदि रखते है और दूसरेके कार्य सिद्ध करते हे ऐसे ही राजा परीक्षित भी आप तो मरणासन्न हो गये हैं परंतु और प्राणियोंके सुखके लिए नारायणवर्म पूछा था ।

कान्तमें न्यास न करे मस्तकसे चरण पर्यन्त न्यास करनेसे भी हो सकेगा ॥ ६ ॥ हे सुरराज ! " ओं नमो भगवते वासुदेवाय" इस मंत्रके प्रणवादि यकारांत अक्षरोंका अंगुली, अंगूठा और पोरोंमें न्यास करे ॥७॥ इस मंत्रके अतिरिक्त और मन्त्रोंसे भी न्यास हो सकता है। "ओं विष्णवे नमः"इस मंत्रके ओंकारको हृदयमें धारण करे, विकारको मस्तकमें, षकारको दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें, णकारको शिखा पर, वकारको दोनों नेत्रोंमें, नकारको सब संधिस्थानोंमें न्यास करके फिर मकारको अस्त्र रूपमें ध्यान करनेसे विद्वान् स्वयं मंत्रमूर्ति हो जायगा। इससे पीछे इसी मंत्रको विसर्गयुक्त और "फट्" शब्द अन्तमें करके सब दिशाओंको निर्देश करे,अर्थात् "ओं विष्णवे नमः अस्त्राय फट्" यह मंत्र पूर्वादि दिग्बंधमें प्रयोग करे। इस प्रकार क्रिया करनेसे बुद्धिमान् मंत्ररूप हो जायगा हे देवेन्द्र ! वह दूसरा मन्त्र यह है"ओं विष्णवे नमः"

करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥ न्यसेद् हृदयमोंकारं विकारमनु मूर्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयाऽऽदिशेत् ॥८॥ वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥९॥ सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ॐ विष्णवे नमः फट् इति ॥ १० ॥ आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥ ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥ जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ॥ स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः॥१३॥

॥८॥९॥ ॥ १० ॥ हे सुरराज ! इस प्रकार न्यास करनेके पीछे फिर ध्यान करनेके योग्य ईश्वररूप उस आत्माका ध्यान करे, जो ऐश्वर्य आदि छः शक्तियोंसे संयुक्त है, इसके पीछे नारायण-कवचका मंत्र, जिसकी विद्या, तेज और तपस्या ही मूर्ति है, उस मंत्रका उच्चारण करे ॥११॥ उस मंत्र का अर्थ यह है कि-"गरुड़जीकी पीठपर जिनके चरणकमल विराजमान हैं, जो अष्टबाहुयुक्त हैं और उन आठ भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, ढाल और पाश धारण किये हुए वे अष्टगुणी भगवान् हरि मेरी रक्षा करें॥ १२ ॥ और भी मत्स्यमूर्ति वह भगवान् जलके मध्यमें जलजन्तु समूहरूप वरुणकी फांसीसे मेरी रक्षा करें जो माया के योग करके बटु (वामन) हुए थे, वह स्थलके मध्यमें

मेरी रक्षा करें। जो विश्वरूप और त्रिविक्रममूर्ति हैं वह भगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ जिन्होंने असुरके यूथप हिरण्यकशिपुके मारनेके लिये नरसिंहमूर्ति धारण की थी, जिनके विकट अट्टहाससे सब दिशा प्रतिध्वनित होकर स्त्रियोंके गर्भ गिर गये थे, वह संग्राम व दुर्गम मार्ग इत्यादिमें मेरी रक्षा करें ॥१४॥ जो अवयवरूप यज्ञसे निरूपणीय होते हैं और जिन्होंने अपनी कराल डाढ़से इस पृथ्वीका उद्धार किया था, वह प्रसिद्ध वाराहजी मार्गमें हमारी रक्षा करें और पर्वतोंके शिखरमें परशुराम भगवान् हमारी रक्षा करें और भरतजीके बड़े भाई अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रभु लक्ष्मणजीके साथ परदेशमें हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥ और भगवान् नारायण अभिचारादि

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ॥ विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥ रक्षत्वसौमाऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासेसलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥ मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादान्नारायणःपातु नरश्च हासात् ॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥ सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद् हयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥

स्वरूप समग्र उग्रधर्म और समस्त अनवधानोंसे हमारी रक्षा करें और नररूपी वह प्रभु गर्वसे हमारी रक्षा करें, और दत्तात्रेयरूपी वह भगवान् जो सब यज्ञोंके नाथ हैं, वह योगभ्रंशसे हमारी रक्षा करें, कपिलमूर्ति वह प्रभु जो सब गुणोंके ईश्वर हैं, वह कर्मबन्धनसे हमारी रक्षा करें, ॥१६॥ सनत्कुमाररूपी भगवान् कामदेवसे हमारी रक्षा करें। हयग्रीवमूर्ति भगवान् मार्गमें देवहेलन अर्थात् देवता लोगोंको नमस्कार न करके गमन रूप अपराधसे हमारी रक्षा करें। देवर्षिश्रेष्ठअर्थात् नारदरूपी भगवान् बत्तीस अपराधरूप जो देवपूजाके छिद्र हैं, उनसे हमारी रक्षा करें। कूर्मरूपी हरि अनंत नरकोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १७ ॥ (और भी) धन्वन्तरिरूपी भगवान् अपथ्यसे हमारी रक्षा करें, जितेन्द्रिय ऋषभमूर्ति

भगवान् सुख-दुःखादि झगड़ोंके भयसे हमारी रक्षा करें। यज्ञमूर्ति भगवान् लोकापवादसे हमको बचायें। बलभद्ररूपी भगवान् लोक-सम्बंधी उपघातसे हमारी रक्षा करें। शिवरूपी भगवान् क्रोध-वशवर्ती सर्पोंके गणसे हमारा उद्धार करें ॥ १८ ॥ अज्ञानसे वेदव्यासजी हमारी रक्षा करें, प्रमाद व पाखण्ड गणसे बुद्ध भगवान् बचायें और कल्किरूपी भगवान् जिन्होंने धर्मकी रक्षा करनेके लिए उस बड़े अवतारका धारण करना स्वीकार किया है, वह कलिके मङ्गलस्वरूप कालसे हमारी रक्षा करें ॥ १९ ॥ हे सुरराज इन्द्र ! इसके पीछे प्रातर्मध्याह्नादि दिनके छठवें भागमें और रात्रिमें और प्रदोषादिकके समय इस प्रकारसे प्रर्थना करें, यथा-भगवान् केशव प्रातःकालमें गदासे रक्षा करें,भगवान् गोविंद वेणु धारी होकर संगव कालतक सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें भगवान् नारायण शक्ति ग्रहण करके पूर्वाह्णकालमें हमारी रक्षा करें, विष्णु

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ॥ कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद् गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ॥ नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥ २० ॥ देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ॥ दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधामाऽपररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ॥ दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥ २२ ॥ चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ॥ दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥ २३ ॥

भगवान् चक्र हाथमें लेकर मध्याह्नके समय हमारी रक्षा करें ॥ २० ॥ भगवान् मधुसूदनजी उग्र धनुष ग्रहण करके अपराह्णकालमें हमारी रक्षा करें। त्रिधामा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी भगवान् सायंकालमें हमारी रक्षा करें। भगवान् माधव प्रदोषके समय हमारी रक्षा करें, वह एक पद्मनाभ देव जो विषय और इंद्रियगणोंके ईश्वर हैं, वे आधीरातके समयतक हमारी रक्षा करें ॥२१॥ और वह भगवान् ईश श्रीवत्स ही जिनका धाम है, वह पिछली रात्रिमें हमारी रक्षा करें। भगवान् जनार्दन जो कि खड्गधारी हैं, वे प्रत्यूषके समय हमारी रक्षा करें। भगवान् दामोदर प्रभातके समय हमारी रक्षा करें। भगवान् विश्वेश्वर जो कालकी मूर्ति हैं, वे प्रतिसन्ध्यामें हमारी रक्षा करें ॥ २२ ॥ अहो ! भगवान्के इस चक्रकी नेमि(धारा) प्रलयकालके अग्निके तुल्य अतिशय तीक्ष्ण है। हे चक्र ! तुम भगवान् द्वारा प्रयुक्त होकर जिस

प्रकार पवनका सखा अनल सूखे हुए तृणोंको जला देता है, वैसे ही हमारे शत्रुकी सेनाको बहुत शीघ्र भस्म करो॥२३॥हे गदे! तुम्हारी चिनगारियोंका छूना वज्रके स्पर्श समान है और तुम अजित भगवान्‌के प्रिय हो और हम भी उन्हीं भगवान्‌के दास हैं, इसलिये विघ्न करनेवाले कूष्मांड, वैनायक, यक्ष, राक्षस और भूतप्रेत, व स्कंदगणको तुम पीस डालो, पीस डालो और समस्त शत्रुओंको चूर्ण करो, चूर्ण करो ॥२४॥ हे पाञ्चजन्यशंख! तुम भगवान् विष्णुजीकी मुखके वायुसेपूरित होकर भयंकर शब्द करते हुए राक्षस, प्रमथ, भूत प्रेत पिशाच इत्यादिकोंको और ब्रह्म राक्षस व और दूसरे घोरदर्शन दुरात्मा लोगोंको भगा दो, जिससे कि शत्रुगणोंका हृदय कांप जाय॥२५॥ हे श्रेष्ठखड्ग! तुम्हारी धार अति तीक्ष्ण है। तुम भगवान् नारायण करके चलाये जाकर समस्त शत्रुकी सेनाको काट डालो, काट डालो। हे

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्ग निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियाऽसि ॥ कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २४ ॥ त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ॥ दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥ त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ॥ चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥ २६ ॥ यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥ २७ ॥ सर्वाण्येतानि भवान्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥ २८ ॥ गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥

चन्द्रमाकेसे शतमण्डलवाली ढाल! तुझमें मण्डलाकार शतचन्द्रमा देदीप्यमान हैं, तुम पापी विद्वेषियोंकी आँखोंको ढक लो, ढक लो! और उग्रदृष्टिवाले इन सब पुरुषोंकी दृष्टि हरण करो! हरण करो!! ॥ २६ ॥ अहो! समस्त ग्रहकेतु सर्प और कराल डाढ़वाले हिंसक जन्तु पापी भूत प्रेतादिसे हमको अभय करो! अभय करो!!॥२७॥ हे भगवन्! आपके नामरूपी कीर्तनसे वे सब सदा ही क्षयको प्राप्त हों। और जो कि हमारे इष्ट आनंदमें विघ्न करनेवाले हैं, उनका भी विनाश हो जाय ॥ २८ ॥ और भगवान् गरुड़जी जो बृहद्रथंतरादि सामरूप स्तोत्रोंसे स्तुति किये जाते हैं, वेद सब जिनकी मूर्ति हैं जिनको विष्वक्सेन कहा जाता है, वे अपने सब नामोंसे अशेष पापोंसे हमारी

रक्षा करें। "स्तोत्रैः स्तोम्यत इति स्तोत्रस्तोमः" ॥ २९ ॥ और भी भगवान्के नाम, रूप, यान, वाहन और अस्त्र-शस्त्र तथा प्रधान-प्रधान पार्षद लोग हम लोगोंकी बुद्धि, इंद्रिय, प्राण और मनको अनन्त विपदाओंसे बचायें ॥३०॥ अहो मूर्त्त, अमूर्त यह सब ही जगत वास्तवमें भगवान्का ही स्वरूप है,ऐसा हमारा निश्चय है। इसी सत्यसे हमारे सब उपद्रवोंका विनाश हो ॥३१॥ और जो पुरुष ऐकात्म्य ध्यान करते हैं,उन लोगोंसे अभिन्न होकर भी जो भगवान् अपनी मायाके छलसे भूषण,आयुध और लिंगादि विविध शक्ति धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ यही उनकी सत्यताका प्रमाण है, वह अपने शरीरके प्रमाण करनेको सर्वज्ञ भगवान् हरि अपने स्वरूपोंसे सदा हमारी सब स्थानोंमें रक्षा करते रहें ॥ ३३ ॥ और वह भगवान् नृसिंहजी सब दिशा-विदिशाओंमें, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर, सर्व भावसे हमारी

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान्पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥ यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ॥ भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥ तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४ ॥ मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३५ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥ ३६ ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥ राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३७ ॥

रक्षा करें उनकी ध्वनिसे सब लोगोंका भय दूर हो जाता है और उनके निज प्रभावसे दिग्गज, विष, शस्त्र, जल, वायु और अग्नि इत्यादिका तेज विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ ३४ ॥ हे देवराज ! नारायणमय कवच इस प्रकारका है, वह हमने तुमसे कहा, इसको तुम पहनो, तब अवश्य ही असुर यूथपति लोगोंको जीत सकोगे ॥३५॥ हे महेन्द्र ! इस कवचका धारण करनेवाला पुरुष जिसको नेत्रोंसे देखे अथवा चरणसे स्पर्श करे, उस पुरुषको भयसे छुटकारा मिल जाता है तो भला फिर इसके धारण करनेवाले पुरुषको कहांसे भयकी सम्भावना हो सकती है ? ॥ ३६ ॥ इसलिये जो पुरुष इस विद्याको धारण करता है, उसको राजा, चोर नवग्रह व्याधि इत्यादि किसीसे भी कुछ भय

नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वकालमें कौशिकी नामक किसी ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके विना जलवाले मरुदेश "मारवाड़" में योगकी धारणासे अपने शरीरको छोड़ दिया था ॥ ३८ ॥ जहांपर उस ब्राह्मणके शरीरका क्षय हुआ था, उसके ऊपर होकर एक समय चित्ररथ नामक गंधर्वपति अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़ा हुआ जा रहा था ॥३९॥ जैसे ही वह गंधर्वपति इस स्थानके ऊपर आया कि उसकी गति रुक गयी और वह उसी समय विमानके सहित उलटकर आकाशसे पृथ्वीमें गिरा॥४०॥इस बातके होनेसे गन्धर्वपतिके मनमें बड़ी चिंता उत्पन्न हुई तब उसने वालखिल्य मुनियोंके उपदेशसे वहांपर पड़ी हुई उस ब्राह्मणकी अस्थियोंको बीनकर प्राचीवाहिनी सर-

इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन्द्विजः ॥ योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३८ ॥ तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ ४० ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ४२ ॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महा० षष्ठ० नारायणवर्मकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्वतीके जलमें डाल दिया । और फिर इस नदीमें स्नानकर अपने स्थानको चला गया ॥ ४१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको सुअवसरमें सुनता है, अथवा जो जन आदरपूर्वक इसको यंत्रमें धारण करता है, उसको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं और वह पुरुष सर्व प्रकारसे सब भांतिके भयसे छूट जाता है ॥४२॥ अधिक क्या कहें, देवराज इन्द्र महर्षि विश्वरूपसे इस विद्याको प्राप्त होकर समरमें असुर लोगोंका संहार कर त्रिलोककी लक्ष्मीका भोग करने लगे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां नारायणकवचवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—इन्द्र नवममें कोप कर, विश्वरूप दियो मार । तब त्वष्टाने पुत्र इक, प्रगटो परम जुझार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ऐसा सुना जाता है कि विश्वरूपजी जो देवता लोगोंके पुरोहित बने थे, उनके तीन शिर थे,वे एक मस्तकसे सुरापान,एकसे सोमपान और एकसे अल्पमात्र भोजन करते थे ॥ १ ॥ जो कुछ हो, विश्वरूप यज्ञके समय विनीत भावसे देवता लोगोंको प्रकट हव्यका भाग देते थे, क्योंकि देवतालोग उनके पितृपक्षमें थे ॥ २ ॥ परन्तु माताके स्नेहके वश हो यज्ञ करते-करते आप असुर लोगोंको भी छिपाकर यज्ञका भाग दिया करते थे ॥ ३ ॥ उनके अन्यायका यह आचरण एक दिन देवराज इन्द्रने देख लिया,इससे वह बहुत ही डरे, और रोषके वेगको

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥ स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ॥ अवदद्यस्यपितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥ २ ॥ स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान्प्रति ॥ यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिञ्जलः ॥ कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ ६ ॥

रोकनेमें असमर्थ होकर विश्वरूपके तीनों मस्तक काट डाले ॥ ४ ॥ हे राजन् ! विश्वरूपका जो मस्तक सोमपान करता था,वह कटकर कपिञ्जल (चातक) हुआ, सुरा पीनेवाला मस्तक कटकर कलविङ्क (चटक) हुआ और अन्नवाले मस्तकसे तीतर पक्षी हुआ ॥ ५ ॥ हे कौरववंशावतंस ! इन विश्वरूपजीके शिरकाटनेसे देवराज इन्द्रको जो ब्रह्महत्या लगी, यद्यपि वह इसके निवारण करनेमें समर्थ थे, तो भी उस ब्रह्महत्याको अंजली फैलाकर ग्रहण किया और एक वर्षतक इस पापसे कलुषित होकर रहे । एक वर्षके पीछे फिर लोक निन्दासे भीत होकर सबके सम्मुख अपनी विशुद्धि अर्थात् कलंक मिटानेके लिये इस पापको चार भागोंमें बांटकर॥६॥ एक भाग भूमिको दिया, एक

जलको दिया, एक वृक्षोंको दिया, एक स्त्रियोंको दिया, इस प्रकारसे चार भागोंमें यह ब्रह्महत्या इन्द्रने बाँटदी । हे राजन् पृथ्वीने खातसे पूर्ण होनेका वर पाकर अर्थात् जो गढ़ा होगा,वह अपने आप ही भर जायगा, इस वरसे मोहित होकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चौथा भाग ग्रहण किया,वह पाप अबतक ऊषर रूपसे पृथ्वीपर दृष्टि आता है इसी कारणसे ऋषिलोगोंने ऊषर भूमिपर बैठकर अध्ययनादिका निषेध किया है ॥ ७ ॥ और वृक्षोंने कट जानेपर फिर उपजनेका वर पाकर मोहित हो चार अंशोंमेंसे ब्रह्महत्याका एक अंश लिया । हे भूपाल ! वृक्षोंमेंसे जो निर्यास (गोंद-रस) दिखलाई देता है वही ब्रह्महत्याके पापका अंश है॥८॥और स्त्रियोंने सदा संभोग करनेका वर पाकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण किया, स्त्रियोंको महीनेके महीने जो ऋतु (रज) होता है, वही इस ब्रह्म हत्याके पापका चिह्न दिखाई देता है, इस कारणसे यद्यपि इन्द्रके वरसे और सब समय गर्भधारण करनेपर प्रसवकाल तक अर्थात् जबतक कि बालक

भूमिस्तुरीयंजग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ॥ तेषांनिर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ॥ रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥ द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ॥ इन्द्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम् ॥ ११ ॥

उत्पन्न नहीं होता तबतक स्त्रियोंसे मैथुन करना ठीक है, तथापि ऋतुकालमें तीन दिन स्त्रीसंगका निषेध किया है ॥ ९ ॥ जो कुछ हो, देवराज इन्द्रकी हत्याका बचा हुआ चौथा अंश जलने ग्रहण कर लिया, इन्द्रने जलको यह वर दिया कि दुग्धादि जिस वस्तुमें तुम मिल जाओगे वह वस्तु बढ़ जायगी । यह कह इन्द्रने जलको अपने पापका चौथा अंश समर्पण किया, हे राजन् ! जलमें बुद्बुद फेन सिवारादि जो दीखते हैं, यह उसी ब्रह्महत्याका चिह्न है ॥१०॥ हे कौरववंश विश्वरूपके मारे जानेपर उनके पिता त्वष्टाने क्रोध करके इन्द्रको मार डालनेके लिये उसके शत्रुकी उत्पत्ति होनेकी कामनासे होम करना प्रारम्भ किया॥११॥किंतु आहुति दे प्रार्थना करनेके समय जब कि यह वचन कहने लगा हे "इन्द्रशत्रो !" तू वृद्धिको प्राप्त हो और शीघ्र शत्रुका विनाश कर तब भाग्यके वश"इन्द्रशत्रो"इसका आदिशब्द उदात्त स्वरमें

उच्चरित होनेसें इंद्रका शत्रु इस प्रकारका अर्थ न ज्ञात होकर है इंद्र जिसका शत्रु यह अर्थ निकलने लगा॥१२॥थोड़ीसी आहुति डालनेपर यज्ञकी दक्षिणाग्निसे युगान्तकालिक कृतान्तके समान भयंकर आकारवाला एक असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ उसका शरीर चलाया हुआ बाण जितने हाथ दूर पर गिरे मानो दिन-दिन सर्व भाँतिसे उतना बढ़ता था, उसका वर्ण जले हुए पर्वतके समान मलिन था, उससी दीप्ति

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ॥ कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥ १२ ॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥ दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥

संध्यासमयके बादलके समान अतिभयंकर थी, उसकी शिखा व मूँछ तपे हुए तांबेके समान रंगवाली थी, दोनों नेत्र दुहपरियाके सूर्यके समान अतिशय उग्र थे ॥१४॥ और प्रकाशमान तीन अनीवाले त्रिशूलोंमें मानो पृथ्वी और अंतरिक्षको छेद डालता है, वारं वार ऐसा प्रतीत हो रहा कि यह असुर पैरोंके आघातसे पृथ्वीको कम्पायमान कर नाचनाचकर गर्ज रहा था॥१५॥ और पर्वतकी कन्द-

१. मन्त्र–"यदब्रवीत्स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति । तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवत" शिक्षामें है कि मन्त्र स्वर वर्णसे बोलनेमें हीन होनेसे मिथ्याप्रयोग होता जाता है, उलटा यह वाणी रूप वज्र यजमानको मारता है जैसे इन्द्रशत्रुमें स्वरके अपराध होनेसे उलटा हुआ, तथाहि –"मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥"

२. शंका–पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन चारों दिशाओंकी ओर नित्य प्रति चार-चार हाथ अर्थात् सोलह हाथ चारों ओरको वृत्रासुरका शरीर दिनदिन बढ़ता था । यह बात बड़े आश्चर्यकी है, वरन् एक प्रकारका कौतुक है,क्योंकि वर्ष वर्ष लेखा लगाया जाय तो कितना मोटा शरीर हो सकता है और वृत्रासुर लाखों वर्ष तक जीता रहा, तब कैसा शरीर हो गया होगा, उसकी लंबाई चौड़ाईका जोड़ आपने लगाया हो तो मुझको बताओ, जिससे मेरे मनका संदेह जाय ।

उत्तर–"इषुमात्र" इस श्लोकमें विद्वान् लोग इषुको बाण नहीं कहते, क्योंकि विश्वकोश, कमण्डलुकोश आदि कोशमें इषुको सीक भी कहते हैं, मात्रको मोटा भी कहते हैं, इस प्रमाणसे इषुका मात्र कहिये सीकसरीखा अर्थ है । वृत्रासुरकी देह नित्य चारों ओर बढ़ती थी, चार हाथ प्रमाण एक धनुषका है, सो नित्य धनुष प्रमाण अर्थात् चार हाथ देह नहीं बढ़ती थी ॥

राके समान गम्भीर और मत्त कठिन कराल डाढ़ोंवाले वदनको वारंवार फैलाकर जँभाई ले रहा था, हे राजन्! उसका यह वदन मानो पृथ्वीको खानेके लिये और समुद्रके पीनेके लिये उपस्थित था और जीभ मानो नक्षत्रको चाटनेके लिये लपलपा रही थी, इसलिये वह मानो त्रिलोकीके ग्रास करनेको खड़ा था ॥ १६ ॥ उसका वदन अतिशय बड़ा, उस वदनके दांत अत्यंत भयंकर थे, उसको उस प्रकारके वदनसे वारंवार जँभाई त्याग करते देखकर सब लोक डर गये और आबाल वृद्धोंको जिस ओर अवसर मिला वे उसी ओर भाग खड़े हुए ॥ १७ ॥ हे कौरवराज! इस त्वष्टाके पुत्ररूप अंधकारने, जिसकी मूर्तिका वर्णन किया। जिससे उसने तपस्याके बलसे समस्त लोकोंको अंधकारसे ढक लिया था, इसी कारण इस परमदारुण पापात्माका नाम "वृत्र" हुआ॥१८॥जो कुछ हो, देवता लोग इस दानवको

महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७॥ येनावृता इमे लोका-स्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ सवै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥ तं निजघ्नुरभिद्रुत्यसगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णाग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यञ्च-मादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्वि-जन्तः ॥ हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥ २१ ॥

देखते ही अपने दल-बल सहित अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र ले उस असुरको मारने लगे, परंतु किसी प्रकारसे उस राक्षसका संहार न किया गया। वरन् वह देवता लोगोंके सबही अस्त्र शस्त्रोंको लील अर्थात् निगल गया ॥१९॥ यह देखकर सब देवता लोग बहुतही विस्मित और शोकाकुल हुए और देवताओंका प्रभाव मानो अस्त होनेपर हुआ तब सबने परामर्श करके भगवान् आदि पुरुष जो अंतर्यामी और त्रिभुवन व्यापी हैं, सावधान होकर उसी स्थानमें एकाग्रचित्त हो भगवान्की स्तुति करने लगे। हे महाराज! भयके आ जानेपर नारायणके विना और किसीसे भी उद्धार होनेकी सम्भावना नहीं, यह विचारकर देवता लोग सावधान होकर भगवान् हरिकी शरणमें गये, "महाभये परित्राणम-न्यतो न भवेदिति ॥ हरिमेव प्रपद्यन्ते सुराः शरणमासुराः"॥२०॥ देवता लोग बोले कि पवन, गगन, अनल, जल और पृथ्वी यह पञ्चभूत

और पञ्चभूतोंसे बने यह तीन भुवन और इन सबके स्वामी ब्रह्मादि देव और उनसे अर्वाचीन हमलोग सबही सभय होकर जिस कालकी पूजा करते हैं वह ऐसा काल भी जिनसे डरता है,उन्हीं परमेश्वरसे हमारी रक्षा हो॥२१॥ यह निरहंकार, शांत, रागादिशून्य,अपने स्वरूपलाभसे ही पूर्ण, नाम उपाधिकृत आडंबरोंसे हीन इन परमेश्वरको छोड़कर जो पुरुष और दूसरेकी शरण लेता है, वह अति अज्ञानी है, क्योंकि कुत्तेकी पूंछ पकड़ वह समुद्रके उतरनेकी इच्छा करता है,जिस प्रकार कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्रका उतरना असम्भव है,वैसे ईश्वरके सिवाय और दूसरेका आश्रय लेनेसे संसारसागरसे निस्तार नहीं हो सकता॥२२॥अहो ! महाभयके समयमें हम लोगोंने उनकोही रक्षा करनेवाला देखा है,क्योंकि महाप्रलयके समयमें सत्यव्रत मनु उनके ही विशाल शृङ्गमें पृथ्वीरूप अपनी नाव बांधकर उस कालकी विपत्तिसे

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥ यस्योरुशृंगे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरन्तात्त्राताऽऽश्रितान्वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥ पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ॥ एकोऽरविन्दात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः ॥२४॥ य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिंगं पृथगीशमानिनः ॥ २५ ॥ यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ॥ कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वाऽऽत्मसात्पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥

बचे थे, इसलिए हम उन जलचर अर्थात् मत्स्य मूर्ति भगवान्‌की शरणमें जाते हैं,वे आश्रित हुए हम लोगोंकी अवश्य ही रक्षा करेंगे॥२३॥ अहो ! प्रलयकालिक समुद्रके जलमें जबकि प्रचण्ड पवनसे भयंकर लहरें उठ रही थीं, उस समय उस तरंगमें नाभिकमलसे उत्पन्न हुए पितामह ब्रह्माजी जिन करके भयसे छूटे, वही इस विपदसे हम लोगोंको विना किसीकी सहायताके पार करें ॥ २४ ॥ जो एक ईश्वर हैं जिन्होंने अपनी मायासे हम सबको बनाया और उन्हींके अनुग्रहसे हम विश्वसृष्टि रचते हैं, जो प्रभु हमसे प्रथम ही अन्तर्यामी रूपसे चेष्टा करके फिरते हैं, तो भी हम लोग उसका रूप नहीं देख सके, क्योंकि "ईश्वरको पृथक्-पृथक्" इस प्रकारसे मानते हैं ॥२५॥ अहो ! विपक्षी

लोग जब हमारा निर्दयतासे मर्दन करते हैं, उस समय जो मायाका अवलंबन करके देवता, ऋषि, पशु, सब पक्षी और मनुष्योंके मध्यमें अवतार लेकर इन सब लोगोंको अपने आधीनमें करते हुये युग-युगमें पालन करते हैं ॥२६॥ उसी परमात्मारूपी देवताकी शरणमें हम सब प्राप्त हुए हैं, वे विश्वमूर्ति हैं, वे परमपुरुष हैं, वे ही प्रधान हैं इसलिये चलो—हम सब लोग उन्हीं परमेश्वरकी शरण लें । उनसे अवश्य ही हम सबका कल्याण होगा॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! जब देवता लोग इस प्रकार स्तुति कर रहे थे कि कुछ देर पीछे प्रथम उनके हृदयमें और फिर पश्चिम दिशाकी ओरसे शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् प्रकट हुए ॥ २८ ॥ उसी समय देवता लोगोंने उनको सम्मुख देखा, अपने समान (१६) सोलह पार्षद साथ लिये, श्रीवत्सकौतुभमणि धारे, शरद्कालीन कमलतुल्य

तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ॥ व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ॥ प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥ पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ॥ दण्डवत्पतिता राजञ्छनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥ ३० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥

नेत्रवाले ईश्वरकी उपासना करने लगे ॥२९॥ उन ईश्वरको देख सब देखनेवाले आनन्दसे विह्वल हो दण्डकी नाईं भूमिमें साष्टांग दंडवत् करके धीरे-धीरे स्तुति करने लगे ॥३०॥ हे राजन् ! देवता लोग यह कहकर स्तुति करने लगे, कि हे भगवन् ! यज्ञ ही जिनका वीर्य, अर्थात् स्वर्गादि अवस्थारूप सामर्थ्यवान् कालस्वरूप, दैत्योंके ऊपर चक्र चलानेवाले और अनेक नामवालेके लिये नमस्कार है ॥३१॥ हे धातः ! तुम तीनों गुणोंके ईश हो, तुम्हारी त्रिगुणात्मिका तीन गति जो परम पर अर्थात् निर्गुण स्वरूप है, उसको अर्वाचीन अर्थात् आजकलके पुरुष किस प्रकार जाननेमें समर्थ होंगे, इसलिये हम तुमको नमस्कार करते हैं। हे भगवन् ! हे नारायण ! हे वासुदेव ! हे

आदिपुरुष ! हे पुरुष ! हे महानुभाव ! हे परम मङ्गल ! हे परमकल्याण ! हे परमकारुणिक ! हे केवल जगदाधार ! हे गदाधर ! हे लोकनाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीनाथ ! परमहंस परिव्राजक लोग अष्टांगयुक्त आत्मयोगसे जो परम समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होते हैं, उस समाधिका अनुष्ठान करके जो परिस्फुट परमहंस धर्मका अनुशीलन करते और उससे जब उनके चित्तके तमरूप किवाँड़ खुल जाते और प्रत्यक्षरूप आत्मलोक प्रकाशमान होते हैं,उस समय जो निजसुख स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है,तुम उसके अनुभव स्वरूप हो,इसलिये हम सब देवता आपको नमस्कार करते हैं ॥३२॥३३॥ हे भगवन् ! तुम्हारा विरहयोग अर्थात् क्रीडाका उपाय हमारी

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुषमहानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगेन समाधिना परिभावितपरिस्फुट पारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ३३ ॥ दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ३४ ॥ अथ तत्र भवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददाति आहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदाम ॥ ३५ ॥

समझमें नहीं आता है, क्योंकि आपका आश्रय नहीं और आप शरीरधारी नहीं हैं, आप स्वयं अगुण हैं तथापि आपकी आत्मा करके इस सगुण विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है और आपकी आत्माको किसी प्रकारका विकार नहीं होता, इसपर आश्चर्य यह है कि आप सृष्टयादि कार्योंमें हम लोगोंकी कुछ सहायता नहीं चाहते हो ॥ ३४ ॥ इसलिये देवदत्त (इस नामका कोई पुरुष) जिस प्रकार गृहादि बनाकर उससे अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल पाता है,तुम ब्रह्मस्वरूप होकर भी गुणसृष्टिरूप संसारके वश पड़ते,या तद्रूप स्वकृत कुशलाकुशल भोग करते हो या स्वयं जो आत्माराम और उपसमशील तद्रूप ही रहकर अप्रचलित सदा रहनेवाली शक्तिके प्रभावसे उस

विषयमें उदासीन रहते हो, अर्थात् केवल या साक्षिस्वरूपसे ही वर्तमान रहते हो, इस बातका भेद नहीं जान सकते हैं ॥ ३५ ॥ परंतु हे प्रभो! आपसे यह दोनोंही अविरुद्ध हैं, इसलिये दूसरेका दृष्टांत देखकर आपमें सन्देह करना ठीक नहीं, क्योंकि आप ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र हैं–किसीके वश नहीं आपमें अपरिमित गुणोंके समूह प्रकाशमान हैं, आपका माहात्म्य तर्क करने योग्य नहीं है, इस कारण जिन शास्त्रोंमें विकल्प अर्थात् "ऐसा अथवा ऐसा" इस प्रकारकी चिंता वितर्क अर्थात् "यह इसी प्रकारसे है" ऐसा निश्चय विवाद और उसके अनुकूल प्रमाणभास और कुतर्क यह समस्त देदीप्यमान हैं, (परंतु यह सब किसी प्रकारसे भी वस्तु स्वरूपके स्पर्श करनेको समर्थ नहीं है,) इन सब शास्त्रोंमें जिन दुराग्रहियोंका अंतःकरण व्याकुलित होता है, ऐसे दुराग्रहोंका आश्रय लेकर जो पुरुष विवाद करते हैं, आप उन

नहि विरोध उभयंभगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल-एवात्ममायामन्तर्धाय को नु अर्थोदुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥ समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥ स एव हि पुनः सर्ववस्तूनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ३८ ॥

लोगोंके विवादस्थानसे परे हैं, आप समस्त मायामें संसारसे अलग और केवलरूप हैं, मायाको मध्यमें रखकर आपमें कौनसा विषय दुर्घट है, इस कारण वास्तवमें यदि आप कर्तृत्वादि हो तब ही विरोधकी संभावना है, वह कदापि नहीं क्योंकि आपके स्वरूप दो नहीं देखे जाते, अर्थात् आपके स्वरूपमें कुछ भेद नहीं॥३६॥ हे प्रभो! यद्यपि आपका अनुग्रह-निग्रह नहीं है, तो भी मनुष्योंकी मति इस प्रकारकी नहीं। कुछ लोगोंकी बुद्धिसमान है और कुछ लोगोंकी मति अलग-अलग है, इसलिये सर्पादिविषयक बुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये इन्हींमें जिस प्रकार सर्पभ्रम उत्पन्न होता है, वैसे आप भी इन समस्त समविषम युक्त बुद्धिवाले लोगोंके अभिप्रायानुसार होकर अनेकरूप हो जाते हो ॥३७॥ अहो जो सब वस्तुमें अनेक रूपसे प्रतीयमान् हुआ करते हैं, वही समस्त वस्तु अर्थात् सत्स्वरूप, सबके ईश्वर अखिल जगत्के कारण

और सर्व जीवोंके अन्तर्यामीपनके हेतु सर्व विषयोंके प्रकाशमें देखे जाते हुए अर्थात् उनके विना कोई विषय प्रकाशित नहीं होता । परंतु उनका आकार किसी प्रकारका नहीं,श्रुतिमें "नेति नेति" "यह नहीं यह नहीं" इस प्रकारकी युक्ति द्वारा कहकर जिनको बखानते हैं॥३८॥ हे मधुमथन ! कारण कि आप ही इस प्रभावसे परमेश्वर हैं, इस लिये ये परम भागवत पुरुष आपके चरणकमलकी सेवा किस प्रकार त्याग सकते हैं ? ये सब पुरुष पुरुषार्थविषयमें अति कुशल होनेके कारण आत्मा जो आप हैं, आपको ही प्रिय और अपना सुहृद समझे हुए हैं, इसलिये वे लोग साधु अर्थात् रागादिशून्य हैं, हे प्रभो ! आपकी महिमा ही अमृतका सागर है, उस सागरका एक बूंद जल भी एक वार पी लेनेसे फिर मनमें उससे जो सुख निरंतर प्राप्त किया करते हैं, उसको पाकर यह समस्त महापुरुष श्रुतिदृष्टिविषयक छोटे सुखको भूल

अथ ह वाव तव महिमाऽमृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥ त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ ॥ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥ ४० ॥

गये हैं, इस कारण आपमें ही इसका मन अत्यन्त अनुरागी होकर लगा हुआ है। हे प्रभो ! हे भगवन् ! यह कोई नहीं कह सकता कि आपकी सेवासे साधारण फल होता है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि आपकी ही सेवाका यह अनुपम फल है कि संसारका आवागमन छूट जाता है ॥३९॥ हे भगवन् ! आप त्रिभुवनके आत्मा और भवन हैं,आप त्रिविक्रम हैं,आपने ही इस त्रिलोकीको बनाया है,आपका प्रभाव तीनों लोकोंका मन हरण करनेवाला है । हे प्रभो ! दैत्य, दानव इत्यादि सबही आपकी विभूति हैं, हे दंडधर! आपने सब दैत्य दानवोंको " यह उद्योगका समय है" ऐसा विचारकर उनके ऊपर जब दण्ड धारण किया है, यदि इच्छा हो तो इस समय भी वैसे ही दंड धारण करके इस

त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका संहार कीजिये ॥४०॥ हे तात ! हे हरे !! हम सब आपके ही जन हैं, आपके चरणों में नमस्कार करते हैं और निरन्तर ही आपके दोनों चरण-कमलका ध्यान करते हैं, और उनमेंही हमारा हृदय अति गाढरूपसे बँध गया है और आपने भी अपनी मूर्ति प्रकट करके हम लोगोंको अपना भक्त कहकर माना है, इस कारण हे अनघ ! अनुग्रह प्रकाश करके अनुराग विशद रुचिवाली मंद मुसकान सहित अवलोकन तथा मुखारविन्दसे निकले हुए मधुर मनोहर वचनरूप कलासे हमारे अन्तःकरणके तापको शांति देने योग्य हो ॥४१॥ हे भगवन् ! हम जिस कार्यकी प्रार्थना करते हैं, वह आपसे किस प्रकार कहें ? जिस प्रकार आगकी चिनगारियाँ अग्निको प्रकाशित

अस्माकं तावकानां तवनतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥ ४१ ॥ अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥

नहीं कर सकतीं, वैसे ही हम भी आपके निकट अपना अभिलाष प्रकट नहीं कर सकते, जो विषय माया सब जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण रूपसे प्रकट होती है, उसी मायाके साथ आप विहार किया करते हैं, इस कारण समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म औरअंतर्यामी स्वरूपमें और बाहरी प्रधान स्वरूपमें देश, काल, देह, अवस्था विशेष अतिक्रमण करके इन सबके उपादान और उपलंभक स्वरूपमें अनुभव किया करते हो, इस कारण आप स्वयं समस्त प्रयत्नके अर्थात् बुद्धि इत्यादिके साक्षी समस्त ही जानते हो। हे प्रभो ! साक्षी होनेका कारण यह है कि आपका स्वरूप आकाशके समान किसीमें भी लिप्त नहीं है, हे भगवन् ! आपके शरीरके किसीमें लिप्त न होनेका कारण

यह है कि आप साक्षात् परब्रह्म अर्थात् निरुपाधि और परमात्मा अर्थात् सत्त्वमूर्ति हैं॥४२॥इस कारण हम जिस कार्यकी कामनासे आपके निकट आये हैं, सर्व तत्त्वोंके जाननेवाले गुणोंसे स्वयं उस कार्यको जानकर आप हमारे उस कार्यको पूर्ण करें। हे भगवन् ! आप परम गुरु हैं, आपके चरण-कमलोंकी छाया जो संसारके अनेक परिश्रमोंका नाश करनेवाली है, वह हम सबने उसी छायाका आश्रय लिया है ॥४३॥ हे ईश ! त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका आप संहार शीघ्र ही करें। इस असुरने त्रिलोकीको ग्रसित किया। हे प्रभो ! दुष्टने हमारे अस्त्र, शस्त्र और तेजको भी ग्रस लिया ॥ ४४ ॥ अहो शुद्ध ! सब दुःखके हरनेवाले श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके अर्थ हम नमस्कार करते हैं। उनका हृदयके आकाशमें निवास है, वे बुद्धि इत्यादिके साक्षी हैं, सदा आनंदमय हैं, शुद्ध हैं, उनका यश रुचिर है, आदिरहित हैं, साधु लोग

अत एव स्वयं तदुकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ॥ सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्तावन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन्सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥ ४७ ॥

उनकी सेवा करते हैं और वे संसाररूप मार्गमें सदा वर्तमान रहते हैं जो पुरुष इनकी शरण लेता है, वह उसके अर्थ संसारके अन्तमें उत्तम गतिके स्वरूप हो जाते हैं, इस कारण वे सब दुःखोंके हरण करनेवाले हैं, "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्मकृष्ण इत्यभिधीयते" इस प्रकार निरुक्ति है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब देवता लोगोंने इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् हरि अत्यन्त संतुष्ट हो उनसे वक्ष्यमाण वचन बोले ॥४६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे सुरश्रेष्ठगण ! हमारे स्तोत्रसे युक्त तुम्हारे ज्ञानसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्तोत्रके साथ ज्ञानमें पुरुषकी आत्माका ऐश्वर्य अर्थात संसारकी असारताका स्मरण

होगा और मुझमें एकान्तकी भक्ति उत्पन्न हो जायगी॥४७॥ हे विबुधश्रेष्ठ ! हमारे प्रसन्न हो जानेपर फिर भक्तोंको कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् सब ही वस्तु प्राप्त हो जाती है, शेष कुछ प्राप्त करनेको नहीं रहती, इस कारण तत्त्वज्ञानी पुरुष हमको ही एकान्त भावसे अपना चित्त समर्पण कर मतवाले हो जाते हैं और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करते ॥ ४८ ॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष विषयमें तत्त्वोंको देखता है, वह अतिकृपण है, अतः वह अपनी भलाईको नहीं जानता, इसलिये विषयमें जो उसकी इच्छा है, उसका पूर्ण कर देना दयावान् पुरुषको उचित नहीं वरन् उसके ही समान अज्ञानी पुरुष उसको पूर्ण कर दिया करते हैं॥४९॥ और जो विद्वान् हैं अपने भले बुरेको जानते हैं वे कभी अज्ञानीको प्रवृत्ति-मार्गका उपदेश नहीं कर सकते क्योंकि रोगीके चाहनेपर भी भला वैद्य क्या उसको अपथ्य दे सकता है ? अर्थात्

किं दुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥ ४८ ॥ न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥ स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥ मघवन्यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपस्सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्मनिष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥ ५२ ॥

नहीं दे सकता ॥५०॥ हे राजन् ! इस प्रकार तत्त्व-कथनसे अनौचित्य हरण करके इन्द्रका अभिप्राय जानकर वे भगवान् कहने लगे, कि हे इन्द्र ! तुम इस समय अपने स्थानको जाओ, तुम्हारा मङ्गल होगा । दधीचि ऋषिका शरीर विद्या, व्रत और तपस्या करनेसे अतिदृढ़ हो गया है, जाकर तुम उनके शरीरको मांगो, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है, शीघ्र ही जाओ ॥५१॥ हे देवेन्द्र ! वह मुनि अध्यात्मविद्यामें अतिशय बलवान् हैं, वह शुद्ध ब्रह्मको जानकर दोनों अश्विनीकुमारोंको वह विद्या दान किया, जो ब्रह्म अश्वके शिरद्वारा कहा गया था, इस कारणसे अश्वशिरा नामक प्रसिद्ध हुआ है, इसी विद्यासे अश्विनीकुमारोंको जीवन्मुक्तिका लाभ हुआ था * ॥५२॥

* इस विषयमें यह प्रसिद्ध इतिहास है कि " अश्विनीकुमार दधीचि मुनिको ब्रह्म-विद्यामें निपुण व अर्थवक्ता श्रवण कर उनके निकट जाकर बोले कि हे भगवन् ! आप जिस विद्यामें विशारद हुए हैं वही विद्या आप कृपापूर्वक हमलोगोंको भी पढ़ाइये जब अश्विनीकुमारोंने यह प्रार्थना की, तब इन मुनिने उत्तर दिया कि इस समय हम भगवत्-कर्म करनेमें स्थित हैं, अब जाओ, फिर आना तब पढ़ावेंगे, जैसे ही कि अश्विनीकुमार आश्रमसे बाहर आये, वैसे ही इन्द्रने उन ऋषिके निकट पहुंचकर कहा-हे मुने ! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, सो वैद्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश न देना चाहिये इस कारणसे आप यह विद्या उन्हें न बतावें। यदि हमारे वचनोंका निरादर कर यह विद्या उन्हें बताइयेगा,-

हे इंद्र ! दधीचि मुनिको मेरी आत्माका श्रीनारायण कवच प्राप्त हुआ और उन्होंने ही त्वष्टाको यह कवच पढ़ाया, त्वष्टासे यह कवच विश्वरूपको प्राप्त हुआ और विश्वरूपने यह कवच तुमको दिया है। इस कारण दधिचि मुनिका गात्र नारायण कवचके प्रभावसे अति दृढ़ है, अतः तुम लोग जाकर उनके अङ्गकी हड्डी मांगो। हे देवेन्द्र! यह देह सबको ही अत्यन्त प्रिय होती है, फिर यह मुनि इस देहको क्यों देंगे ? श्रीभगवान् कहने लगे कि इस प्रकारकी शंका तुमलोग मत करो क्योंकि वे परम धर्मज्ञ हैं, तुम्हारे ऊपर विशेष करके अश्विनी-कुमारके मांगनेसे शिष्यकी प्रीतिके वश होकर उसी समय वह अपना शरीर दे देंगे, उस शरीरकी अस्थिसे विश्वकर्माजी जो आयुध

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्य मदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥ युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ॥ ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥५४॥ येन वृत्राशिरो हर्त्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥ तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुध संपदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणे षष्ठस्कन्धे वृत्रवधार्थमिन्द्राद्युक्तभगवत्स्तोत्रं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

बनायेंगे, वह श्रेष्ठ आयुध बन जायगा अर्थात् वज्र हो जायगा ॥५३॥५४॥ तुम हमारे तेजसे बढ़कर इस शस्त्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट डालना, हे देवगण! जब यह दानव मर जायगा, तब तुम फिर अपने तेज अस्त्र और सम्पदाको प्राप्त होगे॥५५॥ यह असुर बड़े आकार वाला त्रिभुवनको ग्रास करनेवाला तुमको ग्रास कर जायगा, ऐसी शंका तुम मत करना; क्योंकि जो पुरुष हमारे भक्त हैं, उनकी हिंसा करनेको कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता, तुम बहुत ही शीघ्र अपना मङ्गल देख पाओगे ❋ ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां इन्द्रादिदेवकृतगद्यात्मकस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—तो निश्चय ही हम आपका शिर काट डालेंगे, यह कहकर इन्द्र चले गये। फिर बहुत शीघ्र अश्विनीकुमार विद्यार्थी होकर इन दधीचिके आश्रममें आये और इनके मुखसे इन्द्रकी कही हुई वार्ता सुनकर बोले—कि हम पहले आपका यह शर पलटकर अश्वका मस्तक धड़पर जोड़ देते हैं तब आप इस मुखसे हमको ब्रह्मविद्याका उपदेश दीजिये, जब इन्द्र आकर आपका शिर काट डालेगा, तब फिर आकर हम आपका यह निज मस्तक आपके धड़पर लगा देंगे और फिर आपको इस विद्या पढ़ानेकी गुरुदक्षिणादी जायगी, दधीचि मुनिने यह वार्ता सुनकर अश्विनीकुमारको अश्वमस्तकसे प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था, इस कारणसे यह विद्या अश्वशिर नामसे प्रसिद्ध हुई।

• भजन—जो कोई चित्तसे मोहिं न विसारे में न विसारूं प्रण है यही मेरा। धर्मप्रिय हो धर्म बढ़ाऊं सफल कार्यकर अर्थ बताऊं, मुक्ति चाहे तो पार लगाऊं छिन पलमाहि न लागत बेरा। रोग हरूं चिन्ता सब टारूं अभय करूं शत्रुनको मारूं, अचल भक्त जन बेगि उबारूं सेवा करूं आप बन चेरा। मेरा नाम भक्त-सुखदायक सदा विपति में होत सहायक, जो कोई रटत कृष्ण यदु ताके हृदय करत नित डेरा।

दोहा–मुनि दधीचिकी अस्थिको, रचकर वज्र कठोर। वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर॥ श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! विश्वभावन भगवान् इन्द्रको इस प्रकारकी आज्ञा देकर दर्शन करनेवाले देवताओंके सामने ही अन्तर्धान हो गये॥१॥ उसके पीछे देवता लोग महान् आथर्वण दधीचि मुनिके निकट जाकर उनके शरीरको मांगने लगे। हे भागवत! देवता लोगोंके मुखसे इस ऋषिको धर्म सुननेकी बड़ी अभिलाषा थी, इसलिये मन ही मन आनंदित हो हँसकर बोले॥२॥ हे वृन्दारकवृंद! शरीरधारियोंको मारनेपर जो दुःख होता है, वह हम जानते हैं, उसको तुम नहीं जानते, हे सुरगण! मृत्युकी पीड़ा अत्यन्त कठिन होती है, वह चेतनाका नाशकर देती है॥३॥ जो जीव जीवित रहनेकी इच्छा करते हैं, उनको उनका शरीर अतिप्यारा होता है, यदि तुम लोग कहो कि हम तुम्हारा देह नहीं चाहते, वरन् हम लोगोंके मुखसे भगवान् तुम्हारे शरीरको मांगते हैं,

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥१॥ तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥ मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥२॥ अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुस्सहश्चेतनापहः ॥३॥ जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥४॥ देवा ऊचुः ॥ किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ॥ भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥५॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥ दधीचिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥

इसका उत्तर यह है कि अपनी प्यारी देहको भगवान् विष्णुके मांगनेपर भी कौन दे सकता है ? ॥४॥ दधीचि मुनिके यह वचन सुनकर देवता लोग बोले कि हे ब्रह्मन्! जो महापुरुष आप सरीखे दयावान् हैं, पुण्यवान् लोग सदा जिनके कर्मोंकी बड़ाई किया करते हैं, वे लोग परोपकारके लिये कौनसी वस्तुको नहीं दे सकते ? ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह ठीक है कि स्वार्थपर लोग दूसरेके क्लेशका विचार नहीं करते, परन्तु ऐसे स्थानपर हमारा यह कहना है कि याचक पुरुष यदि पराया दुःख समझ सके तो भी वह जिस प्रकार मांगना नहीं छोड़ता, वैसे दान देनेमें समर्थ पुरुष भी दूसरेका कष्ट समझकर “ना” नहीं कह सकता अर्थात् हम लोग जिस प्रकार स्वार्थवश होनेसे आपके कष्टकी ओर नहीं देखते, आप भी वैसे ही सूखा उत्तर देकर हम लोगोंकी उस विपत्तिको नहीं समझते॥ ६ ॥ वे महात्मा ऋषि विनय करके बोले कि

हे देवगण ! आप लोगोंसे धर्म सुनने की कामनासे हमने ऐसा कहा था, यद्यपि हमारा यह देह प्यारा है, तो भी एक दिन यह अवश्य ही हमको छोड़कर चला जायगा, फिर जब कि आप लोग हमसे इस देहको मांगते हैं, तब तो हम अभी इसका आपके लिये त्याग किये देते हैं ॥ ७ ॥ हे नाथगण ! यह देह नित्य नहीं है, इस शरीरसे सब प्राणियोंके ऊपर दया करके जो पुरुष धर्म और यश बटोरनेकी चेष्टा नहीं करता, उसके लिये अचेतन स्थावर तक भी शोक किया करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभुवर्ग ! जो महात्मा स्वयं प्राणियोंके शोकमें शोकाकुल और उनके हर्षमें हर्षित होते हैं, उनके वह सब अव्यय धर्म-पुण्यवान्‌लोकोंमें उन धर्मीपुरुषोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ अहो ! जो

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥ ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि॥८॥एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥ ११ ॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबन्धनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥ १२ ॥

यह धन, पुत्र, शरीरादि पदार्थ दृष्टि आते हैं, यह सब कुत्ते और गीदड़ादिके भोजन हैं, यह स्वार्थके कुछ भी उपयोगी नहीं और स्थायी भी नहीं, वरन् क्षणमें नष्ट हो जानेवाले हैं और क्षण-क्षणमें नष्ट होते जाते हैं, फिर इन सबसे परोपकार न करना कैसे नष्ट और कैसे कृपणपनका काम है ! ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! मुनिवर दधीचिने ऐसा निश्चय करके परब्रह्मके साथ अपनी आत्माको मिलाकर शरीरको छोड़ दिया ॥११॥ उनकी इन्द्रिय, प्राण, मन, और बुद्धि यह सब वशमें थीं और यह आपही आप तत्त्वोंको देखते थे इसलिये इनके

१. शंका–विश्वरूपने देवताओंसे कहा कि, ऐसे प्राणीको वृक्ष शोच करते हैं कि इसकी सुन्दर गति किस प्रकारसे होगी, यह बड़ा दुष्ट है, इसमें मुझको यह बड़ी भारी शंका है कि वृक्ष तो जड़ पदार्थ हैं, उनको किस प्रकारका शोक संताप ? वृक्षोंको तो किसी प्रकारका दुःख-सुख हो ही नहीं सकता और जो हो भी तो वृक्ष मनुष्यका सोच क्यों करेंगे ।

उत्तर–"ससोच्यः स्थावरैरपि" इस श्लोकमें व्यासजीने वृक्षोंको स्थावर नहीं कहा था, भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें जो मुनिलोग नित्यप्रति मनको स्थित करते थे उनको व्यासजीने स्थावर कहा था; ऐसे मुनिजनोंने विश्वरूपसे कहा और वही मुनिलोग शोच करते थे ।

सब बंधन छूट गये थे, इस कारण परम योगका अवलम्बन करनेसे उन्होंने अपने शरीरका छूटना भी तो नहीं जाना ॥१२॥ फिर पीछे इन मुनिके शरीरकी अस्थि लेकर विश्वकर्माने वज्र बना दिया। श्रीभगवान्‌के तेजसे युक्त उस वज्रको धारण करके इन्द्र उठा ॥ १३॥ और गजेन्द्र (ऐरावत) की पीठपर शोभायमान होने लगा, देवतागण चारों ओरसे उसे घेरकर खड़े हो गये और सब ऋषिगण स्तुति करने लगे, जिससे कि समस्त त्रिभुवन मानो हर्षयुक्त हो गया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे देवराज इन्द्र वृत्रासुरके ऊपर दौड़े। यद्यपि वह वृत्रासुर असुरसेनाके यूथपोंसे घेरा हुआ था, तो भी अतिशय क्रोध करके रुद्रजीने जिस प्रकार अन्तकासुरके ऊपर चढ़ाई की थी, वैसेही

अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ मुनेः शक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥१३॥ वृतोदेवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रो पर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन्क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥१५॥ ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥१६॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वमायया ॥ नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरस्सराः ॥१८॥ नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः॥ हयग्रीवः शङ्कुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥ पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ ॥ २० ॥ इल्वलः पल्वलश्चैव दन्दशूको वृषध्वजः ॥ कालनाभमहानाभौ भूतसंतापनो वृकः ॥

सुरराज इंद्रने बलपूर्वक इस असुरपर चढ़ाई की ॥१५॥ फिर असुरोंके साथ देवता लोगोंका परस्पर संग्राम होने लगा। हे राजन् ! सतयुगके अंत और त्रेताके आरंभमें नर्मदा नदीके किनारे संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ सूर्य, २ अश्विनी कुमार, ३ पितृगण, ४ अग्नि, ४९ पवन, ऋभु साध्य और विश्वेदेवादिके साथ॥१७॥वज्रधारी इन्द्र अपनी श्रीसे अधिक शोभायमान हुए कि जिसको शत्रुलोग वृत्र इत्यादि असुरगण न सहन कर सकें ॥१८॥ और नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख॥१९॥पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल इत्यादि दैत्य और सहस्र-सहस्र यक्ष, दानव खड़े होकर ॥२०॥ और इल्वल,

बल्वल, दंदशूक, वृषध्वज, कालनाभ, महानाथ, भूतसंतापन, वृक ॥ २१ ॥ सुमाली, माली, इत्यादि असुरगण सुवर्णके वस्तर पहिने सिंहनाद करते हुए इन्द्रकी सेनाको जो कि मृत्युसे भी दुरासद थी, उनको रोककर मार डालनेका विचार करते हुए अतिशय मदोन्मत्त होनेके कारण उन राक्षसोंको कुछ भी भय या भ्रम नहीं हुआ अनेक गदा, परिघ, बाण, पाश, मुद्गर, तोमर ॥ २२ ॥ शूल, फरसे, खड्ग, शतघ्नी, भुशुण्डी इत्यादि अस्त्र-शस्त्र वर्षाकर देवता लोगोंको सब प्रकारसे और सब ओरसे घेरकर लड़ने लगे ॥२३॥ बाण जालसे सब ओर से ढके हुए देवता अदृश्य हो गये, बाणोंपर बाण गिरने लगे, राक्षसोंके चलाये हुए बाणोंसे देवता लोग ऐसे ढक गये जैसे आकाशमण्डलमें

सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्र्यं मृत्योरपि दुरासदम् ॥ २१ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः॥ गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २२ ॥ शूलैः परश्वधैःखड्गैःशतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ॥ पुंखानुपुंखपतितैर्ज्योतींषीव नभो घनैः ॥ २४ ॥ न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ॥ छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २५॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः ॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २६ ॥ तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ॥ द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृंगैरविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥ २७ ॥

बादलोंसे तारे छिप जाते हैं ॥ २४ ॥ परंतु असुर लोगोंके अस्त्र-शस्त्र देवसेनाके ऊपर गिर नहीं सके, क्योंकि लघु हस्तसे देवता लोगोंने आकाशमें ही उनके सहस्रों टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २५ ॥ जब असुर लोगोंके सबही अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये तब वे वृक्षपर्वतोंके शिखर और पत्थरोंको लेकर देवताओं पर वर्षाने लगे परन्तु प्रथमकी नाईं देवता लोगोंने इन सबको काटकूट डाला ॥२६॥ इस प्रकार अनेक-अनेक अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे भी देवसेनाको वृक्ष पत्थर तथा विविध पर्वतोंके शिखर चलानेसे भी उनको घावरहित देख वृत्रासुरकी

सेनाके असुरगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥२७॥ इसके पीछे फिर भी उन्होंने देवतालोगोंके विरुद्ध जो-जो करनेका यत्न किया, वह देवता लोगोंके ऊपर होनेसे वह सब ही यत्न उसके निष्फल हुए, जैसे छोटे लोगोंके कहे अकल्याणकर कठोर वचन बड़े पुरुषको क्षोभदायक नहीं होते, वैसे ही दैत्य लोगोंकी चेष्टासे देवता लोगोंको कुछ भी ग्लानि नहीं हुई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंकी भक्ति भगवान्में नहीं थी, इस कारण युद्धमें उनका समस्त दर्प बहुत शीघ्र टूट गया और उनका धैर्य देवता लोगों द्वारा ग्रहण कर लिया गया, इस कारण यद्यपि वे बड़े भारी योधा थे, तो भी समरके प्रारम्भ होते ही अपने स्वामीको परित्यागकर वह अपने छुटकारेका मार्ग देखने

सर्वे प्रयासाअभिवन्विमोघाः कृताकृता देवगणेषु दैत्यैः ॥ कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः ॥ २८ ॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ॥ पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥ २९ ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्यः बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥ ३० ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ॥ हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वञ्छम्बर मे शृणुध्वम् ॥ ३१ ॥ जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ॥ लोके यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं मृत्युं वरं को न वृणीत युक्तम् ॥ ३२ ॥

लगे ॥ २९ ॥ वृत्रासुर स्वयं ही महावीर था, जब इसने देखा कि हमारे अनुचर असुरलोग भागनेको तैयार हो रहे हैं और समर त्यागकर भागते हुए देखा, तब वृत्रासुर हँसकर कहने लगा ॥३०॥ उसके वह सब ही वचन ठीक-ठीक इस अवसरके योग्य और मनस्वी लोगोंके लिये मनोहर थे, उसने कहा-हे विप्रचित्ति ! हे नमुचि ! हे पुलोमन् ! हे मय ! हे अनर्वन् ! हे शंबर ! हमारे वचन सुनो॥ ३१ ॥ जन्म लेनेसे मृत्यु निश्चय ही होती है किसी प्रकारसे भी वह मृत्यु टल नहीं सकती । इससे यदि उस मृत्युसे इस लोकमें यश और परलोकमें

स्वर्ग होनेकी संभावना हो तो कौन विद्वान् ऐसी मृत्युको न चाहेगा ? ॥ ३२ ॥ हे वीरगण ! इस लोकमें दो प्रकारकी मृत्यु मिलनी अतिदुर्लभ है, ऐसी मृत्यु हरेकके भाग्यमें कहां, वे दो मृत्यु यह हैं-प्रणवके द्वारा योगधारणा करके शरीरका छोड़ देना और दूसरी सेनाके आगे होकर संग्रामभूमिमें परमानंदसे प्राण त्यागकर देना * ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रयुद्धे असुर पराजयवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा-वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर । भक्ति ज्ञान चर्चा करी, ग्यारहमें रण छोर ॥ इतनी कथा वर्णन कर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! असुरोंके स्वामी वृत्रासुरने इस प्रकारके धर्मयुक्त वचन कहे,

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महा० षष्ठ० वृत्रेन्द्रयुद्धं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥१॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्योजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥ वृत्र उवाच ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम्॥४॥

परन्तु असुर लोगोंने उनकी एक न सुनी, किन्तु त्रस्त होकर घबड़ाकर सब भागने ही लगे ॥ १ ॥ इसके पीछे देवता लोग उनको खदेड़ रहे थे कि जिससे असुरलोगोंकी सेना अनाथके समान छिन्न-भिन्न हो रही थी, क्योंकि उस समय देवता लोगोंको काल अनुकूल था ॥ २ ॥ यह देखकर असुर श्रेष्ठ वृत्रासुरका अंतःकरण अत्यंत संतापित हुआ । इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर इन सब असुरोंके सामने इस अवस्थाको देख सहन करनेको समर्थ न हुआ, तब वह भयंकर क्रोध करके बलपूर्वक देवताओंको रोक और उनकी निंदा करके कहने लगा ॥३॥ हे देवगण !

* इसलिये धर्मशास्त्रमें भी कहा है कि योगयुक्त परिव्राजक और सम्मुख युद्धमें शरीर देनेवाला वीर यह यह दोनों पुरुष सूर्यमंडलको भेदन करके गमन करते हैं । तथाच स्मृतिः— द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडल भेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत :—''

सवैया–इन्द्रिय जीतकै योगविधानसा, छोड़त देह हरी गुण गावत । कै रणमें तनु लोभको छोड़िकै, प्राणतजै अरु सन्मुख धावत ॥ जय रघुराज कहैं दोउ भांति सो, निज तनु त्यागन मोह घृणावत । ते रविमंडल भेदिकै हरिपुर जात चले जन फेरि न आवत ॥ १ ॥

तुमलोग माताके विष्ठामात्र हो, वृथा क्यों दौड़ते हो? भागते हुए दैत्योंके मार डालनेसे क्या होगा? इसमें धर्म व यश किसीकी भी संभावना नहीं, क्योंकि जो लोग अपने आपको शूर कहकर गर्व करते हैं, उसको डरे हुएको मारनेकी अभिलाषा स्वर्ग नहीं देगी ॥४॥ हे क्षुद्र देवगण! यदि तुम लोगोंमें श्रद्धा हो व तुम्हारे हृदयमें धैर्य हो और यदि तुम लोगोंने इस लोकमें भोग करना व लालच छोड़ दिया हो तो हमारे आगे रणमें क्षणभर खड़े होकर देखो ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे क्रोधित होकर अपने कराल शरीरसे वैरी देवता लोगोंको डराते हुए उस

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्य सुखे स्पृहा ॥ ५ ॥ एवं सुरगणान्क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ॥ व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥ तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ॥ निपेतुर्मूर्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥ ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ॥ गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥

महाबलवान् असुरने ऐसा घोर सिंहनाद किया कि जिससे त्रिलोकी अचेतसी हो गयी ॥ ६ ॥ हे महाराज! वृत्रासुरके सिंहनादसे सब ही देवता वज्रसे मारे हुएके समान मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े। महाअसुर वृत्रासुर संग्राममें दुर्म्मद होकर सुरसेनाको आतुरतासे गिरते और भयके मारे उनके नेत्र बन्द होते देखकर भी दयावान् नहीं हुआ, वरन् जिस प्रकार मदमाता यूथपति गज अपने चरणोंसे कमलके वनको मसलता है, वैसे ही शूल उठाकर पृथ्वीको तेजसे कम्पाता हुआ दोनों चरणोंसे उस गिरी हुई देवसेनाको मसलने लगा॥७॥८॥

१. शंका–श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा कि, हे राजन्! वृत्रासुरके गंभीर शब्दोंसे सब लोग व्याकुल हो गये, यह बात सुनकर बड़ा संदेह होता है, क्योंकि लोग तो बहुत हैं, वृत्रासुरने ऐसा कैसा शब्द किया कि जिससे सब लोक व्याकुल हो गये यह बड़ी भारी शंका है, जो सब लोक शब्दसे व्याकुल होगये तो किसीमें विष्णु, किसीमें ब्रह्मा, किसीमें शिव, किसीमें सूर्य, किसीमें चन्द्रमा, किसीमें इन्द्रादिक देवता और बड़े-बड़े ऋषि, मुनि महात्मा पुरुष रहते हैं तो यह सब लोक व्याकुल हो गये होंगे ?

उत्तर–लोक शब्द मुनियोंने लोकोंके लिए नहीं कहा है, प्रजा लोगोंको भी मुनि लोग लोक कहते हैं, तब लोकको व्यासजी भी ऐसा कहते हैं कि इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धके समय जो चारों ओर के लोक कहे, सो प्रजालोग सब व्याकुल हो गये, सब लोकोंके लिए व्याकुल होना व्यासजीने नहीं कहा है।

उस असुरका ऐसा आचरण देखकर वज्रधारी देवराज इन्द्रका क्रोध प्रज्वलित हुआ, फिर इन्द्रने इस अपने शत्रु वृत्रासुरको अपनी ओर आता हुआ देखकर उसके ऊपर एक बड़ी भारी गदा चलायी ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वृत्रासुरका बल साधारण नहीं था, कहीं गदासे उसको भय हो सकता है ? इन्द्रकी गदाको गिरते-गिरते उसने लीलासे ही अपने बांये हाथसे पकड़ लिया और महाक्रोध कर ऊँचा शिर उठाकर गर्जकर उसी गदाको देवराजके वाहन ऐरावत महागजके मस्तकमें मारा। यह देखकर विपक्षके लोग भी वृत्रासुरकी इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रका ऐरावत हाथी वृत्रासुरकी गदासे घायल होकर वज्रसे मारे हुए पर्वतके समान घूमने लगा और अत्यन्त आर्त होकर मुख टूट जानेसे रुधिर वमन करते-करते इन्द्रसहित संग्राम भूमिसे सात धनुष पीछे हट गया ॥ ११ ॥ वृत्रासुर

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ॥ चिक्षेप तामापततीं सुदुस्सहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥ स इंद्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेंद्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ॥ जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥ १० ॥ ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो वमन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥ न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इन्द्रोऽमृतस्यन्दि-कराभिमर्शवीतव्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे ॥१२॥ स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥ १३ ॥ वृत्र उवाच ॥ दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्ट्याऽनृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥

अति महात्मा था इस कारण इन्द्रका वाहन जब व्याकुल हो गया और चित्त भी उसका ठिकाने नहीं रहा तब फिर वृत्रासुरने उसके ऊपर अस्त्र न चलाया, इसलिये देवराज इन्द्र अपने वाहनके घावका स्थान अमृत झरनेवाले अपने हाथसे छूकर उसकी व्यथा दूर करते हुए क्षण भर तक स्थिर रह गये ॥ १२ ॥ हे महीश ! जब वृत्रासुरने देखा कि इन्द्र समर त्याग करके नहीं जाते और फिर समर करनेकी वासनासे खड़े हैं, इस लिये वज्रधारी और अपने भाईके मारनेवाले इस देवताके सब क्रूरकर्म जो कि पापरूप थे, स्मरण करके शोक मोहसे युक्त हो हँसते- हँसते बोला ॥ १३ ॥ वृत्रासुरने कहा, कहो ! ब्रह्मघातकी और विशेष करके अपने गुरु और हमारे भ्राताको

मारनेवाले तुम हमारे सम्मुख खड़े हो, यह बड़े ही भाग्यकी बात है। हे प्रधान असत् ! तुम्हारा पाषाणतुल्य हृदय शूलसे भेदकर आज हम शीघ्र ही अपने भाईके ऋणसे छूटेंगे, अतः मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १४ ॥ अहो ! हमारे जो बड़े भाई विश्वरूप ब्राह्मण आत्मज्ञानी पापरहित दीक्षित होकर यज्ञ कर रहे थे वे तुम्हारे शत्रु नहीं, वरन् परमगुरु थे, करुणासहित होकर स्वर्गकी कामना किये यज्ञ करनेवाला जिस प्रकार यज्ञके पशुओंका शिर काट डालता है, वैसे ही खड्गसे तुमने उन महात्माका मस्तक विश्वासघात करके काट डाला ॥ १५ ॥ निश्चय जाना जाता है कि दया, लज्जा, श्री, कीर्तिने तुम्हारा त्याग किया है, अपने कर्मके दोषसे तुम राक्षसोंके निकट भी तो निंदाके पात्र हुए हो, इसलिये

योनोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत् पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहम स्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान् सगणान् निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥ अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ॥ तत्रानृणोभूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥ १९ ॥

हम इस शूलसे तुम्हारे हृदयको फाड़ेंगे, तुम्हारे इस पापमय शरीरको अग्निको स्पर्श नहीं करेंगे, किंतु गीधगण इसका भक्षण करेंगे ॥ १६ ॥ और दूसरे अज्ञानी देवता जो कि यहांपर आये हैं वे अधम यदि तुम्हारा पक्ष लेकर शस्त्रसे हमारे ऊपर प्रहार करेंगे; तो बड़े तीखे शूलसे इनकी भी गर्दन उड़ाकर हम रुधिरकी धारा बहाकर गणोंके सहित भूतनाथ (शिवजी) का यज्ञ करेंगे ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! अथवा हठ करके जो तुम ही इस वज्रसे हमारे शिरको काट डालोगे तो भी कुछ हानि नहीं, हम कर्मबन्धनसे छूटकर अपनी देहसे सब प्राणियोंको बलि देकर धीर जनोंकी गतिको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ फिर ज्ञानके उदय होनेसे जीनेकी अपेक्षा मरनेको ही श्रेष्ठ जान वृत्रासुर बोला कि

हे सुरेश ! हम तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामने खड़े हैं, सो हमारे ऊपर तुम अपना वज्र क्यों नहीं चलाते हो ? हे देवेन्द्र ! यह वज्र अमोघ है, तुम ऐसा संशय मत करो कि गदाके समान यह भी निष्फल हो जायगा कि जैसा कृपणसे किसी प्रकारकी वाञ्छा करना निष्फल होती है*॥१९॥हे शत्रु! तुम्हारा यह वज्र भगवान् हरिके तेज और दधीचि मुनिकी तपस्यासे अत्यन्त तीक्ष्ण हो गया है। तुम वज्रसे शत्रुका

न त्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ॥ तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥ २० ॥ अहं समाधाय मनो यथाऽऽह संकर्षणस्तच्चरणारविन्दे ॥ त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥

वध करो, तुम विष्णुके भेजे हुए समरमें आये हो, इसलिये तुम्हारे पराजित होनेकी शंका नहीं, क्योंकि जहां नारायण वहीं जय, श्री और सकल गुण वर्त्तमान रहते हैं॥२०॥ हे इन्द्र ! ऐसी भी शंका मत करो कि तुम्हारे वज्रकी चोटसे हमको कुछ पीड़ा होगी, हमारे प्रभु शेषजी ने हमको जिस प्रकारका उपदेश किया है, हम वैसे ही उनके चरणारविंदोंमें चित्त लगाकर देहको त्याग योगी पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होंगे,

* दृष्टांत–'' एक कृपणकी नांव जब गंगाजीमें डूबने लगी, तब उसने कहा कि हे जगदम्बा ! जो इस विपत्तिसे छूट जाऊंगा तो (१००) सौ ब्राह्मणोंको भली–भांति भोजन कराकर दक्षिणा दूंगा। ईश्वरकी कृपा व गंगाजीकी महिमासे ज्यों–ज्यों नाव भंवरसे निकल किनारे लगती गयी, त्यों–त्यों कृपणने संक्षेप करते–करते केवल एक ब्राह्मणके भोजन करानेको स्वीकार किया। जब घर आया तो हरेक ब्राह्मणसे पूछने लगा कि, महाराज ! आप कितना भोजन करते हैं, कोई पांचसेर कोई ढ़ाईसेर मोहन भोगकी क्षुधा बताने लगा। इन सब ब्राह्मणोंको उचित न जान यह कृपण एक महा दुबले-पतले दीन–हीन ब्राह्मणके निकट पहुँच कर पूछने लगा कि हे विप्र ! आप कितना भोजन करते हैं। विप्रने कहा– आधासेर आटा, आधापाव दाल, दो सांभरकी कंकडी, बस और कुछ नहीं। यह सुनतेही प्रसन्नतापूर्वक कृपण इसको अपने घर लेजाकर अपनी स्त्रीसे यह कहकर चला गया कि इस ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करा देना, उस स्त्रीने ब्राह्मण देवतासे पूछा कि महाराज ! क्या भोजन बना दूं ? तब वह ब्राह्मण बोला कि १० दस सेर मोहनभोग कि जिसमें एक-एक ग्रासपर एक- एक अशरफीकी दक्षिणा देनी होगी, स्त्रीने कहा एक-एक अशरफी क्या दो-दो अशरफी लीजिये। इस प्रकार इसने कोई दो सहस्र अशरफीकी दक्षिणा लेकर घर आय अपनी स्त्रीसे कहा कि कोई हमें पुकारने आये तो कह देना, कि किसी ऐसे कुमार्गीके यहां भोजन करने गये कि जहां उसने भोजनमें विष भक्षण कराया, जिससे शरीर छूट गया। जब कृपण घर आया और अपनी स्त्रीसे सब वृत्तान्त सुना तब बोला कि 'वाहरे सेठानी। घरको नाश करे छे' यह कह रोता–विलपता, कलपता उठता, बैठता हुआ ब्राह्मणके स्थानपर आया और वहां पर ब्राह्मणीको रोदन करते देख पूछा क्यों रोती हो ? ब्राह्मणी बोली कि, आज हमारे स्वामी न जाने कहांसे भोजन कर आये जो मृत्युके वश हो गये ? यह सुन डरके मारे और २०००) रुपये उसको घरसे लेकर दे आया, कृपण वाञ्छा करनेसे नहीं देता, किंतु भगवान्‌की कृपासे ही देता है ? ''

इस तुम्हारे वज्रसे हमारा अपकार न होगा । वरन् विषय-भोगरूप ग्राम्य-सुखकी फांसी टूट जायगी ॥२१॥ हे देवेन्द्र! हम भी भगवान्के भृत्य हैं, तुम ऐसी शंका भी मत करना कि; वे हमको स्वर्गादि सम्पत्ति देंगे, क्योंकि जो पुरुष एकांतभावसे भगवान्में ही अपने चित्तको लगाते हैं, और जिससे कि वे उनके ही जन कहलाकर गिने जाते हैं, उनको श्रीनारायण स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोककी सम्पत्ति नहीं देते क्योंकि इन सम्पत्तियोंसे उद्वेग, मनोव्यथा, मतवालापन, झगड़ा, विपत्ति और अनेक क्लेश हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ यदि कहो कि फिर वह भक्तजनोंका क्या विधान करते हैं ? वह हम कहते हैं, श्रवण करो । हमारे प्रभु भगवान् अपने भक्तके लिये धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्ग विषयक आयासका नाश विष्णुने किया है, हे इन्द्र ! इस आयासकी शांतिसे ही भगवान्की प्रसन्नताका अनुमान कर लिया

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायाम् ॥ न राति यद् द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥ त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः॥२३॥अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ॥ मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥ २४ ॥ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ २५ ॥

जाता है और किसी प्रकारसे भी वह प्राप्त नहीं हो सकता । अकिंचन (भिक्षुक) जन सरलतासे इस प्रकारका भगवत्प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं । और दूसरे जन इस प्रसादको नहीं पा सकते उनके लिये यह अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २३ ॥ हे कौरवराज ! वृत्रासुर इस प्रकार इन्द्रके निकट अपने अभिप्रायको प्रकट करके भगवान्को पुकारकर प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवन् ! तुम्हारे ही चरणकमलका जिनको आश्रय है, वह मैं उन दासोंका भी दास हूं । मेरा मन आपके गुणोंका स्मरण करे और हमारे वाक्य तुम्हारा गुण कीर्तन किया करें ॥ २४ ॥ हे देव ! आपके विना स्वर्गपृष्ठ क्या, सार्वभौम क्या, पृथ्वीका आधिपत्य क्या, योगसिद्धि क्या, अपुनर्भव अर्थात्

मुक्ति, आपके वियोगमें किसीकी भी चाहना मैं नहीं रखता ॥२५॥ हे अरविंदनेत्र ! जब कि पंख न जमे हुए पक्षियोंके बच्चे क्षुधा इत्यादिसे पीड़ित होकर जननीके देखनेकी इच्छा करते हैं, जैसे भूखसे आर्त होकर बँधे हुए बछड़े थनोंके देखनेके लिये व्यग्र होते हैं, जिस प्रकार काम-बाणसे व्याकुल हुई प्यारी दूर देशमें गये हुए अपने प्यारेके देखनेकी इच्छा करती है, वैसे ही त्रिविध तापसे सन्तापित हुआ मेरा मन सब कार्योंमें बँधा हुआ कामादिसे पीड़ित होनेके कारण आपके ही देखनेकी अभिलाषा करता है ॥२६॥ इस लिये हे प्रभो ! मैं अपने कर्मोंमें बँध कर संसार-चक्रमें घूम रहा हूं, इस क्लेशकी शांतिके लिये तुम्हारे भक्त जनोंके साथ मेरी मित्रता हो जाय । भगवन् ! आपकी मायाके वश इस समय जो पुत्र, कलत्र, देह, गेह आदिमें मेरा चित्त आसक्त हुआ है, वह आप ऐसी कृपा

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० वृत्रकृतभगवत्स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥ ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसाऽसुरेन्द्रः ॥ क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥

कीजिये, कि जिससे फिर इन बातोंमें मेरा चित्त आसक्त न हो, यह मेरी इच्छा है * ॥२७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रस्तोत्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥ दोहा–वृत्रासुरसे हारकर, बहुरि भयो उत्साह । महायुद्ध कर इन्द्रने, मारो निशिचर-नाह ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे परीक्षित ! वृत्रासुर इस प्रकार समर क्षेत्रमें अपने देहके त्यागनेकी इच्छा करता हुआ विजयसे मृत्यु होना श्रेष्ठ मान शूल ग्रहण कर इन्द्रके ऊपर ऐसे दौड़ा जैसे महाप्रलयके जलमें मधुकैटभ दैत्य भगवान् विष्णुजी पर दौड़ा था ॥ १ ॥ फिर पीछे जिस शूलके अस्त्रकी अनी प्रलय कालके अग्निके समान भयंकर थी, उस शूलको अति वेगसे घुमाकर वृत्रासुरने इंद्रके ऊपर चलाया,

* भजन—(राग कालिगड़ा) तुम विना कोई न मेरा प्रभु जी तुम विन कोई न मेरा रे । कृपासिन्धु सेवक सुखदायक, मम उर करो बसेरो रे ॥ तात मात औ भ्रात तुम ही हो, निज सेवकको हेरो रे । काम क्रोध मद लोभ मोहने, जान किये उर डेरो रे । ऐसे प्रबल दुष्टगणहूसौं, को कर सकै निबेरो रे ॥

तत्पश्चात् सिंहनाद कर क्रोधमें भरकर बोला—कि अरे पापी ! अब तू मेरे हाथसे किसी प्रकार नहीं बच सकता, आज तुझे अवश्य यमपुर भेजूंगा, इस प्रकारके कटु वचन कहने लगा ॥२॥ हे राजन् ! वृत्रासुरका यह शूल उल्कापात ग्रह और उलूकके समान देखनेमें अयोग्य घूमता हुआ चला आता था, तथापि उसको देखकर देवराज इन्द्र कुछ भी व्याकुल न हुए। और उन्होंने शतधारवाले वज्रसे सरलतापूर्वक उसको काट डाला और उसके साथ ही साथ एक भुजा इस असुरकी जो कि सर्पाकार थी काटकर गिरा दी॥३॥जब एक भुजा कट गयी तब वृत्रासुरने महाक्रोध कर दूसरी भुजामें परिघ धारण कर वज्रधारी इन्द्रकी ओर झपटा और वह परिघ जाकर गजेन्द्रकी और इन्द्रकी ठोड़ीमें मारी, जिससे देवराज इन्द्रका हाथी ताड़ित हुआ और इन्द्रके हाथसे भी वज्र छूटकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥४॥ हे महाराज ! वृत्रा-

ख आपतत्तद्विचलद् ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरग-राजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसद्य गृहीतवज्रम् ॥ हनौ तताडेन्द्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत् सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः ॥ अपूजयंस्तत् पुरुहूत संकटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥ ५ ॥ इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥ युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयः सदैकत्र न वै परात्म-नाम् ॥ विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥

सुरका यह महाअद्भुत कर्म देखकर सुर, असुर, सिद्ध चारण और गंधर्वगण अनेक प्रकारसे प्रशंसा करने लगे, परन्तु इन्द्रके ऊपर बड़ी विपत्ति पड़ी देख बहुत ही शीघ्र सब ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हाथका वज्र गिर जानेसे इन्द्र लज्जित होकर अपने शत्रुके सम्मुख फिर उस वज्रको नहीं उठा सका, तब वृत्रासुरने हँसकर इन्द्रसे कहा कि हे इन्द्र ! वज्र उठाकर अपने शत्रुका वध क्यों नहीं करते ? यह विषाद करनेका समय नहीं है ॥ ॥ ६ ॥ हे पुरंदर ! उत्पत्ति, स्थित और प्रलय एक सर्वज्ञ सनातन आदि पुरु-षके सिवाय और दूसरेके हाथ नहीं है क्योंकि सर्वत्र सदा विजयी तो केवल भगवान् ही हैं। पराधीनात्मा आततायी युयुत्सु पुरुषोंकी

सदा जय नहीं होती है, कभी जय होती है, कभी पराजय होतीहै, फिर तुम शोक किसलिये करते हो ? ॥ ७ ॥ हे देवराज ! लोकपाल सहित यह समस्त लोक जिसके जालसे बँधे हुए पक्षियोंके समान अवश होकर अपने-अपने व्यापारमें चेष्टा करते हैं, परन्तु जय अजयका कारण वह कालरूप परमात्मा ही है ॥ ८ ॥ हे देवराज ! वे भगवान् ही सामर्थ्य, साहस, बल, प्राण अमृत और मृत्युके स्वरूप हैं। परन्तु कैसा आश्चर्य है ? कि लोग उनको जयादिका कारण न जानकर जड़रूप वर्त्तमान जो यह देह है,इसको ही सबका कारण मानते हैं ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार काठकी बनी हुई स्त्री अथवा जिस प्रकार यंत्रमय मृग पराधीन होकर स्वयं कोई चेष्टा नहीं कर सकते अर्थात् जैसे कोई नचाता है वैसे ही नाचता है, वैसे ही यह सब भूत भगवान्के वशमें हैं, विना भगवान्की इच्छाके कोई कार्य कर-

लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ॥ द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम्॥८॥ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥९॥ यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ॥ शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ॥ भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥ १२ ॥ आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ॥ भवन्त्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छो-विंपर्यया: ॥ १३ ॥

नेको समर्थ नहीं हो सकता ॥ १० ॥ पुरुष, प्रकृति, अव्यक्त, आत्मा, पंचभूत, इन्द्रियां अन्तःकरण यह सब सृष्टिके आदिमें विना उसकी कृपाके कुछ भी नहीं कर सकते ॥११॥ हे देवराज ! कोई-कोई पुरुष यह कहा करते हैं कि जीव अपने कर्मोंसे ही सृष्टचादिका हेतु है, यह बात नहीं हो सकती क्योंकि देह किसी प्रकारसे स्वतंत्र नहीं है। अविद्वान् पुरुष ही देहको ईश्वर अर्थात् स्वाधीन करके मानते हैं । यदि कहो कि पित्रादिसे सृष्टि और व्याघ्रादिसे विनाश दृष्टि आता है, तो उसका उत्तर यह है कि यह भी परवश है, वरन् भगवान् ही स्वयं पित्रादि भूत सबोंसे सब प्राणियोंकी सृष्टि किया करते हैं और वही व्याघ्रादि भृत्योंसे सब भूतों का ग्रास भी कर जाते हैं॥१२॥हे देवराज ! तुम हमसे पराजित हुये हो, तुम ऐसा मत समझो कि अब हमारी कभी जय नहीं होगी क्योंकि पुरुषोंकी कीर्ति, श्री, ऐश्वर्य,आयु और आशीष

यह सब भयादि कालमें अवश्य ही होते हैं,परन्तु इस तत्त्वविषयमें अनिच्छु होनेसे विपरीत अर्थात् अकीर्ति इत्यादि हुआ करती है॥१३॥ इसलिये हे महेन्द्र ! जब कि सब ही ईश्वरके अधीन हैं, तब इसी कारणसे कीर्ति,अकीर्ति, तप, पराजय, सुख, दुःख और जीवन, मरणमें समान अर्थात् हर्ष-विषादसे शून्य होना उचित है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण यह तीन मायाके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं । जो पुरुष आत्माको इन तीन गुणोंका साक्षिस्वरूप जानते हैं, वे हर्ष शोकादिमें कभी नहीं बँधते ॥ १५ ॥ हे शक्र ! हर्ष-विषादको दूर करनेके लिये इस समय मैं ही तुम्हारा गुरु होता हूँ । मुझको देखो कि तुमसे मैं हार गया हूँ, और मेरे अस्त्र-शस्त्र भी

तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥ १४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते॥१५॥पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजंमृधे ॥ घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया॥१६॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रो वृत्रवचःश्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ॥ गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८॥ इन्द्र उवाच ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ॥ भक्तःसर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥

टूट गये हैं, तो भी तुम्हारे प्राण संहार करनेकी वासनासे यथाशक्ति युद्ध करते ही जाता हूँ ॥१६॥ हे देवराज !हमारा यह समर द्यूतरूप है । इसमें परस्पर प्राण लगाना ही दांव है,वाण जो चलाते हैं,यही पाशेरूप हैं,वाहनरूप इसकी नरदें (गोट) हैं और पृथ्वीरूप चौपड़ है, इस समय कोई नहीं जान सकता कि इस द्यूतमें किसकी हार और किसकी जीत होगी ? ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वृत्रासुरके निष्कपट वचन सुनकर देवराज इंद्र विस्मित हुये और कपटरहित जानकर उसकी प्रशंसा करने लगे । फिर विस्मय त्याग और वज्र ग्रहण कर हँसकर बोले ॥ १८ ॥ हे दानव ! तुम सिद्ध हो, गए हो अहो ! तुममें इस प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हुई है, इससे जाना जाता है

कि सबके अन्तःकरणमें सबके आत्मा और सुहृद् जो जगदीश्वर हैं उनकी सेवा तुमने बहुतकी है ॥१९॥ अतएव सब जनोंको मोहनेवाली वैष्णवी मायाका भी तुमने पार पा लिया है, क्योंकि तुममें असुरभाव नहीं पाया जाता, वरन् उसके बदले तुममें वह भाव है जो कि महापुरुषोंके निकट होता है ॥२०॥ परन्तु यह अति आश्चर्य की बात है कि तुम रजोगुणी होकर किस प्रकार सत्त्वसंपन्न भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी दृढ़ मति हुई ॥ २१ ॥ जो कुछ हो जब कि सबके मोक्ष देनेवाले भगवान् हरिमें तुम्हारी मति लगी है और जब कि तुमने अमृतसागरमें गोता लगाया है,तब तुच्छ गर्त्तादिके तुल्य स्वर्गादि जो हैं इसमें तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है,यह हमने निश्चय जान लिया है॥२२॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! धर्म-ज्ञानकी वासनासे इस प्रकार कहते-कहते इंद्र और वृत्रासुर दोनों जनोंमें घोर युद्ध होने

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥ २० ॥ खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजः प्रकृतेस्तव ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥ २१ ॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ॥ विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैःखातकोदकैः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ॥ युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधांपती ॥ २३ ॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिंदमः ॥ इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥ २४ ॥ स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥ २५ ॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ॥ छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ २६ ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ॥ नभो गम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥ २७ ॥

लगा,दोनों ही महावीर और महायोद्धा थे, इसलिए किसी पक्षकी ओर किसी भांतिसे हानि नहीं पाई गई ॥२३॥ हे राजन् ! वह बलवान् पराक्रमी वृत्रासुर लोहेका बना हुआ घोर परिघ बांयें हाथमें ग्रहण करके इन्द्रके ऊपर चलाया ॥ २४ ॥ परन्तु उसका चलाया हुआ यह परिघ और उसकी यह परिघतुल्य भुजा दोनोंको ही देवराज इंद्रने तेजधारवाले वज्रसे एकही बारमें काट डाला ॥ २५ ॥ जब दोनों भुजाओंकी जड़ कट गई तब उनसे अनिवारित रुधिरकी धारा बहने लगी । तब उस असुरकी ऐसी शोभा हुयी कि मानो इन्द्रके वज्रसे पंख कटा हुआ पर्वत आकाशसे गिरा है ॥ २६ ॥ इसके पीछे वह वृत्रासुर अपनी नीचेकी ठोढ़ी पृथ्वीमें लगाकर ऊपरकी ठोढ़ी आकाशमें

छुवाकर आकाशके समान गम्भीर मुख और सर्पके तुल्य जीभ निकाल ॥२७॥ मृत्युके समान कराल डाढ़ोंसे मानो वह असुर त्रिलोकीको ग्रास करनेके लिये उपस्थित हुआ है और फिर अपने बड़े भारी शरीरके वेगसे मानों पर्वतोंको चलायमान कर देगा, ऐसा प्रतीत होने लगा ॥ २८ ॥ पर्वतराजके समान पादचारी हो पृथ्वीको चूर्ण करता हुआ वज्रधारी पुरन्दरके निकट आकर वह ऐरावत सहित इन्द्रको निगल गया ॥ २९ ॥ हे राजन् । महा अजगर सर्प जिस प्रकार हाथीको निगल जाता है, वैसे ही यह महाबलशाली महाप्रतापी वृत्रासुर सुरपति इन्द्रको निगल गया ॥ ३० ॥ देवतालोग इंद्रको वृत्रासुरसे ग्रसा हुआ देख भय और वेदनाके मारे पीले पड़ गये और

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ॥ अति मात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥ २८ ॥ गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम् ॥ जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ॥ वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजा पतयः सुराः ॥ ३० ॥ हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ॥ महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥ ३१ ॥ भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥ ३२ ॥ वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥

महर्षियोंके साथ "हाय क्या कष्ट है" ऐसा कह कहकर सन्ताप करने लगे । हे राजन् ! इन्द्रको वृत्रासुरने निगल लिया और अपने पेटमें डाल लिया, तो भी "नारायण कवच" बांधनेके प्रभावसे और योग मायाके बलसे देवराज इन्द्रकी मृत्यु न हुई ॥ ३१ ॥ एक क्षणभरमें वज्रसे इस असुरकी कोख फाड़कर देवराज इन्द्र निकल गये और अपने तेजसे पर्वतके शृङ्गके समान वृत्रासुरका मस्तक इन्द्रने काट डाला ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! यद्यपि इन्द्रका यह वज्र अतिशय वेगवान् था, तथापि इस असुरके कंधे काटता यह वज्र सब ओर घुसने लगा और जिस समयको ज्योतिषियोंने वृत्रासुरके मारनेको निर्धारित किया था, उतने ही अहर्गणमें वह सिर उसका

कटकर गिरा ॥ ३३ ॥ हे कौरव श्रेष्ठ ! घोर वृत्रासुरके मारे जानेपर आकाशमें नगाड़े बजने लगे और सिद्ध-गंधर्व-गण व महर्षियोंके समूह इंद्रकें वीर्यका प्रकाश करनेवाले मन्त्रोंको पढ़ पढ़कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रु नाशक राजन् ! उस समय वृत्रासुरके देहसे निकलकर उसकी आत्मज्योति निर्गत होकर दर्शनकारी देवगणोंके सामने ही भगवान्के लोकमें जाकर भगवान्में मिल गई ।

तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाःसमहर्षिसंघाः ॥ वार्त्रघ्नलिंगैस्तमभिष्टुवाना मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन्॥३४॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिंदम ॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥ १ ॥

देखो राक्षस होने पर भी मुक्त हो गया । क्योंकि वैकुण्ठमें जानेको सबहीकी इच्छा हुआ करती है * ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥दोहा—वृत्रासुरके वधनकी,हत्या मान अगाध ।इन्द्र छिपे वरसों तलक,बहुरि हरि हरी व्याध ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रके विना लोक-परलोकके साथ ब्रह्मा-

---

१. शंका—इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरके मस्तकको बारह महीनेमें काटा यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंमें अनेक राक्षस हुए, परंतु किसीके मस्तक काटनेमें बारह महीने नहीं लगे, हमने किसी शास्त्रमें वा पुराणमें ऐसा आश्चर्यमय वचन नहीं सुना ?

उत्तर—(ज्योतिष) अपने इस श्लोकमें ज्योतिषका अर्थ ज्योतिश्शास्त्र व्यासजीने नहीं किया, ज्योतिषका अर्थ व्यासजीने इस प्रकारका किया कि ज्योतिष नेत्रोंकी दीप्ति अर्थात् आंखोंकी ज्योतिका अयन अर्थात् स्थान, भगवान्के कोमल कमलसे चरणारविंद है, उनहीं भगवान्के चरणारविंदोंको मरनेके समय वृत्रासुर जबतक देखता रहा तबतक रात दिनके एक-एक क्षणमें उस वृत्रासुरके मस्तकको वज्रसे काट डाला, ऐसा अर्थ व्यासजीने कहा है । बारह मास-अर्थात्छः छः महीनेके दो अयन नहीं कहे ।

* एक समय एक महाकृपण वणिक मृत्युके वश हो रहा था,उन्होंने दानके भयसे तो कभी "द" अक्षरका उच्चारण भी अपने मुखसे नहीं निकाला था, परंतु अंत समय लालाजीकी अनिच्छा रहते भी पुत्रोंने बलात्कार(५)पांच रुपेकी गाय लाकर लालासे दान करादी थी । गाय ऐसी दुर्बल थी,कि एकही घड़ी पीछे वह मर गयी, तब लालाजी की भी इतिश्री हो गयी और वह यमपुरीको कृतार्थ करनेके लिये वहाँ पहुँचे, तब गायने कहा कि दान किये पीछे १ घड़ी में जीवित रही हूं । इस लिए घडी भर इच्छानुसार कार्य तुम मुझसे करा लो, तब वणिकजी कहते क्या हैं कि यमराजके पेटमें सींग भोंग दे । गौ यह सुन यमराजके पीछे दौड़ी । यमराज भागकर बैकुण्ठमें नारायणके पास जा कर बोले कि कृपानिधान ! इस गायसे हमें बचाइये । तब भगवान्के पार्षदोंने यमराजको बचाकर बनियेको धक्का दे दिया और स्वर्गसे निकालने लगे । तब बनियेने कहा कि भला कहीं नारायणके लोकमें आकर कोई संसारमें लौट गया है कि हम ही जायें ? यह कहां का न्याय है ? यह कह वहीं धरना दे उस लोकका अधिकारी बन गया । धन्य है ! बनिये को चतुराताको, जो नीच कर्म करने पर भी बैकुण्ठवासी हुआ ।

दिक शीघ्र ही सब ज्वरोंसे मुक्त हुए ॥ १ ॥ देव, ऋषि, पितृ, भूत, दैत्य और देवानुचर व ब्रह्मा, ईश इत्यादि सब ही हर्ष-समुद्रमें मग्न होकर स्वयं अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखारविन्दसे इतनी वार्ता श्रवण करके राजा परीक्षित् हाथ जोड़कर बोले–कि हे भगवन् ! जब सबको ही अपूर्व सुख अह्लाद प्राप्त हुआ, तब इन्द्र किस लिये दुःखी हुए ? ॥ ३ ॥ यह सुन संदेहोंके शमन करनेवाले योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे राजन् ! महर्षियों सहित सब देवता वृत्रासुरके विक्रमसे घबड़ाये तब उसका वध करनेके लिये सबने इन्द्रके निकट आकर प्रार्थना की,परन्तु वृत्रासुरके मारनेसे ब्रह्महत्या होगी,इसलिये प्रथम वृत्रा-

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

सुरके मारनेको इन्द्रकी इच्छा नहीं थी ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले कि विश्वरूपका वध करके एक वार जो पाप किया था, स्त्री, भूमि, वृक्ष और जल इन्होंने अनुग्रह करके यह पाप परस्पर बांटकर ग्रहण कर लिया, अब वृत्रासुरका संहार करके यह पाप किसको दूंगा ? क्योंकि यह असुर भी तो ब्राह्मणसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इन्द्रके यह वचन सुनकर ऋषि लोगोंने कहा था कि हम लोग तुमसे अश्वमेध यज्ञ करायेंगे, कि जिससे तुम्हारा मंगल होगा,तुम भय न करो ॥६॥ हे देवेन्द्र !अश्वमेध यज्ञसे परमपुरुष

परमात्मा नारायण देवकी पूजा करनेपर एक ब्रह्महत्या क्या समस्त जगत्को वध करनेके पापसे भी छूटकर मोक्षको प्राप्त हो जाओगे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, ऋषिघाती, आचार्यघाती, और कुत्तेका खानेवाला, चाण्डाल इत्यादि महा-पापकारी लोग भी जिनके नामका कीर्तन करके उन पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हम महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करेंगे तुम उसमें श्रद्धासहित श्रीभगवान् वासुदेवकी पूजा करना,तो उस पूजा करनेसे यदि तुमने चराचर विश्वको भी संहार कर डाला हो तो उसका पाप

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥ श्वादः पुल्कसको वापि शुध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥ तम-श्वमेधेन महामखेन श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ॥ हत्वाऽपि सब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥ तयेन्द्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ॥ ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥

तुम्हें न होगा, फिर भला खलके मारनेका पाप कहीं हो सकता है ? एक नारायणका नाम लेनेसे सहस्रों पापोंका क्षय हो जाता है,एक दैत्यके मारनेका आपको इतना संताप है ? ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यद्यपि ऋषि लोगोंके इस प्रकार समझाने-बुझाने विश्वासादि दिलानेसे वृत्रासुरका वध किया तो भी ब्राह्मण वृत्रासुरके मरते ही ब्रह्महत्या इंद्रके ऊपर आ गयी ॥ १० ॥ जिससे कि इन्द्रको बड़ा

१. शंका–मुनियोंने इन्द्रसे बड़े आश्चर्य की बात कही है,कि हे इन्द्र ! तीनलोक चौदह भुवनोंमें जो चर-अचर जीव हैं उनको मार डाला; फिर अश्वमेधयज्ञ करके जो भगवान्का जप करेगा तो पहले मारे हुए जो जीव हैं उनकी हत्यासे छूट जायगा और जो पिता, गुरु, माता, ब्राह्मणको मार डाले और कुत्ता आदि जीवोंका मांस भक्षण करे, ऐसा चाण्डाल हो तो भी अश्वमेध यज्ञ करके पापसे छूट जायगा, ऐसा अनुचित वचन कहना मुनियोंको नहीं चाहिये; यह तो सुननेवालेको भी दूषित करता है ?

उत्तर–देखो भाई ! नीतिशास्त्रमें, धर्मशास्त्रमें, वेदमें और पुराणमें लिखा है, अपने शरीरका नाश होता हो तथा बालक मारा जाता हो वा गौ मारी जाती हो अथवा स्त्री मारी जाती हो और ऐसा समझ ले कि झूठ बोलनेसे सब विघ्न दूर हो जायँगे तो झूठ बोलकर इन सब प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करे । उस झूठ बोलनेका कुछ दोष नहीं गिना जाता, ऐसा कुछ ब्राह्मणोंने विचार कर इन्द्रको यज्ञका लोभ दिखाकर झूठ बोलकर इन्द्रसे वृत्रासुरको मरवाया. क्योंकि वृत्रासुर तीनों लोकोंको चर–अचरको दुःख दे रहा था त्रिलोकीकी रक्षा करनेके लिए झूठ बोलकर इन्द्रसे वृत्रासुरका वध कराकर सबका दुःख मिटा दिया । इसलिये अश्वमेधकी प्रशंसा मुनिलोगों ने इन्द्रसे की थी ।

शोक-संताप हुआ और देवराज इंद्र किसी प्रकार उस ब्रह्महत्यासे छुटकारा न पा सके। हे राजन्! यद्यपि इन्द्रमें धैर्यादि अनेक शुभ गुण थे, तो भी, जो कि निंदनीय कर्म करके लज्जायुक्त होता है उसको समस्त शुभ गुण भी सुखी नहीं कर सकते ॥११॥ तब इन्द्रने चाण्डाल रूप धारिणी मूर्तिमती भागकर आती हुई, वृद्धावस्थाके कारण कम्पायमान अंग, राजरोगसे ग्रस्त, वस्त्रोंमें रुधिर लगाये ब्रह्महत्याको देखा ॥ १२ ॥ वह ब्रह्महत्या अपनी शिरकी लटोंके बाल बिखेरे "खाऊँ खाऊँ" शब्द ऊँचे स्वरसे उच्चारण कर रही थी। उसके श्वासकी पवन ऐसी दुर्गन्धियुक्त थी कि मानो मछलियोंकी दुर्गन्धि है, जिससे मार्ग भी दूषित हो रहा था ॥ १३ ॥ हे राजन्! इन्द्र देखते ही भयभीत हो उससे अपना पीछा छुड़ानेके लिये पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें भागा फिरा परंतु कहीं अपने उद्धारका ठिकाना न पाया, फिर

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥ विकीर्य पलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ॥ मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वन्तीं मार्गदूषणम् ॥ १३ ॥ नभो गतो दिशःसर्वाः सहस्राक्षो विशांपते ॥ प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४ ॥ स आवसत् पुष्करनालतन्तूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ॥ वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः संचिन्तयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥ तावत् त्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ॥ स संपदैश्वर्यमदान्धबुद्धिर्नीतस्तिरश्चांगतिमिन्द्रपत्न्या ॥ १६ ॥

उत्तर और पूर्व दिशामें जाकर वहांके मानस सरोवरमें बड़ी शीघ्रतासे घुस गया ॥१४॥ और वहांपर एक कमलनालमें घुसकर बैठा रहा, अग्निदूत अर्थात् अग्नि ही उनको यज्ञभाग पहुँचा जाता, परंतु जलके मध्यमें अग्निका प्रवेश करना असंभव है। इस कारण इन्द्र जबतक उस कमलनालमें बसते रहे, तबतक यज्ञभाग उनको नहीं मिलता था। हे राजन्! देवराज इन्द्र सहस्र वर्षतक यहां अलक्षित भावसे वसते हुए यही चिंता किया करते थे किस प्रकार इस ब्रह्महत्याके महापातकसे छूटेंगे ॥ १५ ॥ जबतक इन्द्र यहांपर छिपे रहे, तबतक विद्या, तप और योग-बलके प्रभावसे नहुष राजाने स्वर्ग लोकका पालन किया है। हे राजन्! मनुष्योंका स्वर्गका राज्य किस प्रकारसे हो सकता है, ऐसा मनमें समझ शंका मत करना क्योंकि तपस्या और योगके प्रभावसे नहुषमें स्वर्गका राज्य पालन करनेका

सामर्थ्य था परंतु कुछ ही काल पीछे यह राजा इस स्वर्गकी अतुल सम्पदाके मदसे ऐसा मतवाला हुआ कि इंद्राणीने उपाय करके इस राजाको सर्पयोनि प्राप्त करायी। इसलिये स्वर्गसे यह नहुष गिर गया* ॥१६॥ इसके पीछे देवराज ब्राह्मणोंके बुलानेसे फिर स्वर्गमें चला गया, सत्यपालक भगवान् हरिका ध्यान करनेसे इन्द्रकी ब्रह्महत्याका पाप विध्वंस हो गया था, हे राजन्! पहले भी ब्रह्महत्या इन्द्रके पराजय करनेमें समर्थ नहीं हुई थी,क्योंकि पूर्वोत्तर दिशामें विराजमान दिग्देवता रुद्रने उनकी रक्षा की थी ॥१७॥ हे महा-

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः ॥ पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥ १७ ॥ तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावद्दीक्षयांचक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८ ॥ अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ॥ अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप॥ नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥

राज! यद्यपि ध्यान करते ही देवराज इन्द्रका पाप छूट गया था, तो भी फिर उनके स्वर्गमें आनेपर ब्रह्मर्षि लोग उनके समीप जाकर जिस अश्वमेध यज्ञमें भगवान् हरिकी आराधना करना ही प्रधान कर्म है, उस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको दीक्षित करके यथाविधिसे वह यज्ञ उनसे कराने लगे॥१८॥हे राजन्! ब्रह्मवादी मुनि लोगों करके जो यज्ञ कराया गया उसमें सब देवता ही जिनकी मूर्ति उस परम पुरुषकी जब महेन्द्र अर्चना करने लगे ॥ १९ ॥ तब उनकी बड़ी ब्रह्महत्या जो कि वृत्रासुरके मार डालनेसे हुई थी, वह हत्या उन परम पुरुषसे

---

* इस विषयमें एक इतिहास है कि नहुष राजाने स्वर्गमें राज्य करते करते एक दिन इंद्राणीसे कहा था कि, इस समय हमी इंद्र हैं, इस कारणसे तुम हमको भजो। नहुषके यह वचन सुन धर्म लोप होनेके भयसे इंद्राणी बहुत डरीं। और उस समय नहुषसे कुछ न कहकर गुप्त भावसे यह वृन्तान्त सुरगुरु बृहस्पतिजीसे जाकर निवेदन किया, देवगुरु बृहस्पतिजी इस दुरात्माके स्वर्गसे गिरनेका उपाय विचार कर बोले कि हे भद्रे! तुम इस दुरात्मासे यह कहना कि ब्राह्मणोंको पालकीमें जोत, उसमें चढ़कर हमारे पास आओगे तो हम तुम्हारी सेवा पत्नी बनकर करेंगी। ब्राह्मणोंसे पालकी उठवानेके कारण अवश्य ही शापसे उसका नाश हो जायगा। इसके पीछे नहुषने फिर इंद्राणीसे कहा कि तुम हमारी भार्या हो, इन्द्राणीने कहा अच्छा, ब्राह्मण शिबिकामें जोत उसमें चढ़कर हमारे पास आना क्योंकि इन्द्र इसी प्रकारसे हमारे पास आया करते थे। नहुष कामान्ध होकर अगस्त्यादि मुख्य मुख्य ब्राह्मणोंको शिबिकामें लगाकर शीघ्रताके मारे इन सब ब्राह्मणोंसे सर्प सर्प (चल चल) कहकर अगस्त्यजीके चरण प्रहार करता हुआ, इसलिये ब्राह्मण श्रेष्ठ अगस्त्यजीने क्रुद्ध होकर '' तू सर्प हो जा '' यह शाप दिया, शापके देते ही उसी सम नहुष अजगर सर्प होकर स्वर्गसे गिर पड़ा ॥

संपूर्णतः इस प्रकार नाशको प्राप्त हो गयी, कि जैसे सूर्य भगवान्‌के उदय होनेसे तम (अंधकार) का नाश हो जाता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मरीचि इत्यादि महर्षियोंके कराये हुए अश्वमेध यज्ञसे यज्ञनाथ पुराण पुरुषकी आराधना कर पाप क्षय होनेसे इन्द्र पहलेके समान फिर अपने उसी बड़प्पनको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे महाराज ! यह आख्यान अति श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें तीर्थपद भगवान् हरिका कीर्तन, भक्तजनोंका वृत्तांत और इन्द्रका पापसे छूटना और विशेष करके इन्द्रकी ही जय इसमें कही गयी है, इसलिये इसमें अनन्त पाप धुल जाते हैं और भक्तिका उदय होता है ॥ २२ ॥ पंडितगण सदा इस आख्यानका पाठ करें और पर्व-

स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ॥ इष्ट्वाऽधियज्ञं पुरुषं पुराणमिन्द्रो महानास विधूतपापः॥२१॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥ भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥ पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० इन्द्राश्वमेधवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमस्स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥१॥

र्वमें इसको श्रद्धासहित सुनें तो इससे इन्द्रियाँ वशमें होती हैं; धन-यश मिलता है, अखिल पापका नाश हो जाता है, और शत्रुओंको जीत लिया जाता है। अधिक करके यह आयुका बढ़ानेवाला है इसलिये इस उपाख्यानका पाठ करना या श्रवण करना, कराना परम-कल्याणकारी है ॥२३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां इन्द्राश्वमेधयज्ञ वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥ दोहा—अति दुखसे इक सुत भयो, सोउ लीन विधि छीन । चित्रकेतु विलखत परो, जैसे जल विन मीन ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित विनयपूर्वक श्रीशुकदेवजीसे पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! महापापी वृत्रासुरका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे परिपूर्ण था; फिर भगवान् वासुदेवमें किस

* भजन—राग पूर्वी—समय न आवत वारंवार ॥ तु प्रमाद निद्रामें सोयो, अब तो नयन उघार ॥ यह मनुष्यतनु उत्तम पायो, प्रभुको सुयश उचार ॥ वृथा गंवाई इतनी आयुष, क्यों नहिं करत विचार ॥ तब रघुवीर दास पछतावें, जब तनु तजे असार ॥

प्रकार उसकी दृढ़ मति हुई ? ॥१॥ शुद्ध सत्त्वगुणी देवतागण और निर्मल आत्मावाले ऋषि लोगोंके भी चित्तमें इस प्रकार मुकुन्द गोपालकी भक्ति नहीं उपजती, तो फिर पापी वृत्रासुरको किस प्रकारसे चरणोंमें भक्ति उत्पन्न हुई ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीमें अनंत जीव हैं, उनकी गिनती पृथ्वीके रजःकणोंके समान अनंत हैं, परन्तु इतने अनंत जीवोंमेंसे कई एक मनुष्यादि अपने-अपने कल्याणके लिये यत्न किया करते हैं अर्थात् धर्माचरण किया करते हैं॥३॥हे भगवन् ! इन कई एक मनुष्योंमें भी सब ही मोक्षके अभिलाषी नहीं होते, वरन् उनमेंसे भी कोई एक मोक्षको चाहते हैं और वे मोक्षार्थी सब ही जीव सिद्ध नहीं होते, वरन् सहस्रोंमें कभी कोई एक ही पुरुष गृह इत्यादिका सङ्ग त्याग करके तत्त्वज्ञानी सिद्ध होता है॥४॥जो पुरुष मुक्त और इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी हो जाते हैं,ऐसे करोड़ों जनोंके मध्यमें नारायण-परायण

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ॥ भक्तिमुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥ रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ॥ तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिद्ध्यति ॥ ४ ॥ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥ इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥ अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥ यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥ ७ ॥

महाशान्त स्वभाववाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, और ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलते अर्थात् बहुत कठिनतासे देखनेमें आते हैं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! वृत्रासुर साक्षात् पापका रूप होकर सब लोककी हिंसा करता-फिरता था और सदा संग्राम करनेके लियेतैयार रहता था फिर उसकी मति किस लिये भगवान्में ऐसी दृढ़ हुई ? ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस बातसे हमको बड़ा संशय है और इसको सुननेके लिये चित्तमें परमोत्साह हो रहा है । वह कृपापूर्वक विस्तारसहित आप वर्णन कीजिये । हे योगिन् ! वृत्रासुर इन्द्रके भयसे भगवान्की शरणमें आया था,ऐसा तो हम नहीं कह सकते,क्योंकि उस समय वृत्रासुरने ऐसा विक्रम प्रकट किया कि इन्द्र भी उससे प्रसन्न हो गया था ॥७॥

सूतजी बोले कि हे मुनिगण ! श्रद्धावान् महाराज परीक्षित्‌के यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक यह वचन बोले ॥ ८ ॥ कि हे राजन् ! इस विषयमें एक इतिहास महर्षि व्यासजीके मुखसे तथा नारदजीके व देवलके सम्मुख सुना है वह हम तुम्हारे सम्मुख वर्णन करते हैं, सावधान होकर तुम श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पहले शूरसेन देशमें "चित्रकेतु" इस नामसे विख्यात एक राजा था, उसका ऐसा

सूत उवाच ॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत्॥८॥श्रीशुक उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ॥ श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥ ९ ॥ आसीद्राजा सार्वभौमश्शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ् मही ॥ १० ॥ तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ॥ सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥ ११ ॥ रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ॥ संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥

प्रताप था कि पृथ्वी उसको मनोवांछित वस्तु दिया करती थी ॥ १० ॥ हे महाराज ! इस चित्रकेतुके करोड़ रानियां थीं । यद्यपि वह राजा पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ था, तथापि उसके इन सब स्त्रियोंमें एक भी पुत्र कन्या नहीं हुई अर्थात् कुभाग्यसे इसकी स्त्रियाँ वंध्या थीं * ॥ ११ ॥ सब रूप, लावण्य, वयस, विद्या, कुलीनता, ऐश्वर्यता, उदारता इत्यादिमें संपन्न और सर्व गुणोंसे अलंकृत होनेपर भी बांझ

---

१. शंका–राजा चित्रकेतुके करोड़ १००००००० स्त्रियां थीं, उन स्त्रियोंका रति आदि द्वारा भरण–पोषण किस प्रकार होता था, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–राजा चित्रकेतु चित्र बनानेमें बड़ा चतुर था इसीलिये उसका नाम चित्रकेतु था । उसने करोड़ शयन भवन अत्यन्त मनोहर बना रक्खे थे, और उन्हीं मंदिरोंमें एक-एक स्त्रीका चित्र भी बना रक्खा था, प्रत्येक मंदिरमें एक स्त्रीका चित्र भी ऐसा मनहरण था मानो साक्षात् स्त्री विराजमान है । राजा चित्रविद्या तो जानता ही था, परंतु उसमें एक बात और महा अद्भुत थी, चित्रको सजीव करनेकी विद्या भी जानता था, जब चित्रकेतुकी इच्छा होती थी कि अब इसको सजीव करना चाहिये उसी समय सजीव कर लेता था और उनके संग हास्यविलास करके फिर तुरंत विसर्जन कर देता था। जब राजाका विवाह होता था उसी समय उस स्त्रीको चित्रकी मूर्ति बना देता था। विवाहसे प्रथम चित्र नहीं बनता था,जब राजा चित्रकेतुके पुत्र नहीं हुआ तब तो नित्य स्त्रियोंको सजीव करता था, पुत्रके हुए पीछे पुत्रका मुख देखकर आनंदमें मग्न हो गया, तब नित्य स्त्रियोंको सजीव नहीं करता था। जब कभी स्मरण हो जाय तब पांचवें-सातवें दिन किसी स्त्रीको सजीव कर लेता था। एक दिन चित्रकेतु सब स्त्रियोंको सजीव करके पहलेके सदृश सब काम करने लगा, परंतु दैवयोगसे विसर्जन करना भूल गया, तब तो सब स्त्रियोंने उन स्त्रियोंको झारनेवाली जो दासी थीं वे सब कहने लगीं कि जबसे राजाके पुत्र हुआ तबसे हमारा तुम्हारा निरादर कर दिया। निरादर क्या, नित्य तुमको सजीव करता था – किंतु अब पांचवें दिन सजीव करता है, हम तुम सबको नित्य झारती हूं और नित्य शुद्ध करती–

स्त्रियोंका स्वामी होनेसे चित्रकेतुके अन्तःकरणमें क्रमक्रमसे चिन्ताका प्रवेश होता ही रहता था ॥१२॥ इसलिए समस्त सम्पदा, सकल चारुलोचना महिला और अखिल भूमि किसी वस्तुसे भी इस चक्रवर्ती राजाका मन प्रसन्न नहीं होता था ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अंगिरा महर्षि अपनी इच्छानुसार समस्त भूमण्डलमें भ्रमण करते-करते इस राजाके स्थानपर आ पहुँचे ॥ १४ ॥ महर्षिको देखते ही राजा हड़बड़ाकर उठा और साष्टांग दण्डवत कर उनको आसन दिया और अनेक भांतिसे उनकी पूजा कर अतिथिके समान उनका आदर-सत्कार किया। जब राजाके दिये हुये आसनपर यह महर्षि बैठ गये,तब राजा भी नियम सहित उनके निकट आसन बिछाकर बैठ

न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभूवन् प्रीतिहेतवः ॥ १३ ॥ तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ॥ लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४ ॥ तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥ कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥ १५ ॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ॥ प्रतिपूज्य महाराजं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ॥ यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजाऽपि सप्तभिः ॥ १७ ॥

गया ॥१५॥ समीप बैठे हुए राजाको विनय करते, पृथ्वीमें झुककर प्रणाम करते देख महर्षि अंगिरा सत्कार करके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१६॥ तब अंगिराजीने पूछाकि हे महाराज ! कुशल सहित हो ? तुम्हारे राज्याङ्ग और शरीरका मंगल तो है ? हे राजन् ! जिस प्रकार महदादि सप्त प्रकृतिसे जीव नित्य रक्षित रहता है, और उसके बिना क्षणमात्रको भी नहीं रह सकता, वैसे ही राजाको भी सप्त प्रकृति अर्थात् स्वामी (गुरु), अमात्य (कर्मसहाय), राज्य, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र (सलाहका देनेवाला) इन सातोंमें गुप्त रहना पड़ता है अर्थात् इस प्रकारके सुरक्षित राज्यसे ही राजा इन समस्त प्रकृतिका अनुवर्तन करके राज्य सुख भोग कर पाते हैं ॥१७॥

–हैं। इस प्रकार दासियोंके वचन सुनकर सब स्त्रियोंने मिल उस बालकको विष दे दिया, बालक नष्ट हो गया। तब राजाने शोक–संतापसे दुःखी होकर उन स्त्रियोंको विसर्जन नहीं किया, इसलिये वह सब जीती रह गयीं ब्राह्मणोंने बालहत्या शान्त करनेके लिये जो उपाय बताये वह किया, इस प्रकार चित्रकेतुकी करोड़ स्त्रियां थीं; परंतु चित्ररूप थीं ।

हे राजन्! राजाके सुखी होनेसे प्रकृति अर्थात् राज्यके समस्त अंगोंमें धनकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥ हे महाराज! हम पूछते हैं कि स्त्री, पुत्र, मंत्री, अमात्य भृत्य (नौकर-चाकर) तो तुम्हारे वशमें हैं, जो समस्त वणिक् विशेष-विशेष नियम कर दल बांधकर रहा करते हैं वे लोग पुरवासी, देश-प्रदेशके पति और प्रजा यह सब तो आपके वशमें रहते हैं? ॥ १९ ॥ हे राजन्! जिस पुरुषका मन अपने वशमें रहता है,ऊपर कहे हुए यह सब पुरुष उसके वशमें रहते हैं। और यही समस्त लोग लोकपालोंके संग आलस्य रहित होकर राजाको भेंट पूजा किया करते हैं, इसलिये तुमसे हम पूछते हैं कि तुम्हारा मन तो तुम्हारे वशमें है ॥ २० ॥ परन्तु हे राजन्! हम जानते हैं, कि तुम आत्मासे सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारा यह भाव क्या अपने आपसे हुआ है या किसी औरसे हुआ है? इसलिये हम तुम्हारा वदन चिन्तासे

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ॥ राजा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥ अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ॥ पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ यस्यात्माऽनुवशश्चेत् स्यात् सर्वे तद्वशगा इमे ॥ लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥ २० ॥ आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ॥ लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥ एवं विकल्पितो राजन् विदुषा मुनिनाऽपि सः ॥ प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥ २२ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ॥ योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तश्शरीरिषु ॥ २३ ॥ तथाऽपि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ॥ भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥

युक्त एवं मलिन देखते हैं,इससे प्रकट दिखाई देता है कि तुमने अपनी वांछित वस्तु नहीं पायी है ॥ २१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! मुनि श्रेष्ठ अंगिरा यद्यपि सब जानते थे,तो भी इस प्रकारसे संशय प्रकट करके जब पूछा तब पुत्रकी चाहनावाले राजा चित्रकेतुने हाथ जोड़कर मुनिसे निवेदन किया ॥ २२ ॥ चित्रकेतुने कहा–कि हे भगवन्! शरीरधारियोंके भीतर और बाहर जो कुछ वर्तमान बातें हैं पापरहित योगिराज तपस्या, ज्ञान और समाधिके बलसे वे किस बातको नहीं जानते हैं; और इनसे कौनसी बात छिपी है? ॥ २३ ॥ यदि आप मुझसे मेरी मानसिक चिन्ताके विषयमें पूछते हो तो आपकी आज्ञासे मैं सब कहता हूं ॥ २४ ॥

यद्यपि राज्य, ऐश्वर्य और संपत्ति, इनकी प्रार्थना लोकपालगण भी करते हैं, परन्तु जिस प्रकार भूखेको पुष्पमाला चंदनादि सुख नहीं देते, ऐसे ही मुझको यह द्रव्यादिक कुछ भी सुख नहीं देते ॥ २५ ॥ इसलिये हे महाभाग ! इस दुष्कर नरकमें पित्रादि पूर्व पुरुषों सहित पड़ा हुआ हूँ, जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो और इस नरकसे पार हो सकूं, कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय बता दीजिये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब राजा चित्रकेतुने अंगिराऋषिसे इस भाँति विनय की तब ब्रह्माके पुत्र परमदयालु अंगिराजीने उसी समय वह त्वाष्ट्र चरु सिद्ध कर त्वष्टाकी पूजा करवायी और यज्ञ किया ॥ २७ ॥ हे भारत ! यज्ञ समाप्त होनेपर राजाकी करोड़ रानियोंके बीचमें जो सबसे बड़ी और सबसे श्रेष्ठ "कृतद्युति" स्त्री थी, ब्राह्मण अंगिराजीने उसको यज्ञका शेष अन्न प्रदान किया ॥ २८ ॥ इसके पीछे

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे ॥२५॥ ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ॥ यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान् कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्द्विजः ॥२७॥ ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥ २८ ॥अथाह नृपतिं राजन् भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्य-मिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥ साऽपि तत्प्राशनादेवचित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्म-जम् ॥ ३० ॥ तस्या अनुदिनंगर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥ अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ॥ जनयञ्छूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥ ३२ ॥

वह राजासे बोले, कि इस प्रसादको भोजन करनेसे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु उस पुत्रसे तुम्हें हर्ष और विषाद दोनों होंगे अर्थात् वह जन्मसे तुम्हें सुख देगा और मरणसे तुमको शोक उत्पन्न करायेगा । हे राजन् ! ब्रह्मकुमार अंगिराजी यह कहकर वहांसे अपने स्थानको चले गये ॥२९॥ हे भारत ! यज्ञशेष (चरु) भोजन करके चित्रकेतुकी रानी कृतद्युतिने जिस प्रकार कृत्तिकाने अग्निकी आत्माको धारण किया था ॥३०॥ हे राजन् ! शूरसेन देशके अधिपति राजा चित्रकेतुके वीर्यसे रानी कृतद्युतिका यह गर्भ शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान दिन दिन प्रकाश करने लगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे जब गर्भमास पूर्ण हो गये तब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ । हे कौरवनाथ ! राजकुमार

का जन्म होना सुनकर शूरसेन देशके निवासियोंको परमानंद प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा चित्रकेतु पुत्रका जन्म सुन आनंदसागरमें मग्न हो गया और स्नान-ध्यान कर पवित्र हो सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर ब्राह्मणोंसे यथाविधि आशीर्वाद पाकर अपने पुत्रका जातकर्म और संस्कार विधिपूर्वक कराया ॥ ३३ ॥ फिर पीछे राजाने उन सब ब्राह्मणोंको सुवर्ण, चांदी, वसन, आभूषण, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, पुर, ग्राम और साठ (६०) करोड़ गायें बच्चोंसहित दान दीं॥३४॥और फिर अपने अति बड़े मनसे मेघ जिस प्रकार सब जीवोंके हितार्थ जल वर्षाता है, वैसे ही इस उदारचित्त राजाने पुत्रके यश और आयुके बढ़ानेके लिये धन दे-देकर सब देश प्रदेशके मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी ॥३५॥ अधिक करके जिस-जिस वस्तुके दान करनेसे कुमारका सौभाग्य बने और दीर्घायु हो,

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥ ३३ ॥ तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ॥ ग्रामान् हयान् गजान् प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥ यथा निस्स्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्द्धत ॥ ३६ ॥ मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ॥ कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७ ॥ चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथाऽन्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥३८॥

उसके दान करनेमें राजाने किसी बातका भी संकोच नहीं किया। हे परीक्षित् ! बहुत कालके पीछे महाकष्टसे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे,जिस प्रकार किसी व्यक्तिको बड़ी कठिनाईसे धन मिले और वह उससे स्नेह करता है ऐसे ही इस पुत्रके प्रति पिता चित्रकेतुका स्नेह उत्पन्न होकर दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ ३६ ॥ और माता (कृतद्युति) का इस पुत्रमें ऐसा वात्सल्य उत्पन्न हुआ कि जिससे मोह उत्पन्न होता है, परंतु उसकी जो समस्त सपत्नियाँ (सौतें) थीं, वे अपनी सौतको पुत्रवती देखकर अपनी-अपनी संतानका अभिलाष होनेसे पुत्रकामना रूप संतापसे संतापित हुई और सौतियां डाह करने लगीं ॥३७॥ अधिक करके महाराज चित्रकेतु दिन प्रतिदिन पुत्रका लालन-पालन करनेकी पुत्रवती स्त्रीमें ऐसी प्रीति दिखाने लगे कि जिससे और इनकी रानियोंको दुःखसा होने लगा क्योंकि और रानियोंमें यह ऐसी

प्रीति नहीं दिखाते थे ॥ ३८ ॥ इससे और सब रानियाँ ईर्षाके वश होकर आप ही आप अपनी निन्दा-करने लगीं और निःसंतान होनेसे राजाके निकट अनादर पाकर मनके दुःखसे बहुत ही सन्तापित हुई ॥३९॥ वे रानियाँ बोलीं कि जिस नारीके संतान नहीं वह अतिपापिनी है, उसको धिक्कार है, वह अपने स्वामीके निकट भी भार्या कहकर नहीं गिनी जाती, क्योंकि उसकी जो सौतें पुत्रवती होती हैं, वे सब दासीके समान उस निःसंतान नारीका निरादर करती हैं ॥४०॥ यद्यपि दासियोंका संताप क्या है ? स्वामीकी सेवासे ही उनको मान मिलता है, यह बात सत्य है। परंतु हम दासियोंकी दासियोंसे भी कुभागिनी हैं ? ॥४१॥ हे महाराज परीक्षित् ! कृतद्युतिकी पुत्रसम्पत्ति देखकर उसकी सब सौतें एक-एक करके ईर्षामें जल रही थीं, तिसपर निःसन्तान होनेसे राजाकी भी प्रीति उसमें कम हो गयी, इसलिये

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥३९॥ धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥ दासीनांको नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति संचिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥

उस राजकुमारके ऊपर रानियोंका बड़ा शत्रुभाव उत्पन्न हुआ ॥४२॥ हे राजन् ! वैरके मारे इन सब स्त्रियोंकी बुद्धि ऐसी नष्ट हुई और चित्त इस प्रकारका निर्दय हुआ कि वे अपने पति नरपति राजा चित्रकेतुका सौभाग्य न सहन कर प्राण संहार करनेकी वासनासे उन्होंने इस राजकुमारको विष दे दिया ॥४३॥ हे राजन् ! अपनी सौतोंका यह पापकर्म कृतद्युति कुछ भी नहीं जानती थी, उसने नहीं जाना कि विष देनेसे राजकुमारका प्राणान्त हो गया। वह यही समझ रही थी कि राजकुमार शयन कर रहे हैं, यद्यपि रानी घरमें आयी, तो भी इसने समझा कि कुमार अबतक सो रहे हैं, इस कारण कुमारके निकट न गयी और इधर-उधर फिरती रही ॥ ४४ ॥ दूसरे घरमें जाकर कुछ देर पीछे रानीके मनमें यह बात आयी कि आज राजकुमार बहुत देरसे सो रहा है इस कारण धायको पुकार कर कहा, कि

हे कल्याणकारिणी ! हमारे पुत्रको उठाकर यहांपर ले आओ ॥ ४५ ॥ धाय उस घरमें गयी जहां राजकुमार सो रहा था, देखा कि उस लड़-केकी आंखोंकी पुतली ऊपरको चढ़ रही हैं देहमें प्राण और इन्द्रिय व आत्मा नहीं हैं, वह यह देखतेही हाय मरी ! हाय मरी !! कह बड़े जोरसे आर्त्तनाद करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥ ४६ ॥ दूध पिलानेवालीकी यह आर्त्त वाणी रानी कृतद्युतिके कानमें पड़ी, इसलिये वह भी अनिष्टकी शंका करती विलाप कर छाती पीटती-पीटती उस घरमें आयी और समीप आकर देखा कि पुत्र अचानक मरा हुआ पड़ा है॥४७॥ हे राजन् ! देखते ही रानी कृतद्युति पृथ्वीमें गिर पड़ी और अत्यन्त शोकके कारण उसी समय उसको मोह उत्पन्न हो गया; इसलिये मस्तकके केश खुलने और शरीरके कपड़े खिसकनेकी रानीको कुछ भी सुरति नहीं रही ॥ ४८ ॥ उसके पीछे राजाके

सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ॥ प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हताऽस्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥ तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ॥ प्रविश्य राज्ञी त्वरयाऽऽत्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ॥ ४७ ॥ पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥ ४८ ॥ ततो नृपान्तःपुर वर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन्स्खलन् पथि ॥ स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥ ५० ॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ॥ दीर्घं श्वसन् वाष्पकलोपरोधतो निरुद्ध-कण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥

अन्तःपुरचारी नरनारीगण यह बात सुन शीघ्र वहां पर आ अतिदुःखित हो रानीके तुल्य खिन्नहोकर रोने लगे । हे राजन् ! कृतद्युति रानीकी जिन सौतोंने यह दुष्कर्म किया था, वे भी सब आ कपटभाव ग्रहण कर रोदन करने लगीं ॥४९॥ फिर राजा चित्रकेतुने सुना कि पुत्र अचानक मर गया, परन्तु उसके मरनेका कारण प्रकाशित नहीं हुआ । सुनते ही अकस्मात शोकसे राजाकी दृष्टि जाती रही, अंधा हो गया । वह मरे हुए पुत्रके देखनेके लिये उत्सुक हो शोकके मारे गिरता-पड़ता हुआ आने लगा, अतिस्नेहके कारण राजाका शोक बराबर बढ़ता ही जाता था, राजा वारंवार मूर्च्छित होने लगे । इसलिये मंत्री इत्यादि राजपुरुषगण राजाके सङ्ग चले और ब्राह्मण लोग भी चारों ओरसे घेरकर राजाके संग चले ॥ ५० ॥ राजा वहां आकर उस मरे हुए बालकके चरणोंमें गिर पड़ा । उसके केश खुले और कपड़े स्खलित हो

रहे थे, आंसू भर आनेसे और हिचकी लेनेसे राजाका कंठ रुक रहा था, इसलिये वह केवल बड़े-बड़े श्वास लेने लगा, वचन कहनेका सामर्थ्य राजामें न रहा ॥ ५१ ॥ पतिको इस प्रकार शोकमें देखकर और अपने वंशकी आशा जो संतान थी उसको मृतक देखकर रानी कृतद्युतिको बड़ा दुःख हुआ, वह सब पुरवासियों करके मन्त्री इत्यादिकोंका शोक संताप बढ़ाती हुई विचित्र प्रकारसे विलाप करने लगी रानीके दोनों स्तन कुंकुमसे रँगे हुए थे, उनके ऊपर आँसुओंकी धारा पड़नेसे मानो रानीका अभिषेक होने लगा और रानीने इस प्रकारसे अपने केश छिटकाये कि जिससे समस्त मोतियोंकी मालायें खुल गयीं। इसके पीछे मृतक बालकके लिये कुर्रीके समान शब्द कर रानी आश्चर्यमय विलाप करने लगी ॥५२॥५३॥ फिर विधाताके ऊपर दोष लगाकर रानीने कहा अरे विधाता! तू अतिशय मूर्ख है,

पतिं निरीक्ष्योरुशुचाऽर्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥ ५२ ॥ स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ॥ विकीर्य केशान्विगलत्स्रजःसुतं शुशोच चित्रंकुररीव सुस्वरम् ॥ ५३ ॥ अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः पर ॥ ५४ ॥ नहि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदाऽऽत्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥

क्योंकि तू अपनी सृष्टिमें उलटीचाल चलता है, वृद्धके जीवित रहते बालकका मरना कैसा? और वृद्धमें सृष्टिकी सामर्थ्य नहीं, उसके जीवित रहने तथा बालकके मृतक होनेसे सब सृष्टिका ही नाश हो जायगा, अरे विधि! यदि तू इस समय अपनी सृष्टिके विपरीत हो रहा है, तब सब ही प्राणियोंको दुःख देनेवाला है, इस कारण नित्य शत्रु तुमको कृपालु कौन कह सकता है? ॥ ५४ ॥ यदि इस लोकमें शरीरधारियोंके जन्म-मरणका कोई क्रम न हो, अर्थात् जन्म-मरणके कर्माधीन होनेसे पुत्रके जीते जी पिताकी मृत्यु हो जाय और पिताके जीवित रहते ही पुत्र जन्मे ऐसा नियम न हो तब लोगोंके आत्मकर्मद्वारा ही जन्मादि हो फिर तुमसे किसीका क्या कार्य? यदि कहो कि कर्म जड़ है, केवल कर्मसे जन्म-मृत्यु सिद्ध नहीं हो सकती, उत्तर सिद्ध न हो, तथापि इस आचरणमें तूने अपना मार्ग बढ़ानेके लिये जो स्नेहकी फांसी

बना रखी थी,उसको आप ही तोड़ डाला । अब ऐसे दुःख देखकर कोई भी पुरुष अपने पुत्रादिकमें स्नेह न करेगा और सृष्टिके रचनेमें तुमको बड़ा बखेड़ा पड़ेगा ॥ ५५ ॥ फिर मृतक पुत्रको पुकार-पुकार विलाप करती हुई रानी कहने लगी-कि हे बेटा ! हम अति दीन और अनाथ हैं; हमको इस प्रकारसे छोड़ जाना तुमको उचित नहीं है । हे वत्स ! जरा अपने पिताकी ओर तो निहारकर देखो कि यह तुम्हारे शोकमें महासन्ताप पा रहे हैं, हे पुत्र हम तो सदा यह जानती और आशा करती थी कि निःसंतान पुरुषको जो नरक होता है उस नरकके पार हम सरलतासे हो जायँगे । देखो पुत्र ! हमको त्यागकर तुम दयाहीन कालके संग दूर न जाओ । हाय ! हमने बहुत उपाय किये,परंतु तो भी इस निर्दयी यमराजने नरकसे नहीं छोड़ा ॥५६॥ हे तात ! उठो, ये तुम्हारे साथके खेलनेवाले तुम्हारे सखा द्वारपर खड़े

त्वं तात नार्हसि मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ॥ अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यद् ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ॥ सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥ ५७ ॥ नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किं वा गतोऽस्य पुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥ ५८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥ ५९ ॥ तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥

तुमको खेलनेके लिये बुला रहे हैं, हे राजकुमार बहुत देरसे शयन कर रहे हो, तुम्हें भूख लगी होगी, हे लालन ! कुछ खाओ, दूध पियो, भइया ! इन सब अपने कुटुम्बियोंके और मैयाके शोकको दूर करो ॥ ५७ ॥ हे प्राणपुत्र ! हम बड़ी अभागिनी हैं, कि जो प्रथम ही हमने यहां आकर तुम्हारे मुखकमलका मनोहर हँसना नहीं देखा, हाय ! अबतक भी बेटेके मनोहर वचन हमको सुनायी नहीं देते; हे वत्स ! तुम्हारे दोनों नेत्र बंद हो रहे हैं, क्या क्रूर काल तुमको लोकांतरमें (जहांसे फिर आना-जाना नहीं होता) ले गया है ? ॥ ५८ ॥ इतनी कथा कह योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कौरववंशावतंस परीक्षित ! जब कृतद्युति पुत्रके लिये इस प्रकारसे शोक कर रही थी, तब राजा चित्रकेतु रानीके अत्यन्त विलापसे महा संतापित हो पुत्र-पुत्र पुकार धाड़ मार मारकर रोने लगे ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इन स्त्री-पुरुष

दोनोंका विलाप देखकर राजाके नौकर-चाकर नर-नारी सबही रुदन करने लगे। और फिर बड़े भारी शोकके कारण मोहके वश हो सब ही अचेतन हो गये॥६०॥ हे कौरव्य ! जब चित्रकेतु राजाके ऊपर इस प्रकारका दुःख पड़ा तब यह वृत्तांत महर्षि अंगिराजी जानकर नारदजीके साथ वहां पर आये,उस समय राजभवनमें सब मूर्छित होकर गिर पड़े थे * ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चित्रकेतुपुत्रमृत्युवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—देवऋषी अरु अंगिरा, दियो परम उपदेश । तत्वज्ञानसे भूपको, मेटो सकल कलेश ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! चित्रकेतु राजाको मृतक शिशुके शवके समीप शवके समान पड़ा हुआ और शोकसे व्याकुल देखकर महर्षि अंगिरा और नारदजी बहुत समझा बुझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम जिसके लिए इस

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वाऽङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ चित्रकेतोर्मृतपुत्रशोको नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥ कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥

प्रकारसे शोक करते हो वह पुरुष तुम्हारा कौन है ? और तुम भी इस प्रजारूपी सृष्टिमें इसके बंधुओंमें कौन जन हो ? यदि तुम कहो कि हमारा पुत्र है, हम इसके पिता हैं, तो इसमें यह कहना है, कि क्या ? पहले भी तुम्हारा परस्पर इसी प्रकारका सम्बन्ध था ? क्या अभी है,इसके पीछे क्या होगा ? निदान जो कि पूर्व जन्ममें जो जिस पित्रादि रूपमें संयुक्त रहता है,वह मरणके द्वारा उससे वियुक्त होकर वर्तमान जन्ममें कदाचित् उसका, कदाचित् दूसरेका पुत्रादि हो सकता है । और इस समय भी जो जिसके पुत्र-कलत्रादि हैं, वे भी दूसरे जन्ममें उसके वा और दूसरेके पुत्र-कलत्रादि वा शत्रु-मित्रादि हो सकते हैं, इसलिए यह तुम्हारा पुत्र और तुम उसके पिता ऐसा क्या

* कबित्त—देवी शेव शीतला वराहीको जगावें रात, मीराको रेवड़ी चढ़ावेहैं । क्षेत्रफल गंगादेव भैरों भूपाल आदि, जगतके जेते तेते देवता मनावे हैं ।। कोई नगरकोटको जावे है, व्याह कोई कलकत्तेकी कालीको ध्यावें हैं । पूजें नित भूत प्रेत सुमिरें न राम नाम, शालिग्राम ऐसे नर बहुत पछितावे हैं ।। १ ।।

नियम है ? कैसे इसको तुमने अपना पुत्र जाना ? ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार जल प्रवाहके वेगसे बालू किसी स्थानसे बहकर किसी दूसरे स्थानमें जाती है, उसी प्रकारसे यह जीव भी कालके वेगसे कभी परस्पर मिल जाता है और कभी अलग हो जाता है ॥ ३ ॥ हे महाराज ! बीजमें बीज होता तो है, परंतु जिस प्रकार किसी-किसी बीजमें बीज नहीं उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, वैसेही परमेश्वरकी माया वश पुत्रादिरूप सर्वप्राणी, पित्रादिरूप सर्वप्राणियोंमें कभी नियोजित हो सकते हैं। कभी नियोजित नहीं हो सकते। इस हेतुसे बीजोंमें जनकत्व सत्व रहनेपर भी जिस प्रकार पितृ-पुत्र भाव नहीं कहा जा सकता, वैसे ही इस स्थानमें भी पितृ पुत्रभाव है, फिर इनमें शोककी कौनसी बात है ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! हम, तुम और यह सब चराचर जगत् जो वर्तमानकालमें एकत्र हो रहा है, हम जिस प्रकार जन्मके पहले नहीं थे ऐसे ही मृत्युके पीछे भी नहीं रहेंगे, इस समय भी वैसे नहीं हैं, इसलिए यह सब यदि

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चरा-चराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनाऽपि भोः ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशःसृजत्यवति हन्त्यजः ॥ आत्म-सृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥

प्रथममें और अंतमें न रहा तो असत् (मिथ्या) और केवल स्वप्नतुल्य है ॥ ५ ॥ और जो कहो कि यदि सब ही असत् (मिथ्या) है, तो फिर प्रतीति क्यों होती है, और हम इसके पिता हैं ऐसा अभिमान क्यों होता है ? (उत्तर) सर्व जीवोंके स्वामी मायाके योग प्राणियोंका सृजन, पालन और संहार किया करते हैं, इसलिए परमेश्वरकी मायासे बननेके कारण सृष्टि प्रतीत होती है और प्राणियोंके इस विषयमें केवल निमित्तमात्र होनेसे उनको अभिमान उत्पन्न हुआ करता है, परन्तु हे राजन् ! परमेश्वरके सृष्टयादि वीर्य देखकर अपूर्ण कामनाकी आशंका मत करना, सर्वभूत आत्मसृष्ट हैं, परन्तु हैं सब पराधीन, दूसरे उनका इन सबमें प्रयोजनमात्र भी नहीं है, वह अनपेक्ष होकर भी बालकके समान लीला करके सब जीवोंकी सृष्टयादि किया करते हैं ॥ ६ ॥

हे राजन्! जिस प्रकार बीजसे बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही देही जो पित्रादि हैं, उनकी देहसे देहीकी अर्थात् पुत्रादिका देहमात्रादिक देहसे उत्पन्न होता है, परन्तु भूम्यादि पदार्थके समान जीव सदा कालवर्ती है ॥ ७ ॥ यदि कहो कि देहीका देह प्रतियोगी है सो जब नाशवान् दीखता है तब देही भी वैसा ही हो सकता है, शाश्वत नहीं हो सकता (उत्तर) जिस प्रकार सामान्य और विशेष यह दो विभाग सन्मात्र वास्तवमें अज्ञानसे कल्पना कर लिये जाते हैं, वैसे देह और देहीका परस्पर प्रतियोगी विभाग अनादिकालसे अविवेककृत चला आता है ॥ ८ ॥ नानाभव, जन्म, यश, क्षय, वृद्धि, क्रिया, फल ये असत्यपनसे द्रष्टामें भासते हैं, जैसे अग्निकी विक्रिया काष्ठमें ॥ ९ ॥ असत्यपनसे यह जीव देहके संयोगसे आत्मामें भाषता है, जैसे स्वप्नमें सब भय अभय उपस्थित होता है ॥ १० ॥ इसका अहंकार न

देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥ नानात्वं जन्मनाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रियाफलम् ॥ द्रष्टुश्च भान्त्येतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रिया ॥ ९ ॥ त इमे देहसंयोगादात्मन्याभान्त्यसद्ग्रहात् ॥ स्वप्ने यथा तथानन्यद्ध्यायेत्सर्वं भयाभयम् ॥ १० ॥ प्रसुप्तस्यानहंमानान्न घोरा भाति संसृतिः ॥ जीवतोऽपि यथा तद्वत् विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥ ११ ॥ तस्मादन्यन्मनोमात्रं जह्यहंममतातमः । वासुदेवे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १४ ॥

होनेसे घोर संसार भी प्रकाशमान नहीं होता, ऐसेही जीवित निरहंकारी विमुक्तका जन्मनाश नहीं है॥११॥इस कारण मनका विलासमात्र अहंकार ममतारूप अंधकारका त्याग कर दीजिये। और आत्मा ईश्वर भगवान् वासुदेवमें मन लगाइये ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! उन दोनों ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुनकर राजा चित्रकेतुको प्रबोध हुआ और वह आश्वासित होकर अपने मुखको (जो मनकी पीड़ासे व्यथित होनेके कारण मलिन हो रहा था) हाथसे पोंछ, कर जोड़कर कहा ॥१३॥ राजा चित्रकेतु बोले कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! आप दोनों जन कौन हो? हम देखते हैं कि आपलोग ज्ञान सम्पन्न, बड़ोंसे भी बड़े हो, ज्ञात होता है कि आप लोग अवधूतका वेष धारण करके गुप्त भावसे

यहांपर आये हो ॥१४॥। क्योंकि भगवान्‌के प्यारे विप्रगण उन्मत्तके समान स्नेहधारी होकर भूमण्डलपर ग्राम्य बुद्धिवाले हम सरीखे लोगोंको बोध देनेके लिये इच्छानुसार विचरते हैं ॥१५॥ निदान सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित अपान्तरतम, वेद व्यास जिनका आन्तरिक तिमिर दूर हो गया है—मार्कंडेय, गौतम ॥ १६ ॥ वशिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, अरुणि ॥ १७ ॥ रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय आसुरी, पतञ्जलि, वेदशिरा ऋषि, धौम्य तथा पञ्चशिर, मुनि ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभ,

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥ १५ ॥ कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरादेवलोऽसितः ॥ अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥१६॥ वसिष्ठो भगवान्रामः कपिलो बादरायणिः॥दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽरुणिः॥१७॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः॥ऋषिर्वेदशिराबोढ्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥ १९ ॥ तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ २० ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यंगिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ २१ ॥

कौशल्य, श्रुतदेव और ऋतुध्वज, ये सब और इनके तुल्य और दूसरे सिद्धेश (जो लोग ज्ञानके कारण हैं) सदा ही ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भ्रमण किया करते हैं ॥ १९ ॥ इसलिये हम ग्राम्य पशुके तुल्य मूढ़ व्यक्ति हैं, दोनों ही जन हमारे रक्षक हो, हम घोर अंधकारमें डूबे जाते हैं, अब अनुग्रह प्रकट करके ज्ञानमय प्रदीपका प्रकाश कीजिये ॥ २० ॥ चित्रकेतुके यह मधुर वचन सुनकर वह महर्षि अंगिराजी बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी कामना करनेपर हमने ही तुमको सन्तान प्रदान किया था; हम वही अंगिरा हैं और हमारे साथ जो

१. शंका—राजा चित्रकेतु अत्यन्त चतुर था और त्रिलोकीमें जितने ऋषि मुनि थे सबको जानता था, फिर जब नारद और अंगिरा उसके घर गये तो उसने क्यों नहीं पहचाना जो उनसे पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? उत्तर—राजा चित्रकेतुको नारद और अंगिराने ज्ञान उपदेश दिया, तो भी पुत्रशोकमें राजा बहुत दुःखी हो रहा था, इसलिये पहचाना नहीं गया कि यह नारदजी और अंगिरा मुनि हैं ।

दूसरे हैं ये ऋषि भगवान् नारद साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥२१॥ हमको स्मरण हुआ कि तुम इस प्रकारसे पुत्रशोकमें पड़ घोर अंधकारमें डूब रहे हो, तुम भगवान् हरिके भक्त हो, तुम्हारा इस प्रकारसे अंधकारमें डूबना उचित नहीं इसलिये तुम्हारे ऊपर अनुग्रह प्रकट करनेके लिये हम दोनों जन यहां पर आये हैं। हे राजन् ! तुम ब्रह्मण्य और भगवान्के भक्त हो, तुम्हें इस प्रकारसे व्याकुल होना योग्य नहीं है ॥२२॥२३॥ हे महाराज ! जब कि प्रथम हम तुम्हारे घरपर आये थे, उसी समय तुमको ब्रह्मज्ञान देनेकी हमारी अभिलाषा थी, परन्तु उस समय तुम्हारा चित्त और ही विषयमें लगा हुआ था, यह जानकर हम उस समय तुमको पुत्र दे गये ॥२४॥ परन्तु पुत्रवान् लोगोंको

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥२२॥ अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥ २३ ॥ तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ॥ ज्ञात्वाऽन्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥ २४ ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ॥ एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसंपदः ॥२५॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ॥ मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २६ ॥ सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ॥ गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥ २७ ॥

कैसे-कैसे सन्ताप उत्पन्न होनेका डर रहता है, उसको तुम स्वयं ही अनुभव कर रहे हो। स्त्री, भवन, धन और विविध ऐश्वर्य संपदा यह सब भी इसी प्रकार संतापकी देनेवाली हैं ॥२५॥ शब्दादिक राज्य विभूतिमें पृथ्वीका राज्य, सेना, कोष, नौकर, चाकर, मन्त्री, सुहृद ये सब अपने-अपने प्रयोजनके साथी हैं ॥२६॥ हे चित्रकेतु ! यह सब गन्धर्व नगरीके तुल्य अर्थात् कभी आपसे आप आकर उपस्थित हो जाते हैं,

१. एक ब्राह्मण भगवत् भक्त एक वैश्यके घरपर आया कि, उसी समय उस बनियेका शाला भी आया, सेठानीने अपने भाईके अर्थ सुन्दर पकवान पूरी कचौरी, लड्डू, इत्यादि नगद माल एक थालमें परोसे और दूसरे थालमें परामठे और साग, परोस-परोस अपने स्वामीसे कहा कि, इस थालको अपने सालेके आगे और दूसरेको बाबाजीके आगे परोसना। तब उस भगवत् भक्तने साले का थाल साधूके आगे, औऱ परामठोंका थाल सालेके आगे धरा। तब उस बनियेकी बहूने कहा कि इस बातमें नाक कटेगी। यह सुन बनियेने कहा यहांकी कटी तो जुड़ जायगी, परंतु जहांका यह ब्राह्मण भक्त है, वहां को कटी फिर न जुड़ेगी। वास्तव में भक्तोंकी अधिक शुश्रूषा करना उचित है।

और कभी आपसे आप ही चले जाते हैं, वास्तवमें स्वप्न, माया और मनोरथ इत्यादि जिस प्रकारसे कल्पित है वैसे ही यह समस्त भी कल्पित ही हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! ये सब ही पदार्थ मनसे गढ़े हुए हैं, क्योंकि सात्विक स्वरूपके विना एक क्षणभर दृश्यमान होकर भी दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाते हैं, जो यथार्थ होते तो क्षणभरमें उनका आना-जाना किसी प्रकार संभव नहीं । इस कारण मनसे ही कल्पना किये । ये सब ही पदार्थ स्वप्नादिके तुल्य मिथ्या हैं । हे राजन् ! मीमांसक लोगोंके मतसे यद्यपि सब पुण्य पापोंके फल हैं तो भी कर्मकी वासनाका अनुध्यान करनेसे ही पुरुषके मनसे कर्म हुआ करते हैं, इस कारण सब कर्म भी मनसे ही उत्पन्न हैं इस कारण कर्मसाध्य विषय भी मनसे ही उत्पन्न कहे जाते हैं ॥२८॥ हे राजन् ! प्राणीका यह देह जो द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक अर्थात् आधिभूत, आधिदैव और

दृश्यमाना विनाऽर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः ॥ कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २८ ॥ अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥ २९ ॥ तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन्सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥ ३१ ॥

अध्यात्मस्वरूप, यही देहीका अर्थात् "मेरा देह" इस प्रकारसे समझने वाले जीवको अनेक संताप मिलते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण एकाग्र-मनसे ब्रह्मविद्याका विचारकरके द्वैतवस्तुमें "यह वस्तु नित्य है" ऐसा जो तुम्हारा विश्वास है, उसको छोड़ दो, और शान्तिभावको प्राप्त हो ॥ ३० ॥ महर्षि अंगिराजीने नौ ब्रह्म विद्याका उपदेश किया वह परमेश्वरकी प्रसन्नताके विना अति दुर्गम है, यह विचार कर परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अंगिराजीके कह चुकने पर देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके प्रति मंत्रविद्याका उपदेश करनेके लिये बोले कि हे राजन् ! जो मंत्र उपनिषद् अर्थात् जिससे परमश्रेष्ठ (उपनिषण्ण) की प्राप्ति होती है, उसको तुम सावधान होकर धारण करो ।

इसके धारण करनेसे निश्चय ही सात (७) रात्रिके मध्यमें संकर्षण प्रभुका तुम दर्शन पाओगे॥२१॥हे नरेन्द्र ! शर्वादि पूर्वतन देवगण जिनके चरणकमलके मूलमें शरणागत हो द्वैत भ्रम त्याग सद्यः जिनके समान और अधिक नहीं है उस महिमाको प्राप्त हुए हैं इस लिये तुम भी शीघ्र ही उसको प्राप्त होगे, परन्तु जिस समय इतनी बातको समझ लोगे*॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भगवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषा टीकायां पुत्रशोकातुरचित्रकेतवे अंगिरोज्ञानदानवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ दोहा–चित्रकेतु सुत वचन सुन, भये मग्न सुख मान। नारद पुनि भाषण लगे, शेषनागको ज्ञान ॥ देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके पुत्रके मुखसे ही पिता-पुत्रादिका सम्बन्ध मिथ्या कहलानेके लिये

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥ २२ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० पुत्रशोकातुरचित्रकेतोर्ज्ञानोपदेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ देवऋषी राजन्संपरेतं नृपात्मजम् ॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बान्धवांस्तप्ताञ्छुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥ कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥ जीव उवाच ॥ कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥

योगबलसे उस मृतक बालकके जीवात्माको उसके जातिवालोंको दिखाया॥१॥ उसके पीछे फिर उस जीवात्माको पुकारकर नारदजी बोले कि हे जीवात्मन् ! तुम्हारा मंगल हो, अपने माता-पिताको देखो। तुम्हारे यह सब सुहृद बंधु तुम्हारे शोकमें अत्यन्त ही संतापित हो रहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपने देहमें फिर प्रवेश करो। अकालमृत्युसे मरे हो, अब भी तुम्हारी परमायु शेष है, तुमको तुम्हारा पिता राज्य भोग करने देंगे। उठो ! और बन्धु बान्धवोंके साथ पिताका दिया धन भोगो और राज्य सिंहासनपर बैठो ॥३॥ देवर्षि नारदजीके यह वचन सुनकर मृतक राजकुमारका जीव आकाशमें स्थित हो प्रेत शरीरमें रहकर उत्तर देने लगा कि यह किस जन्ममें हमारे माता-पिता हुए थे?

* भजन—सबमें केवल प्रेम प्रधान। प्रेम करत प्रीतम सो निशि दिन, प्रेमी चतुर सुजान। क्यो नर करत परिश्रम अधिक हि बहु व्रत तप कर दान ॥ प्रीति करो श्रीव्रजनन्दनसों, यही परम प्रिय ज्ञान । कह रघुवीर मिटं जब आपा, तबहि मिले भगवान् ॥ १ ॥

हम कर्मोंके द्वारा देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन योनियोंमें वारंवार भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४ ॥ मेरे मर जानेसे पुत्र कहकर यदि इन लोगोंको शोक हुआ हो तो यह मुझको शत्रु समझकर हर्ष क्यों नहीं करते ? क्योंकि सम्बन्ध सदा एक प्रकारका नहीं है। सबही पुरुष बारी-बारीसे सबके बन्धु, जाति (सपिण्ड), शत्रु (घातक), मध्यस्थ (न शत्रु न मित्र), मित्र (रक्षक), विद्वेषी (द्रव्यादिके लिये द्वेष करनेवाले अर्थात् ईर्षा करनेवाले) और उदासीन (तद्व्यतिरिक्त) हो सकते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मोल लेने और बेचनेके योग्य सुवर्णादि वस्तु व्यवहार करनेवालोंमें घूमती है। इसी प्रकार जीव अनेक योनियोंमें घूमता हुआ फिरा करता है ॥ ६ ॥ जन्मान्तरका सम्बन्ध सदा नहीं फिरता फिर भला यह तो अधिक बात है,एक जन्ममें ही उसका अनित्य तत्त्व जान पड़ता है,देखो,जीवित पश्वादिक सम्बन्धमें सदा

बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ॥ पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥ नित्यस्यार्थस्य संबन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥ एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥ एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥ ९ ॥ नह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयोः ॥१०॥

नहीं रहता, विक्रियादिसे निवृत्ति पाया करता है और जबतक जिससे सम्बन्ध रहता है, तबतक ही उसकी ममता रहती है ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे जीव पित्रादि सम्बन्ध प्राप्त होनेपर भी आप नित्य ही रहता है, शरीरके जन्मादि द्वारा जीवके जन्मादि नहीं होते,इस कारण जीव वास्तवमें निरहंकृत अर्थात् "मैं इसका पुत्र हूं" इस प्रकारके अभिमानसे शून्य है,वह पित्रादि सम्बन्धियोंमें अपने कर्मके वश हो जबतक सम्बन्ध बना रहता है,तबतक ही उसमें पित्रादिका अधिकार है ॥ ८ ॥ नित्य अविनाशी सूक्ष्म प्रभु अपनी मायाके गुणसे विस्वस्वरूप आत्माकी सृष्टि किया करता है इस लिये जन्मादि युक्त देहादिका आश्रय है, इसका कारण यह है कि जीव स्वयं प्रकाशमान है, इस-लिये वह जन्मादि शून्य है, सूक्ष्मत्वप्रयुक्त अव्यय अपक्षय रहित और अनित्य है ॥९॥ और इस जीवको प्यारा,कुप्यारा,कोई भी नहीं है

अर्थात् अपना भी कोई नहीं है और पराया भी कोई नहीं है, वह एक अर्थात् सुहृदादिके संगसे रहित है,गुणदोषकारी जो सब मित्रादि हैं यह जीव केवल उन लोगोंकी विचित्रबुद्धिका साक्षीमात्र है। इसलिये हमारे सुहृद न होकर संताप करें और सुहृद बंधुओंके मनको दुःख देना यह बात असम्भव है॥१०॥और "राज्यादि भोगकर" यह युक्ति भी अयुक्ति है, क्योंकि गुण (सुख), दोष (दुःख) और क्रिया फल (राज्यादि) इन सबको जीव ग्रहण नहीं कर सकता, वह सदा उदासीनके समान है इसलिये जीव कारण और कार्यका साक्षीमात्र होकर इसका भोगनेवाला नहीं है क्योंकि यही ईश्वर अर्थात् देहादिकी परवशता रहित है इसलिये मेरे और तुम्हारे सबके इसी प्रकार होनेसे किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है। फिर इसमें शोक-मोह कैसा?॥११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! सबके सामने इस प्रकार कहकर वह

नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वाऽऽत्मस्नेहशृङ्खलाम् ॥ १२ ॥ निर्हृत्य ज्ञातयो देहं तथा कृत्वोचिताःक्रियाः ॥ तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥

राजकुमारका जीव वहांसे चला गया। उसकी जातिवाले जो शोकसे विलाप कर रहे थे, इस बातको सुनकर उन सबने अत्यन्त विस्मय प्राप्त किया परन्तु उसके पीछे बहुत शीघ्र सबने प्रेम जंजीर तोड़कर समस्त शोक-मोह छोड़ दिया॥१२॥अनन्तर उस जातिका मृतकदेह यथाविधि निहार अर्थात् उसका संस्कार करके और यथोचित उसके क्रिया-कर्मोंका निर्वाह कर त्यागनेके अयोग्य स्नेहको जो शोक, मोह, भय और आर्त्तका कारण था एकवार ही त्याग कर दिया॥१३॥हे राजन्! कृतद्युति रानीकी जिस पत्नीने विष देकर इस राजकुमारका प्राण विनाश किया था, वह लज्जित और बालककी हत्या करनेसे दीप्तिरहित होकर "पुत्रादि केवल दुःखके कारण हैं" महर्षि अंगिराजीके इन वचनोंको स्मरण करके पुत्रकामना छोड़कर निर्मत्सर हो यमुनाके तीरपर चली गयी और वहांपर बैठकर ब्राह्मणोंने जिस प्रका-

रसे विधि बतायी वैसे ही वे सब रानियाँ बालहत्या व्रतका अनुष्ठान करने लगीं कि जिससे यह पाप छूटे।*॥ १४ ॥ हे राजन्! राजा चित्रकेतु भी ब्राह्मणोंके वचन सुनकर और इस प्रकारसे प्रबोध पाकर जिस प्रकार हाथी तलैयाकी अदनसे निकल जाता है, वैसे ही गृहरूपी अंधकूपसे निकल आया ॥१५॥ फिर यमुनाके निकट जाय वहां स्नान करके यथाशास्त्र तर्पणादि समाप्त कर मौनी और जितेन्द्रिय हो उन ब्रह्म पुत्र नारद व अंगिरा दोनोंकी वंदना करने लगा ॥१६॥ भक्त जितेंद्रिय राजा चित्रकेतु जब इस प्रकारसे शरणमें आया

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ॥ १५ ॥ कालिन्द्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥ १६ ॥ अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ १७ ॥ ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ १९ ॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ २० ॥

तब प्रसन्न हो अंगिराके सहित नारदजीने इस स्थानमें आकर उसको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया ॥१७॥ वह विद्या यह है—प्रभो ! तुमको हम नमस्कार करते हैं। और भगवान् वासुदेवको मनसे नमस्कार करते हैं और उन प्रद्युम्न अनिरुद्ध व संकर्षणके प्रति वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ वे भगवान् विज्ञानमात्र हैं केवल आनंद ही उनकी मूर्ति है, वे आत्माराम और शांत अद्वैत दृष्टिसे रहित आपको हम नमस्कार करते हैं ॥१९॥ हे प्रभो ! तुम आत्मानंदके अनुभव माया निमित्त (कारण) रागद्वेषादिको भगा देते हो और स्वयं विषय

---

* राजा चित्रकेतुकी ये रानियें पहले जन्ममें गिजाई होकर एक उपलेके नीचे बैठी थीं, और चित्रकेतुका पुत्र प्रथम जन्ममें हाथी था, दैवयोगसे उसका पैर पड़नेसे यह सबकी सब मर गयीं। इस जन्ममें उन्हीं सब गिजाइयोंने रानी होकर इस बालकको विष देकर मार डाला इसलिये इन सबका बदला हो गया। और कोई इस कथाको इस प्रकारसे कहते हैं कि पूर्व जन्ममें भी राजा चित्रकेतु एक राजा था वह दिग्विजय करता हुआ एक राजाके नगरमें आया, तब इन दोनोंमें युद्ध हुआ तो एक अपनी सेनाको छोड़ वनमें भाग गया और अत्यन्त ग्रीष्म पानेके कारण व्यथाका मारा एक नदीमें स्नान करता हुआ, स्नान करके जब यह बाहर किनारे पर आया तब उसने अपनी धोतीको निचोड़ा, उस धोतीका निचोड़ाहुआ पानी एक बिल (भटठे) में गया, कि जिसमें करोड़ चिंटियां रहती थीं, उस पानीके पड़नेसे वे सबकी सब मर गयीं। इस कारण दूसरे जन्ममें यह पराजित हुआ, राजा चित्रकेतुको दुःख देनेके लिये उसका पुत्र हुआ, और इन सब रानियोंने अपना बैर साधनेके लिये इसको विष भक्षण करा दिया।

इंद्रियोंके ईश्वर हो, अति बड़े और अनंतमूर्ति आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२०॥ अहो ! मनके सहित वाक्य, अथवा समस्त इंद्रियाँ जिसको प्राप्त नहीं कर सकतीं जो अकेले ही प्रकाशित होते हैं, जिनका नामरूप कुछ भी नहीं है, और जो चिन्मात्रस्वरूप व कार्य और कारणके भी कारण हैं, वे संकर्षण हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥ प्रभो जिनमें यह कार्य कारण रूप जगत् स्थिर रहता, लयको प्राप्त होता और जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है और मिट्टीके समस्त पदार्थोंमें मिट्टीके समान चराचर पदार्थोंमें दिखाई देते हैं, तुमही वह ब्रह्म हो, इस लिये हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ और आकाशके समान बाहर-भीतर फैले रहने पर भी जिनको मन, बुद्धि, इंद्रियाँ, प्राण इत्यादि क्रिया शक्तिसे स्पर्श करने और ज्ञान शक्तिसे जान नहीं सकतीं, वही ब्रह्म है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥२३॥ देह

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥ यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ॥ अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महावि-भूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥

इंद्रियाँ,प्राण,मन, बुद्धि ये जिनके अंशसे बिंधे हुए कर्ममें जागते और स्वप्नमें विचरण करते हैं, सोते व मूर्छादिक समयमें चैतन्यका अंश न रहनेपर विना गर्म हुआ लोहा जिस प्रकार नहीं जला सकता, वैसे ही अपने-अपने कार्य करनेको समर्थ नहीं होते, इसलिये जैसे लोहा अग्निकी शक्तिसे जलानेवाला हो जाता है, परंतु अग्निको जलानेकी शक्ति उसमें नहीं होती। वैसे ही देहादि ब्रह्मगत ज्ञान भी क्रिया शक्तिसे यद्यपि क्रियावान् और ज्ञानवान् होता है तो भी (ईश्वरको) स्पर्श नहीं कर सकता और जान भी नहीं सकता, यद्यपि यह बात सत्य है कि जीव द्रष्टा रहता है तो जीवको भी जाननेकी सम्भावना नहीं क्योंकि जाग्रदादि अवस्थामें इस जीवके निमित्त ही वह भगवान् "द्रष्टा" इस नामको प्राप्त होते हैं ॥२४॥ अहो महापुरुष महानुभाव, महाविभूतिपति, उन भगवान्को हम नमस्कार

करते हैं,हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविंद युगलके प्रधान-प्रधान भक्त समूहके कर-कमल मुकुलद्वारा सदा उपलालित होते हैं, हे श्रेष्ठ ! हे परमेष्ठिन् ! सर्वेश्वर ! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कौरवनाथ ! शरणागत भक्त चित्रकेतु राजाको इस प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करके भगवान् नारदजी महर्षि अंगिराजीके साथ ब्रह्मधामको चले गये ॥ २६ ॥ देवर्षि नारदजी तो इस प्रकार कहकर चले गये, परंतु राजा चित्रकेतु वैसे ही सावधान होकर एक सप्ताहभर केवल जलपान कर उस विद्याको धारण किया

श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥ २६ ॥ चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥ ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥ २८ ॥ ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥ मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटिसूत्रकङ्कणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥

॥२७॥ हे राजन् ! शतरात्रिके पीछे इस धारणकी हुई विद्याके प्रभावसे चित्रकेतुको एक बड़ा भारी अवान्तर फल प्राप्त हुआ कि उसने अचल विद्याधरोंके राज्यको प्राप्त किया, इस राज्यमें किसी प्रकारका कोई कंटक नहीं था ॥ २८ ॥ उसके पीछे कुछ दिन बीतनेपर इस विद्यासे ही उस राजाका मन दीप्तियुक्त हुआ जिससे कि वह मनके द्वारा गतिशील होकर देवदेव भगवान् शेषजीके चरण समीपमें पहुँच गया ॥२९॥ और देखा कि प्रभु शेषजी सिद्धेश्वरोंसे परिवेष्टित हो रहे हैं। उनका वर्ण मृणालके तुल्य गौर है, नीलाम्बर पहने हुए हैं,

---

१. शंका–सब राजा जिस लोकको गये हैं और उन सब राजाओंकी स्त्री भी उनके साथ उसी लोकको गयी हैं, ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है, परंतु चित्रकेतु तो विद्याधरोंका राजा हुआ तब उसकी स्त्री किस लोकको गयी। उत्तर–जैसे सबके देहकी छाया देहके संगको नहीं छोड़ती, ऐसे ही पतिव्रता स्त्री अपने पतिके संगको नहीं छोड़ती जहां पति जाता है उसी स्थानको स्त्री भी जाती है इस विचारसे चित्रकेतु विद्याधरोंका राजा हुआ तो वे विद्याधरोंकी रानी हुईं, ग्रन्थ बहुत बड़ा हो जायगा इस लिये व्यासजीने रानियोंकी कथा वर्णन नहीं की, विचार किया कि पंडित लोक आप जान जायेंगे ॥

यथा-स्थानमें किरीट,केयूर और कंकणादि गहने सजे हुए अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं, दूसरे उनका वदन प्रसन्न और लोचन अरुणवर्ण हैं ॥ ३० ॥ ऐसे श्रीशेषजीका दर्शन करते ही राजा चित्रकेतुके समस्त पापोंका नाश होकर उनका अंतःकरण निर्मल व सावधान हो गया, और प्रेमके मारे आंखोंके कोये अश्रुजलसे परिपूर्ण हो गये और गद्गद होकर सब शरीरमें रोमाञ्च हो गया, बस राजा चित्रकेतु सब छोड़-छाड़ आदिपुरुषकी शरण हुए और अति भक्ति श्रद्धासे उनको प्रणाम किया॥३१॥ परन्तु वह बहुत देरतक उनकी स्तुति न कर सके क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्के पादपद्मरूपी दो आसन प्रेमाश्रुबिंदुसे राजा चित्रकेतु वारंवार पखार रहा था, इस कारण शीघ्र ही प्रेमके वश होनेसे बाष्पसे कण्ठ रुद्ध होनेके कारण राजामें कुछ कहनेकी शक्ति न रही ॥३२॥ कुछ देर पीछे जब फिर राजाको बोलनेका सामर्थ्य प्राप्त

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥ ३१ ॥ स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥ ३२ ॥ ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥ ३३ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवाञ्जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥ ३४ ॥ तव विभवः खलु भगवञ्जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥

हुआ, तब वह समस्त इन्द्रियोंकी बाहिरी कृति रोक बुद्धिसे मनको सावधान करके और श्रीनारदपंचरात्रमें अथवा भगवत्-भक्तोंके शास्त्रका वर्णन करनेवाली जिनकी मूर्ति है, उन जगद्गुरु भगवान्के प्रति राजा चित्रकेतु निम्नलिखित प्रकारसे निवेदन करने लगा ॥ ३३ ॥ चित्रकेतु बोला कि हे अजित ! हे भगवन् ! यद्यपि आप अजित हैं और किसीके जीतनेमें नहीं आते, तथापि समबुद्धि जितात्मा साधुगणोंने आपको जीत करके अपने अधीन किया है, क्योंकि अतिशय दयामय हैं, परन्तु यद्यपि वे सब साधु निष्काम हैं, तो वे लोग भी आपके निकट पराजित हुए हैं, आप महात्मा पुरुषोंको आत्मदान दिया करते हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! भक्तके सिवाय किसीसे भी आपके पराजित होनेकी सम्भावना नहीं, क्योंकि जगत्के सृष्टि, स्थिति, प्रलय, प्रवेश नियमादि जो कुछ दिखलायी देते हैं, वे सब

आपके विभव अर्थात् महिमामात्र हैं, हे प्रभो! आप विश्व रचनेवाले हैं,ब्रह्मादि देवता आपके ईश्वर नहीं हैं, किंतु आपके अंश जो पुरुष हैं, उनके भी अंश हैं। हे भगवन्! यदि ऐसा है तो यह सब पुरुष "हम अलग-अलग ईश्वर हैं" कहकर वृथा गर्व करते हैं ॥३५॥ हे राजन्! सूक्ष्म मूल कारण जो परमाणु और अंतिम कार्य जो परम महत् है,इन दोनोंके ही आदि, अन्त और मध्यमें आप ही वर्तमान रहते हैं, इस कारण आपका आदि, अन्त और मध्य नहीं है, इस लिये आप ध्रुव हैं, जो समस्त कार्य सत् रूप प्रतीत होते हैं और सबके ही आदि, अंत, मध्यमें सुवर्णादिकी नाईं जो रहता है, वही ध्रुव है, आप इन समस्तके सृष्टिकर्त्ता हैं, इस कारण यह समस्त किसी प्रकारसे भी ध्रुव नहीं है ॥३६॥ हे प्रभो! ध्रुव होनेसे आपके जिस प्रकार कालकृत परिच्छेद नहीं, वैसे ही देशकृत परिच्छेद भी नहीं है, यह ब्रह्माण्डकोष यथाक्रम होकर प्रथम इससे ही दशगुण अधिक क्षिति इत्यादि सप्त पदार्थों करके ढक जानेसे वास्तवमें सत्य ही सत्य अति बड़ा हो रहा

परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥ ॥ ३७ ॥ विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ॥ तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥ कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥ ३९ ॥

है,परन्तु ऐसे कोटि २ ब्रह्माण्ड भी आपके निकट परमाणु तुल्य होकर घूमा करते हैं,इस कारण आप अनंत हैं॥३७॥हे भगवन्! जिन लोगोंकी विषयमें ही तृष्णा लगी हुई है, वे लोग मनुष्योंके आकारवाले पशु हैं,क्योंकि वे लोग अपनी तृष्णाको पूर्ण करनेके लिये आपकी विभूति जो इन्द्रादि देवता हैं,उनकी पूजा किया करते हैं,परन्तु वे लोग परम पुरुष परमेश्वर आपकी पूजा नहीं करतेपरन्तु हे ईश! यह सब पुरुष अपनी-अपनी कामना पूर्ण करनेके लिये इन देवताओंकी पूजा करके भी अपनी-अपनी अभिलाषित वस्तुको बहुत समय तक भोग नहीं कर सकते हैं, जिस प्रकार राजकुलके नाश हो जानेपर उसके सेवकोंकी भलाईका नाश हो जाता है, वैसे ही इन लोगोंके पूजनीय देवताओंका नाश होनेपर इनकी कामनायें भी नष्ट हो जाती हैं ॥३८॥ हे परमेश्वर! जिनके चित्त कामवासनामें आसक्त हैं, वे लोग यदि आपमें ही अपनी

अपनी कामनाकी रचना करें अर्थात् उसको पूर्ण करनेका संकल्प करके यदि आपकी ही सेवा करनेमें रत हो जांय तो भूने हुए बीजके समान फिर वह कामना उत्पन्न नहीं हो सकती, इस कारण फिर देहान्तरोत्पत्तिका अभाव हो सकता है, क्योंकि जीवके जो गुणगण हैं, उनसे ही सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके समूह उत्पन्न होते हैं, आप निर्गुण हैं आपकी पूजा कामनाके सहित करनेसे धीरे-धीरे निर्गुण हो सकता है ॥ ३९ ॥ इस कारण हे प्रभो ! फलकी कामना भी करनेपर आपकी आराधना करनेसे जब कि मोक्षका हेतु हो जाता है,तब फिर भागवत धर्मके माहात्म्यका तो वर्णन ही क्या करें ? आपकी स्तुति करते हैं, हे प्रभो ! जब कि आपने अनवद्य भागवत धर्म कहा है, तब सर्व श्रेष्ठमें आप वर्त्तमान हैं। हे भगवन् ! कौन पुरुष इस धर्मका माहात्म्य कह सकेगा, जो समस्त मुनि सनत्कुमारादि अकिञ्चनऔर आत्मा राम अपवर्गको प्राप्त करनेके लिये इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! काम्य धर्ममें जिस प्रकार "तुम, हम, तुम्हारा,

जितमजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किंचना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥ विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ॥ विषमधियारचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥ ४१ ॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ॥ ४२ ॥ न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्त्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वाऽऽर्याः ॥ ४३ ॥

हमारा" इस भांतिकी विषयबुद्धि है, भागवत धर्ममें ऐसी विषयमति नहीं है, हे भगवन् ! यद्यपि और सब काम्यधर्म भी वेदोक्त हैं तो भी विषयबुद्धिसे शत्रु मरणादि कामनामें जो विधान है; राग, द्वेषकी मूलकता होनेसे वह अविशुद्ध है और उसका फल नाशवान् है इसलिये इन सर्व कर्मोंका क्षय हो जाता है और हिंसादिकी अधिकता होनेसे अधर्मका मूलक है ॥ ४१ ॥ ये सब कर्म आपके और दूसरेके द्रोह करनेवाले हैं इसलिये इन कर्मोंसे आपका व दूसरेका क्या मंगल ? और किस कार्यमें आ सकते हैं ? किसी कार्यमें भी नहीं आते ! वरन् कायक्लेशसे अपने द्रोहके हेतु आपको पीड़ा और परद्रोहसे अधर्म और क्लेश ये सब ही होते हैं। गीतामें कहा है कि, दूसरेको पीड़ा देना ही अधर्म है "कर्षयन्तःशरीरस्थं भूतग्राममचेतसः । मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान्" ॥ ४२ ॥ इसलिये यद्यपि रागान्ध

पुरुषोंको कुछ वेदमार्गमें प्रवृत्ति करनेके लिये आपने ही काम्य धर्म कहा है,तो भी वह तत्त्वदृष्टिसे नहीं कहा गया है,इसलिये उस धर्मसे अपना पराया धर्म हुआ करता है, परन्तु भागवत धर्ममें किसी प्रकारसे भी द्रोहकी सम्भावना नहीं, क्योंकि आपकी दृष्टिकाकभी व्यभिचार नहीं होता, अर्थात् जो कभी परमार्थका त्याग नहीं करती उसी दृष्टिके द्वारा यह धर्म रचा गया है, इस कारण समस्त भगवद्भक्त मानव, स्थावर, जंगम प्राणिसमूहमें समबुद्धि रखते हैं, वे लोग इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आप ऐसे भागवत धर्मके प्रचार करनेवाले हैं, फिर आपके दर्शनसे मनुष्योंके जो अखिल पाप नाशको प्राप्त होंगे इसमें विचित्रता ही क्या है ? हे स्वामिन् ! आपका नाम केवल एकवार मात्र श्रवण करनेसे महानीचको भी संसारमें धनसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण केवल आपका दर्शन

नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नामसकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥
अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥
विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्य परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥
नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥
यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ॥ भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥

करनेसे ही हम लोगोंके अंतःकरणका मैल दूर हो गया, हे भगवन् । देवर्षि नारद आपके ही पुरुष हैं; उन्होंने जो कुछ कहा है, वह क्या कभी अन्यथा हो सकता है ? देवर्षिके ही उपदेशसे हमने आपके दर्शनका लाभ किया ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! आप जगदात्मा, सर्वान्तर्यामी, इस कारण कोई पुरुष कोई भी आचरण करे, वह सब आपको विदित हो जाता है, जैसे पटबीजनके द्वारा सूर्यके निकट कोई पदार्थ प्रकाशनीय नहीं हो सकता, पटबीजनकी तो क्या सामर्थ्य है, जो प्रकाश करे ? वैसे ही हे परमगुरु ! आपके निकट हम क्या प्रकाश कर सकते हैं? हम आपके निकट कुछ भी प्रकाशनीय नहीं हैं॥४६॥ अहो! हम उन भगवान् परमहंसको नमस्कार करते हैं, जो सब जगत्की सृष्टि,स्थिति और प्रलय कर्त्ता ईश्वर हैं,कुत्सित योगिगण भेददृष्टि होनेके कारण उनका निज तत्त्व नहीं जान सकते॥४७॥अहो!जिनके श्वास

लेनेसे विश्व रचनेवाले श्वास लेते हैं,जिनको देखनेसे ज्ञानेन्द्रिय स्वारूढ़ दर्शनशील होकर देखती हैं; जिनके मस्तकपर यह बड़ा भारी भूमण्डल एक सरसोंके दानेके समान धरा हुआ है, उन सहस्रशिरवाले भगवान् शेष अनंतजीको हम नमस्कार करते हैं ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुभूषण परीक्षित ! इस प्रकारकी स्तुति करनेसे भगवान् अनन्तजी अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्याधरपति राजा चित्रकेतुपर प्रसन्न हुए और उसको सम्बोधन करके इस वक्ष्यमाण वाक्यका प्रयोग किया ॥४९॥ अनन्त भगवान् बोले कि हे राजन् ! देवर्षि नारद और अंगिराजीने तुमको हमारे विषयमें जो कुछ भी उपदेश किया था, उस उपदेश और उसी विद्याके प्रभावसे तुमको हमारे दर्शन हुये और हमारे दर्शन पाकर तुम सर्व प्रकारसे सिद्ध हुये ॥ ५० ॥ हे वत्स ! हम ही भूतभावन अर्थात् सब जीवोंके प्रकाशक और कारण हैं,

श्रीशुक उवाच ॥ संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदांगिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥ संसिद्धोऽसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥ शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥ लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥ ॥ ५२ ॥ यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥ ५३ ॥

इसलिए हमही सब जीवरूप और समस्त जीवके आत्मा अर्थात् भोक्ता हैं, इस कारण हमारे शिवाय भोक्ता और भोगात्मक विश्व नहीं है, हे राजन् ! कोई पुरुष "शब्द ब्रह्म प्रकाशक और परब्रह्मकारण" जो कहा करते हैं,यह भी सत्य हैं, परंतु ये दो अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म हमारे ही पुराने शरीर हैं ॥५१॥ इस कारण तुम लोकमें अर्थात् भोग्य प्रपञ्चोंमें आत्माको भोग्यत्वरूपमें वितत अर्थात् अनुगत और आत्मामें भोग्यत्वरूपसे व्याप्त देख करके इन दोनों कहे कारणात्मा जो हम हैं हममें ही व्याप्त और हमसे ही ये दोनों कल्पित हैं, ऐसा स्मरण करो ॥ ५२ ॥ जिस प्रकारसे सोया हुआ पुरुष गिरि वनादिरूप वृक्ष भिन्न-भिन्न देहव्यापी होनेपर भी आत्मामें सब देख पड़ता है अर्थात् स्वप्नमें जिस प्रकार सोया हुआ पुरुष स्वप्न देखता है, और जैसे स्वप्नकी अवस्थामें ही उठकर अपनेको एक देशमें अर्थात्

शयन किया हुआ समझ जाग्रत अवस्थाका अनुभव करता है ॥५३॥ इसी प्रकारसे जीवोपाधि बुद्धिकी अवस्था जो समस्त जागरणादि है, वह सृष्टि आत्माकी केवल मायामात्र है, हे राजन् ! इस प्रकार विशेषरूपसे जानकर उन सब अवस्थाके देखनेवाले और इन सब सहित जो आत्मा है इसका ही स्मरण करना कर्तव्य है ॥ ५४ ॥ हे राजन् तुम ऐसा मत जानना कि स्वप्नावस्थामें दृश्य न रहनेपर द्रष्टा भी नहीं है, भलीभांति सोया हुआ पुरुष अर्थात् जीव जिससे अपनी निद्रा और इंद्रियोंके सुखको जान सकता है, वही वस्तु अर्थात् आत्मा उस समय भी वर्तमान रहता है, उस कालमें निद्रा और सुखका ज्ञान नहीं होता, ऐसा भी हम नहीं कह सकते, क्योंकि मैं सुखसे सोया था, यहांतक कि मुझे कुछ ज्ञान न रहा इस प्रकारसे स्मृति सबको ही अनुभव सिद्ध है, इस कारण स्वप्नादि अवस्थामें भी आवर्तमान

एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥ ५४ ॥ येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ॥ सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥ ५५ ॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रति बोधयोः ॥ अन्वेति व्यतिरिच्येत यज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ ॥ यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमा त्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहोमृतेर्मृतिः ॥ ५७ ॥

रहता है, वही आत्मा ब्रह्म है, और वही ब्रह्म जो है सोई हम हैं, ऐसा तुम जानो ॥ ५५ ॥ यदि कहो निद्रावस्थामें साक्षी जो वस्तु देखेगा, वह साक्षी उसको जाग्रत अवस्थामें किस प्रकारसे स्मरण करेगा, एकका देखा हुआ कभी दूसरा स्मरण कर सकता है ? (उत्तर)– निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंको खोज करनेसे निद्रा और जागरण प्रकाशत्वरूपमें जो कुछ अन्वित हो और एक दूसरेका अपायसे भी अपाय न होनेपर जो कुछ इन दोनोंसे अलग है, इसी ज्ञानके प्रभावसे ऐसा स्मरण हुआ करता है, वह ज्ञान नहीं परब्रह्म है, इस कारण बाल्यावस्थामें दृष्टिविषय जिस प्रकार यौवनमें दृष्टिगोचर होता है वैसे ही जागनेमें दूसरी अवस्थाके होनेपर भी निद्रा और आनन्दका स्मरण कर सकता है, यह जो कुछ भी हो, फल यह है कि, ऐसे ब्रह्मको ही आत्मा जानना ॥५६॥ हे राजन् ! जो हमारा यह

स्वरूप अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ यह भूलकर आत्माके निकटसे अलग हो जाय, तब तो फिर पुरुषको अपार संसारमें घूमना-फिरना होता है, उस संसारका स्वरूप यह है कि,इस देहसे दूसरी देह,अर्थात् जन्मान्तर,पुनर्जन्म और मृतकसे फिर मृतक अर्थात् मरणके पीछे फिर मरण होना ॥५७॥ हे राजन् ! मनुष्यजन्ममें ही शास्त्रज्ञान और परीक्षाज्ञान प्राप्त करने की बड़ी सम्भावना है,इस मनुष्यजन्मको प्राप्त करके जो पुरुष परमात्माको न जानकर उसके विषयमें ज्ञान नहीं करता उसका कल्याण किसी समय भी नहीं होता॥५८॥ इस कारण प्रवृत्तिमार्गमें जैसे क्लेश और फल भी उसके उलटे हो जाते हैं, और निवृत्ति मार्गमें जिस प्रकारका फल जो कि अनिर्वचनीय फल (मोक्ष) प्राप्त हो सकता है, उसको याद करके फलके संकल्पसे विमुख होना उचित है॥५९॥हे महाराज ! सुख अथवा दुःखके छुड़ानेके लिये संकल्प करके मनुष्यगण स्त्री

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् ॥ आत्मानंयो न बुध्येत न क्वचिच्छमवाप्नुयात ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कवि ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ॥ ततो निवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥ ६० ॥ एवं विपर्ययं बुद्धा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञान विज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुण्यबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥

पुरुष दोनों अनेक प्रकारके क्रियाकलाप किया करते हैं, परंतु उनके क्रियाकलाप करनेसे न तो दुःखसे छुटकारा ही होता और न सुखकी प्राप्ति ही होती है ॥६०॥ जिन मनुष्योंको अपने ज्ञानका अभिमान है कि "हम उद्यम करनेमें बड़े प्रवीण हैं" वह इस उलटी बातको जान कर तीनों स्थानोंसे आत्माकी विलक्षण सूक्ष्म गति हैं, ऐसा जानते हैं ॥ ६१ ॥ अपने तेजसे देख सुन शब्दादि तन्मात्रसे छूटकर ज्ञान-विज्ञानसे संतुष्ट होकर पुरुष मेरा भक्त होता है ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! परमात्माका और जीवका जो केवल एक रूपमें दर्शन करता है, उसको ही योगमें निपुण हुए मनुष्यगण सर्व प्रकारसे स्वार्थ कहकर जानते हैं, इस कारण इससे अधिक और परम पुरुषार्थ

नहीं है ॥६३॥ तुम यदि सावधान होकर हमारे यह वचन श्रद्धासहित श्रवण करके धारण करोगे तो बहुत ही शीघ्र ज्ञानविज्ञानयुक्त होकर सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥ इतनी कथा वर्णन कर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जगत्-गुरु विश्वात्मा भगवान् हरि संकर्षण इस प्रकार चित्रकेतुको समझा बुझाकर फिर उसके सामने ही अन्तर्ध्यान हो गये * ॥६५॥ इति श्रीमद्भागवते षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ दोहा–चित्रकेतु आकाशमें, घूमत सिद्धी पाय। हँसी करी जब शम्भुकी, गिरिजा दियो गिराय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले–कि हे राजन् ! भगवान् अनन्तजी जिस दिशामें अन्तर्ध्यान हुये विद्याधर चित्रकेतुने उसी

त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चित्रकेतोस्तत्त्वोपदेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥ स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥ कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ॥ गिरिशंददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥

ओरको प्रणाम किया और फिर आकाशचारी होकर वह इच्छानुसार विहार करने लगा ॥१॥ उसका बल नहीं घटा था, न उसकी इंद्रियां क्षीण हुई थीं, इस कारण लक्ष-लक्ष वर्षतक वह सरलतासे घूमता रहा और वह महायोगी था, इस कारण मुनि व सिद्धचारण लोग उनकी स्तुति करते थे॥२॥ कुलाचल पर्वतकी गुफामें जहां कि अनेक संकल्प सिद्ध हो जाते हैं वहांपर यह राजा चित्रकेतु श्रीहरिके गुण गाता हुआ विद्याधरोंकी स्त्रियोंके साथ रमण करने लगा ॥ ३ ॥ एक समय यह राजा चित्रकेतु भगवान् विष्णुजीके दिये हुये दीप्तिमान विमानमें आरूढ़

* भजन–श्यामसुन्दरकी अद्भुत शोभा, बिसरत नाहिं बिसारी है रे ॥ शीशमुकुट मकराकृत कुण्डल उर वनमाल सँवारी है रे। नयन विशाल नासिकाकी छवि, मनकी मोहनहारी है रे ॥ पीतवसन और हँसन दशन, की शोभा परमपियारो है रे। शालिग्राम छिपे क्यों हमसे, यह अचरज मोहिं भारी है रे ॥

होकर गमन करते-करते देखा कि, भगवान् भूतनाथ शिवजी सिद्ध चारण लोगोंसे सेवित होकर ॥ ४ ॥ मुनि जनोंकी सभामें भगवती पार्वतीजीको अंक (गोदी) में लिये भुजाओंसे चिपटाये बैठे हुए हैं, चित्रकेतु श्रीमहादेवजीको इस प्रकार बैठे देख क्षण भर तक खड़ा रहा और कुभाग्यके वश होकर उनका उपहास करके यह वक्ष्यमाण वचन उनसे बोला, इन वचनोंको भगवती पार्वतीजीने भी सुना ❋ ॥ ५ ॥ चित्रकेतु बोला कि,जो समस्त लोगोंके गुरु,साक्षात् धर्मके कहनेवाले और शरीरधारियोंमें प्रधान हैं,इनका आचरण देखो ? भरी सभाके बीच

आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ॥ उवाच देव्याः शृण्वन्त्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥ जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादी सभापतिः ॥ अङ्कीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृपः ॥ तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥

अपनी भार्याको गोदीमें चिपटाये हुए बैठे हैं ॥ ६ ॥ और फिर यही जटाधारी तीव्र तपकरनेवाले, ब्रह्मवादी और इस सभाके पति हैं, कैसा आश्चर्य है कि, एक साधारण मनुष्यके समान एकबार ही लाजविहीन हो गये हैं, कि सभाके बीचमें इस प्रकार स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ? ॥७॥ अहो ! साधारण मनुष्यभी एकान्तमें ही स्त्रीको प्यार व आलिंगन करते हैं परन्तु यह बड़ा भारी व्रत धारण करके भी सभामें किस प्रकारसे स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ शिवजीका मन

१. शंका–राजा चित्रकेतु अनेक जन्मका ज्ञानी था और सब देवताओंका पूजन करनेवाला था, नारदजीका चेला भी था, शिवजीकी कृपा चित्रकेतुके ऊपर बहुत थी । वह सर्व सुलक्षणयुक्त होकर राजा चित्रकेतु जगत्के माता पिता शिव पार्वतीको देखकर क्यों हँसा ?

उत्तर–जैसे राजा बलिने यज्ञ करके इन्द्रका राज्य ले लिया और आप इन्द्र हो गया,तब जिस पुण्यके प्रभावसे इन्द्रासन पाया था वह पुण्य नष्ट नहीं हुआ थोड़ा रह गया था, इस लिये भगवान्ने वामन रूप धरकर इन्द्रको राज्य दिया । वैसा ही कर्म चित्रकेतुने भी किया, विद्याधरोंके राज्यका पुण्य नष्ट नहीं हुआ था परंतु चित्रकेतु मंत्र जपकर विद्याधरोंका राजा हुआ इस लिये भगवान् अपनी मायाको आज्ञा देकर मायासे चित्रकेतुको मोहित करके महादेवजीसे द्रोह कराकर राजा चित्रकेतुको नष्ट किया ।

अत्यन्त गंभीर है, वे चित्रकेतुके यह वचन सुनकर कुछेक हँसकर चुप हो रहे, उस सभामें जितने सभ्य लोग बैठे थे, उनमेंसे कोई कुछ न बोला और सब ही महाराज भोलानाथके अनुगामी होकर चुप रहे ॥९॥ परन्तु चित्रकेतुको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होनेसे विजातीय गर्व उत्पन्न हो गया था, "और मैंने इंद्रियोंको जीत लिया है" इस बातका उसको अभिमान भी था,इसलिये भगवान् महादेवजीके प्रभावको न जानकर उसने इस प्रकारके अमङ्गल वचन बारबार कहे कि जिनको भगवती पार्वतीजी न सह सकीं और क्रोध प्रकट कर बोलीं ॥ १० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि यह पुरुष क्या इस समय लोकोंका शासन करनेवाला है ? या दण्डधारी प्रभु है ? इसको हम अपने समान लोगोंका अत्यन्त ही विरोधी देखती हैं, यह तो कोई बड़ा दुष्ट और लाज रहित है॥११॥ कैसा आश्चर्य है, कमलयोनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते

इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ॥ रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥ न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा नतु नारदाद्याः ॥ न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥ १२ ॥ एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ॥ यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन् प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥ १३ ॥ नायमर्हति वैकुण्ठपापमूलोपसर्पणम् ॥ संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥ १४ ॥

हैं, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु व नारदादिको धर्मका ज्ञान नहीं, सनत्कुमार और कपिल मुनि भी धर्मके जाननेवाले नहीं, महादेवजी महाराज शास्त्रका उल्लंघन करके चलते हैं और क्या ये समस्त मुनि उनका निवारण नहीं कर सकते ? फिर किस कारण यह दुष्ट खोटे वचन कह रहा है॥१२॥अहो ! जिनके चरणकमल ब्रह्माजीसे भी धोने-योग्य,जो समस्त मंगलोंके मंगल अर्थात् परम धर्ममूर्ति हैं,यह नीच क्षत्रिय विद्याधर समस्त देवताओंके स्वामी भगवान्को कुछ न समझकर शासन करता है, इस कारण यह दण्ड देने योग्य है ॥१३॥ साधुलोग सदा जिस वैकुण्ठमें भगवान् के चरणके निकट जानेकी इच्छा करते हैं, यह पुरुष उस वैकुण्ठके योग्य नहीं है क्योंकि इसको "मैं बड़ा हूँ"इस

प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ है, इसी कारणसे इसमें नम्रता भी नहीं है ॥१४॥ इस प्रकार भगवती पार्वतीजी स्वयं चित्रकेतुके दण्डको विचार उसे पुकारकर बोलीं कि हे पुत्र ! तुमको दुर्मति उत्पन्न हुई है, जाओ और पापीयसी आसुरी योनिको प्राप्त हो, ऐसा होनेसे बड़े पुरुषोंका अपराध करनेमें फिर तुम्हारा साहस नहीं होगा ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत ! चित्रकेतुको जब इस प्रकार पार्वती जीने शाप दिया तब वह उसी समय विमानसे उतरा और मस्तक झुकाकर सतीजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगा ॥ १६ ॥ चित्र-केतु बोला कि हे अम्ब ! जो आपने शाप दिया उसको मैं दोनों हाथोंसे मस्तक पर चढ़ाता हूं, हे मातः देवता लोग मनुष्यके प्रति जो

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ॥ प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥ १६ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाऽम्बिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥ १७ ॥ संचारचक्र एतस्मिञ्जन्तु-रज्ञानमोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥ १८ ॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुख-दुःखयोः ॥ कर्तारं मन्यतेप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥ १९ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापःकोन्वनुग्रहः ॥ कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा॥२०॥एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया॥एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥ २१ ॥

कुछ कहते हैं, वह प्राचीन कर्म उस पुरुषको अवश्य ही प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह संसारचक्रका स्वभाव ही है इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, जीव अज्ञानसे मोहित होकर संसाररूपी चक्रमें घूमता हुआ सदा सर्वत्र जो सुख और दुःख भोग करता है,स्वयं वा और उस सुखका कर्त्ता नहीं है, जो पुरुष अज्ञानी है, वही इस विषयमें अपनेको अथवा दूसरेको कर्त्ता कहकर मानते हैं, इस कारण आपने जो हमको शाप दिया, इस विषयमें आपका व हमारा कोई दोष नहीं है ॥ १८ ॥ १९ ॥ परंतु मा ! यह संसार समस्त मायामय गुणोंका प्रवाहस्वरूप है, इसमें शाप क्या है, अथवा अनुग्रह क्याहै ? स्वर्ग क्या है ? वरन् सुख-दुःख भी क्या है ? ॥ २० ॥ एक परमेश्वर निमित्त भूत मायासे प्राणियोंके

और उनके बन्धन मोक्ष व सुख दुःखकी सृष्टि किया करते हैं, परन्तु वह स्वयं निष्फल अर्थात् बन्धन शून्य हैं ॥२१॥ यद्यपि भगवान्का प्यारा-कुप्यारा जाति, अथवा बंधु पराया अपना कोई भी नहीं है, क्योंकि सर्वत्र समान हैं, और संगरहित हैं इसलिये उनमें अनुराग भी नहीं है, फिर भला मनमें अनुरागका स्वामी रोष किस प्रकारसे हो सकता है ॥२२॥ तो भी उनकी मायासे जो समस्त विसर्ग अर्थात् पुण्य पापादिरूप कर्म होते हैं, वही शरीर धारियोंके सुख, दुःख, हित, अहित, बन्धन, मोक्ष, जन्म,मृत्यु और संसारके निमित्त समर्थ हुआ करते हैं ॥२३॥ इस कारण हे माता पार्वती ! आप प्रसन्न हों, केवल यही प्रार्थना है, यह विनती मैं कुछ शाप छुड़ानेके लिये नहीं करता हूँ, मां ! मैंने तो साधु उक्ति ही की थी परंतु उससे जो तुम अपने आपको असाधु समझ गयी हैं, सो यही मेरा अपराध आप क्षमा करें

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ॥ समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥ २२ ॥ तथाऽपि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय ॥ बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥ २३ ॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ॥ यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥ २५ ॥ ततस्तु भगवान्रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम्॥२६॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निस्स्पृहाणां महात्मनाम् ॥ २७ ॥

॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे शत्रुदमनकारी राजन् ! चित्रकेतुके इस प्रकारसे भवानी और महादेवजीको प्रसन्न करनेके वचन सुन गौरी और गिरीश (महादेव) को अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ, इसके पीछे चित्रकेतु उन विस्मित देव-देवीके सम्मुख ही अपने विमानपर बैठकर चला गया ॥२५॥ उसके पीछे रुद्राणीसे श्रवणकारी देवर्षि दैत्य सिद्ध और पार्षदगणोंके सामने ही भगवान् रुद्र यह वचन बोले ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि, हे सुन्दरकटिपश्चाद्भागवाली ! अद्भुतकर्मकारी भगवान् हरिके भक्तगण कैसे महात्मा और कैसे श्रद्धा सहित होते हैं, उनका माहात्म्य अब तुमने प्रत्यक्ष देखा ॥ २७ ॥

हे भार्ये ! जो पुरुष नारायणपरायण हैं, वे किसीसे भी भय नहीं पाते । स्वर्ग, नरक, मुक्ति इन तीनोंको ही वे समतासे देखा करते हैं ॥ २८ ॥ क्योंकि परमेश्वरकी लीलासे ही प्राणियोंके देहसंयोग और उसके द्वन्द्व अर्थात् सुख, दुःख,जन्म,मरण और शाप अनुग्रह हुआ करते हैं ॥२९॥ इन सब सुख-दुःखादिकोंके बीचमें गुण-दोष विकल्प अर्थात् इष्टानिष्ट भेद जो कुछ भी प्रकाश पाता है, वह पुरुषके आत्मामें सुखादि भेद स्वप्नावस्थामें जिस प्रकार अविवेककृत होते हैं, वैसे ही अज्ञानकृत जानना और मालामें जिस प्रकार सर्पमालादि भेद अज्ञानकृत होता है, वैसे ही यह अविवेककृत जानना ॥ ३० ॥ हे देवि ! जो पुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करते हैं, वह ज्ञान और वैराग्यके वीर्यसम्पन्न हैं, उनमें "यह अच्छा है" ऐसी बुद्धिमें आश्रय करनेवाला अर्थ नहीं है, अर्थात् उनको किसीके आश्रयकी इच्छा

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ॥ स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥ देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया ॥ सुखं दुःखं स्मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥२९॥ अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः॥३१॥नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ॥ विदाम यस्तेहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ नह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूत प्रियो हरिः ॥ ॥३३॥ तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ॥ सर्वत्र समदृक्छान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥ ३४ ॥

नहीं है ॥ ३१ ॥ यह पुरुष (चित्रकेतु) भगवानका दास है, इस कारण इसमें ऐसी उदारताका होना विचित्र नहीं है । हे देवि ! भगवान् हरिके माहात्म्यका क्या वर्णन करें ! हम (रुद्र), ब्रह्मा, सनत्कुमार, ब्रह्मसुत नारदादि ऋषि, प्रधान-प्रधान देवगण, हम सब लोग भी जब कि उनकी लीलाको नहीं जान सकते फिर भला देवता जो उनके अंश होनेपर भी अपनेको पृथक् पृथक् ईश्वर कहकर मानते हैं, वे लोग किस प्रकारसे उनके स्वरूपको जान सकते हैं । ॥३२॥ परन्तु उन भगवान् हरिका न कोई प्यारा भक्त है,न कोई कुप्यारा है,न कोई अपना न कोई पराया है, यह सर्व प्राणियोंके आत्मा इस कारण आप ही सब प्राणियोंके प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ परन्तु यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं हरिका प्यारा भक्त है क्योंकि यह पुरुष शान्त और सबको बराबर देखनेवाला है । हे सती ! हम भी उन्हीं अच्युतसे प्रेम किये हुए

हैं,इस कारणसे इसके ऊपर हमको क्रोध नहीं हुआ ॥ ३४ ॥ अतः हे देवि ! तुम विस्मयको छोड़ दो । यह सब महात्मा पुरुष महापुरुषके भक्त शान्त,और सबको सम दृष्टिसे देखनेवाले हैं इस कारण इनका स्वभाव एक ही रूपका है॥३५॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् महादेवजीके यह वचन सुनकर भगवती पार्वतीजीने विस्मय छोड़कर अपने चित्तको सावधान किया ॥३६॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि वह परम भागवत चित्रकेतु भवानीजीको भी शाप दे सकता था, परन्तु उसने जो भगवती सतीजीका शाप अपने माथेपर चढ़ाय

तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ॥ महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाऽभिभाषितम् ॥ बभूव शान्तधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥ ३६ ॥ इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलं तमः ॥ मूर्ध्ना संजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥ ३७ ॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥ माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥

लिया यही उसकी साधुताका लक्षण था ॥ ३७ ॥ उसके पीछे चित्रकेतु दानवीयोनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें उत्पन्न हुए और पीछे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर "वृत्र" इस आख्यायिकाके नामसे विख्यात हुए ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वृत्रकी असुर भावसे उत्पत्ति और भगवान्में मति होनेका कारण जो आपने पूछा, वह हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ३९ ॥ हे कौरवेश ! महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र

१. शिवजी ऐसे दयालु हैं कि, एक शिवालयमें किसीने ५००० पांच हजार रुपयेके मूल्यवाली सुवर्णकी घंटी चढ़ाई । यह देख एक चोरने रात्रिमें उस घंटी के चुरानेका विचार किया, परंतु जब वह चोर शिवालयमें गया, तब घंटी उसके हाथसे एक हाथ ऊंची निकली । तब चोर पिंडीपर चढ़कर घंटी उतारनेका यत्न करने लगा तब 'वरं ब्रूहि' यह शब्द हुआ । तब चोर बोला कौन है ? तब सदा शिव बोले कि, हम हैं हमारा घंटा क्यों उतारते हैं ? जा यहांसे थोड़ी दूरपर वट वृक्ष है, उसके नीचे २०००० बीस हजार रुपये गड़े हैं तू निकाल लेना, मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, कारण कि और कोई तो मुझपर पुष्प और जल ही चढ़ाता है परंतु तूने तो मुझपर अपना सब शरीर ही चढ़ा दिया है, तुझे धन्य है ! सदा शिवको ! "धन धन भोलानाथ तुम्हारे कौड़ी नहीं खजानेमें । तीन लोक बस्तीमें बसाये आप बसे वीरानेमें ।"

चरित्र जो भागवत लोगोंके माहात्म्यसे परिपूर्ण है; उसके सुननेसे मनुष्य बंधनसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य प्रातः काल उठकर भगवान् हरिका स्मरण करके वाणीको वशमें कर श्रद्धासहित इस इतिहासका पाठ करता है, उसकी परमगति हो जाती है। वह ऐसे कहने लगता है ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भा० टी० पार्वतीशापेन चित्रकेतोरसुरभाववर्णनं नाम सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अदिती सुतके वंशसे, विश्वरूप आख्यान। पुनि दितिके सुत मरुत गण, तिनको करहुँ बखान ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे परीक्षित्! सविताकी स्त्री पृश्निने अपने स्वामीसे सावित्री, व्याहृति, वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीभा० महापुराणे षष्ठस्कन्धे चित्रकेतोः शापस्वीकरणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥ सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ॥ सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ॥ चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥

और पंचमहायज्ञ इन सब संतानोंको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ हे सुव्रत! भग नामावली आदित्यकी स्त्री सिद्धिने महिमा, विभु, प्रभु ये तीन पुत्र और आशीर्नामक एक उत्तम कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ धाताकी संतान कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति ये चार यथा क्रमसे, सायं, दर्श, प्रात और पूर्णमास नामक संतान उत्पन्न की ॥ ३ ॥ विधाता नामक आदित्यकी स्त्री क्रिया, उसके गर्भमें इन आदित्यसे पुरीष्य नामक पांच अग्नि उत्पन्न हुए। वरुणजीकी स्त्री चार्षिणी, जिससे भृगुजी उत्पन्न हुए, जो पहले ब्रह्माजीके पुत्र थे, अब

१ भजन— कत न पडे पलभरको तुम विन, क्या जादू पढ़ जारा है। अपना बिगाना कुछ नहीं सूझत, केवल ध्यान तुम्हारा है ॥ आठ पहर दिन रैन छिनक पल, दम भरको नहीं न्यारा है। सुख संपत्ति तन मन सुतदारा; सबका तुमपर वारा है ॥ जो कुछ हो तुम ही हम नहीं, अब तो यही विचारा है। निभय कौन समझता उसको, जो कुछ हाल हमारा है ॥

फिर जन्म ग्रहण किये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! महायोगी, वाल्मीकिजी जो वल्मीकसे उत्पन्न हुए वह भी वरुणजीके पुत्र थे, इस कारण वरुणजीके भृगु और वाल्मीकि यह दोनों ही पुत्र असाधारण थे,परन्तु अगस्त्य, वशिष्ठ यह दोनों ऋषि वरुणजीके और मित्रके साधारण पुत्र हुए। क्योंकि वरुण और मित्र ॥ ५ ॥ इन दोनों जनोंने ही उर्वशीको देख कामके वश हो उसके निकट एक घड़ेमें अपना वीर्य डाला, जिससे कि इन दोनों ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई हे राजन् मित्र नामक आदित्यके लिखे हुए सात पुत्रोंके सिवाय असाधारण पुत्र भी थे, अर्थात् उन्होंने अपनी स्त्री रेवतीके गर्भमें उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ये तीन पुत्र उत्पन्न किये थे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन्दुकी स्त्री पौलोमी हुई, ऐसा सुना है कि इन्द्रने उसके गर्भमें तीन पुत्र उत्पन्न किये थे। उनके नाम जयन्त, ऋषभ, मीढुष ॥ ७ ॥ उरुक्रम नामक

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥ अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥ रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याःसन्निधौ द्रुतम् ॥ रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ॥ जयन्तमृषभं तात तृतीयंमीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥ ९ ॥ अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥

आदित्य जिन्होंने प्रथम अपनी मायासे वामनरूपी बन बड़ाभारी विक्रम प्रकाश किया और उनकी कीर्तिनामक स्त्रीमें बृहत् श्लोक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके पुत्र सौभाग इत्यादि कश्यपवंशावतंस हुए। इन महात्माके गुण कर्म और वीर्यादि पश्चात् (अष्टमस्कन्धमें) कहेंगे ॥ ८ ॥ और जिस प्रकारसे अदितिमें अवतीर्ण हुए वह भी समय समय पर वर्णन करेंगे ॥ ९ ॥ हे कौरवेश ! कश्यपकी अदिति नामक स्त्रीमें जो (१२) बारह आदित्य उत्पन्न हुए हैं उनकी सन्तानका सब वृत्तान्त हमने कहा, इस समय इन महात्माकी दिति नामक स्त्रीमें दैतेय कहकर प्रसिद्ध जो यह सब दायाद हैं, जिनके मध्यमें श्रीमान् महाभागवत प्रह्लाद और बलि भी थे, उनका विवरण हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १० ॥ हे राजन् ! दितिके दो पुत्र हुए हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष,ये दोनों जन ही दैत्य-दानव लोगोंके वंद-

नीय हुए थे, उनका वृत्तान्त (तीसरे स्कन्धमें) हम कह ही आये हैं ॥११॥ हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधू नाम दानवी जंभकी बेटी थी वह चार पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥१२॥ उनके नाम यथा-संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद, उनकी बहिन जो सिंहिका थी, विप्रचित्त दानवकी स्त्री हुई, वह अपने स्वामी विप्रचित्त दानवसे राहुनामक दो पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई ॥ १३ ॥ देवता लोगोंके साथ अमृत पान करनेसे भगवान् हरिने अपने चक्रसे जिनका शिर काट लिया था संह्लादकी कृतिनामक स्त्री पञ्चजनको पैदा करती हुई,॥१४॥ह्लादकी धमनि भार्या

हिरण्यकशिपोर्भार्याकयाधुर्नाम दानवी ॥ जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥ संह्लादं प्रागनुह्लादंह्लादं प्रह्लादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥ १३ ॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पञ्चजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वाता पिमिल्वलम् ॥ १५ ॥ अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्या भवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥

इल्वल वातापीको उत्पन्न करती हुई जो अतिथि अगस्त्यजी इल्वल वातापीको पचाय गये थे ॥ १५ ॥ जो कुछ भी हो अनुह्लाद दानवकी भार्या सूर्य्या उसके गर्भमें बाष्कल और महिष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, प्रह्लादकी स्त्री दर्वी उसने विरोचनसे जन्म ग्रहण किया उसका पुत्र बलि हुआ ॥१६॥ बलिकी स्त्री अशना इसके गर्भसे राजा बलिके (१००) शतपुत्र उत्पन्न हुये, उनमें बाणासुर सबसे बड़ा हुआ जिसका प्रताप कि महापुण्यरूप है, जो कि पीछे भली भांति वर्णन करेंगे ॥ १७ ॥

१. श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है कि इल्वल-वातापी दोनों भाई थे। इनमेंसे इल्वल ऋषि लोगोंको भोजन करानेके बहाने ले आये और गुप्त भावसे अपने भाईको मार उस ऋषिको खिलावे। पीछे यह पुकारता कि "वातापी भइय निकल आओ" तब संजीवनी विद्याके प्रभावके कारण यह वातापी; ऋषियोंका पेट फाड़कर निकल आता। एक समय अगस्त्यजीके साथमें भी इन्होंने ऐसा ही किया, परंतु अगस्त्यजी योगबलके प्रभावसे वातापीको हजम कर गये और वातापीकी संजीवनी विद्या एक काम न कर सकी, तब इस प्रकारसे श्लोक हुए-" अगस्त्यं कुम्भकर्णञ्च शांति च वडवानलम्। आहारपरिपाकार्थं स्मरेद्भीमं च पचमम् ॥ आतापी मारितो येन वातापी येन भक्षितः ॥ समुद्रः शोषितो येन सेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥"

बलिका सबसे बड़ा पुत्र बाणासुर भगवान् महादेवजीकी आराधना करके शिवका मुख्य गण हुआ, उसके पार्श्वमें भगवान् पुरपालक अब तक वर्तमान हैं ॥१८॥ हे राजन् ! उनचास ४९ पवन भी इस दितिके पुत्र हैं, ये सब ही पुत्रहीन हुए। देवराज इंद्र इन सबको साथ लेकर देवभावको प्राप्त करा दिये ॥१९॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! दितिके गर्भमें उत्पन्न होनेसे मरुद्गण जन्मसे ही असुर भावयुक्त थे। इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है,वह किस प्रकारसे असुरभाव परित्याग करके इन्द्रसे सुरभावको प्राप्त हुए। उन्होंने ऐसा क्या श्रेष्ठ कर्म किया था ?॥२०॥हे भगवन् ! यह विषय जाननेके लिए यह ऋषिगण हमारे सहित श्रवण करनेको श्रद्धा सहित बैठे

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ॥ यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥ परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्याहृतमल्पमर्थवत् ॥ सभाजयन्संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियाराममुल्बणम् ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वाशये सुखम् ॥ २४ ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽऽसीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥

हुए हैं, हमारे निकट इसकी यथावत् व्याख्या कीजिए ॥२१॥ सूतजी इतना वृत्तान्त वर्णन करके महर्षि शौनकजीसे बोले कि हे सत्रायण ! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने राजाके यह मिताक्षर और बहु युक्त वचन श्रवण करके मन ही मनमें उसकी बड़ाई की और बोले॥२२॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! विष्णुकी सहायतासे इन्द्रने सब पुत्रोंको मार डाला; तब दितिके चित्तमें शोक अत्यंत प्रबल हुआ और वह मन ही मनमें यह चिंता करने लगी ॥ २३ ॥ दुरात्मा इंद्र केवल इंद्रियोंके सुखमें लगा हुआ है,जिसका हृदय अति कठिन है और उसमें दयाका नाम भी नहीं है, आः ! इस क्रूर भाईके मारनेवाले पापीको नाश करके हम सब सुखी होंगे ॥ २४ ॥ अहो इस समय जो प्रभु

कहकर विख्यात हैं, उनके पीछे स्वामियोंका देह मरनेके पीछे दो या तीन दिन रह कर कृमि, विष्ठा और भस्मकी संज्ञाको प्राप्त हुआ है, कारण कि मृत देहका संस्कार न होनेसे दो तीन दिन पीछे सड़कर वह कृमियुक्त या श्वापदादिके भक्षण करनेसे विष्ठारूपको प्राप्त होता है और दग्ध होनेसे केवल भस्म ही शेष अर्थात् बाकी रहती है, उस स्वदेहकी रक्षाके लिये जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह रखता है, वह क्या स्वार्थको जानता है? कभी नहीं क्योंकि प्राणियोंके साथ वैर करनेसे घोर नरक होता है ॥२५॥ जो कुछ हो इन्द्र देहादिको नित्य समझकर अतिशय उन्नद्धचित्त हो गया है, अब हमको ऐसा यत्न करना चाहिए कि जिससे उसके गर्वका हरण करने वाला पुत्र हो ॥ २६ ॥ इस कारण पतिका प्रियाचरण करना ही इस विषयमें सदुपाय है, ऐसा निश्चय करके शुश्रूषा, अनुराग, विनय, इंद्रियदमन और भक्ति प्रकट करना

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इंद्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ ॥ इति भावेन सा भर्तुराचचारसकृत्प्रियम् ॥ शुश्रूषयाऽनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मिताऽपाङ्गवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥ ३० ॥ एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥ ३१ ॥

इत्यादि उपायोंसे दितिजी वारंवार कश्यपजीका प्रियाचरण करने लगीं॥२७॥भावकी जाननेवाली दिति हाव-भावके सहित मनमाना प्रिय भाषण तिरछी चितवन तथा मंद मुसकानसे अपने पतिको वशमें कर लेती हैं ॥ २८ ॥ हे राजन्! विद्वान् पुरुष मनमानी स्त्रीसे ऐसे ही उसके वशीभूत होते हैं, उनके पीछे वशमें होकर "तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे" ऐसा उनका कहना कुछ विचित्र नहीं है ॥२९॥ प्रजापति ब्रह्माजीने प्रथम सब प्राणियोंको संगरहित देखकर यह विचार कर स्त्री पुरुषके संसर्गसे "सृष्टिके निमित्त" अपनी आधी देहको स्त्री बनाया था, जिसके द्वारा अनेक पुरुषोंकी मति हरी जाती है ॥३०॥ इस लिये हे तात ! दिति एकान्त भाव हो इस प्रकारसे जब शुश्रूषा करने लगी, तब भगवान् कश्यपजी शीघ्र ही प्रसन्न हो गये,और एक दिन आनन्द प्रकाश करके हँसकर दितिके प्रति प्रसन्नताके वचन कहते हुए॥३१॥

कश्यपजी बोले कि हे वामोरु ! हम तुमसे अत्यन्त ही प्रसन्न हुये हैं अब जो तुम्हारी अभिलाषा हो वह तुम हमसे मांगो ? हे सुन्दरी ! पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रियोंको क्या इस कालमें क्या परकालमें कोई अभिलाषा अप्राप्त नहीं रहती ॥३२॥ हे सांध्वी ! स्त्रियोंका पति ही परमदेवता है देवताके प्रसन्न होनेसे सब ही कामना पूर्ण हो जाती हैं-"नारिनके पति देव वेद नित यही बखाने । ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारि पतिहीको जाने" ॥३३॥ हे सुन्दरी ! यद्यपि सर्व प्राणियोंके अन्तःकरणवर्ती भगवान् वासुदेव ही लक्ष्मीपति अथवा परम देवता सत्य ही सत्य हैं, तथापि पुरुष लोग अनेक प्रकारसे उनके ही इन्द्रादि नाम और वज्रहस्तत्वादि रूप कल्पना करके पूजा करते हैं, और वही

कश्यप उवाच ॥ वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥ ३३ ॥ स एव देवतालिंगैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवान्पुंभिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥ तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजन्तेऽनन्यभावेन मतिमात्मानमीश्वरम् ॥३५॥ सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेनभक्तितः ॥ तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥ दितिरुवाच॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

स्त्रियोंके निकट पतिरूपधारी होकर पूजे जाते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! श्रेयस्कामा पतिव्रता स्त्रियां अनन्यभावसे पतिकी ही सेवा करती हैं, कारण कि पति ही आत्मा और पति ही ईश्वर हैं ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! हम तुम्हारे वही स्वामी हैं तुम ही करके भक्तिभावसे पूजे गये हैं जो तुम्हारी कामना है वह हम पूर्ण करेंगे, वह असती स्त्रियोंको महादुर्लभ है ॥३६॥ दिति बोली कि हे ब्रह्मन् ! अनुग्रह करके यदि आप वर देनेको तैयार हुए हैं तो इंद्रको मार डालनेवाला मैं ऐसा एक पुत्र चाहती हूं वह आप कृपा करके मुझको दीजिये, हे प्रभो ! दुरात्मा इन्द्रने

१–एक वृद्ध तपस्वीने अस्सी हजार वर्षकी तपस्या करके क्रोधमें भरकर जो ऊपरको दृष्टि उठायी तो उनकी दृष्टिके पड़ते ही एक पेड़के ऊपर बैठी हुई समस्त चिड़ियां मरकर गिर पड़ीं, इन्होंने जाना कि अब हमारा तप सिद्ध हो गया। यह सोच समझकर तपस्वी शहरमें भिक्षा मांगने एक पतिव्रता स्त्रीके घर गया और पुकारा कि अलख ! परंतु बहुत देरके पीछे एक स्त्री भिक्षा लेकर आयी। तपस्वीजी कहते क्या हैं–" कि इतनी देरमें भिक्षा लायी है, जा हम इस भिक्षाको नहीं लेते " यह कह क्रोधकी दृष्टिसे उस स्त्रीको देखा, तब उसने कहा कि " महाराज ! मैं चिड़िया नहीं हूं जो आपकी दृष्टिसे भस्म होकर गिर पड़ूंगी " पतिव्रता स्त्रियोंका ऐसा ही माहात्म्य होता है।

भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर मेरे दोनों पुत्रोंको मार डाला है कि, जिससे मैं अपुत्रिणी हो गयी हूं ॥ ३७ ॥ दितिके यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ कश्यपजी अतिविमन हुए और अछता-पछताकर कहने लगे कि आज हमको बड़ा भारी अधर्म उपस्थित हुआ, क्योंकि भगवत्रूप इन्द्र और असुर ये सबही मुझे एकसे हैं ॥ ३८ ॥ अहो ! विषय और इंद्रियोंके सुखमें रत हो जानेसे स्त्रीरूप मायाने मेरे मनको क्या ही अपने वशमें कर लिया है ? निःसंदेह हमको नरकमें गिरना पड़ेगा ॥३९॥ इस अबलाका क्या अपराध है ? यह तो अपने स्वभाव हीके पीछे चली है, मैं जो अपने स्वार्थको नहीं जानता, इस कारण मुझे ही धिक्कार है। किस कारणसे हम जितेन्द्रिय नहीं हुए ॥४०॥ स्त्रियोंका वदन शरदकालके कमलके तुल्य खिला हुआ होता है, वचन इनके दोनों कानोंके लिये अमृत होते हैं, परन्तु हृदय छुरीकी धारका सहोदर

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥ ३८ ॥ अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ॥ गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ् मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥४०॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥ ४१ ॥ नहि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥ प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ॥ उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥ ४४ ॥

भाई है, इस कारण ऐसी किसीकी सामर्थ्य है ? जो इन स्त्रियोंके मनकी चेष्टा जान सके ॥ ४१ ॥ जो कि स्वार्थकी कामनासे आत्माके समान प्रिय रूपमें प्रतीयमान होती तो हैं परन्तु वास्तवमें उनके कोई प्रिय नहीं होता, वे अनर्थके लिये पति, पुत्र और अपने भ्राताको भी नष्ट कर सकती हैं ॥४२॥ जो कुछ भी हो हमने इस स्त्री दितिको "वर देता हूं" ऐसा जो कहा है यह मेरा कह देना, और इन्द्रका वध, ये दोनों ही अनुचित हैं, अतः इस विषयमें इस समय यही उचित है कि, पुत्रके लिये इसको वैष्णव व्रतका उपदेश करूं जिससे कि इसका चित्त शुद्ध हो जानेपर इन्द्रके प्रति जो क्रोध इसको उत्पन्न हुआ है वह कदाचित् छूट भी सकता है। और यह व्रत बहुत समयमें पूरा हो सकता है, यदि कुछ भी इसमें खोट हुई तो इंद्रका मारनेवाला पुत्र न उत्पन्न हो सकेगा ॥ ४३ ॥ हे कुरुनंदन ! भगवान् कश्यपजी

इस प्रकारसे चिंता करके कुछेक कोपायमानके समान हो फिर अपने आप ही अपनी निंदा करते हुए ॥ ४४ ॥ उसके पीछे दितिसे बोले कि हे भद्रे ! यदि तुम एक वर्षतक यथावत्व्रत धारण कर सकोगी तो तुम्हारे गर्भसे इन्द्रका मारनेवाला और देवताओंका बंधु एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥४५॥ यह सुनकर दिति हर्षित हो बोली कि बहुत अच्छा ? मैं यह व्रत धारण करूंगी, उस व्रतमें जो-जो आवश्यक हैं और जो-जो विषय इस व्रतमें हानिके देनेवाले हैं और जो-जो उसमें वर्जित नहीं हैं, वरन् अभ्यनुज्ञात हैं वह समस्त मुझे आप उपदेश कीजिये ॥ ४६ ॥ कश्यपजीने कहा कि उस व्रतको करके किसी प्राणीकी हिंसा न करे,किसीके प्रति क्रोधसे शाप न दे,झूठ न बोले, नाखून न कटवाये, रोम न काटे, अमंगल मृतकका कपाल या हड्डी आदि अपवित्र वस्तुका स्पर्श न करे ॥ ४७ ॥ नंगा हो जलमें खड़ेहोकर

कश्यप उवाच ॥ पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥ दितिरुवाच ॥ धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ॥ यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद् भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ॥ न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥ ४७ ॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥ न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥ नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ॥ भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥ ४९ ॥ नोच्छिष्टाऽस्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिताऽसंयतवागसंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥ नाधौतपादाऽप्रयता नार्दपान्नोउदक्छिराः ॥ शयीत नापराङ्‌ नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥ ५१ ॥

स्नान न करे किसीपर क्रोध न करे, दुष्टोंके साथमें बातचीत न करे, धुला वस्त्र न पहने ? एक बार धारणकी हुई मालाको फिर दूसरी बार न पहने ॥४८॥ जूठा अन्न, वा जिस अन्नमें चीटियें पड़ी हों उसको वा मांस मिला हुआ अन्न न खाय, शूद्रोंका लाया हुआ अन्न हो अथवा रजस्वलाका छुआ अन्न हो उसको न खाय और अंजली बांधकर जल न पिये ॥४९॥ हे सुन्दरि ! जिस समय घरसे बाहर निकले उस समय जूठा मुख न हो,विना कुल्ला किया हुआ मुख,संध्याके समय खुले केश,शरीरको विना शृंगार किया न रक्खे। वाणीको जीत ले और नंगा होकर इस व्रतमें घूमना न चाहिये ॥ ५० ॥ हे दिति ! इस व्रत करनेवालेके शयनमें आठ विषय निषिद्ध हैं, यथाः-इस व्रतमें

दोनों पांवको विना धोये अथवा अपवित्र, वा गीले पांव रखकर शयन नहीं करे, उत्तरको शिर करके या पश्चिमको शिर करके भी शयन करना उचित नहीं है और नंगा या किसी दूसरेके साथ शयन करना और दोनों संध्या मिलनेके समय शयन करना यह सब बातें वर्जित हैं ॥ ५१ ॥ हे दिति ! इस व्रतमें जो कार्य करने होते हैं, उनको भी मैं कहता हूँ,तुम श्रवण करो–धुले हुए कपड़े पहन कर पवित्र और समस्त मंगलोंसे संयुक्त होकर प्रथम भोजनके पहले गौ विप्र और लक्ष्मी नारायणकी पूजा करे॥५२॥सुहागन स्त्रियोंको सुगंध, माला, वस्त्र, भूषण, उपहार देकर पूजा करे और अपने पतिकी भी पूजा करके सेवा करे और उसको अपने कोष्ठमें बैठाकर रात-दिन चिंता करे ॥ ५३ ॥ निर्विघ्न यह व्रत पूरा हो जानेपर अभिलषित पुत्रकी उत्पत्ति होती है। तुम यदि एक वर्षतक इस व्रतको धारण करो और जो किसी प्रकारसे

धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ्छ्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ पतिं चार्च्योपतिष्ठेतध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥ ५३ ॥ सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥ ५४ ॥ बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥ ५६ ॥ नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ॥ पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७ ॥

तुम्हारा यह व्रत लोप न हुआ तो तुम्हारे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जब कश्यपजी ऐसा कह चुके तब मनस्विनी दितिजीने "इस प्रकारसे ही करूंगी" अत्यन्त प्रसन्न होकर इस व्रतको स्वीकार किया और कश्यपजीसे गर्भधारण करती हुई और कश्यपजीने जिस प्रकारसे व्रतका उपदेश किया था, उसको यथार्थ समझकर दिति उसका आचरण करने लगी ॥ ५५ ॥ अपनी सौतेली माताका यह अभिप्राय जानकर देवेन्द्र इंद्र अपने स्वार्थको विचार आश्रममें बैठी हुई दितिके समीप आये और अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगी ॥५६॥ इंन्द्र प्रतिदिन दितिजीके लिये फल, मूल, समिधा , कुशा, पत्र, फूल, अंकुर, मही, जल यह सब वस्तु समय-समय पर

१. शंका–दितिने इन्द्रके नाश करनेके लिये गर्भको धारण किया, तब इन्द्र दितिके गर्भके नाश करनेके लिये कपट करके, दितिका सेवन करने लगा, परंतु दितिको क्यों नहीं जान पड़ा कि यह इन्द्र है, क्योंकि दिति कुछ मूर्ख नहीं थी बड़ी चतुर थी, यह संदेह है ?

लाने लगे ॥५७॥ हे राजन् ! व्याध जिस प्रकार मृगोंको धोखा देनेके लिये कभी-कभी स्वयंभी मृगका वेष धारण कर लेता है, वैसे व्रतमें छिद्र पानेकी कामनासे इंद्र कपटी साधुका वेष धारण करके व्रत करती हुई दितिके निकट आये ॥ ५८ ॥ यद्यपि इंद्र बड़े सावधान होकर सदा ही देख भाल करते रहे, परंतु शीघ्र उनके व्रतमें छिद्र न मिल सका, तब तो इन्द्रको बहुत ही चिंता हुई, कि अब किस उपायसे हमारा मंगल होगा ? ॥ ५९ ॥ इतनेमें ही कुभाग्यसे एक दिन दितिको मोह आया कि वह सन्ध्या समय जूठे मुख, व्रतसे कर्षित, विना कुल्ला किये विना चरण धोये सो गयी ॥ ६० ॥ योगेश इन्द्र यह अवसर पाकर योगमायाकी सहायतासे दितिके उदरमें

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ॥ प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥ ५८ ॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ॥ चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥ एकदा सातु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौताऽङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥६२॥ ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ॥ नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

प्रवेश करते हुए। दिति अचेत होकर नींद ले रही थी, उसने इस बातको कुछ न जाना ॥ ६१ ॥ इसके पीछे इन्द्रने उदरमें प्रवेश करते ही अपने हाथमें लिये हुए वज्रसे दितिके गर्भको (जिसकी प्रभा कनकके तुल्य प्रकाशमान हो रही थी) सात खण्ड करके काट डाला, इसके उपरान्त कट जाने पर यह गर्भके सातों खण्ड रुदन करने लगे, तब इन्द्रने उनके प्रति "रुदन मत करो" इस प्रकारका स्नेहयुक्त वचन कहकर फिर एक-एक खण्डके सात-सात खंड कर डाले ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जब इन्द्रने उस गर्भके (४९) खण्डकर डाले तब वह समस्त खण्ड हाथ जोड़ कर देवराज इन्द्रसे बोले कि हे इन्द्र ! क्यों हमारी जान लेनेके लिये तैयार होते हो ? हम सब मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं,

उत्तर–जब दितिने इन्द्रके नाश करनेका उपाय किया तब भगवान्‌ने दितिसे निषेध किया कि, अम्बाजी अभी ! इन्द्रका पुण्य बहुत है, अभी इन्द्रका नाश किसी प्रकार न होगा, वृथा परिश्रम मत करो । दितिने भगवान्‌की आज्ञाको नहीं माना, इन्द्रके नाश होनेके लिये गर्भ धारण किया । भगवान्‌के वचनोंको नहीं माना इस कारणसे इन्द्रके कपटको नहीं पहिचाना, मूर्ख हो गयी ।

इस कारण हमें मत मारो ॥६३॥ तब इन्द्र बोले कि डरो मत,तुम लोगोंके साथ हमारा दूसरा भाव नहीं है,तुम लोग हमारे पार्षद होगे॥६४॥ हे राजन् ! यद्यपि इन्द्रने वज्रसे काटकर दितिके गर्भको (४९) उनचास खण्ड कर डाला, परन्तु भगवान्की कृपासे वह गर्भ किसी प्रकार नष्ट नहीं हुआ कि जिस प्रकार भगवान्की दयासे अश्वत्थामाके अस्त्रने तुम्हारा विनाश नहीं किया था ॥६५॥ हे कौरवेश ! जो भगवान् आदिपुरुषको केवल एक बार ही पूजा करता है,वह भी उनका पार्षद हो जाता है और दितिने तो प्रायःएक वर्ष तक उन भगवान् वासुदेवकी पूजा की थी, वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ थोड़े ही दिन शेष अर्थात् बाकी रहे थे, फिर भला उसके गर्भका एक ही बार नष्ट हो जाना कैसे संभव है ? ॥ ६६ ॥ भगवान्के प्रसादसे वह सर्व मरुद्गण अर्थात् गर्भ सब ही इन्द्रके साथ मिलकर (५०) पचास देवता हुए। इसके पीछे

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥६४॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासाऽनुकम्पया ॥ बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ॥ संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥६६॥ सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७ ॥ दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ॥ इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥ ६८ ॥ अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ॥ अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥ ६९ ॥ एकः संकल्पितः पुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथम् ॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥

माताका दोष छुड़ाकर उन लोगोंको सोमपान कराकर देवता बना लिया गया॥६७॥ जो कुछ भी हो, दिति अबतक सो रही थी, जब उसकी निद्रा छूटी और उठकर उसने देखा तो अनलके समान दीप्तिमान इंद्रके सहित (५०) पचास कुमार खड़े हैं॥६८॥ यद्यपि देखते ही दितिको सन्तोष उत्पन्न हुआ तथापि उन्होंने कुछ देर पीछे इन्द्रसे कहा कि हे तात ! हमने आदित्य लोगोंके भय देनेवाले पुत्रकी कामना करके इस अति कठिन व्रतका आचरण किया था ॥ ६९ ॥ अदितिकी सन्तानका संहारकारी एक पुत्र हो, यही हमारा संकल्प था, फिर(४९) उनचास पुत्र किस प्रकारसे हुए ? हे पुत्र ! इस भेदको तुम कुछ जानते हो, तो यथार्थ कहना, हमारे निकट झूठ न बोलना ॥ ७० ॥

दितिके अटपट वचन सुनकर इन्द्रजीभी कपटरहित होकर बोले कि हे अम्ब ! हम तुम्हारी यह कामना जानकर ही तुम्हारे निकट आये थे, इतने दिनोंसे केवल छिद्र ढूँढ़ रहे थे,आज अवसर पाकर उदरमें प्रवेश कर तुम्हारे इस गर्भको काट डाला । हे अम्ब ! जिसकी बुद्धि स्वार्थमें ही लगी रहती है, ऐसे पुरुष बहुधा धर्मके प्रति दृष्टि नहीं दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ हमने प्रथम तुम्हारे गर्भको सात खंड करके काट डाला, वह सात पुत्र हुए, फिर हमने उन खण्डोंमेंसे एक-एक खण्डके सात-सात खण्ड किये जिससे यह (४९) उनचास पुत्र हुए॥७२॥परंतु जब कि हमने देखा कि इससे भी कुछ कुमार नहीं मरे तब हमने परम आश्चर्य देखकर ऐसा निश्चय किया कि तुमने आदि पुरुष भगवान्की आराधना करके आनुषङ्गिक सिद्धि पायी है ॥ ७३ ॥ हे मातः ! जो पुरुष निराकांक्षी होकर भगवान्की आराधना

इन्द्र उवाच ॥ अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ॥ लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥ ७१ ॥ कृतो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥ ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषङ्गिणी ॥ ७३ ॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ॥ ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ॥ क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाद त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥

करनेका यत्न करते हैं और उस आराधनाके आगे मोक्ष पदार्थको भी कुछ नहीं समझते, वे अपने स्वार्थमें अत्यन्त कुशल हैं ॥ ७४ ॥ इसलिये जो भगवान् हरि जगत्-संसारके ईश्वर हैं,वह आराधना किये जानेसे अध्यात्म दिया करते हैं,यह विचार करनेसे बुद्धिमान् कौन पुरुष भोगका वर मांगेगा ? क्योंकि विषय भोग तो नरकमें भी प्राप्त हो जाता है ॥ ७५ ॥ परन्तु हे महत्तमे मातः ! मुझ मूर्खने जो दुर्जनता तुम्हारे साथ प्रकट की है,उसको तुम क्षमा करो; यह भी बड़े भाग्यकी बात है कि तुम्हारा गर्भ मृतक होकर भी फिर जी उठा ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके पीछे दिति शुद्ध भावसे प्रसन्न होकर इन्द्रको अनुमति देती हुई,तब देवराज इन्द्र उनको वारंवार

प्रणाम करके मरुद्गणोंके सहित सुरपुरको चले गये ॥७७॥ हे परीक्षित् ! मरुद्गणोंका जन्मवृत्तान्त जो कुछ तुमने पूछा था,वह सब वर्णन किया, अब क्या श्रवण करनेकी इच्छा है,वह कहो । शीघ्र कहो विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥७८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भाषाटीकायां एकोनपंचाशन्मरुज्जन्मवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ दोहा–कश्यप जो दितिसो कह्यो, व्रत हरि करन प्रसन्न । सो भाषत विस्तार युत, करत ज्ञान उत्पन्न ॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! आपने जो पुंसवन व्रत कहा, कि जिससे विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नता होती है,उसका वृत्तान्त विस्तारसे जाननेकी हम वासना करते हैं ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अगहनके महीनेमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे पतिकी आज्ञा लेकर स्त्रियाँ इस व्रतको जो कि कामका दाता है,प्रारंभ करें॥२॥ब्राह्मण लोगोंसे

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीभाग० म० षष्ठ० मरुद्गणजन्मानुकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ॥ तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ॥ स्नात्वा शुक्लदती शुक्लेवसीतालंकृताम्बरे ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ॥ महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ॥ जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥

सम्मति लेकर दंतधावन कर,नहाय धोय पवित्र हो मरुद्गणोंके जन्मका वृत्तान्त सुन,फिर शुक्ल वस्त्र पहनकर और शृंगार कर प्रातःकालिक भोजनके पहले लक्ष्मीके सहित भगवान् नारायणकी पूजा करें ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पूजन करनेके समय जिन मंत्रोंके द्वारा नमस्कार करना होता है,वह हम तुमसे कहते हैं,वह श्रवण करो।"हे भगवन्!आप ही सबमें व्याप्त हो रहे हैं,आपको और किसीसे कोई कार्य नहीं है इसलिये आपको हम नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! आपको किसीकी चाहना नहीं है, आप पूर्णकाम हैं, महा विभूतिके अर्थात् लक्ष्मीजीके पति हैं ! आपमें अणिमादिक सर्व सिद्धियाँ विराजमान हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे ईश ! आप दया, धैर्य, तेज,सामर्थ्य और

महिमा इत्यादिमें व दूसरे सर्व गुणोंमें यथावत् संतत सेवित हैं, इस कारणसे आप सदा भगवान् कहलाये जाते हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं" ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे भगवान्को नमस्कार करके फिर लक्ष्मीजीको नमस्कार करे,यथा-हे मायामाये! हे विष्णु पत्नि!! तुममें परमेश्वरके समस्त निरपेक्षत्वादि लक्षण वर्त्तमान हैं,इस लिये हे महाभागे! हमारे प्रति प्रसन्न होइये! हे लोकमातः!तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥६॥ उसके पीछे सावधान होकर "महानुभाव भगवान् महापुरुषको नमस्कार करते हैं,महाविभूतिके सहित उन महा

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति ॥ अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीत विभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत ॥ हविश्शेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥ ८ ॥

विभूतिपति भगवान्के लिये हम पूजोपहारदेते हैं" इस मन्त्रसे भगवान्का आवाहन करके पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, वसन, भूषण, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादि विविध भांतिके उपहार दें[१] ॥ ७ ॥ इसके पीछे अग्नि स्थापना करके उन सब उपहारोंके जो कुछ बचे हुए द्रव्य रहें,उनसे अग्निमें बारह आहुतियां देना। होमका मन्त्र यह है-"भगवान् महापुरुष महाविभूति पतिको नमस्कार स्वाहा"॥८॥हे राजन्! भगवान् विष्णु और महामाया श्री यह दोनों देवता ही वरके देनेवाले हैं, इनसे ही समस्त आशिष वचनोंकी उत्पत्ति होती है, लोकमें यदि

१. शंका-छठे स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायके सातवें श्लोकमें विष्णुके वाहन आदिके पूजनका मन्त्र ओंकार सहित दितिसे कश्यपजीने कहा था आठ और नौ श्लोकमें होम करनेकी विधि कही थी, परंतु ओंकारको और वेदके मन्त्रोंको स्त्री कैसे पढ़ सकती है,क्योंकि स्त्रियोंको वेद पढ़ना और ओंकार मन्त्र पढ़ना सुनना निषेध है, दितिको कश्यपजीने सुनाया तो ठीक है. महात्मा है परंतु दितिने पठन कैसे किया होगा, यह शंका हमको बड़ी भारी है ?

उत्तर-दिति पतिव्रता स्त्री थी, अपने पति जो कश्यपजी थे, उनसे ओंकारका और वेदका मन्त्र पढ़कर आप दूसरा जो अक्षर है स्तोत्रमें जैसे-" नमो भगवते"इसको आदि लेकर उनको पढ़ने लगी इस लिये उसको दोष नहीं हुआ ओंकार और वेद मन्त्र आप पढ़ती तब दोष होता, अपने पतिसे पढ़वाकर आप सिद्ध कर लिया ।

सर्व प्रकारसे सम्पत्तिकी अभिलाषा करे तो नित्य भक्ति भावसे इन लक्ष्मी नारायणकी ही पूजा करे॥८॥और भक्ति द्वारा नम्रचित्त होकर पृथ्वीमें झुककर दण्डवत प्रणाम करे इसके पीछे दश वार मन्त्र पढ़कर स्तोत्रका पाठ करे ॥९॥ वह स्तोत्र यह है–"हे भगवन् ! हे भगवति ! आप दोनोंजन विश्वके विभु और जगत्के परमकारण हैं, हे भगवन् ! यह प्रकृति जो कि सूक्ष्म मायाकी महाकठिन शक्ति है ॥ १० ॥ आप हमारे भी अधीश्वर हैं इसलिये आप ही साक्षात् परम पुरुष हैं। हे प्रभो ! आप ही सर्व यज्ञ हैं, सब यज्ञमें यजन पूजारूप महालक्ष्मी हैं, सबके फलको भोगनेवाले एक आपही हैं ॥११॥ और यह देवी लक्ष्मीजी सत्त्वादि गुणोंकी प्रकाशक और भोगनेवाली है, हे प्रभो !

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ॥९॥ युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा माया शक्तिर्दुरत्यया ॥ १० ॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेवपुरुषः परः ॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ ११ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥ नामरूपे भगवति प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १२ ॥ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ॥ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः॥ १३ ॥इत्यभिष्टूय वरदं श्री निवासं श्रिया सह ॥ तन्निस्सार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥१४॥ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१५॥

आप ही सर्व प्राणियोंके आत्मा हो। श्री,शरीर,इंद्रिय और प्राणस्वरूप हो,आप ही नाम और आप ही रूप हो, और आप ही इन दोनोंके प्रकाशक और आप ही इन दोनोंके आधार हो ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! आप ही दोनों जन परमेष्ठी और त्रिलोकीके वर देनेवाले हो,हे उत्तम, श्लोक ! आपके प्रसादसे हमको नित्य महा-महा आशिष मिलें अर्थात् हमारे मनोरथ सिद्ध हों ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे लक्ष्मी-जीके सहित वर देनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्की स्तुति करके निवेदनकी हुई सब उपाहारकी वस्तुओंको वहांसे हटा ले और आचमन करके पूजा करे ॥ १४ ॥ इसके पीछे चित्तको भक्तिसे नम्र करके फिर स्तोत्रसे स्तुति करे। यज्ञके उच्छिष्टको सूँघे और पूजा करे ॥ १५ ॥

फिर व्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री अपने पतिको ईश्वर समझकर उसकी प्यारी-प्यारी वस्तु देकर पतिकी सेवा करे और पति भी प्रेमवान् होकर स्त्रीके किये हुए ऊँचे-नीचे सब कर्मोंका पालन करे ॥ १६ ॥ हे राजन्! इस पुंसवन व्रतको स्त्री पुरुष दोनों जनोंमेंसे एक भी कोई करे तो भी यह दोनोंको ही फल देनेवाला होगा। हे राजन्! स्त्री यदि व्रत करनेके अयोग्य हो,तो पति ही सावधान चित्त होकर इस व्रतका अनुष्ठान करे॥ १७॥ श्रीविष्णु भगवान्का यह व्रत कभी नाश करनेके योग्य नहीं है। हे राजन्! भगवान् विष्णुका यह व्रत धारण करनेसे किसी प्रकारसे संतानका वियोग नहीं रहता,अवश्य संतान होती है। इस व्रतमें ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियोंको माल्य,चंदन,मिष्टान्न और गहने देकर पूजा करे और नियम

पतिंच परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥ बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १६ ॥ कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १७ ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्ध बलिमण्डनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१८॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्म विशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥१९॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२०॥ श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयः शृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ पाकयज्ञ विधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥ २१ ॥

धारण कर भक्तिसहित दिन-रात श्री विष्णु भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करता रहे ॥ १८ ॥ इसके पीछे आराध्य देवताको, उनके निजधाममें वासार्थ विसर्जन दे। उनके आगे निवेदन किये हुए मिष्टान्नमें से आत्माकी शुद्धि और सर्व कामसमृद्धिके लिये कुछ एक भोजन करे ॥१९॥ इस प्रकारसे पूजाका अनुष्ठान बारह मास (एक वर्ष) बिताकर कार्त्तिक मासमें देव उठनी एकादशीसे पूर्णमासीतक ब्राह्मणादि जिमाकर इस व्रतका विसर्जन करे। कार्तिक मासके शेष दिनको उपवास करना उचित है॥२०॥प्रभात होनेपर आचमन इत्यादि कर प्रथमके ही समान भगवान्की पूजा करके गरम दूधमें घृत मिष्टान्न मिलाकर स्रुवेसे हवन करे पाकयज्ञके विधानसे अर्थात्

पार्वणीय स्थालीपाक प्रकरणसे दुग्धपक्व घृतसहित चरु देकर प्रति अग्निमें बारह आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥२१॥ फिर ब्राह्मणगण प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दें,शिर चढ़ाकर उनको ग्रहण करे और भक्तिपूर्वक मस्तक नवाय प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर फिर आप भोजन करें ॥२२॥ उसके पीछे आचार्यको आगे कर वाणीको जीतता हुआ बंधु-बांधवोंके सहित स्त्रीके निकट जाय,उसको वह बचा हुआ चरु (जिससे शत पुत्र उत्पन्न होकर सौभाग्य होता है)दान करे॥२३॥हे राजन्! भगवान् विष्णुजीका यह व्रत पुरुषसे यथाविधि कियेजानेपर यह मनवांछित लाभ देता है और स्त्रियाँ इस व्रतको करनेसे सुहाग,संपत्ति,सन्तान, अवैधव्य, यश और सद्गृहको प्राप्त होती हैं ॥२४॥ कुमारी

आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैःसमीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्याभुञ्जीत तदनुज्ञया । ।२२ ॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥ २३ ॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २४ ॥ कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २५ ॥ विन्देद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २६ ॥

कन्या इस व्रतको करनेके प्रभावसे सर्व लक्षण संपन्न पतिको प्राप्त करती हैं,और विधवा स्त्री जो इसव्रतको करे तो उनके पाप क्षय हो जाते और वह स्वर्गकी गति(मोक्ष)को प्राप्त होती है, जिसके बालक मर जाते हों, ऐसी स्त्री जो इस व्रतको करे तो उसके बालक जियें । जो कुभागिनी स्त्री इस व्रतको करे तो सुभग हो जायँ और जो कुरूप स्त्री इस व्रतको करे तो मनोहररूपवाली हो जायँ ॥२५॥ हे राजन् इस व्रतके माहात्म्यसे रोगीजन बहुत कालके रोगसे छूट जाते हैं और इंद्रियोंके सहित समर्थ देहको लाभ कर सकते हैं । हे राजन् । जो पुरुष शुभकृत्यके समय इस व्रतका वृत्तान्त पढ़े या सुने, तो उसके पितरोंकी और देवताओंकी अत्यन्त तृप्ति हो जायगी ॥ २६ ॥

और होमके अंतमें अग्नि, श्रीलक्ष्मीजी और श्रीहरि यह संतुष्ट होकर सब कामना पूर्ण करेंगे। हे महाराज ! जो कुछ आपने पूछा, वह मरुद्गणोंका यह पुण्यजनक और दितिके इस महद्व्रतका वृत्तान्त हमने आपके निकट वर्णन किया ॥२७॥ अब भगवान्की कृपासे

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्त कामान्होमावसाने हुतभुक्छ्रीर्हरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां वैयासिक्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रत-कथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

समाप्तोऽयं षष्ठस्कन्धः ॥ ६ ॥

षष्ठस्कन्ध समाप्त हो गया इस लिये एक भजन लिखता हूँ * इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पुंसवनव्रतवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ इति षष्ठस्कन्धसमाप्त ।

---

* भजन—श्रीभगवान् भक्त सुखदायक, पूजत आश दासके मनकी ॥दुष्ट भार भूभार उतारत, रक्षा करत रहत मुनि जनकी । भक्त हेतु करपर गिरिवर धर, की सहाय गोपी गोपन की ॥ संतनहित तजि अवध पुरीको, सैर करी बरसोंलों वनकी । खर दूषण त्रिशिरादि मारकर, भस्मकरी लंका रावनकी । हरि हरि हरि द्रौपदी पुकारी, राखो लाज आय निज जनकी । कोटिन पट बढ़ाय दिये झटपट, चकित भई मति दुःशासनकी ॥ जब जब भीर परत भक्तन पर, आय सहाय करत त्रिभुवनकी । शालिग्राम यही वर मांगत, चरण शरण रहूँ ब्रजमोहनकी ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते षष्ठस्कन्धः समाप्तः

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते सप्तमस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

नारद
धर्म

दैत्य
हिरण्यकशिपु

ब्रह्मा
हिरण्यकशिपु

हि.क.
नारद
देव

हिरण्यकशिपु
प्रल्हाद
गुरु
दैत्य

दैत्य
हिरण्यकशिपु
प्रल्हाद

प्रल्हाद
नृ. सिं
लक्ष्मी.
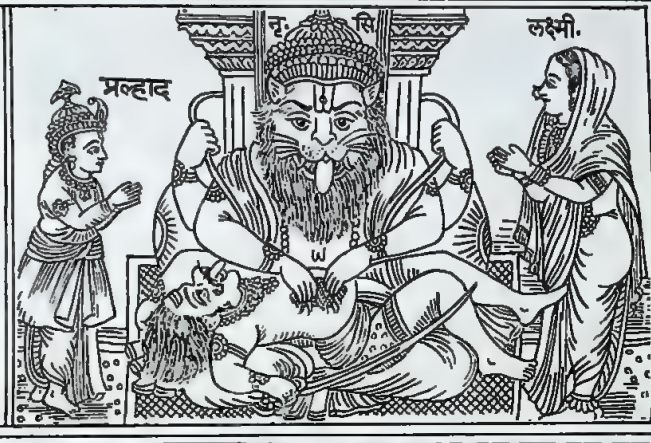
सोरठा—गिरजानन्द गणेश आनँदनिधि ऋद्धि सिद्धि भवन ॥ मंगल करन हमेश, मंगलसुत मंगल करहु ॥ १ ॥ जय श्रीनन्दकिशोर, मोर मुकुट मुरली मृदु घोर, सुनो चहत मन मोर यह ॥ २ ॥ जय ब्रजचन्द नन्दनँदन गोपनसखा ॥ सुखदीजै सुखकन्द सुखासीन सुखके भवन ॥ ३ ॥ दोहा—जय जय जय श्रीराधिका, जय श्रीनन्दकुमार ॥ जय जय गोपी गोप सब, मम उर करहु विहार ॥ १ ॥ पहिले मैं द्विजशापसे, कनककशिपुकर क्रोध ॥ भक्त पुत्र प्रह्लादसे, राखन लग्यो विरोध ॥ २ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! हे ब्रह्मन् ! श्रीभगवान् सब जीवमात्रको समदृष्टिसे देखते हैं और सबके प्रिय और सुहृद रूप हैं, फिर इन्द्रके लिये दैत्योंको क्यों मारा ? इस

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ॥ इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥ नह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ॥ संशयः सुमहान् जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥ गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥

बातसे विषम भाव ईश्वरमें विदित होता है ॥१॥ साक्षात् सच्चिदानन्दरूप विमल और दिव्यस्वरूप जिनकी आत्मा, उनको न तो कुछ देवताओंसे प्रीति, न कुछ असुरोंसे शत्रुता और कुछ उनसे उद्वेग भी नहीं है, क्योंकि वे तो निर्गुण हैं ॥ २ ॥ हे सुमहाभाग ! श्रीनारायणके गुण विचार कर हमको बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ है इस मेरे संशयको दूर कर दीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! भगवत्‌के अद्भुत चरित्रोंके विषयमें आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जहां भागवतका माहात्म्य है, वह वहां सदा भगवान्‌की भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ ४ ॥ उस पावन पवित्र अद्भुत चरित्रको परमपुण्य श्री नारदादि ऋषियोंने गाया है, श्रीवेदाचार्य,

वेदप्रवर्तक महामुनि व्यासजीको नमस्कार करके श्रीभगवान् वासुदेवकी कथा वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ यद्यपि ईश्वर अपनी प्रकृतिसे परे, अजन्मा, निर्गुण, अज, अव्यक्त और सब संसारसे पृथक् भी है तो भी अपनी मायाके गुणोंमें प्रवेशकर मित्र और शत्रुभावको प्रकट कर मरनेवाला और मारनेवाला भलीभांति विदित होता है ॥६॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह प्रकृतिके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं और जो ये गुण परमात्मामें हों तो प्रकृतिपुरुष की नाई परमात्मामें भी विषमता होनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता है। हे राजन् ! उनमें कभी कोई गुण बढ़ जाता है, कभी कोई गुण घट जाता है ॥ ७ ॥ जयके समय सत्त्वगुण बढ़कर देवता और ऋषियोंको बढ़ाता है

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥ ७ ॥ जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते ॥ विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥

पराजयके समय रजोगुण बढ़कर असुरोंकी वृद्धि करता है और जब तमोगुण बढ़ता है तब यक्ष राक्षस दोनोंकी अधिकता होती है, जिस-जिस समय जैसा-जैसा होता है, उस-उस समयके अनुसार भगवान् वैसे ही हो जाते हैं ॥८॥ जैसे पावक एक रूप है, परंतु काष्ठादिकमें अनेक रूपसे दृष्टि आता है, जैसे जलका एक ही रूप है परन्तु रंगोंमें मिलकर अनेक प्रकारका भासने लगता है, ऐसे ही भगवान् एक रूप हैं, परंतु ज्योति आदिकी नाईं प्रकाश करते हैं जिसके संग पृथक् प्रतीत नहीं होते, परंतु देवता, दैत्य, असुरोंमें अलग-अलग दिखायी

१. शंका—राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने कहा कि व्यासजीको नमस्कार करके हरिकी कथा अब मैं कहूंगा, इस बातके कहनेसे यह विदित होता है कि सातवें स्कन्धसे पहले जो छः ६ स्कन्ध वर्णन किये; उनमें हरि भगवान्की कथा नहीं है ?

उत्तर—श्रीशुकदेवजीने ऐसा विचार करके राजा परीक्षित्से नहीं कहा था कि, छः स्कन्धोंमें भगवान् हरिकी कथा नहीं है, अब हरि भगवान्की कथा मैं कहता हूं । श्री शुकदेवजीने जान लिया कि प्रह्लादकी रक्षा करनेके लिये भगवान् नृसिंहका रूप धरकर प्रकट होंगे, शास्त्रमें सिंहका नाम हरि है, इसलिये शुकदेवजीने कहा था कि, हे राजन् ! हरि जो सिंहरूप भगवान् हैं उन हरि भगवान्की कथा अब मैं कहता हूं, श्री शुकदेवजी महाराजने ऐसा कहा था ।

देते हैं। आत्मामें स्थित हो आत्माको मथन कर महात्मा लोग हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं, विना मथन किये दारुसे अग्नि प्रकट नहीं होती ऐसे विना आत्माका मथन किये भगवान् प्रकट नहीं होते ॥ ९ ॥ आत्मा जीवके भोगके लिये जिस समय परमेश्वरकी इच्छा देह (प्रजा) के रचनेकी होती है, तब वह अपनी मायामें साम्य भावसे स्थित जो रजोगुण हैं उसे अलग रचते हैं। जब विचित्र पुरियोंमें रमण करनेकी इच्छा होती है तब सत्त्व गुणकी अधिकता करते हैं जब शयनकी इच्छा होती है तब तमोगुणको अधिक करते हैं ॥ १० ॥ हे नरदेव ! प्रधान पुरुषसे सत्य कर्त्ता ईश्वर सबके आश्रय विचरते हैं और कालको आप ही रचते हैं। हे राजन् ! जब यह कालके ईश्वर सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय देवताओंको रचकर बढ़ाते हैं। देवता जिनको परमप्रिय ऐसे ईश्वर देवताओंके शत्रु असुरोंको

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येव पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १० ॥ कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत् ॥ य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यजः ॥ तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥ अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥१२॥ दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १३ ॥ तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥ १४ ॥

रजोगुणके समय बढ़ाकर मारते हैं। यदि यह ईश्वर निश्चय करके तमोगुण बढ़ाकर यक्ष और राक्षसोंको बढ़ाते हैं और संहार करते हैं ॥ ११ ॥ हे राजन्! राजसूय यज्ञमें जिस राजा युधिष्ठिरका कोई शत्रु नहीं था, उस राजा युधिष्ठिरने ऐसा ही प्रश्न किया था तब युधिष्ठिरसे प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक श्री नारदजीने यह इतिहास कहा था ॥१२॥ राजसूय यज्ञमें महाअद्भुत चरित्र राजा युधिष्ठिरने देखा कि चेदिदेशके नरेश शिशुपालको भगवान्ने चक्रसे मारा और शिशुपाल भगवान् वासुदेवमें सायुज्य मोक्षको प्राप्त हो गया ॥ १३ ॥ उसी समय उस यज्ञमें सब मुनिजनोंके सम्मुख पाण्डुसुत राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त विस्मित होकर बैठे हुए देवर्षि नारदजीसे पूछा॥१४॥

युधिष्ठिर बोले कि जो परमतत्त्वरूप भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति परम एकांत महात्मा पुरुषोंको मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है, वह निरन्तर विद्वेषी शिशुपालको प्राप्त हुई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ १५ ॥ हे मुने ! इन सब बातोंके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा है देखो ! भगवान्‌की निंदा करनेसे राजा वेनको ब्राह्मणोंने नरकमें डाल दिया था ॥ १६ ॥ उसी प्रकार इस दमघोषके पुत्र महादुर्बुद्धि शिशुपालको भी नरकमें डालना चाहिये था, देखो ! इस चाण्डाल शिशुपाल और दन्तवक्रने जिस दिनसे जन्म लिया उस दिनसे दोनों ही आजतक श्रीगोविंदसे दुर्भाव ही रखते थे और उनकी निंदा करते रहते थे ॥१७॥ और वारंवार साक्षात् अविनाशी परब्रह्म विष्णु भगवान्‌को गालियाँ देते रहते थे,फिर जब ऐसे क्रूरकर्मी थे तो उनकी जीभमें कोढ़ होकर क्यों न गलकर गिर गयी ? और नरकमें भी

युधिष्ठिर उवाच ॥ अहो अत्यद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकान्तिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥ १५ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ॥ भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥१६॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ॥ संप्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥ शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥ १८ ॥ कथं तस्मिन्भगवति दुरवग्राहधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥ १९ ॥ एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवंस्तत्र कारणम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वन्त्यास्तत्सदः कथा ॥२१॥ नारद उवाच ॥ निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ॥ प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥ २२ ॥

न गये, इसका क्या कारण ? ॥ १८ ॥ देखो जिनके स्वरूपकी प्राप्ति होनी योगीजनोंको भी महादुर्लभ है, उन भगवान्‌में विना प्रयत्न किये सबके देखते-देखते कैसे लीन हो गये । भला यह बात ध्यानमें आनेके योग्य है ॥१९॥ इस आश्चर्यको देखकर हमारी बुद्धि अत्यन्त चकित हो रही है,जैसे दीपककी शिखा पवनके लगनेसे स्थिर नहीं रहती इस बातका भेद मुझको निश्चय समझा कर कहो,जिससे मेरे चित्तको शांति हो, क्योंकि इस बातके जाननेमें तुम ही मुख्य कारण हो ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीनारदजी राजा युधिष्ठिरका यह वचन सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब सभाके सभासदोंके सुनते जो कुछ कथा कहने योग्य थी वह सुन्दर २ कथा कहने लगे ॥२१॥ नारदजी

बोले कि निंदा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार इत्यादि बातोंके लिये परमात्माकी देहको जो मानना है वह देह प्रकृति पुरुषके अज्ञानसे कल्पित है ॥२२॥ हे पार्थिव ! हिंसा, अभिमान, दण्ड, कठोर वचन कहने 'मेरा है, यह मैं हूँ' बातें तो अभिमानी संसारके जीवोंमें हैं, ऐसी बातें ईश्वरमें कभी नहीं हो सकतीं ॥२३॥ जिस शरीरमें इसने अभिमान मान रखा है, उसी शरीरसे प्राणियोंका बंधन है, जैसे उसको जान पड़ता है, कि मेरा वध हुआ ऐसे परमेश्वरको नहीं होता, क्योंकि परमात्मा आप कैवल्यरूप सबका आत्मा है, इस लिये उसके देहाभिमान

हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २३ ॥ यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात् प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥ २४ ॥ तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ॥ स्नेहात् कामेन वा युञ्ज्यात् कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥ २५ ॥

और विषमता नहीं है, भगवान् सदा दैत्योंको दण्ड देते हैं और उनका वध करते हैं परन्तु वह भी उनके ऊपर दया ही है, कुछ शत्रुभावसे उनका बुरा-भला नहीं विचारते और कोई कल्पना करे कि ईश्वरको पीड़ा होती है ? नहीं, यह सम्पूर्ण भ्रम है । जब आत्मा ईश्वरमें हो तो मोक्ष होता है, इस बातपर एक दृष्टांत है ❀ ॥२४॥ जो सबके दमन करनेवाले भगवान् हैं, वे किसीकी निंदा नहीं करते और किसीको

• दृष्टांत–कोई दीन ब्राह्मण महानिर्धन धनके लिये एक ठाकुरद्वारेमें बैठकर रामचन्द्रको रामायणकी कथा सुनाने लगा । वहां रामचन्द्र, लक्ष्मण, हनुमानकी तीन मूर्ति थीं और कोई मनुष्य कथा सुननेको वहां नहीं आते थे, परंतु कभी-कभी अकस्मात् महा अभिमानी, अत्यन्त क्रोधी, मदान्ध एक वैश्य दर्शनके लिये चला आता था । जब ब्राह्मणको कथा कहते-कहते बहुत दिन हो गये तब उस वैश्यके सामने रामचन्द्रने हनुमानसे कहा कि कल उस ब्राह्मणकी कथा समाप्त होगी, उसमें कितने रुपये चढ़ेंगे ? तब हनुमान बोले कि एक सहस्र, रामचन्द्रने कहा यहां कोई मनुष्य तो आता ही नहीं, सहस्र रुपये कौन चढ़ायेगा ? हनुमान बोले महाराज ! जहां हम तुम हैं वहां किस बातका टोटा है, हनुमानकी यह बात सुन वह वैश्य उसी समय ब्राह्मणके घर गया और कहा कि मैं नित्य ठाकुरद्वारेमें जाता हूँ, परन्तु अकेला ही आपको कथा कहते देखता हूँ और कोई आपकी कथा सुनने नहीं आता फिर वहां रुपया पैसा कौन चढ़ायेगा ब्राह्मण बोला कि सेठजी ! मनुष्यका क्या सामर्थ्य है ? परमेश्वर सबका देनेवाला है, वैश्यने कहा कि तुम अपनी कथाका ठेका कर लो । ब्राह्मण बोला कि मेरी इसमें कुछ हानि नहीं, कहो क्या दोगे ? वैश्यने कहा कि पाँच सौ रुपये, ब्राह्मण बोला मैं प्रसन्न मेरा परमेश्वर प्रसन्न । वैश्यने पाँच सौ रुपये ब्राह्मणके घर पहुँचा दिये और कथा समाप्त होनेके दिन दुपहर से ही सेठजी ठाकुरद्वारमें आ बैठे और ब्राह्मण देवताने बहुतेरा शंख घड़ियाल बजाया, परन्तु एक मनुष्य भी कथामें नहीं आया, और न एक कौड़ी चढी, जब रात हो गयी तो वैश्यको अत्यन्त सोच हुआ और महाक्रोध बढ़ा, तब तो हनुमानसे चिल्लाकर बोला कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि, देवता भी झूंठ बोलने लगे, यह कह लाल-लाल नेत्र कर हनुमानजी के एक लात मारी । हनुमानजीने झट उसकी टाँग पकड़ ली, उसने बहुतेरा हाय-हाय की परन्तु हनुमानने उसकी टाँग न छोडी । जब तीन पहर बीत गये तो रामचन्द्रजी बोले कि कथा समाप्त हो गयी ? हनुमानजीने कहा हो गयी, पाँच सौ रुपये तो ब्राह्मणके घरमें भिजवा दिये पाँच सौ जो बाकी रहे हैं उनमें वैश्यराजकी–

नहीं मारते। इसलिये वैरसे,भक्तिसे,भयसे,प्रीतिसे,कामसे,मुक्तिसे ये पांच उपाय हैं,जैसे हो सके वैसे ईश्वरमें मन लगाना। वह सच्चा न्यायकारी है, किसीको दुर्भावसे नहीं देखता, सबको एकसा देखता है इसीसे उसका नाम समदर्शी है ॥ २५ ॥ चाहे प्रेमसे चाहे वैरसे, चाहे कामसे परमेश्वरको किसी प्रकारसे भजे, परन्तु परमेश्वर शुभ गति ही देता है, वैर करनेसे प्राणी जैसे परमेश्वरमें लीन हो जाता है ऐसा भक्तियोगसे परमेश्वरमें तन्मय नहीं हो सकता, ऐसा हमारा निश्चित मत है, ॥२६॥ भ्रमरी जिस कीड़ेको पकड़कर अपने छिद्रके भीतर ले गयी,वह कीड़ा क्रोधसे और भयसे भ्रमरीरूप ही हो जाता है ॥२७॥ ऐसे ही क्रोधसे, भयसे उन्हींके समान भावको जीव प्राप्त

यथा वैरानुबंधेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥ कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ॥ संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम् ॥२७॥ एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥ वैरेण पूतपाप्मानस्त मीयुरनुचिन्तया ॥ २८ ॥ कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥ आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ ३० ॥

हो जाता है, इसी लिये विष्णु भगवान्ने माया करके श्रीकृष्ण अवतार धारण किया ॥ २८ ॥ उनसे वैर बांधकर पापी पावन और पवित्र होकर मुक्त हुए और उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दमें शिशुपालादिकसे सहस्रों लय हो गये, इसलिये कामसे, वैरसे, भयसे, स्नेहसे ईश्वरमें मन लगाये ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णमें मन लगाकर अनेक मनुष्य उनकी गतिको प्राप्त हुए,गोपी तो कामसे ईश्वरको प्राप्त हुई,

–एक टाँग गहने रख ली है । पाँचसौ रुपया और देगा तो इसकी टाँग छूटेगी, क्योंकि देवताओंको इसने झूंठा बताया, इसलिये इसीसे पाँचसौ रुपये और लेकर ब्राह्मणको हजार रुपये कर दिये जायंगे और नहीं देगा तो यह अभिमानी ऐसे ही पड़ा रहेगा। वैश्यने समझा कि विना पाँचसौ रुपये दिये मैं किसी प्रकार नहीं छूट सकता यह विचार उसने और पाँच सौ रुपये ब्राह्मणको भेंट किये तब छूटकर अपने घर गया, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि अभिमान न करे ।

कंस भयसे मुक्त हो गया, शिशुपाल आदिक नरेश वैर करनेसे वृन्दावनविहारी कृष्ण मुरारीमें लय हो गये ॥ ३० ॥ सम्बन्ध विवाहादि कसे यादव भगवल्लोकको चले गये,स्नेहसे युधिष्ठिर अर्जुनादिक आप सब मुक्त हो गये,विभुकी भक्तिसे हम मुक्त हुए,इन पांचोंमें राजा वेन तो कुछ भी नहीं था इसलिये वह नरकमें पड़ा ॥३१॥ इसलिये किसी प्रकारसे श्रीकृष्ण बांकेबिहारीमें मन लगाना चाहिये । हे पाण्डव ! तुम्हारी फूफीका पुत्र शिशुपाल और दन्तवक्र था ॥३२॥ ये दोनों विष्णुके पार्षदोंमें श्रेष्ठ थे,विप्रोंके शापसे वे अपने स्थानसे गिर पड़े । दोहा-ताते इनकी मुक्तिमें,कौन अहै सन्देह । पापिहु हरिसों वैर कर,पावहिं गति तज देह ॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर नारदजीकी वाणी सुन विस्मित होकर बोले-भगवान्‌के दास तो एकांतके रहनेवाले हैं, उनको शाप किसने दिया और किस कारण दिया ? ॥ ३३ ॥ यह बात

कतमोऽपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति ॥ तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥ ३१ ॥ मातृष्वसेयो वश्चैद्यो दन्तवक्रश्च पाण्डव ॥ पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात् पदाच्च्युतौ ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ॥ ३३ ॥ देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ॥ देहसंबन्धसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥ ३५ ॥ पञ्चषडायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ दिग्वाससः शिशून्मत्त्वा द्वाःस्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥ ३६ ॥ अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ॥ रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥ ३७ ॥

किसी प्रकार हमारे ध्यानमें नहीं आती, कि हरिके एकांती भक्तोंका संसारमें जन्म लेना, क्योंकि वैकुण्ठके वासी तो देह इंद्रिय प्राणरहित और सब अप्राकृत हैं उनके शरीर मायाके नहीं हैं,तो वह मायाके संबंधी कैसे हुए ? यह वृत्तान्त मुझे समझाकर कहो॥३४॥नारदजी बोले कि एक समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकने विष्णुलोकमें जानेकी इच्छा की त्रिलोकीमें भ्रमण करते-करते वैकुण्ठलोकमें गये ॥३५॥ वे मुनि कैसे थे ? देखनेमें तो पांच छःवर्षके बालक विदित होते थे, परंतु अवस्थामें मरीचि आदि ऋषियोंसे भी बड़े थे उनका दिगम्बर वेष देख और बालक जानकर भगवान्‌के द्वारपाल जय-विजयने उनको भीतर नहीं जाने दिया, द्वार पर ही रोक लिया ॥३६॥ तब तो उन्होंने

महाक्रोध करके जय-विजयको शाप दिया कि तुम वैकुण्ठमें रहनेके योग्य नहीं हो क्योंकि शुद्ध सत्व विष्णु भगवान्के चरणारविंद रज तमसे रहित हैं, फिर तुमको तमोगुण कैसे आया ? इसलिये हे मूर्खो ! अभी तुम असुरयोनिको प्राप्त हो मृत्युलोकमें विचरो॥३७॥जब सनकादिकने उनको इस प्रकारका शाप दिया तो पार्षद वैकुण्ठसे नीचे गिरनेको हुए,उस समय उनपर दयालु हो,उन परम दयालु सनकादिकने कहा कि हे द्वारपालो ! दोहा–तीन जन्मभर पाइहो,असुरयोनि महिमाहिं । पुनि ऐहो वैकुण्ठपुर, यामें संशय नाहिं॥३८॥ यह दोनों द्वारपाल पृथ्वीपर आकर दैत्य और दानवोंके परमपूज्य कश्यपमुनिकी स्त्री दितिके पुत्र हुए । जिनमें ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष, यह दोनों महाबलवान् और बड़े पराक्रमी हुए और दैत्योंने अपना अध्यक्ष बनाया ॥ ३९ ॥ इनकी अनीति देख हरिने नृसिंह

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ३८ ॥ जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ३९ ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंह रूपिणा ॥ हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुर करोन्नानायातना मृत्युहेतवे ॥ ४१ ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥ ४२ ॥ ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवस्सुतौ ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ४३ ॥

अवतार धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा और पृथ्वीका उद्धार करनेके समय वाराह अवतार धारण करके हिरण्याक्षका वध किया॥४०॥ हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लाद, जो कि सब धर्मोंकी मर्यादा और कृपापात्र श्रीनारायणका परम प्रिय भक्त था, उसके मारनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट और त्रास दिखाये ॥४१॥ सर्वान्तर्यामी विश्वात्मा भगवान् जिसके हृदयमें स्थित, प्रशान्त, समदर्शी और भगवत्के तेजसे स्पष्ट हुए प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुने सहस्रों उपाय किये, परन्तु परमेश्वरकी कृपासे प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ । दोहा–सभामध्य प्रह्लादपर, करके कोप महान । मारनको ठाढ़ो भयो,काढ़ि कराल कृपान ॥ ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके शूल दिखाये॥४२॥ फिर उन दोनों पार्षदोंने विश्रवा ऋषिकी भार्या केशिनीमें जन्म लिया और रावण-कुम्भकर्ण नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और अपने बाहु

बलसे त्रिलोकीको जीत देवताओंको भयभीत कर दिया ॥४३॥ उस समय भी श्रीनारायणने राजा दशरथकी पत्नी कौशल्यामें रामचन्द्र अवतार लेकर शापमोचन करनेके लिये लंकामें जाकर दोनोंका वध किया, हे प्रभो! मार्कंडेयजीके मुखसे आप रामचरित सुनोगे॥४४॥ उन दोनोंने अब तीसरी वार क्षत्रियवंशमें जन्म ले तुम्हारी माताकी भगिनीके सुत शिशुपाल और दन्तवक्र नामसे विख्यात हुए, उनको श्रीद्वारकानाथने चक्रसुदर्शनसे मार निष्पाप कर सनकादिकके शापसे मुक्त कर दिया ॥४५॥ तीव्र वैर करनेसे और रात-दिन भगवान्‌के ध्यानमें रहनेसे श्रीनारायणकी समताको प्राप्त हुए और फिर ये दोनों पार्षद हरिके निकट पहुँचे ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् दैत्यवंशमें भगवद्भक्त प्रह्लाद कैसे उत्पन्न हुए ? और ऐसे सुबुद्धि महात्मा अपने प्यारे पुत्रपर हिरण्यकशिपुने

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात् प्रभो ॥ ४४ ॥ तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ॥ अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ४५ ॥ वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे जयविजययोः शापवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥ आह चेदं रुषा घूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥

किस लिये विद्वेष किया और प्रह्लादको हरिकी भक्ति सेकै प्राप्त हुई ? वह प्रह्लादचरित्र कृपा करके मुझसे कहो॥४७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां जयविजयत्रिजन्मकथावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥दोहा-इस द्वितीय अध्यायमें,असुर कियो हरिद्रोह । भ्राताको सुत देखकर,उपजो मनमें मोह॥नारदजी बोले कि हे राजन्! वाराहरूपधारी भगवान्‌ने इन्द्रकी सहायताके लिये मेरे भाई हिरण्याक्षको मारा, इसलिये हिरण्यकशिपुने अपने मनमें बड़ा शोक-संताप किया ॥ १ ॥ और क्रोधसे जिसके नेत्रोंसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं, दांतोंसे होठोंको चबाने लगा, कोपमें जलते हुए नेत्रोंमेंसे आकाश जो क्रोधाग्निके धुयेंसे धुआंधार हो रहा था, उसकी ओरको

देखकर बोला ॥२॥ महाविकराल दाढ़ें,भयानक दृष्टि और वैसे ही भयंकर बक्र भ्रुकुटी कपालको चढ़ी हुईके कारण उसके भयावने मुखकी ओरको किसीसे भयके मारे देखा नहीं जाता था,इस प्रकार क्रोधमें भरा हुआ शूलको उठाकर सभामें आकर दैत्योंसे ललकारकर बोला ॥ ३ ॥ कि हे दानवो ! हे दैत्यो ! हे द्विमूर्द्धा ! हे त्र्यक्ष ! हे शंबर ! हे शतबाहु ! हे हयग्रीव ! हे नमुचे ! हे पाक, हे इल्वल ! ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ते ! हे पुलोमन् ! हे शकुनादिको ! मेरा वचन सुनो और जो मैं कहूँ शीघ्र करो, विलम्ब मत करो ॥ ५ ॥ देखो भाई ! विष्णु भगवान् सबको समान मानते हैं, परन्तु मेरे क्षुद्र शत्रु देवताओंने उनकी बहुत टहल टकोरी करके अपना पक्षपाती बनाया, तब उसने महानीच शूकरका रूप धरकर कपटसे मेरे भाई हिरण्याक्षको मार मुझसे शत्रुता ठानी ॥ ६ ॥ और अपने सुन्दर समदर्शी स्वभावको छोड़

करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भो भो दानव दैतेया द्विमूर्धन् त्र्यक्ष शम्बर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥ विप्रचित्ते मम वचः पुलोमञ्छकुनादयः ॥ शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥५॥ सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥६॥ तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ॥ भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥७॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥ तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ॥ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९ ॥ तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् ॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥ १० ॥

मायासे निर्दयी वाराहरूप धारण किया और जो उसको भजते हैं उनको वह भी भजता है,बालकके सदृश उसका मन चञ्चल है ॥ ७ ॥ जबतक उस निर्दयी वनवासी शूकरवपुधारीकी गर्दन में अपने त्रिशूलसे निर्मूल कर बहुतसे उसके रुधिरसे अपने रुधिरप्रिय भ्राताको तर्पण करके तृप्त न कर लूंगा,तबतक मेरा मन सब व्यथाओंसे निश्चिन्त नहीं होगा और सब सन्ताप और परिताप नहीं मिटेगा ॥८॥ जब वह महाकपटी विष्णु नष्ट हो जायगा तो जैसे वनस्पतिका मूल कटनेसे उसकी शाखा आपसे आप सूख जाती है, ऐसे ही विष्णु जिनके प्राण वह देवता भी आपसे आप नष्ट हो जायँगे,क्योंकि इनका जीवनमूल विष्णु ही है ॥९॥ जबतक मैं उसके मारनेका उपाय

करूं तबतक तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय जिस पृथ्वीपर बहुत बढ़ गये हैं,उस पृथ्वीपर जाकर तप, जप, यज्ञ, वेदपाठ, व्रत और दान करने वालोंका वध करो ॥ १० ॥ क्योंकि यज्ञरूप, धर्म और ब्राह्मणोंकी क्रिया विष्णुका मूल है और देवता,ऋषि, पितृ, भूत और धर्म इनका परायण विष्णु ही है ॥११॥ और जहां-जहां ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णाश्रमधर्मके कर्ता और कर्मकाण्डी हों, उन-उन देशोंमें आग लगा दो और सबको मार डालो क्योंकि वे लोग मुझको कुछ नहीं समझते और विष्णुका पूजन करते हैं, इसलिये उन सबको मारना ही उचित है, ॥ १२ ॥ उसी समय अपने नाथकी आज्ञा शिरपर धारण कर हिरण्यकशिपुसे आदर-सत्कार पा; प्रजाका विध्वंस करना जिनको अत्यन्त प्रिय था वह दानव दैत्य प्रजाका विध्वंस करने लगे ॥१३॥ और पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, क्षेत्र, वाटिका,आश्रम, खान, किसा-

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ॥ देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥ यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमा क्रियाः ॥ तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥ १२ ॥ इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसाऽऽदृताः ॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥ १४ ॥ केचित् खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्रकारगो पुरान् ॥ आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित् परशुपाणयः ॥ प्रादहञ्छरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥१५॥ एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः॥दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥१७॥

नोंके निवासस्थल, पर्वतकी कन्दरा, उनके नीचेके स्थान, घोष और राजधानी इत्यादि सबमें आग लगाने लगे ॥ १४ ॥ और कोई-कोई दैत्य कुदालोंसे सेतु, प्राकार, गोपुर, द्वारोंको तोड़ने लगे, कोई-कोई फरसे हाथोंमें लेकर उन वृक्षोंको काटने लगे कि,जिनवृक्षोंसे आजीविका हो अर्थात् आम, जामुन, कदली,नासपाती इत्यादि कोई कोई जलती हुई लकड़ियाँ हाथमें लिये प्रजा गणोंके घरोंको ठोक-ठोककर जलाने लगे, ॥ १५ ॥ दैत्येन्द्रके भृत्योंने जब संसारमें इस प्रकारका उपद्रव मचाया तो देवता लोग अलक्षित हो स्वर्गको त्याग भूमिमें पर्यटन करने लगे ॥ १६ ॥ और हिरण्यकशिपुने भाईके मारनेसे महादुःखी हो उसकी दाहादिक क्रिया कर तिलांजलि दे भाईके पुत्रोंका

सांत्वन किया, इस बातपर एक दृष्टान्त है * ॥ १७ ॥ फिर शकुनी, शंबरासुर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच नाम असुर ॥ १८ ॥ भ्रातृज और उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता दितिको समझा-बुझाकर देश कालका जाननेवाला सब असुरोंका अधिष्ठाता यह कहने लगा ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि हे जननी ! हे वधू ! हे पुत्रो ! उस बलशाली महावीरका शोक मत करो, क्योंकि जिस वीरका शत्रुके सम्मुख मरण हो वह शूर सराहना करने योग्य है, इस बातको हम बहुत अच्छा समझते हैं ॥ २० ॥ हे सुव्रते ! भूतोंका जो इस संसारमें सम्बन्ध है वह ऐसा है तो कर्मों द्वारा एकत्रित हो जाते हैं और अपने कर्मोंसे ही

शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसन्तापनं वृकम् ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥ १८ ॥ तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वरः ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं माऽर्हथ शोचितुम् ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥ २० ॥ भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥ २१ ॥ नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित् परः ॥ धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन् गुणान् ॥ २२ ॥ यथाऽम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥ २३ ॥

बिछुड़ जाते हैं, इस संसारमें संग ऐसा है, जैसा प्याऊपर पानी पीनेके लिये एकत्रित हो जाते हैं और पानी पी-पी कर सब अपने-अपने मार्ग को चले जाते हैं ॥ २१ ॥ देखो इस आत्माका कभी नाश नहीं होता, यह अनेक योनियोंमें निवास करता है और देहादिकोंसे भिन्न है इसलिये इसको किसी प्रकारका भय नहीं, क्योंकि यह तो सदा शुद्ध, अविनाशी, अव्यय, सर्वगत, सबका आत्मा, परेसे परे जो परमात्मा है उसकी माया करके गुणोंका त्याग कर सबके आत्माओंके स्वरूपोंको धारण करता है ॥ २२ ॥ जैसे कोई पुरुष जलमें नौकापर बैठकर चले

* दृष्टान्त—एक वैश्यने अपनी कुलवर्द्धिनी स्त्रीकी सांत्वना की, थोड़े दिन पीछे उस वैश्यके एक कन्या उत्पन्न हुई, तब उस वैश्यने बड़े प्यारसे उसका नाम दुर्नामता रक्खा । समय पाकर दैवयोगसे वह कन्या मर गयी, तब उस वैश्यकी स्त्री शिर पीटपीट कर अत्यन्त विलाप करने लगी, हाय दुर्नामता हाय दुर्नामता ! तू मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चली गयी, अब मेरे दिन कैसे कटेंगे ? तब वैश्यने अपनी स्त्रीके विलाप-कलापोंको सुनकर कहा, हे प्रिये ! रोवो मत, हम तुम जीते हैं तो बहु तेरी दुर्नामता हो जायँगी, ऐसा कह उस वैश्यने फिर अपनी स्त्रीको सांत्वना दिया ।

तो उसको नदीके तटके सब वृक्ष चलते हुए दिखायी देते हैं, जैसे मनुष्य गोल चक्र बांधकर घूमे तो उसके नेत्र घूमने लगते हैं, और उसको भूमि घूमती प्रतीत होती है, ऐसे ही गुणोंकी उपाधिसे लिंग शरीर विचरता रहता है, इसलिये यद्यपि आत्मा सदा शुद्धरूप है; तो भी अज्ञानी लोगोंने उसका जीवन-मरण मान रखा है हे भद्रे! आत्माका और लिंग शरीरका सम्बंध नहीं है,गुणोंके द्वारा मनके घूमनेसे अविकल पुमान् उसके समान भावको प्राप्त होता है,ऐसे ही ईश्वर शरीरसे रहित है॥२३॥॥२४॥आत्माका उलट-पलट होना जैसे शरीरसे आत्माका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तो भी कहता है, मैं देह हूँ, यह देह मेरी है, ऐसे चित्तमें निश्चय कर लेना यही अज्ञानता है। प्रिय अप्रियपन अर्थात् प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका संयोग यही है, इस कारणसे ही अनेक योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २५ ॥ उत्पन्न होना,

एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां भद्रेह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव॥२४॥एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना॥एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५ ॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधःस्मृतः॥ अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च ॥ २६ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत॥२७॥ उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २८ ॥ विशीर्ण-रत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम्॥शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृग्गाविलम् ॥ २९ ॥ प्रकीर्णं केशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छ-दम्॥रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३० ॥

नाश होना, अनेक प्रकारका शोक करना, अज्ञान, शोच विचार, स्वरूपकी चेष्टा ये सब शरीरके अभिमानके ही विकार हैं ॥ २६ ॥ इस प्रसंगके उदाहरणके लिये एक पुरातन इतिहास यमका और मृतक शरीरके समीप बैठे हुए सम्बन्धियोंका है वह तुम सुनो ॥२७॥ उशी-नर देशमें सुयज्ञ नामक एक प्रसिद्ध नरेश था । शत्रुओंने उसको युद्धमें मार डाला । उसके सब संबन्धियोंने चारों ओरसे उसको घेर लिया और रोने-पीटने लगे ॥ २८ ॥ उसका रत्नजडित कवच टूट गया था, अलंकार और मालाके मोती बिखर गये थे, बाणोंसे हृदय उसका बिंध रहा था रुधिरमें सब शरीर डूबा पड़ा था ॥ २९ ॥ बाल शिरके बिखर रहे थे, आँख खुलीकी खुली रह गयी थी, होठोंको दांतोंसे चाबतेका चाबता रह गया था, मुखकमल धूलके उड़नेसे मलीनसा हो रहा था और समरभूमिमें आयुध और भुजा उसकी कट

गयी थीं॥ ३० ॥ विधाताने जब उसकी यह दुर्दशा कर दी तब उसकी रानियाँ अपने पतिकी यह दुर्गति देख,अत्यन्त दुःखी हो, रो-रोकर कहने लगीं कि हे प्राणनाथ ! हम मरीं, फिर दोनों हाथोंसे छाती पीटती-पीटती उसके पांवोंमें जा पड़ीं ॥ ३१ ॥ और उच्चस्वरसे रुदन जो किया तो स्तनोंकी कुमकुम धुल-धुलकर जले हुए रक्तके सदृश जो बिन्दु गिरते थे, उन्हीं आँसुओंसे अपने पतिके चरणारविन्दोंको सींच रही थीं, केश और आभूषण उनके बिखर रहे थे, उनके कठिन विलापोंको सुन-सुनकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें शोक उत्पन्न होता था॥३२॥ अरे निर्दयी विधाता ! तूने हमारे स्वामीको दृष्टिसे अगोचर कर दिया,जो पहले उशीनर देशके रहनेवालोंको जीविका देनेवाले थे,हाय ! वह

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥ ३१ ॥ रुदन्त्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥ ३२ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥ ३३ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीरपादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३४ ॥ एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३५ ॥ तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ॥ आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३६ ॥

आज उन लोगोंको शोकके देनेवाले हो गये ॥३३॥ हे महीपते ! तुम सरीखे सुहृद विना हम जीकर क्या करेंगी ? इसलिये हे प्राणपति ! जहां आपके जानेकी इच्छा हो वहां हमको भी अपने साथ ले चलो, क्योंकि वहां आपके चरणोंकी सेवा कौन करेगा ? ॥३४॥ इस प्रकार सब रनिवासकी रानियाँ मृतक पतिका गोदमें शिर धरे रो-रोकर विलाप कर रही थीं और उसका संस्कार नहीं करने देती थीं, इस रोया पीटीमें सूर्य अस्त हो गया * ॥ ३५ ॥ तब उस राजाके शवके समीपके बैठने वालोंका रोना सुन यमराज बालकका रूप धरकर वहाँ आये

* शंका—प्राणी दुःखी हो चाहे सुखी हो परन्तु तीन लोकोंमें प्राणियोंको सुख होने के लिये मुनि लोग उपदेश किया करते थे, ऐसा शास्त्रमें सुना है, परन्तु यमराजने किसीको उपदेश नहीं किया ऐसा भी सुना है। यमराजने सुयज्ञकी स्त्रियोंको उपदेश क्यों किया ?

और उन लोगोंसे कहा ॥ ३६ ॥ यमराजबोले कि हे मनुष्यो ! तुम सब मुझसे बहुत बड़े हो और बहुत कालसे संसारके लोगोंका जीवन मरण देखते आये हो, इतने पर भी तुम लोगोंको बड़ा भारी मोह है, यह पुरुष जहांसे आया था वहां चला गया, अब तुम लोगोंका शोच विचार करना वृथा है ॥३७॥ तुमसे तो हम ही बहुत अच्छे हैं, जो हमारे माता पिताने इस बाल्य अवस्थामें अकेला त्याग दिया और हम वनमें मारे-मारे फिर रहे हैं तो भी किसी बातका सन्देह नहीं और सिंह व्याघ्रादिक भी हमें कोई नहीं खाता । हमको निश्चय है कि जिस परमेश्वरने गर्भमें हमारी रक्षा की है वही सब ठिकाने हमारा रक्षक है ॥३८॥ जो अविनाशी पुरुष अपनी इच्छा करके इस जगत्को रचता है

यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥३७॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥ ३८ ॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ॥ तस्या बलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥ ३९ ॥ पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥ ४० ॥ भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति कालेन भवन्ति सर्वशः ॥ न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥ ४१ ॥

वही इसकी रक्षा करता है, वही संहार करता है । हे स्त्रियो ! यह सब चराचर जीवात्मक संसार उस परमात्माका खिलौना है, इसलिये सबका मारने जिलानेवाला प्रभु ईश्वरही है ॥ ३९ ॥ देखो ! जो मार्गमें पड़े हुये हैं उनकी रक्षा परमात्मा करता है उनको कोई मार नहीं सकता है और जिनकी आठों पहर अत्यन्त रक्षा होती है और घरहीमें बैठे रहते हैं, वे मर जाते हैं, जिनका कोई पालन-पोषण करनेवाला नहीं और अनाथ हैं, वनमें अकेले पड़े हैं और परमात्माकी उनपर दृष्टि है तो वे सदा आनंद करते हैं, और जिनकी घरमें सब रक्षा करते हैं और परमात्माकी रक्षा नहीं वह किसी प्रकार जी नहीं सकता ॥४०॥ इसी प्रकार जीव अपने कर्मोंके अनुसार समय पाकर जन्मते हैं और

उत्तर—सुयज्ञ राजाकी स्त्री बाल्यावस्थामें यमराजका सेवन करती थीं, इसीलिये रानीको दुःखी देखकर यमराजने रानीके सम्मुख आकर ज्ञान दिया और सब शोक दूर किया । अन्त समय पतिके लोकको भेज दिया। रानी ज्ञान पाकर अपने पतिके पास गयी, इसीलिये यमराजने उनको उपदेश किया।

कर्मों ही द्वारा मरते हैं। यद्यपि आत्मा मायामें स्थिर है परंतु तो भी मायाके गुणोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, जीव ही बन्धनमें आकर नष्ट हो जाता है ॥४१॥ यह देह अज्ञानसे परमात्मारूप दृष्टि आता है, परन्तु विचार करके देखो तो वह आत्मा सबसे भिन्न है, जैसे प्राणी मिट्टीके घरमें रहता है और वह अज्ञानी उसको अपना मानता है, परंतु वास्तवमें वह घर उससे भिन्न है। ऐसे आत्मारूप अनुमान किया हुआ यह देह भी आत्मासे भिन्न है, जलसे उत्पन्न हुए जलके बबूलेकी नाई और पृथ्वीसे उत्पन्न हुये घटादिकके तुल्य और सुवर्णसे उत्पन्न हुये कड़े कुण्डल इत्यादिकके सदृश कोई समय पाकर बन जाते हैं जब उनका विकार नहीं रहता तो फिर कुछ कालोपरान्त सब विनष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही जीवको जानो, कुछ शरीरके नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता ॥४२॥ जैसे अग्निकाष्ठसे भिन्न प्रतीत होता है और उसीमें व्याप्त रहता है, जैसे पवन देहसे विगत जान पड़ता है और देहमें ही स्थित रहता है, जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु किसीमें आसक्त

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग् भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनःकालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥४२॥ यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः॥ यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥४३॥ सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥ यः श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः॥४५॥भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान्देहानुच्चावचान् विभुः ॥ भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥ ४६ ॥

नहीं होता ऐसे ही यह आत्मा शरीरमें वास करनेपर भी शरीरादिकके जन्म-मरणादिक गुणोंमें आसक्त नहीं होता॥४३॥हे मूर्खो! यह सुयज्ञ तुम्हारा अधीश तुम्हारे सम्मुख सो रहा है फिर तुम शोक किसका करते हो ? और जो तुमको यह सन्देह हो कि अभी तो यह बोलता था सुनता था, और अब नहीं बोलता, इस बातका शोक करते हैं, सो इस बातका शोक करना तुम्हारा व्यर्थ है, क्योंकि जो श्रोता और वक्ता देहमें है उसको तो तुमने देखा ही नहीं था, उसका शोच करना क्या ? ॥ ४४ ॥ न तो इस देहमें कोई सुननेवाला है, न कोई बोलनेवाला है, केवल मुख्य इसमें एक महाप्राण है जो इंद्रियोंके द्वारा वासनाका ग्राहक आत्मा है वह इस शरीरसे सम्बन्ध नहीं रखता ॥ ४५ ॥ भूत, इंद्रिय, मन, लिंग, उच्च नीच देहोंको धारण करता है, त्यागता है, और आत्मा सबसे पृथक् है तो भी प्राण, इंद्रिय, मनके संबन्धसे

छिन्न-भिन्न देहोंको ऐसे मानता है कि 'मैं हूँ, मेरा है' तब ही तक क्लेश सहता है और जब इसको ज्ञान हो जाता है तब सब अभिमान तज निष्कलंक हो जाता है ॥४६॥ जबतक लिंगशरीरके संग आत्मा है तब ही तक उसको कर्मोंका बन्धन है और विपर्यय आदि क्लेश मायायोग बर्तें है ॥४७॥ यहसब झूठा भाव है,गुणोंमें अर्थकी दृष्टिका वचन मानना और सुखदुःखको आत्माका धर्म मानना और उसमें ही लिप्त रहना,यह वृथा मन लगाना है और इंद्रियसंबंधी जो अनित्य पदार्थ आत्मामें प्रतीत होते हैं,वे सब मनोरथ स्वप्नवत् व्यर्थ हैं,इस लिये महात्मा पुरुष आत्मा और शरीरादिकके संबन्धको अनित्य समझकर किसी बातकी चिन्ता नहीं करते ॥४८॥ जो लोग नित्य-अनित्यका विचार करनेवाले हैं वे नित्य अनित्यका शोच नहीं करते, क्योंकि जो भवितव्यता है वह किसी प्रकार मिट ही नहीं सकती,फिर शोक

यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबन्धनम् ॥ ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥ ४७ ॥ वितथोऽभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः ॥ यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥ अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः ॥ नान्यथा शक्यते कर्तुंस्वभावः शोचतामिति ॥ ४९ ॥ लुब्धको विपिने कश्चित् पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥ ५० ॥ कुलङ्गमिथुनं तत्र विचरत् समदृश्यत ॥ तयोः कुलिंगी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ५१ ॥ साऽसज्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ॥ कुलिंगस्तां तथाऽऽपन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥ ५२ ॥

सन्ताप करनेका क्या प्रयोजन ! इसलिये पुरुषको चाहिये कि किसी प्रकारका उपाय न करे, क्योंकि इसका कोई उपाय ही नहीं ॥ ४९ ॥ शोकग्रस्त मनुष्योंके चित्त शान्त करनेके लिये एक दृष्टांत कहते हैं—परमेश्वरका रचा हुआ पक्षियोंका मारनेवाला महाभयंकर लुब्धक नाम एक व्याध था, वह जहाँ-तहाँ पक्षियोंके फांसनेके लिये जाल फैला तन्दुलोंका लोभ दिखाकर सदा जीवोंको मारा करता था ॥५०॥ एक दिन उसने एक कुलिङ्ग पक्षीका जोड़ा वनमें विचरता देखा और उसकी कुलिंजिनीको लुब्धकने उसी समय लुभा लिया ॥ ५१ ॥ कालविवश वह कुलिंजिनी उसके जालमें फँस गयी । उसको फँसी देखकर वह कुलिङ्ग अत्यन्त व्याकुल हुआ और अनेक प्रकारके विलाप करने

लगा ॥ ६२ ॥ स्नेहसे छुड़ानेमें असमर्थ कृपण उस अपनी पत्नीको दुःखित देख महाशोक करने लगा और बोला कि अहो देव ! तू बड़ा निर्दयी है, जो ऐसी दयावाली स्त्रीसे मेरा वियोग करा दिया ॥६३॥ मुझ कृपणका शोक करनेवाली इस दीनासे यह क्या काम निकालेगा ? ऐसे कठिन दुःखसे मुझे भी ईश्वर अब उठाले। क्योंकि आधे शरीरसे मेरा क्या प्रयोजन निकलेगा ? इससे वियुक्त दीन दुखिया मैं दुःखसे जीवन बिताकर क्या करूंगा ? ॥६४॥ देखो ! अभी इन छोटे-छोटे बच्चोंको पंखतंतु भी नहीं निकले, हाय ! आज वे विना जननीके हो गये, उन माता विहीन बच्चोंको मैं रखूँगा और कौन उनका पालन करेगा ?अरे मंदबुद्धि विधाता ! वह कोमल पंखहीन बच्चे घोंसलेमें बैठे हुए अपनी माताकी बाट देख रहे होंगे कि हमारे खानेके लिये कुछ भोजन लाती होगी, वे अपनी जननीका मरण सुन क्या करेंगे

अहो अकरुणो देवः स्त्रिया करुणया विभुः ॥ कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४ ॥ कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ॥ मन्दभाग्याः प्रतीक्ष्यन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ ५५ ॥ एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात् प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५६ ॥ एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥ ५८ ॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्साम्परायिकम् ॥ ५९ ॥

और कैसे धैर्य धरेंगे ? और मैं विना प्राणप्यारीके कैसे जीऊंगा ? हाय ! आज मेरा सब गृहस्थाश्रम नष्ट हो गया ॥ ६५ ॥ इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नीके वियोगसे आतुर हो विलाप करता और आँखोंसे आंसू बहाता जालके पास गया, तब कालप्रेरित बाणसे उस वधिकने झट उसको भी मार कर गिरा दिया ॥ ६६ ॥ हे मूर्खो ! ऐसे ही तुम्हारी भी मृत्यु होगी, इस देहका क्या विचार करते हो ? ज्ञानी बनो, इसका सौ वर्षतक शोक करनेसे भी उसको नहीं पाओगे ॥ ६७ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि, यह बात बालककी सुन सब स्त्री पुरुष अत्यन्त विस्मित हुये और सब जातिके मनुष्योंने तथा राजमहिषियोंने माना कि सब संबन्ध मिथ्या है ॥६८॥ इतनी कथा

कहकर यमराज तो अंतर्धान हो गये और सुयज्ञके सजातीय सब मिलकर उस मृतकका संस्कार करने लगे ॥५९॥ इसलिये हे जननि ! तुम भी शोक मत करो, आत्मा सबसे परे है, अपना पराया कोई नहीं है, ये सब अज्ञानपनकी भूल है यहां अपना कौन है ? और पराया कौन है ? तुम कौन हो ? और दूसरा कौन है ?॥६०॥ये सब अज्ञानतासे अपने व पराये मान रखे हैं,जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष हैं वे ज्ञानसे अज्ञानका दर्शन करते हैं॥६१॥श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार पुत्रवधू सहित दिति दैत्यपतिका यह वाक्य सुन शोकसन्तापको क्षणभरमें त्याग अपना मन परमेश्वरके ध्यानमें लगा दिया और यह समझा कि वही राम सबमें रम रहा है * ॥६२॥ इति श्रीभागवते

ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ ६० ॥ स्वपराभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम् ॥ ज्ञानेनात्मानमीहन्ते ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ६१ ॥ नारद उवाच ॥ इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ॥ पुत्रशोकं क्षणात् त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे कुलिंगकथनेन दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥ आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥ स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥

महापुराणे सप्तमस्कन्धे भा० टी० उशीनराख्याने कुलिङ्गकथाकथने दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–इस तृतीय अध्यायमें,कनककशिपु तप कीन्ह । ब्रह्माने सुप्रसन्न हो,ताहि महावर दीन्ह॥नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने अपने आपको अजर-अमर समझकर कहा,आज पृथ्वीपर मेरे समान कोई नहीं ऐसे अपने आत्माको एक बड़ा राजा मान सब पृथ्वीका राज्य करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ वह हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वतकी कन्दरामें जाकर महादारुण तप करनेके लिये ऊपरको हाथ उठा आकाशकी

* कवित्त—ऊखमें है मधुराइ सेंध में है नमकाई, तिलोंमें है तेल जैसे शीतलता ओलेमें। नीम कड़ुवाई जैसे मिर्चमें हैं तीक्ष्णता, दूधमाहि घृत और सुगन्ध जैसे बेले में ॥ आममें खटाई जैसे अग्निमें है उष्णताई, सो रेमें है खारापन रूई ज्यों बिनोलेमें । काष्ठमें है अग्नि जैसे बीजमाहि वृक्ष छिपा, ऐसे ही श्रीरम छिपे प्राणियनके चोलेमें ॥

ओरको दृष्टि कर एक पांवके अंगूठेके सहारेसे खड़ा हुआ॥२॥जब तपस्या करते-करते कुछ समय व्यतीत हुआ तो धूमसहित तपकी अग्नि उसकी जटाओंमें कैसी चमक रही थी, जैसे प्रलयकालके सूर्यके किरणोंकी कांति शोभायमान होती है, जब वह इस प्रकार महाकठिन तप करने लगा, तब सब देवता अपने-अपने स्थानोंपर आये ॥ ३ ॥ उसके महाबलका उद्योग देखकर और सुनकर सब देवता डरके मारे घबड़ा गये और जहां जिनके सींग समाये वहां चल दिये, उस समय हिरण्यकशिपुके शिरमेंसे उत्पन्न हुई तमोमय धूमसहित अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला तिरछी, बांकी ऊँची, नीची, चारों ओरको फैलकर त्रिभुवनको तपाने लगी ॥ ४ ॥ नदी और समुद्र चलायमान हो गये, सातों द्वीप पर्वतोंसमेत भूमि कांपने लगी,ग्रहोंसहित तारागण टूट-टूट कर गिरने लगे,दशों दिशा प्रज्वलित हो गयीं॥५॥उस अग्निके तपनेसे

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥३॥ तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधो लोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥ तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे॥ लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥ ७ ॥ तस्यायं किल संकल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ॥ श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः ॥ ८ ॥

देवता लोग स्वर्गको छोड़ ब्रह्मलोकमें गये और वहां जाकर विनयपूर्वक ब्रह्मासे कहा कि हे देवदेव ! हे प्रजापते ! ॥ ६ ॥ हे दीनदयालु ! दैत्येंद्र हिरण्यकशिपुके तपके प्रभावसे तप्त हुए स्वर्गमें हम निवास नहीं कर सकते । हे समर्थ जो लोकका कल्याण चाहो तो उसकी शीघ्र शांति करो क्योंकि कहीं जबतक बलि देनेवाले भूमिवासी नष्ट न हो जायँ, वह उपाय करो और जो आपके बलि देनेवाले ही नष्ट हो गये तो फिर क्या ? आपको यह भी प्रकट है कि नहीं ? कि महाविकराल तप करके उस दैत्याधीशने जो संकल्प किया है, वह किस लिये कर रहा है ! ॥ ७ ॥ यद्यपि आप सब जानते हैं और कोई बात छिपी नहीं है, परंतु जैसा हमने सुना वैसा आपके सम्मुख कहते हैं,

और हमने पहले भी आपसे कहा था ॥८॥ दोहा—कनककशिपुने यह सुना,तपकर विधिपद लीन्ह । सो विचार विधि होनहित,दैत्य कठिन तप कीन्ह ॥ केवल तप, योग, समाधिके बलसे ब्रह्माने सब विश्व और चराचरको रचा है और सबस्थानोंसे श्रेष्ठ स्थानमें जैसे ब्रह्माजी आप बैठते हैं, ॥ ९ ॥ उसी ढंगसे मैं भी कठिन तप करके अपने आत्माको वैसा ही प्रतापी बनाऊँगा, जैसे कि चतुरानन हैं ॥ १० ॥ कालात्मा नित्य होनेसे मुझको भी कालका भय नहीं रहेगा,मैं आप कालरूप होकर अपने पराक्रमसे उनको अन्यथा करूंगा और दैत्योंको देवता और देवताओंको दैत्योंकी पदवी दूंगा और पातालके लोगोंको आकाशमें,आकाशके लोगोंको पातालमें वसाऊँगा, पापको पुण्य और पुण्यको पाप बनाऊँगा, परंतु जो चाहे सो हो एकबार विश्वको लोटपोट करके दिखा देना और जिस वैकुंठको श्रेष्ठ समझ रखा है

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥ अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥ कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथाऽऽत्मनः ॥ १० ॥ अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ॥ किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ॥ विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वरः ॥ १२ ॥ तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥ भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४॥

उसमें नीचलोगोंकोबसा देना और नरकका वह नाम ही न रखूंगा और कल्पके अन्तमें वैष्णवादिक कालके कौर मेरा क्या कर सकते हैं ? मेरा और तो किसी नाशवान् पदवीसे प्रयोजन ही नहीं, केवल मुझको तो एक ब्रह्मपदवीकी अभिलाषा है, ॥११॥ ऐसी हठ उसकी हमने सुनी है,इसलिये वह महाकठिन तप कर रहा है,हे त्रिभुवनेश्वर ! पहले इस कामको कर लो और काम पीछे करना ॥१२॥ । हे जगत्पते ! गौ और ब्राह्मण आपके मुख्य स्थान हैं और आप ही भक्तहितकारी हैं॥१३॥आप ही उत्पत्ति,कल्याण,लक्ष्मी,कुशल और विजयके लिये हैं, इसलिये हे त्रिलोकीनाथ ! जब आपका ही स्थान छिन गया तो फिर हम क्या कर सकते हैं ? नारदजी बोले हे राजन् जब ! भगवान्

स्वयंभूकी देवताओंने इस प्रकार प्रार्थना की तब भृगु, दक्ष आदि प्रजापतियोंको संग लेकर ब्रह्माजी हिरण्यकशिपुके आश्रममें गये * ॥१४॥ बांबी, तृण और कीचकोंसे उस दैत्यको कढ़ा हुआ देखकर ब्रह्माजीने समझा कि मिट्टीका ढेर है, फिर समीप जानेसे एक छिद्रमें कोई ऐसा प्रकाश दृष्टि आया, जैसे घटमें सूर्य चमकता है ऐसे उसके नेत्र चमके, देखा तो चींटी और कीड़ेने उसकी त्वचा, मांस और रुधिरको चाट लिया था, केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गयी थीं तो भी वह अपने तपके प्रतापसे त्रिलोकीको भष्म किये डालता था । मेघके ढके हुए मार्तण्डकेसा प्रचण्ड तेज था ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो हंसवाहन ब्रह्मा हँसकर बोले हे कश्यपतनय ! तेरा

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥ पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥ तपन्तं तपसा लोकान् यथाऽभ्रापिहितं रविम् ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपस्सिद्धोऽसि काश्यप ॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ॥ दंशभक्षितदेहस्य प्राणाह्यस्थिषु शेरते ॥१८॥ नैतत् पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ निरम्बुर्धारयेत् प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥

कल्याण हो, उठ, उठ; तेरा तप सम्पूर्ण हुआ, तेरा सब काम सिद्ध होगा हम तेरे समीप वर देनेको आये हैं, अब जो तेरी इच्छा हो वर मांग, ॥१७॥ तेरे हृदयका जो अद्भुत सार है वह हमने जान लिया और तेरे समान धैर्य्यवान् कौन होगा ? तेरे सब शरीरको डांसादिक कीड़ोंने खा लिया है, केवल तेरे प्राणमात्र हड्डियोंमें रह गये हैं, ॥ १८ ॥ ऐसा कठिन तप अबतक न तो किसीने किया और न तो कोई आगे करेगा विना जलपान किये देवताओंके दिव्य सौ वर्षतक कौन ऐसा प्राणी है जो शरीरमें अपने प्राणोंको धारण कर सकता है?॥१९॥

* शंका—जिस-जिस प्राणीने ब्रह्माजीकी तपस्या की । उन सबको ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार वर दिया, परन्तु देवताओंने ब्रह्मा जीकी प्रार्थना नहीं की कि इसको वर दो, परन्तु इस हिरण्यकशिपुको देवताओंके कहनेसे वर क्यों दिया ? यह बड़ा आश्चर्य है !

उत्तर—हिरण्यकशिपुने मनमें यह विचार कर तप किया था कि पहले वरदान लेकर पीछे भगवान् को बन्धनमें डालूंगा, हिरण्यकशिपुके मनकी बात जानकर ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुको वरदान नहीं दिया था, परंतु जब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा, हम सब लोग दुष्टके तपके तेजसे जले जाते हैं तब ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको वरदान दिया। इस लिये देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्माने वर दिया था ।

यह तेरा निश्चय और महाघोर तप बड़े-बड़े धैर्यवानोंसे भी होना बहुत कठिन है हे दितिनन्दन ! तेरा निश्चय देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि तूने तपमें पूर्ण निष्ठा करके मुझको जीता है,॥२०॥हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! मैं तुझे सत्य आशीर्वाद देकर तेरा सब मनोरथ पूर्ण करूँगा तेरा जो देह मरनेसे मुक्त नहीं हो सकता और मैं तो मरनेसे मुक्त हूँ, सो तुझको मेरा दर्शन निष्फल कभी नहीं हो सकता ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि सबसे प्रथम देहधारी ब्रह्माजीने इतनी बात कहकर हिरण्यकशिपुकी ओर फिर देखा, जिसका शरीर चींटियोंने चाट लिया था अत्यन्त दिव्य अमोघ तेजवाले कमण्डलुके जलको छिड़का, ॥ २२ ॥ उसके छिड़कते ही वह दैत्येन्द्र उस कीचक वाल्मीकसे साहस, तेज, बल सहित जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है ऐसे उठा सब अवयवोंसे सम्पन्न, वज्र समान अंग, युवा

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥ २० ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुंगव ॥ मर्त्यस्य ते ह्यमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ॥ कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥ स तत्कीचकवल्मीकात् सहओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥ स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम् ॥ अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंज्योतिस्स्वरोचिषा ॥ २६ ॥

अवस्था, चित्तका सामर्थ्य बढ़ा हुआ, तपे हुए सुवर्णके समान कांतिकी झलझलाहट, अग्निके समूहकी नाई उठकर खड़ा हो गया ॥२३॥ आकाशमें हंसपर विराजमान हंसवाहन देवोंके देवको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ उनको शिरसे पृथ्वीपर दंडवत प्रणाम कर दर्शन किया और मनमें परमानंद माना ॥२४॥ उस समय भृगु आदि प्रजापतियोंको ब्रह्माजीके साथ देख हिरण्यकशिपुके चित्तमें अत्यन्त हर्ष बढ़ा, नेत्रोंसे आंसू निकलने लगे, शरीर पुलकायमान हो गया, गद्गद वाणीसे ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगा ॥२५॥ हिरण्यकशिपु बोला कि कल्पके अन्तमें कालसे रचे हुए अत्यन्त अन्धे तमसे ढके हुये इस विश्वको जिन परमात्माने आप अपनी ज्योतिसे प्रकाश किया है,

उस स्वयंप्रकाश परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ २६ ॥ जो आप त्रिगुणात्मक स्वरूपसे इस सृष्टिको उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहारते हो, ऐसे रज, सत्त्व, तम, तेज रूपवाले परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ २७ ॥ आद्यबीज, ज्ञानविज्ञान–मूर्ति, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धिरूप वैकारिक व्यक्तिको धारण करनेवाले परमात्मा आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥२८॥ आपही स्थावर, जंगम, जगत्के ईश हो आपही प्रजाओंके प्राण हो आप ही मन-इंद्रियोंके पति हो, आप ही चित्तके चित्त हो, आपही आकाशादिक पंच महाभूतगणोंके और शब्दादिक पञ्चविषयवासनाओंके उत्पन्न करनेवाले हो ॥२९॥ आप ही वेदत्रयीके चार होता करके सात यज्ञोंके कर्ता हो आपही प्राणियोंके

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ॥ रजस्सत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ॥ प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २८ ॥ त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ॥ चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥ त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥ ३० ॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥ ३१ ॥ त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥ विद्या कलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२ ॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ॥ भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥

आत्मा और आत्मज्ञानियोंके अनादि अनन्त अपार अखंडित पंडित सर्वान्तर्यामी हो ॥ ३० ॥ आप ही कालके प्रवाहरूप लव, क्षण इत्यादिक करके विभागोंसे जीवमात्रकी आयुको क्षय करते हो, आप ही कूटमें स्थित आत्मा, ब्रह्मान्तर्यामी, अजन्मा, अविनाशी, सबसे बड़े इस जीवलोकके जीवनमूल और आत्मा हो ॥ ३१ ॥ आपसे परे स्थावर जंगम कुछ भी चलायमान नहीं है न आपसे ऊपर है, और जो चलायमान है वह आपसे पृथक् नहीं है, चौदह विद्या, सोलह कला ये आपके ही रूप हैं, आपके ही उदरमें यह सब ब्रह्माण्ड वास करते हैं, ऐसे परब्रह्म और त्रिगुणात्मक आप ही हो ॥ ३२ ॥ हे समर्थ ! यह भी भली प्रकार विदित है कि यह स्थूल शरीर कि, जिससे इंद्रिय,

प्राण, मनसे विषयोंको भोगते हो और अतिगुप्त आत्मा पुरुष पुराण ब्रह्मधाममें आप ही विराजमान हो ॥३३॥ हे अनंत ! अव्यक्तरूपसे जिसने यह सब विश्व विस्तृत किया है और विद्या-अविद्या शक्तियुक्त जो आपकी अद्भुत माया है,मन वचन कर्मसे नहीं जानी जाती,उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे वरदोत्तम ! जो आप मुझको वर देते हो मेरे मनोवांछित वर दो, मैं यह वर मांगता हूँ कि आपकी सृष्टिके रचे हुए किस पदार्थ वा किसी जीवमात्रसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ३५ ॥ बाहर, भीतर, दिनमें, रातमें आपके रचे हुए शस्त्रोंसे, भूमिमें, आकाशमें, मनुष्यसे, मृगसे ॥ ३६ ॥ प्राणधारी अथवा विना प्राणधारी,सुर,असुर,महासर्प इत्यादिकसे युद्धमें मेरी हार

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ॥ चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥ यदि दास्यस्यभिमतान् वरान् मे वरदोत्तम ॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्माभून्मम प्रभो ॥३५॥ नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः॥ न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ३६ ॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ॥ अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥ सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः ॥ तपोयोगप्रभावानां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥ ३८॥ इति श्रीभा० म० सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥ नारद उवाच ॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ॥ प्रादात् तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम ॥ तथाऽपि वितराम्यङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥

न हो और संसारमें एक राज्य मेरा ही हो॥३७॥जिस प्रकार सब लोकपाल आपको मानते हैं वैसे ही मुझको मानें । तप योग प्रभाव मेरा कभी क्षीण न होने पाये और मेरा ऐश्वर्य कभी नष्ट न हो । हे नाथ ! जो देना है तो यह वर मुझको दीजिये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा-इस चौथे अध्यायमें, कनककशिपु वर पाय । जीत चराचर देव सब, चढ़ो विष्णु पर धाय ॥ नारदजी बोले कि जब हिरण्यकशिपुने इस प्रकार ब्रह्माजीकी विनय की तब उसके तपसे प्रसन्न होकर वह वर ब्रह्माजीने उसको दिया जो और पुरुषको मिलनेमें महादुर्लभ है॥१॥ब्रह्माजी बोले कि हे तात ! ये वर मनुष्योंके

लिये महाकठिन हैं, जिन्हें तू मुझसे मांगता है परंतु तो भी मैंने तुझको दिये, क्योंकि तूने बड़ा भारी तप किया है ॥२॥ नारदजी बोले कि हिरण्यकशिपुने मनोवांछित वर पाकर परमेष्ठीका पूजन किया, तब अमोघ अनुग्रही समर्थ सदा प्रजापति जिसकी स्तुति करते हैं वे भगवान् ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ३ ॥ इस प्रकार सब दैत्येन्द्रको वर मिले तो वह कञ्चनकेसा तनु धारण करनेवाला कनककशिपु अपने भाई हिरण्याक्षके मरणका स्मरण कर विष्णुको अपना वैरी समझकर उनसे वैर करने लगा ॥ ४ ॥ और सब लोक, दशों दिशा, देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गंधर्व, गरुड़, उरग ॥५॥ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यक्षोंके राजा कुबेर, राक्षस, पिशाच, ईश, भूतेश्वर ॥ ६ ॥ इनके अतिरिक्त और संपूर्ण जीवमात्रको उनके अधीश्वरोंको जीतकर अपने वशमें किया और उस

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ॥ भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन् महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येन्द्रान्गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ॥ यक्षरक्षःपिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥ ७ ॥ महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ८ ॥ यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फटिककुडयानि वैडूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥ ९ ॥

विश्वविजयी दैत्यराज हिरण्यकशिपुने लोकपालोंके स्थान तेजसहित हर लिये देवताओंके उपवनोंसे सौंदर्य देवलोकमें जाकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया और जो महेंद्रके राज्यभवन विश्वकर्माने अपने हाथोंसे निर्माण किये थे वे सुन्दर-सुन्दर मंदिर जो सदा सम्पदाओंसे पूरित,त्रिलोकीकी लक्ष्मी जहां सदा विराजमान उस सुरेन्द्रके स्थानमें हिरण्यकशिपु नामका महाबलवान् दैत्येन्द्र निवास करने लगा॥७॥८॥जिस स्थानमें विद्रुमके सोपान महामरकतमणिकी पृथ्वी, स्फटिकमणिकी भीतें, वैदूर्यमणिके खम्भोंकी मनभावनी सुहा-

वनी अद्भुत कांति झलक रही थी ॥ ९ ॥ जहां चित्र-विचित्र चंदोवे तन रहे थे, पद्मरागमणियोंके मनोहर आसन बिछ रहे थे, दूधके फेन सम श्वेतवर्ण और नाना प्रकारके रंगोंकी कोमल-कोमल शय्या शोभा दे रही थी और उनमें चारों ओर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं ॥ १० ॥ जिनके नूपुरोंकी झनकारसे संसार मोहित हो जाय ऐसी-ऐसी सहस्रों देवांगनायें कुन्दकलीसम दातोंवाली उस मनोहर रत्न स्थलीमें झन-झन करती चारों ओर विचरती फिरती थीं और अपने सुन्दर-सुन्दर चंद्रवदनके प्रतिबिम्बको निहार-निहार प्रसन्न होती थीं॥ ११ ॥ ऐसे शोभायमान, सुरेन्द्रके भवनमें महाबलशाली, पूर्णप्रतापी, उदारचित्त, विश्वविजयी, महाप्रचण्ड तेजस्वी, तपके तेजके प्रभावसे सब देवता जिसके चरणोंकी वारंवार वंदना करते थे ऐसा वह दैत्येंद्र पूर्णप्रतापी अपने प्रतापसे चण्ड शासन करके दिन-रात सुरपुरमें

यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ॥ पयः फेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥ १० ॥ कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दायन्त्यइतस्ततः ॥ रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ॥ रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥१२॥ तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥ १३ ॥ जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ॥ गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन् मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥ १४ ॥ स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरि दक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥ १५ ॥

रमण करता था॥१२॥हे राजन् ! महातीव्र सुगंधित वारुणीके मदसे विकराल लाल-लाल नेत्र, जिसके तप, योग, बल और पराक्रमसे सब स्थानोंके अधिकारी और लोकपाल अनेक-अनेक प्रकारकी भेटें लिये खड़े रहते थे। केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिवने ही उसकी सेवा नहीं की ॥१३॥हे पाण्डव ! इन्द्रके आसनपर अपने पराक्रमसे बलात्कार बैठे हुए उस हिरण्यकशिपुने सम्मुख-विश्वावसु, तुम्बुरु, अस्मदादिक सदा गाया करते थे और गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरा वारंवार उसकी स्तुति करते रहते थे ॥ १४ ॥ जो कोई वर्णाश्रमी जगत्में यज्ञ करता था वह पहले बहुतसी दक्षिणा देकर उसको पूजन कर लेता पीछे और काम करता था। यह अपने तेजके प्रतापसे यज्ञका

हविर्भाग भी लेता था ॥१५॥ सातों द्वीपोंकी पृथ्वी उसके भयकी मारी विना जोते-बोये सब प्रकारके अन्न और फलादिकोंको उत्पन्न करती थी और आकाश सबकी मनकी आशा पूर्ण करता था और अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी सम्पदायें प्रकट होती थीं॥१६॥रत्नाकर भांति भांतिके रत्न अपनी लहरोंसे बाहर निकाल-निकालकर डालने लगा नदियां लवण, मद्य, मधु, घृत, क्षीररूप जलोंसे बहने लगीं ॥१७॥ शैलोंकी कन्दराओंके भीतर महासुखदायक क्रीड़ास्थल आपसे आप बन गये। वृक्ष छहों ऋतुओंमें फूलफलोंसे फलने लगे। सब लोक

अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तुना नाश्चर्यपदं नभः ॥ १६ ॥ रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥ दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८ ॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड्विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥२०॥

पालोंके गुण पृथक्-पृथक् इकला हिरण्यकशिपु धारण करता था॥१८॥इस प्रकार दिग्विजयी सम्राट् दानवराज दिग्विजय कर अपनी इच्छानुसार प्रिय विषयोंका आनन्दपूर्वक भोग भोगने लगा परंतु इंद्रियोंके न जीतनेके कारण उसके मनको संतोष नहीं हुआ ॥ १९ ॥ इस भांति ऐश्वर्यसे मदान्ध, अभिमानसे भरा हुआ पाखण्डी वह हिरण्यकशिपु महा अनीति करनेवाला हुआ, जिसके भयसे इन्द्र इकहत्तर७१चौकड़ी तक राज्यसे भ्रष्ट रहा; ब्रह्मशापसे राक्षसतनु पानेवाले उस दैत्यको समस्त पृथ्वीका राज्य करते करते जब अनेक युग बीत गये ॥ २० ॥

* दृष्टान्त—गंगाजीके किनारे एक ऋषीश्वर कथा करते थे। वहाँ अनेक साधु-संत कथा सुननेके लिये आते और एक राजा भी कथा सुननेको आता था। प्रसादके लालचसे वहाँ एक खाजभरी कुतिया भी आ जाया करे और राजाके समीपही बैठे। राजाने कथामें आना छोड़ दिया। बहुत दिनों पीछे वह राजा कोई पर्व समझकर गंगा स्नानको आया और उन कथा कहनेवाले ऋषीश्वरको दंडवत् प्रणाम किया। ऋषि आशीर्वाद देकर बोले कि हे राजन्! आप कथा सुनने क्यों नहीं आते? राजाने कहा कि वहाँ कुतिया खुजली की मारी खुरखुर करती रहती है इसलिये कथामें नहीं आता, ऋषि बोले कि आना, हम इस बातका भी प्रबंध करेंगे, ऋषिने अपने योगबलके प्रभावसे उस कुतियाको अपसरा बना दिया। राजा ऋषिके कहनेसे कथामें आया और यह अप्सरारूप कुतिया फिर राजाके ही निकट बैठी। तब तो राजा उसको देखकर अत्यन्त ही मोहित हुआ। सबसे पहले आये और उसीके पास बैठे। दिनरात उसीके ध्यानमें मतवाला रहे, सब घरबार छोड दिया, दिनमें चार फेरे वहाँ के करे और नित्यप्रति परमात्मासे यही प्रार्थना करता था कि, हे परमेश्वर! वह दिन कौनसा होगा, जिस दिन वह मृगनैनी पिकबैनी चन्द्रकांता मेरी कान्ता होगी? कभी कुछ विचार करता, कभी कुछ विचार करता, इसी सोच सागरमें डूबा रहता था। एक दिन ऋषीश्वरने राजासे पूछा कि हे राजन्! यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी? राजा नीचेको नेत्र कर बोला कि इस मनमोहिनीने मेरे मनको मोह लिया है; जो मेरे संग इसका विवाह हो तो मेरे

उस हिरण्यकशिपुके प्रचण्ड दण्डसे भयभीत हुए सब देवता और लोकपाल सात द्वीप नौ खण्डोंमें भागे-भागे फिरे जब कहीं कोई रक्षा नहीं देखा तो सब देवता और लोकपाल मिलकर श्रीअच्युत भगवान् वासुदेवकी शरण गये ॥ २१ ॥ जहाँ सर्वात्मा जनार्दन भगवान् हैं और निर्मल हृदय शान्त स्वभाववाले संन्यासी जहाँ जाकर फिर संसारमें नहीं आते, उस दिशाको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥२२॥ ऐसे

तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥ २१ ॥ तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २२ ॥ इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥२३॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिस्स्वना ॥ सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥ मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥

कह मनको सावधान कर, बुद्धिको सुधार निद्राको तज, इंद्रियोंको जीत, समाधि लगाकर पवनके भोजनके आश्रयसे हृषीकेश भगवान्का भजन करने लगे ॥ २३ ॥ जिसका कोई स्वरूप नहीं, मेघके समान गम्भीर शब्दवाली, सब दिशाओंको गर्जित करती, साधु सन्तोंकी अभयदायक आकाशवाणी उनको सुनायी दी ॥ २४ ॥ हे देवो ! तुम कुछ भय मत करो,तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी वाणी और मेरा दर्शन

—प्राण बचें और नहीं तो यह प्राण नहीं बचेंगे । उसके दीन वचन सुनं ऋषिने उसी समय उस नवयौवनाको राजाके साथ कर दिया, वह सुन्दरी राजाके मंदिरमें रहने लगी; रातको जब राजा सो जाता था तो वह कुतियारूपी स्त्री दीपकोंके तेलको चाटा करती थी। एक दिन सोतेसे राजाकी आँख खुल गयी तो देखता क्या है कि, यह चन्द्रमुखी दीपकका तेल चाट रही है, तब तो राजा अत्यन्त घबड़ाकर ऋषीश्वरके पासको भगा और अपने अनुचरोंसे कह गया कि इसको बांधकर अभी गङ्गातीर पर ऋषीश्वरके यहाँ लाओ । राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसको बाँधकर ले चले, राजाने ऋषीसे कहा कि, हे ऋषिराज ! यह स्त्री तो डाकिनी निकली, इसको तो घरमें नहीं रखनेका विचार है, ऋषीश्वर बोले कि, हे भाग्यहीन कुतिया ! अब क्या करूँ मैंने तो तुझे राजमंदिर तक पहुँचा दिया परन्तु तूने तो भी अपने स्वभावकी प्रकृतिको नहीं छोड़ा और दीपकका तेल चाटा, सत्य है प्राणी अपनी प्रकृतिको नहीं त्यागता, ऐसे ही तपके प्रभावसे हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीसे मिला, परन्तु अपने राक्षसी स्वभावको नहीं छोड़ा और उसने-ऐसे ऐसे कुकर्म किये, पाखण्डी बने । यहाँ ग्रन्थके अधिक हो जानेके कारण इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त नहीं लिखा ।

सब जगत्का मङ्गलदायक है ॥ २५ ॥ उस दुष्ट दैत्यकी दुष्टता मैं भलीप्रकार जानता हूँ;इसकी शांति मैं बहुत शीघ्र करूंगा, अभी कुछ काल तुम धैर्य धरो *॥२६॥ जो मनुष्य, देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे वैर करते हैं, वे शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं ॥२७॥ दोहा—समदरशी अरु शान्तचित, मेरा भक्त उदार । नाम जासु प्रह्लाद है, धरा धर्म आधार ॥ ऐसे अपने पुत्र महात्मासे वैर करेगा तो यद्यपि वर भी मैं उसको दे चुका हूँ,तो भी उसको विना मारे कभी नहीं रहूँगा॥२८॥नारदजी बोलेकि श्रीलोकगुरु आदिपुरुष अविनाशीकी

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य यत् ॥ तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत् प्रतीक्षत ॥ २६ ॥ यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥ निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ॥ प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ २९ ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥ ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ आत्मवत् सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३१ ॥ दासवत् संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत् सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ॥ विद्यार्थरूप-जन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥ ३२ ॥

यह वाणी सुनकर देवताओंने अत्यन्त सुख माना और परमात्माको प्रणाम कर सब अपने अपने स्थानोंको चले गये और उसी दिनसे असुरको मरा समझ लिया ॥२९॥ उस दैत्यपतिने महाअद्भुत परम उदार चार कुमार उत्पन्न किये, उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा परन्तु गुणमें सबसे बड़ा और परमेश्वरका पूर्ण भक्त था ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंका रक्षक, शीलसंपन्न, सत्यवादी जितेन्द्रिय और सर्वत्र जीवमात्रको अपने आत्माके समान मानने वाला और सबका प्यारा सुहृद था॥३१॥सज्जन पुरुषोंके चरणोंका दासकी नाईं सेवन करता । पिताके समान दीन

* शंका—हिरण्यकशिपुने जिस दिन ब्रह्मासे वरदान पाया, उसी दिनसे धर्मसे, भगवान्से, देवताओंसे, गायोंसे, ब्राह्मणोंसे, वेदोंसे एकाएकी वैर करने लगा तब भगवान्ने देवताओंसे क्यों कहा कि देवता लोगो! डरो मत, जब हमसे, धर्मसे, देवताओंसे, वेदसे, ब्राह्मणोंसे, साधुओंसे गायोंसे वैर करेगा तब हम उसी समय हिरण्यकशिपुको मार डालेंगे, यह बड़ी भारी शंका है।

उत्तर—इन सबसे पृथक्-पृथक् वैर राक्षस करता था, राजनीति विचारके फेरफार करके वेदसे और भगवान्से तो बहुत शत्रुता करता था, परन्तु ब्राह्मणोंसे प्रीति भी करता और वैर भी करता था, ऐसी चतुराईसे वैर किया था और भगवान्ने कहा था कि जो सबसे एक बार वैर करेगा, तो उसी समय मार डालेंगे ।

जनोंपर दया रखता, अपने सदृश जो नगरनिवासी थे उनको भ्राता के तुल्य मानता और गुरुजनोंको ईश्वर समान जानकर पूजन करता था। विद्या, धन, रूप और कुलमें परिपूर्ण अर्थात् उत्तम होनेपर भी उसको इन बातोंका गर्व नहीं था ॥३२॥ कभी मनमें उद्विग्न नहीं होता, सब व्यसनोंसे दूर रहता, सुनता-देखता सब कुछ, परन्तु इस लोकके और परलोकके पदार्थोंको अनित्य समझता, सदा इंद्रिय, प्राण, शरीर,बुद्धिको दमन करता रहता मनमें ही सब कामनाओंको शान्त करता रहता था। यद्यपि असुरके घरमें जन्मा था, परन्तु तो भी सुरों को सुख देनेवाला था ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जिसके गुणोंको कविलोग वारंवार ग्रहण करते हैं ईश्वरके गुण जैसे छिपाये नहीं छिप सकते, ऐसे ही प्रह्लादके गुण भी आजतक जगत्में प्रकट हो रहे हैं॥३४॥हे नरेश ! सुर असुरलोगोंके शत्रु हैं, परन्तु जहां कहीं कथा वार्ता और

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निस्स्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥ ३३ ॥ यस्मिन्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुनाऽपि धीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥३४॥ यं साधुगाथा सदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥३५॥ गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥ न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत् तन्मनस्कया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥

बड़े-बड़े महात्माओंकी गणना होती है,वहां पहले प्रह्लादकी ही उपमा देते हैं और आप सरीखे सज्जनोंका तो कहना ही क्या है ? ॥३५॥ यह तो सब मैंने उसके गुणोंकी और यशकी बड़ाईकी और उसके गुणोंकी तो गिनती ही नहीं,भला फिर उसके गुणोंकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है ? उसके असंख्य गुण समझने चाहिये जिसकी वासुदेव भगवान्में स्वाभाविक प्रीति है ॥ ३६ ॥ बालपनका उसने कोई खेल न खेला और न कोई खिलौना हाथमें लिया, केवल शालग्रामकी मूर्त्तिको ही खिलौना समझता रहा और सब संसारके खेलोंको छोड़ विष्णु भगवान्के चरणारविन्दोंमें ही मनको लगा रखा था और भगवान्रूप ग्रहने उसके आत्माका ग्रहण कर लिया था,केवल जड़की

नाईं रहता था और संसारको कुछ नहीं समझता था कि संसार क्या वस्तु है ? ॥ ३७ ॥ बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते,जागते,बोलते, बतलाते, गोविन्दरूपमें लीन होनेके कारण उसको इन बातोंकी सुध नहीं थी ॥३८॥ श्री भगवान्‌के ध्यानमें ऐसा मतवाला रहता था कि कभी रोता; कभी हँसता, कभी उसकी लीलाओंका स्मरण कर पुकार-पुकार मनही मनमें मग्न होता था ॥३९॥ कभी उत्कण्ठित हो 'हरे-हरे' पुकार उठता, कभी लाजको तज नाचने लगता, कभी भगवान्‌की भावना कर तन्मय हो अनेक प्रकारका विहार करता था ॥४०॥ कभी भगवान्‌की मनोहर छबिके ध्यानमें मग्न होकर मौन हो जाता, कभी आनंदित हो आंखोंसे आंसू बहाता, कभी नेत्र बन्द कर हृदयमें उस मनोहरकी मनमोहनी छबिका दर्शन करता था ॥४१॥ उत्तमश्लोकके चरणोंकी सेवा करनेवाला चाहे कुछ न चाहे, परन्तु

आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ॥ नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ॥ क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥ नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित् तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥ ४० ॥ क्वचिदुत्पलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥४१॥ स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाऽकिंचनसङ्गलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनश्शमं व्यधात् ॥४२॥ तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥४३॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥४४॥ पुत्रान्विप्रातिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४५ ॥

सेवाका फल उसको अवश्य मिलता है ।उस भगवच्चरणकी सेवाके प्रतापसे यह अपने मनमें परमानन्द मानता था और कुसंगसे आर्त हुए और लोगोंके मनको भी शान्त करता था॥४२॥हे राजन् ! ऐसे महाभागवत बड़भागी अपने पुत्रसे वह दैत्यराज अकारण वैर करने लगा ॥४३॥युधिष्ठिरने पूछा कि हे सुव्रतधारी नारदजी ! इस बातके सुननेको मेरा मन बहुत चाहता है,कि उस शुद्धचित्त सत्पुत्रसे उसके पिता हिरण्यकशिपुने वैर क्यों किया ? (इस बातका मुझको अत्यन्त संदेह है) ॥ ४४ ॥ चाहे पुत्र अपने अनुकूल न हो तो भी पिता पुत्रपर प्रेम रखता ही है और शिक्षा देनेके लिये क्रुद्ध भी हो जाय, परंतु तो भी शत्रुके समान उसको कठिन दुःख नहीं देता ॥ ४५ ॥

और जो कुलमें सत्पात्र पुत्र हो पिताकी सेवा करे; गुरुको अपना इष्टदेव माने, ऐसे साधु पुत्रसे तो कोई भी शत्रुता नहीं करता, फिर वैर करनेका क्या कारण ? हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! ये बड़े कौतुककी अद्भुत बात सुनकर मेरे मनमें बड़ा भ्रम है, सो विस्तारपूर्वक आप यह मेरा भ्रम दूर कीजिये । पिता पुत्रका जो द्रोह हुआ और उसके पिताको भगवान्ने मारा, हे विद्वज्जन् ! हे द्विज नारद ! इस बातसे मेरे मनमें बड़ा संकट होता है,विस्तारपूर्वक आप इस इतिहासको वर्णन कर मेरा संशय दूर कीजिये ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेसप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां हिरण्यकशिपुदिग्विजय–प्रह्लादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–गुरुकी शिक्षा छोड़कर, श्रीहरिकी स्तुति कीन्ह । दैत्य भक्त प्रह्लादको,महाकठिन दुख दीन्ह॥नारदजी बोले कि एकसमय दैत्योंने भगवान् शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया

किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादचरित्रे हिरण्यकशिपुदिग्विजयप्रह्लादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥ १ ॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥ यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥ ३ ॥ एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ ४ ॥

था, उन शुक्राचार्यकेशण्ड और आमर्क नामक दो बेटे थे, उनका स्थान भी हिरण्यकशिपुके निकट ही था॥१॥यह दोनों दैत्यराजके भेजे हुए प्रह्लाद जो नीतिशास्त्रमें अत्यंत कुशल थे, उनको और उसके अतिरिक्त और-और जो असुरोंके बालक थे, उनको दण्डनीति आदिके ग्रन्थ पढ़ाते थे ॥ २ ॥ प्रह्लादको जो गुरुजी पढ़ाते थे उसको सुनकर और समझकर गुरुके आगे वैसे ही पढ़ लेता था परंतु पीछे उसपर किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न करता था, क्योंकि यह अपने, पराये असत् आश्रय, झूठे जगत्से क्या प्रयोजन रखता था ? इसलिये गुरुकी बात इसको अच्छी नहीं लगती थी ॥३॥ हे पाण्डव ! एक दिन हिरण्यकशिपुने अत्यन्त लालन-पालन कर अपने सुत प्रह्लादको

अपने निकट बुलाकर गोदीमें बैठाकर पूछा हे पुत्र ! जो वस्तु तुझको अच्छी लगती हो वह मुझसे कह, मैं अभी तुझको मँगा दूँ ॥ ४ ॥ यह सुन प्रह्लाद बोला कि हे असुरोत्तम पिता ! सदा उद्विग्न बुद्धिवाले शरीरधारियोंके आत्माका नाश करनेवाला नरकमें डालनेवाला अंधकूपरूप गृह है, उसको तज वनमें जाकर हरिभजन करना और उसीकी शरणमें रहना यही साधु और अतीव उत्तम है ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि दैत्यराज शत्रुके पक्षका आश्रय लेनेवाली अपने पुत्रकी वाणी सुनकर, सभामें हँसकर बोला कि बालककी बुद्धि शत्रुकी ओरको फिर गयी, क्योंकि बालकोंकी बुद्धि स्थिर नहीं होती, दूसरेके पास बैठनेसे वैसी ही हो जाती है ॥ ६ ॥ इसलिये गुरुसे कहो कि इस बालकको अपने घरमें बैठाकर अच्छी रीतिसे पढ़ावे जिससे इसकी बुद्धि विष्णुके पक्षवाले छिपे हुए भागवत कहीं पाठ-

प्रह्लाद उवाच ॥ तत् साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्य याजकाः ॥ प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥ ८ ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥ ११ ॥

शालामें जाकर न फेर लें, मुझको विष्णुका यह बड़ा भारी खटका है कि वह मेरे घरमें कहीं बिखण्डा न डाल दे ॥ ७ ॥ शुक्राचार्यके दोनों लड़के हिरण्यकशिपुके घर आये और प्रह्लादको अपने पास बैठा मधुर वाणीसे प्रशंसा और श्लाघा कर साम वाक्योंसे पूछा ॥ ८ ॥ हे वत्स प्रह्लाद ! हे असुरेशकुमार ! तेरा कल्याण हो,तू सत्य कह, झूठ मत कहना, सब बालकोंसे तेरी बुद्धि श्रेष्ठ है,पर इन सब बालकोंकी बुद्धिमें अन्तर न पड़ा फिर तेरी बुद्धिमें यह विपरीत भाव क्यों पड़ा ? ॥ ९ ॥ हे दैत्यकुलनन्दन ! तुझे किसी औरने सिखाया कि तेरी बुद्धि आपसे आप फिर गयी ? इस बातके सुननेकी हमको अभिलाषा है, वह शीघ्र कहो ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि

जिस परमात्माकी मायाने अपना पराया यह भेद मनुष्योंके मनमें डाल रखा है, और असत् वस्तुका मोह उत्पन्न किया है, परंतु वह मोह उन्हींके मनको मोहित करता है, जिसकी मतिको उसकी मायाने मोह लिया है, उस परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ ११ ॥

स यदाऽनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथाऽन्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥ १२ ॥ स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥ १३ ॥

यह परमेश्वर जब पुरुषोंके अनुकूल होता है, तब पशुवत् बुद्धिवालोंका भी बुद्धिभेद निवृत्त हो जाता है, यह और है, हम और हैं, यह द्विविधा सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है, इस बातपर एक श्लोक स्मरण हुआ * ॥ १२ ॥ सो यह आत्मा अपना पराया जो समझे है यही

---

* श्लोक —"अन्धकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका ।। त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्धाः सम्मुखेच विधातरि ।

* अर्थ—जब विधाता सम्मुख होता है, तब अन्याय करनेसे भी कार्य सिद्ध हो जाता है । जैसे अन्धे, कुबड़े और तीन स्तनकी राजकन्याका कार्य सिद्ध हुआ। एक अन्धा क्षत्रिय, कुबड़ा ब्राह्मण, दोनोंने मालीकी विनती कर राजाके बागमें ठहरनेके लिये थोडासा ठौर माँग लिया, जब भूख लगी तब दोनों परस्पर कहने लगे कि भोजनका क्या प्रबन्ध है । अन्धा बोला कि तू कन्धेपर चढ़कर फल तोड़ हम तुम दोनों खा लेंगे। जब यह मत दोनोंने कर लिया तो अन्धा नित्य कुबड़ेको अपने कन्धेपर चढ़ाकर फलोंसे दोनोंजने अपना उदर पूर्ण कर लिया करें । एक दिन राजा बागमें आया तो उसने वृक्षोंपर फल कम देखे । मालीसे पूछा वृक्षोंपर फल थोड़े क्यों हैं ? मालीने हाथ जोड़कर निवेदन किया, महाराज ! यहाँ तो कोई आता ही नहीं फिर फल कौन तोड़ता ? हाँ एक अन्धा और एक कुबड़ा तो यहाँ अवश्य रहते हैं, वे किसी प्रकार फल तोड़ नहीं सकते, यह सुन राजा बोला कि निस्संदेह वे ही चोर हैं। मालीसे कहा कि छिपकर देखो, मालीने छिपकर देखा तो निश्चय उन्होंनेही अपनी विद्या और चतुराईसे फल खाये और छिलके गढ़ा खोदकर दबा दिये, माली दोनोंको पकड़कर राजाके पास लाया, राजाने कहा इन दोनोंको तो विधाताने पहलेसे दण्ड दे रक्खा है हम इनको क्या दंड दे ? राजाने उनसे पूछा कि तुम कौन जाति हो ? वे बोले हममें अन्धा तो क्षत्रिय और मैं ब्राह्मण हूँ, राजाने ब्राह्मण समझकर कुबड़ेका तो अपराध क्षमा कर दिया और अन्धेको क्षत्रिय जानकर और दुखी देखकर तीन स्तनवाली अपनी कन्या विवाह दी और अलग उनके रहनेके लिये बागमें एक स्थान दे दिया । अन्धा नित्यप्रति आनन्दसे आहार-विहार करने लगा । कुबड़ा अन्धेको देख-देख मनमें जलने लगा। एक दिन कुबड़ेने मरा हुआ साँप कहींसे लाकर उसको हाँडीमें बन्द करके पकाया अन्धा बोला भाई ! आज कुछ साग भी बनाया है ? कुबड़ेने कहा हाँडीमें रखा है, ले ले। अन्धेने ज्यों हाँड़ी उघाड़ी त्यों ही साँपकी बाफसे अन्धेके नेत्र खुल गये, देखा तो उस स्त्रीके संग कुबड़ा प्रसंग कर रहा है। अन्धेने क्रुद्ध होकर कुबड़ेके एक लात मारी, लातके लगते ही कुबड़ेका कूबड़ अच्छा हो गया। उस अबलाको सबला समक्ष एक लात उसकी भी छाती में मारी । उसी समय उसका तीसरा स्तन अस्त हो गया। प्रह्लादने कहा—देखो भाइयो बालको ! हरिका प्रताप और सुधके दिन ऐसे होते हैं, तुम भी हरिका भजन करो, जिससे तुम्हारे भी सब काम सिद्ध हों, देखो वह अन्धा राजा हुआ और वह स्त्री रानी हुई कुबड़ा मन्त्री हुआ तीनों आनन्द करने लगे ।

मूर्खपन है, इसके दूर करनेका कोई उपाय करो, देखो परमेश्वरकी गति कैसी अपरंपार है, जिसके वादमें वेदवादी ब्रह्मादिक भी मोहको प्राप्त होते हैं। हाय ! ऐसे परमेश्वरके भजनको त्यागकर अज्ञानी लोग दूसरेको अपना समझते हैं उसी भगवान्ने मेरी मतिको फेर दिया है और मेरे हृदयमें वास कर वही मुझको सिखा रहा है ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे चुम्बुक पत्थरकी आकर्षणशक्ति लोहेको अपनी ही ओर खींचती है, ऐसे ही मेरे मनको भगवान् चक्रपाणि अपनी ओरको खींचते हैं, परंतु इस बातको मैं कुछ नहीं जानता कि भगवान्का ऐसा अनुग्रह मुझपर क्यों हुआ? ॥१४॥ नारदजी बोले कि,गुरुसे यह बात कहकर महात्मा प्रह्लाद चुप हो गया, तब वह कुपित हुआ ब्राह्मण राजा का

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन्स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥१५॥ आनीयतामरे बेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलांगारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥

सेवक[1] महादीन हो प्रह्लादको धमकाकर कहने लगा ॥ १५ ॥ अरे लड़को! बेंत तो लाओ यह सीधे स्वभाव नहीं मानेगा, क्योंकि हमारे यशका नाशक, अपनी अपकीर्ति करानेवाला, राजवंशमें अंगारेकी नाई उत्पन्न हुआ है। इस दुर्बुद्धिको उपायोंमें चौथे उपायका दमन रूप दंड देना चाहिये ॥ १६ ॥ हमारे दैत्यवंश चन्दन वनमें यह महाकण्टक करील वृक्षके समान कहांसे प्रकट हो गया ? हमको ऐसा जान पड़ता है कि दैत्यवंशके वनका विध्वंस करनेवाले विष्णुरूप कुठारका यह दंड हुआ, जबतक यह हमारे घरका भेदी विष्णुसे न मिलेगा, तब

१. शंका--जिन शुक्राचार्यके भयसे इन्द्रादिक देवता रात-दिन थर-थर कांपते थे, वही शुक्राचार्य कृपादृष्टिसे राक्षसोंको देखते हैं तब आनन्द करते हैं। जब राक्षसोंके ऊपर शुक्राचार्य कृपा नहीं करते तब उसी समय राक्षस महादुःखी हो जाते हैं, इसका क्या कारण ? ऐसे प्रतापीजो शुक्राचार्य उनके पुत्रको नारदजीने राजाका सेवक क्यों कहा ? और यदि कोई विद्वान् ऐसा अर्थ करते हैं कि शुक्राचार्य के पुत्रका सेवक राजा है इसलिये राजसेवक कहा, तो फिर शुक्राचार्यका पुत्र दुःखी क्यों हुआ ?

उत्तर--धर्मशास्त्र का यह मत है कि जिस मनुष्यका जो पुरोहित होना है वह उसका सेवक कहलाता है; पुरोहितमें और सेवकमें कुछ भी भेद नहीं है, इसलिये शुक्राचार्यके पुत्रको नारदजीने राजा सेवक कहा; इसमें कोई संशयकी बात नहीं।

तक कोई हमारा बाल बांका नहीं कर सकता * ॥ १७ ॥ इस प्रकार उन ब्राह्मणोंने अनेक-अनेक भांतिसे प्रह्लादको डराकर धर्म, अर्थ, कामके उपाय सम्बन्धी विद्या सिखाने लगे ॥ १८ ॥ कुछ दिन उपरान्त गुरुने अपने मनमें जाना कि यह साम, दाम, दंड, भेद चारों बातें अच्छी सीख गया, तब प्रह्लादको उसकी माताके द्वारा स्नान कराकर, सब श्रृंगार सजाकर दैत्यराजके समीप ले गया ॥१९॥ जाते ही प्रह्लाद हिरण्यकशिपुके चरणोंमें गिर गया, दैत्येन्द्र आशीर्वाद दे, आदर-सम्मान कर, शिरपर हाथ फेर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर ! उसको गोदमें बैठाकर,शिर सूंघ, प्रेमके वशीभूत हो नेत्रोंके जलकी धारासे स्नान कराया,उस दैत्यराजने अत्यन्त

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥ १८ ॥ तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ॥ दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥ पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषाऽसुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥२०॥ आरोप्यांकमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ॥ आसिञ्चन् विकस-द्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैताव-ताऽऽयुष्मन् यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥ २२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥

प्रसन्न हो कोमल कमलसे मुखवाले प्रह्लादसे कहा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु बोला हे प्रह्लाद ! हे पुत्र ! हे दीर्घायु ! इतने दिनोंमें जो कुछ तुमने अपने गुरुसे भलीभांति पढ़ा हो और जो अच्छा स्मरण हो, वह अपने मुखसे मुझे सुनाओ ॥ २२ ॥ प्रह्लादजी बोले; कि नारायणकी कथा सुने, विष्णुका नाम ले, भगवान्का स्मरण करे; जनार्दनकी परिचर्या पूजन करे, चक्रपाणिका अर्चन करे, परमेश्वरकी वन्दना करे, वृन्दावनविहारीका दास बने,श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दसे सुहृद्भाव माने,अपनेको श्रीविश्वनाथ विश्वंभरकी भेंट करे यह नौ

* इस बात पर दृष्टांत है—पचीस गाड़ी कुल्हाड़ियोंसे भरी हुई एक वनमें होकर निकलीं, पेड़ उनको देखते ही दूरसे चिल्लाकर बोले कि आज हम सबकी मृत्यु आ गयी, क्योंकि एक कुल्हाड़ीसे सैकड़ों वृक्ष कट सकते हैं और यह तो सहस्रों कुल्हाड़ी हैं फिर हमारा क्या बचना है? उनमें से एक वृक्ष बोला कि इनमें कोई हमारे घरका भेदी तो नहीं है? वृक्षोंने कहा कोई नहीं, केवल गाड़ी ही गाड़ी है; अशोकने कहा तो फिर क्या सन्देह है? अरे जबतक इनमें हमारी जातिका बेंट न पड़ेगा तबतक यह दीन कुल्हाड़ी हमारा कुछ नहीं कर सकती। अब तुम संशय को त्याग आनन्द करो।

प्रकारकी भक्ति है, ॥२३॥ यह नौ प्रकारकी भक्ति भगवत्में करनी। यही उत्तम पढ़नेका सार है परन्तु इतने दिनोंमें जो भी कुछ मुझको गुरुजीने पढ़ाया उसमें ऐसा उत्तम कोई भी विषय पढ़नेमें नहीं आया॥२४॥नारदजी बोले कि, इस प्रकार पुत्रके मुखसे जब यह वचन सुना तो हिरण्यकशिपुको अत्यन्त क्रोध बढ़ा, जिससे होंठ फड़कने लगे, उसी समय गुरुपुत्रको बुलाकर कहा ॥२५॥ हे ब्राह्मणाधम ! हे दुर्मते ! तूने यह क्या किया ? मेरे शत्रुके पक्षकी असार बात सिखा-सिखाकर लड़केको बिगाड़ दिया और मेरा इस प्रकार अनादर किया ॥२६॥ आजकल संसारमें शठ साधुओंका वेष बनाये अपना रूप छिपाये बहुत फिरते हैं, दोहा–अवशि खुलत कपटिन कपट, कछुक कालको पाय। जिमि पापिनको पाप हठि, रोग व्याज दरशाय ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र बोले कि, हे इन्द्रशत्रो ! इस तुम्हारे पुत्रको न तो मैंने पढ़ाया

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत् सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥ ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता ॥ असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ ॥ सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ॥ नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन् नियच्छमन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ॥ न चेद् गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥ २९ ॥ प्रह्राद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो व मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ॥ अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ ३० ॥

और न किसी औरने सिखाया है, क्योंकि आपके डरके मारे कोई इसके पास भी नहीं जाने पाता, यह अपने ही मनसे ये बातें करता है, इसकी स्वाभाविकीबुद्धि ही ऐसी है; हे राजन् ! हमारे ऊपर तो आप वृथा क्रोध करते हो, हमको दोषी मत बनाओ; इसमें आपका आगम विद्यमान हुआ है ॥२८॥ नारदजी बोले कि जब इतनी बातें गुरुने कहीं, तब दैत्येन्द्रने फिर प्रह्लादसे कहा कि हे अभद्र ! जो यह बातें तूने गुरुसे नहीं सीखी तो फिर यह विपरीत बातें और खोटी बुद्धि तुझमें कहांसे आई ? ॥ २९ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और पापकी रीतिको नहीं छोड़ा, वे अन्धे नरकमें जानेवाले कुटुम्बकी ममतामें बारंबार चाबे हुए चर्वणको

चाबनेवाले अर्थात भोगे हुएको भोगनेवाले हैं, ऐसे गृहस्थ पुरुषोंकी बुद्धि न अपने आपसे, न दूसरेके सिखानेसे और न शत्रु मित्रके कहनेसे विष्णु भगवान्‌की ओरको प्राप्त होती है ॥३०॥ महाअभिमानी, दुष्टहृदयवाले, विषयवासनामें लवलीन, न परमार्थको माने न विष्णुको जाने, न अपने स्वार्थको पहिचाने, परमात्माकी वेदलक्षणा वाणी सकाम कर्म करानेवाली रस्सीमें बँधे हुए ऐसे ही पुरुषोंसे गुरुदीक्षा लेनेवाले मनुष्य परमेश्वरको नहीं मानते, वह नरकमें जाते हैं, जैसे अन्धा अन्धेको लेकर कुएमें गिर पड़ता है ॥ ३१ ॥ जो शठ, दुर्मति विषयवासनाके मदमाते जब तक महात्मापुरुषोंके चरणारविन्दकी रजको अपने शीशपर धारण नहीं करते, तबतक उनका अनर्थ किसी प्रकार दूर नहीं हो सकता, और न कोई मनोरथ सिद्ध हो सकता है, न श्री गोविन्द भगवान्‌के पदारविंदमें मन ही

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ॥ अन्धा यथाऽन्धैरुपनीयमाना वागीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥ ३१ ॥ नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्तोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अन्धीकृतात्मा स्वोत्संगान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाऽऽविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वयं वध्यो निस्सारयत नैर्ऋताः ॥ ३४ ॥ अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान् सुहृदोऽधमः ॥ पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः ॥ सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद् यः पञ्चहायनः ॥ ३६ ॥

लग सकता है ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! इतनी बात कह प्रह्लाद जब चुप हो गया, तब हिरण्यकशिपुने उसे अत्यन्त कुपित हो गोदसे लेकर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ ३३ ॥ फिर क्रोधसे रोषाविष्ट हो विकराल नेत्रकर महागंभीर वाणीसे बोला कि हे दैत्यो मेरे आगेसे इस दुष्टको ले जावो और अभी मार डालो, क्योंकि यह अधम वध करनेके ही योग्य है ॥३४॥ यही विष्णु मेरे भ्राता हिरण्याक्षका वध करनेवाला है, देखो ! अपने सुहृत्सम्बन्धियोंको त्याग चाचाके मारनेवाले विष्णुके चरणोंको यह दासकी नाईं पूजता है ॥ ३५ ॥ देखो ! पुत्रको इस संसारमें अपने माता-पिताकी प्रीतिका त्यागना महाकठिन है वह इस दुष्टने पांच ही वर्षकी अवस्थामें माता-पिताकी

प्रीतिको क्षणमात्रमें त्याग दी और कुछ आगा-पीछा न सोचा, फिर यह निर्मोही विष्णुके साथ क्या भलाई करेगा ?॥ ३६ ॥ अपना हो या पराया उसीको अपना पुत्र समझना चाहिये जो अपना हितकारी हो और अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुआ तो क्या ? जो अपना भला न चाहे, उसको रोगकी नाईं दुःखदायी समझना चाहिये इन दोनोंका काटना ही अच्छा है, ज्यों-ज्यों ये बढ़ते हैं त्यों-त्यों अधिक दुःख देते हैं, पुत्र जो शत्रु हो जाय तो उसका कहना ही क्या ? पुत्र दूसरा देह है परन्तु शरीरके अंग भी हाथ-पाँव आदिक कष्ट दायक हो तो निःसंदेह उन्हें उसी समय काट डाले,क्योंकि उनके काटनेसे और जो देह है उसको तो सुख होगा, ऐसे ही एक पुत्रके मारनेसे और परिवारको तो सुख होगा ॥३७॥ यह विश्वासघाती अपना होकर शत्रुका कार्य करता है इसलिये इसका मारना ही अच्छा है खाते, पीते, सोते,

परोऽप्यपत्यं हितकृद् यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत् सुतोऽहितः ॥ छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥ ३७ ॥ सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः ॥ सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९ ॥ नदन्तो भैरवान् नादाञ्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥ आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥ युक्तात्मन्यफलाआसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः ॥ चकार तद्वधोपायान् निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥ ४२ ॥

जागते, उठते,बैठते अथवा विष देनेसे जिस उपायसे बने उस उपायसे इसको मारो, जैसे मुनि दुष्ट इन्द्रियको मारते हैं ॥ ३८ ॥ हिरण्यकशिपुकी ऐसी कठोर वाणी सुनकर बहुतसे दैत्य त्रिशूल हाथमें लिये पैने दांतवाले, विकरालमुख, ताम्रवर्णकी दाढ़ी मूँछवाले ॥ ३९ ॥ भैरवकी नाईं भयंकर नाद करने लगे-मारो-मारो, काटो-काटो, पकड़ो-पकड़ो न जाने दो न जाने दो, ऐसे कह प्रह्लादके मर्मस्थलोंमें त्रिशूल मारने लगे ॥ ४० ॥ जो परब्रह्म परमात्मा किसीके देखनेमें नहीं आता वह वासुदेव भगवान् सर्व अगोचर सर्वान्तर्यामी जिसके हृदयमें रात-दिन वास करे, ऐसे प्रह्लादपर सब दैत्योंके प्रहार वारंवार निष्फल होते थे । दोहा—जैसे उद्यम करें बहु, पुरुष भाग्यके हीन । मिलत न धन तिनको तनक, रहत दीनके दीन ॥ इस प्रकार सब असुर मन मार-मार कर रह जाते ॥४१॥ हे युधिष्ठिर ! राक्षसोंके सब परि

श्रम जब व्यर्थ हो गये, तब दैत्येन्द्र अपने मनमें बड़ा शंकित हुआ और प्रह्लादके मारनेके लिये अनेक-अनेक प्रकारके प्रयत्न करने लगा ॥ ४२ ॥ दिग्गज, सर्पेन्द्र, कृत्या, पर्वतसे गिराना, माया, गुफामें रोकना, विष देना, कुत्सित भोजन ॥ ४३ ॥ पाला, वायु, अग्नि, जल, पत्थरके नीचे दबाना; इन उपायोंसे पापरहित पुत्रके मारनेको जब असुर हिरण्यकशिपु समर्थ न हो सका तब प्रह्लादजीके मारनेके लिये अतिचिंताको प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥ हिरण्यकशिपु बोला—इस प्रह्लादके मारनेके लिये मैंने अनेक प्रयत्न किये; अधर्म, निर्मोह, द्रोह,

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥४३॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ॥ न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ॥ * चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥४४॥ एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥ तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥ ४५ ॥ वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनश्शेप इव प्रभुः ॥ ४६ ॥ अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥ ४७ ॥

असद्धर्म-भांति-भांतिके प्रयोग, तो भी यह चाण्डाल अपने तेजके प्रभावसे बच जाता है ॥ ४५ ॥ देखो ! यह मायावी मेरे सम्मुख निःशंक बैठा है, अपने मनमें कुछ शंका नहीं मानता और अपनी हठको नहीं छोड़ता जैसे श्वानकी पूँछको कितनी ही सीधी करो परंतु वह कभी सीधी नहीं होती मैं जानता हूँ कि, थोड़े दिन उपरांत यह दुष्ट बालक मेरे कर्त्तव्यको नहीं भूलेगा ॥ ४६ ॥ क्योंकि इस प्रह्लादका अप्रमेय प्रभाव है, मैं जानता हूँ कि यह अमर है, इसी लिये किसीसे भय नहीं मानता, मुझको यह निश्चय होता है कि इसीके विरो-

* इसका एक इतिहास है, ढुंढा राक्षसीने अग्निका एक ऐसा मन्त्र सिद्ध कर रक्खा था कि चाहे जिसको अपनी गोदीमें लेकर अग्निमें बैठ जाय और लाखों मन ईंधन उसके ऊपर जला दो, परन्तु वह न जले । यह उपाय उसने प्रह्लादजी पर भी किया, परंतु उस हरिके प्यारेको कुछ भी नहीं हुआ और आप ढुंढा ही जलकर मर गयी, प्रह्लादको किसी प्रकार की आँच भी न आयी । जब वह जलकर मर गयी और प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ; तब उसको श्री नृसिंहजीने मरी देखकर यह वरदान दिया कि इसका सब संसार में पूजन होगा, क्योंकि इसने मेरे भक्तके हेतु अपना देह जलाया है, इसलिये इसका नाम आजसे होली होगा । हे युधिष्ठिर ! उसी दिन से "होलिका" नाम जगत्में प्रसिद्ध हुआ ।

इससे मेरी मृत्यु होगी, और किसी प्रकार मेरा देहपात न होगा ॥ ४७ ॥ इस चिन्तासे किञ्चित् चित्तमें ग्लानि मान, शोभाहीन, मन मलिन; नीचेको मुख किये हिरण्यकशिपु शोकाकुल बैठा था,उसी समय शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और आमर्कने एकान्तमें आकर यह कहा ॥४८॥ हे नाथ! आपने अकेले अपने महाप्रचंड तेजकेप्रभावसे तीनों लोकका विजय किया और आपकी किंचिन्मात्र भ्रुकुटीके चढ़ानेसे सब लोकपाल थर-थर कांपने लगते हैं, फिर आप ऐसे पराक्रमी और त्रिलोकीनाथ होकर अनाथकी नाईं क्यों चिंता करते हो ? बालकोंके गुण-दोषका कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनकी बातका कुछ विश्वास नहीं ॥४९॥ अब इसको वरुणपाशसे बांधकर एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द कर रक्खो, जो कहीं भाग भी न सके, थोड़ी देरमें पिता शुक्राचार्य भी आनेवाले ही हैं, कभी उन्हींके समझाने-बुझानेसे कुछ समझ

इति तं चिन्तया किंचिद्म्लानश्रियमधोमुखम् ॥ शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥ ४८ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ॥ न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ४९ ॥ इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसाऽऽर्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥५०॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मो ह्यस्योपदेष्टव्यो राज्ञां यो गृहमेधिनाम् ॥ ५१ ॥ धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रयावनताय च ॥ ५२ ॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥ ५३ ॥ यदाऽऽचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४ ॥

जाय; क्योंकि यह बात तो जगत्में विख्यात ही है कि, पुरुषोंकी बुद्धि युवा अवस्थासे और वृद्धजनोंकी सेवासे बढ़ती है ॥५०॥ हिरण्यकशिपुने गुरुपुत्रोंका उपदेश मान,उनसे ही कहा कि तुम ही इसको अपने घर ले जाओ और जो गृहस्थी राजाओंके धर्म और भयानक कर्म हैं, वह सब सिखाओ ॥५१॥ हे राजन्! शण्डामर्क सत्-साधु प्रह्लादको अपने घर ले जाकर संक्षेपसे धर्म, कर्म, अर्थ, काम और असुर कुलके धर्म भयानक कर्मोंका विषय पढ़ाना आरंभ किया ॥ ५२ ॥ जो-जो विषय गुरुने प्रह्लादको सिखाये उनमेंसे कोई विषय प्रह्लादके चित्तमें न जमा, क्योंकि संसारके दुःख सुखकी बातें विषयासक्त इत्यादि शिक्षासे भक्तजनोंका क्या प्रयोजन ? ॥५३॥ जब गुरु गृहस्थाश्रमके कर्मोंमें

लग जाते थे तब उस अवकाशमें प्रह्लाद अपने बराबरके बालकोंको अपने पास बुला लेते थे ॥५४॥ महाबुद्धिमान् प्रह्लाद मधुर वाणीसे उन बालकोंपर कृपा करके हँसते और उनको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा करते थे ॥५५॥ यह बालक प्रह्लादके गौरवसे सब खेल-कूदको त्याग देते थे, सुख-दुःखकी शिक्षावाली बातोंसे किसी बालककी बुद्धि दूषित नहीं होती थी ॥५६॥ हे राजन् ! विद्वान् प्रह्लादजीमें सब बालक हृदय, दृष्टि लगाकर चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते थे तब वे परम कृपालु सबका सुहृद, महाभागवत प्रह्लाद उन बालकोंको इस प्रकार उपदेश करते और

अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ ते तु तद्गौरवा-त्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बाला न दूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥ ५६ ॥ पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे नवधा भक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥२॥

यह भजन सबको सिखाते थे॥५७॥ ❋ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां नवधाभक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ दोहा-छठयेमें प्रह्लाद नित, बालक सकल बुलाय । देत ज्ञान उपदेश शुभ, कथा प्रसंग सुनाय ॥ प्रह्लाद बोला कि चतुर लोगोंको उचित है कि बालपनसे वैष्णवधर्मकी उपासना करें, क्योंकि प्राणीको मनुष्य जन्म मिलना महादुर्लभ है वह भी स्थिर नहीं, परंतु सब अर्थका देनेवाला यही जन्म है ❋॥१॥ पुरुषको इस जगत्में आकर श्रीभगवान् वासुदेवके चरणारविंदकी शरणागति रहना ही मुख्य है, क्योंकि वह परमात्मा

* भजन—भजो भाई हरिहर हरिहर ॥ आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, भयभंजन धरणीधर ॥ १ ॥ जब भक्तनको असुर सतावत, प्रगट होत तेहि अवसर ॥ दुष्ट मार भूभार उतारत, विश्वनाथ विश्वंभर ॥ २ ॥ कबहुँ बिहार करत भक्तनसँग, धर धर वेष मनोहर ॥ कबहुँ संहार करत सब जगको, धर कर वेष भयंकर ॥ ३ ॥ ऐसे प्रभुको भजन करो तुम, मन लगाय निशिवासर ॥ शालिग्राम वोही बोलत हैं, आठ पहर घट भीतर ॥ ४ ॥

* शंका—दैत्योंके बालकोंसे प्रह्लादने भगवान्का भजन त्यागकर मनुष्यके जन्मकी प्रशंसा की । तब वे दैत्योंके बालक मनुष्य नहीं थे, वे तो राक्षसोंके पुत्र थे इसका क्या कारण ?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि मनुष्य जन्म सबसे उत्तम है, उन मनुष्योंमें भगवान्का भक्त और भी उत्तम हैं, इसलिये दैत्योंके पुत्रोंको भय दिखलाने के लिये मनुष्य जन्मकी प्रशंसा की । प्रह्लादने विचार किया कि ये लोग मनुष्योंके कर्म सुनकर मनुष्योंकी नाईं भगवान् में प्रीति करेंगे ।

सब जीवमात्रका व्यापक और आत्मा है, इसीसे सबका प्रिय और सुहृद है ॥२॥ हे दैत्यपुत्रो! संसारमें आकर पुरुषको विषयसुखके लिये कोई उपाय नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तो खग, मृग, मनुष्यको कर्मगतिसे आप ही मिल जाता है, फिर इसमें परिश्रम करके वृथा अपनी आयुको व्यतीत करनेसे क्या प्रयोजन ? परंतु भगवान् वासुदेवकी भक्ति करनेसे जैसे आनन्द प्राप्त होता है ऐसा और किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥ ३॥ इसलिये और कर्मोंमें क्यों अपनी आयुको व्यर्थ क्षय करे उसीमें परिश्रम क्यों न करे जिससे श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दमें प्रीति बढ़े सदा मंगल हो और आगेका खटका मिट जाय ॥४॥ जबतक देहमें अच्छा पुरुषार्थ बना रहे और कोई विपत्ति न आये, मनुष्यको उचित है कि पहले ही अपने मोक्षके लिये उपाय करे, क्योंकि युवा अवस्थामें ही कोई भक्तिका उपाय न किया तो फिर बुढ़ापेमें क्या हो

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद् यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४॥ ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥६॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ॥ शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु पुमान् सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः॥स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥ को न्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥

सकता है ? ॥ ५ ॥ महाकठिनतासे विषयानुरागी पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी होती है,उसमें पचास वर्ष तो वृथा ही जाते हैं,कुछ रात्रिके सोनेमें, कुछ महामोहरूपी निद्रामें व्यतीत होते हैं ॥ ६ ॥ दश वर्ष तो बाल्यावस्थामें गये,दश युवावस्थामें गये, बीस बुढ़ापेकी हाय-हायमें, शरीरके रोगमें,असमर्थपनमें समाप्त हो गये ॥ ७ ॥ शेष दश रहे वह काम, क्रोध, मोह,लोभादिके आसक्त होनेमें और कुटुम्बकी तृष्णामें व्यतीत होते हैं॥८॥ ऐसे कौन जितेन्द्रिय पुरुष हैं जो घरकी ममतामें फँसे हुए और कुटुम्बकी दृढ़ फासी में बँधे हुए संसारकी मायामें आसक्त हो अपने मनको अलग कर सकते हैं ? ॥९॥ जो धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है और जो तृष्णा किसीसे नहीं त्यागी

जाती, जिस धनके लिये प्राणोंकी आशा छोड़कर चोर चोरी करता है, जिस धनके कारण सेवक अपना तन-मन बेंचकर सेवा करता है, जिस धनके निमित्त व्यापारी देश-विदेशमें विचरता फिरता है और शरीरका खोना अंगीकार करके पुरुष धनको प्राप्त करते हैं ऐसे धनके मोहको त्यागनेका किसका सामर्थ्य है ? ॥ १० ॥ फिर परमसुसीला नारी प्यारीके संग रहस्य और सुन्दर एकान्तका परामर्श, सुहृदोंका शोक, बालकोंकी मनोहर वाणीसे चित्त मोहित, ऐसे स्नेहमें फँसे हुए मनको क्योंकर निकाल सकते हैं ? ॥ ११ ॥ फिर पुत्र, पुत्री, भाई, बहनका स्मरण, अत्यन्त दीना माता पिताकी प्रीति, अति रमणीक मनोहर घर, उसके सुन्दर-सुन्दर पदार्थ, कुलपरम्परासे जो चली आये वह जीविका;अनेक प्रकारके पशु, सेवक मित्रोंकी प्रीति, लोभकी तृष्णा जो नित्यप्रति अधिक होती रहती है, भला उसे कौन पुरुष त्याग

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ॥ सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥ पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन्स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीस्तु कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्व्यं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥ १३ ॥ कुटुम्बपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ॥ सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥ १४ ॥

सकता है ? ॥ १२ ॥ फिर जो पुरुष शिश्नेन्द्रिय और जिह्वाके विषयोंको बहुमान्य करनेवाला अधिक मोहसे निरन्तर दिन-रात उसीको मनमें लगाये रहता है, जैसे रेशमका कीड़ा ऐसा घर बनाता है कि निकलने मात्रको भी मार्ग नहीं रखता, ऐसा कर्मकारी पुरुष संसारकी मायामें लवलीन होकर भला किसका सामर्थ्य है,जो ऐसे संसारका त्याग करे ? ॥१३॥ देखो ! यह पुरुष परिवारके लालन-पालनमें कैसा मतवाला हो रहा है यह भी जानता है कि नित्य एक दिन घटता है, परन्तु इतने पर भी मदमें ऐसा उन्मत्त हो रहता है कि आगे-पीछेकी कुछ सुधि नहीं और यह नहीं जानता कि घड़ी-घड़ी मेरा पुरुषार्थ घटता जाता है। परिवारके स्नेह रखनेवालेको सदा तीन ताप दुख देते हैं

परंतु यह दुःखको सुख समझता है॥१४॥ इंद्रियोंके वशीभूत हो मनको सदा धनमें ही लगाये रहता है और पराया वित्त हरनेवालोंके दोषोंको भी भली भांति जानता है कि इस लोकमें और परलोकमें कैसी बुरी गति होती है, परंतु तो भी वह कुटुम्बी पुरुष धनकी तृष्णाको चित्तसे शांत नहीं करता और पराया द्रव्य हरनेकी इच्छा बनी ही रहती है॥१५॥हे दनुजपुत्रो! यह सब बातें जानते हैं तो भी परिवारका पालन-पोषण करते ही रहते हैं और वैकुण्ठके जानेकी भी इच्छा रखते हैं, परंतु अपने परायेके भेद-भावको धारण कर वैकुण्ठके बदले नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥ स्त्रियोंके मोहमें ऐसे कामासक्त हो रहे हैं और कामदेव ही आठ प्रहर जिनकी दृष्टिमें वास करता है उन स्त्रियोंके विहा-रमें रात-दिन मर्कटकी नाईं नाचा करते हैं, (लवलीन हो दीन बन) अपने तनकी रक्षा हो चाहे न हो परंतु उनके कार्यमें असमर्थ नहीं होते और

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः ॥ प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्तदशान्तकामो हरते कुटुम्बी ॥१५॥ विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥ १६ ॥ यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद् वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडा-मृगो यन्निगडो विसर्गः॥१७॥ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु॥ उपेत नारायणमादिदेवं विमुक्त-सङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥ नह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिहसर्वतः॥ ॥१९॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥ २० ॥

पुत्र पौत्रादिकोंकी मोहरूपी ऐसी कड़ी बेड़ी हथकड़ी हाथ पावोंमें पड़ी है, कि इस बंधनसे मनुष्य किसी समय अपने आत्माको छुड़ानेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १७ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये इन विषयासक्त दैत्योंका संग छोड़ो और सब देवोंके देव श्रीआदिपुरुष अविनाशी वासु देव भगवान्का भजन करो, क्योंकि कुसंगका त्यागना ही मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ हे दैत्योंके बालको ! अच्युत भगवान्के प्रसन्न करनेमें कुछ अधिक परिश्रम नहीं होता, क्योंकि भगवान् तो सबप्राणी मात्रका आत्मा है और सब प्रकारसे सिद्ध है ॥१९॥ पर-अवर जीवमात्रमें ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका तक सब स्थावर जंगम जो पाञ्चभौतिकके बने हैं,निर्जीव पदार्थमें, पांचभौतिक विकारमें नारायणका ही वास है ॥२०॥

गुणोंमें, गुणोंकी समतामें,गुणोंकी उलट-पलटमें एक पर-अवर आत्मामें एक ही आदिपुरुष अविनाशी सच्चिदानंद भगवान् विराजमान है, उसी परमात्माका भजन करो,तीर्थ करो, दान करो,ब्राह्मणोंको भोजन कराओ,नवधा भक्ति करो,वेद पढ़ो,पढ़ाओ,विद्याका अभ्यास करो, ब्रह्मविद्या सीखो-सिखाओ; क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, निन्दा, छल, बुराई, मारना,दुष्टता, मान, मद,दर्प, हिंसा, चोरी, जुआ इत्यादिको त्यागो यही मोक्षका उपाय है ॥२१॥ यद्यपि वह सच्चिदानन्द जगदीश्वर आपरूप एक ही हैं, तो भी आत्मास्वरूप सबके देखने योग्य व्याप्त है और व्यापक निर्देश योग्य कभी नहीं दिखाई देता और संकल्प-विकल्प ब्रह्म भी है ॥२२॥ केवल अनुभवसे आनन्दस्वरूप परमात्माने मायासे सब ऐश्वर्य छिपा रक्खे हैं और गुणोंकी रचने वाली मायासे ही जाने जाते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये सब जीवमात्रमें प्रीति करो,

गुणेषु गुणसाम्ये च गुण व्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥२१॥ प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः॥२२॥केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥ तस्माद् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥२४॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः॥धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः॥२५॥धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥ २६ ॥ ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नर सखः किल नारदाय ॥ एकान्तिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविन्दरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥

सबसे सुहृद् भाव बर्तो और असुरभावको छोड़ो,क्योंकि असुर भावके त्यागनेसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ जब आद्यदेव अनन्त भगवान् प्रसन्न हो जायँ तो सब वस्तु प्राप्त हो जाती हैं, जो अपने आप सिद्ध कर्मादिक हैं, उनको इस संसारमें गुणोंके उलटे भावसे निर्गुणको जैसे धर्म, अर्थ, कामसे कुछ प्रयोजन नहीं, इसी प्रकार मोक्षकी इच्छासे हमको क्या प्रयोजन है? ॥२५॥ धर्म अर्थ, काम जो यह त्रिवर्ग है वह आत्मविद्यासे वेदत्रयी,नीति,दंड और अनेक प्रकारकी वार्ता, यह सब वेदके सार हैं,परन्तु इनका भी सार यह है कि परम पुरुष परमात्माको अपना आत्मा समर्पण करना यह परमश्रेष्ठ तप है ॥२६॥ यह महाकठिन निर्मल ज्ञान नरके सखा श्रीमन्नारायणने

नारदजीसे कहा था, जो पुरुष सच्चे भगवान्‌के भक्त और आनन्दरूप हैं उनके चरणकमलकी रजसे जो स्नान करनेवाले हैं, उनको ही यह निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ देवसमान दर्शनवाले भगवान् नारदजीके मुखसे विज्ञान सहित यह ज्ञानरूप, भागवत धर्म पहले शुद्ध चित्त से मैंने सुना था ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्र बोले कि हे प्रह्लाद ! हम और तुम इन गुरु शण्डामर्कके अतिरिक्त दूसरेको नहीं जानते और उनसे हमने-तुमने एक संगही पढ़ा है फिर यह निर्मल ज्ञान तुमको कैसे हो गया ? और दूसरा गुरु तुमको मिला ही नहीं ॥ २९ ॥ हे प्रह्लाद ! तुम बालकपनसे तो रनिवासमें अपनी जननीके पास रहे, वहां सज्जन पुरुषोंका जाना महाकठिन था; हमारे मनमें यह

श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम्॥धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात्॥२८॥दैत्यपुत्रा ऊचुः॥प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ॥२९॥बालस्यान्तः पुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः॥ छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद् विस्रम्भकारणम् ॥३०॥ इति श्रीभाग॰म॰सप्तम॰ प्रह्लादेन बालानां ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥ उवाच स्मयमानांस्तान्स्मरन्मदनुभाषितम् ॥१॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम्॥युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति॥२॥

बड़ा भारी संशय है, वह संशय हमारा दूर करो, जिससे भगवान्‌की भक्तिमें हमारी श्रद्धा हो और हमारे मनमें विश्वास हो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादस्य बालानां ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा-सप्तममें प्रह्लाद जो, सुनो गर्भमें ज्ञान । सो लड़कनके सामने, लागे करन बखान ॥ नारदजी बोले कि जब असुरोंके बालकोंने इस प्रकार दैत्यपुत्र प्रह्लादसे पूछा, तब मेरे ज्ञानोपदेश-भाषणका स्मरण कर प्रह्लाद मुसकाकर उन बालकोंसे यह कहने लगे ॥१॥ प्रह्लाद बोले कि हमारे पिता जब मन्दराचल पर्वतपर तप करनेके लिए चले गये तब इन्द्रादिक देवताओंने दैत्योंको विना नरेशके निर्बल समझ कर उनके ऊपर आक्रमण

* भजन–विन हरिभजन कौन सुख पायो ।। हरि को नाम परम सुखदायक, सब भक्तनने गायो ।। १ ।। जिन घर बार मोह ममता तज, हरिसों ध्यानलगायो ।। निःसन्देह यह देह त्यागकर, सुरपुर जाय बसायो ।। २ ।। सब भक्तनमें भक्तशिरोमणि पूरण भक्त कहायो ।। करत पुराण प्रशंसा निशिदिन त्रिभुवनमें यश छायो ।। ३ ।। भक्तहेत भगवान् जगतमें, मनुज रूप धर आयो ।। दुष्ट भार भूभार उतारो, आनंद सवन दिखावो ।। ४ ।। भक्ति भावसे शेष शीशपर, भूको भार उठायो ।। शालिग्राम प्रताप भक्तिको, दुरतो नाहिं दुरारो ।। ५ ।।

किया ॥ २ ॥ और परस्पर इन्द्र और देवता कहने लगे कि जैसे चींटी साँपको भक्षण कर लेती है ऐसे ही मनुष्योंके सतानेवाले हिरण्यकशिपु पापीको उसके पापनेही भक्षण कर लिया, हम लोगोंके लिये यह बड़ा आनन्द हुआ ॥ ३ ॥ उनके बलका अत्यन्त उद्योग देखकर असुरोंके सेनापति देवताओंके भयके मारे भयभीत हो सब दिशाओंको भाग गये और कोई-कोई दैत्य देवताओंके हाथसे मारे भी गये ॥४॥ तब नारदजी बोले कि कुटुम्ब, पशु, सम्पत्ति और सब सामग्रियोंको छोड़ अपने-अपने प्राण लेकर देश-विदेशको भाग निकले ॥५॥ तब विजयकी अभिलाषा करनेवाले देवताओंने सेनानिवासस्थानको लूट लिया और मेरी माता राजमहिषी कयाधु दानवीको इन्द्र पकड़ कर ले चला ॥ ६ ॥ जैसे व्याधके पकड़नेसे टिटिहरी चिल्लाने लगती है ऐसे ही मेरी माता कुररी कीनाईं चिल्लाने लगी और अनेक-अनेक

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥३॥ तेषामतिबलोद्योगंनिशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान गृहान् पशुपरिच्छदान् ॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥ व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः॥ इन्द्रस्तुराजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत ॥६॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ॥ मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥

प्रकारके विलाप करके रोती थी और इन्द्र बलात्कार उसे पकड़े लिये जाता था, अकस्मात दैव इच्छासे उस मार्गमें कहींसे नारदजी भी चले आते थे और मेरी माताको रोती हुई उन्होंने देखा ॥ ७ ॥ तब नारदजी बोले कि हे देवराज ! इस अबला निरपराधिनीको क्यों लिये जाते हो ? इसको कभी नहीं ले जाना चाहिये, हे महाभाग! इस दीन सती स्त्रीको छोड़ दे, यह तेरे योग्य नहीं है, यह महाशीला पतिव्रता परस्त्री है, जो इसका पति आवेगा तो क्षणमात्रमें तेरी सब लाज खो देगा और तू भागा-भागा फिरेगा और इन्द्रलोकमें रहना कठिन हो जायगा ॥८॥ इन्द्र बोला कि इसके पेटमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है, वह महाभयानक और देवद्रोही होगा, इसलिये जबतक इसका गर्भ बाहर न

आयेगा तबतक मैं इसको अपने पास रखूंगा और जबतक इसके पुत्र न होगा कभी उसको नहीं छोडूंगा, जब इसके पुत्र होगा उसको मार कर मैं इसको छोडूंगा ॥९॥ नारदजी बोले कि इसके उदरमें जो स्थित है वह निष्पाप और भागवतोंमें उत्तम और परमश्रेष्ठ है, वह तुमसे किसी प्रकार नहीं मरेगा, क्योंकि वह परमात्माका परमभक्त है और तुम जानते हो कि ईश्वरके भक्त महाबली और पूर्ण प्रतापी होते हैं, इस लिये क्यों वृथा कलंक लेते हो छोड़ दो॥१०॥प्रह्लाद बोले कि नारदजीके वचनोंको सत्य मान मेरी माताको उसने छोड़ दिया और उसके

नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥ इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन् वचः ॥ अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोभया ॥ यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥ ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ॥ अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥

उदरमें भगवत्का भक्त जान मेरी माताकी परिक्रमा की और प्रणाम कर इन्द्र अपने लोकको चला गया॥११॥तब नारदजी मेरी माताको अपने स्थानपर लाकर आशा-भरोसा देकर बोले कि हे वत्से ! जबतक तेरा स्वामी न आये तबतक तू यहां निवास कर* ॥१२॥ जबतक मेरा पिता घोर तपसे निवृत्त हो लौटकर नहीं आया तबतक मेरी माता मुनिके मनोहर वचनोंको मान सब भय त्याग निर्भय हो मुनिके आश्रमपर निवास करने लगी ॥१३॥ उस पतिव्रता गर्भवती मेरी माताने अपने गर्भकी कुशलता और इच्छापूर्वक पुत्र होनेके लिये

* शंका—राक्षसोंके बालकोंसे प्रह्लाद ने कहा कि, नारदमुनि मेरी माताको अपने आश्रम पर ले गये, जब तक मेरा पिता हिरण्यकश्यपु ब्रह्माजी से वरदान लेकर घरपर नहीं आया तब तक मेरी माता नारदजीके आश्रम में विश्राम करती रही। हम लोगोंने शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा सुना है कि नारदमुनि का कोई आश्रम नहीं था और नारदमुनि किसी स्थान पर दो-चार घड़ी से अधिक ठहर ही नहीं सकते थे, फिर नारदजीके आश्रम पर प्रह्लादकी माता कैसे बहुत दिन तक ठहरी यह संदेह है।

उत्तर—भगवान्के भजन करनेके लिये बदरिकाश्रममें नारदजीका गुप्त आश्रम है। तीनों लोकोंमें घूमघामकर नारदजी अपने उसी गुप्त आश्रमपर आकर भगवान्का भजन करते हैं। नारदजीके आश्रम पर जो जीव बसते हैं, उनको किसी का भय नहीं होता, इसलिये प्रह्लाद दैत्योंके बालकोंसे कहते थे।

परमभक्तिसे वह धर्मशीला ऋषिकी सेवा करने लगी ॥ १४ ॥ परम दयालु और सर्वसमर्थ मुनिने मुझको भक्त जान धर्मका तत्त्व और निर्मल ज्ञान दोनों मेरी जननीको दिये ॥ १५ ॥ उस ज्ञानको बहुत काल पाकर अधिक दिन व्यतीत होनेसे और स्त्रीपनके स्वभावसे मेरी माता तो भूल गयी, परंतु ऋषिकी कृपासे मुझको वह ज्ञान अबतक स्मरण है, मैं उसको किंचिन्मात्र भी नहीं भूला ॥ १६ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! जो तुम भी मेरे वचनोंको श्रद्धापूर्वक सुनोगे तो तुमको भी तत्त्वज्ञान उत्पन्न होगा और श्रद्धा होनेसे स्त्री और बालकोंको भी मेरे समान ब्रह्मज्ञान हो सकता है॥१७॥महासमर्थ कालके हेतु होते हैं,जन्मता है,बढ़ता है,कुछका कुछ होता है, कभी क्षीण, कभी क्षय इत्यादिभाव द्रष्टाको होते हैं,देहके व्यापक आत्माको नहीं होते, क्योंकि छः विकार शरीरके ही होते देखनेमें आते हैं, जैसे वृक्ष जब हो तभी उसके फलके

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥ १५ ॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाऽप्यजहात् स्मृतिः ॥ १६ ॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥१७॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥१८॥ आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञः आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥ १९ ॥ एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥ अहंममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २० ॥

विकार होते हैं, वैसे आत्मा के होनेसे ही विकार देहको हो सकते हैं॥१८॥आत्मा नित्य है और देह अनित्य है, आत्मा क्षीण नहीं होता और देह क्षीण हो जाता है, आत्मा शुद्ध है और देह अशुद्ध है, आत्मा एक है और देह अनेक हैं, आत्मा देहादिकको जानता है और शरीर जड़ है, आत्मा सबका आश्रय है और शरीर आत्माके आश्रय है, आत्मा निर्विकार है और शरीर सविकार है, आत्मा स्वयं प्रकाश है और शरीर परप्रकाश है, आत्मा सबका कारण है और देह कार्य पदार्थ है, आत्मा सर्वव्यापक है और देह व्याप्य है, आत्मा असंग है, और देह संगी है तथा आत्मा किसीसे आवृत नहीं होता और देह वस्त्रादिकसे आच्छादित हो जाता है ॥१९॥ आत्माके परेसे परे इन द्वादश

लक्षणोंका ज्ञान विद्वान्‌को 'अहं मम' यह असद्भाव देहादिकमें जो मोहसे लगा है उसका त्याग करना चाहिये ॥२०॥ जैसे सोनेको सब प्रकारसे जाननेवाला सुनार कसौटी आदि पत्थरोंमेंसे लगे हुए सोनेको निकालकर अलग कर लेता है, इसी प्रकार अध्यात्मको जाननेवाले शरीरमध्यवर्ती जीवके द्वारा होकर आत्मलक्ष्यरूप योग करके ब्रह्मकी गतिको जान लेते हैं ॥२१॥ माया, महत्तत्त्व, अहंकार,शब्द, स्पर्श,रूप,रस और गन्ध यह आठ प्रकृति; सत्त्व रज और तम यह तीन मायाके गुण हैं, यह पृथक् नहीं गिने जाते, ग्यारह इंद्रियाँ और पांच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुए, इन षोडश विकारोंके न होनेसे कपिलाचार्यने जीव ब्रह्म एक कहा है और प्रकृतियां और सोलह विकार मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं, सबके साक्षीपनका सम्बन्धी आत्मा एक ही है ॥२२॥ इन्हीं चौबीस तत्त्वोंके सम्बन्ध होनेसे शरीर

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ॥ क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगैरध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥ २२ ॥ देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा ॥ अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३ ॥ अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशताऽऽत्मना ॥ सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ॥ ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ २५ ॥

कहलाता है । स्थावर और जंगम इस शरीरके दो प्रकारके भेद हैं, उस मनुष्य देहमें ही जीवद्वारा पुरुष परब्रह्मको खोज लेना चाहिये, इस बातमें कुछ कठिनता नहीं है,बहुत सहजमें हो सकती है, क्योंकि ऐसे समझे कि यह भी आत्मा नहीं है वह भी आत्मा नहीं,इस प्रकार दृश्य वस्तुओंको अलग करते-करते यह आत्मा अपने आप सबसे अलग हो जाता है ॥२३॥ देखो अक्षर मसीसे भिन्न नहीं है परंतु मसी अक्षरोंसे भिन्न है, उसी प्रकार देहादिक आत्मासे पृथक् नहीं परंतु आत्मा इनसे पृथक् है,जैसे मणियोंमें सूत पुहा हुआ है इसका नाम अन्वय है और मणियोंकी डोरीसे पृथक् है, इसका नाम व्यतिरेक है; ऐसे शुद्ध ज्ञानके जाननेवाले मनसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, संहारका निश्चय करनेवाले वेदकी श्रुतियोंको धीरे-धीरे विचारनेवाले धीर पुरुषोंके जाननेके योग्य ब्रह्म है ॥ २४ ॥ *जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन वृत्तियां*

बुद्धिकी हैं, इनका जो अनुभव नहीं करता है, वह सबका साक्षी पर पुरुष ईश्वर है॥२५॥ इन तीनों वर्णोंसे बुद्धिभेद करके क्रियासे आत्माके स्वरूपको जाने। सबमें व्यापक होनेसे गन्धके गुणसे वायु जानी जाती है, इसी प्रकार बुद्धिको धर्मरूप तीनों अवस्थाओंको जाननेवालेको आत्मा भिन्न प्रतीत होता है ॥२६॥ बुद्धिके गुण और कर्मों करके बन्धन होता है, यही संसारके द्वार हैं; इसका मूल कारण अज्ञान है, इसीसे यह मिथ्या है, परंतु मिथ्या होनेपर भी पुरुषको स्वप्नवत् दिखायी देता है ॥२७॥ इसलिये त्रिगुणात्मक कर्मोंका बीज जो अज्ञान है उसके नाश करनेके लिये तुम सब योगका साधन करो ॥ जिससे तीनों अवस्थारूप संसारका प्रवाह दूर हो जाय वही श्रेष्ठ है॥२८॥ और इन्हीं सहस्रों उपायोंसे बढ़कर यह उपाय भगवान्‌ने गीता आदि शास्त्र और पुराणोंमें अपने मुखसे वर्णन किया है कि हे बन्धुगणो! जिस

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ॥ स्वरूपमात्मनो बुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥२६॥ एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ॥ अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥ २७ ॥ तस्माद् भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥ २८ ॥ तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ॥ यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ॥ संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥ ३० ॥ श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तल्लिंगेक्षार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥ ३२ ॥

धर्म-कर्मसे भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें रुचि हो, उसी धर्म-कर्मको मनुष्यको करना चाहिये ॥ २९ ॥ गुरुकी सेवा करनेवाली जो उत्तम भक्ति है वह सम्पूर्ण लाभोंकी देनेवाली है वह भगवान् वासुदेवको समर्पण करे। सत्संगतिसे, साधु महात्मा जनोंकी भक्तिसे परमेश्वरका आराधन करे तो भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ ३० ॥ भगवान्‌की कथा श्रद्धापूर्वक सुने, ईश्वरके सुन्दर-सुन्दर गुण और कर्मोंका कीर्तन करे, उनके मनोरंजन भयभंजन पदांबुजोंका ध्यान करे और उनके परमसुखदायक अघघालक अत्यन्त सुहावन मनभावन सुन्दर स्वरूपका दर्शन व पूजन करे ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण आदिपुरुष अविनाशी भगवान् सब जीवमात्रमें और जल-थलमें विराजमान हैं, ऐसा

निश्चय जान प्रत्येक प्राणिमात्रका तनमनसे पूजन करे ॥३२॥ इस प्रकार काम क्रोधादिक छः शत्रुओंको जीतकर ईश्वरमें भक्ति करे, जिससे अधिक प्रीति हो जाय ॥३३॥ भगवत्‌के अतुल गुण, कर्म, वीर्य और जो-जो लीला अनेक-अनेक प्रकारके अवतार धारण करके की हैं उनको हित चित्तसे सुने । अत्यन्त जब हर्ष बढ़े और शरीर पुलकायमान हो जाय, नेत्रोंमें आंसू भर आयें, गद्गदवाणी हो जाय,उच्चस्वरसे कभी गाने लगे, कभी रोने लगे, कभी हँसने लगे, कभी नाचने लगे॥३४॥जब इस प्रकार प्रेमलक्षणा भक्ति हो जाती है तब वह पुरुष ग्रहगृहीतके समान कभी हँसता है, कभी पुकारता है, कभी ध्यानमें आ जाता है,कभी जीवोंको प्रणाम करता है,कभी वारंवार श्वास लेकर, हे हरे ! हे जगत्पते ! हे मुकुन्द ! हे गोविंद ! हे नारायण ! कहता है। ऐसी आत्माकी गति हो जाती है और कुछ लज्जा नहीं रहती ॥३५॥ जब ऐसा

एवं निर्जितषड्वर्गैःक्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम्॥३३॥निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदाऽतिहर्षात्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥ यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्या क्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ॥ मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥ तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥३६॥ अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः ॥ स्वस्यात्मनः सख्युरशेष देहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥

प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब पुरुष सब बन्धनोंसे छूटकर मनमें भगवान्‌की भावनाको कर वैसे ही कर्म करने लगता है । महाभक्तिप्रयोग करके, काम कर्मके बीजरूप अज्ञानकी वासनाओंको भस्म करके भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ अधोक्षज भगवान्‌का जो स्पर्श होता है, वही प्राणियोंके सब शरीरोंके अशुभ कर्मोंका नाशक है, वही संसार चक्रका विनाश करनेवाला है,वही ब्रह्मका महानन्द सुख उपजानेवाला है, उसीको बुध जन मोक्षरूप जानते हैं। हे भ्रातृगणो ! इसलिये तुम सब भी मिलकर अपने हृदयमें नारायणको भजो ॥३७॥ हे बांधवो ! श्रीनारायण तो हृदयछिद्रमें आकाशवत् सदा विराजमान हैं, इसलिये फिर परमेश्वरकी उपासना करनेमें किसी प्रकारका परिश्रम

नहीं है। भगवान् अपने आत्मामें स्वभावसे सब शरीरके मध्यमें सामान्यभावसे रहते हैं, तुच्छ प्राणियोंके समान विषयोंके सेवन करनेसे क्या लाभ है? ॥ ३८ ॥ स्त्री, धन, पशु,पुत्रादिक, मंदिर, वसुधा,हाथी, कोष, विभूति और इनके अतिरिक्त और भी जो वस्तु और मनोभिलाषा जो अति चंचल है वह क्षणभंगुर आयुवाले मनुष्यको कुछ प्यार नहीं कर सकती, क्योंकि वह आप चलायमान है ॥ ३९ ॥ ऐसे यज्ञादिक करनेसे जो स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं वे भी अनित्य ही हैं, क्योंकि यह भी सब नाशवान् हैं, पुण्यकी न्यूनता अधिकता हैं, निर्मल नहीं है, इसलिये जिनमें कभी दूषण देखनेमें और सुननेमें न आये ऐसे भगवान् वासुदेवको अपने आत्माकी प्राप्तिके लिये तुम सब मिलकर भजन करो ॥४०॥ जिसका संकल्प कर विद्वज्जन पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे फलकी इच्छासे कर्म करते हैं उनको

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ॥ सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥ ३९ ॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ॥ तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेश भजतात्मलब्धये ॥ ४० ॥ यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यः सकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुखमोक्षाय संकल्प इह कर्मिणः ॥ सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥ ४२ ॥ कामान् कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ॥ स वै देहस्तु पारक्यो भंगुरो यात्युपैति च ॥४३॥ किमुव्यवहितापत्यदारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥ ४४ ॥ किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ॥ अनर्थैरर्थसङ्काशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥ ४५ ॥

इच्छाके विपरीत फल प्राप्त होता है॥४१॥सब जानते हैं,कर्म करनेवाले पुरुषका संकल्प दुःखके दूर करनेको और सुखकीप्राप्तिके लिये होता है परंतु दुःख प्राप्त होता है और चेष्टा न करनेसे सुख प्राप्त होता है, क्योंकि सुख तो केवल कर्मोंके त्यागनेसे ही होता है ॥ ४२ ॥ सकामिक कर्मसे पुरुष जिस सुखके लिये कामोंकी चाहना करता है वह देह तो पराया है,परंतु क्षणभंगुर है, कभी प्राप्त हो जाता है कभी नाश हो जाता है ॥४३॥ स्त्री, पुत्र, घर, धनादिक, राज्य, भण्डार, हाथी, मंत्री, भृत्य यह देहसे दूर और ममताके स्थान हैं, इनसे होना ही क्या? ॥ ४४ ॥ जो आत्मा अजय, अव्यक्त, अवि नाशी,आनन्दका महासमुद्ररूप है उसको तुच्छ समझना और जो सुख महाअनर्थकारी है और विनाशी

है और देहसे होते हैं और भूलसे सुखदायक दृष्टि आते हैं, परमेश्वरके सम्मुख वह सन्तान, स्त्री, वेश्यादिक कुछ वस्तु नहीं हैं* ॥ ४५ ॥ हे असुरपुत्रो ! जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त जब अपने कर्मोंसे क्लिश्यमान हैं तो देहधारियोंको यह क्या स्वार्थ है ? ॥४६॥ यह जीव अपने आत्माके अनुसार देहसे कर्मोंको आरम्भ करना चाहता है और कर्मोंसे देह होता है,परंतु सुख भोगनेका इसको कोई समयप्राप्त नहीं हो सकता और विचार करके देखते हैं तो कर्म और देह दोनों अज्ञानपनसे होते हैं॥४७॥सब जीवमात्रके आत्मा श्रीहरि परमप्रिय भगवान् हैं

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान् देहभृतोऽसुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥४६॥ कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ८ ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९ ॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ॥ भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद्यथा वयम् ॥५०॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥ न दानं न तपो नेज्या नशौचं न व्रतानि च ॥ प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ ५२ ॥

और पञ्चभूतोंके रचे हुए सब प्राणीमात्र हैं॥४८॥तुम अपने मनमें यह न समझना कि हम दैत्यदेह हैं हमको भगवत्के भजन करनेका अधिकार नहीं है, यह बात नहीं; देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व इत्यादि कोई प्राणी क्यों न हो,श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दके भजन करनेसे स्वस्तिमान् हो जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे सुहृद्गण ! ब्राह्मणपन, देवतापन, ऋषिभाववृत्त, सदाचार, बाहुलता, ज्ञान, दान, तप, यज्ञ, पातिव्रत कोई भी भगवान्का प्रसन्न करनेवाला नहीं दीखता॥५१॥और जो इनसे कदाचित् प्रसन्न होते भी हैं तो बहुत कालमें होते हैं और

* इस बातपर दृष्टान्त है ।। किसी समाजमें एक वेश्या नाच रही थी और मनोहरतासे यह कवित्त गाय गाय रिझाय रिझाय हाथ उठाय उठाय सबकी ओरको बताय रही थी वहां कोई बुद्धिमान् किसी चतुर पंडितसे बूझने लगे कि, यह वेश्या हाथ उठा उठाकर किसको क्या बता रही है ? पंडितजी बोले कि; मित्र ! तुम नहीं जानते हो इस बातपर आपको एक सवैया सुनाते हैं—

सवैया—पट उज्ज्वल धारके बैठे सभा, मन काममें लाग रह्यो जिनको ।। सो मृदंग कहै हरिभक्ति विना, धिक है धिक है धिक है तिनको ।। मनजीरन बूझ लियो विधिसौं किनको किनको किनको किनको । वह पातुर हाठ उठाय कहै, इनको इनको इनको इनको ।। १ ।।

भगवान् तो केवल निष्कपट प्रीति और भक्तिसे ही प्रसन्न हो जाते हैं और शेष सब बातें कहने मात्र की हैं ॥५२॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये श्रीभगवान्‌की भक्ति निष्कपट मनसे तुम सब मिलकर करो, सबको अपने समान जानकर सब जीवमात्रमें श्रीभगवान् वासुदेवको ही समझो॥५३॥दैत्य,यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र,व्रजवासी, खग,मृग और दूसरे भी पापी जीव भक्तिके प्रभावसे ही मुक्तिको प्राप्त हुए॥५४॥ बस,इस लोकमें मनुष्यका परमस्वार्थ इतना ही है कि भगवान्‌की निश्चल भक्ति हितचित्तसे करनी और सर्वत्र भगवान्‌का ही वासजानना,

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे॥५३॥दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रो व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥५४॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः॥ एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥ ५५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादेन दैत्यपुत्रानुशासने ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ नारद उवाच ॥ अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥ अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥२॥

इससे अधिक और कोई उपाय मुक्ति होनेका नहीं है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादेन ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा-अष्टममें अति कोप कर, दियो पुत्रको त्रास । तब हरि नरहरिरूप किय कनककशिपुकर नास ॥ नारदजी बोले कि सब दैत्यपुत्रोंने प्रह्लादका वर्णन सुनकर निर्दोष होनेके लिये उन्हीं बातोंको अंगीकार किया और गुरुकी शिक्षा नहीं मानी * ॥ १ ॥ जब सब बालकोंकी बुद्धि इस प्रकार नारायणमें लगी हुई देखी, तब शुक्राचार्यके पुत्र अपने मनमें बहुत डरे और

* शंका—राक्षसोंके लड़कोंने प्रह्लादसे ज्ञान सीखा, परंतु ज्ञानियोंका नाम लोकमें और शास्त्रमें सब प्राणियोंको विदित हो जाता है, परंतु उनका नाम शास्त्रमें लोकमें हमने नहीं सुना कि वह लड़के किधर गये ? छोटे तपस्वियोंका, बड़े तपस्वियोंका और जो-जो तपस्वी अथवा ब्रह्म ज्ञानी हैं उन सबका नाम सुना, परन्तु प्रह्लादके शिष्योंका नाम हमने कहीं नहीं सुना यह भ्रम है कि प्रह्लादसे ज्ञान सीखकर वह लड़के किस लोक में गये ?

उत्तर—जब प्रह्लादका और हिरण्यकशिपुका उत्पात होना आरंभ हुआ तब शुक्राचार्य उसके पास नहीं थे, पीछे शुक्राचार्य आकर सब उत्पात और राक्षसोंके बालकोंको श्रेष्ठकर्म करता देखकर लड़कोंसे शुक्राचार्य बोले कि यह कर्म तुम सब जन त्याग दो और जो नहीं त्यागोगे तो हम तुम सबको भस्म कर देंगे, ऐसा डर मानकर लड़के फिर राक्षसकर्म सीखने लगे । वे लड़के तपस्या करनेमें कच्चे थे इसलिये उन्होंने डरके कारण श्रेष्ठ कर्म करने छोड़ दिये और राक्षसकर्म करने लगे, इस कारण वह लड़के तपस्वी नहीं हुए, बिना तप किये उनका नाम प्रसिद्ध कैसे हो ।

अच्छी रीतिसे सोच-समझकर सब वृत्तान्त जैसेका तैसा हिरण्यकशिपुसे जाकर कहा॥२॥यह असह्य अप्रिय महाकठिन पुत्रका अत्याचार सुनकर क्रोधमें मतवाला हो लाल-लाल नेत्र कर कांपने लगा और पुत्रके मारनेका विचार मनमें किया॥३॥जिस परमेश्वरके भक्तका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता उस प्रह्लादकी कठोर वाणी और तिरछी आंखसे निरादर करने लगा। वह जितेन्द्रिय प्रह्लाद नम्रतासे हाथ जोड़े खड़ा था, उस दारुण प्रकृतिवाले ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपुने पांवसे मसले हुए सांपके सदृश फुंकार कर प्रह्लादसे इस प्रकार बोला ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत ! हे मंदमति ! हे कुलकलंक। हे कुलमें भेद डालनेवाले ! हे अधम ! गर्वी ! तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, मैं तुझको आज

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुस्सहं तनयानयम् ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे॥३॥ क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ॥ आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥ प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् ॥ सर्पः पदाऽऽहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत मन्दात्मन् कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयम् ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ॥ तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ॥ परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥८॥ स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजस्सहस्सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥ ९ ॥

यमलोकमें भेजूंगा ॥ ६ ॥ हे मूढ ! जा मेरे आगे से चला जा अरे नीच ! मेरे क्रोधसे दशों दिक्पाल और सब लोकपाल त्रिलोकी समेत ईश्वर तक कांप रहे हैं और तू निःशंक होकर मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है,ऐसा तुझको किसका बल है ?॥७॥प्रह्लाद बोला कि हे राजेन्द्र ! सब चर-अचर-जीवजन्तु ब्रह्मादिकोंको जिसने अपने वशीभूत कर रखा है, उसी आदि पुरुष अविनाशीका मुझको और तुमको बल है वरन् मुझमें और आपमें ही नहीं, सब संसारके बलवानोंमें उसीका बल है ॥८॥ काल, उरु, ओज, क्रम, सह, बल, इन्द्रिय, आत्मा और

सत्त्व वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंसे सृष्टिको रचते हैं, संहार करते हैं और वही तीनों गुणोंके ईश हैं ॥ ९ ॥ अब आप इस अपने असुरस्वभावको छोड़ दो,मनमें सबसे समानभाव रखो,कोई किसीका शत्रु नहीं है,केवल अजित और पाखंड मतमें स्थित और खोटे मार्गमें चलनेवाले आत्माको तुम श्रीअनन्त भगवान्में उसे अर्पण करो और उनका पूजन करो इसीमें आपका भला है ॥१०॥ कोई-कोई पुरुष आप सरीखे ऐसे भी हुए हैं कि,अपनी इन्द्रियोंको विना जीते दशों दिशाओंको जीता मान लिया,परन्तु कुछ न जीता,क्योंकि जिसने अपने वैरियोंको ही नहीं जीता उसने क्या जीता? खटका तो बना ही रहा जिसके घरमें शत्रु घुस रहा,वह बाहरके शत्रुओंको जीतकर कैसे सुखकी नींद सो सकता है?और जिसने अपनी आत्माको जीत रक्खा है,ऐसे ज्ञानी पुरुष सब देहधारी मात्रमें समानभाव वर्तें हैं ऐसे साधुजनोंको

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ॥ ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम् ॥ १० ॥ दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनोऽज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥ १३ ॥ सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाऽद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४ ॥

अपने मोहसे दुःख नहीं होते औरोंका तो कहना ही क्या है ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि उसे प्रह्लादके नीतिभरे वचन बाणके समान लगे,तब तो क्रोधवान् होकर हिरण्यकशिपु बोला कि,अरे अधम! मुझको भलीभांति निश्चय हुआ कि तू अपने मरनेकी इच्छा करता है,जो ऐसे निर्द्वन्द्व वाक्य बोलता है।हे मन्दआत्मन्! जिनका काल शिरपर आ जाता है उनकी ऐसी ही अयोग्य वाणी निकलती है और सब ज्ञान जाता रहता है॥१२॥ अरे कुलकलंक! मेरे अतिरिक्त तूने जो जगत्का कर्ता और कोई दूसरा बताया, अब बता वह कहां है जो तू कहता है कि वह परमात्मा सर्वत्र है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता ? ॥१३॥ जो अब खम्भेमें नहीं दीखेगा तो मैं तेरे शिरको छेदन करूंगा

इस लिये तैंने जो हरि अपना रक्षक समझ रक्खा है वह अब तेरी रक्षा करे,देखें कैसे कर सकता है ? ॥ १४ ॥ इस प्रकार वह हिरण्यकशिपु,वचनोंसे और क्रोधसे महाभागवत प्रह्लाद अपने पुत्रको पीड़ा दे खड्ग हाथमें ले महाक्रोध कर ललकारता-फटकारता गर्जता-तर्जता झट-झपटकर आसनसे उछल कर उठा, कवचकी कड़ियाँ तड़कने लगीं, भुजायें फड़कने लगीं और तेलके समान आंसू आंखोंसे ढलकने लगे, योधा क्रोधानलसम रूप देख-देख सरकने लगे, उस समय महागम्भीर नाद कर खम्भमें एक मुष्टिक मारा ॥१५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उसी समय उसमें महाभयंकर शब्द होने लगा जिसके होते ही पृथ्वी लोट-पोट होने लगी, पहाड़ जड़से उखड़कर

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥ १६ ॥ स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ॥ अन्तस्सभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८ ॥ स सत्त्वमेवं परितो विपश्यन्स्तम्भस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥ १९ ॥

गिरने लगे,दिग्गज चिंघाड़ने लगे, समुद्रोंने मर्यादा छोड़ दी,आज सब लोकोंका विध्वंस हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं,मैं जानता हूं कि आज महाप्रलयका समय आ गया ऐसा ब्रह्मादिकोंने माना ॥ १६ ॥ पुत्रको मारनेकी इच्छावाला वह दैत्य सभाके बीचमें अद्भुत शब्द सुनकर वेगसे इधर उधर दौड़ता हुआ तिसके आश्रयको नहीं देखता भया और सम्पूर्ण दैत्य अतित्रासको प्राप्त होते भये ॥ १७ ॥ सब दैत्य खड़े-खड़े परस्पर विचार ही कर रहे थे कि उसी सन्ध्याके समय खम्भको फाड़ कर श्रीनृसिंह भगवान् प्रकट हुये। तब विस्मित हुए राक्षस कहने लगे कि अहो ! न तो यह सिंह है, न मनुष्य है, मनुष्य सिंह रूपवाला यह विचित्र सत्त्व क्या है ? ॥ १८ ॥ १९ ॥

हिरण्यकशिपुके ऐसे विचारते-विचारते अगाड़ी उठे हुए भयंकर नृसिंहजी दीखे कि; जिनके तप्त सुवर्णसे प्रचण्ड नेत्र, कंधवालके बाल कँपा रहे, जँभाई लेते हुए ॥२०॥ कराल डाढ़े, तीक्ष्ण जिह्वा, भ्रुकुटीयुक्त भयंकर मुखवाले, खड़े कानोंवाले, पर्वतकी गुफाकी तरह मुख नासिका वाले, ठोडी भेदसे भयंकर ॥२१॥ आकाशको स्पर्श करते हुए, बड़ी और मोटी ग्रीवा उरु वक्षःस्थलवाले, कृश कटिभागवाले, चन्द्रकिरण सदृशदेदीप्यमान, भुजासदृश केशोंसे मुक्त, नखरूप आयुधोंसे युक्त ॥२२॥ ऐसे भयंकर रूपको देखकर सब दैत्य दानव भाग गये और हिरण्यकशिपु कहने लगा कि, अहो ! मालूम होता है की, प्रायः करके मायावी हरिने यह मारनेका उपाय किया है रहो, इससे क्या

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ॥ प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥ २० ॥ करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ॥ स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यम् ॥ चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२ ॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥ प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥ न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा योऽन्तु पुराऽपिबत्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥

होना है ॥ २३ ॥ हिरण्यकशिपु महाघोर शब्द कर बोला-अरे पशु ! अरे मायावी ! तूने छल बलकर बहुत जनोंको छला है, परन्तु मैं तेरे वशका नहीं, ले अब सावधान हो। आज तुझको मारकर तेरे ही रुधिरसे अपने भ्राता हिरण्याक्षका तर्प्पण करूंगा। यह कह गदा लेकर नृसिंहजीके ऊपरको झपटा कि, जैसे अग्निपर पतंग झपटता है और वहां नृसिंहजीके तेजमें पड़तेही अलक्षित हो गया ॥ २४ ॥ सो सत्त्वधामा भागवतमें यह बात विचित्र नहीं, क्योंकि पहले जिसने अपने तेजसे संपूर्ण अन्धकार नष्ट कर दिया था फिर इस महाअसुर

हिरण्यकशिपुने क्रोध करके अति तीव्र वेगवाली गदा नृसिंहजीपर डाली ॥२५॥ परंतु पराक्रम करते हुये गदासहित उस असुरको नृसिंह जीने ऐसे पकड़ लिया कि, जैसे गरुड़ महान् सर्पको पकड़ लेता है परन्तु हिरण्यकशिपु भी नृसिंहजीके हाथसे ऐसे छूट गया कि, जैसे क्रीड़ा करते हुए गरुड़के हाथसे सर्प छुड़ा जाता है ॥२६॥ परंतु यह छुड़ाना दुःखित देवताओंको अच्छा न दीखा, क्योंकि जिनके स्थान छीन बाहर निकाल दिये थे और यह महासुर छूटनेके कारण नृसिंहजीको अपने वीर्यसे शंकित मान खड्ग ढाल लेकर फिर नृसिंहजीके ऊपर वेगसे प्रहार करने लगा॥२७॥महाभयानक अट्टहास शब्द करके अपने पूर्ण तेजसे उस सिकरेके समान वेगवाले अनेक शस्त्रधारी पृथ्वी आकाशके भ्रमण करनेवाले हिरण्यकशिपुके नेत्र बन्द कर अत्यन्त तीव्र वेगवाले नृसिंहजीने चपलाकी नांई चमककर उसको पकड़ लिया॥२८॥जैसे

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं ताक्ष्र्यसुतो यथाऽग्रहीत् ॥ स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६ ॥ असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारतसर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्य-शङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥ पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्यवेगेन जितश्रमो मृधे ॥ २७ ॥ तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥ विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥

सर्प मूसेको विना ही प्रयास सहजमें पकड़ लेता है। उस समय दैत्येन्द्र आतुरतासे चारों ओरको तड़फड़ाने लगा और छूटनेके लिये अनेक उपाय किये,परन्तु नृसिंहजीके पंजोंसे न छूट सका। उसकी खाल ऐसी कठोर थी, जो वज्रसे भी कभी नहीं कटी,उस हिरण्यकशिपुको अति निःशंक हो अंकमें भर जङ्घाओंपर धर कर सन्ध्याका समय विचारकर देहली पर खड़े होकर कहा–अरे प्रह्लादके दुःख देनेवाले ! जो-जो वचन तुझको दिये थे उनमेंसे तो कोई बात नहीं है ? देख ले। न दिन है, न रात है, न पृथ्वी है, न आकाश है, न पशु है, न मनुष्य है,न वन है,न वज्र है,न शस्त्र है,न घर है,न द्वार है सब प्रकारसे विचार ले,यह कह–दोहा–महा कुपित है नरहरी,चारों ओर निहार। असुर उदर निजनखनते,क्षणमें डारो फार ॥ गरुड़ जैसे महाविषधर सांपको फाड़कर बगेल देता है, ऐसे ही विना परिश्रम क्रीड़ामात्रसे नृसिंहजीने

हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला। देखो ! भगवत्की अद्भुत गति सन्ध्याका तो समय था अतः न दिन था न रात थी जंघाओंपर धर कर मारा, न धरती थी न आकाश था, नखोंसे चीर डाला, न कोई अस्त्र था न कोई शस्त्र था और वह नख न जीवित थे, न मृतक थे और नृसिंह रूप जो धारण किया, न कोई पशु था न पुरुष था ॥ २९ ॥ क्रोधसे भरा विशाल रूप महाविकराल लाल-लाल प्रलय-कालके कृशानुके समान नेत्र, अत्यन्त विस्तारवाला फटा हुआ मुख, मृत्युभवनके सदृश अपनी जिह्वासे अपने होठोंको चाट रहे थे और रुधिरके लगनेसे मुख लाल-लाल हो रहा था, दैत्यकी आंतोंका हार कंठमें पहिन रहे थे और जहाँ तहाँ रक्तके बुन्द जो शरीरमें लग रहे थे वे ऐसे विदित होते थे मानो पर्वतपर वीरबहूटी घूम रही हैं। और गलेमें आंतोंका हार ऐसी शोभा देता था जैसे सिंह हाथीको

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन् स्वजिह्वया ॥ असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथाऽन्त्रमाली द्विप-हत्यया हरिः ॥ ३० ॥ नखांकुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन् समन्तान्नखशस्त्रपा-र्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटावधूता जलदाः परापतन्ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अम्भो-धयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽतिपीडिता ॥ शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३३ ॥

मारकर उसकी अँतड़ियोंका हार अपने कण्ठमें डाल लेता है ॥३०॥ श्रीनृसिंहजी महाराजने दैत्येन्द्रके हृदयकमलको नखोंके अंकुरोंसे विदीर्ण किया था, उसको तो फेंक दिया और उसके अनुचर और भृत्यगण, जो कि शस्त्र उठाये घूम रहे थे उन यूथपति और पक्षपाति-योंको नखोंसे, भुजाओंसे पांवोंसे चीर-फाड़ मसल-मसल सहस्रोंको मारकर नष्ट कर दिया, देखिये वह तो सब शस्त्रधारी और नृसिंहजी केवल भुजाओंसे ही सब काम ले रहे थे ॥ ३१ ॥ नृसिंहजीकी सघन जटाओंसे कंपित मेघ सब फट गये, ग्रह, तारागण नृसिंहकी दृष्टिकी चमकसे छिन्न-भिन्न हो नष्ट हो गये,उनके श्वाससे मारे हुए समुद्र अपनी मर्यादाको छोड़ चलायमान हो गये और नृसिंहके दहाड़-नेका शब्द सुनकर दशों दिशाओंके दिग्गज भयभीत हो चिंघाड़ने लगे ॥ ३२ ॥ जटाकी लपेटसे विमान आकाशमें रह गये थे, उससे

सर्वत्र आकाश व्याप्त हो गया और उन पदोंके भारसे वसुधा पीड़ित हो डामाडोल हो गयी और उनके तेजके वेगसे पर्वत उखड़-उखड़ कर गिरने लगे, उनके वेगके प्रभावसे आकाश और दिशायें छबिहीन हो गयीं ॥ ३३ ॥ उस समय सभाके मध्यमें सर्वोत्तम राज्यसिंहासनपर श्रीनृसिंहजी महाराज विराजमान हुए,महातेज समूहोंसे पूरित जिनके सम्मुख कोई भी सामर्थ्यवान् शत्रु देखनेमें नहीं आता था, उन प्रचण्ड क्रोधी महाकराल वदनवाले श्रीनृसिंह भगवान्के समीप कोई भी नहीं जा सकता था ॥ ३४ ॥ जिस समय तीनों लोकोंके कष्टदायक मस्तकके शूलके सदृश उस दैत्यनायक हिरण्यकशिपुको भगवान् वैकुण्ठनायकने मारा उस समय सब देवांगना उसका मरण सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे प्रफुल्लित जिनके मुख हो रहे थे वे वारंवार 'जय जय' शब्द पुकार-पुकार और भगवान्का अद्भुत रूप निहार-

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ॥ अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥ निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५ ॥ तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम् ॥ सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥ ३७ ॥ मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ॥ यक्षाः किंपुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः ॥३८॥ ते विष्णुपार्षदास्सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥३९॥

निहार आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं ॥३५॥ जब कि नृसिंह भगवान्ने दैत्यराजको मारा उस समय नृसिंहजीके दर्शनके लिये सब पुरवासी और देवताओंके विमानोंकी पंक्तियोंसे सब आकाश मंडल आच्छादित हो गया,सब मिलकर दुंदुभी बजाने लगे और मुख्य-मुख्य गंधर्व गाने लगे, अप्सरायें मीठे-मीठे स्वरोंसे मनोहर गान करके सबके मनोंको मोहित करने लगीं ॥३६॥ उस समय वहां ब्रह्मा, शिव, इंद्रादिक देवता, ऋषि, मुनि, पितृ, सिद्ध, किन्नर, महोरग ॥३७॥ मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किंपुरुष, बेताल, सिद्ध, किन्नर ॥३८॥ और सब वैकुण्ठनाथके पार्षद (नन्द, सुनन्द, कुमुद, कुमुदाक्षादिक) अञ्जलियोंके सम्पुट शिरपर धरकर जहां राज

सिंहासनपर महातीव्र तेजस्वी श्रीनृसिंह भगवान् विराजमान थे सब देवता न तो अति दूर और न अति समीप खड़े होकर पृथक्-पृथक् भावसे संसारी जीवोंके उपकारके लिये यंत्र, मन्त्र, कवच, अष्टक, स्तोत्रोंसे श्रीनृसिंहजी महाराजकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे अनन्त ! दुरन्तशक्तिधारी, विचित्रवीर्य, पवित्र चरित्रकारी सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले, अपने सत्त्वादि गुणोंसे अनेक प्रकारकी लीला रचनेवाले अव्यक्त अविनाशी परमात्मा नृसिंहजी ! आपको मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले कि संसारके अन्तकालके समय आपके कोप करनेका समय है । हे भक्तवत्सल ! अभी तो आपने इस तुच्छ असुरको ही मारा है,अब आप अपने कोपको शांत करके इस शरणागत आये हुए अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करो॥४१॥इन्द्र बोले कि,हे परमेष्ठिन् ! नृसिंहजी महाराज !

ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रांतं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥

हे दीनानाथ ! हे जनरक्षक ! आपने महा प्रचण्ड दैत्यका वध करके हमारे भाग हमको दिलवाये और आपके वास करनेका स्थान जो हमारा हृदयकमल सो दुराचारी असुरके डरसे व्याप्त हो रहा था उसको अभय करके हमारा चित्त प्रफुल्लित किया, जो सदा कालके वशीभूत रहता है ऐसा त्रिलोकीका राज्य आपके भक्तोंको क्या वस्तु है ? हे नाथ ! वे तो मुक्तिको भी आपके आगे कुछ वस्तु नहीं समझते, फिर और सुखोंकी तो गिनती ही क्या है ?॥४२॥सब ऋषि बोले कि हे आदिपुरुष ! हे शरणागतरक्षक ! आपके आत्मामें मिला हुआ जो यह विश्व है इसको रचकर उस तेजोरूप तप करनेकी आपने हमको आज्ञा दी,सो हे दीनवत्सल ! वह तप अभीतक इस असुरने विनाश कर

रखा था, सो आज हमारी रक्षाके लिये आपने नृसिंह रूप धरकर फिर तप करनेके लिये हमको आज्ञा दी ॥ ४३ ॥ सब पितर बोले कि हमारे पुत्र पौत्रादिकोंके दिये हुए श्राद्धके पिण्ड यह असभ्य दुष्ट बलात्कार हमसे छीनकर खा जाया करता था और कभी किसी तीर्थमें जाकर वह तिलांजलि और जलदान दिया करते थे तो उन तिलोंको वह चबाकर जल पी लिया करता था, आज आपने उस असुरका पेट नखोंसे चीरकर जो हमारे पदार्थ थे वह आपने आंतोंसे और रुधिरसे निकालकर हमको दिये, इसलिये हे सर्वधर्मपालक ! आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥४४॥ सब सिद्ध बोले कि जो हमने अपने योगबलसे अणिमा महिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त किया था वह सब इस राक्षसने हर लीं,उस अनेक प्रकारके गर्ववाले गर्वित दैत्यका उदर नखोंसे विदीर्ण किया ऐसे आपके नृसिंह रूपको हम वारंवार

पितर ऊचुः ॥ श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥४४॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ॥ नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह॥४५॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायान्नृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥ नागा ऊचुः ॥ येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोस्तु ते ॥४७॥ मनव ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः॥भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किंकरान्॥४८॥

नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ विद्याधर बोले कि पृथक् ध्यानसे अनन्त ध्यानादिक विद्या जो हमने सीख रखी थी उन विद्याओंको बलवीर्यसे गर्वित इस अज्ञानीने नहीं करने दी थीं, आज आपने उस दुष्टको रणमें पशुवत् मारकर विध्वंस कर दिया; ऐसी माया करनेवाले श्रीनृसिंहजीको वारम्वार हम नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥ सब नाग बोले कि जिस दुष्टने हमारे सब स्त्रीरत्न और उत्तम पदार्थोंको हर लिया था, वह आपने हमारे उपकारके लिये नृसिंहरूप धारण कर उस पापीका पेट फाड़कर हमको और इन सब स्त्रियोंको प्रफुल्लित कर परमानन्द दिया ऐसे जो आप नृसिंहरूपधारी हैं उन आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं॥४७॥सब मनु बोले-हे नृसिंहदेव! हम सब मनु

आपकी आज्ञानुसार शास्त्रकी रीतिसे अपने धर्म-कर्म जो कर रहे थे,उन सब वर्णाश्रमोंकी मर्यादा दुष्ट हिरण्यकशिपुने विनष्ट कर दी,इस महादुष्टका आपने नखोंसे वध किया,यह काम आपने बहुत ही अच्छा किया, क्योंकि वर्णाश्रमोंकी मर्यादायें बँधी रहीं। हे प्रभो! हम जो आपके दास हैं, हमारे लिये क्या आज्ञा है? हमलोग अब क्या करें? ॥ ४८ ॥ सर्व प्रजापति बोले–हे प्रजेश! हमको आपने रचा और आपकी प्रेरणासे हम प्रजाको रचते थे, परन्तु उस दुष्टके प्रतिषेध करनेसे हम लोग उसको त्याग अपने-अपने स्थानोंमें छिप-छिपकर बैठे रहे थे, अब उस दुष्ट असुरका आज आपने उदर विदीर्ण कर वध किया, अब हम प्रसन्नतापूर्वक आपकी आज्ञानुसार प्रजा रचेंगे। हे सत्त्वमूर्ते! आपका अवतार संसारके मंगलके लिये है ॥४९॥ सब गन्धर्व बोले–हे समर्थ! हम जो आपके नट नाटक बजाने

प्रजापतय ऊचुः॥ प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः॥ स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गल सत्त्वमूर्तेऽवतारः॥ ४९ ॥ गन्धर्वा ऊचुः॥ वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥ चारणा ऊचुः॥ हरे तवाङ्घ्रि-पङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५१ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥ ५२ ॥

और गानेवाले हैं, हमको जिस दैत्यने अपने बल, वीर्य और पराक्रमसे अपने वशीभूत कर लिया था उस दुष्ट दानवको आपने इस गतिको पहुँचाया ऐसा ही करना चाहिये। कहीं पाखण्डमें स्थित होनेवालेकी भी कुशल हो सकती है? अर्थात् कभी नहीं ॥५०॥ सब चारण बोले–हे नृसिंहजी महाराज! भक्तजनोंके दुःख देनेवाले इस पापी दैत्य हृदयभेदीको आपने मारा यह बहुत अच्छा किया, इस लिये हे दीनबन्धो भगवन्! संसारमें मोक्ष देनेवाले जो आपके मोक्षदायक चरणकमल हैं, उन चरणारविन्दोंकी हम सब शरणागत हैं ॥ ५१ ॥ सब यक्ष बोले–हे नृसिंहजी महाराज! पचीस तत्त्वोंके अधीश हम लोग आपकी इच्छानुसार कर्म करनेमें आपके मुख्य सेवक थे, सो

इस दुष्ट दितिपुत्रने हमको अपना भार उठानेवाला अनुचर बनाकर रक्खा था। आपने अपने भक्तोंका संताप देखकर इस परिताप देनेवाले दुष्ट राक्षसको आज मारकर हमारा ताप दूर किया ॥ ५२ ॥ किंपुरुष बोले—हम किंपुरुष हैं और आप आदिपुरुष पुरुषोत्तम हैं, हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं ? यह कुपुरुष (नीच) हिरण्यकशिपु तो उसी समय मर चुका था जब

किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्यां व्यनैषीदभृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥ ५४ ॥

कि इसका साधु पुरुषोंने निरादर किया और धिक्कार दिया था ॥५३॥ वैतालिक लोग बोले कि सभाओंमें और यज्ञोंमें आपका निर्मल यश गानेसे बड़ी पूजा हम लोगोंको प्राप्त होती थी और यह दुर्जन दुष्ट हमारी पूजाको ले लिया करता था और यशका विनाश करता रहता था, सो आपने इसको मारकर हमारे रोगका नाश कर दिया, आपका कल्याण हो जो सब दिनका ताप आपने हमारा मिटा दिया * ॥५४॥

* एक वार्ता—उस समय उन वैतालोंमेंसे कोई बोला—महाराज ! अब न जाने कोई दुष्ट फिर भी उत्पन्न हो जाय इसलिये बारंबार हमारी सबकी यह विनय है कि सब प्राणिमात्रको अपने परमधामको ले चलो, तब नृसिंह बोले कि चलो। कौन-कौन हमारे परमधाम को चलते हैं ? तब एक वैताल प्राणियोंके बुलानेको बाहर निकला; देखा तो एक शूकरी कीचमें पड़ी लोट रही है, वेतालने कहा—हे शूकरी ! तू नृसिंहके निकट चल, हम तुझको वैकुंठ भिजवायेंगे वह बोली कि वैकुंठमें क्या है ? वैताल बोला कि अरी मूर्ख ! तू नहीं जानती कि वैकुण्ठमें क्या है ? वैकुण्ठमें बड़े सुख हैं। सुन्दर-सुन्दर षट्रस भोजन मिलते हैं, पीने को अमृतके समान स्वच्छ शीतल जल मिलता है, बैठनेके लिए उत्तमासन, सोनेके लिये दूध फेनसम शय्या, नित्यप्रति श्रीनारायणके दर्शन, दिन-रात भगवान्‌का गुणानुवाद, इसके अतिरिक्त और अनेक प्रकारके आनन्द भोगनेमें आते है। यह सुनकर वह शूकरी बोली कि तुमने विष्ठेका नाम तो लिया ही नहीं यह तो कहो कि विष्ठा वहां खानेको मिलता है या नहीं । वैताल बोला–अरी नीच ! वहां ऐसी निषिद्ध वस्तुका क्या काम, वहाँ तो मेवा मिष्ठान्न सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न इच्छानुसार मिलते हैं । शूकरी बोली कि क्या मैं वैकुण्ठमें आग लगाऊँ, चूल्हेमें जाय मेवा मिष्ठान्न, ऐसे वैकुण्ठ जानेकी मेरी इच्छा नहीं, वहाँ से तो मैं यहीं सुखी हूँ, भोजन तो भरपेट मिलता है, घरके कुटुम्बमें मिलजुल कर रहती हूँ, दश बारह बेटी-बेटे संग रहते हैं, इससे अधिक और कौन सा वैकुण्ठ है ? शूकरीके रूखे वचन सुन वैतालने नृसिंहजीसे कहा कि महाराज ? शूकर तक भी वैकुण्ठका जाना स्वीकार नहीं करते, नृसिंहजी बोले कि यह जीव जिस योनिमें जहां जन्म लेता है उसी स्थान को वैकुण्ठ समझता है ।

सब किन्नर बोले कि हे निरंजन! हे भक्तभयभञ्जन ! हम सब किन्नरगण आपके अनुचर हैं, इस दुष्ट असुरने हमको भार उठानेवाला अपना किंकर बनाया था और हमारी ताड़ना करता था । हे हरे ! आपने महाकष्टरूप इस दुष्टका वध किया, हे नराकार शार्दूल ! हे नाथ ! आप हमारा मंगल करो॥५५॥ विष्णु भगवान्‌के पार्षद बोले कि हे शरणागत-प्रतिपालक ! यह नृसिंहरूप महा अद्भुत तो हमको आपने भला दिखाया जो आजतक कभी नहीं देखा था; सब लोकोंका मंगलकारी आनन्ददायक यह स्वरूप है । हे विधिकर ! यह तो वही हिरण्यकशिपु आपका दास था कि जिसको सनकादिकोंने शाप दिया था, इसका आपने विध्वंस किया, यह तो आपने इसपर बड़ा ही अनुग्रह किया, परन्तु हमने अत्यन्त सुख माना जो इसके द्वारा हमको आपके इस अद्भुत रूपका दर्शन हो गया ॥५६॥ इति श्रीमद्भा-

किन्नरा ऊचुः ॥ वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता हरे स वृजिनोऽवसा-दितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः ॥ अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते म० नृसिंहावतारे हिरण्यकशिपुदैत्यवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्म-रुद्रपुरस्सराः ॥ नोपेतुमशकन् मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ अदृष्टा-श्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥ २ ॥

गवते महापुराणे भाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते हिरण्यकशिपुदैत्यवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—नवमाध्यायमें हरिनिकट, भेजो अज प्रह्लाद । क्रोध शांत कर विनय की, हरिकी सह आह्लाद ॥ श्रीनारदजी बोले कि क्रोधके वेगसे अत्यंत भयंकर श्रीनरसिंहजीको देखकर ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि देवताओंमें कोई सम्मुख न जा सका, जो सदा समीप रहते थे वे सब देवता भी दूर ही खड़े हुए स्तुति कर रहे थे ॥ १ ॥ निदान सब देवता मिलकर श्रीलक्ष्मीजीके निकट गये और हाथ जोड़कर बोले कि हे जननि ! श्रीनृसिंहजीके तेजसे त्रिलोकी भस्म हुआ चाहती है,आप चलकर उनके क्रोधको शान्त कीजिये, यह कह साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीको नृसिंहजीके

सम्मुख भेजा उस महाभयंकर रूपको देखकर लक्ष्मी भी पास न जा सकीं,क्योंकि * ॥२॥ तब भागवत प्रह्लादको निकट बैठा हुआ देखकर ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! तेरे ही कारण तेरे पिता अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे हैं, उनके समीप तू ही जा और उनके क्रोधको शांत कर ॥ ३ ॥ हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरपर धारण कर महाभागवत वह भोलाभाला प्रह्लाद हाथ जोड़कर शिर नवाकर सहज-सहजमें नृसिंहजीके निकट जाकर दंडवत् प्रणाम किया ॥४॥ तब अपने चरणोंमें पड़े हुए उस बालक प्रह्लादको देखकर श्रीनृसिंहजीने कृपासे परिपूर्ण होकर उसको

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्माऽवस्थितमन्तिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥ ३ ॥ तथेति शनकै राजन् महाभागवतोऽर्भकः ॥ उपेत्य भुवि कायेन ननाम विहिताञ्जलिः ॥४॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः॥ तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥ अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥

उठा लिया और उसके शिरपर कालरूप सर्पके भयसे डरनेवाले बुद्धिमानोंका अभयदायक अपना करकमल रखा॥५॥श्रीनृसिंहजीके हस्त कमलके स्पर्शसे उनकी सब अशुभ वासना दूर हो गयीं और उसी समय उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया, तब हर्षितचित्त, रोमावली खड़ी हो गयी, अङ्ग प्रफुल्लित हो गया, आंखोंमें प्रेमके आंसू भर आये और अति आनन्दित हो भगवान्के चरणकमलका ध्यान करने लगा ॥६॥ एकाग्रमनसे स्वस्थ सावधान होकर प्रेमभरी गद्गद वाणीसे वह भक्त प्रह्लाद अपने लोचन और अन्तःकरणको श्रीनृसिंहजीके स्वरूपमें

* शंका—प्रह्लादके ऊपर तो नृसिंह भगवान्का परम् अनुग्रह था, फिर शीघ्र क्रोधको त्यागकर वरदान क्यों नहीं दिया, ऐसी प्रीति करके फिर वर देनेमें विलम्ब क्यों किया ?

उत्तर—नृसिंहजीने शीघ्र क्रोध त्याग नहीं किया और प्रह्लादको शीघ्र वरदान भी नहीं दिया, इसका कारण यह है कि लोकमें प्रह्लादकी भक्तिकी प्रशंसा करानेके लिये, क्रोध त्यागनेमें और वरदान देनेमें विलंब किया, लोकमें सब ऐसे वचन कहेंगे कि सब देवताओंने नृसिंहजीकी स्तुतिकी परन्तु क्रोध शांत नहीं हुआ, जब प्रह्लादने स्तुतिकी तब उसी समय क्रोध को त्याग दिया, ऐसा नृसिंह भगवान्को प्रह्लाद प्यारा था, इसलिये क्रोधके त्यागनेमें विलम्ब किया और इसीलिये तुरन्त वरदान भी नहीं दिया ।

लगाकर भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगा ॥ ७ ॥ प्रह्लाद बोला, कि सत्त्वगुणमें एकाकार बुद्धिवाले ब्रह्मादिक देवताओंके गण, मुनि और सिद्ध पुरुष गम्भीर वाणियोंसे अनेक महागुणोंसे आजतक जिनकी आराधना और प्रार्थना करनेको समर्थ नहीं होते, वे उग्ररूपधारी नृसिंह भगवान् मुझ दानव जाति मन्दबुद्धिपर किस प्रकार सन्तुष्ट होंगे ? तो भी उनकी कृपासे उनकी स्तुति करता हूं ॥ ८ ॥ धन, जाति, रूप, तप, पांडित्य, श्रुत, तेज, ओज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग इन सबमें कोई भी उपाय परमेश्वरकी आराधना करने योग्य नहीं, क्योंकि भगवान् तो केवल भक्तिभावके भूखे हैं; देखो, सुदामाके तन्दुलोंपर ही प्रसन्न हो गये ॥ ९ ॥ चाहे चार वेदका विभागकर्ता, अनेक यज्ञोंका करनेवाला,अनेक गुणसम्पन्न,धनमें कुबेरके समान और जातिका ब्राह्मण हो,परन्तु भगवद्भक्तिसे विरुद्ध हो जो वह ब्राह्मणोंकी

प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥ मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥ नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥ ९ ॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ॥ मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ १० ॥ नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ॥ यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ ११ ॥

गणनामें नहीं है और जो जन जातिका चाण्डाल, महापापी और नित्य सुरापी भी हो, परन्तु अपने मन, वचन, कर्म, तन, धन और अपने प्राणोंको नारायणको समर्पण कर देता है, वह महाश्रेष्ठ है और धन्य है ! वह श्वपच भी अपने सब परिवारको संसार-सागरसे तार सकता है और अधिक अभिमानी और अज्ञानी ब्राह्मण भी आपके चरण कमलसे विमुख रहनेवाला किसी प्रकार अपने परिवारको पावन और पवित्र नहीं कर सकता और वह धन भी केवल तनका पालन करनेवाला है, कुछ मङ्गलदायक नहीं है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आपके अज्ञानी जीवोंसे अपने लिये आप कुछ पूजा भेंट नहीं मांगते । आपको तो किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि

आप तो अपने ही स्वरूपके भागसे परिपूर्ण हो और दयालु हो। मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान्‌के अर्थ प्रदान करता है और आदर-सम्मानसे भगवान्‌को चढ़ाता है, वह सब अपना ही प्रयोजन सिद्ध करता है, जैसे अपने मुखके तिलकादिककी शोभा अपने ही प्रतिबिंबकी कांतिको झलकाती है, ऐसे ही जो प्राणी जिस वस्तुको भगवत् अर्पण करता है, वह सब उसी प्राणीको मिल जाता है ॥११॥ इसलिये मैं जो अधम-बुद्धि मायाके जालमें फँस रहा हूं। आपकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता,परंतु अपनी मति अनुसार (जैसी मेरी बुद्धि है) आपकी स्तुति करता हूं। आपके चरित्र गानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, इसलिये मैं आपकी स्तुति करता हूं ॥१२॥ हे ईश ! हमारे समान इस स्वरूपसे डरते हुए यह सब ब्रह्मादिक देवता आपके दास हैं, सत्त्वगुणधाम अवतारोंकी जो मांगलिक क्रीड़ा है, उसको संसारके मंगलके अर्थ और

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ॥ नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥ सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाऽद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥ लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियान्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥ १४ ॥ नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५ ॥

अपने आत्माके सुखके लिये आप करते हो ॥१३॥ इसलिये हे शान्तस्वरूप! अब आप अपने क्रोधको शान्त करो, क्योंकि हम लोगोंको दुःख देनेवाले असुरको आपने मार ही लिया; फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? वृश्चिक और सर्पको जब कोई मार डाले तो साधु लोगोंको बड़ा आनन्द होता है, ऐसे ही इस दुष्ट हिरण्यकशिपुके वध करनेसे साधु लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ । हे नृसिंहजी, अब सब लोग आपके समीप आये हैं। ये अपना भय दूर करनेके लिये आपका स्मरण करते हैं, आपके इस अद्भुत स्वरूपका ध्यान करनेसे ही भय दूर हो जायगा, फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥१४॥ हे अतीत ! यह आपका रूप–जो महाभयंकर मुख, जीभ सिंहकीसी,

सूर्यके समान लाल-लाल नेत्रोंसे मानो अग्निकी ज्वाला भड़क रही है। बंक भ्रुकुटियोंका चढ़ाना और अतिविकराल डाढ़ोंको देखकर भय दिखायी देता है, आँतोंकी माला पहननेसे और सटाके बाल रुधिरसे भीगे हुए, केलेके पत्रोंके समान कान ऊँचे-ऊँचे खड़े दिखायी देते हैं, नखोंके अग्रभाग वैरियोंके उदरके विदीर्ण करनेवाले महागंभीर शब्दसे सब दिशाओंके दिक्पाल भय मानकर कंपायमान होते हैं, इनका तो मुझको कुछ भय नहीं ॥ १५ ॥ परंतु हे कृपावत्सल! इस संसारचक्रके दुःसह दुःखसे मैं महादुःखी हूं, आपके चरणारविंदकी कृपासे साधारण संसारचक्रका मुझको कुछ भय नहीं, परंतु अपने कर्मोंके बंधनमें जो मैं बँधा हिंसक जीवोंमें पड़ा हुआ हूं, इस बातसे मेरा मन बहुत डरता है। हे कृपालु! मुझपर दयालु होकर आप अपने मोक्षरूप और शरणरूप चरणशरणमें मुझको कब बुलाओगे? ॥१६॥ हे भूमन्!

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धःस्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥ यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसंयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाऽहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ १७ ॥ सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चिगीताः ॥ अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥ १८ ॥ बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥ १९ ॥

इस प्रिय-अप्रिय पदार्थोंके वियोग-संयोगसे जो प्रकट हुई शोकरूप अग्नि है उस अग्निसे सब योनियोंमें रात-दिन जला करता हूं और संसारमें दुःख दूर होनेके लिये जो अनेक यत्न हैं वे भी सब दुःखस्वरूप हैं, कभी पित्त अधिक हो जाता है, कभी बात बढ़ जाता है, कभी कफ घेर लेता है, यह देहाभिमान भटक रहा है। इसलिये हे सत्तम! अब आप दासभाव सजीवन मूल औषध बताओ, जिससे फिर यह दुःख मुझको न व्यापे ॥१७॥ हे प्रभु! संसारके बन्धनोंसे मोक्ष पाकर आपके चरणशरणमें रहनेवाले महात्मा पुरुषोंके सत्सङ्गसे परम सुहृद और परम गूढ ब्रह्माजीके मुखसे पाये हुए आपके अद्भुत चरित्र सम्बन्धी कथाओंका अभ्यास करते-करते इस संसार-सागरके महाकठिन दुःखोंसे धीरे-धीरे मैं भी पार उतर जाऊँगा अर्थात् आपकी नामरूप नौकापर चढ़कर पार उतरना क्या बड़ी बात है? ॥ १८ ॥ हे नृसिंह! बालककी

रक्षा माता-पिता कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते, रोगीको ओषधि बचा भी सकती है, और मार भी सकती है, समुद्रमें डूबते हुएको नाव निकाल भी सकती है और डुबो भी सकती है, परन्तु आपकी रक्षा सर्वोपरि है। रोगियोंके कष्ट दूर करनेके लिये संसारमें अनेक उपाप और अनेक ओषधियाँ हैं, परन्तु आपकी इच्छा विना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। सबका यही तात्पर्य है कि जब शरीरधारी आपकी उपेक्षा करे तो उसको दुःख है और आपकी चाहना करे तो सुख है ॥ १९ ॥ भिन्न-भिन्न स्वभाववाले ब्रह्मादिक देवता अथवा उनसे पीछे जो उत्पन्न हुए पिता-पितामहादिक जो कोई पुरुष जिस कालमें, जिस हेतुसे, जिस सम्बन्धसे, जिसके लिये, जिस प्रकारसे, जिसकी प्रेरणासे जो कुछ होता है, वह सब आपका ही स्वरूप है ॥ २० ॥ पुरुषको काल द्वारा प्रेरित जिसके गुण हैं ऐसी यह माया

यस्मिन् यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ॥ छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ ॥ २१ ॥ स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ॥ चक्रे विसृष्टमजयेश्वरषोडशारे निष्पीडयमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २२ ॥ दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यां जनोऽयम् ॥ येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥ २३ ॥

अपने अनुसार काल करके कर्ममय, वेदमय मनको रचती है और मायासे प्रेरित सोलह विकाररूप जिसमें आरे; ऐसे संसाररूप चक्रवाले मनको आपकी कृपा विना कौन तार सकता है ? ॥ २१ ॥ हे ईश्वर ! हे जगदीश ! अपनी चैतन्य शक्तिसे सदा बुद्धिके गुणोंको जीतनेवाले, अपनी सर्वगुणमयी मायाके प्रेरक, कार्य और साधनोंके साधक, सर्व शक्तियोंको अपने आधीन करनेवाले आप हैं और मैं जो इस मनमोहिनी मायासे सोलह आरेवाले संसार चक्रमें पड़ा हुआ कोल्हूके भीतर गन्नेकी नाईं पिल रहा हूँ, अब हे शरणागतवत्सल ! मुझ शरणागत मन्द बुद्धिके मनको मारकर शीघ्र मुझे अपनी ओरको खींचो क्योंकि रस निकल चुका है, कुछ सूक्ष्म रस शेष रहा है, जो यह भी निकल गया तो फिर किसी कामका न रहूँगा ॥ २२ ॥ हे विभो ! सब स्थान पालकोंकी आयु, लक्ष्मी, वैभव, स्वर्ग जिनकी यह प्राणी सदा

इच्छा करते रहते हैं, उनको तो मैंने सब प्रकार देख लिया, क्योंकि वह सब तो मेरे पिताके कुपित हास्यसे और चढ़ी हुई भ्रूभंगमात्रसे ही एक क्षणमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, उस सर्वसंहारी मेरे पिताको आपने विना शस्त्र नखोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ इसलिये मैं अज्ञानी किसी बातको न जाननेवाला प्राणियोंके आशीर्वादको, ब्रह्मा पर्यंतकी आयुको, लक्ष्मीको, इंद्रियोंसे भोगनेवाले सुखको और संसारके अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादि भोगोंको, भोगनेकी मेरी इच्छा नहीं और सिद्धियोंको भी मैं नहीं चाहता, क्योंकि वे भी आपके कालरूप प्रबल पराक्रमसे खंडित होनेवाली हैं, इसलिये हे प्रभो ! मुझको तो आप अपने दासोंके दासोंकी चरण शरणमें रखना ॥ २४ ॥ कानोंसे कानोंको सुख देने वाले अन्तमें मृगतृष्णारूप इस आशीर्वादसे क्या प्रयोजन है ? अनेक रोग जिससे उत्पन्न हों ऐसे शरीरसे क्या प्रयोजन

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण ॥ कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥२४॥ कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः केदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान् कामानलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥ २५ ॥ क्वाहं रजः प्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ २६ ॥ नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ २७ ॥

है ? यद्यपि इस बातको सब जानते हैं, तो भी लवमात्र मधुर कामरूप अग्निके मुखमें लवलीन हैं, इसको दूर नहीं कर सकते और जो विद्वान् हैं उनको किसी प्रकार वैराग्य नहीं होता, वे तो पंडित नहीं हैं, किन्तु मूर्ख हैं। हे प्रभो ! आपकी माया बड़ी बलवती है ॥२५॥ हे नृसिंहजी महाराज ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ तो मेरा देह, तमोगुणकी खानवाले राक्षसवंशमें मेरा जन्म सदा दैत्योंके बालकोंका संग, फिर कहां तो मैं और कहां आपका अनुग्रह ? जिस अनुग्रहसे अभयदायक दुष्टदमन आपकी भुजाओंकी छाया जो कि आजतक ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी अपनी परमप्यारी पत्नीके ऊपर नहीं की थी, वह उन भुजाओंकी छाया आज आपने मेरे ऊपर की ॥२६॥ हे प्रभो ! आप

समदर्शी हैं, आपके यहां दुर्भाव नहीं है, ब्रह्मादिक देवता उत्तम हैं और यह दैत्य नीच है, यह बुद्धि अधम लोगोंकी है आपकी नहीं क्योंकि आप तो सर्व जगदाधार और सबके सुहृद् हो, तो भी कल्पतरुके समान जो जैसी सेवा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। आपकी कृपा कल्पद्रुमके सदृश है और कल्पद्रुमको सब इकसार है, तो भी जो मनुष्य कल्पवृक्षके नीचे वास करते हैं, वे मनोवांक्षित फल पाते हैं, इसी प्रकार आपको सब एक सार हैं, परंतु सेवकोंको सेवाके अनुसार फल देते हो, आपके यहां कुछ दुर्भाव नहीं ॥ २७ ॥ हे नाथ! जिस प्रकार आपने मुझको संसाररूप कूपमें पड़ा देख अवतार धारण किया और मुझको अपनाया इसी प्रकार नारदजीने भी मुझे संसाररूप भयंकर सर्पवाले अँधियारे कूपमें पड़ा देखा और यह भी जाना कि विषयानुरागी लोगोंके कुसंगसे अन्धा होकर इसमें गिर गया और इसके सब अंग भुजङ्गने डस लिये,उसीके विषसे यह ऐसा बेसुध हो रहा है कि उस कूपको ही अपना घर समझ रखा है,उस समय उन्होंने भी मेरे ऊपर दया

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रतपन् प्रसंगात् ॥ कृत्वाऽऽत्मसात्सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २८ ॥ मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ॥ खङ्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥ २९ ॥ एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवेष्यसि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ ३० ॥

दृष्टि करके मुझे उस कूपसे बाहर निकाला, मैं आपके भृत्यलोगोंकी सेवा कैसे त्याग दूँ ? ॥ २८ ॥ हे अनन्त आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की और मेरे पिताको मारा, अपने भृत्य नारदका वाक्य सत्य करनेके लिये यह अद्भुत अवतार लिया, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? खोटा कर्म करनेकी इच्छा करके मेरा पिता खड्ग हाथमें लेकर बोला कि तू किसकी आराधना करता है ? मुझसे परे कौन ईश्वर है जिसको तू अपना रक्षक बतलाता है? उसको मुझे दिखा मैं अभी उसको मारूंगा और जो नहीं बतायेगा तो तेरा शिर काट डालूंगा, अतएव आपने अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने भक्तोंको अभय करनेके लिये और मेरा वचन सत्य करनेके लिये उसी समय खम्भ फाड़कर प्रकट हुए, क्या इस बातको नहीं जानता ? ॥ २९ ॥ हे जगदाधार ! केवल एक आप ही जगदाधार और जगतरूप हो,

क्योंकि इस जगत्के आदि और अंतमें एक आपही रक्षक हो और मध्यमें भी आप ही हो। आप अपनी मायाके गुणोंसे इस विश्वको रचकर नानाप्रकारसे उन गुणोंके दृष्टि आते हो और अन्तर्यामी रूपसे सब चर-अचर रूपमें व्याप्त हो रहे हो, मायाके गुणोंसे भिन्न-भिन्न रूप आपका प्रतीत होता है। कोई शत्रु समझता है, कोई मित्र समझता है, आपके भेद अपार हैं, उन भेदोंको कोई समझ नहीं सकता॥३०॥ हे ईश! सत्-असत् आप ही हो और यह सब मायाके गुण हैं, अर्थात् मायासे भिन्न नहीं हैं, आप जगत्से भिन्न भी हो तो जगत्रूप आप ही हो और यह सब मायाके गुण हैं। यह मेरा है, यह पराया है, ज्ञानदृष्टिसे देखो तो कुछ न अपना है, न पराया है, सब एक रूप हैं। वृक्ष जैसे धरामय बीजरूप है, बीज सूक्ष्म बीजरूप है और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप है, इसी प्रकार यह जगत् पञ्च महाभूतरूप है, पञ्चमहाभूत

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥ ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ॥ योगेन मीलितदृगात्मनि पीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥ ३२ ॥ तस्यैव ते वपुरिदं निज कालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥ ३३ ॥ तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ॥ नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥

अपने सूक्ष्मभूत रूप हैं और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप है जो पदार्थ जिससे उत्पन्न हो वा जिससे प्रकाशित हो, अथवा जिसमें लय हो वह तद्रूप होता है ॥३१॥ महाप्रलयके जलमें इस विश्वको रचकर आप अपने सुखका अनुभव करते समय अचेष्ट होकर योगसे दृष्टिको मीचकर स्वरूपके प्रकाशसे निद्राका पराभव करके आत्माकी चतुर्थ (तुरीय) अवस्थामें स्थित होकर तम और सब गुणोंका संयोग त्यागकर शयन करते हो ॥ ३२ ॥ अपनी कालशक्तिसे प्रकृतके गुणोंकी प्रेरणा करते हो उन्हींका स्वरूप यह जगत् है, जब आपकी इच्छा होती है तब प्रलयसम्बन्धी जलमें शयन करते-करते समाधिसे निवृत्त होकर आपके नाभिकमलके सूक्ष्म बीजमेंसे जैसे बड़ा बड़का वृक्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रलयके जलमेंसे महाकमल उत्पन्न होता है; जिस समय शेषनागके शयनसे आप जागते हो ॥३३॥ उस कमलमेंसे

ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तो आँख खोलकर सब ओरको देखा, परंतु सिवाय कमलके और कुछ देखनेमें नहीं आया, क्योंकि स्वयं बीजरूप आप ही अपने आपमें व्याप्त हो रहे थे। फिर आपही प्रकट हो, विचार कर सौ वर्षतक जलमें ढूंढते रहे तो भी आपका पता नहीं लगा। सत्य है, अंकुरके निकलनेसे बीज कहां रह सकता है? ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्माजी अति विस्मित हो पीछेको लौटे और उसी कमलपर बैठकर तपस्या करने लगे। जब तपस्या करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गया,तब उसी तीव्र तपके प्रभावसे मनका अति शुद्धभाव हो गया। तब तो भूत, इंद्रिय और मायामय आत्मामें ही सन्मात्ररूपसे वर्तमान अतिसूक्ष्म रूपसे अपने अन्तःकरणमें ही ईश्वरको देख पाया, जैसे पृथ्वीसे सूक्ष्म सुगन्ध निकलती है॥ ३५ ॥ वह मायामय अद्भुत स्वरूप कैसा था कि जिसमें सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्रशिर, सहस्र

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ॥ त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥ एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥ ३६ ॥ तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥ ३७ ॥ इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥ ३८ ॥

हाथ, सहस्र उरु, सहस्र नासिका, सहस्र कान और सहस्र नेत्र थे और हाथोंमें सहस्र-सहस्र आभूषण और सहस्र-सहस्र आयुधोंसे परिपूर्ण थे; परन्तु आपका यह रूप मायामय प्रधान है,क्योंकि पातालादि प्रपंचसे चरणादि रचना हुई थी। हे महापुरुष! आपके इस साधुओंके देखने योग्य स्वरूपको देखकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३६ ॥ हे भूमन्! उस कालमें इस रूपसे आपने ब्रह्माजीको दर्शन दिया, यह उनके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया था, क्योंकि हयग्रीव-स्वरूप धारण करके वेदद्रोही महाबली वर पानेसे उन्मत्त मधु व कैटभ नामक दोनों असुरोंका वध करके ब्रह्माजीको श्रुतिगण लाकर रज, तम समर्पण किया। हे प्रभो! ऋषि लोग कहते हैं कि सत्त्वगुण आपका प्यारा शरीर है ॥ ३७ ॥ हे महापुरुष! आप इस प्रकार मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार धारण कर सब लोकोंकी रक्षा करते हो

और जो संसारके प्रतिकूल होते हैं, उनका विध्वंस करते हो यह युग युगमें आपका धर्म चला आया है, उसकी रक्षा करते हो और कलि युगमें आप गुप्तरूपसे रहते हो, इसलिये इस युगमें आप ऐसा नहीं कर सकते। आप तीन युगोंमें अवतार लेते हैं, इसीसे आपका नाम संसारमें त्रियुग प्रसिद्ध हुआ है ॥३८॥ हे वैकुण्ठनाथ! यह मेरा मन अधर्मसे दूषित है, सदा बाहरी बातोंमें लगा रहता है, जीतनेमें नहीं आता। कामसे आतुर है, इस लिये हर्ष, शोक, भय, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तापोंके दुःखसे पीड़ित हो आपकी कथावार्त्तामें प्रीति नहीं करता। हे प्रभो! ऐसा मन होनेपर मैं दीन पराधीन होकर फिर आपके तत्त्वका विचार कैसे कर सकता हूँ ॥३९॥ हे अच्युत! जीव तृप्त होकर अनेक ओरको अर्थात् जिस ओर मधुरादि रस हैं उसी ओरको खिंचता है। त्वचा स्पर्शकी ओरको खींचती है, पेटकी भेंट देनी ही कठिन है, क्षुधासे सन्तप्त होकर जिस प्रकारकी आहारकी वस्तु देखता है, मार-मारकर उसी ओरको खींचता है; जिस

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥ एवं जनं निपतितं भववैतरण्या-मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचरपीपृहि मूढमद्य ॥ ४१ ॥

ओरसे सारंगी मृदंगकी ध्वनि और मधुर-मधुर स्वरोंसे कोकिलकण्ठियोंके गानेका शब्द सुनायी पड़ता है, यह कान अज्ञानसे बलात्कार उसी ओरको खींचते हैं, नाक अनेक-अनेक प्रकारके सुगंधित गन्धराज, मालती, मदनबाणादिक पुष्पोंकी गन्धकी ओरको खींचती है, यह चंचल नयन किसी प्रकार चैन नहीं लेने देते, सब कर्मेंद्रियाँ अपनी-अपनी ओरको खींच रही हैं जैसे एक पतिकी बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं और वह अपनी-अपनी ओरको खींचती हैं और घबड़ा देती हैं; ऐसे ही यह मेरी इन्द्रियाँ मुझको व्याकुल कर रही हैं ॥ ४० ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार मेरी कुगति है इसी प्रकार सबकी कुगति है और इसी कुगतिमें संसाररूप वैतरणी नदीकी धारमें उछलते-डूबते बहे चले जाते हैं! अनेक जन्म लेते मरते खाते डरते डराते अपने परायेके साथ शत्रुता-मित्रता करते रहते हैं। हे उद्धारकारक विश्वनाथ! उन भयभीत जनोंको

अपने नेत्रोंसे देख अनुग्रह प्रकाश करके आज ही यमद्वारवाली वैतरणी नदीसे पार उतार कर रक्षा कीजिये, क्योंकि ये जन मूढ़ और दीन हैं ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्के गुरु हैं और इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और विनाशके कारण आप ही हैं, फिर आपको सब भक्तोंके तार देनेका क्या परिश्रम है ? अर्थात् सब भक्तोंका तार देना कुछ आपको दुष्कर कर्म नहीं है । हे प्रभो ! समस्त जनोंके बंधु हैं, क्योंकि मूढजनोंके ऊपर भी आपका कितना अनुग्रह है कि जो विना भक्तिके ही तार देते हो, इस लिये आपका नाम देवताओंने आर्तबन्धु रखा है । हम लोग आपके भक्तजनोंके सेवक हैं, हम लोगोंका उद्धार करोगे तो क्या कुछ बड़ी बात है ? यह भी एक आपका तुच्छ कार्य है ॥ ४२ ॥ हे सर्वोत्तम ! आपकी गुणगान रूप महा अमृतधारामें जिनके मन मग्न हो रहे हैं, वे तो इस दुष्पार संसाररूप

कोन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भव संभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजे परदुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ॥ शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ ४३ ॥ प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजनेन परार्थनिष्ठाः ॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ॥ ४४ ॥ यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ॥ तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥

वैतरणी नदीका भी कुछ भय नहीं करते, परंतु जो मूर्ख लोग इस महाअमृत नदीसे विमुख हो इंद्रियोंके निमित्त जो मायाका सुख है, उसके लिये कुटुम्बादिकका भार होते हैं,उनको देखकर मुझे अत्यन्त शोक होता है ॥४३॥ हे देव ! मुनिलोग बहुधा अपनी-अपनी मुक्तिकी कामनाके लिये एकान्त स्थानोंमें मौनी बनकर तप करते हैं और वन वन घूमते-फिरते हैं, परन्तु दूसरा यत्न हम उनका नहीं देखते । हे भगवन् ! यह हमारे संगी असुरोंके बालक अतिशय दीन हैं, इनको अकेला छोड़कर मैं अपनी मुक्ति पानेकी इच्छा नहीं रखता । हे नित्यमुक्त ! मैं इन बालकोंके लिये और किसीके निकट प्रार्थना नहीं कर सकता, क्योंकि आपके सिवाय और किसी पुरुषको इन भ्रान्त लोगोंका उद्धार करनेवाला नहीं देखता ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, ये लोग स्त्रीसंग संभोगादिक द्वारा सुखभोग करते हैं, दीन नहीं

हैं, किन्तु हे भगवन्! स्त्रीसंगादि जो गृहस्थधर्म है वह बड़ा तुच्छ है, क्योंकि उससे दोनों हाथोंके खुजानेके समान दुःखपर दुःख ही दिखायी देता है। हे स्वामिन्! गृहस्थीका सुख इस प्रकार अन्तमें दुख देनेवाला है, जैसे ओसका सोना, उसमें आसक्त पुरुष बहुतसा दुःख भोगकर भी खुजानेके समान इस सुखसे तृप्त नहीं होते। एक दुःख बीतने नहीं पाता, दूसरा आकर उपस्थित हो जाता है। देहमें खुजाहटका रोकना ऐसे-वैसे पुरुषोंका काम नहीं है, अतः कोई धीरपुरुष ही खुजलीके समान कामदेवके वेगको सहन कर सकता है, परन्तु कौन? जो कोई आपका परमभक्त होगा ॥ ४५ ॥ हे अन्तर्यामिन्! मौनव्रत, श्रुत, तप, अध्ययन, स्वधर्म, धर्मव्याख्या, एकान्तमें वास, जप और समाधि यह मोक्षके साधन प्रसिद्ध हैं, इनको मैं तो असत्य नहीं कर सकता, परन्तु ये बहुधा अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी आजीविकाके उपाय हैं, इनके करनेवालोंको देख-देखकर कोई-कोई अजितेन्द्रिय लोग हँसते भी हैं और कहते हैं कि यह सब ठगविद्याके साधन हैं और

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ॥ प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वाऽत्र तु दाम्भिकानाम् ॥ ४६ ॥ रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥ त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ॥ सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन् नान्यत्त्वदस्त्यपि मनो वचसा निरुक्तम् ॥४८॥

दम्भका फल सदा एकसा नहीं रहता, इसलिये दम्भी लोगोंके लिये सब मौनादिक कर्म कभी आजीविकाका उपाय हो सकता है और कभी नहीं भी हो सकता है ॥४६॥ देखो! बीज और अंकुरके समान यह सत् और असत् अर्थात् कारण और कार्य आपका रूप कहकर वेदने प्रकाशित किया है। वास्तवमें आप प्राकृतरूपादिसे शून्य हैं, इससे तत्त्वादिक रूपके समान आपका और रूप नहीं है, इसलिये योगिराज लोभ भक्तियोगसे काष्ठमें अग्निके समान कार्य और कारण दोनोंमें ही आपको अनुगत देखते हैं। हे भगवन्! ये (कार्य और कारण) प्रधान अथवा परमाणु इत्यादिसे नहीं हो सकते हैं, इसलिये आप ही सबके कारण हैं, आप ही सब वस्तुओंमें दिखायी देते हैं, आपके सिवाय और किसी वस्तुसे कार्य और कारणकी उत्पत्ति होती नहीं जानी जाती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो! वायु, अग्नि, धरणी, आकाश,

जल, मात्रा, प्राण, इंद्रियाँ, हृदय, चित्त, अहंकार, देवता, स्थूल और सूक्ष्म यह सब आपके ही रूप हैं। हे भूमन्! सगुण-निर्गुण आप ही हैं और मन वचनसे जो कुछ कहा जाता है वह सब आप ही हैं ॥४८॥ यह गुण, अवगुण, महत्तत्त्वादिक, मन आदिके देवता और मनुष्य जो भली प्रकार आदि अन्तके जाननेवाले हैं, उनमें कोई भी आदि अन्तके सिवाय आपके स्वरूपको नहीं जान सकता; अर्थात् सब आप ही हैं इससे हे उरुगाय! बुद्धिमान् पुरुष सब पाठ पूजन छोड़ केवल समाधिसे आपका ही ध्यान किया करते हैं॥४९॥ इसलिये हे अत्यन्त पूजनीय! नमस्कार, स्तुति, सर्व-कर्म-समर्पण, पूजन, चरणारविन्दकी स्मृति और कथाका सुनना, यह षडंग भक्तिकी सेवा, आप जो परमहंसोंके गतिरूप हो, आपकी भक्ति विना मुक्ति कहां? इसलिये आप अनुग्रह कर मुझको अपने दासोंका दास बना लो॥५०॥ नारदजी

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ॥ आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥ तत्तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥ ५२ ॥ मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥ ५४ ॥

बोले कि भगवद्भक्त प्रह्लादने जब इस प्रकार भक्तिसे भगवान्के गुण वर्णन किये, तब अलौकिक गुणविशिष्ट, नरसिंहजीने क्रोध शान्त कर नम्र प्रह्लादपर प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥५१॥ भगवान् बोले कि हे दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद! हे भद्र! हे असुरोत्तम! तेरा कल्याण हो, मैं तुझपर अति संतुष्ट हूं जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग, मैं सब मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूं ॥५२॥ हे आयुष्मन्! मुझको विना प्रसन्न किये मेरा दर्शन होना महाकठिन है और मेरा दर्शन करके फिर यह प्राणी किसी प्रकारका शोक-सन्ताप नहीं सह सकता ॥५३॥ इसलिये महात्मा पुरुष कल्याणकी इच्छा करनेवाले भाग्यशाली पुरुषोंको सब प्रकारके आशीर्वाद देनेवाला मैं हूँ ॥ ५४ ॥

नारदजी बोले कि सब लोकोंको लुभानेवाले वरदानोंसे यद्यपि प्रह्लादको अनेक प्रकारका लोभ दिखाया, परंतु तो भी उस प्रह्लाद भगवान्के परमभक्तने किसी वरदानकी चाहना नहीं की * ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—दशवेंमें प्रह्लादपर, कर हरि कृपा महान् । शिव अजको समझायकर, हरि भये अन्तर्धान ॥ नारदजी बोले कि भक्तियोगमें यह सब कामनादिक विघ्ररूप प्रह्लादने जानकर हँसकर श्रीनृसिंहजीसे कहा ॥१॥ प्रह्लाद बोले कि मैं जन्म-जन्मोंसे वरदानका फल जान रहा हूँ कि यह विषयका मूल है और आजतक वरदानरूप विषयोंमें आसक्त हूँ और मुझको वरदानोंका लोभ

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयाऽर्भकः ॥ मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥ भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ॥ भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥

दिखाकर मत लुभाओ, विषयोंके संसारसे तो मैं अत्यन्त डरा हुआ हूं । मुक्तिकी कामना कर आपकी शरण आया हूँ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! दासके लक्षण जाननेकी इच्छा कर मेरी परीक्षा करते हो, संसारके बीजरूप और हृदयकी ग्रन्थिरूप विषयोंमें प्रेरणा करते हो और यह भी देखते हो, कि यह मेरा भक्त अन्तःकरणसे है, वा ऊपरके मनसे ? हे नाथ ! स्वामीको अवश्य चाहिये कि दासकी परीक्षा करता रहे । मेरा मन यह साक्षी देता है कि आप विषयरूप मृगतृष्णाके समान वरदान मुझको कभी न देंगे, क्योंकि आप तो दयानिधान

* भजन—प्रभु मैं सब विधि दास तुम्हारो । अपनी चरण शरणसे मोको, इक पल भर न बिसारो ॥ १ ॥ यह विशाल विकराल रूप प्रभु दुष्ट-दमनकर तारो । बसो रहै दिन रात हृदयमें यह अभिलाष हमारो ॥ २ ॥ जब गज गह्यो ग्राहने जलमें, कोटि जतन कर हारो । जो भर सूंड रही जल ऊपर, तब हरिनाम पुकारो ॥ ३ ॥ धाये बेगि गरुड़पर चढ़कर, सब दुख द्वन्द्व निवारो । शालिग्राम भक्तसे बढ़कर, और न कोई प्यारो ॥ ४ ॥

हैं आपके हृदयमें दया भरी हुई है॥३॥जो दास अपने स्वामीसे संसारी सुखकी इच्छा रखे और उसकी बात-बातमें लोभ दिखायी देता हो, उसे दास कहना नहीं चाहिये वह कुदास है, क्योंकि जब उसकी बात-बातमें लोभ भरा हुआ है फिर दासभाव कैसा वह तो व्यापारी बनियां ठहरा और जो स्वामी दाससे सेवाकी आशा करके उसको अपने पास रखे और आशीर्वाद अथवा और कोई मनवांछित वस्तु दे तो उसको किसी प्रकार स्वामी नहीं कहना वरन् अनुगामी कहना चाहिये ॥ ४ ॥ मैं तो निष्काम आपका भक्त हूँ और आप निष्काम मेरे स्वामी हैं और कुछ मेरा आपका प्रयोजन नहीं ॥ ६ ॥ हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ जो कामना आप मुझको देते हैं, तो आपसे यही वरदान मांगता हूँ कि मेरे हृदयमें किसी प्रकारकी कामनाका अंकुर न उत्पन्न हो॥७॥हे नाथ ! कामनाका अंकुर उत्पन्न होते ही इंद्रिय, मन,प्राण,

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥ ५ ॥ अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥ यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ ७ ॥ इंद्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥ विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥ हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥ नृसिंह उवाच ॥ नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ॥ अथापि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥ ११ ॥

आत्मा, धर्म, धैर्य, मति, लाज, श्री, तेज, स्मृति और सत्य यह सब मांगनेके नामसे ही नष्ट हो जाते हैं॥८॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! जब मनुष्य मनसे कामनाओंका त्याग करता है, तब वह प्राणी भगवत्के भावको प्राप्त हो जाता है ॥९॥ फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा"–ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने । हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ " जो कि आप भगवान् महापुरुष परमात्मा पर ब्रह्म हरि और अद्भुत नरसिंहरूप हो मैं ऐसे अद्भुत स्वरूपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ श्रीनरसिंहजी बोले कि हे प्रह्लाद ! तुझ सरीखे जो मेरे एकान्ती भक्त हैं वे इस लोकमें वा परलोकमें सुखकी इच्छा कभी नहीं करते, तो भी तू मेरे कहनेसे एक मन्वन्तर दैत्यकुलमें रहकर

आनंदसहित राज्य कर और सुख भोग॥११॥ मेरे सुन्दर-सुन्दर चरित्रोंकी कथाओंका सेवन करना; मैं जो ईश्वर सब पदार्थोंमें व्याप्त हूँ और यज्ञोंका स्वामी हूँ मुझको हृदयमें रखकर सदा मेरा ध्यान करना, यजन करना, योगसे कर्मोंका त्याग करना और जो कर्म करें यह मेरे अर्थ समर्पण करना और उन कर्मोंके फलकी आकांक्षा न रखना ॥१२॥ और भोगसे पुण्यका भोग करना,कुशलसे पापका भोग करना। जिसको देवता सदा गाते रहें, ऐसी विशुद्ध कीर्ति विस्तार करके, बन्धनसे मुक्त होकर फिर मुझको प्राप्त होगा ॥१३॥ तेरा गाया हुआ जो मेरा स्तोत्र है,उसका जो कोई मनुष्य पवित्र चित्तसे कीर्तन करेगा अथवा मृत्युके समय तेरा वा मेरा स्मरण करेगा वह निःसन्देह कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा ॥१४॥ प्रह्लाद बोला कि हे महेश्वर ! हे वर देनेवालोंके स्वामी ! आपकी आज्ञानुसार आपसे मैं यह वर मांगता हूँ कि मेरे

कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥ भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥ य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ॥ त्वां च मां च स्मरँल्लोके कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदनिन्दत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥१५॥ विद्धामर्षाशयःसाक्षात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १६ ॥ तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्ताद् दुस्तरादघात् ॥ पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥

पिताने आपको जाना नहीं और न आपके तेज व ऐश्वर्यको पहचाना इससे आपकी निन्दा की ॥ १५ ॥ और क्रोध अभिमानके मदमें आकर उन्मत्तकी नाई बकवाद करता रहता था कि " मेरे भ्राताका मारनेवाला विष्णु ही है और सब दैत्योंको इसीने मारा है" इस कुदृष्टिसे उसने साक्षात् सर्व लोकके गुरु भगवान् आपको तो दुर्वाक्य कहे और आपका भक्त जानकर मुझको भांति-भांतिके दुःख दिखाये, परन्तु आपके प्रभावको न जाना, क्योंकि वह सदा ही क्रूरबुद्धि था ॥ १६ ॥ वह मेरा पिता महादुस्तर पापसे मुक्त होकर पावन और पवित्र हो जाय ऐसा अनुग्रह करिये। हे भक्तवत्सल! यह कहना भी मेरा मूर्खपन है,क्योंकि यह तो पवित्र उसी समय हो गया था, जब कि आपने खम्भ फाड़कर दर्शन दिया था, परन्तु कठोर वाक्य जो आपको कहे हैं उनका अपराध क्षमा करना चाहिये ॥१७॥

श्रीभगवान् बोले कि हे साधो ! हे पापरहित ! तेरा पिता इक्कीस कुल सहित पवित्र हो गया, क्योंकि जब तुम सरीखे साधु कुलपावन उसके घर जन्मे ॥ १८ ॥ जिन-जिन स्थानोंमें मेरे भक्त प्रशान्त समदर्शी साधु और श्रेष्ठाचार करनेवाले हैं, वे कीकट देशको भी पवित्र कर देते हैं ॥१९॥ हे दैत्येन्द्र ! जो लोग किसी जीवकी हिंसा नहीं करते और छोटे-मोटे जीवोंको मेरे भावसे चाहते हैं, उनको किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥ जो लोग इस लोकमें वा परलोकमें आपके अनुवर्ती होंगे, जैसे तू मेरे सब भक्तोंका प्यारा है वैसे ही वे

श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ ॥ १८ ॥ यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥ १९ ॥ सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किंचन ॥ उच्चावचेषु दैत्येन्द्रमद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २० ॥ भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१ ॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ॥ मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ॥ यथाऽऽह भगवान्राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४ ॥

सब मेरे प्यारे होंगे ॥ २१ ॥ हे अङ्ग ! सब भांतिसे तेरा पिता परमपवित्र है, उनका तू मृतक कर्म कर । एक तो इसका मेरे अंगसे स्पर्श हो गया है, दूसरे इसके तेरे समान सुपुत्रका होना, फिर इसके स्वर्ग जानेमें क्या सन्देह है ? हे तात ! ब्रह्मवादी लोग जिस प्रकार स्मृतियोंमें आज्ञा कर गये हैं वैसे ही मुझपर आसक्त होकर सब कर्म कर और मेरे चरणोंमें मन लगा कर पिताके सिंहासन पर बैठकर राज्य कर ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! जो-जो पिताकी मृतक क्रिया थी वह सब प्रह्लादने की, फिर जैसे भगवान्ने कहा

१. शंका—प्रह्लादसे नृसिंहजीने कहा कि, तेरा बाप इक्कीस पीढ़ीको संग लेकर वैकुण्ठधामको गया, यह बड़े सन्देहकी बात है, क्योंकि हिरण्यकशिपु सहित गिनो तो चार पीढ़ी होती हैं ब्रह्मा १, मरीचि २, कश्यप ३, हिरण्यकशिपु ४, फिर भगवान्ने इक्कीस पीढ़ी क्यों कहा ।

उत्तर—चार पीढ़ी तो बीती हुईं और १७ पीढ़ी अगाड़ी की लेकर इस प्रकारसे इक्कीस पीढ़ी भगवान् ने कही ॥

पीछे ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक उसका अभिषेक किया ॥ २४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न जानकर सुमुख श्रीनृसिंह भगवान्‌को पवित्रवाणीसे स्तुति कर सब देवताओंको साथ ले चतुरानन ब्रह्माजी कहने लगे ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! हे अखिलाध्यक्ष ! हे भूतभावन ! हे पूर्वज ! सर्वलोकसन्तापी पापी असुरका आपने वध किया यह बड़ा मंगल हुआ ॥ २६ ॥ एक तो इसने यह वर मुझसे मांग लिया था कि आपकी (ब्रह्माकी) सृष्टिमें मैं किसीसे न मरूं, दूसरे तपयोगके प्रभावसे ऐसा उन्मत्त हो गया था कि सब वेदोंका नाश कर दिया था ॥२७॥ सबसे उत्तम काम तो यह आपने किया कि परमभागवत भगवद्भक्त महासाधु इसके छोटे सुतको मृत्युके मुखसे आपने बचाया

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ॥ दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥ २६ ॥ योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥२७॥ दिष्ट्याऽस्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ २८ ॥ एतद्वपुस्ते भगवन् ध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृसंत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९ ॥ नृसिंह उवाच ॥ मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥ वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥

और यह बहुत ही अच्छा किया कि जो इसके पुत्र प्रह्लादको आपने अपनी शरणमें रख लिया ॥ २८ ॥ हे भगवन् इस आपके नरसिंह अवतारका सावधान होकर जो ध्यान करे तो मृत्युके और सब प्रकारके त्राससे मुक्ति पायेगा ॥ २९ ॥ श्रीनृसिंहजी बोले कि हे चतुरानन ! ऐसा वर राक्षसोंको मत दिया करो क्योंकि क्रूर स्वभाववालेके वर भी सब उलटे हो जाते हैं, जैसे सर्पको दूध पिलानेसे दूना विष बढ़ता है ॥३०॥ नारदजी बोले कि हे महाराज युधिष्ठिर ! ब्रह्माजीसे यह बात कहकर और उनकी पूजा स्वीकार कर सब लोगोंके देखते-

देखते संपूर्ण भूतोंको अदृश्य ब्रह्माके पूजे हुए श्रीनरसिंह भगवान् अन्तर्धान हो गये। * ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने ब्रह्मा, शिव, प्रजापति और सब देवताओंकी वन्दना करके शिर झुका कर प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने उस समय शुक्राचार्यादिक बड़े-बड़े मुनियोंके सामने सब दैत्यदानवोंका राजा प्रह्लादको बनाया ॥ ३३ ॥ महाराज ! सब देवता प्रह्लादकी सराहना कर पर-

ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ॥ भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिम् ॥ ३३ ॥ प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३६ ॥

मोत्तम आशीर्वाद दे सब पूजा भेंट ले-लेकर ब्रह्मादिक देवता अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥३४॥ इस प्रकार यह दोनों विष्णुके पार्षद दितिके पुत्र हुए और दोनोंने भगवान्‌को हृदयमें धर फिर वैरभाव करके महाघोर युद्ध किया और विष्णु भगवान् के ही हाथसे मारे गये ॥ ३५ ॥ फिर यही दोनों सनक सनन्दनके शापसे पुनर्जन्ममें विश्रवाके घरमें रावण और कुम्भकर्ण नामक असुरयोनिमें उत्पन्न हुए और

---

* "ब्रह्माने कहा कि सबका मोक्ष कर दो तो अच्छा है, नरसिंह बोले कि जो कोई अपना मोक्ष न चाहे तो उसका मोक्ष हम कैसे कर दें, जिसको मोक्षकी इच्छा हो उसको हमारे पास लाओ। ब्रह्माजी नगर में गये और जाकर देखा कि बड़ा भारी सेठ गद्दीपर बैठा है और चारों ओर आसानी उसके हाथ जोड़े बैठे हैं। ब्रह्माजीने कहा कि सेठजी ! वैकुण्ठके चलनेका यह समय अच्छा है और इसकी बराबर और कोई दूसरा लाभ नहीं है, क्योंकि अच्छेसे अच्छे तो भोजन जीमनेको मिलेंगे और दिन रात भगवान्‌के सम्मुख रहना होगा, सब देवताओं से रीति प्रीति रहेगी। सेठ बोला कि मैं वैकुण्ठको कभी नहीं जाऊँगा क्योंकि एक तो वैकुण्ठ पराया गांव, दूसरे दिन रात सामने खड़े रहने की नौकरी, तीसरे नये लोगों से मेल करना, मुझको ऐसे वैकुण्ठमें जानेकी आवश्यकता नहीं, मुझको यहीं वैकुण्ठ हो रहा है, जो सैकड़ों मनुष्य मेरे आगे हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और अपने घर सेठ बना बैठा हूँ, बालबच्चे हाथ पांव दावते हैं और दूधमें मिश्री डाल कर पिलाते हैं इससे अधिक कोई अधिक वैकुण्ठ और है ? सेठकी यह बातें सुन ब्रह्माने सब कथा नरसिंहजीसे कही तब भगवान् नरसिंहजी बोले कि हे ब्रह्माजी जो पुरुष जहां बसता है वह वहीं सुख मानता है, यह कह भगवान् नरसिंहजी वैकुण्ठको चले ग[illegible]।"

उनको दशरथनन्दन दुष्टनिकंदन श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अपने पराक्रमसे मारा ॥ ३६ ॥ जब रामचन्द्रके तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनोंका हृदय विदीर्ण हो गया और युद्धस्थलमें शयन करने लगे तब पिछले जन्मके तुल्य श्रीरघुनाथजीके चरणारविंदका स्मरण उनके चित्तमें बना रहा और उसी समय दोनोंने देह त्याग दिया ॥ ३७ ॥ फिर वही दोनों दन्तवक्र और शिशुपाल हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे वैर करते रहे । और उसी समय दोनोंने सायुज्यमुक्ति पायी ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णसे वैर करनेवाले जो राजा थे और दिनरात भगवान्‌की निन्दा करते रहते थे, परन्तु हृदयसे ध्यान नहीं विसारते थे,उसी ध्यानके प्रभावसे सब मुक्त हो गये, जैसे भृंगी कीड़ेके ध्यानसे और दूसरा कीड़ा भी

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ॥ हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥३८॥ एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्त्वंते तदात्मानःकीटः पेशस्कृतो यथा॥३९॥यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽभिदा॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥ ४० ॥ आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४१ ॥ एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥ प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ॥ भक्तिज्ञान विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥ ४३ ॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥ परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥

भृङ्गीके समान हो जाता है ॥ ३९ ॥ भगवान्‌से अभेद दृष्टि रखनेसे भक्तोंको जो-जो परम पदवी मिलती है; ऐसे ही शिशुपालादिकोंने भगवान्‌का चिन्तन करके परम गति पायी ॥ ४० ॥ जो जो इतिहास आपने मुझसे पूछे वह सब मैंने आपके सामने कहे, दमघोसके पुत्र शिशुपालादिकने जिस प्रकार श्रीकृष्णसे वैर करके मोक्ष पायी ॥४१॥ महात्मा ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌के पुण्यरूप अवतारकी कथा कही कि जिसमें आदिदैत्य हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके मारनेका वृत्तान्त है ॥४२॥ भगवद्भक्त प्रह्लादका चरित्र व हरिकी भक्ति,ज्ञान, वैराग्यका लक्षण व विरक्तभाव और त्रिगुणपति भगवान्‌का तत्त्व ॥ ४३ ॥ सर्ग, स्थित, संहारके स्वामीके गुण और कर्मोंका अनुवर्णन,

भा० स०
॥ ४९ ॥

पर अवर स्थानोंका कालसे महान् नाश हो जाना ॥ ४४ ॥ भागवतोंका धर्म जिससे भगवान्का निरूपण हो और उनकी प्राप्ति हो इस आख्यानमें हमने सम्पूर्णतासे अध्यात्मज्ञान पूर्ण रीतिसे दर्शा दिया है ॥ ४५ ॥ जो कोई इन पूर्णरूप कथाओंका कीर्तन करे और श्रद्धासे सुने कि जो विष्णु भगवान्के वीर्यसे संवर्द्धित है,वह पुरुष सब कर्मके बन्धनोंसे छूट जायगा ॥४६॥ जो पुरुष आदिपुरुष भगवान्कीनृ सिंह लीलाको और हिरण्यकशिपुवधके चरित्रको सावधान होकर पढ़ेगा और महात्माजनोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादके पवित्र चरित्रको सुनेगा वह निःसन्देह परमपदवीको प्राप्त होगा और किसी प्रकारका भय नहीं देखेगा ॥ ४७ ॥ इस मृत्युलोकमें आजकल तुम बड़े बड़भागी हो, कि त्रिलोकीके

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥४५॥ य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥४६॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्र-यूथपवधं प्रयतः पठेत ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलि-ङ्गम् ॥ ४८ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्माऽर्ह-णीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥ ४९ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योप-शमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ५० ॥

पवित्र करनेवाले मुनिजन आपके यहां आते हैं और आपके घरमें साक्षात् नराकार रूप धर श्रीकृष्ण परब्रह्म निवास करते हैं, श्रीकृष्ण परमतत्त्व स्वरूप हैं, ईश्वर हैं, परात्पर हैं; श्रीमन्नारायण हैं, यही सर्वेश्वर हैं, अविनाशी हैं, निरंजन हैं, निराकार हैं, गोपीजनमनमोहन हैं, भक्तवत्सल हैं, सर्वोपास्य हैं, जगदीश्वर हैं, प्रभु हैं, परब्रह्म हैं, निरीह हैं, निष्कलंक हैं; अदृश्य हैं, परंतु भक्तोंको दृश्य हैं ॥ ४८ ॥ नारदजी बोले कि यह श्रीकृष्ण वही परब्रह्म हैं, जो महात्माजनोंके ढूँढ़ने योग्य कैवल्य मोक्षसुखका अनुभव करनेवाले प्यारे सुहृद् हैं, तुम्हारे मामाके पुत्र आत्मा पूजनीय आज्ञानुवर्ती गुरु श्रीकृष्ण हैं, तुम्हारे भाग्यकी बड़ाई कहांतक कोई कर सके ? ॥ ४९ ॥ जिसका रूप साक्षात् शिव

और ब्रह्मादिक देवताओंसे भी नहीं कहा जाता, वह श्रीकृष्ण तुम पर आपसे आप प्रसन्न हैं और हम तो उनको मौन भक्तिसे इंद्रियोंको जीतकर शांत्यादिक अनेक साधनोंसे प्रसन्न करते हैं और वारंवार यह कहते हैं कि हे भक्तभावन ! भगवन् ! हमपर सन्तुष्ट होओ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! पहले रुद्रदेवके यशको अनन्तमायावी मय दैत्यने नष्ट-भ्रष्टकर दिया था, तब इन्हीं श्रीकृष्णने सहायता करके महादेवजीके यशका विस्तार किया था ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर बोले कि कालमूर्ति त्रिकालज्ञ भूतेश्वर महादेवजीके यशको किस प्रकार मायावी मयदैत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था और कैसे उनके यशका श्रीकृष्णने विस्तार किया वह हमसे कहो ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले कि एक समय देवताओंने विष्णु

स एष भगवान्राजन्व्यतनोद्विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥५१॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५३ ॥ स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन् सेश्वरान् नृप ॥ स्मरन्तो नाशयाञ्चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥ ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ॥ त्राहि नस्तावकान् देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥

भगवान्की सहायतासे संग्राममें उत्तम उपाय करके सब असुरोंको जीता तब सब असुर मायावियोंका परम आचार्य मयदैत्य जो महाबल शाली और परम चतुर था उसकी शरण गये ॥ ५३ ॥ इस महापुरुषार्थी मयदैत्यने तीन पुर सोने, चांदी और लोहेके ऐसे कठिन बनाये कि उनके आने-जानेका मार्ग कोई नहीं जान सकता था और उसकी ऐसी कठिन सामग्री थी कि किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उनका उपाय कर सके ॥५४॥ हे नृपभूषण ! उन पुरोंसे असुर सेनापतिने ईश्वर सहित त्रिलोकीके विनाश करनेकी इच्छाकी और अलक्षित होकर पहले वैरका स्मरण किया॥५५॥तब सब लोकपाल और प्रजागण मिलकर शिवजीके समीप गये और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले—हे विभो !

हे देव ! हमारी रक्षा करो, त्रिपुरासुरके पुरमें रहनेवाले दैत्य हम लोगोंका नाश किये डालते हैं ॥५६॥ तब सर्वसमर्थ शिवजीने लोकपालोंपर दया करके उनको धैर्य दिया और कहा डरो मत, हम तुमको अभय किये देते हैं, यह कह धनुष पर शर चढ़ाकर तीनों पुरोंपर अस्त्र चलाये ॥ ५७ ॥ तब अग्निके समान महातीक्ष्ण बाण धूर्जटी मंत्र पढ़-पढ़कर चलाने लगे, जैसे प्रलयकालके मार्तंडमण्डलसे कालरूप महाविकराल किरणजाल निकलते हैं, ऐसेही उन बाणोंके समूहोंसे आच्छादित होकर त्रिपुरासुरके तीनोंपुर छिप गये ॥ ५८ ॥ और उन तीक्ष्ण बाणोंके लगनेसे त्रिपुरके असुर घायल हो होकर पृथ्वीपर गिरने लगे । जो दैत्य मरे वह मायावी दैत्य उस मृतक दैत्यको उसी समय अपने बनाये हुए सुधाकूपके रसमें डालता गया ॥५९॥ उस कूपका रस लगनेसे सबके सब एकसंग जी उठे। वज्रकासा अंग, महा-

अथानुगृह्य भगवान् मा भैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ५७ ॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ॥ यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥ ५८ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ॥ तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥५९॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥ विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ॥ ६२ ॥

पराक्रमी, मेघमालाके समान गर्जनेवाले, काले वर्ण, बिजलीके सदृश तेज कांतिवाले, मानो अग्निकी लपटेंसी जहां-तहां निकलने लगीं ॥ ६० ॥ इस आश्चर्यमयी कौतुकको देख शिवजी अपने मनमें बहुत उदास हुए कि आज हमारा संकल्प भंग हुआ, अब क्या उपाय किया जाय ? मनही मनमें यह कहकर भगवान्का ध्यान करने लगे । शिवजीको दुःखी देख उसी समय इन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने आकर सहायता की और एक अद्भुत उपाय किया॥६१॥ ब्रह्माजीको वत्स बनाया, आपने अपना गोरूप धारण किया, इधर-उधर घूमघाम अवसर पाकर सहजमें त्रिपुरके भीतर घुस गये और अमृतमय कूपका रस पीना आरम्भ किया॥६२॥ यद्यपि असुरोंने इनको अमृत पीता हुआ

देख भी लिया, परंतु भगवान्‌की मनमोहिनी मायासे मोहित हो ऐसे बेसुध हुए कि किसीने उनको नहीं रोका ॥ ६३ ॥ जब सुधाकूपकी सुधा सब चुक गयी, तब रसकूपके रखनेवाले दैत्य अत्यन्त शोकाकुल हो घबड़ाने लगे। उस समय धैर्यवान् सज्ञान मय दैत्यने इसको दैवगति जान उन दैत्योंसे कहा ॥६४॥ कि क्यों वृथा शोक करते हो ? हे शोकपीडितो ! दैवगतिका स्मरण करो। देवता, असुर, नर, किन्नर कोई क्यों न हो; अपने आत्माको और दूसरेको दैवकी गतिसे कोई नहीं बचा सकता, जो भाग्यमें लिखा है उसका कोई मिटानेवाला नहीं। इसके बाद विष्णु भगवान्‌ने अपनी शक्तियोंसे शिवजीकी सांग्रामिक सामग्री प्रस्तुत की ॥ ६५ ॥ उस समय विष्णु भगवान्‌ने अपनी धर्म, ज्ञान, विरक्त, ऋद्धि, सिद्धि, तप, विद्या और क्रियादिक शक्तियोंसे शिवजीने संग्रामके लिये रथ, सूत, ध्वज, अश्व, धनुष,

तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥ स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥ ६३ ॥ देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥ आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥६४॥ अथासौ शक्तिभिःस्वाभिः शंभोः प्राधानिकं व्यधात् ॥ धर्मज्ञान विरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ ६५ ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ ६६ ॥ शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ ६७ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अवाकिरञ्जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥ ६८ ॥ एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥

कवच और शर आदि जो-जो संग्रामकी सामग्री चाहिये वह सब मँगायी। फिर महादेवजी कटिबद्ध हुए और धनुष-बाण हाथमें लेकर रथपर बैठे ॥६६॥ हे नरेश! फिर तो शिवजीने धनुषपर शरसंधान कर उस बाणसे अभिजित मुहूर्तमें उन दुर्भेद्य पुरोंको भस्म कर दिया ॥ ६७ ॥ जब तीनों पुर भस्म हो गये तब सुरपुरमें डुंदुभी बाजे बजने लगे, सैकड़ों विमान आकाशमें आ-आकर छा गये। देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश जय-जय शब्द पुकार-पुकार पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्व, किन्नर, प्रसन्न हो होकर हरका यश गाने लगे और अप्सरायें अनेक-अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं ॥ ६८ ॥ हे महाराज ! त्रिपुरारी इस प्रकार तीनों पुर जलाकर ब्रह्मादिकोंकी स्तुति स्वीकार कर

अपने आश्रमको चले गये॥६९॥भगवान् अपनी माया द्वारा भाँति-भाँतिकी लीला करते हैं,कभी मनुष्य अवतार धरते हैं,कभी नरसिंह-रूप धरकर दुष्टोंको मारते हैं, कभी मनुज देह धरकर भूमिका भार उतारते हैं, इन विश्वरूप विश्वात्मा भगवान्के ऐसे-ऐसे चरित्र संसारके पवित्र करनेवाले ऋषिवर्योंने गाये हैं, श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन् ! दोहा–जो जो बूझो धर्म नृप, सो सो दियो सुनाय । कहा सुननकी लालसा, सो मोहि देहु बताय ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा–ग्यारहमें वर्णन करौं, चार वर्णके धर्म । फिर कछु नारिनके धरम, वरणों सहित सुकर्म ॥ श्रीशुकदेवजी

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥७०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचार-युतं यत्पुमान् विन्दते परम् ॥ २ ॥ भवान् प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमा-धिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥ ४ ॥

बोले कि हे कुरुकुलभूषण! साधुसभामें जिसने प्रशंसा पायी ऐसा चरित्र सुनकर महात्माओंमें अग्रणी भगवत्में जिनकी आत्मा वह युधिष्ठिर प्रह्लादचरित्र सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो फिर नारदजीसे पूछने लगे॥१॥युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् ! मनुष्योंके सनातनसे जो धर्म चले आये हैं, उन धर्मोंको सुननेकी मेरी अभिलाषा है, वर्ण व आश्रमके आचारसे यह पुरुष परमेश्वरको प्राप्त होता है॥२॥ हे ब्रह्मन् ! साक्षात् प्रजाप-तिके सब पुत्रोंमें आप तप, योग, समाधि करके बड़े प्यारे पुत्र हो ॥३॥ जो ब्राह्मण आपके समान नारायणपरायण हैं और परमगुप्त धर्मको

जानते हैं, वह दयालु साधु शांतरूप तुम्हारे सदृश हैं वैसे और दूसरे नहीं हैं *॥४॥ श्रीनारदजी बोले कि सब लोगोंके धर्मके लिये भगवान् श्रीमन्नारायण को नमस्कार करके जो श्रीमन्नारायणके मुखसे मैंने सुना है वह सनातन धर्म आपके आगे कहता हूँ ॥५॥ जो आप आत्माके अंशसे दक्षकी पुत्री मूर्तिसे जन्म लेकर धर्मसे सब लोकोंके कल्याणके लिये तप करनेको बदरिकाश्रममें विराज रहे हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! धर्मके मूल भगवान् हैं, सर्वदेवमय हरि हैं, वेदरूप भगवान् ही सब धर्मोंमें प्रमाण हैं, जैसे धर्मके विषयमें वेदोंका प्रमाण है

नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥ योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ॥ लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥ धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयोहरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥

ऐसे ही वेदविद् महात्माओंकी स्मृतियां प्रमाणित हैं, जिन हरिके स्मरण करनेसे आत्मा शुद्ध और प्रसन्न हो वही धर्म प्रमाणित है ॥ ७ ॥ अब सामान्य धर्म कहते हैं--सत्य बोलना १, दया करना २, तप करना ३, शौच करना (एकादशीव्रतादि) ४, सहनशीलता ५, योग्यायोग्य (यह काम करना यह न करना) ६, ज्ञान सीखना ७, मनको जीतना ८, बाह्य इंद्रियोंको जीतना ९, हिंसा न करना १०,

---

* शंका—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें सब ब्राह्मण भगवान्के गुणोंको जानते थे, जो कोई ब्राह्मण ज्ञानकी बातको थोड़ा समझता था वह भी धर्म-कर्ममें सावधान और भगवान्के चरणकमलमें प्रीति रखता था। फिर नारदजीसे युधिष्ठिरने क्यों कहा था, कि भगवान्के चरित्रोंको आप सरीखे ब्राह्मण जानते हैं, दूसरा नहीं जान सकता, यह बड़ी शंका है कि नारदजी तो ज्ञानी ठहरे और सब अज्ञानी हैं ?

उत्तर--युधिष्ठिरजीने किसी-किसी ब्राह्मणको तपस्याहीन उन्मत्त जानकर किन्हीं-किन्हीं राजाओंको उन्मत्त जानकर नारदजीसे ऐसा वचन कहा--

याज्ञवल्क्यने लिखा है कि --"श्रुति : स्मृति सदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥" और मनु स्मृतिमें यह लिखा है-"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृति शीलें च तद्विदा आचाराश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च" इति ॥

ब्रह्मचर्य रखना ११, दान देना १२, यथोचित वेदपाठ करना १३, सरलता--सबसे सीधा रहना १४, ॥८॥ संतोष (जो दैवसे मिले उसमें संतोष) करना १५, बड़ोंकी अर्थात् महात्मापुरुषोंकी सेवा करना १६, ग्राम्यधर्मकी चेष्टा त्यागे १७, धीरे-धीरे निष्फल क्रियाओंको न करे १८, वृथा बकवाद न करे १९, परमेश्वरका चिन्तन करे २० ॥९॥ हे पाण्डव ! यथायोग्य अन्नादिक प्राणीमात्रको देता रहे २१, उन प्राणियोंमें परमात्मा व्याप्त है, यह विचार कर, अन्न, वस्त्र, घर, हाथी, घोड़ा, शय्या, गौ, पात्र, पुस्तक, औषध, अभय, पृथ्वी इत्यादि दान करता रहे ॥ १० ॥ भगवान्‌की नवधा भक्ति करे, जैसे श्रवण (भगवान्‌की कथा सुने), कीर्तन (नारायणका यश गावे), स्मरण (हरिकी लीलाओंका ध्यान करे), सेवा (महात्मा पुरुषोंकी सेवा करे), अर्चा (देवताओंका पूजन करे), नमस्कार

संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ॥ नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ॥ तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥ सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥ नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ॥ त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्स-र्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ॥ इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ॥ जन्कर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥ १३ ॥ विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ॥ राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः ॥ १४ ॥

(सबको नारायणमय समझकर दण्डवत् करे), दास्य (सबसे दासभाव रखे), सख्यता (परमात्माको अपना सखा समझे) और स्वात्मसमर्पण (अपना तन, मन, धन, परमेश्वरको अर्पण करे) ॥११॥ हे राजन् ! सब मनुष्यमात्रका यह तीस लक्षणवाला परमधर्म कह-लाता है, जिसके करनेसे भगवान् सर्वात्मा सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, वेदमंत्रोंसे जिसका संस्कार किया जाय उसको द्विज कहते हैं और यह संस्कार वेदकी रीतिसे जिसके होने चाहिये उसीके होते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जन्म, एवं संस्कारसे द्विज कह-लाते हैं । इज्या, अध्ययन, दान यह तीन कर्म द्विजन्माके लिये करनेकी आज्ञा है और इन्हींको आश्रमसम्बन्धी क्रिया करनेकी आज्ञा है, उसका आश्रम जिसमें हो वह उनकी क्रियाओंको करे, ॥ १३ ॥ विद्या पढ़नी, विद्या पढ़ानी, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान

१ श्रुतिश्च गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत्, त्रिष्टुभा राजान्यम्, जगत्या वैश्यम्, न केनचिच्छूद्रम्''। एवं स्मृतिरपि —''विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा । नकेनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ''

देना–लेना ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं,इनमें तीन कर्म पिछले ब्राह्मणोंकी आजीविकाके लिये हैं। विद्या न पढ़ावे, दान न ले, यज्ञ न कराये, कोई प्रतिग्रह न ले, प्रजाकी रक्षा करे, ब्राह्मणसे दण्ड न ले, यह कर्म क्षत्रियके हैं ॥ १४ ॥ खेती करे और व्यापारादिसे अपनी आजीविका करे और सदा ब्राह्मणकुलकी सेवा करे, यह कर्म वैश्यके हैं, ब्राह्मणोंकी सेवा करे, अपने स्वामीसे कुछ धन लेकर निर्वाह करे, यह कर्म शूद्रके हैं ॥ १५ ॥ खेतीसे, वृत्तिसे, विना माँगे प्राप्त हो उस धनसे, प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लाना और शिलोंछन अर्थात् खेत काटनेके समय जो अन्न खेतमें गिर पड़े उसको बीनकर लाना, बाजारमें बिखरा पड़ा हुआ अन्न उठा लाना, यह चार वृत्ति ब्राह्मण आपत्तिकालमें करे, और इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥१६॥ नीच वृत्ति क्षत्रिय न करे, जब कोई महा विपत्ति ही आ जाय तो भले ही क्षत्रिय

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥ वार्त्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥ १६ ॥ जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १८ ॥ ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ १९ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः शान्तिरार्जवम् ॥ ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥ २१ ॥

नीच वृत्तिको करे ॥ १७ ॥ ऋतसे, अमृतसे, मृतसे, प्रमृतसे वा सत्यानृतसे अपना निर्वाह करना चाहिये, परन्तु श्वानवृत्तिसे आजीविका करनी अच्छी नहीं ॥ १८ ॥ खेतमें अथवा हाटमें स्वामी जो धन अपनी इच्छासे छोड़ दे इसको बीन लाना इसका नाम ऋत है, विना मांगे मिले उस धनका नाम अमृत है; नित्यप्रति भिक्षा मांगकर लाना इसका नाम मृत है, किसानी आदि वृत्ति करे उसका नाम प्रमृत है ॥१९॥ व्यापारादिकका नाम सत्यानृत है,आपसे नीच वृत्तिवालेकी सेवा करनी यह श्वानवृत्ति है ब्राह्मण और क्षत्रियको इस निन्दनीय श्वानवृत्तिका सदा त्याग करना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण तो सर्व-वेदमय हैं और क्षत्रिय सर्व देवमय हैं ॥ २० ॥ शम, दम, तप, शौच,

संतोष, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, दया, भगवद्भक्ति और सत्य यह ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ शौर्य, वीर्य, धीरता, तेज, दान, मनोजय, क्षमा, विप्रभक्ति, प्रसन्नता और प्रजाकी रक्षा करनी ये क्षत्रियके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवभक्ति, गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, धर्मवृद्धि, धन-वृद्धि, सुखवृद्धि, आस्तिक रहना, नित्य उद्यम करना और निपुणता यह वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ अपने आपसे उत्तम वर्णको दण्डवत् करना, पवित्र रहना, निष्कपटभावसे अपने स्वामीकी सेवा करना, विना मंत्र पढ़े वैश्यदेवादि पंचयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गोब्राह्मणकी टहल करनी ये शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥ अपने पतिकी सेवा करना, पतिके अनुकूल रहना, देवर- जेठकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना, ये धर्म पतिव्रता स्त्रियोंके हैं ॥ २५ ॥ घरके सब पदार्थोंको शुद्ध रखना अर्थात् लीपना, पोतना, बुहारी देना,

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ॥ ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥२२॥ देवगुर्वच्युते भक्ति-स्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण्यं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ॥ अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता ॥ तद्बन्धुष्वनु-वृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ॥ स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरि-च्छदा ॥ २६ ॥ कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ॥ ॥ २७ ॥ संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजत् ॥ २८ ॥

आंगनमें चौक पूरना,अपना भी सुन्दर शृंगार बनाये रखना,सब घरकी सामग्री पवित्र रखना, बालकोंको नित्यप्रति स्नान कराकर अच्छे-अच्छे शृङ्गार कर वस्त्र आभूषण पहिनाना, अच्छी रीतिसे उनका लालन-पालन करना, सास-श्वसुरकी सेवा करनी और उनकी आज्ञा माननी चाहिये ॥ २६ ॥ साध्वी स्त्री छोटे-मोटे ऊँचे-नीचे घरके सब काम करे, नम्र रहे, इन्द्रियोंका पराजय करती रहे प्रिय वचनोंसे समय-समयपर प्रेमपूर्वक अपने स्वामीकी सेवा करती रहे ॥२७॥ जो कुछ भाग्यसे प्राप्त हो जाय उसीपर सन्तोष रखे, भोगोंमें लोलुपता न करे, आलस्य न रखे,सत्य बोले, मदान्ध न रहे,पवित्र रहे,मधुर वचन बोले, अपतित पतिकी सेवा करे और उससे स्नेह रक्खे ॥२८॥

जो स्त्री पतिको हरिभाव करके लक्ष्मीके समान अपने पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, वह स्त्री विष्णुरूप अपने पतिके सङ्ग लक्ष्मीके सदृश विष्णुलोकमें आनन्दसहित अपने पतिके सम्मुख बैठी पतिका मुख ताकती रहती है, कि न जाने किस समय क्या आज्ञा करें ॥ २९ ॥ चौर्य, हिंसा आदिरहित रजक आदि अंत्यज (नीच) जातियें अपने अपने कुलकी आजीविकासे अपना निर्वाह करे॥हे राजन्! बहुधा बहुत धर्म ऐसे हैं, कि युग-युगमें मनुष्योंके स्वभावके समान होते हैं, यह वेदपुरुष भगवान्ने कहा है, पराये धर्मके अनुसार अपना धर्म नीच भी हो तो भी वही धर्म अपने लिये सुखदायक है, जो जो धर्म धर्मशास्त्रके वेत्ताओंने कहा है, वही धर्म इस लोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वभावसे की हुई वृत्तिसे जो वर्तमान है वह स्वकर्मकर्ता स्वभावजन्य कर्मको त्याग धीरे-धीरे निर्गुणताको प्राप्त हो जाता है ॥३२॥ वारंवार जिस खेतमें बीज बोया जाता है, वह खेत आपसे आप निर्वीर्य हो

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः संकरजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ॥ अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेवसायिनाम् ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥ वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥ ३२ ॥ उप्यमानं बहु क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥३३॥ एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नग्निवत्कामबिन्दुभिः ॥३४॥

जाता है, फिर उस खेतमें धान्य उत्पन्न नहीं हो सकता, बरन् जो बीज बोया जाता है वह भी सब नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥ हे राजन् जब कामनाओंसे मन परिपूर्ण होकर तृप्त हो जाता है, तब उसको किसी प्रकारके भोग भोगनेकी इच्छा नहीं रहती, फिर आपसे आप वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, जिस प्राणीकी कामना अधिक बढ़ी हुई होती है, फिर उससे एकाएकी वासनाओंका त्याग नहीं हो सकता, इससे उस पुरुषको चाहिये कि वेदोक्त रीतिसे विषयोंको भोगे, परन्तु नित्यनैमित्तिक कर्मोंको दिन-दिन बढ़ाता रहे । देखो ! कर्म करते-करते विषयोंमें दोष देखनेसे राजा ययाति और सौभरि ऋषिको धीरे-धीरे आपसे आप वैराग्य हो गया । जैसे अग्निमें थोड़ा घृत डालनेसे शान्त नहीं होता,बरन् उसकी लपटें और अधिक निकलती हैं,ऐसी ही इस चित्तकी वृत्ति है, थोड़ा-थोड़ा विषयोंके भोगनेसे शांत

नहीं होती, अधिक विषयोंके भोगनेसे आपसे आप शान्त हो जाती है ॥ ३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णका जो लक्षण कहा है, वह लक्षण उनके सिवाय और दूसरे वर्णवाले पुरुषमें दिखाई दे तो उस पुरुषको भी उसी वर्णके लक्षणवाला जानना चाहिये न कि उस जातिका * ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा—वर्ण-धर्म सब कह चुके, अब कछु आश्रमधर्म। कहत अहों सुनि लीजिये, धर्म कर्मको मर्म॥नारदजी बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके कुलमें जितेन्द्रिय

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥१॥ सायंप्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥ उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः ॥२॥ छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयन्त्रितः ॥ उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥ ३ ॥ मेखलाऽजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून् ॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥

बनकर वास करे और गुरुका हित आचरण करता रहे, दासकी नाईं नीच बना रहे, गुरुमें अत्यन्त दृढ़तासे प्रेम करे ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और सब देवताओंकी उपासना करे, सांझ सबेरे वाणीको जीत सावधानीके साथ गायत्री मन्त्रका जप करे ॥ २ ॥ जब गुरु पढ़नेको बुलाये तब वेद पढ़े और पाठके प्रारम्भमें और अन्तमें जब उठे तब गुरुके चरणारविन्दको शिरसे वन्दन करे ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञानुसार मेखला, मृगछाला, जटा, वस्त्र, दंड और कमंडलु धारण करे, कुशा हाथमें ले यज्ञोपवीत धारण

* इस बातपर एक दृष्टांत है—एक कहार किसी तालके किनारे मछली पकड़ रहा था, मार्गकी ओर देखा तो कोई राजा चतुरंगिनी सेना लिये धूमधामसे चला आता है। आगे-आगे बन्दी लोग यशगान कर रहे थे; कड़खेत राजाकी वीरता बखान रहे थे, कहार ने अपने मनमें विचार किया कि जो मैं मछली मारता रहा तो अवश्य राजा मुझको दंड देगा और जो प्राणोंका भी गाहक हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं और सेना निकट आ गयी, अब यहांसे भाग भी नहीं सकते। तब यह सोचा कि इस समय साधुका वेश बनानेसे पीछा छूटता है। झटपट तालसे मिट्टी निकाल उसी का माथे पर तिलक लगा और एक चितामें से राख लेकर शरीर में मल ली और आसन मार तालके किनारे पर मौन साध कर बैठ गया। इतनेमें कटक भी निकट आ पहुँचा। राजाने साधु समझकर उसको दण्डवत प्रणाम किया और बहुत सा धन दिया। सिपाहियोंसे भी जो कुछ बन सका वह चढ़ाया। थोड़ी देरमें रुपयोंका एक ढेर लग गया, उस समय जाति वर्णको किसीने नहीं पूछा। लोग सत्य कहते—"जाति पाँति बूझत नहिं कोई। हरि को भजै सो हरिका होई ।।"

करे ॥ ४ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा मांगकर लाये, वह सब पदार्थ गुरुकी भेंट करे और जो गुरु आज्ञा दे तो उस भिक्षाके अन्नको भोजन करे और जो गुरु आज्ञा न करे तो उपवास करे ॥ ५ ॥ शील स्वभाव रखे, थोड़ा भोजन करे, सावधान रहे, श्रद्धा रखे, जितेन्द्रिय रहे, स्त्रियोंमें और स्त्रीसंग करनेवाले पुरुषोंसे जितना प्रयोजन हो उतना ही रखे अधिक व्यवहार न रखे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मुखसे कथा न सुने, ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे, दृढ़तापूर्वक व्रत धारे या करे, क्योंकि यह इंद्रियां बड़ी बलात्कार करनेवाली हैं, बड़े-बड़े यतियोंको जीत

सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्कचित् ॥५॥ सुशीलो मितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥६॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः॥इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ७ ॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् ॥ गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदानाम घृतकुम्भसमः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत ॥९॥ कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥

लेती हैं ॥ ७ ॥ जो गुरुकी स्त्री तरुण हो तो उससे बाल बहुत मलमल कर न धुलाये, उबटन अंगमें न लगवाये, बहुत मलमल कर स्नान न करवाये, नेत्रोंमें अञ्जनादिक न लगवाये * ॥८॥ निश्चय है कि स्त्री अग्निरूप है और पुरुष घृतके कुम्भके समान है,इससे एकांतमें अपनी पुत्रीके साथ भी नहीं बैठे, केवल प्रयोजनमात्रकी बात करे ॥ ९ ॥ अपने आत्माका जबतक आभास कल्पना न करे तबतक भगवान् इसका द्वैतभाव और मिथ्याभाव दूर नहीं कर सकते और जबतक द्वैतभाव दूर नहीं होता तबतक विषयवासनाकी ओर मन चलायमान हो

* शंका—यह बात हम लोगोंने शास्त्रोंमें भी नहीं सुनी और लोगोंमें भी नहीं देखी कि गुरुकी स्त्री शिष्यके शरीरमें तेल, फुलेल मलकर स्नान कराये और अपने हाथसे उसके नेत्रोंमें अंजन लगाकर उसका शृंगार करे, फिर नारदजीने क्यों कहा कि शिष्यकी युवावस्था हो जाय तो अपनी आंखमें अंजन आदि कर्म गुरुकी स्त्रीसे नहीं कराना ?

उत्तर—जब नारद और युधिष्ठिरजीका संवाद हुआ उस समयसे थोड़े ही दिन पीछे भूमिपर कलियुगका प्रवेश होनेवाला था, नारदजीने इस बात को जानकर यह बात राजा युधिष्ठिरसे कही थी, कि अब जो आगे को कलियुगमें मनुष्य जन्मेंगे उन मनुष्योंको सिखाने के लिये, क्योंकि कलियुगमें ज्ञान रहना बहुत कठिन है ।

जाय तो सन्देह नहीं; इसलिए महात्मा पुरुषोंका वचन है कि जहाँतक हो सके स्त्रियोंसे अलग ही रहना अच्छा है * ॥१०॥ ये धर्म ब्रह्म-
चारियोंके कहे, परन्तु गृहस्थोंको भी मानना चाहिये, गृहस्थ ऋतुकालमें स्त्रीसङ्ग करे परन्तु गुरुकी वृत्ति विकल्प करके करे ॥ ११ ॥ आंखोंमें
अञ्जन, शिर धोना, तेल लगाना, मर्दन करना, स्त्रीको वा स्त्रीके चित्रको भूलकर न देखना, मद्य, मांस, हार, चन्दन, लेप अलंकार, ब्रह्मचारी

एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥ अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यव-
लेखामिषं मधु ॥ स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥ ॥ १२ ॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ॥
त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं वनं वा प्रविशेत्प्र-
व्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥

वानप्रस्थ और संन्यासी लोगोंको नहीं चाहिये ॥ १२ ॥ द्विज गुरुके यहां रहकर इस प्रकार वेदत्रयी सांगोपनिषद अपनी शक्तिके अनुसार
जितना प्रयोजन हो उतना अभ्यास बढ़ाये ॥ १३ ॥ जो अधिक समर्थ हो तो गुरुको गुरुदक्षिणा देकर फिर गुरुसे आज्ञा लेकर

* इस बात पर एक दृष्टांत है—एक साधु बड़े जितेन्द्रिय थे। आठ पहर भगवान्के भजनमें लवलीन रहते थे। किसीकी ओरको दृष्टि उठाकर देखते न थे, कण्ठाग्र जिनको भगवद्गीताके अठारह अध्यायका पाठ, आठ दिन तक भोजन न करे, जल ही पी-पी कर रह जाया करते थे। एक दिन उसके पास एक पाखण्डी-पण्डित आये और गीताका गुटका उनके हाथमें जिसमें सुनहरी अक्षर चारों ओर रंगीन जदंवेल खिची हुई। अध्याय-अध्याय पर कृष्ण भगवान् अर्जुनादिककी मनोहर मूर्ति बनी हुई, वह गुटका साधुको भेंट किया। साधु उस पुस्तकको देखकर मोहित हो गये और अपने मन ही मनमें कहने लगे कि यह भली सुन्दर पुस्तक मिली। बड़े यत्नसे एक रेशमी वस्त्रमें बांधकर रखी। दैवयोगसे रातको मूसेने उसके तीन-चार पत्रे काट डाले, तबतो साधु पुस्तकको देखकर बड़े दुःखी हुए और क्रोध कर बोले कि उस दुष्ट मूसेको मैं आज ही मार डालूंगा। यह कह वह उसी समय एक गाँवमें गये और वहाँसे एक बिल्ली लाये तब तो मूसेका निकलना बन्द हो गया। परन्तु बिल्ली भूखकी मारी म्याव-म्याव करने लगी साधुने कहा यह बड़ी भारी हत्या लगी, पाठके रहे न पूजनके। उसके लिए गाँवमें नित्य जाते और दूध लाते, कभी मिलता कभी न मिलता, हारकर साधुने एक गाय पाली तब तो दूधकी मानो एक नदी घरमें बहने लगी। आप पियें और कुछ बिल्लीको भी पिलायें जो रहे वह औरोंको पिला दें। अब गाय की सानी-पानी करनी भारी पड़ गयी। वहाँ गाँवमे एक गोपकी कन्या बाल्यावस्थाकी रांड़ रहा करती थी। बाबाजीने उससे कहा हमारी गायकी भी सानी-पानी तू कर जाया कर और गोबर पाथ जाया कर, दूध तुझको दे दिया करेंगे। जब वह नवयौवना चन्द्रमुखी कोकिलकण्ठी, गजगामिनी बाबाजीके पास आने लगी तब तो बाबाजी कामान्ध हो गये। उधर वह बाला मदान्ध थी ही घर जाना भी बन्द कर दिया। निदान उस स्त्रीको आधान रहा, कुछ दिन पीछे उसके एक सन्तान पैदा हुई तब तो बाबाजीको ज्ञान हुआ और कहने लगे-देखो स्त्री का संग भूलकर न करना, थोड़े दिनोंमे एक साधुके दो साधु हो गये।

इच्छानुसार घरमें रहे अथवा वनमें वा संन्यास लेकर वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुके ही स्थानपर वास करे ॥ १४ ॥ अग्नि, गुरु, आत्मा सब जीवमात्रमें विष्णुभगवान्का चिन्तन करे, अर्थात् अग्नि आदि सब भगवान्रूप होनेसे फिर किसी वस्तुमें दोष नहीं आता ॥ १५॥ ब्रह्मचारी,वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थ इस प्रकार विचरनेसे विज्ञानपनमें होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥१६॥ अब मुनियोंके संमत वानप्रस्थके धर्म कहते हैं, इस संसारमें जिस वानप्रस्थ धर्ममें स्थित होनेसे ऋषि लोगोंकी गतिके विना प्रयास प्राप्त हो जाते हैं ॥१७॥ जोतने बोनेसे जो अन्न उत्पन्न हो उस अन्नको न खाना और जो विना समयका फल अथवा अन्न हो उसको खाना भी वर्जित है, जो फल

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत ॥ १५ ॥ एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥ वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान्॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः ॥ अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥१८॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालनोदितान् ॥ लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥ १९ ॥ अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकन्दराम् ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥ २० ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ॥ कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥२१॥ चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥ २२ ॥

वा अन्न आपसे उत्पन्न हो अथवा सूर्यकी किरणोंके तेजसे पके उसको खाये ॥ १८ ॥ वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदि पदार्थोंसे शास्त्रने जिस समयमें यज्ञादिक करनेको कहा है उस समयमें चरु व पुरोडास कालप्रेरित त्याग करे और नवीन-नवीन अन्नादि प्राप्त हों तो पुरानी वस्तुका परित्याग कर दे ॥ १९ ॥ अग्निकी रक्षाके लिये पर्णशाला में रहे, व पर्वतकी कन्दरामें वास करे। हिम, वायु, अग्नि, वर्षा और ग्रीष्म यह सब आप सहे ॥२०॥ बाल,रोम, नख,दाढ़ी, मूछ, जटा,कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, छालके वस्त्र, अग्नि और अग्निहोत्रकी सामग्री यह सब रखे ॥ २१ ॥ इस प्रकार वनमें बारह वा आठ वार चार वा दो अथवा एक वर्षतक रहे, जिससे तपके कष्टसे बुद्धिका विनाश

न हो जाय इतना विचार कर वह पक्ष धारण करे जिससे ज्ञान शीघ्र हो जाय ॥२२॥ जब शरीर वृद्ध हो जाय और व्याधिके आ जानेसे क्रिया कर्मका सामर्थ्य न रहे और वेदविद्यामें भी असमर्थ हो जाय तब अनशनादि वृत्ति धारण करे॥२३॥ फिर अहंकार ममताको त्यागकर आत्मामें अग्निको धारण कर उनके कारणोंमें रखे जो-जो उनके योग्य स्थान हैं, वहां-वहां अग्निको लगाये ॥ २४ ॥ उत्पत्तिके अनुसार शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, गर्मीको तेजमें, रुधिर, श्लेष्म, थूक, पीपादिको जलमें अस्थि आदि जो विकार पृथ्वीसे उत्पन्न हुए हैं उनको पृथ्वीमें लीन करे ॥ २५ ॥ वाणी और उनके कर्मकारक वक्तृता सहितको अग्निमें लीन करे, कर और शिल्पता सहित

यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा ॥ आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥ २३ ॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ॥ कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥२४॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥२५॥ वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ॥ पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥ २६ ॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथा स्थानं विनिर्दिशेत् ॥ दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥ २७॥ रूपाणि चक्षुषा राजञ्ज्योतींष्यभिनिवेशयेत् ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत ॥ २८ ॥ मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परेः ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममता क्रिया ॥ सत्त्वे चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥ ३० ॥

उनके कर्मरूपको इन्द्रमें, गति सहित पद और उनके कर्मरूपको विष्णुमें, रति उपस्थ और उनके कर्मरूपको प्रजापतिमें लीन करे ॥ २६ ॥ गुह्यद्वार और उसके कर्मरूप मलोत्सर्गको मृत्युमें, नाद सहित श्रोतृ इंद्रिय दिशाओंमें, स्पर्शसहित त्वचाको वायुमें लीन करे ॥ २७ ॥ चक्षुसहित रूपको ज्योतिमें, वरुणसहित जिह्वाको जलमें और नाक अश्विनीकुमारों सहित पृथ्वीमें लीन करे ॥ २८ ॥ मनोरथसहित मनको चन्द्रमामें, ज्ञानसे बुद्धिको ब्रह्मामें, अहंकार और उसके कर्मोंको जिससे अहंकार ममतापूर्वक क्रिया होती है उनको रुद्रमें, अध्यात्मज्ञान सहित क्षेत्रज्ञ गुणोंसे वैकारिक देवताओंको परब्रह्ममें लीन करे ॥ २९ ॥ पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको

वायुमें * वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको मायामें, मायाको परब्रह्ममें लीन करे ॥ ३० ॥ इस प्रकार अक्षरता करके आत्माका जो चिन्मात्र शेष रहे उसको अद्वितीय ब्रह्म समझकर विराम करे, जैसे सब काष्ठको जलाकर अग्नि अपने स्वरूपमें लय हो जाती है, वैसे ही अग्निके समान अपने आप विरामको प्राप्त होना चाहिये ॥३१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां आश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥दोहा—वानप्रस्थ असमर्थकी,देहत्यागविधि भाष। अब समरथकी विधि कहौं,सुनहु सहित अभिलाष॥ नारदजी बोले कि जो पुरुष ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त हो, उसको चाहिये कि संन्यास धारण करके शरीरमात्र शेष रखे और सब वस्तुका त्याग कर दे और किसी प्रकारकी अपेक्षा न रखे, पृथ्वीपर विचरता रहे और नगरमें वा वस्तीमें एक रात्रिसे अधिक वास न

इत्यक्षरतयाऽऽत्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत्किञ्चिदनापदि ॥ २ ॥ एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥३॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥ ४ ॥ सुप्तप्रबोधयोः संधावात्मनो गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥

करे ॥१॥ जो संन्यासीको वस्त्र धारण करनेकी इच्छा हो तो उतना वस्त्र धारण करे कि जिससे कोपीन देखनेमें न आये और जटी, कमंडलु, दंडादिक चिह्नको आपदामें भी न त्यागे, इनके सिवाय और कुछ वस्तु रखनी नहीं चाहिये ॥ २ ॥ जबभिक्षाकी इच्छा हो तो अकेला भिक्षा मांगे, अपने आत्मामें आप रमे, किसीका आश्रय न रखे, सब जीवमात्रसे सुहृद्भाव रखे, शान्त स्वभाव रहे, श्रीनारायणमें परायण रहे ॥ ३ ॥ पर पुरुष परमेश्वरमें इस विश्वको और अपने आत्माको देखे और कार्य कारणमय सब विश्व परब्रह्ममें विराजमान है, इस प्रकार विचार करता रहे ॥ ४ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें तमोगुणका कारण आत्मस्वरूप ढँका रहता है, जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें विक्षेप होनेके कारण

* अग्नि साक्षात् ईश्वरका स्वरूप है, ऐसा ऋग्वेदमें लिखा है-"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम्" ॥ (अंगानि न यातीत्यग्निः) अर्थात् अग्नि ही सब अंगोंको बनाती है और सब अग्निमय है, अतः अग्निके उपासक सब सुखोंको भोगते हैं-"अग्न्युपासकः सर्वं सुखमेति" अग्निमें हवन करनेसे सब देवताओंको भाग पहुँचता है ।

उसका प्रकाश नहीं होता,परंतु बात यह है कि जब अवस्थाओंकी संधि होती है तब तमोगुणका विक्षेप नहीं होता । ऐसे समयमें आत्मरूपका लक्षण जानकर आत्माका अवलोकन करना चाहिये॥ ५॥ इस शरीरका नाश जो कि अवश्य होनेवाला है उसके मरणकी चाहना न करे ऐसे ही जो सदा जीवित न रहेगा उसके जीनेकी आशा न करे,जो सब प्राणीमात्रका नाशक पालक काल है, उसकी प्रतीक्षा करता रहे॥ ६ ॥ यह संन्यासियोंका धर्म है । असत् शास्त्र अर्थात् अनात्मप्रतिपादक नाटकादि शास्त्रसे आसक्त न हो, किसी आजीविकाके ग्रन्थका पक्षपात न करे, जैसे ज्योतिष, वैद्यक, इन्द्रजालादिक ग्रंथ हैं, तर्क और अयोग्य वाद विवादका परित्याग करे, किसी पक्षका आश्रय न ले ॥ ७ ॥ बहुतसे चेले न करे, बहुतसे ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, सभा जोड़कर किसी ग्रंथकी व्याख्या न करे, अपने रहनेके लिये किसी स्थानके बनानेका आरंभ न करे ॥ ८ ॥ जबतक चित्तमें ज्ञान उत्पन्न न हो तबतक संन्यासीको चाहिये कि संन्यस्तके चिह्न

नाभिनन्देद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् ॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥६॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥ वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंच न संश्रयेत्॥७॥न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत्कचित् ॥ ८ ॥ न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥ अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥ कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥ १० ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥

धारण करे और आत्माकी शुद्धिके लिये संयम-नियम करके ज्ञान प्राप्त करे, परन्तु ज्ञान होनेके उपरान्त उन नियमोंके करनेका कुछ प्रयोजन नहीं और संयम भी आपसे आप प्राप्त हो जाते हैं, इस लिये उस समयके शांतचित्ती संन्यासधर्मके चिह्न धारण करे, चाहे न करे, चिह्नोंके रखनेसे किसी प्रकारका धर्म नहीं होता और न रखनेमें कुछ हानि है, उनको चिह्नोंका रखना और न रखना दोनों समान हैं ॥९॥ ऊपरके चिह्न रखनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता, परंतु भीतरसे अन्तःकरणको अवश्य शुद्ध रखना चाहिये । संन्यासीको चाहिये कि विद्वान् होनेपर भी उन्मत्त और बालकोंकीसी वृत्ति रखे और कवि होनेपर भी मूकके समान बना रहे, अपनी बुद्धिको सावधान रखे और समदृष्टिसे सबको देखे ॥ १० ॥ प्रह्लाद और अजगरवृत्तिवाले एक मुनि (दत्तात्रेय) का परमहंसधर्म सम्बन्धी एक संवादरूप

प्राचीन इतिहास कहते हैं, सुनो ॥११ जब बहुत दिन राज्य करते-करते व्यतीत हो गये तब प्रह्लादजी एक दिन लोकोंकी रीति-भांति देखनेके लिये कुछ एक अमात्यगणोंको साथ लेकर देशांतरोंका पर्यटन करनेके लिये निकले ॥ १२ ॥ घूमते-घामते दक्षिण दिशामें कावेरी नदीके निकट पहुँचे । देखा तो पृथ्वीपर सोये हुए और शरीरके सब अवयव धूरिसे अट रहे थे और उसका निर्मल तेज छिपा हुआ था, अतः यह महायोगी न जान पड़े ॥ १३ ॥ कर्मसे, आकृतिसे, वाणीसे वर्णाश्रमके चिह्नोंसे किसीने पहिचाना नहीं कि यह दत्तात्रेय हैं ॥ १४ ॥ उस योगिराजको नमस्कार करके विधिवत्पूजन कर पश्चात् चरणोंपर शिर धरकर जानेके लिये महाभागवत असुरवंशावतंस प्रह्लादजीने

तं शयानं धरोपस्थेकावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामल तेजसम् ॥ १२ ॥ ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥ कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेत्ति च ॥१४॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत् पादयोःशिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥१५॥ बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह॥ भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नु हार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥ १७ ॥

पूछा ॥ १५ ॥ प्रह्लाद बोले कि जो उद्यम करनेवाले भोगी हैं उसके सदृश आपका शरीर पुष्ट है, क्योंकि उद्यम करनेवालोंको धन प्राप्त होता है और धनवालोंको सुखभोग प्राप्त होता है, भोगियोंका शरीर पुष्ट होता है; परंतु विना सुखभोगके शरीर ऐसा पुष्ट नहीं हो सकता ॥१६॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो निरुद्यमी हो, सदा शयन करते रहते हो और विना उद्यम किये धन कहां और धन विना भोग करनेकी कोई सम्भावना नहीं और विना धन शरीरका पुष्ट होना कठिन है, इसलिये मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ, कि अभोगी यह आपका शरीर किस प्रकार पुष्ट है ? हे विप्रवर ! जो यह बात कहनेके योग्य हो तो कृपा करके कहिये और न कहनेके योग्य हो तो मेरा

अपराध क्षमा कीजिये ॥ १७ ॥ धन उपार्जन करनेके लिये असमर्थ लोग भी अनेक उद्यम करते हैं, और आप समर्थ होनेपर भी कोई उद्यम नहीं करते, यह क्या कारण ? आप तो कवि, समर्थ, चतुर, विद्वान्, निपुण दृष्टिवाले, वार्तालापसे लोगोंका चित्त प्रसन्न रखनेवाले, इतने पर भी सोते रहते हो और लोग अपने-अपने काम करते हैं उसको देखते रहते हो और किसीका देखादेखी भी कोई काम नहीं करते, न किसीकी भलाई करनी, न किसीकी बुराई करनी, आप तो कोई योगीजन जान पड़ते हो ? ॥१८॥ नारदजी बोले कि दैत्यपति प्रह्लादने जब इस भाँतिका प्रश्न किया तब उसकी अमृतरूप वाणीके वशीभूत हो योगिराज हँसकर बोला ॥१९॥ दत्तात्रेयजी बोले–हे असुरश्रेष्ठ ! जो बड़ोंकी सम्मति है, वह सब तुम जानते हो और ज्ञानियोंमें आप प्रशंसनीय हैं, प्रवृति और निवृत्तिमें पुरुषोंको कैसा फल प्राप्त होता है,

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥ लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षिताऽपि वा ॥१८॥ नारद उवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्य नारायणो देवो भगवान् हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥२१॥ अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन् यथाश्रुतम् ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥ २४ ॥

उसको तुम अन्तर्दृष्टिसे भली-भांति जानते हो ॥ २० ॥ जिसके हृदयमें नारायणदेव भगवान् सदा वास करते हैं उसके हृदयसे सम्पूर्ण अज्ञानका नाश हो जाता है, जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जो-जो प्रश्न आपने हमसे किये उन-उन प्रश्नोंका उत्तर हम आपको देंगे, क्योंकि आत्माकी शुद्धि करनेवालोंसे आप प्रशंसनीय हैं, आपका अवश्य सत्कार करना चाहिये ॥२२॥ इस संसारमें भ्रमानेवाली और जन्म-मरणके प्रवाह चलानेवाली तृष्णा है, जो योग्यकर्म हैं उसको भी पूरा नहीं करने देती और विषयकर्म कराकर मुझको अनेक योनियोंमें तृष्णा ही घुमाती है ॥ २३ ॥ अपने कर्मोंसे भ्रमता हुआ यदृच्छासे इस लोकमें जन्म लेता है,

यह लोक स्वर्ग एवं अपवर्गका द्वार है। कभी पशु बना, कभी पक्षी बना, इसी तृष्णा द्वारा अब दैत्यगतिसे इस मनुष्ययोनिमें डाला गया हूँ। मनुष्यदेहके पुण्यसे स्वर्गका और पापसे नीच योनिका, पाप-पुण्यके मिश्रित होनेके पीछे मनुष्यदेहका और निवृत्तिसे मोक्षका द्वार है इस संसारमें ॥ २४ ॥ मनुष्य जन्म पाकर सुख पानेको और दुःख मिटानेके लिए अनेक प्रकारके कर्म लोग-लुगाई किया करते हैं, परन्तु उसकी इच्छानुसार फल उसको नहीं मिलता, किन्तु उसकी इच्छाके प्रतिकूल फल मिलता है। अतः इस तृष्णाका कौतुक देखकर मैं सब कर्म करनेसे निवृत्त होकर यहां एकांतमें आ बैठा हूँ ॥२५॥ इस मनुष्यके आत्माके अनुरूप सुख तब हो सकता है, कि जब चेष्टाओंको यह देह त्याग दे और मनके स्पर्शजन्य भोगोंको देखकर चुपचाप हो रहे, यह सुख इस जीवका स्वरूप है और जब उसकी सब क्रिया

अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥ २५ ॥ सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥ २७ ॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया ॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥ २८ ॥ देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताकृताः ॥२९॥

बन्द हो जाती हैं,तब वह आपसे आप प्रकाशता है, मैं अनेक प्रकार भोगोंको और मनकी कल्पनाओंको अवास्तविक समझकर सब उद्यमोंको छोड़ बैठा हूँ और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाता है उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ ॥२६॥ अपना सुखरूप पुरुषार्थ अपने आपमें ही है, यह पुरुष भूलकर चित्रविचित्र असत् द्वैत पदार्थ अवास्तविक होनेपर भी घोर संसारके प्रवाहमें भटकता फिरता है ॥ २७ ॥ जैसे कोई प्राणी जलकी कामना करके काई आदिसे छिपे हुए जलको छोड़कर मृगतृष्णाको दौड़ता है, ऐसे अपने स्वरूपमें परमेश्वरको छोड़कर विषयोंकी ओर दौड़ता है और परमात्माको नहीं भजता ॥ २८ ॥ परमेश्वरके अधीन देहादिक हैं, इनसे आत्माके सुखकी इच्छा करनेवाला

मूर्ख है, दुःखका नाश समझकर निष्फल क्रियाओंको करता रहता है, परमेश्वरका भजन करता नहीं, इसीसे सदा दुःख पाता है। इसलिये ईश्वरको भजो और सबका त्याग करो, यही हमारी आज्ञा है, षट्विध शरणागत करे, परमहंसवृत्ति धारे, क्रोध, लोभ, मोह, निंदा, छल, कपट, तृष्णा, निर्लज्जता, दुष्टता और क्लेशका जो त्याग करेगा वह निःसंदेह वैकुंठधामको जायगा ॥ २९ ॥ यह निश्चय जानो कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे जो कभी मुक्त नहीं हुआ है और जिसके शिरपर सदा काल घूम रहा है, ऐसा पुरुष अत्यन्त कठिनतासे भी द्रव्य अथवा सुख प्राप्त कर ले तो भी उससे उसको क्या ? ॥ ३० ॥ लोभी, अजितेंद्रिय, धनी मनुष्योंको नित्य क्लेश और चिंतामें ही पड़ा देखते हैं और इतने भयभीत रहते हैं कि मारे भयके रातको नींद तक नहीं आती और सब ओरसे शंका बनी रहती है ॥ ३१ ॥

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ॥ मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥ ३० ॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥ ३१ ॥ राजतश्चौरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥ ३२ ॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ॥ यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥ ३४ ॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाऽप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥

राजासे, चोरोंसे, शत्रुओंसे, स्वजनोंसे, पशुपक्षियोंसे, भिखारियोंसे, कालसे और निजसे भी नित्य प्राणोंसे अधिक धनका भय बना रहता है ॥ ३२ ॥ शोक, मोह, भय, क्रोध, रोग, दीनता और परिश्रमादिक सब धनके मूल हैं, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि प्राण और धनकी चाहना न करे ॥ ३३ ॥ इस जगत्में दो हमारे परमगुरु हैं, मधुकी माखी और अजगर, जिनकी शिक्षा पाकर हम वैराग्य और परितोषको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ मधुमक्षिकासे तो मैंने सब कामसे विराग होना सीखा है, शहदकी नाईं महाकष्टसे धनवान् लोग धन इकट्ठा करते हैं और चोर बटमार उनको मारकर उनका धन लूटकर ले जाते हैं, जैसे मुहालकी मक्खियोंको मारकर वधिक लोग शहद

ले जाते हैं ॥३५॥ सन्तोषमें मेरा गुरु अजगर सर्प है, कि विना उद्यम किये भाग्य से जो कुछ प्राप्त हो जाता है उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ, कोई समय ऐसा भी हो जाता है कि महीनों तक कुछ नहीं मिलता, उस समय किसी प्रकारका उद्योग भी नहीं करता, अजगरके तुल्य धैर्य धारण किये, विना खाये-पिये पृथ्वीपर पड़ा लोटता रहता हूँ, न किसी बातकी चिंता की न किसी बातका हर्ष किया॥३६॥कभी थोड़ा कभी बहुत, कभी स्वाद कभी बेस्वाद कभी बहुगुणयुक्त कभी गुणहीन, जो कुछ भोजन मिल जाता है वही खा-पीकर अपना उदरपूर्ण कर लेता

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ॥ क्वचिद् भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित ॥ ३७ ॥ श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुञ्जे भुक्त्वाऽथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ॥ वासेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥ ३९ ॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥

हूँ *॥३७॥ कहीं कोई श्रद्धासे भोजन करा देता है तो कर लेता हूँ अश्रद्धासे करा देता है तो कर लेता हूँ, कभी दिनमें कुछ फल अन्नादि मिल जाता है, कभी रातको मिल जाता है; जिस समय मिल गया उसी समय खाकर अपना चित्त प्रसन्न कर लेना ॥ ३८ ॥ रेशमका वस्त्र वा सूतका वस्त्र, मृगचर्म वा चीर वल्कल अथवा भोजपत्र, जैसा मुझको प्रारब्धसे मिल जाता है उसीको सन्तोष करके पहन लेता हूँ ॥३९॥ कभी धरणीपर सो रहता हूँ, कभी घासपर, कभी पत्तों पर, कभी पाषाणकी शिलापर सो रहता हूँ, कभी राखमें ही लोटता रहता हूँ और

---

* शंका—अजगर मुनिने प्रह्लादसे कहा कि हमारे लिये कोई चीज अच्छी बुरी जो कोई मनुष्य देता है उस वस्तुको हम ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु इच्छा किसी वस्तुकी हम नहीं रखते । संसारमें जीव अनेक प्रकारके होते हैं, कोई मसखरापनसे स्त्री अथवा मदिरा आदि लेकर अजगर मुनिको देगा तो वह उसको ग्रहण करेंगे या नहीं ? उस समय अजगर मुनि क्या करेंगे, ग्रहण करेंगे तो नरकवासी होंगे और त्याग करेंगे तो भेददृष्टि कहावेंगे फिर क्या होगा ?

उत्तर—अजगरमुनिने सत्य कहा है, सब वस्तुके भोगनेवाले अजगर मुनि थे, परन्तु जो कोई ऐसा दुष्ट कर्म करनेका विचार भी करेगा तब उसको उसी समय भगवान्का सुदर्शनचक्र भस्म कर देगा, क्योंकि अजगर मुनिकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शनचक्रको भगवान्ने आज्ञा कर रक्खी है कि जो कोई इनको सतावे और दुःख दे, उसको उसी समय भस्म कर देना ।

कभी कोई आदर-सत्कार करके अपने घर ले जाता है, उसकी प्रसन्नताके ऊँचे-ऊँचे अटा-अटारियोंमें सुन्दर-सुन्दर शय्याओंपर सो रहता हूं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कभी नहाता हूं कभी शरीरपर मिट्टी लगा लेता हूं; कभी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण कर लेता हूं, कभी माला और कण्ठी समेत भांति-भांतिके गहने पहन लेता हूं कभी रथपर, कभी घोड़ेपर, कभी हाथीपर चढ़ जाता हू और कभी दिगम्बर होकर ग्रहकी नाई घूमता फिरता हूँ ॥ ४१ ॥ न तो मैं किसीका निंदक और न किसीकी स्तुति करनेवाला; यह जीव स्वभावसे विषम भावको प्राप्त है,

क्वचित्स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृत ॥ रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वाभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ् मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्याऽऽत्मनि स्थितः ॥४४॥ स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्प्रियः ॥ ४५ ॥

परन्तु सब जगत्का कल्याण और भगवतमें लीन होना चाहता हूँ ॥ ४२ ॥ जाति भेदको मनकी वृत्तियोंमें, मनकी वृत्तियोंको पदार्थरूप चंचल मनमें होमे, मनको अहंकारमें होमें और अहंकारको महत्तत्त्वद्वारा मायामें होमे ॥ ४३ ॥ सत्यद्रष्टामुनि मायाको आत्माके अनुभवमें होमे और निश्चेष्ट होकर मुनि अपने अनुभवमें स्थित होकर विचरे ॥४४॥ मेरा जो गुप्त सिद्धान्त था वह सब तुम्हारे सामने वर्णन किया कि

* कबित्त–जैसे फल झरेको बिहंग छांड़ि देत रूख, भुवा देख सुवा छोड़े सेमरकी डारको । सुमन सुगन्ध विन जैसे अलि छांड़ि देत, माता नर छांड़ि देत विना आबदारको ।। जैसे सूखे तालको कुरंग छांड़ि देत, मन फट छांड़ि देत मानसहू यारको । जैसे चक्रवाक देश छांड़ि देत पावसमें ऐसे ज्ञानी छांड़ि देत झूंठ या संसारको ।।

तुम भगवान्‌के भक्तहो और मूर्ख लोग तो इन बातोंको शास्त्रके विरुद्ध समझते हैं ॥४५॥ नारदजी बोलेकि श्रीप्रह्लादजी इस प्रकार दत्तात्रेयजीके मुखसे परमहंसधर्म सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दत्तात्रेयजीका पूजन कर मस्तक नवाकर आज्ञा ले अपने घरको चले ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां युधिष्ठिरनारदसंवादे प्रह्लादाय दत्तात्रेयेण पारमहंस्यधर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—चौदहमें गृहधर्म सब, सुखदायक आचार। भिन्न-भिन्न वर्णन करूं, सज्जन लेहिं विचार ॥ युधिष्ठिरजी बोले-हे देवऋषि! मुझ सरीखा गृहस्थ मूढबुद्धिवालापुरुष,संन्यासधर्मकी पदवी मोक्षको विना प्रयास जिस विधिसे प्राप्त हो, वह कहो ॥१॥ नारदजी बोले-हे राजन्! गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि घरमें बैठा हुआ जो कुछ वेद विहित कर्म है उनको करता रहे परन्तु उन कर्मोंको भगवान्

नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥
इति श्रीभागवते महा० सप्तम० युधि० प्रह्लादाय दत्तात्रेयेण पारमहंस्यधर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ॥ याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥
नारद उवाच ॥ गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥
शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् ॥ श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥ ३ ॥ सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्ग-
मात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुदासीनो देहे गेहे च पण्डितः ॥
विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥

वासुदेवको अर्पण करता रहे और साक्षात् महामुनियोंकी उपासना करे ॥२॥ भगवान्‌के अवतारसम्बन्धी कथामृतको वारंवार श्रद्धासहित सुने और नित्यप्रति महाशान्त महात्माजनोंका सत्संग करे ॥३॥ स्त्री और पुत्र आदि जिनसे एक दिन अवश्य वियोग होनेवाला है उनकी संगति धीरे-धीरे छोड़ जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नमें अपने सुहृद् पुत्रादिकोंसे अधिक स्नेह और लालन-पालन करता है और जागने पर सबको छोड़ देता है, इसी प्रकार अपने आप उनसे रीति-प्रीति और उससे सब संबन्ध त्याग दे ॥४॥ ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि देह-गेहमें उतना प्रयोजन रखे कि जितनेमें कार्य सिद्ध हो, अधिक नहीं रखना चाहिये। चित्तमें वैराग्य धारण कर ले, ऊपरके मनसे गृहस्थ पुरुषोंके

समान पुरुषार्थ करता रहे ॥ ५ ॥ जातिके लोग, माता, पिता, पुत्र, भ्राता और मित्र जो कुछ कहें अथवा जो कुछ उनकी इच्छा हो वह काम करे, परंतु ममता और मोहको त्याग दे॥ ६ ॥ स्वर्गका,पृथ्वीका,आकाशका, जो भगवत् का दिया हुआ धर्म है, उसको यह समझे कि भगवान्ने मुझको सब कुछ दिया है, आनन्दसे उसे भोगे, परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भगवान्में दिन-रात मन लगाये रहे ॥ ७ ॥ जितनेमें उदर पूर्ण हो उतना धन तो प्राणी अपना समझे और उससे अधिक जो धन हो, उस धनका अभिमान न करे और जो उसको अपना समझेगा वह चोरके समान दंड देनेके योग्य है ॥ ८ ॥ मृग, ऊँट, गर्दभ, बन्दर, मूसा, सांप, बिच्छू, पशु, पक्षी और

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ॥ यद्वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥ दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ॥ तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात्स्वतो बुधः ॥ ७ ॥ यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ ८ ॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥९॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥ यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाद्यान्तेऽवसायिभ्यः कामान् संविभजेद् यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारान्नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥११॥ जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान् हन्याद्वा पितरं गुरुम् ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥१२॥

मक्खी इनमें और अपने पुत्रमें कुछ भेद न समझे ॥ ९ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि अर्थ, धर्म, काममें सदा लगा रहे। जैसा देश काल हो और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय उसीमें अपना निर्वाह करे ॥ १० ॥ कुत्ते, बिल्ली और श्वपच इत्यादि पर्यन्त सब जीवमात्रको भी अपनेमेंसे यथायोग्य अन्नादि देता रहे और जो मुख्य अपनी पत्नी है और अपनी सेवा करनेके लिये है, जिसमें लोगोंका 'यह स्त्री हमारी है, इसके स्वामी हम हैं' ऐसा ज्ञान है उस अपनी प्यारी नारीको भी धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार साधुसेवामें लगा दे ॥ ११ ॥ जिस स्त्रीके लिये अपने प्राण तज देते हैं और अपने पिता और गुरुको भी मार डालते हैं, कुलकी लाज तज देते हैं, उस स्त्रीसे अपने स्नेह

और ममताको जिसने छोड़ दिया, ऐसे अजित पुरुषोंको भगवान्‌को वश करना क्या बड़ी बात है ? * ॥ १२ ॥ कहां तो यह तुच्छ शरीर, जिसके अन्तकालमें विष्ठा, राख और कीड़े हो जाते हैं और कहां वह स्त्री, जिससे शरीरके सुखके लिए रीति-प्रीति करते हैं और कहां वह आदिपुरुष अविनाशी सर्वव्यापक परमात्माका स्वरूप ? इसलिये सबसे अनुराग त्याग भगवान्‌में मन लगाये ॥ १३ ॥ जो कुछ अन्न फलादि भाग्यसे मिल जाय उससे पञ्चमहायज्ञ करे, जो कुछ उसमेंसे बचे उससे अपना उदर पूर्ण करे और उदरपूर्णसे जो कुछ

कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम्॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥१३॥ सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥ १४ ॥ देवानृषीन् नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्याऽऽगतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाःस्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत ॥ १६ ॥ न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान् सर्वयज्ञभुक् ॥ इज्येत हविषा राजन् यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥

अवशेष रहे वह साधु सन्तोंको बांट दे, संग्रह करना अच्छा नहीं, ॥ १४ ॥ अपनी वृत्तिसे जो धन प्राप्त हो उस धनसे देवता, ऋषि, भूत, पितर और बहुतसे जीवोंका आदर सत्कार करे और अपना भी पालन करे, इस प्रकार पूजा सत्कार करनेसे अन्तर्यामी परमात्माका ही पूजन होता है ॥ १५ ॥ जो आत्माके अधिकार आदिक सब यज्ञ सम्पदा हैं उनके द्वारा एवं वैतानिक विधि करके अग्निहोत्रादिसे यजन करे ॥१६॥ हे राजन् ! यज्ञपुरुष भगवान् सर्वयज्ञोंके भोक्ता हैं, वे अग्निमुखसे भोगते हैं, परंतु ब्राह्मणके मुख द्वारा हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणोंको

* शंका—आज तक ऐसा हमने नहीं सुना और लोकमें कहीं न देखा कि स्त्रीके लिये कोई अपना प्राण त्याग दे वा पिता गुरुको मार डाले और जो कोई ऐसा कहे कि जानकीजीके लिये रामचन्द्रने रावणको मार डाला वह ब्राह्मण था, और द्रौपदीके लिये श्रीकृष्णने द्रोणाचार्य आदि गुरुको मरवा डाला तो ऐसा नहीं मानना चाहिये, क्योंकि रामचन्द्र और श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म थे, पामरजीवोंके लिये नारदजीने क्यों कहा ?

उत्तर—तृष्णारूप स्त्रीके लिये नारदजीने कहा है, संसारकी स्त्रियोंके लिये नहीं कहा, तृष्णारूपी स्त्रीके लिये मनुष्य अपना तनु त्याग देते है और पिता गुरुको भी मार डालते है ।

अच्छे-अच्छे मिष्टान्न लुचई, मोइन भोग, लड्डू, अमृती, पेड़े, वैकुण्ठी आदि भोजन करानेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, ऐसा घृतादिक पदार्थोंके अग्निमें हवन करनेसे कभी प्रसन्न नहीं होते ॥ १७ ॥ उससे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण देवता हैं; इनका यथायोग्य पूजन करे, यही सब कामनाओंके सिद्ध करनेवाले हैं; यही परमपूजनीय हैं; यही सर्व जीवमात्रके क्षेत्रोंको जाननेवाले हैं, अतः इनको ही अन्तर्यामी जान दान-सम्मान देना चाहिये क्योंकि अन्तर्यामी भगवान्का मुख्य मुख ब्राह्मण ही हैं ॥ १८ ॥ द्विजवर्णको चाहिये कि भादों मासकी पूर्णमासीसे लेकर कुआँरकी अमावस्या तक माता-पिताका कुटुम्ब सहित श्राद्ध करे, और जिसजिस तिथिमें जिनका देहान्त हुआ हो, उन्हीं उन तिथियोंमें उनका श्राद्ध करे और जिसके मरनेकी तिथिका स्मरण न हो उसका श्राद्ध अमावस्याके दिन कर दे ॥ १९ ॥ दक्षिणायन

तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥ १८ ॥ कुर्यादापरपक्षीय मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ॥ श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥ १९ ॥ अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥ २० ॥ तृतीयायां मासि शुक्ले नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥ माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥ द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥

अर्थात् कर्कके सूर्यमें, उत्तरायण अर्थात् मकरके सूर्यमें, विषुवत् अर्थात् मेष और तुलाके सूर्यमें व्यतीपातमें क्षयतिथिमें, सूर्यग्रहणमें, चन्द्रग्रहणमें, श्रवणद्वादशीमें ॥ २० ॥ वैशाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तीजमें, कार्तिक शुक्ल नवमी अर्थात् आमला नवमीमें, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें चार अष्टका नाम तिथि ॥ २१ ॥ जैसे माघ शुक्ल सप्तमीमें, मघायुक्त अमावस्यामें माघ शुक्ल पूर्णमासीमें और दूसरे महीनोंकी अपने-अपने नक्षत्रोंवाली राका और अनुमति नाम पूर्णमासियां, जैसे चैत चित्रा, वैशाख विशाखा, ज्येष्ठ ज्येष्ठा, आषाढ़ पूर्वाषाढ़ अथवा उत्तराषाढ़, श्रावण श्रवण, भाद्रपद पूर्वाभाद्रपद अथवा उत्तराभाद्रपद, आश्विन अश्विनी, कार्त्तिक कृत्तिका, मार्गशिर मृगशिरा (इसका नाम अगहन भी है) पौष पुष्य और फाल्गुन पूर्वाफाल्गुनी अथवा उत्तराफाल्गुनी ॥२२॥ द्वादशी तिथिमें और जिनमें

अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो, उन तिथियोंमें, जन्मनक्षत्रमें और वामनद्वादशीमें विधिपूर्वक श्राद्ध करे ॥ २३ ॥ यह श्रेष्ठ दिन केवल श्राद्ध करनेके ही लिये नहीं हैं, किंतु पुरुषके कल्याणको भी बढ़ानेवाले हैं, इसीलिये इन पुण्यकालकी तिथियोंमें शुभ कार्य करना । व्रत, देवद्विजकी पूजा लिखी है, क्योंकि पुण्य करना आयुकी वृद्धि करनेवाला है ॥२४॥ इन श्रेष्ठ तिथियोंमें स्नान, जप, हवन, व्रत, देवद्विज पूजा जो कुछ शुभ कार्य किया जाता है वह सब अक्षय होता है ॥२५॥ हे राजन्! अपनी अर्धांगिनी भार्याको पुंसवनादि संस्कारके समय, तथा अपने पुत्रपौत्रके अथवा अपने संस्कारके समय, प्रेतकी दाहक्रियाके समय, संवत्सरके श्राद्धके समय और जब

त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात् सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ॥ पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥ २५ ॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥२६॥ अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ॥ स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥ २७ ॥ बिम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपो विद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥ २९ ॥ सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ३० ॥

कल्याणकारी कार्य करनेका समय हो उस समय शुभ कार्य करना चाहिये ॥२६॥ धर्मादिक मङ्गलके देनेवाले पुण्यतम देशोंके नाम तुमसे कहता हूं–जहां-जहां चराचरके निवास स्थान वासुदेव भगवान्‌की मूर्ति विराजमान है और सत्पात्रोंका समागम है ॥२७॥ वह देश परमपुनीत जानना, एवं जहां विद्यावान्, तपस्वी और दयावान् ब्राह्मण लोग निवास करते हैं, जहां-जहां बांकेविहारी कृष्णमुरारीकी मोहिनी मूर्ति विराजमान है, वह देश कल्याणका स्थान है। जहां पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियोंका प्रवाह हो रहा है वह अत्यंत पुण्यतम देश है ॥ २८ ॥ २९ ॥ पुष्करादिसरोवर जहां महात्मापुरुषोंका निवास क्षेत्र है, जैसे–कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलह ऋषिका

आश्रम ॥३०॥ नैमिषारण्य, बल्गुतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर, प्रभासक्षेत्र, द्वारकापुरी, काशी, मथुरा, पंपासुर, बिन्दुसरोवर ॥ ३१ ॥ और हे राजन् ! नारायणाश्रम, नंदा और जहां सीतारामके आश्रमादिक हैं, जहां सब कुलाचल, महेन्द्र, मलयगिरि आदि बड़े-बड़े पर्वत हैं ॥ ३२॥ वे पुण्यतम देश हैं, जहां श्रीहरिकी अर्चा विग्रहरूप होके बसती है, जो मनुष्य अपना मंगल चाहे वह वारंवार इन देशोंका सेवन करे, क्योंकि इन श्रेष्ठ देशोंमें जो पुण्य कर्म किया जाता है, वह सहस्रगुणा फल देनेवाला होता है ॥३३॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! अच्छे पात्र-वेत्ता पंडितोंको सुपात्र कहते हैं, परन्तु सबसे अधिक श्रीनारायण ही एक परमपात्र हैं, क्योंकि सबचराचरमय वासुदेव भगवान् हैं ॥३४॥ हे राजन् ! राजसूयमें अग्रपूजाके समय सब देवता ऋषि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रादिक सब थे परंतु वहां अग्रपूजनीय श्रीकृष्णचन्द्र महाराजको

नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥ ३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान् देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन् यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाऽच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥ तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥

समझकर पहले पूजा द्वारिकाधीशकी ही हुई थी॥३५॥सब जीवराशियोंसे भरा यह ब्रह्मांड एक बड़ा वृक्षरूप है और उसका मूल भगवान् हैं, इसलिये भगवान्की पूजा करनेसे सब जीवात्माओंकी तृप्ति हो जाती है, जैसे वृक्षकी जड़के सींचनेसे सब शाखा और पत्ते हरे हो जाते हैं॥३६॥ सब पुर अर्थात् शरीर भगवान्ने ही रचे हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता और ऋषि, यही श्रीकृष्ण भगवान् जीवरूप धर-धरके सब प्राणि-योंके शरीररूप पुरमें शयन करते हैं इसलिए इनका नाम पुरुष रखा है ॥३७॥ हे राजन् ! इन सबमें भगवान् न्यूनाधिक भावसे रहते हैं इसलिये पात्र परमेश्वर हैं ! जैसी जिसकी आत्मा है वैसे ही वर्तमान हैं। तपसे, पूजासे, प्रार्थनासे जिसमें भगवान्का अंश अधिक

पाया जाता है उन मनुष्योंको उत्तम पात्र जानना चाहिये ॥३८॥ जब मनुष्य सत्पात्र और भगवद्भक्त थे, तब मनुष्योंके शरीरमें ही भगवान्‌की पूजा किया करते थे, जब मनुष्योंके मनमें विकार आ गया और परस्पर भेद समझने लगे और एककी एक आज्ञा करने लगे तब त्रेतायुगके प्रारम्भमें कवियोंने भगवान्‌की अर्चा मूर्तियोंमें करनी आरम्भ कर दी ॥३९॥ बहुतेरे लोगोंने समझ रखा है, कि मूर्तिमें ही भगवान् हैं, यह समझकर जो मूर्तिका पूजन करते हैं उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं और जो मनुष्य परस्पर द्रोह करते हैं उन लोगोंको वह प्रतिमा फल नहीं देती ॥४०॥ हे राजन् ! पुरुषोंमें वही ब्राह्मण सत्पात्र है जो तपसे, विद्यासे, सन्तोषसे, भगवान्‌के शरीररूप वेदको धारण करते हैं, उनको ही उत्तम पात्र महात्मा लोग बतलाते हैं ॥ ४१ ॥ यह ब्राह्मणोंका ही सामर्थ्य है जो अपने चरणोंकी रजसे

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्ताऽपि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥४१॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः॥पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णये प्रतिमाद्यर्चनादिधर्मनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥१॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥ २ ॥

त्रिलोकीको पवित्र कर सकते हैं, यह ब्राह्मण जगत्‌के आत्मा श्रीकृष्ण भगवान्‌के परमप्रिय देवता हैं जैसे सुदामा ॥ ४२ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ दोहा—वर्णाश्रमकी रीति सब, मोक्ष धर्मको सार । भिन्न भिन्न वर्णन करौं, पन्द्रहमाहिं विचार ॥ नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! किसी ब्राह्मणकी तो कर्मोंमें निष्ठा है, किसीकी तप करनेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढ़नेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढ़ानेमें निष्ठा है, किसीकी ज्ञानमें निष्ठा है और किसीकी योगमें निष्ठा है ॥१॥ जो मनुष्य देव-पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें अनन्त फलका अभिलाष करे तो उसको चाहिये कि ज्ञाननिष्ठावाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक श्राद्धान्न

दे, जो ज्ञान निष्ठावाला कहीं नहीं मिले तो और कोई जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हो उसको यथायोग्य भोजन कराये ॥२॥ जिन ब्राह्मणोंको निमंत्रित श्राद्धमें किया जाय वह विप्रवर सब प्रकारसे श्रेष्ठ और शुद्ध होने चाहिये। विश्वदेव निमित्त दो ब्राह्मण जिमाने चाहिये और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणोंको जिमाये; बरन् श्रद्धापूर्वक एक-एक ब्राह्मणका जिमाना भी अच्छा है और जो अधिक धन हो तो भी विस्तार करना चाहिये ॥ ३ ॥ देशकालके योग्य श्रद्धा, द्रव्य, पात्र, पूजन यह सब बहुत विस्तार करनेसे, श्राद्धमें स्वजनोंके जिमानेकी इच्छासे

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥३॥ देशकालोचिता श्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥४॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥५॥ देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन् पश्येत् सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥ न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ ७ ॥

श्राद्ध श्रद्धापूर्वक नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ देश काल सुन्दर प्राप्त हो जाय तो श्रीभगवान् वासुदेव जिनके देवता ऐसे मुनि अन्न, जौ, मूँग, भात, पूरी, कचौरी, अमृती इत्यादिसे श्रद्धा करके सुपात्रको जिमाये तो वह अन्न कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है और अक्षय फलका देनेवाला है ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पितर, जीवमात्र अपने देह और स्वजन लोगोंका वह अन्न विभाग करके दे तो ईश्वरके ही समान है ॥ ६ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाला तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको चाहिये कि श्राद्धमें मांसको नहीं दें और न आप खायँ,मुनियोंके अन्नसे

* शंका–नारदजीने युधिष्ठिरसे कहा कि दो ब्राह्मणोंको देवकार्यमें जिमाना चाहिये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, सो देवकर्मसे और पितृकर्मसे बढ़कर और तीसरा कर्म कौनसा है जिसमें बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ।

उत्तम–देवकार्यका अर्थ यह है कि, श्राद्धमें विश्वेदेवपूजनके निमित्त दो उत्तम ब्राह्मणोंको बहुत प्रकारका भोजन कराना चाहिये । उसी प्रकारसे चतुर प्राणीको पितृकर्ममें जो सर्व गुण संयुक्त हों ऐसे तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये; अर्थात् श्राद्धमें उत्तम सुपात्र ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेको शास्त्र आज्ञा देता है और सुपात्र ब्राह्मण अधिक मिलना कठिन है, श्राद्धमें यदि एक भी कुपात्र आ जाय तो दूषित हो जाता है इसलिये अधिक ब्राह्मण जिमानेका निषेध है ।

परमेश्वर प्रसन्न होते हैं कुछ पशुओंकी हिंसासे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होते ॥ ७ ॥ सद्धर्मकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इससे परे कोई और कठिन धर्म नहीं है कि तन-मन-वचनसे किसी जीवको कष्ट न देना ॥८॥ आचार्य, यज्ञवेत्ता, ज्ञानी, कर्ममय यज्ञोंको आत्माके संयम करनेवाले ज्ञानी दीप्त मनमें सब चेष्टाओंको होम देते हैं ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञोंसे जब यज्ञ किया जाता है उन यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको देखकर सब जीव थर-थर कांपते हैं कि यह निर्दयी प्राणपोषक अज्ञानी इन सब जीवोंको मारेंगे ॥१०॥ इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि देव अन्न जो ऋषियोंको सन्तुष्ट करनेवाला है, उस तन्दुलादिक अन्नसे अपनी नित्यप्रति नित्य नैमित्तिक क्रिया करे और सन्तुष्ट रहे

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥८॥ एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ॥ एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब्ध्रुवम् ॥१०॥ तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥ सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥११॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत ॥१२॥ धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥१३॥ यस्त्विच्छया कृतः पुंभिराभासो ह्याश्रमात् पृथक् ॥ स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥ १४ ॥ धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम् ॥ अनीहाऽनीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥ १५ ॥

॥११॥ विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा, छल यह पांच अधर्म की शाखा हैं, वह धर्मके जाननेवालोंको चाहिये कि अधर्मकी नाईं उनको त्याग दे ॥१२॥ धर्मकी बाधाको विधर्म कहते हैं, पराये धर्मको परधर्म कहे हैं, मनुष्योंने आश्रमकी पद्धति जो अलग धर्म अपनी इच्छासे चलाया हो उसको आभास कहते हैं; जो पाखंडका धर्म हो उसको उपमा कहते हैं, दम्भ अथवा धर्मशास्त्रके वाक्योंका उलटा अर्थ करे उसको छल कहते हैं ॥ १३ ॥ धर्मशास्त्रके वाक्योंसे जो निश्चय हो और तत्त्ववेत्ताओंके स्वभावके अनुसार हो, वह धर्म मनुष्योंको शांति देनेवाला है ॥१४॥ निर्धन पुरुष धर्मके अर्थ अथवा यात्रा अर्थात् अपने निर्वाहके लिये धर्मकी कोई अपेक्षा न करे, क्योंकि अजगरवृत्ति

वालेको घर बैठे ही सब मिल जाता है ॥१५॥ सन्तोषी, अचेष्टावान्, आत्माराम और निरीह पुरुषोंको आनन्द प्राप्त होता है, वह लोभसे धनकी चेष्टा करनेवालेको और सब दिशाओंमें घूमनेवालेको कब मिल सकता है ? ॥१६॥ जो सदा सन्तुष्टचित्त है उसको सब दिशाओंमें परमानन्द है, जैसे कांटा, कंकर आदि बचानेवाले पांवमें जोड़ा सुखदायक है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह कौनसी वस्तु है, जिस वस्तुसे सन्तोषी पुरुष अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता ? और पदार्थोंका तो कहना ही क्या है ? केवल जलका पात्र ही लेकर जो उसके सामने उपस्थित हो तो उसीसे अपना कार्य सिद्ध कर लेता है और असन्तोषी पुरुष उपस्थ इंद्रिय और जिह्वाके भोगार्थ श्वानके समान घर-घर अपना अपमान करता फिरता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण सन्तोष नहीं करता उसका इन्द्रियोंकी चपलताके मारे तेज, विद्या, तप, यश सब

संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम् ॥ कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥ १६ ॥ सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥१७॥ संतुष्टः केन वा राजन् न वर्तेतापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्वयकार्पण्याद् गृहपालायते जनः ॥१८॥ असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥ १९ ॥ कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥ पण्डिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात् पतन्त्यधः ॥ २१ ॥ असंकल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥२२॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया ॥ योगान्तरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३ ॥

नष्ट हो जाता है और ज्ञान तो किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहता ॥ १९ ॥ कामका अन्त भूख-प्यासके मारनेसे हो जाता है, क्रोधका अन्त शत्रुओंके जीतनेसे हो जाता है, परन्तु लोभका अंत किसी प्रकार नहीं हो सकता, चाहे कुबेरका धन और उदय अस्ततक सब पृथ्वीका राज्य मिल जाय ॥२०॥ हे राजन् ! बड़े-बड़े ज्ञानी गूढ़ सन्देहोंके मिटानेवाले सभाओंके पति, षट्शास्त्री पंडित सन्तोष न करनेसे घोर नरकमें चले गये ॥२१॥ मनुष्यको चाहिए कि संकल्प-विकल्पको त्यागकर कामनाओंको जीते, कामनाओंका त्याग करके क्रोधको जीते, धनको अनर्थ समझकर लोभको जीते और तत्त्व विचारसे भयको जीते ॥ २२ ॥ ब्रह्मविद्यासे शोक-मोहको जीते, महात्मा पुरुषोंकी उपासनासे दम्भको

जीते, मौनवृत्ति धारणकर योगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापको जीते, शरीरकी चेष्टाओंको त्यागकर हिंसाओंको जीते ॥ २३ ॥ जिन जीवोंसे भय उत्पन्न हुआ हो उन्हींसे स्नेह करके भूतज दुःखोंको जीते । दैवकृत क्लेशोंको समाधिसे जीते, योगबलसे जीवात्माके कष्टको जीते, और सात्त्विक भोजनादिकी उपासनासे निद्राको जीते॥२४॥ सत्त्वगुणसे रज तमको जीते, शांतिसे सत्त्वगुणको जीते, यह तो प्रत्येक पदार्थके जीतनेके लिए भिन्न रीतिके साधन कहे, परन्तु संसारमें गुरुभक्ति ही ऐसी बलवती है कि पुरुष उससे विना प्रयास त्रिलोकीको जीत सकता है ॥ २५ ॥ हृदयमें ज्ञानरूप दीपकके प्रकाश करनेवाले साक्षात् गुरु भगवान्को जो मनुष्य अपने अज्ञानसे मनुष्यके समान जानकर उनसे जो-जो ज्ञान सुनता है वह सब हाथीके स्नानके समान है ॥२६॥ गुरुरूप साक्षात् भगवान् प्रधान पुरुष ईश्वर हैं और योगेश्वर

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीःश्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥ २६ ॥ एष वै भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ योगेश्वरैर्विमृग्या-ङ्घ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ॥ २७ ॥ षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥ २८ ॥ यथा वार्त्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति॥ अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथाऽसतः ॥ २९ ॥ यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निस्सङ्गोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥

जिनके अचल कोमल चरणकमलको खोजते रहते हैं उस गुरुको लोग संसारी मनुष्यके समान मानते हैं और परस्पर अज्ञानतासे कुतर्क करते हैं कि गुरु भगवान् कैसे हैं ? इनके तो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सुहृद, बन्धु सब हैं, जैसे हम हैं, वैसे ही वे हैं, किन्तु एक विद्या ही अधिक समझ लो ॥ २७ ॥ षड्वर्ग अर्थात् छः इन्द्रियोंके जीतनेके छः ही उद्देश्य तत्त्ववेत्ताओंने कहे हैं । इन्द्रियोंके जीतनेके पीछे भी जो उनसे ज्ञान, ध्यान, धारणा और समाधिका साधन न बन सका तो सब परिश्रम करना वृथा है और देहको दुःख देना है ॥ २८ ॥ जैसे वार्तादिक योगके अर्थको सिद्ध नहीं कर सकती वह सब वार्ता अनर्थकरी हो जाती है । पूर्त, इष्ट इत्यादि जो अनर्थ बुद्धि करे तो करना वृथा है ॥ २९ ॥ जो पुरुष मनको जीतनेकी इच्छा करे तो सब परिग्रहसे संग त्यागकर एकान्तमें बैठे, अकेला रहे और

भिक्षा मांगनेसे जो कुछ थोड़ा बहुत अन्न मिल जाय उसीसे अपना निर्वाह करे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पवित्र और सम भूमिमें आसन बिछाये और उसपर सरल अंग करके बैठे और ॐकारका जप करे ॥ ३१ ॥ प्राण, अपान वायुको जीते, पूरक, कुम्भक, रेचक करके जब तक मन सब कामनाओंको न त्याग दे तबतक अपनी नाकके अग्र भागको देखता रहे ॥३२॥ महत् विषयोंके द्वारा घूमता हुआ मन जहां-जहां जाय, उन-उन स्थलोंसे उसको लौटा कर लावै और धीरे-धीरे उसको रोककर उसे अपने वशमें करे ॥३३॥ इस प्रकार अभ्यास करनेवाले यती पुरुषोंको थोड़े कालमें ही निरन्तर सुख प्राप्त हो जाता है, जैसे विना काष्ठकी अग्नि शांत हो जाती है ॥३४॥ कामके बंधनोंसे

देशे शुचौ समे राजन् संस्थाप्यासनमात्मनः ॥ स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरेचकैः ॥ यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निस्सरति मनः कामहतं भ्रमत् ॥ ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥ ३४ ॥ कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत् कर्हिचित् ॥ ३५ ॥ यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ॥ यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥ यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ॥ त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥३७॥ गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलौल्यता॥३८॥

छूटकर, सब वृत्तियोंसे शान्त होकर ब्रह्मानन्दको जो प्राप्त हो गया, फिर ऐसा चित्त कभी ईश्वरसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥ जो नर त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, कामको प्रथम तो त्यागकर संन्यासी हो जाय, फिर पीछे उसी त्रिवर्गका सेवन करे, उस संन्यासीको ऐसे समझो कि पहले निगलकर पीछे फिर खा लिया और मानो थूककर फिर चाट लिया ॥३६॥ जिन पुरुषोंने अपने देहमें आत्माका स्मरण नहीं किया और यह देह कृमि, विष्ठा, भस्म समझा और वही फिर पीछे अज्ञानी बनकर इस शरीरको अपना मान और अभिमानमें आकर उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ अपने कर्तव्य कर्मको त्याग दें, ब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचर्य धर्मको छोड़ दें,

वानप्रस्थ होकर नरकमें वास करें और संन्यासी होकर इंद्रियोंके भोगको भोगें, वे लोग दोनों लोकोंसे जाते रहते हैं, वे कहीं के नहीं रहते, उनको पाखण्डी समझना चाहिये ॥३८॥ वे लोग सब आश्रमोंके नाशक हैं और सच्चे आश्रमोंका अनुकरण करते हैं परन्तु उनसे शत्रुता रखते हैं ! नारदजी बोले कि हे पांडुकुलमुकुटमणि ! देवमायासे मोहित इन मूर्खोंपर दया करके इनके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनी चाहिये ॥३९॥ जो जन अपने आपको परब्रह्म समझ कर विषयवासनाओंसे निवृत्त होते हैं,फिर वे किस लिये लोलुप-लम्पट बनकर शरीरका लालन-पालन करते हैं ? ॥४०॥ मुनिलोग शरीरको रथरूप कहते हैं, उसमें इंद्रियां घोड़े हैं और चंचल मन उसकी बागडोर है, शब्दादिक मात्र उस रथके चलानेका मार्ग है, विषयवासना उसके पहुँचनेके देशदेशांतर हैं; बुद्धि उसकी हांकनेवाली सारथी है और चित्त उसका बंधन

आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः ॥ देवमाया विमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥ ३९ ॥ आत्मानं चेद्विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः ॥ किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥ ४० ॥ आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयान्-भीषून् मन इन्द्रियेशम् ॥ वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षं दशप्राणमधर्म-धर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम्॥धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम्॥४२॥रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमा-दयः ॥ रजस्तमः प्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥ ४४ ॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानासिमच्युतबलोदधदस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥ ४५ ॥

है, यह अद्भुत रथ ईश्वरका बनाया हुआ है ॥ ४१ ॥ दश प्राण अक्षयधुरीरूप हैं, धर्म और अधर्म दो पहिये हैं, जीव अभिमानी उसमें चढ़नेवाला है, प्रणव धनुष है, बाण शुद्ध जीव है, परमेश्वर लक्ष्य हैं ॥४२॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निंदा, माया, हिंसा, मत्सरता ॥ ४३ ॥ रजोगुण, प्रमाद, भूख और निद्रा आदि रजोगुण, तमोगुण प्रकृति तो इसके वैरी हैं ही, परन्तु किसी समय पर परोपकारी सत्त्वगुणकी प्रकृति भी वैर भाव करने लगती है ॥ ४४ ॥ जिस समयतक यह नर शरीर रथके इन्द्रियादिक अङ्ग और आत्मा अपने वशमें है; उस समय तक गुरुमहात्माके चरणारविन्दकी कृपासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग लेकर और भगवान्का बल लेकर, सब वैरि-

योंको मारकर प्रसन्न और शांत हो परमात्माकी शरण लेकर मोक्षरूप यशका प्रकाश करे ॥४५॥ और जो परमात्माका आश्रय न लिया हो तो उस रथके इंद्रियरूप घोड़े और मतिरूप सूत असावधान रथमें बैठनेवालेको कुपन्थमें अर्थात् प्रवृत्तिमार्गमें खींचकर ले जाते हैं और विषयरूप लुटेरोंकी सेवामें डाल देते हैं। जब इन तस्करोंके फन्देमें फँसा, फिर कब निकलने देते हैं! उसी समय घोड़े और सारथी समेत उस पुरुषको महाअन्धतम जहां मृत्यु और भय मुख पसारे बैठे हैं, उस संसाररूप कूपमें गिरा देते हैं ॥४६॥ वैदिक मत वालोंने दो प्रकारके धर्म कहे हैं, एक तो प्रवृत्तिमार्ग है और दूसरा निवृत्तिमार्ग है। प्रवृत्तिमार्गसे तो संसारमें आना जाना होता है और निवृत्तिमार्गसे मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥ ४७ ॥ हिंसक यज्ञ, काम्यक यज्ञ, द्रव्यमय यज्ञ अग्निहोत्रादिक ये सब अशान्तिके करनेवाले हैं। दर्श, पौर्ण-

नोचेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु हि क्षिपन्ति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोन्धे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति॥४६॥प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥आवर्त्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम्॥४७॥हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥ ४८ ॥ एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥४९॥ द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श औषधिवीरुधः॥५०॥अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः॥एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥५१॥

मास, चतुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग ॥४८॥ वैश्यदेव और बलिदानादिक जो कर्म हैं, वे सब पदार्थोंके उपयोगसे होते हैं, उन्हींको इष्टकर्म कहते हैं और देवालय, बाग, कूप, तडाग आदि जो कर्म हैं, उनको पूर्त कहते हैं! यही कर्म सकाम किये जायँ तो प्रवृत्ति कहलाते हैं ॥ ४९ ॥ द्रव्ययज्ञका सूक्ष्म फल होता है, द्रव्ययज्ञ करनेवाला मनुष्य चरु और पुरोडाशादिकके किञ्चिन्मात्रसे उत्पन्न हुए शरीरको धारण करके धूमके देवके समीप जाता है, वहाँसे रात्रिके देवके सम्मुख जाता है,वहाँसे कृष्णपक्षके देवके निकट जाता है,वहाँसे दक्षिणायनके देवके पास जाता है, वहाँसे सोमके लोकमें जाता है ॥ ५० ॥ इन-इन स्थानोंमें जाकर जब पुण्यका क्षय होता है, तब पुण्यके क्षयहोनेसे शोकाग्नि

उत्पन्न होती है, फिर अत्यन्त दुर्बल होकर वृष्टिरूप तथा चंद्रमाकी किरणोंके द्वारा ओषधी-लता और अन्नमें आता है, फिर वीर्यमें-क्रम क्रमसे आकर इस संसारमें आ जाता है ॥ ५१ ॥ जन्मसे लेकर मरणपर्यंत संस्कार जिसके हुए हों ऐसे विप्र, क्षत्रिय और वैश्यको प्रवृत्ति कर्म करनेका यह फल मिलता है, अब निवृत्ति कर्मकी गति कहते हैं–महात्मा लोग इंद्रियोंके व्यापाररूप इष्टापूर्तादिक कर्मोंको विज्ञानसे दीप्तिवाली इंद्रियोंमें हवन कर देते हैं, यह इष्टधर्म इंद्रियोंसे भिन्न नहीं है, ऐसे समझते हैं ॥५२॥ मनके वेगमें इंद्रियोंको लीन करते हैं, वेदवाली वाणीमें वैकारिक, मनको लीन करते हैं, वाणीको वर्णोंके समूहमें लीन करते हैं और अक्षर वर्णोंके समूहोंको तीन अक्षर (अ, उ, म्) वाले ओंकारमें लीन करते हैं, ॐकारको बिन्दुमें बिन्दुको नादमें, नादको प्राणमें, और प्राणको ब्रह्ममें लीन करते हैं॥५३॥ इस प्रकार निवृत्तिकर्म करके ज्ञान निष्ठावाला मनुष्य पहले अग्निदेवके पास, फिर सूर्यदेवके पास, वहाँसे दिवस देवके समक्ष, वहाँसे दिनके अन्तमें होकर शुक्लपक्ष-

निषेकादिश्मशानान्तैस्संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥ इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥ ५२ ॥ इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः ॥ वाचं वर्णसमाम्नाये तमोंकारे स्वरे न्यसेत् ॥५३॥ ओंकारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥ अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ॥ विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥ ॥ ५४ ॥ देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः ॥ आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते॥ ५५ ॥

देवके निकट; वहाँसे शुक्लपक्षके अंतमें हो उत्तरायणदेवके सम्मुख फिर वहांसे ब्रह्माजीके सामने जाता है। वहांपर कुछ दिन भोग भोगकर फिर स्थूलदेह उपाधिवाले विश्वमें जाता है, उस स्थूल देहको सूक्ष्ममें लीन कर सूक्ष्म उपाधिवाले तेजसमें जाता है, फिर सूक्ष्मको कारणमें लय करके, कारणको शरीरकी उपाधिवाले प्राज्ञमें, कारण शरीरको तीनों शरीरोंमें व्यापक साक्षी स्वरूपमें लीन करके चौथा शरीर सबसे अलग हो जाता है। सब दृश्य पदार्थोंका लय होनेसे शुद्ध होकर मोक्ष हो जाता है ॥ ५४ ॥ जिस मार्गमें पूर्वोक्त कर्मानुसार प्राप्त होता है, उस मार्गको ब्रह्मज्ञानी लोग देवयान कहते हैं। आत्माका ही यजन करनेवाला आत्मज्ञानी आत्मामें ही बसा हुआ और महाशांति पाया हुआ जो इस मार्गमें आ गया वह फिर लौटकर नहीं जाता, क्योंकि परमात्मामें लय हो जाता है ॥ ५५ ॥

वेदके कहे हुये देवयान और पितृयान यह दो मार्ग हैं। शास्त्ररूप नेत्रोंसे दृष्टि आते हैं, परन्तु जबतक ज्ञानरूपी चन्द्रमाका हृदयमें प्रकाश नहीं होता, तबतक मार्गोंका कंकड़ कांटा देखनेमें नहीं आता। फिर वह आत्मज्ञानी पुरुष देहमें स्थित होनेपर मोहित नहीं होता॥ ५६॥ जन्मोंके आदि अन्तमें वास करने वाला भोग्य, भोक्ता, ऊँच, नीच, ज्ञान, ज्ञेय, शब्द, अर्थ, अन्धकार और प्रकाश इन सबको ज्ञानी पुरुष अपने आपसे भिन्न नहीं समझते कि जिससे मोह और ममता हो ॥ ५७ ॥ वृक्षकी छाया कुछ वृक्ष नहीं है, तर्क करनेसे आभास सब प्रकारसे अवास्तविकता पाई जाती है, तो भी जैसे कोई पदार्थ रूपसे माना जाता है, ऐसे संसार भी किसी इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता, जैसे वृक्षकी छाया देखनेमें आती है परन्तु वह कुछ वस्तु है नहीं, केवल मनका विकार है, क्योंकि कभी वृक्षके नीचे होती है और कभी

य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ॥ शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥५६॥ आदावन्ते जनानां सद्बहिरंतः परावरम् ॥ ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥ ५७॥ आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ॥ दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥ ५८ ॥ क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमाऽपि हि ॥ न संघातो विकारोऽपि न पृथङ्नान्वितो मृषा ॥ ५९ ॥ धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ॥ न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥ ६० ॥

वृक्षसे दूर होती है, ऐसे संसार भी किसी प्रकार निश्चित नहीं हो सकता, तो भी मानो कोई एक पदार्थ है ऐसे कल्पना की जायगी ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! पृथ्वी इत्यादि पञ्चमहाभूतोंकी छाया (ऐक्यावलम्बन) देहादिक संघात आरंभ परिणाम इनमेंसे एक भी नहीं हो सकता, जैसे वृक्षोंके संघातसे वन होता है, वैसे पञ्चभूतोंके संघातसे देह नहीं है, क्योंकि एक देशके आकर्षणसे सब देश आकर्षित नहीं होते, एक वृक्षके खिंचनेसे सब वन नहीं खिंचता, ऐसा विकार अर्थात् आरब्ध अवयवी अथवा परिणाम नहीं है, क्योंकि वह अवयवसे अत्यन्त अलग नहीं है और किसीसे मिलकर भी नहीं रहता है, इससे देहादिकके सब पदार्थ मिथ्या ही जानना ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! देहादिक जिस प्रकार मिथ्या हैं, उन सबके हेतु स्वरूप पृथ्वी आदि भी वैसे ही मिथ्या हैं, क्योंकि समस्त पञ्चमहाभूत अवयवी पदार्थ हैं, इससे अवयवों

विना उनका कुछ छिन्न निरूपण हो सके ऐसा भी नहीं हो सकता, इसलिये वह अवयवी कारणसे कुछ अलग पदार्थ नहीं है यही निश्चय हुआ। इस प्रकार अवयवीके असत् और मिथ्या होनेपर निदान अवयव भी असत् और मिथ्या हो गये तो किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि सत्य रीतिसे जो विचार किया जाय तो परमकारणरूप परमात्माके अतिरिक्त और कोई पदार्थ सत्य नहीं है, जब सब पदार्थ असत् माने गये तो उनमें भेद मानना भी वृथा है, क्योंकि उसी समय तक भेद है जबतक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ यदि कहो कि अवयवीकी सत्ता स्वीकार करनेपर आगमस्थायी बाल्यादि अवस्थामें "यह वही देवदत्त है" ऐसा प्रत्यभिमान किस प्रकार हो सकता है? तो उत्तर यह है कि अविद्याका विकल्पसे रहनेसे पहले-पहल आरोप सादृश्यके हेतु "यह वह नहीं है" इस प्रकार संभ्रम हो सकता है, परंन्तु जबतक अविद्या नहीं छूटती तबतक ही यह भ्रम रहता है, फिर नहीं। हे राजन्! जो सब ही मिथ्या

स्यात् सादृश्यभ्रमस्तावद् विकल्पे सति वस्तुनः ॥ जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥ ६१ ॥ भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं यथाऽऽत्मनः ॥ वर्तयन् स्वानुभूत्येह त्रीन् स्वप्नान् धुनुते मुनिः ॥ ६२ ॥ कार्यकारणवस्त्वैक्यदर्शनं पटतन्तुवत् ॥ अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६३ ॥ यद् ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥

हुआ तो शास्त्रकी विधिनिषेधता किस प्रकारसे रह सकती है, ऐसी आशंका मत करना। स्वप्नमें जिस प्रकार कभी-कभी जाग्रत और निद्राकी व्यवस्था होती है, वैसे ही न्यायशास्त्रकी विधिनिषेधता हो सकती है ॥ ६१ ॥ इसलिये मननशील योगी भावनाका अद्वैत, क्रियाका अद्वैत, द्रव्यका अद्वैत विचार करके आत्मतत्त्वके अनुभवसे जाग्रत इत्यादि तीन अवस्थाओंका निवारण किया करता है ॥ ६२ ॥ भावनाका अद्वैत किसको कहते हैं वह सुनो-जैसे वस्त्र कोई पदार्थ नहीं है। उसका मुख्य पदार्थ सूत है, ऐसे ही जाग्रत् अवस्था कोई पदार्थ नहीं परब्रह्म ही मुख्य पदार्थ है इस वस्त्र और सूतके समान कार्य और कारणको जो एक वस्तुरूपसे विचारना है, उसको भावाद्वैत अर्थात् भावनाका अद्वैत कहते हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन्! मनसे, वाणीसे और शरीरसे साक्षात् परब्रह्ममें जो सब कर्मोंका समर्पण करना है

उसका नाम क्रियाद्वैत है, फल प्राप्त होनेकी इच्छासे जो फलोंका संकल्प करते हैं, उनकी भिन्नतासे क्रियाओंकी भिन्नता हो जाती है, परन्तु परमात्माको समर्पण करनेसे फलोंकी भिन्नता नहीं रहती, इसलिये इसका नाम क्रियाद्वैत है ॥ ६४ ॥ पुत्र, स्त्री, आप और सब देहधारियोंमें जो अपने हैं और पराये हैं वे सब पञ्चभूतात्मकतासे एकरूप हैं और सबका भोक्ता भी एक परब्रह्म परमेश्वर है, उन सबके अर्थ और कामको भी एकरूपताका जो देखना है उसको द्रव्याद्वैत कहते हैं ॥६५॥ हे राजन् ! पहले आश्रम सम्बन्धी धर्म संक्षेपसे कहते हैं–जिस यत्नसे, जिसके पाससे, जिस स्थानपर, जिस द्रव्यका, जिस मनुष्यके लिये शास्त्रने निषेध नहीं किया, उस यत्नसे, उसके पाससे, उस स्थानपर, उस द्रव्यसे, वह मनुष्य वह कर्म करे और जबतक आपत्तिकाल न हो तबतक कर्मोंको न छोड़े ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! पहले कहे

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥ यद् यस्य वा निषिद्धं स्याद् येन यत्र यतो नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥ ६७ ॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥ अहं पुराऽभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥

हुए कर्म और वेदोक्त कर्म अथवा भगवद्भक्ति करनेसे मनुष्य घरमें बैठा हुआ भी परमपदवीको पा सकता है ॥६७॥ हे नृपेन्द्र ! यह बात सर्व साधारणके लिये है और भक्तजनोंकी तो भक्ति ही सब काम सिद्ध करती है ! देखो ! आप कैसी महाकठिन विपत्तियोंके समुदायोंसे बचे, यह सब वैकुण्ठविहारी कृष्णमुरारीका ही अनुग्रह था और उन्हींके चरणसरोरुहकी सेवाका प्रताप था जो आपने अनेक दिग्विजय किये और सब दिशाओंमें अपनी जीत का डंका बजा दिग्गजोंको जीतकर बड़े भारी-भारी यज्ञ किये ॥ ६८ ॥ अभिमान और महात्मापुरुषोंका अपमान करनेसे भगवान्की सेवा छूट जाती है और उन्हींके अनुग्रहसे सब काम सिद्ध हो जाते हैं, पिछले जन्मका मुझको अच्छा स्मरण है कि गत महाकल्पमें मैं उपबर्हण नामक एक गन्धर्व था और सब गन्धर्व मेरा अत्यन्त आदर-सम्मान करते थे॥६९॥

रूप, सौंदर्य्य, माधुर्य और सुगंधिके कारणसे सब मनुष्योंको मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती थी और स्त्रियोंको परम प्रिय और कामोद्दीपन करनेवाला था ही, परन्तु मुझसे बढ़कर संसारमें कोई लम्पट और लबार नहीं था ॥७० ॥ एक समय देवताओंके समाजमें भगवान् वासुदेवकी गाथा गानेके लिये प्रजापतियोंने अनेक गन्धर्व और अप्सराओंके समूहके समूह बुलाये॥ ७१ ॥ उस समय मैं भी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोंको अपने संग लेकर गाता बजाता वहां पहुँचा, मुझको देखकर प्रजापति महाकुपित हुए और अपनी शक्तियोंसे मुझको शाप दिया और यह कहा कि तूने हमारी अवज्ञा की, तू बड़ा निर्लज्ज है इस लिये तू नष्ट होकर अभी शूद्रयोनिमें जाकर जन्म ले ॥७२ ॥ शापके देते ही मैं तनु त्यागकर दासीपुत्र हुआ और जन्मसे ही महात्माओंकी सेवा और उनकी सत्संगतिके प्रभावसे तीसरे जन्ममें आकर

रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ॥ स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥ ७० ॥ एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरि गाथोपगायने ॥७१॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयाऽनुषंगेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ७५ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद् विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥ ७६ ॥

मैंने ब्रह्माजीके घरमें जन्म लिया॥ ७३ ॥ पापका विनाश करनेवाला गृहस्थ लोगोंका धर्म मैंने आपके समाने वर्णन किया। जिस धर्मके करनेसे गृहस्थ लोग विना परिश्रम परमपदवीको पहुँच जायँगे। जिस पदवीको संन्यासी लोग जाते हैं ॥७४॥ हे राजन्! मृत्युलोकमें तुम बड़े भाग्यशाली हो क्योंकि तुम्हारे घर त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले महात्मालोग चारों ओरसे आते हैं और मनुष्य अवतार धरकर साक्षात् आदिपुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द विराजते हैं॥ ७५ ॥ यह आदिपुरुष अविनाशी जिनको मुनिजन समाधि लगाकर खोजते रहते हैं और उनके ध्यानमें नहीं आते, वे श्रीकृष्ण आपके परममित्र ममेरे भाई, आत्माराम, परमपूज्य, जगद्गुरु,

आपकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले आपके साथ दिन-रात रहते हैं, वह मोक्ष सम्बन्धी आनंदके सुखका अनुभव करनेवाले यही हैं ॥ ७६ ॥ शिव ब्रह्मादिक देवता जिनका साक्षात् स्वरूप किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते कि भगवान्का स्वरूप कैसा है, निदान मौन होकर इन्द्रियोंको शान्त करके भक्तिसे भगवान्का पूजन करते हैं, यह भक्तवत्सल परमकृपालु श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनविहारी हम सबपर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार राजा युधिष्ठिर देवऋषि नारदजीके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर नारदमुनिसहित श्रीकृष्णमहाराजकी सबने मिलकर पूजा की ॥ ७८ ॥ पूजा-सम्मान पाकर नारदजी महाराज श्रीकृष्ण

न यस्य साक्षाद् भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ७७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभ ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥ कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥७९॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे वर्णाश्रमधर्मनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः

भगवान् और युधिष्ठिरसे बिदा मांगकर वहांसे चल दिये और राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण देवकीनंदनको परब्रह्म परमात्मा सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ यह सब दक्षप्रजापतिकी पुत्री दाक्षायणीके वंश पृथक्-पृथक् मैंने आपसे वर्णन किये, कि जिन वंशोंमें देवता, दैत्य और मनुष्य आदि सब चराचर लोक उत्पन्न हुए। धन्य हो प्रभुजी ! आपकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है, जब सहस्र मुखवाले शेषजी ही 'नेति नेति' कहते हैं फिर औरका क्या सामर्थ्य है ? ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रह्लादानुचरिते सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ इति भाषाटीका समेत सप्तमस्कन्ध समाप्त !

विदुषामभ्यर्थना।

अत्रास्माकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र–कर्मकाण्ड–व्याकरण–न्याय–योग–सांख्य–मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य–नाटक–चम्पू–प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति, तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः।

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–मुद्रणालयाध्यक्षः, मुंबईस्थः।

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.